जैन भारती

नित नया उन्मेष जिस मस्तिष्क का संधान है।
वाचना के प्रमुख तुलसी का सकल अनुदान है।
भाष्य-युग की शृंखला में एक नव्य प्रयोग है।
राष्ट्रभाषा में विनिर्मित "भगवती"- अनुयोग है।।

वाचना - प्रमुख

आचार्य तुलसी

संपादक : भाष्यकार

आचार्य महाप्रज्ञ

विआहपण्णत्ती

(खण्ड-४)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भगवई

भगवान् महावीर (ईस्वी पूर्व ५९९ –५२७) की वाणी द्वादशांगी में संकलित है। उस द्वादशांगी के पांचवें अंग का नाम है-विआहपण्णत्ती जो 'भगवती सूत्र' के नाम से सुप्रसिद्ध है। जैन साहित्य में तत्त्वज्ञान की दृष्टि से भगवती को सर्वाधिक महत्त्व प्राप्त हुआ है। इसमें दर्शनशास्त्र, आचारशास्त्र, जीवविद्या, लोकविद्या, सृष्टिविद्या, परामनोविज्ञान आदि अनेक विषयों का समावेश है। प्रस्तुत खंड में पांच शतकों (१२ से १६) के मूलपाठ, संस्कृत छाया तथा हिन्दी अनुवाद का प्रकाशन विस्तृत भाष्य के साथ हुआ है। साथ में अभयदेवसूरि-कृत वृत्ति भी प्रकाशित है।

बारहवें शतक में जागरिका, परमाणु, जीव विभक्ति, पुनर्जन्म, सप्तभंगी आदि का सूत्रात्मक शैली में विवेचन है।

तेरहवें शतक में पंचास्तिकाय, शरीर, भाषा और मन का संबंध, भावितात्मा अणगार की विक्रिया आदि महत्त्वपूर्ण विषयों का समाहार है।

चौदहवें शतक में तमस्काय, तेजोलेश्या, परमाणु, देवों की विनय विधि तथा देवों की दिव्य शक्तियों का विलक्षण वर्णन है।

पंद्रहवां शतक समग्र भारतीय इतिहास के लिए एक महत्त्वपूर्ण सूचना-स्रोत है। इसमें गोशालक के जीवन-वृत्त का रोचक शैली में निरूपण है।

सोलहवें शतक में एक महत्त्वपूर्ण सूचना है-'वायुकाय के बिना अग्निकाय नहीं होती। भगवान् महावीर के पास देव-आगमन के प्रसंग भी बहुत उत्प्रेरक हैं। निर्जरा का तुलनात्मक विवेचन, अधिकरण, मुनि की शल्य-चिकित्सा आदि महत्त्वपूर्ण प्रसंग भी इसमें समाविष्ट है।

प्रस्तुत ग्रंथ को समग्र दृष्टि से भारतीय दार्शनिक वाङ्मय का महत्त्वपूर्ण ग्रंथ कहा जा सकता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भगवई

विआहपण्णत्ती

(खण्ड-४)

(शतक-१२-१६)

(मूलपाठ, संस्कृत छाया, हिन्दी अनुवाद, भाष्य तथा अभयदेवसूरिकृत वृत्ति एवं
परिशिष्ट–शब्दानुक्रम आदि सहित)

वाचना-प्रमुख :
आचार्य तुलसी

संपादक/भाष्यकार
आचार्य महाप्रज्ञ

जैन विश्व भारती
लाडनूं - ३४१ ३०६ (राजस्थान)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकाशक :
जैन विश्व भारती
लाडनूं - ३४१ ३०६ (राज.)

© जैन विश्व भारती, लाडनूं

सौजन्य : पूज्य दादाजी स्व. महालचंदजी डागा, पूज्य दादीजी स्व. लिछमी देवी डागा की पुण्य स्मृति में उनके पौत्र पूनमचंद एवं प्रपौत्र राकेश, पंकज, ऋषभ डागा (सरदारशहर-चेन्नई)

प्रथम संस्करण : अक्टूबर २००७

पृष्ठ संख्या : ४८९+२०=५०९

मूल्य : ५००/- (पांच सौ रुपया मात्र)

टाईप सेटिंग : सर्वोत्तम प्रिण्ट एण्ड आर्ट

मुद्रक : पायोराईट प्रिण्ट मीडिया प्रा. लि., उदयपुर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

BHAGAWAĪ

VIĀHAPAṆṆATTĪ

[Volume - IV]

(Sataka 12-16)

(Prakrit Text, Sanskrit Renderings, Hindi Translation and Bhāṣya [Critical Annotations] with Vṛtti of Abhayadevasūri and Appendices-Indices etc.)

Synod-chief
(Vāchanā-pramukha)
ACHARYA TULSI

Editor and Annotator (Bhāṣyakāra)
ACHARYA MAHAPRAJNA

JAIN VISHVA BHARATI
Ladnun - 341 306 (Rajasthan) INDIA

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Publishers :
Jain Vishva Bharati
Ladnun - 341 306 (Raj.)

© Jain Vishva Bharati, Ladnun

Courtsey : Mr. Poonamchand (Grandson) & Rakesh, Pankaj, Rishabh Daga (Great Grand Sons) in the auspicious memory of Late Shri Mahalchand ji Daga, Late Smt. Lichmidevi Daga **(Sardarshar-Chennai)**

First Edition : October 2007

Pages : 489+20=509

Price : Rs. 500/-

Type Setting : Sarvottam Print & Art

Printed by : PAYORITE PRINT MEDIA PVT. LTD. UDIPUR

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समर्पण

।।१।।

पुट्ठो वि पण्णा-पुरिसो सुदक्खो,
आणा-पहाणो जणि जस्स निच्चं।
सच्चप्पओगे पवरासयस्स,
भिक्खुस्स तस्स प्पणिहाणपुव्वं।।

जिसका प्रज्ञा-पुरुष पुष्ट पटु,
होकर भी आगम-प्रधान था।
सत्य-योग में प्रवर चित्त था,
उसी भिक्षु को विमल भाव से।।

।।२।।

विलोडियं आगमदुद्धमेव,
लद्धं सुलद्धं णवणीयमच्छं।
सज्झायसज्झाणरयस्स निच्चं,
जयस्स तस्स प्पणिहाणपुव्वं।।

जिसने आगम-दोहन कर कर,
पाया प्रवर प्रचुर नवनीत।
श्रुत-सद्ध्यान लीन चिर चिंतन,
जयाचार्य को विमल भाव से।।

।।३।।

पवाहिया जेण सुयस्स धारा,
गणे समत्थे मम माणसे वि।
जो हेउभूओ स्स पवायणस्स,
कालुस्स तस्स प्पणिहाणपुव्वं।।

जिसने श्रुत की धार बहाई,
सकल संघ में, मेरे मन में।
हेतुभूत श्रुत-सम्पादन में,
कालुगणी को विमल भाव से।।

विनयावनत
आचार्य तुलसी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वन्दना

वाणी-वन्दना

सत्य की अभिव्यक्ति में अक्षर सहज अक्षर बना ।
वन्दना उस आप्त वाणी की करें पुलकितमना ।
भारती कैवल्य-पथ से अवतरित अधिगम्य है ।
सुचिर-संचित तम-विदारक रम्य और प्रणम्य है ।।

वीर वन्दना

पुरुष के पुरुषार्थ का अधिकृत प्रवक्ता जो रहा ।
चेतना-निष्णात हो जो कुछ हुआ सबको सहा ।
समन्वय का सूत्र सम्यग् दृष्टि का पहला चरण ।
वीर प्रभु के चरण-चिह्नों का करें हम अनुसरण ।।

भिक्षु-वन्दना

अगम-आगम के पदों का काव्य था जिसने लिखा
सहज प्रज्ञा से अपथ का पंथ था जिसको दिखा ।
भिक्षु का वर मार्गदर्शन भाग्य से उपलब्ध है ।
सूत्र-सम्पादन नियति का वह बना प्रारब्ध है ।।

जय-कालु-वन्दना

सुचिर पोषित आप्त-वाङ्मय-धेनु का दोहन किया
मुनिप जय ने भिक्षु-गण में प्रवर सूर्योदय किया ।
उदय की इस उर्वरा का बीज हर आलेख है ।
पूज्य कालू के सुचिन्तन का नया अभिलेख है ।

वाचना-प्रमुख आचार्य तुलसी-वन्दना

नित नया उन्मेष जिस मस्तिष्क का संधान है ।
वाचना के प्रमुख तुलसी का सकल अनुदान है ।
भाष्य-युग की शृंखला में एक नव्य प्रयोग है ।
राष्ट्रभाषा में विनिर्मित "भगवती" अनुयोग है ।।

विनयावनत

आचार्य महाप्रज्ञ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अन्तस्तोष

अन्तस्तोष अनिर्वचनीय होता है उस माली का जो अपने हाथों से उस और सिञ्चित द्रुम-निकुञ्ज को पल्लवित, पुष्पित और फलित हुआ देखता है, उस कलाकार का जो अपनी तूलिका से निराकार को साकार हुआ देखता है और उस कल्पनाकार का जो अपनी कल्पना को अपने प्रयत्नों से प्राणवान् बना देखता है। चिरकाल से मेरा मन इस कल्पना से भरा था कि जैन-आगमों का शोध-पूर्ण सम्पादन हो और मेरे जीवन के बहुश्रमी क्षण उसमें लगे। संकल्प फलवान् बना और वैसा ही हुआ। मुझे केन्द्र मान मेरा धर्म-परिवार उस कार्य में संलग्न हो गया। अतः मेरे इस अन्तस्तोष में मैं उन सबको समभागी बनाना चाहता हूं, जो इस प्रवृत्ति में संविभागी रहे हैं। संक्षेप में वह संविभाग इस प्रकार है—

संपादक : भाष्यकार	—	**आचार्य महाप्रज्ञ**
संस्कृत छाया	—	**युवाचार्य महाश्रमण**
सहयोगी संस्कृत छाया	—	**मुनि विमल कुमार**
श्रुतलेखन, सम्पादन एवं अनुवाद सहयोगी	—	**मुनि महेन्द्र कुमार**
		मुनि धनंजय कुमार
सहयोगी सम्पादन भाष्य	—	**मुनि दिनेश कुमार**
		मुनि योगेश कुमार
वीक्षा-समीक्षा	—	**मुनि हीरालाल**

संविभाग हमारा धर्म है। जिन-जिनने गुरुतर प्रवृत्ति में उन्मुक्त भाव से अपना संविभाग समर्पित किया है, उन सबको मैं आशीर्वाद देता हूं और कामना करता हूं कि उनका भविष्य इस महान् कार्य का भविष्य बने।

—आचार्य तुलसी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्पादकीय

भगवई विआहपण्णत्ती का चतुर्थ खंड पाठक के सम्मुख प्रस्तुत हो रहा है। इसके सम्पूर्ण मूलपाठ का सम्पादन अंगसुत्ताणि भाग २ में हो चुका है। हमने जो सम्पादन-शैली स्वीकृत की है, उसमें पाठ-शोधन और अर्थ-बोध दोनों समवेत हैं। अर्थ बोध के लिए शुद्ध पाठ अपेक्षित है और पाठ शुद्धि के लिए अर्थ-बोध अनिवार्य है।

प्रस्तुत संस्करण अर्थ-बोध कराने वाला है। इसमें मूल पाठ के अतिरिक्त संस्कृत छाया, हिन्दी अनुवाद और सूत्रों का हिन्दी भाष्य समवेत है। पाठ-सम्पादन का काम जटिल है। अर्थ-बोध का काम उससे कहीं अधिक जटिल है। कथा-भाग और वर्णन-भाग में तात्पर्य-बोध की जटिलता नहीं है। किन्तु तत्त्व और सिद्धांत का खण्ड बहुत गंभीर अर्थ वाला है। उसकी स्पष्टता के लिए हमारे सामने दो आधारभूत ग्रंथ रहे हैं--

१. **अभयदेव सूरिकृत वृत्ति**—इसे अभयदेवसूरि ने स्वयं विवरण ही माना है और उसे पढ़ने पर वह विवरण-ग्रंथ का बोध ही कराता है, व्याख्या-ग्रंथ का बोध नहीं देता।

२. **भगवती जोड़**—इसमें श्रीमज्जयाचार्य ने अभयदेवसूरि की वृत्ति का पूरा उपयोग किया है। 'धर्मसी का टबा' का भी अनेक स्थलों पर उपयोग किया है। इसके अतिरिक्त आगम और अपने तत्त्वज्ञान के आधार पर अनेक समीक्षात्मक वार्तिक लिखे हैं।

हमने भाष्य के लिए आगम-सूत्रों, श्वेताम्बर-दिगम्बर परम्परा का ग्रंथ साहित्य, वैदिक और बौद्ध परंपरा के अनेक ग्रंथों का उपयोग किया है। 'आयारो' का भाष्य संस्कृत भाषा में लिखा गया है। भगवती का भाष्य हिन्दी में लिखा गया है। ठाणं, सूयगडो आदि की सम्पादन-शैली यह रही—मूल पाठ, संस्कृत छाया, हिन्दी-अनुवाद तथा स्थान और अध्ययन की समाप्ति पर टिप्पण अथवा भाष्य। भगवती की संपादन शैली में एक नया प्रयोग किया गया है—प्रत्येक सूत्र अथवा प्रत्येक आलापक (प्रकरण) के साथ भाष्य की समायोजना है। अन्त में छह परिशिष्ट हैं--

१. नामानुक्रम

(क) व्यक्ति और स्थान

(ख) देवलोक-संबंधी

(ग) पशु-पक्षी

२. शब्द एवं शब्द-विमर्शानुक्रम

३. भाष्यविषयानुक्रम

४. पारिभाषिक शब्दानुक्रम

५. अभयदेवसूरिकृत वृत्ति—शतक बारह से सोलह

६. आधारभूत ग्रंथ-सूची।

प्रत्येक शतक के पहले एक आमुख है। पाद-टिप्पण में संदर्भ वाक्य उद्धृत हैं।

उपलब्ध आगम-साहित्य में 'भगवती सूत्र' सबसे बड़ा ग्रंथ है। तत्त्वज्ञान का अक्षयकोष है। इसके अतिरिक्त

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसमें प्राचीन इतिहास पर प्रकाश डालने वाले दुर्लभ सूत्र विद्यमान हैं। इस पर अनेक विद्वानों ने काम किया है। किन्तु जितने श्रम-बिन्दु झलकने चाहिए, उतने नहीं झलक रहे हैं, यह हमारा विनम्र अभिमत है। गुरुदेव तुलसी की भावना थी कि भगवती पर गहन अध्यवसाय के साथ कार्य होना चाहिए। हमने उस भावना को शिरोधार्य किया है और उसके अनुरूप फलश्रुति भी हुई है। इसका मूल्यांकन गहन अध्ययन करने वाले ही कर पाएंगे। हमारा यह निश्चित मत है कि सभी परम्पराओं के ग्रंथों के व्यापक अध्ययन और व्यापक दृष्टिकोण के बिना प्रस्तुत आगम के आशय को पकड़ना सरल नहीं है।

सहयोगानुभूति

जैन परम्परा में वाचना का इतिहास बहुत प्राचीन है। आज से १५०० वर्ष पूर्व तक आगम की चार वाचनाएं हो चुकी हैं। देवर्द्धिगणी के बाद कोई सुनियोजित आगम-वाचना नहीं हुई। उसके वाचना-काल में जो आगम लिखे गए थे, वे इस लम्बी अवधि में बहुत ही अव्यवस्थित हो गए। उनकी पुनर्व्यवस्था के लिए आज फिर एक सुनियोजित वाचना की अपेक्षा थी। गणाधिपति पूज्य गुरुदेव श्री तुलसी ने सुनियोजित सामूहिक वाचना के लिए प्रयत्न भी किया था, परन्तु वह सफल नहीं हो सका। अन्ततः हम इसी निष्कर्ष पर पहुंचे कि हमारी वाचना अनुसन्धानपूर्ण, तटस्थ दृष्टि-समन्वित तथा सपरिश्रम होगी, तो वह अपने-आप सामूहिक हो जाएगी। इसी निर्णय के आधार पर हमारा यह आगम-वाचना का कार्य प्रारंभ हुआ।

हमारी इस वाचना के प्रमुख आचार्यश्री तुलसी रहे हैं। वाचना का अर्थ अध्यापन है। हमारी इस प्रवृत्ति में अध्यापन-कर्म के अनेक अंग हैं—पाठ का अनुसंधान, भाषान्तरण, समीक्षात्मक अध्ययन आदि आदि। इन सभी प्रवृत्तियों में गुरुदेव का हमें सक्रिय योग, मार्ग-दर्शन और प्रोत्साहन प्राप्त हुआ। यही हमारा इस गुरुतर कार्य में प्रवृत्त होने का शक्ति-बीज है।

प्रस्तुत ग्रंथ भगवती का सानुवाद और सभाष्य संस्करण है। प्रथम खण्ड में भगवती के प्रथम दो शतक व्याख्यात हैं। दूसरे खण्ड में तृतीय शतक से सप्तम शतक तक तथा तीसरे खण्ड में आठवें शतक से ग्यारहवां शतक तक व्याख्यात हैं। प्रस्तुत खंड में बारहवें से सोलहवें शतक तक व्याख्यात हैं। मूलपाठ, संस्कृत छाया, हिन्दी अनुवाद, भाष्य और उनके संदर्भ-स्थल तथा परिशिष्ट—ये सब प्रस्तुत संस्करण के परिकर हैं।

प्रस्तुत ग्रंथ में संस्कृत छाया का कार्य युवाचार्य महाश्रमण ने किया है। इस कार्य में मुनि विमलकुमारजी उनके सहयोगी रहे हैं। भाष्य के श्रुत लेखन, संपादन एवं अनुवाद में मुनि धनंजय कुमार मेरे सहयोगी रहे हैं। मुनि महेन्द्रकुमारजी प्रस्तुत ग्रंथ के पन्द्रहवें शतक के भाष्य एवं अनुवाद में सहभागी रहे हैं। संपादन एवं भाष्य के कार्य में मुनि दिनेशकुमार का भी सहयोग रहा है। इसकी वीक्षा समीक्षा, प्रूफरीडिंग आदि में मुनि हीरालालजी ने बहुत श्रम किया है। मुनि योगेशकुमार ने परिशिष्ट निर्माण, प्रूफरीडिंग आदि में तन्मयता से कार्य किया है। मुनि आलोक कुमार का भी इस कार्य में यथेप्सित योग रहा है। संस्कृत छाया के पुनरवलोकन में साध्वी श्रुतयशा एवं साध्वी मुदितयशा ने अपने अध्यवसाय का नियोजन किया है। पाण्डुलिपि लेखन में अनेक समणियों ने निष्ठापूर्वक श्रम किया है।

प्रस्तुत ग्रंथ के सम्पादन में अनेक साधु-साध्वियों का योग है। गुरुदेव के वरद हस्त की छाया में बैठकर कार्य करने वाले हम सब संभागी हैं। फिर भी मैं उन सब साधु-साध्वियों के प्रति सद्भावना व्यक्त करता हूं, जिनका इस कार्य में स्पर्श हुआ है।

२ अक्टूबर २००७
उदयपुर

—आचार्य महाप्रज्ञ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकाशकीय

मुझे यह लिखते हुए अत्यंत हर्ष हो रहा है कि 'जैन विश्व भारती' द्वारा आगम-प्रकाशन के क्षेत्र में जो कार्य संपन्न हुआ है, वह मूर्धन्य विद्वानों द्वारा स्तुत्य और बहुमूल्य बताया गया है।

हम बत्तीस आगमों का पाठान्तर शब्दसूची तथा 'जाव' की पूर्ति से संयुक्त सुसंपादित मूलपाठ प्रकाशित कर चुके हैं। उसके साथ-साथ आगम-ग्रंथों का मूलपाठ, संस्कृत छाया, हिन्दी अनुवाद एवं प्राचीनतम व्याख्या-सामग्री के आधार पर सूक्ष्म ऊहपोह के साथ लिखित विस्तृत मौलिक टिप्पणों से मंडित संस्करण प्रकाशित करने की योजना भी चलती रही है।

इस शृंखला में आठ ग्रंथ प्रकाशित हो चुके हैं–

१. दसवेआलियं	**५. समवाओ**
२. उत्तरज्झयणाणि	**६. नंदी**
३. सूयगडो	**७. अनुओगदाराइं**
४. ठाणं	**८. नायाधम्मकहाओ**

आयारो पर संस्कृत में आचारांग-भाष्यम् भी प्रकाशित हो चुका है।

प्रस्तुत आगम **भगवई विआहपण्णत्ती** इसी शृंखला का महत्त्वपूर्ण आगम है। बहुश्रुत वाचना-प्रमुख **आचार्यश्री तुलसी** एवं अप्रतिम विद्वान् संपादक-भाष्यकार **आचार्यश्री महाप्रज्ञ** ने जो श्रम किया है, वह ग्रंथ के अवलोकन से स्वयं स्पष्ट होगा।

भगवई विआहपण्णत्ती खण्ड १ में प्रथम दो शतकों का प्रकाशन भाष्य-सहित सन् १९९४ में हो चुका है। सन् २००० में प्रकाशित द्वितीय खंड में तीसरे से सातवें शतक तथा सन् २००५ में प्रकाशित तृतीय खंड में आठवें से ग्यारहवें शतक तक का समावेश है। प्रस्तुत चतुर्थ खण्ड में बारहवें से सोलहवें शतक तक की सभाष्य प्रस्तुति है।

श्रद्धेय **युवाचार्यश्री महाश्रमण** के अतिरिक्त मुनिश्री हीरालालजी, मुनिश्री महेन्द्रकुमारजी, मुनिश्री विमलकुमारजी, मुनि धनंजयकुमारजी, मुनि दिनेशकुमारजी और मुनि योगेशकुमारजी ने इसे सुसज्जित करने में अनवरत श्रम किया है। ग्रंथ की पाण्डुलिपि तैयार करने में आदरणीय समणीवृन्द का बहुत सहयोग रहा है। इसकी कंपोजिंग में सर्वोत्तम प्रिण्ट एण्ड आर्ट के श्री किशन जैन एवं श्री प्रमोद प्रसाद का योग रहा है।

ऐसे सुसम्पादित आगम ग्रंथ को प्रकाशित करने का सौभाग्य **जैन विश्व भारती** को प्राप्त हुआ है।

आशा है पूर्व प्रकाशनों की तरह यह प्रकाशन भी विद्वानों की दृष्टि में अत्यंत उपयोगी सिद्ध होगा।

२ अक्टूबर २००७
उदयपुर

सुरेन्द्र चोरड़िया
अध्यक्ष, जैन विश्व भारती, लाडनूं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संकेत-निर्देशिका

अणु.–अणुओगदाराइं

अनु. चू.–अनुयोगद्वार चूर्णि

आ. चू.–आयार चूला

आप्टे–Apte's Sanskrit English Dictionary

आव.चू.–आवश्यक चूर्णि

उवा.–उवासगदसाओ

उत्तर.–उत्तरज्झयणाणि

उत्तर. वृ.–उत्तराध्ययन वृत्ति

ओव.–ओववाइयं

जंबू.–जंबुद्दीवपण्णत्ती

जीवा.–जीवाजीवाभिगमे

जै. आ. व. को.–जैन आगम वनस्पति काश

जै. सि. को.–जैनेन्द्र सिद्धांत कोश

त. रा. वा.–तत्त्वार्थ राजवार्तिक

त. सू.–तत्त्वार्थ सूत्र

त. सू. भा. वृ.–तत्त्वार्थसूत्राधिगम भाष्य वृत्ति

दश. चू.–दशवैकालिक चूर्णि

दश. नि.–दशवैकालिक निर्युक्ति

दस.–दसवेआलियं

पण्ण.–पण्णवणा

पण्हा.–पण्हावागरणाइं

पा. यो. द.–पातञ्जल योग दर्शन

प्रज्ञा. वृ.–प्रज्ञापना वृत्ति

भ.–भगवई

भ. जो.–भगवती जोड़

भ. वृ.–भगवती वृत्ति

राय. वृ.–रायपसेणइयं वृत्ति

व्य. भा.–व्यवहार भाष्य

व्य. सू.–व्यवहार सूत्र

सम.–समवाओ

सूय.–सूयगडो

सूर.–सूरपण्णत्ती

सूर्य. वृ.–सूर्यप्रज्ञप्ति वृत्ति

स्था. वृ.–स्थानांग वृत्ति

अ.–अध्ययन

उ.–उद्देशक

ख.–खण्ड

गा.–गाथा

प.–पत्र

पु.–पुस्तक

पू.–पूर्ति स्थल

पृ.–पृष्ठ

(भा.)–भाष्य

भा.–भाग

सू.–सूत्र

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विषयानुक्रम

बारहवां शतक

सूत्र		पृष्ठ
आमुख		३-४
	पहला उद्देशक	
	संग्रहणी गाथा	५
१-२९	शंख-पुष्कली पद	५-१६
	दूसरा उद्देशक	
३०-४०	उदयन आदि का धर्म-श्रवण पद	१७-२०
४१-६५	जयंती-प्रश्न पद	२०-२७
	तीसरा उद्देशक	
६६-६८	पृथ्वी पद	२८
	चौथा उद्देशक	
६९-८०	परमाणु-पुद्गल संघात-भेद पद	२९-४४
८१-१०१	पुद्गल-परिवर्त्त पद	४४-५३
	पांचवां उद्देशक	
१०२-११९	वर्णादि और अवर्णादि की अपेक्षा द्रव्य-विमर्श	५४-६१
१२०-१२१	कर्म विभक्ति पद	६२
	छठा उद्देशक	
१२२-१२४	चंद्र-सूर्य-ग्रहण पद	६३-६६
१२५-१२६	शशि-आदित्य पद	६६-६७
१२७-१२९	चंद्र-सूर्य का कामभोग पद	६७-६९
	सातवां उद्देशक	
१३०-१३२	समस्त जीवों का जन्म-मृत्यु पद	७०-७१
१३३-१५३	अनेक अथा अनंत बार उपपात पद	७१-७६
	आठवां उद्देशक	
१५४-१५८	देवों का द्विशरीर-उपपात पद	७७-७८
१५९-१६२	पंचेन्द्रियतिर्यक्योनिक उपपात पद	७८-७९
	नौवां उद्देशक	
१६३-१६८	पंचविध देव पद	८०-८१
१६९-१७७	पंचविध देवों का उपपात पद	८१-८३
१७८-१८२	पंचविध देवों का स्थिति पद	८३-८४
१८३-१८४	पंचविध देवों का विक्रिया पद	८४-८५
१८५-१९०	पंचविध देवों का उद्वर्तन पद	८५-८६
१९१	पंचविध देवों का संस्थिति पद	८६-८७
१९२-१९६	पंचविध देवों का अन्तर पद	८७-८८
१९७-१९९	पंचविध देवों का अल्प-बहुत्व पद	८८-८९
	दसवां उद्देशक	
२००-२०४	अष्टविध आत्म पद	९०-९३
२०५	अष्टविध आत्मा का अल्पबहुत्व पद	९३-९४
२०६-२१०	ज्ञान-दर्शन का आत्मा के साथ भेदाभेद पद	९४-९५
२११-२२६	स्याद्वाद-पद	९५-१०४

तेरहवां शतक

सूत्र		पृष्ठ
आमुख		१०७-१०८
	पहला उद्देशक	१०९
	संग्रहणी गाथा	
१-३	संख्येय-विस्तृत नरकों में उपपात पद	१०९-११२
४	संख्येय-विस्तृत नरकों में उद्वर्तन पद	११२-११३
५-२३	संख्येय-विस्तृत नरकों में सत्ता पद	११३-११८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सूत्र		पृष्ठ
२४-३९	**दूसरा उद्देशक**	११९-१२४
४०-४१	**तीसरा उद्देशक**	१२५
	चौथा उद्देशक	
४२-४३	नरक और नैरयिकों में अल्प-महत् पद	१२६-१२७
४४	नैरयिकों के स्पर्शानुभव पद	१२८
४५	नरकों का बाहल्य-क्षुद्रत्व पद	१२८-१२९
४६	नरक-परिसामन्त पद	१२९
४७-५४	लोक मध्य पद	१२९-१३१
५५-६०	लोक पद	१३२-१३४
६१-७३	धर्मास्तिकाय आदि का परस्पर स्पर्श पद	१३४-१४१
७४-८७	धर्मास्तिकाय आदि का अवगाढ़ पद	१४२-१४६
८८-९२	लोक पद	१४६-१४८
	पांचवां उद्देशक	
९३-९४	आहार पद	१४९
९५	सांतर-निरंतर उपपन्नादि पद	१५०
९६-१००	चमरचंच आवास पद	१५०-१५२
१०१-१२३	उद्रायण कथा पद	१५२-१६०
	सातवां उद्देशक	
१२४-१२५	भाषा पद	१६१-१६२
१२६-१२७	मन पद	१६३-१६४
१२८-१२९	काय पद	१६४-१६६
१३०-१४६	मरण पद	१६६-१६९
	आठवां उद्देशक	
१४७-१४८	कर्म प्रकृति पद	१७०
	नौवां उद्देशक	
१४९-१६७	भावितात्म-विक्रिया-पद	१७१-१७५
	दसवां उद्देशक	
१६८-१६९	छाद्मस्थिक समुद्घात पद	१७६

चौदहवां शतक

सूत्र		पृष्ठ
आमुख		१७९-१८०
	पहला उद्देशक	
	संग्रहणी गाथा	१८१
१-२	लेश्यानुसारी उपपात पद	१८१-१८३
३	नैरयिक आदि का गति विषयक पद	१८३-१८४
४-१५	नैरयिक का अनंतर उपपन्नक आदि पद	१८४-१८७
	दूसरा उद्देशक	
१६-२०	उन्माद पद	१८८-१९०
२१-२४	वृष्टिकाय करण पद	१९०-१९१
२५-२८	तमस्कायकरण पद	१९१-१९२
	तीसरा उद्देशक	
२९-३९	विनय विधि पद	१९३-१९५
४०-४३	नैरयिक-नैरयिकों का प्रत्यनुभव पद	१९५
	चौथा उद्देशक	
४४-५३	पुद्गल जीव परिणाम पद	१९६-१९९
	पांचवां उद्देशक	
५४-६०	अग्निकाय का अतिक्रमणपद	२००-२०२
६१-६७	प्रत्यनुभव पद	२०२-२०३
६८-७०	देव का उल्लंघन-प्रलंघन पद	२०३-२०४
	छट्ठा उद्देशक	
७१-७३	नैरयिक का आहार आदि पद	२०५-२०६
७४-७६	देवेन्द्र का भोग पद	२०७-२०८
७७-७९	गौतम का आश्वासन पद	२०९-२१०
८०-८१	तुल्य पद	२१०-२१२
८२-८३	भक्त-प्रत्याख्यान का आहार पद	२१३-२१४
८४-८९	लव सप्तम देव पद	२१४-२१५
	आठवां उद्देशक	
९०-१००	अबाधा-अंतर पद	२१६-२१७
१०१-१०६	वृक्ष का पुनर्भव पद	२१८-२१९
१०७-१०९	अम्मड़ अंतेवासी पद	२१९-२२२
११०-११२	अम्मड़ चर्या पद	२२२-२२४
११३-११४	अव्याबाध देव शक्ति पद	२२४-२२५
११५-११६	शक्र का शक्ति पद	२२५
११७-१२२	जृंभक देव पद	२२५-२२७
	नौवां उद्देशक	
१२३-१२५	सरूप-सकर्म लेश्या पद	२२८-२२९
१२६-१२८	आत्मा-अनात्मा-पुद्गल पद	२२९
१२९	इष्ट-अनिष्ट आदि पुद्गल पद	२२९
१३०-१३१	देवों का सहस्र भाषा पद	२३०
१३२-१३५	सूर्य पद	२३०-२३१
१३६-१३७	श्रमणों का तेजोलेश्या पद	२३१-२३२
	दसवां उद्देशक	
१३८-१५५	केवली पद	२३३-२३५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पन्द्रहवां शतक

सूत्र		पृष्ठ
आमुख		२३९-२४३
१-१९	गोशालक पद	२४५-२५०
२०-२१	भगवान् का विहार पद	२५०-२५१
२२-२९	प्रथम मासखमण पद	२५१-२२५
३०-३६	दूसरा मासखमण पद	२५५-२५७
३७-४३	तीसरा मासखमण पद	२५७-२५९
४४-५२	चतुर्थ मासखमण पद	२५९-२६१
५३-५६	गोशाल का शिष्य रूप में अंगीकरण पद	२६२-२६४
५७-५९	तिल-स्तंभ पद	२६५-२६६
६०-७१	बाल तपस्वी वैश्यायन पद	२६६-२७४
७२-७५	तिल के पौधे की निष्पत्ति : गोशाल का अपक्रमण पद	२७४-२७६
७६	गोशाल के तेजोलेश्या का उत्पत्ति पद	२७६-२७७
७७-७८	गोशाल की पूर्व कथा का उपसंहार पद	२७७-२७९
७९-८०	गोशाल का अमर्ष पद	२७९
८१-९६	गोशाल का स्थविर आनंद के समक्ष आक्रोश का प्रदर्शन पद	२७९-२८५
९७-९८	आनंद स्थविर का भगवान से निवेदन पद	२८५-२८७
९९-१००	आनंद स्थविर द्वारा गौतम आदि को अनुज्ञापन पद	२८७
१०१	गोशाल का भगवान् के प्रति आक्रोश पूर्व स्वसिद्धांत निरूपण पद	२८८-२९२
१०२	भगवान् द्वारा गोशाल के वचन का प्रतिकार पद	२९२
१०३	गोशाल का पुनः आक्रोश पद	२९२-२९३
१०४-१०६	गोशाल द्वारा सर्वानुभूति का भस्म राशि करण पद	२९३-२९४
१०७-१०९	गोशाल द्वारा सुनक्षत्र का परिताप-पद	२९४-२९५
११०-११४	गोशाल का भगवान् के वध के लिए तेज-निसर्जन पद	२९५-२९६
११५	श्रावस्ती में जनप्रवाद पद	२९७
११६-११८	गोशाल से श्रमणों का प्रश्न व्याकरण पद	२९७-२९८
११९	गोशाल का संघ भेद पद	२९८-२९९
१२०	गोशाल का प्रतिक्रमण पद	२९९
१२१-१२७	गोशाल के द्वारा नानासिद्धान्त प्ररूपण पद	३००-३०२
१२८-१३८	अयम्पुल आजीविकोपासक पद	३०२-३०५
१३९-१४०	गोशाल द्वारा अपनी मरणोत्तर क्रिया का निर्देश पद	३०५-३०६
१४१	गोशाल का परिणाम-परिवर्तन पूर्वक कालधर्म पद	३०६-३११
१४२-१४३	गोशाल का निर्हरण पद	३११-३१५
१४४-१४६	भगवान् के रोग-आतंक प्रादुर्भवन पद	३१५-३१६
१४७-१४८	सिंह का मानसिक दुःख पद	३१६-३१७
१४९-१५२	भगवान् द्वारा सिंह को आश्वासन पद	३१७-३१९
१५३-१६१	सिंह द्वारा रेवती के घर से भैषज्य आनयन पद	३१९-३२४
१६२-१६३	भगवान् का आरोग्य पद	३२४
१६४	सर्वानुभूति का उपपात पद	३२४-३२५
१६५	सुनक्षत्र का उपपात पद	३२५
१६६-१९०	गोशाल का भवभ्रमण पद	३२५-३४०

सोलहवां शतक

सूत्र		पृष्ठ
आमुख		३४३
	पहला उद्देशक	
	संग्रहणी गाथा	३४५
१-४	वायुकाय पद	३४५-३४६
५	अग्निकाय पद	३४६
६-७	क्रिया पद	३४६-३४७
८-२७	अधिकरणी-अधिकरण पद	३४८-३५१
	दूसरा उद्देशक	
२८-३२	जीवों का जरा-शोक पद	३५२-३५३
३३-३४	शक्र का अवग्रह अनुज्ञापन पद	३५३-३५४
३५-४०	शक्र संबंधी व्याकरण पद	३५४-३५६
४१-४३	चैतन्य-अचैतन्य कृत कर्म पद	३५६-३५७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सूत्र		पृष्ठ
	तीसरा उद्देशक	
४४-४७	कर्म पद	३५८
४८-५०	अर्श छेदन में वैद्य का क्रिया पद	३५८-३६०
	चौथा उद्देशक	
५१-५३	नैरयिक का निर्जरा पद	३६१-३६४
	पांचवां उद्देशक	
५४	शक्र का उत्क्षिप्त प्रश्न व्याकरण पद	३६५
५५-५८	गंगदत्त देव के संदर्भ में परिणममाण-परिणय पद	३६५-३६८
५९-६०	गंगदत्त देव का आत्म विषयक प्रश्न पद	३६८-३६९
६१-६४	गंगदत्त देव द्वारा नाट्य-उपदर्शन पद	३६९-३७०
६५-७५	गंगदत्त देव का पूर्वभव पद	३७०-३७३
	छट्ठा उद्देशक	
७६-९०	स्वप्न पद	३७४-३७६

सूत्र		पृष्ठ
९१	भगवान् का महास्वप्न दर्शन पद	३७६-३७८
९२-१०५	स्वप्न-फल पद	३७८-३८२
१०६-१०७	गंध-पुद्गल	३८२-३८३
१०८-१०९	**सातवां उद्देशक**	३८४
	आठवां उद्देशक	
११०-११५	लोक के चरमान्त में जीव-अजीव आदि मार्गणा पद	३८५-३८८
११६	परमाणु पुद्गल गति पद	३८८
११७	क्रिया पद	३८८-३८९
११८-१२०	अलोक में गति निषेध पद	३८९-३९०
	नौवां उद्देशक	
१२१-१२२	बलि का सभा पद	३९१
	दसवां उद्देशक	
१२३-१२४	अवधि पद	३९२
	ग्यारहवां उद्देशक	
१२५-१२९	द्वीपकुमार आदि पद	३९३
१३०-१३४	**बारहवां से चौदहवां उद्देशक**	३९४

परिशिष्ट

		पृष्ठ
१. नामानुक्रम–	(क) व्यक्ति और स्थान	३९७-४०१
	(ख) देव	४०२-४०४
	(ग) पशु-पक्षी	४०५-४०७
२. शब्दार्थ एवं शब्द-विमर्शानुक्रम		४०८-४११
३. भाष्य-विषयानुक्रम		४१२-४१५
४. पारिभाषिक शब्दानुक्रम		४१६-४२५
५. अभयदेवसूरिकृत वृत्ति–शतक १२-१६		४२६-४८२
६. आधारभूत ग्रंथ सूची		४८३-४८९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बारसमं सतं

बारहवां शतक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आमुख

बारहवें शतक में विषय की विविधता है। विषय वस्तु का प्रारंभ श्रमणोपासक शंख के जीवनवृत्त से होता है। इसमें पाक्षिक पौषध का उल्लेख है। वह एक नई जानकारी देता है।[1] सूत्र ग्यारह से तेरह में पाक्षिक पौषध और पौषध का अन्तर स्पष्टतया उल्लिखित है।

श्रमणोपासक शंख के प्रसंग में तीन जागरिका का उल्लेख हुआ है वह अपूर्व है।[2] कषाय के द्वारा कर्म की सात प्रकृतियों में परिवर्तन होता है। यह विषय कर्मशास्त्रीय दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण है।[3] श्रावकों द्वारा शंख पोक्खली को वंदन-नमस्कार किया गया, इससे पारस्परिक शिष्टाचार की नई दृष्टि मिलती है।[4]

वैदिक साहित्य में गार्गी और मैत्रेयी का तत्त्वज्ञान प्रसिद्ध है, वैसे ही प्रस्तुत आगम में श्रमणोपासिका जयंती अपने तत्त्वज्ञान से विख्यात है। जयंती के द्वारा पूछे गए प्रश्न और भगवान् महावीर के द्वारा दिए गए उत्तर तत्त्वज्ञान की एक अमूल्य राशि है।[5]

प्रस्तुत शतक में परमाणु के संघात से होने वाले स्कंध तथा स्कंध भेद से होने वाले परमाणु और स्कंधों का लंबा विवरण दिया गया है।[6] यह पदार्थ संरचना की दृष्टि से बहुत मननीय विषय है। संघात-भेद के अनुपात से पुद्गल परिवर्त का बोध किया जाता है।

पुद्गल परिवर्त संसार-भ्रमण का बोध कराने वाला एक गणितीय प्रकल्प है। इससे अनादिकालीन संसार परिभ्रमण की जानकारी मिलती है।[7]

जीव और पुद्गल के मध्य भेद रेखा खींचना बहुत कठिन काम है। फिर भी स्वभाव और विभाव के वर्गीकरण पर उनकी भिन्नता का बोध किया जा सकता है। क्रोध, मान आदि अठारह पापों का एक वर्गीकरण है। वह जीव का वैभाविक गुण है। वह जीव और पुद्गल के संयोग से निष्पन्न होता है इसीलिए उसमें पुद्गल के गुणों का निरूपण किया गया है।[8] बुद्धि आदि जीव के क्षायोपशमिक गुण हैं इसलिए उन्हें वर्णातीत कहा गया है।[9]

जीवों की विभक्ति कर्म के कारण होती है। यह कर्मशास्त्रीय दृष्टि से एक महत्त्वपूर्ण सूत्र है।[10]

जैन दर्शन का विकास आत्मा के परिपार्श्व में हुआ इसलिए उसमें पुनर्जन्म की चर्चा बार-बार होती है। प्रस्तुत शतक में 'अणंत खुत्तो'–अनंत बार जन्म के चक्र को अजा-व्रज के उदाहरण द्वारा बतलाया गया है। लोक का परमाणु जितना प्रदेश भी ऐसा नहीं है, जहां जीव का जन्म और मरण न हुआ हो।[11]

पुनर्जन्म के सिद्धांतानुसार उत्पाद होता रहता है, और जीव नाना रूपों को धारण करता रहता है। एक जीव सब जीवों के माता-पिता भाई, बहन आदि के रूप में उत्पन्न हो चुका है। यह पूरा प्रकरण ज्ञानवर्द्धक होने के साथ-साथ बहुत रोचक भी है।[12] भीष्म ने अपने अपूर्व संस्कार की बात कही–जिस भूमि खंड पर किसी की चिता न बनी हो, उस भूमि पर चिता बनाने की बात कही, उस समय देववाणी हुई। उसमें आत्म-सिद्धांत की प्रतिध्वनि मिलती है–

मम प्राणपरित्यागे, तत्र संस्क्रियतां तनुः।
न कोपि यत्र दग्धः प्राग् भूमिखंडे सदा शुचौ॥
अमानुष प्रचारे च, शृंगे कुत्रापि चोन्नते।
अमुंचन् देवता वाणीं, क्वापि तत्रोद्यमो यदा॥
अत्र भीष्मशतं दग्धं, पाण्डवानां शतत्रयं।
द्रोणाचार्यसहस्रं तु, कर्णसंख्या न विद्यते॥

जीव कहां से आया और कहां जाएगा–ये पुनर्जन्म के दो महत्त्वपूर्ण विषय हैं। इस विषय में सूत्र १५४ से ६१ तक का प्रकरण बहुत

१. भ. १२/४-१०
२. भ. १२/२०-२१
३. भ. १२/२२-२५
४. भ. १२/२६
५. भ. १२/४१-६४
६. भ. १२/६६-८०
७. भ. १२/८१-१००
८. भ. १/३१२-३१३ का भाष्य
९. भ. १२/१०२-१११
१०. भ. १२/१२०
११. भ. १२/१३०-१३२
१२. भ. १२/१३३-१५२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रोमांचक है। देव द्विशरीरी नाग और द्विशरीरी वृक्ष के रूप में उत्पन्न होता है और वह लोगों के द्वारा पूजनीय भी होता है और वह सहयोगी भी बनता है।

पुनर्जन्म के विविध नियमों की जानकारी की दृष्टि से यह शतक बहुत मननीय है।

इस शतक में स्याद्वाद की त्रिभंगी का उल्लेख मिलता है–

रत्नप्रभा पृथ्वी स्याद् अस्ति, स्यान्नास्ति, स्याद् अवक्तव्य। परमाणु पुद्गल स्याद् अस्ति स्यान्नास्ति, स्याद् अवक्तव्य।[1]

द्विप्रदेशी स्कंध से लेकर पंच प्रदेशी स्कंध तक के भंगों का विस्तृत उल्लेख है। छह प्रदेशी से अनंत प्रदेशी स्कंध तक के भंगों का समवतार किया गया है।[2]

सप्तभंगी के विषय में पंडित दलसुख मालवणिया ने विस्तार से चर्चा की है–

१. विधिरूप और निषेधरूप इन्हीं दोनों विरोधी धर्मों का स्वीकार करने में ही स्याद्वाद के भंगों का उत्थान है।

२. दो विरोधी धर्मों के आधार पर विवक्षा-भेद से शेष भंगों की रचना होती है।

३. मौलिक दो भंगों के लिए और शेष सभी भंगों के लिए अपेक्षा--कारण अवश्य चाहिए। प्रत्येक भंग के लिए स्वतंत्र दृष्टि या अपेक्षा का होना आवश्यक है। प्रत्येक भंग का स्वीकार क्यों किया जाता है, इस प्रश्न का स्पष्टीकरण जिससे हो वह अपेक्षा है, आदेश है, दृष्टि है या नय है। ऐसे आदेशों के विषय में भगवान् का मन्तव्य क्या था? उसका विवेचन आगे किया जाएगा।

४. इन्हीं अपेक्षाओं की सूचना के लिए प्रत्येक भंग-वाक्य में 'स्यात्' ऐसा पद रखा जाता है। इसी से यह वाद स्याद्वाद कहलाता है। इस और अन्य सूत्र के आधार से इतना निश्चित है कि जिस वाक्य में साक्षात् अपेक्षा का उपादान हो वहां 'स्यात्' का प्रयोग नहीं किया गया है और जहां अपेक्षा का साक्षात् उपादान नहीं है, वहां स्यात् शब्द का प्रयोग किया गया है। अतएव अपेक्षा का द्योतन करने के लिए 'स्यात्' का प्रयोग करना चाहिए यह मन्तव्य इस सूत्र से फलित होता है।

५. जैसा पहले बताया है स्याद्वाद के भंगों में से प्रथम चार भंग की सामग्री अर्थात् चार विरोधी पक्ष तो भगवान् महावीर के सामने थे। उन्हीं पक्षों के आधार पर स्याद्वाद के प्रथम चार भंगों की योजना भगवान् ने की है किन्तु शेष भंगों की योजना भी भगवान् की अपनी है, ऐसा प्रतीत होता है। शेष-भंग प्रथम के चारों का विविध रीति से सम्मेलन ही है। भंग-विद्या में कुशल (भ. ६/५) भगवान् के लिए ऐसी योजना करना कोई कठिन बात नहीं कही जा सकती।

६. अवक्तव्य यह भंग तीसरा है। कुछ जैन दार्शनिकों ने इस भंग को चौथा स्थान दिया है। आगम में अवक्तव्य का चौथा स्थान नहीं है। अतएव यह विचारणीय है कि अवक्तव्य को चौथा स्थान कब से, किसने और क्यों दिया।

७. स्याद्वाद के भंगों में भी विरोधी धर्मयुगलों को लेकर सात ही भंग होने चाहिए। न कम, न अधिक, ऐसी जो जैन दार्शनिकों ने व्यवस्था की है, वह निर्मूल नहीं है। क्योंकि त्रिप्रदेशिक स्कन्ध और उससे अधिक प्रदेशिक स्कंधों के भंगों की संख्या जो प्रस्तुत सूत्र में दी गई है, उससे यही मालूम होता है कि मूल भंग सात वे ही हैं, जो जैन दार्शनिकों ने अपने सप्तभंगी के विवेचन में स्वीकृत किये हैं। जो अधिक भंग संख्या सूत्र में निर्दिष्ट है, वह मौलिक भंगों के भेद के कारण नहीं है, किन्तु एकवचन-बहुवचन के भेद की विवक्षा के कारण ही है। यदि वचनभेद-कृत संख्यावृद्धि को निकाल दिया जाए तो मौलिक भंग सात ही रह जाते हैं। अतएव जो यह कहा जाता है कि आगम में सप्तभंगी नहीं है, वह भ्रममूलक है।[3]

---

१. भ. १२/२११-२१७

२. भ. १२/२१८-२२५

३. आगम-युग का जैन-दर्शन पृ. ११२-११४।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बारसमं सतं : बारहवां शतक

पढमो उद्देसो : पहला उद्देशक

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
संगहणी-गाहा १. संखे २. जयंति ३. पुढवि ४. पोग्गल ५. अइवाय ६. राहु ७. लोगे य। ८. नागे य ९. देव १०. आया, बारसमसए दसुद्देसा॥१॥	**संग्रहणी गाथा** १. शङ्खः २. जयंती ३. पृथिवी ४. पुद्गलः ५. अतिपातः ६. राहुः ७. लोकः च। ८. नागः च ९. देवः १०. आत्मा, द्वादशमे शते दशोद्देशाः॥	**संग्रहणी गाथा** बारहवें शतक के दस उद्देशक हैं–१. शंख २. जयंती ३. पृथ्वी ४. पुद्गल ५. अतिपात ६. राहु ७. लोक ८. नाग ९. देव १०. आत्मा।
संख-पोक्खली-पदं	**शङ्ख-पुष्कलि-पदम्**	**शंख-पुष्कली पद**
१. तेणं कालेणं तेणं समएणं सावत्थी नामं नगरी होत्था–वण्णओ। कोट्ठए चेइए–वण्णओ। तत्थ णं सावत्थीए नगरीए बहवे संखप्पामोक्खा समणोवासया परिवसंति अड्ढा जाव बहुजणस्स अपरिभूया, अभिगयजीवाजीवा जाव अहापरिग्गहिएहिं तवोकम्मेहिं अप्पाणं भावेमाणा विहरंति। तस्स णं संखस्स समणोवासगस्स उप्पला नामं भारिया होत्था–सुकुमालपाणिपाया जाव सुरूवा, समणोवासिया अभिगय-जीवाजीवा जाव अहापरिग्गहिएहिं तवोकम्मेहिं अप्पाणं भावेमाणी विहरइ।	तस्मिन् काले तस्मिन् समये श्रावस्ती नाम नगरी आसीत्–वर्णकः। कोष्ठकं चैत्यम्–वर्णकः। तत्र श्रावस्त्यां नगर्यां बहवः शङ्खप्रमुख्याः श्रमणोपासकाः परिवसन्ति आढ्याः यावत् बहुजनस्य अपरिभूताः अभिगतजीवाजीवाः यावत् यथापरिगृहीतैः तपःकर्मभिः आत्मानं भावयन्तः विहरन्ति। तस्य शङ्खस्य श्रमणोपासकस्य उत्पला नाम भार्या आसीत्–सुकुमालपाणिपादा यावत् सुरूपा, श्रमणोपासिका अभिगतजीवाजीवा यावत् यथापरिगृहीतैः तपःकर्मभिः आत्मानं भावयन्ती विहरति।	१. [1]उस काल और उस समय में श्रावस्ती नाम की नगरी थी–वर्णक। कोष्ठक चैत्य-वर्णक। उस श्रावस्ती नगरी में शंख आदि अनेक श्रमणोपासक रहते थे। वे संपन्न यावत् बहुजन के द्वारा अपरिभवनीय, जीव-अजीव को जानने वाले यावत् यथा परिगृहीत तपःकर्म के द्वारा आत्मा को भावित करते हुए रह रहे थे। उस श्रमणोपासक शंख के उत्पला नाम की भार्या थी–सुकुमाल हाथ पैर वाली यावत् सुरूपा। वह श्रमणोपासिका जीव-अजीव को जानने वाली यावत् यथापरिगृहीत तपःकर्म के द्वारा आत्मा को भावित करती हुई रह रही थी।
तत्थ णं सावत्थीए नगरीए पोक्खली नामं समणोवासए परिवसइ–अड्ढे, अभिगयजीवाजीवे जाव अहापरिग्गहिएहिं तवोकम्मेहिं अप्पाणं भावेमाणे विहरइ॥	तत्र श्रावस्त्यां नगर्यां पुष्कली नाम श्रमणोपासकः परिवसति–आढ्यः, अभिगतजीवाजीवः यावत् यथापरि-गृहीतैः तपःकर्मभिः आत्मानं भावयन् विहरति।	श्रावस्ती नगरी में पुष्कली नाम का श्रमणोपासक रहता था–संपन्न, जीव-अजीव को जानने वाला यावत् यथा परिगृहीत तपःकर्म के द्वारा आत्मा को भावित करता हुआ रह रहा था।

भाष्य

१. सूत्र १

प्रस्तुत सूत्र में श्रावक के धार्मिक स्वरूप का वर्णन है। विशेष जानकारी के लिए द्रष्टव्य भगवई २/६४ का भाष्य।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२. तेणं कालेणं तेणं समएणं सामी समोसढे। परिसा जाव पज्जुवासइ। तए णं ते समणोवासगा इमीसे कहाए लद्धट्ठा समाणा जहा आलभियाए जाव पज्जुवासंति। तए णं समणे भगवं महावीरे तेसिं समणोवासगाणं तीसे य महतिमहालियाए परिसाए धम्मं परिकहेइ जाव परिसा पडिगया॥

तस्मिन् काले तस्मिन् समये स्वामी समवसृतः। परिषद् यावत् पर्युपास्ते। ततः ते श्रमणोपासकाः अनया कथया लब्धार्थाः सन्तः यथा आलभिकायां यावत् पर्युपासते। ततः श्रमणः भगवान् महावीरः तेषां श्रमणोपासकानां तस्यां च महामहत्यां परिषदि धर्मं परिकथयति यावत् परिषद् प्रतिगता।

२. उस काल और उस समय में भगवान् महावीर आए। परिषद् यावत् पर्युपासना की। वे श्रमणोपासक इस कथा को सुनकर हृष्ट-तुष्ट चित्त वाले हो गए। आलभिका की भांति वक्तव्यता यावत् पर्युपासना की। श्रमण भगवान् महावीर ने उन श्रमणोपासकों को उस विशालतम परिषद् में धर्म कहा यावत् परिषद् लौट गई।

३. तए णं ते समणोवासगा समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं धम्मं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठा समणं भगवं महावीरं वंदंति नमंसंति, वंदित्ता नमंसित्ता पसिणाइं पुच्छंति, पुच्छित्ता अट्ठाइं परियादियंति, परियादियित्ता उट्ठाए उट्ठेंति, उट्ठेत्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियाओ कोट्ठयाओ चेइयाओ पडिनिक्खमंति, पडिनिक्खमित्ता जेणेव सावत्थी नगरी तेणेव पहारेत्थ गमणाए॥

ततः ते श्रमणोपासकाः श्रमणस्य भगवतः महावीरस्य अन्तिकं धर्मं श्रुत्वा निशम्य हृष्टतुष्टाः श्रमणं भगवन्तं महावीरं वन्दन्ते नमस्यन्ति, वन्दित्वा नमस्थित्वा प्रश्नान् पृच्छन्ति, पृष्ट्वा अर्थान् पर्याददति, पर्यादाय उत्थया उत्तिष्ठन्ति, उत्थाय श्रमणस्य भगवतः महावीरस्य अन्तिकात् कोष्ठकात् चैत्यात् प्रतिनिष्क्रामन्ति, प्रतिनिष्क्रम्य यत्रैव श्रावस्ती नगरी तत्रैव प्रादीधरत् गमनाय।

३. वे श्रमणोपासक श्रमण भगवान् महावीर के पास धर्म सुनकर, अवधारण कर हृष्ट-तुष्ट हो गए। उन्होंने श्रमण भगवान् महावीर को वंदन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार कर प्रश्न पूछे। पूछकर अर्थ को ग्रहण किया, ग्रहण कर, उठकर खड़े हुए। खड़े होकर श्रमण भगवान् महावीर के पास से, कोष्ठक चैत्य से प्रतिनिष्क्रमण किया। प्रतिनिष्क्रमण कर जहां श्रावस्ती नगरी थी वहां जाने के लिए चिंतन किया।

४. तए णं से संखे समणोवासए ते समणोवासए एवं वयासी–तुब्भे णं देवाणुप्पिया! विपुलं असणं पाणं खाइमं साइमं उवक्खडावेह। तए णं अम्हे तं विपुलं असणं पाणं खाइमं साइमं अस्साएमाणा विस्साएमाणा परिभाएमाणा परिभुंजेमाणा पक्खियं पोसहं पडिजागरमाणा विहरिस्सामो।

ततः सः शङ्खः श्रमणोपासकः तान् श्रमणोपासकान् एवमवादीत्–यूयं देवानुप्रियाः! विपुलम् अशनं पानं खाद्यं स्वाद्यम् उपस्कारयत। ततः वयं तत् अशनं पानं खाद्यं स्वाद्यम् आस्वादयन्तः विस्वादयन्तः परिभाजयन्तः परिभुञ्जानाः पाक्षिकं पौषधं प्रतिजाग्रतः विहरिष्यामः।

४. [1]वह श्रमणोपासक शंख उन श्रमणोपासकों से इस प्रकार बोला–देवानुप्रिय ! तुम विपुल अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य को तैयार करवाओ। हम उस विपुल अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य का स्वाद लेते हुए, विशिष्ट स्वाद लेते हुए, परस्पर एक दूसरे को खिलाते हुए, भोजन करते हुए पाक्षिक पौषध की प्रतिजागरणा करते हुए विहरण करेंगे।

५. तए णं ते समणोवासगा संखस्स समणोवासगस्स एयमट्ठं विणएणं पडिसुणेंति॥

ततः ते श्रमणोपासकाः शङ्खस्य श्रमणोपासकस्य एतदर्थं विनयेन प्रतिशृण्वन्ति।

५. उन श्रमणोपासकों ने श्रमणोपासक शंख के इस अर्थ को विनयपूर्वक स्वीकार किया।

भाष्य

१. सूत्र ४-५

वृत्तिकार ने **पाक्षिक पौषध** का अर्थ अव्यापार पौषध किया है।[1] सूत्रकृतांग में पाक्षिक पौषध शब्द का प्रयोग है। उसकी व्याख्या में पौषध के चार प्रकार बतलाए गए हैं–

१. आहार पौषध	३. ब्रह्मचर्य पौषध
२. शरीर-संस्कार पौषध	४. अनारंभ पौषध[2]

विशेष विवरण के लिए उत्तराध्ययन ५/२३ का टिप्पण द्रष्टव्य है। जयाचार्य ने अनारंभ पौषध का दसवें व्रत में समावेश किया है[3] वृत्तिकार ने इस सन्दर्भ में मतान्तर का उल्लेख किया है। उसके अनुसार पौषध का अर्थ है पर्व दिन का अनुष्ठान। वह दो प्रकार का होता है–इष्ट जन को भोजन देना और आहार आदि का त्याग करना। शंख इष्ट जन को भोजन देने वाला पौषध करना

१. भ. १२/४-५ पौषधं अव्यापारपौषधम्।
२. सूय. २/७/२६ का टिप्पण
३. भ. जो. ४/२४६/२५

धर्म तणी ते पुष्ट जीमी पोषह नाम तसु।
दशमों व्रत अदुष्ट, पिण नहीं व्रत इग्यारमो॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चाहता था।[1] यह मतान्तर का अर्थ संगत नहीं है। सूत्रकृतांग के पाक्षिक पौषध से अनारंभ पौषध का अर्थ ही संगत है।[2] उवासगदसाओ में 'पोसहोववास' (पौषधोपवास) शब्द का प्रयोग मिलता है। इसमें दो शब्द हैं पौषध और उपवास[3] यह प्रतिपूर्ण पौषध का द्योतक है। तत्वार्थवार्तिक में पर्व के दिन किए जाने वाले उपवास का अर्थ प्रोषधोपवास किया है।[4] प्रोषधोपवास की विस्तृत जानकारी के लिए जैनेन्द्र कोश द्रष्टव्य है।

शब्द-विमर्श

अस्साएमाणा–थोड़ा स्वाद लेते हुए।

विस्साएमाणा–विशेष स्वाद लेते हुए।

परिभाएमाणा–देते हुए।

परिभुञ्जमाणा–परिभोग करते हुए।

अतीतकालीन प्रत्यय में वार्तमानिक प्रत्यय का प्रयोग किया गया है। तात्पर्यार्थ यह होगा–आस्वादन करने के बाद हम पाक्षिक पौषध का प्रतिजागरण करते हुए विहार करेंगे।[5]

६. तए णं तस्स संखस्स समणोवासगस्स अयमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था–नो खलु मे सेयं तं विपुलं असणं पाणं खाइमं साइमं अस्साएमाणस्स विस्साएमाणस्स परिभाएमाणस्स परिभुंजेमाणस्स पक्खियं पोसहं पडिजागरमाणस्स विहरित्तए, सेयं खलु मे पोसहसालाए पोसहियस्स बंभचारिस्स ओमुक्कमणिसुवण्णस्स ववगय - मालावण्णग - विलेवणस्स निक्खित्तसत्थमुसलस्स एगस्स अबिइयस्स दब्भसंथारोवगयस्स पक्खियं पोसहं पडिजागरमाणस्स विहरित्तए त्ति कट्टु एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता जेणेव सावत्थी नगरी, जेणेव सए गिहे, जेणेव उप्पला समणोवासिया, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता उप्पलं समणोवासियं आपुच्छइ, आपुच्छित्ता जेणेव पोसहसाला तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पोसहसालं अणुपविसइ, अणुपविसित्ता पोसहसालं पमज्जइ, पमज्जित्ता उच्चारपासवणभूमिं पडिलेहेइ, पडिलेहेत्ता दब्भसंथारगं संथरइ, संथरित्ता दब्भसंथारगं दुरुहइ, दुरुहित्ता पोसहसालाए पोसहिए बंभचारी ओमुक्कमणिसुवण्णे ववगयमाला-

ततः तस्य शङ्खस्य श्रमणोपासकस्य अयमेतद्रूपः आध्यात्मिकः चिन्तितः प्रार्थितः मनोगतः संकल्पः समुदपादि–नो खलु मम श्रेयः तत् विपुलम् अशनं पानं खाद्यं स्वाद्यं आस्वादयतः विस्वादयतः परिभाजयतः परिभुञ्जानस्य पाक्षिकं पौषधं प्रतिजाग्रतः विहर्तुम्, श्रेयः खलु मम पौषधशालायां पौषधिकस्य ब्रह्मचारिणः अवमुक्तमणिसुवर्णस्य व्यपगतमाला-वर्णक-विलेपनस्य निक्षिप्तशस्त्र-मुसलस्य एकस्य अद्वितीयस्य दर्भसंस्तारोपगतस्य पाक्षिकं पौषधं प्रतिजाग्रतः विहर्तुम् इति कृत्वा एवं सम्प्रेक्षते, सम्प्रेक्ष्य यत्रैव श्रावस्ती नगरी, यत्रैव स्वकं गृहं, यत्रैव उत्पला श्रमणोपासिका, तत्रैव उपागच्छति, उपागम्य उत्पलां श्रमणोपासिकाम् आपृच्छति, आपृच्छ्य यत्रैव पौषध-शाला तत्रैव उपागच्छति, उपागम्य पौषधशालां अनुप्रविशति, अनुप्रविश्य पौषधशालां प्रमार्ष्टि, प्रमृज्य उच्चार-प्रस्रवणभूमिं प्रतिलिखति, प्रतिलिख्य दर्भसंस्तारकं संस्तृणोति, संस्तृत्य दर्भसंस्तारकम् आरोहति, आरुह्य पौषधशालायां पौषधिकः ब्रह्मचारी अवमुक्तमणिसुवर्णः व्यपगत-माला-वर्णकविलेपनः निक्षिप्तशस्त्र-मुसलः

६. [1]उस श्रमणोपासक शंख के मन में इस आकारवाला आध्यात्मिक, स्मृत्यात्मक, अभिलाषात्मक मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ। यह मेरे लिए श्रेयस्कर नहीं है कि मैं उस विपुल अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य का स्वाद लेता हुआ, विशिष्ट स्वाद लेता हुआ, परस्पर एक दूसरे को खिलाता हुआ, भोजन करता हुआ, पाक्षिक पौषध की प्रतिजागरणा करता हुआ विहरण करूं। यह मेरे लिए श्रेयस्कर है कि मैं पौषधशाला में उपवास करूं। ब्रह्मचारी रहूं। सुवर्ण-मणि को छोड़कर, माला, सुगंधित चूर्ण और विलेपन से रहित, शस्त्र मूसल आदि का वर्जन कर, अकेला, दूसरों के सहाय्य से निरपेक्ष होकर, दर्भ-संस्तारक पर बैठकर पाक्षिक पौषध की प्रतिजागरणा करूं। इस प्रकार संप्रेक्षा की, संप्रेक्षा कर, जहां श्रावस्ती नगरी थी, जहां अपना घर था, जहां श्रमणोपासिका उत्पला थी, वहां आया, वहां आकर श्रमणोपासिका उत्पला से पूछा, पूछकर जहां पौषधशाला थी, वहां आया, वहां आकर पौषधशाला में अनुप्रवेश किया, अनुप्रवेश कर पौषधशाला को प्रमार्जित किया, प्रमार्जित कर उच्चार-प्रस्रवण भूमि का प्रतिलेखन किया, प्रतिलेखन कर दर्भ-संस्तारक को बिछाया, बिछाकर दर्भ-संस्तारक पर आरूढ़ हुआ, आरूढ़ होकर

---

१. भ. १२/४-५ : अन्ये तु व्याचक्षते–इह किल पौषधं पर्वदिनानुष्ठानं तच्च द्वेधा–इष्टजनभोजनदानादिरूपमाहारादिपौषधरूपं च। तत्र शंखः इष्टजनभोजनदानरूपं पौषधं कर्तुकामः।

२. सूय. २/७/२६

३. उवा. १/४२

४. त. रा. वा. ७/२ : अशनपानभक्ष्य लेह्यलक्षण चतुर्विधाहारपरित्याग इत्यर्थः। प्रौषधशब्दः पर्वपर्यायवाची। प्रोषधे उपवासः प्रोषधोपवासः।

५. भ. वृ. १२/४-५ : आस्साएमाणत्ति ईषत्स्वादयन्तो बहु च त्यजन्तः इक्षुखण्डादेरिव 'विस्साएमाणत्ति' विशेषेण स्वादयन्तोऽल्पमेव त्यजन्तः खर्जूरादेरिव 'परिभाएमाण' त्ति ददतः 'परिभुंजेमाण' त्ति सर्वमुप-भुञ्जाना अल्पमप्यपरित्यजन्तः, एतेषां च पदानां वार्तमानिक-प्रत्ययान्तत्वेऽप्यतीतप्रत्ययान्तता द्रष्टव्या.....यद्वेहातीत-कालीन-प्रत्ययान्तत्वेऽपि वार्तमानिकप्रत्ययोपादानं तद्भोजनानंतर-मेवाक्षेपेण पौषधाभ्युपगमप्रदर्शनार्थम्।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वण्णगविलेवणे निक्खित्तसत्थमुसले एगे अबिइए दब्भसंथारोवगए पक्खियं पोसहं पडिजागरमाणे विहरइ॥

एकः अद्वितीयः दर्भसंस्तारोपगतः पाक्षिकं पौषधं प्रतिजाग्रत् विहरति।

पौषधशाला में ब्रह्मचर्य पूर्वक उपवास किया, सुवर्ण मणि को छोड़कर, माला, सुगंधित चूर्ण और विलेपन से रहित, शस्त्र मूसल आदि का वर्जन कर, अकेले, सहाय्य निरपेक्ष होकर दर्भ संस्तारक पर बैठकर पाक्षिक पौषध की प्रतिजागरणा करने लगा।

भाष्य

१. सूत्र ६

शंख ने प्रतिपूर्ण पौषध का संकल्प किया, उसमें प्रतिपूर्ण पौषध का स्वरूप निर्दिष्ट है:-

- उपवास- चतुर्विध आहार का त्याग।
- ब्रह्मचर्य।
- मणि सुवर्ण का वर्जन।
- माला, सुगंधित द्रव्य और विलेपन का वर्जन।
- शस्त्र और मूसल की प्रवृत्ति का वर्जन।

आनंद श्रावक ने अपनी पौषधशाला में पौषध किया था, वहां यही विवरण मिलता है।[1]

७. तए णं ते समणोवासगा जेणेव सावत्थी नगरी जेणेव साइं-साइं गिहाइं, तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता विपुलं असणं पाणं खाइमं साइमं उवक्खडावेंति, उवक्खडावेत्ता अण्णमण्णं सद्दावेंति, सद्दावेत्ता एवं वयासी-एवं खलु देवाणुप्पिया! अम्हेहिं से विउले असणपाण - खाइम - साइमे उवक्खडाविए, संखे य णं समणोवासए नो हव्वमागच्छइ, तं सेयं खलु देवाणुप्पिया! अम्हं संखं समणोवासगं सद्दावेत्तए॥

ततः ते श्रमणोपासकाः यत्रैव श्रावस्ती नगरी यत्रैव स्वकानि-स्वकानि गृहानि, तत्रैव उपागच्छन्ति, उपागम्य विपुलम् अशनं पानं खाद्यं स्वाद्यम् उपस्कारयन्ति, उपस्कार्य अन्योन्यं शब्दयन्ति, शब्दयित्वा एवमवादीत्-एवं खलु देवानुप्रियाः! अस्माभिः तत् विपुलम् अशन-पान-खाद्य-स्वाद्यम् उपस्कारितम्, शङ्खः च श्रमणोपासकः नो 'हव्वं' आगच्छति, तत् श्रेयः खलु देवानुप्रियाः! अस्माकं शङ्खं श्रमणोपासकं शब्दयितुम्।

७. वे श्रमणोपासक जहां श्रावस्ती नगरी थी, जहां अपना अपना घर था, वहां आए। वहां आकर विपुल अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य को तैयार करवाया, तैयार करवाकर एक-दूसरे को बुलाया, बुलाकर इस प्रकार बोले-देवानुप्रिय! हमने वह विपुल अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य तैयार करवाया है। देवानुप्रिय! श्रमणोपासक शंख अभी तक नहीं आया, इसलिए यह श्रेयस्कर है कि हम श्रमणोपासक शंख को बुला लाएं।

८. तए णं से पोक्खली समणोवासए ते समणोवासए एवं वयासी-अच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया! सुनिव्वुयवीसत्था, अहण्णं संखं समणोवासगं सद्दावेमि त्ति कट्टु तेसिं समणोवासगाणं अंतियाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता सावत्थीए नगरीए मज्झंमज्झेणं जेणेव संखस्स समणोवासगस्स गिहे, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता संखस्स समणोवासगस्स गिहं अणुपविट्ठे॥

ततः सः पुष्कली श्रमणोपासकः तान् श्रमणोपासकान् एवमवादीत्-आसध्वम् यूयं देवानुप्रियाः! सुनिवृत्त-विश्वस्ताः, अहं शङ्खं श्रमणोपासकं शब्दयामि इति कृत्वा तेषां श्रमणोपासकानाम् अन्तिकात् प्रतिनिष्क्रामति, प्रतिनिष्क्रम्य श्रावस्त्याः नगर्याः मध्यमध्येन यत्रैव शङ्खस्य श्रमणोपासकस्य गृहम्, तत्रैव उपागच्छति, उपागम्य शङ्खस्य श्रमणोपासकस्य गृहम् अनुप्रविष्टः।

८. वह श्रमणोपासक पुष्कली उन श्रमणोपासकों से इस प्रकार बोला-देवानुप्रियो! तुम अच्छी तरह बैठो, विश्वस्त रहो, मैं श्रमणोपासक शंख को बुला लाता हूं। ऐसा कहकर उसने श्रमणोपासकों के पास से प्रतिनिष्क्रमण किया। प्रतिनिष्क्रमण कर श्रावस्ती नगरी के बीचोंबीच जहां श्रमणोपासक शंख का घर था, वहां आया, वहां आकर श्रमणोपासक शंख के घर में अनुप्रविष्ट हुआ।

९. तए णं सा उप्पला समणोवासिया पोक्खलिं समणोवासयं एज्जमाणं पासइ, पासित्ता हट्ठतुट्ठा आसणाओ

ततः सा उत्पला श्रमणोपासिका पुष्कलिं श्रमणोपासकम् आयन्तं पश्यति, दृष्ट्वा हृष्टतुष्टा आसनात्

९. [1]श्रमणोपासिका उत्पला ने श्रमणोपासक पुष्कली को आते हुए देखा, देखकर हृष्ट तुष्ट हो गई, आसन से उठी, उठकर सात-

१. उवा. १/६०-पोसहसालाए पोसहियस्स बंभयारिस्स उम्मुक्कमणिसुवण्णस्स ववगयमालावण्णविलेवणस्स निक्खित्तसत्थमूसलस्स एगस्स अबीयस्स दब्भसंथारोवगए.....।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अब्भट्ठेइ, अब्भुट्ठेत्ता सत्तट्ठ पयाइं अणुगच्छइ, अणुगच्छित्ता पोक्खलिं समणोवासगं वंदति नमंसति, वंदित्ता नमंसित्ता आसणेणं उवनिमंतेइ, उवनिमंतेत्ता एवं वयासी–संदिसतु णं देवाणुप्पिया ! किमागमणप्पयोयणं ?

अभ्युत्तिष्ठति, अभ्युत्थाय सप्ताष्टौ पदानि अनुगच्छति, अनुगम्य पुष्कलिं श्रमणोपासकं वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्यित्वा आसनेन उपनिमन्त्रयति, उपनिमन्त्र्य एवमवादीत्–संदिशतु देवानुप्रिय ! किमागमनप्रयोजनम् ?

आठ कदम सामने गई। सामने जाकर श्रमणोपासक पुष्कली को वंदन-नमस्कार किया। वंदन-नमस्कार कर आसन पर बैठने के लिए निमंत्रित किया। निमंत्रित कर इस प्रकार कहा–देवानुप्रिय ! कहिए, आपके आगमन का प्रयोजन क्या है ?

भाष्य

१. सूत्र ९

उत्पला ने पुष्कली को वंदन-नमस्कार किया। इस विषय पर जयाचार्य ने एक टिप्पणी की है। श्रावक को वंदन-नमस्कार करना लोकोपचार अथवा सामाजिक विधि है। यह जिन-आज्ञा सम्मत धार्मिक अनुष्ठान नहीं है।[1]

१०. तए णं से पोक्खली समणोवासए उप्पलं समणोवासियं एवं वयासी–कहिण्णं देवाणुप्पिया ! संखे समणोवासए ?

ततः सः पुष्कली श्रमणोपासकः उत्पलां श्रमणोपासिकाम् एवमवादीत्–कुत्र देवानुप्रिये ! शङ्खः श्रमणोपासकः ?

१०. श्रमणोपासक पुष्कली ने श्रमणोपासिका उत्पला से इस प्रकार कहा–देवानुप्रिये ! श्रमणोपासक शंख कहां है ?

११. तए णं सा उप्पला समणोवासिया पोक्खलिं समणोवासयं एवं वयासी–एवं खलु देवाणुप्पिया ! संखे समणोवासए पोसहसालए पोसहिए बंभचारी ओमुक्कमणिसुवण्णे ववगयमाला-वण्णग-विलेवणे निक्खित्तसत्थमुसले एगे अबिइए दब्भसंथारोवगए पक्खियं पोसहं पडिजागरमाणे विहरइ॥

ततः सा उत्पला श्रमणोपासिका पुष्कलिं श्रमणोपासकम् एवमवादीत्–एवं खलु देवानुप्रियाः ! शङ्खः श्रमणोपासकः पौषधशालायां पौषधिकः ब्रह्मचारी अवमुक्तमणिसुवर्णः व्यपगत-माला-वर्णक-विलेपनः निक्षिप्तशस्त्र-मुसलः एकः अद्वितीयः दर्भ-संस्तारोपगतः पाक्षिकं पौषधं प्रतिजाग्रत् विहरति।

११. वह श्रमणोपासिका उत्पला श्रमणोपासक पुष्कली से इस प्रकार बोली–देवानुप्रिय ! श्रमणोपासक शंख ने पौषधशाला में ब्रह्मचर्यपूर्वक उपवास किया है, सुवर्ण, मणि को छोड़कर, माला, सुगंधित चूर्ण और विलेपन से रहित, शस्त्र-मूसल आदि का वर्जन कर, अकेले, सहाय्य निरपेक्ष होकर, दर्भ-संस्तारक पर बैठकर, पाक्षिक पौषध की प्रतिजागरणा करता हुआ विहार कर रहा है।

१२. तए णं से पोक्खली समणोवासए जेणेव पोसहसाला, जेणेव संखे समणोवासए, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता गमणागमणाए पडिक्कमइ, पडिक्कमित्ता संखं समणोवासगं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी–एवं खलु देवाणुप्पिया ! अम्हेहिं से विउले असण-पाण-खाइम-साइमे उवक्खडाविए, तं गच्छामो णं देवाणुप्पिया ! तं विउलं असणं पाणं खाइमं साइमं अस्साएमाणा

ततः सः पुष्कली श्रमणोपासकः यत्रैव पौषधशाला, यत्रैव शङ्खः श्रमणोपासकः, तत्रैव उपागच्छति, उपागम्य गमनागमने प्रतिक्रामति, प्रतिक्रम्य शङ्खं श्रमणोपासकं वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्यित्वा एवमवादीत्–एवं खलु देवानुप्रिय ! अस्माभिः तत् विपुलम् अशन-पान-खाद्य-स्वाद्यम् उपस्कारितम्, तत् गच्छामः देवानुप्रिय ! तत् विपुलम् अशनं पानं खाद्यं स्वाद्यम् आस्वादयन्तः

१२. वह पुष्कली श्रमणोपासक जहां पौषधशाला थी, जहां श्रमणोपासक शंख था, वहां आया, वहां आकर गमनागमन का प्रतिक्रमण किया, प्रतिक्रमण कर श्रमणोपासक शंख को वन्दन-नमस्कार किया, वन्दन-नमस्कार कर इस प्रकार बोला–देवानुप्रिय ! हमने वह विपुल अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य तैयार करवाया है, देवानुप्रिय ! तुम चलो, हम विपुल अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य का स्वाद लेते हुए, विशिष्ट स्वाद लेते हुए, परस्पर एक दूसरे

१. भ. जो. ४/२४९/४९-५३-

वंदे ते गुणग्राम, नमस्कार शिर नाम नैं।
साहमी आवी नाम, विनय रीत निज साचवी॥
नवकार ना पद पंच, श्रावक नै तिहां टालियो।
नमस्कार नी संच, ए आज्ञा नहिं जिन तणी॥
आसन आमंत्रण करी रे बोलै इह विध वाय।
आज्ञा यो देवानुप्रिया ! रे कवण प्रयोजन आय ?
श्रावक साहमी आय, आसन आमंत्र्यो वलि।
निज छंदे कहिवाय, पिण नहीं अरिहंत आगन्या॥
नमस्कार पिण ताहि, गृहस्थ नैं करिवा तणी।
जिन आज्ञा दे नांहि, धर्म नहीं आज्ञा विना॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विस्साएमाणा परिभाएमाणा परिभुंजेमाणा पक्खियं पोसहं पडिजागरमाणा विहरामो॥

विस्वादयन्तः परिभाजयन्तः परिभुञ्जानाः पाक्षिकं पौषधं प्रतिजाग्रतः विहरामः।

को खिलाते हुए, भोजन करते हुए, पाक्षिक पौषध की प्रतिजागरणा करते हुए विहार करेंगे।

१३. तए णं से संखे समणोवासए पोक्खलिं समणोवासगं एवं वयासी– नो खलु कप्पइ देवाणुप्पिया ! तं विउलं असणं पाणं खाइमं साइमं अस्साएमाणस्स विस्साएमाणस्स परिभाएमाणस्स परिभुंजेमाणस्स पक्खियं पोसहं पडिजागरमाणस्स विहरित्तए, कप्पइ मे पोसहसालाए पोसहियस्स बंभचारिस्स ओमुक्कमणिसुवण्णस्स ववगयमाला-वण्णग-विलेवणस्स निक्खित्तसत्थमुसलस्स एगस्स अबिइयस्स दब्भसंथारोवगयस्स पक्खियं पोसहं पडिजागरमाणस्स विहरित्तए, तं छंदेणं देवाणुप्पिया ! तुब्भे तं विउलं असणं पाणं खाइमं साइमं अस्साएमाणा विस्साएमाणा परिभाएमाणा परिभुंजेमाणा पक्खियं पोसहं पडिजागरमाणा विहरह॥

ततः सः शङ्खः श्रमणोपासकः पुष्कलिं श्रमणोपासकम् एवमवादीत्–नो खलु कल्पते देवानुप्रियाः ! तत् विपुलम् अशनं पानं खाद्यं स्वाद्यम् आस्वादयतः विस्वादयतः परिभाजयतः परिभुञ्जानस्य पाक्षिकं पौषधं प्रतिजाग्रतः विहर्तुम्, कल्पते मम पौषधशालायां पौषधिकस्य ब्रह्मचारिणः अवमुक्तमणिसुवर्णस्य व्यपगतमाला-वर्णक-विलेपनस्य निक्षिप्त – शस्त्र – मुसलस्य एकस्य अद्वितीयस्य दर्भसंस्तारोपगतस्य पाक्षिकं पौषधं प्रतिजाग्रतः विहर्तुम्, तत् छन्देन देवानुप्रिया ! यूयं तत् विपुलम् अशनं पानं खाद्यं स्वाद्यम् आस्वादयन्तः विस्वादयन्तः परिभाजयन्तः परिभुञ्जानाः पाक्षिकं पौषधं प्रतिजाग्रतः विहरत।

१३. 'वह श्रमणोपासक शंख श्रमणोपासक पुष्कली से इस प्रकार बोला– देवानुप्रिय ! मुझे यह नहीं कल्पता (मेरे लिए यह करणीय नहीं है) कि मैं उस विपुल अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य का स्वाद लेता हुआ, विशिष्ट स्वाद लेता हुआ, परस्पर एक दूसरे को खिलाता हुआ, भोजन करता हुआ पाक्षिक पौषध की प्रतिजागरणा करता हुआ विहरण करूं। मुझे यह कल्पता है (मेरे लिए यह करणीय है) कि मैं पौषधशाला में ब्रह्मचर्यपूर्वक उपवास करूं, सुवर्ण, मणि को छोड़कर, माला, सुगंधित चूर्ण और विलेपन से रहित होकर, शस्त्र-मूसल आदि का वर्जन कर, अकेले, सहाय्य निरपेक्ष होकर, दर्भ-संस्तारक पर बैठकर पाक्षिक पौषध की प्रतिजागरणा करता हुआ विहरण करूं। देवानुप्रियो ! इसलिए तुम अपने छंद (अभिप्राय) के अनुसार उस विपुल अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य का आस्वाद लेते हुए, विशिष्ट स्वाद लेते हुए, परस्पर एक दूसरे को खिलाते हुए, भोजन करते हुए पाक्षिक पौषध की प्रतिजागरणा करते हुए विहार करो।

भाष्य

१. सूत्र १३

वृत्तिकार ने छंद शब्द का अर्थ स्वाभिप्राय किया है। शंख भोजन करने की आज्ञा नहीं दे रहा है किन्तु यह कह रहा है–तुम अपनी इच्छा से जो चाहते हो वह करो।[1] जयाचार्य ने इसकी समीक्षा में लिखा है–भोजन करने के साथ धर्म का संबंध जुड़ा हुआ नहीं है इसलिए पौषध में भोजन करने की आज्ञा नहीं है।[2]

१४. तए णं से पोक्खली समणोवासए संखस्स समणोवासगस्स अंतियाओ पोसहसालाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता सावत्थिं नगरिं मज्झंमज्झेणं जेणेव ते समणोवासगा तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता ते समणोवासए एवं वयासी–एवं खलु देवाणुप्पिया ! संखे समणोवासए

ततः सः पुष्कली श्रमणोपासकः शङ्खःस्य श्रमणोपासकस्य अन्तिकात् पौषधशालायाः प्रतिनिष्क्रामति, प्रतिनिष्क्रम्य श्रावस्तीं नगरीं मध्यमध्येन यत्रैव ते श्रमणोपासकाः तत्रैव उपागच्छति, उपागम्य तान् श्रमणोपासकान् एवमवादीत्–एवं खलु देवानुप्रियाः। शङ्खः श्रमणोपासकः पौषधशालायां

१४. श्रमणोपासक पुष्कली ने श्रमणोपासक शंख के पास से पौषधशाला से प्रतिनिष्क्रमण किया, प्रतिनिष्क्रमण कर श्रावस्ती नगरी के बीचोंबीच जहां वे श्रमणोपासक थे, वहां आया। वहां आकर उन श्रमणोपासकों से इस प्रकार कहा–देवानुप्रियो ! श्रमणोपासक शंख पौषधशाला में ब्रह्मचर्यपूर्वक उपवास यावत् विहरण कर रहा है। देवानुप्रियो !

१. भ. वृ. १२/१३ : छंदेणं ति स्वाभिप्रायेण न तु मदीयाज्ञयेति।

२. भ. जो.४/२४६/६६,६७–

वृत्ति टबा रे मांहि, छंदेणं नों अर्थ इम।
निज इच्छाइं ताहि, पिण म्हारी आज्ञा नथी॥
जीमैं आज्ञा बार, तो जीमावै तेहनैं।
किम है धर्म उदार, न्याय दृष्टि करि देखियै॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पोसहसालाए पोसहिए जाव विहरइ, तं छंदेणं देवाणुप्पिया ! तुब्भे विउलं असणं पाणं खाइमं साइमं पडिजागरमाणा विहरह, संखे णं समणोवासए नो हव्वमागच्छइ । तए णं ते समणोवासगा तं विउलं असणं पाणं खाइमं साइमं अस्साएमाणा जाव विहरंति ॥

पौषधिकः यावत् विहरति, तत् छन्देन देवानुप्रियाः ! यूयं विपुलम् अशनं पानं खाद्यं स्वाद्यम् प्रतिजाग्रतः विहरत, शङ्खः श्रमणोपासकः नो 'हव्वं' आगच्छति। ततः ते श्रमणोपासकाः तत् विपुलम् अशनं पानं खाद्यं स्वाद्यम् आस्वादयन्तः यावत् विहरन्ति।

यह तुम्हारा अभिप्राय है कि तुम उस विपुल अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य का स्वाद लेते हुए, विशिष्ट स्वाद लेते हुए, परस्पर एक-दूसरे को खिलाते हुए, भोजन करते हुए, पाक्षिक पौषध की प्रतिजागरणा करते हुए विहरण करो, श्रमणोपासक शंख अभी नहीं आएगा। उन श्रमणोपासकों ने उस विपुल अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य का स्वाद लेते हुए यावत् पाक्षिक पौषध की प्रतिजागरणा करते हुए विहरण किया।

१५. तए णं तस्स संखस्स समणोवासगस्स पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि धम्मजागरियं जागरमाणस्स अयमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था-सेयं खलु मे कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए जाव उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते समणं भगवं महावीरं वंदित्ता नमंसित्ता जाव पज्जुवासित्ता तओ पडिनियत्तस्स पक्खियं पोसहं पारित्तए त्ति कट्टु एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए जाव उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते पोसहसालाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता सुद्धप्पावेसाइं मंगल्लाइं वत्थाइं पवर परिहिए साओ गिहाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता पायविहारचारेणं सावत्थिं नगरिं मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव कोट्ठए चेइए, जेणेव समणे भगवं महावीरे, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता तिविहाए पज्जुवासणाए पज्जुवासति॥

ततः तस्य शङ्खस्य श्रमणोपासकस्य पूर्वरात्रापररात्रकालसमये धर्मजागरिकां जाग्रतः अयमेतद्रूपः आध्यात्मिकः चिन्तितः प्रार्थितः मनोगतः संकल्पः समुदपादि-श्रेयः खलु मे कल्यं प्रादुष्प्रभातायां रजन्यां यावत् उत्थिते सूरे सहस्ररश्मौ दिनकरे तेजसा ज्वलति श्रमणं भगवन्तं महावीरं वन्दित्वा नमस्यित्वा यावत् पर्युपास्य ततः प्रतिनिवृत्तस्य पाक्षिकं पौषधं पारयितुम् इति कृत्वा एवं सम्प्रेक्षते, सम्प्रेक्ष्य कल्यं प्रादुष्प्रभातायां रजन्यां यावत् उत्थिते सूरे सहस्ररश्मौ दिनकरे तेजसा ज्वलति पौषधशालायाः प्रतिनिष्क्रामति, प्रतिनिष्क्रम्य शुद्धप्रवेश्यानि मांगल्यानि वस्त्राणि प्रवरं परिहितः स्वकात् गृहात् प्रतिनिष्क्रामति, प्रतिनिष्क्रम्य पादविहारचारेण श्रावस्तीं नगरीं मध्यमध्येन निर्गच्छति, निर्गम्य यत्रैव कौष्ठकं चैत्यम्, यत्रैव श्रमणः भगवान् महावीरः, तत्रैव उपागच्छति, उपागम्य त्रिः आदक्षिण-प्रदक्षिणां करोति, कृत्वा वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्यित्वा त्रिविधया पर्युपासनया पर्युपासते।

१५. मध्यरात्रि में धर्म जागरिका करते हुए श्रमणोपासक शंख के मन में इस आकारवाला आध्यात्मिक, स्मृत्यात्मक, अभिलाषात्मक और मनोगत संकल्प समुत्पन्न हुआ-यह मेरे लिए श्रेय है कि मैं कल उषाकाल में पौ फटने पर यावत् सहस्ररश्मि दिनकर के उदित और तेज से देदीप्यमान होने पर श्रमण भगवान् महावीर को वंदन-नमस्कार कर यावत् पर्युपासना कर, वहां से प्रतिनिवृत्त होकर पाक्षिक पौषध का पारणा करूं, ऐसी संप्रेक्षा की, संप्रेक्षा कर दूसरे दिन उषाकाल में पौ फटने पर यावत् सहस्ररश्मि दिनकर के उदित और तेज से देदीप्यमान होने पर पौषधशाला से प्रतिनिष्क्रमण किया, प्रतिनिष्क्रमण कर शुद्ध प्रवेश्य मांगलिक वस्त्रों को विधिवत् पहना, पहनकर अपने घर से प्रतिनिष्क्रमण किया, प्रतिनिष्क्रमण कर पैदल चलकर श्रावस्ती नगरी के बीचोंबीच निर्गमन किया, निर्गमन कर जहां कोष्ठक चैत्य था-जहां श्रमण भगवान महावीर थे, वहां आया, आकर दायीं ओर से प्रारम्भ कर तीन बार प्रदक्षिणा की। प्रदक्षिणा कर वन्दन-नमस्कार किया, वन्दन नमस्कार कर तीन प्रकार की पर्युपासना के द्वारा पर्युपासना करने लगा।

१६. तए णं ते समणोवासगा कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए जाव उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते ण्हाया कयबलिकम्मा जाव अप्पमहग्घाभरणालंकियसरीरा सएहिं सएहिं गिहेहिंतो पडिनिक्खमंति,

ततः ते श्रमणोपासकाः कल्यं प्रादुष्प्रभातायां रजन्यां यावत् उत्थिते सूरे सहस्ररश्मौ दिनकरे तेजसा ज्वलति स्नाताः कृत-बलिकर्माणः यावत् अल्प-महार्घ्याभरणालंकृत-शरीराः स्वकेभ्यः स्वकेभ्यः गृहेभ्यः

१६. उन श्रमणोपासकों ने दूसरे दिन उषाकाल में पौ फटने पर यावत् सहस्ररश्मि दिनकर के उदित और तेज से देदीप्यमान होने पर स्नान, बलिकर्म किया यावत् अल्पभार और बहुमूल्य वाले आभरणों से शरीर को अलंकृत किया। इस प्रकार सज्जित होकर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पडिनिक्खमित्ता एगयओ मेलायंति, मेलायित्ता पायविहारचारेणं सावत्थीए नगरीए मज्झंमज्झेणं निग्गच्छंति, निग्गच्छित्ता जेणेव कोट्ठए चेइए, जेणेव समणे भगवं महावीरे, तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं जाव तिविहाए पज्जुवासणाए पज्जुवासंति॥

प्रतिनिष्क्रामन्ति, प्रतिनिष्क्रम्य एकतः मिलन्ति, मिलित्वा पादविहारचारेण श्रावस्त्याः नगर्याः मध्यमध्येन निर्गच्छन्ति, निर्गम्य यत्रैव कोष्ठकं चैत्यं, यत्रैव श्रमणः भगवान् महावीरः तत्रैव उपागच्छन्ति, उपागम्य श्रमणं भगवन्तं महावीरं यावत् त्रिविधया पर्युपासनया पर्युपासते।

अपने-अपने घरों से निकलकर एक साथ मिले। एक साथ मिलकर पैदल चलते हुए श्रावस्ती नगरी के बीचोंबीच निर्गमन किया, निर्गमन कर जहां कोष्ठक चैत्य था, जहां श्रमण भगवान् महावीर थे, वहां आए। वहां आकर श्रमण भगवान् महावीर यावत् तीन प्रकार की पर्युपासना के द्वारा पर्युपासना करने लगे।

१७. तए णं समणे भगवं महावीरे तेसिं समणोवासगाणं तीसे य महति-महालियाए परिसाए धम्मं परिकहेइ जाव आणाए आराहए भवइ॥

ततः श्रमणः भगवान् महावीरः तेषां श्रमणोपासकानां तस्यां च महामहत्यां परिषदि धर्मं परिकथयति यावत् आज्ञया आराधकः भवति।

१७. श्रमण भगवान् महावीर ने उन श्रमणोपासकों को उस विशालतम परिषद् में धर्म कहा यावत् आज्ञा के आराधक होते हैं।

१८. तए णं ते समणोवासगा समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं धम्मं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठा उट्ठाए उट्ठेंति, उट्ठेत्ता समणं भगवं महावीरं वंदंति नमंसंति, वंदित्ता नमंसित्ता जेणेव संखे समणोवासए तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता संखं समणोवासयं एवं वयासी-तुमं णं देवाणुप्पिया ! हिज्जो अम्हे अण्णा चेव एवं वयासी-तुम्हे णं देवाणुप्पिया ! विउलं असणं पाणं खाइमं साइमं उवक्खडावेह। तए णं अम्हे तं विपुलं असणं पाणं खाइमं साइमं अस्साएमाणा विस्साएमाणा परिभाएमाणा परिभुंजेमाणा पक्खियं पोसहं पडिजागरमाणा विहरिस्सामो। तए णं तुमं पोसहसालाए पोसहिए बंभचारी ओमुक्कमणि-सुवण्णे ववगयमाला - वण्णग - विलेवणे निक्खित्तसत्थमुसले एगे अबिइए दब्भसंथारोवगए पक्खियं पोसहं पडिजागरमाणे विहरिए, तं सुट्ठु णं तुमं देवाणुप्पिया ! अम्हे हीलसि॥

ततः ते श्रमणोपासकाः श्रमणस्य भगवतः महावीरस्य अन्तिकं धर्मं श्रुत्वा निशम्य हृष्टतुष्टाः उत्थया उत्तिष्ठन्ति, उत्थाय श्रमणं भगवन्तं महावीरं वन्दन्ते नमस्यन्ति, वन्दित्वा नमस्यित्वा यत्रैव शङ्खं श्रमणोपासकः, तत्रैव उपागच्छन्ति, उपागम्य शङ्खं श्रमणोपासकम् एवमवादीत्-त्वं देवानुप्रिय ! 'हिज्जो' अस्मान् आत्मना चैव एवमवादीतं यूयं देवानुप्रियाः ! विपुलम् अशनं-पानं खाद्यं स्वाद्यम् उपस्कारयत। ततः वयं तत् विपुलम् अशनं पानं खाद्यं स्वाद्यम् आस्वादयन्तः विस्वादयन्तः परिभाजयन्तः परिभुञ्जानाः पाक्षिकं पौषधं प्रतिजाग्रतः विहरिष्यामः। ततः त्वं पौषधशालायां पौषधिकः ब्रह्मचारी अवमुक्तमणि-सुवर्ण-व्यपगतमाला-वर्णक-विलेपनः निक्षिप्तशस्त्रमुसलः एकः अद्वितीयः दर्भ-संस्तारोपगतः पाक्षिकं पौषधं प्रतिजाग्रत् विहरसि, तत् सुष्ठु त्वं देवानुप्रिय ! अस्मान् हेलयसि।

१८. वे श्रमणोपासक श्रमण भगवान् महावीर के समीप धर्म सुनकर, अवधारण कर हृष्ट तुष्ट हुए, उठकर खड़े हुए, खड़े होकर श्रमण भगवान् महावीर को वंदन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार कर जहां श्रमणोपासक शंख था, वहां आए, वहां आकर श्रमणोपासक शंख से इस प्रकार बोले- देवानुप्रिय ! गत दिवस तुमने स्वयं ही हमें इस प्रकार कहा था-देवानुप्रिय ! तुम विपुल अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य तैयार करवाओ। हम उस विपुल अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य का स्वाद लेते हुए, विशिष्ट स्वाद लेते हुए, परस्पर एक-दूसरे को खिलाते हुए और भोजन करते हुए पाक्षिक पौषध की प्रतिजागरणा करते हुए विहार करेंगे। तुमने पौषधशाला में ब्रह्मचर्यपूर्वक, सुवर्ण, मणि को छोड़कर, माला, सुगंधित चूर्ण और विलेपन से रहित होकर, शस्त्र-मूसल आदि का वर्जन कर, अकेले, सहाय्य निरपेक्ष होकर दर्भ-संस्तारक पर पाक्षिक पौषध की प्रतिजागरणा करते हुए विहार किया। देवानुप्रिय ! तुमने हमारी बहुत अवहेलना की।

१९. अज्जोति ! समणे भगवं महावीरे ते समणोवासए एवं वयासी-मा णं अज्जो ! तुब्भे संखं समणोवासगं हीलह निंदह खिंसह गरहह अवमण्णह। संखे णं समणोवासए पियधम्मे चेव, दढधम्मे चेव, सुदक्खुजागरियं जागरिए॥

आर्य इति ! श्रमणः भगवान् महावीरः तान् श्रमणोपासकान् एवमवादीत्-मा आर्य ! यूयं शङ्खं श्रमणोपासकं हीलयत निन्दत 'खिंसह' गर्हध्वम् अवमन्यध्वम्। शङ्खः श्रमणोपासकः प्रियधर्मा चैव, दृढधर्मा चैव, सुद्रष्टृजागरिकायां जागरिकः।

१९. 'आर्यो ! इस संबोधन से संबोधित कर श्रमण भगवान् महावीर ने उन श्रमणोपासकों से इस प्रकार कहा-आर्यो ! तुम श्रमणोपासक शंख की अवहेलना, निंदा, भर्त्सना, गर्हा, और अवज्ञा मत करो। श्रमणोपासक शंख प्रियधर्मा है, दृढ़धर्मा है, उसने सुद्रष्टा जागरिका की है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भाष्य

१. सूत्र १६

प्रियधर्मा-दृढ़धर्मा के लिए ठाणं ४/४२ का टिप्पण द्रष्टव्य है।

२०. भंतेति! भगवं गोयमे समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी–कतिविहा णं भंते! जागरिया पण्णत्ता?

गोयमा! तिविहा जागरिया पण्णत्ता, तं जहा–बुद्धजागरिया, अबुद्धजागरिया, सुदक्खुजागरिया॥

भदन्त इति! भगवान् गौतम! श्रमणं भगवन्तं महावीरं वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्यित्वा एवमवादीत्–कतिविधा भदन्त! जागरिका प्रज्ञप्ता?

गौतम! त्रिविधाः जागरिकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–बुद्धजागरिका, अबुद्ध-जागरिका, सुदृष्टृजागरिका।

२०. 'भंते! इस सम्बोधन से संबोधित कर भगवान् गौतम ने श्रमण भगवान् महावीर को वंदन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार कर इस प्रकार कहा–भंते! जागरिका कितने प्रकार की प्रज्ञप्त है?

गौतम! जागरिका तीन प्रकार की प्रज्ञप्त है, जैसे–बुद्ध जागरिका, अबुद्ध जागरिका और सुदृष्टा जागरिका।

२१. से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ–तिविहा जागरिया पण्णत्ता, तं जहा–बुद्धजागरिया, अबुद्धजागरिया, सुदक्खुजागरिया?

जे इमे अरहंता भगवंतो उप्पण्णनाण-दंसणधरा अरहा जिणे केवली तीयपच्चुप्पन्नमणागयवियाणए सव्वण्णू सव्वदरिसी एए णं बुद्धा बुद्धजागरियं जागरंति।

जे इमे अणगारा भगवंतो रियासमिया भासासमिया एसणासमिया आयाण-भंडमत्तनिक्खेवणासमिया उच्चार-पासवण-खेल-सिंघाण-जल्ल-परिट्ठा-वणियासमिया मणसमिया वइसमिया कायसमिया मणगुत्ता वइगुत्ता काय-गुत्ता गुत्ता गुत्तिंदिया गुत्तबंभचारी–एए णं अबुद्धा अबुद्धजागरियं जागरंति।

तत् केनार्थेन भदन्त! एवमुच्यते–त्रिविधाः जागरिकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–बुद्धजागरिका, अबुद्धजागरिका, सुदृष्टृजागरिका।

गौतम! ये इमे अर्हन्तः भगवन्तः उत्पन्न-ज्ञानदर्शनधराः अर्हाः जिनाः केवलिनः अतीतप्रत्युत्पन्नानागत-विज्ञायकाः सर्वज्ञाः सर्वदर्शिनः एते बुद्धाः बुद्धजागरिकायां जाग्रति।

ये इमे अनगाराः भगवन्तः ईर्यासमिताः भाषासमिताः एषणासमिताः आदान-भाण्डामात्रनिक्षेपणासमिताः उच्चार-प्रश्रवण-क्ष्वेल-सिंघाण-'जल्ल' परिष्ठा-पनिकासमिताः मनःसमिताः वचः समिताः कायसमिताः मनोगुप्ताः, वाक्-गुप्ताः कायगुप्ताः गुप्ताः गुप्तेन्द्रियाः गुप्तब्रह्मचारिणः–एते अबुद्धाः अबुद्ध-जागरिकायां जाग्रति।

२१. भंते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है–जागरिका तीन प्रकार की प्रज्ञप्त है, जैसे–बुद्ध जागरिका, अबुद्ध जागरिका और सुदृष्टा जागरिका।

गौतम! जो अर्हत् भगवान् उत्पन्न ज्ञान दर्शन के धारक, अर्हत्, जिन, केवली, अतीत, वर्तमान और भविष्य के विज्ञाता, सर्वज्ञ और सर्वदर्शी हैं, वे बुद्ध बुद्ध-जागरिका करते हैं।

जो अनगार भगवान् विवेकपूर्वक चलते हैं, विवेकपूर्वक बोलते हैं, विवेकपूर्वक आहार की एषणा करते हैं, विवेकपूर्वक वस्त्र पात्र आदि को लेते और रखते हैं, विवेकपूर्वक मल, मूत्र, श्लेष्म, नाक के मैल, शरीर के गाढ़े मैल का परिष्ठापन करते हैं, मन, वचन और काया की संयत प्रवृत्ति करते हैं, मन, वचन और काया का निरोध करते हैं, अपने आपको सुरक्षित रखते हैं, इन्द्रियों को सुरक्षित रखते हैं, ब्रह्मचर्य को सुरक्षित रखते हैं, वे अबुद्ध अबुद्ध जागरिका करते हैं।

जे इमे समणोवासगा अभिगयजीवा-जीवा जाव अहापरिग्गहिएहिं तवो-कम्मेहिं अप्पाणं भावेमाणा विहरंति–एए णं सुदक्खुजागरियं जागरंति।

से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ–तिविहा जागरिया पण्णत्ता, तं जहा–बुद्ध-जागरिया, अबुद्धजागरिया, सुदक्खु-जागरिया॥

ये इमे श्रमणोपासकाः अभिगतजीवा-जीवाः यावत् यथापरिगृहीतैः तपः-कर्मभिः आत्मानं भावयन्तः विहरन्ति–एते सुदृष्टृजागरिकायां जाग्रति।

तत् तेनार्थेन गौतम! एवमुच्यते–त्रिविधाः जागरिकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–बुद्धजागरिका, अबुद्धजागरिका, सुदृष्टृजागरिका।

जो ये श्रमणोपासक जीव अजीव को जानने वाले यावत् यथा परिगृहीत तपःकर्म के द्वारा आत्मा को भावित करते हुए रह रहे हैं, वे सुदृष्टा जागरिका करते हैं।

गौतम! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है–तीन प्रकार की जागरिका प्रज्ञप्त है, जैसे–बुद्ध जागरिका, अबुद्ध जागरिका, सुदृष्टा जागरिका।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भाष्य

१. सूत्र २०-२१

सोना और जागना—ये दो विपरीत शारीरिक क्रियाएं हैं। इसी प्रकार सुषुप्ति और जागरिका—ये दो विपरीत आंतरिक क्रियाएं होती हैं। अज्ञान और प्रमाद की निद्रा से मुक्त होना जागरिका है। उसके तीन प्रकार हैं—

१. बुद्ध जागरिका—ज्ञानावरण के क्षीण होने पर केवली सदा जागृत रहता है इसलिए उसकी जागरिका का नाम बुद्ध जागरिका है।

२. अबुद्ध जागरिका—केवली के अतिरिक्त शेष साधुओं की जागरिका का नाम अबुद्ध जागरिका है।

३. सुदृष्टा जागरिका—तत्त्ववित् और व्रती श्रावक की जागरिका का नाम सुदृष्ट जागरिका है।[1]

२२. तए णं से संखे समणोवासए समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—कोहवसट्टे णं भंते ! जीवे किं बंधइ ? किं पकरेइ ? किं चिणाइ? किं उवचिणाइ?

संखा ! कोहवसट्टे णं जीवे आउय-वज्जाओ सत्त कम्मपगडीओ सिढिलबंधणबद्धाओ धणिय-बंधण-बद्धाओ पकरेइ, हस्सकालठिइयाओ दीहकालठिइयाओ पकरेइ, मंदाणु-भावाओ तिव्वाणुभावाओ पकरेइ, अप्पपएसग्गाओ बहुप्पएसग्गाओ पकरेइ, आउयं च णं कम्मं सिय बंधइ, सिय नो बंधइ, अस्सायावेयणिज्जं च णं कम्मं भुज्जो-भुज्जो उवचिणाइ, अणाइयं च णं अणवदग्गं दीहमद्धं चाउरंतं संसारकंतारं अणुपरियट्टइ॥

ततः सः शङ्खः श्रमणोपासकः श्रमणं भगवन्तं महावीरं वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्थित्वा एवमवादीत्—क्रोधव-शार्त्तः भदन्त ! जीवः किं बध्नाति ? किं प्रकरोति ? किं चिनोति ? किम् उपचिनोति ?

शङ्ख ! क्रोधवशार्त्तः जीवः आयुष्कवर्जाः सप्तकर्मप्रकृतीः शिथिल-बन्धनबद्धाः धणिय बन्धनबद्धाः प्रकरोति, ह्रस्व-कालस्थितिकाः दीर्घकालस्थितिकाः प्रकरोति, मन्दानुभावाः तीव्रानुभावाः प्रकरोति, अल्पप्रदेशाग्राः बहुप्रदेशाग्राः प्रकरोति, आयुष्कं च कर्म स्यात् बध्नाति, स्यात् नो बध्नाति, असातवेदनीयं च कर्म भूयः भूयः उपचिनोति, अनादिकं च 'अणवदग्गं' दीर्घाद्धं चतुरन्तं संसारकन्तारं व्यतिव्रजति।

२२. श्रमणोपासक शंख ने श्रमण भगवान् महावीर को वंदन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार कर इस प्रकार कहा—भंते ! क्रोध के वश आर्त्त बना हुआ जीव क्या बंध करता है ? क्या प्रकर्ष करता है ? किसका चय करता है ? किसका उपचय करता है ?

शंख ! क्रोध के वश आर्त्त बना हुआ जीव आयुष्य कर्म को छोड़कर शेष सात कर्मों की शिथिल बन्धन-बद्ध प्रकृतियों को गाढ़ बंधन-बद्ध करता है, अल्पकालिक स्थिति वाली प्रकृतियों को दीर्घकालिक स्थिति वाली करता है, मन्द अनुभाव वाली प्रकृतियों को तीव्र अनुभाव वाली करता है, अल्पप्रदेश-परिमाण वाली प्रकृतियों को बहुप्रदेश-परिमाण वाली करता है, आयुष्य कर्म का बंध कदाचित् करता है और कदाचित् नहीं करता, वह असातवेदनीय कर्म का बहुत-बहुत उपचय करता है और आदि-अन्तहीन दीर्घपथ वाले चतुर्गत्यात्मक संसार-कान्तार में अनुपर्यटन करता है।

२३. माणवसट्टे णं भंते ! जीवे किं बंधइ ? किं पकरेइ ? किं चिणाइ ? किं उवचिणाइ ?

एवं चेव जाव अणुपरियट्टइ॥

मानवशार्त्तः भदन्त! जीवः किं बध्नाति ? किं प्रकरोति ? किं चिनोति ? किम् उपचिनोति ?

एवं चैव यावत् अनुपरिवर्तते।

२३. भंते ! मान के वश आर्त्त बना हुआ जीव क्या बंध करता है ? क्या प्रकर्ष करता है ? किसका चय करता है ? किसका उपचय करता है ?

इस प्रकार पूर्ववत् यावत् चतुर्गत्यात्मक संसार-कान्तार में अनुपर्यटन करता है।

२४. मायवसट्टे णं भंते ! जीवे किं बंधइ ? किं पकरेइ ? किं चिणाइ ? किं उवचिणाइ ?

मायावशार्त्तः भदन्त ! जीवः किं बध्नाति ? किं प्रकरोति ? किं चिनोति ? किम् उपचिनोति ?

२४. भंते ! माया के वश आर्त्त बना हुआ जीव क्या बंध करता है ? क्या प्रकर्ष करता है ? किसका चय करता है ? किसका उपचय करता है ?

---

१. भ. १२/१९-२१ : बुद्धा; केवलावबोधेन, ते च बुद्धानां—व्यपोढाज्ञाननिद्राणां जागरिका—प्रबोधो बुद्धजागरिका तां कुर्वन्ति।.....अबुद्धाः केवलज्ञानाभावेन यथासंभवं शेषज्ञानसद्भावाच्च बुद्धसदृशास्ते चाबुद्धानां छद्मस्थ-ज्ञानवतां या जागरिका सा तथा तां जाग्रति। .....सुट्ठु दरिसणं जस्स सो सुदक्खू तस्स जागरिया—प्रमाद-निद्राव्यपोहेन जागरणं सुदक्खुजागरिया तां जागरितः कृत्वानित्यर्थः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एवं चेव जाव अणुपरियट्टइ॥

एवं चैव यावत् अनुपरिवर्तते।

इस प्रकार पूर्ववत् यावत् चतुर्गत्यात्मक संसार-कान्तार में अनुपर्यटन करता है।

२५. लोभवसट्टे णं भंते! जीवे किं बंधइ? किं पकरेइ? किं चिणाइ? किं उवचिणाइ?

एवं चेव जाव अणुपरियट्टइ॥

२५. लोभवशार्त्तः भदन्त ! जीवः किं बध्नाति ? किं प्रकरोति ? किं चिनोति ? किम् उपचिनोति ?

एवं चैव यावत् अनुपरिवर्तते।

२५. भंते ! लोभ के वश आर्त्त बना हुआ जीव क्या बंध करता है ? क्या प्रकर्ष करता है ? किसका चय करता है ? किसका उपचय करता है ?

इस प्रकार पूर्ववत् यावत् चतुर्गत्यात्मक संसार-कान्तार में अनुपर्यटन करता है।

भाष्य

१. सूत्र २२-२५

कषाय का आलापक कर्म परिवर्तन का आलापक है। प्रस्तुत प्रकरण में परिवर्तन के चार सूत्रों का निर्देश है–

१. बंध परिवर्तन–शिथिल बंधन-बद्ध कर्म को गाढ़ बंधन-बद्ध किया जा सकता है।

२. स्थिति परिवर्तन–ह्रस्व काल की स्थिति को दीर्घकाल की स्थिति में बदला जा सकता है।

३. अनुभाव परिवर्तन–मंद अनुभाव को तीव्र अनुभाव के रूप में बदला जा सकता है ।

४. प्रदेश-संख्या परिवर्तन–अल्प प्रदेश परिमाण को बहु प्रदेश परिमाण में बदला जा सकता है।

प्रस्तुत संदर्भ में भगवई (१/४६-४७) सूत्र और उसका भाष्य तथा उत्तरज्झयणाणि २९/२३ का सूत्र तथा उसका टिप्पण द्रष्टव्य है। तुलना के लिए देखें–ठाणं ४/७५-९५, कषाय और पुनर्जन्म के सन्दर्भ में देखें– ठाणं ४/३५४,४८२,४८४, ६५३।

२६. तए णं ते समणोवासगा समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं एयमट्ठं सोच्चा निसम्म भीया तत्था तसिया संसारभउव्विग्गा समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता जेणेव संखे समणोवासए तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता संखं समणोवासगं वंदंति नमंसंति, वंदित्ता नमंसित्ता एयमट्ठं सम्मं विणएणं भुज्जो-भुज्जो खामेंति। तए णं ते समणोवासगा पसिणाइं पुच्छंति, पुच्छित्ता अट्ठाइं परियादियंति, परियादियित्ता समणं भगवं महावीरं वंदंति नमंसंति, वंदित्ता नमंसित्ता जामेव दिसं पाउब्भूया तामेव दिसं पडिगया॥

ततः ते श्रमणोपासकाः श्रमणस्य भगवतः महावीरस्य अन्तिकम् एतमर्थं श्रुत्वा निशम्य भीताः त्रस्ताः तृषिताः संसारभयोद्दिग्नाः श्रमणं भगवन्तं महावीरं वन्दन्ते नमस्यन्ति, वन्दित्वा नमस्यित्वा यत्रैव शङ्खः श्रमणोपासकः तत्रैव उपागच्छन्ति, उपागम्य शङ्खं श्रमणोपासकं वन्दन्ते नमस्यन्ति, वन्दित्वा नमस्यित्वा एतमर्थं सम्यक् विनयेन भूयः भूयः क्षमयन्ति। ततः ते श्रमणोपासकाः प्रश्नान् पृच्छन्ति, पृष्ट्वा अर्थान् पर्याददते, पर्यादाय श्रमणं भगवन्तं महावीरं वन्दन्ते नमस्यन्ति, वन्दित्वा नमस्यित्वा यस्याः एव दिशः प्रादुर्भूताः तस्यामेव दिशि प्रतिगताः।

२६. वे श्रमणोपासक भगवान् महावीर के पास इस अर्थ को सुनकर अवधारण कर भीत, त्रस्त, दुःखित और संसार-भय से उद्विग्न हो गए, उन्होंने श्रमण भगवान् महावीर को वंदन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार कर जहां श्रमणोपासक शंख था, वहां आए, वहां आकर श्रमणोपासक शंख को वंदन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार कर इस अर्थ के लिए सम्यक् विनयपूर्वक बार-बार क्षमायाचना की। उस समय उन श्रमणोपासकों ने प्रश्न पूछे। प्रश्न पूछकर अर्थ को हृदय में धारण किया। हृदय में धारण कर श्रमण भगवान् महावीर को वंदन-नमस्कार किया। वंदन-नमस्कार कर जिस दिशा से आए थे, उसी दिशा में लौट गए।

२७. भंतेति! भगवं गोयमे समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी–पभू णं भंते ! संखे समणोवासए देवाणुप्पियाणं अंतियं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए?

नो इणट्ठे समट्ठे। गोयमा! संखे समणोवासए बहूहिं सीलव्वय-गुण-

भदन्त इति! भगवान् गौतमः श्रमणं भगवन्तं महावीरं वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्यित्वा एवमवादीत्–प्रभुः भदन्त ! शङ्खः श्रमणोपासकः देवानुप्रियाणाम् अन्तिकं मुण्डः भूत्वा अगारात् अनगारितां प्रव्रजितुम्।

नो अयमर्थः समर्थः। गौतम ! शङ्खः श्रमणोपासकः बहुभिः शीलव्रत-गुण-

२७. भगवान् गौतम ने श्रमण भगवान् महावीर को 'भंते' ऐसा कहकर वंदन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार कर इस प्रकार कहा–भंते ! क्या श्रमणोपासक शंख देवानुप्रिय के पास मुंड होकर अगार से अनगारता में प्रव्रजित होने में समर्थ है ?

यह अर्थ संगत नहीं है। गौतम ! श्रमणोपासक शंख बहुत शीलव्रत, गुण, विरमण,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वेरमण - पच्चक्खाण - पोसहोववासेहिं अहापरिग्गहिएहिं तवोकम्मेहिं अप्पाणं भावेमाणे बहूइं वासाइं समणोवासग-परियागं पाउणिहिति, पाउणित्ता मासियाए संलेहणाए अत्ताणं झूसेहिति, झूसेत्ता सट्ठिं भत्ताइं अणसणाए छेदेहिति, छेदेत्ता आलोइयपडिक्कंते समाहिपत्ते कालमासे कालं किच्चा सोहम्मे कप्पे अरुणाभे विमाणे देवत्ताए उववज्जिहिति। तत्थ णं अत्थेगतियाणं देवाणं चत्तारि पलिओवमाइं ठिती पण्णत्ता। तत्थ णं संखस्स वि देवस्स चत्तारि पलिओवमाइं ठिती भविस्सति॥

विरमण-प्रत्याख्यान-पौषधोपवासैः यथापरिगृहीतैः तपःकर्मभिः आत्मानं भावयन् बहुनि वर्षाणि श्रमणोपासक-पर्यायं प्राप्स्यति, प्राप्य मासिक्या संलेखनया आत्मानं जोषिष्यति, जोषित्वा षष्टिं भक्तानि अनशनेन छेत्स्यति, छित्त्वा आलोचित-प्रतिक्रान्तः समाधि-प्राप्तः कालमासे कालं कृत्वा सौधर्मे कल्पे अरुणाभे विमाने देवत्वेन उपपत्स्यते। तत्र अस्त्येककानां देवानां चत्वारि पल्योपमानि स्थितिः प्रज्ञप्ता। तत्र शङ्खस्यापि देवस्य चत्वारि पल्योपमानि स्थितिः भविष्यति।

प्रत्याख्यान और पौषधोपवास के द्वारा, यथा-परिगृहीत तपःकर्म के द्वारा आत्मा को भावित करते हुए बहुत वर्ष तक श्रमणोपासक पर्याय का पालन करेगा। पालन कर एक महीने की संलेखना के द्वारा अपने शरीर को कृश बनाएगा, कृश बना कर साठ भक्त का छेदन करेगा, छेदन कर, आलोचना और प्रतिक्रमण कर, समाधिपूर्ण दशा में कालमास में काल को प्राप्त कर सौधर्म कल्प में अरुणाभ विमान में देवरूप में उपपन्न होगा। वहां कुछ देवों की स्थिति चार पल्योपम प्रज्ञप्त है। वहां शंख देव की स्थिति भी चार पल्योपम होगी।

भाष्य

१. सूत्र २७

शीलव्रत आदि की जानकारी के लिए द्रष्टव्य भगवई २/९४ का भाष्य।

२८. से णं भंते ! संखे देवे ताओ देवलोगाओ आउक्खएणं भवक्खएणं ठिइक्खएणं अणंतरं चयं चइत्ता कहिं गच्छिहिति? कहिं उववज्जिहिति ?
गोयमा ! महाविदेहे वासे सिज्झिहिति बुज्झिहिति मुच्चिहिति परिणिव्वाहिति सव्वदुक्खाणं अंतं काहिति॥

सः भदन्त ! शङ्खः देवः तस्माद् देवलोकाद् आयुःक्षयेण भवक्षयेण स्थितिक्षयेण अनन्तरं च्यवं च्युत्वा कुत्र गमिष्यति ? कुत्र उपपत्स्यते ?
गौतम ! महाविदेहवर्षे सेत्स्यति, 'बुज्झिहिति' मोक्ष्यति परिनिर्वास्यति सर्वदुःखानाम् अन्तं करिष्यति।

२८. भंते ! वह शंख देव आयु- क्षय, भव-क्षय और स्थिति-क्षय के अनंतर उस देवलोक से च्यवन कर कहां जाएगा ? कहां उपपन्न होगा ?
गौतम! वह महाविदेह क्षेत्र में सिद्ध, प्रशांत, मुक्त और परिनिर्वृत होगा, सब दुःखों का अन्त करेगा।

२९. सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति जाव विहरइ॥

तदेवं भदन्त ! तदेवं भदन्त ! इति यावत् विहरति।

२९. भंते ! वह ऐसा ही है। भंते ! वह ऐसा ही है। ऐसा कहकर यावत् भगवान् गौतम संयम और तप से अपने आपको भावित करते हुए विहरण करने लगे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बीओ उद्देसो : दूसरा उद्देशक

मूल

उदयणादीणं धम्मसवण-पदं

३०. तेणं कालेणं तेणं समएणं कोसंबी नामं नगरी होत्था–वण्णओ। चंदोतरणे चेइए–वण्णओ। तत्थ णं कोसंबीए नगरीए सहस्साणीयस्स रण्णो पोत्ते, सयाणीयस्स रण्णो पुत्ते, चेडगस्स रण्णो नत्तुए, मिगावतीए देवीए अत्तए, जयंतीए समणोवासियाए भत्तिज्जए उदयणे नामं राया होत्था–वण्णओ। तत्थ णं कोसंबीए नयरीए सहस्साणीयस्स रण्णो सुण्हा, सयाणीयस्स रण्णो भज्जा, चेडगस्स रण्णो धूया, उदयणस्स रण्णो माया, जयंतीए समणोवासियाए भाउज्जा मिगावती नामं देवी होत्था–सुकुमालपाणिपाया जाव सुरूवा समणोवासिया अभिगयजीवाजीवा जाव अहापरिग्गहिएहिं तवोकम्मेहिं अप्पाणं भावेमाणी विहरइ। तत्थ णं कोसंबीए नगरीए सहस्साणीयस्स रण्णो धूया, सयाणीयस्स रण्णो भगिणी, उदयणस्स रण्णो पिउच्छा, मिगावतीए देवीए णणंदा, वेसालियसावयाणं अरहंताणं पुव्वसेज्जातरी जयंती नामं समणोवासिया होत्था–सुकुमालपाणिपाया जाव सुरूवा अभिगयजीवाजीवा जाव अहापरिग्गहिएहिं तवोकम्मेहिं अप्पाणं भावेमाणी विहरइ॥

संस्कृत छाया

उदयनादीनां धर्मश्रवण-पदम्

तस्मिन् काले तस्मिन् समये कौशाम्बी नाम नगरी आसीत्–वर्णकः। चन्द्रावतरणं चैत्यम्–वर्णकः। तत्र कौशाम्ब्यां नगर्यां सहस्रानीकस्य राज्ञः पौत्रः, शतानीकस्य राज्ञः पुत्रः, चेटकस्य राज्ञः नप्तृकः, मृगावत्याः देव्याः आत्मजः, जयन्त्याः श्रमणोपासिकायाः 'भत्तिज्जए' उदयनः नाम राजा आसीत्–वर्णकः। तत्र कौशाम्ब्यां नगर्यां सहस्रानीकस्य राज्ञः स्नुषा, शतानीकस्य राज्ञः भार्या, चेटकस्य राज्ञः दुहिता, उदयनस्य राज्ञः माता, जयन्त्याः श्रमणोपासिकायाः भातृव्या मृगावती नाम देवी आसीत्–सुकुमारपाणिपादा यावत् सुरूपा श्रमणोपासिका अभिगतजीवाजीवा यावत् यथापरिगृहीतैः तपःकर्मभिः आत्मानं भावयन्ती विहरति। तत्र कौशाम्ब्यां नगर्यां सहस्रानीकस्य राज्ञः दुहिता, शतानीकस्य राज्ञः भगिनी, उदयनस्य राज्ञः पितृष्वसा, मृगावत्याः देव्याः ननान्दा, वैशालिकश्रावकाणाम् अर्हतां पूर्वशय्यातरी जयन्ती नाम श्रमणोपासिका आसीत्–सुकुमालपाणिपादा यावत् सुरूपा अभिगतजीवाजीवा यावत् यथापरिगृहीतैः तपःकर्मभिः आत्मानं भावयन्ती विहरति।

हिन्दी अनुवाद

उदयन आदि का धर्मश्रवण-पद

३०. उस काल और उस समय कौशाम्बी नाम की नगरी थी–वर्णक। चंद्रावतरण चैत्य–वर्णक। उस कौशाम्बी नगरी में सहस्रानीक राजा का पौत्र, शतानीक राजा का पुत्र, चेटक राजा का दौहित्र, मृगावती देवी का आत्मज, श्रमणोपासिका जयन्ती का भतीजा उदयन नामक राजा था–वर्णक। उस कौशाम्बी नगरी में सहस्रानीक राजा की पुत्रवधु, शतानीक राजा की भार्या, चेटक राजा की पुत्री, उदयन राजा की माता, श्रमणोपासिका जयन्ती की भाभी श्रमणोपासिका मृगावती नामक देवी थी–सुकुमाल हाथ-पैर वाली, यावत् सुरूपा, जीव-अजीव को जानने वाली यावत् यथापरिगृहीत तपःकर्म के द्वारा आत्मा को भावित करती हुई विहार कर रही थी। उस कौशाम्बी नगरी में सहस्रानीक राजा की पुत्री, शतानीक राजा की बहन, उदयन राजा की भुआ, मृगावती देवी की ननद, वैशालिकश्रावकों-अर्हतों की पूर्व शय्यातर रहने वाली जयंती नामक श्रमणोपासिका थी–सुकुमाल हाथ पैर वाली यावत् सुरूपा, जीव-अजीव को जानने वाली यावत् यथापरिगृहीत तपः कर्म के द्वारा अपने आपको भावित करती हुई रह रही थी।

भाष्य

१. सूत्र ३०

जयन्ती को पूर्व शय्यातरी कहा गया है। **सेज्जातर** का अर्थ होता है साधुओं को आवास के लिए स्थान देने वाला। जयंती अर्हतों को स्थान देने वाली थी। मुनि के लिए अर्हत् शब्द का प्रयोग किया गया है। भगवान् महावीर के साधुओं के लिए मुख्यतः निर्ग्रंथ शब्द का प्रयोग होता था। अर्हत् शब्द का प्रयोग भगवान् पार्श्व की शिष्य-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परम्परा में विद्यमान मुनियों के लिए होता था। इससे फलित होता है कि जयंती भगवान् पार्श्व के अर्हतों को आवास के लिए स्थान देती थी।

अर्हत् का एक विशेषण है वैशालिक श्रावक। वैशालिक शब्द का प्रयोग अनेक अर्थों में होता है।[1] उत्तराध्ययन के मूल पाठ में नायपुत्त शब्द का प्रयोग है इससे ज्ञात होता है वैशालिक भगवान् महावीर का विशेषण है।[2] शान्त्याचार्य की बृहद्वृत्ति में एक पाठान्तर का उल्लेख है। उसमें भगवान् पार्श्व के लिए वेसालिए शब्द का विशेषण मिलता है।[3] प्रस्तुत आगम के दूसरे शतक में वैशालिक श्रावक का प्रयोग निर्ग्रंथ के साथ हुआ है। इससे स्पष्ट है कि वैशालिक श्रावक अर्हत् का अर्थ है भगवान् पार्श्व के शासन का मुनि। वैशालिक श्रावक निर्ग्रंथ का अर्थ है– भगवान महावीर के शासन का मुनि।[4]

अभयदेव सूरि ने वैशालिक का अर्थ भगवान महावीर किया है।[5] किन्तु अर्हत् के साथ वैशालिक का प्रयोग है इसलिए यह अर्थ विचारणीय है।

३१. तेणं कालेणं तेणं समएणं सामी समोसढे जाव परिसा पज्जुवासइ॥

तस्मिन् काले तस्मिन् समये स्वामी समवसृतः यावत् परिषद् पर्युपास्ते।

३१. उस काल उस समय भगवान् महावीर आए यावत् परिषद् पर्युपासना करने लगी।

३२. तए णं से उदयणे राया इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे हट्ठतुट्ठे कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी– खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! कोसंबिं नगरिं सब्भिंतरबाहिरियं आसित्त-सम्मज्जिओवलित्तं करेत्ता य कारवेत्ता य एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह। एवं जहा कूणिओ तहेव सव्वं जाव पज्जुवासइ॥

ततः सः उदयनः राजा अनया कथया लब्धार्थः सन् हृष्टतुष्टः कौटुम्बिकपुरुषान् शब्दयति, शब्दयित्वा एवमवादीत्–क्षिप्रमेव भो देवानुप्रियाः ! कौशाम्बीं नगरीं साभ्यन्तरबाहिरिकाम् आसिक्त-सम्मार्जितोपलिप्तां कृत्वा च कारयित्वा च एतामाज्ञप्तिकां प्रत्यर्पयत। एवं यथा कूणिकः तथैव सर्वं यावत् पर्युपास्ते।

३२. इस कथा को सुनकर राजा उदयन हृष्ट तुष्ट हो गया। उसने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया, बुलाकर इस प्रकार कहा– देवानुप्रियो ! शीघ्र ही कौशांबी नगरी के भीतरी और बाहरी क्षेत्र को सुगंधित जल से सींचो, झाड़ बुहारकर गोबर का लेप करो, लेपकर मेरी आज्ञा मुझे प्रत्यर्पित करो। इस प्रकार जैसे कौणिक राजा की वक्तव्यता (औपपातिक ५६-६९) वैसे ही सम्पूर्ण वर्णन यावत् परिषद् पर्युपासना करने लगी।

३३. तए णं सा जयंती समणोवासिया इमीसे कहाए लद्धट्ठा समाणी हट्ठतुट्ठा जेणेव मिगावती देवी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता मिगावतिं देविं एवं वयासी–एवं खलु देवाणुप्पिए ! समणे भगवं महावीरे आदिगरे जाव सव्वण्णू सव्वदरिसी आगासगएणं चक्केणं जाव सुहंसुहेणं विहरमाणे चंदोतरणे चेइए अहापडिरूवं ओग्गहं ओगिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।

तं महप्फलं खलु देवाणुप्पिए ! तहारूवाणं अरहंताणं भगवंताणं नामगोयस्स वि सवणयाए जाव एयं णे इहभवे य, परभवे य हियाए सुहाए खमाए निस्सेसाए आणुगामियत्ताए भविस्सइ॥

ततः सा जयन्ती श्रमणोपासिका अनया कथया लब्धार्था सती हृष्टतुष्टा यत्रैव मृगावती देवी तत्रैव उपागच्छति, उपागम्य मृगावतीं देवीं एवमवादीत्–एवं खलु देवानुप्रिये! श्रमणः भगवान् महावीरः आदिकरः यावत् सर्वज्ञः सर्वदर्शी आकाशगतेन चक्रेण यावत् सुखंसुखेन विहरन् चन्द्रावतरणे चैत्ये यथाप्रतिरूपम् अवग्रहम् अवगृह्य संयमेन तपसा आत्मानं भावयन् विहरति।

तत् महाफलं खलु देवानुप्रिये! तथारूपाणाम् अर्हतां भगवतां नामगोत्र-स्यापि श्रवणस्य यावत् एतत् नः इहभवे च, प्रेत्यभवे च हिताय सुखाय क्षमाय निःश्रेयसे आनुगामिक-त्वाय भविष्यति।

३३. वह श्रमणोपासिका जयंती इस कथा को सुनकर हृष्ट-तुष्ट हो गयी। वह जहां मृगावती देवी थी, वहां आई, आकर मृगावती देवी से इस प्रकार बोली– देवानुप्रिये ! श्रमण भगवान् महावीर तीर्थंकर आदिकर यावत् सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, आकाशगत-धर्मचक्र से शोभित यावत् सुखपूर्वक चंद्रावतरण चैत्य में प्रवास योग्य स्थान की अनुमति लेकर संयम और तप से अपने आपको भावित करते हुए रह रहे हैं।

देवानुप्रिये ! ऐसे अर्हत् भगवानों के नाम, गोत्र का श्रवण भी महान फलदायक है यावत् यह मेरे इहभव और परभव के लिए हित, शुभ, क्षम, निःश्रेयस और आनुगामिकता के लिए होगा।

---

१. देखें उत्तर ६/१७ का टिप्पण

२. वही, ६/१७।

३. (क) नव सुत्ताणि, पृ. १०८
(ख) उत्तरज्झयणाणि अध्ययन छह का आमुख

४. देखें भ. २/२५ तथा उसका भाष्य।

५. भ. १२/३० : वैशालिकोभगवान्महावीरस्तस्य वचनं शृण्वन्ति, श्रावयन्ति वा तद्रसिकत्वादिति वैशालिकश्रावकास्तेषाम् आर्हतानाम् अर्हद्देवतानां साधूनामिति गम्यं 'पूर्वशय्यातरा' प्रथमस्थानदात्री साधवो ह्यपूर्वे समायातास्तद्गृह एव प्रथमं वसतिं याचन्ते तस्याः स्थानदात्रीत्वेन प्रसिद्धत्वादिति सा पूर्वशय्यातरा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३४. तए णं सा मिगावती देवी जयंतीए समणोवासियाए एवं वुत्ता समाणी हट्ठतुट्ठचित्तमाणंदिया णंदिया पीइमणा परमसोमणस्सिया हरिसवसविसप्पमाणहियया करयलपरिग्गहियं दसनहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु जयंतीए समणोवासियाए एयमट्ठं विणएणं पडिसुणेइ॥

ततः सा मृगावती देवी जयन्त्या श्रमणोपासिकया एवम् उक्ता सती हृष्टतुष्टचित्ता आनन्दिता नन्दिता प्रीतिमना परमसौमनस्यिता हर्षवशविसर्पद्हृदया करतलपरिगृहीतं दशनखं शिरसावर्तं मस्तके अञ्जलिं कृत्वा जयन्त्याः श्रमणोपासिकायाः एतमर्थं विनयेन प्रतिशृणोति।

३४. श्रमणोपासिका जयंती के इस प्रकार कहने पर वह मृगावती देवी हृष्ट-तुष्ट चित्तवाली, आनंदित, नंदित, प्रीतिपूर्ण मनवाली परम सौमनस्य युक्त और हर्ष से विकस्वर हृदय वाली हो गयी। दोनों हथेलियों से निष्पन्न संपुट आकारवाली दसनखात्मक अंजलि को सिर के सम्मुख घुमाकर मस्तक पर टिकाकर श्रमणोपासिका जयंती के इस अर्थ को विनय पूर्वक स्वीकार किया।

३५. तए णं सा मिगावती देवी कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! लहुकरणजुत्तजोइय जाव धम्मियं जाणप्पवरं जुत्तामेव उवट्ठवेह उवट्ठवेत्ता मम एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह॥

ततः सा मृगावती देवी कौटुम्बिकपुरुषान् शब्दयति, शब्दयित्वा एवमवादीत्-क्षिप्रमेव भो देवानुप्रियाः! लघुकरणयुक्तयौगिक यावत् धार्मिकं यानप्रवरं युक्तमेव उपस्थापयत उपस्थाप्य मां एतामाज्ञप्तिकां प्रत्यर्पयत।

३५. मृगावती देवी ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया, बुलाकर इस प्रकार कहा- देवानुप्रियो! शीघ्र गति-क्रिया की दक्षता से युक्त यावत् धार्मिक यानप्रवर को तैयार कर शीघ्र उपस्थित करो। उपस्थित कर मेरी इस आज्ञा को मुझे प्रत्यर्पित करो।

३६. तए णं ते कोडुंबियपुरिसा मिगावतीए देवीए एवं वुत्ता समाणा धम्मियं जाणप्पवरं जुत्तामेव उवट्ठवेंति, उवट्ठवेत्ता तमाणत्तियं पच्चप्पिणंति॥

ततः ते कौटुम्बिकपुरुषाः मृगावत्या देव्या एवम् उक्ताः सन्तः धार्मिकं यानप्रवरं युक्तमेव उपस्थापयन्ति, उपस्थाप्य ताम् आज्ञप्तिकां प्रत्यर्पयन्ति।

३६. मृगावती देवी के इस प्रकार कहने पर उन कौटुम्बिक पुरुषों ने धार्मिक यान प्रवर को शीघ्र उपस्थित कर उस आज्ञा को प्रत्यर्पित किया।

३७. तए णं सा मिगावती देवी जयंतीए समणोवासियाए सद्धिं ण्हाया कयबलिकम्मा जाव अप्पमहग्घाभरणालंकिय-सरीरा बहूहिं खुज्जाहिं जाव चेडियाचक्कवाल-वरिसधर-थेरकंचुइज्ज - महत्तरगवंद - परिक्खित्ता अंतेउराओ निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला जेणेव धम्मिए जाणप्पवरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता धम्मिए जाणप्पवरं दुरूढा॥

ततः सा मृगावती देवी जयन्त्या श्रमणोपासिकया सार्धं स्नाता कृतबलिकर्मा यावत् अल्पमहार्घ्याभरणालंकृतशरीरा बहुभिः 'खुज्जाहिं' यावत् चेटिकाचक्रवाल-वर्षधर-स्थविर-कञ्चुकीय-महत्तरकवृन्द-परिक्षिप्ता अन्तः पुरात् निर्गच्छति, निर्गत्य यत्रैव बाहिरिका उपस्थानशाला यत्रैव धार्मिकः यानप्रवरः तत्रैव उपागच्छति, उपागम्य धार्मिकं यानप्रवरं 'दुरूढ़ा'।

३७. मृगावती देवी ने श्रमणोपासिका जयंती के साथ स्नान किया, बलिकर्म किया यावत् अल्पभार बहुमूल्य वाले आभूषणों से शरीर को अलंकृत किया। बहुत कुब्जा यावत् चेटिका समूह, वर्षधर (कृतनपुंसक पुरुष) स्थविर कंचुकी जनों और महत्तरक गण के वृंद से घिरी हुई अंतःपुर से निकली। निकलकर जहां बाहरी उपस्थान शाला है, जहां धार्मिक यानप्रवर है, वहां आई। वहां आकर धार्मिक यानप्रवर पर आरूढ़ हो गई।

३८. तए णं सा मिगावती देवी जयंतीए समणोवासियाए सद्धिं धम्मियं जाणप्पवरं दुरूढा समाणी नियगपरियालसंपरिवुडा जहा उसभदत्तो जाव धम्मियाओ जाणप्पवराओ पच्चोरुहइ॥

ततः सा मृगादेवी देवी जयन्त्या श्रमणोपासिकया सार्धं धार्मिकं यानप्रवरं 'दुरूढ़ा' सती निजकपरिवारसंपरिवृता यथा ऋषभदत्तः यावत् धार्मिकात् यानप्रवरात् प्रत्यारोहति।

३८. वह मृगावती देवी श्रमणोपासिका जयंती के साथ धार्मिक यानप्रवर पर आरूढ़ होकर अपने परिवार से परिवृत होकर ऋषभदत्त की भांति वक्तव्यता (भ.६/१४५) यावत् धार्मिक यानप्रवर से नीचे उतरी।

३९. तए णं सा मिगावती देवी जयंतीए

ततः सा मृगावती देवी जयन्त्या

३९. वह मृगावती देवी श्रमणोपासिका जयंती के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समणोवासियाए सद्धिं बहूहिं जहा देवाणंदा जाव वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता उदयणं रायं पुरओ कट्टु ठिया चेव सपरिवारा सुस्सूसमाणी नमंसमाणी अभिमुहा विणएणं पंजलिकडा पज्जुवासइ॥

श्रमणोपासिकया सार्धं बहुभिः यथा देवानन्दा यावत् वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्यित्वा उदयनं राजानं पुरतः कृत्वा स्थिता चैव सपरिवारा शुश्रूषमाणा नमस्यन्ती अभिमुखा विनयेन प्राञ्जलिकृता पर्युपास्ते।

साथ बहुत जैसे–देवानंदा की वक्तव्यता यावत् श्रमण भगवान् महावीर को वंदन-नमस्कार कर राजा उदयन को आगे कर स्थित हो परिवार सहित शुश्रूषा और नमस्कार करती हुई सम्मुख रहकर विनयपूर्वक बद्धांजलि पर्युपासना करने लगी।

४०. तए णं समणे भगवं महावीरे उदयणस्स रण्णो मिगावतीए देवीए जयंतीए समणोवासियाए तीसे य महतिमहालियाए परिसाए जाव धम्मं परिकहेइ जाव परिसा पडिगया, उदयणे पडिगए, मिगावती वि पडिगया॥

ततः श्रमणः भगवान् महावीरः उदयनस्य राज्ञः मृगावत्याः देव्याः जयन्त्याः श्रमणोपासिकायाः तस्यां च महामहत्यां परिषदि यावत् धर्मं परिकथयति यावत् परिषत् प्रतिगता, उदयनः प्रतिगतः, मृगावत्यपि प्रतिगता।

४०. श्रमण भगवान् महावीर ने राजा उदयन, मृगावती देवी और श्रमणोपासिका जयंती को उस विशालतम परिषद् में यावत् धर्म कहा यावत् परिषद् लौट गई, उदयन और मृगावती भी लौट गई।

जयंती-पसिण-पदं

४१. तए णं सा जयंती समणोवासिया समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं धम्मं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठा समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी–कहण्णं भंते! जीवा गरुयत्तं हव्वमागच्छंति?

जयंती! पाणाइवाएणं मुसावाएणं अदिण्णादाणेणं मेहुणेणं परिग्गहेणं कोह-माण - माया-लोभ-पेज्ज-दोस-कलह-अब्भक्खाण-पेसुन्न-परपरिवाय-अरतिरति-मायामोस-मिच्छादंसण-सल्लेणं–एवं खलु जयंती! जीवा गरुयत्तं हव्वमागच्छंति॥

जयन्ती-प्रश्न-पदम्

ततः सा जयन्ती श्रमणोपासिका श्रमणस्य भगवतः महावीरस्य अन्तिकं धर्मं श्रुत्वा निशम्य हृष्टतुष्टा श्रमणं भगवन्तं महावीरं वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्यित्वा एवमवादीत्–कथं भदन्त! जीवाः गुरुकत्वं 'हव्वं' आगच्छन्ति?

जयन्ति! प्राणातिपातेन मृषावादेन अदत्तादानेन मैथुनेन परिग्रहेण क्रोध-मान-माया-लोभ-प्रेयस्-'दोस'-कलह-अभ्याख्यान-पैशुन्य - परपरि - वाद-अरतिरति - मायामृषा - मिथ्यादर्शन-शल्येन एवं खलु जयन्ति! जीवाः गुरुकत्वं 'हव्वं' आगच्छन्ति।

जयंती-प्रश्न पद

४१. वह श्रमणोपासिका जयंती श्रमण भगवान् महावीर के पास धर्म को सुनकर, अवधारण कर हृष्ट-तुष्ट हो गई। उसने श्रमण भगवान् महावीर को वंदन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार कर इस प्रकार कहा–भंते! जीव गुरुता को कैसे प्राप्त होते हैं? भारी कैसे बनते हैं?

जयंती! प्राणातिपात, मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन, परिग्रह, क्रोध, मान, माया, लोभ, प्रेय, द्वेष, कलह, अभ्याख्यान, पैशुन्य, परपरिवाद, अरति-रति, माया-मृषा और मिथ्यादर्शन शल्य के द्वारा जीव गुरुता को प्राप्त होते हैं, भारी बनते हैं।

४२. कहण्णं भंते! जीवा लहुयत्तं हव्वमागच्छंति?

जयंती! पाणाइवायवेरमणेणं मुसावायवेरमणेणं अदिण्णादाणवेरमणेणं मेहुणवेरमणेणं परिग्गहवेरमणेणं कोह-माण-माया-लोभ-पेज्ज-दोस-कलह-अब्भक्खाण - पेसुन्न - परपरिवाय-अरतिरति-मायामोस-मिच्छादंसण-सल्लवेरमणेणं–एवं खलु जयंती! जीवा लहुयत्तं हव्वमागच्छंति।

कथं भदन्त! जीवाः लघुकत्वं 'हव्वं' आगच्छन्ति?

जयन्ति! प्राणातिपातविरमणेन मृषावादविरमणेन अदत्तादानविरमणेन मैथुनविरमणेन परिग्रहविरमणेन क्रोध-मान-माया-लोभ-प्रेयस्-'दोस'-कलह-अभ्याख्यान-पैशुन्य - परपरि - वाद-अरति-रति-मायामृषा - मिथ्यादर्शन-शल्य-विरमणेन–एवं खलु जयन्ति! जीवाः लघुकत्वं 'हव्वं' आगच्छन्ति।

४२. भंते! जीव लघुता को कैसे प्राप्त होते हैं? हल्का कैसे बनते हैं?

जयंती! प्राणातिपात-विरमण, मृषावाद विरमण, अदत्तादान-विरमण, मैथुन-विरमण, परिग्रह-विरमण, क्रोध, मान, माया, लोभ, प्रेय, द्वेष, कलह, अभ्याख्यान, पैशुन्य, परपरिवाद, अरति-रति, मायामृषा और मिथ्यादर्शन शल्य के विरमण के द्वारा जीव लघुता को प्राप्त होते हैं, हल्का बनते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४३. कहण्णं भंते ! जीवा संसारं आउलीकरेंति ?
जयंती ! पाणाइवाएणं जाव मिच्छादंसणसल्लेणं–एवं खलु जयंती! जीवा संसारं आउलीकरेंति॥

कथं भदन्त ! जीवाः संसारम् आकुलीकुर्वन्ति ?
जयन्ति ! प्राणातिपातेन यावत् मिथ्यादर्शनशल्येन–एवं खलु जयन्ति ! जीवाः संसारम् आकुलीकुर्वन्ति।

४३. भंते ! जीव संसार को अपरिमित कैसे करते हैं ?
जयंती ! प्राणातिपात यावत् मिथ्यादर्शनशल्य के द्वारा जीव संसार को अपरिमित करते हैं।

४४. कहण्णं भंते ! जीवा संसारं परित्तीकरेंति ?
जयंती ! पाणाइवायवेरमणेणं जाव मिच्छादंसणसल्लवेरमणेणं–एवं खलु जयंती ! जीवा संसारं परित्तीकरेंति॥

कथं भदन्त ! जीवाः संसारं परीतीकुर्वन्ति ?
जयन्ति ! प्राणातिपातविरमणेन यावत् मिथ्यादर्शनशल्यविरमणेन–एवं खलु जयन्ति ! जीवाः संसारं परीतीकुर्वन्ति।

४४. भंते ! जीव संसार को परिमित कैसे करते हैं ?
जयंती ! प्राणातिपात यावत् मिथ्यादर्शनशल्य विरमण से जीव संसार को परिमित करते हैं।

४५. कहण्णं भंते ! जीवा संसारं दीहीकरेंति ?
जयंती ! पाणाइवाएणं जाव मिच्छादंसणसल्लेणं–एवं खलु जयंती ! जीवा संसारं दीहीकरेंति॥

कथं भदन्त ! जीवाः संसारं दीर्घीकुर्वन्ति ?
जयन्ति ! प्राणातिपातेन यावत् मिथ्यादर्शनशल्येन–एवं खलु जयन्ति ! जीवाः संसारं दीर्घीकुर्वन्ति।

४५. भंते ! जीव संसार को दीर्घकालिक कैसे करते हैं ?
जयंती ! प्राणातिपात यावत् मिथ्यादर्शनशल्य के द्वारा जीव संसार को दीर्घकालिक करते हैं।

४६. कहण्णं भंते ! जीवा संसारं हस्सीकरेंति ?
जयंती ! पाणाइवायवेरमणेणं जाव मिच्छादंसणसल्लवेरमणेणं–एवं खलु जयंती ! जीवा संसारं हस्सीकरेंति॥

कथं भदन्त ! जीवाः संसारं ह्रस्वीकुर्वन्ति ?
जयन्ति ! प्राणातिपातविरमणेन यावत् मिथ्यादर्शनशल्येन–एवं खलु जयन्ति ! जीवाः संसारं ह्रस्वीकुर्वन्ति।

४६. भंते ! जीव संसार को अल्पकालिक कैसे करते हैं ?
जयंती ! प्राणातिपात यावत् मिथ्यादर्शनशल्य विरमण के द्वारा जीव संसार को अल्पकालिक करते हैं।

४७. कहण्णं भंते ! जीवा संसारं अणुपरियट्टंति ?
जयंती ! पाणाइवाएणं जाव मिच्छादंसणसल्लेणं–एवं खलु जयंती ! जीवा संसारं अणुपरियट्टंति॥

कथं भदन्त ! जीवाः संसारम् अनुपरिवर्तन्ते ?
जयन्ति ! प्राणातिपातेन यावत् मिथ्यादर्शनशल्येन–एवं खलु जयन्ति ! जीवाः संसारम् अनुपरिवर्तन्ते।

४७. भंते ! जीव संसार में अनुपरिवर्तन कैसे करते हैं ?
जयंती ! प्राणातिपात यावत् मिथ्यादर्शनशल्य के द्वारा जीव संसार में अनुपरिवर्तन करते हैं।

४८. कहण्णं भंते ! जीवा संसारं वीतिवयंति ?
जयंती ! पाणाइवायवेरमणेणं जाव मिच्छादंसणसल्लवेरमणेणं – एवं जयंती ! जीवा ससारं वीतिवयंति॥

कथं भदन्त ! जीवाः संसारं व्यतिव्रजन्ति ?
जयन्ति ! प्राणातिपातविरमणेन यावत् मिथ्यादर्शनशल्यविरमणेन–एवं खलु जयन्ति ! जीवाः संसारं व्यतिव्रजन्ति।

४८. भंते ! जीव संसार का व्यतिक्रमण कैसे करते हैं ?
जयंती ! प्राणातिपात यावत् मिथ्यादर्शनशल्य विरमण से जीव संसार का व्यतिक्रमण करते हैं।

भाष्य

१. सूत्र ४१-४८

जयंती ने भगवान् महावीर से उन्नीस प्रश्न पूछे। भगवान् महावीर ने उनके उत्तर दिए। संक्षिप्त प्रश्न और संक्षिप्त उत्तर। किसी श्रमणोपासिका द्वारा पूछे गए प्रश्नों की यह एक लंबी तालिका है।

प्रथम आठ प्रश्न गौतम स्वामी के द्वारा पूछे गए।[1] जयंती द्वारा भी ये ही प्रश्न पूछे गए। यह आश्चर्य की बात है। इसका एक कारण यह हो सकता है कि उस समय ये प्रश्न बहुत चर्चित रहे हों।

इन प्रश्नों की जानकारी के लिए देखें–भगवई १/३८४-३९१ का भाष्य।

१. भ. १/३८४-३९१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४९. भवसिद्धियत्तणं भंते ! जीवाणं किं सभावओ ? परिणामओ ?
जयंती ! सभावओ, नो परिणामओ॥

भवसिद्धिकत्वं भदन्त ! जीवानां किं स्वभावतः ? परिणामतः ?
जयन्ति ! स्वभावतः, नो परिणामतः।

४९. भंते ! क्या जीव भवसिद्धिक स्वभाव से होते हैं ? परिणाम से होते हैं ?
जयंती ! स्वभाव से होते हैं, परिणाम से नहीं होते।

५०. सव्वेवि णं भंते ! भवसिद्धिया जीवा सिज्झिस्संति ?
हंता जयंती ! सव्वेवि णं भवसिद्धिया जीवा सिज्झिस्संति॥

सर्वेऽपि भदन्त ! भवसिद्धिकाः जीवाः सेत्स्यन्ति ?
हन्त जयन्ति ! सर्वेऽपि भवसिद्धिकाः जीवाः सेत्स्यन्ति।

५०. भंते ! क्या सब भवसिद्धिक जीव सिद्ध होंगे ?
हा, जयंती ! सब भवसिद्धिक जीव सिद्ध होंगे।

५१. जइ णं भंते ! सव्वे भवसिद्धिया जीवा सिज्झिस्संति, तम्हा णं भवसिद्धिय-विरहिए लोए भविस्सइ ?
नो इणट्ठे समट्ठे॥

यदि भदन्त ! सर्वे भवसिद्धिकाः जीवाः सेत्स्यन्ति, तस्मात् भवसिद्धिक-विरहितः लोकः भविष्यति ?
नो अयमर्थः समर्थः।

५१. भंते ! यदि सब भवसिद्धिक जीव सिद्ध हो जाएंगे तो क्या यह लोक भवसिद्धिक जीवों से रहित नहीं हो जायेगा ?
यह अर्थ संगत नहीं है।

५२. से केणं खाइणं अट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–सव्वेवि णं भवसिद्धिया जीवा सिज्झिस्संति, नो चेव णं भवसिद्धिय-विरहिए लोए भविस्सइ ?
जयंती ! से जहानामए सव्वागाससेढी सिया–अणादीया अणवदग्गा परित्ता परिवुडा, सा णं परमाणुपोग्गलमेत्तेहिं खंडेहिं समए-समए अवहीरमाणी-अवहीरमाणी अणंताहिं ओसप्पिणी-उस्सप्पिणीहिं अवहीरंति, नो चेव णं अवहिया सिया।
से तेणट्ठेणं जयंती ! एवं वुच्चइ–सव्वेवि णं भवसिद्धिया जीवा सिज्झिस्संति, नो चेव णं भवसिद्धियविरहिए लोए भविस्सइ॥

तत् केन 'खाइणं' अर्थेन भदन्त ! एवमुच्यते–सर्वेऽपि भवसिद्धिकाः जीवाः सेत्स्यन्ति, नो चैव भवसिद्धिकविरहितः लोकः भविष्यति ?
जयन्ति ! अथ यथानामकः सर्वाकाश-श्रेणिः स्यात्–अनादिका अनवदग्रा परीता परिवृता, सा परमाणुपुद्गल-मात्रैः खण्डे समये-समये अपहियमाणी अपहियमाणी अनन्ताभिः अवसर्पिणी-उत्सर्पिणीभिः अपहियन्ते, नो चैव अपहृता स्यात्।
तत् तेनार्थेन जयन्ति ! एवमुच्यते–सर्वेऽपि भवसिद्धिकाः जीवाः सेत्स्यन्ति, नो चैव भवसिद्धिक-विरहितः लोकः भविष्यति।

५२. भंते ! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है–सब भवसिद्धिक जीव सिद्ध हो जायेंगे तो यह लोक भवसिद्धिक जीवों से रहित नहीं होगा ?
जयंती ! जैसे कोई सर्व-आकाश श्रेणी है–अनादि, अंतहीन, अपरिमित और अन्य श्रेणियों से परिवृत। उस श्रेणी से एक परमाणु-पुद्गल जितना खण्ड प्रति समय अपहृत करें तो भी अनंत उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल में उनका अपहार नहीं होता।
जयन्ती ! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है–सब भवसिद्धिक जीव सिद्ध हो जायेंगे फिर भी यह लोक भवसिद्धिक जीवों से विरहित नहीं होगा।

भाष्य

१. सूत्र ४९-५२

भगवती के प्रथम शतक में भवसिद्धिक को शाश्वत बतलाया गया है।[1] अनुयोगद्वार के अनुसार भवसिद्धिक अनादि पारिणामिक है।[2] प्रस्तुत प्रकरण का निर्देश है–भवसिद्धिक स्वभावतः होता है, परिणामतः नहीं होता। अनुयोगद्वार में अनादि पारिणामिक भाव के प्रकरण में भवसिद्धिक का उल्लेख है। प्रस्तुत सूत्र में सादि पारिणामिक भाव की अपेक्षा से 'परिणाम से नहीं होता' का निर्देश है। इसलिए इन दोनों में परस्पर विरोध नहीं है। वृत्तिकार के अनुसार जैसे पुद्गल स्वभाव से मूर्त्त होता है वैसे ही भवसिद्धिक स्वभाव से होता है। वृत्तिकार ने परिणाम का अर्थ 'अभूतभवन्' किया है, जैसे एक शिशु युवा बनता है, यह 'अभूतभवन्' परिणाम है। भवसिद्धिक अभूतभवनात्मक परिणाम नहीं है।[3] यदि सर्व भवसिद्धिक जीव सिद्ध होंगे तो यह संसार भवसिद्धिक (मोक्षगमन योग्य) जीवों से खाली हो जायेगा। इस प्रश्न के उत्तर में भगवान् ने कहा–जयंती ! संपूर्ण आकाश की एक श्रेणी है–अनादि, अंतहीन, अपरिमित और अन्य श्रेणियों से परिवृत। उस श्रेणी से एक परमाणु-पुद्गल जितना खंड प्रतिसमय अपहृत करें तो भी अनंत उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल में उनका अपहार नहीं होता। इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है–सब भवसिद्धिक जीव सिद्ध हो जाएंगे फिर भी यह लोक भवसिद्धिक जीवों से विरहित नहीं होगा।

---

१. भ. १/२६२ एवं उसका भाष्य।
२. अनु सू. २८८
३. भ. वृ. १२/४९-५२ : स्वभावतः पुद्गलानां मूर्त्तत्ववत्।
'परिणामओ' त्ति परिणामेन अभूतस्य भवनेन पुरुषस्य तारुण्यवत्।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५३. सुत्तत्तं भंते! साहू? जागरियत्तं साहू?
जयंती! अत्थेगतियाणं जीवाणं सुत्तत्तं साहू, अत्थेगतियाणं जीवाणं जागरियत्तं साहू॥

सुप्तत्वं भदन्त! साधु? जागरिकत्वं साधु?
जयन्ति! अस्त्येककानां जीवानां सुप्तत्वं साधु, अस्त्येककानां जीवानां जागरिकत्वं साधु।

५३. भंते! जीवों का सुप्त रहना अच्छा है? जागृत रहना अच्छा है?
जयंती! कुछ जीवों का सुप्त रहना अच्छा है, कुछ जीवों का जागृत रहना अच्छा है।

५४. से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ–अत्थेगतियाणं जीवाणं सुत्तत्तं साहू, अत्थेगतियाणं जीवाणं जागरियत्तं साहू?
जयंती! जे इमे जीवा अहम्मिया अहम्माणुया अहम्मिट्ठा अहम्मक्खाई अहम्मपलोई अहम्मपलज्जणा अहम्मसमुदायारा अहम्मेणं चेव वित्तिं कप्पेमाणा विहरंति, एएसि णं जीवाणं सुत्तत्तं साहू। एए णं जीवा सुत्ता समाणा नो बहूणं पाणाणं भूयाणं जीवाणं सत्ताणं दुक्खणयाए सोयणयाए जूरणयाए तिप्पणयाए पिट्टणयाए परियावणयाए वट्टंति। एए णं जीवा सुत्ता समाणा अप्पाणं वा परं वा तदुभयं वा नो बहूहिं अहम्मियाहिं संजोयणाहिं संजोएत्तारो भवंति। एएसि णं जीवाणं सुत्तत्तं साहू।

तत् केनार्थेन भदन्त! एवमुच्यते–अस्त्येककानां जीवानां सुप्तत्वं साधु, अस्त्येककानां जीवानां जागरिकत्वं साधु?
जयन्ति! ये इमे जीवाः अधार्मिकाः अधर्मानुगाः अधर्मिष्ठाः अधर्माख्यायिनः अधर्मप्रलोकिनः अधर्मप्ररञ्जनाः अधर्मसमुदाचाराः अधर्मेण चैव वृत्तिं कल्पमानाः विहरन्ति, एतेषां जीवानां सुप्तत्वं साधु। एते जीवाः सुप्ताः सन्तः नो बहूनां प्राणानां भूतानां जीवानां सत्वानां दुःखनाय शोचनाय खेदनाय तिप्पनाय पिट्टनाय परितापनाय वर्तन्ते। एते जीवाः सुप्ताः सन्तः आत्मानं वा परं वा तदुभयं वा नो बहुभिः अधार्मिकाभिः संयोजनाभिः संयोजयितारः भवन्ति। एतेषां जीवानां सुप्तत्वं साधु।

५४. भंते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है– कुछ जीवों का सुप्त रहना अच्छा है, कुछ जीवों का जागृत रहना अच्छा है?
जयंती! जो ये जीव अधार्मिक, (अधर्म का अनुगमन करने वाले) अधर्मिष्ठ, अधर्मवादी, अधर्म को देखने वाले, अधर्म में अनुरक्त, अधर्म का आचरण करने वाले, अधर्म के द्वारा आजीविका करने वाले हैं, उन जीवों का सुप्त रहना अच्छा है। उन जीवों के सुप्त रहने से वे अनेक प्राण, भूत, जीव और सत्त्वों को दुःखी करने के लिए, शोकाकुल करने के लिए, खिन्न करने के लिए, रुलाने के लिए, पीटने के लिए, परितप्त करने के लिए प्रवृत्त नहीं होते। उन जीवों के सुप्त रहने से वे स्वयं को अथवा दूसरे को अथवा स्व-पर–दोनों को अनेक अधार्मिक संयोजनाओं में संयोजित नहीं करते। अतः उन जीवों का सुप्त रहना अच्छा है।

जयंती! जे इमे जीवा धम्मिया धम्माणुया धम्मिट्ठा धम्मक्खाई धम्मपलोई धम्मपलज्जणा धम्मसमुदायारा धम्मेणं चेव वित्तिं कप्पेमाणा विहरंति, एएसि णं जीवाणं जागरियत्तं साहू। एए णं जीवा जागरा समाणा बहूणं पाणाणं भूयाणं जीवाणं सत्ताणं अदुक्खणयाए असोयणयाए अजूरणयाए अतिप्पणयाए अपिट्टणयाए अपरियावणयाए वट्टंति। एए णं जीवा जागरा समाणा अप्पाणं वा परं वा तदुभयं वा बहूहिं धम्मियाहिं संजोयणाहिं संजोएत्तारो भवंति। एए णं जीवा जागरा समाणा धम्मजागरियाए अप्पाणं जागरइत्तारो भवंति। एएसि णं जीवाणं जागरियत्तं साहू। से तेणट्ठेणं जयंती! एवं वुच्चइ–अत्थेगतियाणं जीवाणं सुत्तत्तं

जयन्ति! ये इमे जीवाः धार्मिकाः धर्मानुगाः धर्मिष्ठाः धर्माख्यायिनः धर्मप्रलोकिनः धर्मप्ररञ्जनाः धर्मसमुदाचाराः धर्मेण चैव वृत्तिं कल्पमानाः विहरन्ति, एतेषां जीवानां जागरिकत्वं साधु। एते जीवाः जागराः सन्तः बहूनां प्राणानां भूतानां जीवानां सत्वानाम् अदुःखनाय अशोचनाय अखेदनाय अतिप्पनाय अपिट्टनाय अपरितापनाय वर्तन्ते। एते जीवाः जागराः सन्तः आत्मानं वा परं वा तदुभयं वा बहुभिः धार्मिकाभिः संयोजनाभिः संयोजयितारः भवन्ति। एते जीवाः जागराः सन्तः धर्मजागरिकया आत्मानं जागरितारः भवन्ति। एतेषां जीवानां जागरिकत्वं साधु। तत् तेनार्थेन जयन्ति! एवमुच्यते–अस्त्येककानां जीवानां सुप्तत्वं साधु, अस्त्येककानां जीवानां जागरिकत्वं साधु।

जयंती! जो ये जीव धार्मिक, धर्मानुग, धर्मिष्ठ, धर्म का आख्यान करने वाले, धर्म का प्रलोकन करने वाले, धर्म से रंजित, धर्म का आचरण करने वाले और धर्म के द्वारा ही आजीविका चलाते हुए विहरण करते हैं, उन जीवों का जागृत रहना अच्छा है। उन जीवों के जागृत रहने से वे अनेक प्राण, भूत, जीव और सत्त्वों को दुःखी न करने के लिए, शोकाकुल न करने के लिए, खिन्न न करने के लिए, न रुलाने के लिए, न पीटने के लिए और परितप्त न करने के लिए प्रवृत्त होते हैं। उन जीवों के जागृत रहने से वे स्वयं को, दूसरे को, दोनों को अनेक धार्मिक संयोजनाओं में संयोजित करते हैं। वे जीव जागृत होने पर धर्म जागरिका के द्वारा अपनी आत्मा को जागृत करते हैं। इसलिए उन जीवों का जागृत रहना अच्छा है। जयंती! इस

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

साहू, अत्थेगतियाणं जीवाणं जागरियत्तं साहू॥

अपेक्षा से यह कहा जा रहा है–कुछ जीवों का सुप्त रहना अच्छा है, कुछ जीवों का जागृत रहना अच्छा है।

भाष्य

१. सूत्र ५३-५४

जीवों का सोना अच्छा या जागना अच्छा ? इन प्रश्नों का उत्तर भगवान् ने अनेकान्त दृष्टि से दिया। अधर्म पक्ष वाले जीवों का सोना अच्छा है, धर्म पक्ष वाले जीवों का जागना अच्छा है। सूत्रकृतांग में तीन पक्ष बतलाए गए हैं– अधर्म पक्ष[1], धर्म पक्ष[2] और मिश्र पक्ष।[3] प्रस्तुत विषय का विशद वर्णन उन तीन पक्षों के मूल पाठ में प्राप्त है। इसका संक्षिप्त सार यह है जो व्यक्ति अधर्म का आचरण करता है और अधर्म या अनैतिकता से आजीविका करता है, वह सुप्त है, उसका सोना ही अच्छा है। जो व्यक्ति धर्म का आचरण करना है और धर्म या नैतिकता से आजीविका करता है, वह जागृत है, उसका जागना ही अच्छा है। सुप्त का सोना इसलिए अच्छा है कि वह जागृत अवस्था में दूसरों को दुःख देता है और स्वयं को तथा दूसरों को अधार्मिक संयोजनाओं में संयोजित करता है। जागृत व्यक्ति जागृत अवस्था में दूसरों को दुःख नहीं देता इसलिए उसका जागना अच्छा है। वह जागृत रहकर स्वयं को तथा दूसरों को अनेक धार्मिक संयोजनाओं से संयोजित करता है। धर्म-जागरिका से जागृत रहता है।

शब्द-विमर्श

दुःखणयाए इत्यादि शब्दों के लिए द्रष्टव्य भगवई ७/११४

धार्मिक–श्रुत चारित्र रूप धर्म का आचरण करने वाला।

अधर्मिष्ठ–जिसको अधर्म इष्ट है।

अधर्मानुग–जो धर्म का अनुगमन नहीं करता।

अधर्माख्याति–अधर्म का आख्यान करने वाला, अधर्म के द्वारा ही जिसकी ख्याति है।

अधर्मप्रलोकी–जो धर्म का उपादेय रूप में अवलोकन नहीं करता।

अधर्मप्ररञ्जन–अधार्मिक कार्यों में अनुरक्त रहने वाला।

अधर्म समुदाचार–धर्म के सदाचार का पालन नहीं करने वाला।

५५. बलियत्तं भंते ! साहू? दुब्बलियत्तं साहू ?
जयंती ! अत्थेगतियाणं जीवाणं बलियत्तं साहू, अत्थेगतियाणं जीवाणं दुब्बलियत्तं साहू॥

बलिकत्वं भदन्त ! साधु ? दुर्बलिकत्वं साधु ?
जयन्ति ! अस्त्येककानां जीवानां बलिकत्वं साधु, अस्त्येककानां जीवानां दुर्बलिकत्वं साधु।

५५. भंते ! जीवों का बलिष्ठ होना अच्छा है ? दुर्बल होना अच्छा है ?
जयंती ! कुछ जीवों का बलिष्ठ होना अच्छा है, कुछ जीवों का दुर्बल होना अच्छा है।

५६. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ– अत्थेगतियाणं जीवाणं बलियत्तं साहू, अत्थेगतियाणं जीवाणं दुब्बलियत्तं साहू ?
जयंती ! जे इमे जीवा अहम्मिया जाव अहम्मेणं चेव वित्तिं कप्पेमाणा विहरंति, एएसि णं जीवाणं दुब्बलियत्तं साहू। एए णं जीवा दुब्बलिया समाणा नो बहूणं पाणाणं भूयाणं जीवाणं सत्ताणं दुक्खणयाए जाव परियावणयाए वट्टंति। एए णं जीवा दुब्बलिया समाणा अप्पाणं वा परं वा तदुभयं वा नो बहूहिं अहम्मियाहिं संजोयणाहिं संजोएत्तारो भवंति। एएसि णं जीवाणं दुब्बलियत्तं साहू।

तत् केनार्थेन भदन्त ! एवमुच्यते– अस्त्येककानां जीवानां बलिकत्वं साधु, अस्त्येककानां जीवानां दुर्बलिकत्वं साधु ?
जयन्ति ! ये इमे जीवाः अधार्मिकाः यावत् अधर्मेण चैव वृत्तिं कल्पमानाः विहरन्ति, एतेषां जीवानां दुर्बलिकत्वं साधु। एते जीवाः दुर्बलिकाः सन्तः नो बहूनां प्राणानां भूतानां जीवानां सत्वानां दुःखनाय यावत् परितापनाय वर्तन्ते। एते जीवाः दुर्बलिकाः सन्तः आत्मानं वा परं वा तदुभयं वा नो बहुभिः अधार्मिकीभिः संयोजनाभिः संयोजयितारः भवन्ति। एतेषां जीवानां दुर्बलिकत्वं साधुः।

५६. भंते ! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है– कुछ जीवों का बलिष्ठ होना अच्छा है, कुछ जीवों का दुर्बल होना अच्छा है ?

जयंती ! जो ये जीव अधार्मिक यावत् अधर्म के द्वारा आजीविका चलाते हुए विहरण कर रहे हैं, उन जीवों का दुर्बल होना अच्छा है। उन जीवों के दुर्बल होने से वे अनेक प्राण, भूत, जीव और सत्त्वों को दुःखी यावत् परिताप करने के लिए प्रवृत नहीं होते । उन जीवों के दुर्बल होने से स्वयं को, दूसरे को, दोनों को अनेक अधार्मिक संयोजनाओं में संयोजित नहीं करते इसलिए उन जीवों का दुर्बल होना अच्छा है।

---

१. सूय. २/२/५२-६२।
२. वही, २/२/६३-७०।
३. वही, २/२/७२-७४।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जयंती ! जे इमे जीवा धम्मिया जाव धम्मेणं चेव वित्तिं कप्पेमाणा विहरंति, एएसि णं जीवाणं बलियत्तं साहू। एए णं जीवा बलिया समाणा बहूणं पाणाणं भूयाणं जीवाणं सत्ताणं अदुक्खणयाए जाव अपरियावणयाए वट्टंति। एए णं जीवा बलिया समाणा अप्पाणं वा परं वा तदुभयं वा बहूहिं धम्मियाहिं संजोयणाहिं संजोएत्तारो भवंति। एएसि णं जीवाणं बलियत्तं साहू। से तेणट्ठेणं जयंती ! एवं वुच्चइ–अत्थेगतियाणं जीवाणं बलियत्तं साहू, अत्थेगतियाणं जीवाणं दुब्बलियत्तं साहू॥

जयन्ति ! ये इमे जीवाः धार्मिकाः यावत् धर्मेण चैव वृत्तिं कल्पमानाः विहरन्ति, एतेषां जीवानां बलिकत्वं साधु। एते जीवाः बलिकाः सन्तः बहूनां प्राणानां भूतानां जीवानां सत्वानाम् अदुःखनाय यावत् अपरितापनाय वर्तन्ते। एते जीवाः बलिकाः सन्तः आत्मानं वा परं वा तदुभयं वा बहुभिः धार्मिकीभिः संयोजनाभिः संयोजयितारः भवन्ति। एतेषां जीवानां बलिकत्वं साधु। तत् तेनार्थेन जयन्ति! एवमुच्यते– अस्त्येककानां जीवानां बलिकत्वं साधु, अस्त्येककानां जीवानां दुर्बलिकत्वं साधु।

जयंती ! जो ये जीव धार्मिक यावत् धर्म के द्वारा आजीविका चलाते हुए विहरण करते हैं, उन जीवों का बलवान होना अच्छा है। वे जीव बलवान होने पर अनेक प्राण, भूत, जीव और सत्त्वों को दुःखी न करने के लिए यावत् परितप्त न करने के लिए प्रवृत्त होते हैं। वे जीव बलवान होने पर स्वयं को, दूसरों को, दोनों को अनेक धार्मिक संयोजनाओं में संयोजित करते हैं इसलिए उन जीवों का बलवान होना अच्छा है। जयंती! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है–कुछ जीवों का बलवान होना अच्छा है, कुछ जीवों का दुर्बल होना अच्छा है।

५७. दक्खत्तं भंते ! साहू ? आलसियत्तं साहू ?
जयंती ! अत्थेगतियाणं जीवाणं दक्खत्तं साहू, अत्थेगतियाणं जीवाणं आलसियत्तं साहू॥

दक्षत्वं भदन्त ! साधु ? आलसिकत्वं साधु ?
जयन्ति ! अस्त्येककानां जीवानां दक्षत्वं साधु, अस्त्येककानां जीवानाम् आलसिकत्वं साधु।

५७. भंते ! जीवों का दक्षत्व अच्छा है ? आलस्य अच्छा है ?
जयंती ! कुछ जीवों का दक्षत्व अच्छा है, कुछ जीवों का आलस्य अच्छा है।

५८. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–अत्थेगतियाणं जीवाणं दक्खत्तं साहू, अत्थेगतियाणं जीवाणं आलसियत्तं साहू ?
जयंती! जे इमे जीवा अहम्मिया जाव अहम्मेणं चेव वित्तिं कप्पेमाणा विहरंति, एएसि णं जीवाणं आलसियत्तं साहू। एए णं जीवा आलसा समाणा नो बहूणं पाणाणं भूयाणं जीवाणं सत्ताणं दुक्खणयाए जाव परियावणयाए वट्टंति। एए णं जीवा आलसा समाणा अप्पाणं वा परं वा तदुभयं वा नो बहूहिं अहम्मियाहिं संजोयणाहिं संजोएत्तारो भवंति। एएसि णं जीवाणं आलसियत्तं साहू।
जयंती ! जे इमे जीवा धम्मिया जाव धम्मेणं चेव वित्तिं कप्पेमाणा विहरंति, एएसि णं जीवाणं दक्खत्तं साहू, एए णं जीवा दक्खा समाणा बहूणं पाणाणं भूयाणं जीवाणं सत्ताणं अदुक्खणयाए जाव अपरियावणयाए वट्टंति। एए णं जीवा दक्खा समाणा अप्पाणं वा परं वा तदुभयं वा बहूहिं

तत् केनार्थेन भदन्त ! एवमुच्यते– अस्त्येककानां जीवानां दक्षत्वं साधु, अस्त्येककानां जीवानाम् आलसिकत्वं साधु?
जयन्ति ! ये इमे जीवाः अधार्मिकाः यावत् अधर्मेण चैव वृत्तिं कल्पमानाः विहरन्ति, एतेषां जीवानाम् आलसिकत्वं साधु। एते जीवाः आलसाः सन्तः नो बहूनां प्राणानां भूतानां जीवानां सत्वानां दुःखनाय यावत् परितापनाय वर्तन्ते। एते जीवा आलसाः सन्तः आत्मानं वा परं वा तदुभयं वा नो बहुभिः अधार्मिकीभिः संयोजनाभिः संयोजयितारः भवन्ति। एतेषां जीवानाम् आलसिकत्वं साधु।
जयन्ति ! ये इमे जीवाः धार्मिकाः यावत् धर्मेण चैव वृत्तिं कल्पमानाः विहरन्ति, एतेषां जीवानां दक्षत्वं साधु, एते जीवाः दक्षाः सन्तः बहूनां प्राणानां भूतानां जीवानां सत्वानाम् अदुःखनाय यावत् अपरितापनाय वर्तन्ते। एते जीवाः दक्षाः सन्तः आत्मानं वा परं वा तदुभयं वा बहुभिः धार्मिकीभिः संयोजनाभिः

५८. भंते ! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है–कुछ जीवों का दक्षत्व अच्छा है ? कुछ जीवों का आलस्य अच्छा है ?

जयंती ! जो ये जीव अधार्मिक यावत् अधर्म के द्वारा आजीविका चलाते हुए विहरण करते हैं, उन जीवों का आलस्य अच्छा है। वे जीव आलसी होने पर अनेक प्राण, भूत, जीव और सत्त्वों को दुःखी यावत् परितप्त करने के लिए प्रवृत्त नहीं होते। वे जीव आलसी होने पर स्वयं को, दूसरों को, दोनों को अनेक अधार्मिक संयोजनाओं में संयोजित नहीं करते। इसलिए उन जीवों का आलस्य अच्छा है।

जयंती ! जो ये जीव धार्मिक यावत् धर्म के द्वारा आजीविका चलाते हुए विहरण करते हैं, उन जीवों का दक्षत्व अच्छा हैं। वे जीव दक्षता के कारण अनेक प्राण, भूत, जीव और सत्त्वों को दुःखी न करने के लिए यावत् परितप्त न करने के लिए प्रवृत्त होते हैं। वे जीव दक्षता के कारण स्वयं को, दूसरे को, दोनों को अनेक धार्मिक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धम्मियाहिं संजोयणाहिं संजोएत्तारो भवंति। एए णं जीवा दक्खा समाणा बहूहिं आयरियवेयावच्चेहिं उवज्झायवेयावच्चेहिं थेरवेयावच्चेहिं तवस्सिवेयावच्चेहिं गिलाणवेयावच्चेहिं सेहवेयावच्चेहिं कुलवेयावच्चेहिं गणवेयावच्चेहिं संघवेयावच्चेहिं साहम्मियवेयावच्चेहिं अत्ताणं संजोएत्तारो भवंति, एएसि णं जीवाणं दक्खत्तं साहू।

से तेणट्ठेणं जयंती! एवं वुच्चइ–अत्थेगतियाणं जीवाणं दक्खत्तं साहू, अत्थेगतियाणं जीवाणं आलसियत्तं साहू॥

संयोजयितारः भवन्ति। एते जीवाः दक्षाः सन्तः बहुभिः आचार्यवैयावृत्यैः उपाध्यायवैयावृत्यैः स्थविरवैयावृत्यैः तपस्विवैयावृत्यैः ग्लानवैयावृत्यैः शैक्षवैयावृत्यैः कुलवैयावृत्यैः गणवैयावृत्यैः संघवैयावृत्यैः साधार्मिकवैयावृत्यैः आत्मानं संयोजयितारः भवन्ति, एतेषां जीवानां दक्षत्वं साधु।

तत् तेनार्थेन जयन्ति! एवमुच्यते–अस्त्येककानां जीवानाम् आलसिकत्वं साधु।

संयोजनाओं में संयोजित करते हैं। वे जीव दक्षता के कारण अनेक आचार्यों के वैयावृत्य, उपाध्यायों के वैयावृत्य, स्थविरों के वैयावृत्य, तपस्वियों के वैयावृत्य, ग्लानों के वैयावृत्य, शैक्षों के वैयावृत्य, कुलों के वैयावृत्य, गणों के वैयावृत्य, संघों के वैयावृत्य और साधर्मिकों के वैयावृत्य द्वारा अपने आप को संयोजित करते हैं, इसलिए उन जीवों का दक्षत्व अच्छा है।

जयंती! यह इस अपेक्षा से कहा जा रहा है–कुछ जीवों का दक्षत्व अच्छा है, कुछ जीवों का आलस्य अच्छा है।

भाष्य

१. सूत्र ५५-५८

दुर्बलता और बलवत्ता, आलस्य और दक्षता की व्याख्या भी सुप्त और जागृत के समान है। एक उल्लेखनीय बात है कि दक्ष व्यक्ति आचार्य आदि की सेवा में व्यापृत होता है। दस प्रकार के वैयावृत्य के लिए द्रष्टव्य है– ठाणं १०/१७,५/४४-४५।

५९. सोइंदियवसट्टे णं भंते! जीवे किं बंधइ? किं पकरेइ? किं चिणाइ? किं उवचिणाइ?

जयंती! सोइंदियवसट्टे णं जीवे आउयवज्जाओ सत्त कम्मपगडीओ सिढिलबंधणबद्धाओ धणियबंधणबद्धाओ पकरेइ, हस्सकालट्ठिइयाओ दीहकालट्ठिइयाओ पकरेइ, मंदाणुभावाओ तिव्वाणुभावाओ पकरेइ, अप्पपएसग्गाओ बहुप्पएसग्गाओ पकरेइ, आउयं च णं कम्मं सिय बंधइ सिय नो बंधइ, अस्सायावेयणिज्जं च णं कम्मं भुज्जो-भुज्जो उवचिणाइ, अणाइयं च णं अणवदग्गं दीहमद्धं चाउरंतं संसारकंतारं अणुपरियट्टइ॥

श्रोत्रेन्द्रियवशार्त्तः भदन्त! जीवः किं बध्नाति? किं प्रकरोति? किम् चिनोति? किं उपचिनोति?

जयन्ति! श्रोत्रेन्द्रियवशार्त्तः जीवः आयुर्वर्जाः सप्त कर्मप्रकृतीः शिथिलबन्धनबद्धाः 'धणिय'बन्धनबद्धाः प्रकरोति, ह्रस्वकालस्थितिकाः दीर्घकालस्थितिकाः प्रकरोति, मन्दानुभावाः तीव्रानुभावाः प्रकरोति, अल्पप्रदेशाग्राः बहुप्रदेशाग्राः प्रकरोति, आयुश्च कर्म स्यात् बध्नाति, स्यात् नो बध्नाति, असातवेदनीयं च कर्म भूयः-भूयः उपचिनोति, अनादिकं च 'अणवदग्गं' च दीर्घाद्धं चतुरन्तं संसारकन्तारम् अनुपरिवर्तते।

५९. भंते! श्रोत्रेन्द्रिय के वश आर्त्त बना हुआ जीव क्या कर्म का बंध करता है? क्या प्रकर्ष करता है? किसका चय करता है? किसका उपचय करता है?

जयंती! श्रोत्रेन्द्रिय के वश आर्त्त बना हुआ जीव आयुष्य कर्म को छोड़कर शेष सात कर्मों की शिथिल बंधन-बद्ध प्रकृतियों को गाढ बन्धन-बद्ध करता है, अल्पकालिक स्थिति वाली प्रकृतियों को दीर्घकालिक स्थिति वाली करता है, मन्द अनुभाव वाली प्रकृतियों को तीव्र अनुभाव वाली करता है, अल्पप्रदेश-परिमाण वाली प्रकृतियों को बहुप्रदेश-परिमाण वाली करता है। आयुष्य कर्म का बंध कदाचित् करता है और कदाचित् नहीं करता। वह असातवेदनीय कर्म का बहुत-बहुत उपचय करता है और आदि-अन्तहीन दीर्घपथ वाले चतुर्गत्यात्मक संसार-कान्तार में अनुपर्यटन करता है।

६०. चक्खिंदियवसट्टे णं भंते! जीवे किं बंधइ? किं पकरेइ? किं चिणाइ? किं उवचिणाइ?

एवं चेव जाव अणुपरियट्टइ॥

चक्षुरिन्द्रियवशार्त्तः भदन्त! जीवः किं बध्नाति? किं प्रकरोति? किं चिनोति? किम् उपचिनोति?

एवं चैव यावत् अनुपरिवर्तते?

६०. भंते! चक्षुरिन्द्रिय के वश आर्त्त बना हुआ जीव क्या कर्म का बंध करता है? क्या प्रकर्ष करता है? किसका चय करता है? किसका उपचय करता है?

इस प्रकार पूर्ववत् यावत् चतुर्गत्यात्मक संसार-कान्तार में अनुपर्यटन करता है।

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

६१. घाणिंदियवसट्टे णं भंते ! जीवे किं बंधइ ? किं पकरेइ ? किं चिणाइ ? किं उवचिणाइ ?

एवं चेव जाव अणुपरियट्टइ॥

घ्राणेन्द्रियवशार्त्तः भदन्त ! जीवः किं बध्नाति ? किं प्रकरोति ? किं चिनोति ? किम् उपचिनोति ?

एवं चैव यावत् अनुपरिवर्तते।

६१. भंते ! घ्राणेन्द्रिय के वश आर्त्त बना हुआ जीव क्या कर्म का बंध करता है ? क्या प्रकर्ष करता है ? किसका चय करता है ? किसका उपचय करता है ?

इस प्रकार पूर्ववत् यावत् चतुर्गत्यात्मक संसार-कान्तार में अनुपर्यटन करता है।

६२. रसिंदियवसट्टे णं भंते ! जीवे किं बंधइ ? किं पकरेइ ? किं चिणाइ ? किं उवचिणाइ ?

एवं चेव जाव अणुपरियट्टइ॥

रसेन्द्रियवशार्त्तः भदन्त ! जीवः किं बध्नाति ? किं प्रकरोति ? किं चिनोति ? किम् उपचिनोति ?

एवं चैव यावत् अनुपरिवर्तते।

६२. भंते ! रसनेन्द्रिय के वश आर्त्त बना हुआ जीव क्या कर्म का बंध करता है ? क्या प्रकर्ष करता है ? किसका चय करता है ? किसका उपचय करता है ?

इस प्रकार पूर्ववत् यावत् चतुर्गत्यात्मक संसार-कान्तार में अनुपर्यटन करता है।

६३. फासिंदियवसट्टे णं भंते ! जीवे किं बंधइ ? किं पकरेइ ? किं चिणाइ ? किं उवचिणाइ ?

एवं चेव जाव अणुपरियट्टइ॥

स्पर्शनेन्द्रियवशार्त्तः भदन्त ! जीवः किं बध्नाति ? किं प्रकरोति ? किं चिनोति ? किम् उपचिनोति ?

एवं चैव यावत् अनुपरिवर्तते।

६३. भंते ! स्पर्शनेन्द्रिय के वश आर्त्त बना हुआ जीव क्या कर्म का बंध करता है ? क्या प्रकर्ष करता है ? किसका चय करता है ? किसका उपचय करता है ?

इस प्रकार पूर्ववत् यावत् चतुर्गत्यात्मक संसार-कान्तार में अनुपर्यटन करता है।

भाष्य

१. सूत्र ५१-६३

इन्द्रिय लोलुपता से कर्म बंधन दृढ़ होता है। इसके अतिरिक्त असात वेदनीय कर्म का बार बार उपचय होता है। इन्द्रिय लोलुपता के साथ असात वेदनीय के उपचय का संबंध बहुत विमर्शनीय है। इसका फलित यह है कि इन्द्रिय विजय और स्वास्थ्य का घनिष्ठ संबंध है। इसी प्रकार इन्द्रिय लोलुपता और रोग का भी घनिष्ठ संबंध है। तुलना के लिए देखें–भगवई १/४६-४७ तथा १२/२२-२५ का भाष्य।

शब्द-विमर्श

इंदिय वसट्टे–इन्द्रिय की परतंत्रता से पीड़ित, आर्त्त।[1]

६४. तए णं सा जयंती समणोवासिया समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं एयमट्ठं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठा सेसं जहा देवाणंदा तहेव पव्वइया जाव सव्वदुक्खप्पहीणा॥

ततः सा जयन्ती श्रमणोपासिका श्रमणस्य भगवतः महावीरस्य अन्तिकम् एतमर्थं श्रुत्वा निशम्य हृष्टतुष्टा शेषं यथा देवानन्दा तथैव प्रव्रजिता यावत् सर्वदुःखप्रहीना।

६४. वह श्रमणोपासिका जयंती श्रमण भगवान् महावीर से इस अर्थ को सुनकर, अवधारण कर हृष्ट-तुष्ट हो गई (भ.१/१५२-१५५) शेष देवानंदा की भांति वक्तव्यता, वैसे ही प्रव्रजित हो गई यावत् सब दुःखों को क्षीण कर दिया।

६५. सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति॥

तदेवं भदन्त ! तदेवं भदन्त ! इति।

६५. भंते ! वह ऐसा ही है। भंते ! वह ऐसा ही है।

---

१. भ. वृ. १२/५१-६३--श्रोत्रेन्द्रियवशेन-तत्परतन्त्र्येण ऋतः पीडितः श्रोत्रेन्द्रियवशार्त्तः श्रोत्रेन्द्रियवशं वा ऋतो-गतः श्रोत्रेन्द्रियवशार्त्तः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तइओ उद्देसो : तीसरा उद्देशक

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
पुढवी-पदं	पृथ्वी-पदम्	पथ्वी पद
६६. रायगिहे जाव एवं वयासी–कति णं भंते ! पुढवीओ पण्णत्ताओ ?	राजगृहं यावत् एवमवादीत्–कति भदन्त ! पृथिव्यः प्रज्ञप्ताः?	६६. राजगृह नाम का नगर था, यावत् गौतम स्वामी पर्युपासना करते हुए इस प्रकार बोले–भंते ! पृथ्वियां कितने प्रकार की प्रज्ञप्त हैं ?
गोयमा ! सत्त पुढवीओ पण्णत्ताओ, तं जहा–पढमा, दोच्चा जाव सत्तमा॥	गौतम ! सप्त पृथिव्यः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–प्रथमा, द्वितीया यावत् सप्तमी।	गौतम ! पृथ्वियां सात प्रकार की प्रज्ञप्त हैं, जैसे–प्रथम, द्वितीय यावत् सातवीं।
६७. पढमा णं भंते ! पुढवी किंगोत्ता पण्णत्ता ?	प्रथमा भदन्त! पृथिवी किं गोत्रा प्रज्ञप्ता?	६७. भंते ! प्रथम पृथ्वी का गौत्र क्या प्रज्ञप्त है ?
गोयमा ! घम्मा नामेणं, रयणप्पभा गोत्तेणं, एवं जहा जीवाभिगमे पढमो नेरइयउद्देसओ सो चेव निरवसेसो भाणियव्वो जाव अप्पाबहुगं ति॥	गौतम ! घर्मा नाम्ना, रत्नप्रभा गोत्रेण, एवं यथा जीवाभिगमे प्रथमः नैरयिकोद्देसकः सो चैव निरवशेषः भणितव्यः यावत् अल्पबहुकम् इति।	गौतम ! घम्मानामक प्रथम पृथ्वी का गौत्र रत्नप्रभा है। इस प्रकार जैसे जीवाभिगम (३) का प्रथम नैरयिक उद्देशक है, वह निरवशेष वक्तव्य है यावत् अल्प-बहुत्व।

भाष्य

१. सूत्र ६६-६७

द्रष्टव्य भगवई १/१११ का भाष्य।

६८. सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति॥	६८. तदेवं भदन्त! तदेवं भदन्त! इति।	६८. भंते ! वह ऐसा ही है। भंते ! वह ऐसा ही है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चउत्थो उद्देसो : चौथा उद्देशक

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
परमाणुपोग्गलाणं संघात-भेद-पदं	परमाणुपुद्गलानां संघात-भेद पदम्	परमाणु-पुद्गलों का संघात-भेद पद
६९. रायगिहे जाव एवं वयासी–दो भंते ! परमाणुपोग्गला एगयओ साहण्णंति, साहणित्ता किं भवइ ?	राजगृहं यावत् एवमवादीत्–द्वौ भदन्त! परमाणुपुद्गलौ एकतः संहन्येते, संहत्य किं भवति?	६९. राजगृह नाम का नगर यावत् गौतम स्वामी पर्युपासना करते हुए इस प्रकार बोले–भंते ! दो परमाणु-पुद्गल एकत्र संहत होते हैं, उस संहति से क्या निष्पन्न होता है ?
गोयमा ! दुपएसिए खंधे भवइ। से भिज्जमाणे दुहा कज्जइ–एगयओ परमाणुपोग्गले,एगयओ परमाणु-पोग्गले भवइ॥	गौतम! द्विप्रदेशिकः स्कन्धः भवति। सः भिद्यमानः द्विधा क्रियते–एकतः परमाणु-पुद्गलः, एकतः परमाणु-पुद्गलः भवति।	गौतम! द्विप्रदेशी स्कन्ध निष्पन्न होता है। उसके दो भागो में विभक्त होने पर दो स्वतंत्र परमाणु-पुद्गल हो जाते हैं।
७०. तिण्णि भंते ! परमाणुपोग्गला एगयओ साहण्णंति, साहणित्ता किं भवइ ?	त्रय भदन्त! परमाणुपुद्गलाः एकतः संहन्यन्ते, संहत्य किं भवति?	७०. भंते ! तीन परमाणु-पुद्गल एकत्र संहत होते हैं, उस संहति से क्या निष्पन्न होता है ?
गोयमा ! तिपएसिए खंधे भवइ। से भिज्जमाणे दुहा वि तिहा वि कज्जइ–	गौतम! त्रिप्रदेशिकः स्कन्धः भवति। सः भिद्यमानः द्विधा अपि त्रिधा अपि क्रियते–	गौतम ! तीन प्रदेशी स्कन्ध निष्पन्न होता है। वह टूटने पर दो या तीन भागों में विभक्त होता है–
दुहा कज्जमाणे एगयओ परमाणु-पोग्गले, एगयओ दुपएसिए खंधे भवइ।	द्विधा क्रियमाणः एकतः परमाणु-पुद्गलः, एकतः द्विप्रदेशिकः स्कन्धः भवति।	दो भागों में विभक्त होने पर एक ओर एक परमाणु-पुद्गल, दूसरी ओर द्विप्रदेशी स्कन्ध होता है।
तिहा कज्जमाणे तिण्णि परमाणु-पोग्गला भवंति॥	त्रिधा क्रियमाणः त्रयः परमाणुपुद्गलाः भवन्ति।	तीन भागों में विभक्त होने पर तीन स्वतंत्र परमाणु-पुद्गल हो जाते हैं।
७१. चत्तारि भंते! परमाणुपोग्गला एगयओ साहण्णंति, साहणित्ता किं भवइ ?	चत्वारः भदन्त! परमाणुपुद्गलाः एकतः संहन्यन्ते, संहत्य किं भवति?	७१. भंते! चार परमाणु-पुद्गल एकत्र संहत होते हैं उस संहति से क्या निष्पन्न होता है ?
गोयमा ! चउपएसिए खंधे भवइ। से भिज्जमाणे दुहा वि तिहा वि चउहा वि कज्जइ–	गौतम! चतुष्प्रदेशिकः स्कन्धः भवति। सः भिद्यमानः द्विधा अपि त्रिधा अपि चतुर्धा अपि क्रियते–	गौतम ! चार प्रदेशी स्कन्ध निष्पन्न होता है। वह टूटने पर दो, तीन अथवा चार भागों में विभक्त होता है।
दुहा कज्जमाणे एगयओ परमाणु-पोग्गले, एगयओ तिपएसिए खंधे भवइ, अहवा दो दुपएसिया खंधा भवंति।	द्विधा क्रियमाणः एकतः परमाणु-पुद्गलः, एकतः त्रिप्रदेशिकः स्कन्धः भवति अथवा द्वौ द्विप्रदेशिकौ स्कन्धौ भवतः।	दो भागों में विभक्त होने पर एक ओर एक परमाणु-पुद्गल, दूसरी ओर तीन प्रदेशी स्कन्ध होता है अथवा दो द्विप्रदेशी स्कन्ध होते हैं।
तिहा कज्जमाणे एगयओ दो परमाणु-पोग्गला, एगयओ दुपएसिए खंधे भवइ।	त्रिधा क्रियमाणः एकतः द्वौ परमाणु-पुद्गलौ, एकतः द्विप्रदेशिकः स्कन्धः भवति।	तीन भागों में विभक्त होने पर–एक ओर स्वतंत्र दो परमाणु-पुद्गल, दूसरी ओर द्विप्रदेशी स्कन्ध होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चउहा कज्जमाणे चत्तारि परमाणु-पोग्गला भवंति॥

चतुर्धा क्रियमाणः चत्वारः परमाणु-पुद्गलाः भवन्ति।

चार भागों में विभक्त होने पर–चार स्वतंत्र परमाणु-पुद्गल हो जाते हैं।

७२. पंच भंते ! परमाणुपोग्गला एगयओ साहण्णंति, साहणित्ता किं भवइ ?

पञ्च भदन्त! परमाणुपुद्गलाः एकतः संहन्यन्ते, संहत्य किं भवति?

७२. भंते ! पांच परमाणु-पुद्गल एकत्र संहत होते हैं, उस संहति से क्या निष्पन्न होता है?

गोयमा ! पंचपएसिए खंधे भवइ। से भिज्जमाणे दुहा वि तिहा वि चउहा वि पंचहा वि कज्जइ–

गौतम! पञ्चप्रदेशिकः स्कन्धः भवति। सः भिद्यमानः द्विधा अपि त्रिधा अपि चतुर्धा अपि पञ्चधा अपि क्रियते–

गौतम ! पांच प्रदेशी स्कन्ध निष्पन्न होता है। वह टूटने पर दो, तीन, चार अथवा पांच भागों में विभक्त होता है–

दुहा कज्जमाणे एगयओ परमाणु-पोग्गले, एगयओ चउपएसिए खंधे भवइ; अहवा एगयओ दुपएसिए खंधे, एगयओ तिपएसिए खंधे भवइ।

द्विधा क्रियमाणः एकतः परमाणु-पुद्गलः, एकतः चतुष्प्रदेशिकः स्कन्धः भवति, अथवा एकतः द्विप्रदेशिकः स्कन्धः भवति, एकतः त्रिप्रदेशिकः स्कन्धः भवति।

दो भागों में विभक्त होने पर–एक ओर एक परमाणु-पुद्गल दूसरी ओर चतुष्प्रदेशी स्कंध होता है अथवा एक ओर द्विप्रदेशी स्कंध, दूसरी ओर त्रिप्रदेशी स्कंध होता है।

तिहा कुज्जमाणे एगयओ, दो परमाणुपोग्गला एगयओ तिपएसिए खंधे भवइ, अहवा एगयओ परमाणु-पोग्गले, एगयओ दो दुपएसिया खंधा भवंति।

त्रिधा क्रियमाणः एकतः द्वौ परमाणु पुद्गलौ एकतः त्रिप्रदेशिकः स्कन्धः भवति, अथवा एकतः परमाणुपुद्गल, एकतः द्वौ द्विप्रदेशिकौ स्कन्धौ भवतः।

तीन भागों में विभक्त होने पर–एक ओर दो स्वतंत्र परमाणु-पुद्गल दूसरी ओर त्रिप्रदेशी स्कंध होता है अथवा एक ओर एक स्वतंत्र परमाणु-पुद्गल, दूसरी ओर दो द्विप्रदेशी स्कंध होते हैं।

चउहा कज्जमाणे एगयओ तिण्णि परमाणुपोग्गला, एगयओ दुपएसिए खंधे भवइ।

चतुर्धा क्रियमाणः एकतः त्रयः परमाणु-पुद्गलाः, एकतः द्विप्रदेशिकः स्कन्धः भवति।

चार भागों में विभक्त होने पर–एक ओर तीन स्वतंत्र परमाणु-पुद्गल, दूसरी ओर द्विप्रदेशी स्कंध होता है।

पंचहा कज्जमाणे पंच परमाणु-पोग्गला भवंति॥

पञ्चधा क्रियमाणः पञ्च परमाणु-पुद्गलाः भवन्ति।

पांच भागों में विभक्त होने पर पांच स्वतंत्र परमाणु-पुद्गल हो जाते हैं।

७३. छब्भंते ! परमाणुपोग्गला एगयओ साहण्णंति, साहणित्ता किं भवइ ?

षट् भदन्त! परमाणुपुद्गलाः एकतः संहन्यन्ते, संहत्य किं भवति?

७३. भंते ! छह परमाणु-पुद्गल एकत्र संहत होते हैं, उस संहति से क्या निष्पन्न होता है?

गोयमा छप्पएसिए खंधे भवइ। से भिज्जमाणे दुहा वि तिहा वि जाव छव्विहा वि कज्जइ–

गौतम! षड् प्रदेशिकः स्कन्धः भवति। सः भिद्यमानः द्विधा अपि त्रिधा अपि यावत् षड्विधा अपि क्रियते–

गौतम ! छह प्रदेशी स्कन्ध निष्पन्न होता है। वह टूटने पर दो अथवा तीन यावत् छः भागों में विभक्त होता है–

दुहा कज्जमाणे एगयओ परमाणु-पोग्गले, एगयओ पंचपएसिए खंधे भवइ; अहवा एगयओ दुपएसिए खंधे, एगयओ चउपएसिए खंधे भवइ; अहवा दो तिपएसिया खंधा भवंति।

द्विधा क्रियमाणः एकतः परमाणु-पुद्गलः, एकतः पञ्चप्रदेशिकः स्कन्धः भवति, अथवा एकतः द्विप्रदेशिकः स्कन्धः, एकतः चतुष्प्रदेशिकः स्कन्धः भवति, अथवा द्वौ त्रिप्रदेशिकौ स्कन्धौ भवतः।

दो भागों में विभक्त होने पर–एक ओर एक स्वतंत्र परमाणु-पुद्गल, दूसरी ओर पांच प्रदेशी स्कन्ध होता है अथवा एक ओर द्विप्रदेशी स्कन्ध, दूसरी ओर चार प्रदेशी स्कन्ध होता है अथवा दो तीन-तीन प्रदेशी स्कन्ध होते हैं।

तिहा कज्जमाणे एगयओ दो परमाणु पोग्गला, एगयओ चउपएसिए खंधे भवइ; अहवा एगयओ परमाणु-पोग्गले, एगयओ दुपएसिए खंधे, एगयओ तिपएसिए खंधे भवइ; अहवा तिण्णि दुपएसिया खंधा भवंति।

त्रिधा क्रियमाणः एकत द्वौ परमाणु-पुद्गलौ, एकतः चतुष्प्रदेशिकः स्कन्धः भवति, अथवा एकतः परमाणुपुद्गलः, एकतः द्विप्रदेशिकः स्कन्धः, एकतः त्रिप्रदेशिकः स्कन्धः भवति, अथवा त्रयः द्विप्रदेशिकाः स्कन्धाः भवन्तिः।

तीन भागों में विभक्त होने पर–एक ओर दो स्वतंत्र परमाणु-पुद्गल, दूसरी ओर चतुष्प्रदेशी स्कन्ध होता है अथवा एक ओर एक स्वतंत्र परमाणु-पुद्गल, दूसरी ओर द्विप्रदेशी स्कन्ध, तीसरी ओर तीन प्रदेशी स्कन्ध होता है अथवा तीन द्विप्रदेशी स्कन्ध होते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चउहा कज्जमाणे एगयओ तिण्णि परमाणुपोग्गला, एगयओ तिपएसिए खंधे भवइ; अहवा एगयओ दो परमाणुपोग्गला, एगयओ दो दुपएसिया खंधा भवंति।

पंचहा कज्जमाणे एगयओ चत्तारि परमाणुपोग्गला, एगयओ दुपएसिए खंधे भवइ।

छहा कज्जमाणे छ परमाणुपोग्गला भवंति॥

चतुर्धा क्रियमाणः एकतः त्रयः परमाणुपुद्गलाः, एकतः त्रिप्रदेशिकः स्कन्धः भवति, अथवा एकतः द्वौ परमाणुपुद्गलौ, एकतः द्वौ द्विप्रदेशिकौ स्कन्धौ भवतः।

पञ्चधा क्रियमाणः एकतः चत्वारः परमाणुपुद्गलाः एकतः द्विप्रदेशिकः स्कन्धः भवति।

षड्धा क्रियमाणः षट् परमाणुपुद्गलाः भवन्ति।

चार भागों में विभक्त होने पर–एक ओर तीन स्वतंत्र परमाणु-पुद्गल, दूसरी ओर त्रिप्रदेशी स्कन्ध होता है अथवा एक ओर दो स्वतंत्र परमाणु-पुद्गल, दूसरी ओर दो द्विप्रदेशी स्कन्ध होते हैं।

पांच भागों में विभक्त होने पर–एक ओर चार स्वतंत्र परमाणु-पुद्गल, दूसरी ओर एक द्विप्रदेशी स्कन्ध होता है।

छह भागों में विभक्त होने पर–छह स्वतंत्र परमाणु-पुद्गल हो जाते हैं।

७४. सत्त भंते ! परमाणुपोग्गला एगयओ साहण्णंति, साहणित्ता किं भवइ ?

गोयमा ! सत्तपएसिए खंधे भवइ। से भिज्जमाणे दुहा वि जाव सत्तहा वि कज्जइ–

दुहा कज्जमाणे एगयओ परमाणुपोग्गले, एगयओ छप्पएसिए खंधे भवइ; अहवा एगयओ दुपएसिए खंधे, एगयओ पंचपएसिए खंधे भवइ; अहवा एगयओ तिपएसिए खंधे, एगयओ चउपएसिए खंधे भवइ।

तिहा कज्जमाणे एगयओ दो परमाणुपोग्गला, एगयओ पंचपएसिए खंधे भवइ; अहवा एगयओ परमाणुपोग्गले, एगयओ दुपएसिए खंधे, एगयओ चउपएसिए खंधे भवइ; अहवा एगयओ परमाणुपोग्गले, एगयओ दो तिपएसिया खंधा भवंति; अहवा एगयओ दो दुपएसिया खंधा, एगयओ तिपएसिए खंधे भवइ।

चउहा कज्जमाणे एगयओ तिण्णि परमाणुपोग्गला, एगयओ चउपएसिए खंधे भवइ; अहवा एगयओ दो परमाणुपोग्गला, एगयओ दुपएसिए खंधे, एगयओ तिपएसिए खंधे भवइ; अहवा एगयओ परमाणुपोग्गले, एगयओ तिण्णि दुपएसिया खंधा भवंति।

पंचहा कज्जमाणे एगयओ चत्तारि परमाणुपोग्गला, एगयओ तिपएसिए खंधे भवइ; अहवा एगयओ तिण्णि परमाणुपोग्गला, एगयओ दो दुपए-

सप्त भदन्त ! परमाणुपुद्गलाः एकतः संहन्यन्ते, संहत्य किं भवति ?

गौतम! सप्तप्रदेशिकः स्कन्धः भवति। सः भिद्यमानः द्विधा अपि यावत् सप्तधा अपि क्रियते–

द्विधा क्रियमाणः एकतः परमाणुपुद्गलः, एकतः षट्प्रदेशिकः स्कन्धः भवति, अथवा एकतः द्विप्रदेशिकः स्कन्धः, एकतः पञ्चप्रदेशिकः स्कन्धः भवति, अथवा एकतः त्रिप्रदेशिकः स्कन्धः, एकतः चतुष्प्रदेशिकः स्कन्धः भवति।

त्रिधा क्रियमाणः एकतः द्वौ परमाणुपुद्गलौ, एकतः पञ्चप्रदेशिकः स्कन्धः भवति, अथवा एकतः परमाणुपुद्गलः, एकतः द्विप्रदेशिकः स्कन्धः, एकतः चतुष्प्रदेशिकः स्कन्धः भवति, अथवा एकतः परमाणुपुद्गलः, एकतः द्वौ त्रिप्रदेशिकौ स्कन्धौ भवतः अथवा एकतः द्वौ द्विप्रदेशिकौ स्कन्धौ, एकतः त्रिप्रदेशिकः स्कन्धः भवति।

चतुर्धा क्रियमाणः एकतः त्रयः परमाणुपुद्गलाः, एकतः चतुष्प्रदेशिकः स्कन्धः भवति, अथवा एकतः द्वौ परमाणुपुद्गलौ, एकतः द्विप्रदेशिकः स्कन्धः, एकतः त्रिप्रदेशिकः स्कन्धः भवति, अथवा एकतः परमाणुपुद्गलः, एकतः त्रयः द्विप्रदेशिकाः स्कन्धाः भवन्ति।

पञ्चधा क्रियमाणः एकतः चत्वारः परमाणुपुद्गलाः, एकतः त्रिप्रदेशिकः स्कन्धः भवति, अथवा एकतः त्रयः परमाणुपुद्गलाः, एकतः द्वौ द्विप्रदेशिकौ

७४. भंते! सात परमाणु-पुद्गल एकत्र संहत होते हैं, उस संहति से क्या निष्पन्न होता है।

गौतम! सप्त प्रदेशी स्कंध निष्पन्न होता है। वह टूटने पर दो अथवा यावत् सप्त भागों में विभक्त होता है।

दो भागों में विभक्त होने पर–एक ओर एक स्वतंत्र परमाणु-पुद्गल दूसरी ओर छह प्रदेशी स्कंध होता है अथवा एक ओर द्विप्रदेशी स्कंध, दूसरी ओर पांच प्रदेशी स्कंध होता है अथवा एक ओर त्रिप्रदेशी स्कंध, दूसरी ओर चतुष्प्रदेशी स्कंध होता है।

तीन भागों में विभक्त होने पर–एक ओर दो स्वतंत्र परमाणु-पुद्गल दूसरी ओर पांच प्रदेशी स्कंध होता है, अथवा एक ओर एक स्वतंत्र परमाणु-पुद्गल, दूसरी ओर द्विप्रदेशी स्कंध, तीसरी ओर चतुष्प्रदेशी स्कंध होता है अथवा एक ओर एक स्वतंत्र परमाणु-पुद्गल, दूसरी ओर दो त्रिप्रदेशी स्कंध होते हैं अथवा एक ओर दो द्विप्रदेशी स्कंध, दूसरी ओर त्रिप्रदेशी स्कंध होता है।

चार भागों में विभक्त होने पर–एक ओर तीन स्वतंत्र परमाणु-पुद्गल, दूसरी ओर चार प्रदेशी स्कंध होता है अथवा एक ओर दो स्वतंत्र परमाणु-पुद्गल, दूसरी ओर द्विप्रदेशी स्कंध, तीसरी ओर त्रिप्रदेशी स्कंध होता है अथवा एक ओर एक स्वतंत्र परमाणु-पुद्गल, दूसरी ओर तीन द्विप्रदेशी स्कन्ध होते हैं।

पांच भागों में विभक्त होने पर–एक ओर चार स्वतंत्र परमाणु-पुद्गल, दूसरी ओर त्रिप्रदेशी स्कंध होता है अथवा एक ओर तीन स्वतंत्र परमाणु-पुद्गल दूसरी ओर दो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सिया खंधा भवंति।
छहा कज्जमाणे एगयओ पंच परमाणुपोग्गला, एगयओ दुपएसिए खंधे भवइ।
सत्तहा कज्जमाणे सत्त परमाणुपोग्गला भवंति॥

स्कन्धौ भवतः।
षड्ढा क्रियमाणः एकतः पञ्च परमाणुपुद्गलाः, एकतः द्विप्रदेशिकः स्कन्धः भवति।
सप्तधा क्रियमाणः सप्तपरमाणुपुद्गलाः भवन्ति।

द्विप्रदेशी स्कंध होते हैं।
छह भागों में विभक्त होने पर–एक ओर पांच स्वतंत्र परमाणु-पुद्गल, दूसरी ओर द्विप्रदेशी स्कंध होता है।
सात भागों में विभक्त होने पर सात स्वतंत्र परमाणु-पुद्गल हो जाते हैं।

७५. अट्ठ भंते ! परमाणुपोग्गला एगयओ साहण्णंति, साहणित्ता किं भवइ ?

अष्ट भदन्त! परमाणुपुद्गलाः एकतः संहन्यन्ते, संहत्य किं भवति?

७५. भंते ! आठ परमाणु-पुद्गल एकत्र संहत होते हैं, उस संहति से क्या निष्पन्न होता है?

गोयमा ! अट्ठपएसिए खंधे भवइ। से भिज्जमाणे दुहा वि जाव अट्ठहा वि कज्जइ–
दुहा कज्जमाणे एगयओ परमाणुपोग्गले, एगयओ सत्तपएसिए खंधे भवइ; अहवा एगयओ दुपएसिए खंधे, एगयओ छप्पएसिए खंधे भवइ; अहवा एगयओ तिपएसिए खंधे, एगयओ पंचपएसिए खंधे भवइ; अहवा दो चउप्पएसिया खंधा भवंति।

गौतम! अष्टप्रदेशिकः स्कन्धः भवति। सः भिद्यमानः द्विधा अपि यावत् अष्टधा अपि क्रियते–
द्विधा क्रियमाणः एकतः परमाणुपुद्गलः, एकतः सप्तप्रदेशिकः स्कन्धः भवति, अथवा एकतः द्विप्रदेशिकः स्कन्धः, एकतः षट्प्रदेशिकः स्कन्धः भवति, अथवा एकतः त्रिप्रदेशिकः स्कन्धः, एकतः पञ्चप्रदेशिकः स्कन्धः भवति, अथवा द्वौ चतुष्प्रदेशिकौ स्कन्धौ भवतः।

गौतम ! अष्टप्रदेशी स्कन्ध निष्पन्न होता है। वह टूटने पर दो अथवा यावत् आठ भागों में विभक्त होता है–
दो भागों में विभक्त होने पर–एक ओर एक स्वतंत्र परमाणु-पुद्गल, दूसरी ओर सात प्रदेशी स्कंध होता है अथवा एक ओर द्विप्रदेशी स्कंध, दूसरी ओर छह प्रदेशी स्कंध होता है अथवा एक ओर तीन प्रदेशी स्कंध, दूसरी ओर पांच प्रदेशी स्कंध होता है अथवा दो चतुष्प्रदेशी स्कंध होते हैं।

तिहा कज्जमाणे एगयओ दो परमाणुपोग्गला भवंति, एगयओ छप्पएसिए खंधे भवइ; अहवा एगयओ परमाणुपोग्गले, एगयओ दुपएसिए खंधे, एगयओ पंचपएसिए खंधे भवइ; अहवा एगयओ परमाणुपोग्गले, एगयओ तिपएसिए खंधे, एगयओ चउप्पएसिए खंधे भवइ; अहवा एगयओ दो दुपएसिया खंधा, एगयओ चउप्पएसिए खंधे भवइ; अहवा एगयओ दुपएसिए खंधे एगयओ दो तिपएसिया खंधा भवंति।

त्रिधा क्रियमाणः एकतः द्वौ परमाणुपुद्गलौ भवतः, एकतः षट्प्रदेशिकः स्कन्धः भवति, अथवा एकतः परमाणुपुद्गलः, एकतः द्विप्रदेशिकः स्कन्धः, एकतः पञ्चप्रदेशिकः स्कन्धः भवति, अथवा एकतः परमाणुपुद्गलः, एकतः त्रिप्रदेशिकः स्कन्धः, एकतः चतुष्प्रदेशिकः स्कन्धः भवति, अथवा एकतः द्विप्रदेशिकः स्कन्धः, एकतः द्वौ त्रिप्रदेशिकौ स्कन्धौ भवतः।

तीन भागों में विभक्त होने पर–एक ओर दो स्वतंत्र परमाणु-पुद्गल, दूसरी ओर छह प्रदेशी स्कंध होता है अथवा एक ओर एक स्वतंत्र परमाणु-पुद्गल, दूसरी ओर द्विप्रदेशी स्कन्ध, तीसरी ओर पंचप्रदेशी स्कंध होता है अथवा एक ओर एक स्वतंत्र परमाणु-पुद्गल, दूसरी ओर त्रिप्रदेशी स्कन्ध, तीसरी ओर चतुष्प्रदेशी स्कंध होता है अथवा एक ओर दो द्विप्रदेशी स्कन्ध, दूसरी ओर चतुष्प्रदेशी स्कंध होता है अथवा एक ओर द्विप्रदेशी स्कंध, दूसरी ओर दो त्रिप्रदेशी स्कंध होते हैं।

चउहा कज्जमाणे एगयओ तिण्णि परमाणुपोग्गला, एगयओ पंचपएसिए खंधे भवइ; अहवा एगयओ दोण्णि परमाणुपोग्गला, एगयओ दुपएसिए खंधे, एगयओ चउप्पएसिए खंधे भवइ; अहवा एगयओ दो परमाणुपोग्गला एगयओ दो तिपएसिया खंधा भवंति; अहवा एगयओ परमाणुपोग्गले, एगयओ दो दुपएसिया खंधा, एगयओ तिपएसिए खंधे भवइ; अहवा चत्तारि दुपएसिया

चतुर्धा क्रियमाणः एकतः त्रयः परमाणुपुद्गलाः, एकतः पञ्चप्रदेशिकः स्कन्धः भवति, अथवा एकतः द्वौ परमाणुपुद्गलौ, एकतः द्विप्रदेशिकः स्कन्धः, एकतः चतुष्प्रदेशिकः स्कन्धः भवति, अथवा एकतः द्वौ परमाणुपुद्गलौ, एकतः द्वौ त्रिप्रदेशिकौ स्कन्धौ भवतः, अथवा एकतः परमाणुपुद्गलः एकतः द्वौ द्विप्रदेशिकौ स्कन्धौ भवतः, अथवा एकतः परमाणुपुद्गलः एकतः द्वौ द्विप्रदेशिकौ स्कन्धौ, एकतः

चार भागों में विभक्त होने पर–एक ओर तीन स्वतंत्र परमाणु-पुद्गल, दूसरी ओर पांच प्रदेशी स्कंध होता है अथवा एक ओर दो स्वतंत्र परमाणु-पुद्गल, दूसरी ओर द्विप्रदेशी स्कंध, तीसरी ओर चतुष्प्रदेशी स्कंध होता है अथवा एक ओर दो स्वतंत्र परमाणु-पुद्गल, दूसरी ओर दो त्रिप्रदेशी स्कंध होते हैं अथवा एक ओर एक स्वतंत्र परमाणु-पुद्गल, दूसरी ओर द्विप्रदेशी स्कंध, तीसरी ओर त्रिप्रदेशी स्कंध होता है अथवा चार द्विप्रदेशी स्कंध होते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

खंधा भवंति।

पंचहा कज्जमाणे एगयओ चत्तारि परमाणुपोग्गला, एगयओ चउप्पएसिए खंधे भवइ; अहवा एगयओ तिण्णि परमाणुपोग्गला, एगयओ दुपएसिए खंधे, एगयओ तिपएसिए खंधे भवइ; अहवा एगयओ दो परमाणुपोग्गला, एगयओ तिण्णि दुपएसिया खंधा भवंति।

छहा कज्जमाणे एगयओ पंच परमाणुपोग्गला, एगयओ तिपएसिए खंधे भवइ; अहवा एगयओ चत्तारि परमाणुपोग्गला, दो दुपएसिया खंधा भवंति।

सत्तहा कज्जमाणे एगयओ छ परमाणुपोग्गला, एगयओ दुपएसिए खंधे भवइ।

अट्ठहा कज्जमाणे अट्ठ परमाणुपोग्गला भवंति॥

त्रिप्रदेशिकः स्कन्धः भवति, अथवा चत्वारः द्विप्रदेशिकाः स्कन्धाः भवति।

पञ्चधा क्रियमाणः एकतः चत्वारः परमाणुपुद्गलाः, एकतः चतुःप्रदेशिकः स्कन्धः भवति, अथवा एकतः त्रयः परमाणुपुद्गलाः एकतः द्विप्रदेशिकः स्कन्धः, एकतः त्रिप्रदेशिकः स्कन्धः भवति, अथवा एकतः द्वौ परमाणुपुद्गलौ, एकतः त्रयः द्विप्रदेशिकाः स्कन्धाः भवन्ति।

षड्धा क्रियमाणः एकतः पञ्च परमाणुपुद्गलाः, एकतः त्रिप्रदेशिकः स्कन्धः भवति, अथवा एकतः चत्वारः परमाणुपुद्गलाः, द्वौ द्विप्रदेशिकौ स्कन्धौ भवतः।

सप्तधा क्रियमाणः एकतः षट् परमाणुपुद्गलाः, एकतः द्विप्रदेशिकः स्कन्धः भवति।

अष्टधा क्रियमाणः अष्ट परमाणुपुद्गलाः भवन्ति।

पांच भागों में विभक्त होने पर–एक ओर चार स्वतंत्र परमाणु-पुद्गल, दूसरी ओर चतुष्प्रदेशी स्कन्ध होता है अथवा एक ओर तीन स्वतंत्र परमाणु-पुद्गल, दूसरी ओर द्विप्रदेशी स्कंध, तीसरी ओर त्रिप्रदेशी स्कन्ध होता है अथवा एक ओर दो स्वतंत्र परमाणु-पुद्गल, दूसरी ओर तीन द्विप्रदेशी स्कंध होते हैं।

छह भागों में विभक्त होने पर–एक ओर पांच स्वतंत्र परमाणु-पुद्गल, दूसरी ओर त्रिप्रदेशी स्कंध होता है अथवा एक ओर चार स्वतंत्र परमाणु-पुद्गल, दूसरी ओर दो द्विप्रदेशी स्कन्ध होते हैं।

सात भागों में विभक्त होने पर–एक ओर छह परमाणु-पुद्गल, दूसरी ओर द्विप्रदेशी स्कंध होता है।

आठ भागों में विभक्त होने पर आठ स्वतंत्र परमाणु-पुद्गल हो जाते हैं।

७६. नव भंते ! परमाणुपोग्गला एगयओ साहण्णंति, साहणित्ता किं भवइ ?
गोयमा ! नवपएसिए खंधे भवइ। से भिज्जमाणे दुहा वि जाव नवहा वि कज्जइ–

दुहा कज्जमाणे एगयओ परमाणुपोग्गले, एगयओ अट्ठपएसिए खंधे भवइ; अहवा एगयओ दुपएसिए खंधे, एगयओ सत्तपएसिए खंधे भवइ; अहवा एगयओ तिपएसिए खंधे, एगयओ छप्पएसिए खंधे भवइ; अहवा एगयओ चउप्पएसिए खंधे, एगयओ पंचपएसिए खंधे भवइ।

तिहा कज्जमाणे एगयओ दो परमाणुपोग्गला, एगयओ सत्तपएसिए खंधे भवइ; अहवा एगयओ परमाणुपोग्गले, एगयओ दुपएसिए, खंधे, एगयओ छप्पएसिए खंधे भवइ; अहवा एगयओ परमाणुपोग्गले, एगयओ तिपएसिए खंधे, एगयओ पंचपएसिए खंधे भवइ; अहवा एगयओ परमाणुपोग्गले, एगयओ दो

नव भदन्त! परमाणुपुद्गलाः एकतः संहन्यन्ते, संहत्य किं भवति?
गौतम! नवप्रदेशिकः स्कन्धः भवति। सः भिद्यमानः द्विधा अपि यावत् नवधा अपि क्रियते–

द्विधा क्रियमाणः एकतः परमाणुपुद्गलः, एकतः अष्टप्रदेशिकः स्कन्धः भवति, अथवा एकतः द्विप्रदेशिकः स्कन्धः, एकतः सप्तप्रदेशिकः स्कन्धः भवति, अथवा एकतः त्रिप्रदेशिकः स्कन्धः, एकतः षट्प्रदेशिकः स्कन्धः भवति, अथवा एकतः चतुष्प्रदेशिकः स्कन्धः, एकतः पञ्चप्रदेशिकः स्कन्धः भवति।

त्रिधा क्रियमाणः एकतः द्वौ परमाणुपुद्गलौ, एकतः सप्तप्रदेशिकः स्कन्धः भवति, अथवा एकतः परमाणुपुद्गलः एकतः द्विप्रदेशिकः स्कन्धः, एकतः षट्प्रदेशिकः स्कन्धः भवति, अथवा एकतः परमाणुपुद्गलः, एकतः त्रिप्रदेशिकः स्कन्धः, एकतः पञ्चप्रदेशिकः स्कन्धः भवति, अथवा एकतः परमाणुपुद्गलः, एकतः द्वौ

७६. भंते ! नौ परमाणु-पुद्गल एकत्र संहत होते हैं, उस संहति से क्या निष्पन्न होता है ?
गौतम ! नौ प्रदेशी स्कंध निष्पन्न होता है। वह टूटने पर दो यावत् नौ भागों में विभक्त होता है–

दो भागों में विभक्त होने पर–एक ओर एक स्वतंत्र परमाणु-पुद्गल, दूसरी ओर आठ प्रदेशी स्कंध होता है अथवा एक ओर द्विप्रदेशी स्कंध, दूसरी ओर सातप्रदेशी स्कंध होता है अथवा एक ओर त्रिप्रदेशी स्कंध, दूसरी ओर छहप्रदेशी स्कंध होता है अथवा एक ओर चतुष्प्रदेशी स्कंध, दूसरी ओर पांच प्रदेशी स्कन्ध होता है।

तीन भागों में विभक्त होने पर–एक ओर दो स्वतंत्र परमाणु-पुद्गल, दूसरी ओर सात प्रदेशी स्कंध होता है अथवा एक ओर एक स्वतंत्र परमाणु-पुद्गल, दूसरी ओर द्विप्रदेशी स्कंध, तीसरी ओर छहप्रदेशी स्कंध होता है अथवा एक ओर एक स्वतंत्र परमाणु-पुद्गल, दूसरी ओर त्रिप्रदेशी स्कंध, तीसरी ओर पांच प्रदेशी स्कंध होता है, अथवा एक ओर एक स्वतंत्र परमाणु-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चउप्पएसिया खंधा भवंति; अहवा एगयओ दुपएसिए खंधे, एगयओ तिपएसिए खंधे, एगयओ चउप्पएसिए खंधे भवइ; अहवा तिण्णि तिपएसिया खंधा भवंति।

चउहा कज्जमाणे एगयओ तिण्णि परमाणुपोग्गला, एगयओ छप्पएसिए खंधे भवइ; अहवा एगयओ दो परमाणुपोग्गला, एगयओ दुपएसिए खंधे, एगयओ पंचपएसिए खंधे भवइ; अहवा एगयओ दो परमाणुपोग्गला, एगयओ तिपएसिए खंधे, एगयओ चउप्पएसिए खंधे भवइ; अहवा एगयओ परमाणुपोग्गले, एगयओ दो दुपएसिया खंधा, एगयओ चउप्पएसिए खंधे भवइ; अहवा एगयओ परमाणुपोग्गले, एगयओ दुपएसिए खंधे, एगयओ दो तिपएसिया खंधा भवंति; अहवा एगयओ तिण्णि दुप्पएसिया खंधा, एगयओ तिपएसिए खंधे भवइ।

पंचहा कज्जमाणे एगयओ चत्तारि परमाणुपोग्गला,एगयओ पंचपएसिए खंधे भवइ; अहवा एगयओ तिण्णि परमाणुपोग्गला, एगयओ दुपएसिए खंधे, एगयओ चउप्पएसिए खंधे भवइ; अहवा एगयओ तिण्णि परमाणुपोग्गला, एगयओ दो तिपएसिया खंधा भवंति; अहवा एगयओ दो परमाणुपोग्गला, एगयओ दो दुपएसिया खंधा, एगयओ तिपएसिए खंधे भवइ; अहवा एगयओ परमाणुपोग्गले, एगयओ चत्तारि दुपएसिया खंधा भवंति।

छहा कज्जमाणे एगयओ पंच परमाणुपोग्गला, एगयओ चउप्पएसिए खंधे भवइ; अहवा एगयओ चत्तारि परमाणुपोग्गला, एगयओ दुप्पएसिए खंधे, एगयओ तिपएसिए खंधे भवइ; अहवा एगयओ तिण्णि परमाणु-पोग्गला, एगयओ तिण्णि दुप्पएसिया खंधा भवंति।

सत्तहा कज्जमाणे एगयओ छ परमाणुपोग्गला, एगयओ तिप्पएसिए

चतुष्प्रदेशिकौ स्कन्धौ भवतः, अथवा एकतः द्विप्रदेशिकः स्कन्धः, एकतः त्रिप्रदेशिकः स्कन्धः, एकतः चतुष्प्रदेशिकः स्कन्धः भवति, अथवा त्रयः त्रिप्रदेशिकाः स्कन्धाः भवन्ति।

चतुर्धा क्रियमाणः एकतः त्रयः परमाणुपुद्गलाः, एकतः षट्प्रदेशिकः स्कन्धः भवति, अथवा एकतः द्वौ परमाणुपुद्गलौ, एकतः द्विप्रदेशिकः स्कन्धः, एकतः पञ्चप्रदेशिकः स्कन्धः भवति, अथवा एकतः द्वौ परमाणुपुद्गलौ, एकतः त्रिप्रदेशिकः स्कन्धः, एकतः चतुष्प्रदेशिकः स्कन्धः भवति, अथवा एकतः परमाणुपुद्गलः, एकतः द्वौ द्विप्रदेशिकौ स्कन्धौ, एकतः चतुष्प्रदेशिकः स्कन्धः भवति, अथवा एकतः परमाणुपुद्गलः, एकतः द्विप्रदेशिकः स्कन्धः, एकतः द्वौ त्रिप्रदेशिकौ स्कन्धौ भवतः अथवा एकतः त्रयः द्विप्रदेशिकाः स्कन्धाः एकतः त्रिप्रदेशिकः स्कन्धः भवति।

पञ्चधा क्रियमाणः एकतः चत्वारः परमाणुपुद्गलाः, एकतः पञ्चप्रदेशिकः स्कन्धः भवति अथवा एकतः त्रयः परमाणुपुद्गलाः, एकतः द्विप्रदेशिकः स्कन्धः, एकतः चतुष्प्रदेशिकः स्कन्धः भवति अथवा एकतः त्रयः परमाणु-पुद्गलाः, एकतः द्वौ त्रिप्रदेशिकौ स्कन्धौ भवतः, अथवा एकतः द्वौ परमाणुपुद्गलौ, एकतः द्वौ द्विप्रदेशिकौ स्कन्धौ, एकतः त्रिप्रदेशिकः स्कन्धः भवति, अथवा एकतः परमाणुपुद्गलः, एकतः चत्वारः द्विप्रदेशिकाः स्कन्धाः भवन्ति।

षड्धा क्रियमाणः एकतः पञ्चपरमाणु-पुद्गलाः, एकतः चतुष्प्रदेशिकः स्कन्धः भवति, अथवा एकतः चत्वारः परमाणु-पुद्गलाः, एकतः द्विप्रदेशिकः स्कन्धः, एकतः त्रिप्रदेशिकः स्कन्धः भवति अथवा एकतः त्रयः परमाणुपुद्गलाः, एकतः त्रयः द्विप्रदेशिकाः स्कन्धाः भवन्ति।

सप्तधा क्रियमाणः एकतः षट् परमाणुपुद्गलाः, एकतः त्रिप्रदेशिकः

पुद्गल, दूसरी ओर दो चतुष्प्रदेशी स्कंध होते हैं, अथवा एक ओर द्विप्रदेशी स्कंध, दूसरी ओर त्रिप्रदेशी स्कंध, तीसरी ओर चतुष्प्रदेशी स्कंध होता है अथवा तीन त्रिप्रदेशी स्कंध होते हैं।

चार भागों में विभक्त होने पर–एक ओर तीन स्वतंत्र परमाणु-पुद्गल, दूसरी ओर छह प्रदेशी स्कंध होता है अथवा एक ओर दो स्वतंत्र परमाणु-पुद्गल, दूसरी ओर द्विप्रदेशी स्कंध, तीसरी ओर पांच प्रदेशी स्कंध होता है अथवा एक ओर दो स्वतंत्र परमाणु-पुद्गल, दूसरी ओर त्रिप्रदेशी स्कंध, तीसरी ओर चतुष्प्रदेशी स्कंध होता है अथवा एक ओर एक स्वतंत्र परमाणु-पुद्गल, दूसरी ओर दो द्विप्रदेशी स्कंध, तीसरी ओर चतुष्प्रदेशी स्कंध होता है अथवा एक ओर एक स्वतंत्र परमाणु-पुद्गल, दूसरी ओर द्विप्रदेशी स्कंध, तीसरी ओर दो त्रिप्रदेशी स्कंध होते हैं अथवा एक ओर तीन द्विप्रदेशी स्कंध, दूसरी ओर तीन प्रदेशी स्कंध होता है।

पांच भागों में विभक्त होने पर–एक ओर चार स्वतंत्र परमाणु-पुद्गल, दूसरी ओर पांच प्रदेशी स्कंध होता है अथवा एक ओर तीन स्वतंत्र परमाणु-पुद्गल, दूसरी ओर द्विप्रदेशी स्कंध, तीसरी ओर चतुष्प्रदेशी स्कंध होता है अथवा एक ओर तीन स्वतंत्र परमाणु-पुद्गल, दूसरी ओर दो त्रिप्रदेशी स्कंध होते हैं अथवा एक ओर दो स्वतंत्र परमाणु-पुद्गल, दूसरी ओर दो द्विप्रदेशी स्कंध, तीसरी ओर त्रिप्रदेशी स्कंध होता है अथवा एक ओर एक स्वतंत्र परमाणु-पुद्गल, दूसरी ओर चार द्विप्रदेशी स्कंध होते हैं।

छह भागों में विभक्त होने पर–एक ओर पांच स्वतंत्र परमाणु-पुद्गल, दूसरी ओर चार प्रदेशी स्कंध होता है अथवा एक ओर चार स्वतंत्र परमाणु-पुद्गल, दूसरी ओर द्विप्रदेशी स्कंध, तीसरी ओर त्रिप्रदेशी स्कंध होता है, अथवा एक ओर तीन स्वतंत्र परमाणु-पुद्गल, दूसरी ओर तीन द्विप्रदेशी स्कंध होते हैं।

सात भागों में विभक्त होने पर–एक ओर छह स्वतंत्र परमाणु-पुद्गल, दूसरी ओर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

खंधे भवइ; अहवा एगयओ पंच परमाणुपोग्गला, एगयओ दो दुपएसिया खंधा भवंति।
अट्ठहा कज्जमाणे एगयओ सत्त परमाणुपोग्गला, एगयओ दुपएसिए खंधे भवइ।
नवहा कज्जमाणे नव परमाणु-पोग्गला भवंति॥

स्कन्धः भवति, अथवा एकतः पञ्च परमाणुपुद्गलाः, एकतः द्वौ द्विप्रदेशिकौ स्कन्धौ भवतः।
अष्टधा क्रियमाणः एकतः सप्त परमाणुपुद्गलाः, एकतः द्विप्रदेशिकः स्कन्धः भवति।
नवधा क्रियमाणः नव परमाणुपुद्गलाः भवन्ति।

त्रिप्रदेशी स्कंध होता है अथवा एक ओर पांच स्वतंत्र परमाणु-पुद्गल, दूसरी ओर दो द्विप्रदेशी स्कंध होते हैं।
आठ भागों में विभक्त होने पर–एक ओर सात स्वतंत्र परमाणु-पुद्गल, दूसरी ओर द्विप्रदेशी स्कंध होता है।
नौ भागों विभक्त होने पर–नौ स्वतंत्र परमाणु-पुद्गल हो जाते हैं।

७७. दस भंते! परमाणुपोग्गला एगयओ साहण्णंति, साहणित्ता किं भवइ?

दश भदन्त! परमाणुपुद्गलाः एकतः संहन्यन्ते, संहत्य किं भवति?

७७. भंते! दस परमाणु-पुद्गल एकत्र संहत होते हैं, उस संहति से क्या निष्पन्न होता है?

गोयमा! दसपएसिए खंधे भवइ। से भिज्जमाणे दुहा वि जाव दसहा वि कज्जइ–
दुहा कज्जमाणे एगयओ परमाणु-पोग्गले, एगयओ नवपएसिए खंधे भवइ; अहवा एगयओ दुपएसिए खंधे, एगयओ अट्ठपएसिए खंधे भवइ; अहवा एगयओ तिपएसिए खंधे, एगयओ सत्तपएसिए खंधे भवइ; अहवा एगयओ चउप्पएसिए खंधे, एगयओ छप्पएसिए खंधे भवइ; अहवा दो पंचपएसिया खंधा भवंति।

गौतम! दशप्रदेशिकः स्कन्धः भवति। सः भिद्यमानः द्विधा अपि यावत् दशधा अपि क्रियते–
द्विधा क्रियमाणः एकतः परमाणु-पुद्गलः, एकतः नवप्रदेशिकः स्कन्धः भवति, अथवा एकतः द्विप्रदेशिकः स्कन्धः, एकतः अष्टप्रदेशिकः स्कन्धः भवति, अथवा एकतः त्रिप्रदेशिकः स्कन्धः, एकतः सप्तप्रदेशिकः स्कन्धः भवति, अथवा एकतः चतुष्प्रदेशिकः स्कन्धः, एकतः षट्प्रदेशिकः स्कन्धः भवति, अथवा द्वौ पञ्चप्रदेशिकौ स्कन्धौ भवतः।

गौतम! दस प्रदेशी स्कंध निष्पन्न होता है। वह टूटने पर दो यावत् दस भागों में विभक्त होता है।
दो भागों में विभक्त होने पर–एक ओर स्वतंत्र परमाणु-पुद्गल दूसरी ओर नौ प्रदेशी स्कंध होता है अथवा एक ओर द्विप्रदेशी स्कंध, दूसरी ओर अष्टप्रदेशी स्कंध होता है अथवा एक ओर त्रिप्रदेशी स्कंध, दूसरी ओर सात प्रदेशी स्कंध होता है अथवा एक ओर चतुष्प्रदेशी स्कंध, दूसरी ओर छह प्रदेशी स्कंध होता है अथवा दो पांचप्रदेशी स्कंध होते हैं।

तिहा कज्जमाणे एगयओ दो परमाणुपोग्गला, एगयओ अट्ठपएसिए खंधे भवइ; अहवा एगयओ परमाणुपोग्गले, एगयओ दुपएसिए खंधे एगयओ सत्तपएसिए खंधे भवइ; अहवा एगयओ परमाणुपोग्गले एगयओ तिपएसिए खंधे, एगयओ छप्पएसिए खंधे भवइ; अहवा एगयओ परमाणुपोग्गले, एगयओ चउप्पएसिए खंधे, एगयओ पंचपएसिए खंधे भवइ; अहवा एगयओ दो दुपएसिया खंधा एगयओ छप्पएसिए खंधे भवइ; अहवा एगयओ दुपएसिए खंधे, एगयओ तिपएसिए खंधे, एगयओ पंचपएसिए खंधे भवइ; अहवा एगयओ दुपएसिए खंधे, एगयओ दो चउप्पएसिया खंधा भवंति अहवा एगयओ दो तिपएसिया खंधा, एगयओ चउप्पएसिए खंधे भवइ।

त्रिधा क्रियमाणः एकतः द्वौ परमाणुपुद्गलौ, एकतः अष्टप्रदेशिकः स्कन्धः भवति, अथवा एकतः परमाणुपुद्गलः, एकतः द्विप्रदेशिकः स्कन्धः, एकतः सप्तप्रदेशिकः स्कन्धः भवति, अथवा एकतः परमाणुपुद्गलः एकतः त्रिप्रदेशिकः स्कन्धः, एकतः षट्प्रदेशिकः स्कन्धः भवति, अथवा एकतः परमाणुपुद्गलः, एकतः चतुष्प्रदेशिकः स्कन्धः, एकतः पञ्चप्रदेशिकः स्कन्धः भवति, अथवा एकतः द्वौ द्विप्रदेशिकौ स्कन्धौ, एकतः षट्प्रदेशिकः स्कन्धः भवति, अथवा एकतः द्विप्रदेशिकः स्कन्धः, एकतः पञ्चप्रदेशिकः स्कन्धः भवति, अथवा एकतः द्विप्रदेशिकः स्कन्धः, एकतः द्वौ चतुष्प्रदेशिकौ स्कन्धौ भवतः, अथवा एकतः द्वौ त्रिप्रदेशिकौ स्कन्धौ, एकतः चतुष्प्रदेशिकः स्कन्धः भवति।

तीन भागों में विभक्त होने पर–एक ओर दो स्वतंत्र परमाणु-पुद्गल, दूसरी ओर अष्टप्रदेशी स्कंध होता है अथवा एक ओर एक स्वतंत्र परमाणु-पुद्गल, दूसरी ओर द्विप्रदेशी स्कंध, तीसरी ओर सप्तप्रदेशी स्कन्ध होता है अथवा एक ओर स्वतंत्र परमाणु-पुद्गल, दूसरी ओर त्रिप्रदेशी स्कंध, तीसरी ओर छः प्रदेशी स्कंध होता है अथवा एक ओर एक स्वतंत्र परमाणु-पुद्गल, दूसरी ओर चतुष्प्रदेशी स्कंध, तीसरी ओर पंचप्रदेशी स्कंध होता है अथवा एक ओर दो द्विप्रदेशी स्कंध, दूसरी ओर छह प्रदेशी स्कंध होता है अथवा एक ओर द्विप्रदेशी स्कंध, दूसरी ओर त्रिप्रदेशी स्कंध, तीसरी ओर पंचप्रदेशी स्कंध होता है अथवा एक ओर द्विप्रदेशी स्कंध, दूसरी ओर दो चतुष्प्रदेशी स्कंध होते हैं अथवा एक ओर दो त्रिप्रदेशी स्कंध, दूसरी ओर चतुष्प्रदेशी स्कंध होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चउहा कज्जमाणे एगयओ तिण्णि परमाणुपोग्गला, एगयओ सत्तपएसिए खंधे भवइ; अहवा एगयओ दो परमाणुपोग्गला, एगयओ दुपएसिए खंधे, एगयओ छप्पएसिए खंधे भवइ; अहवा एगयओ दो परमाणुपोग्गला, एगयओ तिप्पएसिए खंधे, एगयओ पंचपएसिए खंधे भवइ; अहवा एगयओ दो परमाणुपोग्गला, एगयओ दो चउप्पएसिया खंधा भवंति; अहवा एगयओ परमाणुपोग्गले, एगयओ दुपएसिए खंधे, एगयओ तिपएसिए खंधे, एगयओ चउप्पएसिए खंधे भवइ; अहवा एगयओ परमाणु-पोग्गले, एगयओ तिण्णि तिपएसिया खंधा भवंति; अहवा एगयओ तिण्णि दुपएसिया खंधा, एगयओ चउप्पएसिए खंधे भवइ; अहवा एगयओ दो दुपएसिया खंधा, एगयओ दो तिपएसिया खंधा भवंति।

चतुर्धा क्रियमाणः एकतः त्रयः परमाणुपुद्गलाः, एकतः सप्तप्रदेशिकः स्कन्धः भवति; अथवा एकतः द्वौ परमाणुपुद्गलौ, एकतः द्विप्रदेशिकः स्कन्धः, एकतः षट्प्रदेशिकः स्कन्धः भवति, अथवा एकतः द्वौ परमाणु-पुद्गलौ, एकतः त्रिप्रदेशिकः स्कन्धः, एकतः पञ्चप्रदेशिकः स्कन्धः भवति, अथवा एकतः द्वौ परमाणुपुद्गलौ, एकतः द्वौ चतुष्प्रदेशिकौ स्कन्धौ भवतः अथवा एकतः परमाणुपुद्गलः, एकतः द्विप्रदेशिकः स्कन्धः, एकतः त्रिप्रदेशिकः स्कन्धः, एकतः चतुष्प्रदेशिकः स्कन्धः भवति, अथवा एकतः परमाणुपुद्गलः, एकतः त्रयः त्रिप्रदेशिकाः स्कन्धाः भवन्ति; अथवा एकतः त्रयः द्विप्रदेशिकाः स्कन्धाः एकतः चतुष्प्रदेशिकः स्कन्धः भवति, अथवा एकतः द्वौ द्विप्रदेशिकौ स्कन्धौ, एकतः द्वौ त्रिप्रदेशिकौ स्कन्धौ भवतः।

चार भागों में विभक्त होने पर–एक ओर तीन स्वतंत्र परमाणु-पुद्गल, दूसरी ओर सात प्रदेशी स्कंध होता है अथवा एक ओर दो स्वतंत्र परमाणु-पुद्गल, दूसरी ओर द्विप्रदेशी स्कंध, तीसरी ओर छह प्रदेशी स्कंध होता हैं अथवा एक ओर दो स्वतंत्र परमाणु-पुद्गल, दूसरी ओर एक त्रिप्रदेशी स्कन्ध, तीसरी ओर एक पंच प्रदेशी स्कंध होता है अथवा एक ओर दो स्वतंत्र परमाणु-पुद्गल, दूसरी ओर दो चतुष्प्रदेशी स्कंध होते हैं अथवा एक ओर एक स्वतंत्र परमाणु-पुद्गल, दूसरी ओर द्विप्रदेशी स्कंध, तीसरी ओर त्रिप्रदेशी स्कंध, चौथी ओर चतुष्प्रदेशी स्कंध होता है अथवा एक ओर एक स्वतंत्र परमाणु-पुद्गल, दूसरी ओर तीन त्रिप्रदेशी स्कंध होते हैं अथवा एक ओर तीन द्विप्रदेशी स्कंध, दूसरी ओर चतुष्प्रदेशी स्कंध होता है अथवा एक ओर दो द्विप्रदेशी स्कंध, दूसरी ओर दो त्रिप्रदेशी स्कंध होते हैं।

पञ्चधा क्रियमाणः एकतः चत्वारः परमाणुपुद्गलाः, एकतः षट्प्रदेशिकः स्कन्धः भवति, अथवा एकतः त्रयः परमाणुपुद्गलाः, एकतः द्विप्रदेशिकः स्कन्धः, एकतः पञ्चप्रदेशिकः स्कन्धः भवति, अथवा एकतः त्रयः परमाणु-पुद्गलाः एकतः त्रिप्रदेशिकः स्कन्धः, एकतः चतुष्प्रदेशिकः स्कन्धः भवति, अथवा एकतः द्वौ परमाणुपुद्गलौ, एकतः द्वौ द्विप्रदेशिकौ स्कन्धौ, एकतः चतुष्प्रदेशिकः स्कन्धः भवति, अथवा एकतः द्वौ परमाणुपुद्गलौ, एकतः द्विप्रदेशिकः स्कन्धः, एकतः द्वौ त्रिप्रदेशिकौ स्कन्धौ भवतः, अथवा एकतः परमाणुपुद्गलः, एकतः त्रयः द्विप्रदेशिकाः स्कन्धाः, एकतः त्रिप्रदेशिकः स्कन्धः भवति, अथवा पञ्च द्विप्रदेशिकाः स्कन्धाः भवन्ति।

पांच भागों में विभक्त होने पर–एक ओर चार स्वतंत्र परमाणु-पुद्गल, दूसरी ओर छह प्रदेशी स्कंध होता है अथवा एक ओर तीन स्वतंत्र परमाणु-पुद्गल, दूसरी ओर द्विप्रदेशी स्कंध, तीसरी ओर पंचप्रदेशी स्कंध होता है अथवा एक ओर तीन स्वतंत्र परमाणु-पुद्गल, दूसरी ओर एक त्रिप्रदेशी स्कंध, तीसरी ओर चतुष्प्रदेशी स्कंध होता है अथवा एक ओर दो स्वतंत्र परमाणु-पुद्गल, दूसरी ओर दो द्विप्रदेशी स्कंध, तीसरी ओर चतुष्प्रदेशी स्कंध होता है अथवा एक ओर दो स्वतंत्र परमाणु-पुद्गल, दूसरी ओर द्विप्रदेशी स्कंध, तीसरी ओर दो त्रिप्रदेशी स्कंध होते हैं अथवा एक ओर एक स्वतंत्र परमाणु-पुद्गल, दूसरी ओर तीन द्विप्रदेशी स्कंध, तीसरी ओर त्रिप्रदेशी स्कंध होता है अथवा पांच द्विप्रदेशी स्कंध होते हैं।

छहा कज्जमाणे एगयओ पंच परमाणु-पोग्गला, एगयओ पंचपएसिए खंधे भवइ; अहवा एगयओ चत्तारि परमाणुपोग्गला, एगयओ दुपएसिए खंधे, एगयओ चउप्पएसिए खंधे भवइ; अहवा एगयओ चत्तारि परमाणु-

षड्धा क्रियमाणः एकतः पञ्च परमाणु-पुद्गलाः, एकतः पञ्चप्रदेशिकः स्कन्धः भवति, अथवा एकतः चत्वारः परमाणुपुद्गलाः, एकतः द्विप्रदेशिकः स्कन्धः, एकतः चतुष्प्रदेशिकः स्कन्धः भवति, अथवा एकतः चत्वारः

छह भागों में विभक्त होने पर–एक ओर पांच स्वतंत्र परमाणु-पुद्गल, दूसरी ओर पांच प्रदेशी स्कंध होता है अथवा एक ओर चार स्वतंत्र परमाणु-पुद्गल, दूसरी ओर दो द्विप्रदेशी स्कंध, तीसरी ओर चतुष्प्रदेशी स्कंध होता है अथवा एक ओर चार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पोग्गला, एगयओ दो तिपएसिया खंधा भवंति; अहवा एगयओ तिण्णि परमाणुपोग्गला, एगयओ दो दुपएसिया खंधा, एगयओ तिपएसिए खंधे भवइ; अहवा एगयओ दो परमाणुपोग्गला, एगयओ चत्तारि दुपएसिया खंधा भवंति।

परमाणुपुद्गलाः, एकतः द्वौ त्रिप्रदेशिकौ स्कन्धौ भवतः, अथवा एकतः त्रयः परमाणुपुद्गलाः, एकतः द्वौ द्विप्रदेशिकौ स्कन्धौ, एकतः त्रिप्रदेशिकः स्कन्धः भवति, अथवा एकतः द्वौ परमाणुपुद्गलौ, एकतः चत्वारः द्विप्रदेशिकाः स्कन्धाः भवन्ति।

परमाणु-पुद्गल, दूसरी ओर दो त्रिप्रदेशी स्कंध होते हैं अथवा एक ओर तीन स्वतंत्र परमाणु-पुद्गल, दूसरी ओर दो द्विप्रदेशी स्कंध, तीसरी ओर त्रिप्रदेशी स्कंध होता है अथवा एक ओर दो स्वतंत्र परमाणु-पुद्गल दूसरी ओर चार द्विप्रदेशी स्कंध होते हैं।

सत्तहा कज्जमाणे एगयओ छ परमाणुपोग्गला, एगयओ चउप्पएसिए खंधे भवइ; अहवा एगयओ पंच परमाणुपोग्गला, एगयओ दुपएसिए खंधे, एगयओ तिपएसिए खंधे भवइ; अहवा एगयओ चत्तारि परमाणुपोग्गला, एगयओ तिण्णि दुपएसिया खंधा भवंति।

सप्तधा क्रियमाणः एकतः षट् परमाणुपुद्गलाः, एकतः चतुष्प्रदेशिकः स्कन्धः भवति, अथवा एकतः पञ्च परमाणुपुद्गलाः, एकतः द्विप्रदेशिकः स्कन्धः, एकतः त्रिप्रदेशिकः स्कन्धः भवति, अथवा एकतः चत्वारः परमाणुपुद्गलाः, एकतः त्रयः द्विप्रदेशिकाः स्कन्धाः भवन्ति।

सात भागों में विभक्त होने पर–एक ओर छह स्वतंत्र परमाणु-पुद्गल, दूसरी ओर चतुष्प्रदेशी स्कंध होता है अथवा एक ओर पांच स्वतंत्र परमाणु-पुद्गल, दूसरी ओर एक द्विप्रदेशी स्कंध, तीसरी ओर एक त्रिप्रदेशी स्कंध होता है अथवा एक ओर चार स्वतंत्र परमाणु-पुद्गल, दूसरी ओर तीन द्विप्रदेशी स्कंध होते हैं।

अट्ठहा कज्जमाणे एगयओ सत्त-परमाणुपोग्गला एगयओ तिपएसिए खंधे भवइ; अहवा एगयओ छ परमाणुपोग्गला, एगयओ दो दुपएसिया खंधा भवंति।

अष्टधा क्रियमाणः एकतः सप्त परमाणुपुद्गलाः, एकतः त्रिप्रदेशिकः स्कन्धः भवति, अथवा एकतः षट् परमाणुपुद्गलाः, एकतः द्वौ द्विप्रदेशिकौ स्कन्धौ भवतः।

आठ भागों में विभक्त होने पर–एक ओर सात स्वतंत्र परमाणु-पुद्गल, दूसरी ओर त्रिप्रदेशी स्कंध होता है अथवा एक ओर छह स्वतंत्र परमाणु-पुद्गल, दूसरी ओर दो द्विप्रदेशी स्कंध होते हैं।

नवहा कज्जमाणे एगयओ अट्ठ परमाणुपोग्गला, एगयओ दुपएसिए खंधे भवइ।

नवधा क्रियमाणः एकतः अष्ट परमाणुपुद्गलाः, एकतः द्विप्रदेशिकः स्कन्धः भवति।

नौ भागों में विभक्त होने पर–एक ओर आठ स्वतंत्र परमाणु-पुद्गल, दूसरी ओर द्विप्रदेशी स्कंध होता है।

दसहा कज्जमाणे दस परमाणु-पोग्गला भवंति॥

दशधा क्रियमाणः दश परमाणुपुद्गलाः भवन्ति।

दस भागों में विभक्त होने पर–दस स्वतंत्र परमाणु-पुद्गल हो जाते हैं।

७८. संखेज्जा णं भंते! परमाणुपोग्गला एगयओ साहण्णंति, साहणित्ता किं भवइ?

संख्येयाः भदन्त! परमाणुपुद्गलाः एकतः संहन्यन्ते, संहत्य किं भवति?

७८. भंते! संख्येय परमाणु पुद्गल एकत्र संहत होते हैं, उस संहति से क्या निष्पन्न होता है?

गोयमा! संखेज्जपएसिए खंधे भवइ। से भिज्जमाणे दुहा वि जाव दसहा वि संखेज्जहा वि कज्जइ–

गौतम! संख्येयप्रदेशिकः स्कन्धः भवति। सः भिद्यमानः द्विधा अपि यावत् दशधा अपि संख्येयधा अपि क्रियते–

गौतम! संख्येय प्रदेशी स्कंध निष्पन्न होता है। वह टूटने पर दो अथवा यावत् दस अथवा संख्येय भागों में विभक्त होता है।

दुहा कज्जमाणे एगयओ परमाणु-पोग्गले, एगयओ संखेज्जपएसिए खंधे भवइ; अहवा एगयओ दुपएसिए खंधे, एगयओ संखेज्जपएसिए खंधे भवइ; एगयओ तिपएसिए खंधे, एगयओ संखेज्जपएसिए खंधे भवइ; एवं जाव अहवा एगयओ दसपएसिए खंधे, एगयओ संखेज्जपएसिए खंधे भवइ; अहवा दो संखेज्जपएसिया खंधा भवंति।

द्विधा क्रियमाणः एकतः परमाणु-पुद्गलः, एकतः संख्येयप्रदेशिकः स्कन्धः भवति, अथवा एकतः द्विप्रदेशिकः स्कन्धः, एकतः संख्येयप्रदेशिकः स्कन्धः भवति, एकतः त्रिप्रदेशिकः स्कन्धः, एकतः संख्येयप्रदेशिकः स्कन्धः भवति, एवं यावत् अथवा एकतः दशप्रदेशिकः स्कन्धः, एकतः संख्येयप्रदेशिकः स्कन्धः भवति, अथवा द्वौ संख्येयप्रदेशिकौ स्कन्धौ भवतः।

दो भागों में विभक्त होने पर–एक ओर एक स्वतंत्र परमाणु-पुद्गल, दूसरी ओर संख्येयप्रदेशी स्कंध होता है अथवा एक ओर द्विप्रदेशी स्कंध, दूसरी ओर संख्येयप्रदेशी स्कंध होता है अथवा एक ओर त्रिप्रदेशी स्कंध, दूसरी ओर संख्येय प्रदेशी स्कंध होता है। इसी प्रकार यावत् अथवा एक ओर दस प्रदेशी स्कंध, दूसरी ओर संख्येय प्रदेशी स्कंध होता है अथवा दो संख्येय प्रदेशी स्कंध होते हैं।

तिहा कज्जमाणे एगयओ दो परमाणुपोग्गला, एगयओ संखेज्ज-

त्रिधा क्रियमाणः एकतः द्वौ परमाणु-पुद्गलौ, एकतः संख्येयप्रदेशिकः

तीन भागों में विभक्त होने पर–एक ओर दो स्वतंत्र परमाणु-पुद्गल, दूसरी ओर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पएसिए खंधे भवइ; अहवा एगयओ परमाणुपोग्गले; एगयओ दुपएसिए खंधे, एगयओ संखेज्जपएसिए खंधे भवइ; अहवा एगयओ परमाणुपोग्गले, एगयओ तिपएसिए खंधे, एगयओ संखेज्जपएसिए खंधे भवइ; एवं जाव अहवा एगयओ परमाणुपोग्गले, एगयओ दसपएसिए खंधे, एगयओ संखेज्जपएसिए खंधे भवइ; अहवा एगयओ परमाणुपोग्गले, एगयओ दो संखेज्जपएसिया खंधा भवंति; अहवा एगयओ दुपएसिए खंधे, एगयओ दो संखेज्जपएसिया खंधा भवंति; एवं जाव अहवा एगयओ दसपएसिए खंधे, एगयओ दो संखेज्जपएसिया खंधा भवंति; अहवा तिण्णि संखेज्जपएसिया खंधा भवंति।

चउहा कज्जमाणे एगयओ तिण्णि परमाणुपोग्गला, एगयओ संखेज्जपएसिए खंधे भवइ; अहवा एगयओ दो परमाणुपोग्गला, एगयओ दुपएसिए खंधे, एगयओ संखेज्जपएसिए खंधे भवइ; अहवा एगयओ दो परमाणुपोग्गला, एगयओ तिपएसिए खंधे, एगयओ संखेज्जपएसिए खंधे भवइ; एवं जाव अहवा एगयओ दो परमाणुपोग्गला, एगयओ दसपएसिए खंधे, एगयओ संखेज्जपएसिए खंधे भवइ, अहवा एगयओ दो परमाणुपोग्गला, एगयओ दो संखेज्जपएसिया खंधा भवंति अहवा एगयओ परमाणुपोग्गले, एगयओ दुपएसिए खंधे, एगयओ दो संखेज्जपएसिया खंधा भवंति जाव अहवा एगयओ परमाणुपोग्गले एगयओ दसपएसिए खंधे, एगयओ दो संखेज्जपएसिया खंधा भवंति; अहवा एगयओ परमाणुपोग्गले, एगयओ तिण्णि संखेज्जपएसिया खंधा भवंति; अहवा एगयओ दुपएसिए खंधे, एगयओ तिण्णि संखेज्जपएसिया खंधा भवंति जाव अहवा एगयओ दसपएसिए खंधे, एगयओ तिण्णि संखेज्जपएसिया खंधा भवंति; अहवा चत्तारि संखेज्जस्कन्धः भवति, अथवा एकतः परमाणुपुद्गलः एकतः द्विप्रदेशिकः स्कन्धः, एकतः संख्येयप्रदेशिकः स्कन्धः भवति, अथवा एकतः परमाणुपुद्गलः, एकतः त्रिप्रदेशिकः स्कन्धः, एकतः संख्येयप्रदेशिकः स्कन्धः भवति, एवं यावत् अथवा एकतः परमाणुपुद्गलः, एकतः दशप्रदेशिकः स्कन्धः, एकतः संख्येयप्रदेशिकः स्कन्धः भवति, अथवा एकतः परमाणुपुद्गलः, एकतः द्वौ संख्येयप्रदेशिकौ स्कन्धौ भवतः, अथवा एकतः द्विप्रदेशिकः स्कन्धः, एकतः द्वौ संख्येयप्रदेशिकौ स्कन्धौ भवतः, एवं यावत् अथवा एकतः दशप्रदेशिकः स्कन्धः, एकतः द्वौ संख्येयप्रदेशिकौ स्कन्धौ भवतः, अथवा त्रयः संख्येयप्रदेशिकाः स्कन्धाः भवन्ति।

चतुर्धा क्रियमाणः एकतः त्रयः परमाणुपुद्गलाः, एकतः संख्येयप्रदेशिकः स्कन्धः भवति अथवा एकतः द्वौ परमाणुपुद्गलौ, एकतः द्विप्रदेशिकः स्कन्धः, एकतः संख्येयप्रदेशिकः स्कन्धः भवति, अथवा एकतः द्वौ परमाणुपुद्गलौ, एकतः त्रिप्रदेशिकः स्कन्धः, एकतः संख्येयप्रदेशिकः स्कन्धः भवति, एवं यावत् अथवा एकतः द्वौ परमाणुपुद्गलौ, एकतः दशप्रदेशिकः स्कन्धः, एकतः संख्येयप्रदेशिकः स्कन्धः भवति, अथवा एकतः द्वौ परमाणुपुद्गलौ, एकतः द्वौ संख्येयप्रदेशिकौ स्कन्धौ भवतः, अथवा एकतः परमाणुपुद्गलः, एकतः द्विप्रदेशिकः स्कन्धः, एकतः द्वौ संख्येयप्रदेशिकौ स्कन्धौ भवतः यावत् अथवा एकतः परमाणुपुद्गलः एकतः दशप्रदेशिकः स्कन्धः, एकतः द्वौ संख्येयप्रदेशिकौ स्कन्धौ भवतः, अथवा एकतः परमाणुपुद्गलः, एकतः त्रयः संख्येयप्रदेशिकाः स्कन्धाः भवन्ति, अथवा एकतः द्विप्रदेशिकः स्कन्धः, एकतः त्रयः संख्येयप्रदेशिकाः स्कन्धाः भवन्ति, यावत् अथवा एकतः दशप्रदेशिकः स्कन्धः, एकतः त्रयः संख्येयप्रदेशिकाः स्कन्धाः भवन्ति, अथवा चत्वारः संख्येयप्रदेशिकाः स्कन्धाः भवन्ति।

संख्येयप्रदेशी स्कंध होता है अथवा एक ओर एक स्वतंत्र परमाणु-पुद्गल, दूसरी ओर द्विप्रदेशी स्कंध, तीसरी ओर संख्येय प्रदेशी स्कंध होता है अथवा एक ओर एक स्वतंत्र परमाणु-पुद्गल, दूसरी ओर त्रिप्रदेशी स्कंध, तीसरी ओर संख्येय प्रदेशी स्कंध होता है। इसी प्रकार यावत् अथवा एक ओर एक स्वतंत्र परमाणु-पुद्गल, दूसरी ओर दस प्रदेशी स्कंध, तीसरी ओर संख्येय प्रदेशी स्कंध होता है अथवा एक ओर एक स्वतंत्र परमाणु-पुद्गल, दूसरी ओर दो संख्येय प्रदेशी स्कंध होते हैं अथवा एक ओर द्विप्रदेशी स्कंध, दूसरी ओर दो संख्येय प्रदेशी स्कंध होते हैं। इसी प्रकार यावत् अथवा एक ओर दस प्रदेशी स्कंध, दूसरी ओर दो संख्येय प्रदेशी स्कंध होते हैं अथवा तीन संख्येय प्रदेशी स्कंध होते हैं।

चार भागों में विभक्त होने पर–एक ओर तीन स्वतंत्र परमाणु-पुद्गल, दूसरी ओर संख्येय प्रदेशी स्कंध होता है अथवा एक ओर दो स्वतंत्र परमाणु–पुद्गल, दूसरी ओर द्विप्रदेशी स्कंध, तीसरी ओर संख्येय प्रदेशी स्कंध होता है अथवा एक ओर दो स्वतंत्र परमाणु-पुद्गल, दूसरी ओर त्रिप्रदेशी स्कंध, तीसरी ओर संख्येय प्रदेशी स्कंध होता है। इसी प्रकार यावत् अथवा एक ओर दो स्वतंत्र परमाणु-पुद्गल, दूसरी ओर दस प्रदेशी स्कंध, तीसरी ओर संख्येय प्रदेशी स्कंध होता है अथवा एक ओर दो स्वतंत्र परमाणु-पुद्गल, दूसरी ओर दो संख्येय प्रदेशी स्कंध होते हैं अथवा एक ओर एक स्वतंत्र परमाणु-पुद्गल, दूसरी ओर द्विप्रदेशी स्कंध, तीसरी ओर दो संख्येय प्रदेशी स्कंध होते हैं, यावत् अथवा एक ओर एक स्वतंत्र परमाणु-पुद्गल, दूसरी ओर दस प्रदेशी स्कंध, तीसरी ओर दो संख्येय प्रदेशी स्कंध होते हैं अथवा एक ओर स्वतंत्र परमाणु-पुद्गल, दूसरी ओर कदाचित् तीन संख्येय प्रदेशी स्कंध होते हैं अथवा एक ओर द्विप्रदेशी स्कंध, दूसरी ओर तीन संख्येय प्रदेशी स्कंध होते हैं अथवा चार संख्येय प्रदेशी स्कंध होते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पएसिया खंधा भवंति।
एवं एएणं कमेणं पंचगसंजोगो वि भाणियव्वो जाव नवगसंजोगो।
दसहा कज्जमाणे एगयओ नव परमाणुपोग्गला, एगयओ संखेज्जपएसिए खंधे भवइ; अहवा एगयओ अट्ठपरमाणुपोग्गला, एगयओ दुपएसिए, एगयओ संखेज्जपएसिए खंधे भवइ। एएणं कमेणं एक्केक्को पूरेयव्वो जाव अहवा एगयओ दसपएसिए खंधे, एगयओ नव संखेज्जपएसिया खंधा भवंति; अहवा दस संखेज्जपएसिया खंधा भवंति।
संखेज्जहा कज्जमाणे संखेज्जा परमाणुपोग्गला भवंति।।

एवम् एतेन क्रमेण पञ्चकसंयोगः अपि भणितव्यः यावत् नवकसंयोगः।
दशधा क्रियमाणः एकतः नव परमाणुपुद्गलाः, एकतः संख्येयप्रदेशिकः स्कन्धः भवति, अथवा एकतः अष्ट परमाणुपुद्गलाः, एकतः द्विप्रदेशिकः, एकतः संख्येयप्रदेशिकः स्कन्धः भवति। एतेन क्रमेण एकैकः पूरयितव्यः यावत् अथवा एकतः दशप्रदेशिकः स्कन्धः, एकतः नव संख्येयप्रदेशिकाः स्कन्धाः भवन्ति, अथवा दश संख्येयप्रदेशिकाः स्कन्धाः भवन्ति।
संख्येयधा क्रियमाणः संख्येयाः परमाणुपुद्गलाः भवन्ति।

इसी प्रकार इनके क्रमशः पांच संयोग भी वक्तव्य है यावत् नौ संयोग तक।
दस भागों में विभक्त होने पर–एक ओर नौ स्वतंत्र परमाणु-पुद्गल, दूसरी ओर संख्येय प्रदेशी स्कंध होता है अथवा एक ओर आठ स्वतंत्र परमाणु-पुद्गल, दूसरी ओर द्विप्रदेशी स्कंध, तीसरी ओर संख्येय प्रदेशी स्कंध होता है। इनको क्रमशः एक-एक पूर्ण करना चाहिए यावत् अथवा एक ओर दस प्रदेशी स्कंध, दूसरी ओर नौ संख्येय प्रदेशी स्कंध होते हैं अथवा दस संख्येय प्रदेशी स्कंध होते हैं।
संख्येय भागों में विभक्त होने पर–संख्येय स्वतंत्र परमाणु-पुद्गल होते हैं।

७६. असंखेज्जा भंते! परमाणुपोग्गला एगयओ साहण्णंति, साहणित्ता किं भवइ?
गोयमा! असंखेज्जपएसिए खंधे भवइ। से भिज्जमाणे दुहा वि जाव दसहा वि, संखेज्जहा वि, असंखेज्जहा वि कज्जइ–
दुहा कज्जमाणे एगयओ परमाणुपोग्गले, एगयओ असंखेज्जपएसिए खंधे भवइ जाव अहवा एयगओ दसपएसिए खंधे भवइ, एगयओ असंखेज्जपएसिए खंधे भवइ; अहवा एगयओ संखेज्जपएसिए खंधे, एगयओ असंखेज्जपएसिए खंधे भवइ; अहवा दो असंखेज्जपएसिया खंधा भवंति।
तिहा कज्जमाणे एगयओ दो परमाणुपोग्गला,एगयओ असंखेज्जपएसिए खंधे भवइ; अहवा एगयओ परमाणुपोग्गले, एगयओ दुपएसिए खंधे, एगयओ असंखेज्जपएसिए खंधे भवइ जाव अहवा एगयओ परमाणुपोग्गले, एगयओ दसपएसिए खंधे, एगयओ असंखेज्जपएसिए खंधे भवइ; अहवा एगयओ परमाणुपोग्गले, एगयओ संखेज्जपएसिए खंधे, एगयओ असंखेज्जपएसिए खंधे भवइ; अहवा एगयओ परमाणुपोग्गले,

असंख्येयाः भदन्त! परमाणुपुद्गलाः एकतः संहन्यन्ते, संहत्य किं भवति?

गौतम! असंख्येयप्रदेशिकः स्कन्धः भवति। सः भिद्यमानः द्विधा अपि यावत् दशधा अपि, संख्येयधा अपि, असंख्येयधा अपि क्रियते–
द्विधा क्रियमाणः एकतः परमाणुपुद्गलः, एकतः असंख्येयप्रदेशिकः स्कन्धः भवति यावत् अथवा एकतः दशप्रदेशिकः स्कन्धः भवति, एकतः असंख्येयप्रदेशिकः स्कन्धः भवति, अथवा एकतः संख्येयप्रदेशिकः स्कन्धः, एकतः असंख्येयप्रदेशिकः स्कन्धः भवति, अथवा द्वौ असंख्येयप्रदेशिकौ स्कन्धौ भवतः।
त्रिधा क्रियमाणः एकतः द्वौ परमाणुपुद्गलौ, एकतः असंख्येयप्रदेशिकः स्कन्धः भवति, अथवा एकतः परमाणुपुद्गलः, एकतः द्विप्रदेशिकः स्कन्धः, एकतः असंख्येयप्रदेशिकः स्कन्धः भवति यावत् अथवा एकतः परमाणुपुद्गलः, एकतः दशप्रदेशिकः स्कन्धः, एकतः असंख्येयप्रदेशिकः स्कन्धः भवति, अथवा एकतः परमाणुपुद्गलः, एकतः संख्येयप्रदेशिकः स्कन्धः, एकतः असंख्येयप्रदेशिकः स्कन्धः भवति, अथवा एकतः परमाणुपुद्गलः, एकतः

७६. भंते! असंख्येय परमाणु-पुद्गल एकत्र संहत होते हैं उस संहति से क्या निष्पन्न होता है?
गौतम! असंख्येय प्रदेशी स्कंध निष्पन्न होता है। वह टूटने पर दो अथवा यावत् दस अथवा संख्येय अथवा असंख्येय भागों में विभक्त होता है।
दो भागों में विभक्त होने पर–एक ओर स्वतंत्र परमाणु-पुद्गल, दूसरी ओर असंख्येय प्रदेशी स्कंध होता है यावत् अथवा एक ओर दस प्रदेशी स्कंध, दूसरी ओर असंख्येय प्रदेशी स्कन्ध होता है अथवा एक ओर संख्येय प्रदेशी स्कंध, दूसरी ओर असंख्येय प्रदेशी स्कंध होता है अथवा दो असंख्येय प्रदेशी स्कन्ध होते हैं।

तीन भागों में विभक्त होने पर–एक ओर दो स्वतंत्र परमाणु-पुद्गल, दूसरी ओर असंख्येय प्रदेशी स्कन्ध होता है अथवा एक ओर एक स्वतंत्र परमाणु-पुद्गल, दूसरी ओर द्विप्रदेशी स्कंध, तीसरी ओर असंख्येय प्रदेशी स्कंध होता है यावत् अथवा एक ओर एक स्वतंत्र परमाणु-पुद्गल, दूसरी ओर दस प्रदेशी स्कंध, तीसरी ओर असंख्येय प्रदेशी स्कंध होता है अथवा एक ओर एक स्वतंत्र परमाणु-पुद्गल, दूसरी ओर संख्येय प्रदेशी स्कंध, तीसरी ओर असंख्येय प्रदेशी स्कंध होता है

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एगयओ दो असंखेज्जपएसिया खंधा भवंति; अहवा एगयओ दुपएसिए खंधे, एगयओ दो असंखेज्जपएसिया खंधा भवंति; एवं जाव अहवा एगयओ संखेज्जपएसिए खंधे, एगयओ दो असंखेज्जपएसिया खंधा भवंति; अहवा तिण्णि असंखेज्जपएसिया खंधा भवंति।

द्वौ असंख्येयप्रदेशिकौ स्कन्धौ भवतः, अथवा एकतः द्विप्रदेशिकः स्कन्धः, एकतः द्वौ असंख्येयप्रदेशिकौ स्कन्धौ भवतः, एवं यावत् अथवा एकतः संख्येयप्रदेशिकः स्कन्धः, एकतः द्वौ असंख्येयप्रदेशिकौ स्कन्धौ भवतः, अथवा त्रयः असंख्येयप्रदेशिकाः स्कन्धाः भवन्ति।

अथवा एक ओर एक स्वतंत्र परमाणु-पुद्गल, दूसरी ओर दो असंख्येय प्रदेशी स्कंध होते हैं अथवा एक ओर द्विप्रदेशी स्कन्ध, दूसरी ओर दो असंख्येय प्रदेशी स्कंध होते हैं। इसी प्रकार यावत् अथवा एक ओर संख्येय प्रदेशी स्कन्ध, दूसरी ओर दो असंख्येय प्रदेशी स्कंध होते हैं अथवा तीन असंख्येय प्रदेशी स्कंध होते हैं।

चउहा कज्जमाणे एगयओ तिण्णि परमाणुपोग्गला, एगयओ असंखेज्जपएसिए खंधे भवइ।

चतुर्धा क्रियमाणः एकतः त्रयःपरमाणु-पुद्गलाः, एकतः असंख्येयप्रदेशिकः स्कन्धः भवति।

चार भागों में विभक्त होने पर–एक ओर तीन स्वतंत्र परमाणु-पुद्गल दूसरी ओर असंख्येय प्रदेशी स्कंध होता है।

एवं चउक्कगसंजोगो जाव दसग-संजोगो। एए जहेव संखेज्जपएसियस्स, नवरं–असंखेज्जगं एगं अहिगं भाणियव्वं जाव अहवा दस असंखेज्जपएसिया खंधा भवंति।

एवं चतुष्कसंयोगः यावत् दशकसंयोगः। एते यथैव संख्येयप्रदेशिकस्य, नवरम्–असंख्येयकम् एकम् अधिकं भणितव्यं यावत् अथवा दश असंख्येयप्रदेशिकाः स्कन्धाः भवन्ति।

इसी प्रकार चार संयोग यावत् दस संयोग। ये संख्येय प्रदेशी की भांति वक्तव्य है, इतना विशेष है–असंख्येय में एक अधिक वक्तव्य है यावत् अथवा दस असंख्येय प्रदेशी स्कंध होते हैं।

संखेज्जहा कज्जमाणे एगयओ संखेज्जा परमाणुपोग्गला, एगयओ असंखेज्जपएसिए खंधे भवइ; अहवा एगयओ संखेज्जा दुपएसिया खंधा, एगयओ असंखेज्जपएसिए खंधे भवइ; एवं जाव अहवा एगयओ संखेज्जा दसपएसिया खंधा, एगयओ असंखेज्जपएसिए खंधे भवइ; अहवा एगयओ संखेज्जा संखेज्जपएसिया खंधा, एगयओ असंखेज्जपएसिए खंधे भवइ; अहवा संखेज्जा असंखेज्जपएसिया खंधा भवंति।

संख्येयधा क्रियमाणः एकतः संख्येयाः परमाणुपुद्गलाः, एकतः असंख्येय-प्रदेशिकः स्कन्धः भवति, अथवा एकतः संख्येयाः द्विप्रदेशिकाः स्कन्धाः, एकतः असंख्येयप्रदेशिकः स्कन्धः भवति, एवं यावत् अथवा एकतः संख्येयाः दश-प्रदेशिकाः स्कन्धाः, एकतः असंख्येय-प्रदेशिकः स्कन्धः भवति, अथवा एकतः संख्येयाः संख्येयप्रदेशिकाः स्कन्धाः, एकतः असंख्येयप्रदेशिकः स्कन्धः भवति, अथवा संख्येयाः असंख्येयप्रदेशिकाः स्कन्धाः भवन्ति।

संख्येय भागों में विभक्त होने पर–एक ओर संख्येय स्वतंत्र परमाणु-पुद्गल, दूसरी ओर असंख्येय प्रदेशी स्कंध होता है अथवा एक ओर संख्येय द्विप्रदेशी स्कंध, दूसरी ओर असंख्येय प्रदेशी स्कंध होता है। इसी प्रकार यावत् अथवा एक ओर संख्येय दसप्रदेशी स्कंध, दूसरी ओर असंख्येय प्रदेशी स्कंध होता है अथवा एक ओर संख्येय संख्येयप्रदेशी स्कंध, दूसरी ओर असंख्येय प्रदेशी स्कंध होता है अथवा संख्येय असंख्येय प्रदेशी स्कंध होते हैं।

असंखेज्जहा कज्जमाणे असंखेज्जा परमाणुपोग्गला भवंति॥

असंख्येयधा क्रियमाणः असंख्येयाः परमाणुपुद्गलाः भवन्ति।

असंख्येय भागों में विभक्त होने पर–असंख्येय स्वतंत्र परमाणु-पुद्गल होते हैं।

८०. अणंता णं भंते! परमाणुपोग्गला एगयओ साहण्णंति, साहणित्ता किं भवइ?

अनन्ताः भदन्त! परमाणुपुद्गलाः एकतः संहन्यन्ते, संहत्य किं भवति?

८०. भंते! अनन्त परमाणु-पुद्गल एकत्र संहत होते हैं, उस संहति से क्या निष्पन्न होता है?

गोयमा! अणंतपएसिए खंधे भवइ। से भिज्जमाणे दुहा वि तिहा वि जाव दसहा वि संखेज्जहा वि असंखेज्जहा वि अणंतहा वि कज्जइ–

गौतम! अनन्तप्रदेशिकः स्कन्धः भवति। सः भिद्यमानः द्विधा अपि त्रिधा अपि यावत् दशधा अपि संख्येयधा अपि असंख्येयधा अपि अनन्तधा अपि क्रियते–

गौतम! अनन्त प्रदेशी स्कंध निष्पन्न होता है। वह टूटने पर दो, तीन यावत् दस, संख्येय, असंख्येय और अनन्त भागों में विभक्त होता है–

दुहा कज्जमाणे एगयओ परमाणुपोग्गले एगयओ अणंतपएसिए खंधे भवइ जाव अहवा दो अणंतपएसिया खंधा भवंति।

द्विधा क्रियमाणः एकतः परमाणुपुद्गलः एकतः अनन्तप्रदेशिकः स्कन्धः भवति यावत् अथवा द्वौ अनन्तप्रदेशिकौ स्कन्धौ भवतः।

दो भागों में विभक्त होने पर–एक ओर एक स्वतंत्र परमाणु-पुद्गल, दूसरी ओर अनन्त प्रदेशी स्कंध होता है यावत् दो अनन्त प्रदेशी स्कंध होते हैं।

तिहा कज्जमाणे एगयओ दो

त्रिधा क्रियमाणः एकतः द्वौ परमाणु-

तीन भागों में विभक्त होने पर–एक ओर दो

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

परमाणुपोग्गला,एगयओ अणंतपएसिए खंधे भवइ; अहवा एगयओ परमाणुपोग्गले, एगयओ दुपएसिए खंधे, एगयओ अणंतपएसिए खंधे भवइ जाव अहवा एगयओ परमाणुपोग्गले, एगयओ असंखेज्जपएसिए खंधे, एगयओ अणंतपएसिए खंधे भवइ; अहवा एगयओ परमाणुपोग्गले, एगयओ दो अणंतपएसिया खंधा भवंति; अहवा एगयओ दुपएसिए खंधे, एगयओ दो अणंतपएसिया खंधा भवंति, एवं जाव अहवा एगयओ दसपएसिए खंधे, एगयओ दो अणंतपएसिया खंधा भवंति; अहवा एगयओ संखेज्जपएसिए खंधे, एगयओ दो अणंतपएसिया खंधा भवंति; अहवा एगयओ असंखेज्जपएसिए खंधे, एगयओ दो अणंतपएसिया खंधा भवंति; अहवा तिण्णि अणंतपएसिया खंधा भवंति।

पुद्गलौ, एकतः अनन्तप्रदेशिकः स्कन्धः भवति, अथवा एकतः परमाणुपुद्गलः, एकतः द्विप्रदेशिकः स्कन्धः, एकतः अनन्तप्रदेशिकः स्कन्धः भवति यावत् अथवा एकतः परमाणुपुद्गलः, एकतः असंख्येयप्रदेशिकः स्कन्धः, एकतः अनन्तप्रदेशिकः स्कन्धः भवति अथवा एकतः परमाणुपुद्गलः, एकतः द्वौ अनन्तप्रदेशिकौ स्कन्धौ भवतः, अथवा एकतः द्विप्रदेशिकः स्कन्धः, एकतः द्वौ अनन्तप्रदेशिकौ स्कन्धौ भवतः, एवं यावत् अथवा एकतः दशप्रदेशिकः स्कन्धः, एकतः द्वौ अनन्तप्रदेशिकौ स्कन्धौ भवतः, अथवा एकतः संख्येयप्रदेशिकः स्कन्धः, एकतः द्वौ अनन्तप्रदेशिकौ स्कन्धौ भवतः अथवा एकतः असंख्येयप्रदेशिकः स्कन्धः, एकतः द्वौ अनन्तप्रदेशिकौ स्कन्धौ भवतः, अथवा त्रयः अनन्तप्रदेशिकाः स्कन्धाः भवन्ति।

स्वतंत्र परमाणु-पुद्गल, दूसरी ओर अनन्तप्रदेशी स्कंध होता है अथवा एक ओर एक स्वतंत्र परमाणु-पुद्गल, दूसरी ओर द्विप्रदेशी स्कंध, तीसरी ओर अनन्तप्रदेशी स्कंध होता है यावत् अथवा एक ओर एक स्वतंत्र परमाणु-पुद्गल, दूसरी ओर असंख्येय प्रदेशी स्कंध, तीसरी ओर अनन्त प्रदेशी स्कंध होता है अथवा एक ओर स्वतंत्र परमाणु-पुद्गल, दूसरी ओर दो अनन्तप्रदेशी स्कंध होते हैं अथवा एक ओर द्विप्रदेशी स्कंध, दूसरी ओर दो अनन्तप्रदेशी स्कंध होते हैं। इसी प्रकार यावत् अथवा एक ओर दस प्रदेशी स्कंध, दूसरी ओर दो अनन्त प्रदेशी स्कंध होते हैं अथवा एक ओर संख्येय प्रदेशी स्कंध, दूसरी ओर दो अनन्तप्रदेशी स्कंध होते हैं अथवा एक ओर एक असंख्येय प्रदेशी स्कंध, दूसरी ओर दो अनन्तप्रदेशी स्कंध होते हैं अथवा तीन अनन्तप्रदेशी स्कंध होते हैं।

चउहा कज्जमाणे एगयओ तिण्णि परमाणुपोग्गला, एगयओ अणंतपएसिए खंधे भवइ।

चतुर्धा क्रियमाणः एकतः त्रयः परमाणुपुद्गलाः, एकतः अनन्तप्रदेशिकः स्कन्धः भवति।

चार भागों में विभक्त होने पर–एक ओर तीन स्वतंत्र परमाणु-पुद्गल, दूसरी ओर अनन्तप्रदेशी स्कंध होता है।

एवं चउक्कसंजोगो जाव असंखेज्जगसंजोगो। एते सव्वे जहेव असंखेज्जाणं भणिया तहेव अणंताण वि भाणियव्वं, नवरं–एक्कं अणंतगं अब्भहियं भाणियव्वं जाव अहवा एगयओ संखेज्जा संखेज्जपएसिया खंधा, एगयओ अणंतपएसिए खंधे भवइ; अहवा एगयओ संखेज्जा असंखेज्जपएसिया खंधा, एगयओ अणंतपएसिए खंधे भवइ; अहवा संखेज्जा अणंतपएसिया खंधा भवंति।

एवं चतुष्कसंयोगः यावत् असंख्येयकसंयोगः। एते सर्वे यथैव असंख्येयानां भणिताः तथैव अनन्तानामपि भणितव्यम् नवरम्–एकं अनन्तकम् अभ्यधिकं भणितव्यं यावत् अथवा एकतः संख्येयाः संख्येयप्रदेशिकाः स्कन्धाः, एकतः अनन्तप्रदेशिकः स्कन्धः भवति, अथवा एकतः संख्येयाः असंख्येयप्रदेशिकाः स्कन्धाः, एकतः अनन्तप्रदेशिकः स्कन्धः भवति, अथवा संख्येयाः अनन्तप्रदेशिकाः स्कन्धाः भवन्ति।

इसी प्रकार चतुष्क संयोग यावत् असंख्येय संयोग। जैसे असंख्येय प्रदेशी स्कंध की वक्तव्यता वैसे ही अनन्त प्रदेशी स्कंध की वक्तव्यता, इतना विशेष है अनन्त में एक अधिक वक्तव्य है यावत् अथवा एक ओर संख्येय संख्येयप्रदेशी स्कंध, दूसरी ओर अनन्तप्रदेशी स्कंध होता है अथवा एक ओर संख्येय असंख्येय प्रदेशी स्कंध, दूसरी ओर अनन्तप्रदेशी स्कंध होता है अथवा संख्येय अनन्तप्रदेशी स्कंध होते हैं।

असंखेज्जहा कज्जमाणे एगयओ असंखेज्जा परमाणुपोग्गला, एगयओ अणंतपएसिए खंधे भवइ;अहवा एगयओ असंखेज्जा दुपएसिया खंधा, एगयओ अणंतपएसिए खंधे भवइ जाव अहवा एगयओ असंखेज्जा संखेज्जपएसिया खंधा, एगयओ अणंतपएसिए खंधे भवइ; अहवा एगयओ असंखेज्जा असंखेज्ज-

असंख्येयधा क्रियमाणः एकतः असंख्येयाः परमाणुपुद्गलाः, एकतः अनन्तप्रदेशिकः स्कन्धः भवति, अथवा एकतः असंख्येयौ द्विप्रदेशिकौ स्कन्धौ, एकतः अनन्तप्रदेशिकः स्कन्धः भवति यावत् अथवा एकतः असंख्येयाः संख्येयप्रदेशिकाः स्कन्धाः, एकतः अनन्तप्रदेशिकः स्कन्धः भवति, अथवा एकतः असंख्येयाः असंख्येयप्रदेशिकाः

असंख्येय भागों में विभक्त होने पर–एक ओर असंख्येय स्वतंत्र परमाणु-पुद्गल, दूसरी ओर अनन्तप्रदेशी स्कंध होता है अथवा एक ओर असंख्येय द्विप्रदेशी स्कंध, दूसरी ओर अनन्तप्रदेशी स्कंध होता है यावत् अथवा एक ओर असंख्येय संख्येयप्रदेशी स्कंध, दूसरी ओर अनन्त प्रदेशी स्कंध होता है अथवा एक ओर असंख्येय असंख्येयप्रदेशी स्कंध, दूसरी ओर अनन्त

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एएसिया खंधा, एगयओ अणंत-एएसिए खंधे भवइ; अहवा असंखेज्जा अणंतएएसिया खंधा भवंति।
अणंतहा कज्जमाणे अणंता परमाणु-पोग्गला भवंति॥

स्कन्धाः, एकतः अनन्तप्रदेशिकः स्कन्धः भवति, अथवा असंख्येयाः अनन्तप्रदेशिकाः स्कन्धाः भवन्ति।
अनन्तधा क्रियमाणः परमाणुपुद्गलाः भवन्ति।

प्रदेशी स्कंध होता है अथवा असंख्येय अनंत प्रदेशी स्कंध होते हैं।

अनन्त भागों में विभक्त होने पर–अनन्त स्वतंत्र परमाणु-पुद्गल होते हैं।

भाष्य

१. सूत्र ६१-८०

तत्त्वार्थ सूत्र में पुद्गल द्रव्य के दो प्रकार बतलाए गए हैं–अणु और स्कंध।[1] अणु अबद्ध होता है, दूसरे अणुओं से असंयुक्त होता है। स्कंध अणुओं के संघात से बनता है। उमास्वाति ने स्कंध की उत्पत्ति के दो हेतु बतलाए हैं–१. संघात २. भेद।[2]

भाष्यकार ने तीन हेतुओं का निर्देश किया है–

१. संघात–दो परमाणु के संघात से द्विप्रदेश स्कंध बनता है। द्विप्रदेश स्कंध में एक अणु के मिलाने पर त्रिप्रदेश स्कंध हो जाता है। इस प्रकार अनेक परमाणुओं का संयोग होने पर अनेक प्रदेश वाले स्कंध बन जाते हैं।[3]

२. भेद–त्रिप्रदेश स्कंध में से एक परमाणु के अलग होने पर वह द्विप्रदेश स्कंध बन जाता है।

३. संघात-भेद–एक द्विप्रदेश स्कंध में से एक परमाणु पृथक् होता है, उसी समय एक दूसरा परमाणु आकर मिल जाता है। ये दोनों कार्य एक ही समय में होते हैं इसलिए यह तीसरा विकल्प बनता है।[4]

अणु केवल भेद से उत्पन्न होता है।[5]

स्थानांग में संघात और भेद के दो-दो कारण बतलाए गए हैं–

१. परमाणुओं का संघात अपने स्वभाव से होता है।
२. परमाणुओं का संघात दूसरे निमित्तों से होता है।
१. स्कंध का भेद अपने स्वभाव से होता है।
२. स्कंध का भेद दूसरे निमित्तों से होता है।[6]

प्रस्तुत प्रकरण में संघात और भेद के अनेक भंग (विकल्प) बतलाए गये हैं। देखें यंत्र–

दो परमाणु : संघात १ भेद १
द्विधा १ १/१
तीन परमाणु : संघात १=भेद २
द्विधा १ १/२
द्विधा २ १/१/१
चार परमाणु : संघात १=भेद ४
द्विधा १ १/३
द्विधा २ २/२
त्रिधा ३ १/१/२
चतुर्धा ४ १/१/१/१
पांच परमाणु : संघात १=भेद ६
द्विधा १ १/४
२ २/३
त्रिधा ३ १/१/३
४ १/२/२
चतुर्धा ५ १/१/१/२
पंचधा ६ १/१/१/१/१
छह परमाणु : संघात १=भेद १०
द्विधा १ १/५
२ २/४
३ ३/३
त्रिधा ४ १/१/४
५ १/२/३
६ २/२/२
चतुर्धा ७ १/१/१/३
८ १/१/२/२
पंचधा ९ १/१/१/१/२
षड्धा १० १/१/१/१/१/१
सात परमाणु : संघात १=भेद १४
द्विधा १ १/६
२ २/५
३ ३/४

---

१. त. सू. ५/२५–अणवः स्कन्धाश्च।
२. वही ५/२६–संघातभेदेभ्य उत्पद्यन्ते।
३. त. सू. भा. वृ. ५/२६–संघातात् भेदात् संघातभेदादित्येभ्यस्त्रिभ्यः कारणेभ्यः स्कंधाः उत्पद्यन्ते द्विप्रदेशादयः। तद्यथा–द्वयोः परमाणवोः संघातात् द्विप्रदेशः, द्विप्रदेशस्याणोश्च संघातात् त्रिप्रदेशः, एवं संख्येयानामसंख्येयानां च प्रदेशानां संघातात् तावत्प्रदेशाः।
४. वही, ५/२६ भाष्य की टीका–एतदेव ह्यनन्तरोक्ता द्व्यणुकादयः स्कंधाः संघातभेदाभ्यामेकसामयिकाभ्यामुद्भवन्ति, अविभागीयः कालः परमनिरुद्धश्च समयः स तत्रैकस्मिन् समये अभिन्नकाले द्व्यणुकस्कंधादेकोऽणुभिर्भिद्यते परः संहन्यते समकमेवेत्यतः संघातभेदाभ्यामुत्पद्यते।
५. त. सू. ५/२७ भेदादणुः।
६. ठाणं, २/२२१-२२२–
दोहिं ठाणेहिं पोग्गला साहण्णंति, तं जहा–
सइं वा पोग्गला साहण्णंति, परेण वा पोग्गला साहण्णंति।
दोहिं ठाणेहिं पोग्गला भिज्जंति, तं जहा–
सइं वा पोग्गला भिज्जंति, परेण वा पोग्गला भिज्जंति।

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

त्रिधा ४ १/१/५
५ १/२/४
६ २/२/३
७ १/३/३
चतुर्धा ८ १/१/१/४
९ १/१/२/३
१० १/२/२/२
पंचधा ११ १/१/१/१/३
१२ १/१/१/२/२
षड्धा १३ १/१/१/१/१/२
सप्तधा १४ १/१/१/१/१/१/१
आठ परमाणु : संघात १=भेद २१
द्विधा १ १/७
२ २/६
३ ३/५
४ ४/४
त्रिधा ५ १/१/६
६ १/२/५
७ १/३/४
८ २/२/४
९ २/३/३
चतुर्धा १० १/१/१/५
११ १/१/२/४
१२ १/१/३/३
१३ १/२/२/३
१४ २/२/२/२
पंचधा १५ १/१/१/१/४
१६ १/१/१/२/३
१७ १/१/२/२/२
षड्धा १८ १/१/१/१/१/३
१९ १/१/१/१/२/२
सप्तधा २० १/१/१/१/१/१/२
अष्टधा २१ १/१/१/१/१/१/१/१
नव परमाणु : संघात १=भेद २८
द्विधा १ १/८
२ २/७
३ ३/६
४ ४/५
त्रिधा ५ १/१/७
६ १/२/६
७ १/३/५
८ १/४/४
९ २/३/४
१० ३/३/३
चतुर्धा ११ १/१/१/६
१२ १/१/२/५
१३ १/१/३/४
१४ १/२/२/४
१५ १/२/३/३
१६ २/२/२/३
पंचधा १७ १/१/१/१/५
१८ १/१/१/२/४
१९ १/१/१/३/३
२० १/१/२/२/३
२१ १/२/२/२/२
षड्धा २२ १/१/१/१/१/४
२३ १/१/१/१/२/३
२४ १/१/१/२/२/२
सप्तधा २५ १/१/१/१/१/१/३
२६ १/१/१/१/१/२/२
अष्टधा २७ १/१/१/१/१/१/१/२
नवधा २८ १/१/१/१/१/१/१/१/१
दस परमाणु : संघात १=भेद ४०
द्विधा १ १/९
२ २/८
३ ३/७
४ ४/६
५ ५/५
त्रिधा ६ १/१/८
७ १/२/७
८ १/३/६
९ १/४/५
१० २/२/६
११ २/३/५
१२ २/४/४
१३ ३/३/४
चतुर्धा १४ १/१/१/७
१५ १/१/२/६
१६ १/१/३/५
१७ १/१/४/४
१८ १/२/३/४
१९ १/३/३/३
२० २/२/२/४
२१ २/२/३/३
पंचधा २२ १/१/१/१/६
२३ १/१/१/२/५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पंचधा	२४	१/१/१/३/४
	२५	१/१/२/२/४
	२६	१/१/२/३/३
	२७	१/२/२/२/३
	२८	२/२/२/२/२
षड्धा	२९	१/१/१/१/१/५
	३०	१/१/१/१/२/४
	३१	१/१/१/१/३/३
	३२	१/१/१/२/२/३
	३३	१/१/२/२/२/२
सप्तधा	३४	१/१/१/१/१/१/४
	३५	१/१/१/१/१/२/३
	३६	१/१/१/१/२/२/२
अष्टधा	३७	१/१/१/१/१/१/१/३
	३८	१/१/१/१/१/१/२/२
नवधा	३९	१/१/१/१/१/१/१/१/२
दशधा	४०	१/१/१/१/१/१/१/१/१/१

संख्येय परमाणु : संघात १=भेद ४६०

द्विधा	११
त्रिधा	२१
चतुर्धा	३१
पंचधा	४१
षड्धा	५१
सप्तधा	६१
अष्टधा	७१
नवधा	८१
दशधा	९१
संख्येयधा	१

असंख्येय परमाणु : संघात १=भेद ५१७

द्विधा	१२
त्रिधा	२३
चतुर्धा	३४
पञ्चधा	४५
षड्धा	५६
सप्तधा	६७
अष्टधा	७८
नवधा	८९
दशधा	१००
संख्येयधा	१२
असंख्येयधा	१

अनन्त परमाणु : संघात १=भेद ५७५

द्विधा	१३
त्रिधा	२५
चतुर्धा	३७
पञ्चधा	४९
षड्धा	६१
सप्तधा	७३
अष्टधा	८५
नवधा	९७
दशधा	१०९
संख्येयधा	१२
असंख्येयधा	१३
अनन्तधा	१

सर्व भेद–भंग–१६७८

द्विप्रदेशी	१
त्रिप्रदेशी	२
चतुष्प्रदेशी	४
पञ्चप्रदेशी	६
षट्प्रदेशी	१०
सप्त-प्रदेशी	१४
अष्ट-प्रदेशी	२१
नव-प्रदेशी	२८
दश-प्रदेशी	४०
संख्येयप्रदेशी	४६०
असंख्येयप्रदेशी	५१७
अनन्त-प्रदेशी	५७५

पोग्गलपरियट्ट–पदं

८१. एएसि णं भंते! परमाणुपोग्गलाणं साहणणाभेदाणुवाएणं अणंताणंता पोग्गलपरियट्टा समणुगंतव्वा भवंतीति मक्खाया?

हंता गोयमा! एएसि णं परमाणु-पोग्गलाणं साहणणाभेदाणुवाएणं अणंताणंता पोग्गलपरियट्टा समणु-गंतव्वा भवंतीति मक्खाया।

पुद्गलपरिवर्त-पदम्

एतेषां भदन्त! परमाणुपुद्गलानां संहननभेदानुपातेन अनन्तानन्ताः पुद्गलपरिवर्ताः समनुगन्तव्याः भवन्तीति आख्याताः?

हन्त गौतम! एतेषां परमाणुपुद्गलानां संहननभेदानुपातेन अनन्तानन्ताः पुद्गलपरिवर्ताः समनुगन्तव्याः भवन्तीति आख्याताः।

पुद्गल परिवर्त्त पद

८१. भंते! इन परमाणु-पुद्गलों के संघात और भेद के अनुपात से अनंत-अनंत पुद्गल-परिवर्त्त सम्यक् प्रकार से अनुगमनीय होते हैं। क्या ऐसा कहा गया है?

गौतम! हां, इन परमाणु-पुद्गलों के संघात और भेद के अनुपात से अनंत-अनंत पुद्गल-परिवर्त्त सम्यक् प्रकार से अनुगमनीय (एक के बाद एक) होते हैं, ऐसा कहा गया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

८२. कइविहे णं भंते ! पोग्गलपरियट्टे पण्णत्ते ?
गोयमा ! सत्तविहे पोग्गलपरियट्टे पण्णत्ते, तं जहा—ओरालियपोग्गल-परियट्टे, वेउव्वियपोग्गलपरियट्टे, तेयापोग्गलपरियट्टे कम्मापोग्गल-परियट्टे मणपोग्गलपरियट्टे वइपोग्गल-परियट्टे, आणापाणुपोग्गलपरियट्टे ॥

कतिविधः भदन्त! पुद्गलपरिवर्तः प्रज्ञप्तः?
गौतम! सप्तविधः पुद्गलपरिवर्तः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—औदारिकपुद्गल-परिवर्तः, वैक्रियपुद्गलपरिवर्तः, तैजसपुद्गलपरिवर्तः, कर्मकपुद्गल-परिवर्तः, मनःपुद्गलपरिवर्तः, वाक्पुद्गलपरिवर्तः, आनापान-पुद्गलपरिवर्तः।

८२. भंते ! पुद्गल-परिवर्त्त कितने प्रकार के प्रज्ञप्त हैं ?
गौतम ! पुद्गल-परिवर्त्त सात प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे—औदारिक पुद्गल-परिवर्त्त, वैक्रिय पुद्गल-परिवर्त्त, तैजस पुद्गल-परिवर्त्त, कर्म पुद्गल-परिवर्त्त, मनः पुद्गल-परिवर्त्त, वचन पुद्गल-परिवर्त्त और आनापान पुद्गल-परिवर्त्त।

८३. नेरइयाणं भंते ! कतिविहे पोग्गल-परियट्टे पण्णत्ते ?
गोयमा ! सत्तविहे पोग्गलपरियट्टे पण्णत्ते तं जहा—ओरालियपोग्गल-परियट्टे, वेउव्वियपोग्गलपरियट्टे जाव आणापाणुपोग्गलपरियट्टे। एवं जाव वेमाणियाणं ॥

नैरयिकाणां भदन्त! कतिविधः पुद्गलपरिवर्तः प्रज्ञप्तः?
गौतत! सप्तविधः पुद्गलपरिवर्तः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—औदारिकपुद्गल-परिवर्तः, वैक्रिय-पुद्गलपरिवर्तः यावत् आनापान-पुद्गलपरिवर्तः। एवं यावत् वैमानिकानाम्।

८३. भंते ! नैरयिकों के कितने प्रकार के पुद्गल-परिवर्त्त प्रज्ञप्त हैं ?
गौतम ! नैरयिकों के सात प्रकार के पुद्गल-परिवर्त्त प्रज्ञप्त हैं, जैसे—औदारिक पुद्गल-परिवर्त्त, वैक्रिय पुद्गल-परिवर्त्त यावत् आनापान पुद्गल-परिवर्त्त। इसी प्रकार यावत् वैमानिक देवों के।

८४. एगमेगस्स णं भंते ! नेरइयस्स केवइया ओरालियपोग्गलपरियट्टा अतीता ?
अणंता।
केवइया पुरेक्खडा ?
कस्सइ अत्थि, कस्सइ नत्थि। जस्सत्थि जहण्णेणं एक्को वा दो वा तिण्णि वा, उक्कोसेणं संखेज्जा वा असंखेज्जा वा अणंता वा ॥

एकैकस्य भदन्त! नैरयिकस्य कियन्तः औदारिकपुद्गलपरिवर्ताः अतीताः?
अनन्ताः।
कियन्तः पुरस्कृताः?
कस्यचित् अस्ति, कस्यचित् नास्ति। यस्यास्ति जघन्येन एकः वा द्वौ वा त्रयः वा, उत्कर्षेण संख्येयाः वा असंख्येयाः वा अनन्ताः वा।

८४. भंते ! प्रत्येक नैरयिक के अतीत में कितने औदारिक पुद्गल-परिवर्त्त हुए हैं ?
अनंत।
भविष्य में (पुरस्कृत) कितने होंगे ?
किसी के होंगे, किसी के नहीं होंगे। जिसके होंगे, उसके जघन्यतः एक, दो अथवा तीन, उत्कृष्टतः संख्येय, असंख्येय अथवा अनंत।

८५. एगमेगस्स णं भंते ! असुरकुमारस्स केवइया ओरालियपोग्गलपरियट्टा अतीता ?
अणंता।
केवइया पुरेक्खडा ?
कस्सइ अत्थि, कस्सइ नत्थि। जस्सत्थि जहण्णेणं एक्को वा दो वा तिण्णि वा, उक्कोसेणं संखेज्जा वा असंखेज्जा वा अणंता वा। एवं जाव वेमाणियस्स ॥

एकैकस्य भदन्त! असुरकुमारस्य कियन्तः औदारिकपुद्गलपरिवर्ताः अतीताः?
अनन्ताः।
कियन्तः पुरस्कृताः?
कस्यचित् अस्ति, कस्यचित् नास्ति। यस्यास्ति जघन्येन एकः वा द्वौ वा त्रयः वा, उत्कर्षेण संख्येयाः वा असंख्येयाः वा अनन्ताः वा। एवं यावत् वैमानिकस्य।

८५. भंते ! प्रत्येक असुरकुमार के अतीत में कितने औदारिक पुद्गल-परिवर्त्त हुए हैं ?
अनंत।
भविष्य में कितने होंगे ?
किसी के होंगे, किसी के नहीं होंगे। जिसके होंगे, उसके जघन्यतः एक, दो अथवा तीन, उत्कृष्टतः संख्येय, असंख्येय अथवा अनंत। इसी प्रकार यावत् वैमानिक के।

८६. एगमेगस्स णं भंते ! नेरइयस्स केवइया वेउव्वियपोग्गलपरियट्टा अतीता ?
अणंता।
एवं जहेव ओरालियपोग्गलपरियट्टा

८६. एकैकस्य भदन्त! नैरयिकस्य कियन्तः वैक्रियपुद्गलपरिवर्ताः अतीताः?
अनन्ताः।
एवं यथैव औदारिकपुद्गलपरिवर्ताः

८६. भंते ! प्रत्येक नैरयिक को अतीत में कितने वैक्रिय पुद्गल-परिवर्त्त हुए हैं ?
अनंत।
इसी प्रकार जैसे औदारिक पुद्गल-परिवर्त्त

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तहेव वेउव्वियपोग्गलपरियट्टावि भाणियव्वा। एवं जाव वेमाणियस्स। एवं जाव आणापाणुपोग्गलपरियट्टा। एते एगत्तिया सत्त दंडगा भवंति॥

तथैव वैक्रियपुद्गलपरिवर्ताः अपि भणितव्याः। एवं यावत् वैमानिकस्य। एवं यावत् आनापानपुद्गलपरिवर्ताः। एते एकत्विकाः सप्त दण्डकाः भवन्ति।

की वक्तव्यता वैसे ही वैक्रिय पुद्गल-परिवर्त्त की वक्तव्यता। इसी प्रकार यावत् वैमानिक के। इसी प्रकार यावत् आनापान पुद्गल-परिवर्त्त की वक्तव्यता। यह परिवर्त्त चौबीस दंडकों में ही होता है। इनके प्रत्येक जीव की अपेक्षा सात-सात दंडक होते हैं।

८७. नेरइयाणं भंते! केवइया ओरालिय-पोग्गलपरियट्टा अतीता? केवइया पुरेक्खडा?
अणंता। एवं जाव वेमाणियाणं। एवं वेउव्वियपोग्गलपरियट्टावि। एवं जाव आणापाणुपोग्गलपरियट्टा वेमाणियाणं। एवं एए पोहत्तिया सत्त चउव्वीसति-दंडगा॥

नैरयिकाणां भदन्त! कियन्तः औदारिक-पुद्गलपरिवर्ताः अतीताः? कियन्तः पुरस्कृताः?
अनन्ताः। एवं यावत् वैमानिकानाम्। एवं वैक्रिय-पुद्गलपरिवर्ताः अपि। एवं यावत् आनापानपुद्गलपरिवर्ताः वैमानिकानाम्। एवम् एते पृथक्त्वकाः सप्तचतुर्विंशति-दण्डकाः।

८७. भंते! नैरयिकों के अतीत में कितने औदारिक पुद्गल-परिवर्त्त हुए हैं? भविष्य में कितने होंगे?
अनंत। इसी प्रकार यावत् वैमानिकों में परिवर्त्त की वक्तव्यता। इसी प्रकार वैक्रिय पुद्गल-परिवर्त्त की भी वक्तव्यता। इसी प्रकार यावत् आनापान पुद्गल-परिवर्त्त की वैमानिकों में वक्तव्यता। यह परिवर्त्त पृथक्-पृथक् अनेक जीवों की अपेक्षा चौबीस दंडकों में ही होता है।

८८. एगमेगस्स णं भंते! नेरइयस्स नेरइयत्ते केवतिया ओरालियपोग्गल-परियट्टा अतीता?
नत्थि एक्को वि।
केवतिया पुरेक्खडा?
नत्थि एक्को वि॥

एकैकस्य भदन्त! नैरयिकस्य नैरयिकत्वे कियन्तः औदारिकपुद्गल-परिवर्ताः अतीताः?
नास्ति एकोऽपि।
कियन्तः पुरस्कृताः?
नास्ति एकोऽपि

८८. भंते! प्रत्येक नैरयिक के नैरयिक के रूप में अतीत में कितने औदारिक पुद्गल-परिवर्त्त हुए हैं?
एक भी नहीं।
भविष्य में कितने होंगे?
एक भी नहीं।

८९. एगमेगस्स णं भंते! नेरइयस्स असुरकुमारत्ते केवतिया ओरालिय-पोग्गलपरियट्टा अतीता?
एवं चेव। एवं जाव थणियकुमारत्ते॥

एकैकस्य भदन्त! नैरयिकस्य असुरकुमारत्वे कियन्तः औदारिक-पुदगलपरिवर्ताः अतीताः?
एवं चैव। एवं यावत् स्तनितकुमारत्वे।

८९. भंते! एक-एक नैरयिक के असुरकुमार के रूप में अतीत में कितने औदारिक पुद्गल-परिवर्त्त हुए हैं?
पूर्ववत्। इसी प्रकार यावत् स्तनितकुमार के रूप में।

९०. एगमेगस्स णं भंते! नेरइयस्स पुढविक्काइयत्ते केवतिया ओरालिय-पोग्गलपरियट्टाअतीता?
अणंता।
केवतिया पुरेक्खडा?
कस्सइ अत्थि, कस्सइ नत्थि। जस्सत्थि जहण्णेणं एक्को वा दो वा तिण्णि वा उक्कोसेणं संखेज्जा वा असंखेज्जा वा अणंता वा। एवं जाव मणुस्सत्ते। वाणमंतर-जोइसिय-वेमाणियत्ते जहा असुरकुमारत्ते॥

एकैकस्य भदन्त! नैरयिकस्य पृथ्वीकायिकत्वे कियन्तः औदारिक-पुद्गलपरिवर्ताः अतीताः?
अनन्ताः।
कियन्तः पुरस्कृताः?
कस्यचित् अस्ति कस्यचित् नास्ति। यस्यास्ति जघन्येन एकः वा द्वौ वा त्रयः वा उत्कर्षेण संख्येयाः वा असंख्येयाः वा अनन्ता वा। एवं यावत् मनुष्यत्वे। वानमन्तर-ज्योतिष्क-वैमानिकत्वे यथा असुरकुमारत्वे।

९०. भंते! एक-एक नैरयिक के पृथ्वीकायिक के रूप में अतीत में कितने औदारिक पुद्गल-परिवर्त्त हुए हैं?
अनंत।
भविष्य में कितने होंगे?
किसी के होंगे, किसी के नहीं होंगे। जिसके होंगे, उसके जघन्यतः एक, दो अथवा तीन, उत्कृष्टतः संख्येय, असंख्येय अथवा अनंत। इसी प्रकार यावत् मनुष्य के रूप में। वाणमंतर, ज्योतिष्क, और वैमानिक के रूप में असुरकुमार की भांति वक्तव्यता।

९१. एगमेगस्स णं भंते! असुरकुमारस्स

एकैकस्य भदन्त! असुरकुमारस्य

९१. भंते! प्रत्येक असुरकुमार के नैरयिक के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नेरइयत्ते केवतिया ओरालियपोग्गल-परियट्टा?
एवं जहा नेरइयस्स वत्तव्वया भणिया, तहा असुरकुमारस्स वि भाणियव्वा जाव वेमाणियत्ते। एवं जाव थणिय-कुमारस्स। एवं पुढविक्काइयस्स वि। एवं जाव वेमाणियस्स । सव्वेसिं एक्को गमो ॥

नैरयिकत्वे कियन्तः औदारिक-पुद्गलपरिवर्ताः?
एवं यथा नैरयिकस्य वक्तव्यता भणिता, तथा असुरकुमारस्यापि भणितव्या यावत् वैमानिकत्वे। एवं यथा स्तनितकुमारस्य। एवं पृथ्वीकायिकस्यापि एवं यावत् वैमानिकस्य। सर्वेषाम् एकः गमः।

रूप में अतीत में कितने औदारिक पुद्गल-परिवर्त्त हुए हैं?
इसी प्रकार जैसे नैरयिक की वक्तव्यता, वैसे ही असुरकुमार की वक्तव्यता यावत् वैमानिक के रूप में। इसी प्रकार यावत् स्तनितकुमार की वक्तव्यता। इसी प्रकार पृथ्वीकायिक की भी वक्तव्यता। इसी प्रकार यावत् वैमानिक की भी वक्तव्यता। सबका एक ही गमक-समान वक्तव्यता है।

६२. एगमेगस्स णं भंते! नेरइयस्स नेरइयत्ते केवतिया वेउव्वियपोग्गल-परियट्टा अतीता?
अणंता।
केवतिया पुरेक्खडा?
एकुत्तरिया जाव अणंता वा। एवं जाव थणियकुमारत्ते॥

एकैकस्य भदन्त! नैरयिकस्य नैरयिकत्वे कियन्तः वैक्रियपुद्गलपरिवर्ताः अतीताः?
अनन्ताः।
कियन्तः पुरस्कृताः?
एकोत्तरिकाः यावत् अनन्ता वा । एवं यावत् स्तनितकुमारत्वे।

६२. भंते! प्रत्येक नैरयिक के नैरयिक के रूप में अतीत में कितने वैक्रिय पुद्गल-परिवर्त्त हुए हैं?
अनंत।
भविष्य में कितने होंगे?
एकोत्तरिक-किसी के होंगे, किसी के नहीं होंगे। जिसके होंगे उसके जघन्यतः एक, दो अथवा तीन, उत्कृष्टतः संख्येय, असंख्येय अथवा अनंत। इसी प्रकार यावत् स्तनितकुमार के रूप में।

६३. पुढविक्काइयत्ते-पुच्छा ।
नत्थि एक्कोवि।
केवतिया पुरेक्खडा?
नत्थि एक्कोवि। एवं जत्थ वेउव्विय-सरीरं तत्थ एकुत्तरिओ, जत्थ नत्थि तत्थ जहा पुढविक्काइयत्ते तहा भाणियव्वं जाव वेमाणियस्स वेमाणियत्ते।
तेयापोग्गलपरियट्टा, कम्मापोग्गल-परियट्टा य सव्वत्थ एकुत्तरिया, भाणियव्वा, मणपोग्गलपरियट्टा सव्वेसु पंचिंदिएसु एगुत्तरिया विगलिंदिएसु नत्थि। वइपोग्गल-परियट्टा एवं चेव, नवरं-एगिंदिएसु नत्थि भाणियव्वा। आणापाणुपोग्गल-परियट्टा सव्वत्थ एकुत्तरिया जाव वेमाणियस्स वेमाणियत्ते ॥

पृथ्वीकायिकत्वे-पृच्छा ।
नास्ति एकोऽपि।
कियन्तः पुरस्कृताः?
नास्ति एकोऽपि। एवं यत्र वैक्रियशरीरं तत्र एकोत्तरिकः, यत्र नास्ति तत्र यथा पृथ्वीकायिकत्वे तथा भणितव्यं यावत् वैमानिकस्य वैमानिकत्वे। तैजस-पुद्गलपरिवर्ताः, कर्मकपुद्गलपरिवर्ताः, च सर्वत्र एकोत्तरिकाः भणितव्याः, मनःपुद्गलपरिवर्ताः सर्वेषु पञ्चेन्द्रियेषु एकोत्तरिकाः, विकलेन्द्रियेषु नास्ति। वाक्पुद्गलपरिवर्ताः, एवं चैव, नवरम्-एकेन्द्रियेषु नास्ति भणितव्या आनापानपुद्गलपरिवर्ताः सर्वत्र एकोत्तरिकाः यावत् वैमानिकस्य वैमानिकत्वे ।

६३. पृथ्वीकायिक के रूप में-पृच्छा।
एक भी नहीं।
भविष्य में कितने होंगे?
एक भी नहीं। इसी प्रकार जहां वैक्रिय शरीर हैं, वहां एकोत्तरिक (सूत्र ६२ की भांति), जहां वैक्रिय शरीर नहीं है वहां पृथ्वीकायिकत्व की भांति वक्तव्य है यावत् वैमानिक का वैमानिक के रूप में। तैजस पुद्गल-परिवर्त्त और कर्म पुद्गल-परिवर्त्त सर्वत्र (नैरयिक से वैमानिक तक) एकोत्तरिक वक्तव्य हैं। मनःपुद्गल-परिवर्त्त समस्त पंचेन्द्रियों में एकोत्तरिक-किसी के होंगे, किसी के नहीं होंगे। जिसके होंगे, उसके जघन्यतः एक, दो अथवा तीन, उत्कृष्टतः संख्येय, असंख्येय अथवा अनंत। विकलेन्द्रियों में नहीं होंगे। इसी प्रकार वचन पुद्गल-परिवर्त्त की वक्तव्यता, इतना विशेष है-एकेन्द्रियों में वक्तव्य नहीं है। आनापान पुद्गल-परिवर्त्त सर्वत्र (नैरयिक से वैमानिक तक चौबीस दंडकों में) एकोत्तरिक यावत् वैमानिक के वैमानिक रूप में।

६४. नेरइयाणं भंते! नेरइयत्ते केवतिया

नैरयिकाणां भदन्त! नैरयिकत्वे कियन्तः

६४. भंते! नैरयिकों के नैरयिक के रूप में

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ओरालियपोग्गलपरियट्टा अतीता ?

नत्थि एक्कोवि।
केवतिया पुरेक्खडा ?
नत्थि एक्कोवि। एवं जाव थणियकुमारत्ते॥

औदारिकपुद्गलपरिवर्ताः अतीताः?

नास्ति एकोऽपि।
कियन्तः पुरस्कृताः?
नास्ति एकोऽपि। एवं यावत् स्तनित कुमारत्वे ।

अतीत में कितने औदारिक पुद्गल-परिवर्त्त हुए हैं?

एक भी नहीं।
भविष्य में कितने होंगे?
एक भी नहीं। इसी प्रकार यावत् स्तनितकुमार के रूप में।

९५. पुढविकाइयत्ते–पुच्छा ।
अणंता ।
केवतिया पुरेक्खडा ?
अणंता। एवं जाव मणुस्सत्ते। वाणमंतर-जोइसिय-वेमाणियत्ते जहा नेरइयत्ते । एवं जाव वेमाणियाणं वेमाणियत्ते। एवं सत्त वि पोग्गलपरियट्टा भाणियव्वा–जत्थ अत्थि तत्थ अतीता वि पुरेक्खडा वि अणंता भाणियव्वा, जत्थ नत्थि तत्थ दोवि नत्थि भाणियव्वा जाव–

पृथ्वीकायिकत्वे–पृच्छा ।
अनन्ताः
कियन्तः पुरस्कृताः?
अनन्ताः। एवं यावत् मनुष्यत्वे। वानमन्तर-ज्योतिष्क-वैमानिकत्वे यथा नैरयिकत्वे। एवं यावत् वैमानिकानां वैमानिकत्वे। एवं सप्त अपि पुद्गल-परिवर्ताः भणितव्याः–यत्र अस्ति तत्र अतीताः अपि पुरस्कृता अपि अनन्ताः भणितव्याः, यत्र नास्ति तत्र द्वौ अपि नास्ति भणितव्यौ यावत्–

९५. पृथ्वीकायिक के रूप में–पृच्छा
अनंत।
भविष्य में कितने होंगे ?
अनंत। इसी प्रकार यावत् मनुष्यत्व में। वाणमंतर, ज्योतिष्क और वैमानिक के रूप में नैरयिकत्व की भांति वक्तव्यता। इसी प्रकार यावत् वैमानिकों के वैमानिक के रूप में। इसी प्रकार सात पुद्गल-परिवर्त्त वक्तव्य हैं–जहां हैं, वहां अतीत और भविष्य में अनंत वक्तव्य हैं। जहां नहीं हैं, वहां अतीत और भविष्य दोनों में वक्तव्य नहीं हैं यावत्–

९६. वेमाणियाणं वेमाणियत्ते केवतिया आणपाणुपोग्गलपरियट्टा अतीता?
अणंता।
केवतिया पुरेक्खडा ?
अणंता॥

वैमानिकानां वैमानिकत्वे कियन्तः आनापानपुद्गलपरिवर्ताः अतीताः?
अनन्ताः।
कियन्तः पुरस्कृताः?
अनन्ताः।

९६. वैमानिकों के वैमानिक के रूप में अतीत में कितने आनापान पुद्गल-परिवर्त्त हुए हैं?
अनंत।
भविष्य में कितने होंगे ?
अनंत।

भाष्य

१. सूत्र ८१-९६

पुद्गल-परिवर्त्त संसार भ्रमण का एक अद्भुत लेखा-जोखा है। एक परमाणु द्व्यणुक आदि अनंत अणुओं के साथ संयोग और वियोग करता हुआ अनंत परिवर्त्त (परिवर्तन) करता है। परमाणु अनंत हैं और प्रत्येक परमाणु में (संयोग-वियोग जनित) अनंत परिवर्त्त होते हैं। इस प्रकार परिवर्त्त अनंतानंत हो जाते हैं।[1] अनादि काल से संसार में परिभ्रमण करने वाला जीव पुद्गल का परिवर्तन करता रहता है। पुद्गल की आठ वर्गणाएं होती हैं।[2] आहारक शरीर केवल मुनि के ही होता है इसलिए उसके अनंतानंत परिवर्त्त नहीं होते। प्रस्तुत प्रकरण में शेष सात वर्गणाओं के आधार पर सात परिवर्त्त बतलाए गए हैं–

औदारिक पुद्गल-परिवर्त्त–औदारिक शरीर में वर्तमान जीव औदारिक शरीर प्रायोग्य सब पुद्गल द्रव्यों का औदारिक शरीर के रूप में परिणमन करता है। यह औदारिक पुद्गल-परिवर्त्त है।

इसी प्रकार शेष छह वर्गणा के प्रायोग्य सब पुद्गल द्रव्यों का अपने-अपने रूप में परिणमन करने पर वैक्रिय पुद्गल-परिवर्त्त आदि प्रकार बनते हैं। नैरयिक से लेकर वैमानिक तक के चौबीस दंडकों में सभी पुद्गल परिवर्त्त होते हैं।

व्यक्ति के विषय में अतीत और भविष्य–दो दृष्टियों से विचार किया गया है। नैरयिक व्यक्ति अतीत में अनंत पुद्गल-परिवर्त्त कर चुका है।[3] भविष्य में कोई नैरयिक पुद्गल-परिवर्त्त करता है, कोई नहीं करता। अभव्य और दूर भव्य (सुदूर काल से मोक्ष में जाने वाला) नैरयिक जीव के पुद्गल-परिवर्त्त होंगे। जो नैरयिक जीव नरक से निकल कर मनुष्य जन्म ले संख्येय अथवा असंख्येय भवों को पार कर मुक्त होगा, उसके पुद्गल-परिवर्त्त नहीं होगा। पुद्गल-परिवर्त्त अनंतकाल से पूरित होता है इसलिए उसका निषेध किया गया है।[4]

१. भ. वृ. १२/८१ : साहण्ण त्ति प्राकृतत्वात् संहनन–संघातो, भेदश्च–वियोजनं तयोरनुपातो–योगः संहननभेदानुपातस्तेन सर्वपुद्गलद्रव्यैः सह परमाणूनां संयोगेन वियोगेन चेत्यर्थः 'अणंताणंत त्ति अनंतेन गुणिता अनंता अनंतानंताः, एकोऽपि हि परमाणुर्द्व्यणुकादिभिरनन्ताणुकान्तैर्द्रव्यैः सह संयुज्यमानोऽनन्तान् परिवर्त्तान् लभते, प्रतिद्रव्यं परिवर्तभावात् अनंतत्वाच्च परमाणूनां, प्रतिपरमाणु चानन्तत्वात् परिवर्तानां परमाणु-पुद्गलपरिवर्त्तानामनन्तानंतत्वं द्रष्टव्यमिति।

२. भ. १/१६-२४ का भाष्य।

३. भ. वृ. १२/८४–अतीतानंता अनादित्वात् अतीतकालस्य जीवस्य चानादित्वात् अपरापरपुद्गलग्रहणस्वरूपत्वाच्चेति।

४. वही, १२/८४–कस्यापि जीवस्य दूरभव्यस्याभव्यस्य वा ते सन्ति, कस्यापि न सन्ति, उद्धृत्य यो मानुषत्वमासाद्य सिद्धिं यास्यति संख्ययैरसंख्येयैर्वा भवैर्यास्यति यः सिद्धिं तस्यापि परिवर्त्तो नास्ति अनंतकालपूर्यत्वात्तस्येति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१. एक नैरयिक के औदारिक पुद्गल-परिवर्त्त–

अतीतकाल	भविष्यकाल
अनन्त	किसी के होगा, किसी के नहीं, जिसके होगा– ज. १,२,३ उ. संख्येय, असंख्येय, अनंत।

२. एक असुरकुमार के औदारिक पुद्गल-परिवर्त्त–

अतीतकाल	भविष्यकाल
अनन्त	किसी के होगा,किसी के नहीं, जिसके होगा– ज. १,२,३ उ. संख्येय, असंख्येय, अनंत।

इसी तरह वैमानिक तक सभी दंडक वक्तव्य हैं।

इसी तरह वैक्रिय आदि सातों ही पुद्गल-परिवर्त्त वक्तव्य हैं।

३. नैरयिकों के औदारिक पुद्गल-परिवर्त्त–

अतीतकाल	भविष्यकाल
अनंत	अनंत

इसी तरह वैमानिकों तक सभी दंडक वक्तव्य हैं।

इसी तरह वैक्रिय आदि सातों ही पुद्गल-परिवर्त्त वक्तव्य हैं।

४. एक नैरयिक के नैरयिक रूप में औदारिक पुद्गल-परिवर्त्त–

अतीतकाल	भविष्यकाल
नहीं	नहीं

५. एक नैरयिक के असुरकुमार यावत् स्तनितकुमार के रूप में औदारिक पुद्गल-परिवर्त्त–

अतीतकाल	भविष्यकाल
नहीं	नहीं

६. एक नैरयिक के पृथ्वीकायिक रूप में औदारिक पुद्गल-परिवर्त्त–

अतीतकाल	भविष्यकाल
अनंत	किसी के होगा, किसी के नहीं, जिसके होगा– ज. १,२,३, उ. संख्येय, असंख्येय, अनन्त।

इसी तरह मनुष्य-रूप में तक दंडक (१३–२१) वक्तव्य हैं।

वाणमंतर, ज्योतिष्क, वैमानिक की रूप में असुरकुमार की भांति वक्तव्यता।

७. एक नैरयिक के नैरयिक रूप में वैक्रिय पुद्गल-परिवर्त्त–

अतीतकाल	भविष्यकाल
अनंत	किसी के होगा, किसी के नहीं, जिसके होगा– ज. १,२,३, उ. संख्येय, असंख्येय, अनंत।

इसी तरह स्तनितकुमार रूप में तक वक्तव्य हैं।

८. एक नैरयिक के पृथ्वीकायिक रूप में वैक्रिय पुद्गल-परिवर्त्त–

अतीतकाल	भविष्यकाल
नहीं	नहीं

इसी तरह अप्काय, तेजस्काय, वनस्पतिकाय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय रूप में वक्तव्य है।

वायुकायिक, तिर्यंच पञ्चेन्द्रिय, मनुष्य, वाणमंतर, ज्योतिष्क, वैमानिक की रूप में नैरयिक की तरह वक्तव्यता।

इसी तरह असुरकुमार से वैमानिक के वैमानिक रूप तक वक्तव्यता।

९. एक नैरयिक के नैरयिक-रूप में तैजस-कर्म-आनापान पुद्गल-परिवर्त्त–

अतीतकाल	भविष्यकाल
अनंत	किसी के होगा, किसी के नहीं, जिसके होगा– ज. १,२,३, उ. संख्येय, असंख्येय, अनन्त।

इसी तरह यावत् वैमानिक रूप में।

इसी तरह शेष सभी दंडकों के सभी दंडकों के रूप में वक्तव्य हैं।

१०. एक नैरयिक के नैरयिक रूप में मनःपुद्गल-परिवर्त्त–

अतीतकाल	भविष्यकाल
अनंत	किसी के होगा, किसी के नहीं। जिसके होगा– ज. १,२,३, उ. संख्येय, असंख्येय, अनंत।

इसी तरह एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय को छोड़ सभी दंडकों के रूप में वक्तव्य है।

११. एक नैरयिक के एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय रूप में मनः पुद्गल–परिवर्त्त–

अतीतकाल	भविष्यकाल
नहीं	नहीं

इसी तरह शेष सभी दंडकों की सभी दंडकों के रूप में वक्तव्यता।

१२. एक नैरयिक के नैरयिक रूप में वचन पुद्गल-परिवर्त्त–

अतीतकाल	भविष्यकाल
अनंत	किसी के होगा, किसी के नहीं, जिसके होगा– ज. १,२,३, उ. संख्येय, असंख्येय, अनंत।

इसी तरह एकेन्द्रिय को छोड़ सभी दंडकों में वक्तव्यता।

१३. एक नैरयिक के एकेन्द्रिय रूप में वचन पुद्गल-परिवर्त्त–

अतीतकाल	भविष्यकाल
नहीं	नहीं

इसी तरह एकेन्द्रिय को छोड़ सभी दंडकों में वक्तव्यता।

१४. नैरयिक के नैरयिक रूप में औदारिक पुद्गल-परिवर्त्त–

अतीतकाल	भविष्यकाल
नहीं	नहीं

इसी तरह यावत् स्तनितकुमार रूप में।

१५. नैरयिकों के पृथ्वीकायिक रूप में औदारिक पुद्गल-परिवर्त्त–

अतीतकाल	भविष्यकाल
नहीं	नहीं

इसी तरह यावत् मनुष्य रूप में।

वाणमंतर, ज्योतिष्क, वैमानिक रूप में नैरयिक की तरह वक्तव्य हैं।

१६. इसी तरह यावत् वैमानिकों के वैमानिक रूप में औदारिक पुद्गल-परिवर्त्त–

अतीतकाल	भविष्यकाल
नहीं	नहीं

इसी तरह सातों पुद्गल-परिवर्त्त वक्तव्य हैं, जो जहां है वहां अतीतकाल व भविष्यकाल में अनंत। जहां नहीं है वहां दोनों ही नहीं, यावत् वैमानिकों के वैमानिक रूप में आनापान पुद्गल-परिवर्त्त–

अतीतकाल	भविष्यकाल
अनंत	अनंत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

९७. से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ–ओरालियपोग्गलपरियट्टे ओरालियपोग्गलपरियट्टे?

गोयमा! जण्णं जीवेणं ओरालियसरीरे वट्टमाणेणं ओरालियसरीरपायोग्गाइं दव्वाइं ओरालियसरीरत्ताए गहियाइं बद्धाइं पुट्ठाइं कडाइं पट्ठवियाइं निविट्ठाइं अभिनिविट्ठाइं अभिसमण्णागयाइं परियादियाइं परिणामियाइं निज्जिण्णाइं निसिरियाइं निसिट्ठाइं भवंति।

से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ–ओरालियपोग्गलपरियट्टे ओरालियपोग्गलपरियट्टे।

एवं वेउव्वियपोग्गलपरियट्टेवि, नवरं–वेउव्वियसरीरे वट्टमाणेणं वेउव्वियसरीरपायोग्गाइं दव्वाइं वेउव्वियसरीरत्ताए गहियाइं, सेसं तं चेव सव्वं, एवं जाव आणापाणुपोग्गलपरियट्टे, नवरं–आणापाणुपायोग्गाइं सव्वदव्वाइं आणापाणुत्ताए गहियाइं, सेसं तं चेव॥

तत् केनार्थेन भदन्त! एवम् उच्यते–औदारिकपुद्गलपरिवर्तः औदारिकपुद्गलपरिवर्तः?

गौतम! यत् जीवेन औदारिकशरीरे वर्तमानेन औदारिकशरीरप्रायोग्यानि द्रव्याणि औदारिकशरीरत्वेन गृहीतानि बद्धानि स्पृष्टानि कृतानि प्रस्थापितानि निर्विष्टानि अभिनिर्विष्टानि अभिसमन्वागतानि पर्याप्तानि परिणामितानि निर्जीर्णानि निःसृतानि निःसृष्टानि भवन्ति।

तत् तेनार्थेन गौतम! एवम् उच्यते–औदारिकपुद्गलपरिवर्तः औदारिकपुद्गलपरिवर्तः। एवं वैक्रियपुद्गलपरिवर्तोऽपि, नवरम्–वैक्रियशरीरे वर्तमानेन वैक्रियशरीरप्रायोग्यानि द्रव्याणि वैक्रिय-शरीरत्वेन गृहीतानि, शेषं तत् चैव सर्वम्, एवं यावत् आनापानपुद्गल-परिवर्तः, नवरम्–आनापानप्रायोग्यानि सर्वद्रव्याणि आनापानत्वेन गृहीतानि, शेषं तच्चैव।

९७. भंते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है–औदारिक पुद्गल-परिवर्त्त औदारिक पुद्गल-परिवर्त्त है?

गौतम! औदारिक शरीर में वर्तन करते हुए जीव के द्वारा औदारिक शरीर के प्रायोग्य द्रव्य औदारिक शरीर के रूप में गृहीत, बद्ध, स्पृष्ट, कृत, प्रस्थापित, निविष्ट, अभिनिविष्ट (तीव्र अनुभाव के रूप में प्रस्थापित), अभिसमन्वागत (उदय के अभिमुख), पर्याप्त, परिणामित, निर्जीर्ण, निःसृत और निःसृष्ट होते हैं।

गौतम! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है–औदारिक पुद्गल-परिवर्त्त औदारिक पुद्गल-परिवर्त्त है। इसी प्रकार वैक्रिय पुद्गल-परिवर्त्त भी वक्तव्य है, इतना विशेष है–वैक्रिय शरीर में वर्तन करते हुए जीव के द्वारा वैक्रिय शरीर के प्रायोग्य द्रव्यों का वैक्रिय शरीर के रूप में ग्रहण, शेष पूर्ववत्, इसी प्रकार यावत् आनापान पुद्गल-परिवर्त्त, इतना विशेष है–आनापान के प्रायोग्य समस्त द्रव्यों का आनापान के रूप में ग्रहण, शेष पूर्ववत्।

भाष्य

१. सूत्र ९७

प्रस्तुत सूत्र में औदारिक पुद्गल-परिवर्त आदि के नामकरण का प्रयोजन बतलाया गया है। औदारिक पुद्गल-परिवर्त्त करने वाला जीव औदारिक वर्गणा के पुद्गलों की तेरह अवस्थाओं से गुजरता है–

१. **गृहीत**–जीव के द्वारा स्वीकृत।

२. **बद्ध**–जीव के प्रदेशों द्वारा गृहीत पुद्गलों का आत्मीकरण।

३. **स्पृष्ट**–जीव के द्वारा उन पुद्गलों का स्पर्श होता है। पुट्ठ का वैकल्पिक अर्थ है पुष्ट। जीव अन्य-अन्य पुद्गलों का ग्रहण कर पुष्ट करता रहता है।

४. **कृत**–परिणामान्तर का कार्य चलता रहता है।

ये प्रथम चार अवस्थाएं औदारिक पुद्गलों के ग्रहण से संबद्ध हैं।

१. **प्रस्थापित**–गृहीत पुद्गलों का स्थिरीकरण होता है।

२. **निर्विष्ट**–जीव उन पुद्गलों का विन्यास करता है।

३. **अभिनिविष्ट**–विधिपूर्वक स्थापित पुद्गलों का जीव से संलग्न हो जाना।

४. **अभिसमन्वागत**–गृहीत पुद्गलों में विधि पूर्वक रसानुभूति की क्षमता उत्पन्न होना।

५. **पर्याप्त**–जीव के अवयवों द्वारा उन पुद्गलों के रस का ग्रहण करना।

ये पांच अवस्थाएं स्थिति से संबद्ध हैं।

१. **परिणामित**–रसानुभूति की दृष्टि से परिणामांतर होता है।

२. **निर्जीर्ण**–रस के क्षीण होने पर वे पुद्गल निर्जीर्ण होते हैं।

३. **निःसृत**–निर्जीर्ण पुद्गल जीव प्रदेशों से निकलने लग जाते हैं।

४. **निसृष्ट**–जीव के प्रदेशों से वे पुद्गल सर्वथा[1] त्यक्त होते हैं।

ये चार अवस्थाएं विगमन से संबद्ध हैं।[2]

---

१. भ. वृ. १२/९७–'गहियाइं' ति स्वीकृतानि, 'बद्धाइं ति जीव प्रदेशैरात्मीकरणात्, कुतः? इत्याह– 'पुट्ठाइं' ति यतः पूर्वं स्पृष्टानि तनौ रेणुवत् अथवा पुष्टानि पोषितान्यपरापरग्रहणतः कडाइं ति पूर्वं परिणामापेक्षया परिणामान्तरेण कृतानि 'पट्ठवियाइं' ति प्रस्थापितानि-स्थिरीकृतानि जीवेन, 'निविट्ठाइं' ति यतः स्थापितानि ततो निविष्टानि जीवेन स्वयम्, 'अभिनिविट्ठाइं' ति अभि-अभिविधिना निविष्टानि सर्वात्मपि, जीवे लग्नानीत्यर्थः 'अभिसमन्नागयाइं' ति अभिविधिना सर्वाणीत्यर्थः समन्वागतानि संप्राप्तानि जीवेन रसानुभूतिं समाश्रित्य परियाइयाइं ति पर्याप्तानि जीवेन सर्वावयवैरात्तानि तद्रसादानद्वारेण 'परिणामियाइं' ति रसानुभूतित एव परिणामान्तरमापादितानि। 'निज्जिण्णाइं' ति क्षीणरसीकृतानि 'निसिरियाइं' ति जीवप्रदेशेभ्यो निःसृतानि, कथं?–निसिट्ठाइं ति जीवेन निःसृष्टानि स्वप्रदेशेभ्यस्त्याजितानि।

२. वही, भ. १२/९७–इहाद्यानि चत्वारि पदान्यौदारिकपुद्गलानां ग्रहण-विषयाणि तदुत्तराणि तु पञ्चस्थितिविषयाणि तदुत्तराणि तु चत्वारि विगमविषयाणीति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

९८. ओरालियपोग्गलपरियट्टे णं भंते! केवइकालस्स निव्वत्तिज्जइ?
गोयमा! अणंताहिं ओसप्पिणीहिं उस्सप्पिणीहिं एवतिकालस्स निव्वत्तिज्जइ। एवं वेउव्वियपोग्गलपरियट्टे वि। एवं जाव आणापाणुपोग्गलपरियट्टेवि॥

औदारिक पुद्गलपरिवर्त्तः भदन्त! कियत्कालात् निर्वर्त्यते?
गौतम! अनन्ताभिः अवसर्पिणीभिः उत्सर्पिणीभिः एतावत्कालात निर्वर्त्यते। एवं वैक्रियपुद्गलपरिवर्तोऽपि। एवं यावत् आनापानपुद्गलपरिवर्तोऽपि।

९८. भंते! औदारिक पुद्गल-परिवर्त्त कितने काल में निर्वर्तित होता है?
गौतम! अनंत अवसर्पिणी, उत्सर्पिणी काल में निर्वर्तित-निष्पन्न होता है।
इसी प्रकार यावत् आनापान पुद्गल-परिवर्त्त भी।

भाष्य

१. सूत्र ९८

प्रस्तुत सूत्र में पुद्गल-परिवर्त्त का कालमान बतलाया गया है।

एक पुद्गल-परिवर्त्त का कालमान अनंत उत्सर्पिणी और अनंत अवसर्पिणी जितना है। देखें अनुयोगद्वार सूत्र ६१६ का टिप्पण।

९९. एयस्स णं भंते! ओरालिय-पोग्गलपरियट्टनिव्वत्तणाकालस्स, वेउव्वियपोग्गलपरियट्टनिव्वत्तणाकालस्स जाव आणापाणुपोग्गलपरियट्टनिव्वतणाकालस्स य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा? बहुया वा? तुल्ला वा? विसेसाहिया वा?

एतस्य भदन्त! औदारिकपुद्गलपरिवर्तनिर्वर्तनाकालस्य, वैक्रिय-पुद्गलपरिवर्तनिर्वर्तनाकालस्य यावत् आनापानपुद्गलपरिवर्तनिर्वर्तनाकालस्य च कतरे कतरेभ्यः अल्पाः वा? बहुकाः वा? तुल्याः वा? विशेषाधिकाः वा?

९९. भंते! औदारिक पुद्गल-परिवर्त्त निर्वर्तना काल, वैक्रिय पुद्गल-परिवर्त्त निर्वर्तना-काल यावत् आनापान पुद्गल-परिवर्त्त निर्वर्तनाकाल में कौन किनसे अल्प, बहु, तुल्य अथवा विशेषाधिक है?

गोयमा! सव्वत्थोवे कम्मगपोग्गलपरियट्टनिव्वत्तणाकाले, तेयापोग्गलपरियट्टनिवत्तणाकाले अणंतगुणे, ओरालियपोग्गलपरियट्टनिव्वत्तणाकाले अणंतगुणे, आणापाणुपोग्गलपरियट्टनिव्वत्तणाकाले अणंतगुणे, मणपोग्गलपरियट्टनिव्वत्तणाकाले अणंतगुणे, वइपोग्गलपरियट्टनिव्वत्तणाकाले अणंतगुणे, वेउव्वियपोग्गलपरियट्टनिव्वत्तणाकाले अणंतगुणे॥

गौतम! सर्वस्तोकः कर्मकपुद्गलपरिवर्तनिर्वर्तनाकालः, तैजसपुद्गलपरिवर्तनिर्वर्तनाकालः अनन्तगुणः, औदारिकपुद्गलपरिवर्तनिर्वर्तनाकालः अनन्तगुणः, आनापानपुद्गलपरिवर्तनिर्वर्तनाकालः अनन्तगुणः, मनःपुद्गलपरिवर्तनिर्वर्तनाकालः अनन्तगुणः, वाक्पुद्गलपरिवर्तनिर्वर्तनाकालः अनन्तगुणः, वैक्रियपुद्गलपरिवर्तनिर्वर्तनाकालः अनन्तगुणः।

गौतम! सबसे अल्प कर्म पुद्गल-परिवर्त्त निर्वर्तनाकाल है, तैजस पुद्गल-परिवर्त्त निर्वर्तनाकाल कर्म पुद्गल-परिवर्त्त से अनंतगुण है, औदारिक पुद्गल-परिवर्त्त निर्वर्तनाकाल तैजस पुद्गल-परिवर्त्त से अनंतगुण है, आनापान पुद्गल-परिवर्त्त निर्वर्तनाकाल औदारिक पुद्गल-परिवर्त्त से अनंतगुण है, मनःपुद्गल-परिवर्त्त निर्वर्तना काल आनापान पुद्गल-परिवर्त्त से अनंतगुण है, वचन पुद्गल-परिवर्त्त निर्वर्तनाकाल मनःपुद्गल-परिवर्त्त से अनंतगुण है, वैक्रिय पुद्गल-परिवर्त्त निर्वर्तनाकाल वचन पुद्गल-परिवर्त्त से अनंत गुण है।

१००. एएसि णं भंते! ओरालियपोग्गलपरियट्टाणं जाव आणापाणुपोग्गलपरियट्टाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा? बहुया वा? तुल्ला वा? विसेसाहिया वा?
गोयमा! सव्वत्थोवा वेउव्वियपोग्गलपरियट्टा, वइपोग्गलपरियट्टा अणंतगुणा, मणपोग्गलपरियट्टा अणंतगुणा, आणापाणुपोग्गलपरियट्टा

एतेषां भदन्त! औदारिकपुद्गलपरिवर्तानां यावत् आनापानपुद्गलपरिवर्त्तानां च कतरे कतरेभ्यः अल्पाः वा? बहुकाः वा? तुल्याः वा? विशेषाधिकाः वा?
गौतम! सर्वस्तोकाः वैक्रियपुद्गलपरिवर्ताः, वाक्पुद्गलपरिवर्ताः अनन्तगुणाः, मनःपुद्गलपरिवर्ताः अनन्तगुणाः, आनापानपुद्गलपरिवर्ताः

१००. भंते! औदारिक पुद्गल-परिवर्त्त यावत् आनापान पुद्गल-परिवर्त्त में कौन किनसे अल्प, बहु, तुल्य अथवा विशेषाधिक है?

गौतम! सबसे अल्प वैक्रिय पुद्गल परिवर्त्त है, वचन पुद्गल-परिवर्त्त वैक्रिय पुद्गल-परिवर्त्त से अनंतगुण है, मन पुद्गल-परिवर्त्त वचन पुद्गल-परिवर्त्त से अनंतगुण है,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अणंतगुणा, ओरालियपोग्गलपरियट्टा अणंतगुणा, तेयापोग्गलपरियट्टा अणंतगुणा, कम्मगपोग्गलपरियट्टा अणंतगुणा॥

अनन्तगुणाः, औदारिकपुद्गलपरिवर्ताः अनन्तगुणाः, तैजसपुद्गलपरिवर्ताः अनन्तगुणाः, कर्मकपुद्गलपरिवर्ताः अनन्तगुणाः।

आनापान पुद्गल-परिवर्त्त मन पुद्गल-परिवर्त्त से अनंतगुण है, औदारिक पुद्गल परिवर्त्त आनापान पुद्गल-परिवर्त्त से अनंतगुण है, तैजस पुद्गल-परिवर्त्त औदारिक पुद्गल-परिवर्त्त से अनंतगुण है और कर्म पुद्गल-परिवर्त्त तैजस पुद्गल परिवर्त्त से अनंतगुण है।

भाष्य

१. सूत्र ९९-१००

प्रस्तुत सूत्र में पुद्गल-परिवर्त्त के निर्वर्तना-निष्पत्ति काल पर तुलनात्मक विमर्श किया गया है।

१. सात पुद्गल-परिवर्त्तों में कर्म पुद्गल-परिवर्त्त का निर्वर्तना काल सबसे कम है। वृत्तिकार के अनुसार इसका हेतु यह है–कर्म के पुद्गल-स्कंध सूक्ष्म और बहुतम परमाणुओं से निष्पन्न होते हैं इसलिए एक बार में उनका ग्रहण बहु संख्या में होता है। नारक आदि सभी स्थानों में वर्तमान जीव प्रति समय उनका ग्रहण करता है इसलिए कर्म वर्गणा के समस्त पुद्गलों का ग्रहण स्वल्प काल में हो जाता है।[1]

२. तैजस वर्गणा के पुद्गल कर्म वर्गणा के पुद्गलों से स्थूल हैं और वे अल्प-प्रदेशों से निष्पन्न होते हैं। उनका एक बार ग्रहण होता है और अल्प परमाणु स्कंधों का ग्रहण होता है इसीलिए कर्म पुद्गल-परिवर्त निर्वर्तना-काल से तैजस पुद्गल-परिवर्त्त निर्वर्तना काल अनंत गुण अधिक होता है।[2]

३. औदारिक वर्गणा के पुद्गल अति स्थूल होते हैं, इसलिए एक साथ उनके अल्प अणुओं का ही ग्रहण किया जाता है। औदारिक शरीर वाला प्राणी ही उनका ग्रहण करता है इसलिए तैजस पुद्गल-परिवर्त्त निर्वर्तना-काल से औदारिक पुद्गल- परिवर्त्त निर्वर्तना-काल अनंत गुण अधिक होता है।[3]

४. यद्यपि औदारिक पुद्गलों से आनापान के पुद्गल सूक्ष्म और बहुप्रदेश वाले होते हैं फिर भी उनका ग्रहण केवल पर्याप्तक अवस्था में होता है। पर्याप्तक अवस्था में भी औदारिक शरीर पुद्गल की अपेक्षा उसका ग्रहण अल्प मात्रा में होता है। इस हेतु से औदारिक पुद्गल-परिवर्त निर्वर्तना-काल से आनापान पुद्गल-परिवर्त निर्वर्तना-काल अनंत गुण अधिक होता है।[4]

५. आनापान पुद्गलों से मनःपुद्गल सूक्ष्म और बहुप्रदेश वाले हैं इसलिए उनका अल्प काल में ग्रहण होता है। मन एकेन्द्रिय आदि जीवों के नहीं होता। वह केवल गर्भज पञ्चेन्द्रिय के ही होता है। बहुकाल साध्य होने के कारण आनापान पुद्गल-परिवर्त्त निर्वर्तना काल से मनः पुद्गल-परिवर्त्त निर्वर्तना-काल अनंत गुण अधिक होता है।[5]

६. भाषा द्वीन्द्रिय आदि जीव जातियों में भी होती है फिर भी मनः पुद्गलों की अपेक्षा भाषा के पुद्गल अति स्थूल होते हैं इसलिए उनका ग्रहण एक साथ अल्प मात्रा में होता है इसलिए मनःपुद्गल-परिवर्त्त निर्वर्त्तना-काल से भाषा पुद्गल-परिवर्त्त निर्वर्त्तना-काल अनंत गुण अधिक होता है।[6]

७. वैक्रिय शरीर दीर्घकाल लभ्य है इसलिए भाषा पुद्गल परिवर्त्त निर्वर्तना-काल से वैक्रिय पुद्गल-परिवर्त्त निर्वर्त्तना-काल अनंत गुण अधिक होता है।[7]

---

१. भ. वृ. १२/९८,९९–सर्वस्तोकः कार्मणपुद्गलपरिवर्त्तनिर्वर्तनाकालः ते हि सूक्ष्मा बहुतमपरमाणुनिष्पन्नाश्च भवन्ति, ततस्ते सकृदपि बहवो गृह्यन्ते, सर्वेषु च नारकादिपदेषु वर्त्तमानस्य जीवस्य तेऽनुसमयं ग्रहणमायान्तीति स्वल्पकालेनापि तत्सकलपुद्गलग्रहणं भवतीति।

२. वही, १२/९८,९९–ततस्तैजसपुद्गलपरिवर्त्तनिर्वर्तनाकालोऽनन्तगुणो यतः स्थूलत्वेन तैजसपुद्गलानामल्पानामेकदा ग्रहणम्, एकग्रहणे चाल्पप्रदेश-निष्पन्नत्वेन तेषामल्पानामेव तदणूनां ग्रहणं भवत्यतोऽनन्तगुणोऽसाविति।

३. वही, १२/९८,९९–तत औदारिकपुद्गलपरिवर्त्तनिर्वर्तनाकालोऽनन्तगुणो, यत औदारिकपुद्गला अतिस्थूराः, स्थूराणां चाल्पानामेवैकदा ग्रहणं भवति अल्पतरप्रदेशाश्च ते ततस्तद्ग्रहणेऽप्येकदाऽल्पा एवाणवो गृह्यन्ते, न च कार्म्मणतैजसपुद्गलवत्तेषां सर्वपदेषु ग्रहणमस्ति, औदारिकशरीरिणामेव तद्ग्रहणात् अतो बृहतैव कालेन तेषां ग्रहणमिति।

४. वही, १२/९८,९९–यद्यपि हि औदारिकपुद्गलेभ्य आनाप्राणपुद्गलाः सूक्ष्माः बहुप्रदेशिकाश्चेति तेषामल्पकालेन ग्रहणं संभवति, तथाऽप्य-पर्याप्तकावस्थायां तेषामग्रहणात् पर्याप्तकावस्थायामप्यौदारिक-शरीर-पुद्गलापेक्षया तेषामल्पीयसामेव ग्रहणान्न शीघ्रं तद्ग्रहणमित्यौदारिक-पुद्गलपरिवर्तनिर्वर्त्तनाकालादनन्तगुणताऽऽनाप्राणपुद्गलपरिवर्तनिर्वर्त्तना-कालस्येति।

५. वही, १२/९८,९९–ततो मनःपुद्गलपरिवर्तनिर्वर्त्तनाकालोऽनन्तगुणः कथम्? यद्यप्यानप्राणपुद्गलेभ्यो मनःपुद्गलाः सूक्ष्माः बहुप्रदेशा-श्चेत्यल्पकालेन तेषां ग्रहणं भवति तथाऽप्येकेन्द्रियादिकायस्थिति-वशान्मनसश्चिरेण लाभान्मानसपुद्गलपरिवर्त्तो बहुकालसाध्य इत्यनन्तः गुणः उक्तः।

६. वही, १२/९८,९९–ततोऽपि वाक्पुद्गलपरिवर्त्तनिर्वर्त्तनाकालोऽनन्तगुणः कथम्? यद्यपि मनसः सकाशाद् भाषा शीघ्रतरं लभ्यते द्वीन्द्रियाद्यवस्थायां च भवति तथाऽपि मनोद्रव्येभ्यो भाषाद्रव्याणामति स्थूलतया स्तोकानामेवैकदा ग्रहणात्ततोऽनन्तगुणो वाक् पुद्गल-परिवर्त्तनिर्वर्त्तनाकाल इति।

७. वही, १२/९८,९९–ततो वैक्रियपुद्गलपरिवर्त्तनिर्वर्त्तनाकालोऽनन्तगुणो वैक्रियशरीरस्यातिबहुकाललभ्यत्वादिति।

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

सात पुद्गल-परिवर्त्तों के क्रम पूर्वोक्त क्रम से विपरीत हैं। वृत्ति में इसका संक्षिप्त उल्लेख है।[1] जयाचार्य ने उसका विवरण प्रस्तुत किया है।[2]

विशद जानकारी के लिए देखें यंत्र–

	पुद्गल-परिवर्त्त	निर्वर्तना-काल	पुद्गल-परिवर्त्त	अल्प-बहुत्व
१	कर्म पुद्गल-परिवर्त्त	सबसे थोड़ा	वैक्रिय पुद्गल-परिवर्त्त	सबसे थोड़ा
२	तैजस पुद्गल-परिवर्त्त	अनन्तगुणा	वचन पुद्गल-परिवर्त्त	अनंत गुण अधिक
३	औदारिक पुद्गल-परिवर्त्त	अनन्तगुणा	मन पुद्गल-परिवर्त्त	अनंत गुण अधिक
४	आनप्राण पुद्गल-परिवर्त्त	अनन्तगुणा	आनप्राण पुद्गल-परिवर्त्त	अनंत गुण अधिक
५	मन पुद्गल-परिवर्त्त	अनन्तगुणा	औदारिक पुद्गल-परिवर्त्त	अनंत गुण अधिक
६	वचन पुद्गल-परिवर्त्त	अनन्तगुणा	तैजस पुद्गल-परिवर्त्त	अनंत गुण अधिक
७	वैक्रिय पुद्गल-परिवर्त्त	अनन्तगुणा	कर्म पुद्गल-परिवर्त्त	अनंत गुण अधिक

१०१. सेवं भंते! सेवं भंते! त्ति भगवं जाव विहरइ॥

तदेवं भदन्त! तदेवं भदन्त! इति भगवान् यावत् विहरति।

१०१. भंते! वह ऐसा ही है, भंते! वह ऐसा ही है। इस प्रकार भगवान् यावत् विहरण करने लगे।

---

१. वही, १२/१००–सर्वस्तोका वैक्रियपुद्गलपरिवर्त्ता बहुतमकालनिर्वर्तनीयत्वात्तेषां, ततोऽनन्तगुणावाग्विषया अल्पतरकालनिर्वर्त्त्येत्वात्। एवं पूर्वोक्तयुक्त्या बहुबहुतराः क्रमेणान्येऽपि वाच्या इति।

२. भ. जो. ४/२५७,६६–७२–

१. पूर्वे कही प्रतीत, अल्प बहु अद्धा तणु।
तेह थी ए विपरीत, अंतिम थकी पिछाणियै॥

२. जेहनो थोड़ै काल, हुवै निवर्तन तेहनां।
पोग्गल-परियट्ट न्हाल, घणां हुवै छै ते सही॥

३. कार्मण पुद्गल सोय, परावर्त्त निवर्तना।
तास काल अवलोय, सर्व थकी थोड़ो कह्यो॥

४. इतरे थोड़ो काल, पूरो ह्वै छै कार्मण।
तो सर्व थकी बहु न्हाल, कम्मा पोग्गल-परियट्टा॥

५. वैक्रिय पुद्गल देख, परिवर्त्तन नों काल जे।
सर्व थकी संपेख, बहु काले करि नीपजै॥

६. तेहथा पुद्गल ताम, परावर्त्त वैक्रिय तणां।
न्याय विचारो आम, सर्व थकी थोड़ा कह्या॥

७. जेहनों बहुलो काल, ते पुद्गल थोड़ा कह्या।
अल्प अद्धा जसु न्हाल, ते पुद्गल-परिवर्त्त बहु॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पंचमो उद्देसो : पांचवां उद्देशक

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
वण्णादिं अवण्णादिं च पडुच्च दव्व-वीमंसा-पदं	वर्णादिं अवर्णादिं च प्रतीत्य द्रव्य-विमर्श-पदम्	वर्णादि और अवर्णादि की अपेक्षा द्रव्य-विमर्श पद
१०२. रायगिहे जाव एवं वयासी अह भंते ! पाणाइवाए, मुसावाए, अदिण्णादाणे, मेहुणे, परिग्गहे–एस णं कतिवण्णे, कतिगंधे, कतिरसे, कतिफासे पण्णत्ते ?	राजगृहं यावत् एवमवादीत्–अथ भदन्त! प्राणिपातः, मृषावादः, अदत्तादानं, मैथुनं, परिग्रहः–एष कतिवर्णः, कतिगन्धः, कतिरसः, कतिस्पर्शः प्रज्ञप्तः?	१०२. राजगृह नाम का नगर यावत् गौतम स्वामी पर्युपासना करते हुए इस प्रकार बोले–भंते ! प्राणातिपात, मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन और परिग्रह–ये कितने वर्ण, कितने गन्ध, कितने रस और कितने स्पर्श वाले प्रज्ञप्त हैं।
गोयमा ! पंचवण्णे, दुगंधे, पंचरसे, चउफासे पण्णत्ते ॥	गौतम! पञ्चवर्णः, द्विस्पर्शः, पञ्च-रसः, चतुस्पर्शः प्रज्ञप्तः।	गौतम ! पांच वर्ण, दो गन्ध, पांच रस, और चार स्पर्श वाले प्रज्ञप्त हैं।
१०३. अह भंते ! कोहे, कोवे, रोसे, दोसे, अखमा, संजलणे, कलहे, चंडिक्के, भंडणे, विवादे–एस णं कतिवण्णे जाव कतिफासे पण्णत्ते ?	अथ भदन्त! क्रोधः, कोपः, रोषः, दोषः, अक्षमा, संज्वलनम्, कलहः, 'चंडिक्के', भण्डनम्, विवादः–एष कतिवर्णः यावत् कतिस्पर्शः प्रज्ञप्तः?	१०३. भंते ! क्रोध, कोप, रोष, दोष (द्वेष), अक्षमा, संज्वलन, कलह, चाण्डिक्य, भण्डन और विवाद–ये कितने वर्ण यावत् स्पर्श वाले प्रज्ञप्त हैं ?
गोयमा ! पंचवण्णे, दुगंधे, पंचरसे, चउफासे पण्णत्ते॥	गौतम! पञ्चवर्णः, द्विस्पर्शः, पञ्च-रसः, चतुस्पर्शः प्रज्ञप्तः।	गौतम ! पांच वर्ण, दो गंध, पांच रस और चार स्पर्श वाले प्रज्ञप्त हैं।
१०४. अह भंते ! माणे, मदे, दप्पे, थंभे, गव्वे, अत्तुक्कोसे, परपरिवाए, उक्कोसे, अवक्कोसे, उण्णते, उण्णामे, दुण्णामे–एस णं कतिवण्णे जाव कतिफासे पण्णत्ते ?	अथ भदन्त! मानं, मदः, दर्पः, स्तम्भः, गर्वः, आत्मोत्कर्षः, परपरिवादः, उत्क्रोषः, अवोत्कर्षः, उन्नतः, उन्नामः, दुर्नामः–एषः कतिवर्णः यावत् कति-स्पर्शः प्रज्ञप्तः?	१०४. भंते ! मान, मद, दर्प, स्तम्भ, गर्व आत्मोत्कर्ष, परपरिवाद, उत्कर्ष, अपकर्ष (अवोत्कर्ष), उन्नत, उन्नाम और दुर्नाम–ये कितने वर्ण यावत् कितने स्पर्श वाले प्रज्ञप्त हैं?
गोयमा ! पंचवण्णे, दुगंधे, पंचरसे, चउफासे पण्णत्ते॥	गौतम! पञ्चवर्णः, द्विस्पर्शः, पञ्चरसः, चतुस्पर्शः प्रज्ञप्तः।	गौतम ! पांच वर्ण, दो गंध, पांच रस और चार स्पर्श वाले प्रज्ञप्त हैं।
१०५. अह भंते ! माया, उवही, नियडी, वलए, गहणे, णूमे, कक्के, कुरुए, जिम्हे, किब्बिसे, आयरणया, गूहणया, वंचणया, पलिउंचणया, सातिजोगे–एस णं कतिवण्णे जाव कतिफासे पण्णत्ते ?	अथ भदन्त! माया, उपधिः, निकृतिः, वलयः, गहनम् 'णूमे', कल्कः, 'कुरुए' जैम्हः, किल्विषः, आचरणं, गूहनं, वञ्चनं, परिकुञ्चनं, साचियोगः– एषः कतिवर्णः यावत् कतिस्पर्शः प्रज्ञप्तः?	१०५. भंते ! माया, उपधि, निकृति, वलय, गहन, णूम, कल्क, कुरुए, जैम्ह, किल्विषक, आचरण, गूहन, वंचन, परिकुंचन और साचियोग–ये कितने वर्ण यावत् कितने स्पर्श वाले प्रज्ञप्त हैं ?
गोयमा ! पंचवण्णे, दुगंधे, पंचरसे, चउफासे पण्णत्ते॥	गौतम! पञ्चवर्णः, द्विगन्धः, पञ्चरसः, चतुस्पर्शः प्रज्ञप्तः।	गौतम ! ये पांच वर्ण, दो गंध, पांच रस और चार स्पर्श वाले प्रज्ञप्त हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१०६. अह भंते ! लोभे, इच्छा, मुच्छा, कंखा, गेही, तण्हा, भिज्झा, अभिज्झा, आसासणया, पत्थणया, लालप्पणया, कामासा, भोगासा, जीवियासा, मरणासा, नंदिरागे—एस णं कतिवण्णे जाव कतिफासे पण्णत्ते ?
गोयमा ! पंचवण्णे, दुगंधे, पंचरसे, चउफासे पण्णत्ते॥

अथ भदन्त! लोभः, इच्छा, मूर्च्छा, कांक्षा, गृद्धिः, तृष्णा, भिध्या, अभिध्या, आशंसनं, प्रार्थना, लालपनं, कामाशा, भोगाशा, जीविताशा, मरणाशा नन्दी-रागः—एषः कतिवर्णः यावत् कतिस्पर्शः प्रज्ञप्तः?
गौतम! पञ्चवर्णः, द्विगन्धः, पञ्चरसः, चतुस्पर्शः प्रज्ञप्तः ।

१०६. भंते ! लोभ, इच्छा, मूर्च्छा, कांक्षा, गृद्धि, तृष्णा, भिध्या, अभिध्या, आशीष, प्रार्थना, लालपनता, कामाशा, भोगाशा, जीविताशा, मरणाशा, नंदी और राग—ये कितने वर्ण यावत् कितने स्पर्श वाले प्रज्ञप्त हैं?
गौतम ! पांच वर्ण, दो गंध, पांच रस और चार स्पर्श वाले प्रज्ञप्त हैं।

१०७. अह भंते ! पेज्जे, दोसे, कलहे, अब्भक्खाणे, पेसुन्ने, परपरिवाए, अरतिरती, मायामोसे, मिच्छादंसण-सल्ले—एस णं कतिवण्णे जाव कतिफासे पण्णत्ते ?
गोयमा ! पंचवण्णे, दुगंधे, पंचरसे, चउफासे पण्णत्ते॥

अथ भदन्त! प्रेयः, दोषः, कलहः, अभ्याख्यानम्, पैशुन्यम्, परपरिवादः, अरतिरतिः, मायामृषा, मिथ्यादर्शन-शल्यः—एषः कतिवर्णः यावत् कति-स्पर्शः प्रज्ञप्तः?
गौतम! पञ्चवर्णः, द्विगन्धः, पञ्चरसः, चतुस्पर्शः प्रज्ञप्तः ।

१०७. भंते ! प्रेय, द्वेष, कलह, अभ्याख्यान, पैशुन्य, परपरिवाद, अरतिरति, मायामृषा और मिथ्यादर्शन शल्य—ये कितने वर्ण यावत् कितने स्पर्श वाले प्रज्ञप्त हैं?
गौतम ! पांच वर्ण, दो गंध, पांच रस और चार स्पर्श वाले प्रज्ञप्त हैं।

भाष्य

१. सूत्र १०२-१०७

जीव और पुद्गल एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। जीव के प्रभाव से पुद्गल में परिवर्तन होता है और पुद्गल के प्रभाव से जीव में परिवर्तन होता है। प्रस्तुत प्रकरण में पुद्गल से प्रभावित जीव की अवस्थाओं के विषय में एक संवाद प्रस्तुत है।

वर्ण, गंध, रस और स्पर्श—ये पुद्गल के गुण हैं। प्राणातिपात आदि जीव की अवस्थाएं हैं। यहां उपचार वश प्राणातिपात आदि से जनित कर्म अथवा प्राणातिपात की वृत्ति का जनक कर्म के विषय में वर्ण आदि की जिज्ञासा की गई है।[1] इसके उत्तर भी कर्म पुद्गल के आधार पर दिए गए हैं। कर्म के पुद्गलों में पांच वर्ण, दो गंध, पांच रस और चार स्पर्श होते हैं।[2]

शब्द-विमर्श

क्रोध—प्रज्वलनात्मक भाव।

कोप—क्रोध के उदय से होने वाला स्वभाव का विचलन।

रोष—क्रोध की संतति।

दोष—अप्रीति, अपने को या दूसरे को दूषित करना। तत्त्वार्थभाष्यानुसारिणी में इसका अर्थ है—द्वेष के परिणाम को वचन के द्वारा प्रकाशित करना।[3]

अक्षमा—दूसरे के अपराध को सहन न करना।

संज्वलन—क्रोधाग्नि से प्रज्वलित होना।

कलह—जोर से या अभद्र शब्दों में आपस में बोलना।

चाण्डिक्य—आकृति को रौद्र बनाना।

भण्डन—दंड आदि के द्वारा युद्ध करना। तत्त्वार्थभाष्यानुसारिणी में इसका अर्थ कलह किया गया है।[4]

विवाद—विरोधी स्वीकृति से व्यवहृत होने वाला वचन।

क्रोध एक सामान्य प्रज्वलनात्मक भाव है। कोप और रोष इसकी विशेष अवस्थाएं हैं। दोष आदि क्रोध के कार्य हैं।[5]

मान—आत्म-पूजा की आकांक्षा से उत्पन्न अहंकार।[6]

मद—हर्ष, मादक वस्तु के सेवन से होने वाली मदावस्था की भांति, जिस अवस्था में अस्पष्ट बोलने की स्थिति बन जाती है, उसका नाम मद है।

दर्प—बल से उत्पन्न अहंकार।[7]

स्तम्भ—नम्रता का अभाव, न झुकने की मनोवृत्ति।[8]

गर्व—शौण्डीर्य, जाति आदि का अहंकार।[9]

---

१. भ. वृ. १२/१०२—प्राणातिपातजनितं तज्जनकं वा चारित्रमोहनीयं कर्मोपचारात् प्राणातिपात एव, एवमुत्तरत्रापि।
२. वही, १२/१०२—चउफासेत्ति स्निग्धरूक्षशीतोष्णाख्याश्चत्वारः स्पर्शाः सूक्ष्मपरिणामपरिणतपुद्गलानां भवंति, सूक्ष्मपरिणामं च कर्मेति।
३. त. सू. भा. वृ. ८/१०—द्वेषणं द्वेषः तत्परिणामस्य वचनद्वारेण प्रकाशनात् निर्देशनात्।
४. वही,—भण्डनं कलहः।
५. भ. वृ. १२/१०३—कोहेत्ति क्रोधपरिणामजनकं कर्म, तत्र क्रोध इति सामान्यं नाम, कोपादयस्तु तद्विशेषाः। तत्र कोपः क्रोधोदयात् स्वभावात् चलनमात्रं, रोषः—क्रोधस्यैवानुबंधो, दोषः आत्मनःपरस्य वा दूषणं एतच्च क्रोधकार्यं, द्वेषो वाऽप्रीतिमात्रम् अक्षमा- परकृतापराधस्यासहनम्, संज्वलनो—मुहुर्मुहुः क्रोधाग्निना ज्वलनं, कलहो—महता शब्देनान्यो-ऽन्यमसमञ्जसभाषणं एतच्च क्रोधकार्यं, चाण्डिक्यं—रौद्राकारकरणं, एतदपि क्रोधकार्यमेव, भण्डनं दण्डादिभिर्युद्धं, एतदपि क्रोधकार्यमेव, विवादो विप्रतिपत्तिसमुत्थवचनानि, इदमपि तत्कार्यमेवेति। क्रोधैकार्थाः वैते शब्दाः।
६. त. सू. भा. वृ. ८/१० की टीका—सर्वदात्मपूजाऽऽकाङ्क्षित्वात् मानः।
७. वही,—दर्पो बलकृतः।
८. वही टीका—स्तंभनात् स्तंभः अवनतेरभावात्।
९. वही टीका—गर्वो जात्यादिः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आत्मोत्कर्ष–दूसरों से अपने को बड़ा मानना।

परपरिवाद–अहंकार की वह मनोदशा, जिसके वशीभूत मनुष्य दूसरों की हीनता प्रदर्शित करता है।

उत्कर्ष–उत्कृष्टता की भावना।[1]

अपोत्कर्ष, अपकर्ष–अहंकारवश दूसरे की हीनता का प्रदर्शन।

उन्नत–उन्नति, न झुकना, अड़कन। वृत्तिकार ने इसका वैकल्पिक अर्थ उन्नय किया है–मानवश नय और नीति का अतिक्रमण।

उन्नाम–अहंकारवश नत न होना।

दुर्नाम–दोषपूर्ण नमन।

वृत्तिकार के अनुसार स्तंभ आदि मान के कार्य अथवा पर्यायवाची नाम हैं। मान उत्कर्ष का भाव है। मद और दर्प इसकी विशेष अवस्थाएं हैं। स्तंभ आदि मान के कार्य हैं।[2]

माया–छिपाने की मनोवृत्ति। उपधि आदि उसके भेद हैं।

उपधि–ठगने के लिए वंचनीय पुरुष के पास जाने की चेष्टा[3], प्रच्छन्न व्यवहार।

निकृति–आदर प्रदर्शित कर दूसरे को ठगना, पूर्व कृत माया को ढांकने के लिए दूसरा मायाजाल रचना। भाष्यानुसारिणी में इसका अर्थ दूसरे को तिरस्कृत करने के लिए मायाजाल रचना किया है।

वलय–प्रवंचना के भाव से वलय की तरह वक्र वचन बोलना अथवा चेष्टा करना।

ग्रहण–दूसरे को व्यामूढ़ बनाने के लिए प्रयुक्त वचन-जाल।

णूम–दूसरे को ठगने के लिए निम्नता का आश्रय लेना।

कल्क–हिंसा आदि के लिए दूसरे को ठगने का अभिप्राय।

कुरुक–दूसरों को विमुग्ध बनाने के लिए किया जाने वाला वेश परिवर्तन, बहुरूपिया का कार्य।

जिह्म–दूसरों को ठगने के लिए किया जाने वाला मंदता अथवा निष्क्रियता का प्रदर्शन।

किल्विष–ज्ञान और ज्ञानी के विषय में किया जाने वाला माया-जाल।

आचरण–हिंसा करने के लिए किया जाने वाला अहिंसा का आचरण। उदाहरण स्वरूप–

पश्य लक्ष्मण! पंपायां, बकः परमधार्मिकः।
दृष्ट्वा दृष्ट्वा पदं धत्ते, जीवानां वधशंकया॥

गूहन–अपने स्वरूप को छिपाने की वृत्ति।

वंचन–दूसरे को ठगना।

प्रतिकुंचन–वचन की वक्रता।

सातिओग–अविश्वास का संबंध, मूल्यवान द्रव्य के साथ कम मूल्य वाली वस्तु का किया जाने वाला मिश्रण, प्रतिरूपकरण की क्रिया।[4]

लोभ–रागात्मक प्रवृत्ति। इच्छा आदि उसके भेद हैं।

इच्छा–अभिलाषा, तीन लोक को पाने की अभिलाषा।[5]

मूर्च्छा–पदार्थ के संरक्षण में होने वाला अनुबंध, प्रकृष्ट मोह वृत्ति।[6]

कांक्षा–अप्राप्त पदार्थ की आशंसा। जो नहीं है, भविष्य में उसे पाने की इच्छा।[7]

गृद्धि–प्राप्त पदार्थ में होने वाली आसक्ति, प्राप्त इष्ट वस्तुओं में अभिरक्षण की प्रवृत्ति।

तृष्णा–प्राप्त पदार्थ का व्यय न हो, इस प्रकार की इच्छा।

भिध्या–विषयों के प्रति होने वाली सघन एकाग्रता।

अभिध्या–विषयों के प्रति होने वाली विरल एकाग्रता।

---

१. सूय. १/२/५१ का टिप्पण।

२. भ. वृ. १२/१०४.–'माणेत्ति' मानपरिणामजनकं कर्म्म, तत्र मान इति सामान्यं नाम, मदादयस्तु तद्विशेषाः। तत्र मदो हर्षमात्रं, दर्पो दृप्तता, स्तंभः–अनम्रता, गर्व–शौण्डीर्यं, अत्तुक्कोसे त्ति आत्मनः परेभ्यः सकाशाद् गुणैरुत्कर्षणम्–उत्कृष्टताऽभिधानं, परपरिवादः–परेषामपवदनं परिपातो वा गुणेभ्यः परिपातनमिति, उक्कोसे त्ति उत्कर्षणं आत्मनः परस्य वा मनाक् क्रिययोत्कृष्टताकरणं उत्काशनं वा–प्रकाशनमभिमानात् स्वकीयसमृद्ध्यादेः, अवक्काशे त्ति अपकर्षणमवकर्षणं वा अभिमानादात्मनः परस्य वा क्रियारंभात् कुतोऽपि व्यावर्त्तनमिति अप्रकाशो वाऽभिमानादेवेति, उण्णए त्ति उच्छ्रितं नतं– पूर्वप्रवृत्तं नमनमभिमानादुन्नतम्, उच्छ्रितो वा नमोनीतिरभिमानादेवोन्नयो नयाभाव इत्यर्थः 'उण्णामे' त्ति प्रणतस्य मदानुप्रवेशादुन्नमनं, 'दुन्नामे' त्ति मदादुष्टं नमनं दुर्नाम इति, इह च स्तम्भादीनि मानकार्याणि मानवाचका वैते ध्वनय इति।

३. त. सू. भा. वृ. ८/१० की टीका–बाह्यचेष्टयोपधीयते बाह्यत इत्युपधिरन्यथापरिणामश्चित्तस्य।

४. भ. वृ. १२/१०५–'माय' त्ति सामान्यं उपध्यादयस्तद्भेदाः। तत्र 'उवहि' त्ति उपधीयते येनासावुपधिः–वञ्चनीयसमीपगमनहेतुर्भावः, 'नियडि' त्ति नितरां करणं निकृतिः–आदरकरणेन परवञ्चनं पूर्वकृतमायाप्रच्छादनार्थं या मायान्तरकरणं, 'वलए' त्ति येन भावेन वलयमिव वक्रं वचनं चेष्टा वा प्रवर्त्तते स भावो वलयं, 'गहणे' त्ति परव्यामोहनाय यद्वचनजालं तद्गहनमिव गहनं, णूमे त्ति परवञ्चनाय निम्नताया निम्नस्थानस्य वाऽश्रयणं तन्नूमं ति कक्केत्ति कल्कं हिंसादिरूपं पापं तन्निमित्तो यो वञ्चनाभिप्रायः स कल्कमवोच्यते 'कुरुए' त्ति कुत्सितं यथा भवत्येवं रूपयति–विमोहयति यत्तत् कुरुपं भाण्डादि कर्म माया विशेष एव 'जिम्हेत्ति' येन परवञ्चनाभिप्रायेण जैह्म्यं–क्रियासु मान्द्यमालंबते स भावो जेह्मयं वेति 'किब्बिसे' त्ति यतो मायाविशेषाज्जन्मान्तरेऽत्रैव वा भवे किल्विषः–किल्विषिको भवति स किल्विष एवेति, आयरणयत्ति यतो मायाविशेषादादरणं–अभ्युपगमं कस्याऽपि वस्तुनः करोत्यसावादरणं, प्रत्ययस्य च स्वार्थिकत्वाद् आयरणया, आचरणं वा परप्रतारणाय विविधक्रियाणामाचरणं, गूढनया गूहनं गोपायनस्वरूपस्य, वंचणया–वंचनं परस्य प्रतारणं, पलिउंचणया प्रतिकुञ्चनं सरलतया प्रवृत्तस्य वञ्चनस्य खण्डनं, साइजोगेत्ति अविसम्भः संबंधः सातिशयेन वा द्रव्येण निरतिशयस्य योगस्तत्प्रतिरूपकरणमित्यर्थः, मायैकार्थाः वैते ध्वनय इति।

५. त. सू. भा. वृ. ८/१० की टीका–इच्छाभिलाषस्त्रैलोक्यविषयः।

६. वही, ...मूर्च्छा प्रकर्षप्राप्ता मोहवृद्धिः।

७. वही,.....भविष्यत्कालोपादानविषयाकांक्षा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भिध्या में होने वाली एकाग्रता में दृढ़ अभिनिवेश होता है इसलिए वह ध्यान की कोटि में चली जाती है। अभिध्या में होने वाली एकाग्रता में अभिनिवेश मंद रहता है इसलिए वह चित्त लक्षण वाली है।

आशीष–वस्तु–प्राप्ति के लिए दिया जाने वाला आशीर्वाद।
प्रार्थना–दूसरे से इष्ट वस्तु की याचना करना।
लालपनता–प्रार्थना को बार-बार दोहराना।
कामाशा–शब्द, रूप आदि को पाने की इच्छा।
भोगाशा–गंध आदि को पाने की इच्छा।
जीविताशा–जीवित रहने की इच्छा।
मरणाशा–मरने की इच्छा।
नंदि–समृद्धि में होने वाला हर्ष।[1]
राग–रञ्जनात्मक मनोवृत्ति।

प्रस्तुत प्रकरण में क्रोध, मान, माया और लोभ के पर्यायवाची नाम निर्दिष्ट हैं। क्रोध के दस, मान के बारह, माया के पंद्रह और लोभ के सतरह–इनकी समन्वित संख्या चौपन है। कोश की दृष्टि से ये क्रोध आदि के एकार्थक नाम हैं। समभिरूढ़ नय की दृष्टि से विचारणा करने पर प्रत्येक शब्द का अपना स्वतंत्र अर्थ है। अभयदेवसूरि ने भगवती की वृत्ति में नंदि–राग को एक शब्द मानकर उसकी व्याख्या की है। समवायांग के आधार पर ये दोनों पृथक् होने चाहिए। एक मानने पर चौपन की संख्या की संगति नहीं बैठती। तुलना के लिए द्रष्टव्य समवाओ ५२/१। प्रश्न व्याकरण में असत्य वचन के तीस नाम बतलाए गए हैं। उस प्रकरण में माया के निम्न निर्दिष्ट शब्दों का उल्लेख है–कक्कणा, वञ्चना, साती, किल्विष, वलय, गहन और णूम।[2] सूत्रकृतांग में प्रकीर्ण रूप में अनेक शब्द उपलब्ध हैं।[3]

१०८. अह भंते ! पाणाइवायवेरमणे, जाव परिग्गहवेरमणे, कोहविवेगे जाव मिच्छादंसणसल्लविवेगे– एस णं कतिवण्णे जाव कतिफासे पण्णत्ते ?
गोयमा ! अवण्णे, अगंधे, अरसे, अफासे पण्णत्ते॥

अथ भदन्त! प्राणातिपातविरमणं यावत् परिग्रहविरमणम्, क्रोधविवेकः यावत् मिथ्यादर्शनशल्यविवेकः–एषः कतिवर्णः यावत् कतिस्पर्शः प्रज्ञप्तः?
गौतम! अवर्णः, अगन्धः, अरसः अस्पर्शः प्रज्ञप्तः।

१०८. भंते ! प्राणातिपात-विरमण यावत् परिग्रह-विरमण, क्रोध-विवेक यावत् मिथ्यादर्शनशल्य-विवेक–ये कितने वर्ण यावत् कितने स्पर्श वाले प्रज्ञप्त हैं ?
गौतम ! ये वर्ण-रहित, गंध-रहित, रस-रहित और स्पर्श-रहित प्रज्ञप्त हैं।

१०९. अह भंते ! उप्पत्तिया, वेणइया, कम्मया, पारिणामिया–एस णं कतिवण्णा जाव कतिफासा पण्णत्ता ?
गोयमा! अवण्णा, अगंधा, अरसा, अफासा पण्णत्ता॥

अथ भदन्त! औत्पत्तिकी, वैनयिकी, कर्मजा, पारिणामिकी–एषा कतिवर्णा, यावत् कतिस्पर्शा प्रज्ञप्ता?
गौतम! अवर्णा, अगन्धा, अरसा, अस्पर्शा प्रज्ञप्ता।

१०९. भंते ! औत्पत्तिकी, वैनयिकी, कार्मिकी और पारिणामिकी–ये कितने वर्ण यावत् कितने स्पर्श वाली प्रज्ञप्त हैं?
गौतम ! ये वर्ण-रहित, गंध-रहित, रस-रहित और स्पर्श-रहित प्रज्ञप्त हैं।

११०. अह भंते ! ओग्गहे, ईहा, अवाए, धारणा–एस णं कतिवण्णा जाव कतिफासा पण्णत्ता ?
गोयमा ! अवण्णा, अगंधा, अरसा, अफासा पण्णत्ता ॥

अथ भदन्त! अवग्रहः, ईहा, अवायः, धारणा–एषा कतिवर्णा यावत् कतिस्पर्शा प्रज्ञप्ता?
गौतम! अवर्णा, अगन्धा, अरसा, अस्पर्शा प्रज्ञप्ता।

११०. भंते ! अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा–ये कितने वर्ण यावत् कितने स्पर्श वाली प्रज्ञप्त हैं ?
गौतम ! ये वर्ण-रहित, गंध-रहित, रस-रहित और स्पर्श-रहित प्रज्ञप्त हैं।

१११. अह भंते ! उट्ठाणे, कम्मे, बले, वीरिए, पुरिसक्कार-परक्कमे–एस णं कतिवण्णे जाव कतिफासे पण्णत्ते ?

अथ भदन्त! उत्थानं, कर्म, बलः, वीर्यः, पुरुषकार-पराक्रमः–एषः कतिवर्णः यावत् कतिस्पर्शः प्रज्ञप्तः?

१११. भंते ! उत्थान, कर्म, बल, वीर्य और पुरुषकार-पराक्रम–ये कितने वर्ण यावत् कितने स्पर्श वाले प्रज्ञप्त हैं ?

---

१. भ. वृ. १२/१०६–'लोभे' त्ति सामान्यं इच्छादयस्तद्विशेषाः तत्रेच्छा अभिलाषमात्रं.....मूर्च्छा–संरक्षणानुबंधः कांक्षा–अप्राप्तार्थाशंसा, 'गेहि' त्ति गृद्धिः–प्राप्तार्थेष्वासक्तिः, 'तण्हं' त्ति तृष्णा प्राप्तार्थानामव्ययेच्छा, 'भिज्ज' त्ति अभिव्याप्त्या विषयाणां ध्यानं तदेकाग्र्यमभिध्या विधानादिवदकारलोपाद्भिध्या, 'अभिज्झ' त्ति न भिध्या अभिध्या, भिध्यासदृशं भवान्तरं, तत्र दृढ़ाभिनिवेशो भिध्या ध्यानलक्षणत्वात्तस्याः अदृढ़ाभिनिवेशस्त्वभिध्या चित्तलक्षणत्वात्तस्याः, ध्यानचित्तयोस्त्वयं विशेषः–जं थिरमज्झवसाणं तं झाणं जं चलं तयं चित्तं ति, आसासणया त्ति आशंसनं–मम पुत्रस्य–शिष्यस्य वा इदमिदं च भूयादित्यादिरूपा आशीः 'पत्थणया' त्ति प्रार्थनं–परं प्रतीष्टार्थयाञ्चा, लालप्पणया त्ति प्रार्थनमेव भृशं लपनतः, कामास त्ति शब्दरूपप्राप्तिसंभावना, भोगासत्ति गंधादिप्राप्तिसंभावना, जीवितासत्ति जीवितव्यप्राप्तिसंभावना मरणासत्ति कस्याञ्चिदवस्थायां मरणप्राप्तिसंभावना. इदं च क्वचिन्न दृश्यते, नंदि रागे त्ति समृद्धौ सत्यां रागो हर्षो–नंदिरागः।

२. पण्हा. २/२

३. सूयगडो १/१६/३-५, १/६/११।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा! अवण्णे, अगंधे, अरसे, अफासे पण्णत्ते॥

गौतम! अवर्णः, अगन्धः अरसः अस्पर्शः प्रज्ञप्तः।

गौतम ! ये वर्ण-रहित, गंध-रहित, रस-रहित और स्पर्श-रहित प्रज्ञप्त हैं।

भाष्य

१. सूत्र १०८-१११

विरमण, विवेक, बुद्धि चतुष्टय और अवग्रह चतुष्क–ये सब चेतना की अवस्थाएं हैं। इसी प्रकार उत्थान आदि भी आत्मिक हैं।[1] इसलिए ये वर्ण, गंध, रस और स्पर्श से रहित हैं।

बुद्धि–चतुष्टय के लिए द्रष्टव्य नंदी सूत्र ३८ का टिप्पण।

अवग्रह–चतुष्क के लिए द्रष्टव्य–नंदी ३६/५० का टिप्पण।

उत्थान–आदि के लिए द्रष्टव्य भगवई १/१४०-१४६ का भाष्य।

अभयदेवसूरि के अनुसार जिस बुद्धि में उत्पत्ति ही प्रयोजन होता है, वह औत्पत्तिकी है। एक वितर्क उपस्थित हुआ–इस बुद्धि का हेतु भी क्षयोपशम है।

फिर उत्पत्ति मात्र को ही हेतु कैसे माना जाए? इसके समाधान में उन्होंने लिखा–ज्ञानावरण का क्षयोपशम आंतरिक है। वह बुद्धि के सभी प्रकारों के लिए समान है इसलिए यहां उसकी विवक्षा नहीं है। इस बुद्धि का कार्य किसी शास्त्र और कर्म के अभ्यास से निरपेक्ष है इसलिए इसका हेतु उत्पत्ति ही बतलाया गया है।[2]

पारिणामिकी बुद्धि का आधार है परिणाम। सुदीर्घ काल तक पूर्वापर घटनाओं का अवलोकन करने से उत्पन्न होने वाला आत्मधर्म परिणाम कहलाता है। परिणाम से उत्पन्न बुद्धि है पारिणामिकी।[3]

११२. सत्तमे णं भंते! ओवासंतरे कतिवण्णे जाव कतिफासे पण्णत्ते?
गोयमा! अवण्णे, अगंधे, अरसे, अफासे पण्णत्ते॥

सप्तमः भदन्त! अवकाशान्तरः कतिवर्णः यावत् कतिस्पर्शः प्रज्ञप्तः?
गौतम! अवर्णः अगन्धः अरसः अस्पर्शः प्रज्ञप्तः।

११२. भंते ! सातवां अवकाशान्तर कितने वर्ण यावत् कितने स्पर्श वाला प्रज्ञप्त है?
गौतम ! वर्ण-रहित, गंध-रहित, रस-रहित और स्पर्श-रहित प्रज्ञप्त है।

११३. सत्तमे णं भंते! तणुवाए कतिवण्णे जाव कतिफासे पण्णत्ते?
गोयमा! पंचवण्णे दुगंधे पंचरसे अट्ठफासे पण्णत्ते॥
एवं जहा सत्तमे तणुवाए तहा सत्तमे घणवाए, घणोदधी, पुढवी। छट्ठे ओवासंतरे अवण्णे। तणुवाए जाव छट्ठी पुढवी–एयाइं अट्ठफासाइं। एवं जहा सत्तमाए पुढवीए वत्तव्वया भणिया तहा जाव पढमाए पुढवीए भाणियव्वं। जंबुद्दीवे दीवे जाव सयंभूरमणे समुद्दे, सोहम्मे कप्पे जाव ईसिपब्भारा पुढवी, नेरइयावासा जाव वेमाणियावासा–एयाणि सव्वाणि अट्ठफासाणि॥

सप्तमः भदन्त! तनुवातः कतिवर्णः यावत् कतिस्पर्शः प्रज्ञप्तः?
गौतम! पञ्चवर्णः द्विगन्धः पञ्चरसः, अष्टस्पर्शः प्रज्ञप्तः।
एवं यथा सप्तमः तनुवातः तथा सप्तमः घनवातः, घनोदधिः, पृथिवी। षष्ठः अवकाशान्तरः अवर्णः। तनुवातः यावत् षष्ठीपृथिवी–एतानि अष्टस्पर्शानि। एवं यथा सप्तम्याः पृथिव्याः, वक्तव्यता भणिता तथा यावत् प्रथमायाः पृथिव्याः भणितव्यम्। जम्बूद्वीपः द्वीपः यावत् स्वयम्भूरमणः समुद्रः, सौधर्मः कल्पः यावत् ईषत्प्राग्भारा पृथिवी, नैरयिकावासाः यावत् वैमानिकावासाः–एतानि सर्वाणि अष्टस्पर्शानि।

११३. भंते ! सातवां तनुवात कितने वर्ण, यावत् कितने स्पर्श वाला प्रज्ञप्त है।
गौतम ! पांच वर्ण, दो गंध, पांच रस और आठ स्पर्श वाला प्रज्ञप्त है।
इसी प्रकार जैसे सातवें तनुवात की वक्तव्यता, वैसे ही सातवें घनवात, घनोदधि और पृथ्वी की वक्तव्यता। छठा अवकाशान्तर वर्ण-रहित है। तनुवात यावत् छठी पृथ्वी–इनमें आठ स्पर्श हैं। इसी प्रकार जैसे सातवीं पृथ्वी की वक्तव्यता, वैसे ही यावत् प्रथम पृथ्वी की वक्तव्यता। जम्बूद्वीप द्वीप यावत् स्वयंभूरमण समुद्र, सौधर्मकल्प यावत् ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी, नैरयिकावास यावत् वैमानिकावास–ये सभी आठ स्पर्श वाले प्रज्ञप्त हैं।

भाष्य

१. सूत्र ११२-११३

अवकाशान्तर आकाश का एक विभाग है इसलिए वह वर्ण आदि से रहित है। तनुवात आदि पौद्गलिक हैं इसलिए वर्ण आदि से युक्त हैं। उनकी परिणति स्थूल ह इसलिए वे अष्टस्पर्शी हैं।[4]

द्रष्टव्य भगवई १/२५६-२५७ का भाष्य तथा भगवई १/२८२-३०७ का भाष्य।

---

१. भ. वृ.१२/१०८–वधादिविरमणानि जीवोपयोगस्वरूपाणि जीवोपयोगश्चामूर्त्तोऽमूर्त्तत्वाच्च तस्य वधादिविरमणानाममूर्त्तत्वं तस्माद्या-वर्णादित्वमिति।

२. वहीं, १२/१०९–उप्पत्तिय त्ति उत्पत्तिरेव प्रयोजनं यस्याः सा औत्पत्तिकी, ननु क्षयोपशमः प्रयोजनमस्याः? सत्यं, स खल्वंतरंगत्वात् सर्वबुद्धि-साधारण इति न विवक्ष्यते, न चान्यच्छास्त्रकर्माभ्यासादिकमपेक्षत इति।

३. वही, १२/१०९–पारिणामिय त्ति परिः–समन्तान्नमनं परिणामः–सुदीर्घ कालपूर्वापरार्थावलोकनादिजन्यआत्मधर्मः स कारणं यस्याः सा पारिणामिकी बुद्धिरिति वाक्यशेषः।

४. भ. वृ. १२/११२-११३–तनुवातादीनां च पञ्चवर्णादित्वं पौद्गलिकत्वेन मूर्त्तत्वात् अष्टस्पर्शत्वं च बादरपरिणामत्वात्।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

११४. नेरइयाणं भंते! कतिवण्णा जाव कतिफासा पण्णत्ता?
गोयमा! वेउव्विय-तेयाइं पडुच्च पंचवण्णा, दुगंधा, पंचरसा, अट्ठफासा पण्णत्ता। कम्मगं पडुच्च पंचवण्णा, दुगंधा, पंचरसा, चउफासा पण्णत्ता। जीवं पडुच्च अवण्णा जाव अफासा पण्णत्ता। एवं जाव थणियकुमारा॥

नैरयिकाणाम् भदन्त! कतिवर्णाः यावत् कतिस्पर्शाः प्रज्ञप्ताः?
गौतम! वैक्रिय-तैजसानि प्रतीत्य पञ्चवर्णाः, द्विगन्धाः, पञ्चरसाः, अष्टस्पर्शाः प्रज्ञप्ताः। कर्मकं प्रतीत्य पञ्चवर्णाः, द्विगन्धाः, पञ्चरसाः, चतुस्पर्शाः प्रज्ञप्ताः। जीवं प्रतीत्य अवर्णाः यावत् अस्पर्शाः प्रज्ञप्ताः एवं यावत् स्तनितकुमाराः।

११४. भंते! नैरयिकों के कितने वर्ण यावत् कितने स्पर्श प्रज्ञप्त हैं?
गौतम! वैक्रिय और तैजस शरीर की अपेक्षा पांच वर्ण, दो गंध, पांच रस और आठ स्पर्श वाले प्रज्ञप्त हैं। कर्म शरीर की अपेक्षा पांच वर्ण, दो गंध, पांच रस और चार स्पर्श वाले प्रज्ञप्त हैं। जीव की अपेक्षा वर्ण-रहित यावत् स्पर्श-रहित प्रज्ञप्त हैं। इसी प्रकार यावत् स्तनितकुमारों की वक्तव्यता।

११५. पुढविक्काइयाणं-पुच्छा।
गोयमा! ओरालिय-तेयगाइं पडुच्च पंचवण्णा जाव अट्ठफासा पण्णत्ता। कम्मगं पडुच्च जहा नेरइयाणं। जीवं पडुच्च तहेव। एवं जाव चउरिंदिया, नवरं-वाउक्काइया ओरालिय-वेउव्विय-तेयगाइं पडुच्च पंचवण्णा जाव अट्ठफासा पण्णत्ता, सेसं जहा नेरइयाणं। पंचिंदियतिरिक्खजोणिया जहा वाउक्काइया॥

पृथिवीकायिकानां-पृच्छा।
गौतम! औदारिक-तैजसानि प्रतीत्य पञ्चवर्णाः यावत् अष्टस्पर्शाः प्रज्ञप्ताः। कर्मकं प्रतीत्य यथा नैरयिकाणाम्। जीवं प्रतीत्य तथैव। एवं यावत् चतुरिन्द्रियाः, नवरम्-वायुकायिकाः औदारिक-वैक्रिय-तैजसानि प्रतीत्य पञ्चवर्णाः यावत् अष्टस्पर्शाः प्रज्ञप्ताः, शेषं यथा नैरयिकाणाम्। पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकाः यथा वायुकायिकाः।

११५. पृथ्वीकायिकों की पृच्छा।
गौतम! औदारिक और तैजस शरीर की अपेक्षा पांच वर्ण यावत् आठ स्पर्श वाले प्रज्ञप्त हैं। कर्म शरीर की अपेक्षा नैरयिकों की भांति वक्तव्यता। जीव की अपेक्षा नैरयिकों की भांति वक्तव्यता। इसी प्रकार यावत् चतुरिन्द्रिय की वक्तव्यता, इतना विशेष है-वायुकायिक औदारिक, वैक्रिय और तैजस शरीर की अपेक्षा पांच वर्ण यावत् आठ स्पर्श वाले प्रज्ञप्त हैं, शेष नैरयिकों की भांति वक्तव्य हैं। पंचेन्द्रिय-तिर्यक्योनिक वायुकायिक की भांति वक्तव्य हैं।

११६. मणुस्साणं-पुच्छा।
ओरालिय - वेउव्विय-आहारग-तेयगाइं पडुच्च पंचवण्णा जाव अट्ठफासा पण्णत्ता। कम्मगं जीवं च पडुच्च जहा नेरइयाणं। वाणमंतर-जोइसिय-वेमाणिया जहा नेरइया।

धम्मत्थिकाए जाव पोग्गलत्थिकाए-एए सव्वे अवण्णा, नवरं-पोग्गलत्थिकाए पंचवण्णे, दुगंधे, पंचरसे, अट्ठफासे पण्णत्ते।
नाणावरणिज्जे जाव अंतराइए-एयाणि चउफासाणि॥

मनुष्याणाम्-पृच्छा।
औदारिक-वैक्रिय-आहारक-तैजसानि प्रतीत्य पञ्चवर्णाः यावत् अष्टस्पर्शाः प्रज्ञप्ताः। कर्मकं जीवं च प्रतीत्य यथा नैरयिकाणाम्। वानमन्तर-ज्योतिष्क-वैमानिकाः यथा नैरयिकाः।

धर्मास्तिकायः यावत् पौद्गलास्तिकायः-एते सर्वे अवर्णाः, नवरम्-पौद्गलास्तिकायः पञ्चवर्णः, द्विगन्धः, पञ्चरसः, अष्टस्पर्शः प्रज्ञप्तः।
ज्ञानावरणीयः यावत् आन्तरायिकः-एतानि चतुस्पर्शानि।

११६. मनुष्यों की पृच्छा।
वे औदारिक, वैक्रिय, आहारक और तैजस शरीर की अपेक्षा पांच वर्ण, यावत् आठ स्पर्श वाले प्रज्ञप्त हैं। कर्म शरीर और जीव की अपेक्षा वे नैरयिकों की भांति वक्तव्य हैं। वाणमन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देव नैरयिकों की भांति वक्तव्य हैं।
धर्मास्तिकाय यावत् पुद्गलास्तिकाय-ये सभी वर्ण-रहित हैं, इतना विशेष है-पुद्गलास्तिकाय पांच वर्ण, दो गंध, पांच रस और आठ स्पर्श वाला प्रज्ञप्त है।
ज्ञानावरणीय यावत् अन्तराय-ये चार स्पर्श वाले प्रज्ञप्त हैं।

भाष्य

१. सूत्र ११४-११६

वैक्रिय और तैजस शरीर स्थूल पुद्गलों से निष्पन्न हैं इसलिए वे अष्टस्पर्शी हैं। कर्म शरीर सूक्ष्म-पुद्गलों से निष्पन्न है इसलिए वह चतुस्पर्शी है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

११७. कण्हलेसा णं भंते! कतिवण्णा जाव कतिफासा पण्णत्ता?
दव्वलेसं पडुच्च पंचवण्णा जाव अट्ठफासा पण्णत्ता। भावलेसं पडुच्च अवण्णा, अगंधा, अरसा, अफासा पण्णत्ता। एवं जाव सुक्कलेस्सा।

सम्मदिट्ठी, मिच्छदिट्ठी, सम्मामिच्छदिट्ठी, चक्खुदंसणे, अचक्खुदंसणे, ओहिदंसणे, केवलदंसणे, आभिणिबोहियनाणे जाव विब्भंगनाणे, आहारसण्णा जाव परिग्गहसण्णा—एयाणि अवण्णाणि, अगंधाणि, अरसाणि, अफासाणि।

ओरालियसरीरे जाव तेयगसरीरे—एयाणि अट्ठफासाणि। कम्मगसरीरे चउफासे। मणजोगे, वइजोगे य चउफासे। कायजोगे अट्ठफासे।

सागारोवओगे अणागारोवओगे य अवण्णे॥

कृष्णलेश्या भदन्त! कतिवर्णा यावत् कतिस्पर्शा प्रज्ञप्ता?
द्रव्यलेश्यां प्रतीत्य पञ्चवर्णा यावत् अष्टस्पर्शा प्रज्ञप्ता। भावलेश्यां प्रतीत्य अवर्णा, अगन्धा, अरसा, अस्पर्शा प्रज्ञप्ता। एवं यावत् शुक्ललेश्या।

सम्यग्दृष्टिः, मिथ्यादृष्टिः, सम्यग्-मिथ्यादृष्टिः, चक्षुर्दर्शनम्, अचक्षुर्दर्शनम्, अवधिदर्शनम्, केवलदर्शनम्, आभिनिबोधिकज्ञानम् यावत् विभंगज्ञानम्, आहारसंज्ञा यावत् परिग्रहसंज्ञा—एतानि अवर्णानि, अगन्धानि, अरसानि, अस्पर्शानि।

औदारिकशरीरम् यावत् तैजसशरीरम्—एतानि अष्टस्पर्शानि। कर्मकशरीरम् चतुस्पर्शम्। मनोयोगः, वाक्योगः च चतुस्पर्शः, काययोगः अष्टस्पर्शः।

साकारोपयोगः अनाकारोपयोगः च अवर्णः।

११७. भंते! कृष्ण लेश्या कितने वर्ण यावत् कितने स्पर्श वाली प्रज्ञप्त है।
द्रव्य लेश्या की अपेक्षा पांच वर्ण यावत् आठ स्पर्श वाली प्रज्ञप्त है। भाव लेश्या की अपेक्षा वर्ण-रहित, गन्ध-रहित, रस रहित और स्पर्श-रहित प्रज्ञप्त हैं। इसी प्रकार यावत् शुक्ल लेश्या की वक्तव्यता।
सम्यक्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि, सम्यक्मिथ्यादृष्टि, चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन, केवलदर्शन, आभिनिबोधिक ज्ञान यावत् विभंगज्ञान, आहार संज्ञा यावत् परिग्रह संज्ञा—ये सभी वर्ण-रहित, गन्ध-रहित, रस-रहित और स्पर्श-रहित हैं।

औदारिक शरीर यावत् तैजस शरीर—ये आठ स्पर्श वाले हैं। कर्मशरीर चार स्पर्श वाला है। मन योग और वचन योग चार स्पर्श वाले हैं। काय योग आठ स्पर्श वाला है।
साकारोपयोग और अनाकारोपयोग वर्ण रहित हैं।

भाष्य

१. सूत्र ११७

द्रव्य लेश्या का अर्थ है वर्ण (रंग)। भाव लेश्या जीव का आंतरिक परिणाम है। कृष्ण लेश्या से लेकर परिग्रह संज्ञा पर्यन्त सभी जीव-परिणाम होने के कारण अवर्ण हैं।

चतुस्पर्शी होने का कारण है सूक्ष्म परिणति और अष्टस्पर्शी होने का कारण है बादर (स्थूल) परिणति। यह वृत्तिकार का अभिमत है।[1] अठारहवें शतक में बादर परिणति वाले स्कंध को चतुःस्पर्शी भी बतलाया गया है।[2] बीसवें शतक के अनुसार चतुस्पर्शी का तात्पर्य भिन्न है। सूक्ष्म परिणति वाले स्कंध में स्निग्ध और रूक्ष, शीत और उष्ण—ये चार स्पर्श होते हैं। बादर परिणति वाले चतुःस्पर्शी स्कंधों में आठ में से चार होते हैं, जैसे—स्निग्ध और रूक्ष में से एक, शीत और उष्ण में से एक, गुरु और लघु में से एक, कर्कश और मृदु में से एक।[3]

मिथ्यादृष्टि जीव-परिणाम है। इस विषय में जयाचार्य ने विस्तृत समीक्षा की है।[4]

११८. सव्वदव्वा णं भंते! कतिवण्णा जाव कतिफासा पण्णत्ता?
गोयमा! अत्थेगतिया सव्वदव्वा पंचवण्णा जाव अट्ठफासा पण्णत्ता। अत्थेगतिया सव्वदव्वा पंचवण्णा जाव चउफासा पण्णत्ता।

सर्वद्रव्याणि भदन्त! कतिवर्णानि यावत् कतिस्पर्शानि प्रज्ञप्तानि?
गौतम! अस्त्येककानि सर्वद्रव्याणि पञ्चवर्णानि यावत् अष्टस्पर्शानि प्रज्ञप्तानि। अस्त्येककानि सर्वद्रव्याणि पञ्चवर्णानि यावत् चतुःस्पर्शानि प्रज्ञप्तानि।

११८. भंते! सर्वद्रव्य कितने वर्ण यावत् कितने स्पर्श वाले प्रज्ञप्त हैं?
गौतम! कुछ सर्वद्रव्य पांच वर्ण यावत् आठ स्पर्श वाले प्रज्ञप्त हैं। कुछ सर्वद्रव्य पांच वर्ण यावत् चार स्पर्श वाले प्रज्ञप्त हैं। कुछ सर्वद्रव्य एक वर्ण, एक गन्ध, एक रस और दो स्पर्श वाले प्रज्ञप्त हैं।

---

१. भ. वृ. १२/११७—भावलेश्या—आतंरपरिणामः, इह च कृष्णलेश्यादीनि परिग्रहसञ्ज्ञाऽवसानानि अवर्णादीनि जीवपरिणामत्वात्, औदारिका-दीनि चत्वारिशरीराणि पञ्चवर्णादिविशेषणानि अष्टस्पर्शानि च बादर-परिणाम-पुद्गलरूपत्वात् सर्वत्र च चतुःस्पर्शत्वे सूक्ष्मपरिणामः कारणं, अष्टस्पर्शत्वे च बादरपरिणामः कारणं वाच्यमिति।
२. भ. वृ. १८/११७।
३. वही, २०/३६।
४. भ. जो. ४/२१६/१३-२८।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्थेगतिया सव्वदव्वा एगवण्णा, एगगंधा, एगरसा, दुफासा पण्णत्ता। अत्थेगतिया सव्वदव्वा अवण्णा जाव अफासा पण्णत्ता। एवं सव्वपएसा वि, सव्वपज्जवा वि। तीयद्धा अवण्णा जाव अफासा। एवं अणागयद्धा वि, सव्वद्धा वि॥

अस्त्येककानि सर्वद्रव्याणि एकवर्णानि, एकगन्धानि, एकरसानि, द्विस्पर्शानि प्रज्ञप्तानि। अस्त्येककानि सर्वद्रव्याणि अवर्णानि यावत् अस्पर्शानि प्रज्ञप्तानि। अतीताद्धा अवर्णा यावत् अस्पर्शा। एवम् अनागताद्धा अपि, सर्वाद्धा अपि।

कुछ सर्वद्रव्य वर्ण-रहित यावत् स्पर्श-रहित प्रज्ञप्त हैं। इसी प्रकार सर्वप्रदेश और सर्व-पर्याय की वक्तव्यता। अतीत काल वर्ण-रहित यावत् स्पर्शरहित होता है। इसी प्रकार अनागत काल और सर्व काल की वक्तव्यता।

भाष्य

१. सूत्र ११८

प्रस्तुत सूत्र में चार विकल्प हैं। उनमें प्रथम तीन पुद्गल से संबद्ध हैं।

१. स्थूल परिणति वाले पुद्गल पांच वर्ण वाले यावत् आठ स्पर्श वाले हैं।

२. सूक्ष्म परिणति वाले पुद्गल पांच वर्ण वाले यावत् चार स्पर्श वाले हैं।

३. परमाणु-पुद्गल एक वर्ण, एक गंध, एक रस और द्विस्पर्श वाला होता है। स्निग्ध-रूक्ष में से एक और शीत उष्ण में से एक-इस प्रकार दो स्पर्श वाला होता है।[1] द्विप्रदेशी स्कंध से लेकर अनंत प्रदेशी स्कंध तक के सूक्ष्म परिणति वाले स्कंध भी दो स्पर्श वाले हो सकते हैं।[2]

४. धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय और जीवास्तिकाय-ये चारों द्रव्य अवर्ण, अगंध, अरस और अस्पर्श वाले हैं।[3]

प्रदेश-द्रव्य का निर्विभाग अंश। पुद्गल मूर्त्त द्रव्य है। उसके प्रदेश वर्ण आदि से युक्त होते हैं। धर्मास्तिकाय आदि चार द्रव्य अमूर्त हैं। उनके प्रदेश वर्ण आदि से रहित होते हैं। इसी प्रकार मूर्त्त द्रव्य के पर्यव मूर्त्त और अमूर्त्त द्रव्य के पर्यव अमूर्त्त होते हैं।[4]

द्रव्य, प्रदेश, पर्याय-तीनों का उल्लेख है। इस प्रकरण में गुण का उल्लेख नहीं है। इससे फलित होता है कि आगम काल में गुण और पर्याय की अभिन्नता रही है। प्रदेश और पर्यव के पश्चात् काल का निरूपण हुआ है। इससे परिलक्षित होता है कि काल प्रदेश-युक्त द्रव्य नहीं है।

११९. जीवे णं भंते! गब्भं वक्कममाणे कतिवण्णं, कतिगंधं, कतिरसं, कतिफासं परिणामं परिणमइ?

गोयमा! पंचवण्णं, दुगंधं, पंचरसं, अट्ठफासं परिणामं परिणमइ॥

जीवः भदन्त! गर्भम् अवक्रामन् कतिवर्णं, कतिगन्धं, कतिरसं, कतिस्पर्शं परिणामं परिणमति?

गौतम! पञ्चवर्णं, द्विगन्धं, पञ्चरसं, अष्टस्पर्शं परिणामं परिणमति।

११९. भंते! गर्भ में उपपन्न होता हुआ जीव कितने वर्ण, कितने गन्ध, कितने रस और कितने स्पर्श के परिणाम से परिणत होता है।

गौतम! पांच वर्ण, दो गन्ध, पांच रस और आठ स्पर्श के परिणाम से परिणत होता है।

भाष्य

१. सूत्र ११९

गर्भ में आने के समय जीव स्थूल शरीर का निर्माण करता है, आहार पर्याप्ति आदि पर्याप्तियों की रचना करता है। इस दृष्टि से वह सभी वर्ण, गंध, रस और स्पर्शों का परिणमन करता है।

---

१. भ. वृ. १२/११८-'सव्वदव्व' त्ति सर्वद्रव्याणि धर्मास्तिकायादीनि अत्थेगइया सव्वदव्वा पंचवन्नेत्यादि बादरपुद्गलद्रव्याणि प्रतीत्योक्तं, सर्वद्रव्याणां मध्ये कानिचित्पञ्चवर्णादीनीति भावार्थः, चउफासा इत्येतच्च पुद्गलद्रव्याण्येव सूक्ष्माणि प्रतीत्योक्तं-'एगगंधे'त्यादि च परमाण्वादिद्रव्याणि प्रतीत्योक्तं, यदाह-परमाणुद्रव्यमाश्रित्य-

कारणमेव तदन्त्यं, सूक्ष्मो नित्यश्च भवति परमाणुः।
एकरसवर्णगंधो, द्विस्पर्शः कार्यलिंगश्च॥

इति च स्पर्शद्वयं च सूक्ष्मसंबंधिनां चतुर्णां स्पर्शानामन्यतरविरुद्धं भवति, तथा हि-स्निग्धोष्णलक्षणं स्निग्धशीतलक्षणं वा रूक्षशीतलक्षणं रूक्षोष्णलक्षणं वेति।

२. भ. १८/११२-११६

३. भ. वृ. १२/११८-अवण्णेत्यादि च धर्मास्तिकायादिद्रव्याणि आश्रित्योक्तम्।

४. भ. वृ. १२/११८-तत्र च प्रदेशा-द्रव्यस्य निर्विभागा अंशाः पर्यवास्तु धर्माः, तैश्चैवं करणादेवं वाच्याः-सव्वपएसा णं भन्ते! कइ वण्णा? पुच्छा, गोयमा! अत्थेगइया सव्वपएसा पंचवन्ना जाव अट्ठफासा इत्यादि। एवं च पर्यवसूत्रमपि, इह च मूर्त्तद्रव्याणां प्रदेशाः पर्यवाश्च मूर्त्तद्रव्य-वत्पंचवर्णादयः, अमूर्तद्रव्याणां चामूर्त्तद्रव्यवदवर्णादय इति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कम्मओ विभत्ति-पदं	कर्मतः विभक्ति-पदम्	कर्म-विभक्ति पद
१२०. कम्मओ णं भंते! जीवे नो अकम्मओ विभत्तिभावं परिणमइ? कम्मओ णं जए नो अकम्मओ विभत्तिभावं परिणमइ?	कर्मतः भदन्त! जीवः नो अकर्मतः विभक्तिभावं परिणमति? कर्मतः जगत् नो अकर्मतः विभक्तिभावं परिणमति?	१२०. भंते! क्या जीव कर्म से विभक्ति-भाव (नरक, मनुष्य आदि भव) में परिणमन करता है, अकर्म से विभक्ति-भाव में परिणमन नहीं करता? क्या जगत् कर्म से विभक्ति-भाव में परिणमन करता है? अकर्म से विभक्ति-भाव में परिणमन नहीं करता?
हंता गोयमा! कम्मओ णं जीवे नो अकम्मओ विभत्तिभावं परिणमइ, कम्मओ णं जए नो अकम्मओ विभत्तिभावं परिणमइ॥	हन्त गौतम! कर्मतः जीवः नो अकर्मतः विभक्तिभावं परिणमति, कर्मतः जगत् नो अकर्मतः विभक्तिभावं परिणमति।	हां! गौतम! जीव कर्म से विभक्ति-भाव में परिणमन करता है, अकर्म से नहीं, जगत् कर्म से विभक्ति-भाव में परिणमन करता है, अकर्म से नहीं।

भाष्य

१. सूत्र १२०

चार गतियां–नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देव। उन सबमें अनेक जीव हैं। एक गति में भी अनेक विभाग हैं। इस विभाग का हेतु क्या है? इस जिज्ञासा का समाधान कर्म सिद्धांत के द्वारा दिया गया। प्रत्येक जीव का स्वकृत कर्म होता है। उसके द्वारा ही कोई जीव नारक है, कोई तिर्यंच है कोई मनुष्य है और कोई देव। इस विभाग का हेतु परिस्थिति नहीं है, बाहरी वातावरण नहीं है। यह विभाग किसी ईश्वरीय शक्ति द्वारा कृत नहीं है। इसका हेतु केवल कर्म है। वृत्तिकार ने जगत् का अर्थ जीव समूह या जंगम प्राणी किया है।[1] उणादि प्रकरण में जगत का अर्थ स्थावर जंगम लोक किया गया है।[2] इससे फलित होता है कि स्थावर जंगम अथवा त्रस और स्थावर का विभाग भी कर्म कृत है।

१२१. सेवं भंते! सेवं भंते! त्ति॥	तदेवं भदन्त! तदेवं भदन्त! इति।	१२१. भंते! यह ऐसा ही है। भंते! वह ऐसा ही है।

१. भ. वृ. १२/१२०–कम्मओ ण मित्यादि, कर्मतः सकाशान्नो अकर्मतः–न कर्माणि विना जीवो 'विभक्तिभावं' विभागरूपं भावं नारकतिर्यग्-मनुष्यामरभवेषु नानारूपं परिणाममित्यर्थः, 'परिणमति' गच्छति तथा कम्मओ णं जए त्ति गच्छति तांस्तान्नारकादिभावान्निति 'जगत्' जीव समूहो जीवद्रव्यस्यैव वा विशेषो जंगमाभिधानो जगन्ति जंगमान्याहुरिति वचनादिति।

२. भिक्षु शब्दानुशासनम् उणादिप्रकरणम् १/१३४ जगत्–गम्लृं गतौ, गच्छन्ति चराचरप्राणिनो उत्पद्यन्ते यस्मिन्–स्थावरजंगमो लोकः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

छट्ठो उद्देसो : छठा उद्देशक

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
चंद-सूर-गहण-पदं	चंद्र-सूर-ग्रहण-पदम्	चंद्र-सूर्य–ग्रहण पद
१२२. रायगिहे जाव एवं वयासी–बहुजणे णं भंते ! अण्णमण्णस्स एवमाइक्खइ जाव एवं परूवेइ–एवं खलु राहू चंदं गेण्हति, एवं खलु राहू चंदं गेण्हति॥	राजगृहं यावत् एवमवादीत्–बहुजनः भदन्त! अन्योऽन्यम् एवमाख्याति यावत् एवं प्ररूपयति–एवं खलु राहुः चन्द्रं गृह्णाति, एवं खलु राहुः चन्द्रं गृह्णाति।	१२२. राजगृह नाम का नगर यावत् इस प्रकार बोले–भंते ! बहुजन परस्पर इस प्रकार आख्यान यावत् प्ररूपणा करते हैं–राहु चंद्र को ग्रहण करता है, राहु चंद्र को ग्रहण करता है।
१२३. से कहमेयं भंते ! एवं ? गोयमा ! जण्णं से बहुजणे अण्णमण्णस्स एवमाइक्खइ जाव जे ते एवमाहंसु मिच्छं ते एवमाहंसु, अहं पुण गोयमा ! एवमाइक्खामि जाव एवं परूवेमि–एवं खलु राहू देवे महिड्ढीए जाव महेसक्खे वरवत्थधरे वरमल्लधरे वरगंधधरे वराभरणधारी।	तत् कथमेतद् भदन्त! एवम्? गौतम! यत् सः बहुजनः अन्योऽन्यम् एवमाख्याति यावत् ये एते–एवमाहुः मिथ्या ते एवमाहुः। अहं पुनः गौतम! एवमाख्यामि यावत् प्ररूपयामि–एवं खलु राहुः देवः महर्द्धिकः यावत् महेशाख्यः वरवस्त्रधरः वरमाल्यधरः वरगन्धधरः वराभरणधारी।	१२३. भंते ! यह कैसे है ? क्या ऐसा है ? गौतम ! जो बहुजन परस्पर इस प्रकार का आख्यान यावत् प्ररूपणा करते हैं, वे मिथ्या कहते हैं। गौतम ! मैं इस प्रकार का आख्यान यावत् प्ररूपणा करता हूं–इस प्रकार राहुदेव महान् ऋद्धिवाला यावत् महान् ऐश्वर्यशाली के रूप में प्रख्यात, प्रवर वस्त्रधारक, प्रवर माल्यधारक, प्रवर गंध और प्रवर आभरणधारी होता है।
राहुस्स णं देवस्स नव नामधेज्जा पण्णत्ता, तं जहा–सिंघाडए जडिलए खतए खरए दद्दुरे मगरे मच्छे कच्छभे कण्हसप्पे।	राहोः देवस्य नव नामधेयानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा–शृंगाटकः जटिलकः, 'खतए' खरकः दर्दुरः मकरः मत्स्यः कच्छपः कृष्णसर्पः।	राहुदेव के नौ नाम प्रज्ञप्त हैं, जैसे शृंगारक, जटिलक, क्षत्रक, खरक, दर्दुर मकर, मत्स्य, कच्छप और कृष्णसर्प।
राहुस्स णं देवस्स विमाणा पंचवण्णा पण्णत्ता, तं जहा–किण्हा, नीला, लोहिया, हालिद्दा, सुक्किला। अत्थि कालए राहुविमाणे खंजणवण्णाभे पण्णत्ते, अत्थि नीलए राहुविमाणे लाउयवण्णाभे पण्णत्ते, अत्थि लोहिए राहुविमाणे मंजिट्ठवण्णाभे पण्णत्ते, अत्थि पीतए राहुविमाणे हालिद्दवण्णाभे पण्णत्ते, अत्थि सुक्किलए राहुविमाणे भासरासिवण्णाभे पण्णत्ते।	राहोः देवस्य विमानानि पञ्चवर्णानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा–कृष्णानि, नीलानि, लोहितानि, हारिद्राणि, शुक्लानि। अस्ति कालकं राहुविमानं खञ्जनवर्णाभं प्रज्ञप्तम्, अस्ति नीलकं राहुविमानं अलाबुकवर्णाभं प्रज्ञप्तम्, अस्ति लोहितं राहुविमानं मञ्जिष्ठवर्णाभं प्रज्ञप्तम्, अस्ति पीतकं राहुविमानं हारिद्रवर्णाभं प्रज्ञप्तम्, अस्ति शुक्लकं राहुविमानं भस्मराशिवर्णाभं प्रज्ञप्तम्।	राहुदेव के विमानों के पांच वर्ण प्रज्ञप्त हैं, जैसे–कृष्ण, नील, रक्त, पीत और श्वेत। कृष्ण राहुविमान का वर्ण खंजन के समान आभा वाला प्रज्ञप्त है, नील राहुविमान का वर्ण अलाबुक (तुम्बी) के समान आभा वाला प्रज्ञप्त है, रक्त राहुविमान का वर्ण मंजिष्ठ के समान आभा वाला प्रज्ञप्त है, पीत राहुविमान का वर्ण हरिद्रा के समान आभा वाला प्रज्ञप्त है। शुक्ल (श्वेत) राहुविमान का वर्ण शंख के ढेर के समान आभा वाला प्रज्ञप्त है।
जदा णं राहू आगच्छमाणे वा गच्छमाणे वा विउव्वमाणे वा परियारेमाणे वा चंदलेस्सं पुरत्थिमेणं आवरेत्ता णं पच्चत्थिमेणं वीतीवयइ तदा	यदा राहुः आगच्छन् वा गच्छन् वा विकुर्वाणः वा परिचारयमाणः वा चन्द्रलेश्यां पौरस्त्येन आवृत्य पाश्चात्येन व्यतिव्रजति तदा पौरस्त्येन	जब राहु आता हुआ, जाता हुआ विक्रिया करता हुआ अथवा परिचारणा करता हुआ चन्द्रलेश्या को पूर्व की ओर से आवृत कर पश्चिम की ओर जाता है, तब पूर्व में

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

णं पुरत्थिमेणं चंदे उवदंसेति, पच्चत्थिमेण राहू। यदा णं राहू आगच्छमाणे वा गच्छमाणे वा विउव्वमाणे वा परियारेमाणे वा चंदलेस्सं पच्चत्थिमेणं आवरेत्ता णं पुरत्थिमेणं वीतीवयइ तदा णं पच्चत्थिमेणं चंदे उवदंसेति पुरत्थिमेणं राहू।

चन्द्रः उपदर्शयति, पाश्चात्येन राहुः। यदा राहुः आगच्छन् वा गच्छन् वा विकुर्वाणः वा परिचारयमाणः वा चन्द्रलेश्यां पाश्चात्येन आवृत्य पौरस्त्येन व्यतिव्रजति तदा पाश्चात्येन चन्द्रः उपदर्शयति, पौरस्त्येन राहुः।

चन्द्रमा दिखाई देता है और पश्चिम में राहु। जब राहु आता हुआ, जाता हुआ, विक्रिया करता हुआ अथवा परिचारणा करता हुआ चन्द्रलेश्या को पश्चिम की ओर से आवृत कर पूर्व की ओर जाता है, तब पश्चिम में चन्द्रमा दिखाई देता है और पूर्व में राहु।

एवं जहा पुरत्थिमेणं पच्चत्थिमेण य दो आलावगा भणिया एवं दाहिणेणं उत्तरेण य दो आलावगा भाणियव्वा। एवं उत्तरपुरत्थिमेणं दाहिणपच्चत्थिमेण य दो आलावगा भाणियव्वा। एवं दाहिणपुरत्थिमेणं उत्तरपच्चत्थिमेण य दो आलावगा भाणियव्वा एवं चेव जाव तदा णं उत्तरपच्चत्थिमेणं चंदे उवदंसेति, दाहिणपुरत्थिमेणं राहू।

एवं यथा पौरस्त्येन पाश्चात्येन च द्वौ आलापकौ भणितौ, एवं दक्षिणेन उत्तरेण च द्वौ आलापकौ भणितव्यौ। एवं उत्तरपौरस्त्येन दक्षिणपाश्चात्येन च द्वौ आलापकौ भणितव्यौ। एवं दक्षिणपौरस्त्येन उत्तरपाश्चात्येन च द्वौ आलापकौ भणितव्यौ एवं चैव यावत् तदा उत्तरपाश्चात्येन चन्द्रः उपदर्शयति, दक्षिणपौरस्त्येन राहुः।

इस प्रकार जैसे पूर्व और पश्चिम के दो आलापक कहे गए हैं, इसी प्रकार दक्षिण व उत्तर के भी दो आलापक वक्तव्य हैं। इसी प्रकार उत्तर-पूर्व और दक्षिण-पश्चिम के भी दो आलापक वक्तव्य हैं। इसी प्रकार दक्षिण-पूर्व और उत्तर-पश्चिम के दो आलापक वक्तव्य हैं। इसी प्रकार पूर्ववत् यावत् तब उत्तर-पश्चिम में चन्द्रमा दिखाई देता है और दक्षिण-पूर्व में राहु।

जदा णं राहू आगच्छमाणे वा गच्छमाणे वा विउव्वमाणे वा परियारेमाणे वा चंदलेस्सं आवरेमाणे-आवरेमाणे चिट्ठइ तदा णं मणुस्सलोए मणुस्सा वदंति–एवं खलु राहू चंदं गेण्हति, एवं खलु राहू चंदं गेण्हति।

यदा राहुः आगच्छन् वा गच्छन् वा विकुर्वाणः वा परिचारयमाणः वा चन्द्रलेश्याम् आवृण्वन्-आवृण्वन् तिष्ठति तदा मनुष्यलोके मनुष्याः वदन्ति–एवं खलु राहुः चन्द्रं गृह्णाति, एवं खलु राहुः चन्द्रं गृह्णाति।

जब राहु आता हुआ, जाता हुआ, विक्रिया करता हुआ अथवा परिचारणा करता हुआ चन्द्रलेश्या को आवृत करता हुआ, आवृत करता हुआ स्थित होता है तब मनुष्य लोक में मनुष्य कहते हैं–इस प्रकार निश्चित ही राहु चन्द्रमा का ग्रहण करता है, राहु चंद्रमा का ग्रहण करता है।

जदा णं राहू आगच्छमाणे वा गच्छमाणे वा विउव्वमाणे वा परियारेमाणे वा चंदलेस्सं आवरेत्ता णं पासेणं वीतीवयइ तदा णं मणुस्सलोए मणुस्सा वदंति–एवं खलु चंदेणं राहुस्स कुच्छी भिन्ना, एवं खलु चंदेणं राहुस्स कुच्छी भिन्ना।

यदा राहुः आगच्छन् वा गच्छन् वा विकुर्वाणः वा परिचारयमाणः वा चन्द्रलेश्याम् आवृत्य पार्श्वेन व्यतिव्रजति तदा मनुष्यलोके मनुष्याः वदन्ति–एवं खलु चन्द्रेण राहोः कुक्षिः भिन्ना, एवं खलु चन्द्रेण राहोः कुक्षिः भिन्ना।

जब राहु आता हुआ, जाता हुआ, विक्रिया करता हुआ अथवा परिचारणा करता हुआ चन्द्र लेश्या को आवृत कर पार्श्व से जाता है, तब मनुष्य लोक में मनुष्य कहते हैं–चन्द्रमा के द्वारा राहु की कुक्षि का भेदन हुआ है, चन्द्रमा के द्वारा राहु की कुक्षि का भेदन हुआ है।

जदा णं राहू आगच्छमाणे वा गच्छमाणे वा विउव्वमाणे वा परियारेमाणे वा चंदलेस्सं आवरेत्ता णं पच्चोसक्कइ तदा णं मणुस्सलोए मणुस्सा वदंति–एवं खलु राहुणा चंदे वंते, एवं खलु राहुणा चंदे वंते।

यदा राहुः आगच्छन् वा गच्छन् वा विकुर्वाणः वा परिचारयमाणः वा चन्द्रलेश्याम् आवृत्य प्रत्यवष्कते तदा मनुष्यलोके मनुष्याः वदन्ति–एवं खलु राहुना चन्द्रः वान्तः, एवं खलु राहुना चन्द्रः वान्तः।

जब राहु आता हुआ, जाता हुआ, विक्रिया करता हुआ अथवा परिचारणा करता हुआ चन्द्रलेश्या को आवृत कर पीछे हटता है, दूर जाता है तब मनुष्य लोक में मनुष्य कहते हैं–राहु के द्वारा चन्द्रमा को छोड़ दिया गया है, राहु के द्वारा चन्द्रमा को छोड़ दिया गया है।

जदा णं राहू आगच्छमाणे वा गच्छमाणे वा विउव्वमाणे वा परियारेमाणे वा चंदलेस्सं अहे सपक्खिं सपडिदिसिं आवरेत्ता णं चिट्ठइ तदा णं मणुस्सलोए मणुस्सा वदंति–एवं खलु राहुणा चंदे घत्थे, एवं खलु राहुणा चंदे घत्थे॥

यदा राहुः आगच्छन् वा गच्छन् वा विकुर्वाणः वा परिचारयमाणः वा चन्द्रलेश्याम् अधःसपक्षं सप्रतिदिशम् आवृत्य तिष्ठति तदा मनुष्यलोके मनुष्याः वदन्ति–एवं खलु राहुना चन्द्रः ग्रस्तः, एवं खलु राहुना चन्द्रः ग्रस्तः।

जब राहु आता हुआ, जाता हुआ, विक्रिया करता हुआ अथवा परिचारणा करता हुआ चन्द्रलेश्या को आवृत कर नीचे सपक्ष, सप्रतिदिशि–समान दिशा और विदिशा को आवृत कर स्थित होता है, तब मनुष्य लोक में मनुष्य कहते हैं–राहु के द्वारा चन्द्रमा का ग्रहण कर लिया गया है, राहु के द्वारा चंद्रमा का ग्रहण कर लिया गया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भाष्य

१. सूत्र १२२-१२३

प्राचीन ज्योतिष का एक मत यह था–राहु चंद्रमा का ग्रास करता है। इस मत को अमान्य कर प्राचीन जैन खगोल सम्मत मत इस प्रकार निरूपित किया गया है–राहु चंद्र अथवा सूर्य को कभी अधोभाग से ग्रहण कर अधोभाग से छोड़ता है, कभी अधोभाग से ग्रहण कर ऊपरीभाग से छोड़ता है, कभी ऊपरीभाग से ग्रहण कर अधोभाग से छोड़ता है, कभी ऊपरीभाग से ग्रहण कर ऊपर के भाग से छोड़ता है। कभी वाम पार्श्व से ग्रहण कर वाम पार्श्व से ही छोड़ता है। कभी वाम पार्श्व से ग्रहण कर दक्षिण पार्श्व से छोड़ता है। कभी दक्षिण पार्श्व से ग्रहण कर वाम पार्श्व से छोड़ता है, कभी दक्षिण पार्श्व से ग्रहण कर दक्षिण पार्श्व से ही छोड़ता है।[1]

राहु के पर्यायवाची ९ नाम हैं–शृंगाटक, जटिलक, क्षत्रक, खरक, दर्दुर, मकर, मत्स्य, कच्छप, कृष्ण सर्प।

राहु देव के विमान पांच वर्ण के हैं–कृष्ण, नील, लोहित (रक्त) हरिद्रा (पीत) शुक्ल (श्वेत)। काला राहु विमान खंजन के वर्ण की आभा वाला है। नील राहु विमान आर्द्र तुम्बे के वर्ण की आभा वाला है। लाल राहु विमान मजीठ के वर्ण की आभा वाला है। पीला राहु विमान हल्दी के वर्ण की आभा वाला है। सफेद राहु विमान शंख के ढेर के वर्ण की आभा वाला है।

जब राहुदेव एक स्थान से दूसरे स्थान में जाता हुआ, आता हुआ, विक्रिया करता हुआ, परिचारणा करता हुआ चंद्र या सूर्य की लेश्या को पूर्व में आवृत कर पश्चिम में जाता है तब पूर्व में चंद्र या सूर्य दिखाई देता है, पश्चिम में राहु।

जब राहु देव आता हुआ जाता हुआ, विक्रिया करता हुआ, परिचारणा करता हुआ चंद्र या सूर्य के दक्षिण भाग को आवृत कर उत्तर में जाता है तब चंद्र या सूर्य दक्षिण भाग में दिखाई देता है, उत्तर में राहु।

जब राहु देव आता हुआ जाता हुआ, विक्रिया करता हुआ, परिचारणा करता हुआ चंद्र या सूर्य के उत्तर भाग को आवृत कर दक्षिण में जाता है तब चंद्र या सूर्य उत्तर भाग में दिखाई देता है, दक्षिण में राहु।

जब राहुदेव आता हुआ, जाता हुआ, विक्रिया करता हुआ परिचारणा करता हुआ चंद्र या सूर्य के उत्तर पूर्व (ईशान) भाग को आवृत कर दक्षिण पश्चिम (नैऋत्य) में जाता है तब उत्तर पूर्व में चंद्र या सूर्य दिखाई देता है, दक्षिण पश्चिम में राहु।

जब राहु देव आता हुआ, जाता हुआ, विक्रिया करता हुआ परिचारणा करता हुआ चंद्र या सूर्य के दक्षिण पश्चिम (नैऋत्य) भाग को आवृत कर उत्तर-पूर्व (ईशान) में जाता है तब चंद्र या सूर्य दक्षिण-पश्चिम भाग में दिखाई देता है, उत्तर-पूर्व में राहु।

जब राहु देव आता हुआ, जाता हुआ, विक्रिया करता हुआ परिचारणा करता हुआ चंद्र या सूर्य के दक्षिण पूर्व (अग्निकोण) भाग को आवृत कर उत्तर-पश्चिम (वायव्य) भाग में जाता है तब दक्षिण पूर्व भाग क्षत्रक चंद्र या सूर्य दिखाई देता है, उत्तर पश्चिम में राहु।

जब राहु देव आता हुआ, जाता हुआ, विक्रिया करता हुआ परिचारणा करता हुआ चंद्र या सूर्य के उत्तर पश्चिम (वायव्य) भाग को आवृत कर दक्षिण पूर्व (अग्निकोण) में जाता है तब उत्तर पश्चिम में चंद्र या सूर्य दिखाई देता है, दक्षिण पूर्व में राहु।

जब राहु देव आता हुआ, जाता हुआ, विक्रिया करता हुआ परिचारणा करता हुआ चंद्र या सूर्य की लेश्या को आवृत करता हुआ रहता है तब लोक में मनुष्य कहते हैं, राहु ने चंद्र को ग्रहण कर लिया है।

जब राहु देव आता हुआ, जाता हुआ, विक्रिया करता हुआ परिचारणा करता हुआ चंद्र या सूर्य की लेश्या को आवृत कर पास में होकर जाता है तब मनुष्य लोक में मनुष्य कहते हैं–चंद्र या सूर्य ने राहु की कुक्षि को भेदा है–राहु की कुक्षि को भेदकर चंद्र या सूर्य निकल गया है।

जब राहु देव आता हुआ, जाता हुआ, विक्रिया करता हुआ परिचारणा करता हुआ चंद्र या सूर्य की लेश्या को आवृत कर पीछे जाता है तब मनुष्य लोक में मनुष्य कहते हैं–राहु ने चंद्र या सूर्य का वमन किया है।

जब राहु देव आता हुआ, जाता हुआ, विक्रिया करता हुआ, परिचारणा करता हुआ, चंद्र या सूर्य की लेश्या को सपक्ष (सर्व पार्श्व पूर्व पश्चिम दक्षिण उत्तर रूप) सप्रतिदिशि (सर्वप्रतिदिशि सर्व विदिशा) को आवृत कर रहता है तब मनुष्य लोक में मनुष्य कहते हैं–राहु ने चंद्र या सूर्य को ग्रसित (संपूर्ण सर्व भाग को ग्रहण) कर लिया है।

१२४. कतिविहे णं भंते ! राहू पण्णत्ते ?
गोयमा ! दुविहे राहू पण्णत्ते, तं जहा–
धुवराहू य, पव्वराहू य। तत्थ णं जे से धुवराहू से णं बहुलपक्खस्स पाडिवए पन्नरसतिभागेणं पन्नरसतिभागं चंदलेस्सं आवरेमाणे-आवरेमाणे चिट्ठइ, तं जहा–

कतिविधः भदन्त! राहुः प्रज्ञप्तः?
गौतम! द्विविधः राहु प्रज्ञप्तः तद्यथा–
ध्रुवराहुः च पर्वराहुः च। तत्र यः सः ध्रुवराहुः सः बहुलपक्षस्य प्रतिपदि पञ्चदशत्रिभागेन पञ्चदशत्रि-भागं चन्द्रलेश्याम् आवृण्वन्-आवृण्वन् तिष्ठति, तद्यथा–

१२४. भंते ! राहु कितने प्रकार के प्रज्ञप्त हैं ?
गौतम ! राहु दो प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे–
ध्रुव राहु और पर्व राहु।
जो ध्रुव राहु है, वह कृष्णपक्ष की प्रतिपदा से प्रतिदिन चंद्रमा की लेश्या (मंडल) का पन्द्रहवां भाग आवृत करता हुआ, आवृत करता हुआ स्थित होता है, जैसे–

१. सूर्य. वृ. प. २८२।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पढमाए पढमं भागं, बितियाए बितियं भागं जाव पन्नरसेसु पन्नरसमं भागं। चरिमसमये चंदे रत्ते भवइ, अवसेसे समये चंदे रत्ते वा विरत्ते वा भवइ। तमेव सुक्कपक्खस्स उवदंसेमाणे-उवदंसेमाणे चिट्ठइ, पढमाए पढमं भागं जाव पन्नरसेसु पन्नरसमं भागं। चरिमसमये चंदे विरत्ते भवइ, अवसेसे समये चंदे रत्ते वा विरत्ते वा भवइ। तत्थ णं जे से पव्वराहू से जहण्णेणं छण्हं मासाणं उक्कोसेणं बायालीसाए मासाणं चंदस्स, अडयालीसाए संवच्छराणं सूरस्स॥

प्रथमायां प्रथमं भागं, द्वितीयायां द्वितीयं भागं यावत् पञ्चदशेषु पञ्चदशमं भागम्। चरमसमये चन्द्रः रक्तः भवति, अवशेषे समये चन्द्रः रक्तः वा विरक्तः वा भवति। तमेव शुक्लपक्षस्य उपदर्शयन्-उपदर्शयन् तिष्ठति, प्रथमायां प्रथमं भागं यावत् पञ्चदशमं भागम्। चरमसमये चन्द्रः विरक्तः भवति, अवशेषे समये चन्द्रः रक्तः वा विरक्तः वा भवति । तत्र यः सः पर्वराहुः सः जघन्येन 'षण्णां मासानाम्' उत्कर्षेण द्वाचत्वारिंशत् मासानां चन्द्रस्य, अष्टचत्वारिंशत् संवत्सराणां सूरस्य।

प्रतिपदा के दिन पहला भाग, द्वितीया के दिन दूसरा भाग यावत् पन्द्रहवें दिन (अमावस्या) पन्द्रहवां भाग (सम्पूर्ण-चन्द्रमंडल)। अंतिम समय (कृष्णपक्ष के अंतिम दिन) में चन्द्रमा रक्त (सर्वथा आवृत) होता है, अवशेष समय में चन्द्रमा रक्त (अंशतः आच्छादित) अथवा विरक्त (अंशतः अनाच्छादित) होता है। वही (ध्रुव राहु) शुक्ल पक्ष में प्रतिदिन एक-एक पन्द्रहवें भाग को उद्घाटित करता है, जैसे-प्रतिपदा के दिन पहला भाग उद्घाटित करता है। यावत् पूर्णिमा के दिन पन्द्रहवां भाग उद्घाटित करता है अर्थात् संपूर्ण चंद्र-मंडल को उद्घाटित करता है। अंतिम-समय में चंद्रमा विरक्त (सर्वथा अनाच्छादित) होता है, अवशेष समय में चंद्रमा रक्त (आच्छादित) अथवा विरक्त (अनाच्छादित) होता है। जो पर्व राहु है वह जघन्यतः छह मास में चंद्र और सूर्य को तथा उत्कृष्टतः बयालीस मास में चंद्र और अड़तालीस वर्ष में सूर्य को आवृत करता है।

भाष्य

१. सूत्र १२४

राहु के दो भेद हैं-ध्रुव राहु और पर्व राहु। ध्रुव (नित्य) राहु कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा को चंद्रमा का एक भाग १/१५ भाग आवृत करता है। द्वितीया को २/१५ भाग आवृत करता है। इस प्रकार अमावस को पन्द्रहवां भाग आवृत करता है। अंतिम समय में चंद्र रक्त (आवृत) होता है, अवशेष समय में चंद्र आवृत और अनावृत दोनों रहता है। उसी प्रकार शुक्ल पक्ष में एक-एक भाग (१/१५ भाग) अनावृत होता हुआ पूर्णिमा को पूर्ण अनावृत हो जाता है। अंतिम समय में चंद्र विरक्त (अनावृत) रहता है, अवशेष समय में चंद्र आवृत और अनावृत दोनों होता है। पर्व राहु कम से कम ६ मास में और अधिक से अधिक ४२ मास में चंद्रमा को आवृत करता है, उसे चंद्रग्रहण कहा जाता है। जघन्यतः छह मास और उत्कृष्टतः ४८ वर्षों से सूर्य को आवृत कर पर्व राहु सूर्यग्रहण करता है।

शब्द-विमर्श

खञ्जन–दीवट पर जमा हुआ मेल।

अलाबुक–तुम्बा। वृत्तिकार के अनुसार यहां अपक्व अवस्था वाली तुम्बी विवक्षित है।

परिचारणा–काम क्रीड़ा।

कुक्षि का भेदन–चंद्रमा का राहु के अंश के मध्य से निकलना।

सपक्ष–समान दिशा, सम श्रेणी की दृष्टि से सपक्ष-दाएं बाएं पार्श्व समान।

सप्रतिदिश–समान विदिक्[1], विदिशाओं में सम।[2]

ससि-आइच्च-पदं

१२५. से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ–चंदे ससी, चंदे ससी?

गोयमा! चंदस्स णं जोइसिंदस्स जोइसरण्णो मियंके विमाणे कंता देवा,

शशि-आदित्य-पदम्

तत् केनार्थेन भदन्त! एवमुच्यते-चन्द्रःशशिः, चन्द्रःशशिः ।

गौतम! चन्द्रस्य ज्योतिषेन्द्रस्य ज्योतिषराज्ञः मृगाङ्के विमाने कान्ताः

शशि-आदित्य पद

१२५. भंते! किस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है–चंद्रमा शशि है, चंद्रमा शशि है?

गौतम! ज्योतिषेन्द्र ज्योतिषराज चन्द्र के मृगांक (मृग के चिह्न-वाला) विमान में

---

१. भ. वृ. १२/१२२,१२३–खञ्जनं–दीपमल्लिकामलस्तस्य यो वर्णस्तदाभा यस्य तत्तथा.....तुम्बिका। तद्येहापक्वावस्थं ग्राह्यमिति।.....परिचारयन् कामक्रीडां कुर्वन्.....कुच्छी भिन्नत्ति राहोरंशस्य मध्येन चंद्रो गत इति वाच्यं, चन्द्रेण राहोः कुक्षिर्भिन्न इति व्यपदिशन्तीति। सपक्षं–समानदिग् यथा भवति, सप्रतिदिक्–समानविदिक् च यथा भवति।

२. ठाणं. ३/४१ का टिप्पण।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कंताओ देवीओ, कंताइं आसणसयण-खंभभंडमत्तोवगरणाइं, अप्पणा वि य णं चंदे जोइसिंदे जोइसराया सोमे कंते सुभए पियदंसणे सुरूवे।
से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ–चंदे ससी, चंदे ससी॥

देवाः, कान्ताः देव्याः, कान्तानि आसन-शयन-स्तम्भ-भाण्डा-मात्रोपकरणानि, आत्मना अपि च चन्द्रः ज्यौतिषेन्द्रः ज्यौतिषराजा सोमः कान्तः सुभगः प्रियदर्शनः सुरूपः। तत् तेनार्थेन गौतम! एवमुच्यते–चन्द्रः शशिः, चन्द्रःशशिः।

कमनीय देव और देवियां हैं। कमनीय आसन, शयन, स्तंभ, भांड, अमत्र और उपकरण हैं, स्वयं ज्योतिषेन्द्र ज्योतिषराज चन्द्र भी सौम्य, कमनीय, सुभग, प्रियदर्शन और सुरूप हैं।
गौतम! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है–चंद्रमा शशि है, चंद्रमा शशि है।

१२६. **से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ–सूरे आदिच्चे, सूरे आदिच्चे?**
गोयमा! सूरादिया णं समया इ वा आवलिया इ वा जाव ओसप्पिणी इ वा उस्सप्पिणी इ वा।
से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ– सूरे आदिच्चे, सूरे आदिच्चे॥

तत केनार्थेन भदन्त! एवमुच्यते–सूरः आदित्यः सूरः आदित्यः?
गौतम! सूरादिकाः समयः इति वा आवालिका इति वा। यावत् अवसर्पिणी इति वा उत्सर्पिणी इति वा।
तत् तेनार्थेन गौतम! एवमुच्यते–सूरः आदित्यः, सूरः आदित्यः।

१२६. भंते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है–सूर्य आदित्य है, सूर्य आदित्य है?
गौतम! समय, आवलिका यावत् अवसर्पिणी, उत्सर्पिणी की आदि सूर्य से होती है।
गौतम! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है–सूर्य आदित्य है, सूर्य आदित्य है।

भाष्य

१. सूत्र १२५-१२६

वृत्तिकार ने शशि का अर्थ सश्री किया है।[1] काल गणना में सूर आदि में है इसलिए उसका नाम आदित्य है।[2]

व्याकरण और कोश साहित्य में शशि और आदित्य की व्युत्पत्ति भिन्न प्रकार से मिलती है। शश का अर्थ है खरगोश। खरगोश के चिह्न वाला[3] अथवा खरगोश को धारण करने वाला।[4] अदिति के अपत्य का नाम है आदित्य।[5]

राहु, शशि और आदित्य–यह पूरा प्रकरण प्रक्षिप्त है। इसका मूल आधार सूर्यप्रज्ञप्ति है।[6]

चंद-सूराणं कामभोग-पदं

१२७. **चंदस्स णं भंते! जोइसिंदस्स जोइसरण्णो कति अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ?**
जहा दसमसए जाव नो चेव णं मेहुणवत्तियं। सूरस्स वि तहेव॥

चन्द्र-सूराणाम् कामभोग-पदम्

चन्द्रस्य भदन्त! ज्यौतिषेन्द्रस्य ज्यौतिषराज्ञः कति अग्रमहिष्यः प्रज्ञप्ताः?
यथा दशमशते यावत् नो चैव मैथुनप्रत्ययम्। सूरस्यापि तथैव।

चंद्र-सूर्य का काम भोग पद

१२७. भंते! ज्योतिषेन्द्र ज्योतिषराज चंद्र की कितनी अग्रमहिषी देवियां प्रज्ञप्त हैं?

दशम शतक (१०/१०) की भांति यावत् परिवार की ऋद्धि का उपभोग करते हैं, मैथुन रूप भोग का नहीं। इसी प्रकार सूर्य की वक्तव्यता।

१२८. **चंदिम-सूरिया णं भंते! जोइसिंदा जोइसरायाणो केरिसए कामभोगे पच्चणुब्भवमाणा विहरंति?**
गोयमा! से जहानामए केइ पुरिसे पढमजोव्वणुट्ठाणबलत्थे पढम जोव्वणुट्ठाणबलत्थाए भारियाए सद्धिं अचिरवत्तविवाहकज्जे अत्थगवेसण-

चन्द्रमस्-सूर्याः भदन्त! ज्यौतिषेन्द्राः ज्यौतिषराजानः कीदृशान् कामभोगान् प्रत्यनुभवन्तः विहरन्ति?
गौतम! अथ यथानामकः कश्चित् पुरुषः प्रथमयौवनोत्थानबलस्थः प्रथमयौवनोत्थानबलस्थया भार्यया सार्धं अचिरवृत्तविवाहकार्यः अर्थ-

१२८. भंते! ज्योतिषेन्द्र ज्योतिषराज चन्द्र-सूर्य किसके समान कामभोगों का प्रत्यनुभव करते हुए विहरण करते हैं।
गौतम! जिस प्रकार प्रथम यौवन के उद्गम में बल में स्थित पुरुष ने प्रथम यौवन के उद्गम में बल में स्थित भार्या के साथ तत्काल विवाह किया। अर्थ-गवेषणा

---

१. भ. वृ. १२/२५–सहश्रिया वर्तत इति सश्रीः।
२. वही, १२/१२६–तेनार्थेन सूर आदित्य इत्युच्यते, आदौ अहोरात्रसमयादीनां भव आदित्य इति व्युत्पत्तेः, त्य प्रत्ययश्चेहार्षत्वादिति।
३. शब्दकल्प द्रुम, भाग ५।
४. अभिधान चिन्तामणि कोश २/१८।
५. (क) भिक्षुशब्दानुशासनं ६/२/१६–अदितेरपत्यम् आदित्यः।
(ख) अभिधान चिन्तामणी स्वोपज्ञ टीका २/६ अदितेरपत्यम् लोकरूढ्या आदित्यः।
६. सूर. २०/२-७।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

याए सोलसवास विप्पवासिए, से णं तओ लद्धट्ठे कयकज्जे अणहसमग्गे पुणरवि नियगं गिहं हव्वमागए, ण्हाए कयबलिकम्मे कयकोउय-मंगल-पायच्छित्ते सव्वालंकार-विभूसिए मण्णुणं थालिपागसुद्धं अट्ठारस-वंजणाकुलं भोयणं भुत्ते समाणे तंसि तारिसगंसि वासघरंसि अब्भिंतरओ सचित्तकम्मे बाहिरओ दूमिय-घट्ठ-मट्ठे विचित्तउल्लोग-चिल्लियतले मणि-रयणपणासियंधयारे, बहुसमसुवि-भत्तदेसभाए पंचवण्णसरससुरभि-मुक्कपुप्फपुंजोवयारकलिए काला-गुरुपवरकुंदुरुक्क - तुरुक्क - धूव-मघ-मघेंत-गंधुद्धयाभिरामे सुगंधवरगंधिए गंधवट्टिभूए।

तंसि तारिसगंसि सयणिज्जंसि–सालिंगणवट्टिए उभओ विब्बोयणे दुहओ उण्णए मज्झे णय-गंभीरे गंगापुलिणवालुय - उद्दालसालिसए ओयविय - खोमिय - दुगुल्लपट्ट-पडिच्छयणे सुविरइयरयत्ताणे रत्तंसुयसंवुए सुरम्मे आइणग-रूय-बूर-नवणीय-तूलफासे सुगंधवर-कुसुम-चुण्ण-सयणोवयारकलिए ताए तारिसियाए भारियाए सिंगारागार-चारुवेसाए संगय-गय-हसिय-भणिय-चेट्ठिय - विलास - सललिय - संलाव-निउणजुत्तोवयारकुसलाए सुंदरथण-जघण-वयण - कर - चरण - नयण-लावण्ण - रूव - जोव्वण - विलास-कलियाए अणुरत्ताए अविरत्ताए मणाणुकूलाए सद्धिं इट्ठे सद्दे फरिसे रसे रूवे गंधे पंचविहे माणुस्सए कामभोगे पच्चणुब्भवमाणे विहरेज्जा, से णं गोयमा ! पुरिसे विउसमणकाल-समयंसि केरिसयं सायासोक्खं पच्चणुब्भवमाणे विहरइ ?

ओरालं समणाउसो !

तस्स णं गोयमा ! पुरिसस्स कामभोगेहिंतो वाणमंतराणं देवाणं एत्तो अणंतगुणविसिट्ठतरा चेव कामभोगा। वाणमंतराणं देवाणं कामभोगेहिंतो असुरिंदवज्जियाणं

गवेषणायां षोडशवर्षविप्रवासितः, स ततः लब्धार्थः कृतकार्यः अनघसमग्रः पुनरपि निजकं गृहं 'हव्वं' आगतः, स्नातः कृतबलिकर्मा कृतकौतुक-मंगल-प्रायश्चित्तः सर्वालङ्कार-विभूषितः मनोज्ञं स्थालीपाकशुद्धं अष्टादश-व्यञ्जनाकुल भोजनं भुक्तः सन् तस्मिन् तादृशके वासगृहे आभ्यन्तरतः सचित्तकर्माणि बाह्यतः धवलित-घृष्ट-मृष्टे विचित्रोल्लोक-'चिल्लिय' तले मणिरत्न-प्रणाशितान्धकारे बहुसम-सुविभक्त-देसभागे पञ्चवर्ण-सरस-सुरभि-मुक्तपुष्पपुञ्जोपचारकलिते काला-गुरु-प्रवरकुन्दुरुक - तुरुष्क-धूप-मघ-मघायमान-गन्धोद्धूताभिरामे सुगन्ध-वरगन्धिते गन्धवर्तिभूते ।

तस्मिन् तादृशके शयनीये सालिङ्गन-वर्तिके उभयतः 'विब्बोयणे' द्वयतः उन्नते मध्ये नत-गम्भीरे गंगापुलिन-बालुकावदालशालिशते 'ओयविय-क्षौमिकदुकु-लपट्टप्रतिच्छदने सुविर-चितरजस्त्राणे रक्तांशुकसंवृते सुरम्ये आजिनक - 'रूय' - 'बूर'-नवनीत-तूलस्पर्शे सुगन्धवरकुसुम-चूर्ण-शयनोपचारकलिते तया तादृशया भार्यया शृङ्गाराकारचारुवेष्या सङ्गत-गत हसित-भणित-चेष्टित-विलास-सललित-संलाप-निपुणयुक्तोपचार-कुशलया सुन्दरस्तन-जघन-वदन-कर-चरण-नयन-लावण्य - रूप - यौवन-विलासकलितया अनुरक्तया अविरतया मनोनुकूलया सार्धम् इष्टान् शब्दान् स्पर्शानि रसान् रूपान् गन्धान् पञ्चविधान् मानुष्यकान् कामभोगान् प्रत्यनुभवन् विहरेत्, सः गौतम! पुरुषः व्यवशमनकालसमये कीदृशकं सात-सौख्यं प्रत्यनुभवन् विहरति।

ओरालं श्रमणायुष्मन्!

तस्य गौतम! पुरुषस्य कामभोगेभ्यः वानमन्तराणां देवानाम् इतः अनन्त-गुणविशिष्टतराः चैव कामभोगाः। वानमन्तराणां देवानां कामभोगेभ्यः असुरेन्द्रवर्जितानां भवनवासिनां देवा-

के लिए सोलह वर्ष प्रवासित (विदेश) रहा। वह वहां से धन प्राप्त कर कार्य संपन्न कर, निर्विघ्न रूप से शीघ्र अपने घर वापस आया, स्नान किया, बलिकर्म किया, कौतुक (तिलक आदि) मंगल (दधि, अक्षत आदि), प्रायश्चित्त और सर्व अलंकारों से विभूषित होकर मनोज्ञ अठारह प्रकार के स्थालीपाक शुद्ध व्यंजनों से युक्त भोजन किया, भोजनकर उस अनुपम वासगृह, जो भीतर से चित्र कर्म से युक्त, बाहर से धवलित, कोमल पाषाण से घिसा होने के कारण चिकना था। उसका ऊपरी भाग विविध चित्रों से युक्त तथा अधोभाग प्रकाश से दीप्तिमान था। मणि और रत्न की प्रभा से अंधकार प्रणष्ट हो चुका था। उसका देश भाग बहुत सम और सुविभक्त था। पांच वर्ण के सरस और सुरभित मुक्त पुष्प पुञ्ज के उपचार से कलित कृष्ण अगर, प्रवर कुन्दुरु और जलते हुए लोबान की धूप से उठती हुई सुगंध से अभिराम, प्रवर सुरभि वाले गंध चूर्णों से सुगंधित गंधवर्तिका के समान उस प्रासाद में एक विशिष्ट शयनीय था।

उस पर शरीर-प्रमाण उपधान (मसनद) रखा हुआ था, सिर और पैर–दोनों ओर से उभरा हुआ तथा मध्य में नत और गम्भीर था। गंगातट की बालुका की भांति पांव रखते ही नीचे धंस जाता था। वह परिकर्मित क्षौम-दुकूल पट्ट से ढका हुआ था। उसका रजस्त्राण (चादरा) सुनिर्मित था, वह लाल रंग की मसहरी से सुरम्य था, उसका स्पर्श चर्म वस्त्र, कपास, बूर वनस्पति और नवनीत के समान मृदु था। प्रवर सुगंधित कुसुम-चूर्ण के शयन उपचार से कलित था। उसकी भार्या मूर्तिमान शृंगार और सुन्दर वेश वाली, चलने, हंसने, बोलने और चेष्टा करने में निपुण तथा विलास और लालित्य पूर्ण संलाप में निपुण, समुचित उपचार में कुशल, सुन्दर स्तन, कटि, मुख, हाथ, पैर, नयन, लावण्य, रूप, यौवन और विलास से कलित, अनुरक्त, अत्यधिक प्रिय और मनोनुकूल भार्या के साथ इष्ट शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गन्ध इन पांच प्रकार के मनुष्य सम्बन्धी कामभोगों का प्रत्यनुभव

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भवणवासीणं देवाणं एत्तो अणंतगुण-विसिट्ठतरा चेव कामभोगा। असुरिंदवज्जियाणं भवणवासियाणं देवाणं कामभोगेहिंतो असुरकुमाराणं देवाणं एत्तो अणंतगुणविसिट्ठतरा चेव कामभोगा। असुरकुमाराणं देवाणं कामभोगेहिंतो गहगण-नक्खत्त-तारारूवाणं जोतिसियाणं देवाणं एत्तो अणंतगुणविसिट्ठतरा चेव कामभोगा। गहगण-नक्खत्त-तारारूवाणं जोति-सियाणं कामभोगेहिंतो चंदिम-सूरियाणं जोतिसियाणं जोतिसराईणं एत्तो अणंतगुणविसिट्ठतरा चेव कामभोगा।

चंदिमसूरिया णं गोयमा! जोतिसिंदा जोतिसरायाणो एरिसे कामभोगे पच्चणुब्भवमाणा विहरंति॥

नाम् इतः अनन्तगुणविशिष्टतराः चैव कामभोगाः। असरेन्द्रवर्जितानां भवन-वासिकानां देवानां कामभोगेभ्यः असुरकुमाराणां देवानाम् इतः अनन्त-गुणविशिष्टतराः चैव कामभोगाः। असुरकुमाराणां देवानां कामभोगेभ्यः ग्रहगण - नक्षत्र - तारारूपाणां ज्योतिषिकाणां देवानाम् इतः अनन्त-गुण-विशिष्टतराः चैव कामभोगाः। ग्रहगण - नक्षत्र - तारारूपाणां ज्योतिषिकाणां कामभोगेभ्यः चन्द्रमस्-सूर्याणां ज्योतिषिकाणां ज्योतिषराज्ञाम् इतः अनन्तगुणविशिष्टतराः चैव काम-भोगाः।

चन्द्रमस्-सूर्याः गौतम! ज्योतिषेन्द्राः ज्योतिषराजानः ईदृशान् कामभोगान् प्रत्यनुभवन्तः विहरन्ति।

करता हुआ विहरण करता है।

गौतम! वह पुरुष व्यवशमन काल (रति के अवसान के समय) में कैसा सात-सौख्य का प्रत्यनुभव करता हुआ विहरण करता है?

आयुष्मन् श्रमण! प्रधान।

गौतम! उस पुरुष के कामभोगों से वाणमन्तर देवों के कामभोग अनन्त गुण विशिष्टतर होते हैं। वाणमन्तर देवों के कामभोगों से (असुरेन्द्र को छोड़कर) भवनवासी देवों के कामभोग अनन्त गुण विशिष्टतर होते हैं, असुरेन्द्र को छोड़कर भवनवासी देवों के कामभोगों से असुरकुमार देवों के कामभोग अनन्त गुण विशिष्टतर होते हैं। असुरकुमार देवों के कामभोगों से ग्रह-गण, नक्षत्र और तारा रूप ज्योतिष देवों के कामभोग अनन्त गुण विशिष्टतर होते हैं। ग्रह-गण, नक्षत्र और तारा रूप ज्योतिष देवों के कामभोगों से ज्योतिषेन्द्र, ज्योतिषराज चन्द्र, सूर्य के कामभोग अनन्त गुण विशिष्टतर होते हैं। गौतम! ज्योतिषेन्द्र ज्योतिषराज चन्द्र सूर्य इस प्रकार के कामभोगों का प्रत्यनुभव करते हुए विहरण करते हैं।

भाष्य

१.सूत्र १२८

१. **अविरत्ता**–अत्यधिक प्रिय। विप्रिय करने पर भी जो विरक्त नहीं होती, उसके लिए अविरत्ता का प्रयोग किया गया है। इसका तात्पर्य है अत्यधिक प्रिय।[1]

२. **व्यवशमन काल**–पुंवेद के विकार का उपशम। इसका तात्पर्य है रति का अवसान।[2]

स्थालिपाक शुद्ध व्यंजन के लिए द्रष्टव्य ठाणं ३।८७ का टिप्पण।

वासग्रह आदि के लिए द्रष्टव्य भगवई

१२९. सेवं भंते! सेवं भंते! त्ति भगवं गोयमे समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ॥

तदेवं भदन्त! तदेवं भदन्त! इति भगवान् गौतमः श्रमणं भगवन्तं महावीरं वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्यित्वा संयमेन तपसा आत्मानं भावयन् विहरति।

१२९. भंते! वह ऐसा ही है। भंते! वह ऐसा ही है। इस प्रकार कहकर भगवान् गौतम ने श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन-नमस्कार किया। वन्दन-नमस्कार कर संयम और तपस्या के द्वारा आत्मा को भावित करते हुए विहरण करने लगे।

१. भ. वृ. १२/१२७,१२८–अविरताएं त्ति विप्रियकरणेऽप्यविरक्तया।

२. वही,–व्यवशमनं–पुंवेदविकारोपशमस्तस्य यः कालसमयः स तथा तत्र रतावसान इत्यर्थः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सत्तमो उद्देसो : सातवां उद्देशक

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
जीवाणं सव्वत्थ जम्म-मच्चु-पदं	जीवानाम् सर्वत्र जन्म-मृत्यु-पदम्	जीवों का सर्वत्र जन्म-मृत्यु पद
१३०. तेणं कालेणं तेणं समएणं जाव एवं वयासी–केमहालए णं भंते ! लोए पण्णत्ते ?	तस्मिन् काले तस्मिन् समये यावत् एवमवादीत्–कियन्महान् भदन्त! लोकः प्रज्ञप्तः?	१३०. उस काल उस समय यावत् गौतम स्वामी पर्युपासना करते हुए इस प्रकार बोले–भंते ! लोक कितना बड़ा प्रज्ञप्त है ?
गोयमा ! महतिमहालए लोए पण्णत्ते–पुरत्थिमेणं असंखेज्जाओ जोयण-कोडाकोडीओ, दाहिणेणं असंखेज्जाओ जोयणकोडाकोडीओ, एवं पच्चत्थिमेण वि, एवं उत्तरेण वि, एवं उड्ढं पि, अहे असंखेज्जाओ जोयणकोडाकोडीओ आयामविक्खंभेणं॥	गौतम! महामहान् लोकः प्रज्ञप्तः–पौरस्त्येन असंख्येयाः योजनकोटि-कोटयः, दक्षिणेन असंख्येयाः योजन-कोटिकोटयः, एवं पाश्चात्येनापि, एवम् उत्तरेणापि, एवम् ऊर्ध्वमपि, अधः असंख्येयाः योजनकोटिकोटयः आयामविष्कम्भेण ।	गौतम! लोक विशालतम प्रज्ञप्त है–पूर्वदिशा में असंख्येय कोटा-कोटि योजन, दक्षिण दिशा में असंख्येय कोटा-कोटि योजन, इसी प्रकार पश्चिम दिशा में भी, इसी प्रकार उत्तर दिशा में भी, इसी प्रकार ऊर्ध्व एवं अधो दिशा में भी असंख्येय कोटा-कोटि योजन लम्बा-चौड़ा है।
१३१. एयंसि णं भंते ! एमहालगंसि लोगंसि अत्थि केइ परमाणु-पोग्गलमेत्ते वि एएसे, जत्थ णं अयं जीवे न जाए वा, न मए वा वि ?	एतस्मिन् भदन्त! इयन्महति लोके अस्ति कश्चित् परमाणुपुद्गलमात्रम् अपि प्रदेशः, यत्र अयं जीवः न जातः वा, न मृतः वा अपि?	१३१. भंते ! इस विशालतम लोक में कोई परमाणु-पुद्गल (मात्र) प्रदेश भी ऐसा है, जहां पर इस जीव ने जन्म अथवा मरण न किया हो ?
गोयमा ! नो इणट्ठे समट्ठे॥	गौतम! नो अयमर्थः समर्थः।	गौतम ! यह अर्थ संगत नहीं है।
१३२. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ– एयंसि णं एमहालगंसि लोगंसि नत्थि केइ परमाणुपोग्गलमेत्ते वि एएसे, जत्थ णं अयं जीवे न जाए वा, न मए वा वि ?	तत् केनार्थेन भदन्त! एवमुच्यते–इयन्महति लोके नास्ति कश्चित् परमाणुपुद्गलमात्रम् अपि प्रदेशः, यत्र अयं जीवः न जातः वा न मृतः वा अपि?	१३२. भंते ! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है–इस विशालतम लोक में परमाणु-पुद्गल मात्र प्रदेश भी ऐसा नहीं है, जहां पर इस जीव ने जन्म अथवा मरण न किया हो ?
गोयमा ! से जहानामए [illegible] पुरिसे अयासयस्स एगं महं अयावय [illegible] से णं तत्थ जहण्णेणं एक्कं वा दो वा तिण्णि वा, उक्कोसेणं अयासहस्सं पक्खिवेज्जा, ताओ णं तथा पउरगोयराओ पउरपाणियाओ जहण्णेणं एगाहं वा दुयाहं वा तियाहं वा, उक्कोसेणं छम्मासे परिवसेज्जा।	गौतम! अथ यथानामकः कश्चित् पुरुषः अजाशतस्य एकं महान्तं अजाव्रजं कुर्यात्, सः तत्र जघन्येन एकं वा, द्वे वा, त्रीणि वा, उत्कर्षेण वा अजासहस्रं प्रक्षिपेत्, ताः तत्र प्रचुरगोचराः प्रचुरपानीयाः जघन्येन एकाहः द्वयाहः त्र्यह वा, उत्कर्षेण षड्मासान् परिवसेयुः।	गौतम ! जिस प्रकार कोई पुरुष सौ बकरियों के लिए एक बड़ा अजाव्रज (बकरी बाड़ा) तैयार करवाता है। वह वहां जघन्यतः एक, दो अथवा तीन उत्कृष्टतः हजार बकरियों का प्रक्षेप करता है। यदि उन बकरियों के लिए वहां प्रचुर घास और पानी हो तथा वे बकरियां जघन्यतः एक दिन अथवा तीन दिन, उत्कृष्टतः छह मास तक रहे।
अत्थि णं गोयमा ! तस्स अयावयस्स केई परमाणुपोग्गलमेत्ते वि पएसे, जे णं	अस्ति गौतम! तस्य अजाव्रजस्य कश्चित् परमाणुपुद्गलमात्रम् अपि	गौतम! क्या उस अजाव्रज का कोई परमाणु-पुद्गल मात्र प्रदेश भी ऐसा रहता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तासिं अयाणं उच्चारेण वा पासवणेण वा खेलेण वा सिंघाणेण वा वंतेण वा पित्तेण वा पूएण वा सुक्केण वा सोणिएण वा चम्मेहिं वा रोमेहिं वा सिंगेहिं वा खुरेहिं वा नहेहिं वा अणोक्कंतपुव्वे भवइ ?

नो इणट्ठे समट्ठे॥

होज्जा वि णं गोयमा ! तस्स अयावयस्स केई परमाणुपोग्गलमेत्ते वि पएसे, जे णं तासिं अयाणं उच्चारेण वा जाव नहेहिं वा अणोक्कंतपुव्वे, नो चेव णं एयंसि एमहालगंसि लोगंसि लोगस्स य सासयं भावं, संसारस्स य अणादिभावं, जीवस्स य णिच्चभावं, कम्मबहुत्तं, जम्ममरणबाहुल्लं च पडुच्च अत्थि केइ परमाणुपोग्गलमेत्ते वि पएसे, जत्थ णं अयं जीवे न जाए वा, न मए वा वि।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ--एयंसि णं एमहालगंसि लोगंसि नत्थि केइ परमाणुपोग्गलमेत्ते वि पएसे, जत्थ णं अयं जीवे न जाए वा, न मए वा वि॥

प्रदेशः, यः तासाम् अजानाम् उच्चारेण वा प्रस्रवेण वा क्ष्वेलेन वा 'सिंघाणेण' वा वान्तेन वा पित्तेन वा पूयेन वा शुक्रेण वा शोणितेन वा चर्मभिः वा रोमभिः वा शृङ्गैः वा खुरैः वा नखैः वा अनवक्रान्तपूर्वः भवति?

नो अयमर्थः समर्थः ।

भवेत् अपि गौतम! तस्य अजाव्रजस्य कश्चित् परमाणुपुद्गलमात्रम् अपि प्रदेशः, यः तासाम् अजानाम् उच्चारेण वा यावत् नखैः वा अनवक्रान्तपूर्वः, नो चैव एतस्मिन् इयन्महति लोके लोकस्य च शाश्वतं भावं, संसारस्य च अनादिभावं, जीवस्य च नित्यभावं, कर्मबहुत्वं, जन्ममरणबाहुल्यं च प्रतीत्य अस्ति कश्चित् परमाणुपुद्गलमात्रम् अपि प्रदेशः, यत्र अयं जीवः न जातः वा, न मृतः वा अपि।

तत् तेनार्थेन गौतम! एवमुच्यते--एतस्मिन् इयन्महति लोके नास्ति कश्चित् परमाणुपुद्गलमात्रम् अपि प्रदेशः, यत्र अयं जीवः न जातः वा, न मृतः वा अपि ।

है, जो उन बकरियों के उच्चार, प्रस्रवण, श्लेष्म, नाक का मैल, वमन, पित्त, पीव (रस्सी), शुक्र, शोणित, चर्म, रोम, सींग, खुर अथवा नखों से आक्रांत न हुआ हो ?

यह अर्थ संगत नहीं है।

गौतम ! उस अजाव्रज का कोई परमाणु पुद्गल मात्र प्रदेश भी ऐसा नहीं है जो उन बकरियों के उच्चार यावत् अथवा नखों से आक्रांत नहीं होता। वैसे ही इस विशालतम लोक में लोक का शाश्वत भाव, संसार--जन्म-मरण का अनादि भाव, जीव का नित्य भाव, कर्म-बहुत्व और जन्म-मरण के बाहुल्य की अपेक्षा परमाणु पुद्गल मात्र प्रदेश भी ऐसा नहीं है, जहां पर इस जीव ने जन्म अथवा मरण न किया हो।

गौतम ! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है--इस विशालतम लोक में कोई परमाणु पुद्गल मात्र प्रदेश भी ऐसा नहीं है। जहां इस जीव ने जन्म अथवा मरण न किया हो।

भाष्य

१. सूत्र १३०-१३२

लोक की महानता जीवों की उत्पत्ति के संदर्भ में बतलाई गयी है। इस लोक का छहों दिशाओं में प्रत्येक दिशा का आयाम-विष्कंभ असंख्य योजन कोटाकोटि का है। इतने विशाल लोक में एक परमाणु जितना भी प्रदेश खाली नहीं है, जहां इस जीव ने जन्म न लिया हो, मरण न किया हो।

पुनर्जन्म के विषय में होने वाली एक जिज्ञासा यह है--यह जीव अनादिकाल से जन्म मरण के अरण्य में पर्यटन कर रहा है। इतना कौनसा स्थान है जहां वह जन्म लेता और मरता नहीं है? लोक की विशालता का प्रतिपादन कर इस प्रश्न का उत्तर दिया गया है। अजाव्रज (बकरियों का बाड़ा) के उदाहरण से इसे समझाया गया है।

असइं अदुवा अणंतखुत्तो उववज्जण-पदं

१३३. कति णं भंते ! पुढवीओ पण्णत्ताओ ?

गोयमा ! सत्त पुढवीओ पण्णत्ताओ, जहा पढमसए पंचमउद्देसए तहेव आवासा ठावेयव्वा जाव अणुत्तरविमाणेत्ति जाव अपराजिए सव्वट्ठसिद्धे॥

असकृत् अथवा अनन्तकृत्वः-पदम्

कति भदन्त! पृथिव्यः प्रज्ञप्ताः?

गौतम! सप्त पृथिव्याः, यथा प्रथमशते पञ्चमोद्देशे तथैव आवासाः स्थापितव्याः यावत् अनुत्तरविमानः इति यावत् अपराजितः सर्वार्थसिद्धः।

अनेक अथवा अनंत बार उपपात पद

१३३. भंते ! पृथ्वियां कितने प्रकार की प्रज्ञप्त हैं ?

गौतम ! पृथ्वियां सात प्रकार की प्रज्ञप्त हैं, जैसे प्रथम शतक के पांचवें उद्देशक (सूत्र ५/२११-२५५) की वक्तव्यता है वैसे ही आवासों की वक्तव्यता यावत् अनुत्तर-विमान यावत् अपराजित सर्वार्थसिद्ध की वक्तव्यता।

१३४. अयण्णं भंते ! जीवे इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए तीसाए निरयावास-

अयं भदन्त! जीवः अस्यां रत्नप्रभायां पृथिव्यां त्रिंशत्सु निरयावास-

१३४. भंते ! क्या यह जीव इस रत्नप्रभा पृथ्वी के तीस लाख नरकावासों में से प्रत्येक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सयसहस्सेसु एगमेगंसि निरयावासंसि पुढविकाइयत्ताए जाव वणस्सइकाइयत्ताए, नरगत्ताए, नेरइयत्ताए उववन्नपुव्वे ?
हंता गोयमा ! असइं अदुवा अणंतखुत्तो॥

शतसहस्रेषु एकैकस्मिन् निरयावासे पृथिवीकायिकत्वेन यावत् वनस्पतिकायिकत्वेन, नरकत्वेन नैरयिकत्वेन उपपन्नपूर्वः?
हन्त गौतम! असकृत् अथवा अनन्तकृत्वः।

नरकावास में रहने वाले पृथ्वीकायिक के रूप में यावत् वनस्पतिकायिक के रूप में नरकावास के जीव के रूप में और नैरयिक के रूप में उपपन्न पूर्व है?
हां गौतम ! अनेक अथवा अनन्त बार।

१३५. सव्वजीवा वि णं भंते ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए तीसाए निरयावाससयसहस्सेसु एगमेगंसि निरयावासंसि पुढविकाइयत्ताए जाव वणस्सइकाइयत्ताए, नरगत्ताए, नेरइयत्ताए उववन्नपुव्वे ?
हंता गोयमा ! असइं अदुवा अणंतखुत्तो॥

सर्वे जीवाः अपि भदन्त! अस्यां रत्नप्रभायां पृथिव्यां त्रिंशत्सु निरयावासशतसहस्रेषु एकैकस्मिन् निरयावासे पृथिवीकायिकत्वेन यावत् वनस्पतिकायिकत्वेन, नरकत्वेन नैरयिकत्वेन उपपन्नपूर्वः?
हन्त गौतम! असकृत् अथवा अनन्तकृत्वः।

१३५. भंते ! क्या सब जीव इस रत्नप्रभा पृथ्वी के तीस लाख नरकावासों में से प्रत्येक नरकावास में रहने वाले पृथ्वीकायिक के रूप में यावत् वनस्पतिकायिक के रूप में, नरकावास के जीव के रूप में और नैरयिक के रूप में उपपन्न पूर्व हैं ?
हां गौतम ! अनेक अथवा अनन्त बार।

१३६. अयण्णं भंते ! जीवे सक्करप्पभाए पुढवीए पणुवीसाए निरयावाससयसहस्सेसु एगमेगंसि निरयावासंसि ? एवं जहा रयणप्पभाए तहेव दो आलावगा भाणियव्वा। एवं जाव धूमप्पभाए॥

अयं भदन्त! जीवः शर्कराप्रभायां पृथिव्यां पञ्चविंशतिषु निरयावासशतसहस्रेषु एकैकस्मिन् निरयावासे?
एवं यथा रत्नप्रभायां तथैव द्वौ आलापकौ भणितव्यौ। एवं यावत् धूमप्रभायाम्।

१३६. भंते ! क्या यह जीव शर्कराप्रभा पृथ्वी के पच्चीस लाख नरकावासों में से प्रत्येक नरकावास में रहने वाले.... ?
इसी प्रकार जैसे-रत्नप्रभा पृथ्वी की वक्तव्यता है वैसे ही दो आलापक वक्तव्य हैं। इसी प्रकार यावत् धूमप्रभा की वक्तव्यता।

१३७. अयण्णं भंते ! जीवे तमाए पुढवीए पंचूणे निरयावाससयसहस्से एगमेगंसि निरयावासंसि ?

सेसं तं चेव॥

अयं भदन्त! जीवः तमायां पृथिव्यां पञ्चोने निरयावासशतसहस्रे एकैकस्मिन् निरयावासे?

शेषं तत् चैव।

१३७. भंते ! क्या यह जीव तमःप्रभा पृथ्वी के निन्यानवें हजार नौ सौ पिचानवें नरकावासों में से प्रत्येक नरकावास में रहने वाले पृथ्वीकायिक के रूप में यावत् उपपन्नपूर्व है।
शेष वर्णन पूर्ववत्।

१३८. अयण्णं भंते ! जीवे अहेसत्तमाए पुढवीए पंचसु अणुत्तरेसु महति महालएसु महानिरएसु एगमेगंसि निरयावासंसि ? सेसं जहा रयणप्पभाए॥

अयं भदन्त! जीवः अधःसप्तम्यां पृथिव्यां पञ्चसु अनुत्तरेषु महामहत्सु महानिरयेषु एकैकस्मिन् निरयावासे?
शेषं यथा रत्नप्रभायाम्।

१३८. भंते ! क्या यह जीव अधःसप्तमी पृथ्वी के पांच अनुत्तर विशालतम महानरकावासों में से प्रत्येक नरकावास में रहने वाले.....?
शेष वर्णन रत्नप्रभा की भांति वक्तव्य है।

१३९. अयण्णं भंते ! जीवे चउसट्ठीए असुरकुमारावाससयसहस्सेसु एगमेगंसि असुरकुमारावासंसि पुढविक्काइयत्ताए जाव वणस्सइ काइयत्ताए देवत्ताए देवित्ताए आसण-सयण-भंडमत्तोवगरणत्ताए उववन्नपुव्वे ?
हंता गोयमा ! असइं, अदुवा अणंतखुत्तो।

अयं भदन्त! जीवः चतुष्षष्टिषु असुरकुमारावासशतसहस्रेषु एकैकस्मिन् असुरकुमारावासे पृथिवीकायिकत्वेन यावत् वनस्पतिकायिकत्वेन देवत्वेन देवीत्वेन आसन-शयन-भाण्डामत्रोपकरणत्वेन उपपन्नपूर्वः?
हन्त गौतम! असकृत् अथवा अनन्तकृत्वः।

१३९. भंते ! क्या यह जीव चौसठ लाख असुरकुमारावासों में से प्रत्येक असुरकुमारावास में रहने वाले पृथ्वीकायिक के रूप में यावत् वनस्पतिकायिक के रूप में, देव के रूप में देवी के रूप में, आसन, शयन, भांड, अमत्र और उपकरण के रूप में उपपन्न पूर्व है।
हां गौतम ! अनेक अथवा अनन्त बार।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सव्वजीवा वि णं भंते ! एवं चेव। एवं जाव थणियकुमारेसु। नाणत्तं आवासेसु, आवासा पुव्वभणिया॥

सर्वे जीवाः अपि भदन्त! एवं तत् चैव। एवं यावत् स्तनितकुमारेषु। नानात्वम् आवासेषु, आवासाः पूर्वभणिताः।

भंते! सब जीवों के लिए भी। पूर्ववत् वक्तव्यता। इसी प्रकार यावत् स्तनित-कुमारों तक। उनके आवासों में नानात्व है, आवास पहले शतक (१/२११-२१५) में कहे जा चुके हैं।

१४०. अयण्णं भंते ! जीवे असंखेज्जेसु पुढविक्काइयावाससयसहस्सेसु एगमेगंसि पुढविक्काइयावासंसि पुढविकाइयत्ताए जाव वणस्सइकाइयत्ताए उववन्नपुव्वे ?

हंता गोयमा ! असइं अदुवा अणंतखुत्तो। एवं सव्वजीवा वि। एवं जाव वणस्सइकाइएसु॥

अयं भदन्त! जीवः असंख्येयेषु पृथिवी-कायिकावासशतसहस्रेषु एकैकस्मिन् पृथिवीकायिकावासे पृथिवीकायिकत्वेन यावत् वनस्पतिकायिकत्वेन उपपन्न-पूर्वः?

हन्त गौतम! असकृत् अथवा अनन्तकृत्वः। एवं सर्वे जीवाः अपि एवं यावत् वनस्पतिकायिकेषु ।

१४०. भंते ! क्या यह जीव असंख्येय लाख पृथ्वीकायिकावासों में से प्रत्येक पृथ्वी-कायिक आवास में रहने वाले पृथ्वीकायिक के रूप में यावत् वनस्पतिकायिक के रूप में उपपन्न पूर्व है?

हां गौतम ! अनेक अथवा अनंत बार। इसी प्रकार सब जीव भी वक्तव्य हैं। इसी प्रकार यावत् वनस्पतिकायिकों में।

१४१. अयण्णं भंते ! जीवे असंखेज्जेसु बेइंदियावाससयसहस्सेसु एगमेगंसि बेइंदियावासंसि पुढविक्काइयत्ताए जाव वणस्सइकाइयत्ताए, बेइंदियत्ताए उववन्नपुव्वे ?

हंता गोयमा ! असइं अदुवा अणंतखुत्तो। सव्वजीवा वि णं एवं चेव। एवं जाव मणुस्सेसु, नवरं-तेइंदिएसु जाव वणस्सइकाइयत्ताए तेइंदियत्ताए, चउरिंदिएसु चउरिंदियत्ताए, पंचिंदियतिरिक्खजोणिएसु पंचिंदिति-रिक्खजोणियत्ताए मणुस्सेसु मणुस्सत्ताए, सेसं जहा बेइंदियाणं, वाणमंतर-जोइसिय-सोहम्मीसाणेसु य जहा असुरकुमाराणं॥

अयं भदन्त! जीवः असंख्येयेषु द्वीन्द्रियावासशतसहस्रेषु एकैकस्मिन् द्वीन्द्रियावासे पृथिवीकायिकत्वेन यावत् वनस्पतिकायिकत्वेन द्वीन्द्रियत्वेन उपपन्नपूर्वः ?

हन्त गौतम! असकृत् अथवा अनन्तकृत्वः। सर्वे जीवाः अपि एवं चैव। एवं यावत् मनुष्येषु, नवरम्-त्रीन्द्रियेषु यावत् वनस्पतिकायिकत्वेन त्रीन्द्रियत्वेन, चतुरिन्द्रियेषु चतुरिन्द्रिय-त्वेन, पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकेषु पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकत्वेन, मनुष्येषु मनुष्यत्वेन, शेषं यथा द्वीन्द्रियाणां वानमन्तर-ज्यौतिष्क-सौधर्मेशानेषु च यथा असुरकुमाराणाम् ।

१४१. भंते ! क्या यह जीव असंख्येय लाख द्वीन्द्रियावासों में से प्रत्येक द्वीन्द्रियावास में रहने वाले पृथ्वीकायिक के रूप में यावत् वनस्पतिकायिक के रूप में और द्वीन्द्रिय-कायिक के रूप में उपपन्न पूर्व है?

हां गौतम ! अनेक अथवा अनंत बार। इसी प्रकार सब जीव भी वक्तव्य हैं। इसी प्रकार यावत् मनुष्यों में, इतना विशेष है-त्रीन्द्रियों में यावत् वनस्पतिकायिक और त्रीन्द्रिय के रूप में, चतुरिन्द्रियों में चतुरिन्द्रिय के रूप में, पंचेन्द्रिय तिर्यक्योनिकों में पंचेन्द्रिय-तिर्यक्योनिक के रूप में, मनुष्यों में मनुष्य के रूप में, शेष द्वीन्द्रियों की भांति वक्तव्य है। वानमंतर, ज्योतिष्क, सौधर्म और ईशानों में असुरकुमारों की भांति वक्तव्यता।

१४२. अयण्णं भंते ! जीवे सणंकुमारे कप्पे बारससु विमाणावाससयसहस्सेसु एगमेगंसि वेमाणियावासंसि पुढवि-काइयत्ताए जाव वणस्सइकाइयत्ताए देवत्ताए आसण-सयण-भंडमत्तोव-गरणत्ताए उववन्नपुव्वे ?

हंता गोयमा ! असइं अदुवा अणंत-खुत्तो। एवं सव्वजीवा वि। एवं जाव आणयपाणएसु, एवं आरणच्चुएसु वि॥

अयं भदन्त! जीवः सनत्कुमारे कल्पे द्वादशसु विमानावासशतसहस्रेषु एकैकस्मिन् वैमानिकावासे पृथिवी-कायिकत्वेन यावत् वनस्पतिकायिक-त्वेन देवत्वेन आसन-शयन-भाण्डा-मत्रोपकरणत्वेन उपपन्नपूर्वः?

हन्त गौतम! असकृत् अथवा अनन्त-कृत्वः। एवं सर्वे जीवाः अपि। एवं यावत् आनतप्राणतेषु, एवम् आरणा-च्युतेषु अपि।

१४२. भंते ! क्या यह जीव सनत्कुमारकल्प के बारह लाख विमानावासों में से प्रत्येक विमानावास में रहने वाले पृथ्वीकायिक के रूप में यावत् वनस्पतिकायिक के रूप में, देव के रूप म, आसन, शयन, भांड, अमत्र और उपकरण के रूप में उपपन्न पूर्व है?

हां गौतम ! अनेक अथवा अनंत बार। इसी प्रकार समस्त जीव भी वक्तव्य हैं। इसी प्रकार यावत् आनत-प्राणत कल्पों में, इसी प्रकार आरण-अच्युत कल्पों में भी वक्तव्य हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१४३. अयण्णं भंते! जीवे तिसु वि अट्ठासुत्तरेसु गेविज्जविमाणावाससएसु एवं चेव॥

अयं भदन्त! जीवः त्रिषु अपि अष्टादशोत्तरेषु ग्रैवेयकविमानावास-शतेषु एवं चैव।

१४३. भंते! क्या यह जीव तीन सौ अठारह ग्रैवेयक विमानावासो में.....?
इसी प्रकार पूर्ववत्।

१४४. अयण्णं भंते! जीवे पंचसु अणुत्तरविमाणेसु एगमेगंसि अणुत्तर विमाणंसि पुढविकाइयत्ताए?
तहेव जाव असइं, अदुवा अणंतखुत्तो, नो चेव णं देवत्ताए वा देवीत्ताए वा। एवं सव्वजीवा वि॥

अयं भदन्त! जीवः पञ्चसु अनुत्तर-विमानेषु एकैकस्मिन् अनुत्तरविमाने पृथिवीकायिकत्वेन?
तथैव यावत् असकृत् अथवा अनन्त-कृत्वः, नो चैव देवत्वेन वा देवीत्वेन वा। एवं सर्वे जीवाः अपि।

१४४. भंते! क्या यह जीव पांच अनुत्तर-विमानों में से प्रत्येक अनुत्तरविमान में रहने वाले पृथ्वीकायिक के रूप में.....?
वैसे ही यावत् अनेक अथवा अनंत बार। देव के रूप में अथवा देवी के रूप में नहीं। इसी प्रकार सब जीवों की वक्तव्यता।

१४५. अयण्णं भंते! जीवे सव्वजीवाणं माइत्ताए, पितित्ताए, भाइत्ताए, भगिणित्ताए, भज्जत्ताए, पुत्तत्ताए, धूयत्ताए, सुण्हत्ताए उववन्नपुव्वे?
हंता गोयमा! असइं अदुवा अणंतखुत्तो॥

अयं भदन्त! जीवः सर्वजीवानां मातृत्वेन, पितृत्वेन, भ्रातृत्वेन, भगिनीत्वेन, भार्यात्वेन, पुत्रत्वेन, दुहितृत्वेन, स्नुषात्वेन उपपन्नपूर्वः?
हन्त गौतम! असकृत् अथवा अनन्तकृत्वः।

१४५. भंते! क्या यह जीव सब जीवों के माता, पिता, भाई, भगिनी, भार्या, पुत्र, पुत्री और पुत्रवधु के रूप में उपपन्न पूर्व है?

हां गौतम! अनेक अथवा अनन्त बार।

१४६. सव्वजीवा वि णं भंते! इमस्स जीवस्स माइत्ताए, पितित्ताए, भइत्ताए, भगिणित्ताए, भज्जत्ताए, पुत्तत्ताए, धूयत्ताए, सुण्हत्ताए उववन्नपुव्वे?
हंता गोयमा! असइं अदुवा अणंतखुत्तो॥

सर्वे जीवाः अपि भदन्त! अस्य जीवस्य मातृत्वेन, पितृत्वेन, भ्रातृत्वेन, भगिनीत्वेन, भार्यात्वेन, पुत्रत्वेन, दुहितृत्वेन, स्नुषात्वेन उपपन्नपूर्वः?
हन्त गौतम! असकृत् अथवा अनन्त-कृत्वः।

१४६. भंते! क्या सब जीव भी इस जीव के माता, पिता, भ्राता, भगिनी, भार्या, पुत्र, पुत्री और पुत्रवधु के रूप में उपपन्न पूर्व हैं?

हां गौतम! अनेक अथवा अनन्त बार।

१४७. अयण्णं भंते! जीवे सव्वजीवाणं अरित्ताए, वेरियत्ताए, घातगत्ताए, वहगत्ताए, पडिणीयत्ताए, पच्चामित्तत्ताए उववन्नपुव्वे?
हंता गोयमा! असइं अदुवा अणंतखुत्तो॥

अयं भदन्त! जीवः सर्वजीवानाम् अरित्वेन, वैरित्वेन, घातकत्वेन, वधकत्वेन, प्रत्यनीकत्वेन, प्रत्यमित्रत्वेन उपपन्नपूर्वः?
हन्त गौतम! असकृत् अथवा अनन्त-कृत्वः?

१४७. भंते! क्या यह जीव सब जीवों के शत्रु, वैरी, घातक, वधक, प्रत्यनीक और प्रत्यमित्र के रूप में उपपन्न पूर्व है?

हां गौतम! अनेक अथवा अनन्त बार।

१४८. सव्वजीवा वि णं भंते! इमस्स जीवस्स अरित्ताए, वेरियत्ताए, घातगत्ताए, वहगत्ताए, पडिणीयत्ताए, पच्चामित्तत्ताए उववन्नपुव्वे?
हंता गोयमा! असइं अदुवा अणंतखुत्तो॥

सर्वे जीवाः अपि भदन्त! अस्य जीवस्य अरित्वेन, वैरित्वेन, घातकत्वेन, वधकत्वेन, प्रत्यनीकत्वेन, प्रत्यमित्रत्वेन उपपन्नपर्वः?
हन्त गौतम! असकृत् अथवा अनन्त-कृत्वः।

१४८. भंते! क्या सब जीव भी इस जीव के शत्रु, वैरी, घातक, वधक, प्रत्यनीक और प्रत्यमित्र के रूप में उपपन्न पूर्व हैं?

हां गौतम! अनेक अथवा अनन्त बार।

१४९. अयण्णं भंते! जीवे सव्वजीवाणं रायत्ताए जुवरायत्ताए तलवरत्ताए माडंबियत्ताए कोडुंबियत्ताए इब्भत्ताए सेट्ठित्ताए सेणावइत्ताए सत्थवाहत्ताए उववन्नपुव्वे?

अयं भदन्त! जीवः सर्वजीवानां राजत्वेन, युवराजत्वेन, 'तलवर'त्वेन माडम्बिकत्वेन, कौटुम्बिकत्वेन, इभ्यत्वेन, श्रेष्ठित्वेन, सेनापतित्वेन, सार्थवाहत्वेन उपपन्नपूर्वः?

१४९. भंते! क्या यह जीव सब जीवों के राजा, युवराज, तलवर (कोटवाल), मडम्बपति, कुटुम्बपति, इभ्य, श्रेष्ठी, सेनापति और सार्थवाह के रूप में उपपन्न पूर्व है?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हंता गोयम! असइं अदुवा अणंतखुत्तो॥

हन्त गौतम! असकृत् अथवा अनन्तकृत्वः।

हां, गौतम! अनेक अथवा अनंत बार।

१५०. सव्वजीवा वि णं भंते! इमस्स जीवस्स रायत्ताए जुवरायत्ताए तलवरत्ताए माडंबियत्ताए कोडुंबियत्ताए इब्भत्ताए सेट्ठित्ताए सेणावइत्ताए सत्थवाहत्ताए उववन्नपुव्वे?
हंता गोयमा! असइं अदुवा अणंतखुत्तो॥

सर्वे जीवाः अपि भदन्त! अस्य जीवस्य राजत्वेन, युवराजत्वेन, 'तलवर'त्वेन माडम्बिकत्वेन, कौटुम्बिकत्वेन, इभ्यत्वेन, श्रेष्ठित्वेन, सेनापतित्वेन सार्थवाहत्वेन उपपन्नपूर्वः?
हन्त गौतम! असकृत् अथवा अनन्तकृत्वः।

१५०. भंते! क्या सब जीव भी इस जीव के राजा, युवराज, तलवर, मडम्बपति, कुटुम्बपति, इभ्य, श्रेष्ठी, सेनापति और सार्थवाह के रूप में उपपन्न पूर्व हैं?
हां गौतम! अनेक अथवा अनन्त बार।

१५१. अयण्णं भंते! जीवे सव्वजीवाणं दासत्ताए, पेसत्ताए, भयगत्ताए, भाइल्लत्ताए, भोगपुरिसत्ताए, सीसत्ताए, वेसत्ताए उववन्नपुव्वे?
हंता गोयमा! असइं अदुवा अणंतखुत्तो॥

अयं भदन्त! जीवः सर्वजीवानां दासत्वेन, प्रेष्यत्वेन, भृतकत्वेन, भागिकत्वेन, भोगपुरुषकत्वेन, शिष्यत्वेन, वैश्यत्वेन उपपन्नपूर्वः?
हन्त गौतम! असकृत् अथवा अनन्तकृत्वः।

१५१. भंते! क्या यह जीव सब जीवों के दास, प्रेष्य, भृतक, भागीदार, भोगपुरुष, शिष्य और वैश्य के रूप में उपपन्न पूर्व है?
हां गौतम! अनेक अथवा अनन्त बार।

१५२. सव्वजीवा वि णं भंते! इमस्स जीवस्स दासत्ताए, पेसत्ताए, भयगत्ताए, भाइल्लत्ताए, भोगपुरिसत्ताए, सीसत्ताए, वेसत्ताए उववन्नपुव्वे?
हंता गोयमा! असइं अदुवा अणंतखुत्तो॥

सर्वे जीवाः अपि भदन्त! अस्य जीवस्य दासत्वेन, प्रेष्यत्वेन, भृतकत्वेन, भागिकत्वेन, भोगपुरुषत्वेन, शिष्यत्वेन, वैष्यत्वेन उपपन्नपूर्वः?
हन्त गौतम! असकृत् अथवा अनन्तकृत्वः।

१५२. भंते! क्या सब जीव भी इस जीव के दास, प्रेष्य, भृतक, भागीदार, भोगपुरुष, शिष्य और वैश्य के रूप में उपपन्न पूर्व हैं?
हां गौतम! अनेक अथवा अनन्त बार।

भाष्य

१. सूत्र १३३-१५२

जीव अनादि काल से संसार में भ्रमण कर रहे हैं। यह सामान्य निर्देश है, विधि सूत्र है। इसका निषेध सूत्र है--असकृद् भ्रमण। कुछ जीव ऐसे हैं, जो नाना रूपों में अनेक बार भ्रमण करते हैं। उसके बाद वे मुक्त हो जाते हैं। विवरण के लिए देखें भगवई २/७६ का भाष्य।

प्रस्तुत प्रकरण में संसरण में प्राप्त होने वाले नाना रूपों का नामोल्लेख किया गया है। **'असइं' अथवा 'अणंत खुत्तो'**--इसका उल्लेख भगवई ६/१०५,११६ तथा भगवई ११/४०,५५ में हुआ है।

असंखेज्जेसु पुढविकाइयावाससयसहस्सेसु--असंख्यात के साथ फिर शत-सहस्र का प्रयोग क्यों? यह प्रश्न स्वाभाविक है। वृत्तिकार ने इसका समाधान दिया है--पृथ्वीकायिक आवासों की बहुलता बतलाने के लिए शत-सहस्र का प्रयोग किया गया है।[1]

देवियां सौधर्म और ईशानकल्प में होती हैं। उनसे आगे किसी भी स्वर्ग में देवियां नहीं होती इसलिए सनत्कुमार आदि कल्पों में देवित्ताए (सूत्र १४२) इस पाठ का ग्रहण नहीं है।

अनुत्तरविमान में कोई भी मनुष्य देव रूप में अनंत बार उपपन्न नहीं होता[2]। अनेक बार का भी नियम है। प्रथम चार अनुत्तरविमानों में एक मनुष्य दो बार से अधिक तथा सर्वार्थसिद्ध में एक बार से अधिक उपपन्न नहीं होता।[3]

अधोलोकवर्ती नरकों तथा भवनपति देवों के आवासों, ऊर्ध्वलोकवर्ती वैमानिक देवों के आवासों में बादर अग्निकायिक जीव नहीं होते इसलिए **'पढवीकायियत्ताए जाव वणस्सइ कायियत्ताए'** इस पाठ में तेउकायियत्ताए पाठ का ग्रहण नहीं है।[4]

पृथ्वीकायिक यावत् वनस्पतिकायिक जीव--इस पाठ में पांचों

१. भ. वृ. १२/१३३-१५२-इहासंख्यातेषु पृथिवीकायिकावासेषु एतावतैव सिद्धेर्यच्छत-सहस्रग्रहणं तत्तेषामतिबहुत्वख्यापनार्थम्।

२. वही, १२/१३३-१५२-अनुत्तरविमानेष्वनन्तकृत्वो देवा नोत्पद्यन्ते देवयश्च सर्वथैवेति।

३ (क) भ. २४/३१०,३५६।
(ख) पण्ण. १५/११३।

४. वही, २/१-१५।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्थावर जीव निकायों का निर्देश है। इस पाठ की रचना सूक्ष्म स्थावर जीवों की अपेक्षा से की गई है। बादर स्थावर जीव निकाय के प्रसंग में यह नियम सर्वत्र लागू नहीं है।

उनके नियम पृथक्-पृथक् हैं।[1]

शब्द-विमर्श

नरगत्ताए—नरकावास के जीव के रूप में।

घायगत्ताए—मारक के रूप में

वहगत्ताए—वधक के रूप में

मयगत्ताए—मृतक के रूप में

भाइल्लगत्ताए—भागीदार के रूप में

वेसत्ताए—वैश्य के रूप में

वृत्तिकार के इसका अर्थ द्वेश्य के रूप में किया है।[2]

१५३. सेवं भंते! सेवं भंते! त्ति जाव विहरइ॥

तदेवं भदन्त! तदेवं भदन्त! इति यावत् विहरति ।

१५३. भंते ! वह ऐसा ही है। भंते ! वह ऐसा ही है। ऐसा कहकर यावत् विहरण करने लगे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अट्ठमो उद्देसो : आठवां उद्देशक

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
देवाणं बिसरीरेसु उववाय-पदं	देवानां द्विशरीरेषु उपपात-पदम्	देवों का द्विशरीर-उपपात पद
१५४. तेणं कालेणं तेणं समएणं जाव एवं वयासी–देवे णं भंते ! महिड्ढीए जाव महेसक्खे अणंतरं चयं चइत्ता बिसरीरेसु नागेसु उववज्जेज्जा ?	तस्मिन् काले तस्मिन् समये यावत् एवमवादीत्–देवः भदन्त! महर्द्धिकः यावत् महेशाख्यः अनन्तरं च्यवं च्युत्वा द्विशरीरेषु नागेषु उपपद्येत?	१५४. उस काल और उस समय में यावत् इस प्रकार बोले–भंते ! क्या महान् ऋद्धि वाला यावत् महान् ऐश्वर्यशाली के रूप में प्रख्यात देव अनन्तर उस देवलोक से च्यवन कर द्विशरीर वाले नागों में उपपन्न होता है ?
हंता उववज्जेज्जा॥	हन्त उपपद्येत।	हां, उपपन्न होता है।
१५५. से णं तत्थ अच्चिय-वंदिय-पूइय-सक्कारिय-सम्माणिए दिव्वे सच्चे सच्चोवाए सन्निहियपाडिहेरे यावि भवेज्जा ?	सः तत्र अर्चित-वन्दित-पूजित-सत्कृत-सम्मानितः दिव्यः सत्यः सत्यावपातः सन्निहितप्रातिहार्यः चापि भवेत्?	१५५. क्या वह वहां अर्चित, वंदित, पूजित, सत्कारित, सम्मानित, दिव्य (प्रधान), सत्य, सत्यावपात और सन्निहित प्रातिहार्य होता है ?
हंता भवेज्जा॥	हन्त भवेत्।	हां, होता है।
१५६. से णं भंते ! तओहिंतो अणंतरं उव्वट्टित्ता सिज्झेज्जा जाव सव्वदुक्खाणं अंतं करेज्जा ?	सः भदन्त! तस्मात् अनन्तरम् उद्वर्त्त्य सिध्येत् यावत् सर्वदुःखानाम् अन्तं कुर्यात्?	१५६. भंते ! क्या वह वहां से अनन्तर निकलकर सिद्ध यावत् सब दुःखों का अन्त करता है ?
हंता सिज्झेज्जा जाव सव्वदुक्खाणं अंतं करेज्जा॥	हन्त सिध्येत् यावत् सर्वदुःखानाम् अन्तं कुर्यात् ।	हां, सिद्ध यावत् सब दुःखों का अन्त करता है।
१५७. देवे णं भंते ! महिड्ढीए जाव महेसक्खे अणंतरं चयं चइत्ता बिसरीरेसु मणीसु उववज्जेज्जा ?	देवः भदन्त! महर्द्धिकः यावत् महेशाख्यः अनन्तरं च्यवं च्युत्वा द्विशरीरेषु मणिषु उपपद्येत?	१५७. भंते ! क्या महान् ऋद्धि यावत् महान् ऐश्वर्यशाली के रूप में प्रख्यात देव उस देवलोक से अनन्तर च्यवन कर द्विशरीर वाले मणियों में उपपन्न होता है ?
हंता उववज्जेज्जा। एवं चेव जहा नागाणं॥	हन्त उपपद्येत। एवं चैव यथा नागानाम्।	हां, उपपन्न होता है। इस प्रकार नाग की भांति वक्तव्यता।
१५८. देवे णं भंते ! महिड्ढीए जाव महेसक्खे अणंतरं चयं चइत्ता बिसरीरेसु रूक्खेसु उववज्जेज्जा ?	देवः भदन्त! महर्द्धिकः यावत् महेशाख्यः अनन्तरं च्यवं च्युत्वा द्विशरीरेषु रूक्षेषु उपपद्येत?	१५८. भंते ! क्या महान् ऋद्धि यावत् महान् ऐश्वर्यशाली के रूप में प्रख्यात देव अनन्तर उस देवलोक से च्यवन कर द्विशरीरी वाले वृक्षों में उपपन्न होता है ?
हंता उववज्जेज्जा। एवं चेव, नवरं–इमं नाणत्तं जाव सन्निहियपाडिहेरे लाउल्लोइयमहिए यावि भवेज्जा ?	हन्त उपपद्येत। एवं चैव, नवरम्–इदं नानात्वं यावत् सन्निहितप्रातिहार्यः 'लाउल्लोइयमहिए' चापि भवेत्?	हां, उपपन्न होता है। इसी प्रकार पूर्ववत् वक्तव्यता, इतना विशेष है–क्या इसमें नानात्व यावत् सन्निहित प्रातिहार्य और लाउल्लोइयमहित–वृक्ष का भूमिभाग गोबर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आदि से लिपा हुआ और भींत खड़िया मिट्टी से पुती हुई होती है ?

हंता भवेज्जा। सेसं तं चेव जाव सव्वदुक्खाणं अंतं करेज्जा॥

हन्त भवेत्। शेषं तत् चैव यावत् सर्वदुःखानाम् अन्तं कुर्यात् ।

हां, होती है। शेष वर्णन पूर्ववत् यावत् सब दुःखों का अन्त करता है।

भाष्य

१. सूत्र १५४-१५८

अभयदेवसूरि के अनुसार एक भव मोक्षगामी के लिए द्विशरीर शब्द का प्रयोग किया गया है। जो नाग नाग-शरीर को छोड़कर अगले जन्म में मनुष्य शरीर प्राप्त कर मुक्त होता है, वह द्विशरीरी है।[1]

स्थानांग में द्विशरीरी का उल्लेख अनेक स्थानों पर हुआ है। चतुर्थ स्थान में बतलाया गया है–ऊर्ध्वलोक, तिर्यक् लोक और अधोलोक–तीनों में पृथ्वी, जल, वनस्पति और उदार त्रस प्राणी (पंचेन्द्रिय जीव) द्विशरीर वाले होते हैं।[2] वृत्ति में द्विशरीरी का वही अर्थ है–दूसरे जन्म में मोक्ष जाने वाला।[3]

दूसरे स्थान में सब जीवों को दो शरीर वाला–आभ्यन्तर और बाह्य शरीर वाला बतलाया गया है।[4]

मरुत देवों का पाठ विचित्र है। उन्हें तथा अन्य देवों को एक शरीरी तथा द्विशरीरी दोनों बतलाया गया है।[5] वृत्तिकार के अनुसार विग्रह गति में कार्मण शरीर की अपेक्षा से एक शरीर है और जन्म के पश्चात् वैक्रिय शरीर की उपलब्धि हो जाती है, इस अपेक्षा से वे द्विशरीरी होते हैं।[6]

चौदहवें शतक में शाल वृक्ष, शालयष्टिका तथा उदुम्बर-यष्टिका को मोक्षगामी बतलाया गया है। शालवृक्ष फिर शालवृक्ष बनेगा, वह अर्चित और वंदित होगा। अर्चित और वंदित शालवृक्ष अनंतर भव में मनुष्य जन्म लेकर मुक्त होगा।[7] इस सूत्र के आधार पर द्विशरीरी की वृत्तिकार द्वारा की हुई व्याख्या साधार बन जाती है।

अर्चित, पूजित, वंदित, सत्कारित और सम्मानित–इन पांच विशेषणों का संबंध अर्चा से है। दिव्य विशेषण का संबंध दिव्य शक्ति से है। अष्टांग संग्रह में सर्प की दो गतियां बतलाई गई हैं–दिव्य और भौम। दिव्य विशिष्ट शक्ति संपन्न होता है।[8] अनुग्रह और निग्रह करने की शक्ति तेजोलब्धि से प्राप्त होती है। दिव्य नागों का तैजस शरीर प्रबल होता है। इस अपेक्षा से भी उन्हें द्विशरीरी कहा जा सकता है–एक स्थूल शरीर और दूसरा तैजस शरीर, जो दिव्य शक्ति से सम्पन्न है।

सत्य, सत्यावपात, सन्निहिय पाडिहेरे–ये तीनों विशेषण उनकी दिव्य शरीर की शक्ति से संबद्ध हैं। वे दिव्य सर्प स्वप्न में 'दरसाव' देते हैं, वह यथार्थ होता है। उनकी सेवा सफल होती है।

प्रतिहार–द्वारपाल की भांति सदा सन्निहित वृत्ति वाला देव भी प्रतिहार कहलाता है। उसके द्वारा दिया जाने वाला सान्निध्य प्रातिहार्य है।

सन्निहित प्रातिहार्य–देव-सान्निध्य, यथाभिलषित अर्थ की प्राप्ति का हेतु। अभयदेव सूरि के अनुसार नाग, मणि तथा वृक्ष के पूर्वजन्म के मित्रदेव उनकी साधना करने वाले को इष्ट फल की प्राप्ति कराते हैं।

लाउल्लोइयमहिए–उपल आदि से भूमि का सम्मार्जन करना, खड़िया मिट्टी आदि से भींतों को धुलकाना। इन दोनों कर्मों से महित–पूजित यह बद्धपीठ वृक्ष का विशेषण है।[10]

पंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं उववाय-पदं

पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकानाम् उपपात-पदम्

पंचेन्द्रियतिर्यक्योनिक उपपात पद

१५९. अह भंते! गोनंगूलवसभे, कुक्कुडवसभे, मंडुक्कवसभे–एए णं निस्सीला निव्वया निग्गुणा निम्मेरा

अथ भदन्त! गोलाङ्गूलवृषभः, कुक्कुट-वृषभः, मण्डूकवृषभः–एते निःशीलाः निर्व्रताः निर्गुणाः निर्मेरा, निष्प्रत्या-

१५९. भंते! क्या वानरों में प्रधान, कुक्कुट में प्रधान, मेंढक में प्रधान–ये शील रहित, व्रत रहित, गुण रहित मर्यादा रहित,

---

१. भ. वृ. १२/१५४–बिसरीरेसु त्ति द्वे शरीरे येषां ते द्विशरीरास्तेषु, ये हि नाग शरीरं त्यक्त्वा मनुष्यशरीरमवाप्य सेत्स्यन्ति ते द्विशरीरा इति।

२. ठाणं ४/४८३-४८५।

३. स्था. वृ. पृ. २३९–द्वे शरीरे येषां ते द्विशरीराः, एकं पृथिवीकायिकादि शरीरमेव द्वितीयं जन्मान्तरभावि मनुष्यशरीरं ततस्तृतीयं केषाञ्चिन् न भवत्यनन्तरमेव सिद्धिगमनात्।

४. (क) ठाणं २/१५३-१६०

(ख) स्था. वृ. प. ५२–अभ्यन्तः–मध्ये भवमाभ्यन्तरं, आभ्यन्तरत्वं च तस्य जीवप्रदेशैः सह क्षीरनीरन्यायेन लोलीभवनात् भवान्तर-गतावपि च जीवस्यानुगतिप्रधानत्वादपवरकाद्यन्तःप्रविष्ट पुरुष-वदनतिशयिनामप्रत्यक्षत्वाच्चेति।

५. ठाणं, २/२०९-२११।

६. स्था. वृ. प. ५८ मरुतो देवा लोकान्तिकदेवविशेषाः, ते चैकशरीरिणो विग्रहे कार्मणशरीरत्वात्, तदनन्तरं वैक्रियभावाद् द्विशरीरिणः।

७. भ. १०/१०१-१०६।

८. अष्टांग संग्रह ४१/२-४–

दिव्यभौमविभागेन, द्विविधाः पन्नगाः स्मृताः।
वासुकिस्तक्षकोनन्तः, सगरः सागरालयः॥
तथा नन्दोपनन्दाद्याः, समिद्धाग्निसमप्रभाः।
दिव्या गर्जन्ति वर्षन्ति, द्योतन्ते द्योतयन्ति ते॥
धारयन्ति जगत् कृत्स्नं, कुर्युः क्रुद्धाश्च भस्मसात्।
दृङ्निश्वासैर्नमस्तेभ्यो, नतेष्वस्ति चिकित्सितम्॥

९. भ. वृ. १२/१५७-१५८–सन्निहितं–अदूरवर्ति प्रातिहार्यं–पूर्वसंगतिकादि-देवताकृतं प्रतिहारकर्म यस्य स तथा।

१०. वही, १२/१५७,१५८।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निप्पच्चक्खाणपोसहोववासा काल-मासे कालं किच्चा इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए उक्कोसं सागरोवमट्ठितीयंसि नरगंसि नेरइयत्ताए उववज्जेज्जा ?

ख्यान-पौषधोपवासाः कालमासे कालं कृत्वा अस्यां रत्नप्रभायां पृथिव्याम् उत्कर्षं सागरोपमस्थितिके नरके नैरयिकत्वेन उपपद्येत?

प्रत्याख्यान और पौषधोपवास से रहित, काल मास में काल करके इस रत्नप्रभा पृथ्वी में उत्कृष्टतः सागरोपम की स्थिति वाले नरक में नैरयिक के रूप में उपपन्न होते हैं?

समणे भगवं महावीरे वागरेइ–उववज्जमाणे उववन्ने त्ति वत्तव्वं सिया॥

श्रमणः भगवान् महावीरः व्याकरोति–उपपद्यमानः उपपन्नः इति वक्तव्यं स्यात्।

श्रमण भगवान् महावीर व्याकरण करते हैं–उपपद्यमान उपपन्न होते हैं, यह वक्तव्य है।

१६०. अह भंते ! सीहे, वग्घे, वगे, दीविए, अच्छे, तरच्छे, परस्सरे–एए णं निस्सीला निव्वया निग्गुणा निम्मेरा निप्पच्चक्खाणपोसहोववासा कालमासे कालं किच्चा इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए उक्कोसं सागरोवमट्ठितीयंसि नरगंसि नेरइयत्ताए उववज्जेज्जा ?

अथ भदन्त! सिंहः, व्याघ्रः, वृकः, द्वीपिकः, ऋक्षः, तरक्षः, पराशरः–एते निःशीलाः निर्व्रताः निर्गुणाः निर्मेराः निष्प्रत्याख्यान-पौषधोपवासाः, कालमासे कालं कृत्वा अस्यां रत्नप्रभायाम् उत्कर्षं सागरोपमस्थितिके नरके नैरयिकत्वेन उपपद्येत?

१६०. भंते ! क्या सिंह, व्याघ्र, भेड़िया, चित्तोदार तेंदुआ, रींछ, लकड़बग्घा और पराशर (वाम्बेट) ये शील रहित, व्रत रहित, गुण रहित, मर्यादा रहित, प्रत्याख्यान और पौषधोपवास से रहित कालमास में काल करके इस रत्न प्रभा पृथ्वी में उत्कृष्टतः सागरोपम की स्थिति वाले नरक में नैरयिक के रूप में उपपन्न होते हैं ?

समणे भगवं महावीरे वागरेइ–उववज्जमाणे उववन्ने त्ति वत्तव्वं सिया॥

श्रमणः भगवान् महावीरः व्याकरोति–उपपद्यमानः उपपन्नः इति वक्तव्यं स्यात्।

श्रमण भगवान् महावीर व्याकरण करते हैं–उपपद्यमान उपपन्न होते हैं, यह वक्तव्य है।

१६१. अह भंते ! ढंके, कंके, विलए, मद्दुए, सिखी–एए णं निस्सीला निव्वया निग्गुणा निम्मेरा निप्पच्चक्खाण-पोसहोववासा कालमासे कालं किच्चा इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए उक्कोसं सागरोवमट्ठितीयंसि नरगंसि नेरइयत्ताए उववज्जेज्जा ?

अथ भदन्त! 'ढंके', कङ्कः, विलकः मद्गुकः, शिखी–एते निःशीलाः निर्व्रताः निर्गुणाः निर्मेराः निष्प्रत्याख्यान-पौषधोपवासाः कालमासे कालं कृत्वा अस्यां रत्नप्रभायाम् पृथिव्याम् उत्कर्षं सागरोपमस्थितिके नरके नैरयिकत्वेन उपपद्येत?

१६१. भंते ! ढंक (द्रोण काक) कंक (सफेद चील), विलक (पीलक), मद्गुक (जल काक) और मोर–ये शील रहित, व्रत रहित, गुणरहित, मर्यादा रहित, प्रत्याख्यान और पौषधोपावास से रहित कालमास में काल करके इस रत्नप्रभा पृथ्वी में उत्कृष्ट सागरोपम की स्थिति वाले नरक में नैरयिक के रूप में उपपन्न होते हैं ?

समणे भगवं महावीरे वागरेइ–उववज्जमाणे उववन्ने त्ति वत्तव्वं सिया॥

श्रमणः भगवान् महावीरः व्याकरोति–उपपद्यमानः उपपन्नः इति वक्तव्यं स्यात्।

श्रमण भगवान् महावीर व्याकरण करते हैं–उपपद्यमान उपपन्न होते हैं, यह वक्तव्य है।

भाष्य

१. सूत्र १५९-१६१

प्रस्तुत प्रकरण में क्रियाकाल और निष्ठाकाल के अभेद का सिद्धांत प्रतिपादित है। नरक में नारक ही उपपन्न होता है, अनारक नहीं। विशेष विवरण के लिए द्रष्टव्य भगवई १/११-१२ तथा, १/३७०-३७१। शाब्दिक तुलना के लिए द्रष्टव्य भगवई ७/१२१।

१६२. सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति जाव विहरइ॥

तदेवं भदन्त! तदेवं भदन्त! इति यावत् विहरति।

१६२. भंते ! वह ऐसा ही है। भंते ! वह ऐसा ही है, ऐसा कहकर यावत् विहरण करने लगे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नवमो उद्देसो : नवां उद्देशक

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
पंचविह-देव-पदं	पञ्चविध-देव-पदम्	पंचविध देव पद
१६३. कतिविहा णं भंते ! देवा पण्णत्ता ? गोयमा ! पंचविहा देवा पण्णत्ता, तं जहा–भवियदव्वदेवा, नरदेवा, धम्मदेवा, देवातिदेवा, भावदेवा॥	कतिविधाः भदन्त! देवाः प्रज्ञप्ताः? गौतम! पञ्चविधाः देवाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथाः–भव्यद्रव्यदेवाः, नरदेवाः, धर्मदेवाः, देवातिदेवाः, भावदेवाः।	१६३. भंते ! देव कितने प्रकार के प्रज्ञप्त हैं ? गौतम ! देव पांच प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे–भव्यद्रव्यदेव, नरदेव, धर्मदेव देवातिदेव और भावदेव ।
१६४. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–भवियदव्वदेवा-भवियदव्वदेवा ? गोयमा ! जे भविए पंचिंदियतिरिक्खजोणिए वा मणुस्से वा देवेसु उववज्जित्तए। से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–भवियदव्वदेवा-भवियदव्वदेवा॥	तत् केनार्थेन भदन्त! एवमुच्यते–भव्यद्रव्यदेवा–भव्यद्रव्यदेवाः? गौतम! यः भव्यः पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकः वा, मनुष्यः वा देवेषु उपपत्तुम्। तत् तेनार्थेन गौतम! एवमुच्यते–भव्यद्रव्यदेवा–भव्यद्रव्यदेवाः।	१६४. भंते ! भव्यद्रव्यदेव भव्यद्रव्यदेव–यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है? गौतम ! जो भव्य पंचेन्द्रियतिर्यक्योनिक अथवा मनुष्य मृत्यु के पश्चात् देवों में उपपन्न होने वाले हैं, गौतम! इस अपेक्षा से उन्हें कहा जाता है–भव्यद्रव्यदेव भव्यद्रव्यदेव।
१६५. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–नरदेवा-नरदेवा ? गोयमा ! जे इमे रायाणो चाउरंतचक्कवट्टी उप्पण्णसमत्तचक्करयणप्पहाणा नवनिहिपइणो समिद्धकोसा बत्तीसरायवरसहस्साणुयातमग्गा सागरवरमेहलाहिवइणो मणुस्सिंदा। से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–नरदेवा-नरदेवा॥	तत् केनार्थेन भदन्त! एवमुच्यते–नरदेवा–नरदेवाः? गौतम! ये इमे राजानः चतुरन्तचक्रवर्तिनः उत्पन्नसमस्तचक्ररत्नप्रधानाः नवनिधिपतयः समृद्धकोषाः द्वात्रिंशत् राजवरसहस्रानुयातमार्गाः सागरवरमेखलाधिपतयः मनुष्येन्द्राः। तत् तेनार्थेन गौतम! एवमुच्यते–नरदेवा–नरदेवाः ।	१६५. भंते ! नरदेव नरदेव–यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है ? गौतम ! जो ये चातुरन्त चक्रवर्ती राजा उपपन्न समस्त रत्नों में प्रधान चक्र वाले, नौ निधि के अधिपति, समृद्ध कोश वाले हैं, बत्तीस हजार श्रेष्ठ राजा उनके मार्ग का अनुसरण करते हैं, समुद्र की प्रवर मेखला के अधिपति और मनुष्यों के इन्द्र हैं, गौतम! इस अपेक्षा से उन्हें कहा जाता है–नरदेव नरदेव।
१६६. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–धम्मदेवा-धम्मदेवा ? गोयमा ! जे इमे अणगारा भगवंतो रियासमिया जाव गुत्तबंभयारी। से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–धम्मदेवा-धम्मदेवा॥	तत् केनार्थेन भदन्त! एवमुच्यते–धर्मदेवा–धर्मदेवाः? गौतम! ये इमे अनगाराः भगवन्तः ईर्यासमिताः यावत् गुप्तब्रह्मचारिणः तत् तेनार्थेन गौतम! एवमुच्यते–धर्मदेवा–धर्मदेवाः ।	१६६. भंते ! धर्मदेव धर्मदेव–यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है? गौतम ! जो ये अनगार भगवन्त विवेक पूर्वक चलते हैं यावत् ब्रह्मचर्य को सुरक्षित रखते हैं, गौतम ! इस अपेक्षा से उन्हें कहा जाता है–धर्मदेव धर्मदेव।
१६७. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–देवातिदेवा-देवातिदेवा ? गोयमा ! जे इमे अरहंता भगवंतो	तत् केनार्थेन भदन्त! एवमुच्यते–देवातिदेवा–देवातिदेवाः? गौतम! ये इमे अर्हन्तः भगवन्तः	१६७. भंते ! देवातिदेव देवातिदेव–यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है ? गौतम ! जो ये अर्हत् भगवान् उत्पन्न ज्ञान–

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उप्पण्णनाण-दंसणधरा अरहा जिणा केवली तीयपच्चुप्पन्नमणागयवियाणया सव्वण्णू सव्वदरिसी। से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ–देवातिदेवा-देवातिदेवा॥

उत्पन्नज्ञान-दर्शनधराः अर्हाः जिनाः-केवलिनः अतीतप्रत्युत्पन्नागत-विज्ञायकाः सर्वज्ञाः सर्वदर्शिनः। तत् तेनार्थेन गौतम! एवमुच्यते-देवातिदेवा-देवातिदेवाः।

दर्शन के धारक, अर्हत्, जिन, केवली, अतीत, वर्तमान और भविष्य के विज्ञाता सर्वज्ञ और सर्वदर्शी होते हैं, गौतम! इस अपेक्षा से उन्हें कहा जाता है–देवातिदेव देवातिदेव।

१६८. से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ–भावदेवा-भावदेवा?
गोयमा! जे इमे भवणवइ-वाणमंतर-जोइस-वेमाणिया देवा देवगति-नामगोयाइं कम्माइं वेदेंति। से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ–भावदेवा-भावदेवा॥

तत् केनार्थेन भदन्त! एवमुच्यते-भावदेवा-भावदेवाः?
गौतम! ये इमे भवनपति-वानमन्तर-ज्यौतिष-वैमानिकादेवाः देवगतिनाम-गोत्राणि कर्माणि वेदयन्ति। तत् तेनार्थेन गौतम! एवमुच्यते-भावदेवा-भावदेवाः।

१६८. भंते! भावदेव भावदेव–यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है?
गौतम! जो ये भवनपति, वाणमंतर, ज्योतिष्क, वैमानिक देव देवगति नाम-गोत्र कर्मों का वेदन करते हैं, गौतम! इस अपेक्षा से उन्हें कहा जाता है–भावदेव भावदेव।

भाष्य

१. सूत्र १६३-१६८

प्रस्तुत प्रकरण में पांच प्रकार के देव बतलाए गए हैं–

१. भव्यद्रव्य देव–देव पर्याय में उत्पन्न जीव देव कहलाता है। भव्य शब्द इस अर्थ का सूचक है कि अमुक जीव देव पर्याय में उत्पन्न होने वाला है। द्रव्य शब्द इस अर्थ का सूचक है कि अभी वह देव पर्याय में उत्पन्न नहीं हुआ है। वृत्तिकार ने भूत भावपक्ष और भावी भाव पक्ष–दो दृष्टियों से एक शब्द को समझाने का प्रयत्न किया है। जो जीव देव पर्याय से च्युत हो गया है, वह भूत द्रव्य देव है। जो जीव देवता के रूप में उपपन्न होने वाला है, वह भव्य द्रव्य देव है। यहां भव्य द्रव्य देव प्रस्तुत है।[1]

२. नरदेव–चक्रवर्ती।

३. धर्मदेव–अनगार, गृहत्यागी मुनि।

४. देवातिदेव–अर्हत्, तीर्थंकर।

५. भाव देव–देव पर्याय में उत्पन्न जीव।

शब्दार्थ मीमांसा के लिए तत्त्वार्थाधिगम सूत्र ४/१ भाष्यानुसारिणी (पृ. २७३-२७४) द्रष्टव्य है।

शब्द-विमर्श

चक्र रत्न–द्रष्टव्य जंबूद्वीप पण्णत्ती ३/४-५

नव निधि–द्रष्टव्य ठाणं ९/२१-२२।
जंबूद्वीप पण्णत्ती ३/१६७।

पंचविह-देवाणं उववाय-पदं

१६९. भवियदव्वदेवा णं भंते! कओहिंतो उववज्जंति–किं नेरइएहिंतो उववज्जंति? तिरिक्खमणुस्सदेवेहिंतो उववज्जंति?
गोयमा! नेरइएहिंतो उववज्जंति, तिरिक्ख-मणुस्स-देवेहिंतो वि उववज्जंति। भेदो जहा वक्कंतीए सव्वेसु उववाएयव्वा जाव अणुत्तरोवाइय त्ति, नवरं–असंखेज्ज-वासाउयअकम्मभूमग - अंतरदीवग-सव्वट्ठसिद्धवज्जं जाव अपराजियदेवेहिंतो वि उववज्जंति॥

पञ्चविध-देवानाम् उपपात-पदम्

भव्यद्रव्यदेवाः भदन्त! कुतः उपपद्यन्ते–किं नैरयिकेभ्यः उपपद्यन्ते? तिर्यग्-मनुष्य-देवेभ्यः उपपद्यन्ते?
गौतम! नैरयिकेभ्यः उपपद्यन्ते, तिर्यग्-मनुष्य-देवेभ्यः अपि उपपद्यन्ते। भेदो यथा अवक्रान्त्यां सर्वेषु उपपादयितव्या यावत् अनुत्तरोपपातिकः इति, नवरम्-असंख्येयवर्षायुष्क-अकर्मभूमिक-अन्तर्द्वीपक सर्वार्थसिद्धवर्जं यावत् अपराजितदेवेभ्यः अपि उपपद्यन्ते।

पंचविध देवों का उपपात-पद

१६९. भंते! भव्यद्रव्य देव कहां से उपपन्न होते हैं–क्या नैरयिकों से उपपन्न होते हैं? क्या तिर्यंच, मनुष्य और देवगति से उपपन्न होते हैं।
गौतम! नैरयिकों से उपपन्न होते हैं, तिर्यंच, मनुष्य और देवगति से भी उपपन्न होते हैं। जैसे प्रज्ञापना पद (६/८८-९२) अवक्रांति के अनुसार सब गतियों से उपपन्न होने के भेद वक्तव्य हैं यावत् अनुत्तरोपपातिक, इतना विशेष है–असंख्येय वर्ष आयु वाले अकर्मभूमिज, अन्तर्द्वीपज और सर्वार्थसिद्ध को छोड़कर यावत् अपराजित देवों से भी उपपन्न होते हैं।

१७०. नरदेवा णं भंते कओहिंतो उववज्जंति–किं नेरइएहिंतो–पुच्छा।

नरदेवाः भदन्त! कुतः उपपद्यन्ते–किं नैरयिकेभ्यः–पृच्छा।

१७०. भंते! नरदेव कहां से उपपन्न होते हैं–क्या नैरयिकों से? पृच्छा।

1. भ. वृ १२/१६३–भूतभावपक्षे तु भूतस्य देवत्वपर्यायस्य प्रतिपन्नकारणा भावदेवत्वाच्च्युता द्रव्यदेवाः, भाविभावपक्षे तु भाविनो देवत्वपर्यायस्य योग्या देवतयोत्पत्स्यमाना द्रव्यदेवाः, तत्र भाविभावपक्षपरिग्रहार्थमाह–भव्याश्च ते द्रव्यदेवाश्चेति भव्यद्रव्यदेवाः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा ! नेरइएहिंतो उववज्जंति, नो तिरिक्खजोणिएहिंतो, नो मणुस्सेहिंतो, देवेहिंतो वि उववज्जंति॥

गौतम! नैरयिकेभ्यः उपपद्यन्ते, नो तिर्यग्योनिकेभ्यः, नो मनुष्येभ्यः, देवेभ्यः अपि उपपद्यन्ते।

गौतम! नैरयिकों से उपपन्न होते हैं। तिर्यक्योनिक और मनुष्यों से उपपन्न नहीं होते। देवों से भी उपपन्न होते हैं।

१७१. जइ नेरइएहिंतो उवज्जंति–किं रयणप्पभापुढविनेरइएहिंतो उववज्जंति जाव अहेसत्तमापुढविनेरइएहिंतो उववज्जंति ?

गोयमा ! रयणप्पभापुढविनेरइएहिंतो उववज्जंति, नो सक्करप्पभापुढविनेरइएहिंतो जाव नो अहेसत्तमापुढविनेरइएहिंतो उववज्जंति॥

यदि नैरयिकेभ्यः उपपद्यन्ते–किं रत्नप्रभापृथिवीनैरयिकेभ्यः उपपद्यन्ते, यावत् अधःसप्तमी पृथिवीनैरयिकेभ्यः उपपद्यन्ते?

गौतम! रत्नप्रभापृथिवीनैरयिकेभ्यः उपपद्यन्ते, नो शर्कराप्रभापृथिवी-नैरयिकेभ्यः यावत् नो अधःसप्तमी-पृथिवी-नैरयिकेभ्यः उपपद्यन्ते ।

१७१. यदि नैरयिकों से उपपन्न होते हैं तो क्या रत्नप्रभा पृथ्वी के नैरयिकों से उपपन्न होते हैं यावत् अधःसप्तमी पृथ्वी के नैरयिकों से उपपन्न होते हैं ?

गौतम ! रत्नप्रभा पृथ्वी के नैरयिकों से उपपन्न होते हैं। शर्कराप्रभा पृथ्वी के नैरयिकों से उपपन्न नहीं होते यावत् अधःसप्तमी पृथ्वी के नैरयिकों से उपपन्न नहीं होते।

१७२. जइ देवेहिंतो उववज्जंति किं भवणवासिदेवेहिंतो उववज्जंति ?

वाणमंतर - जोइसिय-वेमाणियदेवेहिंतो उववज्जंति?

गोयमा ! भवणवासिदेवेहिंतो वि उववज्जंति, वाणमंतरदेवेहिंतो, एवं सव्वदेवेसु उववाएयव्वा, वक्कंतीए भेदेणं जाव सव्वट्ठसिद्धत्ति॥

यदि देवेभ्यः उपपद्यन्ते किं भवन-वासिदेवेभ्यः उपपद्यन्ते? वानमन्तर-ज्योतिष्क-वैमानिकदेवेभ्यः उपपद्यन्ते?

गौतम! भवनवासिदेवेभ्यः अपि उपपद्यन्ते, वानमन्तरदेवेभ्यः, एवं सर्वदेवेभ्यः उपपादयितव्या अवक्रान्त्यां भेदेन यावत् सर्वार्थसिद्धः इति ।

१७२. यदि देवों से उपपन्न होते हैं तो क्या भवनवासी देवों से उपपन्न होते हैं? वाणमंतर, ज्योतिष्क और वैमानिक देवों से उपपन्न होते हैं ?

गौतम! भवनवासी देवों से भी उपपन्न होते हैं, वाणमंतर देवों से उपपन्न होते हैं, इसी प्रकार समस्त देवों के विषय में प्रज्ञापना पद (६/२२) अवक्रांति की भांति समस्त उपपात वक्तव्य है यावत् सर्वार्थसिद्ध देवों से।

१७३. धम्मदेवा णं भंते ! कओहिंतो उववज्जंति–किं नेरइएहिंतो उववज्जंति–पुच्छा।

एवं वक्कंतीभेदेणं सव्वेसु उववाएयव्वा जाव सव्वट्ठसिद्धत्ति, नवरं–तम-अहेसत्तम-तेउ-वाउ-असंखेज्जवासाउयअकम्मभूमग-अंतरदीवगवज्जेसु॥

धर्मदेवाः कुतः उपपद्यन्ते–किं नैरयिकेभ्यः उपपद्यन्ते–पृच्छा ।

एवं अवक्रान्तिभेदेन सर्वेषु उपपाद-यितव्या यावत् सर्वार्थसिद्ध इति, नवरम्–तमा - अधःसप्तमी - तेजस्-वायु - असंख्येयवर्षायुष्क - अकर्म-भूमक-अन्तर्द्वीपकवर्जेभ्यः।

१७३. भंते ! धर्मदेव कहां से उपपन्न होते हैं–क्या नैरयिकों से उपपन्न होते हैं ?–पृच्छा।

इसी प्रकार अवक्रांति भेद से सर्व देवों का उपपात वक्तव्य है यावत् सर्वार्थसिद्ध देवों से, इतना विशेष है–तमःप्रभा, अधः-सप्तमी, तेजस्काय, वायुकाय, असंख्येय वर्ष आयु वाले अकर्मभूमिज और अन्तर्द्वीपज को छोड़कर।

१७४. देवातिदेवा णं भंते ! कओहिंतो उववज्जंति–किं नेरइएहिंतो उववज्जंति–पुच्छा।

गोयमा ! नेरइएहिंतो उववज्जंति, नो तिरिक्खजोणिएहिंतो, नो मणुस्सेहिंतो, देवेहिंतो वि उववज्जंति॥

देवातिदेवाः भदन्त! कुतः उपपद्यन्ते–किं नैरयिकेभ्यः उपपद्यन्ते–पृच्छा?

गौतम! नैरयिकेभ्यः उपपद्यन्ते, नो तिर्यग्योनिकेभ्यः, नो मनुष्येभ्यः, देवेभ्यः अपि उपपद्यन्ते ।

१७४. भंते ! देवातिदेव कहां से उपपन्न होते हैं ? क्या नैरयिकों से उपपन्न होते हैं–पृच्छा।

गौतम! नैरयिकों से उपपन्न होते हैं। तिर्यक्योनिकों और मनुष्यों से उपपन्न नहीं होते। देवों से भी उपपन्न होते हैं।

१७५. जइ नेरइएहिंतो ?

यदि नैरयिकेभ्यः?

१७५. यदि नैरयिकों से उपपन्न होते हैं ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एवं तिसु पुढवीसु उववज्जंति, सेसाओ खोडेयव्वाओ॥

एवं तिसृभ्यः पृथिवीभ्यः उपपद्यन्ते, शेषाः खोडेयव्वाओ।

इसी प्रकार प्रथम तीन पृथ्वियों से उपपन्न होते हैं, शेष चार पृथ्वियों से उपपन्न नहीं होते।

१७६. जइ देवेहिंतो ?
वेमाणिएसु सव्वेसु उववज्जंति जाव सव्वट्ठसिद्धत्ति, सेसा खोडेयव्वा॥

यदि देवेभ्यः?
वैमानिकेभ्यः सर्वेभ्यः उपपद्यन्ते यावत् सर्वार्थसिद्धः इति शेषाः खोडेयव्वाओ।

१७६. यदि देवों से?
सर्व वैमानिक देवों से उपपन्न होते हैं, यावत् सवार्थसिद्ध देवों से उपपन्न होते हैं, शेष देवों का निषेध करना चाहिए।

१७७. भावदेवा णं भंते ! कओहिंतो उववज्जंति ?
एवं जहा वक्कंतीए भवणवासीणं उववाओ तहा भाणियव्वो।

भावदेवाः! कुतः उपपद्यन्ते?

एवं यथा अवक्रान्त्यां भवनवासिनाम् उपपातः तथा भणितव्यः।

१७७. भंते ! भाव देव कहां से उपपन्न होते हैं?

इसी प्रकार जैसे प्रज्ञापना (६/६२) अवक्रांति पद की भांति भवनवासी देवों का उपपात वक्तव्य है।

भाष्य

१. सूत्र १६६-१७७

भव्यद्रव्यदेव की उत्पत्ति नैरयिक, तिर्यंच, मनुष्य और देव–इन चारों स्थानों से होती है। अपवाद सूत्र के अनुसार निम्न जीव निर्दिष्ट स्थानों से मरकर भव्य द्रव्यदेव के रूप में उपपन्न नहीं होते–

१.असंख्यात वर्ष आयुवाले कर्मभूमिज, पंचेन्द्रिय तिर्यंच और मनुष्य।

२. असंख्यात वर्ष आयुष्य वाले अकर्मभूमिज एवं अंतर्द्वीपज पंचेन्द्रिय तिर्यंच और मनुष्य।

ये सब मृत्यु के पश्चात् भाव देव बनते हैं इसलिए इनकी उत्पत्ति भव्यद्रव्यदेव के रूप में नहीं होती।

३. सर्वार्थसिद्ध से च्युत होने वाले देव मनुष्य बनकर मुक्त हो जाते हैं इसलिए उनकी उत्पत्ति भव्यद्रव्यदेव के रूप में नहीं होती।

इस विषय में प्रज्ञापना का वक्रांति नामक छट्ठा पद द्रष्टव्य है।[1]

भावदेव की उत्पत्ति के लिए पण्णवणा ६/८१ सूत्र द्रष्टव्य है।

पंचविह-देवाणं ठिइ-पदं

१७८. भवियदव्वदेवाणं भंते ! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?
गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं॥

पञ्चविध-देवानां स्थिति-पदम्

भव्यद्रव्यदेवानां भदन्त! कियत्कालं स्थितिः प्रज्ञप्ताः?
गौतम! जघन्येन अन्तर्मुहूर्त्तम्, उत्कर्षेण त्रीणि पल्योपमानि?

पंचविध देवों का स्थिति पद

१७८. भंते ! भव्यद्रव्यदेवों की स्थिति कितने काल की प्रज्ञप्त है?
गौतम ! जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त्त, उत्कृष्टतः तीन पल्योपम।

१७९. नरदेवाणं–पुच्छा।
गोयमा ! जहण्णेणं सत्त वाससयाइं, उक्कोसेणं चउरासीइं पुव्वसयसहस्साइं॥

नरदेवानां–पृच्छा?
गौतम! जघन्येन सप्त वर्षशतानि, उत्कर्षेण चतुरशीतिः पूर्वशतसहस्राणि।

१७९. नरदेवों की पृच्छा।
गौतम ! जघन्यतः सात सौ वर्ष, उत्कृष्टतः चौरासी लाख पूर्व।

१८०. धम्मदेवाणं–पुच्छा।
गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं देसूणा पुव्वकोडी॥

धर्मदेवानां–पृच्छा?
गौतम! जघन्येन अन्तर्मुहूर्त्तम्, उत्कर्षेण देशोना पूर्वकोटिः।

१८०. धर्मदेवों की पृच्छा!
गौतम ! जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त्त, उत्कृष्टतः कुछ कम पूर्व कोटि।

१८१. देवातिदेवाणं–पुच्छा।
गोयमा ! जहण्णेणं बावत्तरिं वासाइं, उक्कोसेणं चउरासीइं पुव्वसयसहस्साइं॥

देवातिदेवानां–पृच्छा?
गौतम! जघन्येन द्वासप्ततिः वर्षाणि, उत्कर्षेण चतुरशीति पूर्वशतसहस्राणि।

१८१. देवातिदेवों की पृच्छा।
गौतम ! जघन्यतः बहत्तर वर्ष, उत्कृष्टतः चौरासी लाख पूर्व।

---

१. पण्ण. ६/८८।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१८२. भावदेवाणं–पुच्छा।
गोयमा! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं, उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं॥

भावदेवानां–पृच्छा?
गौतम! जघन्येन दश वर्षसहस्राणि, उत्कर्षेण त्रयस्त्रिंशत् सागरोपमाणि।

१८२. भावदेवों की पृच्छा।
गौतम! जघन्यतः दस हजार वर्ष, उत्कृष्टतः तेतीस सागरोपम।

भाष्य

१. सूत्र १७८-१८२

भव्यद्रव्यदेव का उत्कृष्ट आयुमान तीन पल्योपम है। यह असंख्यात वर्ष वाले पंचेन्द्रिय तिर्यंच मनुष्यों की अपेक्षा से होता है। नरदेव का जघन्य आयुमान सात सौ वर्ष है, इसका निदर्शन है ब्रह्मदत्त। उत्कृष्ट आयुमान चौरासी लाख पूर्व है, इसका निदर्शन है भरत।[1]

एक प्रश्न उपस्थित होता है–ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती का आयुमान सात सौ वर्ष था। उस आधार पर नरदेव का जघन्य आयुष्य कालमान निर्धारित किया गया अथवा यह उत्कृष्ट आयुमान की भांति सामान्य नियम है?

देवातिदेव की जघन्य स्थिति बहत्तर वर्ष की बतलाई गई है। इसका संबंध भगवान् महावीर की जीवन-सीमा से है। ये दोनों नियम तथ्य परक प्रतीत होते हैं। इन्हें स्थायी नियम की कोटि में कैसे रखा जा सकता है?

धर्मदेव की जघन्य स्थिति अंतर्मुहूर्त्त है। जिसका आयुष्य अंतर्मुहूर्त्त आवशिष्ट है, वह संयम स्वीकार करता है, इस अपेक्षा से जघन्य स्थिति का प्रतिपादन है। उसकी उत्कृष्ट स्थिति देशोन पूर्व कोटि की बतलाई गई है। वृत्तिकार के अनुसार आठ वर्ष का शिशु दीक्षा के योग्य होता है।[2] इस विषय में प्रस्तुत आगम के पच्चीसवें शतक के सूत्र ५-३३ और उसकी जयाचार्य कृत जोड़ द्रष्टव्य है।[3]

औपपातिक के अनुसार जघन्यतः सातिरेक आठ वर्ष वाला मुक्त हो सकता है।[4]

पंचविह-देवाणं विउव्वणा-पदं

१८३. भवियदव्वदेवा णं भंते! किं एगत्तं पभू विउव्वित्तए? पुहत्तं पभू विउव्वित्तए?
गोयमा! एगत्तं पि पभू विउव्वित्तए, पुहत्तं पि पभू विउव्वित्तए। एगत्तं विउव्वमाणे एगिंदियरूवं वा जाव पंचिंदियरूवं वा, पुहत्तं विउव्वमाणे एगिंदियरूवाणि वा जाव पंचिंदियरूवाणि वा, ताइं संखेज्जाणि वा असंखेज्जाणि वा, संबद्धाणि वा असंबद्धाणि वा, सरिसाणि वा असरिसाणि वा विउव्वंति, विउव्वित्ता तओ पच्छा जहिच्छियाइं कज्जाइं करेंति। एवं नरदेवा वि, एवं धम्मदेवा वि॥

पञ्चविध-देवानाम् विकुर्वणा-पदम्

भव्यद्रव्यदेवाः भदन्त! किम् एकत्वं प्रभुः विकर्तुम्? पृथक्त्वं प्रभुः विकर्तुम्?

गौतम! एकत्वम् अपि प्रभुः विकर्तुम्, पृथक्त्वम् अपि प्रभुः विकर्तुम्। एकत्वं विकुर्वाणः एकेन्द्रियरूपं वा यावत् पञ्चेन्द्रियरूपं वा, पृथक्त्वं विकुर्वाणः एकेन्द्रियरूपाणि वा यावत् पञ्चेन्द्रियरूपाणि वा, तानि संख्येयानि वा असंख्येयानि वा, संबद्धानि वा असंबद्धानि वा, सदृशानि वा असदृशानि वा विकुर्वन्ति, विकृत्य ततः पश्चात् यथेप्सितानि कार्याणि कुर्वन्ति। एवं नरदेवाः अपि, एवं धर्मदेवाः अपि।

पंचविध देवों का विक्रिया पद

१८३. भंते! क्या भव्यद्रव्यदेव एक रूप विक्रिया करने में समर्थ हैं? अनेक रूप विक्रिया करने में समर्थ हैं?
गौतम! एक रूप विक्रिया करने में भी समर्थ हैं, अनेक रूप विक्रिया करने में भी समर्थ हैं। एक रूप विक्रिया करता हुआ एकेन्द्रिय रूप यावत् अथवा पंचेन्द्रिय-रूप, अनेक रूप विक्रिया करता हुआ एकेन्द्रिय-रूपों यावत् अथवा पंचेन्द्रिय-रूपों की विक्रिया करता है। वे रूप संख्येय अथवा असंख्येय, संबद्ध अथवा असंबद्ध, सदृश अथवा असदृश होते हैं, विक्रिया करने के पश्चात् इच्छानुसार कार्य करते हैं। इसी प्रकार नरदेव की भी वक्तव्यता, इसी प्रकार धर्मदेव की भी वक्तव्यता।

१८४. देवातिदेवाणं–पुच्छा।
गोयमा! एगत्तं पि पभू विउव्वित्तए, पुहत्तं पि पभू विउव्वित्तए, नो चेव णं संपत्तीए विउव्विंसु वा, विउव्विंति वा, विउव्विस्संति वा।

देवातिदेवानाम्–पृच्छा?
गौतम! एकत्वम् अपि प्रभुः विकर्तुम्, पृथक्त्वम् अपि प्रभुः विकर्तुम्, नो चैव सम्प्राप्त्या व्यकार्षुः वा, विकुर्वन्ति वा, विकरिष्यन्ति वा।

१८४. देवातिदेवों की–पृच्छा।
गौतम! एक रूप विक्रिया करने में भी समर्थ हैं, अनेक रूप विक्रिया करने में भी समर्थ हैं। यह विषय विक्रिया करने की शक्ति की दृष्टि से बताया गया है किंतु

---

१. भ. वृ. १२/१७९–सत्तवाससयाइं ति यथा ब्रह्मदत्तस्य चउरासीपुव्वसयसहस्साइं ति यथा भरतस्य।
२. वही, १२/१८०–उक्कोसेणं देसूणा पुव्वकोडी त्ति तु यो देशोनपूर्वकोट्यायुश्चारित्रं प्रतिपद्यते तदपेक्षमिति, ऊनता च पूर्वकोट्या अष्टाभिर्वर्षैः अष्टवर्षस्यैव प्रव्रज्यार्हत्वात्, यच्च षड्वर्षस्त्रिवर्षो वा प्रव्रजितोऽतिमुक्तको वैरस्वामी वा तत्कादाचित्कमिति न सूत्रावतारीति।
३. भ. जो. ४५६/३६-३८।
४. औ. १८८।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्रियात्मक रूप में उन्होंने कभी अतीत में विक्रिया नहीं की, वर्तमान में नहीं करते और भविष्य में नहीं करेंगे ।

भावदेवा जहा भवियदव्वदेवा॥ भावदेवाः यथा भव्यद्रव्यदेवाः। भावदेव भव्यद्रव्यदेव की भांति वक्तव्य हैं।

भाष्य

१. सूत्र १८३-१८४

प्रस्तुत आलापक में पंचविध देवों की विक्रिया–रूप निर्माण की क्रिया पर विचार किया गया है। रूप निर्माण के महत्त्वपूर्ण विकल्प बतलाए गए हैं–

१. एकेन्द्रिय जीव के रूप का निर्माण।
अनेक एकेन्द्रिय जीव के रूप का निर्माण।

इसी प्रकार द्वीन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक के जीवों का निर्माण किया जाता है।

२. संख्येय रूपों का निर्माण।
असंख्येय रूपों का निर्माण।

३. संबद्ध (अपने शरीर से संलग्न) रूपों का निर्माण।
असंबद्ध (अपने शरीर से पृथक्भूत) रूपों का निर्माण।[1]

४. सदृश रूपों का निर्माण।
असदृश रूपों का निर्माण।

देवातिदेव में विक्रिया–रूप निर्माण करने की शक्ति होती है पर वे उसका प्रयोग नहीं करते।

पंचविह-देवाणं उव्वट्टण-पदं

पञ्चविध-देवानाम् उद्वर्तन-पदम्

पंचविध देवों का उद्वर्तन पद

१८५. भविय दव्वदेवा णं भंते! अणंतरं उव्वट्टित्ता कहिं गच्छंति? कहिं उववज्जंति–किं नेरइएसु उववज्जंति जाव देवेसु उववज्जंति?

भव्यद्रव्यदेवाः भदन्त! अनन्तरम् उद्वर्त्य कुत्र गच्छन्ति? कुत्र उपपद्यन्ते–किं नैरयिकेषु उपपद्यन्ते यावत् देवेषु उपपद्यन्ते?

१८५. भंते! भव्यद्रव्यदेव अनंतर उद्वर्तन कर कहां जाते हैं? कहां उपपन्न होते हैं–क्या नैरयिकों में उपपन्न होते हैं यावत् देवों में उपपन्न होते हैं?

गोयमा! नो नेरइएसु उववज्जंति, नो तिरिक्खजोणिएसु, नो मणुस्सेसु, देवेसु उववज्जंति।
'जइ देवेसु उववज्जंति?
सव्वदेवेसु उववज्जंति जाव सव्वट्ठसिद्धत्ति॥

गौतम! नो नैरयिकेषु उपपद्यन्ते, नो तिर्यग्योनिकेषु, नो मनुष्येषु, देवेषु उपपद्यन्ते।
यदि देवेषु उपपद्यन्ते?
सर्वदेवेषु उपपद्यन्ते यावत् सर्वार्थसिद्धः इति ।

गौतम! नैरयिकों में उपपन्न नहीं होते, तिर्यक्योनिकों में उपपन्न नहीं होते, मनुष्यों में उपपन्न नहीं होते, देवों में उपपन्न होते हैं।
यदि देवों में उपपन्न होते हैं?
सब देवों में उपपन्न होते हैं यावत् सर्वार्थसिद्ध देवों में उपपन्न होते हैं ।

१८६. नरदेवा णं भंते! अणंतरं उव्वट्टित्ता–पुच्छा।
गोयमा! नेरइएसु उववज्जंति, नो तिरिक्खजोणिएसु, नो मणुस्सेसु, नो देवेसु उववज्जंति।
जइ नेरइएसु उववज्जंति?
सत्तसु वि पुढवीसु उववज्जंति॥

नरदेवाः भदन्त! अनन्तरम् उद्वर्त्य–पृच्छा।
गौतम! नैरयिकेषु उपपद्यन्ते, नो तिर्यग्योनिकेषु, नो मनुष्येषु, नो देवेषु उपपद्यन्ते?
यदि नैरयिकेषु उपपद्यन्ते?
सप्तसु अपि पृथिवीषु उपपद्यन्ते।

१८६. भंते! नरदेव अनंतर उद्वर्तन कर–पृच्छा।
गौतम! नैरयिकों में उपपन्न होते हैं। तिर्यक्योनिकों, मनुष्यों और देवों में उपपन्न नहीं होते।
यदि नैरयिकों में उपपन्न होते हैं तो?
सातों पृथ्वियों में उपपन्न होते हैं।

१८७. धम्मदेवा णं भंते! अणंतरं उव्वट्टित्ता–पुच्छा।
गोयमा! नो नेरइएसु उववज्जंति, नो तिरिक्खजोणिएसु, नो मणुस्सेसु, देवेसु उववज्जंति॥

धर्मदेवाः भदन्त! अनन्तरम् उद्वर्त्य–पृच्छा।
गौतम! नो नैरयिकेषु उपपद्यन्ते, नो तिर्यग्योनिकेषु, नो मनुष्येषु, देवेषु उपपद्यन्ते।

१८७. भंते! धर्मदेव अनंतर उद्वर्तन कर–पृच्छा।
गौतम! नैरयिकों में उपपन्न नहीं होते तिर्यक्योनिकों और मनुष्यों में उपपन्न नहीं होते। देवों में उपपन्न होते हैं।

---

१. (क) भ. जो. ४, २६७/६३ :
संबद्धा ते मां हो मां मिल्या,
अणमिल्या ते असंबद्ध हो।
(ख) भ. ५/१३८ का भाष्य।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१८८. जइ देवेसु उववज्जंति किं भवणवासि-पुच्छा।
गोयमा! नो भवणवासिदेवेसु उववज्जंति, नो वाणमंतरदेवेसु उववज्जंति, नो जोइसियदेवेसु उववज्जंति, वेमाणियदेवेसु उववज्जंति। सव्वेसु वेमाणिएसु उववज्जंति जाव सव्वट्ठसिद्ध - अणुत्तरोववाइयवेमाणिय-देवेसु उववज्जंति, अत्थेगतिया सिज्झंति जाव सव्वदुक्खाणं अंतं करेंति॥

यदि देवेषु उपपद्यन्ते किं भवनवासी-पृच्छा।
गौतम! नो भवनवासिदेवेषु उपपद्यन्ते, नो वानमन्तरदेवेषु उपपद्यन्ते, नो ज्योतिष्कदेवेषु उपपद्यन्ते, वैमानिक-देवेषु उपपद्यन्ते। सर्वेषु वैमानिकेषु उपपद्यन्ते यावत् सर्वार्थसिद्ध-अनुत्तरोपपातिकवैमानिकदेवेषु उपपद्यन्ते। अस्त्येककाः सिध्यन्ति यावत् सर्वदुःखानाम् अन्तं कुर्वन्ति।

१८८. यदि देवों में उपपन्न होते हैं तो क्या भवनवासी देवों में उपपन्न होते हैं?- पृच्छा।
गौतम! भवनवासी देवों में उपपन्न नहीं होते। वाणमन्तर देवों में उपपन्न नहीं होते, ज्योतिष्क देवों में उपपन्न नहीं होते, वैमानिक देवों में उपपन्न होते हैं।
सर्व वैमानिक देवों में उपपन्न होते हैं यावत् सर्वार्थसिद्ध अनुत्तरोपपातिक वैमानिक देवों में उपपन्न होते हैं।
उनमें कुछ धर्मदेव सिद्ध होते हैं यावत् सर्व दुःखों का अन्त करते हैं।

१८९. देवातिदेवा अणंतरं उव्वट्टित्ता कहिं गच्छंति? कहिं उववज्जंति?
गोयमा! सिज्झंति जाव सव्वदुक्खाणं अंतं करेंति॥

देवातिदेवाः अनन्तरम् उद्वर्त्य-कुत्र गच्छन्ति? कुत्र उपपद्यन्ते?
गौतम! सिध्यन्ति यावत् सर्वदुःखानाम् अन्तं कुर्वन्ति।

१८९. देवातिदेव अनन्तर उद्वर्तन कर कहां जाते हैं? कहां उपपन्न होते हैं?
गौतम! सिद्ध हो जाते हैं यावत् सर्व दुःखों का अंत करते हैं।

१९०. भावदेवा णं भंते! अणंतरं उव्वट्टित्ता-पुच्छा।
जहा वक्कंतीए असुरकुमाराणं उव्वट्टणा तहा भाणियव्वा॥

भावदेवाः भदन्त! अनन्तरम् उदवर्त्य-पृच्छा।
यथा अवक्रान्त्यां असुरकुमाराणाम् उद्वर्तना तथा भणितव्या।

१९०. भंते! भावदेव अनन्तर उद्वर्तन कर-पृच्छा।
जैसे-प्रज्ञापना के अवक्रांति पद (६/१०१-१०२) में असुरकुमार देवों का उद्वर्तन वक्तव्य है वैसे ही यहां वक्तव्य है।

भाष्य

१. सूत्र १८९-१९०

नरदेव की गति केवल नरक बतलायी गयी है, यह सापेक्ष है। नरदेव-अवस्था में मृत्यु होने पर वह नरक में उत्पन्न होता है। नरदेवत्व अवस्था का त्याग कर देने पर वह स्वर्ग में भी उत्पन्न हो सकता है और मुक्त भी हो सकता है। नरदेव अवस्था का त्याग कर धर्मदेव अवस्था में चले जाने पर उसकी गति में परिवर्तन हो जाता है इसलिए यह परस्पर विरोधी तथ्य नहीं है।[1]

भावदेव देवगति से उद्वर्तन कर दो गतियों में उत्पन्न होता है तिर्यंच गति और मनुष्य गति। यह प्रज्ञापना के अवक्रांतिपद की भांति वक्तव्य है,[2] जैसे-

भवनपति, वानमंतर, ज्योतिष्क और सौधर्म ईशान के देवों का उपपात बादर पर्याप्तक-पृथ्वी, अप्, वनस्पति तथा संज्ञी पर्याप्तक संख्येय वर्ष आयुष्य वाले पंचेन्द्रिय तिर्यंच और मनुष्य में होता है।

- सनत्कुमार से सहस्रार तक के देवों का उपपात संज्ञी पर्याप्तक संख्येय वर्ष आयुष्य वाले पंचेन्द्रिय तिर्यंच और मनुष्य में होता है।
- आनत से सर्वार्थसिद्ध तक के देवों का उपपात संज्ञी पर्याप्तक संख्येय वर्ष आयुष्य वाले मनुष्य में होता है।

पंचविह-देवाणं संचिट्ठणा-पदं

१९१. भवियदव्वदेवे णं भंते! भवियदव्वदेवे त्ति कालओ केवच्चिरं होइ?
गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं।
एवं जच्चेव ठिई तच्चेव संचिट्ठणा वि जाव भावदेवस्स, नवरं-धम्मदेवस्स जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं देसूणा पुव्वकोडी॥

पञ्चविध-देवानां संस्थान-पदम्

भव्यद्रव्यदेवः भदन्त! भव्यद्रव्यदेवे कालतः कियच्चिरं भवति?
गौतम! जघन्येन अन्तर्मुहूर्त्तम्, उत्कर्षेण त्रीणि पल्योपमानि।
एवं या चैव स्थितिः तच्चैव संस्थानम् अपि यावत् भावदेवस्य, नवरम्-धर्म-देवस्य जघन्येन एकं समयम्, उत्कर्षेण देशोना पूर्वकोटिः।

पंचविध देवों का संस्थिति पद

१९१. भंते! भव्यद्रव्य देव भव्यद्रव्य देव के रूप में कितने काल तक रहता है।
गौतम! जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त्त उत्कृष्टतः तीन पल्योपम।
इसी प्रकार जो भवस्थिति बतलाई गई है, वही उनका संस्थान काल है। यह नियम नरदेव, देवातिदेव और भावदेव-सबके लिए समान है। केवल धर्मदेव इसका अपवाद है।

१. भ. वृ. १२/१८६-तत्र च यद्यपि केचिच्चक्रवर्तिनो देवेषूत्पद्यन्ते तथापि ते नरदेवत्यागेन धर्म्मदेयत्वप्राप्ताविति न दोषः।
२. पण्ण. ६/१०१-१०२।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उसका संस्थान काल जघन्यतः एक समय उत्कृष्टतः कुछ कम पूर्व कोटि है।

भाष्य

१. सूत्र १६१

संचिट्ठणा का अर्थ है–एक गति के पर्याय का अनुबंध, एक गति में होने वाली अवस्थिति।[1] विशेष विवरण के लिए द्रष्टव्य है भगवई १/१०३-१११ सूत्र तथा भाष्य।

धर्मदेव का संस्थान काल जघन्यतः एक समय बतलाया गया है। वृत्तिकार के अनुसार एक मुनि अशुभ भाव में गया और उससे निवृत्त हो पुनः शुभ भाव में आया। शुभ भाव में आने के अनंतर प्रथम समय में देहावसान हो गया। इस अपेक्षा से धर्मदेव की जघन्यतः एक समय की स्थिति बतलायी गयी है।[2] जयाचार्य ने इस विषय को विस्तार से समझाया है–कोई संशयशील होने पर छठे गुणस्थान से प्रथम गुणस्थान में आ जाता है, सम्यक्त्व और चारित्र–दोनों से रहित हो जाता है। तत्काल पुनः प्रथम से छठे गुणस्थान में आ जाता है। एक समय इस अवस्था में रहकर उसकी मृत्यु हो जाती है। इस अपेक्षा से उसका जघन्य काल एक समय बतलाया गया है।[3] यह नैसर्गिक घटना है। क्रियात्मक भाव का आना और जाना कम से कम असंख्य समय के बिना नहीं हो सकता। एक समय के संस्थान-काल का मूल आधार पचीसवें शतक में हैं।[4]

पंचविह-देवाणं अंतर-पदं

१६२. भवियदव्वदेवस्स णं भंते ! केवतियं कालं अंतरं होइ ?

गोयमा ! जहण्णेणं दसवाससहस्साइं अंतोमुहुत्तमब्भहियाइं, उक्कोसेणं अणंतं कालं–वणस्सइकालो॥

पञ्चविध-देवानाम् अन्तर-पदम्

भव्यद्रव्यदेवस्य भदन्त! कियत् कालम् अन्तरम् भवति?

गौतम! जघन्येन दशवर्षसहस्राणि अन्तर्मुहूर्तमभ्यधिकानि, उत्कर्षेण अनन्तं कालं–वनस्पतिकालः।

पंचविध देवों का अन्तर-पद

१६२. भंते ! भव्यद्रव्य देव का अन्तरकाल कितना होता है ?

गौतम ! जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त से कुछ अधिक दस हजार वर्ष, उत्कृष्टतः अनंत काल–वनस्पति काल।

१६३. नरदेवाणं–पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेणं सातिरेगं सागरोवमं, उक्कोसेणं अणंतं कालं–अवड्ढपोग्गलपरियट्टं देसूणं॥

नरदेवानाम्–पृच्छा।

गौतम! जघन्येन सातिरेकं सागरोपमम्, उत्कर्षेण अनन्तं कालम् अपार्धं पुद्गलपरिवर्तं देशोनम्।

१६३. नरदेवों की पृच्छा।

गौतम ! जघन्यतः कुछ अधिक सागरोपम, उत्कृष्टतः अनंतकाल–कुछ कम अर्ध पुद्गल परिवर्त्त।

१६४. धम्मदेवस्स णं–पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेणं पलिओवमपुहत्तं, उक्कोसेणं अणंतं कालं जाव अवड्ढं पोग्गलपरियट्टं देसूणं॥

धर्मदेवस्य–पृच्छा।

गौतम! जघन्येन पल्योपमपृथक्त्वम्, उत्कर्षेण अनन्तं कालं यावत् अपार्धं पुद्गलपरिवर्तं देशोनम्।

१६४. धर्मदेव की–पृच्छा।

गौतम ! जघन्यतः पृथक्त्व पल्योपम, उत्कृष्टतः अनंतकाल यावत् कुछ कम अर्ध पुद्गल परिवर्त्त।

१६५. देवातिदेवाणं–पुच्छा।

गोयमा ! नत्थि अंतरं॥

देवातिदेवानाम्–पृच्छा ।

गौतम! नास्ति अन्तरम् ।

१६५. देवातिदेवों की पृच्छा ।

गौतम ! अंतरकाल नहीं।

१६६. भावदेवस्स णं–पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं अणंतं कालं–वणस्सइकालो॥

भावदेवस्य–पृच्छा ।

गौतम! जघन्येन अन्तर्मुहूर्तम्, उत्कर्षेण अनन्तं कालं–वनस्पतिकालः।

१६६. भावदेव की पृच्छा।

गौतम ! जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त्त, उत्कृष्टतः अनंत काल–वनस्पति काल।

---

१. भ. वृ. १२/१६१–संस्थितिरपि तत्पर्यायानुबंधः।

२. भ. वृ. १२/१६१–धर्मदेवस्य जघन्येनैकं समयं स्थितिः अशुभभावं गत्वा ततो निवृत्तस्य शुभभावप्रतिपत्तिसमयानन्तरमेव मरणादिति।

३. भ. जो. ४/२६/८६-८६–

जघन्य समय इक न्हाल, धर्मदेव संचिट्ठणा।
ते किण रीत संभाल? तास न्याय इम संभवै॥
शंका पड़ियां ताय, छट्ठा गुणठाणां थकी।
प्रथम गुणठाणे आय, सम्यक्त्व चरण बिहुं गयां॥
शंका मिटियां तेह, चारित्र सम्यक्त्व बिहुं वली।
तुरत तास आवेह, समय एक रहीनें मरै॥
इम संचिट्ठणकाल, जघन्य समय इक संभवै।
उत्कृष्टे सुविशाल, पूर्व कोड़ देसूण ही॥ (ज. स.)

४. भ. २५/४२५,४२७,४३३।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भाष्य

१.सूत्र १६२-१६६

भव्यद्रव्य देव का अंतर जघन्यतः अंतमुहूर्त्त अधिक दस हजार वर्ष का बतलाया गया है। भवनपति और व्यंतर देवों की जघन्य स्थिति दस हजार वर्ष की बतलायी गयी है।[1] अंतर्मुहूर्त्त के विषय में अभयदेवसूरि ने तीन मतों का उल्लेख किया है–

प्रथम मत प्राचीन टीकाकार का है। उसके अनुसार कोई भव्यद्रव्य देव दस हजार वर्ष की व्यंतर और भवनपति की स्थिति में उत्पन्न होकर वहां से च्युत हो शुभ पृथ्वी आदि में उत्पन्न होता है। वहां अंतर्मुहूर्त्त रहकर मृत्यु को प्राप्त हो अंतर्मुहूर्त्त आयुष्य वाले संज्ञी तिर्यंच पंचेन्द्रिय में उत्पन्न होता है। उस समय वह भव्यद्रव्य देव हो जाता है।

दूसरा मत नामोल्लेख रहित है। उसके अनुसार बद्धायु जीव ही भव्य देव के रूप में इष्ट है। जघन्य स्थिति का देव देव-अवस्था से च्युत होकर अंतर्मुहूर्त्त स्थिति वाले भव्यद्रव्य देव रूप में उत्पन्न होता है। उत्पन्न होने के अंतर्मुहूर्त्त के पश्चात् उसके तीसरे भाग में वह देव-आयु का बंध करता है। वह भी अंतर्मुहूर्त्त काल है। इस प्रकार अंतर्मुहूर्त्त[2] का अंतर काल हो जाता है।

तीसरा मत–जन्म और मरण के अंतराल में होने वाला अंतर्मुहूर्त।

इन तीनों मतों में बद्धायु मत अधिक समीचीन लगता है। नरदेव, धर्मदेव और भावदेव के अंतर काल के लिए भगवई १२/१६२-१६६ की वृत्ति द्रष्टव्य है।

पंचविह-देवाणं अप्पाबहुयत्त-पदं

१६७. एएसि णं भंते! भवियदव्वदेवाणं, नरदेवाणं, धम्मदेवाणं, देवातिदेवाणं, भावदेवाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा? बहुया वा? तुल्ला वा? विसेसाहिया वा?

गोयमा! सव्वत्थोवा नरदेवा, देवातिदेवा संखेज्जगुणा, धम्मदेवा संखेज्जगुणा, भवियदव्वदेवा असंखेज्जगुणा, भावदेवा असंखेज्जगुणा॥

पञ्चविध-देवानाम् अल्पबहुत्व-पदम्

एतेषां भदन्त! भव्यद्रव्यदेवानां, नरदेवानां, धर्मदेवानां, देवातिदेवानां, भावदेवानां च कतरे कतरेभ्यः अल्पाः वा? बहुकाः वा? तुल्याः वा? विशेषाधिकाः वा?

गौतम! सर्वस्तोकाः नरदेवाः, देवातिदेवाः संख्येयगुणाः, धर्मदेवाः संख्येयगुणाः, भव्यद्रव्यदेवाः असंख्येयगुणाः, भावदेवाः असंख्येयगुणाः।

पंचविध देवों का अल्प-बहुत्व पद

१६७. भंते! इन भव्यद्रव्यदेवों, नरदेवों, धर्मदेवों, देवातिदेवों और भावदेवों में कौन किनसे अल्प, बहु, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं?

गौतम! सबसे अल्प नरदेव, देवातिदेव उससे संख्येय गुण अधिक, धर्मदेव उससे संख्येय गुण अधिक, भव्यद्रव्य देव उससे असंख्येय गुण अधिक और भावदेव उससे असंख्येय गुण अधिक हैं।

१६८. एएसि णं भंते! भावदेवाणं भवणवासीणं, वाणमंतराणं, जोइसियाणं, वेमाणियाणं–सोहम्मगाणं जाव अच्चुयगाणं, गेवेज्जगाणं, अणुत्तरोववाइयाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा? बहुया वा? तुल्ला वा? विसेसाहिया वा?

गोयमा! सव्वत्थोवा अणुत्तरोववाइया भावदेवा, उवरिमगेवेज्जा भावदेवा संखेज्जगुणा, मज्झिमगेवेज्जा संखेज्जगुणा, हेट्ठिमगेवेज्जा संखेज्जगुणा, अच्चुए कप्पे देवा संखेज्जगुणा जाव आणयकप्पे देवा संखेज्जगुणा, सहस्सारे कप्पे देवा असंखेज्जगुणा, महासुक्के कप्पे देवा असंखेज्जगुणा, लंतए कप्पे देवा

एतेषां भदन्तः भावदेवानां भवनवासिनाम्, वानमन्तराणाम्, ज्योतिष्काणाम्, वैमानिकानाम्–सौधर्मकाणां यावत् अच्युतकानाम्, ग्रैवेयकानाम्, अनुत्तरोपपातिकानां वा, कतरे कतरेभ्यः अल्पाः वा? बहुकाः वा? तुल्याः वा? विशेषाधिकाः वा?

गौतम! सर्वस्तोकाः अनुत्तरोपपातिकाः भावदेवाः, उपरितनग्रैवेयकाः भावदेवाः संख्येयगुणाः, मध्यमग्रैवेयेकाः संख्येयगुणाः, अधस्तनग्रैवेयकाः संख्येयगुणाः, अच्युते कल्पे देवाः संख्येयगुणाः, यावत् आनतकल्पे देवाः संख्येयगुणाः, सहस्रारे कल्पे देवाः असंख्येयगुणाः, महाशुक्रे कल्पे देवाः असंख्येयगुणाः, लन्तके कल्पे देवाः

१६८. भंते! इन भावदेवों–भवनवासी देवों, वाणमंतर देवों, ज्योतिष्क देवों और वैमानिक देवों–सौधर्म यावत् अच्युतकल्प, ग्रैवेयक और अनुत्तरोपपातिक देवों में कौन किनसे अल्प, बहु, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं?

गौतम! सबसे अल्प अनुत्तरोपपातिक भावदेव, उपरि ग्रैवेयक भावदेव उससे संख्येय गुण अधिक, मध्यम ग्रैवेयक उससे संख्येय गुण अधिक, अधस्तन ग्रैवेयक उससे संख्येय गुण अधिक, अच्युतकल्पवासी देव उससे संख्येय गुण अधिक यावत् आनतकल्पवासी देव उससे संख्येय गुण अधिक, महाशुक्रकल्पवासी देव उससे असंख्येय गुण अधिक, लान्तककल्पवासी

---

१. पण्ण. ४/३१,१६५।

२. (क) भ. वृ. १२/१६२–भव्यद्रव्यदेवस्यान्तरं जघन्येन दशवर्षसहस्राण्यन्तर्मुहूर्त्ताभ्यधिकानि।
(ख) भ. जो. ४/२६७/६२।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

असंखेज्जगुणा, बंभलोए कप्पे देवा असंखेज्जगुणा, माहिंदे कप्पे देवा असंखेज्जगुणा, सणंकुमारे कप्पे देवा असंखेज्जगुणा, ईसाणे कप्पे देवा असंखेज्जगुणा, सोहम्मे कप्पे देवा संखेज्जगुणा, भवणवासिदेवा असंखेज्जगुणा, वाणमंतरा देवा असंखेज्जगुणा, जोतिसिया भावदेवा संखेज्जगुणा॥

असंख्येयगुणाः, ब्रह्मलोके कल्पे देवाः असंख्येयगुणाः, माहेन्द्रे कल्पे देवाः असंख्येयगुणाः सनत्कुमारकल्पे देवाः असंख्येयगुणाः, ईशानकल्पे देवाः असंख्येयगुणाः, सौधर्मेकल्पे देवाः असंख्येयगुणाः, भवनवासिदेवाः असंख्येयगुणाः, वानमन्तराः देवाः असंख्येयगुणाः, ज्योतिष्काः भावदेवाः असंख्येयगुणाः।

देव उससे असंख्येय गुण अधिक, माहेन्द्रकल्पवासी देव उससे असंख्येय गुण अधिक, सनत्कुमारकल्पवासी देव उससे असंख्येय गुण अधिक, ईशानकल्पवासी देव उससे असंख्येय गुण अधिक, सौधर्मकल्पवासी देव उससे असंख्येय गुण अधिक, भवनवासी देव उससे असंख्येय गुण अधिक, वाणमंतर देव उससे असंख्येय गुण अधिक, ज्योतिष्क भावदेव उससे असंख्येय गुण अधिक हैं।

भाष्य

१. सूत्र १६७-१६८

विशेष विवरण के लिए द्रष्टव्य भगवई १२/१६७-१६८ की वृत्ति।

१६६. सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति॥

तदेवं भदन्त! तदेवं भदन्त! इति!

१६६. भंते ! वह ऐसा ही है। भंते ! वह ऐसा ही है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दसमो उद्देसो : दसवां उद्देशक

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
अट्ठविह-आय-पदं	**अष्टविध-आत्म-पदम्**	**अष्टविध आत्म-पद**
२००. कतिविहा णं भंते! आया पण्णत्ता? गोयमा! अट्ठविहा आया पण्णत्ता, तं जहा–दवियाया, कसायाया, जोगाया, उवओगाया, नाणाया, दंसणाया, चरित्ताया, वीरियाया॥	कतिविधाः भदन्त! आत्मानः प्रज्ञप्ताः? गौतम! अष्टविधाः आत्मानः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–द्रव्यात्मा, कषायात्मा, योगात्मा, उपयोगात्मा, ज्ञानात्मा, दर्शनात्मा, चरित्रात्मा, वीर्यात्मा।	२००. भंते! आत्मा कितने प्रकार की प्रज्ञप्त है? गौतम! आत्मा आठ प्रकार की प्रज्ञप्त है, जैसे–द्रव्य आत्मा, कषाय आत्मा, योग आत्मा, उपयोग आत्मा, ज्ञान आत्मा, दर्शन आत्मा, चरित्र आत्मा और वीर्य आत्मा।

भाष्य

१. सूत्र २००

जीवास्तिकाय के बीस नाम बतलाए गए हैं, उनमें दसवां नाम आया–आत्मा है।[1]

प्रस्तुत सूत्र में आत्मा के आठ प्रकार बतलाए गए हैं, उनमें द्रव्य आत्मा मूल है और शेष सात उसके पर्याय हैं।

१. **द्रव्य आत्मा**–द्रव्य त्रिकालवर्ती है। वह त्रिकालवर्ती चैतन्य लक्षण वाला जीव द्रव्य आत्मा है।[2] यह सब जीवों के होती है।

२. **कषाय आत्मा**–क्रोध आदि कषायों से आविष्ट आत्मा। यह अनुपशांत और अक्षीण कषाय वाले जीवों के होती है।

३. **योग आत्मा**–मन, वचन और शरीर का प्रवर्तक जीव का व्यापार। यह योगवान् जीव के होती है।

४. **उपयोग आत्मा**–चैतन्य की क्रिया में प्रवृत्त जीव। वृत्तिकार ने इसका वैकल्पिक अर्थ किया है–विवक्षित वस्तु के जानने में प्रवृत्त जीव। यह सब जीवों के होती है।

५. **ज्ञान आत्मा**–सम्यक् दर्शन के साथ होने वाली ज्ञान की उपलब्धि ज्ञान आत्मा है। यह सम्यग् दृष्टि के होती है।

६. **दर्शन आत्मा**–मोहनीय कर्म के क्षयोपशम से होने वाली दृष्टि दर्शन आत्मा है। यह सब जीवों के होती है।

७. **चारित्र आत्मा**–सावद्य प्रवृत्ति से विरत होना चारित्र आतमा है। यह व्रत-संपन्न जीवों के होती है।

८. **वीर्य आत्मा**–उत्थान, बल आदि की शक्ति वीर्य आत्मा है। यह सभी संसारी जीवों के होती है।[3]

२०१. जस्स णं भंते! दवियाया तस्स कसायाया? जस्स कसायाया तस्स दवियाया? गोयमा! जस्स दवियाया तस्स कसायाया सिय अत्थि सिय नत्थि, जस्स पुण कसायाया तस्स दवियाया नियमं अत्थि॥	२०१. यस्त भदन्त! द्रव्यात्मा तस्य कषायात्मा? यस्य कषायात्मा तस्य द्रव्यात्मा? गौतम! यस्य द्रव्यात्मा तस्य कषायात्मा स्यात् अस्ति स्यात् नास्ति, यस्य पुनः कषायात्मा तस्य द्रव्यात्मा नियमम् अस्ति।	२०१. भंते! जिसके द्रव्य आत्मा है क्या उसके कषाय आत्मा है? जिसके कषाय आत्मा है, क्या उसके द्रव्य आत्मा है? गौतम! जिसके द्रव्य आत्मा है उसके कषाय आत्मा स्यात् है, स्यात् नहीं है। जिसके कषाय आत्मा है उसके द्रव्य आत्मा नियमतः है।
२०२. जस्स णं भंते! दवियाया तस्स जोगाया? जस्स जोगाया तस्स दवियाया?	यस्य भदन्त! द्रव्यात्मा तस्य योगात्मा? यस्य योगात्मा तस्य द्रव्यात्मा?	२०२. भंते! जिसके द्रव्य आत्मा है क्या उसके योग आत्मा है? जिसके योग आत्मा है, क्या उसके द्रव्य आत्मा है?

---

१. भ. २०/१७।

२. भ. वृ. १२/२००–द्रव्यं-त्रिकालानुगाम्युपसर्जनीकृतकषायादिपर्यायं तद्रूप आत्मा द्रव्यात्मा सर्वेषां जीवानाम्।

३. वही, १२/वीर्यं-उत्थानादि तदात्मा सर्वसंसारिणामिति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा ! जस्स दवियाया तस्स जोगाया सिय अत्थि सिय नत्थि, जस्स पुण जोगाया तस्स दवियाया नियमं अत्थि॥

गौतम! यस्य द्रव्यात्मा तस्य योगात्मा स्यात् अस्ति स्यात् नास्ति, यस्य पुनः योगात्मा तस्य द्रव्यात्मा नियमम् अस्ति।

गौतम! जिसके द्रव्य आत्मा है उसके योग आत्मा स्यात् है, स्यात् नहीं है। जिसके योग आत्मा है उसके द्रव्य आत्मा नियमतः है।

२०३. जस्स णं भंते ! दवियाया तस्स उवओगाया ? जस्स उवओगाया तस्स दवियाया ?—एवं सव्वत्थ पुच्छा भाणियव्वा।

गोयमा ! जस्स दवियाया तस्स उवओगाया नियमं अत्थि। जस्स वि उवओगाया तस्स वि दवियाया नियमं अत्थि।

जस्स दवियाया तस्स नाणाया भयणाए। जस्स पुण नाणाया तस्स दवियाया नियमं अत्थि।

जस्स दवियाया तस्स दंसणाया नियमं अत्थि। जस्स वि दंसणाया तस्स वि दवियाया नियमं अत्थि।

जस्स दवियाया तस्स चरित्ताया भयणाए, जस्स पुण चरित्ताया तस्स दवियाया नियमं अत्थि।

जस्स दवियाया तस्स वीरियाया भयणाए, जस्स पुण वीरियाया तस्स दवियाया नियमं अत्थि॥

यस्य भदन्त! द्रव्यात्मा तस्य उपयोगात्मा यस्य उपयोगात्मा तस्य द्रव्यात्मा? एवं सर्वत्र पृच्छा भणितव्या।

गौतम! यस्य द्रव्यात्मा तस्य उपयोगात्मा नियमम् अस्ति। यस्यापि उपयोगात्मा तस्यापि द्रव्यात्मा नियमम् अस्ति।

यस्य द्रव्यात्मा तस्य ज्ञानात्मा भजनया। यस्य पुनः ज्ञानात्मा तस्य द्रव्यात्मा नियमम् अस्ति।

यस्य द्रव्यात्मा तस्य दर्शनात्मा नियमम् अस्ति। यस्यापि दर्शनात्मा तस्यापि द्रव्यात्मा नियमम् अस्ति।

यस्य द्रव्यात्मा तस्य चरित्रात्मा भजनया, यस्य पुनः चरित्रात्मा तस्य द्रव्यात्मा नियमम् अस्ति।

यस्य द्रव्यात्मा तस्य वीर्यात्मा भजनया, यस्य पुनः वीर्यात्मा तस्य द्रव्यात्मा नियमम् अस्ति ।

२०३. भंते ! जिसके द्रव्य आत्मा है, क्या उसके उपयोग आत्मा है ? जिसके उपयोग आत्मा है, क्या उसके द्रव्य आत्मा है ? इसी प्रकार सर्वत्र पृच्छा करणीय है ।

गौतम ! जिसके द्रव्य आत्मा है उसके उपयोग आत्मा नियमतः है। जिसके उपयोग आत्मा है उसके द्रव्य आत्मा नियमतः है।

जिसके द्रव्य आत्मा है, उसके ज्ञान आत्मा की भजना है। जिसके ज्ञान आत्मा है उसके द्रव्य आत्मा नियमतः है।

जिसके द्रव्य आत्मा है, उसके दर्शन आत्मा नियमतः है। जिसके दर्शन आत्मा है, उसके द्रव्य आत्मा नियमतः है।

जिसके द्रव्य आत्मा है, उसके चरित्र आत्मा की भजना है। जिसके चरित्र आत्मा है, उसके द्रव्य आत्मा नियमतः है।

जिसके द्रव्य आत्मा है, उसके वीर्य आत्मा की भजना है। जिसके वीर्य आत्मा है, उसके द्रव्य आत्मा नियमतः है।

२०४. जस्स णं भंते ! कसायाया तस्स जोगाया—पुच्छा।

गोयमा ! जस्स कसायाया तस्स जोगाया नियमं अत्थि, जस्स पुण जोगाया तस्स कसायाया सिय अत्थि सिय नत्थि। एवं उवओगायाए वि समं कसायाया नेयव्वा। कसायाया य नाणाया य परोप्परं दो वि भइयव्वाओ। जहा कसायाया य उवओगाया य तहा कसायाया य दंसणाया य, कसायाया य चरित्ताया य दो वि परोप्परं भइयव्वाओ। जहा कसायाया य जोगाया य तहा कसायाया य वीरियाया य भाणियव्वाओ। एवं जहा कसायायाए वत्तव्वया भणिया तहा जोगायाए वि उवरिमाहिं समं भाणियव्वाओ। जहा दवियायाए वत्तव्वया भणिया तहा उवओगायाए वि

यस्य भदन्त! कषायात्मा तस्य योगात्मा पृच्छा।

गौतम! यस्य कषायात्मा तस्य योगात्मा नियमम् अस्ति, यस्य पुनः योगात्मा तस्य कषायात्मा स्यात् अस्ति स्यात् नास्ति। एवम् उपयोगात्मना अपि समं कषायात्मा नेतव्यः। कषायात्मा च ज्ञानात्मा च परस्परं द्वौ अपि भक्तव्यौ। यथा कषायात्मा च उपयोगात्मा च तथा कषायात्मा च दर्शनात्मा च। कषायात्मा च चरित्रात्मा च द्वौ अपि परस्परं भक्तव्यौ। यथा कषायात्मा च योगात्मा च तथा कषायात्मा च वीर्यात्मा च भणितव्यौ:। एवं यथा कषायात्मनः वक्तव्यता भणिता तथा योगात्मनः अपि उपरितनैः समं भणितव्या। यथा द्रव्यात्मनः वक्तव्यता भणिता तथा उपयोगात्मनः अपि उपरितनैः समं

२०४. भंते ! जिसके कषाय आत्मा है उसके योग आत्मा होती है ? पृच्छा।

गौतम ! जिसके कषाय आत्मा है उसके योग आत्मा नियमतः है। जिसके योग आत्मा है उसके कषाय आत्मा स्यात् है, स्यात् नहीं है। इसी प्रकार उपयोग आत्मा भी कषाय आत्मा के समान ज्ञातव्य है। कषाय आत्मा और ज्ञान आत्मा—ये दोनों परस्पर भजनीय है। जैसे कषाय आत्मा और उपयोग आत्मा की वक्तव्यता है वैसे ही कषाय आत्मा और दर्शन आत्मा, कषाय आत्मा और चरित्र आत्मा—ये दोनों परस्पर भजनीय है। जैसे कषाय आत्मा और योग आत्मा की वक्तव्यता है वैसे ही कषाय आत्मा और वीर्य आत्मा भी वक्तव्य है।

इसी प्रकार जैसे कषाय आत्मा की वक्तव्यता कही गई है वैसे ही योग आत्मा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उवरिल्लाहिं समं भाणियव्वा। जस्स नाणाया तस्स दंसणाया नियमं अत्थि, जस्स पुण दंसणाया तस्स नाणाया भयणाए। जस्स नाणाया तस्स चरित्ताया सिय अत्थि सिय नत्थि, जस्स पुण चरित्ताया तस्स नाणाया नियमं अत्थि। नाणाया वीरियाया दो वि परोप्परं भयणाए। जस्स दंसणाया तस्स उवरिमाओ दो वि भयणाए, जस्स पुण ताओ तस्स दंसणाया नियमं अत्थि। जस्स पुण चरित्ताया तस्स वीरियाया नियमं अत्थि, जस्स पुण वीरियाया तस्स चरित्ताया सिय अत्थि सिय नत्थि॥

भणितव्या। यस्य ज्ञानात्मा तस्य दर्शनात्मा नियमम् अस्ति, यस्य पुनः दर्शनात्मा तस्य ज्ञानात्मा भजनया। यस्य ज्ञानात्मा तस्य चरित्रात्मा स्यात् अस्ति स्यात् नास्ति, यस्य पुनः चरित्रात्मा तस्य ज्ञानात्मा नियमम् अस्ति। ज्ञानात्मा वीर्यात्मा द्वौ अपि परस्परं भजनया। यस्य दर्शनात्मा तस्य उपरितनौ द्वौ अपि भजनया, यस्य पुनः तौ तस्य दर्शनात्मा नियमम् अस्ति। यस्य पुनः चरित्रात्मा तस्य वीर्यात्मा नियमम् अस्ति, यस्य पुनः वीर्यात्मा तस्य चरित्रात्मा स्यात् अस्ति स्यात् नास्ति।

की वक्तव्यता ऊपरवर्ती आत्माओं के साथ वक्तव्य है।

जैसे द्रव्य आत्मा की वक्तव्यता कही गई है वैसे ही उपयोग आत्मा की वक्तव्यता ऊपरवर्ती आत्माओं के साथ वक्तव्य है।

जिसके ज्ञान आत्मा है उसके दर्शन आत्मा नियमतः है। जिसके दर्शन आत्मा है उसके ज्ञान आत्मा की भजना है।

जिसके ज्ञान आत्मा है उसके चरित्र आत्मा स्यात् है स्यात् नहीं है। जिसके चरित्र आत्मा है, उसके ज्ञान आत्मा नियमतः है। ज्ञान आत्मा और वीर्य आत्मा–ये दोनों परस्पर भजनीय है। जिसके दर्शन आत्मा है उसके उपरिवर्ती दो आत्मा–चरित्र आत्मा और वीर्य आत्मा की भजना है। जिसके चरित्र और वीर्य आत्मा हैं, उसके दर्शन आत्मा नियमतः है। जिसके चरित्र आत्मा है, उसके वीर्य आत्मा नियमतः है। जिसके वीर्य आत्मा है उसके चरित्र आत्मा स्यात् है, स्यात् नहीं है।

भाष्य

१. सूत्र २०१-२०४

प्रस्तुत प्रकरण में आठ आत्माओं की उपलब्धि और अनुपलब्धि पर स्याद्वाद की दृष्टि से विचार किया गया है।

द्रव्य आत्मा मूल आधार है इसलिए उसकी उपलब्धि का सर्वत्र विवरण है।

द्रव्य आत्मा के साथ कषाय आत्मा की उपलब्धि की भजना/विकल्प है। सकषाय जीव के कषाय आत्मा होती है। वीतराग के कषाय आत्मा नहीं होती। इस दृष्टि से कहा गया है–कषाय आत्मा स्यादस्ति स्यान्नास्ति।

मन, वचन, काया की प्रवृत्ति वाले जीव के योग आत्मा होती है। अयोग अवस्था वाले और मुक्त जीवों के योग आत्मा नहीं होती।

उपयोग जीव का लक्षण है इसलिए द्रव्य आत्मा और उपयोग आत्मा के साहचर्य का नियम है।

ज्ञान आत्मा सम्यग् दृष्टि के होती है, मिथ्या दृष्टि के नहीं होती इसलिए द्रव्य आत्मा के साथ उसकी उपलब्धि का विकल्प है–स्यादस्ति स्यान्नास्ति।

दर्शन आत्मा की द्रव्य आत्मा के साथ नियमतः उपलब्धि है इसलिए दोनों का साहचर्य है।

अभयदेव सूरि ने दर्शन आत्मा के संदर्भ में चक्षु दर्शन आदि का उल्लेख किया है[1]। यह विमर्शनीय है। दर्शन का संबंध दो कर्मों के साथ है–

१. दर्शनावरणीय कर्म के क्षयोपशम और क्षय से होने वाला सामान्य बोध–अनाकार उपयोग दर्शन है।

२. मोहनीय कर्म के उपशम, क्षयोपशम और क्षय से होने वाला दृष्टिकोण दर्शन है।

यहां मोह के विलय से संबद्ध दर्शन विवक्षित है। जयाचार्य ने वृत्तिकार के मत की समीक्षा में लिखा है–दसवें गुणस्थान में अनाकार उपयोग नहीं होता।[2] यदि दर्शन का संबंध दर्शनावरणीय कर्म के विलय के साथ माना जाए तो द्रव्य आत्मा और दर्शन आत्मा के साहचर्य का नियम नहीं हो सकता।[3]

द्रव्य आत्मा के साथ चरित्र आत्मा की उपलब्धि का विकल्प है। विरत के चरित्र आत्मा होती है, अविरत और मुक्त के चरित्र आत्मा नहीं होती।

मुक्त जीव के करण वीर्य नहीं होता इसलिए द्रव्य आत्मा के साथ वीर्य आत्मा की उपलब्धि का विकल्प है।

योग आत्मा के साथ कषाय आत्मा की उपलब्धि का विकल्प है। वह सकषाय और अकषाय–दोनों के होती है।

---

१. भ. वृ. १२/२०३–यथा चक्षुर्दर्शनादिदर्शनवतां जीवत्वमिति।

२. भ. जो ४/२६८/१९ :
शतक पचीसम जोग, आख्यो सप्तमुद्देशके।
अनाकार उपयोग, दशमें गुणठाणे तणी॥

३. वही, ४/२६८/२७-३६।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

द्रष्टव्य यंत्र

१. द्रव्य आत्मा के साथ–
कषाय आत्मा स्यात् है, स्यात् नहीं है।
योग आत्मा स्यात् है, स्यात् नहीं है।
उपयोग आत्मा नियमतः है।
ज्ञान आत्मा स्यात् है स्यात् नहीं है।
दर्शन आत्मा नियमतः है।
चारित्र आत्मा स्यात् है, स्यात् नहीं है।
वीर्य आत्मा स्यात् है, स्यात् नहीं है।

२. कषाय आत्मा के साथ–
द्रव्य आत्मा नियमतः है।
योग आत्मा नियमतः है।
उपयोग आत्मा नियमतः है।
ज्ञान आत्मा स्यात् है, स्यात् नहीं है।
दर्शन आत्मा नियमतः है।
चरित्र आत्मा स्यात् है, स्यात् नहीं है।
वीर्य आत्मा नियमतः है।

३. योग आत्मा के साथ–
द्रव्य आत्मा नियमतः है।
कषाय आत्मा स्यात् है, स्यात् नहीं है।
उपयोग आत्मा नियमतः है।
ज्ञान आत्मा स्यात् है, स्यात् नहीं है।
दर्शन आत्मा नियमतः है।
चरित्र आत्मा स्यात् है, स्यात् नहीं है।
वीर्य आत्मा नियमतः है।

४. उपयोग आत्मा के साथ–
द्रव्य आत्मा नियमतः है।
कषाय आत्मा स्यात् है, स्यात् नहीं है।
योग आत्मा स्यात् है, स्यात् नहीं है।
ज्ञान आत्मा स्यात् है, स्यात् नहीं है।
दर्शन आत्मा नियमतः है।
चरित्र आत्मा स्यात् है, स्यात् नहीं है।
वीर्य आत्मा स्यात् है, स्यात् नहीं है।

५. ज्ञान आत्मा के साथ–
द्रव्य आत्मा नियमतः है।
कषाय आत्मा स्यात् है, स्यात् नहीं है।
योग आत्मा स्यात् है, स्यात् नहीं है।
उपयोग आत्मा नियमतः है।
दर्शन आत्मा नियमतः है।
चारित्र आत्मा स्यात् है, स्यात् नहीं है।
वीर्य आत्मा स्यात् है, स्यात् नहीं है।

५. दर्शन आत्मा के साथ–
द्रव्य आत्मा नियमतः है।
कषाय आत्मा स्यात् है, स्यात् नहीं है।
योग आत्मा स्यात् है, स्यात् नहीं है।
उपयोग आत्मा नियमतः है।
ज्ञान आत्मा स्यात् है, स्यात् नहीं है।
चरित्र आत्मा स्यात् है, स्यात् नहीं है।
वीर्य आत्मा स्यात् है, स्यात् नहीं है।

७. चरित्र आत्मा के साथ–
द्रव्य आत्मा नियमतः है।
कषाय आत्मा स्यात् है, स्यात् नहीं है।
योग आत्मा स्यात् है, स्यात् नहीं है।
उपयोग आत्मा नियमतः है।
ज्ञान आत्मा नियमतः है।
दर्शन आत्मा नियमतः है।
वीर्य आत्मा नियमतः है।

८. वीर्य आत्मा के साथ–
द्रव्य आत्मा नियमतः है।
कषाय आत्मा स्यात् है, स्यात् नहीं है।
योग आत्मा स्यात् है, स्यात् नहीं है।
उपयोग आत्मा नियमतः है।
ज्ञान आत्मा स्यात् है, स्यात् नहीं है।
दर्शन आत्मा नियमतः है।
चरित्र आत्मा स्यात् है, स्यात् नहीं है।

अट्ठविह-आयाणं अप्पाबहुत्त-पदं

२०५. एयासि णं भंते! दवियायाणं, कसायायाणं जाव वीरियायाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा व.? बहुया वा? तुल्ला वा? विसेसाहिया वा?

गोयमा! सव्वत्थोवाओ चरित्तायाओ, नाणायाओ अणंतगुणाओ, कसायायाओ अणंतगुणाओ, जोगायाओ विसेसाहियाओ वीरियायाओ विसेसाहियाओ उवओगदवियदंसणायाओ तिण्णि वि तुल्लाओ विसेसाहियाओ॥

अष्टविध-आत्मनाम् अल्पबहुत्व- पदम्

एतेषां भदन्त! द्रव्यात्मनां, कषायात्मनां यावत् वीर्यात्मनां च कतरे कतरेभ्यः अल्पाः वा? बहुकाः वा? तुल्याः वा? विशेषाधिकाः वा?

गौतम! सर्वस्तोकाः चारित्रात्मानः, ज्ञानात्मानः अनन्तगुणाः, कषायात्मानः अनन्तगुणाः, योगात्मानः विशेषाधिकाः वीर्यात्मानः विशेषाधिकाः, उपयोग–द्रव्य–दर्शनात्मानः त्रयोऽपि तुल्याः विशेषाधिकाः।

अष्टविध-आत्मा का अल्पबहुत्व-पद

२०५. भंते! द्रव्य आत्मा , कषाय आत्मा यावत् वीर्य आत्मा–इनमें कौन किनसे अल्प, बहु, तुल्य अथवा विशेषाधिक है ?

गौतम! सबसे अल्प चरित्र आत्मा, ज्ञान आत्मा उससे अनंतगुण अधिक, कषाय आत्मा उससे अनंतगुण अधिक, योग आत्मा उससे विशेषाधिक, वीर्य आत्मा उससे विशेषाधिक, उपयोग आत्मा, द्रव्य आत्मा और दर्शन आत्मा–ये तीनों वीर्य आत्मा से विशेषाधिक और परस्पर तुल्य हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भाष्य

१. सूत्र २०५

चरित्र आत्मा सबसे अल्प है। वृत्तिकार के अनुसार चरित्र आत्मा संख्येय है।[1] जयाचार्य ने इसका विशद विवेचन किया है। चरित्र आत्मा का अर्थ सर्व विरति विवक्षित है। उसकी अपेक्षा से चरित्र आत्मा को संख्येय कहा गया है।[2] ज्ञानात्मा चरित्रात्मा से अनंत गुण अधिक है।

सिद्ध और सम्यग् दृष्टि अनंत हैं। इस अपेक्षा से ज्ञानात्मा को चारित्रात्मा से अनंत गुण अधिक बतलाया गया है।

कषाय आत्मा ज्ञानात्मा से अनंत गुण अधिक है। कषायोदय वाले जीव सिद्धों से अनंत गुण अधिक हैं।

योग आत्मा कषाय आत्मा से विशेषाधिक है। अकषाय जीव योगवान् होते हैं।

वीर्य आत्मा योग आत्मा से विशेषाधिक है। अयोगवान् जीवों के वीर्य आत्मा होती है। उपयोग, द्रव्य और दर्शन आत्मा सब जीवों में समान रूप से होती हैं इसलिए परस्पर तुल्य हैं। वीर्य आत्मा और सिद्ध-इन दोनों का योग होने पर तीनों आत्माएं वीर्य आत्मा से विशेषाधिक हो जाती हैं।[3]

नाणदंसणाणं अत्तणा भेदाभेद-पदं

२०६. आया भंते ! नाणे ? अण्णे नाणे ?

गोयमा ! आया सिय नाणे सिय अण्णाणे, नाणे पुण नियमं आया॥

ज्ञानदर्शनयोः आत्मनो-भेदाभेद-पदम्

आत्मा भदन्त! ज्ञानम्? अन्यत् ज्ञानम्?

गौतम! आत्मा स्यात् ज्ञानं स्यात् अज्ञानम्, ज्ञानं पुनः नियमम् आत्मा।

ज्ञान-दर्शन का आत्मा के साथ भेदाभेद पद

२०६. भंते ! आत्मा ज्ञान है ? अथवा आत्मा से भिन्न कोई ज्ञान है ?

गौतम ! आत्मा स्यात् ज्ञान है, स्यात् अज्ञान है। ज्ञान नियमतः आत्मा है।

२०७. आया भंते ! नेरइयाणं नाणे ? अण्णे नेरइयाणं नाणे ?

गोयमा ! आया नेरइयाणं सिय नाणे, सिय अण्णाणे। नाणे पुण से नियमं आया। एवं जाव थणियकुमाराणं॥

आत्मा भदन्त! नैरयिकाणां ज्ञानम्? अन्यत् नैरयिकाणां ज्ञानम्?

गौतम! आत्मा नैरयिकाणां स्यात् ज्ञानम्, स्यात् अज्ञानम्। ज्ञानं पुनः तत् नियमम् आत्मा। एवं यावत् स्तनितकुमाराणाम्।

२०७. भंते ! क्या नैरयिकों की आत्मा ज्ञान है ? अथवा नैरयिकों की आत्मा से भिन्न कोई ज्ञान है ?

गौतम ! नैरयिकों की आत्मा स्यात् ज्ञान है, स्यात् अज्ञान है। उनका ज्ञान नियमतः आत्मा है। इसी प्रकार यावत् स्तनितकुमार देवों की वक्तव्यता।

२०८. आया भंते ! पुढविकाइयाणं अण्णाणे ? अण्णे पुढविकाइयाणं अण्णाणे ?

गोयमा ! आया पुढविकाइयाणं नियमं अण्णाणे, अण्णाणे वि नियमं आया।

एवं जाव वणस्सइकाइयाणं। बेइंदिय-तेइंदियाणं जाव वेमाणियाणं जहा नेरइयाणं॥

आत्मा भदन्त! पृथिवीकायिकानाम् अज्ञानम्? अन्यत् पृथिवीकायिकानाम् अज्ञानम्?

गौतम! आत्मा पृथिवीकायिकानां नियमम् अज्ञानम्, अज्ञानम् अपि नियमम् आत्मा।

एवं यावत् वनस्पतिकायिकानाम्। द्वीन्द्रियत्रीन्द्रियाणां यावत् वैमानिकानां यथा नैरयिकाणाम्।

२०८. भंते ! पृथ्वीकायिक जीवों की आत्मा अज्ञान है? पृथ्वीकायिक जीवों की आत्मा से भिन्न कोई अज्ञान है ?

गौतम ! पृथ्वीकायिक जीवों की आत्मा नियमतः अज्ञान है, उनका अज्ञान भी नियमतः आत्मा है।

इसी प्रकार यावत् वनस्पतिकायिक जीवों की वक्तव्यता। द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय यावत् वैमानिक देवों की नैरयिकों की भांति वक्तव्यता।

२०९. आया भंते! दंसणे? अण्णे दंसणे?

गोयमा! आया नियमं दंसणे, दंसणे वि नियमं आया॥

आत्मा भदन्त! दर्शनम्? अन्यत् दर्शनम्?

गौतम! आत्मा नियमं दर्शनम्, दर्शनम् अपि नियमम् आत्मा।

२०९. भंते ! क्या आत्मा दर्शन है ? क्या आत्मा से भिन्न कोई दर्शन है ?

गौतम ! आत्मा नियमतः दर्शन है, दर्शन भी नियमतः आत्मा है।

---

१. भ. वृ. १२/२०५-चरित्रिणां संख्यात्वात्

२. भ. जो. ४/२६८,८९-९२।

३. भ. वृ. १२/२०५।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२१०. आया भंते! नेरइयाणं दंसणे? अण्णे नेरइयाणं दंसणे?

गोयमा! आया नेरइयाणं नियमं दंसणे, दंसणे वि से नियमं आया। एवं जाव वेमाणियाणं निरंतरं दंडओ॥

आत्मा भदन्त! नैरयिकाणां दर्शनम्? अन्यत् नैरयिकाणां दर्शनम्?

गौतम! आत्मा नैरयिकाणां नियमम् दर्शनम्, दर्शनम् अपि तत् नियमम् आत्मा। एवं यावत् वैमानिकानां निरन्तरं दण्डकः।

२१०. भंते! क्या नैरयिकों की आत्मा दर्शन है? क्या नैरयिकों की आत्मा से भिन्न कोई दर्शन है?

गौतम! नैरयिकों की आत्मा नियमतः दर्शन है, उनका दर्शन भी नियमतः आत्मा है। इसी प्रकार यावत् वैमानिक देवों तक, निरन्तर दंडक वक्तव्य है।

भाष्य

१. सूत्र २०६-२१०

इस आलापक में आत्मा, ज्ञान और दर्शन की सापेक्ष चर्चा की गई है। ज्ञान और दर्शन आत्मा के गुण हैं, लक्षण हैं। गुण और गुणी का संबंध भेदाभेदात्मक है। जो सर्वथा भिन्न है वह उस द्रव्य का गुण नहीं हो सकता। सर्वथा अभिन्न होने पर गुण और गुणी–ये दो नहीं हो सकते। प्रस्तुत प्रकरण में ज्ञान और अज्ञान के आधार पर आत्मा के भेदाभेद की चर्चा की गई है। अज्ञान के दो अर्थ हैं–

१. ज्ञानावरण कर्म के उदय से होने वाला ज्ञान का अभाव।

२. मिथ्या दृष्टि का सहचारी ज्ञान।

सूत्र २०६ में बतलाया गया–ज्ञान और अज्ञान नियमतः आत्मा है। सूत्र २०८ में बतलाया गया–अज्ञान भी नियमतः आत्मा है।

सूत्र २०९ के संदर्भ में एक प्रश्न प्रस्तुत होता है–मिथ्यादृष्टि के साहचर्य से जैसे ज्ञान अज्ञान बनता है वैसे ही मिथ्यादृष्टि के साहचर्य से दर्शन अदर्शन क्यों नहीं बनता?

अभयदेव सूरि ने इस विषय में इतना उल्लेख किया है–सम्यग् दृष्टि और मिथ्यादृष्टि के दर्शन में कोई विशिष्टता नहीं होती।[1] प्रस्तुत प्रश्न का समाधान दर्शन के स्वरूप में खोजा जा सकता है। दर्शन सामान्य और निर्विकल्प बोध है इसलिए वह मिथ्यादृष्टि के साहचर्य से अदर्शन नहीं बनता। ज्ञान विशेष और सविकल्प बोध है इसलिए मिथ्यादृष्टि के साहचर्य से वह अज्ञान बन जाता है।

सियवाद-पदं

२११. आया भंते! रयणप्पभा पुढवी? अण्णा रयणप्पभा पुढवी?

गोयमा! रयणप्पभा पुढवी सिय आया, सिय नोआया, सिय अवत्तव्वं–आयाति य नोआयाति य॥

स्याद्वाद-पदम्

आत्मा भदन्त! रत्नप्रभा पृथिवी? अन्या रत्नप्रभा पृथिवी?

गौतम! रत्नप्रभा पृथिवी स्यात् आत्मा, स्यात् नो आत्मा, स्यात् अवक्तव्यम्–आत्मा इति च नो आत्मा इति च।

स्याद्वाद पद

२११. भंते! रत्नप्रभा पृथ्वी आत्मा है? रत्नप्रभा पृथ्वी से भिन्न कोई आत्मा है?

गौतम! रत्नप्रभा पृथ्वी स्यात् आत्मा है, स्यात् नो आत्मा है–आत्मा नहीं है, स्यात् अवक्तव्य–आत्मा और नो आत्मा–दोनों को एक साथ कहना शक्य नहीं है।

२१२. से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ–रयणप्पभा पुढवी सिय आया, सिय नोआया, सिय अवत्तव्वं– आयाति य नोआयाति य?

गोयमा! अप्पणो आदिट्ठे आया, परस्स आदिट्ठे नोआया, तदुभयस्स आदिट्ठे अवत्तव्वं– रयणप्पभा पुढवी आयाति य नोआयाति य।

से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ–रयणप्पभा पुढवी सिय आया, सिय नोआया, सिय अवत्तव्वं–आयाति य नोआयाति य॥

तत् केनार्थेन भदन्त! एवमुच्यते–रत्नप्रभा पृथिवी स्यात् आत्मा, स्यात् नो आत्मा, स्यात् अवक्तव्यम्–आत्मा इति च नो आत्मा इति च?

गौतम! आत्मनः आदिष्टः आत्मा, परस्य आदिष्टः नो आत्मा, तदुभयस्य आदिष्टः अवक्तव्यं–रत्नप्रभा पृथिवी आत्मा इति च नो आत्मा इति च।

तत् तेनार्थेन गौतम! एवमुच्यते–रत्नप्रभा पृथिवी स्यात् आत्मा, स्यात् नो आत्मा, स्यात् अवक्तव्यम्–आत्मा इति च नो आत्मा इति च।

२१२. भंते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है–रत्नप्रभा पृथ्वी स्यात् आत्मा है, स्यात् नो आत्मा है, स्यात् अवक्तव्य–आत्मा और नो आत्मा–दोनों को एक साथ कहना शक्य नहीं है?

गौतम! स्वपर्याय की अपेक्षा आत्मा है, पर पर्याय की अपेक्षा आत्मा नहीं है, स्वपर्याय और पर पर्याय की अपेक्षा अवक्तव्य है–रत्नप्रभा पृथ्वी–आत्मा और नो आत्मा–दोनों को एक साथ कहना शक्य नहीं है।

गौतम! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है–रत्नप्रभा पृथ्वी स्यात् आत्मा है, स्यात् नो आत्मा है, स्यात् अवक्तव्य– आत्मा और नो आत्मा दोनों को एक साथ कहना शक्य नहीं है।

१. भ. वृ. १२/२०९–सम्यग्दृष्टिमिथ्यादृष्टयोर्दर्शनस्याविशिष्टत्वादात्मा दर्शनं दर्शनमप्यात्मैवेति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२१३. आया भंते ! सक्करप्पभा पुढवी ? जहा रयणप्पभा पुढवी तहा सक्करप्पभावि। एवं जाव अहेसत्तमा॥

आत्मा भदन्त! शर्कराप्रभा पृथिवी? यथा रत्नप्रभा पृथिवी तथा शर्कराप्रभा अपि। एवं यथा अधःसप्तमी।

२१३. भंते ! शर्कराप्रभा पृथ्वी आत्मा है ? रत्नप्रभा पृथ्वी की भांति शर्कराप्रभा पृथ्वी की वक्तव्यता। इसी प्रकार यावत् अधःसप्तमी पृथ्वी की वक्तव्यता।

२१४. आया भंते। सोहम्मे कप्पे–पुच्छा। गोयमा ! सोहम्मे कप्पे सिय आया सिय नोआया, सिय अवत्तव्वं–आयाति य नोआयाति य॥

आत्मा भदन्त! सौधर्मः कल्पः–पृच्छा। गौतम! सौधर्मः कल्पः स्यात् आत्मा स्यात् नो आत्मा, स्यात् अवक्तव्यम्–आत्मा इति च नो आत्मा इति च।

२१४. भंते ! सौधर्मकल्प आत्मा है ?–पृच्छा। गौतम ! सौधर्म कल्प स्यात् आत्मा है, स्यात् नो आत्मा है, स्यात् अवक्तव्य–आत्मा और नो आत्मा दोनों को एक साथ कहना शक्य नहीं है।

२१५. से केणट्ठेणं भंते ! जाव आयाति य नो आयाति य ?

गोयमा ! अप्पणो आइट्ठे आया, परस्स आइट्ठे नोआया, तदुभयस्स आइट्ठे अवत्तव्वं–आयाति य नोआयाति य। से तेणट्ठेणं तं चेव जाव आयाति य नोआयाति य। एवं जाव अच्चुए कप्पे॥

तत् केनार्थेन भदन्त! यावत् आत्मा इति च नो आत्मा इति च?

गौतम! आत्मनः आदिष्टः आत्मा, परस्य आदिष्टः नो आत्मा, तदुभयस्य आदिष्टः अवक्तव्यम्–आत्मा इति च नो आत्मा इति च। तत् तेनार्थेन तच्चैव यावत् आत्मा इति च नो आत्मा इति च। एवं यावत् अच्युतः कल्पः।

२१५. भंते ! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है, यावत् आत्मा और नो आत्मा दोनों को एक साथ कहना शक्य नहीं है ?
गौतम ! स्वपर्याय की अपेक्षा आत्मा है, परपर्याय की अपेक्षा नो आत्मा है, दोनों की अपेक्षा अवक्तव्य–आत्मा और नो आत्मा दोनों एक साथ कहना शक्य नहीं है। इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है यावत् आत्मा और नो आत्मा दोनों को एक साथ कहना शक्य नहीं हैं। इसी प्रकार यावत् अच्युतकल्प की वक्तव्यता।

२१६. आया भंते ! गेवेज्जविमाणे ? अण्णे गेवेज्जविमाणे ?
एवं जहा रयणप्पभा तहेव। एवं अणुत्तरविमाणा वि। एवं ईसिपब्भारा वि॥

आत्मा भदन्त! ग्रैवेयकविमानम्? अन्यत् ग्रैवेयकविमानम्?
एवं यथा रत्नप्रभा तथैव। एवम् अनुत्तरविमानानि अपि, एवम् ईषत्प्राग्भारा अपि।

२१६. भंते ! ग्रैवेयक विमान आत्मा है ? ग्रैवेयक विमान से भिन्न कोई आत्मा है ?
इसी प्रकार रत्नप्रभा की भांति वक्तव्यता। इसी प्रकार अनुत्तरविमान की भी, इसी प्रकार ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी की भी वक्तव्यता।

२१७. आया भंते ! परमाणुपोग्गले ? अण्णे परमाणुपोग्गले ?
एवं जहा सोहम्मे तहा परमाणुपोग्गले वि भाणियव्वे॥

आत्मा भदन्त! परमाणुपुद्गलः, अन्यः परमाणुपुद्गलः?
एवं यथा सौधर्मः तथा परमाणु-पुद्गलः ? अपि भणितव्यः।

२१७. भंते ! परमाणु-पुद्गल आत्मा है ? परमाणु-पुद्गल से भिन्न कोई आत्मा है ?
जैसे सौधर्मकल्प की वक्तव्यता, वैसे परमाणु-पुद्गल की वक्तव्यता।

२१८. आया भंते ! दुपएसिए खंधे ? अण्णे दुपएसिए खंधे ?

गोयमा ! दुपएसिए खंधे १. सिय आया
२. सिय नोआया
३. सिय अवत्तव्वं–आयाति य नोआयाति य

आत्मा भदन्त! द्विप्रदेशिकः स्कन्धः? अन्यः द्विप्रदेशिकः स्कन्धः?

गौतम! द्विप्रदेशिकः स्कन्धः १. स्यात् आत्मा
२. स्यात् नो आत्मा
३. स्यात् अवक्तव्यम्–आत्मा इति च नो आत्मा इति च

२१८. भंते ! द्विप्रदेशिक स्कंध आत्मा है ? द्विप्रदेशिक स्कंध से भिन्न कोई आत्मा है ?

गौतम ! द्विप्रदेशिक स्कंध १. स्यात् आत्मा है
२. स्यात् नो आत्मा है
३. स्यात् अवक्तव्य–आत्मा और नो आत्मा दोनों को एक साथ कहना शक्य नहीं है

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४. सिय आया य नोआया य
५. सिय आया य अवत्तव्वं–आयाति य नोआयाति य

६. सिय नोआया य अवत्तव्वं–आयाति य नोआयाति य॥

४. स्यात् आत्मा च नो आत्मा च
५. स्यात् आत्मा च अवक्तव्यम्–आत्मा इति च नो आत्मा इति च

६. स्यात् नो आत्मा च अवक्तव्यम्–आत्मा इति च नो आत्मा इति च।

४. स्यात् आत्मा और नो आत्मा है
५. स्यात् आत्मा और अवक्तव्य–आत्मा और नो आत्मा दोनों को एक साथ कहना शक्य नहीं है।

६. स्यात् नो आत्मा और अवक्तव्य–आत्मा और नो आत्मा दोनों को एक साथ कहना शक्य नहीं है।

२१९. से केणट्ठेणं भंते ! एवं तं चेव जाव नोआया य अवत्तव्वं– आयाति य नोआयाति य ?

तत् केनार्थेन भदन्त! एवं तच्चैव यावत् नो आत्मा च अवक्तव्यम्–आत्मा इति च नो आत्मा इति च?

२१९. भंते ! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है–इसी प्रकार पूर्ववत् यावत् नो आत्मा और अवक्तव्य–आत्मा और नो आत्मा दोनों को एक साथ कहना शक्य नहीं है?

गोयमा ! १. अप्पणो आदिट्ठे आया
२. परस्स आदिट्ठे नोआया
३. तदुभयस्स आदिट्ठे अवत्तव्वं दुपएसिए खंधे–आयाति य नो-आयाति य
४. देसे आदिट्ठे सब्भावपज्जवे देसे आदिट्ठे असब्भावपज्जवे दुपएसिए खंधे आया य नोआया य

गौतम! १. आत्मनः आदिष्टः आत्मा
२. परस्य आदिष्टः नो आत्मा
३. तदुभयस्य आदिष्टः अवक्तव्यं द्विप्रदेशिकः स्कन्धः–आत्मा इति च नो आत्मा इति च
४. देशः आदिष्टः सद्भावपर्यवः देशः आदिष्टः असद्भावपर्यवः द्विप्रदेशिकः स्कन्धः आत्मा च नो आत्मा च

गौतम ! १. स्वपर्याय की अपेक्षा आत्मा है
२. परपर्याय की अपेक्षा से नो आत्मा है
३. दोनों की अपेक्षा द्विप्रदेशी स्कंध अवक्तव्य है–आत्मा और नो आत्मा दोनों को एक साथ कहना शक्य नहीं है
४. द्विप्रदेशी स्कंध का देश सद्भाव पर्याय के रूप में आदिष्ट है, उसका देश असद्भाव पर्याय के रूप में आदिष्ट है, इस प्रकार द्विप्रदेशी स्कंध आत्मा भी है, नो आत्मा भी है।

५. देसे आदिट्ठे सब्भावपज्जवे देसे आदिट्ठे तदुभयपज्जवे दुपएसिए खंधे आया य अवत्तव्वं–आयाति य नोआयाति य

५. देशः आदिष्टः सद्भावपर्यवः देशः आदिष्टः तदुभयपर्यवः द्विप्रदेशिकः स्कन्धः आत्मा च अवक्तव्यम्–आत्मा इति च नो आत्मा इति च।

५. उसका देश सद्भाव पर्याय के रूप में आदिष्ट है और उसका देश तदुभय पर्याय के रूप में आदिष्ट है, इस प्रकार द्विप्रदेशी स्कंध आत्मा है और अवक्तव्य है–आत्मा और नो आत्मा दोनों को एक साथ कहना शक्य नहीं है।

६. देसे आदिट्ठे असब्भावपज्जवे देसे आदिट्ठे तदुभयपज्जवे दुपएसिए खंधे नोआया य अवत्तव्वं–आयाति य नोआयाति य।

६. देशः आदिष्टः असद्भावपर्यवः देशः आदिष्टः तदुभयपर्यवः द्विप्रदेशिकः स्कन्धः नो आत्मा च अवक्तव्यम्–आत्मा इति च नो आत्मा इति च।

६. उसका देश असद्भाव पर्याय के रूप में आदिष्ट है, उसका देश तदुभय पर्याय के रूप में आदिष्ट है इसलिए द्विप्रदेशी स्कंध नो आत्मा और अवक्तव्य है–आत्मा और नो आत्मा दोनों को एक साथ कहना शक्य नहीं है।

से तेणट्ठेणं तं चेव जाव नोआया य अवत्तव्वं–आयाति य नोआयाति य॥

तत् तेनार्थेन तच्चैव यावत् नो आत्मा च अवक्तव्यम्–आत्मा इति च नो आत्मा इति च।

इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है। यावत् नो आत्मा है और अवक्तव्य है–आत्मा और नो आत्मा दोनों को एक साथ कहना शक्य नहीं है।

२२०. आया भंते ! तिपएसिए खंधे ? अण्णे तिपएसिए खंधे ?
गोयमा ! तिपएसिए खंधे १. सिय आया
२. सिय नोआया

आत्मा भदन्त! त्रिप्रदेशिकः स्कन्धः? अन्यः त्रिप्रदेशिकः स्कन्धः?
गौतम! त्रिप्रदेशिकः स्कन्धः १. स्यात् आत्मा
२. स्यात् नो आत्मा

२२०. भंते ! त्रिप्रदेशिक स्कंध आत्मा है ? त्रिप्रदेशिक स्कंध से भिन्न कोई आत्मा है ?
गौतम ! त्रिप्रदेशिक स्कंध १. स्यात् आत्मा है।
२. स्यात् आत्मा है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३. सिय अवत्तव्वं– आयाति य नोआयाति य	३. स्यात् अवक्तव्यम्–आत्मा इति च नो आत्मा इति च	३. स्यात् अवक्तव्य है–आत्मा और नो आत्मा–दोनों को एक साथ कहना शक्य नहीं है।
४. सिय आया य नोआया य	४. स्यात् आत्मा च नो आत्मा च	४. स्यात् आत्मा है, स्यात् नो आत्मा है।
५. सिय आया य नोआयाओ य	५. स्यात् आत्मा च नो आत्मानः च	५. स्यात् आत्मा है, स्यात् नो आत्मा नहीं हैं।
६. सिय आयाओ य नोआया य	६. स्यात् आत्मानः च नो आत्मा च	६. स्यात् आत्मा हैं, स्यात् आत्मा है।
७. सिय आया य अवत्तव्वं– आयाति य नोआयाति य	७. स्यात् आत्मा च अवक्तव्यम्–आत्मा इति च नो आत्मा इति च	७. स्यात् आत्मा है और अवक्तव्य है–आत्मा और नो आत्मा दोनों को एक साथ कहना शक्य नहीं है।
८. सिय आया य अवत्तव्वाइं–आयाओ य नोआयाओ य	८. स्यात् आत्मा च अवक्तव्यानि–आत्मानः च नो आत्मानः च	८. स्यात् आत्मा है और अवक्तव्य हैं–आत्मा हैं और नो आत्मा हैं–दोनों को एक साथ कहना शक्य नहीं है।
९. सिय आयाओ य अवत्तव्वं–आयाति य नोआयाति य	९. स्यात् आत्मानः च अवक्तव्यम्–आत्मा इति च नो आत्मा इति च	९. स्यात् आत्मा हैं और अवक्तव्य है–आत्मा और नो आत्मा दोनों को एक साथ कहना शक्य नहीं है।
१०. सिय नोआया य अवत्तव्वं–आयाति य नोआयाति य	१०. स्यात् नो आत्मा च अवक्तव्यम्–आत्मा इति च नो आत्मा इति च	१०. स्यात् नो आत्मा है और अवक्तव्य है–आत्मा और नो आत्मा–दोनों को एक साथ कहना शक्य नहीं है।
११. सिय नोआया य अवत्तव्वाइं–आयाओ य नोआयाओ य	११. स्यात् नो आत्मा च अवक्तव्यानि–आत्मानः च नो आत्मानः च	११. स्यात् नो आत्मा और अवक्तव्य हैं–आत्मा हैं और नो आत्मा हैं–इन दोनों को एक साथ कहना शक्य नहीं है।
१२. सिय नोआयाओ य अवत्तव्वं–आयाति य नोआयाति य	१२. स्यात् नो आत्मानः च अवक्तव्यम्–आत्मा इति च नो आत्मा इति च	१२. स्यात् नो आत्मा हैं और अवक्तव्य है–आत्मा और नो आत्मा–दोनों को एक साथ कहना शक्य नहीं है।
१३. सिय आया य नोआया य अवत्तव्वं– आयाति य नो आयाति य॥	१३. स्यात् आत्मा च नो आत्मा च अवक्तव्यम्–आत्मा इति च नो आत्मा इति च।	१३. स्यात् आत्मा, नो आत्मा और अवक्तव्य है–आत्मा और नो आत्मा–दोनों को एक साथ कहना शक्य नहीं है।
२२१. से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ–तिपएसिए खंधे सिय आया–एवं चेव उच्चारेयव्वं जाव सिय आया य नोआया य अवत्तव्वं–आयाति य नोआयाति य?	तत् केनार्थेन भदन्त! एवमुच्यते–त्रिप्रदेशिकः स्कन्धः स्यात् आत्मा–एवं चैव उच्चारयितव्यं यावत् स्यात् आत्मा च नो आत्मा च अवक्तव्यम्–आत्मा इति च नो आत्मा इति च।	२२१. भंते ! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है–त्रिप्रदेशिक स्कंध स्यात् आत्मा है इस प्रकार उच्चारितव्य है यावत् स्यात् आत्मा, नो आत्मा और अवक्तव्य है–आत्मा और नो आत्मा– दोनों को एक साथ कहना शक्य नहीं है?
गोयमा! १. अप्पणो आदिट्ठे आया	गौतम! १. आत्मनः आदिष्टः आत्मा	गौतम ! १. स्वपर्याय की अपेक्षा आत्मा है
२. परस्स आदिट्ठे नोआया	२. परस्य आदिष्टः नो आत्मा	२. पर पर्याय की अपेक्षा आत्मा नहीं है
३. तदुभयस्स आदिट्ठे अवत्तव्वं–आयाति य नोआयाति य	३. तदुभयस्य आदिष्टः अवक्तव्यम्–आत्मा इति च नो आत्मा इति च	३. दोनों की अपेक्षा अवक्तव्य है–आत्मा और नो आत्मा–दोनों को एक साथ कहना शक्य नहीं है।
४. देसे आदिट्ठे सब्भावपज्जवे देसे आदिट्ठे असब्भावपज्जवे तिपएसिए खंधे आया य नोआया य	४. देशः आदिष्टः सद्भावपर्यवः देशः आदिष्टः असद्भावपर्यवः त्रिप्रदेशिकः स्कन्धः आत्मा च नो आत्मा च	४. त्रिप्रदेशी स्कंध का देश सद्भाव पर्याय के रूप में आदिष्ट है, उसका देश असद्भाव पर्याय के रूप में आदिष्ट है इसलिए त्रिप्रदेशी स्कंध आत्मा भी है, नो आत्मा भी है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५. देसे आदिट्ठे सब्भावपज्जवे देसा आदिट्ठा असब्भावपज्जवा तिपएसिए खंधे आया य नोआयाओ य

५. देशः आदिष्टः सद्भावपर्यवः देशाः आदिष्टाः असद्भावपर्यवाः त्रिप्रदेशिकः स्कन्धः आत्मा च नो आत्मानः च

५. त्रिप्रदेशी स्कंध का देश सद्भाव पर्याय के रूप में आदिष्ट हैं, उसके देश असद्भाव पर्याय के रूप में आदिष्ट हैं इसलिए त्रिप्रदेशी स्कंध आत्मा भी है, नो आत्मा भी हैं।

६. देसा आदिट्ठा सब्भावपज्जवा देसे आदिट्ठे असब्भावपज्जवे तिपएसिए खंधे आयाओ य नो आयाओ य

६. देशाः आदिष्टाः सद्भावपर्यवाः देशः आदिष्टः असद्भावपर्यवाः त्रिप्रदेशिकः स्कन्धः आत्मानः च नो आत्मा च

६. त्रिप्रदेशी स्कंध के देश सद्भाव पर्याय के रूप में आदिष्ट हैं, उसका देश असद्भाव पर्याय के रूप में आदिष्ट हैं, इसलिए त्रिप्रदेशिक स्कंध आत्मा भी है, नो आत्मा भी है।

७. देसे आदिट्ठे सब्भावपज्जवे देसे आदिट्ठे तदुभयपज्जवे तिपएसिए खंधे आया य अवत्तव्वं–आयाति य नोआयाति य

७. देशः आदिष्टः सद्भावपर्यवः देशः आदिष्टः तदुभयपर्यवः त्रिप्रदेशिकः स्कन्धः आत्मा च अवक्तव्यम्–आत्मा इति च नो आत्मा इति च

७. त्रिप्रदेशिक स्कंध का देश सद्भाव पर्याय के रूप में आदिष्ट है, उसका देश तदुभय पर्याय के रूप में आदिष्ट है, इसलिए त्रिप्रदेशिक स्कंध आत्मा है और अवक्तव्य है–आत्मा और नो आत्मा–दोनों को एक साथ कहना शक्य नहीं है।

८. देसे आदिट्ठे सब्भावपज्जवे देसा आदिट्ठा तदुभयपज्जवा तिपएसिए खंधे आया य अवत्तव्वाइं–आयाओ य नोआयाओ य

८. देशः आदिष्टः सद्भावपर्यवः देशाः आदिष्टाः तदुभयपर्यवाः त्रिप्रदेशिकः स्कन्धः आत्मा च अवक्तव्यानि–आत्मानः च नो आत्मानः च

८. त्रिप्रदेशिक स्कंध का देश सद्भाव पर्याय के रूप में आदिष्ट है, उसके देश तदुभय पर्याय के रूप में आदिष्ट हैं इसलिए त्रिप्रदेशिक स्कंध आत्मा है और अवक्तव्य हैं–आत्मा और नो आत्मा दोनों को एक साथ कहना शक्य नहीं है।

९. देसा आदिट्ठा सब्भावपज्जवा देसे आदिट्ठे तदुभयपज्जवे तिपएसिए खंधे आयाओ य अवत्तव्वं–आयाति य नोआयाति य

९. देशाः आदिष्टाः सद्भावपर्यवाः देशः आदिष्टः तदुभयपर्यवः त्रिप्रदेशिकः स्कन्धः आत्मानः च अवक्तव्यम्– आत्मा इति च नो आत्मा इति च

९. त्रिप्रदेशिक स्कंध के देश सद्भाव पर्याय के रूप में आदिष्ट हैं, उसका देश तदुभय पर्याय के रूप में आदिष्ट है इसलिए त्रिप्रदेशिक स्कंध आत्मा हैं और अवक्तव्य है–आत्मा और नो आत्मा–दोनों को एक साथ कहना शक्य नहीं है।

१०. देसे आदिट्ठे असब्भावपज्जवे देसे आदिट्ठे तदुभयपज्जवे तिपएसिए खंधे नोआया य अवत्तव्वं–आयाति य नोआयाति य

१०. देशः आदिष्टः असद्भावपर्यवः देशः आदिष्टः तदुभयपर्यवः त्रिप्रदेशिकः स्कन्धः नो आत्मा च अवक्तव्यम्– आत्मा इति च नो आत्मा इति च

१०. त्रिप्रदेशिक स्कंध का देश असद्भाव पर्याय के रूप में आदिष्ट है, उसका देश तदुभय पर्याय के रूप में आदिष्ट है इसलिए त्रिप्रदेशिक स्कंध नो आत्मा है और अवक्तव्य है–आत्मा और नो आत्मा–दोनों को एक साथ कहना शक्य नहीं है।

११. देसे आदिट्ठे असब्भावपज्जवे देसा आदिट्ठा तदुभयपज्जवा तिपएसिए खंधे नोआया य अवत्तव्वाइं–आयाओ य नोआयाओ य

११. देशः आदिष्टः असद्भावपर्यवः देशाः आदिष्टाः तदुभयपर्यवाः त्रिप्रदेशिकः स्कन्धः नो आत्मा च अवक्तव्यानि–आत्मानः च नो आत्मानः च

११. त्रिप्रदेशिक स्कंध का देश असद्भाव पर्याय के रूप में आदिष्ट है उसके देश तदुभय पर्याय के रूप में आदिष्ट हैं इसलिए त्रिप्रदेशिक स्कंध नो आत्मा है और अवक्तव्य हैं–आत्मा और नो आत्मा दोनों को एक साथ कहना शक्य नहीं है।

१२. देसा आदिट्ठा असब्भावपज्जवा देसे आदिट्ठे तदुभयपज्जवे तिपएसिए खंधे नोआयाओ य अवत्तव्वं–आयाति य नोआयाति य

१२. देशाः आदिष्टाः असद्भावपर्यवाः देशः आदिष्टः तदुभयपर्यवः त्रिप्रदेशिकः स्कन्धः नो आत्मानः च अवक्तव्यम्– आत्मा इति च नो आत्मा इति च

१२. त्रिप्रदेशिक स्कंध के देश असद्भाव पर्याय के रूप में आदिष्ट हैं, उसका देश तदुभय पर्याय के रूप में आदिष्ट है इसलिए त्रिप्रदेशिक स्कंध नो आत्मा हैं और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अवक्तव्य है–आत्मा और नो आत्मा दोनों को एक साथ कहना शक्य नहीं है।

१३. देसे आदिट्ठे सब्भावपज्जवे देसे आदिट्ठे असब्भावपज्जवे देसे आदिट्ठे तदुभयपज्जवे तिपएसिए खंधे आया य नोआया य अवत्तव्वं–आयाति य नोआयाति य।

१३. देशः आदिष्टः सद्भावपर्यवः देशः आदिष्टः असद्भावपर्यवः देशः आदिष्टः तदुभयपर्यवः त्रिप्रदेशिकः स्कन्धः आत्मा च नो आत्मा च अवक्तव्यम्–आत्मा इति च नो आत्मा इति च।

१३. त्रिप्रदेशिक स्कंध का देश सद्भाव पर्याय के रूप में आदिष्ट है, उसका देश असद्भाव पर्याय के रूप में आदिष्ट है, उसका देश तदुभय पर्याय के रूप में आदिष्ट है इसलिए त्रिप्रदेशिक स्कंध आत्मा, नो आत्मा और अवक्तव्य है–आत्मा और नो आत्मा दोनों को एक साथ कहना शक्य नहीं है।

से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ–तिपएसिए खंधे सिय आया तं चेव जाव नोआयाति य॥

तत् तेनार्थेन गौतम! एवमुच्यते–त्रिप्रदेशिकः स्कन्धः स्यात् आत्मा तच्चैव यावत् नो आत्मा इति च।

गौतम ! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है–त्रिप्रदेशिक स्कंध स्यात् आत्मा है पूर्ववत् यावत् (आत्मा) नो आत्मा दोनों को एक साथ कहना शक्य नहीं है।

२२२. आया भंते ! चउप्पएसिए खंधे? अण्णे चउप्पएसिए खंधे ?
गोयमा! चउप्पएसिए खंधे–
१. सिय आया
२. सिय नोआया
३. सिय अवत्तव्वं– आयाति य नोआयाति य

आत्मा भदन्त! चतुष्प्रदेशिकः स्कन्धः? अन्यः चतुष्प्रदेशिकः स्कन्धः?
गौतम! चतुष्प्रदेशिकः स्कन्धः–
१. स्यात् आत्मा
२. स्यात् नो आत्मा
३. स्यात् अवक्तव्यम्–आत्मा इति च नो आत्मा इति च

२२२. भंते ! चतुष्प्रदेशी स्कंध आत्मा है ? चतुष्प्रदेशी स्कंध से भिन्न कोई आत्मा है ?
गौतम! चतुष्प्रदेशी स्कंध–
१. स्यात् आत्मा है।
२. स्यात् नो आत्मा है।
३. स्यात् अवक्तव्य है–आत्मा और नो आत्मा दोनों को एक साथ कहना शक्य नहीं है।

४-७. सिय आया य नोआया य

४-७. स्यात् आत्मा च नो आत्मा च

४-७. स्यात् आत्मा है और नो आत्मा है।

८-११. सिय आया य अवत्तव्वं

८-११. स्यात् आत्मा च अवक्तव्यम्

८-११. स्यात् आत्मा और अवक्तव्य है।

१२-१५. सिय नोआया य अवत्तव्वं

१२-१५. स्यात् नो आत्मा च अवक्तव्यम्

१२-१५. स्यात् नो आत्मा है और अवक्तव्य है।

१६. सिय आया य नोआया य अवत्तव्वं– आयाति य नोआयाति य

१६. स्यात् आत्मा च नो आत्मा च अवक्तव्यम्–आत्मा इति च नो आत्मा इति च

१६. स्यात् आत्मा है, नो आत्मा है और अवक्तव्य है–आत्मा और नो आत्मा दोनों को एक साथ कहना शक्य नहीं है।

१७. सिय आया य नोआया य अवत्तव्वाइं–आयाओ य नोआयाओ य

१७. स्यात् आत्मा च नो आत्मा च अवक्तव्यानि–आत्मानः च नो आत्मानः च

१७. स्यात् आत्मा, नो आत्मा और अवक्तव्य हैं–आत्मा और नो आत्मा–दोनों को एक साथ कहना शक्य नहीं है।

१८. सिय आया य नोआयाओ य अवत्तव्वं–आयाति य नोआयाति य

१८. स्यात् आत्मा च नो आत्मानः च अवक्तव्यम्–आत्मा इति च नो आत्मा इति च

१८. स्यात् आत्मा है, नो आत्मा हैं और अवक्तव्य है–आत्मा और नो आत्मा दोनों को एक साथ कहना शक्य नहीं है।

१९. सिय आयाओ य नोआया य अवत्तव्वं–आयाति य नोआयाति य॥

१९. स्यात् आत्मानः च नो आत्मा च अवक्तव्यम्–आत्मा इति च नो आत्मा इति च।

१९. स्यात् आत्मा हैं, नो आत्मा है और अवक्तव्य है–आत्मा और नो आत्मा दोनों को एक साथ कहना शक्य नहीं है।

२२३. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–चउप्पएसिए खंधे सिय आया य नोआया य अवत्तव्वं–तं चेव अट्ठे पडिउच्चारेयव्वं?

तत् केनार्थेन भदन्त! एवमुच्यते–चतुष्प्रदेशिकः स्कन्धः स्यात् आत्मा च नो आत्मा च अवक्तव्यं–तच्चैव अर्थं प्रत्युच्चारयितव्यम्?

२२३. भंते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है–चतुष्प्रदेशिक स्कंध स्यात् आत्मा, नो आत्मा और अवक्तव्य–आत्मा और नो आत्मा दोनों को एक साथ कहना शक्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नहीं है–पूर्ववत् वही अर्थ प्रत्युच्चारित है?

गोयमा! १. अप्पणो आदिट्ठे आयय।	गौतम! १. आत्मनः आदिष्टः आत्मा।	गौतम! १. स्व-पर्याय की अपेक्षा आत्मा है।
२. परस्स आदिट्ठे नोआया	२. परस्य आदिष्टः नो आत्मा	२. पर-पर्याय की अपेक्षा नो आत्मा (आत्मा नहीं) है।
३. तदुभयस्स आदिट्ठे अवत्तव्वं–आयाति य नोआयाति य	३. तदुभयस्य आदिष्टः अवक्तव्यम्–आत्मा इति च नो आत्मा इति च	३. दोनों की अपेक्षा अवक्तव्य है–आत्मा और नो आत्मा दोनों को एक साथ कहना शक्य नहीं है।
४-७. देसे आदिट्ठे सब्भावपज्जवे देसे आदिट्ठे असब्भावपज्जवे चउभंगो	४–७. देशः आदिष्टः सद्भावपर्यवः देशः आदिष्टः असद्भावपर्यवः चतुर्भङ्गः	४-७. चतुष्प्रदेशी स्कंध का देश सद्भाव पर्याय के रूप में आदिष्ट है, उसका देश असद्भाव पर्याय के रूप में आदिष्ट है–इस प्रकार चार भंग होते हैं।
८-११. सब्भावेणं तदुभयेण य चउभंगो	८–११. सद्भावेन तदुभयेन च चतुर्भङ्गः	८-११. सद्भाव पर्याय और तदुभय पर्याय की अपेक्षा चार भंग।
१२-१५. असब्भावेणं तदुभयेण य चउभंगो	१२–१५. असद्भावेन तदुभयेन च चतुर्भङ्गः	१२-१५. असद्भाव पर्याय और तदुभय पर्याय की अपेक्षा चार भंग।
१६. देसे आदिट्ठे सब्भावपज्जवे देसे आदिट्ठे असब्भावपज्जवे देसे आदिट्ठे तदुभयपज्जवे चउप्पएसिए खंधे आया य नोआया य अवत्तव्वं–आयाति य नोआयाति य	१६. देशः आदिष्टः सद्भावपर्यवः देशः आदिष्टः असद्भावपर्यवः देशः आदिष्टः तदुभयपर्यवः चतुःप्रदेशिकः स्कन्धः आत्मा च नो आत्मा च अवक्तव्यम्–आत्मा इति च नो आत्मा इति च	१६. चतुष्प्रदेशी स्कंध का देश सद्भाव पर्याय के रूप में आदिष्ट है, उसका देश असद्भाव पर्याय के रूप में आदिष्ट है, उसका देश तदुभय पर्याय के रूप में आदिष्ट है इसलिए चतुष्प्रदेशी स्कंध आत्मा, नो आत्मा और अवक्तव्य–आत्मा और नो आत्मा दोनों को एक साथ कहना शक्य नहीं है।
१७. देसे आदिट्ठे सब्भावपज्जवे देसे आदिट्ठे असब्भावपज्जवे देसा आदिट्ठा तदुभयपज्जवा चउप्पएसिए खंधे आया य नोआया य अवत्तव्वाइं–आयाओ य नोआयाओ य	१७. देशः आदिष्टः सद्भावपर्यवः देशः आदिष्टः असद्भावपर्यवः देशाः आदिष्टाः तदुभयपर्यवाः चतुःप्रदेशिकः स्कन्धः आत्मा च नो आत्मा च अवक्तव्यानि–आत्मानः च नो आत्मानः च।	१७. चतुष्प्रदेशी स्कंध का देश सद्भाव पर्याय के रूप में आदिष्ट है, उसका देश असद्भाव पर्याय के रूप में आदिष्ट हैं, उसके देश तदुभय पर्याय के रूप में आदिष्ट हैं इसलिए चतुष्प्रदेशी स्कंध आत्मा है, नो आत्मा है और अवक्तव्य हैं–आत्मा और नो आत्मा दोनों को एक साथ कहना शक्य नहीं है।
१८. देसे आदिट्ठे सब्भावपज्जवे देसा आदिट्ठा असब्भावपज्जवा देसे आदिट्ठे तदुभयपज्जवे चउप्पएसिए खंधे आया य नोआयाओ य अवत्तव्वं–आयाति य नोआयाति य	१८. देशः आदिष्टः सद्भावपर्यवः देशाः आदिष्टाः असद्भावपर्यवाः देशः आदिष्टः तदुभयपर्यवः चतुःप्रदेशिकः स्कन्धः आत्मा च नो आत्मानः च अवक्तव्यम्–आत्मा इति च नो आत्मा इति च	१८. चतुष्प्रदेशी स्कंध का देश सद्भाव पर्याय के रूप में आदिष्ट है, उसके देश असद्भाव पर्याय के रूप में आदिष्ट हैं, उसका देश तदुभय-पर्यव के रूप में आदिष्ट है, इसलिए चतुष्प्रदेशी स्कंध आत्मा है, नो आत्मा हैं और अवक्तव्य–आत्मा और नो आत्मा दोनों को एक साथ कहना शक्य नहीं है।
१९. देसा आदिट्ठा सब्भावपज्जवा देसे आदिट्ठे असब्भावपज्जवे देसे आदिट्ठे तदुभयपज्जवे चउप्पएसिए खंधे आयाओ य नोआया य	१९. देशाः आदिष्टाः सद्भाव-पर्यवाः देशः आदिष्टः असद्भावपर्यवः देशः आदिष्टः तदुभयपर्यवः चतुष्प्रदेशिकः स्कन्धः आत्मानः च नो आत्मा च	१९. चतुष्प्रदेशी स्कंध के देश सद्भाव पर्याय के रूप में आदिष्ट हैं, उसका देश असद्भाव पर्याय के रूप में आदिष्ट है, उसका देश तदुभय पर्याय के रूप में आदिष्ट

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अवत्तव्वं–आयाति य नोआयाति य।

अवक्तव्यम्–आत्मा इति च नो आत्मा इति च।

है इसलिए चतुष्प्रदेशी स्कंध आत्मा हैं, नो आत्मा है और अवक्तव्य–आत्मा और नो आत्मा दोनों को एक साथ कहना शक्य नहीं है।

से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ–चउप्पएसिए खंधे सिय आया सिय नोआया सिय अवत्तव्वं– निक्खेवे ते चेव भंगा उच्चारेयव्वा जाव आयाति य नोआयाति य ॥

तत् तेनार्थेन गौतम! एवमुच्यते–चतुष्प्रदेशिकः स्कन्धः स्यात् आत्मा स्यात् नो आत्मा स्यात् अवक्तव्यं–निक्षेपे ते चैव भङ्गाः उच्चारयितव्याः यावत् आत्मा इति च नो आत्मा इति च।

गौतम! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है–चतुष्प्रदेशी स्कंध स्यात् आत्मा है, स्यात् नो आत्मा है, स्यात् अवक्तव्य है–निक्षेप में वे ही भंग उच्चारणीय हैं यावत् आत्मा और नो आत्मा–दोनों को एक साथ कहना शक्य नहीं है।

२२४. आया भंते! पंचपएसिए खंधे? अण्णे पंचपएसिए खंधे?

गोयमा! पंचपएसिए खंधे–

१. सिय आया
२. सिय नोआया
३. सिय अवत्तव्वं– आयाति य नो-आयाति य

४-७. सिय आया य नोआया य
८-११. सिय आया य अवत्तव्वं
१२-१५. नोआया य अवत्तव्वेण य
१६. सिय आया य नोआया य अवत्तव्वं
१७. सिय आया य नोआया य अवत्तव्वाइं
१८. सिय आया य नोआयाओ य अवत्तव्वं
१९. सिय आया य नोआयाओ य अवत्तव्वाइं
२०. सिय आयाओ य नोआया य अवत्तव्वं
२१. सिय आयाओ य नोआया य अवत्तव्वाइं
२२. सिय आयाओ य नोआयाओ य अवत्तव्व॥

आत्मा भदन्त! पञ्चप्रदेशिकः स्कन्धः? अन्य पञ्चप्रदेशिकः स्कन्धः?

गौतम! पञ्चप्रदेशिकः स्कन्धः–

१. स्यात् आत्मा
२. स्यात् नो आत्मा
३. स्यात् अवक्तव्यम्–आत्मा इति च नो आत्मा इति च

४-७. स्यात् आत्मा च नो आत्मा च
८-११. स्यात् आत्मा च अवक्तव्यम्
१२-१५. नो आत्मा च अवक्तव्येन च
१६. स्यात् आत्मा च नो आत्मा च अवक्तव्यम्
१७. स्यात् आत्मा च नो आत्मा च अवक्तव्यानि
१८. स्यात् आत्मा च नो आत्मानः च अवक्तव्यम्
१९. स्यात् आत्मा च नो आत्मानः च अवक्तव्यानि
२०. स्यात् आत्मानः च नो आत्मा च अवक्तव्यम्
२१. स्यात् आत्मानः च नो आत्मा च अवक्तव्यानि
२२. स्यात् आत्मानः च नो आत्मानः च अवक्तव्यम्।

२२४. भंते! पांच-प्रदेशी स्कंध आत्मा है? पांच प्रदेशी स्कंध से भिन्न कोई आत्मा है?

गौतम! पांच प्रदेशी स्कंध–

१. स्यात् आत्मा है।
२. स्यात् नो आत्मा है।
३. स्यात् अवक्तव्य–आत्मा और नो आत्मा–दोनों को एक साथ कहना शक्य नहीं है।
४-७. स्यात् आत्मा है और नो आत्मा है।
८-११. स्यात् आत्मा है और अवक्तव्य है।
१२-१५. नो आत्मा है और अवक्तव्य है।
१६. स्यात् आत्मा है, नो आत्मा है और अवक्तव्य है।
१७. स्यात् आत्मा है, नो आत्मा है और अवक्तव्य हैं।
१८. स्यात् आत्मा है, नो आत्मा हैं और अवक्तव्य है।
१९.स्यात् आत्मा है, नो आत्मा हैं और अवक्तव्य हैं।
२०. स्यात् आत्मा हैं, नो आत्मा है और अवक्तव्य है।
२१. स्यात् आत्मा हैं, नो आत्मा है और अवक्तव्य हैं।
२२. स्यात् आत्मा हैं, नो आत्मा हैं और अवक्तव्य है।

२२५. से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ–पंचपएसिए खंधे सिय आया जाव सिय आयाओ य नोआयाओ य अवत्तव्वं?

गोयमा! १. अण्णो आदिट्ठे आया।
२. परस्स आदिट्ठे नोआया
३. तदुभयस्स आदिट्ठे अवत्तव्वं

तत् केनार्थेन भदन्त! एवमुच्यते–पञ्चप्रदेशिकः स्कन्धः स्यात् आत्मा यावत् स्यात् आत्मानः च नो आत्मानः च अवक्तव्यम्?

गौतम! १. आत्मनः आदिष्टः आत्मा।
२. परस्य आदिष्टः नो आत्मा
३. तदुभयस्य आदिष्टः अवक्तव्यम्

२२५. भंते! किस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है–पांच-प्रदेशी स्कंध स्यात् आत्मा है यावत् स्यात् आत्मा हैं, नो आत्मा हैं और अवक्तव्य है?

गौतम! १. स्व पर्याय की अपेक्षा आत्मा है।
२. पर पर्याय की अपेक्षा नो आत्मा है।
३. तदुभय पर्याय की अपेक्षा अवक्तव्य है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४. देसे आदिट्ठे सब्भावपज्जवे देसे आदिट्ठे असब्भावपज्जवे–

४. देशः आदिष्टः सद्भावपर्यवः देशः आदिष्टः असद्भावपर्यवः–

४. पंच–प्रदेशी स्कंध का एक देश सद्भाव पर्याय के रूप में आदिष्ट है, एक देश असद्भाव पर्याय के रूप में आदिष्ट है।

एवं दुयगसंजोगे सव्वे पडंति, तियसंजोगे एक्को न पडइ।

एवं द्विकसंयोगे सर्वे पतन्ति, त्रिकसंयोगे एकः न पतति।

इस प्रकार द्विक्–संयोग में सर्व भंग आते हैं। त्रिक–संयोग में एक–आठवां भंग नहीं आता।

छप्पएसियस्स सव्वे पडंति। जहा छप्पएसिए एवं जाव अणंतपएसिए।

षट् प्रदेशिकस्य सर्वे पतन्ति। यथा षट् प्रदेशिकः एवं यावत् अनन्तप्रदेशिकः।

षट्प्रदेशी स्कंध में सर्व भंग आते हैं। जैसे–षट्प्रदेशी स्कंध की वक्तव्यता, इसी प्रकार यावत् अनंतप्रदेशी स्कंध की वक्तव्यता।

भाष्य

१. सूत्र २११-२२५

प्रस्तुत आलापक में **'आया' 'नो आया' और सिय** ये तीन शब्द विमर्शनीय हैं। यहां **आया**–आत्मा शब्द सत् के अर्थ में प्रयुक्त है। नो आत्मा का अर्थ है असत्। 'सिय' शब्द सर्वथा एकांत का निषेध करने वाला है। यह अनेकांत का द्योतक है। इसी के आधार पर स्याद्वाद का सिद्धांत प्रतिष्ठित हुआ। नयचक्र के अनुसार स्यात् शब्द नियम का निषेध करने वाला, वस्तु की सापेक्षता को सिद्ध करने वाला है।[1]

स्यात् के आधार पर पृथ्वी, परमाणु, स्कंध आदि के सत्-असत् स्वरूप का निर्णय किया गया है। इस निर्णय की प्रक्रिया में अनेक विकल्प/भंग बनते हैं।

रत्नप्रभा पृथ्वी–

१. स्यात सत् है।

२. स्यात् सत् नहीं है।

३. स्यात् अवक्तव्य है।

वह अपने पर्यायों के आदेश (अपेक्षा) से सत् है। पर पर्यायों के आदेश से सत् नहीं है। स्व और पर–दोनों पर्यायों के युगपत् आदेश से वह अवक्तव्य है।[2]

परमाणु–

स्यात् सत् है।

स्यात् सत् नहीं है।

स्यात् अवक्तव्य है।

द्विप्रदेशी स्कंध के छह भंग होते हैं–

१. स्यात् सत् है।

२. स्यात् सत् नहीं है।

३. स्यात् अवक्तव्य है।

४. स्यात् सत् है, स्यात् सत् नहीं है।

५. स्यात् सत् है, स्यात् अवक्तव्य है।

६. स्यात् सत् नहीं है, स्यात् अवक्तव्य है।

द्विप्रदेशी स्कंध दो परमाणुओं के मिलन से बनता है। उसके दो अंश हैं इसलिए उसकी सप्तभंगी नहीं होती। त्रिप्रदेशिक आदि स्कंधों में सप्तभंगी होती है।[3] त्रिप्रदेशी, चतुष्प्रदेशी और पंच-प्रदेशी स्कंधों में अनेक भंगों की रचना उनके अंशों के आधार पर की गई है।

प्रस्तुत आलापक में अंशों के आधार पर भंगों की रचना की गई है इसलिए द्विप्रदेशी स्कंध में सप्तभंगी नहीं, त्रिप्रदेशी आदि स्कंधों में सप्तभंगी हो सकती है। दार्शनिक युग में वस्तु के धर्मों के आधार पर सप्तभंगी की रचना की गई फलतः प्रत्येक धर्म की सप्तभंगी बनती है।[4]

त्रिप्रदेशी रकंध के तेरह भंग होते हैं–

१. स्यात् सत् है।

२. स्यात् सत् नहीं है।

३. स्यात् अवक्तव्य है।

४. स्यात् सत् है, स्यात् सत् नहीं है।

५. स्यात् सत् है, स्यात् सत् नहीं हैं।

६. स्यात् सत् हैं, स्यात् सत् नहीं है।

७. स्यात् सत् है, स्यात् अवक्तव्य हैं।

८. स्यात् सत् है, स्यात् अवक्तव्य हैं।

---

१. नयचक्र गाथा २५३–

नियम णिसेहण सीलो णिपादणादो य जो हु खलु सिद्धो।
सो सियसद्दो भणियो, जो सावेक्खं पसाहेदि॥

२. भ. वृ. १२/२१२–'अप्पणो आइट्ठे'त्ति आत्मनः–स्वस्य रत्नप्रभाया एव वर्णादिपर्यायैः 'आदिष्टे' आदेशे सति तैर्व्यपदिष्टा सतीत्यर्थः आत्मा भवति, स्वपर्यायापेक्षया सतीत्यर्थः, परस्स आइट्ठे नोआय' त्ति परस्य शर्करादि-पृथिव्यन्तरस्य पर्यायैरादिष्टे–आदेशे सति तैर्व्यपदिष्टा सतीत्यर्थः नो आत्मा–अनात्मा भवति, परस्वरूपाऽपेक्षयाऽसतीत्यर्थः, तदुभयस्य आदिट्ठे अवत्तव्वं' ति तयोः–स्वपरयोरुभयं तदेव वोभयं तदुभयं तस्य पर्यायैरादिष्टे–आदेशे सति तदुभयपर्यायैर्व्यपदिष्टेत्यर्थः अवक्तव्यं अवाच्यं वस्तु स्यात्।

३. वही, १२/२१८,२१९–द्विप्रदेशिके द्व्यंशत्वादस्य त्रिप्रदेशिकादौ तु स्यादिति सप्तभङ्गी।

४. प्रमाण नयतत्त्वालोक ४/१४–एकत्र वस्तुन्येकैक धर्मपर्यनुयोगवशाद-विरोधेन व्यस्तयोः समस्तयोश्च विधिनिषेधयोः कल्पनया स्यात् कारांकितः सप्तधा वाक्प्रयोगः सप्तभंगी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

९. स्यात् सत् हैं, स्यात् अवक्तव्य है।
१०. स्यात् सत् नहीं है, स्यात् अवक्तव्य है।
११. स्यात् सत् नहीं है, स्यात् अवक्तव्य हैं।
१२. स्यात् सत् नहीं हैं, स्यात् अवक्तव्य है।
१३. स्यात् सत् है, स्यात् सत् नहीं है, स्यात् अवक्तव्य है।

वृत्तिकार के अनुसार त्रिप्रदेशिक स्कंध के तेरह भंगों में प्रथम तीन भंग सकलादेश (प्रमाण) के हैं। चौथा, पांचवां, छठा भंग एक वचन और बहुवचन की विवक्षा से किए गए हैं। दो प्रदेश का एक प्रदेश में अवगाह होता है, इस हेतु से दो प्रदेशों में एक वचन की विवक्षा की गई है। जहां भेद की विवक्षा है वहां बहुवचन का प्रयोग किया गया है।[1]

द्रष्टव्य स्थापना–

स्वपर्याय से–आत्मा
पर पर्याय से–नो आत्मा
तदुभय पर्याय से–अवक्तव्य–आत्मा, नो आत्मा
१. देश–एक वचन।
२. देश–बहुवचन।

● **एक परमाणु : भंग ३**

आत्मा	नो आत्मा	अवक्तव्य

● **द्विप्रदेशी स्कंध : भंग ६**

असंयोगी भंग १-३

आत्मा	नो आत्मा	अवक्तव्य

द्वि संयोगी–३

आ, नो,	आ, अ	नो. अ

● **त्रिप्रदेशिक स्कंध : भंग १३**

असंयोगी भंग १-३

आ	नो	अ

● **चतुष्प्रदेशी स्कंध, भंग १६**

द्विसंयोगी भंग ४-१२

आ. नो	आ. अ	नो. अ
१ १	१ १	१ १
१ २	१ २	१ २
२ १	२ १	२ १

त्रिसंयोगी भंग १३

आ.	नो	अ

असंयोगी भंग–१-३

आ	नो	अ

द्विसंयोगी भंग ४-१५

आ. नो.	आ. अ.	नो. अ.
१ १	१ १	१ १
१ २	१ २	१ २
२ १	२ १	२ १
२ २	२ २	२ २

त्रि संयोगी भंग १६-१६

आ. नो.	आ. अ.	नो. अ.
१	१	१
१	१	२
१	२	१
२	१	१

पंच प्रदेशी स्कंध भंग २२

असंयोगी भंग–१-३

आ.	नो.	अ.

द्विसंयोगी भंग ४-१५

आ. नो.	आ. अ.	नो. अ.
१ १	१ १	१ १
१ २	१ २	१ २
२ १	२ १	२ १
२ २	२ २	२ २

त्रिसंयोगी भंग १६-२२

आ.	नो.	अ.
१	१	१
१	१	२
१	२	१
१	२	२
२	१	१
२	१	२
२	२	१

पंच प्रदेशी स्कंध के त्रिसंयोगी विकल्पों में आठवां भंग नहीं होता।

छह प्रदेशी स्कंध के तेईस भंग होते हैं, उनमें आठवां भंग भी होता है–

२	२	२

२२६. सेवं भंते! सेवं भंते! त्ति जाव विहरइ ॥

तदेवं भदन्त! तदेवं भदन्त! इति यावत् विहरति।

२२६. भंते! वह ऐसा ही है। भंते! वह ऐसा ही है, यावत् विहरण करने लगे।

---

३. भ. वृ. १२/२२०,२११–त्रिप्रदेशिकस्कंधे तु त्रयोदशभंगास्तत्र पूर्वोक्तेषु सप्तस्वाद्याः सकलादेशास्त्रयस्तथैव, तदन्येषु तु त्रिषु त्रयस्त्रय एकवचन-बहुवचनभेदात्।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तेरसमं सतं

तेरहवां शतक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आमुख

प्रस्तुत शतक में पुनर्जन्म के विषय में अनेक नियमों का निर्देश मिलता है। इस विषय में सूत्र ३ से सूत्र ३८ तक का विषय मननीय है।

जैन दर्शन के अनुसार दिशा आकाश का ही एक विभाग है। प्रस्तुत शतक में उनकी उत्पत्ति के मूल का निर्देश है।[1] इस विषय की विशद जानकारी के लिए प्रस्तुत आगम का दसवां शतक,[2] आचारांग भाष्य[3] तथा श्री भिक्षु आगम विषय कोश[4] द्रष्टव्य हैं।

प्रस्तुत शतक में लोक की व्याख्या पंचास्तिकाय के आधार पर की गई है। पंचास्तिकाय का निरूपण प्रस्तुत आगम के अनेक शतकों में हुआ है–प्रस्तुत प्रकरण में उनके कार्यों का विवरण दिया गया है, वह अपूर्व है।[5] पंचास्तिकाय के अवगाह की चर्चा भी महत्त्वपूर्ण है।[6]

भगवान् महावीर ने आठ राजाओं को दीक्षित किया था। उनमें एक नाम है उद्रायण।[7] सौवीर के अधिपति उद्रायण की प्रव्रज्या का उल्लेख उत्तराध्ययन में मिलता है।[8] स्थानांग और उत्तराध्ययन में उद्रायण का केवल नामोल्लेख है।

उदायण शब्द जैन साहित्य में बहुत प्रचलित है इसलिए उदायन के लिए उदायण का प्रयोग किया जाता रहा है। यह सही नहीं है। सिन्धु सौवीर के राजा का वास्तविक नाम उद्रायण है।

प्रस्तुत शतक में उसका संक्षिप्त जीवन-परिचय भी उपलब्ध है। उसकी विशेष जानकारी उत्तरवर्ती साहित्य में मिलती है।

सिन्धु-सौवीर जनपद–सिन्ध सौवीरेसु जनवएसु–इस वाक्यांश से ज्ञात होता है कि सिन्धु सौवीर में बहुवचन का प्रयोग अनेक देशों के समुच्चय का सूचक है। आधुनिक विद्वान् सौवीर को सिन्धु और झेलम नदी के बीच का प्रदेश मानते हैं।[9] कुछ विद्वान् इसे सिन्धु नदी के पूर्व में मुल्तान तक का प्रदेश मानते हैं।[10]

सिन्धु-सौवीर ऐसा संयुक्त नाम ही विशेष रूप से प्रचलित है किन्तु सिन्धु और सौवीर पृथक्-पृथक् राज्य थे। उत्तराध्ययन में उद्रायण को सौवीरराज कहा गया है।[11] उत्तराध्ययन की टीका से भी इसकी पुष्टि होती है। इसमें उद्रायण को सिन्धु, सौवीर आदि सोलह जनपदों का अधिपति बतलाया गया है।[12] सिन्धु, सौवीर आदि सोलह जनपदों के नाम उपलब्ध नहीं हैं।

प्रस्तुत प्रकरण में उद्रायण की दो रानियों का उल्लेख मिलता है–पद्मावती और प्रभावती। प्राचीन भारत वर्ष के लेखक ने इस विषय में दो मान्यताएं बतलाई है–पहली मान्यता के अनुसार उद्रायण का विवाह ईस्वी पूर्व ५४३ में वैशाली गणराज्य के प्रमुख चेटक की पुत्री प्रभावती के साथ तथा ईस्वी पूर्व ५२० में पद्मावती के साथ हुआ।

दूसरी मान्यता के अनुसार उद्रायण का विवाह ईस्वी पूर्व ५८४ में प्रभावती से हुआ।[13]

प्रस्तुत शतक में शरीर, भाषा और मन के संबंध का विस्तृत विवेचन किया गया है। इस विवेचन से फलित होता है कि जीव के साथ शरीर का अव्यवहित संबंध है, भाषा और मन का संबंध व्यवहित है इसलिए भाषा और मन को अचित्त तथा शरीर को सचित्त बतलाया गया है।[14]

आगम साहित्य में मरण के अनेक वर्गीकरण हैं। भगवती के दूसरे शतक में बालमरण के बारह प्रकार बतलाए गए हैं, उनमें

---

१. भ. १३/५०-५४
२. भ. १०/१-७
३. आ. भाष्य १/४
४. भिक्षु आगम विषय कोश, पृ. ५६७-५६८
५. भ. १३/५५-६०
६. भ. १३/७४-८७
७. ठाणं ८/४१
८. उत्त. १८/४७
९. इण्डिया इज डिस्क्राइन्ड इन अर्ली ट्रेक्टस ऑफ बुद्धिज्म एण्ड जैनिज्म, पृ. ७०
१०. पॉलिटिकल हिस्ट्री ऑफ एन्शिएन्ट इंडिया, पृ. ५०७, नोट-१।
११. उत्त. १८/४८
१२. सुखबोधा प. २५२
१३. प्राचीन भारत वर्ष पृ. १३१-१३५
१४. भ. १३/१२४-१२८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आवीचिमरण, अवधिमरण और आत्यंतिकमरण का उल्लेख नहीं है।[1] समवायांग में सतरह प्रकार के मरण बतलाए गए हैं, उनमें इन तीनों का उल्लेख मिलता है।[2]

भावितात्मा अणगार की विक्रिया का वर्णन बहुत विस्तार से किया गया है। विक्रिया करने की साधना के सूत्र उपलब्ध नहीं है। उनकी परंपरा संभवतः गुप्त रखी गई थी इसीलिए वे अज्ञात हो गए। प्रस्तुत शतक में कुछ उद्देशक प्रज्ञापना से संबद्ध हैं। इस प्रकार अनेक महत्त्वपूर्ण विषय इस शतक में चर्चित हुए हैं। विस्तार से अध्ययन किया जाए तो प्रस्तुत आगम का प्रत्येक शतक स्वतंत्र ग्रंथ जैसा प्रतीत होता है।

१. भ. २/४६ २. सम. १७/६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तेरसमं सतं : तेरहवां शतक

पढमो उद्देसो : पहला उद्देशक

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
संगहणी गाहा १. पुढवी २. देव ३. मणंतर, ४. पुढवी ५. आहारमेव ६. उववाए। ७. भासा ८-९. कम्मणगारे, केयाघडिया १०. समुग्घाए ॥१॥	संग्रहणी गाथा १. पृथ्वी २. देव ३. अनन्तर ४. पृथ्वी ५. आहारमेव ६. उपपातः। ७. भाषा ८-९. कर्म, अनगारः केयाघडिया १०. समुद्घातः॥	संग्रहणी गाथा १. पृथ्वी २. देव ३. अनंतर ४. पृथ्वी ५. आहार ६. उपपात ७. भाषा ८-९. कर्म, अनगार, केआघड़िया १०. समुद्घात।
संखेज्जवित्थडेसु नरएसु उववाय-पदं १. रायगिहे जाव एवं वयासी–कति णं भंते! पुढवीओ पण्णत्ताओ? गोयमा! सत्त पुढवीओ पण्णत्ताओ, तं जहा–रयणप्पभा जाव अहेसत्तमा॥	संख्येयविस्तृतेषु नरकेषु उपपात-पदम् राजगृहं यावत् एवमवादीत्–कति भदन्त! पृथिव्यः प्रज्ञप्ताः? गौतम! सप्त पृथिव्यः प्रज्ञप्ताः तद्यथा–रत्नप्रभा यावत् अधःसप्तमी।	संख्येय-विस्तृत नरकों में उपपात पद १. राजगृह नगर यावत् गौतम ने इस प्रकार कहा–भंते! पृथ्वियां कितनी प्रज्ञप्त हैं? गौतम! पृथ्वियां सात प्रज्ञप्त हैं, जैसे–रत्नप्रभा यावत् अधःसप्तमी।
२. इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए केवतिया निरयावाससयसहस्सा पण्णत्ता? गोयमा! तीसं निरयावाससयसहस्सा पण्णत्ता। ते णं भंते! किं संखेज्जवित्थडा? असंखेज्जवित्थडा? गोयमा! संखेज्जवित्थडा वि, असंखेज्जवित्थडा वि॥	अस्यां भदन्त! रत्नप्रभायां पृथिव्यां कियन्ति निरयावासशतसहस्राणि प्रज्ञप्तानि? गौतम! त्रिंशत् निरयावासशतसहस्राणि प्रज्ञप्तानि। ते भदन्त! किं संख्येयविस्तृताः? असंख्येयविस्तृताः? गौतम! संख्येयविस्तृताः अपि असंख्येयविस्तृताः अपि।	२. भंते! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के कितने लाख नरकावास प्रज्ञप्त हैं? गौतम! तीस लाख नरकावास प्रज्ञप्त हैं। भंते! क्या वे संख्येय योजन विस्तार वाले हैं? असंख्येय योजन विस्तार वाले हैं? गौतम! संख्येय योजन विस्तार वाले भी हैं, असंख्येय योजन विस्तार वाले भी हैं।
३. इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए तीसाए निरयावाससयसहस्सेसु संखेज्जवित्थडेसु नरएसु एगसमएणं १. केवतिया नेरइया उववज्जंति? २. केवतिया काउलेस्सा उववज्जंति? ३. केवतिया कण्हपक्खिया उववज्जंति? ४. केवतिया सुक्कपक्खिया उववज्जंति? ५. केवतिया सण्णी उववज्जंति? ६. केवतिया असण्णी उववज्जंति? ७. केवतिया भवसिद्धिया उववज्जंति? ८. केवतिया अभवसिद्धिया	अस्यां रत्नप्रभायां पृथिव्यां त्रिंशति निरयावासशतसहस्रेषु संख्येयविस्तृतेषु नरकेषु एकसमये १. कियन्तः नैरयिकाः उपपद्यन्ते? २. कियन्तः कापोतलेश्याः उपपद्यन्ते? ३. कियन्तः कृष्णपाक्षिकाः उपपद्यन्ते? ४. कियन्तः शुक्लपाक्षिकाः उपपद्यन्ते? ५. कियन्तः संज्ञिनः उपपद्यन्ते? ६. कियन्तः असंज्ञिनः उपपद्यन्ते? ७. कियन्तः भवसिद्धिकाः उपपद्यन्ते? ८. कियन्तः अभवसिद्धिकाः उपपद्यन्ते ९. कियन्तः आभिनिबोधिक-	३. भंते! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के तीस लाख नरकावासों में से, संख्येय विस्तार वाले नरकों में एक समय में–१. कितने नैरयिक उपपन्न होते हैं? २. कितने कापोत लेश्या वाले उपपन्न होते हैं? ३. कितने कृष्ण पाक्षिक उपपन्न होते हैं? ४. कितने शुक्ल-पाक्षिक उपपन्न होते हैं? ५. कितने संज्ञी उपपन्न होते हैं? ६. कितने असंज्ञी उपपन्न होते हैं? ७. कितने भवसिद्धिक उपपन्न होते हैं ८. कितने अभवसिद्धिक उपपन्न होते हैं? ९. कितने आभिनिबोधिक ज्ञानी उपपन्न

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उववज्जंति ? ९. केवतिया आभिणिबोहियनाणी उववज्जंति ?१०. केवतिया सुयनाणी उववज्जंति ? ११. केवतिया ओहिनाणी उववज्जंति ? १२. केवतिया मइअण्णाणी उववज्जंति ? १३. केवतिया सुयअण्णाणी उववज्जंति ? १४. केवतिया विभंगनाणी उववज्जंति ? १५. केवतिया चक्खुदंसणी उववज्जंति ? १६. केवतिया अचक्खुदंसणी उववज्जंति ? १७. केवतिया ओहिदंसणी उववज्जंति ? १८. केवतिया आहारसण्णोवउत्ता उववज्जंति ? १९. केवतिया भयसण्णोवउत्ता उववज्जंति ? २०. केवतिया मेहुणसण्णोवउत्ता उववज्जंति ? २१. केवतिया परिग्गहसण्णोवउत्ता उववज्जंति ? २२. केवतिया इत्थिवेदगा उववज्जंति ? २३. केवतियापुरिसवेदगा उववज्जंति? २४. केवतिया नपुंसगवेदगा उववज्जंति ? २५-२८. केवतिया कोहकसाई उववज्जंति जाव केवतिया लोभकसाई उववज्जंति ? २९-३३. केवतिया सोइंदियोवउत्ता उववज्जंति जाव केवतिया फासिंदियोवउत्ता उववज्जंति ? ३४. केवतिया नोइंदियोवउत्ता उववज्जंति ? ३५. केवतिया मणजोगी उववज्जंति? ३६. केवतिया वइजोगी उववज्जंति ? ३७. केवतिया कायजोगी उववज्जंति ? ३८. केवतिया सागारोवउत्ता उववज्जंति ? ३९. केवतिया अणागारोवउत्ता उववज्जंति ?

ज्ञानिनः उपपद्यन्ते? १०. कियन्तः श्रुतज्ञानिनः उपपद्यन्ते? ११. कियन्तः अवधिज्ञानिनः उपपद्यन्ते? १२. कियन्तः मतिअज्ञानिनः उपपद्यन्ते? १३. कियन्तः श्रुतअज्ञानिनःउपपद्यन्ते? १४. कियन्तः विभङ्गज्ञानिनः उपपद्यन्ते? १५. कियन्तः चक्षुर्दर्शिनः उपपद्यन्ते? १६. कियन्तः अचक्षुर्दर्शिनः उपपद्यन्ते? १७. कियन्तः अवधिदर्शिनः उपपद्यन्ते? १८. कियन्तः आहारसंज्ञोपयुक्ताः उपपद्यन्ते? १९. कियन्तः भयसंज्ञोपयुक्ताः उपपद्यन्ते? २०. कियन्तः मैथुनसंज्ञोपयुक्ताः उपपद्यन्ते? २१. कियन्तः परिग्रह-संज्ञोपयुक्ताः उपपद्यन्ते? २२. कियन्तः स्त्रीवेदकाः उपपद्यन्ते? २३. कियन्तः पुरुषवेदकाः उपपद्यन्ते? २४. कियन्तः नपुंसकवेदकाः उपपद्यन्ते? २५-२८. कियन्तः क्रोधकषायिनः उपपद्यन्ते यावत् कियन्तः लोभकषायिनः उपपद्यन्ते? २९-३३. कियन्तः श्रोत्रेन्द्रियोपयुक्ताः उपपद्यन्ते यावत् कियन्तः स्पर्शेन्द्रियोपयुक्ताः उपपद्यन्ते? ३४. कियन्तः नोइन्द्रियोपयुक्ताः उपपद्यन्ते? ३५. कियन्तः मनोयोगिनः उपपद्यन्ते? ३६. कियन्तः वाग्योगिनः उपपद्यन्ते? ३७. कियन्तः काययोगिनः उपपद्यन्ते? ३८. कियन्तः साकारोपयुक्ताः उपपद्यन्ते? ३९. कियन्तः अनाकारोपयुक्ताः उपपद्यन्ते?

होते हैं? १०. कितने श्रुतज्ञानी उपपन्न होते हैं? ११. कितने अवधिज्ञानी उपपन्न होते है? १२. कितने मति अज्ञानी उपपन्न होते है? १३. कितने श्रुत अज्ञानी उपपन्न होते हैं? १४. कितने विभंगज्ञानी उपपन्न होते हैं? १५. कितने चक्षुदर्शनी उपपन्न होते हैं? १६. कितने अचक्षुदर्शनी उपपन्न होते हैं? १७. कितने अवधिदर्शनी उपपन्न होते हैं? १८. कितने आहार-संज्ञा-उपयुक्त उपपन्न होते हैं? १९. कितने भय-संज्ञा-उपयुक्त उपपन्न होते हैं? २०. कितने मैथुन-संज्ञा-उपयुक्त उपपन्न होते हैं? २१. कितने परिग्रह संज्ञा-उपयुक्त उपपन्न होते हैं? २२. कितने स्त्रीवेदक उपपन्न होते हैं? २३. कितने पुरुषवेदक उपपन्न होते हैं? २४. कितने नपुंसक वेदक उपपन्न होते हैं? २५-२८. कितने क्रोध कषाय वाले उपपन्न होते हैं? यावत् कितने लोभ कषाय वाले उपपन्न होते हैं? २९.३३ कितने श्रोत्रेन्द्रिय-उपयुक्त उपपन्न होते हैं? यावत् कितने स्पर्शनेन्द्रिय-उपयुक्त उपपन्न होते हैं? ३४. कितने नो-इन्द्रिय-उपयुक्त उपपन्न होते हैं? ३५. कितने मन योग वाले उपपन्न होते हैं? ३६. कितने वचन योग वाले उपपन्न होते हैं? ३७. कितने काय योग वाले उपपन्न होते हैं? ३८. कितने साकार-उपयोग वाले उपपन्न होते हैं? ३९. कितने अनाकार-उपयोग वाले उपपन्न होते हैं?

गोयमा ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए तीसाए निरयावाससयसहस्सेसु संखेज्जवित्थडेसु नरएसु जहण्णेणं एक्को वा दो वा तिण्णि वा, उक्कोसेणं संखेज्जा नेरइया उववज्जंति । जहण्णेणं एक्को वा दो वा तिण्णि वा, उक्कोसेणं संखेज्जा काउलेस्सा उववज्जंति । जहण्णेणं एक्को वा दो वा तिण्णि वा, उक्कोसेणं संखेज्जा कण्हपक्खिया उववज्जंति । एवं सुक्कपक्खिया वि, एवं सण्णी, एवं असण्णी, एवं भवसिद्धिया,

गौतम! अस्यां रत्नप्रभायां पृथिव्यां त्रिंशति निरयावासशतसहस्रेषु संख्येयविस्तृतेषु नरकेषु जघन्येन एकः वा द्वौ वा त्रयः वा, उत्कर्षेण संख्येयाः नैरयिकाः उपपद्यन्ते। जघन्येन एकः वा द्वौ वा त्रयः वा, उत्कर्षेण संख्येयाः कापोतलेश्याः उपपद्यन्ते। जघन्येन एकः वा द्वौ वा त्रयः वा, उत्कर्षेण संख्येयाः कृष्णपाक्षिकाः उपपद्यन्ते। एवं शुक्लपाक्षिकाः अपि, एवं संज्ञिनः, एवम् असंज्ञिनः, एवं भवसिद्धिकाः, अभव-

गौतम! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के तीस लाख नरकावासों में से संख्येय विस्तार वाले नरकों में १. जघन्यतः एक, दो अथवा तीन, उत्कृष्टतः संख्येय नैरयिक उपपन्न होते हैं। २. जघन्यतः एक, दो अथवा तीन, उत्कृष्टतः संख्येय कापोतलेश्या वाले उपपन्न होते हैं। ३. जघन्यतः एक, दो अथवा तीन उत्कृष्टतः संख्येय कृष्णपाक्षिक उपपन्न होते हैं। ४-१४. इसी प्रकार शुक्लपाक्षिक भी, इसी प्रकार संज्ञी, असंज्ञी, भवसिद्धिक, अभवसिद्धिक, आभिनिबोधिकज्ञानी,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अभवसिद्धिया, आभिणिबोहियनाणी, सुयनाणी, ओहिनाणी, मइअण्णाणी, सुयअण्णाणी, विभंगनाणी। चक्खुदंसणी न उववज्जंति। जहण्णेणं एक्को वा दो वा तिण्णि वा, उक्कोसेणं संखेज्जा अचक्खुदंसणी उववज्जंति, एवं ओहिदंसणी वि। आहारसण्णोवउत्ता वि जाव परिग्गहसण्णोउत्ता वि। इत्थीवेयगा न उववज्जंति, पुरिसवेयगा न उववज्जंति। जहण्णेणं एक्को वा दो वा तिण्णि वा, उक्कोसेणं संखेज्जा नपुंसगवेयगा उववज्जंति। एवं कोहकसाई जाव लोभकसाई। सोइंदियोवउत्ता न उववज्जंति, एवं जाव फासिंदिओवउत्ता न उववज्जंति। जहण्णेणं एक्को वा दो वा तिण्णि वा, उक्कोसेणं संखेज्जा नोइंदिओवउत्ता उववज्जंति। मणजोगी न उववज्जंति, एवं वइजोगी वि। जहण्णेणं एक्को वा दो वा। तिण्णि वा, उक्कोसेणं संखेज्जा कायजोगी उववज्जंति। एवं सागारोवउत्ता वि, एवं अणागारोवउत्ता वि॥

सिद्धिकाः, आभिनिबोधिकज्ञानिनः, श्रुतज्ञानिनः, अवधिज्ञानिनः, मति-अज्ञानिनः, श्रुतअज्ञानिनः, विभङ्ग-ज्ञानिनः। चक्षुर्दर्शिनः न उपपद्यन्ते। जघन्येन एकः वा द्वौ वा, त्रयः वा उत्कर्षेण संख्येयाः अचक्षुर्दर्शिनः उपपद्यन्ते, एवम् अवधिदर्शिनः अपि। आहारसंज्ञोपयुक्ताः अपि यावत् परिग्रहसंज्ञोपयुक्ताः अपि। स्त्रीवेदकाः न उपपद्यन्ते, पुरुषवेदकाः न उपपद्यन्ते। जघन्येन एकः वा द्वौ वा त्रयः वा, उत्कर्षेण संख्येयाः नपुंसकवेदकाः उपपद्यन्ते। एवं क्रोधकषायिनः यावत् लोभकषायिनः। श्रोत्रेन्द्रियोपयुक्ताः न उपपद्यन्ते, एवं यावत् स्पर्शेन्द्रियोपयुक्ताः न उपपद्यन्ते। जघन्येन एकः वा द्वौ वा त्रयः वा, उत्कर्षेण संख्येयाः नोइन्द्रियोपयुक्ताः उपपद्यन्ते। मनोयोगिनः न उपपद्यन्ते, एवं वाग्योगिनः अपि। जघन्येन एकः वा द्वौ वा त्रयः वा, उत्कर्षेण संख्येयाः काययोगिनः उपपद्यन्ते। एवं साकारोपयुक्ताः अपि, एवम् अनाकारोपयुक्ताः अपि।

श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मतिअज्ञानी, श्रुत अज्ञानी, विभंगज्ञानी की वक्तव्यता। १५. चक्षुदर्शनी उपपन्न नहीं होते १६. जघन्यतः एक, दो अथवा तीन, उत्कृष्टतः संख्येय अचक्षुदर्शनी उपपन्न होते हैं। १७. इसी प्रकार अवधिदर्शनी भी। १८-२१. इसी प्रकार आहार संज्ञा-उपयुक्त यावत् परिग्रह-संज्ञा-उपयुक्त भी। २३. स्त्रीवेदक उपपन्न नहीं होते २३. पुरुष वेदक उपपन्न नहीं होते। २४. जघन्यतः एक, दो अथवा तीन, उत्कृष्टतः संख्येय नपुंसकवेदक उपपन्न होते हैं। २५-२८. इसी प्रकार क्रोध कषाय वाले यावत् लोभकषाय वाले उपपन्न होते हैं। २९-३३ श्रोत्रेन्द्रिय-उपयुक्त उपपन्न नहीं होते यावत् स्पर्शनेन्द्रिय उपयुक्त उपपन्न नहीं होते। ३४. जघन्यतः एक, दो अथवा तीन उत्कृष्टतः संख्येय नोइन्द्रिय-उपयुक्त उपपन्न होते हैं। ३५-३६ मनयोग वाले उपपन्न नहीं होते। इसी प्रकार वचन योग वाले भी। ३७. जघन्यतः एक, दो अथवा तीन, उत्कृष्टतः संख्येय काय योग वाले उपपन्न होते हैं। ३८-३९ इसी प्रकार साकार उपयोग वाले भी, अनाकार उपयोग वाले भी।

भाष्य

१. सूत्र ३

इस सूत्र में उनचालीस प्रश्न पूछे गए हैं। उनके उत्तर भी इस सूत्र में प्रदत्त हैं।

कापोत लेश्या—रत्नप्रभा पृथ्वी में कापोत लेश्या वाले जीव उपपन्न होते हैं, इसका तात्पर्य यह है—रत्नप्रभा में एक कापोत लेश्या होती है।[1] उपपत्ति का नियम यह है—जिस गति में जीव उपपन्न होता है, अंतर्मुहूर्त पहले उस गति की लेश्या हो जाती है।[2] इसी नियम के आधार पर यह कहा जा सकता है—रत्नप्रभा में कापोत लेश्या वाले जीव उपपन्न होते हैं।

नरक और देवलोक में प्राप्त लेश्या द्रव्य-लेश्या है इसलिए नरक में कृष्ण, नील और कापोत—ये तीन लेश्याएं बतलाई गई हैं।[3] देवों में छहों लेश्याएं उपलब्ध होती हैं।[4] यह द्रव्य लेश्याओं का निरूपण है। भाव लेश्याएं देव और नरक सबमें छह होती हैं।[5] रत्नप्रभा पृथ्वी में कापोत लेश्या वाले जीव पैदा होते हैं, इसका तात्पर्य है कि उसमें कापोत लेश्या का निर्देश है। वहां पैदा होने वाला जीव कापोत लेश्या के साथ ही उत्पन्न होता है।

जिन जीवों का संसार-भ्रमण अर्द्ध-पुद्गल-परिवर्त का शेष रहता है, वे शुक्लपाक्षिक हैं। जिनका इससे अधिक रहता है, वे कृष्णपाक्षिक हैं।[6]

संज्ञी असंज्ञी दोनों उत्पन्न होते हैं। इस विषय में जयाचार्य ने विस्तृत समीक्षा की है। उनके अनुसार विभंगज्ञान की उत्पत्ति से पहले नारक जीव असंज्ञी कहलाता है। रत्नप्रभा पृथ्वी में असंज्ञी जीव उत्पन्न होता है, वह अंतर्मुहूर्त तक विभंगज्ञान को प्राप्त नहीं करता इसलिए उसे असंज्ञी कहा गया।[7]

१. जीवा. ३/९८।
२. उत्तरा. वृ. (शान्त्याचार्य) प. ६६२।
३. पण्ण. १७/३७।
४. पण्ण. १७/४९,५०।
५. (क) श्री भिक्षु आगम विषय कोश पृ. ५०७।
(ख) विशेष विवरण के लिए द्रष्टव्य प्रज्ञापना पद १७ और उसकी वृत्ति।
६. भ. वृ. प. १३/३ :
जेसिमवड्ढो पोग्गल परियट्टो सेस ओउ संसारो।
ते सुक्कपक्खिया खलु, अहिगे पुण कण्हपक्खीआ॥
७. भ. जो. ढा. २७२, गा. ३१-५४।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नरक में उत्पत्ति के समय द्रव्येन्द्रियां नहीं होती, इसलिए चक्षुदर्शनी उत्पन्न नहीं होते।[1]

वृत्तिकार ने यहां एक प्रश्न उपस्थित किया है—यहां अचक्षु दर्शनी कैसे उत्पन्न होते हैं? वृत्तिकार ने इसका समाधान भी प्रस्तुत किया है। यहां अचक्षु दर्शन का अभिधेय सामान्य उपयोग मात्र है इसलिए उत्पत्ति के समय वह हो सकता है।[2]

नरक में भव-प्रत्ययिक नपुंसक वेद है इसलिए उसमें स्त्री वेद और पुरुष वेद उपपन्न नहीं होते।

उत्पत्ति के समय इन्द्रियां नहीं होती इसलिए रत्नप्रभा में श्रोत्रेन्द्रिय आदि इन्द्रियों से उपयुक्त जीव उत्पन्न नहीं होते। गर्भावक्रमण के समय भाव इन्द्रियों का होना बतलाया गया है। द्रष्टव्य भगवई १/३४०,४१। यहां भाव इन्द्रिय विवक्षित नहीं है। नरक में द्रव्य मन नहीं होता किंतु चैतन्य रूप भाव मन सदा रहता है। इस अपेक्षा से नोइन्द्रिय उपयुक्त की उपपत्ति होती है।[3]

उत्पत्ति के समय मनयोग और वचनयोग नहीं होता इसलिए मनोयोगी और वाग्योगी की उत्पत्ति का निषेध है।

काययोग संसारी जीवों के सदा रहता है।

संखेज्जवित्थडेसु नरएसु उव्वट्टण-पदं

४. इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए तीसाए निरयावाससयसहस्सेसु संखेज्ज-वित्थडेसु नरएसु एगसमएणं केवतिया नेरइया उव्वट्टंति? केवतिया काउलेस्सा उव्वट्टंति जाव केवतिया अणागारोवउत्ता उव्वट्टंति?

गोयमा! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए तीसाए निरयावाससयसहस्सेसु संखेज्जवित्थडेसु नरएसु एगसमएणं जहण्णेणं एक्को वा दो वा तिण्णि वा, उक्कोसेणं संखेज्जा नेरइया उव्वट्टंति। जहण्णेणं एक्को वा दो वा तिण्णि वा, उक्कोसेणं संखेज्जा काउलेस्सा उव्वट्टंति। एवं जाव सण्णी। असण्णी न उव्वट्टंति। जहण्णेणं एक्को वा दो वा तिण्णि वा, उक्कोसेणं संखेज्जा भवसिद्धिया उव्वट्टंति। एवं जाव सुयअण्णाणी। विभंगनाणी न उव्वट्टंति, चक्खुदंसणी न उव्वट्टंति। जहण्णेणं एक्को वा दो वा तिण्णि वा, उक्कोसेणं संखेज्जा अचक्खुदंसणी उव्वट्टंति। एवं जाव लोभकसाई। सोइंदियोवउत्ता न उव्वट्टंति एवं जाव फासिंदियोवउत्ता न उव्वट्टंति। जहण्णेणं एक्को वा दो वा तिण्णि वा, उक्कोसेणं संखेज्जा नोइंदियोवउत्ता उव्वट्टंति। मणजोगी न उव्वट्टंति, एवं वइजोगी वि। जहण्णेणं एक्को वा दो वा तिण्णि वा, उक्कोसेणं संखेज्जा कायजोगी उव्वट्टंति। एवं सागारोवउत्ता, अणागारोवउत्ता॥

संख्येयविस्तृतेषु नरकेषु उद्वर्तन-पदम्

अस्यां भदन्त! रत्नप्रभायां पृथिव्यां त्रिंशति निरयावासशतसहस्रेषु संख्येयविस्तृतेषु नरकेषु एकसमये कियन्तः नैरयिकाः उद्वर्तन्ते? कियन्तः कापोतलेश्याः उद्वर्तन्ते यावत् कियन्तः अनाकारोपयुक्ताः उद्वर्तन्ते?

गौतम! अस्यां रत्नप्रभायां पृथिव्यां त्रिंशत्सु निरयावासशतसहस्रेषु संख्येय-विस्तृतेषु नरकेषु एकसमये जघन्येन एकः वा द्वौ वा त्रयः वा, उत्कर्षेण संख्येयाः नैरयिकाः उद्वर्तन्ते। जघन्येन एकः वा द्वौ वा त्रयः वा, उत्कर्षेण संख्येयाः कापोतलेश्याः उद्वर्तन्ते। एवं यावत् संज्ञिनः। असंज्ञिनः न उद्वर्तन्ते। जघन्येन एकः वा द्वो वा त्रयः वा, उत्कर्षेण संख्येयाः भवसिद्धिकाः उद्वर्तन्ते। एवं यावत् श्रुतअज्ञानिनः। विभङ्गज्ञानिनः न उद्वर्तन्ते, चक्षुर्दर्शिनः न उद्वर्तन्ते। जघन्येन एकः वा द्वौ वा त्रयः वा, उत्कर्षेण संख्येयाः अचक्षुर्दर्शिनः उद्वर्तन्ते। एवं यावत् लोभकषायिनः। श्रोत्रेन्द्रियोपयुक्ताः न उद्वर्तन्ते, एवं यावत् स्पर्शेन्द्रियोप-युक्ताः न उद्वर्तन्ते। जघन्येन एकः वा द्वौ वा त्रयः वा, उत्कर्षेण संख्येयाः नोइन्द्रियोपयुक्ताः उद्वर्तन्ते। मनोयोगिनः न उद्वर्तन्ते, एवं वाग्योगिनः अपि। जघन्येन एकः वा द्वौ वा त्रयः वा, उत्कर्षेण संख्येयाः काययोगिनः उद्वर्तन्ते। एवं साकारोपयुक्ताः, अनाकारोपयुक्ताः।

संख्येय विस्तृत नरकों में उद्वर्तन पद

४. भंते! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के तीस लाख नरकावासों में से संख्येय विस्तृत नरकों में कितने नैरयिक उद्वर्तन करते हैं? कितने कापोत लेश्या वाले उद्वर्तन करते हैं यावत् कितने अनाकार उपयोग वाले उद्वर्तन करते हैं?

गौतम! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के तीस लाख नरकावासों में से संख्येय विस्तृत नरकों में एक समय में जघन्यतः एक, दो अथवा तीन, उत्कृष्टतः संख्येय नैरयिक उद्वर्तन करते हैं। जघन्यतः एक, दो अथवा तीन, उत्कृष्टतः संख्येय कापोतलेश्या वाले उद्वर्तन करते हैं। इसी प्रकार यावत् संज्ञी। असंज्ञी उद्वर्तन नहीं करते। जघन्यतः एक, दो अथवा तीन, उत्कृष्टतः संख्येय भवसिद्धिक उद्वर्तन करते हैं।

इसी प्रकार यावत् श्रुत अज्ञानी की वक्तव्यता। विभंगज्ञानी उद्वर्तन नहीं करते, चक्षुदर्शनी उद्वर्तन नहीं करते। जघन्यतः एक, दो अथवा तीन, उत्कृष्टतः संख्येय अचक्षुदर्शनी उद्वर्तन करते हैं। इसी प्रकार यावत् लोभ कषाय वाले। श्रोत्रेन्द्रिय-उपयुक्त-उद्वर्तन नहीं करते, इसी प्रकार यावत् स्पर्शनेन्द्रिय-उपयुक्त-उद्वर्तन नहीं करते। जघन्यतः एक, दो अथवा तीन, उत्कृष्टतः नो-इन्द्रिय-उपयुक्त उद्वर्तन करते हैं। मन योग वाले उद्वर्तन नहीं करते, इसी प्रकार वचन योग वाले भी जघन्यतः एक, दो अथवा तीन, उत्कृष्टतः संख्येय काय योग वाले उद्वर्तन करते हैं। इसी प्रकार साकार उपयोग वाले, अनाकार उपयोग वाले की वक्तव्यता।

---

१. भ. वृ. १३/३—इन्द्रियत्यागेन तत्रोत्पत्तिरिति।

२. वही, १३/३—इन्द्रियानाश्रितस्य सामान्योपयोगमात्रस्याचक्षुदर्शनशब्दाभि-धेयस्योत्पादसमयेऽपि भावाद् अचक्षुदर्शनिनः उत्पद्यते इत्युच्यत इति।

३. वही, १३/३।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भाष्य

१. सूत्र ४

उद्वर्तना का अर्थ है नरक से निर्गमन होना। वृत्तिकार के अनुसार यह पर-भव के प्रथम समय में होती है।[1] नारक जीव असंज्ञी में उत्पन्न नहीं होते इसलिए रत्नप्रभा से असंज्ञी की उद्वर्तना का निषेध किया गया है।

संखेज्जवित्थडेसु नरएसु सत्ता-पदं

५. इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए तीसाए निरयावाससयसहस्सेसु संखेज्ज-वित्थडेसु नरएसु केवतिया नेरइया पण्णत्ता? केवतिया काउलेस्सा जाव केवतिया अणागारोवउत्ता पण्णत्ता? केवतिया अणंतरोववण्णगा पण्णत्ता? केवतिया परंपरोववण्णगा पण्णत्ता? केवतिया अणंतरोवगाढा पण्णत्ता? केवतिया परंपरोवगाढा पण्णत्ता? केवतिया अणंतराहारा पण्णत्ता? केवतिया परंपराहारा पण्णत्ता? केवतिया अणंतरपज्जत्ता पण्णत्ता? केवतिया परंपरपज्जत्ता पण्णत्ता? केवतिया चरिमा पण्णत्ता? केवतिया अचरिमा पण्णत्ता?

संख्येयविस्तृतेषु नरकेषु सत्ता-पदम्

अस्यां भदन्त! रत्नप्रभायां पृथिव्यां त्रिंशति निरयावासशतसहस्रेषु संख्येय-विस्तृतेषु नरकेषु कियन्तः नैरयिकाः प्रज्ञप्ताः? कियन्तः कापोतलेश्याः यावत् कियन्तः अनाकारोपयुक्ताः प्रज्ञप्ताः? कियन्तः अनन्तरोपपन्नकाः प्रज्ञप्ताः? कियन्तः परम्परोपपन्नकाः प्रज्ञप्ताः? कियन्तः अनन्तरावगाढाः प्रज्ञप्ताः? कियन्तः परम्परावगाढाः प्रज्ञप्ताः? कियन्तः अनन्तराहाराः प्रज्ञप्ताः? कियन्तः परम्पराहाराः प्रज्ञप्ताः? कियन्तः अनन्तरपर्याप्ताः प्रज्ञप्ताः? कियन्तः परम्परपर्याप्ताः प्रज्ञप्ताः? कियन्तः चरमाःप्रज्ञप्ताः? कियन्तः अचरमाः प्रज्ञप्ताः?

संख्येय-विस्तृत नरकों में सत्ता पद

५. भंते! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के तीस लाख नरकावासों में से संख्येय विस्तृत नरकों में कितने नैरयिक प्रज्ञप्त हैं? कितने कापोत लेश्या वाले यावत् कितने अनाकार उपयोग वाले प्रज्ञप्त हैं? कितने अनन्तर उपपन्नक-प्रथम समय में उपपन्न होने वाले प्रज्ञप्त हैं? कितने परंपर-उपपन्नक-द्वितीय आदि समय में उपपन्न होने वाले प्रज्ञप्त हैं? कितने अनंतर अवगाढ-अवगाहन करने वाले प्रज्ञप्त हैं? कितने परंपर अवगाढ प्रज्ञप्त हैं? कितने अनंतर-आहार वाले प्रज्ञप्त हैं? कितने परंपर-आहार वाले प्रज्ञप्त हैं? कितने अनंतर-पर्याप्तक प्रज्ञप्त हैं? कितने परंपर-पर्याप्तक प्रज्ञप्त हैं? कितने चरम भव वाले प्रज्ञप्त हैं? कितने अचरम भव वाले प्रज्ञप्त हैं?

गोयमा! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए तीसाए निरयावाससयसहस्सेसु संखेज्ज-वित्थडेसु नरएसु संखेज्जा नेरइया पण्णत्ता, संखेज्जा काउलेस्सा पण्णत्ता, एवं जाव संखेज्जा सण्णी पण्णत्ता। असण्णी सिय अत्थि, सिय नत्थि। जइ अत्थि जहण्णेणं एक्को वा दो वा तिण्णि वा, उक्कोसेणं संखेज्जा पण्णत्ता। संखेज्जा भवसिद्धिया पण्णत्ता। एवं जाव संखेज्जा परिग्गहसण्णोवउत्ता पण्णत्ता। इत्थिवेदगा नत्थि, पुरिसवेदगा नत्थि, संखेज्जा नपुंसगवेदगा पण्णत्ता। एवं कोहकसाई वि, माणकसाई जहा असण्णी, एवं जाव लोभकसाई। संखेज्जा सोइंदियोवउत्ता पण्णत्ता, एवं जाव फासिंदियोवउत्ता। नोइंदियोवउत्ता जहा असण्णी। संखेज्जा मणजोगी पण्णत्ता। एवं जाव अणागारोवउत्ता। अणंतरोववण्णगा सिय अत्थि, सिय नत्थि। जइ अत्थि जहा असण्णी। संखेज्जा परंपरोववण्णगा पण्णत्ता। एवं

गौतम! अस्यां रत्नप्रभायां पृथिव्यां त्रिंशति निरयावासशतसहस्रेषु संख्येय-विस्तृतेषु नरकेषु संख्येयाः नैरयिकाः प्रज्ञप्ताः, संख्येयाः कापोतलेश्याः प्रज्ञप्ताः, एवं यावत् संख्येयाः संज्ञिनः प्रज्ञप्ताः। असंज्ञी स्यात् अस्ति, स्यात् नास्ति। यदि अस्ति जघन्येन एकः वा द्वौ वा त्रयः वा, उत्कर्षेण संख्येयाः प्रज्ञप्ताः। संख्येयाः भवसिद्धिकाः प्रज्ञप्ताः। एवं यावत् संख्येयाः परिग्रहसंज्ञोपयुक्ताः प्रज्ञप्ताः। स्त्रीवेदकाः न सन्ति, पुरुषवेदकाः न सन्ति, संख्येयाः नपुंसकवेदकाः प्रज्ञप्ताः। एवं क्रोधकषायी अपि, मानकषायी यथा असंज्ञी, एवं यावत् लोभकषायी। संख्येयाः श्रोत्रेन्द्रियोपयुक्ताः प्रज्ञप्ताः, एवं यावत् स्पर्शनेन्द्रियोपयुक्ताः। नोइन्द्रियोपयुक्ताः यथा असंज्ञी। संख्येयाः मनोयोगिनः प्रज्ञप्ताः। एवं यावत् अनाकारोपयुक्ताः। अनन्तरोपपन्नकाः स्यात् अस्ति स्यात् नास्ति। यदि अस्ति यथा असंज्ञी।

गौतम! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के तीस लाख नरकावासों में से संख्येय-विस्तृत नरकों में संख्येय नैरयिक प्रज्ञप्त हैं, संख्येय कापोत लेश्या वाले प्रज्ञप्त हैं, इसी प्रकार यावत् संख्येय संज्ञी प्रज्ञप्त हैं। असंज्ञी स्यात् है, स्यात् नहीं है। यदि है तो जघन्यतः एक, दो अथवा तीन उत्कृष्टतः संख्येय प्रज्ञप्त हैं। संख्येय भविसिद्धिक प्रज्ञप्त हैं। इसी प्रकार यावत् संख्येय परिग्रह-संज्ञा-उपयुक्त प्रज्ञप्त हैं। स्त्रीवेदक नहीं हैं, पुरुषवेदक नहीं हैं, संख्येय नपुंसकवेदक प्रज्ञप्त हैं। इसी प्रकार क्रोध कषाय वाले, मान कषाय वाले असंज्ञी की भांति प्रज्ञप्त हैं, इसी प्रकार यावत् लोभ कषाय वाले। संख्येय श्रोत्रेन्द्रिय उपयुक्त प्रज्ञप्त हैं, इसी प्रकार यावत् स्पर्शनेन्द्रिय-उपयुक्त प्रज्ञप्त हैं। नोइंद्रिय उपयुक्त असंज्ञी की भांति प्रज्ञप्त हैं। संख्येय मन योग वाले प्रज्ञप्त हैं। इसी प्रकार यावत् अनाकार उपयोग वाले प्रज्ञप्त हैं। अनंतर-उपपन्नक स्यात् हैं, स्यात् नहीं हैं। यदि हैं तो असंज्ञी की भांति प्रज्ञप्त हैं। संख्येय

१. भ. वृ. १३/४–उद्वर्तना हि परभवप्रथमसमये स्यात् न च नारका असञ्ज्ञिषूत्पद्यन्तेऽतस्तेऽसञ्ज्ञिनः सन्तो नोद्वर्तन्त इत्युच्यते।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जहा अणंतरोववण्णगा तहा अणंतरोवगाढगा अणंतराहारगा अणंतरपज्जत्तगा। परंपरोवगाढगा जाव अचरिमा जहा परंपरोववण्णगा॥

संख्येयाः परम्परोपपन्नकाः प्रज्ञप्ताः। एवं यथा अनन्तरोपपन्नकाः तथा अनन्तरावगाढकाः, अनन्तराहारकाः, अनन्तरपर्याप्तकाः। परम्परावगाढकाः यावत् अचरमाः यथा परम्परोपपन्नकाः।

परंपर-उपपन्नक प्रज्ञप्त हैं। इसी प्रकार अनंतर-उपपन्नक की भांति अनंतर-अवगाढक अनंतर-आहार वाले, अनंतर-पर्याप्तक प्रज्ञप्त हैं। परंपर-अवगाढक यावत् अचरम भव वाले परंपर-उपपन्नक की भांति प्रज्ञप्त हैं।

भाष्य

१. सूत्र ५

प्रस्तुत आलापक में **सत्ता**–रत्नप्रभा में विद्यमान नारक जीवों के बारे में चिंतन किया गया है। असंज्ञी अवस्था से उत्पन्न नारकों को अंतर्मुहूर्त्त तक विभंगज्ञान उपलब्ध नहीं होता। वे जीव नरक में कभी होते हैं, कभी नहीं होते।

शब्द-विमर्श

नोइन्द्रिय-उपयुक्त–उत्पत्ति के समय नारक जीव नो इन्द्रियोपयुक्त होते हैं। मन योग के विकसित होने पर नो इन्द्रिय की अपेक्षा नहीं रहती इसलिए नो इन्द्रियोपयुक्त जीव कदाचित् होते हैं, कदाचित् नहीं होते।

अनंतरोपपन्नक–प्रथम समय में उत्पन्न।

परंपरोपपन्नक–उत्पत्ति समय की अपेक्षा द्वितीय, तृतीय आदि समयों में वर्तमान।

अनंतरावगाढ–विवक्षित क्षेत्र का प्रथम समय में अवगाहन करने वाले।

परंपरावगाढ–विवक्षित क्षेत्र का द्वितीय, तृतीय आदि समय में अवगाहन करने वाले।

अनंतर-आहारक–प्रथम समय में आहार करने वाले।

परंपर-आहारक–द्वितीय, तृतीय आदि समय में आहार करने वाले।

अनंतर-पर्याप्तक–पर्याप्त होने के प्रथम समय वाले।

परंपर-पर्याप्तक–पर्याप्त होने के द्वितीय, तृतीय आदि समय वाले।

चरम–अभयदेव सूरि ने चरम के दो अर्थ किए हैं–

१. जिन जीवों का नारक भव चरम है, उन्हें चरम कहा गया है।

२. नारक भव के चरम समय में वर्तमान जीव चरम हैं।[1]

६. **इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए तीसाए निरयावाससयसहस्सेसु असंखेज्जवित्थडेसु नरएसु एगसमएणं केवतिया नेरइया उववज्जंति जाव केवतिया अणागारोवउत्ता उववज्जंति?**

गोयमा! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए तीसाए निरयावाससयसहस्सेसु असंखेज्जवित्थडेसु नरएसु एगसमएणं जहण्णेणं एक्को वा दो वा तिण्णि वा, उक्कोसेणं असंखेज्जा नेरइया उववज्जंति एवं जहेव संखेज्जवित्थडेसु तिण्णि गमगा तहा असंखेज्जवित्थडेसु वि तिण्णि गमगा भाणियव्वा, नवरं–असंखेज्जा भाणियव्वा, सेसं तं चेव जाव असंखेज्जा अचरिमा पण्णत्ता, नवरं–संखेज्जवित्थडेसु असंखेज्जवित्थडेसु वि ओहिनाणी आहिंदंसणी य संखेज्जा उव्वट्टावेयव्वा, सेसं तं चेव॥

अस्यां भदन्त! रत्नप्रभायां पृथिव्यां त्रिंशति निरयावासशतसहस्रेषु असंख्येयविस्तृतेषु नरकेषु एकसमयेन कियन्तः नैरयिकाः उपपद्यन्ते यावत् कियन्तः अनाकारोपयुक्ताः उपपद्यन्ते?

गौतम! अस्यां रत्नप्रभायां पृथिव्यां त्रिंशति निरयावासशतसहस्रेषु असंख्येयविस्तृतेषु नरकेषु एकसमये जघन्येन एकः वा द्वौ वा त्रयः वा, उत्कर्षेण असंख्येयाः नैरयिकाः उपपद्यन्ते। एवं यथैव संख्येयविस्तृतेषु त्रयः गमकाः तथा असंख्येयविस्तृतेषु अपि त्रयः गमकाः भणितव्याः, नवरम्–असंख्येयाः भणितव्याः, शेषं तत् चैव यावत् असंख्येयाः अचरमाः प्रज्ञप्ताः, नवरम्–संख्येयविस्तृतेषु असंख्येयविस्तृतेषु अपि अवधिज्ञानिनः अवधिदर्शिनः च संख्येयाः उद्वर्त्तयितव्याः, शेषं तद्चैव।

६. भंते! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के तीस लाख नरकावासों में से असंख्येय विस्तृत नरकों में एक समय में कितने नैरयिक उपपन्न होते हैं यावत् कितने अनाकार उपयोग वाले उपपन्न होते हैं?

गौतम! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के तीस लाख नरकावासों में से असंख्येय-विस्तृत नरकों में एक समय में जघन्यतः एक, दो अथवा तीन, उत्कृष्टतः असंख्येय नैरयिक उपपन्न होते हैं। इसी प्रकार संख्येय-विस्तृत नरकों के तीन गमक की भांति असंख्येय-विस्तृत नरकों के तीन गमक वक्तव्य हैं, इतना विशेष है–संख्येय के स्थान पर असंख्येय वक्तव्य है। शेष पूर्ववत् यावत् असंख्येय अचरम भव वाले प्रज्ञप्त हैं, इतना विशेष है–संख्येय-विस्तृत और असंख्येय-विस्तृत नरकों में भी अवधिज्ञानी और अवधिदर्शनी संख्येय उद्वर्तन करते हैं।

१. भ. वृ. १३/५–चरमो नारकभवेषु स एव भवो येषां ते चरमाः नारकभवस्य वा चरमसमये वर्त्तमानाश्चरमाः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भाष्य

१. सूत्र ६

तीन गमक–उत्पत्ति, उद्वर्तना और सत्ता–ये तीन गमक हैं।[1]

अवधिज्ञान और अवधिदर्शन के साथ उद्वर्तना करने वाले जीव बहुत थोड़े होते हैं इसलिए उन्हें संख्येय कहा गया है।[2]

७. सक्करप्पभाए णं भंते ! पुढवीए केवतिया निरयावाससयसहस्सा पण्णत्ता ?
गोयमा ! पणुवीसं निरयावाससयसहस्सा पण्णत्ता।
ते णं भंते ! किं संखेज्जवित्थडा ? असंखेज्जवित्थडा ?
एवं जहा रयणप्पभाए तहा सक्करप्पभाए वि, नवरं–असण्णी तिसु वि गमएसु न भण्णंति, सेसं तं चेव॥

शर्कराप्रभायां भदन्त ! पृथिव्यां कियन्ति निरयावासशतसहस्राणि प्रज्ञप्तानि?
गौतम! पञ्चविंशतिः निरयावासशतसहस्राणि प्रज्ञप्तानि।
ते भदन्त! किं संख्येयविस्तृताः? असंख्येयविस्तृताः?
एवं यथा रत्नप्रभायां तथा शर्कराप्रभायां अपि, नवरम्–असंज्ञी त्रिषु अपि गमकेषु न भण्यते, शेषं तच्चैव।

७. भंते! शर्कराप्रभा पृथ्वी के कितने लाख नरकावास प्रज्ञप्त हैं?
गौतम! पच्चीस लाख नरकावास प्रज्ञप्त हैं।
भंते! क्या वे संख्येय-विस्तृत हैं? असंख्येय विस्तृत हैं?
इस प्रकार जैसे रत्नप्रभा पृथ्वी की वैसे ही शर्कराप्रभा पृथ्वी की वक्तव्यता, इतना विशेष है–असंज्ञी के तीनों गमक वक्तव्य नहीं हैं, शेष पूर्ववत्।

८. वालुयप्पभाए णं–पुच्छा।
गोयमा ! पन्नरस निरयावाससयसहस्सा पण्णत्ता, सेसं जहा सक्करप्पभाए, नाणत्तं लेसासु, लेसाओ जहा पढमसए॥

वालुकाप्रभायां–पृच्छा।
गौतम! पञ्चदश निरयावासशतसहस्राणि प्रज्ञप्तानि, शेषं यथा शर्कराप्रभायाम्, नानात्वं लेश्यासु, लेश्याः यथा प्रथमशते।

८. वालुकाप्रभा की पृच्छा।
गौतम! पंद्रह लाख नरकावास प्रज्ञप्त हैं। शेष शर्कराप्रभा की भांति वक्तव्य है, लेश्या में नानात्व है। लेश्या प्रथम शतक (१/२४४) की भांति वक्तव्य है।

९. पंकप्पभाए णं–पुच्छा।
गोयमा ! दस निरयावाससयसहस्सा पण्णत्ता, एवं जहा सक्करप्पभाए, नवरं–ओहिनाणी ओहिदंसणी य न उव्वट्टंति, सेसं तं चेव॥

पंकप्रभायां–पृच्छा।
गौतम! दश निरयावासशतसहस्राणि प्रज्ञप्तानि, एवं यथा शर्कराप्रभायाम्, नवरम्–अवधिज्ञानिनः अवधिदर्शिनः च न उद्वर्तन्ते, शेषं तच्चैव।

९. पंकप्रभा की पृच्छा।
गौतम! दस लाख नरकावास प्रज्ञप्त हैं। इसी प्रकार शर्कराप्रभा की भांति वक्तव्यता, इतना विशेष है–अवधिज्ञानी और अवधिदर्शनी उद्वर्तन नहीं करते। शेष पूर्ववत्।

१०. धूमप्पभाए णं–पुच्छा।
गोयमा ! तिण्णि निरयावाससयसहस्सा, एवं जहा पंकप्पभाए॥

धूमप्रभायां–पृच्छा।
गौतम! त्रीणि निरयावासशतसहस्राणि, एवं यथा पंकप्रभायाम्।

१०. धूमप्रभा की पृच्छा।
गौतम! तीन लाख नरकावास प्रज्ञप्त हैं। इसी प्रकार पंकप्रभा की भांति वक्तव्यता।

११. तमाए णं भंते ! पुढवीए केवतिया निरयावाससयसहस्सा पण्णत्ता ?
गोयमा ! एगे पंचूणे निरयावाससयसहस्से पण्णत्ते। सेसं जहा पंकप्पभाए॥

तमायां भदन्त! पृथिव्यां कियन्ति निरयावासशतसहस्राणि प्रज्ञप्तानि?
गौतम! एकं पञ्चोनं निरयावासशतसहस्रं प्रज्ञप्तम्। शेषं यथा पंकप्रभायाम्।

११. भंते! तमा पृथ्वी के कितने लाख नरकावास प्रज्ञप्त हैं?
गौतम! पांच कम एक लाख (निन्यानवें हजार नौ सौ पिचानवें) नरकावास प्रज्ञप्त हैं। शेष पंकप्रभा की भांति वक्तव्यता।

१२. अहेसत्तमाए णं भंते ! पुढवीए कति अणुत्तरा महतिमहालया महानिरया पण्णत्ता ?

अधःसप्तम्यां भदन्त! पृथिव्यां कति अनुत्तराः महामहान्तः महानिरयाः प्रज्ञप्ताः?

१२. भंते! अधःसप्तमी पृथ्वी के कितने अनुत्तर, विशालतम महानरक प्रज्ञप्त हैं?

---

१. भ. वृ. १३/६–उववज्जंति, उव्वट्टंति पन्नत्ति एते त्रयो गमाः।

२. वही, १३/६–ते हि तीर्थंकरादय एव भवन्ति, ते च स्तोकाः स्तोकत्वाच्च संख्याता एवेति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा ! पंच अणुत्तरा महतिमहालया महानिरया पण्णत्ता, तं जहा–काले, महाकाले, रोरुए, महारोरुए, अपइट्ठाणे।

गौतम! पञ्च अनुत्तराः महामहान्तः महानिरयाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–कालः, महाकालः, रोरुकः, महारोरुकः, अप्रतिष्ठानः।

गौतम! पांच अनुत्तर विशालतम महानरक प्रज्ञप्त हैं, जैसे–काल, महाकाल, रोरुक, महारोरुक और अप्रतिष्ठान।

ते णं भंते ! किं संखेज्जवित्थडा ? असंखेज्जवित्थडा ?

ते भदन्त! किं संख्येयविस्तृताः? असंख्येयविस्तृताः?

भंते! क्या वे संख्येय-विस्तृत हैं? असंख्येय-विस्तृत हैं?

गोयमा ! संखेज्जवित्थडे य असंखेज्जवित्थडा य॥

गौतम! संख्येयविस्तृतः च असंख्येयविस्तृताः च।

गौतम! संख्येय विस्तृत और असंख्येय विस्तृत हैं।

१३. अहेसत्तमाए णं भंते ! पुढवीए पंचसु अणुत्तरेसु महतिमहालएसु महानिरएसु संखेज्जवित्थडे नरए एगसमएणं केवतिया नेरइया उववज्जंति ?

एवं जहा पंकप्पभाए, नवरं–तिसु नाणेसु न उववज्जंति, न उव्वट्टंति, पण्णत्तएसु तहेव अत्थि। एवं असंखेज्जवित्थडेसु वि, नवरं–असंखेज्जा भाणियव्वा।

अधःसप्तम्यां भदन्त! पृथिव्यां पञ्चसु अनुत्तरेषु महामहत्सु महानिरयेषु संख्येयविस्तृते नरके एकसमये कियन्तः नैरयिकाः उपपद्यन्ते?

एवं यथा पंकप्रभायां, नवरं–त्रिषु ज्ञानेषु न उपपद्यन्ते, न उद्वर्तन्ते, प्रज्ञप्तकेषु तथैव अस्ति। एवम् असंख्येयविस्तृतेषु अपि, नवरम्–असंख्येयाः भणितव्याः।

१३. भंते! अधःसप्तमी पृथ्वी के पांच अनुत्तर विशालतम महानरकों में से संख्येय-विस्तृत नरकों में एक समय में कितने नैरयिक उपपन्न होते हैं?

इस प्रकार पंकप्रभा की भांति वक्तव्यता, इतना विशेष है–मति, श्रुत और अवधिज्ञानी उपपन्न नहीं होते, उद्वर्तन नहीं करते किन्तु वहां मति, श्रुत तथा अवधि ज्ञान की सत्ता है। इसी प्रकार असंख्येय-विस्तृत महानरकों की वक्तव्यता, इतना विशेष है–संख्येय के स्थान पर असंख्येय वक्तव्य है।

भाष्य

१. सूत्र १३

अधःसप्तमी में सम्यक्त्व रहित जीव उत्पन्न होते हैं तथा उद्वर्तन करते हैं इसलिए उनके उपपात और उद्वर्तन–दोनों में तीन ज्ञान नहीं होते।

'पण्णत्तएसु' यह पाठ सत्ता के गमक का सूचक है। सत्ता-काल में सम्यक्त्व लाभ हो सकता है इसलिए तीनों ज्ञान की प्राप्ति होती है, 'तहेव' शब्द के द्वारा यह सूचित किया गया है। द्रष्टव्य भगवई १३/३।

१४. इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए तीसाए निरयावाससयसहस्सेसु संखेज्जवित्थडेसु नरएसु किं सम्मद्दिट्ठी नेरइया उववज्जंति ? मिच्छद्दिट्ठी नेरइया उववज्जंति ? सम्मामिच्छद्दिट्ठी नेरइया उववज्जंति ?

गोयमा ! सम्मद्दिट्ठी वि नेरइया उववज्जंति, मिच्छद्दिट्ठी वि नेरइया उववज्जंति, नो सम्मामिच्छद्दिट्ठी नेरइया उववज्जंति॥

अस्यां भदन्त! रत्नप्रभायां पृथिव्यां त्रिंशति निरयावासशतसहस्रेषु संख्येयविस्तृतेषु नरकेषु किं सम्यग्दृष्टयः नैरयिकाः उपपद्यन्ते? मिथ्यादृष्टयः नैरयिकाः उपपद्यन्ते? सम्यग्मिथ्यादृष्टयः नैरयिकाः उपपद्यन्ते?

गौतम! सम्यग्दृष्टयः अपि नैरयिकाः उपपद्यन्ते, मिथ्यादृष्टयः अपि नैरयिकाः उपपद्यन्ते, नो सम्यग्मिथ्यादृष्टयः नैरयिकाः उपपद्यन्ते।

१४. भंते! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के तीस लाख नरकावासों में से संख्येय-विस्तृत नरकों में क्या सम्यग्दृष्टि नैरयिक उपपन्न होते हैं? मिथ्यादृष्टि नैरयिक उपपन्न होते हैं? सम्यग्मिथ्यादृष्टि नैरयिक उपपन्न होते हैं?

गौतम! सम्यग्दृष्टि नैरयिक भी उपपन्न होते हैं, मिथ्यादृष्टि नैरयिक भी उपपन्न होते हैं, सम्यग्मिथ्यादृष्टि नैरयिक उपपन्न नहीं होते।

१५. इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए तीसाए निरयावाससयसहस्सेसु संखेज्जवित्थडेसु नरएसु किं सम्मद्दिट्ठी नेरइया उव्वट्टंति ?

एवं चेव॥

अस्यां भदन्त! रत्नप्रभायां पृथिव्यां त्रिंशति निरयावासशतसहस्रेषु संख्येयविस्तृतेषु नरकेषु किं सम्यग्दृष्टयः नैरयिकाः उद्वर्तन्ते?

एवं चैव।

१५. भंते! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के तीस लाख नरकावासों में से संख्येय-विस्तृत नरकों में क्या सम्यग्दृष्टि नैरयिक उद्वर्तन करते हैं? पूर्ववत्।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१६. इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए तीसाए निरयावाससयसहस्सेसु संखेज्जवित्थडा नरगा किं सम्मद्दिट्ठीहिं नेरइएहिं अविरहिया? मिच्छदिट्ठीहिं नेरइएहिं अविरहिया? सम्मामिच्छदिट्ठीहिं नेरइएहिं अविरहिया ?

गोयमा ! सम्मद्दिट्ठीहिं नेरइएहिं अविरहिया, मिच्छदिट्ठीहिं वि नेरइएहिं अविरहिया, सम्मामिच्छदिट्ठीहिं नेरइएहिं अविरहिया विरहिया वा।

एवं असंखेज्जवित्थडेसु वि तिण्णि गमगा भाणियव्वा। एवं सक्करप्पभाए वि, एवं जाव तमाए वि॥

अस्यां भदन्त! रत्नप्रभायां पृथिव्यां त्रिंशति निरयावासशतसहस्रेषु संख्येय-विस्तृताः नरकाः किं सम्यग्दृष्टिभिः नैरयिकैः अविरहिताः? मिथ्यादृष्टिभिः नैरयिकैः अविरहिताः? सम्यग्मिथ्या-दृष्टिभिः नैरयिकैः अविरहिताः?

गौतम! सम्यग्दृष्टिभिः नैरयिकैः अविरहिताः, मिथ्यादृष्टिभिः अपि नैरयिकैः अविरहिताः, सम्यग्मिथ्या-दृष्टिभिः नैरयिकैः अविरहिताः विरहिताः वा।

एवम् असंख्येयविस्तृतेषु अपि त्रयः गमकाः भणितव्याः। एवं शर्कराप्रभायाम् अपि, एवं यावत् तमायाम् अपि।

१६. भंते! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के तीस लाख नरकावासों में से संख्येय-विस्तृत नरकों में क्या सम्यग्दृष्टि नैरयिकों का विरह होता है? मिथ्यादृष्टि नैरयिकों का विरह होता है? सम्यग्मिथ्यादृष्टि नैरयिकों का विरह होता है?

गौतम! सम्यग्दृष्टि नैरयिकों का विरह नहीं होता, मिथ्यादृष्टि नैरयिकों का विरह नहीं होता, सम्यग्मिथ्यादृष्टि नैरयिकों का अविरह अथवा विरह दोनों होते हैं।

इसी प्रकार असंख्येय-विस्तृत नरकों में तीन गमक वक्तव्य हैं। इसी प्रकार शर्कराप्रभा की वक्तव्यता, इसी प्रकार यावत् तमा की वक्तव्यता।

भाष्य

१. सूत्र १४-१६

सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में मरण नहीं होता इसलिए रत्नप्रभा पृथ्वी में सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव उत्पन्न नहीं होते, उद्वर्तन भी नहीं होता।[1]

मध्यकाल में सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थान की प्राप्ति हो सकती है इसलिए रत्नप्रभा पृथ्वी सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवों से विरहित और अविरहित–दोनों हो सकती है।[2]

१७. अहेसत्तमाए णं भंते ! पुढवीए पंचसु अणुत्तरेसु जाव संखेज्जवित्थडे नरए किं सम्मद्दिट्ठी नेरइया–पुच्छा।

गोयमा ! सम्मद्दिट्ठी नेरइया न उववज्जंति, मिच्छदिट्ठी नेरइया उववज्जंति, सम्मामिच्छदिट्ठी नेरइया न उववज्जंति। एवं उव्वट्टंति वि, अविरहिए जहेव रयणप्पभाए। एवं असंखेज्जवित्थडेसु वि तिण्णि गमगा॥

अधःसप्तम्यां भदन्त! पृथिव्यां पञ्चसु अनुत्तरेषु यावत् संख्येयविस्तृते नरके किं सम्यग्दृष्टयः नैरयिकाः–पृच्छा।

गौतम! सम्यग्दृष्टयः नैरयिकाः न उपपद्यन्ते, मिथ्यादृष्टयः नैरयिकाः उपपद्यन्ते, सम्यग्मिथ्यादृष्टयः नैरयिकाः न उपपद्यन्ते। एवम् उद्वर्तन्ते अपि, अविरहितः यथैव रत्नप्रभायाम्। एवम् असंख्येयविस्तृतेषु अपि त्रयः गमकाः।

१७. भंते! अधःसप्तमी के पांच अनुत्तर यावत् संख्येय-विस्तृत नरकों में सम्यग्दृष्टि नैरयिकों की पृच्छा।

गौतम! सम्यग्दृष्टि नैरयिक उपपन्न नहीं होते, मिथ्यादृष्टि नैरयिक उपपन्न होते हैं, सम्यग्मिथ्यादृष्टि नैरयिक उपपन्न नहीं होते। इसी प्रकार उद्वर्तन की वक्तव्यता। अविरह की रत्नप्रभा की भांति वक्तव्यता। इसी प्रकार असंख्येय-विस्तृत नरकों में भी तीन गमक वक्तव्य हैं।

१८. से नूणं भंते! कण्हलेस्से, नीललेस्से जाव सुक्कलेस्से भवित्ता कण्हलेस्सेसु नेरइएसु उववज्जंति ?

हंता गोयमा ! कण्हलेस्से जाव उववज्जंति॥

सः नूनं भदन्त! कृष्णलेश्यः नीललेश्यः यावत् शुक्ललेश्यः भूत्वा कृष्णलेश्येषु नैरयिकेषु उपपद्यन्ते ?

हन्त गौतम! कृष्णलेश्यः यावत् उपपद्यन्ते।

१८. भंते! वे कृष्णलेश्या, नीललेश्या यावत् शुक्ललेश्या वाले होकर कृष्णलेश्या वाले नैरयिकों में उपपन्न होते हैं?

हां गौतम! कृष्णलेश्या में यावत् उपपन्न होते हैं।

१९. से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ–कण्हलेस्से जाव उववज्जंति ?

तत् केनार्थेन भदन्त! एवमुच्यते–कृष्णलेश्यः यावत् उपपद्यन्ते ?

१९. भंते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है–कृष्णलेश्या में यावत् उपपन्न होते हैं?

---

१. भ. वृ. १३/१४-१७–न सम्मिच्छो कुणइ कालं इति वचनात् मिश्रदृष्टयो न म्रियन्ते नापि तद्भवप्रत्ययं तेषामवधिज्ञानं स्यात् येन मिश्रदृष्टयः सन्तस्ते उत्पद्येरन्।

२. वही,–कादाचित्कत्वेन तेषां विरहसंभवादिति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा ! लेस्सट्ठाणेसु संकिलिस्स-माणेसु संकिलिस्समाणेसु कण्हलेसं परिणमइ, परिणमित्ता कण्हलेसेसु नेरइएसु उववज्जंति। से तेणट्ठेणं जाव उववज्जंति॥

गौतम! लेश्यास्थानेषु संक्लिश्यमानेषु संक्लिश्यमानेषु कृष्णलेश्यां परिणमति, परिणम्य कृष्णलेश्येषु नरकेषु उपपद्यन्ते तत् तेनार्थेन यावत् उपपद्यन्ते।

गौतम! लेश्या-स्थानों में संक्लेश होते होते वे कृष्णलेश्या में परिणत होते हैं, परिणत होकर कृष्णलेश्या वाले नैरयिकों में उपपन्न होते हैं। इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है--कृष्णलेश्या में यावत् उपपन्न होते हैं।

२०. से नूणं भंते ! कण्हलेस्से जाव सुक्कलेस्से भवित्ता नीललेस्सेसु नेरइएसु उववज्जंति ?
हंता गोयमा ! जाव उववज्जंति॥

सः नूनं भदन्त! कृष्णलेश्यः यावत् शुक्ललेश्यः भूत्वा नीललेश्येषु नैरयिकेषु उपपद्यन्ते ?
हन्त गौतम! यावत् उपपद्यन्ते।

२०. भंते! वे कृष्णलेश्या यावत् शुक्ललेश्या वाले होकर नीललेश्या वाले नैरयिकों में उपपन्न होते हैं?
हां गौतम! नीललेश्या में यावत् उपपन्न होते हैं।

२१. से केणट्ठेणं जाव उववज्जंति ?

गोयमा ! लेस्सट्ठाणेसु संकिलिस्स-माणेसु वा विसुज्झमाणेसु वा नीललेस्सं परिणमइ, परिणमित्ता नीललेस्सेसु नेरइएसु उववज्जंति। से तेणट्ठेणं गोयमा ! जाव उववज्जंति।

तत् केनार्थेन यावत् उपपद्यन्ते ?

गौतम! लेश्यास्थानेषु संक्लिश्यमानेषु वा विशुध्यमानेषु वा नीललेश्यां परिणमति, परिणम्य नीललेश्येषु नैरयिकेषु उपपद्यन्ते। तत् तेनार्थेन गौतम! यावत् उपपद्यन्ते।

२१. यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है--नील लेश्या में यावत् उपपन्न होते हैं?
गौतम! लेश्यास्थान में संक्लेश होते होते अथवा विशुद्धि होते होते नीललेश्या में परिणत होते हैं। परिणत होकर नीललेश्या वाले नैरयिकों में उपपन्न होते हैं। गौतम! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है--नीललेश्या में यावत् उपपन्न होते हैं।

२२. से नूणं भंते ! कण्हलेस्से, नील-लेस्सेजाव सुक्कलेस्से भवित्ता काउलेस्सेसु नेरइएसु उववज्जंति ?
एवं जहा नीललेस्साए तहा काउलेस्साए वि भाणियव्वा जाव से तेणट्ठेणं जाव उववज्जंति॥

सः नूनं भदन्त! कृष्णलेश्यः, नीललेश्यः यावत् शुक्ललेश्यः भूत्वा कापोतलेश्येषु नैरयिकेषु उपपद्यन्ते?
एवं यथा नीललेश्यायां तथा कापोत-लेश्यायाम् अपि भणितव्याः यावत् तत् तेनार्थेन यावत् उपपद्यन्ते।

२२. भंते! वे कृष्णलेश्या, नीललेश्या यावत् शुक्ललेश्या वाले होकर कापोतलेश्या वाले नैरयिकों में उपपन्न होते हैं?
गौतम! इस प्रकार नीललेश्या वाले नैरयिकों की भांति कापोतलेश्या वाले नैरयिक भी वक्तव्य हैं यावत् इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है--कापोतलेश्या में यावत् उपपन्न होते हैं।

भाष्य

१. सूत्र १८-२२

लेश्या का परिवर्तन होता रहता है। संक्लिष्ट परिणाम और विशुद्ध परिणाम--उस परिवर्तन के हेतु हैं। संक्लिष्ट परिणाम तीव्रतम होता है तब नीललेश्या यावत् शुक्ललेश्या के स्थानों को छोड़कर जीव कृष्णलेश्या में परिणत हो जाता है।

नीललेश्या कृष्णलेश्या की अपेक्षा विशुद्ध है इसलिए नीललेश्या में परिणमन के दो नियम हैं--प्रशस्त लेश्या के स्थान अविशुद्धि को प्राप्त होते हैं और अप्रशस्त लेश्या के स्थान विशुद्धि को प्राप्त होते हैं। उस अवस्था में नीललेश्या का परिणमन होता है।[1] संक्लिश्यमान और विशुद्ध्यमान--इन दोनों का जयाचार्य ने विशद् विवेचन किया है।[2]

कापोतलेश्या के परिणमन में भी नीललेश्या की भांति दोनों नियम काम करते हैं।

नरक में कृष्ण, नील और कापोत--ये तीन लेश्याएं प्राप्त होती हैं। इसका तात्पर्य है--मृत्यु से अन्तर्मुहूर्त्त पूर्व जिस लेश्या वाले नरक में उत्पन्न होता है उसी लेश्या का परिणमन हो जाता है। लेश्या का यह निरूपण लेश्या-स्थान के परिवर्तन के आधार पर किया गया है। लेश्या-स्थान का संबंध द्रव्य लेश्या से है।

२३. सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति॥

तदेवं भदन्त! तदेवं भदन्त! इति।

२३. भंते! वह ऐसा ही है। भंते! वह ऐसा ही है।

---

१. भ. वृ. १३/१८,२१--लेश्याभेदेषु 'संकिलिस्समाणे'सु त्ति अविशुद्धिं गच्छन्तु कण्हलेसं परिणमइ त्ति कृष्ण लेश्यां याति ततश्च 'कण्हलेसे' त्यादि। संकिलिस्समाणेसु वा विसुद्धमाणेसु या त्ति प्रशस्त लेश्या स्थानेषु अविशुद्धिं गच्छन्तु अप्रशस्तलेश्या स्थानेषु च विशुद्धिं गच्छन्तु, नीललेश्यां परिणमतीति भाः।

२. भ. जो, ढा. २७४, गा. ३१-५६।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बीओ उद्देसो : दूसरा उद्देशक

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
२४. कतिविहा णं भंते! देवा पण्णत्ता? गोयमा! चउव्विहा देवा पण्णत्ता, तं जहा–भवणवासी, वाणमंतरा, जोइसिया, वेमाणिया॥	कतिविधाः भदन्तः! देवाः प्रज्ञप्ताः? गौतम! चतुर्विधाः देवाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–भवनवासिनः, वानमन्तराः, ज्योतिष्काः, वैमानिकाः।	२४. भंते! देव के कितने प्रकार प्रज्ञप्त हैं? गौतम! देव के चार प्रकार प्रज्ञप्त हैं, जैसे–भवनवासी, वाणमंतर, ज्योतिष्क, वैमानिक।
२५. भवणवासी णं भंते! देवा कतिविहा पण्णत्ता? गोयमा! दसविहा पण्णत्ता, तं जहा–असुरकुमारा–एवं भेओ जहा बितियसए देवुद्देसए जाव अपराजिया, सव्वट्ठसिद्धगा॥	भवनवासिनः भदन्त! देवाः कतिविधाः प्रज्ञप्ताः? गौतम! दशविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–असुरकुमाराः–एवं भेदः यथा द्वितीयशते देवोद्देशके यावत् अपराजिताः, सर्वार्थसिद्धकाः।	२५. भंते! भवनवासी देव के कितने प्रकार प्रज्ञप्त हैं? गौतम! दस प्रकार प्रज्ञप्त हैं, जैसे असुरकुमार–इसी प्रकार भेद द्वितीय शतक के देव उद्देशक (२/११७) की भांति यावत् अपराजित, सर्वार्थसिद्धक।
२६. केवतिया णं भंते! असुरकुमारावाससयसहस्सा पण्णत्ता? गोयमा! चोयट्ठिं असुरकुमारावाससयसहस्सा पण्णत्ता। ते णं भंते! किं संखेज्जवित्थडा? असंखेज्जवित्थडा? गोयमा! संखेज्जवित्थडा वि, असंखेज्जवित्थडा वि॥	कियन्ति भदन्त! असुरकुमारावासशतसहस्राणि प्रज्ञप्तानि? गौतम! चतुष्षष्टिः असुरकुमारावासशतसहस्राणि प्रज्ञप्तानि। तानि भदन्त! किं संख्येयविस्तृतानि? असंख्येयविस्तृतानि? गौतम! संख्येयविस्तृतानि अपि, असंख्येयविस्तृतानि अपि।	२६. भंते! असुरकुमारों के कितने लाख आवास प्रज्ञप्त हैं। गौतम! असुरकुमारों के आवास चौसठ लाख प्रज्ञप्त हैं। भंते! क्या वे संख्येय-विस्तृत हैं? असंख्येय विस्तृत हैं? गौतम! संख्येय-विस्तृत भी हैं, असंख्येय विस्तृत भी हैं।

भाष्य

१. सूत्र २६

असुरकुमार के चौसठ लाख आवास, द्रष्टव्य भगवती १/२१२-२१५ का भाष्य। सबसे छोटे भवन जंबूद्वीप के समान हैं। मध्यम भवन संख्येय योजन विस्तार वाले हैं। उत्कृष्ट भवन असंख्येय योजन विस्तार वाले हैं।[1]

२७. चोयट्ठीए णं भंते! असुरकुमारावाससयसहस्सेसु संखेज्जवित्थडेसु असुरकुमारावासेसु एगसमएणं केवतिया असुरकुमारा उववज्जंति जाव केवतिया तेउलेस्सा उववज्जंति? केवतिया कण्हपक्खिया उववज्जंति? एवं जहा रयणप्पभाए तहेव पुच्छा,	चतुष्षष्टौ भदन्त! असुरकुमारावासशतसहस्रेषु संख्येयविस्तृतेषु असुरकुमारावासेषु एकसमये कियन्तः असुरकुमाराः उपपद्यन्ते यावत् कियन्तः तेजोलेश्याः उपपद्यन्ते? कियन्तः कृष्णपाक्षिकाः उपपद्यन्ते? एवं यथा रत्नप्रभायां तथैव पृच्छा। तथैव	२७. भंते! असुरकुमार के चौसठ लाख आवासों में से संख्येय-विस्तृत असुरकुमारों के आवासों में एक समय में कितने असुरकुमार उपपन्न होते हैं? यावत् कितने तेजोलेश्या वाले उपपन्न होते हैं? कितने कृष्ण पाक्षिक उपपन्न होते हैं? इस प्रकार रत्नप्रभा की भांति वही पृच्छा और वही व्याकरण,

१. भ. वृ. प. १३/२६–इह गाथा–जंबुद्दीवसमा खलु भवणा, जे हुंति सव्व खुड्डागा।
संखेज्ज वित्थडा मज्झिमा उ, सेसा असंखेज्जा॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तहेव वागरणं, नवरं–दोहिं वेदेहिं उववज्जंति, नपुंसगवेयगा न उववज्जंति, सेसं तं चेव। उव्वट्टंतगा वि तहेव, नवरं–असण्णी उव्वट्टंति। ओहिनाणी ओहिदंसणी य ण उव्वट्टंति, सेसं तं चेव। पण्णत्तएसु तहेव, नवरं संखेज्जगा इत्थिवेदगा पण्णत्ता, एवं पुरिसवेदगा वि, नपुंसगवेदगा नत्थि। कोहकसाई सिय अत्थि सिय नत्थि। जइ अत्थि जहण्णेणं एक्को वा दो वा तिण्णि वा, उक्कोसेणं संखेज्जा पण्णत्ता। एवं माणकसाई मायकसाई। संखेज्जा लोभकसाई पण्णत्ता, सेसं तं चेव। तिसु वि गमएसु चत्तारि लेस्साओ भाणियव्वाओ। एवं असंखेज्जवित्थडेसु वि, नवरं–तिसु वि गमएसु असंखेज्जा भाणियव्वा जाव असंखेज्जा अचरिमा पण्णत्ता॥

व्याकरणं, नवरं–द्वाभ्यां वेदाभ्याम् उपपद्यन्ते, नपुंसकवेदकाः न उपपद्यन्ते, शेषं तच्चैव। उद्वर्त्तमानकाः अपि तथैव, नवरम्–असंज्ञिनः उद्वर्तन्ते। अवधिज्ञानिनः अवधिदर्शिनः च न उद्वर्तन्ते, शेषं तच्चैव। प्रज्ञप्तकेषु तथैव, नवरम्–संख्येयकाः स्त्रीवेदकाः प्रज्ञप्ताः, एवं पुरुषवेदकाः अपि, नपुंसकवेदकाः न सन्ति। क्रोधकषायी स्यात् अस्ति, स्यात् नास्ति। यदि अस्ति जघन्येन एकः वा द्वौ वा त्रयः वा, उत्कर्षेण संख्येयाः प्रज्ञप्ताः। एवं मानकषायिनः मायाकषायिनः। संख्येयाः लोभकषायिनः प्रज्ञप्ताः, शेषं तच्चैव। त्रिषु अपि गमकेषु चतस्रः लेश्याः भणितव्याः। एवम् असंख्येयविस्तृतेषु अपि, नवरम्–त्रिषु अपि गमकेषु असंख्येयाः भणितव्याः यावत् असंख्येयाः अचरमाः प्रज्ञप्ताः।

इतना विशेष है–दो वेद वाले उपपन्न होते हैं, नपुंसक वेदक उपपन्न नहीं होते। शेष पूर्ववत्।

उद्वर्तना भी रत्नप्रभा की भांति वक्तव्य है, इतना विशेष है–असंज्ञी के रूप में उद्वर्तन करते हैं। अवधिज्ञानी, अवधिदर्शनी उद्वर्तन नहीं करते। शेष पूर्ववत् किन्तु वहां अवधिज्ञान और अवधिदर्शन की सत्ता है, इतना विशेष है–संख्येय स्त्रीवेदक प्रज्ञप्त हैं, इसी प्रकार पुरुषवेदक भी। नपुंसकवेदक नहीं हैं। क्रोध कषाय वाले स्यात् हैं, स्यात् नहीं हैं। यदि हैं तो जघन्यतः एक, दो अथवा तीन, उत्कृष्टतः संख्येय प्रज्ञप्त हैं। इसी प्रकार मानकषाय वाले, मायाकषाय वाले। लोभकषाय वाले संख्येय प्रज्ञप्त हैं, शेष पूर्ववत्। उपपत्ति, उद्वर्तन, सत्ता–इन तीन गमकों में चार लेश्याएं वक्तव्य हैं। इसी प्रकार असंख्येय- विस्तृत असुरकुमार के आवासों की वक्तव्यता, इतना विशेष है–तीन गमकों में असंख्येय वक्तव्य हैं यावत् असंख्येय अचरम भव वाले प्रज्ञप्त हैं।

भाष्य

१. सूत्र २७

असंज्ञी के रूप में उद्वर्तन–असुरकुमार से लेकर ईशान तक के देव पृथ्वी, पानी और वनस्पति–इन असंज्ञी जीवों में उत्पन्न होते हैं। इस दृष्टि से असंज्ञी के रूप में उद्वर्तन का सूत्र निर्दिष्ट है।[1]

अवधिज्ञान और अवधिदर्शन के साथ तीर्थंकर आदि विशिष्ट जीवों का उद्वर्तन होता है। असुरकुमार से उद्वृत्त तीर्थंकर आदि नहीं होते इसलिए इस निषेध सूत्र का विधान किया गया है।

'पण्णत्तएसु तहेव'–सत्ता का सूत्र रत्नप्रभा (भगवई १३/५) की भांति वक्तव्य है।

असुरकुमार देवों में क्रोध, मान और माया–इन तीनों से युक्त देव कदाचित् होते हैं, कदाचित् नहीं होते। लोभ युक्त देव सर्वदा होते हैं।[2] प्रज्ञापना में देवों को बहुलतया परिग्रह संज्ञा में उपयुक्त बतलाया है।[3] लोभ को सार्वदिक मानने का यह पुष्ट आधार है। द्रष्टव्य भगवती १/२४५ का भाष्य।

चार लेश्याएं–कृष्ण लेश्या, नील लेश्या, कापोत लेश्या, तैजस लेश्या।

२८. केवतिया णं भंते! नागकुमारावाससयसहस्सा पण्णत्ता?
एवं जाव थणियकुमारा, नवरं–जत्थ जत्तिया भवणा॥

कियन्ति भदन्त! नागकुमारावासशतसहस्राणि प्रज्ञप्तानि?
एवं यावत् स्तनितकुमाराः, नवरम्–यत्र यावन्ति भवनानि।

२८. भंते! नागकुमारों के आवास कितने लाख प्रज्ञप्त हैं?
इस प्रकार यावत् स्तनितकुमार की वक्तव्यता, इतना विशेष है–जहां जितने भवन (द्रष्टव्य भगवती १/२१३) प्रज्ञप्त हैं।

भाष्य

१. सूत्र २८

द्रष्टव्य भगवई १/२१२-२१५ का भाष्य।

---

१. भ. वृ. १६/२७–असुरादीशानान्तदेवानामसञ्ज्ञिष्वपि पृथिव्यादिषूत्पादात्।
२. भ. वृ. १६/२७–क्रोधमानमायाकषायोदयवन्तो देवेषु कादाचित्का अत उक्तं सिय अत्थीत्यादि लोभकषायोदयवन्तस्तु सार्वदिका अत उक्तं 'संखेज्जा' लोभकसाई 'पन्नत्ति'।
३. प्रज्ञा. ८/१०-११

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२९. केवतिया णं भंते! वाणमंतरावाससयसहस्सा पण्णत्ता?
गोयमा! असंखेज्जा वाणमंतरावाससयसहस्सा पण्णत्ता।
ते णं भंते! किं संखेज्जवित्थडा? असंखेज्जवित्थडा?
गोयमा! संखेज्जवित्थडा, नो असंखेज्जवित्थडा॥

कियन्ति भदन्त! वानमन्तरावासशतसहस्राणि प्रज्ञप्तानि?
गौतम! असंख्येयानि वानमन्तरावासशतसहस्राणि प्रज्ञप्तानि।
तानि भदन्त! किं संख्येयविस्तृतानि? असंख्येयविस्तृतानि?
गौतम! संख्येयविस्तृतानि, नो असंख्येयविस्तृतानि।

२९. भंते! वाणमंतरों के आवास कितने लाख प्रज्ञप्त हैं?
गौतम! वाणमंतरों के असंख्येय लाख आवास प्रज्ञप्त हैं।
भंते! क्या वे संख्येय-विस्तृत हैं? असंख्येय-विस्तृत हैं?
गौतम! संख्येय-विस्तृत हैं। असंख्येय-विस्तृत नहीं हैं।

भाष्य

१. सूत्र २९

वाणमंतर देवों के आवास संख्येय योजन विस्तार वाले हैं। संग्रह गाथा में उसके तीन प्रकार बतलाए गए हैं–

उत्कृष्ट आवास जंबूद्वीप के समान।
जघन्य आवास खेत के समान।
मध्यम आवास विदेह के समान।[1]

३०. संखेज्जेसु णं भंते! वाणमंतरावाससयसहस्सेसु एगसमएणं केवतिया वाणमंतरा उववज्जंति?
एवं जहा असुरकुमाराणं संखेज्जवित्थडेसु तिण्णि गमगा तहेव भाणियव्वा वाणमंतराण वि तिण्णि गमगा॥

संख्येयेषु भदन्त! वानमन्तरावासशतसहस्रेषु एकसमये कियन्तः वानमन्तराः उपपद्यन्ते?
एवं यथा असुरकुमाराणां संख्येयविस्तृतेषु त्रयः गमकाः तथैव भणितव्याः वानमन्तराणाम् अपि त्रयः गमकाः।

३०. भंते! वाणमंतरों के संख्येय लाख आवासों में एक समय में कितने वाणमंतर उपपन्न होते हैं?
इस प्रकार जैसे संख्येय-विस्तृत असुरकुमारों के तीन गमक वक्तव्य हैं वैसे ही वाणमंतरों के तीन गमक वक्तव्य हैं।

३१. केवतिया णं भंते! जोइसियविमाणावाससयसहस्सा पण्णत्ता?
गोयमा! असंखेज्जा जोइसियविमाणावाससयसहस्सा पण्णत्ता।
ते णं भंते! किं संखेज्जवित्थडा?
एवं जहा वाणमंतराणं तहा जोइसियाण वि तिण्णि गमगा भाणियव्वा नवरं–एगा तेउलेस्सा। उववज्जंतेसु पण्णत्तेसु य असण्णी नत्थि, सेसं तं चेव॥

कियन्ति भदन्त! ज्योतिष्कविमानावासशतसहस्राणि प्रज्ञप्तानि?
गौतम! असंख्येयानि ज्योतिष्कविमानावासशतसहस्राणि प्रज्ञप्तानि।
तानि भदन्त! किं संख्येयविस्तृतानि?
एवं यथा वानमन्तराणां तथा ज्योतिष्काणाम् अपि त्रयः गमकाः भणितव्याः, नवरम्–एका तेजोलेश्या। उपपद्यमानेषु प्रज्ञप्तेषु च असंज्ञी नास्ति, शेषं तच्चैव।

३१. भंते! ज्योतिष्क देवों के कितने लाख विमानावास प्रज्ञप्त हैं?
गौतम! असंख्येय लाख विमानावास प्रज्ञप्त हैं।
भंते! क्या वे संख्येय-विस्तृत हैं?
इस प्रकार वाणमंतरों की भांति ज्योतिष्क देवों के तीनों गमक वक्तव्य हैं, इतना विशेष है–केवल एक तेजोलेश्या होती है। असंज्ञी का उपपात और सत्ता नहीं होती, शेष पूर्ववत्।

भाष्य

१. सूत्र ३१

वाणमंतर देवों में चार लेश्याएं बतलाई गई हैं। ज्योतिष्क देवों में केवल एक तेजोलेश्या होती है।[2] वाणमंतर देवों में असंज्ञी उत्पन्न होते हैं। ज्योतिष्क देवों में वे उत्पन्न नहीं होते इसलिए उनकी सत्ता भी नहीं होती।[3]

३२. सोहम्मे णं भंते! कप्पे केवतिया विमाणावाससयसहस्सा पण्णत्ता?
गोयमा! बत्तीसं विमाणावाससयसहस्सा पण्णत्ता।

सौधर्मे भदन्त! कल्पे कियन्ति विमानावासशतसहस्राणि प्रज्ञप्तानि?
गौतम! द्वात्रिंशत् विमानावासशतसहस्राणि प्रज्ञप्तानि।

३२. भंते! सौधर्मकल्प में कितने लाख विमानावास प्रज्ञप्त हैं?
गौतम! बत्तीस लाख विमानावास प्रज्ञप्त हैं।

---

१. भ. वृ. १३/२९ :
जंबूदीवसमा खलु उक्कोसेणं हवंति ते नगरा।
खुड्डा खेत्त समा खलु विदेह समगा उ मज्झिमगा॥

२. (क) पण्ण. १७/५३।
(ख) भ. वृ. १३/३१–व्यंतरेषु लेश्याचतुष्टयमुक्तमेतेषु तु तेजोलेश्यैवैका वाच्या।

३. भ. वृ. १३/३१–व्यन्तरेष्वसंज्ञिनः उत्पद्यन्त इत्युक्तमिह तु तन्निषेधः, प्रज्ञप्तेष्वपीह तन्निषेध उत्पादाभावादिति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ते णं भंते! किं संखेज्जवित्थडा? असंखेज्जवित्थडा?
गोयमा! संखेज्जवित्थडा वि, असंखेज्जवित्थडा वि॥

तानि भदन्त! किं संख्येयविस्तृतानि? असंख्येयविस्तृतानि?
गौतम! संख्येयविस्तृतानि अपि, असंख्येयविस्तृतानि अपि।

भंते! वे क्या संख्येय-विस्तृत हैं? असंख्येय-विस्तृत हैं?
गौतम! संख्येय-विस्तृत भी हैं, असंख्येय-विस्तृत भी हैं।

३३. सोहम्मे णं भंते! कप्पे बत्तीसाए विमाणावाससयसहस्सेसु संखेज्ज-वित्थडेसु विमाणेसु एगसमएणं केवतिया सोहम्मा देवा उववज्जंति? केवतिया तेउलेस्सा उववज्जंति?
एवं जहा जोइसियाणं तिण्णि गमगा तहेव तिण्णि गमगा भाणियव्वा, नवरं–तिसु वि संखेज्जा भाणियव्वा, ओहिनाणी ओहिदंसणी य चयावेयव्वा, सेसं तं चेव। असंखेज्जवित्थडेसु एवं चेव तिण्णि गमगा, नवरं–तिसु वि गमएसु असंखेज्जा भाणियव्वा। ओहिनाणी ओहिदंसणी य संखेज्जा चयंति, सेसं तं चेव। एवं जहा सोहम्मे वत्तव्वया भणिया तहा ईसाणे वि छ गमगा भाणियव्वा। सणंकुमारे एवं चेव, नवरं–इत्थीवेयगा उववज्जंतेसु पण्णत्तेसु य न भण्णंति, असण्णी तिसु वि गमएसु न भण्णंति, सेसं तं चेव। एवं जाव सहस्सारे, नाणत्तं विमाणेसु लेस्सासु य, सेसं तं चेव॥

सौधर्मे भदन्त! कल्पे द्वात्रिंशति विमानावासशतसहस्रेषु संख्येयविस्तृतेष विमानेषु एकसमये कियन्तः सौधर्माः देवाः उपपद्यन्ते? कियन्तः तेजोलेश्याः उपपद्यन्ते?
एवं यथा ज्योतिष्कानां त्रयः गमकाः तथैव त्रयः गमकाः भणितव्याः, नवरम्–त्रिषु अपि संख्येयाः भणितव्याः, अवधिज्ञानिनः अवधिदर्शिनः च च्यावयितव्याः शेषं तच्चैव।
असंख्येयविस्तृतेषु एवं चैव त्रयः गमकाः, नवरम्–त्रिषु अपि गमकेषु असंख्येयाः भणितव्याः। अवधिज्ञानिनः अवधिदर्शिनः च संख्येयाः च्यवन्ते, शेषं तच्चैव। एवं यथा सौधर्मे वक्तव्यता भणिता तथा ईशानेऽपि षट् गमकाः भणितव्याः। सनत्कुमारे एवं चैव नवरम्–स्त्रीवेदकाः उपपद्यमानेषु प्रज्ञप्तेषु च न भण्यन्ते, असंज्ञिनः त्रिषु अपि गमकेषु न भण्यन्ते, शेषं तच्चैव। एवं यावत् सहस्रारे, नानात्वं विमानेषु लेश्यासु च, शेषं तच्चैव।

३३. भंते! सौधर्मकल्प के बत्तीस लाख विमानावासों में से संख्येय-विस्तृत विमानों में एक समय में कितने सौधर्मदेव उपपन्न होते हैं? कितने तेजोलेश्या वाले उपपन्न होते हैं?
इसी प्रकार जैसे ज्योतिष्क देवों के तीन गमक होते हैं, वैसे ही सौधर्मकल्प के तीन गमक वक्तव्य हैं, इतना विशेष है– तीनों में संख्येय वक्तव्य हैं, अवधिज्ञानी, अवधिदर्शनी च्यवन करते हैं, शेष पूर्ववत्। असंख्येय विस्तृत में भी पूर्ववत् तीन गमक वक्तव्य हैं, इतना विशेष है–तीनों गमकों में असंख्येय की वक्तव्यता। संख्येय अवधिज्ञानी, अवधिदर्शनी च्यवन करते हैं। शेष पूर्ववत्। इसी प्रकार जैसे सौधर्म की वक्तव्यता है, वैसे ही ईशान के छह गमकों की वक्तव्यता। सनत्कुमार की वक्तव्यता पूर्ववत्, इतना विशेष है–स्त्रीवेदक उपपन्न नहीं होते और उनकी सत्ता भी नहीं हैं। असंज्ञी में तीनों गमक वक्तव्य नहीं हैं, शेष पूर्ववत्। इसी प्रकार यावत् सहस्रारकल्प की वक्तव्यता, उनके विमानों और लेश्याओं में नानात्व है, शेष पूर्ववत्।

भाष्य

१. सूत्र ३३

अवधिज्ञान और अवधि दर्शन के साथ तीर्थंकर आदि का च्यवन होता है।[1]

विमान के लिए द्रष्टव्य भगवई १/२१५। लेश्या के लिए द्रष्टव्य भगवई ३/१८३–१८५ तथा ७/६७–७३ का भाष्य।
लेश्या के विषय में जयाचार्य ने विस्तृत समीक्षा की है।[2]

३४. आणय-पाणएसु णं भंते! कप्पेसु केवतिया विमाणावाससया पण्णत्ता?
गोयमा! चत्तारि विमाणावाससया पण्णत्ता।
तेणं भंते! किं संखेज्जवित्थडा? असंखेज्जवित्थडा?
गोयमा! संखेज्जवित्थडा वि, असंखेज्जवित्थडा वि। एवं संखज्जवित्थडेसु तिण्णि गमगा जहा

आनत-प्राणतेषु भदन्त! कल्पेषु कियन्ति विमानावासशतानि प्रज्ञप्तानि?
गौतम! चत्वारि विमानावासशतानि प्रज्ञप्तानि।
तानि भदन्त! किं संख्येयविस्तृतानि? असंख्येयविस्तृतानि?
गौतम! संख्येयविस्तृतानि अपि, असंख्येयविस्तृतानि अपि। एवं संख्येयविस्तृतेषु त्रयः गमकाः यथा

३४. भंते! आनत-प्राणत कल्प में कितने सौ विमानावास प्रज्ञप्त हैं?
गौतम! चार सौ विमानावास प्रज्ञप्त हैं।

भंते! क्या वे संख्येय विस्तृत हैं? असंख्येय विस्तृत हैं?
गौतम! संख्येय-विस्तृत भी हैं, असंख्येय-विस्तृत भी हैं। इसी प्रकार संख्येय विस्तृत तीनों गमक सहस्रार कल्प की भांति

१. भ. वृ. १३/३२,३३–सौधर्मसूत्रे 'ओहिनाणी' ततश्च्युता यतः तीर्थकरादयो भवन्त्य तोऽवधिज्ञानादयश्च्यावयितव्याः।
२. भ. जो. ढा. २७५,. गा. ५७–६० तथा वार्तिक।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सहस्सारे, असंखेज्जवित्थडेसु उववज्जंतेसु चयंतेसु य एवं चेव संखेज्जा भाणियव्वा, पण्णत्तेसु असंखेज्जा, नवरं—नोइंदियोवउत्ता अणंतरोववण्णगा अणंतरोवगाढगा अणंतराहारगा अणंतरपज्जत्तगा य एएसिं जहण्णेणं एक्को वा दो वा तिण्णि वा, उक्कोसेणं संखेज्जा पण्णत्ता, सेसा असंखेज्जा भाणियव्वा। आरण-अच्चुएसु एवं चेव जहा आणय-पाणएसु, नाणत्तं विमाणेसु। एवं गेवेज्जगा वि॥

सहस्रारे, असंख्येयविस्तृतेषु उपपद्यमानेषु, च्यवमानेषु च एवं चैव संख्येयाः भणितव्याः, प्रज्ञप्तेषु असंख्येयाः, नवरम्—नोइन्द्रियोपयुक्ताः अनन्तरोपपन्नकाः अनन्तरावगाढकाः अनन्तराहारकाः अनन्तरपर्याप्तकाः च एतेषां जघन्येन एकः वा द्वौ वा त्रयः वा, उत्कर्षेण संख्येयाः प्रज्ञप्ताः, शेषाः असंख्येयाः भणितव्याः। 'आरण-अच्युतेषु' एवं चैव यथा आनत-प्राणतेषु, नानात्वं विमानेषु। एवं ग्रैवेयकाः अपि।

वक्तव्य हैं। असंख्येय विस्तृत विमानावासों में संख्येय उपपन्न होते हैं और च्यवन करते हैं, किंतु वहां असंख्येय की सत्ता है, इतना विशेष है—नोइन्द्रिय उपयुक्त, अनंतर उपपन्नक, अनंतर अवगाढक, अनंतर आहारक और अनंतर पर्याप्तक—ये जघन्यतः एक, दो अथवा तीन, उत्कृष्टतः संख्येय प्रज्ञप्त हैं, शेष में असंख्येय की वक्तव्यता। आरण-अच्युत पूर्ववत् आनत-प्राणत की भांति वक्तव्य हैं, विमानों में नानात्व की वक्तव्यता। इसी प्रकार ग्रैवेयक की भी वक्तव्यता।

३५. कति णं भंते! अणुत्तरविमाणा पण्णत्ता?
गोयमा! पंच अणुत्तरविमाणा पण्णत्ता।
ते णं भंते! किं संखेज्जवित्थडा? असंखेज्जवित्थडा?
गोयमा! संखेज्जवित्थडे य असंखेज्जवित्थडा य॥

कति भदन्त! अनुत्तरविमानानि प्रज्ञप्तानि?
गौतम! पञ्च अनुत्तरविमानानि प्रज्ञप्तानि।
तानि भदन्त! किं संख्येयविस्तृतानि? असंख्येयविस्तृतानि?
गौतम! संख्येयविस्तृतं च असंख्येय-विस्तृतानि च।

३५. भंते! अनुत्तरविमान कितने प्रज्ञप्त हैं?
गौतम! पांच अनुत्तरविमान प्रज्ञप्त हैं।
भंते! क्या वे संख्येय-विस्तृत हैं? असंख्येय-विस्तृत हैं?
गौतम! संख्येय-विस्तृत भी है, असंख्येय विस्तृत भी हैं।

भाष्य

१. सूत्र ३५

मध्यम विमान एक लाख योजन का है इसलिए वह संख्यात योजन विस्तार वाला है।[1]

३६. पंचसु णं भंते! अणुत्तरविमाणेसु संखेज्जवित्थडे विमाणे एगसमएणं केवतिया अणुत्तरोववाइया उववज्जंति? केवतिया सुक्कलेस्सा उववज्जंति—पुच्छा तहेव।
गोयमा! पंचसु णं अणुत्तरविमाणेसु संखेज्जवित्थडे अणुत्तरविमाणे एगसमएणं जहण्णेणं एक्को वा दो वा तिण्णि वा, उक्कोसेणं संखेज्जा अणुत्तरोववाइया उववज्जंति, एवं जहा गेवेज्जविमाणेसु संखेज्जवित्थडेसु, नवरं—किण्हपक्खिया, अभवसिद्धिया, तिसु अण्णाणेसु एए न उववज्जंति, न चयंति, न वि पण्णत्तएसु भाणियव्वा, अचरिमा वि खोडिज्जंति जाव संखेज्जा चरिमा पण्णत्ता, सेसं तं चेव। असंखेज्जवित्थडेसु वि एए न भण्णंति,

३६. पञ्चसु भदन्त! अनुत्तरविमानेषु संख्येयविस्तृते विमाने एकसमये कियन्तः अनुत्तरोपपातिकाः उपपद्यन्ते? कियन्तः शुक्ललेश्याः उपपद्यन्ते—पृच्छा तथैव।
गौतम! पञ्चसु अनुत्तरविमानेषु संख्येयविस्तृते अनुत्तरविमाने एकसमये जघन्येन एकः वा द्वौ वा त्रयः वा, उत्कर्षेण संख्येयाः अनुत्तरोपपातिकाः उपपद्यन्ते, एवं यथा ग्रैवेयकविमानेषु संख्येयविस्तृतेषु नवरम्—कृष्ण-पाक्षिकाः, अभवसिद्धिकाः, त्रिषु अज्ञानेषु एते न उपपद्यन्ते, न च्यवन्ते, नापि प्रज्ञप्तकेषु भणितव्याः, अचरमाः अपि 'खोडिज्जंति' यावत् संख्येयाः चरमाः प्रज्ञप्ताः, शेषं तच्चैव। असंख्येयविस्तृतेषु अपि एते न भण्यन्ते,

३६. भंते! पांच अनुत्तरविमानों में से संख्येय-विस्तृत विमानों में एक समय में कितने अनुत्तरोपपातिक उपपन्न होते हैं? कितने शुक्ललेश्या वाले उपपन्न होते हैं—पृच्छा पूर्ववत्।
गौतम! पांच अनुत्तरविमानों में से संख्येय-विस्तृत अनुत्तरविमान में एक समय में जघन्यतः एक, दो अथवा तीन, उत्कृष्टतः संख्येय अनुत्तरोपपातिक उपपन्न होते हैं, इसी प्रकार—संख्येय-विस्तृत ग्रैवेयक विमानों की भांति वक्तव्यता, इतना विशेष है—कृष्णपाक्षिक, अभव-सिद्धिक, तीन अज्ञान वाले न उपपन्न होते हैं, न च्यवन करते हैं, न ही वहां सत्ता की वक्तव्यता है, अचरम को छोड़कर यावत् संख्येय चरम प्रज्ञप्त हैं, शेष पूर्ववत्। असंख्येय-विस्तृत में भी इनकी वक्तव्यता

१. भ. वृ. सू. १३/३५:—तत्र मध्यमं संख्यातविस्तृतं योजनलक्षप्रमाणत्वादिति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नवरं—अचरिमा अत्थि, सेसं जहा गेवेज्जएसु असंखेज्जवित्थडेसु जाव असंखेज्जा अचरिमा पण्णत्ता॥

नवरम्—अचरमाः अस्ति, शेषं यथा ग्रैवेयकेषु असंख्येयविस्तृतेषु यावत् असंख्येयाः अचरमाः प्रज्ञप्ताः।

नहीं है। इतना विशेष है—अचरम-भव वाले होते हैं, शेष असंख्येय विस्तृत ग्रैवेयक विमानों में यावत् असंख्येय अचरम भव वाले प्रज्ञप्त हैं।

३७. चोयट्ठीए णं भंते! असुरकुमारावाससयसहस्सेसु संखेज्जवित्थडेसु असुरकुमारावासेसु किं सम्मद्दिट्ठी असुरकुमारा उववज्जंति? मिच्छद्दिट्ठी असुरकुमारा उववज्जंति?
एवं जहा रयणप्पभाए तिण्णि आलावगा भणिया तहा भाणियव्वा।
एवं असंखेज्जवित्थडेसु वि तिण्णि गमगा, एवं जाव गेवेज्जविमाणे, अणुत्तरविमाणेसु एवं चेव, नवरं—तिसु वि आलावएसु मिच्छादिट्ठी सम्मामिच्छादिट्ठी य न भण्णंति, सेसं तं चेव॥

चतुष्षष्टौ भदन्त! असुरकुमारावासशतसहस्रेषु संख्येयविस्तृतेषु असुरकुमारावासेषु किं सम्यग्दृष्टयः असुरकुमाराः उपपद्यन्ते? मिथ्यादृष्टयः असुरकुमाराः उपपद्यन्ते?
एवं यथा रत्नप्रभायां त्रयःआलापकाः भणिताः तथा भणितव्याः।
एवं असंख्येयविस्तृतेषु अपि त्रयः गमकाः एवं यावत् ग्रैवेयकविमाने, अनुत्तरविमानेषु एवं चैव, नवरम्—त्रिषु अपि आलापकेषु मिथ्यादृष्टयः सम्यग्मिथ्यादृष्टयः च न भण्यन्ते, शेषं तच्चैव।

३७. भंते! असुरकुमारों के चौंसठ लाख आवासों में से संख्येय-विस्तृत असुरकुमारावासों में क्या सम्यक् दृष्टि असुरकुमार उपपन्न होते हैं? क्या मिथ्यादृष्टि असुरकुमार उपपन्न होते हैं?
इस प्रकार जैसे रत्नप्रभा में तीन आलापक कहे गये हैं, वैसे ही वक्तव्य हैं।
इसी प्रकार असंख्येय-विस्तृत असुरकुमारावासों में तीनों गमक वक्तव्य हैं, इसी प्रकार यावत् ग्रैवेयक विमानों की वक्तव्यता। इसी प्रकार अनुत्तर विमानों की वक्तव्यता, इतना विशेष है—तीनों आलापकों में मिथ्यादृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि वक्तव्य नहीं हैं, शेष पूर्ववत्।

३८. से नूणं भंते! कण्हलेस्से नीललेस्से जाव सुक्कलेस्से भवित्ता कण्हलेस्सेसु देवेसु उववज्जंति?
हंता गोयमा! एवं जहेव नेरइएसु पढमे उद्देसए तहेव भाणियव्वं। नीललेस्साए वि जहेव नेरइयाणं, जहा नीललेस्साए एवं जाव पम्हलेस्सेसु, सुक्कलेस्सेसु एवं चेव, नवरं—लेस्सट्ठाणेसु विसुज्झमाणेसु विसुज्झमाणेसु सुक्कलेस्सं परिणमंति, परिणमित्ता सुक्कलेस्सेसु देवेसु उववज्जंति। से तेणट्ठेणं जाव उववज्जंति॥

स नूनं भदन्त! कृष्णलेश्यः नीललेश्यः यावत् शुक्ललेश्यः भूत्वा कृष्णलेश्येषु देवेषु उपपद्यन्ते?
हन्त गौतम! एवं यथैव नैरयिकेषु प्रथमे उद्देशके तथैव भणितव्यम्। नीललेश्यायाम् अपि यथैव नैरयिकाणाम्, यथा नीललेश्यायां एवं यावत् पद्मलेश्येषु, शुक्ललेश्येषु एवं चैव, नवरम्—लेश्यास्थानेषु विशुध्यमानेषु-विशुध्यमानेषु शुक्ललेश्यां परिणमन्ति, परिणम्य शुक्ललेश्येषु देवेषु उपपद्यन्ते। तत् तेनार्थेन यावत् उपपद्यन्ते।

३८. भंते! वे कृष्णलेश्या, नीललेश्या यावत् शुक्ललेश्या वाले होकर कृष्णलेश्या वाले देवों में उपपन्न होते हैं?
हां गौतम! इसी प्रकार प्रथम उद्देशक (१३/१८-२२) नैरयिकों की भांति वक्तव्य है। नीललेश्या वाले भी नैरयिकों की भांति वक्तव्य हैं। जैसे नीललेश्या वाले, उसी प्रकार यावत् पद्मलेश्या वाले, शुक्ललेश्या वाले की वक्तव्यता। इतना विशेष है—लेश्या स्थान की विशुद्धि होते-होते शुक्ललेश्या में परिणत होते हैं, परिणत होकर शुक्ललेश्या वाले देवों में उपपन्न होते हैं। इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है—यावत् उपपन्न होते हैं।

३९. सेवं भंते! सेवं भंते! त्ति॥

तदेवं भदन्त! तदेवं भदन्त! इति।

३९. भंते! वह ऐसा ही है। भंते! वह ऐसा ही है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तइओ उद्देसो : तीसरा उद्देशक

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
४०. नेरइया णं भंते! अणंतराहारा, ततो निव्वत्तणया, एवं परियारणापदं निरवसेसं भाणियव्वं॥	नैरयिकाः भदन्त! अनन्तराहारा, ततः निर्वर्तनं, एवं परिचारणापदं निरवशेषं भणितव्यम्।	४०. भंते! नैरयिक अनन्तर-आहारक, उसके पश्चात् शरीर की निष्पत्ति, इसी प्रकार परिचारणा-पद (प्रज्ञापना पद ३४) निरवशेष वक्तव्य है।

भाष्य

१. सूत्र ४०

नैरयिक उत्पात क्षेत्र की प्राप्ति के प्रथम समय में ही आहार लेते हैं। उसके बाद शरीर की रचना करते हैं। इस विषय में प्रज्ञापना का परिचारणा पद द्रष्टव्य है।

४१. सेवं भंते! सेवं भंते! त्ति॥	तदेवं भदन्त! तदेवं भदन्त! इति॥	४१. भंते! वह ऐसा ही है। भंते! वह ऐसा ही है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चउत्थो उद्देसो : चौथा उद्देशक

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
नरय-नेरइयाणं अप्पमहंत-पदं	नरक-नैरयिकानाम् अल्पमहत्-पदम्	नरक और नैरयिकों में अल्प-महत् पद
४२. कति णं भंते! पुढवीओ पण्णत्ताओ?	कति भदन्त! पृथिव्यः प्रज्ञप्ताः?	४२. भंते! पृथ्वियां कितनी प्रज्ञप्त हैं?
गोयमा! सत्त पुढवीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—रयणप्पभा जाव अहेसत्तमा॥	गौतम! सप्त पृथिव्यः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—रत्नप्रभा यावत् अधःसप्तमी।	गौतम! पृथ्वियां सात प्रज्ञप्त हैं, जैसे रत्नप्रभा यावत् अधःसप्तमी।
४३. अहेसत्तमाए णं भंते! पुढवीए पंच अणुत्तरा महतिमहालया महानिरया पण्णत्ता, तं जहा—काले, महाकाले, रोरुए, महारोरुए, अपइट्ठाणे। ते णं नरगा छट्ठीए तमाए पुढवीए नरएहिंतो महत्तरा चेव, महावित्थिण्णतरा चेव, महोगासतरा चेव, महापइरिक्कतरा चेव, नो तहा महप्पवेसणतरा चेव, आइण्णतरा चेव, आउलतरा चेव, अणोमाणतरा चेव।	अधःसप्तम्यां भदन्त! पृथिव्यां पञ्च अनुत्तराः महामहान्तः महानिरयाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—कालः, महाकालः, रोरुकः, महारोरुकः, अप्रतिष्ठानः। ते नरकाः षष्ठ्याः तमायाः पृथिव्याः नरकेभ्यः महत्तराः चैव, महाविस्तीर्णतराः चैव, महावकाशतराः चैव, महाप्रतिरिक्ततराः चैव, नो तथा महाप्रवेशनतराः चैव, आकीर्णतराः चैव, आकुलतराः चैव, अनवमानतराः चैव।	४३. भंते! अधःसप्तमी पृथ्वी के पांच अनुत्तर विशालतम महानरक प्रज्ञप्त हैं, जैसे—काल, महाकाल, रोरुक, महारोरुक, अप्रतिष्ठान। वे नरक षष्ठी तमा पृथ्वी के नरकों से महत्तर—अधिक लम्बाई वाले हैं, महाविस्तीर्णतर—अधिक चौड़ाई वाले हैं, महाअवकाशतर हैं, महा प्रतिरिक्ततर—अधिक एकान्त वाले हैं, तमा की भांति महाप्रवेशनतर नहीं हैं, आकीर्णतर नहीं हैं, आकुलतर नहीं हैं, अनवमानतर नहीं हैं—अतिशय रूप से भरे हुए नहीं हैं।
तेसु णं नरएसु नेरइया छट्ठीए तमाए पुढवीए नेरइएहिंतो महाकम्मतरा चेव, महाकिरियतरा चेव, महासवतरा चेव, महावेदणतरा चेव, नो तहा अप्पकम्मतरा चेव, अप्पकिरियतरा चेव, अप्पासवतरा चेव, अप्पवेदणतरा चेव, अप्पिड्ढियतरा चेव, अप्पजुतियतरा चेव, नो तहा महिड्ढियतरा चेव, महज्जुतियतरा चेव।	तेषु नरकेषु नैरयिकाः षष्ठ्याः तमायाः पृथिव्याः नैरयिकेभ्यः महाकर्मतराः चैव, महाक्रियातराः चैव, महाश्रवतराः चैव, महावेदनातराः चैव, नो तथा अल्पकर्मतराः चैव, अल्पक्रियातराः चैव, अल्पाश्रवतराः चैव, अल्पवेदनातराः चैव, अल्पर्धिकतराः चैव, अल्पद्युतिकतराः चैव, नो तथा महर्धिकतराः चैव, महाद्युतिकतराः चैव।	अधःसप्तमी के नरकावासों के नैरयिक छठी तमा पृथ्वी के नैरयिकों से महाकर्मतर हैं, महाक्रियातर हैं, महाआश्रवतर हैं, महावेदनतर हैं, वैसे अल्पकर्मतर नहीं हैं, अल्पक्रियातर नहीं हैं, अल्पआश्रवतर नहीं हैं, अल्पवेदनतर नहीं हैं, अल्पर्द्धिकतर हैं, अल्प द्युतिकतर हैं, वैसे महर्द्धिकतर नहीं हैं, महाद्युतिकतर नहीं हैं।
छट्ठीए णं तमाए पुढवीए एगे पंचूणे निरयावाससयसहस्से पण्णत्ते। ते णं नरगा अहेसत्तमाए पुढवीए नरएहिंतो नो तहा महत्तरा चेव, महावित्थिण्णतरा चेव, महोगासतरा चेव, महापइरिक्कतरा चेव, महप्पवेसणतरा चेव, आइण्णतरा चेव, आउलतरा चेव, अणोमाणतरा चेव।	षष्ठ्यां तमायां पृथिव्याम् एकं पञ्चोनं निरयावासशतसहस्रं प्रज्ञप्तम्। ते नरकाः अधःसप्तम्याः पृथिव्याः नरकेभ्यः नो तथा महत्तराः चैव, महाविस्तीर्णतराः चैव, महावकाशतराः चैव, महाप्रतिरिक्ततराः चैव, महाप्रवेशनतराः चैव, आकीर्णतराः चैव, आकुलतराः चैव, अनवमानतराः चैव।	षष्ठी तमा पृथ्वी के पांच कम एक लाख—नौ सौ पिचानवें नरकावास प्रज्ञप्त हैं। वे नरक अधःसप्तमी पृथ्वी के नरक जैसे महत्तर नहीं हैं, महाविस्तीर्णतर नहीं हैं, महा अवकाशतर नहीं हैं, महाप्रतिरिक्ततर नहीं हैं, महाप्रवेशनतर हैं, आकीर्णतर हैं, आकुलतर हैं, अनवमानतर हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तेसु णं नरएसु नेरइया अहेसत्तमाए पुढवीए नेरइएहिंतो अप्पकम्मतरा चेव, अप्पकिरियतरा चेव, अप्पासवतरा चेव, अप्पवेदणतरा चेव, नो तहा महाकम्मतरा चेव, महाकिरियतरा चेव, महासवतरा चेव, महावेदणतरा चेव, महिड्ढियतरा चेव, महज्जुइयतरा चेव, नो तहा अप्पिड्ढियतरा चेव, अप्पजुइयतरा चेव।

छट्ठीए णं तमाए पुढवीए नरगा पंचमाए धूमप्पभाए पुढवीए नरएहिंतो महत्तरा चेव, महावित्थिण्णतरा चेव, महोगासतरा चेव, महापइरिक्कतरा चेव, नो तहा महप्पवेसणतरा चेव, आइण्णतरा चेव, आउलतरा चेव, अणोमाणतरा चेव। तेसु णं नरएसु नेरइया पंचमाए धूमप्पभाए पुढवीए नेरइएहिंतो महाकम्मतरा चेव, महाकिरियतरा चेव, महासवतरा चेव, महावेदणतरा चेव, नो तहा अप्पकम्मतरा चेव, अप्पकिरियतरा चेव, अप्पासवतरा चेव, अप्पवेदणतरा चेव, अप्पिड्ढियतरा चेव, अप्पजुतियतरा चेव, नो तहा महिड्ढियतरा चेव, महज्जुतियतरा चेव।

पंचमाए णं धूमप्पभाए पुढवीए तिण्णि निरयावाससयसहस्सा पण्णत्ता। एवं जहा छट्ठीए भणिया एवं सत्त वि पुढवीओ परोप्परं भण्णंति जाव रयणप्पभंति जाव नो तहा महड्ढियतरा चेव, अप्पजुतियतरा चेव॥

तेषु नरकेषु नैरयिकाः अधःसप्तम्याः पृथिव्याः नैरयिकेभ्यः अल्पकर्मतराः चैव, अल्पक्रियातराः चैव, अल्पाश्रवतराः चैव, अल्पवेदनातराः चैव, नो तथा महाकर्मतराः चैव, महाक्रियातराः चैव, महाश्रवतराः चैव, महावेदनातराः चैव, महर्धिकतराः चैव, महाद्युतिकतराः चैव, नो तथा अल्पर्धिकतराः चैव, अल्पद्युतिकतराः चैव।

षष्ट्यां तमायां पृथिव्यां नरकाः पञ्चम्याः धूमप्रभायाः पृथिव्याः नरकेभ्यः महत्तराः चैव, महाविस्तीर्णतराः चैव, महावकाशतराः चैव, महाप्रतिरिक्ततराः चैव, नो तथा महाप्रवेशनतराः चैव, आकीर्णतराः चैव, आकुलतराः चैव, अनवमानतराः चैव। तेषु नरकेषु नैरयिकाः पञ्चम्याः धूमप्रभायाः पृथिव्याः नैरयिकेभ्यः महाकर्मतराः चैव, महाक्रियातराः चैव, महाश्रवतराः चैव, महावेदनातराः चैव, नो तथा अल्पकर्मतराः चैव, अल्पक्रियातराः चैव, अल्पाश्रवतराः चैव, अल्पवेदनातराः चैव, अल्पर्धिकतराः चैव, अल्पद्युतिकतराः चैव, नो तथा महर्धिकतराः चैव, महाद्युतिकतराः चैव।

पञ्चम्याः धूमप्रभायाः पृथिव्याः त्रीणि निरयावासशतसहस्राणि प्रज्ञप्तानि। एवं यथा षष्ट्यां भणिताः एवं सप्त अपि पृथिव्यः परस्परं भण्यन्ते यावत् रत्नप्रभायाम् इति यावत् नो महर्धिकतराः चैव, अल्पद्युतिकतराः चैव।

उन नरकों के नैरयिक अधःसप्तमी पृथ्वी के नैरयिकों से अल्पकर्मतर हैं, अल्पक्रियातर हैं, अल्पआश्रवतर हैं, अल्पवेदनतर हैं, वैसे महाकर्मतर नहीं हैं, महाक्रियातर नहीं हैं, महाआश्रवतर नहीं हैं, महावेदनतर नहीं हैं, महर्द्धिकतर हैं, महाद्युतिकतर हैं वैसे अल्पर्द्धिकतर नहीं हैं, अल्पद्युतिकतर नहीं हैं।

छट्ठी तमा पृथ्वी के नरक पांचवीं धूमप्रभा पृथ्वी के नरकों से महत्तर हैं, महाविस्तीर्णतर हैं, महाअवकाशतर हैं, महाप्रतिरिक्ततर हैं, वैसे महाप्रवेशनतर नहीं हैं, आकीर्णतर नहीं हैं, आकुलतर नहीं हैं, अनवमानतर नहीं हैं--अतिशय रूप से भरे हुए नहीं हैं। उन नरकों के नैरयिक पांचवीं धूमप्रभा पृथ्वी के नैरयिकों से महाकर्मतर हैं, महाक्रियातर हैं, महाआश्रवतर हैं, महावेदनतर हैं, वैसे अल्पकर्मतर नहीं हैं, अल्पक्रियातर नहीं हैं, अल्पआश्रवतर नहीं हैं, अल्पवेदनतर नहीं हैं, अल्पर्द्धिकतर हैं, अल्पद्युतिकतर हैं, वैसे महर्द्धिकतर नहीं हैं, महाद्युतिकतर नहीं हैं।

पांचवीं धूमप्रभा पृथ्वी के तीन लाख नरकावास प्रज्ञप्त हैं। इस प्रकार जैसे छठी नरक की वक्तव्यता वैसे ही सात पृथ्वियां परस्पर वक्तव्य हैं यावत् रत्नप्रभा तक यावत् वैसे महर्द्धिकतर नहीं हैं, अल्प द्युतिकतर हैं।

भाष्य

१. सूत्र ४३

शब्द विमर्श--

महत्तर--लंबाई में बड़ा।

महावित्थिण्णतर--चौड़ाई में बड़ा।

महोगासतरा--महान् अवकाशतर।

महापइरिक्कतरा--महान् एकांत वाला।

महापवेसणतरा--छठे नरक तमा में जितने जीवों का प्रवेश होता है, सातवीं पृथ्वी में उससे असंख्य गुण हीन होता है, इस दृष्टि से 'नो महापवेसणतर' बतलाया गया है।

महाप्रवेशतर नहीं है इसलिए वे नरकावास नरक जीवों से अत्यंत आकीर्ण नहीं हैं, आकुल नहीं हैं, अतिशय रूप से भरे हुए नहीं हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नेरइयाणं फासाणुभव-पदं

४४. रयणप्पभापुढविनेरइया णं भंते! केरिसयं पुढविफासं पच्चणुब्भवमाणा विहरंति?

गोयमा! अणिट्ठं जाव अमणामं। एवं जाव अहेसत्तमपुढविनेरइया। एवं आउफासं, एवं जाव वणस्सइफासं॥

नैरयिकाणां स्पर्शानुभव-पदम्

रत्नप्रभापृथिवीनैरयिकाः भदन्त! कीदृशकं पृथिवीस्पर्शं प्रत्यनुभवन्तः विहरन्ति?

गौतम! अनिष्टं यावत् 'अमणामं'। एवं यावत् अधःसप्तमीपृथिवीनैरयिकाः। एवं अप्-स्पर्शं एवं यावत् वनस्पति-स्पर्शम्।

नैरयिकों का स्पर्शानुभव-पद

४४. भंते! रत्नप्रभा पृथ्वी के नैरयिक किस प्रकार के पृथ्वीस्पर्श का प्रत्यनुभव करते हुए विहरण करते हैं?

गौतम! अनिष्ट यावत् अमनोहर। इसी प्रकार यावत् अधःसप्तमी पृथ्वी के नैरयिकों की वक्तव्यता। इसी प्रकार जल-स्पर्श, इसी प्रकार यावत् वनस्पति का स्पर्श।

भाष्य

१. सूत्र ४४

अनिष्ट आदि के लिए द्रष्टव्य भगवई १/३५७।

अप्कायिक स्पर्श के बाद 'एवं जाव वणस्सइ फासं' सूत्र है। सामान्यतः इस सूत्र से तेउफासं और वाउफासं–तैजस स्पर्श और वायुस्पर्श का ग्रहण किया जाता है। जीवाजीवाभिगम में इन दोनों का स्पष्ट उल्लेख नहीं है।[1] अभयदेवसूरि ने लिखा है–यावत् पाठ के द्वारा तैजसकायिक स्पर्श सूत्र और वायुकायिक स्पर्श सूत्र की सूचना दी गई है। इस विषय में प्रश्न उपस्थित होता है–नरक में बादर तैजसकाय की सत्ता नहीं है इसलिए तैजसकायिक स्पर्श का ग्रहण युक्ति संगत नहीं है। सूक्ष्म तैजसकाय की सत्ता है पर वह स्पर्शनेन्द्रिय का विषय नहीं बनता। इस प्रश्न का समाधान अभयदेवसूरि ने बहुत युक्तिसंगत किया है–नरक में तैजसकायिक की भांति ज्वलनधर्मा अग्नि है। उसका स्पर्श होता है। साक्षात् तैजसकायिक का स्पर्श असंभव है।[2]

नरयाणं बाहल्ल-खुड्डत्त-पदं

४५. इमा णं भंते! रयणप्पभापुढवी दोच्चं सक्करप्पभं पुढविं पणिहाय सव्वमहंतिया बाहल्लेणं, सव्वखुड्डिया सव्वंतेसु?

हंता गोयमा! इमा णं रयणप्पभापुढवी दोच्चं पुढविं पणिहाय जाव सव्वखुड्डिया सव्वंतेसु।

दोच्चा णं भंते! पुढवी तच्चं पुढविं पणिहाय सव्वमहंतिया बाहल्लेणं–पुच्छा।

हंता गोयमा! दोच्चा णं पुढवी जाव सव्वखुड्डिया सव्वंतेसु। एवं एएणं अभिलावेणं जाव छट्ठिया पुढवी अहेसत्तमं पुढविं पणिहाय जाव सव्वखुड्डिया सव्वंतेसु॥

नरकाणां बाहल्य-'खुड्डत्त'-पदम्

इयं भदन्त! रत्नप्रभापृथिवी द्वितीयां शर्कराप्रभां पृथिवीं प्रणिधाय सर्वमहती बाहल्येन, सर्व 'खुड्डिया' सर्वान्तेषु?

हन्त गौतम! इयं रत्नप्रभापृथिवी द्वितीयां पृथिवीं प्रणिधाय यावत् सर्व 'खुड्डिया' सर्वान्तेषु।

द्वितीया भदन्त! पृथिवी तृतीयां पृथिवीं प्रणिधाय सर्वमहती बाहल्येन–पृच्छा।

हन्त गौतम! द्वितीया पृथिवी यावत् सर्व 'खुड्डिया' सर्वान्तेषु। एवम् एतेन अभिलापेन यावत् षष्ठिका पृथिवी अधःसप्तमीं पृथिवीं प्रणिधाय यावत् सर्व 'खुड्डिया' सर्वान्तेषु।

नरकों का बाहल्य-क्षुद्रत्व पद

४५. भंते! यह रत्नप्रभा पृथ्वी दूसरी शर्कराप्रभा पृथ्वी की अपेक्षा विस्तार में सर्वथा महती है? सब प्रान्त-भागों में सर्वथा छोटी है?

हां गौतम! रत्नप्रभा पृथ्वी दूसरी शर्कराप्रभा पृथ्वी की अपेक्षा विस्तार में सर्वथा महती है, सर्व प्रान्त-भागों में सर्वथा छोटी है।

भंते! दूसरी पृथ्वी तीसरी पृथ्वी की अपेक्षा विस्तार में सर्वथा महती है? पृच्छा।

हां गौतम! दूसरी पृथ्वी यावत् सर्व प्रान्त-भागों में सर्वथा छोटी है। इस अभिलाप के द्वारा यावत् छठी पृथ्वी अधःसप्तमी पृथ्वी की अपेक्षा यावत् सर्व प्रान्त-भागों में सर्वथा छोटी है।

भाष्य

१. सूत्र ४५

रत्नप्रभा मोटाई में एक लाख अस्सी हजार योजन वाली है। सर्वान्तों–पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण दिशाओं में उसकी लंबाई-चौड़ाई एक रज्जु प्रमाण है।[3]

---

१. जीवा. ३/१२३।

२. भ. वृ. सू. १३/४४–इह यावत्करणात्तैजसकायिकस्पर्शसूत्रं वायुकायिकस्पर्शसूत्रं च सूचितं, तत्र च कश्चिदाह ननु सप्तस्वपि पृथिवीषु तेजस्कायिकवर्जं पृथिवीकायिकादिस्पर्शो नारकाणां युक्तः तेषां तासु विद्यमानत्वात् बादरतेजसां तु समयक्षेत्र एव सद्भावात् सूक्ष्मतेजसां पुनस्तत्र सद्भावेपि स्पर्शनेन्द्रियाविषयत्वादिति? अत्रोच्यते, इह च तेजस्कायिकस्येव परमाधार्मिकविनिर्मित ज्वलनसदृशवस्तुनः स्पर्शः तेजस्कायिकस्पर्श इति व्याख्येयं न तु साक्षात् तेजस्कायिकस्यैव असंभवात्।

३. भ. वृ. सू. १३/४५–सर्वथा महती अशीतिसहस्राधिकयोजनलक्षप्रमाणत्वात् रत्नप्रभाबाहल्यस्य शर्कराप्रभाबाहल्यस्य च द्वात्रिंशत्सहस्राधिकयोजनलक्षमानत्वात्।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

द्रष्टव्य यंत्र–

नरक	बाहल्य[1]
रत्नप्रभा	१८०००० योजन
शर्कराप्रभा	१३२००० योजन
बालुकाप्रभा	१२८००० योजन
पंकप्रभा	१२०००० योजन
धूमप्रभा	११८००० योजन
तमःप्रभा	११६००० योजन
अधःसप्तमी	१०८००० योजन

निरयपरिसामंत-पदं

४६. इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए निरयपरिसामंतेसु जे पुढविक्काइया जाव वणस्सइकाइया तेणं जीवा महाकम्मतरा चेव, महाकिरियतरा चेव, महासवतरा चेव, महावेदणतरा चेव ?

हंता गोयमा ! इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए निरयपरिसामंतेसु तं चेव जाव महावेदणतरा चेव। एवं जाव अहेसत्तमा॥

निरयपरिसामन्त-पदम्

अस्यां भदन्त! रत्नप्रभायां पृथिव्यां निरयपरिसामन्तेषु ये पृथिवीकायिकाः यावत् वनस्पतिकायिकाः ते जीवाः महाकर्मतराः चैव, महाक्रियातराः चैव, महाश्रवतराः चैव, महावेदनातराः चैव?

हन्त गौतम! अस्यां रत्नप्रभायां पृथिव्यां निरयपरिसामन्तेषु तत् चैव यावत् महावेदनातराः चैव। एवं यावत् अधःसप्तमी।

नरक-परिसामन्त-पद

४६. भंते! इस रत्नप्रभा पृथ्वी नरक के पार्श्वभागों में जो पृथ्वीकायिक यावत् वनस्पतिकायिक जीव हैं, वे जीव महाकर्मतर हैं? महाक्रियातर हैं? महाआश्रवतर हैं ? महावेदनतर हैं ?

हां गौतम ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी नरक के पार्श्वभागों में जो पृथ्वीकायिक यावत् वनस्पतिकायिक जीव हैं, वे महाकर्मतर यावत् महावेदनतर हैं। इस प्रकार यावत् अधःसप्तमी की वक्तव्यता।

भाष्य

१. सूत्र ४६

पुढविकाइया जाव वणस्सइ काइया–इस सूत्र में यावत् पद के द्वारा आउकाइया, वाउकाइया–ये दो पद ग्रहणीय हैं। यदि 'तेउकाइया' पाठ का ग्रहण करें तो 'सुहुम तेउकाइया'–इस पाठ का ग्रहण किया जा सकता है। वृत्तिकार ने जीवाभिगम का पाठ उद्धृत किया है, उसमें आउकाइया के पश्चात् तेउकाइया पाठ भी उल्लिखित है।[2] यहां विमर्श आवश्यक है। तैजसकायिक पद के द्वारा सूक्ष्म तैजसकायिक जीवों का ग्रहण हो सकता है क्योंकि नरक में बादर तैजसकायिक का सद्भाव नहीं है।

लोगमज्झ-पदं

४७. कहि णं भंते ! लोगस्स आयाममज्झे पण्णत्ते ?

गोयमा ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए ओवासंतरस्स असंखेज्जइभागं ओगाहेत्ता, एत्थ णं लोगस्स आयाममज्झे पण्णत्ते।

लोकमध्य-पदम्

कुत्र भदन्त! लोकस्य आयाममध्यं प्रज्ञप्तम्?

गौतम! अस्यां रत्नप्रभायां पृथिव्याम् अवकाशान्तरस्य असंख्येयतमभागम् अवगाह्य, अत्र लोकस्य आयाममध्यं प्रज्ञप्तम्।

लोकमध्य-पद

४७. भंते ! लोक का आयाम-मध्य कहां प्रज्ञप्त है ?

गौतम! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के अवकाशान्तर के असंख्येय भाग का अवगाहन करने पर, वहां लोक का आयाम-मध्य प्रज्ञप्त है।

४८. कहि णं भंते ! अहेलोगस्स आयाममज्झे पण्णत्ते ?

गोयमा ! चउत्थीए पंकप्पभाए ओवासंतरस्स सातिरेगं अद्धं ओगाहेत्ता, एत्थ णं अहेलोगस्स आयाममज्झे पण्णत्ते॥

कुत्र भदन्त! अधःलोकस्य आयाममध्यं प्रज्ञप्तम्?

गौतम! चतुर्थ्यां पङ्कप्रभायां पृथिव्याम् अवकाशान्तरस्य सातिरेकम् अर्द्धम् अवगाह्य, अत्र अधःलोकस्य आयाममध्यं प्रज्ञप्तम्।

४८. भंते ! अधोलोक का आयाम-मध्य कहां प्रज्ञप्त है ?

गौतम ! चतुर्थ पंकप्रभा पृथ्वी के अवकाशान्तर के कुछ अधिक अर्द्धभाग का अवगाहन करने पर, वहां अधोलोक का आयाम-मध्य प्रज्ञप्त हैं।

१. जीवा. ३/५

२. वृ. प. १३/४६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४९. कहि णं भंते! उड्ढलोगस्स आयाममज्झे पण्णत्ते?
गोयमा! उप्पिं सणंकुमारमाहिंदाणं कप्पाणं हेट्ठिं बंभलोए कप्पे रिट्ठविमाणे पत्थडे, एत्थ णं उड्ढलोगस्स आयाममज्झे पण्णत्ते॥

कुत्र भदन्त! ऊर्ध्वलोकस्य आयाममध्यं प्रज्ञप्तम्?
गौतम! उपरि सनत्कुमारमाहेन्द्राणां कल्पानाम् अधः ब्रह्मलोके अरिष्टविमानं प्रस्तृतम्, अत्र ऊर्ध्वलोकस्य आयाममध्यं प्रज्ञप्तम्।

४९. भंते! ऊर्ध्वलोक का आयाम-मध्य कहां प्रज्ञप्त है?
गौतम! सनत्कुमार माहेन्द्रकल्प के ऊपर ब्रह्मलोक कल्प अरिष्ट विमान प्रस्तर के नीचे वहां ऊर्ध्वलोक का आयाम-मध्य प्रज्ञप्त है।

५०. कहि णं भंते! तिरियलोगस्स आयाममज्झे पण्णत्ते?
गोयमा! जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स बहुमज्झदेसभाए इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए उवरिमहेट्ठिल्लेसु खुड्डगपयरेसु, एत्थ णं तिरियलोगमज्झे अट्ठपएसिए रुयए पण्णत्ते, जओ णं इमाओ दस दिसाओ पवहंति, तं जहा-
१. पुरत्थिमा २. पुरत्थिमदाहिणा ३. दाहिणा ४. दाहिणपच्चत्थिमा ५. पच्चत्थिमा ६. पच्चत्थिमुत्तरा ७. उत्तरा ८. उत्तरपुरत्थिमा ९. उड्ढा १०. अहो॥

कुत्र भदन्त! तिर्यग्लोकस्य आयाममध्यं प्रज्ञप्तम्?
गौतम! जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य बहुमध्यदेशभागे अस्याः रत्नप्रभायाः पृथिव्याः उपरितनाधस्तनेषु 'खुड्डग' प्रतरेषु, अत्र तिर्यग्लोकमध्ये अष्टप्रदेशिकः रुचकः प्रज्ञप्तः, यतः इमाः दश दिशाः प्रवहन्ति, तद्यथा-
१. पौरस्त्या २. पौरस्त्य-दक्षिणा ३. दक्षिणा ४. दक्षिण-पाश्चात्या ५. पाश्चात्या ६. पौरस्त्य-उत्तरा ७. उत्तरा ८. उत्तर-पौरस्त्या ९. ऊर्ध्वा १०. अधः॥

५०. भंते! तिर्यक्लोक का आयाम-मध्य कहां प्रज्ञप्त है?
गौतम! जंबूद्वीपद्वीप के मंदर पर्वत के बहुमध्य देश-भाग में इस रत्नप्रभा पृथ्वी के उपरितन और अधस्तन इन दोनों क्षुल्लक प्रतरों में, तिर्यक्लोक का मध्य है वहां आठ रुचक प्रदेश प्रज्ञप्त हैं, जहां से ये दस दिशाएं निकलती हैं, जैसे-
१. पूर्व २. पूर्व-दक्षिण ३. दक्षिण ४. दक्षिण-पश्चिम ५. पश्चिम ६. पश्चिम-उत्तर ७. उत्तर ८. उत्तर-पूर्व ९. ऊर्ध्व १०. अधः।

५१. एयासि णं भंते! दसण्हं दिसाणं कति नामधेज्जा पण्णत्ता?
गोयमा! दस नामधेज्जा पण्णत्ता, तं जहा-
इंदा अग्गेयी जमा य,
नेरई वारुणी य वायव्वा।
सोमा ईसाणी या,
विमला य तमा य बोद्धव्वा॥१॥

एतासां दशानां दिशानां कति नामधेयानि प्रज्ञप्तानि?
गौतम! दश नामधेयानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा-
इन्द्रा आग्नेयी यमा च,
नैर्ऋती वारुणी च वायव्या।
सोमा ऐशानी च,
विमला च तमा च बोद्धव्या॥

५१. भंते! इन दस दिशाओं के कितने नाम प्रज्ञप्त हैं?
गौतम! दस नाम प्रज्ञप्त हैं जैसे-
इन्द्रा, आग्नेयी, याम्या, नैर्ऋति, वारुणी, वायव्या, सोमा, ईशानी, विमला और तमा ज्ञातव्य है।

५२. इंदा णं भंते दिसा किमादीया, किंपवहा, कतिपदेसादीया, कतिपदेसुत्तरा, कतिपदेसिया, किंपज्जवसिया, किंसंठिया पण्णत्ता?

इन्द्रा भदन्त! दिशा किमादिका, किंप्रवहा, कतिप्रदेशादिका, कतिप्रदेशोत्तरा, कतिप्रदेशिका, किंपर्यवसिता, किंसंस्थिता प्रज्ञप्ता?

५२. भंते! इंद्रा दिशा का आदि स्रोत क्या है? वह कहां से प्रवाहित है? आदि में उसके कितने प्रदेश हैं? उत्तरोत्तर कितने प्रदेशों की वृद्धि होती हैं? उसके कितने प्रदेश हैं? क्या वह पर्यवसित है? उसका संस्थान क्या है?

गोयमा! इंदा णं दिसा रुयगादीया, रुयगप्पवहा, दुपएसादीया, दुपएसुत्तरा, लोगं पडुच्च असंखेज्जपएसिया, अलोगं पडुच्च अणंतपएसिया, लोगं पडुच्च सादीया सपज्जवसिया, अलोगं पडुच्च सादीया अपज्जवसिया, लोगं पडुच्च मुरवसंठिया, अलोगं पडुच्च

गौतम! इन्द्रा दिशा रुचकादिका, रुचकप्रवहा, द्विप्रदेशादिका, द्विप्रदेशोत्तरा, लोकं प्रतीत्य असंख्येयप्रदेशिका, अलोकं प्रतीत्य अनन्तप्रदेशिका, लोकं प्रतीत्य सादिका सपर्यवसिता, अलोकं प्रतीत्य सादिका अपर्यवसिता, लोकं प्रतीत्य मुरज-

गौतम! इंद्रा दिशा का आदि स्रोत रुचक है। वह रुचक से प्रवाहित है, आदि में दो प्रदेश वाली है, उत्तरोत्तर दो दो प्रदेश की वृद्धि वाली है। लोक की अपेक्षा असंख्येय प्रदेश हैं, अलोक की अपेक्षा अनन्त प्रदेश हैं। लोक की अपेक्षा सादि-सपर्यवसित है। अलोक की अपेक्षा सादि-अपर्यवसित है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सगडुद्धिसंठिया पण्णत्ता॥

संस्थिता, अलोकं प्रतीत्य 'शकरोद्धि' संस्थिता प्रज्ञप्ता।

लोक की अपेक्षा मुरज संस्थान वाली, अलोक की अपेक्षा शकट-उद्धि संस्थान वाली प्रज्ञप्त है।

५३. अग्गेयी णं भंते ! दिसा किमादीया, किंपवहा, कतिपएसादीया, कतिपएसवित्थिण्णा, कतिपएसिया, किंपज्जवसिया, किंसंठिया पण्णत्ता ?

आग्नेयी भदन्त! दिशा किमादिका, किंप्रवहा, कतिप्रदेशादिका, कतिप्रदेशविस्तीर्णा, कतिप्रदेशिका, किंपर्यवसिता, किंसंस्थिता प्रज्ञप्ता?

५३. भंते! आग्नेयी दिशा का आदि स्रोत क्या है? वह कहां से प्रवाहित है? आदि में कितने प्रदेश हैं? कितने प्रदेश का विस्तार है? उसके कितने प्रदेश हैं? क्या वह पर्यवसित है? संस्थान क्या है?

गोयमा ! अग्गेयी णं दिसा रुयगादीया, रुयगप्पवहा, एगपएसादीया एगपएसवित्थिण्णा–अणुत्तरा, लोगं पडुच्च असंखेज्जपएसिया, अलोगं पडुच्च अणंतपएसिया, लोगं पडुच्च सादीया सपज्जवसिया, अलोगं पडुच्च सादीया अपज्जवसिया, छिण्णमुत्तावलिसंठिया पण्णत्ता।

गौतम! आग्नेयी दिशा रुचकादिका, रुचकप्रवहा, रुचकप्रदेशादिका, एकप्रदेशविस्तीर्णा–अनुत्तरा, लोकं प्रतीत्य असंख्येयप्रदेशिका, अलोकं प्रतीत्य अनन्तप्रदेशिका, लोकं प्रतीत्य सादिका सपर्यवसिता, अलोकं प्रतीत्य सादिका अपर्यवसिता, छिन्नमुक्तावलिसंस्थिता प्रज्ञप्ता।

गौतम! आग्नेयी दिशा का आदि स्रोत रुचक है। वह रुचक से प्रवाहित है। आदि में एक प्रदेश है। एक प्रदेश का विस्तार है। उसके उत्तरोत्तर प्रदेश की वृद्धि नहीं होती। लोक की अपेक्षा असंख्येय प्रदेश हैं। अलोक की अपेक्षा अनंत प्रदेश हैं। लोक की अपेक्षा सादि-सपर्यवसित है। अलोक की अपेक्षा सादि-अपर्यवसित है। वह छिन्न मुक्तावलि संस्थान वाली प्रज्ञप्त है।

जमा जहा इंदा, नेरई जहा अग्गेयी। एवं जहा इंदा तहा दिसाओ चत्तारि, जहा अग्गेई तहा चत्तारि विदिसाओ॥

यमा यथा इन्द्रा, नैर्ऋती यथा आग्नेयी। एवं यथा इन्द्रा तथा दिशाः चतस्रः, यथा आग्नेयी तथा चतस्रः विदिशाः।

याम्या इन्द्रा की भांति नैर्ऋति आग्नेयी की भांति वक्तव्य है। इस प्रकार इन्द्रा की भांति चार दिशाएं वक्तव्य हैं। आग्नेयी की भांति चार विदिशाएं वक्तव्य हैं।

५४. विमला णं भंते ! दिसा किमादीया, किंपवहा, कतिपएसादीया, कतिपएसवित्थिण्णा, कतिपएसिया, किंपज्जवसिया, किंसंठिया पण्णत्ता ?

विमला भदन्त! दिशा किमादिका, किंप्रवहा, कतिप्रदेशादिका, कतिप्रदेशविस्तीर्णा, कतिप्रदेशिका, किंपर्यवसिता, किंसंस्थिता प्रज्ञप्ता?

५४. भंते ! विमला दिशा का आदि स्रोत क्या है ? वह कहां से प्रवाहित है ? आदि में कितने प्रदेश हैं ? कितने प्रदेश का विस्तार है ? उसके कितने प्रदेश वाली हैं? क्या पर्यवसित है ? संस्थान क्या है ?

गोयमा ! विमला णं दिसा रुयगादीया, रुयगप्पवहा, चउप्पएसादीया, दुपएसवित्थिण्णा–अणुत्तरा, लोगं पडुच्च असंखेज्जपएसिया, अलोगं पडुच्च अणंतपएसिया, लोगं पडुच्च सादीया सपज्जवसिया, अलोगं पडुच्च सादीया अपज्जवसिया, रुयगसंठिया पण्णत्ता। एवं तमा वि॥

गौतम! विमला दिशा रुचकादिका, रुचकप्रवहा, चतुःप्रदेशादिका, द्विप्रदेशविस्तीर्णा–अनुत्तरा, लोकं प्रतीत्य असंख्येयप्रदेशिका, अलोकं प्रतीत्य अनन्तप्रदेशिका, लोकं प्रतीत्यं सादिका सपर्यवसिता, अलोकं प्रतीत्य सादिका अपर्यवसिता, रुचकसंस्थिता प्रज्ञप्ता। एवं तमा अपि।

गौतम ! विमला दिशा का आदि स्रोत रुचक है। वह रुचक से प्रवाहित है। उसके आदि में प्रदेश चार हैं। दो प्रदेश का विस्तार है। उसके उत्तरोत्तर प्रदेश की वृद्धि नहीं होती लोक की अपेक्षा असंख्येय प्रदेश हैं। अलोक की अपेक्षा अनंत प्रदेश हैं। लोक की अपेक्षा सादि-सपर्यवसित है। अलोक की अपेक्षा सादि-अपर्यवसित है। वह रुचक संस्थान वाली प्रज्ञप्त है। इसी प्रकार तमा दिशा की वक्तव्यता।

भाष्य

१. सूत्र ४७-५४

दिशा के विषय में द्रष्टव्य भगवई १०/१-७ का भाष्य।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लोय-पदं

५५. किमियं भंते ! लोएत्ति पवुच्चइ ?
गोयमा ! पंचत्थिकाया, एस णं एवतिए लोएत्ति पवुच्चइ, तं जहा–धम्मत्थिकाए, अधम्मत्थिकाए आगासत्थिकाए, जीवत्थिकाए, पोग्गलत्थिकाए॥

लोक-पदम्

किमिदं भदन्त! लोक इति प्रोच्यते?
गौतम! पञ्चास्तिकायाः, एष एतावान् लोक इति प्रोच्यते, तद्यथा–धर्मास्तिकायः, अधर्मास्तिकायः, आकाशास्तिकायः, जीवास्तिकायः, पुद्गलास्तिकायः।

लोक-पद

५५. भंते ! लोक किसे कहा जाता है ?
गौतम ! पांच अस्तिकाय हैं, जैसे–धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, जीवास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय। यह पंचास्तिकाय जितने आकाश खंड में व्याप्त है, वह लोक कहलाता है।

५६. धम्मत्थिकाए णं भंते ! जीवाणं किं पवत्तति ?
गोयमा ! धम्मत्थिकाए णं जीवाणं आगमण-गमण-भासुम्मेस-मणजोग-वइजोग-कायजोगा, जे यावण्णे तहप्पगारा चला भावा सव्वे ते धम्मत्थिकाए पवत्तंति।

गइलक्खणे णं धम्मत्थिकाए॥

धर्मास्तिकाये भदन्त! जीवानां किं प्रवर्तते?
गौतम! धर्मास्तिकाये जीवानाम् आगमन-गमन - भाषोन्मेष - मनोयोग-वाक्योग-काययोगाः, ये चाप्यन्ये तथा प्रकाराः चलाः भावाः सर्वे ते धर्मास्तिकाये प्रवर्तन्ते।

गतिलक्षणः धर्मास्तिकायः।

५६. भंते ! धर्मास्तिकाय की सत्ता में जीवों का क्या प्रवर्तन होता है ?
गौतम ! धर्मास्तिकाय की सत्ता में जीवों का आगमन, गमन, भाषा, उन्मेष, मन, योग, वचन योग, काययोग –ये तथा इस प्रकार के जितने चल (गत्यात्मक) भाव हैं, धर्मास्तिकाय की सत्ता में उन सबका प्रवर्तन होता है।
गति धर्मास्तिकाय का लक्षण है।

५७. अधम्मत्थिकाए णं भंते ! जीवाणं किं पवत्तति ?
गोयमा ! अधम्मत्थिकाए णं जीवाणं ठाण-निसीयण-तुयट्टण, मणस्स य एगत्तीभावकरणता, जे यावण्णे तहप्पगारा थिरा भावा सव्वे ते अधम्मत्थिकाए पवत्तंति।

ठाणलक्खणे णं अधम्मत्थिकाए॥

अधर्मास्तिकाये भदन्त! जीवानां किं प्रवर्तते?
गौतम! अधर्मास्तिकाये जीवानां स्थान-निषीदन-त्वग्वर्तनानि, मनसः च एकत्वीभावकरणं, ये चाप्यन्ये तथा-प्रकाराः स्थिराः भावाः सर्वे ते अधर्मास्तिकाये प्रवर्तन्ते।

स्थानलक्षणः अधर्मास्तिकायः।

५७. भंते ! अधर्मास्तिकाय की सत्ता में जीवों का क्या प्रवर्तन होता है ?
गौतम ! अधर्मास्तिकाय की सत्ता में जीवों की स्थिति, निषीदन, शयन, मन का एकत्वीभावकरण–ये तथा इस प्रकार के जितने भी स्थिर (अगत्यात्मक) भाव हैं, अधर्मास्तिकाय की सत्ता में उन सबका प्रवर्तन होता है।
स्थिति अधर्मास्तिकाय का लक्षण है।

५८. आगासत्थिकाए णं भंते ! जीवाणं अजीवाण य किं पवत्तति ?
गोयमा ! आगासत्थिकाए णं जीवदव्वाण य अजीवदव्वाण य भायणभूए–
एगेण वि से पुण्णे,
दोहि वि पुण्णे सयं पि माएज्जा।
कोडिसएण वि पुण्णे,
कोडिसहस्सं पि माएज्जा॥१॥

अवगाहणालक्खणे णं आगासत्थिकाए॥

आकाशास्तिकाये भदन्त! जीवानाम् अजीवानाम् च किं प्रवर्तते?
गौतम! आकाशास्तिकाये जीव-द्रव्याणाम् अजीवद्रव्याणाम् च भाजनभूतः–
एकेनापि स पूर्णः,
द्वाभ्यामपि पूर्णः शतमपि मायात्।
कोटिशतेनापि पूर्णः,
कोटिसहस्रमपि मायात्॥

अवगाहनालक्षणः आकाशास्तिकायः।

५८. भंते ! आकाशास्तिकाय की सत्ता में जीवों और अजीवों का क्या प्रवर्तन होता है ?
गौतम! आकाशास्तिकाय जीव द्रव्यों और अजीव द्रव्यों का भाजन भूत (आधारभूत) है।
आकाश का एक प्रदेश एक परमाणु से भर जाता है, दो परमाणु से भी भर जाता है, उसमें सौ भी समा जाते हैं। वह सौ करोड़ से भी भर जाता है, उसमें हजार करोड़ भी समा जाते हैं।
अवगाहना आकाशास्तिकाय का लक्षण है।

५९. जीवत्थिकाए णं भंते ! जीवाणं किं पवत्तति ?
गोयमा ! जीवत्थिकाए णं जीवे

जीवास्तिकाये भदन्त! जीवानां किं प्रवर्तते?
गौतम! जीवास्तिकाये जीवः

५९. भंते ! जीवास्तिकाय की सत्ता में जीवों का क्या प्रवर्तन होता है ?
गौतम ! जीवास्तिकाय की सत्ता में जीव

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अणंताणं आभिणिबोहियनाणपज्जवाणं, अणंताणं सुयनाणपज्जवाणं, अणंताणं ओहिनाणपज्जवाणं, अणंताणं मणपज्जवनाणपज्जवाणं, अणंताणं केवलनाणपज्जवाणं, अणंताणं मइअण्णाणपज्जवाणं, अणंताणं सुयअण्णाणपज्जवाणं, अणंताणं विभंगनाणपज्जवाणं, अणंताणं चक्खुदंसणपज्जवाणं, अणंताणं अचक्खुदंसणपज्जवाणं, अणंताणं ओहिदंसणपज्जवाणं, अणंताणं केवलदंसणपज्जवाणं उवयोगं गच्छति।

अनन्तानां आभिनिबोधिकज्ञानपर्यवाणाम्, अनन्तानां श्रुतज्ञानपर्यवाणाम्, अनन्तानां अवधिज्ञानपर्यवाणाम्, अनन्तानां मनःपर्यवज्ञानपर्यवाणाम्, अनन्तानां केवलज्ञानपर्यवाणाम्, अनन्तानां मतिअज्ञानपर्यवाणाम्, अनन्तानां श्रुतअज्ञानपर्यवाणाम्, अनन्तानां विभङ्गज्ञानपर्यवाणाम्, अनन्तानां चक्षुर्दर्शनपर्यवाणाम्, अनन्तानां अचक्षुर्दर्शनपर्यवाणाम्, अनन्तानां अवधिदर्शनपर्यवाणाम्, अनन्तानां केवलदर्शनपर्यवाणाम्, उपयोगं गच्छति।

अनंत आभिनिबोधिकज्ञान पर्यव, अनंत श्रुतज्ञान पर्यव, अनंत अवधिज्ञान पर्यव, अनंत मनःपर्यवज्ञान पर्यव, अनंत केवलज्ञान पर्यव , अनंत मतिअज्ञान पर्यव, अनंत श्रुतअज्ञान पर्यव, अनंत विभंगज्ञान पर्यव, अनंत चक्षुदर्शन पर्यव, अनंत अचक्षुदर्शन पर्यव, अनंत अवधिदर्शन पर्यव और अनंत केवलदर्शन पर्यव के उपयोग को प्राप्त होता है।

उवयोगलक्खणे णं जीवे॥

उपयोगलक्षणः जीवः।

उपयोग जीव का लक्षण है।

६०. पोग्गलत्थिकाए णं भंते! जीवाणं किं पवत्तति?

गोयमा! पोग्गलत्थिकाएणं जीवाणं ओरालिय - वेउव्विय - आहारातेया कम्मा सोइंदिय-चक्खिंदिय-घाणिंदिय-जिब्भिंदिय - फासिंदिय - मणजोग-वइजोग - कायजोग - आणापाणूणं च गहणं पवत्तति।

गहणलक्खणे णं पोग्गलत्थिकाए॥

पुद्गलास्तिकाये भदन्त! जीवानां किं प्रवर्तते?

गौतम! पुद्गलास्तिकाये जीवानाम् औदारिक - वैक्रिय - आहारक-तैजस-कर्मक - श्रोत्रेन्द्रिय - चक्षुरिन्द्रिय-घ्राणेन्द्रिय - जिह्वेन्द्रिय - स्पर्शेन्द्रिय-मनोयोग - वाग्योग - काययोग-आना-पानानां च ग्रहणं प्रवर्तते।

ग्रहणलक्षणः पुद्गलास्तिकायः।

६०. भंते! पुद्गलास्तिकाय की सत्ता में जीवों का क्या प्रवर्तन होता है?

गौतम! पुद्गलास्तिकाय की सत्ता में जीव औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस, कार्मण, श्रोत्रेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय घ्राणेन्द्रिय, जिह्वेन्द्रिय, स्पर्शनेन्द्रिय, मनयोग, वचन-योग, काययोग और आनापान के ग्रहण का प्रवर्तन करता है।

ग्रहण पुद्गलास्तिकाय का लक्षण है।

भाष्य

१. सूत्र ५५-६०

प्रस्तुत आलापक में पंचास्तिकाय के सद्भाव में होने वाली प्रवृत्तियों का संग्रह किया गया है।

धर्मास्तिकाय का लक्षण गति है। विश्व में जितनी भी गति है, वह धर्मास्तिकाय के सद्भाव में होती है। वह गति का प्रवर्तक नहीं है फिर भी उसका गति के साथ अविनाभाव संबंध है–धर्मास्तिकाय के होने पर गति होती है, उसके न होने पर गति नहीं होती। गति की शक्ति जीव और पुद्गल–इन दो द्रव्यों में है। इनके सिवाय कोई भी द्रव्य गतिशील नहीं है।

जीव और पुद्गल में गति की शक्ति है फिर उन्हें किसी माध्यम की आवश्यकता क्यों? यह प्रश्न सहज उपस्थित होता है। व्याख्याकारों ने इसका एक दृष्टान्तात्मक उत्तर दिया है। मत्स्य में गति की शक्ति है फिर भी वह जल के माध्यम के बिना चल नहीं सकता। यह दृष्टांत बहुत स्थूल है फिर भी इससे माध्यम की अनिवार्यता प्रदर्शित होती है। भौतिक माध्यम व्यापक नहीं हो सकता इसलिए अभौतिक माध्यम की खोज जरूरी होती है। धर्मास्तिकाय उस खोज का परिणाम हो सकता है।

अधर्मास्तिकाय स्थिति का माध्यम है।

गतिशील द्रव्य दो हैं–जीव और पुद्गल। प्रस्तुत आलापक में जीव की गति और स्थिति का उल्लेख किया गया है। स्थूल पुद्गल द्रव्य की गति पर-प्रेरित होती है किन्तु परमाणु तथा सूक्ष्म परिणति वाले परमाणु-स्कंधों की गति स्वतः होती है। उनकी गति और स्थिति के माध्यम भी धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय बनते हैं। लोक और अलोक की सीमा भी इन्हीं के आधार पर होती है।

आकाश दो खण्डों में विभक्त है–

१. लोकाकाश

२. अलोकाकाश।

जिस आकाश खण्ड में गति और अगति के माध्यम द्रव्य हैं तथा गति करने वाले जीव और पुद्गल द्रव्य हैं, वह आकाश खण्ड लोकाकाश है। जिस आकाश खण्ड में गति और अगति के माध्यम द्रव्य नहीं हैं तथा गति करने वाले जीव और पुद्गल द्रव्य नहीं हैं, वह आकाश खण्ड अलोकाकाश है।

उमास्वाति ने अस्तिकाय की द्रव्य-संख्या, गति और प्रदेश

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संख्या पर विचार किया है। उनके अनुसार धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय और आकाशास्तिकाय–तीनों एक द्रव्य हैं, एक व्यक्तिक हैं। जीव और पुद्गल अनंत द्रव्य हैं, अनंत व्यक्तिक हैं।[1]

धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय और आकाशास्तिकाय–ये तीनों निष्क्रिय हैं, गति शून्य है।[2] गति का माध्यम वही हो सकता है, जो स्वयं गति एवं स्थिति शून्य हैं। धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय गति शून्य हैं इसलिए वे गति के माध्यम हैं। आकाशास्तिकाय सब द्रव्यों के लिए आधार-भूत है और व्यापक है इसलिए उसमें गति संभव नहीं है। गति का अर्थ है एक देश से दूसरे देश में जाना–**देशाद् देशान्तरप्राप्तिः गतिः**। आकाशास्तिकाय व्यापक है इसलिए उसमें गति का सिद्धांत घटित नहीं होता।

आकाश का लक्षण है अवगाह। अवगाहन के नियम विचित्र हैं। आकाश का एक प्रदेश एक परमाणु से भी भर जाता है, दो परमाणु भी उसमें समा जाते हैं, सौ परमाणु भी समा जाते हैं, सैकड़ों कोटि परमाणु भी उसमें समा जाते हैं और हजारों कोटि परमाणु भी उसमें समा जाते हैं। उत्कृष्टतः अनंत प्रदेशी स्कन्ध भी समा जाते हैं।[3] वृत्तिकार ने इसका हेतु बतलाया है पुद्गल के परिणमन की विचित्रता। उन्होंने अपने वक्तव्य का समर्थन दो उदाहरणों के द्वारा किया है–

१. जैसे एक कक्ष के आकाश को एक दीप की रश्मियां भी भर देती हैं, सौ दीपकों का प्रकाश भी उसमें समा जाता है।[4]

२. जैसे जड़ी बूंटियों के प्रयोग से एक तोला पारद में सौ तोला सोना समा जाता है। पुनः जड़ी बूटियों के प्रयोग से एक तोला पारद से सौ तोला सोना पृथक् किया जा सकता है।[5]

क्षेत्र की अपेक्षा द्रव्य अधिक सूक्ष्म होता है। इसलिए एक आकाश-प्रदेश में अनंतप्रदेशी स्कंध भी समा जाता है। जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण ने काल, क्षेत्र, द्रव्य और भाव की सूक्ष्मता पर विचार किया है। उनके अनुसार काल सूक्ष्म होता है। काल से क्षेत्र अधिक सूक्ष्म, क्षेत्र से द्रव्य और अधिक सूक्ष्म होता है। पर्याय द्रव्य से भी अधिक सूक्ष्म होते हैं।[6] क्षेत्र से द्रव्य सूक्ष्म है, इस आधार पर एक आकाश प्रदेश में अनंत प्रदेशी स्कन्ध के समाने का सिद्धांत समझा जा सकता है।

जीवास्तिकाय है इसलिए जीव ज्ञान और दर्शन की प्रवृत्ति करता है। ज्ञान और दर्शन के अनंत पर्याय हैं। उन पर्यायों के आधार पर वह ज्ञेय को जानने के लिए प्रवृत्त होता है।

पुद्गलास्तिकाय की सत्ता है इसीलिए जीव के शरीर और इन्द्रिय की रचना, योग की प्रवृत्ति तथा आनापान का ग्रहण होता है।

दूसरे शतक में ग्रहण का अर्थ समुदित होना किया गया है।[7] पृथक् होना तथा समुदित होना–यह पुद्गल की विशेषता है। अन्य द्रव्य परस्पर संबंध स्थापित नहीं कर सकते। अन्य द्रव्यों में परस्पर संबंध और विसंबंध नहीं होता।

ग्रहण का वैकल्पिक अर्थ ग्राह्य भी किया जा सकता है। उत्तराध्ययन में ग्रहण शब्द का प्रयोग ग्राहक और ग्राह्य–इन दोनों अर्थों में किया गया है। **चक्खुस्स रूवं गहणं वयंति**–इस पद में ग्रहण का प्रयोग ग्राह्य के अर्थ में किया गया है।[8] **रूवस्स चक्खुं गहणं वयंति**–इस पद में ग्रहण का प्रयोग ग्राहक के अर्थ में किया गया है।[9]

तुलना के लिए द्रष्टव्य भगवई २/१२४–१३५, ७/२१२–२१६, तथा १८/१३४–१४२।

धम्मत्थिकायादीणं परोप्परं फास-पदं	**धर्मास्तिकायादीनां परस्परं स्पर्श-पदम**	**धर्मास्तिकाय आदि का परस्पर स्पर्श-पद**
६१. **एगे भंते! धम्मत्थिकायपदेसे केवतिएहिं धम्मत्थिकायपदेसेहिं पुट्ठे? गोयमा! जहण्णपदे तिहिं, उक्कोसपदे छहिं।**	एकः भदन्त! धर्मास्तिकायप्रदेशः कियद्भिः धर्मास्तिकायप्रदेशैः स्पृष्टः? गौतम! जघन्यपदे त्रिभिः, उत्कर्षपदे षड्भिः।	६१. भंते! धर्मास्तिकाय का एक प्रदेश धर्मास्तिकाय के कितने प्रदेशों से स्पृष्ट है? गौतम! जघन्य-पद में तीन से, उत्कृष्ट-पद में छह से स्पृष्ट है।
केवतिएहिं अधम्मत्थिकायपदेसेहिं पुट्ठे?	कियद्भिः अधर्मास्तिकायप्रदेशैः स्पृष्टः?	अधर्मास्तिकाय के कितने प्रदेशों से स्पृष्ट है?
जहण्णपदे चउहिं, उक्कोसपदे सत्तहिं।	जघन्यपदे चतुर्भिः, उत्कर्षपदे सप्तभिः।	जघन्य-पद में चार से, उत्कृष्ट-पद में सात से।
केवतिएहिं आगासत्थिकायपदेसेहिं पुट्ठे?	कियद्भिः आकाशास्तिकायप्रदेशैः स्पृष्टः?	आकाशास्तिकाय के कितने प्रदेशों से स्पृष्ट है?
सत्तहिं।	सप्तभिः।	सात से।

१. त. सू. ५/५।
२. त. सू. ५/६।
३. भ. २५/१४७–१४८।
४. भ. वृ. सू. १३/५८–यथापवरकाकाशमेकप्रदीपप्रभापटलेनाऽपि पूर्यते। द्वितीयमपि तत्तत्र माति। यावच्छतमपि तेषां तत्र माति।
५. भ. वृ. सू. १३/५८–तथौषधिविशेषापादितपरिणामादेकत्रपारदकर्षे सुवर्ण-कर्षशतं प्रविशति। पारदकर्षीभूतं च सदौषधिसामर्थ्यात् पुनः पारदस्य कर्षः सुवर्णस्य च कर्षशतं भवति विचित्रत्वात् पुद्गलपरिणामस्येति।
६. (क) विशेषावश्यक भाष्य गाथा ६२१–६२३।
(ख) नंदी १८/८ का टिप्पण।
७. भ. २/१२६।
८. उत्तर. ३२/२२।
९. उत्तर. ३२/२३।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

केवतिएहिं जीवत्थिकायपदेसेहिं पुट्ठे ? अणंतेहिं।

कियद्भिः जीवास्तिकायप्रदेशैः स्पृष्टः? अनन्तैः।

जीवास्तिकाय के कितने प्रदेशों से स्पृष्ट है ? अनंत से।

केवतिएहिं पोग्गलत्थिकायपदेसेहिं पुट्ठे ? अणंतेहिं।

कियद्भिः पुद्गलास्तिकायप्रदेशैः स्पृष्टः? अनन्तैः।

पुद्गलास्तिकाय के कितने प्रदेशों से स्पृष्ट है? अनन्त से।

केवतिएहिं अद्धासमएहिं पुट्ठे ? सिय पुट्ठे सिय नो पुट्ठे, जइ पुट्ठे नियमं अणंतेहिं॥

कियद्भिः अद्धासमयैः स्पृष्टः? स्यात् स्पृष्टः स्यात् नो स्पृष्टः, यदि स्पृष्टः नियमम् अनन्तैः।

कितने अद्धा-समय से स्पृष्ट है ? स्यात् स्पृष्ट है, स्यात् स्पृष्ट नहीं है। यदि स्पृष्ट है तो नियमतः अनंत से।

६२. एगे भंते ! अधम्मत्थिकायपदेसे केवतिएहिं धम्मत्थिकायपदेसेहिं पुट्ठे ? गोयमा ! जहण्णपदे चउहिं, उक्कोसपदे सत्तहिं।

एकः भदन्त! अधर्मास्तिकायप्रदेशः कियद्भिः धर्मास्तिकायप्रदेशैः स्पृष्टः? गौतम! जघन्यपदे चतुर्भिः, उत्कर्षपदे सप्तभिः।

६२. भंते ! अधर्मास्तिकाय का एक प्रदेश धर्मास्तिकाय के कितने प्रदेशों से स्पृष्ट है ? गौतम ! जघन्य-पद में चार से, उत्कृष्ट-पद में सात से।

केवतिएहिं अधम्मत्थिकायपदेसेहिं पुट्ठे ? जहण्णपदे तिहिं, उक्कोसपदे छहिं।

कियद्भिः अधर्मास्तिकायप्रदेशैः स्पृष्टः? जघन्यपदे त्रिभिः, उत्कर्षपदे षड्भिः।

अधर्मास्तिकाय के कितने प्रदेशों से स्पृष्ट है? जघन्य-पद में तीन से, उत्कृष्ट-पद में छह से।

सेसं जहा धम्मत्थिकायस्स॥

शेषं यथा धर्मास्तिकायस्य।

शेष धर्मास्तिकाय की भांति वक्तव्य है।

भाष्य

१. सूत्र ६१-६२

जघन्यतः तीन प्रदेशों की स्पर्शना—यह स्थिति लोकान्त के कोने में होती है। धर्मास्तिकाय का एक प्रदेश ऊर्ध्ववर्ती एक प्रदेश तथा पार्श्ववर्ती दो प्रदेशों से स्पृष्ट होता है। इस प्रकार धर्मास्तिकाय के एक प्रदेश की जघन्यतः तीन प्रदेशों से स्पर्शना होती है। द्रष्टव्य स्थापना—

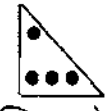

उत्कृष्टतः धर्मास्तिकाय के एक प्रदेश की छह प्रदेशों से स्पर्शना होती है। विवक्षित एक प्रदेश एक ऊर्ध्ववर्ती, एक अधोवर्ती, चार-चार दिशाओं से स्पृष्ट होते हैं। द्रष्टव्य स्थापना—

धर्मास्तिकाय का एक प्रदेश जघन्यतः अधर्मास्तिकाय के चार प्रदेशों से स्पृष्ट होता है। विवक्षित प्रदेश से एक ऊर्ध्ववर्ती, दो पार्श्ववर्ती, एक उस प्रदेश के स्थान में स्थित।

उत्कृष्टतः धर्मास्तिकाय के एक प्रदेश की सात अधर्मास्तिकाय के प्रदेशों से स्पर्शना होती है। छह दिशाओं के छह तथा एक उस प्रदेश के स्थान में स्थित।[1]

लोकान्त में भी अलोकाकाश के प्रदेश विद्यमान हैं इसलिए धर्मास्तिकाय का एक प्रदेश आकाश के सात प्रदेशों से स्पृष्ट होता है।

धर्मास्तिकाय के एक प्रदेश के पार्श्वों में तथा तीन, चार, पांच अथवा छह दिशाओं में अनंत जीवों के अनंत प्रदेश विद्यमान हैं। इसलिए जीवास्तिकाय के अनंत प्रदेशों से स्पृष्ट होता है।

इसी प्रकार वह पुद्गलास्तिकाय के भी अनंत प्रदेशों से स्पृष्ट होता है।

अद्धासमय समयक्षेत्र में ही होते हैं इसलिए धर्मास्तिकाय का एक प्रदेश उनसे क्वचित् स्पृष्ट होता है, क्वचित् नहीं होता। यदि होता है तो वह अनंत अद्धासमयों से स्पृष्ट होता है।

अधर्मास्तिकाय के प्रदेश की स्पर्शना धर्मास्तिकाय की भांति वक्तव्य है।

६३. एगे भंते ! आगासत्थिकायपदेसे केवतिएहिं धम्मत्थिकायपदेसेहिं पुट्ठे ? गोयमा ! सिय पुट्ठे सिय नो पुट्ठे। जइ पुट्ठे जहण्णपदे एक्केण वा दोहिं वा तीहिं वा, उक्कोसपदे सत्तहिं। एवं अधम्मत्थिकायपदेसेहिं वि।

एकः भदन्त! आकाशास्तिकायप्रदेशः कियद्भिः धर्मास्तिकायप्रदेशैः स्पृष्टः? गौतम ! स्यात् स्पृष्टः स्यात् नो स्पृष्टः, यदि स्पृष्टः जघन्यपदे एकेन वा द्वाभ्यां वा त्रिभिः वा, उत्कर्षपदे सप्तभिः। एवं अधर्मास्तिकायप्रदेशैः अपि।

६३. भंते ! आकाशास्तिकाय का एक प्रदेश धर्मास्तिकाय के कितने प्रदेशों से स्पृष्ट है ? गौतम ! स्यात् स्पृष्ट है, स्यात् स्पृष्ट नहीं है। यदि स्पृष्ट है तो जघन्य-पद में एक, दो अथवा तीन से, उत्कृष्ट-पद में सात से। इसी प्रकार अधर्मास्तिकाय के प्रदेशों की

१. भ. वृ. १३/६१,६२—सप्तमस्तु धर्मास्तिकायप्रदेशस्य एवेति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वक्तव्यता।

केवतिएहिं आगासत्थिकायपदेसेहिं पुट्ठे?	कियद्भिः आकाशास्तिकायप्रदेशैः स्पृष्टः?	आकाशास्तिकाय के कितने प्रदेशों से स्पृष्ट है?
छहिं।	षड्भिः।	छह से।
केवतिएहिं जीवत्थिकायपदेसेहिं पुट्ठे?	कियद्भिः जीवास्तिकायप्रदेशैः स्पृष्टः?	जीवास्तिकाय के कितने प्रदेशों से स्पृष्ट है?
सिय पुट्ठे सिय नो पुट्ठे। जइ पुट्ठे नियमं अणंतेहिं। एवं पोग्गलत्थिकायपदेसेहिं वि, अद्धासमएहिं वि॥	स्यात् स्पृष्टः स्यात् नो स्पृष्टः, यदि स्पृष्टः नियमम् अनन्तैः। एवं पुद्गलास्तिकायप्रदेशैः अपि, अध्वासमयैः अपि।	स्यात् स्पृष्ट है, स्यात् स्पृष्ट नहीं है। यदि स्पृष्ट है तो नियमतः अनंत से। इसी प्रकार पुद्गलास्तिकाय के प्रदेशों की वक्तव्यता। इसी प्रकार अद्धासमय की भी वक्तव्यता।

भाष्य

१. सूत्र ६३

आकाशास्तिकाय लोक और अलोक दोनों में है। लोक में विद्यमान आकाशास्तिकाय का एक प्रदेश अधर्मास्तिकाय से स्पृष्ट होता है और अलोक में विद्यमान वह धर्मास्तिकाय से स्पृष्ट नहीं होता। लोकान्तवर्ती धर्मास्तिकाय के एक प्रदेश से एक अग्रवर्ती अलोकाकाश का प्रदेश स्पृष्ट होता है।

यदि आकाश का एक प्रदेश वक्रगत होता है तो वह धर्मास्तिकाय के दो प्रदेशों से स्पृष्ट होता है।

यदि आकाश के एक प्रदेश के अग्रवर्ती, अधोवर्ती और ऊपरिवर्ती धर्मास्तिकाय के प्रदेश होते हैं तो वह धर्मास्तिकाय के तीन प्रदेशों से स्पृष्ट होता है।

यदि आकाश का एक प्रदेश लोकान्त के कोने में स्थित होता है तो वह धर्मास्तिकाय के एक प्रदेश, उसके द्वारा अवगाढ एक प्रदेश, दो दिशाओं में स्थित अधोवर्ती और ऊपरिवर्ती एक-एक प्रदेश–इस प्रकार वह धर्मास्तिकाय के चार प्रदेशों से स्पृष्ट होता है।

यदि आकाश का एक प्रदेश धर्मास्तिकाय के एक प्रदेश, उसके अधोवर्ती, ऊपरिवर्ती तथा दो दिशाओं में वर्तमान धर्मास्तिकाय के प्रदेश से स्पृष्ट होता है तो वह धर्मास्तिकाय के पांच प्रदेशों से स्पृष्ट होता है।

यदि आकाश का एक प्रदेश धर्मास्तिकाय के एक प्रदेश, उसके अधोवर्ती, ऊपरिवर्ती तथा तीन दिशाओं में वर्तमान धर्मास्तिकाय के प्रदेशों से स्पृष्ट होता है तो वह धर्मास्तिकाय के छह प्रदेशों से स्पृष्ट होता है।

यदि आकाश का एक प्रदेश धर्मास्तिकाय के एक प्रदेश, उसके अधोवर्ती, ऊपरिवर्ती तथा चार दिशाओं में वर्तमान धर्मास्तिकाय के प्रदेशों से स्पृष्ट होता है तो वह धर्मास्तिकाय के सात प्रदेशों से स्पृष्ट होता है।[1]

अधर्मास्तिकाय के स्पर्श के नियम धर्मास्तिकाय की भांति वक्तव्य हैं।

जीवास्तिकाय के प्रदेश-स्पर्श के नियम–यदि अलोकाकाश का प्रदेश है तो वह जीव से स्पृष्ट नहीं है। यदि वह लोक का प्रदेश है तो वह जीवास्तिकाय के अनंत प्रदेशों से स्पृष्ट है।

पुद्गलास्तिकाय के प्रदेश-स्पर्श नियम भी जीवास्तिकाय की भांति वक्तव्य हैं। अद्धासमय के नियम भी इसी प्रकार वक्तव्य हैं।

६४. एगे भंते! जीवत्थिकायपदेसे केवतिएहिं धम्मत्थिकायपदेसेहिं पुट्ठे? जहण्णपदे चउहिं, उक्कोसपदे सत्तहिं। एवं अधम्मत्थिकायपदेसेहिं वि।	एकः भदन्त! जीवास्तिकायप्रदेशः कियद्भिः धर्मास्तिकायप्रदेशैः स्पृष्टः? जघन्यपदे चतुर्भिः, उत्कर्षपदे सप्तभिः। एवं अधर्मास्तिकायप्रदेशैः अपि।	६४. भंते! जीवास्तिकाय का एक प्रदेश धर्मास्तिकाय के कितने प्रदेशों से स्पृष्ट है? जघन्य-पद में चार से, उत्कृष्ट-पद में सात से। इसी प्रकार अधर्मास्तिकाय के प्रदेशों की वक्तव्यता।
केवतिएहिं आगासत्थिकायपदेसेहिं पुट्ठे?	कियद्भिः आकाशास्तिकायप्रदेशैः स्पृष्टः?	आकाशास्तिकाय के कितने प्रदेशों से स्पृष्ट है?
सत्तहिं।	सप्तभिः।	सात से।

१. भ. वृ. सू. १३/६३-सिय पुट्ठेत्ति लोकमाश्रित्य सिय नो पुट्ठेति अलोकमाश्रित्य जइ पुट्ठेत्यादि यदि स्पृष्टस्तदा जघन्यपदे एकेन धर्मास्तिकायप्रदेशेन स्पृष्टः, कथम्? एवंविधलोकान्तवर्तिना धर्मास्तिकायैकप्रदेशेन शेष धर्मास्तिकायप्रदेशेभ्यो निर्गतेनैकोऽग्रभागवर्त्ति लोकाकाशप्रदेशः स्पृष्टो वक्रगतस्त्वसौ द्वाभ्यां यस्य चालोकाकाश-प्रदेशस्याग्रतोऽधस्तादुपरि च धर्मास्तिकायप्रदेशाः सन्ति स त्रिभिर्धर्मास्ति-कायप्रदेशैः स्पृष्टः, स चैवम् यस्त्वेवं लोकान्ते कोणगतो व्योमप्रदेशोऽसावेकेन धर्मास्तिकायप्रदेशेन तदवगाढेनान्येन चोपरिवर्तिना अधोवर्तिना वा द्वाभ्यां च दिग्द्वयावस्थिताभ्यां स्पृष्ट इत्येवं चतुर्भिः। यश्चाध उपरि च तथा दिग् द्वये तत्रैव वर्तमानेन धर्मास्तिकायप्रदेशेन स्पृष्टः स पंचभिः। यः पुनरध उपरि च तथा दिक्त्रये तत्रैव च प्रवर्त्तमानेन धर्मास्तिकायप्रदेशेन स्पृष्टः स षड्भिः। यश्चाध उपरि च तथा दिक्चतुष्टये तत्रैव च वर्तमानेन धर्मास्तिकायप्रदेशेन स्पृष्टः स सप्तभिर्धर्मास्तिकाय-प्रदेशैः स्पृष्टो भवतीति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

केवतिएहिं जीवत्थिकायपदेसेहिं पुट्ठे ? अणंतेहिं। सेसं जहा धम्मत्थिकायस्स॥

कियद्भिः जीवास्तिकायप्रदेशैः स्पृष्टः? अनन्तैः। शेषं यथा धर्मास्तिकायस्य।

जीवास्तिकाय के कितने प्रदेशों से स्पृष्ट है? अनंत से। शेष धर्मास्तिकाय की भांति वक्तव्यता।

६५. एगे भंते ! पोग्गलत्थिकायपदेसे केवतिएहिं धम्मत्थिकायपदेसेहिं पुट्ठे ? एवं जहेव जीवत्थिकायस्स।

एकः भदन्त! पुद्गलास्तिकायप्रदेशः कियद्भिः धर्मास्तिकायप्रदेशैः स्पृष्टः? एवं यथैव जीवास्तिकायस्य।

६५. भंते ! पुद्गलास्तिकाय का एक प्रदेश धर्मास्तिकाय के कितने प्रदेशों से स्पृष्ट है? इसी प्रकार जीवास्तिकाय की भांति वक्तव्यता।

भाष्य

१. सूत्र ६४-६५

जीवास्तिकाय का एक प्रदेश लोकान्त के कोने में होता है, उस समय वह धर्मास्तिकाय के चार प्रदेशों से स्पृष्ट होता है–एक प्रदेश ऊपर अथवा नीचे, दो प्रदेश दो दिशाओं में, एक प्रदेश वह जिस पर जीव का प्रदेश अवगाढ है।

जीवास्तिकाय का एक प्रदेश आकाश आदि के एक प्रदेश पर केवली-समुद्घात के समय में ही उपलब्ध होता है।[1]

जीव के असंख्य प्रदेश होते हैं। वे समुदित अवस्था में रहते हैं। उनमें संकोच और विस्तार की क्षमता है पर एक प्रदेश कहीं पृथक् रूप में उपलब्ध नहीं होता। यह सामान्य नियम है। केवली समुद्घात एक विशेष नियम है। उस समय जीव का एक-एक प्रदेश आकाश के एक-एक प्रदेश पर अवगाढ होता है। द्रष्टव्य, भगवई २/७४ का भाष्य।

पुद्गलास्तिकाय के एक प्रदेश का तात्पर्य है एक परमाणु। जीवास्तिकाय के एक प्रदेश की भांति इसके स्पर्श की वक्तव्यता।

६६. दो भंते ! पोग्गलत्थिकायपदेसा केवतिएहिं धम्मत्थिकायपदेसेहिं पुट्ठा ? गोयमा ! जहण्णपदे छहिं, उक्कोसपदे बारसहिं। एवं अधम्मत्थिकायपदेसेहिं वि।

द्वौ भदन्त! पुद्गलास्तिकायप्रदेशौ कियद्भिः धर्मास्तिकायप्रदेशैः स्पृष्टौ? गौतम! जघन्यपदे षड्भिः, उत्कर्षपदे द्वादशभिः। एवं अधर्मास्तिकायप्रदेशैः अपि।

६६. भंते ! पुद्गलास्तिकाय के दो प्रदेश धर्मास्तिकाय के कितने प्रदेशों से स्पृष्ट हैं? गौतम ! जघन्य-पद में छह से, उत्कृष्ट-पद में बारह से। इसी प्रकार अधर्मास्तिकाय के प्रदेशों की वक्तव्यता।

केवतिएहिं आगासत्थिकायपदेसेहिं पुट्ठा ? बारसहिं। सेसं जहा धम्मत्थिकायस्स॥

कियद्भिः आकाशास्तिकायप्रदेशैः स्पृष्टौ? द्वादशभिः। शेषं यथा धर्मास्तिकायस्य।

आकाशास्तिकाय के कितने प्रदेशों से स्पष्ट हैं? बारह से। शेष धर्मास्तिकाय की भांति वक्तव्यता।

६७. तिण्णि भंते ! पोग्गलत्थिकायपदेसा केवतिएहिं धम्मत्थिकायपदेसेहिं पुट्ठा ? जहण्णपदे अट्ठहिं, उक्कोसपदे सत्तरसहिं। एवं अधम्मत्थिकायपदेसेहिं वि।

त्रयः भदन्त! पुद्गलास्तिकायप्रदेशाः कियद्भिः धर्मास्तिकायप्रदेशैः स्पृष्टाः? जघन्यपदे अष्टभिः, उत्कर्षपदे सप्तदशभिः। एवम् अधर्मास्तिकायप्रदेशैः अपि।

६७. भंते ! पुद्गलास्तिकाय के तीन प्रदेश धर्मास्तिकाय के कितने प्रदेशों से स्पृष्ट हैं? जघन्य-पद में आठ से, उत्कृष्ट-पद में सतरह से। इसी प्रकार अधर्मास्तिकाय के प्रदेशों की वक्तव्यता।

केवतिएहिं आगासत्थिकायपदेसेहिं पुट्ठा ? सत्तरसहिं। सेसं जहा धम्मत्थिकायस्स। एवं एएणं गमेणं भाणियव्वा जाव दस, नवरं–जहण्णपदे दोण्णि पक्खिवियव्वा, उक्कोसपदे पंच। चत्तारि पोग्गलत्थिकायस्स पदेसा जहण्णपदे दसहिं, उक्कोसपदे बावीसाए। पंच पोग्गलत्थिकायस्स पदेसा जहण्णपदे बारसहिं

आकाशास्तिकाय के कितने प्रदेशों से स्पृष्ट हैं? सतरह से। शेष धर्मास्तिकाय की भांति वक्तव्यता। इस गमक के अनुसार यावत् दस तक की वक्तव्यता, इतना विशेष है–जघन्य-पद में दो का प्रक्षेप करणीय हैं, उत्कृष्ट-पद में पांच का। पुद्गलास्तिकाय के चार प्रदेश जघन्य-पद में दस से, उत्कृष्ट-पद में बाईस से। पुद्गलास्तिकाय के पांच

१. भ. वृ. १३/६४–जघन्यपदे लोकांत कोणलक्षणे सर्वाल्पत्वात्तत्र स्पर्शक-प्रदेशानां चतुर्भिरिति, कथम्? अध उपरि वा एको द्वौ च दिशोरेकस्तु यत्र जीवप्रदेश एवावगाढ इत्येवं, एकश्च जीवास्तिकायप्रदेश एकत्राकाश-प्रदेशादौ केवलीसमुद्घात एव लभ्यते इति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उक्कोसपदे सत्तावीसाए। छ पोग्गलत्थिकायस्स पदेसा जहण्णपदे चोद्दसहिं, उक्कोसपदे बत्तीसाए। सत्त पोग्गलत्थिकायस्स पदेसा जहण्णपदे सोलसहिं, उक्कोसपदे सत्ततीसाए। अट्ठ पोग्गलत्थिकायस्स पदेसा जहण्णपदे अट्ठारसहिं, उक्कोसपदे बायालीसाए।

द्वादशभिः, उत्कर्षपदे सप्तविंशत्या। षड् पुद्गलास्तिकायस्य प्रदेशाः जघन्यपदे चतुर्दशभिः, उत्कर्षपदे द्वात्रिंशता। सप्त पुद्गलास्तिकायस्य प्रदेशाः जघन्यपदे षोडशैः, उत्कर्षपदे सप्तत्रिंशता। अष्ट पुद्गलास्तिकायस्य प्रदेशाः जघन्यपदे अष्टादशभिः, उत्कर्षपदे द्वाचत्वारिंशता।

प्रदेश जघन्य पद में बारह से। उत्कृष्ट पद में सत्ताईस से। पुद्गलास्तिकाय के छह प्रदेश जघन्य पद मे चौदह से, उत्कृष्ट-पद में बत्तीस से। पद्गलास्तिकाय के सात प्रदेश जघन्य-पद में सोलह से, उत्कृष्ट-पद में सैंतीस से। पुद्गलास्तिकाय के आठ प्रदेश, जघन्य-पद में अठारह से, उत्कृष्ट-पद में बयांलीस से।

नव पोग्गलत्थिकायस्स पदेसा जहण्णपदे वीसाए, उक्कोसपदे सीयालीसाए। दस पोग्गलत्थिकायस्स पदेसा जहण्णपदे बावीसाए, उक्कोसपदे बावन्नाए। आगासत्थिकायस्स सव्वत्थ उक्कोसगं भाणियव्वं॥

नव पुद्गलास्तिकायस्य प्रदेशाः जघन्यपदे विंशत्या, उत्कर्षपदे सप्तचत्वारिंशता। दश पुद्गलास्तिकायस्य प्रदेशाः जघन्यपदे द्वाविंशत्या, उत्कर्षपदे द्विपञ्चाशता। आकाशास्तिकायस्य सर्वत्र उत्कर्षकं भणितव्यम्।

पुद्गलास्तिकाय के नौ प्रदेश जघन्य-पद में बीस से, उत्कृष्ट-पद में सैंतालीस में। पुद्गलास्तिकाय के दस प्रदेश जघन्य-पद में बाईस से, उत्कृष्ट-पद में बावन से। आकाशास्तिकाय सर्वत्र उत्कृष्टतः वक्तव्य है।

६८. संखेज्जा भंते! पोग्गलत्थिकायपदेसा केवतिएहिं धम्मत्थिकायपदेसेहिं पुट्ठा?

संख्येयाः भदन्त! पुद्गलास्तिकायप्रदेशाः कियद्भिः धर्मास्तिकायप्रदेशैः स्पृष्टाः?

६८. भंते! पुद्गलास्तिकाय के संख्येय प्रदेश धर्मास्तिकाय के कितने प्रदेशों से स्पृष्ट हैं?

जहण्णपदे तेणेव संखेज्जएणं दुगुणेणं दुरूवाहिएणं, उक्कोसपदे तेणेव संखेज्जएणं पंचगुणेणं दुरूवाहिएणं। केवतिएहिं अधम्मत्थिकायपदेसेहिं?

जघन्यपदे तेनैव संख्येयेन द्विगुणेन द्विरूपाधिकेन, उत्कर्षपदे तेनैव संख्येयेन पञ्चगुणेन द्विरूपाधिकेन। कियद्भिः अधर्मास्तिकायप्रदेशैः स्पृष्टः?

जघन्य-पद में उसी संख्येय से। दो अधिक द्विगुण संख्येय से। उत्कृष्ट-पद मे उसी संख्येय से दो अधिक पंच गुणित संख्येय से। कितने अधर्मास्तिकाय के प्रदेशों से स्पृष्ट हैं?

एवं चेव। केवतिएहिं आगासत्थिकायपदेसेहिं?

एवं चैतत्। कियद्भिः आकाशास्तिकायप्रदेशैः स्पृष्टः?

पूर्ववत्। आकाशास्तिकाय के कितने प्रदेशों से स्पृष्ट हैं?

तेणेव संखेज्जएणं पंचगुणेणं दुरूवाहिएणं। केवतिएहिं जीवत्थिकायपदेसेहिं?

तेनैव संख्येयन पंचगणेन द्विरूपाधिकेन। कियद्भिः जीवास्तिकायप्रदेशैः स्पृष्टः?

उसी संख्येय से दो अधिक पंच गुणित संख्येय से। जीवास्तिकाय के कितने प्रदेशों से स्पृष्ट होते हैं?

अणंतेहिं। केवतिएहिं पोग्गलत्थिकायपदेसेहिं?

अनंतैः। कियद्भिः पुद्गलास्तिकायप्रदेशैः स्पृष्टः?

अनंत से। पुद्गलास्तिकाय के कितने प्रदेशों से स्पृष्ट हैं?

अणंतेहिं। केवतिएहिं अद्धासमएहिं?

अनंतैः। कियद्भिः अद्धासमयैः स्पृष्टः?

अनंत से। कितने अद्धासमय से स्पृष्ट हैं?

सिय पुट्ठे, सिय नो पुट्ठे। जइ पुट्ठे नियमं अणंतेहिं॥

स्यात् स्पृष्टः स्यात् नो स्पृष्टः। यदि स्पृष्टः नियमम् अनंतैः।

स्यात् स्पृष्ट है, स्यात् स्पृष्ट नहीं है। यदि स्पृष्ट हैं तो नियमतः अनंत से।

६९. असंखेज्जा भंते! पोग्गलत्थिकायपदेसा केवतिएहिं धम्मत्थिकायपदेसेहिं पुट्ठा?

असंख्येयाः भदन्त! पुद्गलास्तिकायप्रदेशाः कियद्भिः धर्मास्तिकायप्रदेशैः स्पृष्टाः?

६९. भंते! पुद्गलास्तिकाय के असंख्येय प्रदेश धर्मास्तिकाय के कितने प्रदेशों से स्पृष्ट हैं?

जहण्णपदे तेणेव असंखेज्जएणं दुगुणेणं दुरूवाहिएणं, उक्कोसपदे तेणेव असंखेज्जएणं पंचगुणेणं दुरूवा-

जघन्यपदे तेनैव असंख्येयेन द्विगुणेन द्विरूपाधिकेन, उत्कर्षपदे तेनैव असंख्येयेन पञ्चगुणेन द्विरूपाधिकेन।

जघन्य-पद में उसी असंख्येय से दो अधिक द्विगुणित असंख्येय से, उत्कृष्ट-पद में उसी असंख्येय से दो अधिक पंच गुणित असंख्येय

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हिएणं। सेसं जहा संखेज्जाणं जाव नियमं अणंतेहिं॥

शेषं यथा संख्येयानां यावत् नियमम् अनन्तैः।

से। शेष संख्येय की भांति वक्तव्यता यावत् नियमतः अनंत से।

७०. अणंता भंते! पोग्गलत्थिकायपदेसा केवतिएहिं धम्मत्थिकायपदेसेहिं पुट्ठा?

अनन्ताः भदन्त! पुद्गलास्तिकाय-प्रदेशाः कियद्भिः धर्मास्तिकायप्रदेशैः स्पृष्टाः?

७०. भंते! पुद्गलास्तिकाय के अनंत प्रदेश धर्मास्तिकाय के कितने प्रदेशों से स्पृष्ट हैं?

एवं जहा असंखेज्जा तहा अणंता वि निरवसेसं॥

एवं यथा असंख्येयाः तथा अनन्ताः अपि निरवशेषम्।

इस प्रकार जैसे असंख्येय की वक्तव्यता वैसे ही अनंत की निरवशेष वक्तव्यता।

भाष्य

१. सूत्र ६६-७०

अभयदेवसूरि ने द्विप्रदेशी आदि स्कंधों के विषय में चूर्णिकार और वृत्तिकार के मत प्रस्तुत किए हैं। चूर्णिकार के अनुसार द्विप्रदेशी स्कंध लोकान्तवर्ती एक आकाश प्रदेश में समवगाढ है। वह आकाश प्रदेश द्विप्रदेशी स्कंध के दोनों प्रदेशों को अवगाहन दे रहा है। एक ही आकाश-प्रदेश को नय दृष्टि से विभक्त मानने पर वह द्विप्रदेशी स्कंध धर्मास्तिकाय के दो प्रदेशों से स्पृष्ट होता है। उसके ऊपर अथवा नीचे जो धर्मास्तिकाय का प्रदेश है, उसका भी नय दृष्टि से भेद मान लेने पर वह दो परमाणुओं का स्पर्श करता है तथा पार्श्ववर्ती धर्मास्तिकाय के दो प्रदेश एक-एक अणु का स्पर्श करते हैं। इस प्रकार द्विप्रदेशी स्कंध जघन्य-पद में धर्मास्तिकाय के छह प्रदेशों से स्पृष्ट हो जाता है।

यदि नय मत का आश्रय न लिया जाए तो द्व्यणुक स्कंध जघन्यतः धर्मास्तिकाय के चार प्रदेशों से स्पृष्ट होता है।

वृत्तिकार का अभिमत यह है–दो बिंदुओं की स्थापना करें और उन्हें दो परमाणु मान लें। अर्वाचीन परमाणु धर्मास्तिकाय के अर्वाक् स्थित प्रदेश से स्पृष्ट होता है।

परभागवर्ती परमाणु परतः स्थित धर्मास्तिकाय के प्रदेश से स्पृष्ट होता है–इस प्रकार दो से स्पृष्ट तथा जिन दो प्रदेशों के मध्य में परमाणु स्थापित है उनमें से एक से एक, दूसरे से दूसरा स्पृष्ट–इस प्रकार चार से स्पृष्ट। दो प्रदेशों से अवगाढ होने के कारण स्पृष्ट है। इस प्रकार संयोग करने पर द्विप्रदेशी स्कंध धर्मास्तिकाय के छह प्रदेशों से स्पृष्ट होता है।[1] द्रष्टव्य स्थापना–

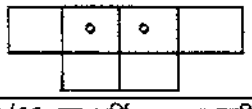

द्विप्रदेशी स्कंध उत्कृष्ट पद में धर्मास्तिकाय के बारह प्रदेशों से स्पृष्ट होता है। दो आकाशास्तिकाय के दो प्रदेशों में अवगाढ है, इस प्रकार अवगाढ़ प्रदेश दो, नीचे दो, ऊपर दो, पूर्व में दो, पश्चिम में दो, दक्षिण और उत्तर में एक-एक। इस प्रकार वह धर्मास्तिकाय के बारह प्रदेशों से स्पृष्ट होता है। द्रष्टव्य स्थापना–

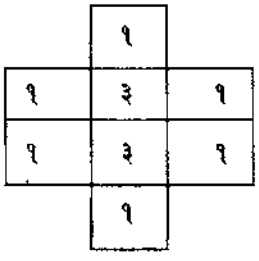

द्विप्रदेशी स्कंध आकाशास्तिकाय के बारह प्रदेशों से स्पृष्ट होता है। लोकान्त में भी आकाश-प्रदेश विद्यमान है इसलिए इसका जघन्य पद नहीं है।[2]

चूर्णिकार के मतानुसार एक आकाश-प्रदेश में त्रिप्रदेशी स्कंध अवगाढ है। उसे तीन भागों में विभक्त किया जाए। इस प्रकार अवगाढ प्रदेश तीन, अधोवर्ती अथवा ऊपरिवर्ती तीन, पार्श्ववर्ती दो–कुल मिलाकर त्रिप्रदेशी स्कंध धर्मास्तिकाय के आठ प्रदेशों से स्पृष्ट होता है।[3]

जयाचार्य ने वृत्तिकार के मत का अनुसरण कर लिखा है–त्रिप्रदेशी स्कंध तीन आकाश प्रदेशों में अवगाढ, तीन अधोवर्ती अथवा उपरिवर्ती, दो पार्श्ववर्ती–इस प्रकार वह धर्मास्तिकाय के

१. भ. वृ. १३/६६–इह चूर्णिकारव्याख्यानमिदं–लोकान्ते द्विप्रदेशिकः स्कंधः एक-प्रदेशसमवगाढः स च प्रतिद्रव्यावगाहं प्रदेश इति नयमताश्रयणेनावगाह प्रदेशस्यैकस्यापि भिन्नत्वात् द्वाभ्यां स्पृष्टः तथा यस्तस्यो पर्यधस्ताद्वा प्रदेशस्तस्यापि पुद्गलद्वयस्पर्शनेन नयमतादेव भेदाद् द्वाभ्यां, तथा पार्श्वप्रदेशावेकैकमणुं स्पृशतः परस्परव्यवहितत्वाद् इत्येवं जघन्यपदे षड्भि धर्मास्तिकायप्रदेशैर्द्व्यणुकस्कंधः स्पृश्यते, नयमतानंगीकरणे तु चतुर्भिरेव द्व्यणुकस्य जघन्यतः स्पर्शना स्यादिति।
वृत्तिकृता त्वेवमुक्तम्–इह यद् बिन्दुद्वयं तत्परमाणुद्वयमिति मन्तव्यं तत्र चार्वाचीनः परमाणुः धर्मास्तिकायप्रदेशेनार्वाक्स्थितेन स्पृष्टः, परभागवर्ती च परतः स्थितेन एवं द्वौ, तथा ययोःप्रदेशयोर्मध्ये परमाणु स्थाप्येते तयोरग्रेतनाभ्यां प्रदेशाभ्यां तौ स्पृष्टौ एकेनैको द्वितीयेन च द्वितीय इति चत्वारो, द्वौ चावगाढत्वादेव स्पृष्टावित्येवं षट्।

२. भ. वृ. १३/६६–बारसहिं इह जघन्यपदं नास्ति। लोकान्तेपि आकाश-प्रदेशानां विद्यमानत्वादिति द्वादशभिरित्युक्तम्।

३. भ. वृ. १३/६७–पूर्वोक्तनयमतेनावगाढप्रदेशास्त्रिधा अधस्तनोऽप्युपरितनोपि वा त्रिधा द्वौ पार्श्वतः इत्येवमष्टौ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आठ प्रदेशों से स्पृष्ट होता है।[1]

सूत्रकार ने चार प्रदेशी से दस प्रदेशी स्कंध के लिए एक नियम का निर्देश दिया है। जघन्य पद में द्विगुण, उत्कृष्ट पद में पंच गुण तथा प्रत्येक में दो का और प्रक्षेप किया जाए। दृष्टव्य स्थापना–

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	पुद्गल प्रदेश
४	६	८	१०	१२	१४	१६	१८	२०	२२	जघन्य पद में
७	१२	१७	२२	२७	३२	३७	४२	४७	५२	उत्कृष्ट पद में

लोकान्त में आकाश के असंख्य प्रदेश नहीं होते इसलिए जघन्य पद में जो असंख्य प्रदेशों का उल्लेख है, वह औपचारिक है। उत्कृष्ट पद में आकाश के अनंत प्रदेशों का उल्लेख भी औपचारिक है। लोक असंख्य प्रदेशात्मक है इसलिए अनंत प्रदेश शब्द का होना संभव नहीं है।[2]

७१. एगे भंते! अद्धासमए केवतिएहिं धम्मत्थिकायपदेसेहिं पुट्ठे ?
सत्तहिं।
केवतिएहिं अधम्मत्थिकायपदेसेहिं पुट्ठे ?
एवं चेव, एवं आगासत्थिकाएहिं वि।
केवतिएहिं जीवत्थिकायपदेसेहिं पुट्ठे ?
अणंतेहिं, एवं जाव अद्धासमएहिं॥

एकः भदन्त! अद्धासमयः कियद्भिः धर्मास्तिकायप्रदेशैः स्पृष्टः?
सप्तभिः।
कियद्भिः अधर्मास्तिकायप्रदेशैः स्पृष्टः?
एवं चैव, एवम् आकाशास्तिकायैः अपि।
कियद्भिः जीवास्तिकायप्रदेशैः स्पृष्टः?
अनन्तैः, एवं यावत् अद्धासमयैः।

७१. भंते! एक अद्धासमय धर्मास्तिकाय के कितने प्रदेशों से स्पृष्ट है?
सात से।
अधर्मास्तिकाय के कितने प्रदेशों से स्पृष्ट है?
पूर्ववत्। इसी प्रकार आकाशास्तिकाय के प्रदेशों की वक्तव्यता।
जीवास्तिकाय के कितने प्रदेशों से स्पृष्ट है?
अनंत से। इसी प्रकार यावत् अद्धासमय से।

भाष्य

१. सूत्र ७१

जघन्य पद लोकान्त में ही संभव है। अद्धासमय वहां होता नहीं। फिर वह धर्मास्तिकाय के सात प्रदेशों से स्पृष्ट कैसे हो सकता है? अभयदेव सूरि ने इस प्रश्न का समाधान एक कल्पना के आधार पर किया है। उनके अनुसार यहां अद्धासमय विशिष्ट परमाणु द्रव्य विवक्षित है।[3]

इस विषय में जयाचार्य ने टबाकार के अभिमत का उल्लेख किया है।[4]

प्रस्तुत आलापक में अद्धासमय का अनेक बार उल्लेख है। उसके अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि यहां अद्धासमय का प्रयोग व्यावहारिक काल के लिए किया गया है इसीलिए इकसठवें सूत्र में **'सिय पुट्ठे सिय नो पुट्ठे'** का नियम निर्दिष्ट है। व्यावहारिक काल समय-क्षेत्र अथवा मनुष्य लोक में होता है, उसके बाहर नहीं होता।

७२. धम्मत्थिकाए णं भंते! केवतिएहिं धम्मत्थिकायपदेसेहिं पुट्ठे ?
नत्थि एक्केण वि।
केवतिएहिं अधम्मत्थिकायपदेसेहिं ?
असंखेज्जेहिं।
केवतिएहिं आगासत्थिकायपदेसेहिं ?

धर्मास्तिकायः भदन्त! कियद्भिः धर्मास्तिकायप्रदेशैः स्पृष्टः?
नास्ति एकेनापि।
कियद्भिः अधर्मास्तिकायप्रदेशैः?
असंख्येयैः।
कियद्भिः आकाशास्तिकायप्रदेशैः?

७२. भंते! धर्मास्तिकाय धर्मास्तिकाय के कितने प्रदेशों से स्पृष्ट है?
एक से भी नहीं। अधर्मास्तिकाय के कितने प्रदेशों से स्पृष्ट हैं?
असंख्येय से।
आकाशास्तिकाय के कितने प्रदेशों से स्पृष्ट हैं?

---

१. भ. जो. ढा. २७८, गा. १०१-१०२–
नयमत विण इम चीन, तीन प्रदेश विषे रह्या।
पुद्गल प्रदेश तीन, त्रिण अवगाढ प्रदेश ते॥
ऊपर तीन कहाय, तल पिण तीन कहीजियै।
बे पासे बिहुं थाय, इम अठ आख्या वृत्ति कृत॥

२. भ. वृ. ६१२–यथा जघन्यपदे औपचारिका अवगाहप्रदेशा अधस्तना उपरितना वा तथोत्कृष्टपदेऽपि, न हि निरुपचरिता अनंता आकाशप्रदेशा अवगाहतः सन्ति, लोकस्याप्यसंख्यातप्रदेशात्मकत्वादिति। इह च प्रकरणे इमे वृद्धोक्तगाथे भवतः–
धम्माइएएसेहिं दुएसाई जहन्नपयम्मि।
दुगुण दुरूवहिएणं तेणेव कहं नु हु फुसेज्जा॥
एत्थ पुण जहन्नपयं लोगंते, तत्थ लोग मालिहिउं।
फुसणा दावेयव्वा अहवा खंभाइ कोडीए॥

३. भ. वृ. प. १३/७१–इह वर्तमानसमयविशिष्टः समयक्षेत्रमध्यवर्ती परमाणुरद्धासमयो ग्राह्यः, अन्यथा तस्य धर्मास्तिकायादिप्रदेशैः सप्तभिः स्पर्शना न स्यात्। इह च जघन्यपदं नास्ति, मनुष्यक्षेत्रमध्यवर्तित्वाद्धा-समयस्य जघन्यपदस्य च लोकान्त एव संभवादिति, तत्र सप्तभिरिति, कथम्? अद्धासमयविशिष्टं परमाणुद्रव्यमेकत्र धर्मास्तिकायप्रदेशेऽवगाढ-मन्ये च तस्य षट्सु दिक्ष्वितिं सप्तेति।

४. भ. जो. ढा. २७८, गा. १७५-१७७–
टबा विषे इम जेह, विशिष्ट अणु द्रव्य अंत नै।
अद्धा समयपणेह, वांछितपणां थकी कह्युं॥
ते समय अनंता सोय, जे एक समय नै ठाम छै।
अथवा पासे जोय, गये काल अनंता वर्तिया॥
तथा अनागत काल, अनंत वर्तस्ये ते भणी।
तसु सद्भाव निहाल, एहवो कह्यो टबा मझै॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

असंखेज्जेहिं।	असंख्येयैः।	असंख्येय से।
केवतिएहिं जीवत्थिकायपदेसेहिं ?	कियद्भिः जीवास्तिकायप्रदेशैः?	जीवास्तिकाय के कितने प्रदेशों से स्पृष्ट हैं?
अणंतेहिं।	अनन्तैः।	अनंत से।
केवतिएहिं पोग्गलत्थिकायपदेसेहिं ?	कियद्भिः पुद्गलास्तिकायप्रदेशैः?	पुद्गलास्तिकाय के कितने प्रदेशों से स्पृष्ट हैं?
अणंतेहिं।	अनन्तैः।	अनंत से।
केवतिएहिं अद्धासमएहिं ?	कियद्भिः अद्धासमयैः?	कितने अद्धासमय से स्पृष्ट है?
सिय पुट्ठे, सिय नो पुट्ठे। जइ पुट्ठे नियमा अणंतेहिं॥	स्यात् स्पृष्टः, स्यात् नो स्पृष्टः। यदि स्पृष्टः नियमात् अनन्तैः।	स्यात् स्पृष्ट है, स्यात् स्पृष्ट नहीं है। यदि स्पृष्ट है तो नियमतः अनंत से।
७३. अधम्मत्थिकाए णं भंते !	अधर्मास्तिकायः भदन्त! कियद्भिः	७३. भंते ! अधर्मास्तिकाय धर्मास्तिकाय के
केवतिएहिं धम्मत्थिकायपदेसेहिं पुट्ठे ?	धर्मास्तिकायप्रदेशैः स्पृष्टः?	कितने प्रदेशों से स्पृष्ट है?
असंखेज्जेहिं।	असंख्येयैः।	असंख्येय से।
केवतिएहिं अधम्मत्थिकायपदेसेहिं ?	कियद्भिः अधर्मास्तिकायप्रदेशैः?	अधर्मास्तिकाय के कितने प्रदेशों से स्पृष्ट है?
नत्थि एक्केण वि। सेसं जहा धम्मत्थिकायस्स। एवं एएणं गमएणं सव्वे वि सट्ठाणए नत्थि एक्केण वि पुट्ठा, परट्ठाणए आदिल्लएहिं तिहिं असंखेज्जेहिं भाणियव्वं, पच्छिल्लएसु तिसु अणंता भाणियव्वा जाव अद्धासमयो त्ति जाव केवतिएहिं अद्धासमएहिं पुट्ठे ?	नास्ति एकेनापि। शेषं यथा धर्मास्तिकायस्य। एवम् एतेन गमकेन सर्वेऽपि स्वस्थानके नास्ति एकेनापि स्पृष्टाः, परस्थानके आदिमैः त्रिभिः असंख्येयैः भणितव्यम्, पाश्चात्येषु त्रिषु अनन्ताः भणितव्याः यावत् अद्धासमयः इति यावत् कियद्भिः अद्धासमयैः स्पृष्टः?	एक से भी नहीं। शेष की धर्मास्तिकाय की भांति वक्तव्यता। इस प्रकार इस गमक के द्वारा सभी स्वस्थान की अपेक्षा एक प्रदेश से भी स्पृष्ट नहीं हैं, परस्थान की अपेक्षा आदि तीन (धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय) में असंख्येय वक्तव्य है। अंतिम तीन में अनंत वक्तव्य है यावत् अद्धासमय यावत् कितने अद्धासमयों से स्पृष्ट है?
नत्थि एक्केण वि॥	नास्ति एकेनापि।	एक से भी नहीं।

भाष्य

१. सूत्र ७२-७३

पूर्व आलापक में प्रदेश-स्पर्श के नियम बतलाए गए हैं। प्रस्तुत दो सूत्रों में अस्तिकाय की स्पर्शना विवक्षित है। धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय और लोकाकाश–तीनों के प्रदेश तुल्य हैं–ये तीनों असंख्य प्रदेश वाले हैं।[1]

धर्मास्तिकाय लोकाकाश के एक-एक प्रदेश पर अवगाढ है इसलिए वह धर्मास्तिकाय के प्रदेशों से स्पृष्ट नहीं होता। जहां धर्मास्तिकाय है वहां अधर्मास्तिकाय है। इस अपेक्षा से धर्मास्तिकाय अधर्मास्तिकाय के असंख्य प्रदेशों से स्पृष्ट होता है।

एक जीव के प्रदेश असंख्य होते हैं।[2] यहां अनंत प्रदेश का उल्लेख जीवास्तिकाय की अपेक्षा से है। जीवास्तिकाय अनंत जीवों का समुच्चय है।[3]

अधर्मास्तिकाय की धर्मास्तिकाय की भांति वक्तव्यता। आकाशास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय और जीवास्तिकाय–इन सबके लिए वही नियम लागू होता है। ये अपने स्थान[4] में अपने किसी भी एक प्रदेश से स्पृष्ट नहीं होते। पर-स्थान के नियम इस प्रकार हैं–

धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय और लोकाकाश के प्रदेश असंख्य हैं इसलिए इनके स्पर्श में असंख्य प्रदेशों का स्पर्श वक्तव्य है।

जीवास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय और अद्धासमय के प्रदेश अनंत हैं इसलिए इनके स्पर्श में अनंत प्रदेशों का स्पर्श वक्तव्य है।[5]

यहां अद्धासमय निरुपचरित है। अतीत का समय नष्ट हो जाता है और अनागत समय उत्पन्न नहीं होता। इस अवस्था में स्व-स्थान नियम के अनुसार एक समय दूसरे समय से स्पृष्ट नहीं होता।[6]

१. ठाणं ४/४९५–चत्तारि पएसग्गेणं तुल्ला पण्णत्ता, तं जहा–धम्मत्थिकाए, अधम्मत्थिकाए, लोगागासे, एगजीवे।

२. भ. २/४६।

३. भ. २/१२८।

४. भ. वृ. १३/७३–केवलं यत्र धर्मास्तिकायादिः तत्प्रदेशैरेव चिन्त्यते तत्स्वस्थान-मितरच्च परस्थानम्।

५. वही, – परस्थाने च धर्मास्तिकायादित्रयसूत्रेषु चानन्तैः प्रदेशैः स्पृष्ट इति वाच्यं, असंख्यातप्रदेशत्वात् धर्माधर्मास्तिकाययोस्तत्संस्पृष्टाकाशस्य च, जीवादित्रयसूत्रेषु चानन्तैः प्रदेशैः स्पृष्ट इति वाच्यं अनंत-प्रदेशत्वात्तेषामिति।

६. वही, – निरुपचरितस्याद्धासमयस्यैकस्यैवभावात् अतीतानागतसमय-योश्च विनष्टानुत्पन्नत्वेनासत्त्वान्न समयान्तरेण स्पृष्टताऽस्तीति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धम्मत्थिकायादीणं ओगाढ-पदं

७४. जत्थ णं भंते! एगे धम्मत्थिकाय-पदेसे ओगाढे, तत्थ केवतिया धम्मत्थिकायपदेसा ओगाढा?
नत्थि एक्को वि।
केवतिया अधम्मत्थिकायपदेसा ओगाढा?
एक्को।
केवतिया आगासत्थिकायपदेसा ओगाढा?
एक्को।
केवतिया जीवत्थिकायपदेसा ओगाढा?

अणंता।
केवतिया पोग्गलत्थिकायपदेसा ओगाढा?
अणंता।
केवतिया अद्धासमया ओगाढा?
सिय ओगाढा, सिय नो ओगाढा, जइ ओगाढा अणंता॥

धर्मास्तिकायादीनाम् अवगाढ-पदम्

यत्र भदन्त! एकः धर्मास्तिकायप्रदेशः अवगाढः, तत्र कियन्तः धर्मास्ति-कायप्रदेशाः अवगाढाः?
नास्ति एकोऽपि।
कियन्तः अधर्मास्तिकायप्रदेशाः अवगाढाः?
एकः।
कियन्तः आकाशास्तिकायप्रदेशाः अवगाढा?
एकः।
कियन्तः जीवास्तिकायप्रदेशाः अवगाढाः?
अनन्ताः।
कियन्तः पुद्गलास्तिकायप्रदेशाः अवगाढाः?
अनन्ताः।
कियन्तः अध्वासमयाः अवगाढाः?
स्यात् अवगाढाः, स्यात् नो अवगाढाः, यदि अवगाढाः अनन्ताः।

धर्मास्तिकाय आदि का अवगाढ पद

७४. भंते! जहां धर्मास्तिकाय का एक प्रदेश अवगाढ है, वहां धर्मास्तिकाय के कितने प्रदेश अवगाढ हैं?
एक भी नहीं।
अधर्मास्तिकाय के कितने प्रदेश अवगाढ हैं?
एक।
आकाशास्तिकाय के कितने प्रदेश अवगाढ हैं?
एक।
जीवास्तिकाय के कितने प्रदेश अवगाढ हैं?

अनंत।
पुद्गलास्तिकाय के कितने प्रदेश अवगाढ हैं?
अनंत।
अद्धासमय के कितने प्रदेश अवगाढ हैं?
स्यात् अवगाढ हैं, स्यात् अवगाढ नहीं हैं। यदि हैं तो अनंत।

७५. जत्थ णं भंते! एगे अधम्मत्थि-कायपदेसे ओगाढे तत्थ केवतिया धम्मत्थिकायपदेसा ओगाढा?
एक्को।
केवतिया अधम्मत्थिकायपदेसा?

नत्थि एक्को वि। सेसं जहा धम्मत्थिकायस्स।

यत्र भदन्त! एकः अधर्मास्तिकायप्रदेशः अवगाढः तत्र कियन्तः धर्मास्तिकाय-प्रदेशाः अवगाढाः?
एकः।
कियन्तः अधर्मास्तिकायप्रदेशाः?

नास्ति एकोऽपि। शेषं यथा धर्मास्तिकायस्य।

७५. भंते! जहां अधर्मास्तिकाय का एक प्रदेश अवगाढ है वहां धर्मास्तिकाय के कितने प्रदेश अवगाढ हैं?
एक।
अधर्मास्तिकाय के कितने प्रदेश अवगाढ हैं?
एक भी नहीं। शेष धर्मास्तिकाय की भांति वक्तव्यता।

७६. जत्थ णं भंते! एगे आगासत्थि-कायपदेसे ओगाढे तत्थ केवतिया धम्मत्थिकायपदेसा ओगाढा?
सिय ओगाढा, सिय नो ओगाढा, जइ ओगाढा, एक्को। एवं अधम्मत्थि-कायपदेसा वि।
केवतिया आगासत्थिकायपदेसा?

नत्थि एक्को वि।
केवतिया जीवत्थिकायपदेसा?
सिय ओगाढा, सिय नो ओगाढा, जइ ओगाढा अणंता। एवं जाव अद्धासमया॥

यत्र भदन्त! एकः आकाशास्तिकाय-प्रदेशः अवगाढः तत्र कियन्तः धर्मास्ति-कायप्रदेशाः अवगाढाः?
स्यात् अवगाढाः, स्यात् नो अवगाढाः, यदि अवगाढाः, एकः। एवम् अधर्मास्तिकायप्रदेशाः अपि।
कियन्तः आकाशास्तिकायप्रदेशाः?

नास्ति एकोऽपि।
कियन्तः जीवास्तिकायप्रदेशाः?
स्यात् अवगाढाः, स्यात् नो अवगाढाः, यदि अवगाढाः, अनन्ताः। एवं यावत् अध्वासमयाः।

७६. भंते! जहां आकाशास्तिकाय का एक प्रदेश अवगाढ है, वहां धर्मास्तिकाय के कितने प्रदेश अवगाढ हैं?
स्यात् अवगाढ हैं, स्यात् अवगाढ नहीं हैं, यदि अवगाढ हैं तो एक अवगाढ है। इसी प्रकार अधर्मास्तिकाय के प्रदेश भी।
आकाशास्तिकाय के कितने प्रदेश अवगाढ हैं?
एक भी नहीं।
जीवास्तिकाय के कितने प्रदेश अवगाढ हैं?
स्यात् अवगाढ हैं, स्यात् अवगाढ नही हैं, यदि हैं तो अनंत प्रदेश अवगाढ हैं। इसी प्रकार यावत् अद्धासमय की वक्तव्यता।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७७. जत्थ णं भंते ! एगे जीवत्थिकाय-पदेसे ओगाढे तत्थ केवतिया धम्मत्थिकायपदेसा ओगाढा ?
एक्को, एवं अधम्मत्थिकायपदेसा वि, एवं आगासत्थिकायपदेसा वि।

केवतिया जीवत्थिकायपदेसा ?
अणंता। सेसं जहा धम्मत्थिकायस्स॥

यत्र भदन्त! एकः जीवास्तिकायप्रदेशः अवगाढः तत्र कियन्तः धर्मास्तिकाय-प्रदेशाः अवगाढाः?
एकः, एवम् अधर्मास्तिकायप्रदेशाः अपि, एवम् आकाशास्तिकायप्रदेशाः अपि।

कियन्तः जीवास्तिकायप्रदेशाः?
अनन्ताः। शेषं यथा धर्मास्तिकायस्य।

७७. भंते ! जहां जीवास्तिकाय का एक प्रदेश अवगाढ है, वहां धर्मास्तिकाय के कितने प्रदेश अवगाढ हैं ?
एक, इसी प्रकार अधर्मास्तिकाय के प्रदेश भी, इसी प्रकार आकाशास्तिकाय के प्रदेश भी वक्तव्य हैं।
जीवास्तिकाय के कितने प्रदेश अवगाढ हैं?
अनंत। शेष धर्मास्तिकाय की भांति वक्तव्यता।

७८. जत्थ णं भंते ! एगे पोग्गलत्थि-कायपदेसे ओगाढे तत्थ केवतिया धम्मत्थिकायपदेसा ओगाढा ?
एवं जहा जीवत्थिकायपदेसे तहेव निरवसेसं॥

यत्र भदन्त! एकः पुद्गलास्तिकायप्रदेशः अवगाढः तत्र कियन्तः धर्मास्तिकाय-प्रदेशाः अवगाढाः?
एवं यथा जीवास्तिकायप्रदेशः तथैव निरवशेषम्।

७८. भंते ! जहां पुद्गलास्तिकाय का एक प्रदेश अवगाढ है, वहां धर्मास्तिकाय के कितने प्रदेश अवगाढ हैं?
इस प्रकार जैसे जीवास्तिकाय के प्रदेश की वक्तव्यता, वैसे ही निरवशेष वक्तव्यता।

भाष्य

१. सूत्र ७४-७८

प्रस्तुत आलापक में प्रदेश के अवगाह, अवस्थिति अथवा व्याप्ति का विषय निरूपित है।

धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय अखंड है। उनका प्रत्येक प्रदेश लोकाकाश के प्रत्येक प्रदेश में अवस्थित है इसलिए धर्मास्तिकाय का एक प्रदेश धर्मास्तिकाय के दूसरे प्रदेश से अवगाढ नहीं होता, उसके एक प्रदेश में दूसरा प्रदेश अवस्थित नहीं होता।

जहां धर्मास्तिकाय का एक प्रदेश है, वहां अधर्मास्तिकाय और आकाशास्तिकाय का एक-एक प्रदेश अवगाढ है।

अधर्मास्तिकाय की वक्तव्यता धर्मास्तिकाय के समान है।

आकाशास्तिकाय के प्रदेश लोक और अलोक–दोनों में अवस्थित हैं इसलिए धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, जीवास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय और अद्धासमय के प्रदेश की अवस्थिति की भजना है।

लोकाकाश में अवस्थान का नियम धर्मास्तिकाय की भांति वक्तव्य है। अलोकाकाश में इन सबकी अवस्थिति नहीं होती।

७९. जत्थ णं भंते ! दो पोग्गलत्थिकाय-पदेसा ओगाढा तत्थ केवतिया धम्मत्थिकायपदेसा ओगाढा ?
सिय एक्को सिय दोण्णि, एवं अधम्मत्थिकायस्स वि, एवं आगासत्थिकायस्स वि। सेसं जहा धम्मत्थिकायस्स॥

यत्र भदन्त! द्वौ पुद्गलास्तिकायप्रदेशौ अवगाढौ तत्र कियन्तः धर्मास्तिकाय-प्रदेशाः अवगाढाः?
स्यात् एकः, स्याताम् द्वौ, एवम् अधर्मास्तिकायस्यापि, एवम् आकाशास्तिकायस्यापि। शेषं यथा धर्मास्तिकायस्य।

७९. भंते ! जहां पुद्गलास्तिकाय के दो प्रदेश अवगाढ हैं वहां धर्मास्तिकाय के कितने प्रदेश अवगाढ हैं ?
स्यात् एक, स्यात् दो। इसी प्रकार अधर्मास्तिकाय की भी, इसी प्रकार आकाशास्तिकाय की भी वक्तव्यता। शेष धर्मास्तिकाय की भांति वक्तव्य है।

८०. जत्थ णं भंते ! तिण्णि पोग्गलत्थि-कायपदेसा ओगाढा तत्थ केवतिया धम्मत्थिकायपदेसा ओगाढा ?
सिय एक्को, सिय दोण्णि, सिय तिण्णि, एवं अधम्मत्थिकायस्स वि, एवं आगासत्थिकायस्स वि। सेसं जहेव दोण्हं, एवं एक्केको वड्ढियव्वो पदेसो आइल्लएहिं तिहिं अत्थिकाएहिं, सेसेहिं जहेव दोण्हं जाव दसण्हं सिय एक्को, सिय दोण्णि, सिय तिण्णि जाव सिय

यत्र भदन्त! त्रयः पुद्गलास्तिकाय-प्रदेशाः अवगाढाः तत्र कियन्तः धर्मास्तिकायप्रदेशाः अवगाढाः?
स्यात् एकः, स्याताम् द्वौ, स्युः त्रयः, एवम् अधर्मास्तिकायस्यापि, एवम् आकाशास्तिकायस्यापि। शेषं यथैव द्वयोः, एवम् एकैकः वर्धितव्यः प्रदेशः आदिमैः त्रिभिः अस्तिकायैः, शेषैः यथैव द्वयोः यावत् दशानाम् स्यात् एकः, स्याताम् द्वौ, स्युः त्रयः यावत् स्युः दश।

८०. भंते ! जहां पुद्गलास्तिकाय के तीन प्रदेश अवगाढ हैं, वहां धर्मास्तिकाय के कितने प्रदेश अवगाढ हैं?
स्यात् एक, स्यात् दो, स्यात् तीन। इसी प्रकार अधर्मास्तिकाय की भी, इसी प्रकार आकाशास्तिकाय की भी वक्तव्यता। शेष की दो प्रदेश की भांति वक्तव्यता। इसी प्रकार प्रथम तीन अस्तिकायों में एक एक प्रदेश बढाना चाहिए। शेष की दो की भांति वक्तव्यता यावत् दश प्रदेश में स्यात् एक,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दस। संखेज्जाणं सिय एक्को, सिय दोण्णि जाव सिय दस, सिय संखेज्जा। असंखेज्जाणं सिय एक्को जाव सिय संखेज्जा, सिय असंखेज्जा। जहा असंखेज्जा एवं अणंता वि॥

संख्येयानां स्यात् एकः, स्याताम् द्वौ यावत् स्युः दश, स्युः संख्येयाः। असंख्येयानाम् स्यात् एकः यावत् स्युः संख्येयाः, स्युः असंख्येयाः। यथा असंख्येयाः एवम् अनन्ताः अपि।

स्यात् दो, स्यात् तीन यावत् स्यात् दश। संख्येय प्रदेश में स्यात् एक, स्यात् दो यावत् स्यात् दस, स्यात् संख्येय। असंख्येय में स्यात् एक यावत् स्यात् संख्येय, स्यात् असंख्येय। इसी प्रकार असंख्येय की भांति अनंत की वक्तव्यता।

८१. जत्थ णं भंते! एगे अद्धासमए ओगाढे तत्थ केवतिया धम्मत्थिकाय-पदेसा ओगाढा?
एक्को।
केवतिया अधम्मत्थिकायपदेसा?

एक्को।
केवतिया आगासत्थिकायपदेसा?

एक्को।
केवतिया जीवत्थिकायपदेसा?
अणंता। एवं जाव अद्धासमया॥

यत्र भदन्त! एकः अद्धासमयः अवगाढः तत्र कियन्तः धर्मास्तिकायप्रदेशाः अवगाढाः?
एकः।
कियन्तः अधर्मास्तिकायप्रदेशाः?

एकः।
कियन्तः आकाशास्तिकायप्रदेशाः?

एकः।
कियन्तः जीवास्तिकायप्रदेशाः?
अनन्ताः। एवं यावत् अद्धासमयाः।

८१. भंते! जहां एक अद्धासमय अवगाढ है वहां धर्मास्तिकाय के कितने प्रदेश अवगाढ हैं?
एक।
अधर्मास्तिकाय के कितने प्रदेश अवगाढ हैं?
एक।
आकाशास्तिकाय के कितने प्रदेश अवगाढ हैं?
एक।
जीवास्तिकाय के कितने प्रदेश अवगाढ हैं?
अनंत। इस प्रकार यावत् अद्धासमय।

८२. जत्थ णं भंते! धम्मत्थिकाए ओगाढे तत्थ केवतिया धम्मत्थिकायपदेसा ओगाढा?
नत्थि एक्को वि।
केवतिया अधम्मत्थिकायपदेसा?

असंखेज्जा।
केवतिया आगासत्थिकायपदेसा?

असंखेज्जा।
केवतिया जीवत्थिकायपदेसा?
अणंता। एवं जाव अद्धासमया॥

यत्र भदन्त! धर्मास्तिकायः अवगाढः तत्र कियन्तः धर्मास्तिकायप्रदेशाः अवगाढाः?
नास्ति एकोऽपि।
कियन्तः अधर्मास्तिकायप्रदेशाः?

असंख्येयाः।
कियन्तः आकाशास्तिकायप्रदेशाः?

असंख्येयाः।
कियन्तः जीवास्तिकायप्रदेशाः?
अनन्ताः। एवं यावत् अद्धासमयाः।

८२. भंते! जहां धर्मास्तिकाय अवगाढ है, वहां धर्मास्तिकाय के कितने प्रदेश अवगाढ हैं?
एक भी नहीं।
अधर्मास्तिकाय के कितने प्रदेश अवगाढ हैं?
असंख्येय।
आकाशास्तिकाय के कितने प्रदेश अवगाढ हैं?
असंख्येय।
जीवास्तिकाय के कितने प्रदेश अवगाढ हैं?
अनंत, इस प्रकार यावत् अद्धासमय।

८३. जत्थ णं भंते! अधम्मत्थिकाए ओगाढे तत्थ केवतिया धम्मत्थि-कायपदेसा ओगाढा?
असंखेज्जा।
केवतिया अधम्मत्थिकायपदेसा?

नत्थि एक्को वि।
सेसं जहा अधम्मत्थिकायस्स। एवं सव्वे सट्ठाणे—नत्थि एक्को वि भाणियव्वो, परट्ठाणे आदिल्लगा तिण्णि असंखेज्जा भाणियव्वा, पच्छिल्लगा तिण्णि

यत्र भदन्त! अधर्मास्तिकायः अवगाढः तत्र कियन्तः धर्मास्तिकायप्रदेशाः अवगाढाः?
असंख्येयाः।
कियन्तः अधर्मास्तिकायप्रदेशाः?

नास्ति एकोऽपि।
शेषं यथा धर्मास्तिकायस्य। एवं सर्वे स्वस्थाने नास्ति एकोऽपि भणितव्यः। परस्थाने आदिमाः त्रयः असंख्येयाः भणितव्याः, पश्चिमकाः त्रयः अनन्ताः

८३. भंते! जहां अधर्मास्तिकाय अवगाढ है, वहां धर्मास्तिकाय के कितने प्रदेश अवगाढ हैं?
असंख्येय।
अधर्मास्तिकाय के कितने प्रदेश अवगाढ हैं?
एक भी नहीं।
शेष धर्मास्तिकाय की भांति वक्तव्य है। इस प्रकार सब स्वस्थान की अपेक्षा 'एक भी नहीं' यह वक्तव्य है, परस्थान की अपेक्षा प्रथम तीन असंख्येय वक्तव्य हैं, उत्तरवर्ती

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अणंता भाणियव्वा जाव अद्धासमयो त्ति जाव केवतिया अद्धासमया ओगाढा ?
नत्थि एक्को वि॥

भणितव्याः यावत् अद्धासमयः इति यावत् कियन्तः अद्धासमयाः अवगाढाः?
नास्ति एकोऽपि।

तीन अनंत वक्तव्य हैं यावत् अद्धासमय। यावत् कितने अद्धासमय अवगाढ हैं ?
एक भी नहीं।

भाष्य

१. सूत्र ७९-८३

द्व्यणुक स्कंध एक आकाश प्रदेश में भी अवगाढ हो सकता है और दो आकाश प्रदेशों में भी अवगाढ हो सकता है। धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय के नियम भी आकाश की भांति वक्तव्य हैं।

८४. जत्थ णं भंते ! एगे पुढविक्काइए ओगाढे तत्थ णं केवतिया पुढविक्काइया ओगाढा ?
असंखेज्जा।
केवतिया आउक्काइया ओगाढा ?
असंखेज्जा।
केवतिया तेउक्काइया ओगाढा ?
असंखेज्जा।
केवतिया वाउकाइया ओगाढा ?
असंखेज्जा।
केवतिया वणस्सइकाइया ओगाढा ?
अणंता।

यत्र भदन्त! एकः पृथिवीकायिकः अवगाढः तत्र कियन्तः पृथिवीकायिकाः अवगाढाः?
असंख्येयाः।
कियन्तः अप्कायिकाः अवगाढाः?
असंख्येयाः।
कियन्तः तेजस्कायिकाः अवगाढाः?
असंख्येयाः।
कियन्तः वायुकायिकाः अवगाढाः?
असंख्येयाः।
कियन्तः वनस्पतिकायिकाः अवगाढाः?
अनन्ताः।

८४. भंते ! जहां एक पृथ्वीकायिक जीव अवगाढ है, वहां कितने पृथ्वीकायिक जीव अवगाढ हैं ?
असंख्येय।
कितने अप्कायिक जीव अवगाढ हैं ?
असंख्येय।
कितने तैजसकायिक जीव अवगाढ हैं ?
असंख्येय।
कितने वायुकायिक जीव अवगाढ हैं ?
असंख्येय।
कितने वनस्पतिकायिक जीव अवगाढ हैं ?
अनंत।

८५. जत्थ णं भंते ! एगे आउक्काइए ओगाढे तत्थ णं केवतिया पुढविक्काइया ओगाढा ?
असंखेज्जा।
केवतिया आउक्काइया ओगाढा ?
असंखेज्जा।
एवं जहेव पुढविक्काइयाणं वत्तव्वया तहेव सव्वेसिं निरवसेसं भाणियव्वं जाव वणस्सइकाइयाणं जाव केवतिया वणस्सइकाइया ओगाढा ?
अणंता॥

यत्र भदन्त! एकः अप्कायिकः अवगाढः तत्र कियन्तः पृथिवीकायिकाः अवगाढाः?
असंख्येयाः।
कियन्तः अप्कायिकाः अवगाढाः?
असंख्येयाः।
एवं यथैव पृथिवीकायिकानां वक्तव्यता तथैव सर्वेषां निरवशेषं भणितव्यं यावत् वनस्पतिकायिकानां यावत् कियन्तः वनस्पतिकायिकाः अवगाढाः?
अनन्ताः।

८५. भंते ! जहां एक अप्कायिक जीव अवगाढ है, वहां कितने पृथ्वीकायिक जीव अवगाढ हैं?
असंख्येय।
कितने अप्कायिक जीव अवगाढ हैं?
असंख्येय।
इस प्रकार जैसे पृथ्वीकायिक जीवों की वक्तव्यता वैसे ही सबकी निरवशेष वक्तव्यता, यावत् वनस्पतिकायिक यावत् कितने वनस्पतिकायिक जीव अवगाढ हैं ?
अनंत।

भाष्य

१. सूत्र ८४-८५

प्रस्तुत दो सूत्रों में पांच स्थावर काय की वक्तव्यता है। प्रथम चार स्थावर काय के जीव असंख्य हैं। वनस्पतिकाय के जीव अनंत हैं। समग्र लोक इनसे व्याप्त है। उनकी व्याप्ति का नियम यहां बतलाया गया है। पांच स्थावर काय के जीव दो प्रकार के होते हैं सूक्ष्म और बादर।[1] इस नियम का निर्देश सूक्ष्म स्थावर काय के लिए किया गया है।

८६. एयंसि णं भंते ! धम्मत्थिकाय-अधम्मत्थिकाय - आगासत्थिकायंसि चक्किया केई आसइत्तए वा सइत्तए वा चिट्ठित्तए वा निसीयत्तए वा तुयट्टित्तए वा ?

एतस्मिन् भदन्त! धर्मास्तिकाय-अधर्मास्तिकाय - आकाशास्तिकाये 'चक्किया' कश्चित् आसितुं वा शयितुं वा स्थातुं वा निषीदितुं वा त्वग्वर्तितुं वा?

८६. भंते ! धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय-इनमें कोई जीव रहने, सोने, ठहरने, बैठने और करवट बदलने में समर्थ है?

१. उत्त. ३६/७०,८४,९२,१०८,११७।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नो इणट्ठे समट्ठे। अणंता पुणत्थ जीवा ओगाढा॥

नो अयमर्थः समर्थः। अनन्ताः पुनरत्र जीवाः अवगाढाः।

यह अर्थ संगत नहीं है। वहां अनंत जीव अवगाढ हैं।

८७. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–एयंसि णं धम्मत्थिकाय - अधम्मत्थिकाय-आगासत्थिकायंसि नो चक्किया केई आसइत्तए वा सइत्तए वा चिट्ठित्तए वा निसीयत्तए वा तुयट्टित्तए वा? अणंता पुणत्थ जीवा ओगाढा ?

गोयमा ! से जहानामए कूडागार-साला सिया–दुहओ लित्ता गुत्ता गुत्तदुवार णिवाया णिवायगंभीरा। अह णं केई पुरिसे पदीवसहस्सं गहाय कूडागारसालाए अंतो-अंतो अणुप्पविसइ, अणुप्पविसित्ता तीसे कूडागारसालाए सव्वतो समंता घण-निचिय-निरंतर-णिच्छिड्डाइं दुवार-वयणाइं पिहेइ, पिहेत्ता तीसे कूडागार-सालाए बहुमज्झदेसभाए जहण्णेणं एक्को वा दो वा तिण्णि वा, उक्कोसेणं पदीवसहस्सं पलीवेज्जा। से नूणं गोयमा ! ताओ पदीवलेस्साओ अण्ण-मण्णसंबद्धाओ अण्णमण्णपुट्ठाओ अण्णमण्णसंवद्धपुट्ठाओ अण्णमण्ण-घडत्ताए चिट्ठंति ?

हंता चिट्ठंति।

चक्किया णं गोयमा ! केई तासु पदीवलेस्सासु आसइत्तए वा जाव तुयट्टित्तए वा ?

भगवं ! नो इणट्ठे समट्ठे। अणंता पुणत्थ जीवा ओगाढा।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ जाव अणंता पुणत्थ जीवा ओगाढा॥

तत् केनार्थेन भदन्त! एवमुच्यते–एतस्मिन् धर्मास्तिकाय-अधर्मास्ति-काय-आकाशास्तिकाये नो 'चक्किया' कश्चित् आसितुं वा शयितुं वा स्थातुं वा निषीदितुं वा त्वग्वर्तितुं वा? अनंताः पुनरत्र जीवाः अवगाढाः?

गौतम! अथ यथानामका कूटागारशाला स्यात्–द्विधा लिप्ता गुप्ता गुप्तद्वारा निवाता निवातगंभीरा। अथ कश्चित् पुरुषः प्रदीपसहस्रं गृहीत्वा कूटागार-शालायाम् अन्तः-अन्तः अनुप्रविशति, अनुप्रविश्य तस्यां कूटागारशालायां सर्वतः समन्तात् घन-निचित-निरन्तर-निश्छिद्राणि द्वारवदनानि पिदधाति, पिधाय तस्यां कूटागारशालायां बहुमध्यदेशभागे जघन्येन एकः वा द्वौ वा त्रयः वा, उत्कर्षेण प्रदीपसहस्रं प्रदीपयेत्।

तत् नूनं गौतम! ताः प्रदीपलेश्याः अन्योन्य-संबद्धाः अन्योन्यस्पृष्टाः अन्योन्यसंबद्धस्पृष्टाः अन्योन्यघटत्वेन तिष्ठन्ति?

हन्त तिष्ठन्ति।

'चक्किया' गौतम! कश्चित् तासु प्रदीपलेश्यासु आसितुं वा यावत् त्वग्वर्तितुं वा?

भगवन्! नो अयमर्थः समर्थः। अनन्ताः पुनरत्र जीवाः अवगाढाः।

तत् तेनार्थेन गौतम! एवमुच्यते यावत् अनन्ताः पुनरत्र जीवाः अवगाढाः।

८७. भंते ! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है–धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय–इनमें कोई जीव रहने, सोने, ठहरने, बैठने और करवट लेने में समर्थ नहीं है? वहां अनंत जीव अवगाढ हैं?

गौतम ! एक यथानाम कूटागारशाला है। भीतर और बाहर दोनों ओर से पुती हुई, गुप्त, गुप्त द्वार वाली, पवन-रहित, निवात-गंभीर है। किसी पुरुष ने हजार दीपक लेकर कूटागारशाला के भीतर-भीतर अनुप्रवेश किया, अनुप्रवेश कर उस कूटागार शाला के सर्वतः समन्तात्–चारों ओर सघन, निचित, अन्तर-रहित निश्छिद्र दरवाजों के कपाटों को ढक दिया, ढककर उस कूटागारशाला के बहु मध्य देश-भाग में जघन्यतः एक, दो अथवा तीन, उत्कृष्टतः हजार दीप प्रज्वलित किए।

गौतम ! क्या वे प्रदीप-लेश्याएं अन्योन्य संबद्ध, अन्योन्य स्पृष्ट, अन्योन्य संबद्ध-स्पृष्ट, अन्योन्य एकीभूत बनी हुई हैं ?

हां, बनी हुई हैं।

गौतम ! क्या कोई उन प्रदीप लेश्याओं में बैठने यावत् करवट बदलने में समर्थ है?

भगवन् ! यह अर्थ संगत नहीं है। वहां अनंत जीव अवगाढ हैं।

गौतम ! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है–यावत् वहां अनंत जीव अवगाढ हैं।

भाष्य

१. सूत्र ८६-८७

धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय और आकाशास्तिकाय–ये तीनों अमूर्त्त हैं इसलिए इनमें आसन, शयन आदि की क्रियाएं संभव नहीं होतीं। सूत्रकार ने दीए के प्रकाश के दृष्टांत से इसे समझाने का प्रयत्न किया है। दीए का प्रकाश मूर्त्त होता है फिर भी उसमें आसन, शयन आदि की क्रियाएं संभव नहीं होती। द्रष्टव्य भगवई–७/२१६ का भाष्य।

लोय-पदं

८८. कहि णं भंते ! लोए बहुसमे, कहि णं भंते ! लोए सव्वविग्गहिए पण्णत्ते ?

गोयमा ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए उवरिमहेट्ठिल्लेसु खुड्डगपयरेसु, एत्थ णं

लोक-पदम्

कुत्र भदन्त! लोकः बहुसमः, कुत्र भदन्त! लोकः सर्ववैग्रहिकः प्रज्ञप्तः?

गौतम! अस्याः रत्नप्रभायाः पृथिव्याः उपरितन-अधस्तनेषु 'खुड्ड' प्रतरेषु

लोक-पदम्

८८. भंते ! लोक कहां बहु सम है? भंते! लोक कहां सर्व लघु प्रज्ञप्त है?

गौतम ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के उपरितन-अधस्तन–इन दो क्षुल्लक प्रतरों में यह लोक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लोए बहुसमे, एत्थ णं लोए सव्वविग्गहिए पण्णत्ते॥

अत्र लोकः बहुसमः, अत्र लोकः सर्ववैग्रहिकः प्रज्ञप्तः।

बहुसम तथा इसी स्थान पर सर्व लघु प्रज्ञप्त है।

८९. कहि णं भंते! विग्गहविग्गहिए लोए पण्णत्ते?
गोयमा! विग्गहकंडए, एत्थ णं विग्गहविग्गहिए लोए पण्णत्ते॥

कुत्र भदन्त! विग्रहवैग्रहिकः लोकः प्रज्ञप्तः?
गौतम! विग्रहकण्डके, अत्र विग्रहवैग्रहिकः लोकः प्रज्ञप्तः।

८९. भंते! यह लोक कहां वक्र शरीर वाला प्रज्ञप्त है?
गौतम! जहां विग्रह-कण्डक है–प्रदेश की हानि वृद्धि के कारण वक्र है, वहां लोक वक्र शरीर वाला प्रज्ञप्त है।

९०. किंसंठिए णं भंते! लोए पण्णत्ते?
गोयमा! सुपइट्ठियसंठिए लोए पण्णत्ते–हेट्ठा विच्छिण्णे, मज्झे संखित्ते, उप्पिं विसाले; अहे पलियंकसंठिए, मज्झे वरवइरविग्गहिए, उप्पिं उद्धमुइंगाकारसंठिए। तंसि च णं सासयंसि लोगंसि हेट्ठा विच्छिण्णंसि जाव उप्पिं उद्धमुइंगाकारसंठियंसि उप्पण्णनाणदंसणधरे अरहा जिणे केवली जीवे वि जाणइ-पासइ, अजीवे वि जाणइ-पासइ, तओ पच्छा सिज्झइ बुज्झइ मुच्चइ परिनिव्वाइ सव्वदुक्खाणं अंतं करेति॥

किंसंस्थितः भदन्त! लोकः प्रज्ञप्तः?
गौतम! सुप्रतिष्ठकसंस्थितः लोकः प्रज्ञप्तः–अधः विच्छिन्नः, मध्ये संक्षिप्तः, उपरि विशालः। अधः पर्यङ्कसंस्थितः, मध्ये वरवज्रवैग्रहिकः, उपरि ऊर्ध्वमृदङ्गाकारसंस्थितः। तस्मिन् च शाश्वते लोके अधः विच्छिन्ने यावत् उपरि ऊर्ध्वमृदङ्गाकारसंस्थिते उत्पन्नज्ञानदर्शनधरः अर्हत् जिनः केवली जीवान् अपि जानाति-पश्यति, अजीवान् अपि जानाति-पश्यति, ततः पश्चात् सिध्यति 'बुज्झइ' मुच्यते परिनिर्वाति सर्वदुःखानाम् अन्तं करोति।

९०. भंते! लोक किस संस्थान वाला प्रज्ञप्त है?
गौतम! लोक सुप्रतिष्ठक संस्थान वाला प्रज्ञप्त है–निम्न भाग में विस्तीर्ण, मध्य में संक्षिप्त और ऊपर में विशाल है। वह निम्न भाग में पर्यंक के आकार वाला, मध्य में श्रेष्ठ वज्र के आकार वाला और ऊपर ऊर्ध्वमुख मृदंग के आकार वाला है। इस शाश्वत निम्न भाग में विस्तीर्ण यावत् ऊपर ऊर्ध्वमुख मृदंग के आकार वाले लोक में उत्पन्न ज्ञानदर्शन का धारक, अर्हत्, जिन, केवली, जीवों को भी जानता-देखता है, अजीवों को भी जानता-देखता है, उसके पश्चात् वह सिद्ध, प्रशांत, मुक्त, परिनिर्वृत होता है और सब दुःखों का अंत करता है।

९१. एयस्स णं भंते! अहेलोगस्स, तिरियलोगस्स, उड्ढलोगस्स य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा? बहुया वा? तुल्ला वा? विसेसाहिया वा?
गोयमा! सव्वत्थोवे तिरियलोए, उड्ढलोए असंखेज्जगुणे, अहेलोए विसेसाहिए॥

एतस्य भदन्त! अधोलोकस्य, तिर्यक्लोकस्य, उर्ध्वलोकस्य च कतरे कतरेभ्यः अल्पाः वा? बहुकाः वा? तुल्याः वा? विशेषाधिकाः वा?
गौतम! सर्वस्तोकः तिर्यक्लोकः, ऊर्ध्वलोकः असंख्येयगुणः, अधोलोकः विशेषाधिकः।

९१. भंते! इस अधोलोक, तिर्यक्लोक और ऊर्ध्वलोक में कौन किससे अल्प, बहु, तुल्य अथवा विशेषाधिक है?

गौतम! तिर्यक्लोक सबसे अल्प है। ऊर्ध्वलोक उससे असंख्येय गुण अधिक है। अधोलोक उससे विशेषाधिक है।

भाष्य

१. सूत्र ८८-९१

प्रस्तुत आलापक में लोक के विषय में चार प्रश्न उपस्थित कर उनका उत्तर दिया गया है–

१. लोक बहुसम-वृद्धि हानि रहित कहां है?
२. लोक सर्वाधिक संक्षिप्त कहां है?
३. लोक वक्रशरीर वाला कहां है?
४. लोक किस संस्थान वाला है?

लोक का आकार कहीं वर्धमान और कहीं हीयमान है। रत्नप्रभा पृथ्वी में दो क्षुल्लक प्रतर हैं। वे शेष प्रतरों की अपेक्षा छोटे हैं इसलिए उन्हें क्षुल्लक प्रतर कहा गया है। उनकी लंबाई चौड़ाई एक रज्जु प्रमाण है। वे तिर्यक् लोक के मध्य भाग में विद्यमान हैं। ऊपरिवर्ती प्रतर से ऊपर की ओर प्रतर की वृद्धि होती है। अधोवर्ती प्रतर से नीचे की ओर प्रतर की वृद्धि होती है। इन दोनों प्रतरों की अवस्थिति है, वहां लोक बहुसम है, सर्व संक्षिप्त है।[1]

१. भ. वृ. १३/८८–'बहुसमे' त्ति अत्यन्तं समः, लोको हि क्वचिद् वर्धमानः क्वचिद् हीयमानोऽतस्तन्निषेधाद् बहुसमो वृद्धिहानिवर्जितः इत्यर्थः। 'सव्वविग्गहिए' त्ति विग्रहो वक्रं लघुमि (रि)त्यर्थः तदस्यास्तीति विग्रहिकः सर्वथा विग्रहिकः सर्वविग्रहिकः सर्वसंक्षिप्त इत्यर्थः, उपरिमहेट्ठिल्लेसु खुड्डागपयरेसु त्ति उपरिमो यमवधीकृत्योर्द्धं प्रतरवृद्धिः प्रवृत्ताः, अधस्तनश्च यमवधीकृत्याधःप्रतरप्रवृद्धिः प्रवृत्ताः ततस्तयोरुपरितनाधस्तनयोः क्षुल्लकप्रतरयोः शेषापेक्षया लघुतरयो रज्जुप्रमाणायाम-विष्कंभयोस्तिर्यग्लोकमध्यभागवर्तिनोः एत्थं णं ति एतयोः–प्रज्ञापकेन उपदर्श्यमानतया प्रत्यक्षयोः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विग्रह-कंडक का अर्थ है–वक्र अवयव वाला। ब्रह्मलोक लोकपुरुष के कोहनी के स्थान पर है। इस आधार पर लोक को वक्र शरीर वाला कहा गया है।

विशेष जानकारी के लिए देखें अणुओगद्दाराइं सूत्र ४११ का टिप्पण पृष्ठ २४४-२४९।

लोकान्त में कहीं प्रदेश की वृद्धि है और कहीं हानि है। इस आधार पर वह भी विग्रहकंडक बनता है। इस प्रकार यह लोक ब्रह्मलोक तथा लोकान्त–इन दो स्थानों में वक्र शरीर वाला है।

संस्थान की जानकारी के लिए देखें भगवई ७/३ तथा ११/९० का भाष्य।

प्रस्तुत आगम में लोक के विषय में अनेक आलापक उपलब्ध हैं–भगवई ५/२४३-२४४, ११/९०-११४।

शब्द विमर्श–

विग्रह–वक्र, लघु।

विग्रहिक–विग्रह वाला।

विग्गह विग्गहिए–विग्रह-वक्र, विग्रह-शरीर, वक्र शरीर वाला।

विग्गह कंडए–विग्रह-वक्र, कंडक-अवयव।

९२. सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति॥

तदेवं भदन्त! तदेवं भदन्त! इति।

९२. भंते ! वह ऐसा ही है। भंते ! वह ऐसा ही है।

---

१. वही, १३/८८-८९–विग्गहविग्गहिए त्ति विग्रहो–वक्रं तद्युक्तो विग्रहः–शरीरं यस्यास्ति स विग्रहविग्रहिकः, 'विग्गहकंडए' त्ति विग्रहो–वक्रं कण्डकं–अवयवो, विग्रहरूपं कण्डकं–विग्रहकण्डकं तत्र तत्र ब्रह्मलोक-कूर्पर इत्यर्थः यत्र वा प्रदेशवृद्ध्या हान्या वा वक्रं भवति तद्विग्रहकण्डकं, तच्च प्रायो लोकान्तेष्वस्तीति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पंचमो उद्देसो : पांचवां उद्देशक

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
आहार-पदं	आहार-पदम्	आहार-पद
१३. नेरइया णं भंते ! किं सचित्ताहारा ? अचित्ताहारा ? मीसाहारा ?	नैरयिकाः भदन्त! किं सचित्ताहाराः? अचित्ताहाराः? मिश्राहाराः?	१३. भंते ! क्या नैरयिक सचित्त आहार वाले हैं ? क्या अचित्त आहार वाले हैं ? क्या मिश्र आहार वाले हैं ?
गोयमा ! नो सचित्ताहारा, अचित्ताहारा, नो मीसाहारा। एवं असुरकुमारा, पढमो नेरइयउद्देसओ निरवसेसो भाणियव्वो॥	गौतम! नो सचित्ताहाराः, अचित्ताहाराः, नो मिश्राहाराः। एवम् असुरकुमाराः। प्रथमः नैरयिकोद्देशकः निरवशेषः भणितव्यः।	गौतम ! सचित्त आहार वाले नहीं हैं, अचित्त आहार वाले हैं, मिश्र आहार वाले नहीं हैं। इसी प्रकार असुरकुमारों की वक्तव्यता। प्रथम नैरयिक उद्देशक (पण्णवणा २८/१) निरवशेष वक्तव्य है।
१४. सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति॥	तदेवं भदन्त! तदेवं भदन्त! इति।	१४. भंते ! वह ऐसा ही है। भंते ! वह ऐसा ही है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

छट्ठो उद्देसो : छठा उद्देशक

मूल

संतर-निरंतर-उववज्जणादि-पदं

१५. रायगिहे जाव एवं वयासी–संतरं भंते ! नेरइया उववज्जंति ? निरंतरं नेरइया उववज्जंति ?

गोयमा ! संतरं पि नेरइया उववज्जंति, निरंतरं पि नेरइया उववज्जंति। एवं असुरकुमारा वि। एवं जहा गंगेये तहेव दो दंडगा जाव संतरं पि वेमाणिया चयंति, निरंतरं पि वेमाणिया चयंति॥

चमरचंच-आवास-पदं

१६. कहि णं भंते ! चमरस्स असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो चमरचंचे नामं आवासे पण्णत्ते ?

गोयमा ! जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणे णं तिरियमसंखेज्जे दीवसमुद्दे–एवं जहा बितियसए सभाउद्देसए वत्तव्वया सच्चेव अपरिसेसा नेयव्वा। तीसे णं चमरचंचाए रायहाणीए दाहिणपच्चत्थिमे णं छक्कोडिसए पणपन्नं च कोडीओ पणतीसं च सयसहस्साइं पन्नासं च सहस्साइं अरुणोदगसमुद्दं तिरियं वीइवइत्ता, एत्थ णं चमरस्स असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो चमरचंचे नामं आवासे पण्णत्ते–चउरासीइं जोयण-सहस्साइं आयामविक्खंभेणं, दो जोयणसयसहस्सा पन्नट्ठिं च सहस्साइं छच्च बत्तीसे जोयणसए किंचि विसेसाहिए परिक्खेवेणं। से णं एगेणं पागारेणं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते। से णं पागारे दिवड्ढं जोयणसयं उड्ढं उच्चत्तेणं, एवं चमरचंचाए रायहाणीए वत्तव्वया भाणियव्वा सभाविहूणा जाव

संस्कृत छाया

सान्तर-निरन्तर-उपपन्नादि-पदम्

राजगृहं यावत् एवमवादीत्–सान्तरं भदन्त! नैरयिकाः उपपद्यन्ते? निरन्तरं नैरयिकाः उपपद्यन्ते?

गौतम! सान्तरमपि नैरयिकाः उपपद्यन्ते, निरन्तरमपि नैरयिकाः उपपद्यन्ते। एवम् असुरकुमाराः अपि। एवं यथा गाङ्गेये तथैव द्वौ दण्डकौ यावत् सान्तरमपि वैमानिकाः च्यवन्ते, निरन्तरमपि वैमानिकाः च्यवन्ते।

चमरचञ्च-आवास-पदम्

कुत्र भदन्त! चमरस्य असुरेन्द्रस्य असुरकुमारराजस्य चमरचञ्चः नाम आवासः प्रज्ञप्तः?

गौतम! जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य दक्षिणे तिर्यग् असंख्येयाः द्वीपसमुद्राः–एवं यथा द्वितीयशते सभोद्देशके वक्तव्यता सा चैव अपरिशेषा नेतव्या। तस्याः चमर-चञ्चायाः राजधान्याः दक्षिण-पाश्चात्ये षट्कोटिशतं पञ्चपञ्चाशत् कोटयः पञ्चत्रिंशत् च शतसहस्राणि पञ्चाशत् च सहस्राणि अरुणोदकसमुद्रं तिर्यक् व्यतिव्रज्य, अत्र चमरस्य असुरेन्द्रस्य असुरकुमारराजस्य चमरचञ्चः नाम आवासः प्रज्ञप्तः–चतुरशीतिः योजन-सहस्राणि आयामविष्कम्भेण, द्वे योजनशतसहस्रे पञ्चषष्टिः च सहस्राणि षड् च द्वात्रिंशतिः योजनशतानि किंचित् विशेषाधिकानि परिक्षेपेण। सः एकेन प्राकारेण सर्वतः समन्तात् सम्परिक्षिप्तः। सः प्राकारः द्वयर्धं योजनशतम् ऊर्ध्वम् उच्चत्वेन, एवं चमरचञ्चायाः राजधान्याः वक्तव्यता

हिन्दी अनुवाद

सान्तर-निरंतर उपपन्नादि पद

१५. राजगृह नगर यावत् गौतम स्वामी इस प्रकार बोले–भंते ! नैरयिक सांतर उपपन्न होते हैं ? निरंतर उपपन्न होते हैं ?

गौतम ! नैरयिक सांतर उपपन्न होते हैं, निरंतर भी उपपन्न होते हैं। इसी प्रकार असुरकुमारों की वक्तव्यता। इस प्रकार जैसे गांगेय (भगवती ९/८०-८५) की वक्तव्यता वैसे ही दो दण्डक यावत् वैमानिक सांतर भी च्यवन करते हैं, निरन्तर भी च्यवन करते ह।

चमरचंच आवास पद

१६. भंते ! असुरकुमारराज असुरेन्द्र चमर का चमरचंच नामक आवास कहां प्रज्ञप्त है ?

गौतम ! जंबूद्वीप द्वीप में मेरुपर्वत से दक्षिण भाग में तिरछे असंख्य द्वीप समुद्रों के पार चले जाने पर–इस प्रकार जैसे द्वितीय शतक (२/११८-१२१) में चमर-सभा उद्देशक की वक्तव्यता वही अपरिशेष ज्ञातव्य है। उस चमरचंचा राजधानी में दक्षिण-पश्चिम में अरुणोदय समुद्र में छह अरब, पचपन करोड़, पैंतीस लाख पचास हजार योजन तिरछा चले जाने पर वहां असुरकुमारराज असुरेन्द्र चमर का चमरचंच नामक आवास प्रज्ञप्त है–उसकी पीठिका लंबाई-चौड़ाई में चौरासी हजार योजन और परिधि में दो लाख पैंसठ हजार छह सौ बत्तीस योजन से कुछ विशेषाधिक है।

वह एक प्राकार से चारों ओर से घिरा हुआ है। वह प्राकार ऊंचाई में डेढ़-सौ योजन ऊर्ध्व है। इस प्रकार चमरचंचा राजधानी की वक्तव्यता, वहां सभा नहीं है यावत् चार प्रासाद-पंक्ति है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चत्तारि पासायपंतीओ।

भणितव्या सभाविहीना यावत् चतस्रः प्रासादपंक्तयः।

९७. चमरे णं भंते ! असुरिंदे असुरकुमारराया चमरचंचे आवासे वसहिं उवेति ?

नो इणट्ठे समट्ठे॥

चमरः भदन्त! असुरेन्द्रः असुरकुमारराजा चमरचञ्चे आवासे वसतिम् उपैति?

नो अयमर्थः समर्थः।

९७. भंते ! क्या असुरकुमारराज असुरेन्द्र चमर चमरचंचा आवास में निवास करते हैं ?

यह अर्थ संगत नहीं है।

९८. से केणं खाइं अट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–चमरचंचे आवासे, चमरचंचे आवासे ?

गोयमा ! से जहानामए–इहं मणुस्सलोगंसि उवगारियलेणाइ वा, उज्जाणियलेणाइ वा, णिज्जाणियलेणाइ वा, धारावारियलेणाइ वा, तत्थ णं बहवे मणुस्सा य मणुस्सीओ य आसयंति सयंति चिट्ठंति निसीयंति तुयट्टंति हसंति रमंति ललंति कीलंति कित्तंति मोहेंति पुरा पोराणाणं सुचिण्णाणं सुपरक्कंताणं सुभाणं कडाणं कम्माणं कल्लाणाणं कल्लाण-फलवित्तिविसेसं पच्चणुब्भवमाणा विहरंति, अण्णत्थ पुण वसहिं उवेंति। एवामेव गोयमा ! चमरस्स असुरिंदस्स असुरकुमाररण्णो चमरचंचे आवासे केवलं किड्डारतिपत्तियं, अण्णत्थ पुण वसहिं उवेति। से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–चमरचंचे आवासे, चमरचंचे आवासे॥

तत् केनार्थेन खाइं भदन्त! एवमुच्यते–चमरचञ्चः आवासः, चमरचञ्चः आवासः?

गौतम! सः यथानामकः– इह मनुष्यलोके उपकारिकलयनानि वा, औद्यानिकलयनानि वा, नैर्याणिकलयनानि वा, धारावारिकलयनानि वा, तत्र बहवः मनुष्याः च मानुष्यः च आसते शेरते तिष्ठन्ति निषीदन्ति त्वग्वर्तन्ते हसन्ति रमन्ते ललन्ति क्रीडन्ति कीर्त्तयन्ति मोहयन्ति पुरा पुराणानां सुचीर्णानां सुपराक्रान्तानां शुभानां कृतानां कर्मणां कल्याणानां कल्याणफलवृत्तिविशेषं प्रत्यनुभवन्तः विहरन्ति, अन्यत्र पुनः वसतिम् उपयन्ति।

एवमेव गौतम! चमरस्य असुरेन्द्रस्य असुरकुमारराजस्य चमरचञ्चः आवासः। केवलं क्रीडा-रतिप्रत्ययम्, अन्यत्र पुनः वसतिम् उपैति। तत् तेनार्थेन गौतम! एवमुच्यते–चमरचञ्चः आवासः, चमरचञ्चः आवासः।

९८. भंते ! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है–चमरचंच आवास चमरचंच आवास है ?

गौतम ! यथानाम इस मनुष्य लोक में औपकारिक लयन, औद्यानिक लयन, निर्यानिक लयन, प्रपात लयन, वहां बहुत पुरुष और स्त्रियां रहते हैं, सोते हैं, ठहरते हैं, बैठते हैं, करवट बदलते हैं, परिहास करते हैं, रमण करते हैं, मनोवांछित क्रियाएं करते हैं, क्रीड़ा करते हैं, दूसरों को क्रीडा करवाते हैं, मोहित करते हैं। पूर्वकृत, पुरातन सुआचरित, सुपराक्रांत, शुभ और कल्याणकारी कर्मों के कल्याण फल वृत्ति विशेष का प्रत्यनुभव करते हुए विहरण करते हैं, निवास वहां नहीं करते हैं, दूसरे स्थान पर करते हैं। गौतम ! इसी प्रकार असुरकुमारराज असुरेन्द्र चमर चमरचंच आवास में केवल क्रीडा-रति के लिए आते हैं, निवास वहां नहीं करते हैं, दूसरे स्थान पर करते हैं। गौतम ! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है–चमरचंच आवास चमरचंच आवास है।

भाष्य

१. सूत्र ९८

शब्द-विमर्श

औपकारिक लयन–पीठिका।

औद्यानिक लयन–उद्यान में होने वाला लयन।

निर्यानिक लयन–नगर-निर्गमन के स्थान पर होने वाला लयन।

जल-प्रपात लयन–जल प्रपात के परिपार्श्व में बना हुआ लयन।

वृत्तिकार ने **आसयंति** का अर्थ अल्पकालिक आश्रय लेना और **सयंति** का अर्थ आश्रय लेना किया है। उनका वैकल्पिक अर्थ है–अल्पकाल के लिए सोना और लंबे समय के लिए सोना।[1] राजप्रश्नीय की वृत्ति में आसयंति का अर्थ बैठना तथा सयंति का अर्थ सोना किया गया है।[2] निसीयंति का अर्थ भी बैठना है। बैठने के लिए द्व्यर्थक प्रयोग विमर्शनीय है। इस दृष्टि से अभयदेव सूरि की अर्थ-कल्पना समीचीन लगती है।

९९. सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति जाव विहरइ॥

तदेवं भदन्त! तदेवं भदन्त। इति यावत् विहरति।

९९. भंते ! वह ऐसा ही है। भंते ! वह ऐसा ही है। यावत् आत्मा को भावित करते हुए विहरण करते हैं।

१. भ. वृ. १३/९८–'आसयंति' त्ति आश्रयन्ते, ईषद् भजंते, 'सयंति' त्ति श्रयन्ते अनीषद् भजन्ते अथवा आसयंति ईषत्स्वपन्ति सयंति अनीषत्स्वपन्ति।
२. राय. वृ. प. १९९-२००।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१००. तए णं समणे भगवं महावीरे अण्णया कयाइ रायगिहाओ नगराओ गुणसिलाओ चेइयाओ पडिनिक्खमइ, बहिया जणवयविहारं विहरइ॥

ततः श्रमणः भगवान् महावीरः अन्यदा कदाचिद् राजगृहात् नगरात् गुणशिलकात् चैत्यात् प्रतिनिष्क्रामति, प्रतिनिष्क्रम्य बहिः जनपदविहारं विहरति।

१००. श्रमण भगवान् महावीर ने किसी दिन राजगृह नगर से, गुणशीलक चैत्य से प्रतिनिष्क्रमण किया, प्रतिनिष्क्रमण कर वे वहां से बाहर जनपद विहार करने लगे।

उद्दायणकहा-पदं

१०१. तेणं कालेणं तेणं समएणं चंपा नामं नयरी होत्था—वण्णओ। पुण्णभद्दे चेइए—वण्णओ। तए णं समणे भगवं महावीरे अण्णदा कदाइ पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे गामाणुगामं दूइज्जमाणे सुहंसुहेणं विहरमाणे जेणेव चंपा नगरी जेणेव पुण्णभद्दे चेइए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अहापडिरूवं ओग्गहं ओगिण्हइ, ओगिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ॥

उद्दायण कथा-पदम्

तस्मिन् काले तस्मिन् समये चम्पा नाम नगरी आसीत्—वर्णकः। पूर्णभद्रं चैत्यम् वर्णकः। ततः श्रमणः भगवान् महावीरः अन्यदा कदाचित् पूर्वानुपूर्वीं चरन् ग्रामानुग्रामं दवन् सुखंसुखेन विहरन् यत्रैव चम्पा नगरी यत्रैव पूर्णभद्रं चैत्यं तत्रैव उपागच्छति, उपागम्य यथाप्रतिरूपम् अवग्रहम् अवगृह्णाति, अवगृह्य संयमेन तपसा आत्मानं भावयन् विहरति।

उद्दायण कथा-पद

१०१. उस काल उस समय में चंपा नामक नगरी थी—वर्णक। पूर्णभद्र चैत्य—वर्णक। श्रमण भगवान् महावीर किसी दिन क्रमानुसार विचरण, ग्रामानुग्राम में परिव्रजन और सुखपूर्वक विहार करते हुए जहां चंपा नगरी और पूर्णभद्र चैत्य था, वहां आए। वहां आकर प्रवास योग्य स्थान की अनुमति ली, अनुमति लेकर संयम और तप से अपने आपको भावित करते हुए रह रहे थे।

१०२. तेणं कालेणं तेणं समएणं सिंधूसोवीरेसु जणवएसु वीतीभए नामं नगरे होत्था—वण्णओ। तस्स णं वीतीभयस्स नगरस्स बहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए, एत्थ णं मियवणे नामं उज्जाणे होत्था—सव्वोउय-पुप्फ-फलसमिद्धे—वण्णओ। तत्थ णं वीतीभए नगरे उद्दायणे नामं राया होत्था—महयाहिमवंत - महंत - मलय - मंदर महिंदसारे—वण्णओ। तस्स णं उद्दायणस्स रण्णो पउमावती नामं देवी होत्था—सुकुमालपाणिपाया— वण्णओ। तस्स णं उद्दायणस्स रण्णो पभावती नामं देवी होत्था—वण्णओ जाव विहरइ। तस्स णं उद्दायणस्स रण्णो पुत्ते पभावतीए देवीए अत्तए अभीयी नामं कुमारे होत्था—सुकुमालपाणिपाए अहीण - पडिपुण्ण - पंचिंदिय - सरीरे लक्खण-वंजण-गुणोववेए माणुम्माण-पमाण-पडिपुण्ण-सुजायसव्वंग-सुंदरंगे ससिसोमाकारे कंते पियदंसणे सुरूवे पडिरूवे।

से णं अभीयीकुमारे जुवराया वि होत्था—उद्दायणस्स रण्णो रज्जं च रट्ठं च बलं च वाहणं च कोसं च कोट्ठगारं च पुरं च अंतेउरं च सयमेव पच्चुवेक्खमाणे-पच्चुवेक्खमाणे विहरइ। तस्स णं

तस्मिन् काले तस्मिन् समये सिन्धुसौवीरेषु जनपदेषु वीतीभयं नाम नगरम् आसीत्—वर्णकः। तस्य वीतीभयस्य नगरस्य बहिः उत्तरपौरस्त्यः दिग्भागः, अत्र मृगवनं नाम उद्यानम् आसीत्—सर्वर्तुक - पुष्पफलसमृद्धं-वर्णकः। तत्र वीतीभये नगरे उद्रायणः नाम राजा आसीत्-महत् हिमवत्-महत्-मलय-मन्दर-महेन्द्रसारः- वर्णकः। तस्य उद्रायणस्य राज्ञः पद्मावती नाम देवी आसीत्—सुकुमार-पाणिपादा—वर्णकः। तस्य उद्रायणस्य राज्ञः प्रभावती नाम देवी आसीत्—वर्णकः यावत् विहरति। तस्य उद्रायणस्य राज्ञः पुत्रः प्रभावत्याः देव्याः आत्मजः अभीची नाम कुमारः आसीत्—सुकुमार-पाणिपादः अहीन-प्रतिपूर्ण-पञ्चेन्द्रिय-शरीरः लक्षण-व्यञ्जन-गुणोपेतः मानोन्मान-प्रमाण-प्रतिपूर्ण-सुजातसर्वाङ्गसुन्दराङ्गः शशि-सौम्याकारः कान्तः प्रियदर्शनः सुरूपः प्रतिरूपः।

सः अभीचीकुमारः युवराजा अपि आसीत्—उद्रायणस्य राज्ञः राज्यं च राष्ट्रं च बलं च वाहनं च कोशं च कोष्ठागारं च पुरं च अन्तःपुरं च स्वयमेव प्रत्युपेक्षमाणः प्रत्युपेक्षमाणः

१०२. उस काल उस समय में सिंधु-सौवीर जनपद में वीतीभय नाम का नगर था—वर्णक। उस वीतीभय नगर के बाहर उत्तर पश्चिम दिशि भाग में मृगवन नामक उद्यान था—सर्व ऋतु में पुष्प और फल से समृद्ध—वर्णक। उस वीतीभय नगर में उद्रायण नाम का राजा था—वह महान् हिमालय, महान् मलय, मेरु और महेन्द्र की भांति—वर्णक। उस उद्रायण राजा के पद्मावती नाम की देवी थी—सुकुमाल हाथ पैर वाली—वर्णक। उस उद्रायण राजा के प्रभावती नाम की देवी थी—वर्णक। यावत् विहरण करने लगे।

उस उद्रायण राजा का पुत्र और प्रभावती देवी का आत्मज अभीची नाम का कुमार था—सुकुमाल हाथ पैर वाला, अक्षीण और प्रतिपूर्ण पंचेन्द्रिय शरीर वाला, लक्षण और व्यंजन गुणों से उपपेत, मान, उन्मान और प्रमाण से प्रतिपूर्ण, सुजात, सर्वांग सुंदर, चन्द्रमा के समान सौम्य आकार वाला, कांत, प्रिय-दर्शन, सुरूप और प्रतिरूप था।

वह अभीची कुमार युवराज भी था—उद्रायण राजा के राज्य, राष्ट्र, बल, वाहन, कोश, कोष्ठागार, पुर और अन्तःपुर की स्वयं प्रत्युपेक्षणा (निरीक्षण) करता हुआ विहरण कर रहा था। उस उद्रायण राजा का अपना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उद्दायणस्स रण्णो नियए भाइणेज्जे केसी नामं कुमारे होत्था–सुकुमालपाणिपाए जाव सुरूवे। से णं उद्दायणे राया सिंधूसोवीरप्पामोक्खाणं सोलसण्हं जणवयाणं वीतीभयप्पामोक्खाणं तिण्हं तेसट्ठीणं नगरागरसयाणं, महसेणप्पामोक्खाणं दसण्हं राईणं बद्धमउडाणं विदिन्नछत्त - चामर - बालवीयणाणं, अण्णेसिं च बहूणं राईसर - तलवर - माडंबिय - कोडुंबिय - इब्भ - सेट्ठि - सेणावइ-सत्थवाहप्पभिईणं आहेवच्चं पोरेवच्चं सामित्तं भट्टित्तं आणा-ईसर-सेणावच्चं कारेमाणे पालेमाणे समणोवासए अभिगयजीवाजीवे जाव अहापरिग्गहिएहिं तवोकम्मेहिं अप्पाणं भावेमाणे विहरइ॥

विहरति। तस्य उद्रायणस्य राज्ञः निजकः भागिनेयः केशी नाम कुमारः आसीत्–सुकुमारपाणिपादः यावत् सुरूपः। सः उद्रायणः राजा सिन्धुसौवीरप्रमुख्यानां षोडशानां जनपदानाम्, वीतीभय-प्रमुख्यानां त्रयाणां त्रिषष्टीनां नगरा-करशतानाम्, महासेनप्रमुख्यानां दशानां राज्ञां बद्धमुकुटानां विदत्तछत्र-चामर-बालवीजनानाम्, अन्येषां च बहूनां राजेश्वर-तलवर - माडम्बिक - कौटुम्बिक-इभ्य-श्रेष्ठि - सेनापति - सार्थवाहप्रभृतीनाम् आधिपत्यं पौरपत्यं स्वामित्वं भर्तृत्वम् आज्ञा-ईश्वर-सैनापत्यं कारयन् पालयन् श्रमणोपासकः अभिगतजीवाजीवः यावत् यथापरिगृहीतैः तपःकर्मभिः आत्मानं भावयन् विहरति।

भागिनेय केशी नाम का कुमार था–सुकुमाल हाथ पैर वाला यावत् सुरूप। वह उद्रायण राजा सिन्धु सौवीर आदि सोलह जनपद, वीतीभय नगर आदि तीन सौ तेसठ नगर, आकर, छत्र, चामर, बाल वीजन आदि प्रदत्त महासेन आदि दस मुकुटवत् राजों का, अन्य बहुत राजे, युवराज, कोटवाल, मडंबपति, कुटुम्बपति, इभ्य, सेठ, सेनापति, सार्थवाह आदि का आधिपत्य, पौरपत्य, स्वामित्व, भर्तृत्व (पोषण) तथा आज्ञा देने में समर्थ और सेनापतित्व करता हुआ, अन्य से आज्ञा का पालन करवाता हुआ वह श्रमणोपासक जीव अजीव को जानने वाला यावत् यथापरिगृहीत तपःकर्म के द्वारा आत्मा को भावित करता हुआ रह रहा था।

भाष्य

१. सूत्र १०२

वृत्तिकार ने सिन्धु सौवीर का अर्थ सिन्धु नदी का पार्श्ववर्ती सौवीर जनपद किया है।[1]

उद्रायण के दो महारानियां थी–पद्मावती और प्रभावती। पद्मावती के विषय में कोई प्रामाणिक स्रोत उपलब्ध नहीं है।

१०३. तए णं से उद्दायणे राया अण्णया कयाइ जेणेव पोसहसाला तेणेव उवागच्छइ, जहा संखे जाव पोसहिए बंभचारी ओमुक्कमणिसुवण्णे ववगयमाला-वण्णग-विलेवणे निक्खित्तसत्थ-मुसले एगे अबिइए दब्भसंथारोवगए पक्खियं पोसहं पडिजागरमाणे विहरइ॥

ततः सः उद्रायणः राजा अन्यदा कदाचित् यत्रैव पौषधशाला तत्रैव उपागच्छति, यथा शंखः यावत् पौषधिकः ब्रह्मचारी उन्मुक्तमणिसुवर्णः व्यपगतमाला-वर्णक-विलेपनः निक्षिप्तशस्त्र-मुसलः एकः अद्वितीयः दर्भसंस्तारोपगतः पाक्षिकं पौषधं प्रतिजाग्रत् विहरति।

१०३. वह उद्रायण राजा किसी दिन जहां पौषध शाला थी, वहां आया। शंख श्रावक की भांति यावत् मैं उपवास करूं, ब्रह्मचारी रहूं, सुवर्ण मणि को छोड़कर, माला, सुगंधित चूर्ण और विलेपन से रहित, शस्त्र, मूसल आदि का वर्जन कर, अकेला, दूसरों के साहाय्य से निरपेक्ष, दर्भ-संस्तारक पर बैठ कर पाक्षिक पौषध की प्रतिजागरणा करूं।

१०४. तए णं तस्स उद्दायणस्स रण्णो पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि धम्मजागरियं जागरमाणस्स अयमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था–धन्ना णं ते गामागर - नगर - खेड-कव्वड-मडंब-दोणमुह-पट्टण-सम - संवाहसण्णिवेसा जत्थ णं समणे भगवं महावीरे विहरइ, धन्ना णं ते राईसर-तलवर-माडंबिय-कोडुंबिय - इब्भ - सेट्ठि-सेणावइ-सत्थवाहप्पभितयो जे णं समणं भगवं

ततः तस्य उद्रायणस्य राज्ञः पूर्वरात्रापररात्रकालसमये धर्मजागरिकायां जाग्रतः अयमेतद्रूपः आध्यात्मिकः चिन्तितः प्रार्थितः मनोगतः संकल्पः समुदपादि-धन्याः ते ग्रामाकर-नगर-खेट - कर्वट - मडम्ब-द्रोणमुखपत्तनाश्रमसम्बाधसन्निवेशाः यत्र श्रमणः भगवान् महावीरः विहरति, धन्याः ते राजेश्वर-'तलवर' माडम्बिक-कौटुम्बिक - इभ्य - श्रेष्ठि - सेनापति-सार्थवाहप्रभृतयः ये श्रमणं भगवन्तं

१०४. उस उद्रायण राजा के पूर्वरात्र-अपररात्र काल में धर्म जागरणा करते हुए इस प्रकार का आध्यात्मिक, स्मृत्यात्मक, अभिलाषात्मक, मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ–धन्य हैं वे ग्राम, आकर, नगर, निगम, राजधानी, खेट, कर्वट, मडम्ब, द्रोणमुख, पत्तन, आश्रम, संबाध, सन्निवेश, जहां श्रमण भगवान् महावीर विहरण कर रहे हैं। धन्य हैं वे राजे, युवराज, कोटवाल, मडम्बपति, कुटुम्बपति, इभ्य, सेठ, सेनापति, सार्थवाह आदि, जो श्रमण

१. भ. वृ. १३/१०२–सिन्धु सौवीरेसु ति सिन्धुनद्याः आसन्नाः, सौवीराः–जनपदविशेषाः सिन्धुसौवीरास्तेषु।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महावीरं वंदंति नमंसंति जाव पज्जुवासंति। जइ णं समणे भगवं महावीरे पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे गामाणुगामं दूइज्जमाणे सुहंसुहेणं विहरमाणे इहमागच्छेज्जा, इह समोसरेज्जा, इहेव वीतीभयस्स नगरस्स बहिया मियवणे उज्जाणे अहापडिरूवं ओग्गहं ओगिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरेज्जा, तो णं अहं समणं भगवं महावीरं वंदेज्जा नमंसेज्जा जाव पज्जुवासेज्जा॥

महावीरं वन्दन्ते नमस्यन्ति यावत् पर्युपासते। यदि श्रमणः भगवान् महावीरः पूर्वानुपूर्वीं चरन् ग्रामानुग्रामं दवन् सुखंसुखेन विहरन् इह आगच्छेत् इह समवसरेत्, इहैव वीतीभयस्य नगरस्य बहिः मृगवने उद्याने यथाप्रतिरूपम् अवग्रहं अवगृह्य संयमेन तपसा आत्मानं भावयन् विहरेत्, तदा अहं श्रमणं भगवन्तं महावीरं वन्देयं नमस्येयम् यावत् पर्युपासीय।

भगवान् महावीर को वंदन-नमस्कार करते हैं यावत् पर्युपासना करते हैं। यदि श्रमण भगवान् महावीर क्रमानुसार विचरण, ग्रामानुग्राम में परिव्रजन और सुखपूर्वक विहार करते हुए इस नगर में आएं, इस नगर में समवसृत हों, इसी वीतीभय नगर के बाहर मृगवन उद्यान में प्रवास योग्य स्थान की अनुमति लेकर संयम और तप से अपने आपको भावित करते हुए विहरण करें तो मैं श्रमण भगवान् महावीर को वंदन-नमस्कार करूं यावत् पर्युपासना करूं।

१०५. तए णं समणे भगवं महावीरे उद्दायणस्स रण्णो अयमेयारूवं अज्झत्थियं चिंतियं पत्थियं मणोगयं संकप्पं समुप्पन्नं वियाणित्ता चंपाओ नगरीओ पुण्णभद्दाओ चेइयाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे गामाणुगामं दूइज्जमाणे सुहंसुहेणं विहरमाणे जेणेव सिंधूसोवीरे जणवए जेणेव वीतीभये नगरे, जेणेव मियवणे उज्जाणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता जाव संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ॥

ततः श्रमणः भगवान् महावीरः उद्रायणस्य राज्ञः एतमेतद्रूपं आध्यात्मिकं चिन्तितं प्रार्थितं मनोगतं संकल्पं समुत्पन्नं विज्ञाय चम्पायाः नगर्याः पूर्णभद्रात् चैत्यात् प्रतिनिष्क्रामति, प्रतिनिष्क्रम्य पूर्वानुपूर्वीं चरन् ग्रामानुग्रामं दवन् सुखंसुखेन विहरन् यत्रैव सिन्धुसौवीरः जनपदः यत्रैव वीतीभयं नगरम्, यत्रैव मृगवनम् उद्यानम् तत्रैव उपागच्छति, उपागम्य यावत् संयमेन तपसा आत्मानं भावयन् विहरति।

१०५. श्रमण भगवान् महावीर ने-उद्रायण राजा के इस प्रकार का आध्यात्मिक, स्मृत्यात्मक, अभिलाषात्मक एवं मनोगत संकल्प समुत्पन्न हुआ-ऐसा जानकर चंपा नगरी और पूर्णभद्र चैत्य से प्रतिनिष्क्रमण किया, प्रतिनिष्क्रमण कर क्रमानुसार विचरण, ग्रामानुग्राम में परिव्रजन और सुखपूर्वक विहार करते हुए जहां सिंधु सौवीर जनपद है, जहां वीतीभय नगर है, जहां मृगवन उद्यान है, वहां आए, वहां आकर यावत् संयम और तप से अपने आपको भावित करते हुए विहरण करने लगे।

१०६. तए णं वीतीभये नगरे सिंघाडग-तिग-चउक्क चच्चर-चउम्मुह-महापह-पहेसु जाव परिसा पज्जुवासइ॥

ततः वीतीभये नगरे शृङ्गाटक-त्रिक-चतुष्क चत्वर-चतुर्मख-महापथपथेषु यावत् परिषद् पर्युपासते।

१०६. उस वीतीभय नगर के शृंगाटकों, तिराहों, चौराहों, चौहटों, चार द्वार वाले स्थानों, राजमार्गों और मार्गों पर यावत् परिषद् पर्युपासना करने लगी।

१०७. तए णं से उद्दायणे राया इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे हट्ठतुट्ठे कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी-खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! वीतीभयं नगरं सब्भिंतरबाहिरियं जहा कूणिओ ओववाइए जाव पज्जुवासइ। पउमावती-पामोक्खाओ देवीओ तहेव जाव *पज्जुवासंति। धम्मकहा॥*

ततः सः उद्रायणः राजा अनया कथया लब्धार्थः सन् हृष्टतुष्टः कौटुम्बिक-पुरुषान् शब्दयति, शब्दयित्वा एवमवादीत्-क्षिप्रमेव भो देवानुप्रिया! वीतीभयं नगरं साभ्यन्तरबाहिरिकां यथा कूणिकः औपपातिके यावत् पर्युपासते। पद्मावतीप्रमुख्याः देव्यः तथैव यावत् *पर्युपासते। धर्मकथा।*

१०७. उद्रायण राजा इस कथा को सुनकर हृष्ट तुष्ट हो गया। उसने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया, बुलाकर इस प्रकार कहा-देवानुप्रियो! वीतीभय नगर को आभ्यंतर और बाहर जैसे औपपातिक में कूणिक की वक्तव्यता यावत् पर्युपासना की। पद्मावती प्रमुख देवियों ने वैसे ही यावत् पर्युपासना *की। भगवान ने धर्म कहा।*

१०८. तए णं से उद्दायणे राया समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं धम्मं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठे उट्ठाए उट्ठेइ, उट्ठेत्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो जाव नमंसित्ता एवं वयासी-एवमेयं भंते! तहमेयं भंते!

ततः सः उद्रायणः राजा श्रमणस्य भगवतः महावीरस्य अन्तिकं धर्मं श्रुत्वा निशम्य हृष्टतुष्टः उत्थया उत्तिष्ठति, उत्थाय श्रमणं भगवन्तं महावीरं त्रिः यावत् नमस्यित्वा एवमवादीत्-एवमेतद्

१०८. उद्रायण राजा श्रमण भगवान् महावीर के पास धर्म सुनकर, अवधारण कर हृष्ट-तुष्ट हो गया। वह उठने की मुद्रा में उठा, उठकर श्रमण भगवान् महावीर को तीन बार यावत् नमस्कार कर इस प्रकार बोला-भंते! यह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अवितहमेयं भंते ! असंदिद्धमेयं भंते ! इच्छियमेयं भंते ! पडिच्छियमेयं भंते ! इच्छिय-पडिच्छियमेयं भंते !–से जहेयं तुब्भे वदह त्ति कट्टु जं नवरं–देवाणुप्पिया ! अभीयिकुमारं रज्जे ठावेमि, तए णं अहं देवाणुप्पियाणं अंतिए मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वयामि।

अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं॥

भदन्त! तथैतद् भदन्त! अवितथमेतद् भदन्त! असंदिग्धमेतद् भदन्त! इष्टमेतद् भदन्त! प्रतीष्टमेतद् भदन्त! इष्टप्रतीष्टमेतद् भदन्त!–तत् यथैदं यूयं वदथ इति कृत्वा यत् नवरम्–देवानुप्रिया! अभीचीकुमारं राज्ये स्थापयामि, ततः अहं देवानुप्रियानाम् अन्तिके मुण्डः भूत्वा अगारात् अनगारितां प्रव्रजामि।

यथासुखं देवानुप्रिया! मा प्रतिबन्धम्।

ऐसा ही है। भंते ! यह तथा (संवादिता पूर्ण) है। भंते ! यह अवितथ है। भंते ! यह असंदिग्ध है। भंते ! यह इष्ट है। भंते ! यह प्रतीप्सित (प्राप्त करने के लिए इष्ट) है। भंते ! यह इष्ट-प्रतीप्सित है–जैसा आप कह रहे हैं, ऐसा भाव प्रदर्शित कर, इतना विशेष है–देवानुप्रिय ! अभीची कुमार को राज्य में स्थापित करता हूं। मैं देवानुप्रिय के पास मुंड होकर अगार से अनगारिता में प्रव्रजित होता हूं।
देवानुप्रिय ! जैसा सुख हो, प्रतिबंध मत करो।

१०६. तए णं से उद्दायणे राया समणेणं भगवया महावीरेणं एवं वुत्ते समाणे हट्ठतुट्ठ समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता तमेव आभिसेक्कं हत्थिं दुरुहइ, दुरुहित्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियाओ मियवणाओ उज्जाणाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता जेणेव वीतीभये नगरे तेणेव पहारेत्थ गमणाए॥

ततः सः उद्रायणः राजा श्रमणेन भगवता महावीरेण एवमुक्ते सति हृष्टतुष्टः श्रमणं भगवन्तं महावीरं वन्दते नमस्यति वन्दित्वा नमस्यित्वा तमेव आभिषेक्यं हस्तिनं आरोहति आरुह्य श्रमणस्य भगवतः महावीरस्य अन्तिकाद् मृगवनात् उद्यानात् प्रतिनिष्क्रामति, प्रतिनिष्क्रम्य यत्रैव वीतीभये नगरे तत्रैव प्रादीधरत् गमनाय।

१०६. वह उद्रायण राजा श्रमण भगवान् महावीर के इस कथन को सुनकर हृष्ट तुष्ट हो गया। उसने श्रमण भगवान् महावीर को वंदन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार कर अभिषिक्त हाथी पर चढा। चढकर श्रमण भगवान् महावीर के पास से मृगवन उद्यान से प्रतिनिष्क्रमण किया, प्रतिनिष्क्रमण कर जहां वीतीभय नगर था वहां जाने का संकल्प किया।

११०. तए णं तस्स उद्दायणस्स रण्णो अयमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था–एवं खलु अभीयीकुमारे मम एगे पुत्ते इट्ठे कंते पिए मणुण्णे मणामे थेज्जे वेसासिए संमए बहुमए अणुमए भंडकरंडगसमाणे रयणे रयणब्भूए जीविऊसविए हियय्नंदिजणणे उंबरपुप्फं पिव दुल्लभे सवणयाए, किमंग पुण पासणयाए ? तं जदि णं अहं अभीयीकुमारं रज्जे ठावेत्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वयामि, तो णं अभीयीकुमारे रज्जे य रट्ठे य बले य वाहणे य कोसे य कोट्ठागारे य पुरे य अंतेउरे य जणवए य माणुस्सएसु य कामभोगेसु मुच्छिए गिद्धे गढिए अज्झोववन्ने अणादीयं अणवदग्गं दीहमद्धं चाउरंतसंसारकंतारं अणुपरियट्टिस्सइ, तं नो खलु मे सेयं अभीयीकुमारं रज्जे ठावेत्ता समणस्स

ततः तस्य उद्रायणस्य राज्ञः अयमेतद्रूपः आध्यात्मिकः चिन्तितः प्रार्थितः मनोगतः संकल्पः समुदपादि-एवं खलु अभीचीकुमारः मम एकः पुत्रः इष्टः कान्तः प्रियः मनोज्ञः 'मणामे' स्थैर्यः वैश्वासिकः सम्मतः बहुमतः अनुमतः भण्डकरण्डकसमानः रत्नः रत्नभूतः जीवितोच्छ्रितः हृदयनन्दि जननं उदम्बरपुष्पम् इव दुर्लभः श्रवणाय, किमङ्ग पुनः दर्शनाय? तत् यदि अहम् अभीचीकुमारं राज्ये स्थापयित्वा श्रमणस्य भगवतः महावीरस्य अन्तिकं मुण्डः भूत्वा अगारात् अनगारितां प्रव्रजामि, तदा अभीचीकुमारः राज्ये च राष्ट्रे च बले च वाहने च कोशे च कोष्ठागारे च पुरे च अन्तःपुरे च जनपदे च मानुष्यकेषु च कामभोगेषु मूर्च्छितः गृद्धः ग्रथितः अध्युपपन्नः अनादिकं 'अणवदग्गं' दीर्घमध्वानं चतुरन्तं संसारकान्तारं

११०. उस उद्रायण राजा के इस प्रकार का आध्यात्मिक, स्मृत्यात्मक, अभिलाषात्मक और मनोगत संकल्प समुत्पन्न हुआ–अभीचीकुमार मेरा एकाकी पुत्र है, इष्ट, कांत, प्रिय, मनोज्ञ, मनोहर, स्थिरतर, विश्वसनीय, सम्मत, बहुमत, अनुमत और आभरण-करण्डक के समान है। रत्न, रत्नभूत (चिन्तामणि आदि रत्न के समान) जीवन-उत्सव और हृदय को आनंदित करने वाला है। वह उदुम्बर पुष्प के समान श्रवण-दुर्लभ है फिर दर्शन का तो कहना ही क्या? यदि मैं अभीचीकुमार को राज्य में स्थापित कर श्रमण भगवान् महावीर के पास मुंड होकर अगार से अनगारिता में प्रव्रजित होता हूं तो अभीचीकुमार राज्य, राष्ट्र, बल, वाहन, कोश, कोष्ठागार, पुर, अंतः पुर, जनपद और मनुष्य संबंधी काम-भोगों में मूर्च्छित, गृद्ध, ग्रथित और आसक्त होकर आदि अंतहीन दीर्घ पथ वाले चतुर्गत्यात्मक संसार में अनुपर्यटन करेगा। मेरे लिए यह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भगवओ महावीरस्स अंतियं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए, सेयं खलु मे नियगं भाइणेज्जं केसिं कुमारं रज्जे ठावेत्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए—एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता जेणेव वीयीभये नगरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता वीयीभयं नगरं मज्झंमज्झेणं जेणेव सए गेहे जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला, तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता आभिसेक्कं हत्थिं ठवेइ, ठवेत्ता आभिसेक्काओ हत्थीओ पच्चोरुभइ, पच्चोरुभित्ता जेणेव सीहासणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सीहासणवरंसि पुरत्थाभिमुहे निसीयति, निसीइत्ता कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! वीयीभयं नगरं सब्भिंतरबाहिरियं आसियसमज्जिओवलित्तं जाव सुगंधवरगंधगंधियं गंधवट्टिभूयं करेह य कारवेह य, करेत्ता य कारवेत्ता य एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह। ते वि तमाणत्तियं पच्चप्पिणंति॥

अनुपरिवर्तिष्यते, तत् नो खलु मम श्रेयः अभीचीकुमारं राज्ये स्थापयित्वा श्रमणस्य भगवतः महावीरस्य अन्तिकं मुण्डः भूत्वा अगाराद् अनगारितां प्रव्रजितुम्, श्रेयः खलु मम निजकं भागिनेयं केशिनंकुमारं राज्ये स्थापयित्वा श्रमणस्य भगवतः महावीरस्य अन्तिकं मुण्डः भूत्वा अगाराद् अनगारितां प्रव्रजितुम्—एवं सम्प्रेक्षते, सम्प्रेक्ष्य यत्रैव वीतीभये नगरे तत्रैव उपागच्छति, उपागम्य वीतीभयं नगरं मध्यमध्येन यत्रैव स्वकं गृहं यत्रैव बाहिरिका उपस्थानशाला, तत्रैव उपागच्छति, उपागम्य आभिषेक्यं हस्तिनं स्थापयति स्थापयित्वा आभिषेक्यात् हस्तिनः प्रत्यवरोहति, प्रत्यवरुह्य यत्रैव सिंहासने तत्रैव उपागच्छति, उपागम्य सिंहासनवरे पौरस्त्याभिमुखे निषीदति, निषद्य कौटुम्बिकपुरुषान् शब्दयति, शब्दयित्वा एवमवादीत्—क्षिप्रमेव भो देवानुप्रियाः। वीतीभयं नगरं साभ्यन्तर-बाहिरिकाम् आसिक्तसम्मार्जितोपलिप्तां यावत् सुगंधवरगन्धगन्धिकां गन्धवर्तिभूतां कुरुत च कारयत च एतामाज्ञप्तिकां प्रत्यर्पयत। ते अपि तामाज्ञप्तिकां प्रत्यर्पयन्ति।

श्रेय नहीं है कि मैं अभीचीकुमार को राज्य में स्थापित कर श्रमण भगवान् महावीर के पास मुंड होकर अगार से अनगारिता में प्रव्रजित होऊं, मेरे लिए यह श्रेय है कि मैं अपने भागिनेय केशीकुमार को राज्य में स्थापित कर श्रमण भगवान् महावीर के पास मुंड होकर अगार से अनगारिता में प्रव्रजित होऊं—इस प्रकार संप्रेक्षा की, संप्रेक्षा कर जहां वीतीभय नगर था, वहां आया, आकर वीतीभय नगर के बीचोंबीच जहां अपना घर है, जहां बाहरी उपस्थान शाला है, वहां आया, आकर अभिषिक्त हस्ती को स्थापित किया, स्थापित कर अभिषिक्त हाथी से उतरा, उतरकर जहां सिंहासन था, वहां आया, आकर प्रवर सिंहासन पर पूर्वाभिमुख होकर बैठा, बैठकर कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया, बुलाकर इस प्रकार कहा—देवानुप्रियो! शीघ्र ही वीतीभय नगर के भीतर और बाहर पानी का छिड़काव करो, झाड़-बुहार जमीन की सफाई करो, गोबर की लिपाई करो यावत् प्रवर सुरभि वाले गंध-चूर्णों से सुगंधित-गंधवर्ती तुल्य करो, कराओ, ऐसा कर और करवाकर इस आज्ञा को मुझे प्रत्यर्पित करो। कौटुम्बिक पुरुषों ने वैसा कर आज्ञा को प्रत्यर्पित किया।

१११. तए णं से उद्दायणे राया दोच्चं पि कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! केसिस्स कुमारस्स महत्थं महग्घं महरिहं विउलं एवं रायाभिसेओ जहा सिवभद्दस्स कुमारस्स तहेव भाणियव्वो जाव परमाउं पालयाहि, इट्ठजणसंपरिवुडे सिंधु-सोवीरपामोक्खाणं सोलसण्हं जणवयाणं वीयीभयपामोक्खाणं तिण्णि तेसट्ठीणं नगरागरसयाणं महसेणपामोक्खाणं दसण्हं राईणं, अण्णेसिं च बहूणं राईसर-तलवर - माडंबिय - कोडुंबिय-इब्भ-सेट्ठि-सेणावइ-सत्थवाहप्पभिईणं आहेवच्चं पोरेवच्चं सामित्तं भट्टित्तं आणा-ईसर-सेणावच्चं कारेमाणे, पालेमाणे विहराहि त्ति कट्टु जयजयसद्दं पउंजंति॥

ततः सः उद्रायणः राजा द्विः अपि कौटुम्बिकपुरुषान् शब्दयति, शब्दयित्वा एवमवादीत्—क्षिप्रमेव भो देवानुप्रियाः! केशिनः कुमारस्य महार्थं महार्घ्यं महार्हं विपुलं एवम् राजाभिषेकः यथा शिवभद्रस्य कुमारस्य तथैव भणितव्यं यावत् परमायुः पालय, इष्टजन-सम्परिवृतः सिन्धुसौवीरप्रमुख्यानां षोडशानां जनपदानां वीतीभय-प्रमुख्यानां त्रयाणां त्रिषष्टीनां नगराकर-शतानाम् महसेनप्रमुख्यानां दशानां राज्ञां, अन्येषां च बहूनां राजेश्वर-'तलवर' - माडम्बिक-कौटुम्बिक-इभ्य-श्रेष्ठि - सेनापति-सार्थवाह—प्रभृतीनाम् आधिपत्यं पौरपत्यं स्वामित्वं भर्तृत्वम् आज्ञा-ईश्वर-सेनापत्यं कारयन् पालयन् विहर इति कृत्वा जयजयशब्दं प्रयुञ्जन्ति।

१११. उस उद्रायण राजा ने दूसरी बार कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया, बुलाकर इस प्रकार कहा—देवानुप्रियो! केशीकुमार के लिए शीघ्र ही महान् अर्थ वाला, महान् मूल्यवाला, महान् अर्हता वाला, विपुल इस प्रकार राज्याभिषेक जैसे शिवभद्रकुमार की वक्तव्यता वैसे ही वक्तव्य है यावत् परम आयुष्य का पालन करो। इष्ट जनों से संपरिवृत होकर सिन्धु-सौवीर आदि सोलह जनपद, वीतीभय आदि तीन सौ तेसठ नगर-आकर, महासेन आदि दस राजा, अन्य बहुत राजे, युवराज, कोटवाल, मडम्बपति, कुटुम्बपति, इभ्य, सेठ, सेनापति, सार्थवाह आदि का आधिपत्य, पौरपत्य, स्वामित्व, भर्तृत्व तथा आज्ञा देने में समर्थ और सेनापतित्व करते हुए तथा अन्य से आज्ञा का पालन करवाते हुए

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विहार करो, इस प्रकार 'जय-जय' शब्द का प्रयोग किया।

११२. तए णं से केसीकुमारे राया जाए—महयाहिमवंत-महंत-मलय-मंदर-महिंदसारे जाव रज्जं पसासेमाणे विहरइ॥

ततः सः केशीकुमारः राजा जातः - महत् हिमवत्-महत्-मलय-मन्दर-महेन्द्रसारः यावत् राज्यं प्रशासन् विहरति।

११२. वह केशी कुमार राजा हो गया— महान् हिमालय, महान् मलय, मेरु और महेन्द्र की भांति यावत् राज्य का प्रशासन करता हुआ विहरण करने लगा।

११३. तए णं से उद्दायणे राया केसिं रायाणं आपुच्छइ॥

ततः सः उद्रायणः राजा केशिनं राजानम् आपृच्छति।

११३. उस उद्रायण राजा ने केशी राजा से पूछा।

११४. तए णं से केसी राया कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ—एवं जहा जमालिस्स तहेव सब्भिंतरबाहिरियं तहेव जाव निक्खमणाभिसेयं उवट्ठवेंति॥

ततः सः केशी राजा कौटुम्बिकपुरुषान् शब्दयति—एवं यथा जमालेः तथैव साभ्यन्तरबाहिरिकां तथैव यावत् निष्क्रमणाभिषेकम् उपस्थापयन्ति।

११४. केशी राजा ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया—इस प्रकार जैसे जमालि की वक्तव्यता, वैसे ही वक्तव्य है यावत् भीतर और बाहर उसी प्रकार यावत् अभिनिष्क्रमण अभिषेक उपस्थित किया।

११५. तए णं से केसी राया अणेग-गणनायग-दंडनायग-राईसर-तलवर-माडंबिय - कोडुंबिय - इब्भ - सेट्ठि-सेणावइ-सत्थवाह - दूय - संधिपाल-सद्धिंसंपरिवुडे उद्दायणं रायं सीहासणवरंसि पुरत्थाभिमुहे निसीयावेति, निसीयावेत्ता अट्ठसएणं सोवण्णियाणं कलसाणं एवं जहा जमालिस्स जाव महया-महया निक्खमणाभिसेगेणं अभिसिंचति, अभिसिंचित्ता करयल-परिग्गहियं दसनहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु जएणं विजएणं वद्धावेति, वद्धावेत्ता एवं वयासी—भण सामी ! किं देमो ? किं पयच्छामो ? किणा वा ते अट्ठो ?

ततः सः केशी राजा अनेकगणनायक-दण्डनायक - राजेश्वर - 'तलवर' - माडम्बिक - कौटुम्बिक - इभ्य—श्रेष्ठि-सेनापति-सार्थवाह दूत-सन्धिपाल-सार्धं संपरिवृतः उद्रायणं राजानं सिंहासनवरे पौरस्त्याभिमुखे-निषादयति, निषाद्य अष्टशतेन सौवर्णिकानां कलशानां एवं यथा जमालेः यावत् महता महता निष्क्रमणाभिषेकेण अभिषिञ्चति, अभिषिच्य करतल-परिगृहीतं दशनखं शिरसावर्त्तं मस्तके अञ्जलिं कृत्वा जयेन विजयेन वर्धयति, वर्धयित्वा एवमवादीत्—भण स्वामिन्! किं दद्मः? किं प्रयच्छामः? केन वा ते अर्थः?

११५. अनेक गणनायक, दंडनायक, राजे, ईश्वर, कोटवाल, माडम्बिक, कौटुम्बिक इभ्य, श्रेष्ठी, सेनापति, सार्थवाह, दूत और संधिपालों के साथ, उनसे घिरे हुए केशी राजा ने उद्रायण राजा को प्रवर सिंहासन पर पूर्वाभिमुख बिठाया, बिठाकर एक सौ आठ स्वर्ण-कलश इस प्रकार जैसे जमालि (९/१८२) की वक्तव्यता यावत् महान् महान् निष्क्रमण अभिषेक से अभिषिक्त किया। अभिषिक्त कर दोनों हथेलियों से संपुट आकार वाली दस नखात्मक अंजलि को सिर के सम्मुख घुमाकर 'जय हो विजय हो' के द्वारा वर्धापित किया, वर्धापित कर इस प्रकार बोला—स्वामी! बताओ हम क्या दें? क्या वितरण करें? तुम्हें किस वस्तु का प्रयोजन है?

११६. तए णं से उद्दायणे राया केसिं रायं एवं वयासी—इच्छामि णं देवाणुप्पिया ! कुत्तियावणाओ रयहरणं च पडिग्गहं च आणियं, कासवगं च सद्दावियं—एवं जहा जमालिस्स, नवरं—पउमावती अग्गकेसे पडिच्छइ पियविप्पयोगदूसहा॥

ततः सः उद्रायणः राजा केशिनं राजानम् एवमवादीत्—इच्छामि देवानुप्रियाः! कुत्रिकापणात् रजोहरणं च प्रतिग्रहं च आनीतं, काश्यपकं च शब्दायितम्—एवं यथा जमालेः, नवरम्—पद्मावती अग्रकेशान् प्रतीच्छति प्रियविप्रयोग-दुस्सहा।

११६. उद्रायण राजा ने केशी राजा से इस प्रकार कहा—देवानुप्रिय! मैं कुत्रिकापण से रजोहरण और पात्र को लाना तथा नापित को बुलाना चाहता हूं—इस प्रकार जैसे जमालि की वक्तव्यता, इतना विशेष है—प्रिय का विप्रयोग दुःसह है, इस प्रकार कहती हुई पद्मावती ने अग्रकेशों को ग्रहण किया।

११७. तए णं से केसी राया दोच्चं पि उत्तरावक्कमणं सीहासणं रयावेति,

ततः सः केशी राजा द्विः अपि उत्तरापक्रमणं सिंहासनं रचयति,

११७. केशी राजा ने दूसरी बार उत्तराभिमुख सिंहासन की रचना कराई। रचना कराकर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ण्हावेत्ता उद्दायणं रायं सेया-पीतएहिं कलसेहिं ण्हावेति, ण्हावेत्ता सेसं जहा जमालिस्स जाव चउव्विहेणं अलंकारेणं अलंकारिए समाणे पडिपुण्णालंकारे सीहासणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठेत्ता सीयं अणुप्पदाहिणीकरेमाणे सीयं दुरुहइ, दुरुहित्ता सीहासणवरंसि पुरत्थाभिमुहे सण्णिसण्णे, तहेव अम्मधाती, नवरं पउमावती हंसलक्खणं पडसाडगं गहाय सीयं अणुप्पदाहिणीकरेमाणी सीयं दुरुहइ, दुरुहित्ता उद्दायणस्स रण्णो दाहिणे पासे भद्दासणवरंसि सण्णिसण्णा सेसं तं चेव जाव छत्तादीए तित्थगरातिसए पासइ, पासित्ता पुरिससहस्सवाहिणिं सीयं ठवेइ, पुरिससहस्सवाहिणीओ सीयाओ पच्चोरुभइ, पच्चोरुभित्ता जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता उत्तरपुरत्थिमं दिसीभागं अवक्कमइ, अवक्कमित्ता सयमेव आभरणमल्लालंकारं ओमुयइ॥

रचयित्वा उद्दायणं राजानं श्वेत-पीतकैः कलशैः स्नपयति, स्नपयित्वा शेषं यथा जमालेः यावत् चतुर्विधेनालंकारेण अलंकृतः सन् प्रतिपूर्णालंकारः सिंहासनात् अभ्युत्तिष्ठति, अभ्युत्थाय शिविकाम् अनुप्रदक्षिणीकुर्वाणः शिविकाम् आरोहति, आरुह्य सिंहासनवरे पौरस्त्याभिमुखे सन्निषन्नः, तथैव अम्बाधात्री, नवरं पद्मावती हंसलक्षणं पटशाटकं गृहीत्वा शिविकाम् अनुप्रदक्षिणीकुर्वाणः शिविकाम् आरोहति, आरुह्य उद्दायणस्य राज्ञः दक्षिणे पार्श्वे भद्रासनवरे सन्निषन्ना शेषं तत् चैव यावत् छत्रादीन् तीर्थंकरातिशयान् पश्यति, दृष्ट्वा पुरुषसहस्रवाहिनीं शिविकां स्थापयति, पुरुषसहस्रवाहिन्याः शिविकायाः प्रत्यवरोहति, प्रत्यवरुह्य यत्रैव श्रमणः भगवान् महावीरः तत्रैव उपागच्छति, उपागम्य श्रमणं भगवन्तं महावीरं त्रिः वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्यित्वा उत्तरपौरस्त्यं दिग्भागम् अपक्रामति, अपक्रम्य स्वयमेव आभरणमाल्यालंकारम् अवमुञ्चति।

राजा उद्दायण को श्वेत-पीत कलशों से स्नान कराया, करा कर शेष जमालि की भांति वक्तव्यता यावत् चतुर्विध अलंकारों से अलंकृत किया। वह प्रतिपूर्ण अलंकृत होकर सिंहासन से उठा, उठकर शिविका की अनुप्रदक्षिणा करता हुआ शिविका पर आरूढ हो गया। आरूढ होकर प्रवर सिंहासन पर पूर्वाभिमुख आसीन हुआ। वैसे ही धाय मां भद्रासन पर आसीन हुई। इतना विशेष है—पद्मावती हंस लक्षण वाला पटशाटक ग्रहण कर शिविका की अनुप्रदक्षिणा करती हुई शिविका पर आरूढ हो गई, आरूढ होकर वह उद्दायण राजा के दक्षिण पार्श्व में प्रवर भद्रासन पर आसीन हुई। शेष पूर्ववत् यावत् छत्र आदि तीर्थंकर के अतिशयों को देखा, देख कर हजार पुरुषों द्वारा वहन की जाने वाली शिविका को ठहराया। हजार पुरुषों द्वारा वहन की जाने वाली शिविका से नीचे उतरा, उतर कर जहां श्रमण भगवान् महावीर थे, वहां आया, वहां आकर श्रमण भगवान् महावीर को तीन बार वंदन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार कर उत्तर पूर्व दिशा (ईशान कोण) में गया। जाकर स्वयं आभरण, माल्य और अलंकार उतारे।

११८. तए णं सा पउमावती देवी हंसलक्खणेणं पडसाडएणं आभरणमल्लालंकारं पडिच्छइ, पडिच्छित्ता हारवारिधार-सिंदुवार-छिन्न-मुत्तावलिप्पगासाइं अंसूणि विणिम्मुयमाणी-विणिम्मुयमाणी उद्दायणं रायं एवं वयासी—जइयव्वं सामी! घडियव्वं सामी! परक्कमियव्वं सामी! अस्सिं च णं अट्ठे नो पमादेयव्वं त्ति कट्टु केसी राया पउमावती य समणं भगवं महावीरं वंदंति नमंसंति, वंदित्ता नमंसित्ता जामेव दिसं पाउब्भूया तामेव दिसं पडिगया॥

ततः सा पद्मावती देवी हंसलक्षणेन हंसशाटकेन आभरणमाल्यालंकारं प्रतीच्छति, प्रतीष्य हार-वारिधार-सिन्दुवार-छिन्न - मुक्तावलिप्रकाशानि अश्रूणि विनिर्मुञ्चती-विनिर्मुञ्चती उद्दायणं राजानम् एवम् अवादीत्—यतितव्यं स्वामिन्! घटितव्यं स्वामिन्! पराक्रमितव्यं स्वामिन्! अस्मिन् च अर्थे नो प्रमत्तव्यम् इति कृत्वा केशी राजा पद्मावती च श्रमणं भगवन्तं महावीरं वन्देते नमस्यतः, वन्दित्वा नमस्यित्वा यस्याः एव दिशः प्रादुर्भूताः तस्यामेव दिशि प्रतिगताः।

११८. पद्मावती देवी ने हंसलक्षण युक्त पटशाटक में आभरण, माल्य और अलंकार ग्रहण किए। ग्रहण कर हार, जल-धारा, सिन्दुवार (निर्गुण्डी) के फूल और टूटी हुई मोतियों की लड़ी के समान बार बार आंसू बहाती हुई उद्दायण राजा से इस प्रकार बोली— स्वामी! संयम में प्रयत्न करना। स्वामी! संयम में चेष्टा करना, स्वामी! संयम में पराक्रम करना, स्वामी! इस अर्थ में प्रमाद मत करना—यह कह कर केशीराजा और पद्मावती ने श्रमण भगवान महावीर को वंदन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार कर जिस दिशा से आए थे, उसी दिशा में लौट गए।

११९. तए णं से उद्दायणे राया सयमेव पंचमुट्ठियं लोयं करेइ सेसं जहा उसभदत्तस्स जाव सव्वदुक्खप्पहीणे॥

ततः सः उद्दायणः राजा स्वयमेव पञ्चमुष्टिकं लोचं करोति शेषं यथा ऋषभदत्तस्य यावत् सर्वदुःखप्रहीनः।

११९. उद्दायण राजा ने स्वयं ही पंचमुष्टि लोच किया। शेष ऋषभदत्त की भांति वक्तव्यता यावत् सब दुःखों को क्षीण कर दिया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१२०. तए णं तस्स अभीयिस्स कुमारस्स अण्णदा कदाइ पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि कुडुंबजागरियं जागरमाणस्स अयमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था—एवं खलु अहं उद्दायणस्स पुत्ते पभावतीए देवीए अत्तए, तए णं से उद्दायणे राया ममं अवहाय नियगं भाइणेज्जं केसिं कुमारं रज्जे ठावेत्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए—इमेणं एयारूवेणं महया अप्पत्तिएणं मणोमाणसिएणं दुक्खेणं अभिभूए समाणे अंतेउरपरियालसंपरिवुडे सभंडमत्तोवगरणमायाए वीतीभयाओ नयराओ निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे गामाणुगामं दूइज्जमाणे जेणेव चंपा नयरी, जेणेव कूणिए राया, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता कूणियं रायं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ। तत्थ वि णं से विउलभोगसमितिसमन्नागए यावि होत्था। तए णं से अभीयीकुमारे समणोवासए यावि होत्था—अभिगयजीवाजीवे जाव अहापरिग्गहिएहिं तवोकम्मेहिं अप्पाणं भावेमाणे विहरइ, उद्दायणम्मि रायरिसिम्मि समणुबद्धवेरे यावि होत्था॥

ततः तस्य अभीचेःकुमारस्य अन्यदा कदाचित् पूर्वरात्रापररात्रकालसमये कुटुम्ब-जागरिकां जाग्रतः अयमेतद्रूपः आध्यात्मिकः चिन्तितः प्रार्थितः मनोगतः संकल्पः समुदपादि—एवं खलु अहम् उद्रायणस्य पुत्रः प्रभावत्याः देव्याः आत्मजः, ततः सः उद्रायणः राजा माम् अपहाय निजकं भागिनेयं केशिनं कुमारं राज्ये स्थापयित्वा श्रमणस्य भगवतः महावीरस्य अन्तिकं मुण्डः भूत्वा अगारात् अनगारितां प्रव्रजितः—अनेन एतद्रूपेण महता अप्रीतिकेन मनोमानसिकेन दुःखेन अभिभूतः सन् अंतःपुरपरिवारसंपरिवृतः स्वभाण्डमात्रोपकरणमादाय वीतीभयाद् नगराद् निर्गच्छति, निर्गत्य पूर्वानुपूर्वीं चरन् ग्रामानुग्रामं द्रवन् यत्रैव चम्पा नगरी, यत्रैव कोणिकः राजा, तत्रैव उपागच्छति, उपागम्य कोणिकं राजानम् उपसंपद्य विहरति। तत्रापि सः विपुलभोगसमितिसमन्वागतः चापि अभवत्। ततः स अभीचीकुमारः श्रमणोपासकः चापि अभवत्—अभिगतजीवाजीवः यावत् यथापरिगृहीतैः तपःकर्मभिः आत्मानं भावयन् विहरति, उद्रायणे राजर्षौ समनुबद्धवैरः चापि अभवत्।

१२०. अभीचीकुमार ने किसी दिन पूर्वरात्र और अपररात्र काल समय में कुटुम्ब जागरिका की। जागरण करते हुए इस प्रकार का आध्यात्मिक, स्मृत्यात्मक, अभिलाषात्मक एवं मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ—मैं उद्रायण का पुत्र प्रभावती देवी का आत्मज हूं। उद्रायण राजा मुझे छोड़कर अपने भानजे केशीकुमार को राज्य में स्थापित कर श्रमण भगवान् महावीर के पास मुंड होकर अगार से अनगारिता में प्रव्रजित हो गए हैं—इस प्रकार के महान् अप्रीतिकर मनोमानसिक दुःख से अभिभूत होकर अपने अंतःपुर परिवार से संपरिवृत होकर, अपने भांड और उपकरण लेकर वीतीभय नगर से निकल गया, निकल कर क्रमानुसार विचरण और ग्रामानुग्राम घूमते हुए जहां चंपा नगरी थी, जहां कूणिक राजा था वहां आया, आकर कूणिक राजा की शरण में रहने लगा। वह वहां विपुल भोग समिति से समन्वागत था। वह अभीचीकुमार श्रमणोपासक भी था—जीव-अजीव को जानने वाला यावत् यथापरिगृहीत तपःकर्म के द्वारा अपने आपको भावित करते हुए विहार करने लगा। उसके मन में उद्रायण राजर्षि के साथ वैर का अनुबंध हो गया।

१२१. इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए निरयपरिसामंतेसु चोयट्ठिं असुरकुमारावाससयसहस्सा पण्णत्ता। तए णं से अभीयीकुमारे बहूइं वासाइं समणोवासगपरियागं पाउणइ, पाउणित्ता अद्धमासियाए संलेहणाए तीसं भत्ताइं अणसणाए छेएइ, छेएत्ता तस्स ठाणस्स अणालोइयपडिक्कंते कालमासे कालं किच्चा इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए निरयपरिसामंतेसु चोयट्ठीए आयावाअसुरकुमारावाससयसहस्सेसु अण्णयरंसि आयावाअसुरकुमारावासंसि आयावाअसुरकुमारदेवत्ताए उववण्णो। तत्थ णं अत्थेगतियाणं आयावगाणं असुरकुमाराणं देवाणं एगं पलिओवमं ठिई

अस्यां रत्नप्रभायां पृथिव्यां निरयपरिसामन्तेषु चतुष्षष्टिः असुरकुमारावासशतसहस्राणि प्रज्ञप्तानि। ततः सः अभीचीकुमारः बहूनि वर्षाणि श्रमणोपासकपर्यायं प्राप्नोति, प्राप्य अर्द्धमासिक्या संलेखनया त्रिंशत् भक्तानि अनशनेन छिनत्ति, छित्त्वा तस्य स्थानस्य अनालोचितप्रतिक्रान्तः कालमासे कालं कृत्वा अस्यां रत्नप्रभायां पृथिव्यां निरयपरिसामन्तेषु चतुष्षष्टिः आतापक-असुरकुमारावासशतसहस्रेषु अन्यतरे आतापक-असुरकुमारावासे आतापक-असुरकुमारदेवत्वेन उपपन्नः। तत्र अस्त्येककानाम् आतापकानाम् असुरकुमाराणाम् देवानाम् एकं पल्योपमं स्थितिः प्रज्ञप्ता, तत्र अभीचेः अपि

१२१. इस रत्नप्रभा पृथ्वी नरक के परिपार्श्व में चौसठ लाख असुरकुमार आवास प्रज्ञप्त हैं। इस अभीचीकुमार ने बहुत वर्षों तक श्रमणोपासक पर्याय का पालन किया। पालन कर अर्द्धमासिकी अनशन/संलेखना के द्वारा तीस भक्त का छेदन किया, छेदन कर उस स्थान की आलोचना प्रतिक्रमण किए बिना कालमास में मृत्यु को प्राप्त कर इस रत्नप्रभा पृथ्वी नरक के परिसामंत में चौसठ लाख असुरकुमारावासों में से किसी एक आतापक असुरकुमारावास में आतापक असुरकुमार देव के रूप में उपपन्न हुआ। वहां कुछ आतापक असुरकुमार देवों की स्थिति एक पल्योपम प्रज्ञप्त है। वहां अभीचीकुमार देव की एक पल्योपम स्थिति प्रज्ञप्त है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पण्णत्ता, तत्थ णं अभीयिस्स वि देवस्स एगं पलिओवमं ठिई पण्णत्ता॥

देवस्य एकं पल्योपमं स्थितिः प्रज्ञप्ता।

भाष्य

१. सूत्र ११०-१२१

प्रस्तुत सूत्र में उद्रायण के मानसिक द्वन्द्व और उत्तराधिकारी की नियुक्ति का एक रोमांचक प्रसंग वर्णित है। इस प्रसंग पर दो दृष्टियों से विचार करना आवश्यक है।

उद्रायण ने अपने पुत्र अभीचीकुमार के हित की चिंता की, उसे मूर्च्छा और संसार-भ्रमण से बचाने के लिए अपना उत्तराधिकार नहीं सौंपा। इस चिंतन में व्यवहार का अतिक्रमण स्पष्ट है। इस अतिक्रमण से अभीची को भयंकर मानसिक आघात लगा। उसका वर्णन १३/१२० सूत्र में किया गया है। उसका बाहरी परिणाम यह हुआ कि अभीची कुमार अपने देश को छोड़कर चंपा के अधिपति कूणिक की शरण में चला गया। आंतरिक परिणाम यह हुआ कि वह उद्रायण राजर्षि के प्रति प्रगाढ़ वैर से आक्रांत हो गया। इस वैरानुबंध का परिणाम अभीचीकुमार के हित में नहीं रहा। अभीचीकुमार आयुष्य पूरा कर असुरकुमार के आवास में उत्पन्न हुआ।

जयाचार्य ने अभीचीकुमार की द्वेष से होने वाली हानि का उल्लेख किया है किन्तु वह आयुष्य बंधकाल में सम्यग्दृष्टि रहा या मिथ्यादृष्टि हो गया, इसका स्पष्ट उल्लेख नहीं है।[1] जयाचार्य ने एक इंगित अवश्य दिया है–अभीची कुमार के मन में जो द्वेष था, उस प्रकार के द्वेष से जीव सम्यक्त्व और व्रत को गंवा देता है और कोई-कोई जीव अनंत संसारी भी हो जाता है।[2]

भगवती के तीसवें शतक के अनुसार सम्यग्दृष्टि जीव के केवल वैमानिक देव के आयुष्य का बंध होता है।[3] अभीची कुमार मृत्यु के उपरांत असुरकुमारावास में उत्पन्न हुआ। इस आधार पर क्या यह संभावना नहीं की जा सकती कि वह अपने वैरानुबंध के कारण सम्यग्दृष्टि से भी विरहित हो गया?

मनोमानसिक–मन की वह अवस्था, जिसमें आंतरिक वेदना होती है किन्तु बाहर में कोई विकार प्रदर्शित नहीं किया जाता। उस मानसिक दशा को मनोमानसिक कहा जाता है।[4]

आयावा–आतापक, यह असुरकुमार देवों की एक विशेष श्रेणी है। वृत्तिकार के अनुसार इस विषय में अन्य कोई जानकारी उपलब्ध नहीं है।[5]

१२२. से णं भंते! अभीयीदेवे ताओ देवलोगाओ आउक्खएणं भवक्खएणं ठिइक्खएणं अणंतरं उव्वट्टिता कहिं गच्छिहिति? कहिं उववज्जिहिति? गोयमा! महाविदेहे वासे सिज्झिहिति जाव सव्वदुक्खाणं अंतं काहिति॥

सः भदन्त! अभीचीदेवः तस्माद् देवलोकाद् आयुःक्षयेण भवक्षयेण स्थितिक्षयेण अनन्तरं उद्वर्त्य कुत्र गमिष्यति? कुत्र उपपत्स्यते?
गौतम! महाविदेहे वर्षे सेत्स्यति यावत् सर्वदुःखानाम् अन्तं करिष्यति।

१२२. भंते! वह अभीचीदेव उस देवलोक से आयु-क्षय, भव-क्षय और स्थिति-क्षय के अनंतर उद्वर्तन कर कहां जायेगा? कहां उपपन्न होगा?
गौतम! महाविदेह वास में सिद्ध होगा यावत् सब दुःखों का अंत करेगा।

१२३. सेवं भंते! सेवं भंते! त्ति॥

तदेवं भदन्त! तदेवं भदन्त! इति।

१२३. भंते! वह ऐसा ही है। भंते! वह ऐसा ही है।

---

१. भग. जो. ढा. २८७. गा. ८,९–
इण रीते श्रावक नां व्रत पालै, और दोषण तो सगला टालै रे।
पिण राय उदाई सूं अंतरंगा थेपो, ते तो दिन-दिन अधिक विशेषो रे॥
पनरै दिन रो संथारो आयो, जद पिण नहीं खमायो रे।
ते श्री जिनधर्म विराधी नैं मूओ, ते तो मरनैं असुर देव हूओ रै॥

२. भग. जो. ढा. २८७, गा. १७–
एहवा द्वेष सूं सम्यक्त व्रत खोवै, केइ अनंत-संसारी होवै रे।
इण रे कर्म थोड़ा तिणसूं ह्वैगो निकालो, नहिं तो रुलै अनंतो कालो रे॥

३. भ. ३०/१९,२२।

४. भ. वृ. १३/१२०–मनसो विकारो मानसिकं मनसि मानसिकं न बहिरुपलक्ष्यमाणविकारं यत्तन्मनोमानसिकं तेन।

५. 'आयाव' त्ति असुरकुमारविशेषाः, विशेषतस्तु नावगम्यत इति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सत्तमो उद्देसो : सातवां उद्देशक

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
भासा-पदं	भाषा-पदम्	भाषा पद
१२४. रायगिहे जाव एवं वयासी– आया भंते ! भासा ?अण्णा भासा ?	राजगृहं यावत् एवमवादीत्– आत्मा भदन्त! भाषा? अन्या भाषा?	१२४. राजगृह नगर यावत् गौतम ने इस प्रकार कहा–भंते ! भाषा आत्मा है? भाषा आत्मा से अन्य है?
गोयमा ! नो आया भासा, अण्णा भासा।	गौतम! नो आत्मा भाषा, अन्या भाषा।	गौतम ! भाषा आत्मा नहीं है, भाषा आत्मा से अन्य है।
रूविं भंते ! भासा ? अरूविं भासा ?	रूपिणी भदन्त! भाषा? अरूपिणी भाषा?	भंते ! भाषा रूपी है ? भाषा अरूपी है ?
गोयमा ! रूविं भासा, नो अरूविं भासा।	गौतम! रूपिणी भाषा, नो अरूपिणी भाषा।	गौतम! भाषा रूपी है। भाषा अरूपी नहीं है।
सचित्ता भंते ! भासा ? अचित्ता भासा ?	सचित्ता भदन्त! भाषा ? अचित्ता भाषा?	भंते! भाषा सचित्त है ? भाषा अचित्त है ?
गोयमा ! नो सचित्ता भासा, अचित्ता भासा।	गौतम! नो सचित्ता भाषा, अचित्ता भाषा।	गौतम ! भाषा सचित्त नहीं है, भाषा अचित्त है।
जीवा भंते ! भासा ? अजीवा भासा ?	जीवा भदन्त! भाषा ? अजीवा भाषा?	भंते! भाषा जीव है? भाषा अजीव है?
गोयमा ! नो जीवा भासा, अजीवा भासा।	गौतम! नो जीवा भाषा, अजीवा भाषा।	गौतम! भाषा जीव नहीं है, भाषा अजीव है।
जीवाणं भंते ! भासा ? अजीवाणं भासा ?	जीवानां भदन्त! भाषा? अजीवानां भाषा?	भंते ! जीवों के भाषा होती है ? अजीवों के भाषा होती है ?
गोयमा ! जीवाणं भासा, नो अजीवाणं भासा।	गौतम! जीवानां भाषा, नो अजीवानां भाषा।	गौतम ! जीवों के भाषा होती है, अजीवों के भाषा नहीं होती।
पुव्वि भंते ! भासा ? भासिज्जमाणी भासा ? भासासमयवीतिक्कंता भासा ?	पूर्वं भदन्त! भाषा? भाष्यमाणा भाषा? भाषासमयव्यतिक्रान्ता भाषा?	भंते! बोलने से पहले भाषा होती है ? बोलते समय भाषा होती है? बोलने का समय व्यतिक्रांत होने पर भाषा होती है?
गोयमा ! नो पुव्वि भासा, भासिज्जमाणी भासा, नो भासासमयवीतिक्कंता भासा।	गौतम! नो पूर्वं भाषा, भाष्यमाणा भाषा, नो भाषासमयव्यतिक्रान्ता भाषा।	गौतम! बोलने से पहले भाषा नहीं होती, बोलते समय भाषा होती है, बोलने का समय व्यतिक्रांत होने पर भाषा नहीं होती।
पुव्वि भंते ! भासा भिज्जति ? भासिज्जमाणी भासा भिज्जति ? भासासमयवीतिक्कंता भासा भिज्जति ?	पूर्वं भदन्त! भाषा भिद्यते? भाष्यमाणा भाषा भिद्यते ? भाषासमयव्यतिक्रान्ता भाषाभिद्यते ?	भंते ! बोलने से पहले भाषा का भेदन होता है ? बोलते समय भाषा का भेदन होता है ? बोलने का समय व्यतिक्रांत होने पर भाषा का भेदन होता है ?
गोयमा ! नो पुव्वि भासा भिज्जति, भासिज्जमाणी भासा भिज्जति, नो भासासमयवीतिक्कंता भासा भिज्जति॥	गौतम! नो पूर्वं भाषा भिद्यते, भाष्यमाणा भाषा भिद्यते, नो भाषासमयव्यतिक्रान्ता भाषा भिद्यते।	गौतम! बोलने से पहले भाषा का भेदन नहीं होता, बोलते समय भाषा का भेदन होता है, बोलने का समय व्यतिक्रांत होने पर भाषा का भेदन नहीं होता।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भाष्य

१. सूत्र १२४

प्रस्तुत प्रकरण में भाषा पर विमर्श किया गया है। विमर्श के पांच बिन्दु हैं–

पहला बिन्दु–भाषा आत्मा है अथवा आत्मा से भिन्न है?

इसका उत्तर है–भाषा आत्मा नहीं है। आत्मा चैतन्यमय है। भाषा पौद्गलिक है। दोनों में स्वरूप भेद है।

दूसरा बिन्दु–भाषा रूपी है अथवा अरूपी?

इसका उत्तर है–भाषा रूपी है। वह पौद्गलिक है इसलिए वह रूपी अथवा मूर्त है। वृत्तिकार के अनुसार भाषा के द्वारा कान में अनुग्रह अथवा उपघात होता है इसलिए उसका रूपित्व सिद्ध है। यदि भाषा रूपी है तो वह चक्षु के द्वारा उपलब्ध क्यों नहीं होती? इसका उत्तर बहुत स्पष्ट है–जो चक्षु के द्वारा ग्राह्य नहीं होता, वह अरूपी होता है, यह नियम नहीं है। परमाणु, हवा, पिशाच आदि रूपी हैं फिर भी वे चक्षु के द्वारा ग्राह्य नहीं हैं।[1]

तीसरा बिन्दु–भाषा सचित्त है अथवा अचित्त?

इसका उत्तर है–पौद्गलिक पदार्थ जीव-प्रदेशों की व्याप्ति के कारण सचित्त होता है, जैसे जीवच्छरीर में चेतना व्याप्त है इसलिए वह सचित्त है। भाषा का स्वरूप इससे भिन्न है। वह जीव के द्वारा निःसृष्ट पुद्गलों की संहति है इसलिए वह सचित्त नहीं है।

चौथा बिन्दु–भाषा जीव है अथवा अजीव?

इसका उत्तर है–भाषा जीव नहीं है। जीव श्वास-उच्छ्वास आदि प्राण वाला होता है। भाषा के श्वास-उच्छ्वास आदि प्राण नहीं होते।

पांचवां बिन्दु–भाषा जीवों के होती है अथवा अजीवों के?

इसका उत्तर है–भाषा वर्णात्मक होती है। वर्ण का उच्चारण तालु आदि आठ स्थानों से होता है इसलिए यह कहा जा सकता है–भाषा जीवों के होती है। यद्यपि अजीव के योग से शब्द उत्पन्न होता है फिर भी वह भाषा नहीं है।

शब्द को भाषा मानने के दो आधार हैं–

- भाषा पर्याप्ति जन्यता
- भाषा वर्गणा के पुद्गलों का परिणमन।

उसी शब्द को भाषा कहा जा सकता है, जिसका भाषा पर्याप्ति के द्वारा के शब्द रूप में परिणमन होता है, जो भाषा वर्गणा के पुद्गलों की संहति होता है।

'पुव्विं भंते भासा'.....इस सूत्र में भाषा और अभाषा का अंतर बतलाया गया है। भाषा वर्गणा के पुद्गल पूर्ण लोक में व्याप्त हैं। उन्हें भाषा नहीं कहा जाता। वक्ता भाषा वर्गणा के पुद्गलों का ग्रहण करता है फिर उन्हें शब्द रूप में परिणत करता है। ये दोनों अवस्थाएं भी भाषा की कोटि में नहीं आती। शब्द रूप में परिणत पुद्गलों का विसर्जन होता है, उस निसर्ग-काल का नाम है भाषा। तात्पर्य की दृष्टि से विचार करें तो व्यंजनाक्षर अथवा उच्चारण को भाषा के रूप में स्वीकृत किया गया है। जब भाषा द्रव्य के पुद्गल भाषा-रूप परिणमन को छोड़ देते हैं, उस समय के लिए **'भाषा समय वीतिक्कंता'** का प्रयोग किया गया है।[2]

इस संदर्भ में द्रष्टव्य है भगवई १/४४२-४४३ का भाष्य।

शब्द के विषय में भारतीय दर्शनों में व्यापक चिंतन हुआ है। नैयायिक शब्द को अनित्य मानते हैं।[3] मीमांसक दर्शन के अनुसार शब्द नित्य है।[4] शब्दाद्वैत का सिद्धांत है–शब्द ब्रह्म है।[5] भाषा और अभाषा विषय के साथ उक्त सिद्धांतों का तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है। भाषा और अभाषा का सिद्धांत शब्द की अनित्यता का सिद्धांत है।

वक्ता दो प्रकार के होते हैं–मंद प्रयत्न वाला और तीव्र प्रयत्न वाला।

मंद प्रयत्न वाला वक्ता भाषा वर्गणा के पुद्गलों का अभिन्न रूप में ग्रहण करता है और अभिन्न रूप में ही उनका विसर्जन करता है। प्रज्ञापना में भेदन और अभेदन–दोनों प्रकार बतलाए गए हैं।[6]

प्रस्तुत प्रकरण में केवल भेदन का ही उल्लेख है।

प्रज्ञापना के अनुसार मंद प्रयत्न वाले वक्ता द्वारा निःसृष्ट भाषा वर्गणा के पुद्गल-स्कंधों का संख्येय योजन के बाद भेदन होता है। अभयदेव सूरि ने 'भासिज्जमाणी भासा' इसकी महत्त्वपूर्ण व्याख्या की है। उनके अनुसार जिस अवस्था में शब्द परिणाम विद्यमान है, उस अवस्था तक वह भाष्यमाण है।[7]

१२५. कतिविहा णं भंते ! भासा पण्णत्ता ? गोयमा ! चउव्विहा भासा पण्णत्ता, तं जहा–सच्चा, मोसा, सच्चामोसा असच्चामोसा॥

कतिविधाः भदन्त! भाषाः प्रज्ञप्ताः? गौतम! चतुर्विधाः भाषाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–सत्या, मृषा, सत्यामृषा, असत्यामृषा।

१२५. भंते ! भाषा के कितने प्रकार प्रज्ञप्त हैं ? गौतम ! भाषा के चार प्रकार प्रज्ञप्त हैं, जैसे–सत्या, मृषा, सत्यामृषा, असत्यामृषा।

१. भ. वृ. १३/१२४।

२. वही, – भाषासमयव्यतिक्रांता–भाषासमयो–निसृज्यमानावस्थातो यावद्–भाषापरिणामसमयस्तं व्यतिक्रांता या सा तथा भाषा भवति।

३. न्याय सूत्र २/२/१३-३८।

४. भारतीय दर्शन परिचय, पृ. ८०।

५. उत्तररामचरित २/७/२०–शब्दब्रह्मणस्तादृशं विवर्त्तनितिहासं।

६. प्रज्ञा. ११/७२–जीवेणं भंते! जाइं दव्वाइं भासत्ताए गहियाइं णिसिरति ताइं किं भिण्णाइं णिसिरति? अभिण्णाइं णिसिरति? गोयमा! भिण्णाइं णिसिरति अभिण्णाइं वि णिसिरति। जाइं भिण्णाइं णिसिरति ताइं अणंतगुणपरिवुड्ढीए परिवड्ढमाणाइं परिवड्ढमाणाइं लोयंतं फुसंति। जाइं अभिण्णाइं णिसिरति ताइं असंखेज्जाओ ओगाहणवग्गणाओ गंता भेयमावज्जंति, संखेज्जाइं जोयणाइं गंता विद्धंसमागच्छंति।

७. भ. वृ. १३/१२४–अत्र च यस्यामवस्थायां शब्द परिणामस्तस्यां भाष्यमाणताऽवसेयेति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मण-पदं	मनः पदम्	मन पद
१२६. आया भंते ! मणे ? अण्णे मणे ?	आत्मा भदन्त! मनः? अन्यत् मनः?	१२६. भंते! मन आत्मा है? मन आत्मा से अन्य है?
गोयमा ! नो आया मणे, अण्णे मणे।	गौतम! नो आत्मा मनः,अन्यत् मनः।	गौतम! मन आत्मा नहीं है। मन आत्मा से अन्य है।
रूविं भंते ! मणे ? अरूविं मणे ?	रूपि भदन्त! मनः? अरूपि मनः?	भंते! मन रूपी है? मन अरूपी है ?
गोयमा ! रूविं मणे, नो अरूविं मणे।	गौतम! रूपि मनः, नो अरूपि मनः।	गौतम! मन रूपी है, मन अरूपी नहीं है।
सचित्ते भंते ! मणे ? अचित्ते मणे ?	सचित्तं भदन्त! मनः? अचित्तं मनः?	भंते! मन सचित्त है? मन अचित्त है?
गोयमा ! नो सचित्ते मणे, अचित्ते मणे।	गौतम! नो सचित्तं मनः, अचित्तं मनः।	गौतम! मन सचित्त नहीं है, मन अचित्त है।
जीवे भंते ! मणे ? अजीवे मणे ?	जीवं भदन्त! मनः ? अजीवं मनः ?	भंते! मन जीव है? मन अजीव है?
गोयमा ! नो जीवे मणे, अजीवे मणे॥	गौतम! नो जीवं मनः, अजीवं मनः।	गौतम! मन जीव नहीं है। मन अजीव है।
जीवाणं भंते ! मणे ? अजीवाणं मणे ?	जीवानां भदन्त! मनः ? अजीवानां मनः ?	भंते! मन जीवों के होता है? मन अजीवों के होता है?
गोयमा ! जीवाणं मणे, नो अजीवाणं मणे।	गौतम! जीवानां मनः, नो अजीवानां मनः।	गौतम! जीवों के मन होता है, अजीवों के मन नही होता।
पुव्वि भंते ! मणे ? मणिज्जमाणे मणे ? मणसमयवीतिक्कंते मणे ?	पूर्वं भदन्त! मनः? मन्यमानं मनः, मनःसमयव्यतिक्रान्तं मनः ?	भंते! पहले मन होता है? मनन के समय मन होता है? मनन का समय व्यतिक्रांत होने पर मन होता है?
गोयमा ! नो पुव्वि मणे, मणिज्जमाणे मणे, नो मणसमयवीतिक्कंते मणे।	गौतम! नो पूर्वं मनः, मन्यमानं मनः, नो मनःसमयव्यतिक्रान्तं मनः।	गौतम! पहले मन नहीं होता, मनन के समय मन होता है , मनन का समय व्यतिक्रांत होने पर मन नहीं होता।
पुव्वि भंते ! मणे भिज्जति, मणिज्जमाणे मणे भिज्जति, मणसमयवीतिक्कंते मणे भिज्जति?	पूर्वं भदन्त! मनः भिद्यते? मन्यमानं मनः भिद्यते? मनःसमयव्यतिक्रान्तं मनः भिद्यते?	भंते! पहले मन का भेदन होता है? मनन के समय मन का भेदन होता है? मनन का समय व्यतिक्रांत होने पर मन का भेदन होता है?
गोयमा ! नो पुव्वि मणे भिज्जति, मणिज्जमाणे मणे भिज्जति, नो मणसमयवीतिक्कंते मणे भिज्जति॥	गौतम! नो पूर्वं मनः भिद्यते, मन्यमानं मनः भिद्यते, नो मनःसमयव्यतिक्रान्तं मनः भिद्यते।	गौतम! पहले मन का भेदन नहीं होता, मनन के समय मन का भेदन होता है, मनन का समय व्यतिक्रांत होने पर मन का भेदन नहीं होता।

भाष्य

१. सूत्र १२६

जैन दर्शन के अनुसार मन एक पौद्गलिक संरचना है। जयाचार्य ने इस पर विशद विवेचन किया है।[1] इस प्रकरण में उसके विषय में पांच बिन्दुओं से विमर्श किया गया है।

- मन अचेतन है इसलिए वह आत्मा नहीं है।
- मन पौद्गलिक है इसलिए वह अरूपी नहीं है।
- मनोवर्गणा के पुद्गलों का निसर्ग काल मन है इसलिए वह सचित्त नहीं है।
- मन जीव नहीं है।
- मन जीव के होता है।

मनः पर्याप्ति के द्वारा मनन में उपकारी मनोवर्गणा के पुद्गलों का ग्रहण किया जाता है। यह मन की पूर्वावस्था है। उन पुद्गलों के निसर्गकाल में मन होता है। मनन में प्रयुक्त पुद्गल मनन अवस्था को छोड़ परिवर्तित हो जाते हैं, यह मन की व्यतिक्रांत अवस्था है, उत्तर अवस्था है।

मनन के समयं मनोवर्गणा के पुद्गलों का भेदन होता है। इस विषय की विशद जानकारी वृत्ति में नहीं है। मनन के भेद के आधार पर इसे समझा जा सकता है। तीव्र प्रयत्न वाला मननकर्ता मनन काल में ही मन के पुद्गल द्रव्यों का भेदन कर देता है। मंद प्रयत्न वाला मननकर्ता निसर्ग काल में मनोवर्गणा के पुद्गलों का भेदन नहीं करता, निसर्ग काल के पश्चात् उनका भेदन होता है।

---

१. भग. जो. ढा. २८८, गा. ३०-३६।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१२७. कतिविहे णं भंते ! मणे पण्णत्ते ?
गोयमा ! चउव्विहे मणे पण्णत्ते, तं जहा–सच्चे, मोसे, सच्चामोसे, असच्चामोसे॥

कतिविधं भदन्त! मनः प्रज्ञप्तम्?
गौतम! चतुर्विधं मनः प्रज्ञप्तम्? तद्यथा–सत्यं, मृषा, सत्यामृषम्, असत्यामृषम्।

१२७. भंते! मन के कितने प्रकार प्रज्ञप्त हैं?
गौतम! मन के चार प्रकार प्रज्ञप्त हैं, जैसे–सत्य, मृष, सत्यामृष, असत्यामृष।

काय-पदं

१२८. आया भंते ! काये ? अण्णे काये ?

गोयमा ! आया वि काये, अण्णे वि काये।
रूविं भंते ! काये ? अरूविं काये ?
गोयमा ! रूविं वि काये, अरूविं वि काये।
सचित्ते भंते ! काये ? अचित्ते काये ?
गोयमा ! सचित्ते वि काये, अचित्ते वि काये।
जीवे भंते ! काये ? अजीवे काये ?
गोयमा ! जीवे वि काये, अजीवे वि काये।
जीवाणं भंते ! काये ? अजीवाणं काये ?

गोयमा ! जीवाण वि काये, अजीवाण वि काये।
पुव्विं भंते ! काये ? कायिज्जमाणे काये ? कायसमयवीतिक्कंते काये ?

गोयमा ! पुव्विं वि काये, कायिज्जमाणे वि काये, कायसमयवीतिक्कंते वि काये।

पुव्विं भंते ! काये भिज्जति ? कायिज्जमाणे काये भिज्जति ? कायसमयवीतिक्कंते काये भिज्जति ?

गोयमा ! पुव्विं वि काये भिज्जति, कायिज्जमाणे वि काये भिज्जति, कायसमयवितिक्कंते वि काये भिज्जति॥

काय-पदम्

आत्मा भदन्त! कायः ? अन्यः कायः ?

गौतम! आत्मा अपि कायः, अन्यः अपि कायः।
रूपि भदन्त! कायः अरूपि कायः ?
गौतम! रूपि अपि कायः, अरूपि अपि कायः।
सचित्तः भदन्त! कायः ? अचित्तः कायः ?
गौतम! सचित्तः अपि कायः, अचित्तः अपि कायः।
जीवः भदन्त! कायः ? अजीवः कायः ?
गौतम! जीवः अपि कायः, अजीवः अपि कायः।
जीवानां भदन्त! कायः ? अजीवानां कायः ?

गौतम! जीवानाम् अपि कायः, अजीवानाम् अपि कायः।
पूर्वं भदन्त कायः ? चीयमानः कायः ? कायसमयव्यतिक्रान्तः कायः ?

गौतम! पूर्वम् अपि कायः, चीयमानः अपि कायः, कायसमयव्यतिक्रांतः अपि कायः।
पूर्वं भदन्त! कायः भिद्यते ? चीयमानः कायः भिद्यते ? कायसमयव्यतिक्रांतः कायः भिद्यते ?

गौतम! पूर्वमपि कायः भिद्यते, चीयमानः अपि कायः भिद्यते, कायसमय-व्यतिक्रांतः अपि कायः भिद्यते।

काय-पद

१२८. भंते! काय आत्मा है? काय आत्मा से अन्य है?
गौतम! काय आत्मा भी है, काय आत्मा से अन्य भी है।
भंते! काय रूपी है? काय अरूपी है?
गौतम! काय रूपी भी है, काय अरूपी भी है।
भंते! काय सचित्त है? काय अचित्त है?
गौतम! काय सचित्त भी है, काय अचित्त भी है।
भंते! काय जीव है? काय अजीव है?
गौतम! काय जीव भी है, काय अजीव भी है।
भंते! काय जीवों के होता है? काय अजीवों के होता है?
गौतम! काय जीवों के भी होता है, काय अजीवों के भी होता है।
भंते! पहले काय होता है? चीयमान अवस्था में काय होता है? काय का समय व्यतिक्रांत होने पर काय होता है?
गौतम! पहले भी काय होता है, चीयमान अवस्था में भी काय होता है, काय का समय व्यतिक्रांत होने पर भी काय होता है।
भंते! पहले काय का भेदन होता है? चीयमान अवस्था में काय का भेदन होता है? काय का समय व्यतिक्रांत होने पर काय का भेदन होता है?
गौतम! पहले भी काय का भेदन होता है, चीयमान अवस्था में भी काय का भेदन होता है, काय का समय व्यतिक्रांत होने पर भी काय का भेदन होता है।

भाष्य

१. सूत्र १२७-१२८

काय के विमर्श के पांच बिन्दु हैं–

पहला बिन्दु–काय आत्मा है अथवा आत्मा से भिन्न है?

इसका उत्तर है–शरीर और आत्मा में भेदाभेद है। आत्मा शरीर से सर्वथा भिन्न नहीं है इसलिए शरीर आत्मा भी है। वह शरीर से सर्वथा अभिन्न नहीं है इसलिए वह शरीर से भिन्न भी है।

आत्मा शरीर में रहती है। उसके द्वारा अपनी प्रवृत्तियों का संचालन करती है। कर्म का बंध शरीर के माध्यम से होता है। शरीर ही कर्म वर्गणा के पुद्गलों को ग्रहण करता है और वही उसका फल भोग करता है।

शरीर के साथ आत्मा का गहरा संबंध है। वृत्तिकार ने उसके लिए तीन दृष्टांत प्रस्तुत किए हैं–जैसे क्षीर और नीर, अग्नि और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लौह पिण्ड, स्वर्ण और उपल।[1] इसलिए शरीर का स्पर्श करने पर आत्मा का संवेदन होता है और इसीलिए शरीर के द्वारा किए हुए कर्म का आत्मा भवान्तर में भी वेदन करती है। अत्यंत भेद मानने पर अकृत कर्म के भोग की दोषापत्ति होती है।

आत्मा और शरीर का अत्यंत अभेद मानने पर शरीरांश का छेदन करने पर आत्मांश का छेदन करने की दोषापत्ति होती है। शरीर को जलाने पर आत्मा भी जल जाती है। इस प्रकार पुनर्जन्म का अभाव सिद्ध हो जाता है इसलिए आत्मा शरीर से कथञ्चित् भिन्न भी है।

वृत्तिकार ने काय के विषय में एक मतान्तर का उल्लेख किया है। मतान्तर के अनुसार यहां काय शब्द का प्रयोग कार्मण शरीर के अर्थ में किया गया है। कार्मण शरीर और संसारी आत्मा का परस्पर निश्चित संबंध है। इसका तात्पर्य है–कार्मण शरीर की अपेक्षा आत्मा शरीर से अभिन्न है। औदारिक अथवा स्थूल शरीर की अपेक्षा आत्मा शरीर से भिन्न है।[2]

जयाचार्य ने शरीर को आत्मा मानने का विश्लेषण सापेक्ष दृष्टि के आधार पर किया है। उनके अनुसार जैसे जीव को गुरुलघु कहा गया है, वह सापेक्ष दृष्टि का निरूपण है। वास्तव में जीव अगुरुलघु होता है किन्तु औदारिक आदि प्रथम चार शरीरों की अपेक्षा जीव को गुरुलघु कहा गया है। यह प्रतिपादन जीव और शरीर का कथञ्चित् अभेदोपचार करके किया गया है। उसी प्रकार यहां शरीर को आत्मा भी सापेक्ष दृष्टि से बतलाया गया है?[3]

दूसरा बिन्दु–काय रूपी है अथवा अरूपी?

शरीर पौद्गलिक है इसलिए वह रूपी है। वह आत्मा से कथंचित् अभिन्न है, इस अपेक्षा से वह अरूपी भी है। अभयदेवसूरि ने अरूपी मानने का हेतु यह बतलाया है–कार्मण शरीर अतिसूक्ष्म है[4] अतः रूपी के लिए भी अरूपी की विवक्षा की गई है।

द्रष्टव्य भगवती जोड़ ढाल २८८ गाथा ५६–५७ का वार्तिक।

तीसरा बिन्दु–काय सचित्त है अथवा अचित्त?

जीवच्छरीर चैतन्य युक्त होने के कारण सचित्त है। मृत शरीर चैतन्य वियुक्त होने के कारण अचित्त है।

चौथा बिन्दु–काय जीव है अथवा अजीव?

इस प्रश्न का उत्तर है–शरीर उच्छ्वास आदि प्राण से युक्त है इसलिए वह जीव है। मृत शरीर अजीव है।[5]

अभयदेवसूरि के अनुसार कार्मण शरीर अजीव है। उसमें उच्छ्वास आदि नहीं होते।[6]

पांचवां बिन्दु–काय जीवों के होता है अथवा अजीवों के?

इस प्रश्न का उत्तर है–जीवों के काय–शरीर होता है। अजीवों के भी शरीराकार होता है। जैसे मूर्ति शरीराकार वाली होती है।

भाषा और मन के विषय में वर्तमान का नियम है–भाष्यमाण भाषा है और मन्यमान मन। काय का नियम त्रैकालिक है। भाषा और मन तात्कालिक होते हैं–जिस समय बोला जाता है, उस समय भाषा होती है। जिस समय मनन किया जाता है, उस समय मन होता है। शरीर चिरस्थायी और दीर्घकालिक है। काय का एक अर्थ है चय। जिस समय वह चीयमान है, उस समय भी काय है। उससे पूर्व भी उसका चय होता रहा है और भविष्य में भी उसका चय होता रहेगा। इस अपेक्षा से उसका अस्तित्व त्रैकालिक है।

अभयदेवसूरि ने 'पुव्विं काये' इसकी व्याख्या मेंढक के उदाहरण से की है। मेंढक का मृत शरीर जीव का संबंध होने से पहले काय है। जीवच्छरीर जीव के द्वारा चीयमान काय है। मृत शरीर काय समय व्यतिक्रांत का उदाहरण है। मृत्यु के पश्चात् वह चीयमान नहीं होता।[7]

जयाचार्य ने 'पुव्विं वि काये' की व्याख्या पोट्ट परिहार और गर्भ की चौबीस वर्ष की स्थिति के आधार पर की हैं।[8] फूल के जीव मरकर तिल-संकलिका में सात तिल के रूप में पैदा हुए। उनके लिए तिल का पौधा पूर्ववर्ती काय है। उन जीवों ने अपने प्रयत्न से नए काय की रचना नहीं की।[9] एक जीव बारह वर्ष तक गर्भ में रहा, वह वहां से मरकर उसी गर्भ में फिर से पैदा हो गया। उसका शरीर पूर्ववर्ती काय है।[10]

काय के पुद्गलों का भेदन त्रैकालिक है। काय चिरस्थायी है। उसमें चयापचय की क्रिया होती रहती है। श्रमयुक्त अवस्था के समय कायवर्गणा के जिन पुद्गलों का निसर्ग होता है, उनका भेदन काय से मुक्त होने के उत्तर काल में होता है। कठोर श्रम की अवस्था में मुक्त पुद्गलों का भेदन वर्तमान क्षण में होता है।

---

१. भ. वृ. १३/१२८।
२. वही, १३/१२८।
३. भग. जो. ढा. २८८, गा. ५२-५४–
खंधक नैं अधिकार, गुरु लघु जीव भणी कह्यो।
ते धुर शरीर च्यार, तेह सहित जंतू लियो॥
तेम इहां कहिवाय, काया जीव सहीत ते।
आतम कहियै ताय, नय ववहारे करी॥
काल वर्ण अवलोय, भमर कह्यो भगवंत जिम।
नय ववहारे जोय, पंच वर्ण निश्चै नथे॥
४. भ. वृ. १३/१२८।
५. भग. जो. ढा. २८८, गा. ६२।
६. भ. वृ. १३/१२८।
७. वही, १३/१२८।
८. भग. जो. ढा. २८८, गा. ६६-७४–
होस्यै जीव संबंध जिम मृत दुर्धर तनु तणैं।
तेहनीं परै प्रबंध, एह वचन लोकीक नों॥
प्रथम जीव थी काय, मूंआ डेडका नों तनु।
लोक कहै ते मांय, जंतू आवणहार छै॥
वनस्पति रे मांही, कह्यो पोटपरिहार प्रभु।
फूल जीव मर ताहि, हुस्यै सप्त तिल सूंघणी॥
वर्ष चउवीस विचार, गर्भ विषे काया रहै।
रही तिहां वर्ष बार, तेहिज तथा अन्य ऊपजै॥
ते माटै ए वाय, जीव संबंधज काल थी।
पहिलां कहियै काय, जीव पछै तिहां ऊपजै॥
काइज्जमाणे काय, जीव जिको काया प्रतै।
चिणवा लाग्यो ताय, गर्भ अवस्था काय पिण॥
९. भ. १५/७२-७३।
१०. भ. २/८३-८४।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१२९. कतिविहे णं भंते ! काये पण्णत्ते ?
गोयमा ! सत्तविहे काये पण्णत्ते, तं जहा—ओरालिए, ओरालियमीसए, वेउव्विए, वेउव्वियमीसए, आहारए, आहारगमीसए, कम्मए॥

कतिविधं भदन्त! कायः प्रज्ञप्तम्?
गौतम! सप्तविधः कायः प्रज्ञप्तम्, तद्यथा– औदारिकं, औदारिकमिश्रकं, वैक्रियम्, वैक्रियमिश्रकं, आहारकं, आहारकमिश्रकं, कर्मकम्।

१२९. भंते! काय के कितने प्रकार प्रज्ञप्त हैं?
गौतम! काय के सात प्रकार प्रज्ञप्त हैं, जैसे–औदारिक, औदारिकमिश्र, वैक्रिय, वैक्रियमिश्र, आहारक, आहारकमिश्र, कार्मण।

मरण-पदं

१३०. कतिविहे णं भंते ! मरणे पण्णत्ते ?
गोयमा ! पंचविहे मरणे पण्णत्ते, तं जहा—आवीचियमरणे, ओहिमरणे, आतियंतियमरणे, बालमरणे, पंडियमरणे॥

मरण-पदम्

कतिविधं भदन्त! मरणं प्रज्ञप्तम्?
गौतम! पञ्चविधं मरणं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा–आवीचिकमरणम्, अवधिमरणम्, आत्यन्तिकमरणम्, बालमरणम्, पण्डितमरणम्।

मरण-पद

१३०. भंते! मरण के कितने प्रकार प्रज्ञप्त हैं?
गौतम! मरण के पांच प्रकार प्रज्ञप्त है, जैसे–आवीचि मरण, अवधि मरण, आत्यंतिक मरण, बाल मरण, पंडित मरण।

१३१. आवीचियमरणे णं भंते ! कतिविहे पण्णत्ते ?
गोयमा ! पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा—दव्वावीचियमरणे, खेत्तावीचियमरणे, कालावीचियमरणे, भवावीचियमरणे, भावावीचियमरणे॥

आवीचिकमरणं भदन्त! कतिविधं प्रज्ञप्तम्?
गौतम! पञ्चविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा–द्रव्यावीचिकमरणम्, क्षेत्रावीचिकमरणम्, कालावीचिकमरणम्, भवावीचिकमरणम्, भावावीचिकमरणम्।

१३१. भंते! आवीचि मरण कितने प्रकार का प्रज्ञप्त है?
गौतम! पांच प्रकार का प्रज्ञप्त है, जैसे द्रव्य आवीचि मरण, क्षेत्र आवीचि मरण, काल आवीचि मरण, भव आवीचि मरण, भाव आवीचि मरण।

१३२. दव्वावीचियमरणे णं भंते ! कतिविहे पण्णत्ते ?
गोयमा ! चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा—नेरइयदव्वावीचियमरणे, तिरिक्खजोणियदव्वावीचियमरणे, मणुस्सदव्वावीचियमरणे, देवदव्वावीचियमरणे॥

द्रव्यावीचिकमरणं भदन्त! कतिविधं प्रज्ञप्तम्?
गौतम! चतुर्विधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा–नैरयिकद्रव्यावीचिकमरणम्, तिर्यग्योनिकद्रव्यावीचिकमरणम्, मनुष्यद्रव्यावीचिकमरणम्, देवद्रव्यावीचिकमरणम्।

१३२. भंते! द्रव्य आवीचि मरण कितने प्रकार का प्रज्ञप्त है?
गौतम! चार प्रकार का प्रज्ञप्त है, जैसे–नैरयिक द्रव्य आवीचि मरण, तिर्यक् योनिक द्रव्य आवीचि मरण, मनुष्य द्रव्य आवीचि मरण, देव द्रव्य आवीचि मरण।

१३३. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—नेरइयदव्वावीचियमरणे - नेरइयदव्वावीचियमरणे ?
गोयमा ! जण्णं नेरइया नेरइए दव्वे वट्टमाणा जाइं दव्वाइं नेरइयाउयत्ताए गहियाइं बद्धाइं पुट्ठाइं कडाइं पट्ठवियाइं निविट्ठाइं अभिनिविट्ठाइं अभिसमण्णागयाइं भवंति ताइं दव्वाइं आवीचिमणुसमयं निरंतरं मरंति त्ति कट्टु। से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ—नेरइयदव्वावीचियमरणे, एवं जाव देवदव्वावीचियमरणे॥

तत् केनार्थेन भदन्त! एवमुच्यते–नैरयिकद्रव्यावीचिकमरणं - नैरयिकद्रव्यावीचिकमरणम्?
गौतम! यत् नैरयिकाः नैरयिके द्रव्ये वर्त्तमानाः यानि द्रव्याणि नैरयिकायुष्कतया गृहीतानि स्पृष्टानि कृतानि प्रस्थापितानि निर्विष्टानि अभिनिर्विष्टानि अभिसमन्वागतानि भवन्ति तानि द्रव्याणि आवीचिमनुसमयं निरन्तरं म्रियन्ते इति कृत्वा।
तत् तेनार्थेन गौतम! एवमुच्यते–नैरयिकद्रव्यावीचिमरणम्, एवं यावत् देवद्रव्यावीचिमरणम्।

१३३. भंते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है–नैरयिक द्रव्य आवीचि मरण नैरयिक द्रव्य आवीचि मरण है?
गौतम! क्योंकि नैरयिक नैरयिक द्रव्य में वर्तमान जो द्रव्य नैरयिक आयुष्य के रूप में गृहीत, बद्ध, स्पृष्ट, कृत, प्रस्थापित, निविष्ट, अभिनिविष्ट और अभिसमन्वागत होते हैं, वे द्रव्य तरंग की भांति प्रतिक्षण निरंतर विच्युत होते रहते हैं। इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है–गौतम! नैरयिक द्रव्य आवीचि मरण, इस प्रकार यावत् देव द्रव्य आवीचि मरण है।

१३४. खेत्तावीचियमरणे णं भंते ! कतिविहे पण्णत्ते ?

क्षेत्रावीचिकमरणं भदन्त! कतिविधं प्रज्ञप्तम्?

१३४. भंते! क्षेत्र आवीचि मरण कितने प्रकार का प्रज्ञप्त है?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा ! चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा– नेरइयखेत्तावीचियमरणे जाव देवखेत्तावीचियमरणे॥

गौतम! चतुर्विधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा– नैरयिकक्षेत्रावीचिकमरणम् यावत् देवक्षेत्रावीचिकमरणम्।

गौतम! चार प्रकार का प्रज्ञप्त है, जैसे– नैरयिक-क्षेत्र आवीचि मरण यावत् देव-क्षेत्र आवीचिमरण।

१३५. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ– नेरइयखेत्तावीचियमरणे - नेरइयखेत्तावीचियमरणे ?
गोयमा ! जण्णं नेरइया नेरइयखेत्ते वट्टमाणा जाइं दव्वाइं नेरइयाउयत्ताए गहियाइं एवं जहेव दव्वावीचियमरणे तहेव खेत्तावीचियमरणे वि। एवं जाव भावावीचियमरणे॥

तत् केनार्थेन भदन्त! एवमुच्यते– नैरयिकक्षेत्रावीचिकमरणं-नैरयिकक्षेत्रावीचिकमरणम्?
गौतम! यत् नैरयिकाः नैरयिकक्षेत्रे वर्त्तमानाः यानि द्रव्याणि नैरयिकायुष्कतया गृहीतानि एवं यथैव द्रव्यावीचिकमरणं तथैव क्षेत्रावीचिकमरणम् अपि। एवं यावत् भावावीचिकमरणम्।

१३५. भंते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है–नैरयिक-क्षेत्र आवीचिमरण नैरयिक क्षेत्र आवीचिमरण है?
गौतम! जो नैरयिक नैरयिक-क्षेत्र में वर्तमान जो द्रव्य नैरयिक आयुष्य के रूप में गृहीत होते हैं, इस प्रकार जैसे द्रव्य आवीचिमरण की वक्तव्यता वैसे ही क्षेत्र आवीचिमरण भी वक्तव्य है। इसी प्रकार यावत् भव आवीचि मरण।

१३६. ओहिमरणे णं भंते ! कतिविहे पण्णत्ते ?
गोयमा ! पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा– दव्वोहिमरणे, खेत्तोहिमरणे, कालोहिमरणे, भवोहिमरणे, भावोहिमरणे॥

अवधिमरणं भदन्त! कतिविधं प्रज्ञप्तम्?
गौतम! पञ्चविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा– द्रव्यावधिमरणम्, क्षेत्रावधिमरणम्, कालावधिमरणम्, भवावधिमरणम्, भावावधिमरणम्।

१३६. भंते! अवधि-मरण कितने प्रकार का प्रज्ञप्त है?
गौतम! पांच प्रकार का प्रज्ञप्त है, जैसे–द्रव्य अवधि-मरण, क्षेत्र अवधि-मरण, काल-अवधि-मरण, भव अवधि-मरण, भाव-अवधि-मरण।

१३७. दव्वोहिमरणे णं भंते कतिविहे पण्णत्ते ?
गोयमा ! चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा– नेरइयदव्वोहिमरणे जाव देवदव्वोहिमरणे॥

द्रव्यावधिमरणं भदन्त! कतिविधं प्रज्ञप्तम्?
गौतम! चतुर्विधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा– नैरयिकद्रव्यावधिमरणम् यावत् देवद्रव्यावधिमरणम्।

१३७. भंते! द्रव्य अवधि-मरण कितने प्रकार का प्रज्ञप्त है?
गौतम! चार प्रकार का प्रज्ञप्त है, जैसे– नैरयिक द्रव्य अवधि-मरण यावत् देव द्रव्य अवधि-मरण।

१३८. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ– नेरइयदव्वोहिमरणे - नेरइयदव्वोहिमरणे ?
गोयमा ! जे णं नेरइया नेरइयदव्वे वट्टमाणा जाइं दव्वाइं संपयं मरंति, ते णं नेरइया ताइं दव्वाइं अणागए काले पुणो वि मरिस्संति। से तेणट्ठेणं गोयमा ! जाव दव्वोहिमरणे। एवं तिरिक्खजोणिय-मणुस्स-देवदव्वोहिमरणे वि। एवं एएणं गमेणं खेत्तोहिमरणे वि, कालोहिमरणे वि, भवोहिमरणे वि, भावोहिमरणे वि॥

तत् केनार्थेन भदन्त! एवमुच्यते– नैरयिकद्रव्यावधिमरणं-नैरयिकद्रव्यावधिमरणम्?
गौतम! ये नैरयिकाः नैरयिकद्रव्ये वर्त्तमानाः यानि द्रव्याणि साम्प्रतं म्रियन्ते, ते नैरयिकाः तानि द्रव्याणि अनागते काले पुनः अपि मरिष्यन्ति। तत् तेनार्थेन गौतम! यावत् द्रव्यावधिमरणम्। एवं तिर्यग्योनिक-मनुष्यदेवद्रव्यावधिमरणम् अपि। एवम् एतेन गमेन क्षेत्रावधिमरणम् अपि, कालावधिमरणम् अपि, भवावधिमरणम् अपि, भावावधिमरणम् अपि।

१३८. भंते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है–नैरयिक द्रव्य अवधिमरण नैरयिक द्रव्य अवधिमरण है?
गौतम! जो नैरयिक नैरयिक-द्रव्य में वर्तमान जिन द्रव्यों से संप्रति मरते हैं, वे नैरयिक उन्हीं द्रव्यों से अनागत काल में पुनरपि मरेंगे। गौतम! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है–यावत् द्रव्य अवधि-मरण है। इसी प्रकार तिर्यक् योनिक, मनुष्य और देव द्रव्य अवधि-मरण की वक्तव्यता। इसी प्रकार इस गमक से क्षेत्र अवधि-मरण, काल अवधि-मरण, भव अवधि-मरण और भाव अवधि-मरण की वक्तव्यता।

१३९. आतियंतियमरणे णं भंते !–पुच्छा।
गोयमा ! पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा– दव्वातियंतियमरणे, खेत्तातियंतिय-

आत्यन्तिकमरणं भदन्त! पृच्छा।
गौतम! पञ्चविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा– द्रव्यात्यन्तिकमरणम्, क्षेत्रात्यन्तिक-

१३९. भंते! आत्यंतिक मरण की पृच्छा।
गौतम! पांच प्रकार का प्रज्ञप्त है, जैसे–द्रव्य आत्यंतिक-मरण, क्षेत्र आत्यंतिक-मरण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मरणे जाव भावातियंतियमरणे॥

मरणम् यावत् भावात्यन्तिकमरणम्।

यावत् भाव आत्यंतिक-मरण।

१४०. दव्वातियंतियमरणे णं भंते! कतिविहे पण्णत्ते?
गोयमा! चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा–नेरइयदव्वातियंतियमरणे जाव देवदव्वातियंतियमरणे॥

द्रव्यात्यन्तिकमरणं भदन्त! कतिविधं प्रज्ञप्तम्?
गौतम! चतुर्विधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा–नैरयिकद्रव्यात्यन्तिकमरणं यावत् देवद्रव्यात्यन्तिकमरणम्।

१४०. भंते! द्रव्य आत्यंतिक-मरण कितने प्रकार का प्रज्ञप्त है?
गौतम! चार प्रकार प्रज्ञप्त हैं, जैसे–नैरयिक द्रव्य आत्यंतिक-मरण यावत् देव द्रव्य आत्यंतिक-मरण।

१४१. से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ–नेरइयदव्वातियंतियमरणे - नेरइयदव्वातियंतियमरेण?
गोयमा! जे णं नेरइया नेरइयदव्वे वट्टमाणा जाइं दव्वाइं संपयं मरंति, ते णं नेरइया ताइं दव्वाइं अणागए काले नो पुणो वि मरिस्संति। से तेणट्ठेणं जाव नेरइयदव्वातियंतियमरणे। एवं तिरिक्खजोणिय-मणुस्स-देवदव्वातियंतियमरणे। एवं खेत्तातियंतियमरणे वि, एवं जाव भावातियंतियमरणे वि॥

१४१. तत् केनार्थेन भदन्त! एवमुच्यते–नैरयिकद्रव्यात्यन्तिकमरणं नैरयिकद्रव्यात्यन्तिकमरणम्?
गौतम! ये नैरयिकाः नैरयिकद्रव्ये वर्त्तमानाः यानि द्रव्याणि साम्प्रतं म्रियन्ते, ते नैरयिकाः तानि द्रव्याणि अनागते काले नो पुनरपि मरिष्यन्ति। तत् तेनार्थेन यावत् नैरयिक द्रव्यात्यन्तिकमरणम् एवं तिर्यग्योनिक-मनुष्य-देवद्रव्यात्यन्तिकमरणम्। एवं क्षेत्रात्यन्तिकमरणमपि, एवं यावत् भावात्यन्तिकमरणमपि।

१४१. भंते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है–नैरयिक द्रव्य आत्यंतिक-मरण नैरयिक द्रव्य आत्यंतिक-मरण है?
गौतम! जो नैरयिक नैरयिक-द्रव्य में वर्तमान जिन द्रव्यों से संप्रति मरते हैं, वे नैरयिक उन्हीं द्रव्यों से अनागत काल में पुनरपि नहीं मरेंगे। इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है–यावत् नैरयिक द्रव्य आत्यंतिक-मरण है। इसी प्रकार तिर्यक् योनिक, मनुष्य और देव द्रव्य आत्यंतिक-मरण की वक्तव्यता। इसी प्रकार क्षेत्र आत्यंतिक-मरण तथा इसी प्रकार यावत् भाव आत्यंतिक-मरण की वक्तव्यता।

१४२. बालमरणे णं भंते! कतिविहे पण्णत्ते!
गोयमा! दुवालसविहे पण्णत्ते, तं जहा–१. वलयमरणे २. वसट्टमरणे ३. अंतोसल्लमरणे ४. तब्भवमरणे ५. गिरिपडणे ६. तरुपडणे ७. जलप्पवेसे ८. जलणप्पवेसे ९. विसभक्खणे १०. सत्थोवाडणे ११. वेहाणसे १२. गद्धपट्ठे॥

बालमरणं भदन्त! कतिविधं प्रज्ञप्तम्?
गौतम! द्वादशविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा–१. वलयमरणम् २. वशार्त्तमरणम् ३. अन्तःशल्यमरणम् ४. तद्भवमरणम् ५. गिरिपतनम् ६. तरुपतनम् ७. जलप्रवेशः ८. ज्वलनप्रवेशः ९. विषभक्षणम् १०. शस्त्रावपाटनम् ११. वैहायसः १२. गृध्रपृष्ठः।

१४२. भंते! बाल मरण कितने प्रकार का प्रज्ञप्त है?
गौतम! बारह प्रकार का प्रज्ञप्त है, जैसे–वलय-मरण, वशार्त्त-मरण, अंतः-शल्य-मरण, तद्भव-मरण, गिरि-पतन, तरु-पतन, जल-प्रवेश, ज्वलन-प्रवेश, विष-भक्षण, शस्त्रावपाटन, वैहायस, गृद्ध-पृष्ठ।

१४३. पंडियमरणे णं भंते! कतिविहे पण्णत्ते?
गोयमा! दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–पाओवगमणे य, भत्तपच्चक्खाणे य॥

पण्डितमरणं भदन्त! कतिविधं प्रज्ञप्तम्?
गौतम! द्विविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा–पादोपगमनं च, भक्तप्रत्याख्यानं च।

१४३. भंते! पंडितमरण कितने प्रकार का प्रज्ञप्त है?
गौतम! दो प्रकार का प्रज्ञप्त है, जैसे–प्रायोपगमन, भक्तप्रत्याख्यान।

१४४. पाओवगमणे णं भंते! कतिविहे पण्णत्ते?
गोयमा! दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–नीहारिमे य, अनीहारिमे य। नियमं अपडिकम्मे॥

पादोपगमनं भदन्त! कतिविधं प्रज्ञप्तम्?
गौतम! द्विविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा–निर्हारि च, अनिर्हारि च। नियमम् अप्रतिकर्म।

१४४. भंते! प्रायोपगमन कितने प्रकार का प्रज्ञप्त है?
गौतम! दो प्रकार का प्रज्ञप्त है, जैसे–निर्हारि, अनिर्हारि। यह नियमतः अप्रतिकर्म होता है।

१४५. भत्तपच्चक्खाणे णं भंते! कतिविहे पण्णत्ते?

भक्तप्रत्याख्यानं भदन्त! कतिविधं प्रज्ञप्तम्?

१४५. भंते! भक्तप्रत्याख्यान कितने प्रकार का प्रज्ञप्त है?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा ! दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–नीहारिमे य, अनीहारिमे य। नियमं सपडिकम्मे॥

गौतम! द्विविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा–निर्हारि च, अनिर्हारि च। नियमं सप्रतिकर्म।

गौतम! दो प्रकार का प्रज्ञप्त है, जैसे–निर्हारि, अनिर्हारि। यह नियमतः सप्रतिकर्म होता है।

भाष्य

१. सूत्र १३०-१४५

मरण का अर्थ है–आयुष्य की समाप्ति। वह एक प्रकार का ही होता है। प्रक्रिया, हेतु और अवस्था भेद के आधार पर उसके सतरह प्रकार किए गए हैं।

आवीचि-मरण–प्राणी आयुष्य कर्म के पुद्गलों के आधार पर जीता है। वे पुद्गल-स्कंध प्रति समय उदय में आते रहते हैं। आयुष्य के नए-नए पुद्गल-स्कंध उदय में आते हैं और पूर्व पूर्व वाले विच्युत होते रहते हैं। मरण की इस प्रक्रिया का नाम आवीचि-मरण है। एक लहर उठती है और नीचे गिर जाती है, फिर दूसरी उठती है और नीचे गिर जाती है। प्रस्तुत मरण वीचि या लहर की भांति होता है।[1] अभयदेवसूरि ने वैकल्पिक पाठ 'अवीचिक' की व्याख्या की है। उसका आशय यह है–आयुष्य कर्म पुद्गल निरंतर विपाक में आते रहते हैं। उनके उदय-क्रम में कोई वीचि-विच्छेद नहीं होता, यह अवीचिक मरण है।[2]

अवधि-मरण–जीव आयुष्य कर्म के जिन पुद्गलों का एक बार वेदन कर मर जाता है। फिर दूसरी बार उन पुद्गलों का वेदन कर मरेगा। वह अवधिमरण कहलाता है।

आत्यंतिक-मरण–जीव आयुष्य कर्म के जिन पुद्गलों का वेदन कर मरता है, उनका पुनः वेदन नहीं करेगा, वह आत्यंतिक-मरण कहलाता है।

द्रष्टव्य भगवई २/४९ का भाष्य, पण्णवणाओ १७/९ तथा उत्तरज्झयणाणि ५ का आमुख।

बहियाइं आदि पदों के लिए द्रष्टव्य–भगवई १/३५७ का भाष्य।

१४६. सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति॥

तदेवं भदन्त। तदेवं भदन्त! इति।

१४६. भंते! वह ऐसा ही है। भंते! वह ऐसा ही है।

---

१. भग. जो. ढा. २८९, गा. ४

आ कहितां समस्त प्रकार, वीचि किलोल नीं परै धार।
समय-समय आउखो वेदंत, तिण सूं समय-समय ए मरंत॥

२. भ. वृ. १३/१३०।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अट्ठमो उद्देसोः : आठवां उद्देशक

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
कम्मपगडि-पदं	कर्मप्रकृति-पदम्	कर्म प्रकृति पद
१४७. कति णं भंते ! कम्मपगडीओ पण्णत्ताओ ?	कति भदन्त! कर्मप्रकृतयः प्रज्ञप्ताः?	१४७. भंते! कर्म प्रकृतियां कितनी प्रज्ञप्त हैं?
गोयमा ! अट्ठ कम्मपगडीओ पण्णत्ताओ। एवं बंधट्ठिइ-उद्देसो भाणियव्वो निरवसेसो जहा पण्णवणाए॥	गौतम! अष्ट कर्मप्रकृतयः प्रज्ञप्ताः। एवं बन्धस्थिति उद्देशः भणितव्यः निरवशेषः यथा प्रज्ञापनायाम्।	गौतम! कर्म प्रकृतियां आठ प्रज्ञप्त हैं। इस प्रकार बंध-स्थिति उद्देशक प्रज्ञापना की भांति निरवशेष वक्तव्य है।

भाष्य

१. सूत्र १४७

बंध स्थिति के लिए द्रष्टव्य प्रज्ञापना २३/२४-२०२।

१४८. सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति॥	तदेवं भदन्त! तदेवं भदन्त ! इति।	१४८. भंते ! वह ऐसा ही है। भंते! वह ऐसा ही है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नवमो उद्देसो : नवां उद्देशक

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
भावियप्प-विउव्वणा-पदं	भावितात्म-विकरण-पदम्	भावितात्म-विक्रिया-पद
१४९. रायगिहे जाव एवं वयासी–से जहानामए केइ पुरिसे केयाघडियं गहाय गच्छेज्जा, एवामेव अणगारे वि भावियप्पा केयाघडियाकिच्चहत्थगएणं अप्पाणेणं उड्ढं वेहासं उप्पएज्जा ?	राजगृहं यावत् एवमवादीत्–सः यथानामकः कश्चित् पुरुषः 'केयाघडियं' गृहीत्वा गच्छेत्, एवमेव अनगारोऽपि भावितात्मा 'केयाघडिया' कृत्यहस्तगतेन आत्मना ऊर्ध्वं विहायसम् उत्पतेत् ?	१४९. राजगृह नगर यावत् गौतम ने इस प्रकार कहा–भंते! जैसे कोई पुरुष रज्जु से बंधी घटिका लेकर जाए, इसी प्रकार भावितात्मा अनगार भी क्या हाथ में रज्जु से बंधी घटिका ले स्वयं कृत्यागत होकर (माया या विद्या का प्रयोग कर) ऊपर आकाश में उड़ता है?
हंता उप्पएज्जा॥	हन्त! उत्पतेत्।	हां, उड़ता है।
१५०. अणगारे णं भंते! भावियप्पा केवतियाइं पभू केयाघडियाकिच्च-हत्थगयाइं रूवाइं विउव्वित्तए ? गोयमा! से जहानामए जुवतिं जुवाणे हत्थेणं हत्थे गेण्हेज्जा, चक्कस्स वा नाभी अरगाउत्ता सिया, एवामेव अणगारे वि भाविअप्पा वेउव्विय-समुग्घाएणं समोहण्णइ जाव पभू णं गोयमा! अणगारे णं भाविअप्पा केवलकप्पं जंबुद्दीवं दीवं बहूहिं इत्थिरूवेहिं आइण्णं वितिकिण्णं उवत्थडं संथडं फुडं अवगाढावगाढं करेत्तए। एस णं गोयमा! अणगारस्स भाविअप्पणो अयमेयारूवे विसए, विसयमेत्ते बुइए, नो चेव णं संपत्तीए विउव्विसु वा विउव्वति वा विउव्विस्सति वा॥	अनगारः भदन्त! भावितात्मा कियन्ति प्रभुः 'केयाघडिया' कृत्यहस्तगतानि रूपाणि विकर्तुम्? गौतम! सः यथानामकः युवतिं युवा हस्तेन हस्तौ गृह्णीयात्, चक्रस्य वा नाभिः अरकायुक्ता स्यात्, एवमेव अनगारोऽपि भावितात्मा वैक्रिय-समुद्घातेन समवहन्यते यावत् प्रभुः गौतम! अनगारः भावितात्मा केवलकल्पं जम्बूद्वीपं द्वीपं बहुभिः स्त्रीरूपैः आकीर्णं व्यतिकीर्णम् उपस्तृतं संस्तृतं स्पृष्टम् अवगाढावगाढं कर्तुम्। एषः गौतम! अनगारस्य भावितात्मनः अयमेतद्रूपः विषयः, विषयमात्रम् उक्तः, नो चैव सम्प्राप्त्या व्यकार्षीत् वा विकरोति वा विकरिष्यति वा।	१५०. भंते! भावितात्मा अनगार हाथ में रज्जु से बंधी घटिका ले, स्वयं कृत्यागत होकर कितने रूपों का निर्माण करने में समर्थ है? गौतम! जैसे कोई युवक युवती का हाथ प्रगाढता से पकड़ता है तथा गाड़ी के चक्के की नाभि आरों से युक्त होती है, उसी प्रकार भावितात्मा अनगार वैक्रिय समुद्घात से समवहत होता है यावत् गौतम! वह भावितात्मा अनगार संपूर्ण जंबूद्वीप द्वीप को अनेक स्त्री रूपों से आकीर्ण, व्यतिकीर्ण, उपस्तृत (बिछौना सा बिछाया हुआ) संस्तृत (भली भांति बिछौना सा बिछाया हुआ) स्पृष्ट और अवगाढावगाढ (अत्यन्त सघन रूप से व्याप्त) करने में समर्थ है। गौतम! भावितात्मा अनगार की विक्रिया शक्ति का यह इतना विषय केवल विषय की दृष्टि से प्रतिपादित है। भावितात्मा अनगार ने क्रियात्मक रूप में न तो कभी ऐसी विक्रिया की, न करता है और न करेगा।
१५१. से जहानामए केइ पुरिसे हिरण्णपेलं गहाय गच्छेज्जा, एवामेव अणगारे वि भावियप्पा हिरण्णपेलहत्थकिच्चगएणं अप्पाणेणं उड्ढं वेहासं उप्पएज्जा ?	अथ यथानामकः कश्चित् पुरुषः हिरण्यपेटां गृहीत्वा गच्छेत्, एवमेव अनगारोऽपि भावितात्मा हिरण्यपेटा-हस्तकृत्यगतेन आत्मना ऊर्ध्वं विहायसम् उत्पतेत्?	१५१. जैसे कोई पुरुष हिरण्य-पेटी को लेकर जाए, इसी प्रकार भावितात्मा अनगार हाथ में हिरण्य पेटी को ले, कृत्यागत होकर ऊपर आकाश में उड़ता है?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सेसं तं चेव। एवं सुवण्णपेलं, एवं रयणपेलं, वइरपेलं, वत्थपेलं, आभरणपेलं, एवं वियलकडं, सुंबकडं, चम्मकडं, कंबलकडं, एवं अयभारं, तंबभारं, तउयभारं, सीसगभारं, हिरण्णभारं, सुवण्णभारं, वइरभारं॥

शेषं तत् चैव। एवं सुवर्णपेटाम्, एवं रत्नपेटां, वज्रपेटां, वस्त्रपेटाम्, आभरणपेटाम् एवं विदलकटं, शुम्बकटं, चर्मकटं, कम्बलकटम्, एवं अयोभारं, ताम्रभारं, त्रपुकभारं, सीसकभारं, हिरण्यभारं, सुवर्णभारं, वज्रभारम्।

शेष पूर्ववत्। इसी प्रकार स्वर्णपेटी, इसी प्रकार रत्नपेटी, वज्रपेटी, वस्त्रपेटी, आभरणपेटी, इसी प्रकार बांस की खपाचियों से बनी हुई चटाई अथवा टाटी, खस से बनी हुई टाटी, चमड़े से गुंथी हुई खाट, ऊनी कंबल, इसी प्रकार लोहभार, ताम्रभार, पीतलभार, शीशकभार, हिरण्य-भार, स्वर्णभार, वज्रभार।

१५२. से जहानामए वग्गुली सिया, दो वि पाए उल्लंबिया-उल्लंबिया उड्ढंपादा अहोसिरा चिट्ठेज्जा, एवामेव अणगारे वि भाविअप्पा वग्गुलीकिच्चगएणं अप्पाणेणं उड्ढं वेहासं उप्पएज्जा ?

एवं जण्णोवइयवत्तव्वया भाणियव्वा जाव विउव्विस्सति वा॥

अथ यथानामिका वल्गुलिः स्यात्, द्वौ अपि पादौ उल्लम्ब्य-उल्लम्ब्य ऊर्ध्वपादा अधःशिरा तिष्ठेत्, एवमेव अनगारोऽपि भावितात्मा वल्गुलि-कृत्यगतेन आत्मना ऊर्ध्वं विहायसम् उत्पतेत्?

एवं यज्ञोपवीत-वक्तव्यता भणितव्या यावत् विकरिष्यति वा।

१५२. जैसे कोई वल्गुलिका (चमगादड़) होती है, वह दोनों पैरों को लटका कर ऊर्ध्व पैर और अधःशिर स्थित होती है, इसी प्रकार भावितात्मा अनगार भी स्वयं वल्गुलिका कृत्यागत होकर ऊपर आकाश में उड़ता है?

इस प्रकार यज्ञोपवीत (भगवई ३/२०३) की वक्तव्यता कथनीय है यावत् विक्रिया करेगा।

१५३. से जहानामए जलोया सिया, उदगंसि कायं उव्विहिया-उव्विहिया गच्छेज्जा, एवामेव अणगारे, सेसं जहा वग्गुलीए॥

अथ यथानाम्निका जलौका स्यात्, उदके कायम् उद्विध्य-उद्विध्य गच्छेत्, एवमेव अनगारः, शेषं यथा वल्गुल्याः।

१५३. जैसे कोई जोंक होती है, वह पानी में शरीर को उछाल उछाल कर चलती है, इसी प्रकार अनगार भी। शेष वल्गुलिका की भांति वक्तव्यता।

१५४. से जहानामए बीयंबीयगसउणे सिया, दो वि पाए समतुरंगेमाणे-समतुरंगेमाणे गच्छेज्जा, एवामेव अणगारे, सेसं तं चेव॥

अथ यथानामकः बीजंबीजकशकुनः स्यात्, द्वौ अपि पादौ समतुरङ्गायन्-समतुरङ्गायन् गच्छेत्, एवमेव अनगारः, शेषं तत् चैव।

१५४. जैसे कोई बबीला पक्षी होता है, वह दोनों पैरों को एक साथ तुल्य रेखा में उठाता हुआ, उठाता हुआ चलता है, इसी प्रकार भावितात्मा अनगार भी, शेष पूर्ववत्।

१५५. से जहानामए पक्खिविरालए सिया, रुक्खाओ रुक्खं डेवेमाणे-डेवेमाणे गच्छेज्जा, एवामेव अणगारे, सेसं तं चेव॥

अथ यथानामकः पक्षिविडालकः स्यात्, रुक्षात् रुक्षं 'डेवेमाणे-डेवेमाणे' गच्छेत्, एवमेव अनगारः, शेषं तत् चैव।

१५५. जैसे कोई विराल पक्षी (बड़ी चमगादड़) होता है, वह एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष पर कूदता हुआ चलता है, इसी प्रकार भावितात्मा अनगार भी। शेष पूर्ववत्।

१५६. से जहानामए जीवंजीवगसउणे सिया, दो वि पाए समतुरंगेमाणे-समतुरंगेमाणे गच्छेज्जा, एवामेव अणगारे, सेसं तं चेव॥

अथ यथानामकः जीवंजीवकशकुनः स्यात्, द्वौ अपि पादौ समतुरङ्गायन्-समतुरङ्गायन् गच्छेत्, एवमेव अनगारः, शेषं तत् चैव।

१५६. जैसे कोई चकोर पक्षी होता है, वह दोनों पैरों को एक साथ तुल्य रेखा में उठाता हुआ, उठाता हुआ चलता है, इसी प्रकार भावितात्मा अनगार भी। शेष पूर्ववत्।

१५७. से जहानामए हंसे सिया, तीराओ तीरं अभिरममाणे-अभिरममाणे गच्छेज्जा, एवामेव अणगारे वि भाविअप्पा हंसकिच्चगएणं अप्पाणेणं, सेसं तं चेव॥

अथ यथानामकः हंसः स्यात्, तीरात् तीरम् अभिरममाणः-अभिरममाणः गच्छेत्, एवमेव अनगारः अपि भावितात्मा हंसकृत्यगतेन आत्मना, शेषं तत् चैव।

१५७. जैसे कोई हंस होता है, वह एक तट से दूसरे तट पर क्रीड़ा करता हुआ, क्रीड़ा करता हुआ चलता है, इसी प्रकार भावितात्मा अनगार स्वयं हंसकृत्यागत होकर क्रीड़ा करता है, पूर्ववत्।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१५८. से जहानामए समुद्दवायसए सिया, वीईओ वीइं डेवेमाणे-डेवेमाणे गच्छेज्जा, एवामेव अणगारे, तहेव॥

अथ यथानामकः समुद्रवायसकः स्यात्, वीचेः वीचिं 'डेवेमाणे-डेवेमाणे' गच्छेत्, एवमेव अनगारः, तथैव।

१५८. जैसे कोई समुद्रकाक होता है, वह एक तरंग से दूसरी तरंग पर कूदता हुआ, कूदता हुआ चलता है, इसी प्रकार भावितात्मा अनगार भी, तथावत्।

१५९. से जहानामए केइ पुरिसे चक्कं गहाय गच्छेज्जा, एवामेव अणगारे वि भाविअप्पा चक्कहत्थकिच्चगएणं अप्पाणेणं, सेसं जहा केयाघडियाए। एवं छत्तं, एवं चम्मं॥

अथ यथानामकः कश्चित् पुरुषः चक्रं गृहीत्वा गच्छेत्, एवमेव अनगारः अपि भावितात्मा चक्रहस्तकृत्यगतेन आत्मना, शेषं यथा 'केयाघडियाए'। एवं छत्रम्, एवं चर्म।

१५९. जैसे कोई पुरुष चक्र को ग्रहण कर चलता है, इसी प्रकार भावितात्मा अनगार स्वयं चक्र हाथ में ले, कृत्यागत होकर चलता है। शेष रज्जु से बंधी घटिका की भांति वक्तव्यता। इसी प्रकार छत्र, इसी प्रकार चर्म की वक्तव्यता॥

१६०. से जहानामए केइ पुरिसे रयणं गहाय गच्छेज्जा, एवं चेव। एवं वइरं, वेरुलियं जाव रिट्ठं। एवं उप्पलहत्थगं, एवं पउमहत्थगं, कुमुदहत्थगं, नलिणहत्थगं, सुभगहत्थगं, सुगंधियहत्थगं, पोंडरीयहत्थगं, महापोंडरीयहत्थगं, सयपत्तहत्थगं, से जहानामए केइ पुरिसे सहस्सपत्तगं गहाय गच्छेज्जा, एवं चेव॥

अथ यथानामकः कश्चित् पुरुषः रत्नं गृहीत्वा गच्छेत्, एवं चैव।
एवं वज्रं, वैडूर्यं यावत् रिष्टम्। एवम् उत्पलहस्तकं, एवं पद्महस्तकं, एवं कुमुदहस्तकं, नलिनहस्तकं, सुभगहस्तकं, सुगन्धिकहस्तकं, पुण्डरीकहस्तकं, महापुण्डरीकहस्तकं, शतपत्रहस्तकम्। अथ यथानामकः कश्चित् पुरुषः सहस्रपत्रकं गृहीत्वा गच्छेत्, एवं चैव।

१६०. जैसे कोई पुरुष रत्न को ग्रहण कर चलता है, इसी प्रकार भावितात्मा अनगार भी। इसी प्रकार वज्र, वैडूर्य यावत् अरिष्ट। इसी प्रकार उत्पल-हस्तक, इसी प्रकार पद्म-हस्तक, कुमुद-हस्तक, नलिन-हस्तक, सुभग-हस्तक, सौगंधिक-हस्तक, पौण्डरिक-हस्तक, महापोण्डरिक-हस्तक, शतपत्र-हस्तक। जैसे कोई पुरुष सहस्रपत्रक ग्रहण कर चलता है, इसी प्रकार भावितात्मा अनगार भी।

१६१. से जहानामए केइ पुरिसे भिसं अवदालिय-अवदालिय गच्छेज्जा, एवामेव अणगारे वि भिसकिच्चगएणं अप्पाणेणं, तं चेव॥

अथ यथानामकः कश्चित् पुरुषः विसम् अवदलय्य-अवदलय्य गच्छेत्, एवमेव अनगारः अपि विसकृत्यगतेन आत्मना, तत् चैव।

१६१. जैसे कोई पुरुष नाल-तंतु को विदीर्ण कर, विदीर्ण कर चलता है, इसी प्रकार भावितात्मा अनगार भी स्वयं नालतंतु कृत्यागत होकर चलता है। पूर्ववत्।

१६२. से जहानामए मुणालिया सिया, उदगंसि कायं उम्मज्जिया-उम्मज्जिया चिट्ठेज्जा, एवामेव, सेसं जहा वग्गुलीए॥

अथ यथानामिका मृणालिका स्यात्, उदके कायम् उन्मज्ज्य-उन्मज्ज्य तिष्ठेत्, एवमेव, शेषं यथा वल्गुल्याः।

१६२. जैसे कोई कमलिनी होती है वह पानी में उन्मज्जन कर (डुबकी लगा कर) उन्मज्जन कर ठहरती है, इसी प्रकार भावितात्मा अनगार भी। शेष वल्गुलिका की भांति वक्तव्यता॥

१६३. से जहानामए वणसंडे सिया–किण्हे किण्होभासे जाव महामेहनिकुरंबभूए, पासादीए दरिसणिज्जे अभिरूवे पडिरूवे, एवामेव अणगारे वि भाविअप्पा वणसंडकिच्चगएणं अप्पाणेणं उड्ढं वेहासं उप्पएज्जा?

सेसं तं चेव॥

अथ यथानामकः वनषण्डः स्यात्–कृष्णः कृष्णावभासः यावत् महामेघनिकुरम्बभूतः प्रासादीयः दर्शनीयः अभिरूपः प्रतिरूपः, एवमेव अनगारः अपि भावितात्मा वनषण्डकृत्यगतेन आत्मना ऊर्ध्वं विहायसम् उत्पतेत्?
शेषं तत् चैव।

१६३. जैसे कोई वनषंड होता है–कृष्ण, कृष्ण अवभास वाला यावत् काली कजरारी घटा के समान चित्त को प्रसन्न करने वाला, दर्शनीय, कमनीय और रमणीय, इसी प्रकार भावितात्मा अनगार भी स्वयं वनषंड कृत्यागत होकर ऊपर आकाश में उड़ता है?
शेष पूर्ववत्।

१६४. से जहानामए पुक्खरणी सिया–

सा यथानामिका पुष्करिणी स्यात्–

१६४. जैसे कोई पुष्करिणी होती है–चतुष्कोण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चउक्कोणा, समतीरा, अणुपुव्व-सुजायवप्पगंभीरसीयलजला जाव सद्दुन्नइयमहुरसरणादिया पासादीया दरिसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा, एवामेव अणगारे वि भाविअप्पा पोक्खरणीकिच्चगएणं अप्पाणेणं उड्ढं वेहासं उप्पएज्जा ?

चतुष्कोणा, समतीरा, अनुपूर्वसुजात-वप्रगम्भीरशीतलजला यावत् शब्दोन्नतिकमधुरस्वरनादिता प्रासादीया दर्शनीया अभिरूपा प्रतिरूपा, एवमेव अनगारः अपि भावितात्मा पुष्पकरिणी कृत्यगतेन आत्मना ऊर्ध्वं विहायसम् उत्पतेत्?

वाली, समतीर वाली, क्रमशः सुन्दर तट वाली, गंभीर और शीतल जल वाली यावत् जिसमें उन्नत शब्द और मधुर स्वर का नाद हो रहा है, वह चित्त को प्रसन्न करने वाली, दर्शनीय, कमनीय और रमणीय है, इसी प्रकार भावितात्मा अनगार भी स्वयं पुष्पकरिणी कृत्यागत होकर ऊपर आकाश में उड़ता है?

हंता उप्पएज्जा।

हन्त! उत्पतेत्।

हां, उड़ता है।

१६५. अणगारे णं भंते! भाविअप्पा केवतियाइं पभू पोक्खरणीकिच्चगयाइं रूवाइं विउव्वित्तए ?
सेसं तं चेव जाव विउव्विस्सति वा॥

अनगारः अपि भदन्त! भावितात्मा कियन्ति प्रभुः पुष्पकरणीकृत्यगतानि रूपाणि विकर्तुम्?
शेषं तत् चैव यावत् विकरिष्यति वा।

१६५. भंते! भावितात्मा अनगार कितने पुष्पकरिणी कृत्यागत रूपों का निर्माण करने में समर्थ है?
शेष पूर्ववत् यावत् विक्रिया करेगा।

१६६. से भंते! किं मायी विउव्वति ? अमायी विउव्वति ?
गोयमा! मायी विउव्वति, नो अमायी विउव्वति। मायी णं तस्स ठाणस्स अणालोइयपडिक्कंते कालं करेइ, नत्थि तस्स आराहणा। अमायी णं तस्स ठाणस्स आलोइयपडिक्कंते कालं करेइ, अत्थि तस्स आराहणा॥

अथ भदन्त! किं मायी विकरोति? अमायी विकरोति?
गौतम! मायी विकरोति, नो अमायी विकरोति। मायी तस्य स्थानस्य अनालोचितप्रतिक्रान्तः कालं करोति, नास्ति तस्य आराधना। अमायी तस्य स्थानस्य आलोचितप्रतिक्रान्तः कालं करोति, अस्ति तस्य आराधना।

१६६. भंते! क्या मायी विक्रिया करता है? अमायी विक्रिया करता है?
गौतम! मायी विक्रिया करता है, अमायी विक्रिया नहीं करता। मायी इस स्थान की आलोचना-प्रतिक्रमण किए बिना काल को प्राप्त होता है, उसके आराधना नहीं होती। अमायी उस स्थान की आलोचना-प्रतिक्रमण कर काल को प्राप्त होता है, उसके आराधना होती है।

भाष्य

१. सूत्र १४६-१६६

प्रस्तुत आगम में भावितात्मा अनगार के विषय में अनेक सूत्र उपलब्ध हैं–

- भगवई ३/१५४-१६३
- भगवई ३/१८६-२४३

भावितात्मा अनगार नाना रूपों की विक्रिया (निर्माण) करने में समर्थ होता है। इसका उल्लेख भगवती के तीसरे शतक में भी उपलब्ध है।[1] विवरण के लिए द्रष्टव्य ३/१८६-२२० का सूत्र एवं भाष्य।

प्रस्तुत प्रकरण में भावितात्मा के द्वारा की जाने वाली विक्रिया के अनेक प्रकारों का उल्लेख किया गया है।

स्थानांग में छह प्रकार के ऋद्धिमान पुरुष बतलाए गए हैं। उनमें चारण और विद्याधर का उल्लेख है।[2]

धवला और तत्त्वार्थवार्तिक में ऋद्धि के अनेक प्रकार बतलाए गए हैं।[3] प्रस्तुत प्रकरण में भावितात्मा की बहुविध विक्रिया का निरूपण किया गया है। इस निरूपण में प्राणी के साथ भावितात्मा की विक्रिया का वर्णन तुलनात्मक अध्ययन की दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण है।

शब्द विमर्श

वियलकडं–बांस की खपाचियों से बनी हुई चटाई (अथवा) टाटी।
सुंब कडं–खस से बनी हुई टाटी।
चंब कडं–चमड़े से गुंथी हुई खाट।
कंबल कडं–ऊनी कंबल।
उल्लंबिया–लटका कर।
उव्विहिय उव्विहिय–उछाल उछाल कर।
बीजंबीजक–बबीला।
जीवंजीवक–चकोर।
वल्गुलिका–छोटी चमगादड़।
समतुरंगेमाणे–दोनों पैरों को एक साथ समतुल्य रेखा में उठाता हुआ।

---

१. भ. ३/१८६-१६३।
२. (क) जैनेन्द्र कोश–ऋद्धि शब्द।
(ख) ठा. ६/३१ का टिप्पण।
३. जैनेन्द्र कोश–ऋद्धि शब्द।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

डेवेमाणे–कूदता हुआ।
पक्खिविरालीं–बड़ी चमगादड़।
अभिरममाणे–क्रीड़ा करता हुआ।
वेरुलिय–गरुड़।
अवद्दालिय–विदीर्ण कर।
भिस–नाल तंतु।

प्राणी की विशेष जानकारी के लिए जैन आगम प्राणी कोश, वनस्पति की विशेष जानकारी के लिए जैन आगम वनस्पति कोश तथा रत्न आदि की विशेष जानकारी के लिए उत्तराध्ययन ३६/६१-६६ का टिप्पण द्रष्टव्य है।

१६७. सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति जाव विहरइ॥

तदेवं भदन्त! तदेवं भदन्त! इति यावत् विहरति।

१६७. भंते! वह ऐसा ही है। भंते! वह ऐसा ही है। इस प्रकार यावत् विहरण करने लगे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दसमो उद्देसो : दसवां उद्देशक

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
छाउमत्थियसमुग्घाय-पदं	**छाद्मस्थिकसमुद्घात-पदम्**	**छाद्मस्थिक समुद्घात पद**
१६८. कति णं भंते! छाउमत्थिय-समुग्घाया पण्णत्ता? **गोयमा! छ छाउमत्थिया समुग्घाया पण्णत्ता, तं जहा–वेयणासमुग्घाए, एवं छाउमत्थियसमुग्घाया नेयव्वा जहा पण्णवणाए जाव आहारग-समुग्घायेत्ति॥**	कति भदन्त! छाद्मस्थिकसमुद्घाताः प्रज्ञप्ताः? गौतम! षट् छाद्मस्थिकाः समुद्घाताः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–वेदनासमुद्घातः, एवं छाद्मस्थिकसमुद्घाताः नेतव्याः यथा प्रज्ञापनायां यावत् आहारकसमुद्घातः इति।	१६८. भंते! छाद्मस्थिक समुद्घात कितने प्रज्ञप्त हैं? गौतम! छाद्मस्थिक समुद्घात के छह प्रकार प्रज्ञप्त हैं, जैसे–वेदना समुद्घात, इस प्रकार छाद्मस्थिक समुद्घात प्रज्ञापना की भांति ज्ञातव्य है यावत् आहारक समुद्घात।

भाष्य

१. सूत्र १६७

समुद्घात के लिए द्रष्टव्य भगवई २/७४ का भाष्य।

१६९. सेवं भंते! सेवं भंते! त्ति जाव विहरइ॥	तदेवं भदन्त! तदेवं भदन्त! इति यावत् विहरति।	१६९. भंते! वह ऐसा ही है। भंते! वह ऐसा ही है। इस प्रकार यावत् विहरण करने लगे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चोद्दसमं सतं

चौदहवां शतक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आमुख

प्रस्तुत शतक का प्रारंभ पुनर्जन्म के नियमों से होता है। लेश्या पुनर्जन्म की व्याख्या का एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व है।[1] प्रस्तुत आगम के किसी भी शतक में एक विषय का प्रतिपादन नहीं है। इसमें प्रकीर्ण सिद्धांतों का संकलन किया गया है।

पहले उद्देशक का संबंध पुनर्जन्म से है। दूसरे उद्देशक में उन्माद का एक बृहद् आलापक है। स्थानांग में उन्माद के दो प्रकार बतलाए गए हैं।[2] प्रस्तुत शतक के सोलहवें सूत्र के साथ उसकी अक्षरशः तुलना होती है। ठाणं में उन्माद प्राप्ति के छह हेतु बतलाए हैं, उनमें भी यक्षावेश और मोहनीय कर्म से होने वाले उन्माद का उल्लेख है।[3] सामान्य धारणा यह है–कोई दिव्य शक्ति किसी मनुष्य के शरीर में प्रवेश कर उन्माद पैदा कर देती है। प्रस्तुत प्रकरण में इस विषय में एक नए रहस्य का उद्घाटन होता है। दिव्य शक्ति का शरीर में प्रवेश अनिवार्य नहीं है। वह अशुभ पुद्गलों का शरीर में प्रक्षेप कर उन्माद पैदा कर सकती है। यह तथ्य और विस्मयकारी है कि बड़े देव छोटे देवों में भी अशुभ पुद्गलों का प्रक्षेप कर उन्माद पैदा कर सकते हैं। इससे भी अधिक विस्मयकारी तथ्य यह है कि पृथ्वीकायिक आदि सूक्ष्म जीवों में भी उन्माद पैदा किया जा सकता है।[4]

छठे शतक में तमस्काय का निर्माण करने वाली तीन शक्तियों का उल्लेख है–देव, असुर और नाग।[5] प्रस्तुत शतक में देवेन्द्र ईशान के द्वारा तमस्काय के निर्माण की प्रक्रिया बतलाई गई है।[6]

विनय विधि (प्रोटोकाल) का एक लंबा प्रकरण है। देवों की विनय विधि का वर्णन बहुत ही रोचक है।[7]

विनय विधि का वर्णन दसवें शतक में भी प्राप्त है।[8] उसमें विमोहन का उल्लेख है किन्तु शस्त्र द्वारा आक्रमण का उल्लेख नहीं है। दोनों का तुलनात्मक अध्ययन अपेक्षित है।

प्रस्तुत शतक में नैरयिकों के प्रत्यनुभव का संक्षिप्त विवरण है। पूर्ण पाठ के लिए जीवाभिगम देखने का निर्देश है।[9] अंग सूत्र में उपांग देखने का निर्देश सूचित करता है कि यह आलापक जीवाभिगम से प्रस्तुत आगम में संकलित है।

परमाणु पुद्गल का निरूपण स्याद्वाद की पद्धति से किया गया है। परमाणु पुद्गल की चरम और अचरम अवस्थाओं को मान्य किया गया है।[10] प्रज्ञापना में परमाणु पुद्गल के चरम और अचरम इन दोनों भंगों का निषेध है। केवल अवक्तव्य भंग ही मान्य है।[11]

पांचवें उद्देशक में अंतराल गति का बहुत महत्त्वपूर्ण निरूपण किया गया है।[12] भगवान् महावीर और गौतम का संबंध महावीर के जीवन वृत्त का एक महत्त्वपूर्ण प्रसंग है।[13] इसका आयारो तथा आयारचूला पर्युषणाकल्प आदि में उल्लेख न होना आश्चर्य की बात है।

लव सप्तम देव[14], अनुत्तरोपपातिक देव,[15] अव्याबाध देव[16] और जृंभक देव[17] का वर्णन विलक्षण है। इस प्रकार का वर्णन अन्य आगमों में उपलब्ध नहीं है।

देवेन्द्र शक्र द्वारा सिर का चूर्ण करना, फिर संधान कर देना और संबद्ध व्यक्ति को उसका आभास भी न होना एक आश्चर्यकारी घटना का विवरण है।[18] आयुर्विज्ञान के क्षेत्र में बहुत विकास हुआ है पर इस दिव्य शक्ति के सामने अकिंचित्कर सा लगता है।

---

१. भ., १४/१-२
२. ठाणं, २/७५
३. ठाणं, ६/४३
४. भ., १४/१८-२०
५. वही, ६/७६
६. वही, १५/२५-२७
७. वही, १४/२६-३६
८. वही, १०/२४-३८
९. वही, १४/४०-४२
१०. वही, १४/५१
११. (क) पण्ण. १०/६
(ख) प्रज्ञा. वृ. प. २३५
१२. वही, १४/५४-६०
१३. वही, १४/७७-७६
१४. वही, १४/८४-८५
१५. वही, १४/८६-८८.
१६. वही, १४/११३-११४
१७. वही, १४/११७-१२१
१८. वही, १५/११५-११६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आत्मा और पुनर्जन्म का प्रतिपादन आगम साहित्य का प्रमुख कार्य रहा है। शालयष्टिका और उदुम्बरयष्टिका वृक्ष के बारे में गौतम की जिज्ञासा और महावीर का उत्तर प्रत्यक्ष ज्ञान का एक महत्त्वपूर्ण निदर्शन है।[1] इस आलापक से अकाम निर्जरा के महत्त्व का भी अंकन किया जा सकता है।

प्रस्तुत आगम के छठे शतक में आभामंडल का प्रशस्त वर्णन किया गया है।[2] प्रस्तुत शतक में बतलाया गया है–आभामंडल के परमाणु-पुद्गल अवभास, उद्योत, ताप और प्रभास करते हैं।[3] श्रमण निर्ग्रंथों की तेजोलेश्या का उत्तरोत्तर होने वाला विकास एक साधक के लिए बहुत प्रेरक है।[4]

प्रस्तुत शतक का एक महत्त्वपूर्ण विषय है परिव्राजक अम्मड़ का प्रकरण।

इस प्रकार यह शतक अन्यत्र अचर्चित और अनुपलब्ध विषय सामग्री की दृष्टि से बहुत मननीय है।

१. वही, १४/१०१-१०६
२. भ., ६/२०-२३
३. वही, १४/१२३-१२५
४. वही, १४/१३६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चोद्दसमं सतं : चौदहवां शतक

पढमो उद्देसो : पहला उद्देशक

मूल

संगहणी गाहा

१. चर २. उम्माद ३. सरीरे,
४. पोग्गल ५. अगणी तहा ६. किमाहारे।
७, ८. संसिट्ठमंतरे खलु,
९. अणगारे १०. केवली चेव॥१॥

लेस्साणुसारि-उववाय-पदं

१. रायगिहं जाव एवं वयासी—अणगारे णं भंते! भावियप्पा चरमं देवावासं वीतिक्कंते, परमं देवावासमसंपत्ते, एत्थ णं अंतरा कालं करेज्जा, तस्स णं भंते! कहिं गती? कहिं उववाए पण्णत्ते?

गोयमा! जे से तत्थ परिपस्सओ तल्लेसा देवावासा, तहिं तस्स गती, तहिं तस्स उववाए पण्णत्ते। से य तत्थ गए विराहेज्जा कम्मलेस्सामेव पडिपडति, से य तत्थ गए नो विराहेज्जा, तामेव लेस्सं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ॥

संस्कृत छाया

संग्रहणी गाथा

१. चर २. उन्माद ३. शरीरं
४. पुद्गल ५. अग्निः तथा
६. किमाहारः। ७-८. संसृष्टमन्तरं खलु
९. अनगारः १०. केवली चैव॥१॥

लेश्यानुसारि-उपपात-पदम्

राजगृहं यावत् एवमवादीत्—अनगारः भदन्त! भावितात्मा चरमं देवावासं व्यतिक्रान्तः, परमं देवावासमसम्प्राप्तः, अत्र अन्तरा कालं कुर्यात्, तस्य भदन्त! कुत्र गतिः? कुत्र उपपातः प्रज्ञप्तः?

गौतम! ये तस्य तत्र परिपार्श्वतः तल्लेश्याः देवावासाः, तत्र तस्य गतिः, तत्र तस्य उपपातः प्रज्ञप्तः। सः तत्र गतः विराध्येत्, कर्मलेश्यामेव प्रतिपतति, सः तत्र गतः नो विराध्येत्, तामेव लेश्याम् उपसम्पद्य विहरति।

हिन्दी अनुवाद

संग्रहणी गाथा

१. चर २. उन्माद ३. शरीर ४. पुद्गल ५. अग्नि ६. आहार कैसा हो? ७,८. संसृष्ट, अन्तर ९. अनगार १०. केवली।

लेश्यानुसारी उपपात पद

१. राजगृह नगर यावत् गौतम ने इस प्रकार कहा—भंते! भावितात्मा अनगार ने चरम देवावास का व्यतिक्रमण किया, परम देवावास को संप्राप्त नहीं किया, इस मध्य वह काल करे तो भंते! उसकी गति और उसका उपपात कहां प्रज्ञप्त है?
गौतम! वहां जो परिपार्श्व है—मध्यवर्ती देवलोक हैं, जिस लेश्या में वर्तमान भावितात्मा अनगार ने काल किया, उस लेश्या के अनुरूप जो देवावास हैं वहां उसकी गति और उपपात प्रज्ञप्त है। वह वहां जाकर उत्पत्ति-कालीन लेश्या के परिणाम की विराधना करता है तो कर्म लेश्या से उसका प्रतिपतन हो जाता है, अशुभतर लेश्या में चला जाता है। वह वहां जाकर विराधना नहीं करता है तो उसी लेश्या की उपसंपदा में रहता है।

भाष्य

१. सूत्र १

प्रस्तुत सूत्र में पुनर्जन्म के दो नियमों का विधान किया गया है—

१. आयुष्य के बंध के समय जैसी लेश्या होती है, उसी के अनुरूप आयुष्य का बंध होता है।

२. मृत्यु के समय जीव की जो लेश्या होती है, उसी लेश्या में उसका उपपात होता है।

जीव जिस लेश्या में मरता है, उसी लेश्या में उत्पन्न होता है, इस सिद्धांत की जानकारी के लिए द्रष्टव्य है उत्तरज्झयणाणि ३४/५८-६० तथा श्लोक ३४/६० का टिप्पण, प्रज्ञापना १७/९०-९९, भगवई ३/१८३।

आयुष्य का बंध आत्म-परिणाम के आधार पर होता है। जैसा आत्म-परिणाम होता है, आयुष्य का बंध उसके अनुरूप होता है।[1]

आयुष्य बंध का संबंध भावी गति से है। मूल गतियां चार हैं—नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देव। उनके अवान्तर प्रकार अनेक हैं। प्रज्ञापना में आयुष्य बंध के समय का निर्देश उपलब्ध है।[2] आत्म-परिणाम की धारा

१. भ. ६/११४-११६

२. पण्ण. ५/५९-६१ का भाष्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बदलती रहती है। उसमें आरोह-अवरोह होता रहता है। जीवन में आयुष्य का बंध एक बार होता है।[1]

आयुष्य का बंध अनिर्णीत रहता है, उस स्थिति में आयुष्य बंध के योग्य परिणामों में उतार-चढाव आता रहता है। इस सिद्धांत का निष्कर्ष है–चरम देवावास का व्यतिक्रमण और परम देवावास की असंप्राप्ति।

लेश्या के प्रतिपतन का सिद्धांत कर्म लेश्या पर आधृत है। वृत्तिकार ने कर्मलेश्या का अर्थ कर्म के कारण होने वाली जीव की परिणति किया है। इसका तात्पर्य है भाव लेश्या।[2] कर्म लेश्या से संबद्ध परमाणु स्कंधों के लिए भी कर्म लेश्या पद का प्रयोग होता है। द्रष्टव्य भगवई १४/१२३-१२५।

उत्तराध्ययन में छहों लेश्याओं को कर्म लेश्या कहा गया है।[3] उसके चौंतीसवें अध्ययन का आमुख द्रष्टव्य है।

यदि देवावास में उत्पन्न देव उत्पत्ति के समय होने वाले परिणाम की आराधना करता रहता है तो शुभ लेश्या निरंतर बनी रहती है। यदि वह उत्पत्तिकालीन परिणाम की विराधना करता है तो उसका प्रतिपात हो जाता है, अशुभ लेश्या आ जाती है। देवावास की द्रव्यलेश्या वही रहती है क्योंकि देवता की द्रव्य लेश्या अवस्थित होती है।[4]

वैमानिक देवों में द्रव्य लेश्या तीन होती हैं–पीत, पद्म और शुक्ल। भाव लेश्या छहों ही होती हैं।[5]

जयाचार्य ने लेश्या के प्रतिपात की विशद समीक्षा की है। उनके अनुसार शुभ लेश्या के मध्य में अशुभ लेश्या के परिणाम भी आ सकते हैं किन्तु उनमें तीव्र अशुभ लेश्या के परिणाम नहीं होते, अशुभ लेश्या के मंद परिणाम हो सकते हैं। उनकी विवक्षा नहीं की इसलिए शुभ लेश्या की निरंतरता का सूत्र प्रतिपादित किया गया है।[6]

इस प्रकरण में आयुष्य तथा स्थिति आदि के बंध की योग्यता का प्रतिपादन किया गया है।[7] एक अनगार उत्तरोत्तर प्रशस्त अध्यवसाय स्थानों में वर्तमान है, उन प्रशस्त अध्यवसाय स्थानों के आधार पर उसने सौधर्म आदि देवस्थिति के बंध की योग्यता का अतिक्रमण कर दिया, परभागवर्ती देवस्थिति आदि के बंध की योग्यता प्राप्त नहीं हुई है। इस नियम से आयुष्य-बंध का एक सिद्धांत फलित होता है कि आयुष्य बंध के प्रसंग जीवन में अनेक बार आते हैं, अध्यवसाय स्थानों में भी उतार-चढ़ाव आता रहता है। ये सब आयुष्य बंध के प्रसंग हैं।[8]

शब्द विमर्श–

चरम–अर्वाग्वर्ती, पूर्ववर्ती, जैसे–सौधर्म।

परम–परवर्ती, उत्तरवर्ती, जैसे–सनत्कुमार।

परिपार्श्व–मध्यवर्ती, जैसे–सौधर्म और सनत्कुमार के मध्य ईशान आदि।

कर्म लेश्या–भाव लेश्या।

२. अणगारे णं भंते! भावियप्पा चरमं असुरकुमारावासं वीतिक्कंते, परमं असुरकुमारावासमसंपत्ते, एत्थ णं अंतरा कालं करेज्जा, तस्स णं भंते! कहिं गती? कहिं उववाए पण्णत्ते?

गोयमा! जे से तत्थ परिपस्सओ तल्लेसा असुरकुमारावासा, तहिं तस्स गती, तहिं तस्स उववाए पण्णत्ते। से य तत्थ गए विराहेज्जा कम्मलेस्सामेव पडिपडति, से य तत्थ गए नो विराहेज्जा, तामेव लेस्सं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ।

अनगारः भदन्त! भावितात्मा चरमम् असुरकुमारावासं व्यतिक्रान्तः, परमम् असुरकुमारावासमसम्प्राप्तः, अत्र अन्तरा कालं कुर्यात्, तस्य भदन्त! कुत्र गतिः? कुत्र उपपातः प्रज्ञप्तः?

गौतम! ये तस्य तत्र परिपार्श्वतः तल्लेश्याः असुरकुमारावासाः, तत्र तस्य गतिः, तत्र तस्य उपपातः प्रज्ञप्तः। सः तत्र गतः विराध्येत्, कर्मलेश्यामेव प्रतिपतति, सः च तत्र गतः नो विराध्येत्, तामेव लेश्याम् उपसम्पद्य विहरति।

२. भंते! भावितात्मा अनगार ने चरम असुरकुमारावास का व्यतिक्रमण किया, परम असुरकुमारावास को प्राप्त नहीं किया, इस मध्य वह काल करे तो उसकी गति और उसका उपपात कहां प्रज्ञप्त है?

गौतम! वहां जो परिपार्श्व है, मध्यवर्ती असुरकुमारावास हैं, जिस लेश्या में वर्तमान भावितात्मा अनगार ने काल किया, उस लेश्या के अनुरूप जो असुरकुमारावास हैं, वहां उसकी गति और उसका उपपात प्रज्ञप्त है। वह वहां जाकर उत्पत्तिकालीन लेश्या के परिणाम की विराधना करता है तो कर्म लेश्या से उसका प्रतिपतन हो जाता है, अशुभतर लेश्या में चला जाता है। वह वहां जाकर विराधना नहीं करता है तो उसी लेश्या की उपसंपदा में रहता है।

---

१. द्रष्टव्य भ. ५/४६-६१,६८-७१ का भाष्य।

२. भ. वृ. सू. १४/१–कम्मलेस्सामेव त्ति कर्म्मणः सकाशाद्या लेश्या–जीवपरिणतिः सा कर्म्मलेश्या भावलेश्येत्यर्थः।

३. उत्तर. ३४/१।

४. भ. वृ. १४/१–स पुनरनगारस्तत्र मध्यमभागवर्तिनि देवावासे गतः विराहिज्ज त्ति येन लेश्यापरिणामेन तत्रोत्पन्नस्तं परिणामं यदि विराधयेत्तदा ....'तामेव प्रतिपतति' तस्या एव प्रतिपतति अशुभतरतां याति न तु द्रव्यलेश्यायाः प्रतिपतति सा हि प्राक्तन्येवास्ते, द्रव्यतोऽवस्थित लेश्यात्वा देवानमिति।

५. त. भा. सू. वृ. ४/२३. प्र. ३०५ भावलेश्या पुनरध्यवसायरूपत्वात् षडपि वैमानिकानां सन्तीत्यवगन्तव्यम्।

६. भ. जो. ढाल २६१ गाथा २६-२०।

७. भ. वृ. सू. १४/१।

८. भ. ३०/१०-११–द्रष्टव्य भगवई १/३५६-३६३ का भाष्य।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एवं जाव थणियकुमारावासं, जोइसियावासं, एवं वेमाणियावासं जाव विहरइ॥

एवं यावत् स्तनितकुमारावासम्, ज्योतिष्कावासम्, एवं वैमानिकावासं यावत् विहरति।

इसी प्रकार यावत् स्तनितकुमारावास, ज्योतिष्कावास, वैमानिकावास यावत् विहरण करता है।

भाष्य

१. सूत्र २

सम्यग्दृष्टि केवल वैमानिक देव के आयुष्य का बंध करता है।[1] फिर भावितात्मा अनगार के असुरकुमार के आयुष्य का बंध कैसे हो सकता है? इस प्रश्न के समाधान में वृत्तिकार ने दो हेतु प्रस्तुत किए हैं–

१. भावितात्मा पूर्व काल की अपेक्षा से कहा गया है और वह अंत काल में संयम की विराधना कर देता है इसलिए उसका उपपात असुरकुमार में होता है।[2]

२. प्रस्तुत प्रकरण में भावितात्मा का प्रयोग बाल तपस्वी के लिए किया गया है।[3]

जयाचार्य ने वृत्तिकार के अभिमत के साथ एक बात और स्पष्ट की है–बाल तपस्वी भी गृहस्थ होता है अतः उसके लिए भी अनगार शब्द का प्रयोग किया जा सकता है।[4]

नेरइयादीणं गतिविसय-पदं

३. नेरइयाणं भंते ! केरिसा सीहा गती ? केरिसे सीहे गतिविसए पण्णत्ते ?

गोयमा ! से जहानामए–केइ पुरिसे तरुणे बलवं जुगवं जुवाणे अप्पातंके थिरग्गहत्थे दढपाणि-पाय-पास-पिट्ठंतरोरुपरिणते तलजमलजुयल-परिघनिभबाहू चम्मेट्ठग-दुहण-मुट्ठिय - समाहत - निचितगत्तकाए उरस्सबलसमण्णागए लंघण-पवण-जइण-वायाम-समत्थे छेए दक्खे पत्तट्ठे कुसले मेहावी निउणे निउणसिप्पोवगए आउंटियं बाहं पसारेज्जा, पसारियं वा बाहं आउंटेज्जा, विक्खिवण्णं वा मुट्ठिं साहरेज्जा, साहरियं वा मुट्ठिं विक्खिरेज्जा, उम्मिसियं वा अच्छिं निम्मिसेज्जा, निम्मिसियं वा अच्छिं उम्मिसेज्जा, भवे एयारूवे ?

नैरयिकादीनां गतिविषय-पदम्

नैरयिकादीनां भदन्त! कथं शीघ्रा गतिः? कथं शीघ्रः गतिविषयः प्रज्ञप्तः? गौतम! अथ यथानामकः–कश्चित् पुरुषः तरुणः बलवान् युगवान् युवा अल्पातङ्कः स्थिराग्रहस्तः दृढपाणि-पाद-पार्श्व-पृष्ठान्तरोरुपरिणतः तलयमलयुगल-परिघनिभबाहु चर्मेष्टक-द्रुघण-मुष्टिक-समाहत-निचित-गात्रकायः औरस्यबल-समन्वागतः लङ्घन-पवन-जविन-व्यायाम-समर्थः छेकः दक्षः प्राप्तार्थः कुशलः मेधावी निपुणः निपुण-शिल्पोपगतः आकुञ्चितं बाहुं प्रसारयेत्, प्रसृतं वा बाहुम् आकुञ्चेत् विकीर्णं मुष्टिं संहरेत्, संहृतं वा मुष्टिं विकुर्यात् उन्मिषितं वा अक्षिं निमिषेत् निमिषितं वा अक्षिम् उन्मिषेत्, भवेत् एतद्रूपः?

नैरयिक आदि का गति विषयक पद

३. भंते! नैरयिकों के कैसी शीघ्र गति होती है? किस प्रकार का शीघ्र गति-काल प्रज्ञप्त है?

गौतम! जैसे कोई पुरुष तरुण, बलवान्, युगवान्, युवा, स्वस्थ और सधे हुए हाथों वाला है, उसके हाथ, पांव, पार्श्व, पृष्ठान्तर और उरु दृढ तथा विकसित हैं। सम श्रेणी में स्थित दो ताल वृक्ष और परिघा के समान जिसकी भुजाएं हैं। चर्मेष्टक, पाषाण, मुद्गर और मुट्ठी के प्रयोगों से जिसके शरीर के पुट्ठे आदि सुदृढ हैं। जो आंतरिक उत्साह बल से युक्त है। लंघन, प्लवन, धावन और व्यायाम करने में समर्थ है। छेक, दक्ष, प्राप्तार्थ, कुशल, मेधावी, निपुण और सूक्ष्म शिल्प से समन्वित है। वह पुरुष संकुचित भुजा को फैलाता है, फैलाई हुई भुजा को संकुचित करता है। खुली मुट्ठी को बंद करता है, बंद मुट्ठी को खोलता है। खुली आंखों को बंद करता है, बंद आंखों को खोलता है। क्या नैरयिकों का गति-काल इतनी शीघ्रता से होता है?

नो इणट्ठे समट्ठे। नेरइया णं एगसमइएण वा दुसमइएण वा तिसमइएण वा विग्गहेणं उववज्जंति। नेरइयाणं गोयमा ! तहा सीहा गती, तहा सीहे गतिविसए पण्णत्ते। एवं जाव वेमाणियाणं, नवरं–एगिंदियाणं चउसमइए विग्गहे भाणियव्वे। सेसं तं चेव॥

नो अयमर्थः समर्थः। नैरयिकाः एकसामयिकेन द्विसामयिकेन वा त्रिसामयिकेन वा विग्रहेण उपपद्यन्ते। नैरयिकानां गौतम! तथा शीघ्रा गतिः, तथा शीघ्रः गतिविषयः प्रज्ञप्तः। एवं यावत् वैमानिकानाम् नवरम्–एकेन्द्रियाणां चतुर्सामयिकः विग्रहः भणितव्यः। शेषं तत् चैव।

यह अर्थ संगत नहीं है। नैरयिक एक समय, दो समय अथवा तीन समय वाली विग्रह गति से उपपन्न हो जाते हैं। गौतम! नैरयिकों के वैसी शीघ्र गति, वैसा शीघ्र गति-काल प्रज्ञप्त है। इस प्रकार यावत् वैमानिक, इतना विशेष है–एकेन्द्रियों के चार समय वाली विग्रह गति वक्तव्य है, शेष पूर्ववत्।

---

१. भ. ३०/१०-११, द्रष्टव्य भ. १/३५६-३६३ का भाष्य।

२. भ. वृ. सू. १४/२–पूर्वकालापेक्षया भावितात्मत्वम् अन्तकाले च संयम-विराधना असद्भावादसुरकुमारादितयोपपात इति न दोषः।

३. भ. वृ. १४/२–बालतपस्वी वाऽयं भावितात्मा द्रष्टव्य इति।

४. भ. जो. खंड ३, ढाल २६१. गाथा ५४-५७।

इहां भावितात्म अणगार, किम उपजै असुर मझार।
पिण चरण विराधक हुंत, कोइ असुर विषै उपजंत॥
पूर्व काल तणी अपेक्षाय, भावितात्मपणुं कहिवाय।
अंतकाल विराधि चरित्र, कोइ असुर विषै उपपत्त॥
तथा बाल तपस्वी देख, भावितात्मा कह्यो तसु लेख।
कह्यो वृत्ति थी ए अधिकार, घर रहित माटै अणगार॥
इम यावत थणियकुमारावासं, जोतिषि नां आवास प्रकाशं।
वैमानीक आवासाज एम, यावत विचरंता सुर तेम॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भाष्य

१. सूत्र ३

नैरयिकों की गति भुजा को फैलाने और संकुचित करने से अधिक त्वरित बतलाई गई है। इसका हेतु यह है–भुजा को फैलाने और संकुचित करने में असंख्य समय का काल लगता है। नैरयिक एक, दो अथवा तीन समय में नरक के उत्पत्ति स्थान में चले जाते हैं इसलिए उनकी गति अति त्वरित है।

सूत्र में विग्रह शब्द का प्रयोग एक समय, दो समय और तीन समय–तीनों के साथ किया गया है। अभयदेवसूरि ने एक समय की गति के साथ विग्रह शब्द के योग को अस्वीकृत किया है।[1] उन्होंने विग्रह को वक्र का पर्यायवाची माना है इसलिए उन्होंने एक समय वाली गति के साथ विग्रह शब्द को अस्वीकार किया है किंतु विग्रह का अर्थ केवल वक्र नहीं है।

सिद्धसेन गणि ने भाष्य को उद्धृत करते हुए विग्रह शब्द के पर्यायवाची तीन शब्दों का उल्लेख किया है–विग्रह, अवग्रह और श्रेण्यन्तर संक्रान्ति।[2]

प्रस्तुत आगम के चौंतीसवें शतक में 'एगसमयेणं विग्गहेणं उववज्जेज्जा' यह स्पष्ट पाठ है।[3]

विमर्श के लिए द्रष्टव्य भगवई १/३३५–३३८ का भाष्य।

सूत्रकार ने एकेन्द्रिय जीवों की विग्रह गति चार समय वाली बतलाई है। वृत्तिकार ने इसकी व्याख्या में लिखा है– त्रसनाड़ी से बाहर अधोलोक में मरने वाला जीव विदिशा से दिशा में आता है। जीवों की गति अनुश्रेणी होती है, इस नियम के अनुसार उसकी गति का कालमान एक समय होता है। वह जीव दूसरे समय में लोक के मध्य में प्रवेश करता है, तीसरे समय में ऊर्ध्वलोक में जाता है, चौथे समय में निश्चित दिशा में व्यवस्थित उत्पत्ति स्थान में जाता है।

वृत्तिकार के अनुसार सूत्र का यह पाठ बहुलता की अपेक्षा से है। अन्यथा एकेन्द्रिय जीवों की पांच समय वाली गति भी होती है।[4]

जयाचार्य ने वृत्तिकार के मत की समीक्षा की है और बतलाया है कि यह मत आगम सम्मत नहीं है।[5]

नेरइयादीणं अणंतरोववन्नगादि-पदं

४. नेरइया णं भंते! किं अणंतरोववन्नगा? परंपरोववन्नगा? अणंतर-परंपर-अणुववन्नगा?

गोयमा! नेरइया अणंतरोववन्नगा वि, परंपरोववन्नगा वि, अणंतर-परंपर-अणुववन्नगा वि॥

नैरयिकादीनाम् अनन्तरोपपन्नकादि-पदम्

नैरयिकाः भदन्त! किम् अनन्तरोपपन्नकाः? परम्परोपपन्नकाः? अनन्तर-परम्पर-अनुपपन्नकाः?

गौतम! नैरयिकाः अनन्तरोपपन्नकाः अपि, परम्परोपपन्नकाः अपि, अनन्तर-परम्पर-अनुपपन्नकाः अपि।

नैरयिक का अनंतर उपपन्नक आदि पद

४. भंते! क्या नैरयिक अनंतर उपपन्नक हैं? परंपर उपपन्नक हैं? अनंतर-परंपर अनुपपन्नक हैं?

गौतम! नैरयिक अनंतर उपपन्नक भी हैं, परंपर उपपन्नक भी हैं, अनंतर-परंपर अनुपपन्नक भी हैं।

५. से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ–नेरइया अणंतरोववन्नगा वि, परंपरोववन्नगा वि, अणंतर-परंपर-अणुववन्नगा वि?

गोयमा! जे णं नेरइया पढमसमयोववन्नगा ते णं नेरइया अणंतरोववन्नगा, जे णं नेरइया अपढमसमयोववन्नगा ते णं नेरइया परंपरोववन्नगा, जे णं नेरइया विग्गहगइसमावन्नगा ते णं नेरइया अणंतर-परंपर-अणुववन्नगा। से तेणट्ठेणं जाव अणंतर-परंपर-अणुववन्नगा वि। एवं निरंतरं जाव वेमाणिया॥

तत् केनार्थेन भदन्त! एवमुच्यते–नैरयिकाः अनन्तरोपपन्नकाः अपि, परम्परोपपन्नकाः अपि, अनन्तर-परम्पर-अनुपपन्नकाः अपि।

गौतम! ये नैरयिकाः प्रथमसमयोपपन्नकाः ते नैरयिकाः अनन्तरोपपन्नकाः, ये नैरयिकाः अप्रथमसमयोपपन्नकाः ते नैरयिकाः परम्परोपपन्नकाः, ये नैरयिकाः विग्रह-गतिसमापन्नकाः ते नैरयिकाः अनन्तर-परम्पर-अनुपपन्नकाः। तत् तेनार्थेन यावत् अनन्तर-परम्पर-अनुपपन्नकाः अपि। एवं निरन्तरं यावत् वैमानिकाः।

५. भंते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है–नैरयिक अनंतर उपपन्नक भी हैं, परंपर उपपन्नक भी हैं, अनंतर-परंपर अनुपपन्नक भी हैं?

गौतम! जो नैरयिक प्रथम समय उपपन्नक हैं, वे नैरयिक अनंतर उपपन्नक हैं। जो नैरयिक अप्रथमसमय उपपन्नक हैं, वे नैरयिक परंपर-उपपन्नक हैं। जो नैरयिक विग्रह गति–अंतराल-गति में समापन्नक हैं, वे नैरयिक अनंतर-परंपर अनुपपन्नक हैं। इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है–यावत् अनंतर-परंपर अनुपपन्नक भी हैं। इसी प्रकार निरंतर यावत् वैमानिक।

---

१. भ. वृ. सू. १४/३–एगसमएण व त्ति एकेन समयेनोपपद्यन्त इति योगः, ते च ऋजुगतावेव, वा शब्दो विकल्पे, इह च विग्रहशब्दो न संबंधितः, तस्यैक सामयिकस्याभावात् दुसमएण व त्ति द्वौ समयौ यत्र स द्विसमयस्तेन विग्रहेणेति योगः, एवं त्रिसमयेन वा विग्रहेण–वक्रेण।

२. तत्त्वार्थाधिगम सू. २/२९ स्वोपज्ञ भाष्य. पृ. १८२–१८३. विग्रहो वक्रितम्, विग्रहोऽवग्रहः श्रेण्यन्तरसंक्रान्तिरित्यनर्थान्तरम्।

३. भ. ३४/३ उज्जु आयताए सेढीए उववज्जमाणे एगसमइएणं विग्गहेणं उववज्जेज्जा।

४. भ. वृ. प. १४/३–त्रसनाड्या बहिस्तादधोलोके विदिशो दिशं यात्येकेन, जीवानामनुश्रेणिगमनात्, द्वितीयेन तु लोकमध्ये प्रविशति, तृतीयेनोर्ध्वं याति, चतुर्थेन तु त्रसनाडीतो निर्गत्य दिग्व्यवस्थितमुत्पादस्थानं प्राप्नोतीति, एतच्च बाहुल्यमंगीकृत्योच्यते, अन्यथा पंचसमयोऽपि विग्रहो भवेदेकेन्द्रियाणाम्।

५. भ. जो. खंड ३. ढाल २९१. गाथा १०३–१०५।

वृत्ति में बहु बाता विरुद्ध, सूत्र थी अणमिलती अशुद्ध।
ते अशुद्ध किण रीत मानीजै, मिलती ह्वै ते अंगीकार कीजै॥
छद्मस्थ अणाहारि सोय, सूत्र में कह्या समया दोय।
तीन समय कह्या वृत्तिकार, ए पिण पंच समय जिम धार॥
तिण्सुं अणमिलती न मनाय, विरुद्ध बात बहु वृत्ति मांय।
वर न्याय विचार वरीत, राखो सूत्र तणीज प्रतीत॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भाष्य

१. सूत्र ४-५

शब्द विमर्श

अनंतर उपपन्नक–जिस नैरयिक के उपपात में एक समय का कालमान होता है, वह अनंतर उपपन्नक कहलाता है।

परंपर उपपन्नक–जिस नैरयिक के उपपात में दो अथवा तीन समय का कालमान होता है, वह परंपर उपपन्नक कहलाता है।

अनंतर-परंपर अनुपपन्नक–जो नैरयिक विग्रह गति (अंतराल गति) में होता है, उसका उपपात अभी नहीं हुआ है इसलिए वह अनंतर-परंपर अनुपपन्नक कहलाता है।

६. अणंतरोववन्नगा णं भंते ! नेरइया किं नेरइयाउयं पकरेंति? तिरिक्खमणुस्सदेवाउयं पकरेंति ?
गोयमा ! नो नेरइयाउयं पकरेंति जाव नो देवाउयं पकरेंति॥

अनन्तरोपपन्नकाः भदन्त! नैरयिकाः किं नैरयिकायुष्कं प्रकुर्वन्ति? तिर्यग्-मनुष्य-देवायुष्कं प्रकुर्वन्ति?
गौतम! नो नैरयिकायुष्कं प्रकुर्वन्ति यावत् नो देवायुष्कं प्रकुर्वन्ति।

६. भंते! अनंतर उपपन्नक नैरयिक क्या नैरयिक आयुष्य का बंध करते हैं? क्या तिर्यंच, मनुष्य और देव आयुष्य का बंध करते हैं?
गौतम! न नैरयिक आयुष्य का बंध करते हैं, यावत् न देव आयुष्य का बंध करते हैं।

७. परंपरोववन्नगा णं भंते ! नेरइया किं नेरइयाउयं पकरेंति जाव देवाउयं पकरेंति ?
गोयमा! नो नेरइयाउयं पकरेंति, तिरिक्खजोणियाउयं पकरेंति, मणुस्साउयं पि पकरेंति, नो देवाउयं पकरेंति॥

परंपरोपपन्नकाः भदन्त! नैरयिकाः किं नैरयिकायुष्कं प्रकुर्वन्ति यावत् देवायुष्कं प्रकुर्वन्ति?
गौतम! नो नैरयिकायुष्कं प्रकुर्वन्ति, तिर्यग्योनिकायुष्कं प्रकुर्वन्ति, मनुष्यायुष्कं अपि प्रकुर्वन्ति, नो देवायुष्कं प्रकुर्वन्ति।

७. भंते! परंपर उपपन्नक नैरयिक क्या नैरयिक, आयुष्य का बंध करते हैं यावत् देव आयुष्य का बंध करते हैं?
गौतम! नैरयिक आयुष्य का बंध नहीं करते, तिर्यक्योनिक आयुष्य का बंध करते हैं, मनुष्य आयुष्य का भी बंध करते हैं, देव आयुष्य का बंध नहीं करते।

८. अणंतर-परंपर-अणुववन्नगा णं भंते! नेरइया किं नेरइयाउयं पकरेंति–पुच्छा।

गोयमा! नो नेरइयाउयं पकरेंति जाव नो देवाउयं पकरेंति। एवं जाव वेमाणिया, नवरं–पंचिंदियतिरिक्खजोणिया मणुस्सा य परंपरोववन्नगा चत्तारि वि आउयाइं पकरेंति। सेसं तं चेव॥

अनंतर-परम्पर-अनुपपन्नकाः भदन्त! नैरयिकाः किं नैरयिकायुष्कं प्रकुर्वन्ति? –पृच्छा।
गौतम! नो नैरयिकायुष्कं प्रकुर्वन्ति यावत् नो देवायुष्कं प्रकुर्वन्ति। एवं यावत् वैमानिकाः, नवरम्–पञ्चेन्द्रियतिर्यग्-योनिकाः मनुष्याः च परम्परोपपन्नकाः चत्वारि अपि आयुष्कानि प्रकुर्वन्ति। शेषं तत् चैव।

८. भंते! अनन्तर-परंपर अनुपन्नक क्या नैरयिक आयुष्य का बंध करते हैं–पृच्छा।

गौतम! नैरयिक आयुष्य का बंध नहीं करते यावत् देव आयुष्य का बंध नहीं करते। इसी प्रकार यावत् वैमानिक की वक्तव्यता। इतना विशेष है–परंपर उपपन्नक पंचेन्द्रिय तिर्यक् योनिक और मनुष्य चारों गतियों के आयुष्य का बंध करते हैं, शेष पूर्ववत्।

भाष्य

१. सूत्र ६–८

अनन्तर उपपन्नक और अनन्तर-परंपर अनुपपन्नक नैरयिकों में आयुष्य बंध के अनुरूप अध्यवसाय-स्थान नहीं होता, इसलिए उनके आयुष्य का बंध नहीं होता। परंपर उपपन्नक के आयुष्य का बंध होता है। आयुष्य बंध के समय की जानकारी के लिए द्रष्टव्य भगवई ५/५९-६१ का भाष्य।

९. नेरइया णं भंते! किं अणंतरनिग्गया? परंपरनिग्गया? अणंतर-परंपर-अनिग्गया ?
गोयमा! नेरइया अणंतरनिग्गया वि, परंपरनिग्गया वि, अणंतर-परंपर-अनिग्गया वि॥

नैरयिकाः भदन्त! किम् अनन्तरनिर्गताः? परम्परनिर्गताः? अनन्तर-परम्पर-अनिर्गताः?
गौतम! नैरयिकाः अनन्तरनिर्गताः अपि, परम्परनिर्गताः अपि, अनन्तर-परम्पर-अनिर्गताः अपि।

९. भंते! क्या नैरयिक अनंतर निर्गत हैं? क्या परंपर निर्गत हैं? क्या अनंतर-परंपर अनिर्गत हैं?
गौतम! नैरयिक अनंतर निर्गत भी हैं, परंपर निर्गत भी हैं, अनंतर-परंपर अनिर्गत भी हैं–न अनंतर निर्गत हैं, न परंपर निर्गत हैं।

१०. से केणट्ठेणं जाव अणंतर-परंपर-अनिग्गया वि?

तत् केनार्थेन यावत् अनन्तर-परम्पर-अनिर्गताः अपि?

१०. भंते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है–यावत् अनंतर-परंपर अनिर्गत भी हैं?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा! जे णं नेरइया पढमसमय-निग्गया ते णं नेरइया अणंतरनिग्गया, जे णं नेरइया अपढमसमयनिग्गया ते णं नेरइया परंपरनिग्गया, जे णं नेरइया विग्गहगतिसमावन्नगा ते णं नेरइया अणंतर-परंपर-अनिग्गया। से तेणट्ठेणं गोयमा! जाव अणंतर-परंपर-अनिग्गया वि। एवं जाव वेमाणिया॥

गौतम! ये नैरयिकाः प्रथमसमयनिर्गताः ते नैरयिकाः अनन्तरनिर्गताः, ये नैरयिकाः अप्रथमसमयनिर्गताः ते नैरयिकाः परम्परनिर्गताः, ये नैरयिकाः विग्रहगतिसमापन्नकाः ते नैरयिकाः अनन्तर-परम्पर-अनिर्गताः। तत् तेनार्थेन गौतम! यावत् अनन्तर-परम्पर-अनिर्गताः अपि। एवं यावत् वैमानिकाः।

गौतम! जो नैरयिक प्रथम समय निर्गत हैं, वे नैरयिक अनंतर समय निर्गत हैं। जो नैरयिक अप्रथम-समय निर्गत हैं, वे नैरयिक परंपर निर्गत हैं। जो नैरयिक विग्रहगति समापन्नक हैं, वे नैरयिक अनंतर-परंपर अनिर्गत हैं। गौतम! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है—यावत् अनंतर-परंपर अनिर्गत भी हैं। इसी प्रकार यावत् वैमानिक की वक्तव्यता।

११. अणंतरनिग्गया णं भंते! नेरइया किं नेरइयाउयं पकरेंति जाव देवाउयं पकरेंति?
गोयमा! नो नेरइयाउयं पकरेंति जाव नो देवाउयं पकरेंति॥

अनन्तरनिर्गताः भदन्तः नैरयिकाः किं नैरयिकायुष्कं प्रकुर्वन्ति यावत् देवायुष्कं प्रकुर्वन्ति?
गौतम! नो नैरयिकायुष्कं प्रकुर्वन्ति यावत् नो देवायुष्कं प्रकुर्वन्ति।

११. भंते! अनंतर निर्गत नैरयिक क्या नैरयिक आयुष्य का बंध करते हैं यावत् देव आयुष्य का बंध करते हैं?
गौतम! नैरयिक आयुष्य का बंध नहीं करते यावत् देव आयुष्य का बंध नहीं करते।

१२. परंपरनिग्गया णं भंते! नेरइया किं नेरइयाउयं पकरेंति—पुच्छा।
गोयमा! नेरइयाउयं पि पकरेंति जाव देवाउयं पि पकरेंति॥

परम्परनिर्गताः भदन्त! नैरयिकाः किं नैरयिकायुष्कं प्रकुर्वन्ति—पृच्छा।
गौतम! नैरयिकायुष्कम् अपि प्रकुर्वन्ति यावत् देवायुष्कम् अपि प्रकुर्वन्ति।

१२. भंते! परंपर निर्गत नैरयिक क्या नैरयिक आयुष्य का बंध करते हैं? पृच्छा।
गौतम! नैरयिक आयुष्य का भी बंध करते हैं यावत् देव आयुष्य का भी बंध करते हैं।

१३. अणंतर-परंपर-अनिग्गया णं भंते! नेरइया—पुच्छा।
गोयमा! नो नेरइयाउयं पकरेंति जाव नो देवाउयं पकरेंति। निरवसेसं जाव वेमाणिया॥

अनन्तर-परम्पर-अनिर्गताः भदन्त! नैरयिकाः—पृच्छा।
गौतम! नो नैरयिकायुष्कं प्रकुर्वन्ति यावत् नो देवायुष्कं प्रकुर्वन्ति। निरवशेषं यावत् वैमानिकाः।

१३. भंते! अनंतर-परंपर अनिर्गत नैरयिक की पृच्छा।
गौतम! नैरयिक आयुष्य का बंध नहीं करते यावत् देव आयुष्य का बंध नहीं करते। निरवशेष यावत् वैमानिक की वक्तव्यता।

भाष्य

१. सूत्र ९-१३

शब्द विमर्श

अनंतर निर्गत—जो जीव नरक से निकल कर दूसरे स्थान में पैदा हो गया, वह उत्पत्ति के प्रथम समय में अनंतर निर्गत कहलाता है।

परंपर निर्गत—जो जीव नरक से निकल कर दूसरे स्थान में पैदा हो गया, वह उत्पत्ति के दूसरे आदि समयों में परंपर निर्गत कहलाता है।

अनंतर-परंपर अनिर्गत—जो जीव नरक से निकलकर उत्पत्ति क्षेत्र तक नहीं पहुंचा, संप्रति विग्रह गति में विद्यमान है, वह अनंतर निर्गत और परंपर निर्गत दोनों से भिन्न है इसलिए वह अनंतर-परंपर अनिर्गत कहलाता है।

अनंतर निर्गत के आयुष्य का बंध नहीं हेता। परंपर निर्गत के आयुष्य का बंध होता है आयुष्य बंध के समय के लिए द्रष्टव्य भगवई ५/५९-६१ का भाष्य।

१४. नेरइया णं भंते! किं अणंतर-खेदोववन्नगा? परंपरखेदोववन्नगा? अणंतर-परंपर-खेदाणुववन्नगा?

गोयमा! नेरइया अणंतरखेदोववन्नगा वि, परंपरखेदोववन्नगा वि, अणंतर-परंपर-खेदाणुववन्नगा वि। एवं एएणं अभिलावेणं ते चेव चत्तारि दंडगा भाणियव्वा॥

नैरयिकाः भदन्त! किम् अनन्तर-खेदोपपन्नकाः? परम्परखेदोपपन्नकाः? अनन्तर-परम्पर-खेदोपपन्नकाः?

गौतम! नैरयिकाः अनन्तरखेदोपपन्नकाः अपि, परम्परखेदोपपन्नकाः अपि, अनन्तर-परम्पर-खेदानुपपन्नकाः अपि। एवम् एतेन अभिलापेन ते चैव चत्वारः दण्डकाः भणितव्याः।

१४. भंते! क्या नैरयिक अनंतर खेद के साथ उपपन्नक हैं? परंपर खेद के साथ उपपन्नक हैं? अनंतर-परंपर खेद के साथ अनुपपन्नक हैं?

गौतम! नैरयिक अनंतर खेद के साथ उपपन्नक भी हैं, परंपर खेद के साथ उपपन्नक भी हैं, अनंतर-परंपर खेद के साथ अनुपपन्नक भी हैं। इसी प्रकार इस अभिलाप की भांति चारों दंडक वक्तव्य हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भाष्य

१. सूत्र १४

शब्द विमर्श

अनंतर-खेदोपपन्नक—जो नैरयिक खेद प्रधान उपपत्ति के प्रथम समय में विद्यमान होता है, वह अनंतर खेदोपपन्नक कहलाता है।

परंपर-खेदोपपन्नक—जो नैरयिक खेद प्रधान द्वितीय आदि समय में विद्यमान होता है, वह परंपर खेदोपपन्नक कहलाता है।

अनंतर-परंपर-खेद-अनुपपन्नक—विग्रहगति में विद्यमान नैरयिक अनंतर-परंपर खेद-अनुपपन्नक कहलाता है।

चार दण्डक—

१. अनंतर खेदोपपन्नक आदि का प्रश्न।
२. अनंतर खेदोपपन्नक आदि के आयुष्य का प्रश्न।
३. अनंतर खेद निर्गत आदि का प्रश्न।
४. अनंतर खेद निर्गत आदि के आयुष्य का प्रश्न।

१५. सेवं भंते! सेवं भंते! त्ति जाव विहरइ॥

तदेवं भदन्त! तदेवं भदन्त! इति यावत् विहरति।

१५. भंते! वह ऐसा ही है। भंते! वह ऐसा ही है। यावत् विहरण करने लगे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बीओ उद्देसो : दूसरा उद्देशक

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
उम्माद-पदं	उन्माद-पदम्	उन्माद पद
१६. कतिविहे णं भंते! उम्मादे पण्णत्ते? गोयमा! दुविहे उम्मादे पण्णत्ते, तं जहा–जक्खाएसे य, मोहणिज्जस्स य कम्मस्स उदएणं। तत्थ णं जे से जक्खाएसे से णं सुहवेयणतराए चेव सुहविमोयणतराए चेव। तत्थ णं जे से मोहणिज्जस्स कम्मस्स उदएणं से णं दुहवेयणतराए चेव दुहविमोयणतराए चेव॥	कतिविधः भदन्त! उन्मादः प्रज्ञप्तः? गौतम! द्विविधः उन्मादः प्रज्ञप्तः, तद्यथा–यक्षावेशः च, मोहनीयस्य च कर्मणः उदयेन। तत्र यः सः यक्षावेशः सः सुखवेदनतराकः चैव, सुखविमोचनतराकः चैव। तत्र यः सः मोहनीयस्य कर्मणः उदयेन सः दुःखवेदनतराकः चैव दुःखविमोचनतराकः चैव।	१६. भंते! उन्माद कितने प्रकार का प्रज्ञप्त है? गौतम! उन्माद दो प्रकार का प्रज्ञप्त है, जैसे–यक्षावेश और मोहनीय कर्म के उदय से होने वाला। जो यक्षावेश का उन्माद है वह सुख वेदनतर है, उसका वेदन अतिशय क्लेश रहित होता है और सुख विमोचनतर है, उससे अतिशय क्लेश के बिना मुक्ति होती है। जो मोहनीय कर्म के उदय से होने वाला उन्माद है, उसका वेदन यक्षावेश के उन्माद की अपेक्षा अतिशय क्लेशपूर्वक होता है और वह दुःखविमोचनतर है, उससे यक्षावेश उन्माद की अपेक्षा अतिशय क्लेशपूर्वक मुक्ति होती है।
१७. नेरइयाणं भंते! कतिविहे उम्मादे पण्णत्ते? गोयमा! दुविहे उम्मादे पण्णत्ते, तं जहा–जक्खाएसे य, मोहणिज्जस्स य कम्मस्स उदएणं॥	नैरयिकानां भदन्त! कतिविधः उन्मादः प्रज्ञप्तः? गौतम! द्विविधः उन्मादः प्रज्ञप्तः, तद्यथा–यक्षावेशः च, मोहनीयस्य च कर्मणः उदयेन।	१७. भंते! नैरयिकों के कितने प्रकार का उन्माद प्रज्ञप्त है? गौतम! दो प्रकार का उन्माद प्रज्ञप्त है, जैसे–यक्षावेश और मोहनीय कर्म के उदय से होने वाला।
१८. से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ–नेरइयाणं दुविहे उम्मादे पण्णत्ते, तं जहा–जक्खाएसे य, मोहणिज्जस्स य कम्मस्स उदएणं? गोयमा! देवे वा से असुभे पोग्गले पक्खिवेज्जा, से णं तेसिं असुभाणं पोग्गलाणं पक्खिवणयाए जक्खाएसं उम्मादं पाउणेज्जा, मोहणिज्जस्स वा कम्मस्स उदएणं मोहणिज्जं उम्मायं पाउणेज्जा। से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ–नेरइयाणं दुविहे उम्मादे पण्णत्ते, तं जहा–जक्खाएसे य, मोहणिज्जस्स य कम्मस्स उदएणं॥	तत् केनार्थेन भदन्त! एवमुच्यते–नैरयिकानां द्विविधः उन्मादः प्रज्ञप्तः, तद्यथा–यक्षावेशः च, मोहनीयस्य च कर्मणः उदयेन? गौतम! देवः वा सः अशुभान् पुद्गलान् प्रक्षिपेत्, सः तेषाम् अशुभानां पुद्गलानां प्रक्षेपनया यक्षावेशम् उन्मादं प्राप्नुयात्, मोहनीयस्य वा कर्मणः उदयेन मोहनीयं उन्मादं प्राप्नुयात्। तत् तेनार्थेन गौतम! एवमुच्यते–नैरयिकानां द्विविधः उन्मादः प्रज्ञप्तः, तद् यथा–यक्षावेशः च, मोहनीयस्य च कर्मणः उदयेन।	१८. भंते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है–नैरयिकों के दो प्रकार का उन्माद प्रज्ञप्त है, जैसे–यक्षावेश और मोहनीय कर्म के उदय से होने वाला? गौतम! देव अशुभ पुद्गलों का प्रक्षेप करते हैं, उन अशुभ पुद्गलों के प्रक्षेप से नैरयिक यक्षावेश के उन्माद को प्राप्त होते हैं। मोहनीय कर्म के उदय से नैरयिक मोहनीय के उन्माद को प्राप्त होते हैं। गौतम! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है–नैरयिकों के दो प्रकार का उन्माद प्रज्ञप्त है, जैसे–यक्षावेश और मोहनीय कर्म के उदय से होने वाला।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१६. असुरकुमाराणं भंते! कतिविहे उम्मादे पण्णत्ते?
गोयमा! दुविहे उम्मादे पण्णत्ते, तं जहा–जक्खाएसे य, मोहणिज्जस्स कम्मस्स य उदएणं॥

असुरकुमाराणाम् भदन्त! कतिविधः उन्मादः प्रज्ञप्तः?
गौतम! द्विविधः उन्मादः प्रज्ञप्तः, तद्यथा–यक्षावेशः च मोहनीयस्य च कर्मणः उदयेन।

१६. भंते! असुरकुमारों के कितने प्रकार का उन्माद प्रज्ञप्त है?
गौतम! दो प्रकार का उन्माद प्रज्ञप्त है, जैसे–यक्षावेश और मोहनीय कर्म के उदय से होने वाला।

२०. से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ–असुरकुमाराणं दुविहे उम्मादे पण्णत्ते, तं जहा–जक्खाएसे य, मोहणिज्जस्स य कम्मस्स उदएणं?
गोयमा! देवे वा से महिड्ढियतराए असुभे पोग्गले पक्खिवेज्जा, से णं तेसिं असुभाणं पोग्गलाणं पक्खिवणयाए जक्खाएसं उम्मादं पाउणेज्जा, मोहणिज्जस्स वा कम्मस्स उदएणं मोहणिज्जं उम्मायं पाउणेज्जा। से तेणट्ठेणं जाव उदएणं। एवं जाव थणियकुमाराणं। पुढविक्काइयाणं जाव मणुस्साणं–एएसिं जहा नेरइयाणं, वाणमंतर-जोइस-वेमाणियाणं जहा असुरकुमाराणं॥

तत् केनार्थेन भदन्त! एवमुच्यते–असुरकुमाराणां द्विविधः उन्मादः प्रज्ञप्तः, तद्यथा–यक्षावेशः च, मोहनीयस्य च कर्मणः उदयेन?
गौतम! देवः वा सः महर्द्धिकतराकः अशुभान् पुद्गलान् प्रक्षिपेत्, सः तेषाम् अशुभानां पुद्गलानां प्रक्षेपनया यक्षावेशम् उन्मादं प्राप्नुयात्, मोहनीयस्य वा कर्मणः उदयेन मोहनीयम् उन्मादं प्राप्नुयात्। तत् तेनार्थेन यावत् उदयेन। एवं यावत् स्तनितकुमाराणाम्। पृथिवीकायिकानां यावत् मनुष्याणाम्–एतेषां यथा नैरयिकानाम् वानमन्तर-ज्योतिषवैमानिकानां यावत् असुर-कुमाराणाम्।

२०. भंते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है–असुरकुमारों के दो प्रकार का उन्माद प्रज्ञप्त है, जैसे–यक्षावेश और मोहनीय कर्म के उदय से होने वाला?
गौतम! महर्द्धिकतर देव अशुभ पुद्गलों का प्रक्षेप करते हैं, उन अशुभ पुद्गलों के प्रक्षेप से असुरकुमार यक्षावेश के उन्माद को प्राप्त होते हैं। मोहनीय कर्म के उदय से वे मोहनीय के उन्माद को प्राप्त होते हैं। इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है–यावत् कर्म के उदय से होने वाला। पृथ्वीकायिक यावत् मनुष्य–इनमें उन्माद नैरयिक की भांति वक्तव्य है। वाणमंतर, ज्योतिष्क, वैमानिक में उन्माद असुरकुमारों की भांति वक्तव्य है।

भाष्य

१. सूत्र १६-२०

कुछ कारणों से व्यक्ति की विवेक चेतना विलुप्त हो जाती है। उस अवस्था का नाम है उन्माद। प्रस्तुत प्रकरण में उन्माद के दो हेतु बतलाए गए हैं। उसके अन्य हेतु भी होते हैं। यहां वे विवक्षित नहीं हैं। स्थानांग में अवर्णवाद को भी उन्माद का हेतु बतलाया गया है।[1]

चरक ने उन्माद के दो प्रकार बतलाए हैं– दोषज और आगंतुक। दोषज के चार प्रकार हैं–वातज, पित्तज, कफज और सन्निपातज। आगंतुक उन्माद के आठ प्रकार हैं–१. देवोन्मत्त, २. गुरु, वृद्ध, सिद्ध ऋषि के शाप, ३. पितृग्रहोन्मत्त, ४. गंधर्वोन्मत्त, ५. यक्षोन्मत्त, ६. राक्षसोन्मत्त, ७. ब्रह्मराक्षसोन्मत्त, ८. पिशाचोन्मत्त।[2]

मस्तिष्कीय अव्यवस्था आदि अनेक शारीरिक स्थितियां भी उन्माद का कारण बन सकती हैं।

सूत्रकार ने यक्षावेश से होने वाले उन्माद की तुलना में मोह जन्य उन्माद को अधिक जटिल बतलाया है। अभयदेवसूरि ने मोहजन्य उन्माद की व्याख्या दो दृष्टिकोण से की है।

मोहनीय का एक प्रकार है मिथ्यात्व। उसके उदय से उन्माद हो सकता है।

मोहनीय का दूसरा प्रकार है चरित्र मोहनीय। उसका उदय होने पर मनुष्य विषय से होने वाली विकृति को जानकर भी उससे निवृत्त नहीं हो पाता। मोहनीय का एक भेद है वेद–कामवासना। उसका प्रबल उदय होने पर उन्माद की स्थिति बन जाती है।[3]

मोहजन्य उन्माद की तुलना के लिए आयुर्वेद के प्रज्ञापराध शब्द पर ध्यान देना उपयोगी होगा–

धीधृतिस्मृतिविभ्रष्टः कर्म यत् कुरुतेऽशुभम्।
प्रज्ञापराधं तं विद्यात् सर्वदोषप्रकोपणम्॥
यच्चान्यदीदृशं कर्म, रजोमोहसमुत्थितम्।
प्रज्ञापराधं तं शिष्टा, ब्रुवते व्याधिकारणम्॥
बुद्ध्या विषमविज्ञानं विषमं च प्रवर्तनम्।
प्रज्ञापराधं जातीयान्मनसो गोचरं हि तत्॥[4]

आगमकार ने यक्षजन्य उन्माद को सुख-वेदनतर और सुख-विमोचनतर तथा मोहजन्य उन्माद को दुःख-वेदनतर और दुःख-

---

१. ठाणं ६/४३
२. चरक निदान ७/१०
३. भ. वृ. सू. १४/१६ तत्र मोहनीयं–मिथ्यात्वमोहनीयं तस्योदयादुन्मादो भवति यतस्तदुदयवर्ती जन्तुरतत्त्वं तत्त्वं मन्यते तत्त्वमपि चातत्त्वं। चारित्रमोहनीयं वा यतस्तदुदये जानन्नपि विषयादीनां स्वरूपमजानन्निव वर्तते अथवा चारित्रमोहनीयस्यैव विशेषो वेदाख्यो मोहनीयं, यतस्तदुदय-विशेषेऽप्युन्मत्त एव भवति, यदाह–
चिंतेई, दट्ठुमिच्छई दीहं नीससई तह जरे दाहे।
भत्तअरोअग मुच्छा उम्माय न याणई मरणम्॥
४. चरक शारीरक १/१०२, १०८-१०९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विमोचनतर बतलाया है। अभयदेवसूरि का अभिमत है–यक्षावेशजन्य उन्माद का संबंध एक जन्म से है और मोहजन्य उन्माद का संबंध संसार-भ्रमण से है। संसार का स्वभाव है दुःख का वेदन।

अभयदेवसूरि ने विमोचन की व्याख्या में एक युक्ति संगत हेतु प्रस्तुत किया है। इस हेतु का आशय यह है– यक्षावेश जन्य उन्माद को यंत्र मात्र से भी समाप्त किया जा सकता है। मोहजन्य उन्माद विद्या, मंत्र, तंत्र और देवानुग्रह वाले चिकित्सकों से भी साध्य नहीं होता। इस हेतु से समझा जा सकता है– यक्षावेश जन्य उन्माद सुख-विमोचनतर है और मोहजन्य उन्माद दुःख-विमोचनतर है।[1]

मोहजन्य उन्माद सब प्राणियों में होता है किंतु यक्षावेश जन्य उन्माद नैरयिक और देव गण में कैसे हो सकता है? इस प्रश्न का उत्तर आगम में साक्षात् उपलब्ध है–देव अशुभ पुद्गलों का प्रक्षेप कर नैरयिक जीवों में यक्षावेश जन्य उन्माद पैदा कर सकता है, महर्द्धिक देव अल्पर्द्धिक देवों में अशुभ पुद्गलों का प्रक्षेप कर यक्षावेश जन्य उन्माद पैदा कर सकता है।

अशुभ पुद्गलों के प्रक्षेपण की विधि के आधार पर तांत्रिक विधि द्वारा अशुभ पुद्गलों के प्रक्षेपण को समझा जा सकता है। मारण, उच्चाटन आदि तांत्रिक प्रयोगों में भी अशुभ पुद्गलों का प्रक्षेपण किया जाता है।

वुट्ठिकायकरण-पदं

२१. अत्थि णं भंते! पज्जण्णे कालवासी वुट्ठिकायं पकरेति?
हंता अत्थि॥

वृष्टिकायकरण-पदम्

अस्ति भदन्त! पर्जन्यः कालवर्षी वृष्टिकायं प्रकरोति?
हन्त अस्ति।

वृष्टिकाय करण पद

२१. भंते! वर्षाकाल में बरसने वाला पर्जन्य क्या वर्षा करता है?
हां, करता है।

२२. जाहे णं भंते! सक्के देविंदे देवराया वुट्ठिकायं काउकामे भवइ से कहमियाणिं पकरेति?
गोयमा! ताहे चेव णं से सक्के देविंदे देवराया अब्भिंतरपरिसए देवे सद्दावेइ। तए णं ते अब्भिंतरपरिसगा देवा सद्दाविया समाणा मज्झिमपरिसए देवे सद्दावेंति। तए णं ते मज्झिमपरिसगा देवा सद्दाविया समाणा बाहिरपरिसए देवे सद्दावेंति। तए णं ते बाहिरपरिसगा देवा सद्दाविया समाणा बाहिरबाहिरगे देवे सद्दावेंति। तए णं ते बाहिरबाहिरगा देवा सद्दाविया समाणा आभिओगिए देवे सद्दावेंति। तए णं ते आभिओगिया देवा सद्दाविया समाणा वुट्ठिकाइए देवे सद्दावेंति। तए णं ते वुट्ठिकाइया देवा सद्दाविया समाणा वुट्ठिकायं पकरेंति। एवं खलु गोयमा! सक्के देविंदे देवराया वुट्ठिकायं पकरेति॥

यदा भदन्त! शक्रः देवेन्द्रः देवराजः वृष्टिकायं कर्तुकामः भवति सः कथम् इदानीं प्रकरोति?
गौतम! तदा चैव सः शक्रः देवेन्द्रः देवराजः आभ्यन्तरपरिषत्कान् देवान् शब्दयति। ततः ते आभ्यन्तरपरिषत्काः देवाः शब्दायिताः सन्तः मध्यम-परिषत्कान् देवान् शब्दयन्ति ततः ते मध्यमपरिषत्काः देवाः शब्दायिताः सन्तः बाह्यपरिषत्कान् देवान् शब्दयन्ति। ततः ते बाह्यपरिषत्काः देवाः शब्दयिताः सन्तः बाह्यबाह्यकान् देवान् शब्दयन्ति। ततः ते बाह्यबाह्यकाः देवाः शब्दायिताः सन्तः आभियोगिकान् देवान् शब्दयन्ति। ततः ते आभियोगिकाः देवाः शब्दायिताः सन्तः वृष्टिकायिकान् देवान् शब्दयन्ति। ततः ते वृष्टिकायिकाः देवाः शब्दायिताः सन्तः वृष्टिकायं प्रकुर्वन्ति। एवं खलु गौतम! शक्रः देवेन्द्रः देवराजः वृष्टिकायं प्रकरोति।

२२. भंते! जब देवराज देवेन्द्र शक्र वर्षा करना चाहता है तब वह कैसे करता है?

गौतम! तब देवराज देवेन्द्र शक्र आभ्यंतर परिषद् के देवों को आमंत्रित करता है। आभ्यंतर परिषद् के देव शक्र का निर्देश प्राप्त कर मध्यम परिषद् के देवों को बुलाते हैं। मध्यम परिषद् के देव आभ्यंतर परिषद् का निर्देश प्राप्त कर बाह्य परिषद् के देवों को बुलाते हैं। बाह्य परिषद् के देव मध्यम परिषद् का निर्देश प्राप्त कर बाह्यबाह्यक परिषद् के देवों को बुलाते हैं। बाह्यबाह्यक परिषद् के देव बाह्य परिषद् के निर्देश पर आभियोगिक देवों को बुलाते हैं। आभियोगिक परिषद् के देव बाह्यबाह्यक परिषद् के निर्देश पर वृष्टिकायिक देवों को बुलाते हैं। वे वृष्टिकायिक देव आभियोगिक देवों के निर्देश पर वर्षा करते हैं। गौतम! इस प्रकार देवराज देवेन्द्र शक्र वर्षा करता है।

२३. अत्थि णं भंते! असुरकुमारा वि देवा वुट्ठिकायं पकरेंति?
हंता अत्थि॥

अस्ति भदन्त! असुरकुमाराः देवाः वृष्टिकायं प्रकुर्वन्ति?
हन्त अस्ति।

२३. भंते! क्या असुरकुमार देव वर्षा करते हैं?
हां, करते हैं।

१. भ. वृ. सू. १४/१६–मोहजन्योन्माद इतरापेक्षया दुःखविमोचनतरो भवत्यन्त-संसारकारणत्वात्, संसारस्य च दुःखवेदनस्यभावत्वात् इतरस्तु सुखवेदनतर एव, एक भविकत्वादिति, तथा मोहजोन्माद इतरापेक्षया दुःखविमोचनतरो भवति, विद्यामंत्रतंत्रदेवानुग्रहवतामपि वार्तिकानां तस्याऽसाध्यत्वात्, इतरस्तु सुखविमोचनतर एव भवति यंत्रमात्रेणाऽपि तस्य निग्रहीतुं शक्यत्वादिति–
सर्वज्ञमंत्रवानपि, यस्य न सर्वस्य निग्रहे शक्तः।
मिथ्यामोहोन्मादः, स केन किल कथ्यतां तुल्यः॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२४. किंपत्तियं णं भंते! असुरकुमारा देवा वुट्ठिकायं पकरेंति?
गोयमा! जे इमे अरहंता भगवंतो—एएसि णं जम्मणमहिमासु वा निक्खमणमहिमासु वा नाणुप्पायमहिमासु वा परिनिव्वाणमहिमासु वा, एवं खलु गोयमा! असुरकुमारा देवा वुट्ठिकायं पकरेंति। एवं नागकुमारा वि, एवं जाव थणियकुमारा। वाणमंतर-जोइसिय-वेमाणिया एवं चेव॥

किंप्रत्ययं भदन्त! असुरकुमाराः देवाः वृष्टिकायं प्रकुर्वन्ति?
गौतम! ये इमे अर्हतः भगवन्तः—एतेषां जन्ममहिमसु वा निष्क्रमणमहिमसु वा ज्ञानोत्पादमहिमसु वा परिनिर्वाणमहिमसु वा, एवं खलु गौतम! असुरकुमाराः देवाः वृष्टिकायं प्रकुर्वन्ति एवं नागकुमाराः अपि, एवं यावत् स्तनितकुमाराः। वानमन्तर-ज्योतिष्क-वैमानिकाः एवं चैव।

२४. भंते! असुरकुमार देव किस कारण से वर्षा करते हैं?
गौतम! जो ये अरहंत भगवान हैं, इनके जन्म महिमा में, निष्क्रमण महिमा में, केवलज्ञान उत्पत्ति महिमा में, परिनिर्वाण महिमा में। गौतम! इस प्रकार ये असुरकुमार देव वर्षा करते हैं। इस प्रकार नागकुमार भी, इसी प्रकार यावत् स्तनितकुमार। इसी प्रकार वाणमंतर, ज्योतिष्क, वैमानिक की वक्तव्यता।

भाष्य

१. सूत्र २१–२४

प्रस्तुत प्रकरण में वर्षा के दो कारणों का उल्लेख है—
१. प्राकृतिक रूप में होने वाली वर्षा।
२. देव कृत वर्षा।

तीर्थंकरों के जन्म, महाभिनिष्क्रमण, केवलज्ञान उत्पाद और परिनिर्वाण महिमा— इन चार अवसरों पर देव वृष्टि करते हैं। यह उल्लेख प्राचीन है अथवा उत्तरकालीन, यह अन्वेषणीय है। स्थानांग में देव कृत वर्षा का उल्लेख है। उसके अनुसार देव बादलों का एक स्थान से दूसरे स्थान पर संहरण कर लेते हैं किन्तु वहां बादलों के निर्माण की बात नहीं है।[1] असुरकुमार देव जन्म आदि महोत्सव के लिए जाते हैं, इसका उल्लेख भगवई ३/८७ में भी है।

तमुक्कायकरण-पदं

२५. जाहे णं भंते! ईसाणे देविंदे देवराया तमुक्कायं काउकामे भवति से कहमियाणिं पकरेति?
गोयमा! ताहे चेव णं से ईसाणे देविंदे देवराया अब्भिंतरपरिसए देवे सद्दावेति। तए णं ते अब्भिंतरपरिसगा देवा सद्दाविया समाणा मज्झिमपरिसए देवे सद्दावेंति। तए णं ते मज्झिमपरिसगा देवा सद्दाविया समाणा बाहिरपरिसए देवे सद्दावेंति। तए णं ते बाहिरपरिसगा देवा सद्दाविया समाणा बाहिरबाहिरगे देवे सद्दावेंति। तए णं ते बाहिरबाहिरगा देवा सद्दाविया समाणा आभिओगिए देवे सद्दावेंति। तए णं ते आभिओगिया देवा सद्दाविया समाणा तमुक्काइए देवे सद्दावेंति। तए णं ते तमुक्काइया देवा सद्दाविया समाणा तमुक्कायं पकरेंति। एवं खलु गोयमा! ईसाणे देविंदे देवराया तमुक्कायं पकरेति॥

तमस्कायकरण—पदम्

यदा भदन्त! ईशानः देवेन्द्रः देवराजः तमस्कायं कर्तुकामः भवति सः कथम् इदानीं प्रकरोति?
गौतम! तदा चैव सः ईशानः देवेन्द्रः देवराजः आभ्यन्तरपरिषत्कान् देवान् शब्दयति। ततः ते आभ्यन्तरपरिषत्काः देवाः शब्दायिताः सन्तः मध्यमपरिषत्कान् देवान् शब्दयन्ति। ततः ते मध्यमपरिषत्काः देवाः शब्दायिताः सन्तः बाह्यपरिषत्कान् देवान् शब्दयन्ति। ततः ते बाह्यपरिषत्काः देवाः शब्दायिताः सन्तः बाह्यबाह्यकान् देवान् शब्दयन्ति। ततः ते बाह्यबाह्यकाः देवाः शब्दायिताः सन्तः आभियोगिकान् देवान् शब्दयन्ति। ततः ते आभियोगिकाः देवाः शब्दायिताः सन्तः तमस्कायिकान् देवान् शब्दयन्ति। ततः ते तमस्कायिकाः देवाः शब्दायिताः सन्तः तमस्कायं प्रकुर्वन्ति। एवं खलु गौतम! ईशानः देवेन्द्रः देवराजः तमस्कायं प्रकरोति।

तमस्कायकरण पद

२५. भंते! जब देवराज देवेन्द्र ईशान तमस्काय (सघन अंधकार) करना चाहता है, तब वह कैसे करता है?
गौतम! देवराज देवेन्द्र ईशान आभ्यंतर परिषद् के देवों को बुलाता है। वे आभ्यंतर परिषद् के देव देवराज देवेन्द्र ईशान के निर्देश पर मध्यम परिषद् के देवों को बुलाते हैं। मध्यम परिषद् के देव आभ्यंतर परिषद् के देवों के निर्देश पर बाह्य परिषद् के देवों को बुलाते हैं। बाह्य परिषद् के देव मध्यम परिषद् के निर्देश पर बाह्यबाह्यक देवों को बुलाते हैं। वे बाह्यबाह्यक देव बाह्य परिषद् के देवों के निर्देश पर आभियोगिक देवों को बुलाते हैं। वे आभियोगिक देव बाह्यबाह्यक परिषद् के निर्देश पर तमस्कायिक देवों को बुलाते हैं। वे तमस्कायिक देव आभियोगिक देवों के निर्देश पर तमस्काय करते हैं। गौतम! इस प्रकार देवराज देवेन्द्र ईशान तमस्काय करता है।

२६. अत्थि णं भंते! असुरकुमारा वि देवा तमुक्कायं पकरेंति?
हंता अत्थि॥

अस्ति भदन्त! असुरकुमाराः अपि देवाः तमस्कायं प्रकुर्वन्ति?
हन्त अस्ति।

२६. भंते! क्या असुरकुमार देव भी तमस्काय करते हैं?
हां, करते हैं।

१. ठाणं ३/३५६-३६०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२७. किंपत्तियं णं भंते! असुरकुमारा देवा तमुक्कायं पकरेंति?
गोयमा! किड्डारतिपत्तियं वा पडिणीय-विमोहणट्ठयाए वा गुत्तीसारक्खणहेउं वा अप्पणो वा सरीरपच्छायणट्ठयाए, एवं खलु गोयमा! असुरकुमारा वि देवा तमुक्कायं पकरेंति। एवं जाव वेमाणिया॥

किं प्रत्ययं भदन्त! असुरकुमाराः देवाः तमस्कायं प्रकुर्वन्ति?
गौतम! क्रीडारतिप्रत्ययं वा प्रत्यनीक-विमोहनार्थाय वा गुप्तिसंरक्षणहेतुं वा आत्मनः शरीरप्रच्छादनार्थाय, एवं खलु गौतम! असुरकुमाराः अपि देवाः तमस्कायं प्रकुर्वन्ति एवं यावत् वैमानिकाः।

२७. भंते! असुरकुमार देव किस कारण से तमस्काय करते हैं?
गौतम! क्रीड़ा-रति के लिए, प्रत्यनीक–शत्रु को विमूढ बनाने के लिए, गोपनीय द्रव्य के संरक्षण के लिए, अपने शरीर को प्रच्छन्न करने के लिए। गौतम! इस प्रकार असुरकुमार देव तमस्काय करते हैं। इसी प्रकार यावत् वैमानिक की वक्तव्यता।

भाष्य

१. सूत्र २५-२७

भगवई ६/७९ में बतलाया गया है–देव, असुर और नाग तमस्काय का निर्माण करते हैं। वहां इसकी प्रक्रिया और हेतुओं का निर्देश नहीं है। प्रस्तुत प्रकरण में तमस्काय के निर्माण की प्रक्रिया के साथ उसका निर्माण करने के चार हेतु बतलाए गए हैं–

१. क्रीडारति–वृत्तिकार ने इसके दो अर्थ किए हैं–
१. क्रीडा रूप रति २. क्रीडा–खेलना, रति का अर्थ है मैथुन।
२. शत्रु को दिशामूढ बनाने के लिए।
३. गोपनीय द्रव्य की सुरक्षा के लिए।
४. अदृश्य होने के लिए।
द्रष्टव्य भगवई ६ का आमुख तथा ६/७०-११८ का भाष्य।

२८. सेवं भंते! सेवं भंते! त्ति जाव विहरइ॥

तदेवं भदन्त! तदेवं भदन्त! इति यावत् विहरति।

२८. भंते! वह ऐसा ही है। भंते! वह ऐसा ही है। यावत् विहरण करने लगे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तइओ उद्देसो : तीसरा उद्देशक

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
विणयविहि-पदं	**विनयविधि-पदं**	**विनय विधि पद**
२९. देवे णं भंते! महाकाए महासरीरे अणगारस्स भावियप्पणो मज्झंमज्झेणं वीइवएज्जा? गोयमा! अत्थेगतिए वीइवएज्जा, अत्थेगतिए नो वीइवएज्जा॥	देवः भदन्त! महाकायः महाशरीरः अनगारस्य भावितात्मनः मध्यमध्येन व्यतिव्रजेत्? गौतम! अस्त्येककः व्यतिव्रजेत्, अस्त्येककः नो व्यतिव्रजेत्।	२९. भंते! महाकाय महाशरीर देव भावितात्मा अनगार के बीचोंबीच होकर जाता है? गौतम! कोई जाता है, कोई नहीं जाता।
३०. से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ–अत्थेगतिए वीइवएज्जा, अत्थेगतिए नो वीइवएज्जा? गोयमा! दुविहा देवा पण्णत्ता, तं जहा–मायीमिच्छादिट्ठीउववन्नगा य, अमायीसम्मद्दिट्ठीउववन्नगा य। तत्थ णं जे से मायीमिच्छदिट्ठीउववन्नए देवे से णं अणगारं भावियप्पाणं पासइ, पासित्ता नो वंदइ, नो नमंसइ, नो सक्कारेइ, नो सम्माणेइ, नो कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं पज्जुवासइ। से णं अणगारस्स भावियप्पणो मज्झंमज्झेणं वीइवएज्जा। तत्थ णं जे से अमायीसम्मद्दिट्ठी उववन्नए देवे से णं अणगारं भावियप्पाणं पासइ, पासित्ता वंदइ नमंसइ सक्कारेइ सम्माणेइ कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं पज्जुवासइ। से णं अणगारस्स भावियप्पणो मज्झंमज्झेणं नो वीइवएज्जा। से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ–अत्थेगतिए वीइवएज्जा, अत्थेगतिए नो वीइवएज्जा।	तत् केनार्थेन भदन्त! एवम् उच्यते–अस्त्येककः व्यतिव्रजेत्, अस्त्येककः नो व्यतिव्रजेत्? गौतम! द्विविधाः देवाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–मायिमिथ्यादृष्ट्युपपन्नकाः च, अमायिसम्यग्दृष्ट्युपपन्नकाः च। तत्र यः सः मायिमिथ्यादृष्ट्युपपन्नकः देवः सः अनगारं भावितात्मानं पश्यति, दृष्ट्वा नो वन्दते, नो नमस्यति, नो सत्करोति, नो सम्मन्यते, नो कल्याणं मङ्गलं दैवतं चैत्यं पर्युपास्ते। सः अनगारस्य भावितात्मनः मध्यमध्येन व्यतिव्रजेत्। तत्र यः सः अमायिसम्यग्दृष्ट्युपपन्नकः देवः सः अनगारं भावितात्मानं पश्यति, दृष्ट्वा वन्दते नमस्यति सत्करोति सम्मन्यते कल्याणं मङ्गलं दैवतं चैत्यं पर्युपास्ते। सः अनगारस्य भावितात्मनः मध्यमध्येन नो व्यतिव्रजेत्। तत् तेनार्थेन गौतम! एवम् उच्यते–अस्त्येककः व्यतिव्रजेत्, अस्त्येककः नो व्यतिव्रजेत्।	३०. भंते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है–कोई जाता है, कोई नहीं जाता? गौतम! दो प्रकार के देव प्रज्ञप्त हैं, जैसे–मायी मिथ्यादृष्टि उपपन्नक, अमायी सम्यग्दृष्टि उपपन्नक। जो मायी मिथ्यादृष्टि उपपन्नक देव हैं, वे भावितात्मा अनगार को देखते हैं, देख कर वंदन-नमस्कार नहीं करते, सत्कार सम्मान नहीं करते, कल्याणकारी, मंगल, देव और प्रशस्त चित्त वाले भावितात्मा अनगार की पर्युपासना नहीं करते। वे भावितात्मा अनगार के बीचोंबीच से होकर जाते हैं। जो अमायी सम्यग्दृष्टि उपपन्नक देव हैं, वे भावितात्मा अनगार को देखते हैं, देखकर वंदन-नमस्कार करते हैं, सत्कार-सम्मान करते हैं, कल्याणकारी, मंगल, देव और प्रशस्त चित्त वाले भावितात्मा अनगार की पर्युपासना करते हैं। वे भावितात्मा अनगार के बीचोंबीच होकर नहीं जाते। गौतम! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है–कोई जाता है, कोई नहीं जाता।
३१. असुरकुमारे णं भंते! महाकाए महासरीरे अणगारस्स भावियप्पणो मज्झंमज्झेणं वीइवएज्जा? एवं चेव। एवं देवदंडओ भाणियव्वो जाव वेमाणिए॥	असुरकुमाराः भदन्त! महाकायः महाशरीरः अनगारस्य भावितात्मनः मध्यमध्येन व्यतिव्रजेत्? एवं चैव। एवं देवदण्डकः भणितव्यः यावत् वैमानिकः।	३१. भंते! महाकाय महाशरीर असुरकुमार भावितात्मा अनगार के बीचोंबीच होकर जाता है? पूर्ववत्। इसी प्रकार देवदण्डक वक्तव्य है यावत् वैमानिक की वक्तव्यता।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३२. अत्थि णं भंते! नेरइयाणं सक्कारे इ वा? सम्माणे इ वा? किइकम्मे इ वा? अब्भुट्ठाणे इ वा? अंजलिपग्गहे इ वा? आसणाभिग्गहे इ वा? आसणाणुप्पदाणे इ वा? एंतस्स पच्चुग्गच्छणया? ठियस्स पज्जुवासणया? गच्छंतस्स पडिसंसाहणया?
नो इणट्ठे समट्ठे॥

अस्ति भदन्त! नैरयिकानां सत्कारः इति वा? सम्मानम् इति वा? कृतिकर्म इति वा? अभ्युत्थानम् इति वा? अञ्जलिप्रग्रहः इति वा? आसनाभिग्रहः इति वा? आसनानुप्रदानम् इति वा, आयतः प्रत्युद्गमनम्? स्थितस्य पर्युपासना? गच्छतः प्रतिसंसाधना?
नो अयमर्थः समर्थः।

३२. भंते! नैरयिकों में सत्कार-सम्मान, कृतिकर्म, अभ्युत्थान, अंजलि-प्रग्रह, आसन-अभिग्रह, आसन-अनुप्रदान, आते हुए के सामने जाना, स्थित की पर्युपासना करना, जाते हुए को पहुंचाना आदि होता है?

यह अर्थ संगत नहीं है।

३३. अत्थि णं भंते! असुरकुमाराणं सक्कारे इ वा? सम्माणे इ वा जाव गच्छंतस्स पडिसंसाहणया वा?
हंता अत्थि। एवं जाव थणियकुमाराणं। पुढविकाइयाणं जाव चउरिंदियाणं– एएसिं जहा नेरइयाणं॥

अस्ति भदन्त! असुरकुमाराणां सत्कारः इति वा? सम्मानम् इति वा? यावत् गच्छतः प्रतिसंसाधना वा?
हन्त अस्ति। एवं यावत् स्तनितकुमाराणाम्। पृथ्वीकायिकानां यावत् चतुरिन्द्रियाणाम्–एतेषां यथा नैरयिकानाम्।

३३. भंते! असुरकुमारों में सत्कार, सम्मान यावत् जाते हुए को पहुंचाना आदि होता है?

हां, होता है। इसी प्रकार यावत् स्तनितकुमार की वक्तव्यता। पृथ्वीकायिक यावत् चतुरिन्द्रिय–ये नैरयिक की भांति वक्तव्य हैं।

३४. अत्थि णं भंते! पंचिंदिय-तिरिक्खजोणियाणं सक्कारे इ वा जाव गच्छंतस्स पडिसंसाहणया वा?
हंता अत्थि। नो चेव णं आसणाभिग्गहे इ वा, आसणाणुप्पयाणे इ वा॥

अस्ति भदन्त! पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकानां सत्कारः इति वा यावत् गच्छतः प्रतिसंसाधना वा?
हन्त अस्ति। नो चैव आसनाभिग्रहः इति वा आसनानुप्रदानम् इति वा।

३४. भंते! पंचेन्द्रिय तिर्यक्योनिकों में सत्कार यावत् जाते हुए को पहुंचाना आदि होता है?

हां, होता है। आसन-अभिग्रह और आसन-अनुप्रदान नहीं होता।

३५. अत्थि णं भंते! मणुस्साणं सक्कारे इ वा? सम्माणे इ वा? किइकम्मे इ वा? अब्भुट्ठाणे इ वा? अंजलिपग्गहे इ वा? आसणाभिग्गहे इ वा? आसणाणुप्पदाणे इ वा? एंतस्स पच्चुग्गच्छणया? ठियस्स पज्जुवासणया? गच्छंतस्स पडिसंसाहणया?
हंता अत्थि। वाणमंतर-जोइस-वेमाणियाणं जहा असुरकुमाराणं॥

अस्ति भदन्त! मनुष्याणां सत्कारः इति वा? सम्मानम् इति वा? कृतिकर्म इति वा? अभ्युत्थानम् इति वा? अञ्जलिप्रग्रहः इति वा? आसनाभिग्रहः इति वा? आसनानुप्रदानम् इति वा? आयतः प्रत्युद्गमनम्? स्थितस्य पर्युपासना? गच्छतः प्रतिसंसाधना?
हन्त अस्ति। वानमन्तर-ज्योतिष-वैमानिकानां यथा असुरकुमाराणाम्।

३५. भंते! मनुष्यों में सत्कार, सम्मान, कृतिकर्म, अभ्युत्थान, अंजलि-प्रग्रह, आसन-अभिग्रह, आसन-अनुप्रदान, आते हुए के सामने जाना, स्थित की पर्युपासना करना, जाते हुए को पहुंचाना आदि होता है?

हां, होता है। वाणमंतर, ज्योतिष्क और वैमानिकों की असुरकुमारों की भांति वक्तव्यता।

३६. अप्पिड्ढिए णं भंते! देवे महिड्ढियस्स देवस्स मज्झंमज्झेणं वीइवएज्जा?
नो इणट्ठे समट्ठे॥

अल्पर्द्धिकः भदन्त! देवः महर्द्धिकस्य देवस्य मध्यमध्येन व्यतिव्रजेत्?
नो अयमर्थः समर्थः।

३६. भंते! अल्पर्धिक देव महर्द्धिक देवों के बीचोंबीच होकर जाते हैं?
यह अर्थ संगत नहीं है।

३७. समिड्ढिए णं भंते! देवे समिड्ढियस्स देवस्स मज्झंमज्झेणं वीइवएज्जा?
नो इणट्ठे समट्ठे, पमत्तं पुण वीइवएज्जा।

समर्द्धिकः भदन्त! देवः समर्द्धिकस्य देवस्य मध्यमध्येन व्यतिव्रजेत्?
नो अयमर्थः समर्थः, प्रमत्तं पुनः व्यतिव्रजेत्।

३७. सम ऋद्धि वाला देव सम ऋद्धि वाले देव के बीचोंबीच होकर जाता है?
यह अर्थ संगत नहीं है। यदि प्रमत्त हो तो जा सकता है।

३८. से णं भंते! किं सत्थेणं अक्कमित्ता पभू? अणक्कमित्ता पभू?

सः भदन्त! किं शस्त्रेण अवक्रम्य प्रभुः? अनवक्रम्य प्रभुः?

३८. भंते! क्या वह शस्त्र से प्रहार कर जाने में समर्थ है? प्रहार किए बिना जाने में समर्थ है?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा! अक्कमित्ता पभू, नो अणक्कमित्ता पभू॥

गौतम! अवक्रम्य प्रभुः नो अनवक्रम्य प्रभुः।

गौतम! प्रहार कर जाने में समर्थ है। प्रहार किए बिना जाने में समर्थ नहीं है।

३६. से णं भंते! किं पुव्विं सत्थेणं अक्कमित्ता पच्छा वीइवएज्जा? पुव्विं वीइवइत्ता पच्छा सत्थेणं अक्कमेज्जा?

सः भदन्तः! किं पूर्वं शस्त्रेण अवक्रम्य पश्चात् व्यतिव्रजेत्? पूर्वं व्यतिव्रज्य पश्चात् शस्त्रेण अवक्राम्येत्?

३६. भंते! क्या वह पहले शस्त्र से प्रहार करता है, पश्चात् बीचोंबीच होकर जाता है? क्या पहले बीचोंबीच होकर जाता है, पश्चात् शस्त्र से प्रहार करता है?

गोयमा! पुव्विं सत्थेणं अक्कमित्ता पच्छा वीइवएज्जा, नो पुव्विं वीइवइत्ता पच्छा सत्थेणं अक्कमिज्जा। एवं एएणं अभिलावेणं जहा दसमसए आइड्ढी-उद्देसए तहेव निरवसेसं चत्तारि दंडगा भाणियव्वा जाव महिड्ढिया वेमाणिणी अप्पिड्ढियाए वेमाणिणीए॥

गौतम! पूर्वं शस्त्रेण अवक्रम्य पश्चात् व्यजिव्रजेत्, नो पूर्वं व्यतिव्रज्य पश्चात् शस्त्रेण अवक्राम्येत्। एवम् एतेन अभिलापेन यथा दशमशते आत्म-र्द्धिकोद्देशके तथैव निरवशेषं चत्वारः दण्डकाः भणितव्याः यावत् महर्द्धिका वैमानिकी अल्पर्द्धिकया वैमानिक्या।

गौतम! पहले शस्त्र से प्रहार करता है, पश्चात् बीचोंबीच होकर जाता है। पहले बीचोंबीच होकर जाकर पश्चात् शस्त्र से प्रहार नहीं करता। इस प्रकार इस अभिलाप के अनुसार जैसे दसवें शतक (१०/२४-३०) में आत्म-ऋद्धि उद्देशक, वैसे चारों दण्डक निरवशेष वक्तव्य हैं, यावत् महान्-ऋद्धि वाली वैमानिक देवी अल्प-ऋद्धि वाली वैमानिक देवी का शस्त्र से प्रहार कर जाने में भी समर्थ है।

भाष्य

१. सूत्र ३६-३६

प्रस्तुत प्रकरण में लोकोपचार विनय की प्रतिपत्ति का विवरण दिया गया है। इसका आशय है—नैरयिक जीव लोकोपचार विनय करना नहीं जानते।

एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय तक के जीवों में लोकोपचार विनय नहीं है। तिर्यंच पंचेन्द्रिय जीवों में भाषा का विकास नहीं है, मस्तिष्कीय चिन्तन और शारीरिक अवयव भी विकसित नहीं हैं फिर भी यत् किञ्चित् मात्रा में वे शिष्टाचार का पालन करते हैं। हाथी यूथपति का सम्मान करते हैं। गाएं गौरोचन वाली गाय का सम्मान करती हैं। बंदर भी अपने मुखिया का सम्मान करते हैं।

देवता द्वारा शस्त्र आक्रमण अथवा शस्त्र प्रहार अपने पौरुष का प्रदर्शन हो सकता है।

नेरइय-नेरइयाणं पच्चणुभव-पदं

४०. रयणप्पभपुढविनेरइया णं भंते! केरिसयं पोग्गलपरिणामं पच्चणुब्भवमाणा विहरंति?

गोयमा! अणिट्ठं अकंतं अप्पियं असुभं अमणुण्णं अमणामं। एवं जाव अहेसत्त-मापुढविनेरइया॥

नैरयिक-नैरयिकानां प्रत्यनुभव-पदम्

रत्नप्रभापृथिवीनैरयिकाः भदन्त! कीदृशकं पुद्गलपरिणामं प्रत्यनुभवन्तः विहरन्ति?

गौतम! अनिष्टम् अकान्तम् अप्रियम् अशुभम् अमनोज्ञम् 'अमणामं'। एवं यावत् अधःसप्तमी पृथिवीनैरयिकाः।

नैरयिक-नैरयिकों का प्रत्यनुभव पद

४०. भंते! रत्नप्रभा पृथ्वी के नैरयिक किस प्रकार के पुद्गल परिणाम का प्रत्यनुभव करते हुए विहरण करते हैं?

गौतम! अकांत, अप्रिय, अशुभ, अमनोज्ञ और अमनोहर। इसी प्रकार यावत् अधःसप्तमी पृथ्वी के नैरयिकों की वक्तव्यता।

४१. रयणप्पभपुढविनेरइया णं भंते! केरिसयं वेदनापरिणामं पच्चणुब्भवमाणा विहरंति?

गोयमा! अणिट्ठं जाव अमणामं। एवं जहा जीवाभिगमे बितिए नेरइय-उद्देसए जाव—

रत्नप्रभापृथिवीनैरयिकाः भदन्त! कीदृशकं वेदनापरिणामं प्रत्यनुभवन्तः विहरन्ति?

गौतम! अनिष्टं यावत् 'अमणामं'। एवं यथा जीवाभिगमे द्वितीये नैरयिकोद्देशके यावत्—

४१. भंते! रत्नप्रभा पृथ्वी के नैरयिक किस प्रकार के वेदना परिणाम का प्रत्यनुभव करते हुए विहरण करते हैं?

गौतम! अनिष्ट यावत् अमनोहर। इस प्रकार जैसे जीवाभिगम के द्वितीय नैरयिक उद्देशक में यावत्—

४२. अहेसत्तमापुढविनेरइया णं भंते! केरिसयं परिग्गहसण्णापरिणामं पच्चणुब्भवमाणा विहरंति?

गोयमा! अणिट्ठं जाव अमणामं॥

अधःसप्तमीपृथिवीनैरयिकाः भदन्त! कीदृशकं परिग्रहसंज्ञापरिणामं प्रत्यनुभवन्तः विहरन्ति?

गौतम! अनिष्टं यावत् 'अमणामं'।

४२. भंते! अधःसप्तमी पृथ्वी के नैरयिक किस प्रकार के परिग्रह संज्ञा परिणाम का प्रत्यनुभव करते हुए विहरण करते हैं?

गौतम! अनिष्ट यावत् अमनोहर।

४३. सेवं भंते! सेवं भंते! त्ति॥

तदेवं भदन्त! तदेवं भदन्त! इति।

४३. भंते! वह ऐसा ही है। भंते! वह ऐसा ही है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चउत्थो उद्देसो : चौथा उद्देशक

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
पोग्गल-जीव-परिणाम-पदं	पुद्गल-जीव-परिणाम-पदम्	पुद्गल जीव परिणाम पद
४४. एस णं भंते! पोग्गले तीतमणंतं सासयं समयं लुक्खी? समयं अलुक्खी? समयं लुक्खी वा अलुक्खी वा? पुव्विं च णं करणेणं अणेगवण्णं अणेगरूवं परिणामं परिणमइ? अहे से परिणामे निज्जिण्णे भवइ, तओ पच्छा एगवण्णे एगरूवे सिया?	एषः भदन्त! पुद्गलः अतीतमनन्तं शाश्वतं समयं रुक्षी? समयम् अरुक्षी? समयं रुक्षी वा अरुक्षी वा? पूर्वं च करणेन अनेकवर्णम् अनेकरूपं परिणामं परिणमति? अथ सः परिणामः निर्जीर्णः भवति, ततः पश्चात् एकवर्णः एकरूपः स्यात्?	४४. भंते! यह पुद्गल अनंत और शाश्वत अतीत में किसी एक समय रूक्ष होता है? किसी एक समय अरूक्ष (स्निग्ध) होता है? किसी एक समय रूक्ष अथवा अरूक्ष होता है? पूर्व में जो एक वर्ण आदि परिणाम वाला है, वह करण के द्वारा अनेक वर्ण, अनेक रूप परिणाम का परिणमन करता है? वह परिणाम निर्जीर्ण होता है, उसके पश्चात् वह एक वर्ण, एक रूप हो जाता है?
हंता गोयमा! एस णं पोग्गले तीतमणंतं सासयं समयं तं चेव जाव एगरूवे सिया॥	हन्त गौतम! एषः पुद्गलः अतीतमनन्तं शाश्वतं समयं तत् चैव यावत् एकरूपः स्यात्।	हां गौतम! यह पुद्गल अनंत और शाश्वत अतीत में किसी एक समय रूक्ष होता है, किसी एक समय अरूक्ष (स्निग्ध) होता है। किसी एक समय रूक्ष अथवा अरूक्ष होता है। पूर्व में जो एक वर्ण आदि परिणाम वाला है, वह करण के द्वारा अनेक वर्ण, अनेक रूप आदि परिणाम का परिणमन करता है। वह परिणाम निर्जीर्ण होता है, उसके पश्चात् एक वर्ण, एक रूप हो जाता है।
४५. एस णं भंते! पोग्गले पडुप्पन्नं सासयं समयं लुक्खी? एवं चेव॥	एषः भदन्त! पुद्गलः प्रत्युत्पन्नं शाश्वतं समयं रुक्षी? एवं चैव।	४५. भंते! पुद्गल शाश्वत वर्तमान में किसी एक समय रूक्ष होता है? पूर्ववत्।
४६. एस णं भंते! पोग्गले अणागयमणंतं सासयं समयं लुक्खी? एवं चेव॥	एषः भदन्त! पुद्गलः अनागतमनन्तं शाश्वतं समयं रुक्षी? एवं चैव।	४६. भंते! यह पुद्गल अनंत और शाश्वत अनागत में किसी एक समय रूक्ष होता है? पूर्ववत्।
४७. एस णं भंते! खंधे तीतमणंतं सासयं समयं लुक्खी? एवं चेव खंधे वि जहा पोग्गले॥	एषः भदन्त! स्कन्धः अतीतमनन्तं शाश्वतं समयं रुक्षी? एवं चैव स्कन्धोऽपि यथा पुद्गलः।	४७. भंते! यह स्कन्ध अनंत और शाश्वत अतीत में किसी एक समय रूक्ष होता है? इसी प्रकार स्कन्ध भी पुद्गल की भांति वक्तव्य है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भाष्य

१. सूत्र ४४-४७

प्रस्तुत प्रकरण में परिणामी नित्यवाद के सिद्धांत का प्रतिपादन किया गया है। एकान्त नित्यवाद में पदार्थ सदा एक रूप वाला होता है। परिणामी नित्यवाद के अनुसार पदार्थ में परिणमन होता रहता है, वह बदलता रहता है।

परिणमन को रूक्ष स्निग्ध स्वरूप के द्वारा समझाया गया है। पुद्गल कभी रूक्ष होता है, कभी स्निग्ध होता है और कभी रूक्ष-स्निग्ध दोनों होता है।

जो रूक्ष है, वह स्निग्ध कैसे हो सकता है? जो स्निग्ध है, वह रूक्ष कैसे हो सकता है? इसका उत्तर 'करण' पद के द्वारा दिया गया है।

करण का अर्थ है परिणमन। वह स्वाभाविक भी होता है और प्रायोगिक भी होता है। पदार्थ सदा एक रूप नहीं रह सकता। उसमें परिणमन का चक्र चलता रहता है। यह परिवर्तन की स्वाभाविक प्रक्रिया है। कभी-कभी परिणमन प्रायोगिक होता है—दूसरे के निमित्त से होता है।

परिणमन के कारण पदार्थ अनेक वर्णों और अनेक रूपों में परिवर्तित होता रहता है।

अनेक वर्ण और अनेक रूप की व्याख्या दो दृष्टियों से की जा सकती है। परमाणु एक साथ अनेक वर्ण और अनेक रूप वाला नहीं होता इसलिए उसकी व्याख्या समय-भेद के आधार पर की जा सकती है। दीर्घकाल में परिणमन के द्वारा वह अनेक वर्ण और अनेक रूप वाला होता है। स्कंध एक साथ अनेक वर्ण और अनेक रूप वाला हो सकता है।

वर्तमान की दृष्टि से विचार करें तब परमाणु एक वर्ण, एक रूप वाला होता है। पूर्ववर्ती परिणाम निर्जीर्ण हो जाता है, इसलिए वह वर्तमान में एक वर्ण, एक रूप वाला होता है। स्कंध भी एक वर्ण, एक रूप वाला हो सकता है।

पुद्गल-पद के द्वारा परमाणु और स्कंध दोनों का ग्रहण होता है, पर प्रधान रूप में इस प्रकरण में परमाणु का प्रतिपादन है। तीसरे विकल्प का संबंध स्कंध से है, यह अभयदेवसूरि का अभिमत है। उनके अनुसार रूक्ष अथवा स्निग्ध—इन दोनों पदों का संबंध परमाणु और स्कंध दोनों से है। एक समय में रूक्ष और अरूक्ष—यह परमाणु में घटित नहीं होता, इसलिए इसका संबंध स्कंध से है। द्व्यणुक आदि स्कंधों का एक देश रूक्ष और एक देश स्निग्ध—यह युगपत् स्निग्ध और रूक्ष स्पर्श एक स्कंध में ही संभव है।[1]

प्रस्तुत प्रकरण का सैंतालीसवां सूत्र स्कंध का प्रतिपादक है। अभयदेवसूरि ने इस सूत्र की पीठिका में लिखा है—पुद्गल के स्वरूप का निरूपण किया गया। स्कंध भी पुद्गल का एक प्रकार है इसलिए उसके स्वरूप का निरूपण किया जा रहा है।[2] इससे स्पष्ट है कि पुद्गल सूत्र में परमाणु और स्कंध—दोनों का संग्रहण किया गया है। स्कंध के सूत्र में केवल स्कंध का निरूपण है।[3]

यदि पुद्गल सूत्र की व्याख्या केवल परमाणु के आधार पर की जाए तो रूक्ष-अरूक्ष—इस तृतीय भंग की व्याख्या इस प्रकार की जा सकती है—परमाणु जिस समय रूक्ष है, उस समय स्निग्ध भी है। जिस समय स्निग्ध है उस समय रूक्ष भी है। सत्ता की दृष्टि से उसमें रूक्ष और स्निग्ध—दोनों गुण विद्यमान हैं। अभिव्यक्ति की दृष्टि से उसमें कभी रूक्ष धर्म व्यक्त होता है, कभी स्निग्ध धर्म व्यक्त होता है। प्रथम दो भंग अभिव्यक्ति की दृष्टि से, तीसरा भंग सत्ता की दृष्टि से संगत हो सकता है।

इस अभिमत का समर्थन जीव-सूत्र (भगवई १४।४८) के तृतीय भंग से होता है।

४८. एस णं भंते! जीवे तीतमणंतं सासयं समयं दुक्खी? समयं अदुक्खी? समयं दुक्खी वा अदुक्खी वा? पुव्वि च णं करणेणं अणेगभावं अणेगभूयं परिणामं परिणमइ? अहे से वेयणिज्जे निज्जिण्णे भवइ, तओ पच्छा एगभावे एगभूए सिया?

एषः भदन्त! जीवः अतीतमनन्तं शाश्वतं समयं दुःखी? समयम् अदुःखी? समयं दुःखी वा अदुःखी वा? पूर्वं च करणेन अनेकभावम् अनेकभूतं परिणामं परिणमति? अथ तत् वेदनीयं निर्जीर्णं भवति, ततः पश्चात् एकभावः एकभूतः स्यात्?

४८. भंते! यह जीव अनंत और शाश्वत अतीत में किसी एक समय दुःखी होता है? किसी एक समय अदुःखी होता है? किसी एक समय दुःखी अथवा अदुःखी होता है? पूर्व में जो एक भाव आदि परिणाम वाला है, वह करण के द्वारा अनेक भाव, अनेक भूत आदि परिणाम वाला हो जाता है? वह वेदनीय निर्जीर्ण होता है, उसके पश्चात् वह एक भाव, एक भूत परिणाम वाला हो जाता है?

हंता गोयमा! एस णं जीवे तीतमणंतं सासयं समयं जाव एगभूए सिया। एवं पडुप्पन्नं सासयं समयं, एवं अणागयमणंतं सासयं समयं॥

हन्त गौतम! एषः जीवः अतीतमनन्तं शाश्वतं समयं यावत् एकभूतः स्यात्। एवं प्रत्युत्पन्नं शाश्वतं समयम्, एवम् अनागतमनन्तं शाश्वतं समयम्।

हां गौतम! यह जीव अनंत और शाश्वत अतीत में किसी एक समय यावत् एक भूत परिणाम वाला हो जाता है। इसी प्रकार शाश्वत वर्तमान में किसी एक समय में, इसी

१. भ. वृ. सू. १४/४४-३६—समयमेकं यावदरूक्षस्पर्शसद्भावात् 'अरूक्षी' स्निग्धस्पर्शवान् बभूव। इदं च पदद्वयं परमाणौ स्कंधे च संभवति। तथा समयं लुक्खी वा अलुक्खी वा ति समयमेव रूक्षश्चारूक्षश्च रूक्षस्निग्ध-लक्षणस्पर्शद्वयोपेतो बभूव, इदं च स्कंधापेक्षं यतो द्व्यणुकादि स्कंधे देशो रूक्षो देशश्चारूक्षो भवतीत्येवं युगपत् रूक्षस्निग्धस्पर्शसंभवः।

२. वही, १४/४७—अनंतरं पुद्गलस्वरूपं निरूपितं पुद्गलश्च स्कन्धोऽपि भवतीति, पुद्गलभेदभूतस्य स्कन्धस्य स्वरूपं निरूपयन्नाह।

३. वही, १४/४७—पुद्गलः परमाणुः स्कंधरूपश्च।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकार अनंत और शाश्वत अनागत में किसी एक समय में।

भाष्य

१. सूत्र ४८

प्रस्तुत सूत्र में वेदनीय के आधार पर होने वाली जीव की अनेकरूपता का प्रतिपादन है। कोई भी संसारी जीव सदा दुःखी या सदा सुखी नहीं रहता। वह दुःख का हेतु मिलने पर किसी समय दुःखी और सुख का हेतु मिलने पर किसी समय सुखी होता है। एक साथ दुःखी और सुखी–यह तीसरा विकल्प विमर्शनीय है। अभयदेवसूरि ने 'अपने-अपने हेतु से सुखी अथवा दुःखी बनता है'–इस हेतु के आधार पर इसकी व्याख्या की है। उसके साथ उन्होंने आगमिक मत भी उद्धृत किया है–जीव के एक समय में एक उपयोग होता है इसलिए सुख-दुःख का संवेदन एक साथ नहीं हो सकता।[1]

'एक समय में जीव दुःखी और सुखी' इस भंग की व्याख्या परमाणु के तृतीय भंग की भांति की जा सकती है–जीव जिस समय दुःखी है, उस समय सुखी भी है और जिस समय सुखी है, उस समय दुःखी भी है। सत्ता की दृष्टि से उसमें सुख और दुःख–दोनों विद्यमान हैं। अभिव्यक्ति की दृष्टि से कभी दुःख व्यक्त होता है, कभी सुख व्यक्त होता है। प्रथम दो भंग अभिव्यक्ति की दृष्टि से तथा तीसरा भंग सत्ता की दृष्टि से संगत हो सकता है।

इस अभिमत का समर्थन पुद्गल सूत्र (भगवई १४/४४) के तृतीय भंग से होता है।

जैन दर्शन के अनुसार प्रत्येक द्रव्य परिणामीनित्य है। पूर्व आलापक (भगवई १४/४४-४७) में पुद्गल द्रव्य की परिणामीनित्यता बतलाई गई। प्रस्तुत सूत्र में जीव की परिणामीनित्यता वेदनीय के आधार पर प्रतिपादित की गई है। वेदनीय के आधार पर जीव में सुख-दुःख का अनुभव होता रहता है। उसके निर्जीर्ण होने पर जीव एक भाव और एक भूत परिणाम में चला जाता है, सुख-दुःख के हेतु से होने वाले सुखात्मक और दुःखात्मक संवेदन समाप्त हो जाते हैं।

उपयोग की अपेक्षा जीव अनेक भाव-भविक भी रहता है।[2] यहां वह विवक्षित नहीं है।

४९. परमाणुपोग्गले णं भंते! किं सासए? असासए?
गोयमा! सिय सासए, सिय असासए॥

परमाणुपुद्गलः भदन्त! किं शाश्वतः? अशाश्वतः?
गौतम! स्यात् शाश्वतः, स्यात् अशाश्वतः।

४९. भंते! परमाणु पुद्गल क्या शाश्वत है? क्या अशाश्वत है?
गौतम! स्यात् शाश्वत है, स्यात् अशाश्वत है।

५०. से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ–सिय सासए, सिय असासए?
गोयमा! दव्वट्ठयाए सासए, वण्णपज्जवेहिं गंधपज्जवेहिं रसपज्जवेहिं फासपज्जवेहिं असासए।
से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ–सिय सासए, सिय असासए॥

तत् केनार्थेन भदन्त! एवमुच्यते–स्यात् शाश्वतः? स्यात् अशाश्वतः?
गौतम! द्रव्यार्थतया शाश्वतः, वर्णपर्यवैः गन्धपर्यवैः रसपर्यवैः स्पर्शपर्यवैः अशाश्वतः।
तत् तेनार्थेन गौतम! एवमुच्यते–स्यात् शाश्वतः, स्यात् अशाश्वतः।

५०. भंते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है–स्यात् शाश्वत है? स्यात् अशाश्वत है?
गौतम! द्रव्य की दृष्टि से शाश्वत है। वर्ण पर्यवों, गंध पर्यवों, रस पर्यवों और स्पर्श पर्यवों की दृष्टि से अशाश्वत है।
गौतम! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है–परमाणु पुद्गल स्यात् शाश्वत है, स्यात् अशाश्वत है।

भाष्य

१. सूत्र ४९-५०

जैन दर्शन में सत्य को देखने के लिए दो दृष्टियों का विधान किया गया है–द्रव्यार्थिक दृष्टि और पर्यायार्थिक दृष्टि।

द्रव्य ध्रुव है और पर्याय परिवर्तनशील होता है। इन दो दृष्टियों के आधार पर परमाणु पुद्गल को कथंचित् शाश्वत और कथंचित् अशाश्वत बतलाया गया है।

५१. परमाणुपोग्गले णं भंते! किं चरिमे? अचरिमे?
गोयमा! दव्वादेसेणं नो चरिमे, अचरिमे। खेत्तादेसेणं सिय चरिमे, सिय अचरिमे। कालादेसेणं सिय चरिमे, सिय

परमाणुपुद्गलः भदन्त! किं चरमः? अचरमः?
गौतम! द्रव्यादेशेन नो चरमः, अचरमः।
क्षेत्रादेशेन स्यात् चरमः, स्यात् अचरमः।
कालादेशेन स्यात् चरमः स्यात् अचरमः।

५१. भंते! परमाणु पुद्गल क्या चरम है? क्या अचरम है?
गौतम! द्रव्य की अपेक्षा चरम नहीं है, अचरम है। क्षेत्र की अपेक्षा स्यात् चरम है, स्यात् अचरम है। काल की अपेक्षा स्यात् चरम है,

१. भ. वृ. १४/४८–दुःखी च सुखी च तद्धेतुयोगात् न पुनरेकदा सुखदुःख-वेदनमस्ति एकोपयोगत्वात् जीवस्येति।
२. भ. १८/२१९-२२०।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अचरिमे। भावादेसेणं सिय चरिमे, सिय अचरिमे॥

भावादेशेन स्यात् चरमः स्यात् अचरमः।

स्यात् अचरम है। भाव की अपेक्षा स्यात् चरम है, स्यात् अचरम है।

भाष्य

१. सूत्र ५१

प्रस्तुत सूत्र में परमाणु-पुद्गल के चरम और अचरम रूप पर द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव–इन चार आदेशों (अपेक्षाओं) से विचार किया गया है।

परमाणु अपने स्वरूप से कभी च्युत नहीं होता, अतः द्रव्यादेश से वह अचरम है।

अमुक नाम वाले केवली के केवली-समुद्घात के समय जो परमाणु किसी क्षेत्र में अवगाढ है, वह केवली समुद्घात के संपन्न होने पर फिर कभी उस क्षेत्र में उस केवली के समुद्घात के साथ संयोग नहीं करेगा–इस क्षेत्रादेश से परमाणु चरम है।

अमुक नाम वाले केवली के केवली-समुद्घात काल में जो परमाणु केवली-समुद्घात विशेषित होता है फिर वह किसी काल में नहीं होता–इस कालादेश से परमाणु चरम है।

अमुक नाम वाले केवली के केवली-समुद्घात के समय जो परमाणु विशेष वर्ण आदि भाव में परिणत हुआ, वह उस केवली-समुद्घात के सम्पन्न होने पर केवली-समुद्घात से विशेषित वर्ण आदि में परिणत नहीं होगा–इस भावादेश से परमाणु चरम है।

अभयदेवसूरि ने यह व्याख्या चूर्णिकार के अभिमत के आधार पर की है। उन्होंने अपनी ओर से इसमें कुछ नहीं लिखा है।[1]

कुछ परमाणु ऐसे होते हैं जिनका स्कंध रूप में परिणमन त्रिकाल में भी नहीं होता।[2] इन परमाणुओं के आधार पर चरम की व्याख्या की जा सकती है।

जो परमाणु विस्रसा परिणाम से परिणत हैं,[3] उनकी अपेक्षा से भी चरम की व्याख्या की जा सकती है। वे परमाणु प्रयोग और मिश्र परिणाम की कोटि में कभी नहीं आते।

५२. कतिविहे णं भंते! परिणामे पण्णत्ते?

कतिविधः भदन्त! परिणामः प्रज्ञप्तः?

५२. भंते! परिणाम कितने प्रकार का प्रज्ञप्त है?

गोयमा! दुविहे परिणामे पण्णत्ते, तं जहा–जीवपरिणामे य, अजीवपरिणामे य। एवं परिणामपयं निरवसेसं भाणियव्वं॥

गौतम! द्विविधः परिणामः प्रज्ञप्तः, तद् यथा–जीवपरिणामः च अजीवपरिणामः च। एवं परिणामपदं निरवशेषं भणितव्यम्।

गौतम! परिणाम दो प्रकार का प्रज्ञप्त है, जैसे–जीव परिणाम और अजीव परिणाम। इस प्रकार परिणाम पद (पण्णवणा पद १३) निरवशेष वक्तव्य है।

५३. सेवं भंते! सेवं भंते! त्ति जाव विहरइ॥

तदेवं भदन्त! तदेवं भदन्त! इति यावत् विहरति।

५३. भंते! वह ऐसा ही है। भंते! वह ऐसा ही है। यावत् विहरण करने लगे।

---

१. भ. वृ. १४/५१।

२. (क) धवला ४/१, ५, ४, गाथा १६/३२७।
(ख) श्लोकवार्तिक २ भाग १/५/८-१०/१७३।१०।

३. (क) भ. ८/२४।
(ख) तत्त्वार्थ भाष्यानुसारिणी ५/३२ भाष्य की वृत्ति पृ. ३६०।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पंचमो उद्देसो : पांचवां उद्देशक

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
अगणिकायस्स अतिक्कमण-पदं	**अग्निकायस्य-अतिक्रमण-पदम्**	**अग्निकाय का अतिक्रमण पद**
५४. नेरइए णं भंते! अगणिकायस्स मज्झंमज्झेणं वीइवएज्जा? **गोयमा! अत्थेगतिए वीइवएज्जा, अत्थेगतिए नो वीइवएज्जा॥**	नैरयिकः भदन्त! अग्निकायस्य मध्यमध्येन व्यतिव्रजेत्? गौतम! अस्त्येककः व्यतिव्रजेत्, अस्त्येककः नो व्यतिव्रजेत्।	५४. भंते! क्या नैरयिक अग्निकाय के बीचोंबीच होकर जाता है? गौतम! कोई जाता है, कोई नहीं जाता।
५५. से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ–अत्थेगतिए वीइवएज्जा, अत्थेगतिए नो वीइवएज्जा? **गोयमा! नेरइया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–विग्गहगतिसमावन्नगा य, अविग्गहगतिसमावन्नगा य। तत्थ णं जे से विग्गहगतिसमावन्नए नेरइए से णं अगणिकायस्स मज्झंमज्झेणं वीइवएज्जा।** **से णं तत्थ झियाएज्जा?** **नो इणट्ठे समट्ठे, नो खलु तत्थ सत्थं कमइ।** **तत्थ णं जे से अविग्गहगतिसमावन्नए नेरइए से णं अगणिकायस्स मज्झंमज्झेणं नो वीइवएज्जा। से तेणट्ठेणं जाव नो वीइवएज्जा॥**	तत् केनार्थेन भदन्त! एवमुच्यते–अस्त्येककः व्यतिव्रजेत् अस्त्येककः नो व्यतिव्रजेत्? गौतम! नैरयिकाः द्विविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–विग्रहगतिसमापन्नकाः च अविग्रहगतिसमापन्नकाः च। तत्र यः सः विग्रहगतिसमापन्नकः नैरयिकः सः अग्निकायस्य मध्यमध्येन व्यतिव्रजेत्। सः तत्र ध्मेत्? नो अयमर्थः समर्थः, नो खलु तत्र शस्त्रं क्रामति। तत्र यः सः अविग्रहगतिसमापन्नकः नैरयिकः सः अग्निकायस्य मध्यमध्येन नो व्यतिव्रजति। तत् तेनार्थेन यावत् नो व्यतिव्रजेत्।	५५. भंते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है–कोई जाता है, कोई नहीं जाता? गौतम! नैरयिक दो प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे–विग्रह गति समापन्नक और अविग्रह गति समापन्नक–नरक में अवस्थित। उनमें जो विग्रह गति समापन्नक नैरयिक हैं, वे अग्निकाय के बीचोंबीच होकर जाते हैं। क्या वह अग्निकाय में जलता है? यह अर्थ संगत नहीं है। वह शस्त्र से आक्रांत नहीं होता। जो अविग्रह गति समापन्नक नैरयिक हैं, वे अग्निकाय के बीचोंबीच होकर नहीं जाते। इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है–यावत् कोई नैरयिक अग्निकाय के बीचोंबीच होकर नहीं जाता।

भाष्य

१. सूत्र ५४-५५

प्रस्तुत प्रकरण में विग्रह गति का अर्थ अंतराल गति और अविग्रह गति का अर्थ उत्पत्ति स्थान है। नरक में बादर अग्निकाय नहीं होता इसलिए अविग्रह गति समापन्नक उसके मध्य से नहीं जाते।

बादर अग्निकाय के विषय में वृत्तिकार ने कुछ विस्तार से लिखा है। बादर अग्निकाय केवल मनुष्य क्षेत्र में ही होता है। नरक में अग्नि का वर्णन है, वह अग्नि तुल्य द्रव्य है, जैसे–तेजोलेश्या के पुद्गल।[1] द्रष्टव्य–उत्तरज्झयणाणि १६/४६ का टिप्पण।

विग्रह गति में कार्मण शरीर होता है। वह सूक्ष्म है इसलिए वह अग्नि में दग्ध नहीं होता और न वह अग्नि–शस्त्र से आक्रांत होता।

विग्रह गति के लिए द्रष्टव्य भगवई १/३३५–३३८ का भाष्य।

---

१. भ. वृ. १४/५४-५५–नारकक्षेत्रे बादराग्निकायस्याभावात् मनुष्यक्षेत्र एव तदभावात् यच्चोत्तराध्ययनादिषु श्रूयते–'हुयासणे जलंतंमि दड्ढपुव्वो अणेगसो।' इत्यादि तदग्निसदृशद्रव्यान्तरापेक्षयाऽवसेयं, संभवन्ति च तथाविधशक्तिमन्ति द्रव्याणि तेजोलेश्याद्रव्यवदिति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५६. असुरकुमारे णं भंते! अगणिकायस्स मज्झंमज्झेणं वीइवएज्जा?
गोयमा! अत्थेगतिए वीइवएज्जा, अत्थेगतिए नो वीइवएज्जा॥

असुरकुमारः अग्निकायस्य मध्यमध्येन व्यतिव्रजेत्?
गौतम! अस्त्येककः व्यतिव्रजति, अस्त्येककः नो व्यतिव्रजति।

५६. भंते! क्या असुरकुमार अग्निकाय के बीचोंबीच होकर जाता है?
गौतम! कोई जाता है, कोई नहीं जाता।

५७. से केणट्ठेणं जाव नो वीइवएज्जा?

तत् केनार्थेन यावत् नो व्यतिव्रजेत्?

५७. भंते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है–यावत् कोई असुरकुमार अग्निकाय के बीचोंबीच होकर नहीं जाता?

गोयमा! असुरकुमारा दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–विग्गहगतिसमावन्नगा य, अविग्गहगतिसमावन्नगा य।

गौतम! असुरकुमाराः द्विविधाः प्रज्ञप्ताः, तद् यथा–विग्रहगतिसमापन्नकाः च, अविग्रहगतिसमापन्नकाः च।

गौतम! असुरकुमार दो प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे–विग्रह गति समापन्नक और अविग्रह गति समापन्नक।

तत्थ णं जे से विग्गहगतिसमावन्नए असुरकुमारे से णं–एवं जहेव नेरइए जाव कमइ।

तत्र यः सः विग्रहगतिसमापन्नकः असुरकुमारः सः–एवं यथैव नैरयिकः यावत् क्रामति।

जो विग्रह गति समापन्नक असुरकुमार हैं, वे नैरयिक की भांति वक्तव्य हैं, यावत् वह शस्त्र से आक्रांत नहीं होता।

तत्थ णं जे से अविग्गहगतिसमावन्नए असुरकुमारे से णं अत्थेगतिए अगणिकायस्स मज्झंमज्झेणं वीइवएज्जा, अत्थेगतिए नो वइवएज्जा।

तत्र यः सः अविग्रहगतिसमापन्नकः असुरकुमारः सः अस्त्येककः अग्निकायस्य मध्यमध्येन व्यतिव्रजेत्, अस्त्येककः नो व्यतिव्रजेत्।

जो अविग्रह गति समापन्नक हैं, उनमें कोई अग्निकाय के बीचोंबीच होकर जाता है, कोई नहीं जाता।

जे णं वीइवएज्जा से णं तत्थ झियाएज्जा?

यः व्यतिव्रजेत स तत्र ध्मेत्?

जो बीचोंबीच होकर जाता है, क्या वह जलता है?

नो इणट्ठे समट्ठे, नो खलु तत्थ सत्थं कमइ। से तेणट्ठेणं एवं जाव थणियकुमारा। एगिंदिया जहा नेरइया॥

नो अयमर्थः समर्थः, नो खलु तत्र शस्त्रं क्रामति। तत् तेनार्थेन एवं यावत् स्तनितकुमाराः। एकेन्द्रियाः यथा नैरयिकाः।

यह अर्थ संगत नहीं है। वह शस्त्र से आक्रांत नहीं होता। इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है–यावत् कोई असुरकुमार अग्निकाय के बीचोंबीच होकर नहीं जाता। इसी प्रकार यावत् स्तनित कुमार की वक्तव्यता। एकेन्द्रिय नैरयिक की भांति वक्तव्य हैं।

भाष्य

१. सूत्र ५६-५७

असुरकुमार में उत्पन्न होने के पश्चात् कोई मनुष्य लोक में आता है, वह अग्निकाय के बीचोंबीच होकर जाता है। वे सब मनुष्य लोक में नहीं आते इसलिए यह नियम का विकल्प है। जो मनुष्य लोक में आता है, वह अग्निकाय से दग्ध और अग्नि-शस्त्र से आक्रांत नहीं होता।

एकेन्द्रिय की वक्तव्यता नैरयिक की भांति बतलाई गई है। वृत्तिकार ने बतलाया है–उत्पत्ति स्थान में अवस्थित एकेन्द्रिय जीव स्थावर होने के कारण अग्निकाय के बीचोंबीच होकर नहीं जाते। इस नियम के विषय में वृत्तिकार ने विमर्श किया है। स्थावर काय में अग्नि और वायु–ये गति त्रस हैं इसलिए इनका अग्निकाय के बीचोंबीच होकर जाना प्रत्यक्ष है किन्तु आगम में लब्धि-त्रस ही विवक्षित हैं।

इसी प्रकार वायु सचित्त पृथ्वी को भी अग्नि के मध्य होकर ले जाती है। यह भी स्पष्ट है किन्तु यहां स्वतंत्रतापूर्वक होने वाली गति की विवक्षा है। इस विषय में वृत्तिकार ने चूर्णिकार का मत भी उद्धृत किया है।[1]

५८. बेइंदिया णं भंते! अगणिकायस्स मज्झंमज्झेणं वीइवएज्जा?
जहा असुरकुमारे तहा बेइंदिए वि, नवरं–जे णं वीइवएज्जा से णं तत्थ झियाएज्जा?
हंता झियाएज्जा। सेसं तं चेव। एवं जाव चउरिंदिए॥

द्वीन्द्रियाः भदन्त! अग्निकायस्य मध्यमध्येन व्यतिव्रजेत्?
यथा असुरकुमाराः तथा द्वीन्द्रियोऽपि, नवरम्–यः व्यतिव्रजेत् सः तत्र ध्मेत्?
हन्त! ध्मति। शेषं तत् चैव। एवं यावत् चतुरिन्द्रियः।

५८. भंते! क्या द्वीन्द्रिय अग्निकाय के बीचोंबीच होकर जाता है?
जैसे–असुरकुमार वैसे द्वीन्द्रिय की वक्तव्यता, इतना विशेष है–जो जाता है, क्या वह जलता है?
हां, जलता है। शेष पूर्ववत्। इसी प्रकार यावत् चतुरिन्द्रिय की वक्तव्यता।

१. भ. वृ. १४/५६-५७।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५९. पंचिंदियतिरिक्खजोणिए णं भंते! अगणिकायस्स मज्झंमज्झेणं वीइवएज्जा?

गोयमा! अत्थेगतिए वीइवएज्जा, अत्थेगतिए नो वीइवएज्जा॥

पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकः भदन्त! अग्निकायस्य मध्यमध्येन व्यतिव्रजेत्?

गौतम! अस्त्येककः व्यतिव्रजेत्, अस्त्येककः नो व्यतिव्रजेत्।

५९. भंते! पंचेन्द्रिय तिर्यक्योनिक-अग्निकाय के बीचोंबीच होकर जाता है?

गौतम! कोई जाता है, कोई नहीं जाता।

६०. से केणट्ठेणं?

गोयमा! पंचिंदियतिरिक्खजोणिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा-विग्गहगतिसमावन्नगा य, अविग्गहगतिसमावन्नगा य। विग्गहगतिसमावन्नए जहेव नेरइए जाव नो खलु तत्थ सत्थं कमइ। अविग्गहगतिसमावन्नगा पंचिंदियतिरिक्खजोणिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा-इड्ढिप्पत्ता य, अणिड्ढिप्पत्ता य। तत्थ णं जे से इड्ढिप्पत्ते पंचिंदियतिरिक्खजोणिए से णं अत्थेगतिए अगणिकायस्स मज्झंमज्झेणं वीइवएज्जा, अत्थेगतिए नो वीइवएज्जा।

जे णं वीइवएज्जा से णं तत्थ झियाएज्जा?

नो इणट्ठे समट्ठे, नो खलु तत्थ सत्थं कमइ। तत्थ णं जे से अणिड्ढिप्पत्ते पंचिंदियतिरिक्खजोणिए से णं अत्थेगतिए अगणिकायस्स मज्झंमज्झेणं वीइवएज्जा अत्थेगतिए नो वीइवएज्जा।

जे णं वीइवएज्जा से णं तत्थ झियाएज्जा?

हंता झियाएज्जा। से तेणट्ठेणं जाव नो वीइवएज्जा। एवं मणुस्से वि। वाणमंतर-जोइसिय-वेमाणिए जहा असुरकुमारे॥

तत् केनार्थेन?

गौतम! पञ्चेन्द्रिय तिर्यग्योनिकाः द्विविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-विग्रहगतिसमापन्नकाः च, अविग्रहगतिसमापन्नकाः च। विग्रहगतिसमापन्नकाः यथैव नैरयिकः यावत् नो खलु तत्र शस्त्रं क्रामति। अविग्रहगतिसमापन्नकाः पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकाः द्विविधाः प्रज्ञप्ताः, तद् यथा-ऋद्धिप्राप्ताः च, अनर्द्धिप्राप्ताः च। तत्र यः सः ऋद्धिप्राप्तः पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकः सः अस्त्येककः अग्निकायस्य मध्यमध्येन व्यतिव्रजेत्, अस्त्येककः नो व्यतिव्रजेत्।

यः व्यतिव्रजेत् सः तत्र धमेत्?

नो अयमर्थः समर्थः, नो खलु तत्र शस्त्रं, क्रामति। तत्र यः सः अनर्द्धिप्राप्तः पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकः सः अस्त्येककः अग्निकायस्य मध्यमध्येन व्यतिव्रजेत्। अस्त्येककः नो व्यतिव्रजेत्।

यः व्यतिव्रजेत् सः तत्र धमेत्?

हन्त धमेत्। तत् तेनार्थेन यावत् नो व्यतिव्रजेत् एवं मनुष्योऽपि वानमन्तर-ज्योतिष्क-वैमानिकाः यथा असुरकुमारः।

६०. भंते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है?

गौतम! पंचेन्द्रिय तिर्यक्योनिक दो प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे-विग्रह गति समापन्नक और अविग्रह गति समापन्नक। विग्रह गति समापन्नक नैरयिक की भांति वक्तव्य हैं। यावत् वह शस्त्र से आक्रान्त नहीं होता। अविग्रह गति समापन्नक पंचेन्द्रिय तिर्यक् योनिक दो प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे-ऋद्धि प्राप्त, अऋद्धि प्राप्त। जो ऋद्धि प्राप्त पंचेन्द्रिय तिर्यक्योनिक हैं, उनमें कोई अग्निकाय के बीचोंबीच होकर जाता है, कोई नहीं जाता।

जो बीचोंबीच होकर जाता है क्या वह जलता है?

यह अर्थ संगत नहीं है। वह शस्त्र से आक्रान्त नहीं होता।

जो पंचेन्द्रिय तिर्यक् योनिक ऋद्धि प्राप्त नहीं है, उनमें कोई अग्निकाय के बीचोंबीच होकर जाता है, कोई नहीं जाता।

जो बीचोंबीच होकर जाता है, क्या वह जलता है?

हां, जलता है। इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है-यावत् कोई नहीं जाता।

इसी प्रकार मनुष्य की वक्तव्यता। वाणमंतर, ज्योतिष्क और वैमानिक असुरकुमार की भांति वक्तव्य हैं।

भाष्य

१. सूत्र ५८-६०

ऋद्धि प्राप्त का अर्थ है वैक्रिय लब्धि संपन्न। मनुष्य लोकवर्ती पंचेन्द्रिय तिर्यक्योनिक अग्निकाय के बीचोंबीच जा सकता है। जो मनुष्य क्षेत्र से बहिर्वर्ती है, उसके लिए वह संभव नहीं है। वहां अग्निकाय का अभाव है इसलिए मनुष्य, पंचेन्द्रिय तिर्यक्योनिक अग्निकाय के बीचोंबीच नहीं जा सकते।

पच्चणुब्भव-पदं

६१. नेरइया दस ठाणाइं पच्चणुब्भवमाणा विहरंति, तं जहा-अणिट्ठा सद्दा, अणिट्ठा रूवा, अणिट्ठा गंधा, अणिट्ठा रसा, अणिट्ठा फासा, अणिट्ठा गती, अणिट्ठा ठिती, अणिट्ठे लावण्णे, अणिट्ठे जसे

प्रत्यनुभव-पदम्

नैरयिकाः दश स्थानानि प्रत्यनुभवन्तः विहरन्ति, तद्यथा-अनिष्टाः शब्दाः, अनिष्टाः रूपाः, अनिष्टाः गन्धाः, अनिष्टाः रसाः, अनिष्टाः स्पर्शाः, अनिष्टा गतिः, अनिष्टा स्थितिः,

प्रत्यनुभव-पद

६१. नैरयिक दस स्थानों का प्रत्यनुभव करते हुए विहार करते हैं, जैसे-अनिष्ट शब्द, अनिष्ट रूप, अनिष्ट गंध, अनिष्ट रस, अनिष्ट स्पर्श, अनिष्ट गति, अनिष्ट स्थिति, अनिष्ट लावण्य, अनिष्ट यशोकीर्ति और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कित्ती, अणिट्ठे उट्ठाण-कम्म-बल-वीरिय-पुरिसक्कार-परक्कमे।

अनिष्टं लावण्यम्, अनिष्टं यशःकीर्तिः, अनिष्टः उत्थान-कर्म-बल-वीर्य-पुरुषकार-पराक्रमः।

अनिष्ट उत्थान, कर्म, बल, वीर्य, पुरुषकार, पराक्रम।

६२. असुरकुमारा दस ठाणाइं पच्चणुब्भवमाणा विहरंति, तं जहा–इट्ठा सद्दा, इट्ठा रूवा जाव इट्ठे उट्ठाण-कम्म-बल-वीरिय-पुरिसक्कार-परक्कमे। एवं जाव थणियकुमारा॥

असुरकुमाराः दशस्थानानि प्रत्यनुभवन्तः विहरन्ति, तद् यथा–इष्टाः शब्दाः, इष्टाः रूपाः, यावत् इष्टः उत्थान-कर्म-बल-वीर्य-पुरुषकार-पराक्रमः। एवं यावत् स्तनितकुमाराः।

६२. असुरकुमार दस स्थानों का प्रत्यनुभव करते हुए विहार करते हैं, जैसे–इष्ट शब्द, इष्ट रूप यावत् इष्ट उत्थान, कर्म, बल, वीर्य पुरुषकार, पराक्रम। इसी प्रकार यावत् स्तनितकुमार की वक्तव्यता।

६३. पुढविक्काइया छट्ठाणाइं पच्चणुब्भवमाणा विहरंति, तं जहा–इट्ठाणिट्ठा फासा, इट्ठाणिट्ठा गती, एवं जाव पुरिसक्कार-परक्कमे। एवं जाव वणस्सइकाइया॥

पृथिवीकायिकाः षट् स्थानानि प्रत्यनुभवन्तः विहरन्ति, तद् यथा–इष्टानिष्टाः स्पर्शाः, इष्टानिष्टाः गतिः, एवं यावत् पुरुषकार-पराक्रमः एवं यावत् वनस्पतिकायिकाः।

६३. पृथ्वीकायिक छह स्थानों का प्रत्यनुभव करते हुए विहार करते हैं, जैसे–इष्ट-अनिष्ट स्पर्श, इष्ट-अनिष्ट गति, इसी प्रकार यावत् पुरुषकार, पराक्रम। इसी प्रकार यावत् वनस्पतिकायिक की वक्तव्यता।

६४. बेइंदिया सत्तट्ठाणाइं पच्चणुब्भवमाणा विहरंति, तं जहा–इट्ठाणिट्ठा रसा, सेसं जहा एगिंदियाणं॥

द्वीन्द्रियाः सप्त स्थानानि प्रत्यनुभवन्तः विहरन्ति, तद् यथा–इष्टानिष्टाः रसाः, शेषं यथा एकेन्द्रियाणाम्।

६४. द्वीन्द्रिय सात स्थानों का प्रत्यनुभव करते हुए विहार करते हैं, जैसे–इष्ट अनिष्ट रूप शेष एकेन्द्रिय की भांति वक्तव्य है।

६५. तेइंदिया अट्ठट्ठाणाइं पच्चणुब्भवमाणा विहरंति, तं जहा–इट्ठाणिट्ठा गंधा, सेसं जहा बेइंदियाणं॥

त्रीन्द्रियाः अष्ट स्थानानि प्रत्यनुभवन्तः विहरन्ति, तद् यथा–इष्टानिष्टाः गन्धाः, शेषं यथा द्वीन्द्रियाणाम्।

६५. त्रीन्द्रिय जीव आठ स्थानों का प्रत्यनुभव करते हुए विहार करते हैं, जैसे–इष्ट-अनिष्ट गंध, शेष द्वीन्द्रिय की भांति वक्तव्य है।

६६. चउरिंदिया नवट्ठाणाइं पच्चणुब्भवमाणा विहरंति, तं जहा–इट्ठाणिट्ठा रूवा, सेसं जहा तेइंदियाणं॥

चतुरिन्द्रियाः नव स्थानानि प्रत्यनुभवन्तः विहरन्ति, तद् यथा इष्टानिष्टाः रूपाः, शेषं यथा त्रीन्द्रियाणाम्।

६६. चतुरिन्द्रिय जीव नव स्थानों का प्रत्यनुभव करते हुए विहार करते हैं, जैसे–इष्ट-अनिष्ट रूप, शेष त्रीन्द्रिय की भांति वक्तव्य है।

६७. पंचिंदियतिरिक्खजोणिया दस ठाणाइं पच्चणुब्भवमाणा विहरंति, तं जहा–इट्ठाणिट्ठा सद्दा जाव पुरिसक्कार-परक्कमे। एवं मणुस्सा वि, वाणमंतर-जोइसिय-वेमाणिया जहा असुरकुमारा॥

पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकाः दश स्थानानि प्रत्यनुभवन्तः विहरन्ति, तद् यथा–इष्टानिष्टाः शब्दाः यावत् पुरुषकार-पराक्रमः। एवं मनुष्याः अपि, वानमंतर-ज्योतिष्क-वैमानिकाः यथा असुरकुमाराः।

६७. पंचेन्द्रिय तिर्यक्योनिक जीव दस स्थानों का प्रत्यनुभव करते हुए विहार करते हैं, जैसे–इष्ट-अनिष्ट शब्द यावत् पुरुषकार, पराक्रम। इसी प्रकार मुनष्य की वक्तव्यता। वाणमंतर, ज्योतिष्क और वैमानिक असुरकुमार की भांति वक्तव्य हैं।

भाष्य

१. सूत्र ६१-६७

प्रस्तुत आलापक में चारों गति के जीवों के अनुभव का बहुत ही स्वाभाविक निरूपण किया गया है–नरक गति में जीव अनिष्ट शब्द, रूप आदि का अनुभव करते हैं और उनका पुरुषार्थ भी अनिष्ट होता है। देव गति में जीव इष्ट शब्द, रूप आदि का अनुभव करते हैं और उनका पुरुषार्थ भी इष्ट होता है।

यह निरूपण प्रमुखता की दृष्टि से किया गया है।[1]

द्रष्टव्य भगवई, ६/५-१४,१८३-१८५ तथा ३/६२ का भाष्य।

देवस्स उल्लंघण-पल्लंघण-पदं

देवस्य उल्लंघन-प्रलंघन-पदम्

देव का उल्लंघन-प्रलंघन पद

६८. देवे णं भंते! महिड्ढीए जाव महेसक्खे बाहिरए पोग्गले अपरियाइत्ता पभू

देवः भदन्त! महर्द्धिकः यावत् महेशाख्यः बाह्यकान् पुद्गलान् अपर्यादाय प्रभुः

६८. भंते! महान् ऋद्धि यावत् महान् ऐश्वर्यशाली के रूप में प्रख्यात देव क्या बाहरी

१. भ. ६/१८३-१८५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तिरियपव्वयं वा तिरियभित्तिं वा उल्लंघेत्तए वा पल्लंघेत्तए वा?	तिर्यक्पर्वतं वा तिर्यग्भित्तिं वा उल्लंघितुं वा प्रलंघितुं वा?	पुद्गलों को ग्रहण किए बिना तिर्यक् पर्वत अथवा तिर्यक् भित्ति का एक बार उल्लंघन करने में अथवा बार-बार उल्लंघन करने में समर्थ है?
नो इणट्ठे समट्ठे॥	नो अयमर्थः समर्थः।	यह अर्थ संगत नहीं है।
६६. देवे णं भंते! महिड्ढीए जाव महेसक्खे बाहिरए पोग्गले परियाइत्ता पभू तिरियपव्वयं वा तिरियभित्तिं वा उल्लंघेत्तए वा पल्लंघेत्तए वा?	देवः भदन्त! महर्द्धिकः यावत् महेशाख्यः बाह्यकान् पुद्गलान् पर्यादाय प्रभुः तिर्यक्पर्वतं वा तिर्यग्भित्तिं वा उल्लंघितुं वा प्रलंघितुं वा?	६६. भंते! महान् ऋद्धि यावत् महान् ऐश्वर्यशाली के रूप में प्रख्यात देव क्या बाहरी पुद्गलों को ग्रहण कर तिर्यक् पर्वत अथवा तिर्यक् भित्ति का एक बार उल्लंघन करने में अथवा बार-बार उल्लंघन करने में समर्थ है?
हंता पभू॥	हन्त प्रभुः।	हां, समर्थ है।

भाष्य

१. सूत्र ६८-६६

विक्रिया के लिए बाह्य पुद्गलों का ग्रहण आवश्यक है। इस नियम की जानकारी के लिए द्रष्टव्य भगवई ६/१६३-१६५।

तुलना के लिए द्रष्टव्य भगवई ३/१८६-१८७

शब्द विमर्श

तिर्यक् पर्वत—मार्ग का अवरोध करने वाला पर्वत।

तिर्यक् भित्ति—प्राकार आदि की भींत अथवा पर्वत खण्ड।[1] तिर्यक् भित्ति का प्रयोग आचारांग में भी मिलता है।[2]

७०. सेवं भंते! सेवं भंते! त्ति॥	तदेवं भदन्त! तदेवं भदन्त! इति।	७०. भंते! वह ऐसा ही है। भंते! वह ऐसा ही है।

१. भ. वृ. १४/६८—तिरियपव्वयं—तिरश्चीनं पर्वतं गच्छतो मार्गविरोधकं,.....तिर्यग्भित्तिं—तिरश्चीनां प्राकारवरण्डिकादिभित्तिं पर्वतखण्डं वेति।

२. आयारो ६/५

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

छट्ठो उद्देसो : छठा उद्देशक

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
नेरइयादीणं किमाहारादि-पदं	**नैरयिकानाम् किमाहारादि-पदम्**	नैरयिक का आहार आदि पद
७१. रायगिहे जाव एवं वयासि–नेरइया णं भंते! किमाहारा, किंपरिणामा, किंजोणिया, किंठितीया पण्णत्ता?	राजगृहं यावत् एवमवादीत्–नैरयिकाः भदन्त! किम् आहाराः, किं परिणामाः, किं योनिकाः, किं स्थितिकाः प्रज्ञप्ताः?	७१. राजगृह नगर यावत् गौतम ने इस प्रकार कहा–भंते! नैरयिक किन द्रव्यों का आहार करते हैं? उनका परिणमन किस रूप में होता है? उनकी योनि क्या है? उनकी स्थिति का आधार क्या है?
गोयमा! नेरइया णं पोग्गलाहारा, पोग्गलपरिणामा, पोग्गलजोणिया, पोग्गलट्ठितीया, कम्मोवगा, कम्मनियाणा, कम्मट्ठितीया; कम्मुणामेव विप्परियासमेंति। एवं जाव वेमाणिया॥	गौतम! नैरयिकाः पुद्गलाहाराः, पुद्गलपरिणामाः, पुद्गलयोनिकाः, पुद्गलस्थितिकाः, कर्मोपगाः, कर्मनिदानाः, कर्मस्थितिकाः, कर्म एव विपर्यासम् आयान्ति। एवं यावत् वैमानिकाः।	गौतम! नैरयिक पुद्गल द्रव्यों का आहार करते हैं। शरीर-पोषक पुद्गल के रूप में उनका परिणमन होता है। योनि पौद्गलिक है। स्थिति का आधार आयुष्य कर्म के पुद्गल हैं। नैरयिक जीव कर्म का बंधन करने वाले हैं। उनके नारक होने का हेतु कर्म है। कर्म पुद्गल के कारण उनकी नारक के रूप में अवस्थिति है और कर्म के कारण ही वे विपर्यास–पर्यायान्तर को प्राप्त होते हैं। इस प्रकार यावत् वैमानिक की वक्तव्यता।

भाष्य

१. सूत्र ७१

नैरयिक पुद्गल का आहार करने वाले हैं।[1] नैरयिक पुद्गल योनि वाले हैं। उनकी योनि दो प्रकार की होती है–शीत योनि और उष्ण योनि।[2]

प्रज्ञापना के अनुसार नैरयिक द्वारा आहार में गृहीत पुद्गलों का श्रोत्रेन्द्रिय यावत् स्पर्शनेन्द्रिय आदि के रूप में परिणमन होता है।[3]

नैरयिकों की स्थिति के हेतु आयुष्य कर्म के पुद्गल हैं। स्थिति का विशद विवेचन स्थिति पद में मिलता है।[4]

आहार, परिणाम, योनि और स्थिति–ये सब पौद्गलिक हैं। इनके कारण नैरयिक जीवों की अवस्था बदलती रहती है। उसका हेतु है कर्म। इस विषय का विवरण चार पदों के द्वारा किया गया है। किसी जीव के कर्म का संग्रहण होता है, नरक पर्याय के निमित्तभूत कर्म का बंध होता है। उसी के आधार पर स्थिति का निर्धारण होता है। कर्म के द्वारा ही विपर्यास–पर्यायान्तर होता है।[5] कर्म के द्वारा होने वाले विपर्यास का नियम सभी जीव दंडकों पर लागू होता है।

७२. नेरइया णं भंते! किं वीचीदव्वाइं आहारेंति? अवीचीदव्वाइं आहारेंति? गोयमा! नेरइया वीचीदव्वाइं पि आहारेंति, अवीचीदव्वाइं पि आहारेंति॥	नैरयिकाः भदन्त! किं वीचिद्रव्याणि आहरन्ति? अवीचिद्रव्याणि आहरन्ति? गौतम! नैरयिकाः वीचिद्रव्याणि अपि आहरन्ति, अवीचिद्रव्याणि अपि आहरन्ति।	७२. भंते! क्या नैरयिक वीचि द्रव्यों का आहार करते हैं? अवीचि द्रव्यों का आहार करते हैं? गौतम! नैरयिक वीचि द्रव्यों का भी आहार करते हैं, अवीचि द्रव्यों का भी आहार करते हैं।

१. पण्ण. २८/५
२. वही, ६/२
३. वही, २८/२४
४. वही, ४/१-२४
५. भ.वृ. १४/७१–'कम्मोवगे' त्यादि कर्म–ज्ञानावरणादि पुद्गलरूपमुपगच्छन्ति–बंधनद्वारेणोपयान्तीति कर्म्मोपगाः, कर्म्मनिदानं–नारकत्वनिमित्तं कर्मबंधनिमित्तं वा येषां ते कर्मनिदानाः तथा कर्म्मणः–कर्मपुद्गलेभ्यः सकाशात् स्थितिर्येषां ते कर्म्मस्थितयः तथा कम्मुणामेव विप्परियासमेंतीति कर्मणैव हेतुभूतेन, मकार आगमिकः, विपर्यासं–पर्यायान्तरं पर्याप्तापर्याप्तादिकमायान्ति–प्राप्नुवन्ति अतस्ते पुद्गलस्थितयो भवन्तीति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७३. से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ–नेरइया वीचीदव्वाइं पि आहारेंति, अवीचीदव्वाइं पि आहारेंति?

गोयमा! जे णं नेरइया एगपएसूणाइं पि दव्वाइं आहारेंति, ते णं नेरइया वीचीदव्वाइं आहारेंति, जे णं नेरइया पडिपुण्णाइं दव्वाइं आहारेंति, ते णं नेरइया अवीचीदव्वाइं आहारेंति। से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ–नेरइया वीचीदव्वाइं पि आहारेंति, अवीचीदव्वाइं पि आहारेंति। एवं जाव वेमाणिया॥

तत् केनार्थेन भदन्त! एवमुच्यते नैरयिकाः वीचिद्रव्याणि अपि आहरन्ति, अवीचिद्रव्याणि अपि आहरन्ति?

गौतम! ये नैरयिकाः एक प्रदेशोनानि अपि द्रव्याणि आहरन्ति, ते नैरयिकाः वीचिद्रव्याणि आहरन्ति, ये नैरयिकाः प्रतिपूर्णानि द्रव्याणि आहरन्ति, ते नैरयिकाः अवीचिद्रव्याणि आहरन्ति। तत् तेनार्थेन गौतम! एवमुच्यते– नैरयिकाः वीचिद्रव्याणि अपि आहरन्ति, अवीचिद्रव्याणि अपि आहरन्ति। एवं यावत् वैमानिकाः।

७३. भंते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है– नैरयिक वीचि द्रव्यों का भी आहार करते हैं, अवीचि द्रव्यों का भी आहार करते हैं?

गौतम! जो नैरयिक एक प्रदेश न्यून द्रव्य का भी आहार करते हैं, वे वीचि द्रव्यों का आहार करते हैं। जो नैरयिक प्रतिपूर्ण द्रव्यों का आहार करते हैं, वे अवीचि द्रव्यों का आहार करते हैं। गौतम! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है– नैरयिक वीचि द्रव्यों का भी आहार करते हैं, अवीचि द्रव्यों का भी आहार करते हैं। इसी प्रकार यावत् वैमानिक की वक्तव्यता।

भाष्य

१. सूत्र ७२-७३

वीचि द्रव्य और अवीचि द्रव्य का अर्थ आगम पाठ में स्वयं स्पष्ट है। इसका तात्पर्यार्थ समझाने के लिए अभयदेव सूरि ने टीकाकार और चूर्णिकार दोनों के मत उद्धृत किए हैं।

टीकाकार का मत है–जितने द्रव्य-समुदाय से आहार पूर्ण होता है, उसमें एक आदि प्रदेश न्यून रहता है, उस द्रव्य-समुदाय की संज्ञा वीचि द्रव्य है। परिपूर्ण द्रव्य-समुदाय की संज्ञा अवीचि द्रव्य है।

चूर्णिकार ने इसकी व्याख्या आहार-द्रव्य वर्गणा के आधार पर की है। उनके अनुसार सर्वोत्कृष्ट आहार-द्रव्य वर्गणा अवीचि द्रव्य है। एक आदि प्रदेश से हीन आहार-द्रव्य वर्गणा वीचि द्रव्य है।[1]

वर्गणा दो प्रकार की होती है–जघन्य और सर्वोत्कृष्ट। सर्वोत्कृष्ट वर्गणा में एक परमाणु का अधिक योग होने पर वह ग्रहण के अयोग्य बन जाती है।[2] संभवतः चूर्णिकार ने इन दो प्रकार की वर्गणाओं के आधार पर अवीचि द्रव्य और वीचि द्रव्य की व्याख्या की है।

प्रज्ञापना के आहार-पद में नैरयिकों के आहार का विस्तृत वर्णन है। इस प्रकरण में वीचि द्रव्य और अवीचि द्रव्य का कोई उल्लेख नहीं है।[3]

प्रज्ञापना पद अठाईस के बाईसवें और तेईसवें सूत्र में नैरयिकों के आहार के संदर्भ में दो प्रश्न उपस्थित किए गए हैं–

१. नैरयिक आहार के रूप में जिन पुद्गलों का ग्रहण करते हैं, ग्रहण के बाद उनमें से कितने भाग का आहार करते हैं? कितने भाग का आस्वाद लेते हैं?

२. नैरयिक आहार के रूप में जिन पुद्गलों का ग्रहण करते हैं, उनमें सर्व पुद्गलों का आहार करते हैं अथवा कुछ न्यून पुद्गलों का आहार करते हैं?

इनके उत्तर में कहा गया है–

१. नैरयिक ग्रहण के बाद असंख्यातवें भाग का आहार करते हैं, अनंतवें भाग का आस्वाद लेते हैं।

२. नैरयिक ग्रहण के बाद अपरिशेष सर्व पुद्गलों का आहार करते हैं।

इन दोनों सूत्रों में विरोधाभास है। बाईसवें सूत्र में इस नियम का विधान है–असंख्यातवें भाग का आहार करते हैं। तेईसवें सूत्र में इस नियम का विधान है–अपरिशेष सर्व पुद्गलों का आहार करते हैं।

प्रज्ञापना के टीकाकार मलयगिरि ने इस विरोधाभास का सम्यक् समाधान प्रस्तुत किया है। उन्होंने ग्रहण को विशिष्ट बतलाया है। उनके अनुसार नैरयिक उज्झित शेष पुद्गलों का ही आहार के रूप में ग्रहण करते हैं– आहार वर्गणा के जो पुद्गल आहार-परिणाम योग्य हो चुके हैं उनका अपरिशेष सर्व ग्रहण करते हैं, यह अवीचि द्रव्य का आहार है। प्रज्ञापना की भाषा में यह सर्व अपरिशेष का आहार है।[4]

वीचि द्रव्य की व्याख्या कर्म ग्रन्थ के आधार पर की जा सकती है। उसके अनुसार जघन्य वर्गणा से लेकर सर्वोत्कृष्ट वर्गणा से न्यून जो आहार है, वह वीचि द्रव्य का आहार है।

---

१. भ. वृ. १४/७२-७३–वीचिः–विवक्षितद्रव्याणां तदवयवानां च परस्परेण पृथग्भावः 'वीचिर् पृथग्भावे' इति वचनात् तत्र वीचिप्रधानानि द्रव्याणि वीचिद्रव्याणि एकादिप्रदेशन्यूनानीत्यर्थः एतन्निषेधादवीचिद्रव्याणि। अयमत्र भावः–यावता द्रव्यसमुदायेनाहारः पूर्यते, स एकादिप्रदेशोनो वीचिद्रव्याण्युच्यते, परिपूर्णास्त्ववीचिद्रव्याणीति टीकाकारः, चूर्णिकारस्त्वाहारद्रव्यवर्गणामधिकृत्येदं व्याख्यातवान्। तत्र च याः सर्वोत्कृष्टाहारद्रव्यवर्गणास्ता अवीचिद्रव्याणि, यास्तु ताभ्य एकादिना प्रदेशेन हीनास्ता वीचिद्रव्याणीति। 'एगपएसऊणाइंपि दव्वाइं' ति एकप्रदेशोनान्यपि अपि शब्दानेकप्रदेशोनान्यपीति।

२. कर्म ग्रंथः पांचवां भाग गाथा ७५-७६.....व्याख्या पृ. २०६-२१६

३. पण्ण. २८/१-२४, ६८, १०२.

४. पण्ण. वृ. प. ५०३-५०४. यान् पुद्गलान् आहारतया गृह्णन्ति, इह ग्रहणं विशिष्टमवसेयम्, ततो ये उज्झितशेषाः केवलाः आहारपरिणामयोग्याः एवावतिष्ठन्ते तेऽत्राहारतया, गृह्यमाणाः पृष्टाः द्रष्टव्याः।.....तान् किं सर्वानपि आहारयन्ति उत नो सर्वान् सर्वैकदेशभूतान्? भगवानाह–तान् सर्वान्–अपरिशेषान् आहारयन्ति उज्झितशेषाणामेव केवलानामाहारपरिणामयोग्यानां गृहीतत्वात्।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देविंदाणं भोग-पदं

७४. जाहे णं भंते! सक्के देविंदे देवराया दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजिउकामे भवइ से कहमियाणिं पकरेति?

गोयमा! ताहे चेव णं से सक्के देविंदे देवराया एगं महं नेमिपडिरूवगं विउव्वइ–एगं जोयणसयसहस्सं आयामविक्खंभेणं, तिण्णिजोयणसयसहस्साइं जाव अद्धंगुलं च किंचिविसेसाहियं परिक्खेवेणं। तस्स णं नेमिपडिरूवगस्स उवरिं बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते जाव मणीणं फासो। तस्स णं नेमिपडिरूवगस्स बहुमज्झदेसभागे, एत्थ णं महं एगं पासायवडेंसगं विउव्वइ–पंच जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, अड्ढाइज्जाइं जोयणसयाइं विक्खंभेणं, अब्भुग्गय-मूसिय-पहसियमिव वण्णओ जाव पडिरूवं।

तस्स णं पासायवडेंसगस्स उल्लोए पउमलयाभत्तिचित्ते जाव पडिरूवे। तस्स णं पासायवडेंसगस्स अंतो बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे जाव मणीणं फासो, मणिपेढिया अट्ठजोयणिया जहा वेमाणियाणं। तीसे णं मणिपेढियाए उवरिं महं एगे देवसयणिज्जे विउव्वइ, सयणिज्जवण्णओ जाव पडिरूवे। तत्थ णं से सक्के देविंदे देवराया अट्ठहिं अग्गमहिसीहिं सपरिवाराहिं, दोहि य अणिएहिं–नट्टाणिएण य गंधव्वाणिएण य सद्धिं महयाहयनट्ट-गीय-वाइय-तंती-तल-ताल-तुडिय-घणमुइंगपडुप्पवाइयरवेणं दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरइ॥

देविंदाणं भोग-पदं

यदा भदन्त! देवेन्द्रः देवराजा दिव्यानि भोगभोगानि भोक्तुकामः भवति सः कथम् इदानीं प्रकरोति?

गौतम! तदा सः शक्रः देवेन्द्रः देवराजा एकं महान्तं नेमिप्रतिरूपकं विकरोति एकं योजनशतसहस्रम् आयाम-विष्कम्भेण, त्रीणि योजनशतसहस्राणि यावत् अर्द्धाङ्गुलं च किञ्चिद् विशेषाधिकं परिक्षेपेण। तस्य नेमिप्रतिरूपकस्य उपरि बहुसमरमणीयः भूमिभागः प्रज्ञप्तः यावत् मणीनां स्पर्शः। तस्य नेमिप्रतिरूपकस्य बहुमध्य-देशभागे, अत्र महान्तम् एकं प्रासादावतंसकं विकरोति पञ्चयोजन-शतानि ऊर्ध्वम् उच्चत्वेन, अर्धतृतीयानि योजनशतानि विष्कम्भेण, अभ्युद्गत-उच्छ्रित-प्रहसितमिव वर्णकः यावत् प्रतिरूपम्।

तस्य प्रासादावतंसकस्य उल्लोकः पद्मलता भक्तिचित्रः यावत् प्रतिरूपः। तस्य प्रासादावतंसकस्य अन्तर् बहु-समरमणीयः भूमिभागः यावत् मणीनां स्पर्शः। मणिपीठिका अष्टयोजनिका यथा वैमानिकानाम्। तस्याः मणिपीठिकायाः उपरि महान्तम् एकं देवशयनीयं विकरोति। शयनीयवर्णकः यावत् प्रतिरूपः। तत्र सः शक्रः देवेन्द्रः देवराजा अष्टाभिः अग्रमहिषीभिः सपरिवाराभिः द्वाभ्यां च अनीकाभ्यां नाट्यानीकेन च गन्धर्वानीकेन च सार्धं महत् आहतनाट्य-गीत-वादित-तन्त्री-तल-ताल-तुडिय-घनमृदङ्गपटुप्रवादित-रवेण दिव्यानि भोगभोगानि भुञ्जानः विहरति।

देवेन्द्र का भोग-पद

७४. भंते! जब देवराज देवेन्द्र शक्र दिव्य भोगार्ह भोगों को भोगना चाहते हैं, वह यह कैसे करते हैं?

गौतम! तब वे देवराज देवेन्द्र शक्र एक महान् चक्र–नाभि के प्रतिरूप का निर्माण करते हैं–एक लाख योजन लंबा-चौड़ा और उसका परिक्षेप तीन लाख यावत् साढे तेरह अंगुल से कुछ अधिक प्रज्ञप्त है। उस चक्र नाभि प्रतिरूप के ऊपर बहु सम रमणीय भूमि भाग प्रज्ञप्त है यावत् मणि का स्पर्श। उस चक्र प्रतिरूप के बहुमध्य देश भाग है, वहां एक महान् प्रासादावतंसक का निर्माण करता है–ऊंचाई में पांच सौ योजन, उसका विस्तार ढाई सौ योजन। वह प्रासादावतंसक अपनी ऊंचाई से आकाश को छूने वाला मानो श्वेतप्रभा पटल से हंसता हुआ प्रतीत हो रहा है। इस प्रासादावतंसक के चंदोवा में पद्मलता की भांति खचित चित्र चित्रित हैं यावत् प्रतिरूप।

उस प्रासादावतंसक के भीतर बहुसम रमणीय भूमि है यावत् मणि का स्पर्श। मणिपीठिका वैमानिक की भांति आठ योजन की है। उस मणिपीठिका के ऊपर एक महान् देव-शयनीय का निर्माण करता है, शयनीय का वर्णन यावत् प्रतिरूप। वहां देवराज देवेन्द्र शक्र सपरिवार आठ अग्रमहिषियों तथा दो अनीकों–नाट्यानीक और गंधर्वानीक के साथ आहत नाट्यों, गीतों तथा कुशल वादक के द्वारा बनाए गए वादित्र, तंत्री, तल, ताल, त्रुटित, घन और मृदंग की महान् ध्वनि से दिव्य भोगार्ह भोगों को भोगता हुआ विहरण करता है।

७५. जाहे ईसाणे देविंदे देवराया दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजिउकामे भवइ से कहमियाणिं पकरेति?

जहा सक्के तहा ईसाणे वि निरवसेसं। एवं सणंकुमारे वि, नवरं–पासायवडेंसओ छ जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, तिण्णि जोयणसयाइं विक्खंभेणं, मणिपेढिया

यदा ईशानः देवेन्द्रः देवराजा दिव्यानि भोगभोगानि भोक्तुकामः भवति सः कथम् इदानीं प्रकरोति?

यथा शक्रे तथा ईशाने अपि निरवशेषम्। एवं सनत्कुमारे अपि, नवरम्–प्रासादावतंसकः षड् योजनशतानि ऊर्ध्वं उच्चत्वेन, त्रीणि

७५. जब देवराज देवेन्द्र ईशान दिव्य भोगार्ह भोगों को भोगना चाहते हैं, वह यह कैसे करते हैं?

जैसे शक्र वैसे ईशान की निरवशेष वक्तव्यता। इसी प्रकार सनत्कुमार की वक्तव्यता, इतना विशेष है–प्रासादावतंसक ऊंचाई में छह सौ योजन, उसका विस्तार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तहेव अद्धजोयणिया। तीसे णं मणिपेढियाए उवरिं, एत्थ णं महेगं सीहासणं विउव्वइ, सपरिवारं भाणियव्वं। तत्थ णं सणंकुमारे देविंदे देवराया बावत्तरीए सामाणियसाहस्सीहि जाव चउहि य बावत्तरीहिं आयरक्खदेवसाहस्सीहि य बहूहिं सणंकुमारकप्पवासीहिं वेमाणिएहिं देवेहि य देवीहि य सद्धिं संपरिवुडे महयाहयनट्ट जाव विहरइ। एवं जहा सणंकुमारे तहा जाव पाणओ अच्चुओ, नवरं—जो जस्स परिवारो सो तस्स भाणियव्वो। पासायउच्चत्तं—जं सएसु-सएसु कप्पेसु विमाणाणं उच्चत्तं, अद्धद्धं वित्थारो जाव अच्चुयस्स नवजोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, अद्धपंचमाइं जोयणसयाइं विक्खंभेणं। तत्थ णं अच्चुए देविंदे देवराया दसहिं सामाणियसाहस्सीहिं जाव विहरइ, सेसं तं चेव॥

योजनशतानि विष्कम्भेण, मणिपीठिका तथैव अष्टयोजनिका। तस्याः च मणिपीठिकायाः उपरि, अत्र महान्तम् एकं सिंहासनं विकरोति, सपरिवारं भणितव्यम्। तत्र सनत्कुमारः देवेन्द्रः देवराजा द्वासप्ततिभिः सामानिकसाहस्रीभिः यावत् चतुर्भिः द्वासप्ततिभिः आत्मरक्षदेवसाहस्रीभिः बहुभिः सनत्कुमारकल्पवासिभिः वैमानिकैः देवैः च देवीभिः च सार्धं सम्परिवृतः महत्-आहतनाट्य यावत् विहरति। एवं यथा सनत्कुमारः तथा यावत् प्राणतः अच्युतः, नवरम्—यः यस्य परिवारः सः तस्य भणितव्यः। प्रासादोच्चत्वम्—यत् स्वकेषु-स्वकेषु कल्पेषु विमानानाम् उच्चत्वम्, अर्धार्धं विस्तारः यावत् अच्युतस्य नवयोजनशतानि ऊर्ध्वम् उच्चत्वेन, अर्द्धपञ्चानि योजनशतानि विष्कम्भेण। तत्र अच्युतः देवेन्द्रः देवराजा दशभिः सामानिकसाहस्रीभिः यावत् विहरति, शेषं तत् चैव।

तीन सौ योजन, उसी प्रकार मणिपीठिका आठ योजन की। उस मणिपीठिका के ऊपर एक महान् सिंहासन का निर्माण करता है, परिवार सहित वक्तव्य है। देवराज देवेन्द्र सनत्कुमार बहत्तर हजार सामानिक देव यावत् दो लाख इट्यासी हजार आत्मरक्षक देव सनत्कुमार-कल्पवासी बहुत वैमानिक देवता, देवियों के साथ संपरिवृत होकर आहत नाट्यों यावत् विहरण करता है। इस प्रकार जैसे सनत्कुमार उसी प्रकार यावत् प्राणत, अच्युत की वक्तव्यता, इतना विशेष है—जो जिसका परिवार है, वह उसका वक्तव्य है। प्रासाद की ऊंचाई—अपने-अपने कल्प के विमानों की ऊंचाई, विस्तार उससे आधा यावत् अच्युत के प्रासादावतंसक की ऊंचाई नौ सौ योजन, उसका विस्तार साढ़े चार सौ योजन है। वहां देवराज देवेन्द्र अच्युत दस हजार सामानिकों के साथ यावत् विहरण करता है। शेष पूर्ववत्।

भाष्य

१. सूत्र ७४–७५

शब्द-विमर्श

नेमि प्रतिरूपक—चक्र के आकार वाला, गोलाकार भवन।[1]

७६. सेवं भंते! सेवं भंते! त्ति॥

तदेवं भदन्त! तदेवं भदन्त! इति

७६. भंते! वह ऐसा ही है। भंते! वह ऐसा ही है।

१. भ. वृ. १४/७३ नेमिः चक्रधारा तद्योगाच्चक्रमपि नेमिः तत्प्रतिरूपकं—वृत्ततया तत्सदृशं स्थानमिति शेषः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सत्तमो उद्देसो : सातवां उद्देशक

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
गोयमस्स आसासण-पदं	गौतमस्य आश्वासन-पदम्	गौतम का आश्वासन पद
७७. रायगिहे जाव परिसा पडिगया।	राजगृहः यावत् परिषद् प्रतिगता।	७७. राजगृह नगर यावत् परिषद् वापस नगर में चली गई।
गोयमादी! समणे भगवं महावीरे भगवं गोयमं आमंतेत्ता एवं वयासी–	गौतम अयि! श्रमणः भगवान् महावीरः भगवन्तं गौतमम् आमन्त्र्य एवमवादीत्–	अयि गौतम! श्रमण भगवान् महावीर ने गौतम को आमंत्रित कर इस प्रकार कहा–
चिर संसिट्ठोसि मे गोयमा!	चिरसंसृष्टः असि मम गौतम!	गौतम! तुम चिर काल से मेरे संसर्ग में रहे हो।
चिरसंथुओसि मे गोयमा!	चिरसंस्तुतः असि मम गौतम!	गौतम! तुम मुझसे चिर संस्तुत रहे हो।
चिरपरिचिओसि मे गोयमा!	चिरपरिचितः असि मम गौतम!	गौतम! तुम चिर काल से मुझसे परिचित रहे हो।
चिरजुसिओसि मे गोयमा!	चिरजुष्टः असि मम गौतम!	गौतम! तुम मुझसे चिर काल से प्रीति परायण रहे हो।
चिराणुगओसि मे गोयमा!	चिरानुगतः असि मम गौतम!	गौतम! चिरकाल से तुम मेरा अनुगमन करते रहे हो।
चिराणुवत्तीसि मे गोयमा!	चिरानुवृत्तिः असि मम गौतम!	गौतम! तुम चिर काल से मेरा अनुवर्तन करते रहे हो।
अणंतरं देवलोए अणंतरं माणुस्सए भवे, किं परं मरणा कायस्स भेदा इओ चुता दो वि तुल्ला एगट्ठा अविसेसमणाणत्ता भविस्सामो॥	अनन्तरं देवलोके अनन्तरं मानुष्यके भवे, किं परं मरणात् कायस्य भेदात् इतः च्युतौ द्वौ अपि तुल्यौ एकार्थौ अविशेषम् अनानात्वौ भविष्यावः।	अनंतर (व्यवधान रहित) देवलोक में, अनंतर मनुष्य जन्म में भी। और क्या मृत्यु के होने पर–शरीर के छूट जाने पर यहां से च्युत होकर हम दोनों तुल्य, एकार्थक, अभिन्न और नानात्व से रहित होंगे।
७८. जहा णं भंते! वयं एयमट्ठं जाणामो-पासामो, तहा णं अणुत्तरोववाइया वि देवा एयमट्ठं जाणंति-पासंति?	यथा भदन्त! आवाम् एतमर्थं जानीवः-पश्यावः, तथा अनुत्तरोपपातिकाः अपि देवाः एतमर्थं जानन्ति पश्यन्ति?	७८. भंते! जैसे हम इस अर्थ को जानते-देखते हैं, वैसे अनुत्तरोपपातिक देव भी इस अर्थ को जानते-देखते हैं?
हंता गोयमा! जहा णं वयं एयमट्ठं जाणामो-पासामो, तहा णं अणुत्तरोववाइया वि देवा एयमट्ठं जाणंति-पासंति॥	हन्त गौतम! यथा आवाम् एतमर्थं जानीवः-पश्यावः, तथा अनुत्तरोपपातिकाः अपि देवाः एतमर्थं जानन्ति-पश्यन्ति।	हां, गौतम! जैसे हम इस अर्थ को जानते-देखते हैं, वैसे अनुत्तरोपपातिक देव भी इस अर्थ को जानते-देखते हैं।
७९. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–वयं एयमट्ठं जाणामो-पासामो, तहा णं	तत् केनार्थेन भदन्त! एवमुच्यते– आवाम् एतमर्थं जानीवः पश्यावः, तथा	७९. भंते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है–जैसे हम इस अर्थ को जानते-देखते हैं वैसे

भाष्य

१. सूत्र ७७

गौतम स्वामी के मन में किसी घटना विशेष के कारण विचिकित्सा और अधृति पैदा हो गई। इस विषय में दो कथाएं प्रचलित हैं। पहली कथा उत्तराध्ययन निर्युक्ति और बृहद्वृत्ति में उपलब्ध है।

दूसरी कथा अभयदेवसूरि ने प्रस्तुत सूत्र की व्याख्या में प्रस्तुत की है। वह प्रामाणिक प्रतीत नहीं होती। द्रष्टव्य–उत्तरज्झयणाणि के दसवें अध्ययन का आमुख।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अणुत्तरोववाइया वि देवा एयमट्ठं जाणंति-पासंति?
गोयमा! अणुत्तरोववाइयाणं अणंताओ मणोदव्ववग्गणाओ लद्धाओ पत्ताओ अभिसमण्णागयाओ भवंति। से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ–वयं एयमट्ठं जाणामो-पासामो, तहा णं अणुत्तरोववाइया वि देवा एयमट्ठं जाणंति-पासंति॥

अनुत्तरोपपातिकाः अपि देवाः एतमर्थं जानन्ति-पश्यन्ति?
गौतम! अनुत्तरोपपातिकानाम् अनन्ताः मनोद्रव्यवर्गणाः लब्धाः प्राप्ताः अभिसमन्वागताः भवन्ति। तत् तेनार्थेन गौतम! एवमुच्यते–आवाम् एतमर्थं जानीवः-पश्यावः, तथा अनुत्तरोपपातिकाः अपि देवाः एतमर्थं जानन्ति-पश्यन्ति।

अनुत्तरोपपातिक देव भी इस अर्थ को जानते-देखते हैं?
गौतम! अनुत्तरोपपातिक देवों को अनंत मनोद्रव्य वर्गणाएं लब्ध, प्राप्त और अभिसमन्वागत हो जाती हैं। गौतम! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है–जैसे हम इस अर्थ को जानते-देखते हैं, वैसे अनुत्तरोपपातिक देव भी इस अर्थ को जानते-देखते हैं।

भाष्य

१. सूत्र ७८-७९

प्रस्तुत सूत्र के 'एयमट्ठं' इस वाक्यांश का तात्पर्यार्थ है–हमारा वार्तालाप। महावीर और गौतम ने वार्तालाप किया। गौतम के मन में प्रश्न उठा–क्या हमारे वार्तालाप को अनुत्तरोपपातिक देव जान सकते हैं? भगवान् महावीर ने इस प्रश्न का उत्तर 'हां' में दिया। इस विषय की विशद जानकारी के लिए द्रष्टव्य भगवई ५/१०३-१०६ सूत्र तथा उसका भाष्य।

मानसिक स्तर पर प्रश्न और उत्तर–भवगई ५/८३-८८।
केवली के मन और वचन–भगवई ५/१००-१०२

तुल्लय-पदं

८०. कतिविहे णं भंते! तुल्लए पण्णत्ते?
गोयमा! छव्विहे तुल्लए पण्णत्ते, तं जहा–दव्वतुल्लए, खेत्ततुल्लए, कालतुल्लए, भवतुल्लए, भावतुल्लए, संठाणतुल्लए॥

तुल्यक-पदम्

कतिविधः भदन्त! तुल्यकः प्रज्ञप्तः?
गौतम! षड्विधः तुल्यकः प्रज्ञप्तः, तद्यथा–द्रव्यतुल्यकः, क्षेत्रतुल्यकः, कालतुल्यकः, भवतुल्यकः, भावतुल्यकः, संस्थानतुल्यकः।

तुल्य पद

८०. भंते! कितने प्रकार के तुल्य प्रज्ञप्त है?
गौतम! छह प्रकार के तुल्य प्रज्ञप्त है, जैसे–द्रव्य तुल्य, क्षेत्र तुल्य, काल तुल्य, भव तुल्य, भाव तुल्य, संस्थान तुल्य।

८१. से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ–दव्वतुल्लए दव्वतुल्लए?
गोयमा! परमाणुपोग्गले परमाणुपोग्गलस्स दव्वओ तुल्ले, परमाणुपोग्गले परमाणुपोग्गलवइरित्तस्स दव्वओ नो तुल्ले। दुपएसिए खंधे दुपएसियस्स खंधस्स दव्वओ तुल्ले, दुपएसिए खंधे दुपएसियवइरित्तस्स खंधस्स दव्वओ नो तुल्ले। एवं जाव दसपएसिए। तुल्लसंखेज्जपएसिए खंधे तुल्लसंखेज्जपएसियस्स खंधस्स दव्वओ तुल्ले, तुल्लसंखेज्जपएसिए खंधे तुल्लसंखेज्जपएसियवइरित्तस्स खंधस्स दव्वओ नो तुल्ले, एवं तुल्लअसंखेज्जपएसिए वि, एवं तुल्लअणंतपएसिए वि। से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ–दव्वतुल्लए दव्वतुल्लए।

तत् केनार्थेन भदन्त! एवमुच्यते–द्रव्यतुल्यकः द्रव्यतुल्यकः?
गौतम! परमाणुपुद्गलः परमाणुपुद्गलस्य द्रव्यतः तुल्यः, परमाणुपुद्गलः परमाणुपुद्गलव्यतिरिक्तस्य द्रव्यतः नो तुल्यः। द्विप्रादेशिकः स्कन्धः द्विप्रादेशिकस्य स्कन्धस्य द्रव्यतः तुल्यः, द्विप्रादेशिकः स्कन्धः द्विप्रादेशिकव्यतिरिक्तस्य स्कन्धस्य द्रव्यतः नो तुल्यः। एवं यावत् दशप्रादेशिकः। तुल्यसंख्येयप्रादेशिकः स्कन्धः तुल्यसंख्येयप्रादेशिकस्य स्कन्धस्य द्रव्यतः तुल्यः, तुल्यसंख्येयप्रादेशिकः स्कन्धः तुल्यसंख्येय-प्रादेशिकव्यतिरिक्तस्य स्कन्धस्य द्रव्यतः नो तुल्यः, एवं तुल्यासंख्येयप्रादेशिकः अपि, एवं तुल्यानन्तप्रादेशिकः अपि। तत् तेनार्थेन गौतम! एवमुच्यते–द्रव्यतुल्यकः द्रव्यतुल्यकः।

८१. भंते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है–द्रव्य-तुल्य द्रव्य-तुल्य है?
गौतम! परमाणु-पुद्गल परमाणु-पुद्गल से द्रव्यतः तुल्य है। परमाणु-पुद्गल परमाणु पुद्गल व्यतिरिक्त से द्रव्यतः तुल्य नहीं है। द्विप्रदेशिक-स्कंध द्विप्रदेशिक-स्कंध से द्रव्यतः तुल्य है। द्विप्रदेशिक-स्कंध द्विप्रदेशिक व्यतिरिक्त स्कंध से द्रव्यतः तुल्य नहीं है। इसी प्रकार यावत् दस प्रदेशी की वक्तव्यता। समान संख्येय-प्रदेशी स्कंध समान संख्येय-प्रदेशी स्कंध से द्रव्यतः तुल्य है। समान संख्येय-प्रदेशी स्कंध समान संख्येय-प्रदेशी व्यतिरिक्त स्कंध से तुल्य नहीं है। इसी प्रकार समान असंख्येय-प्रदेशी स्कंध की भी वक्तव्यता। इसी प्रकार समान अनंत-प्रदेशी स्कंध की भी वक्तव्यता।
गौतम! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है–द्रव्य-तुल्य द्रव्य-तुल्य है।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ–खेत्ततुल्लए खेत्ततुल्लए?

तत् केनार्थेन भदन्त! एवमुच्यते–क्षेत्रतुल्यकः क्षेत्रतुल्यकः?

भंते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है–क्षेत्र-तुल्य क्षेत्र-तुल्य है?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा! एगपएसोगाढे पोग्गले एगपएसोगाढस्स पोग्गलस्स खेत्तओ तुल्ले, एगपएसोगाढे पोग्गले एगपएसोगाढवइरित्तस्स पोग्गलस्स खेत्तओ नो तुल्ले, एवं जाव दसपएसोगाढे। तुल्लसंखेज्जपएसोगाढे पोग्गले तुल्लसंखेज्जपएसोगाढस्स पोग्गलस्स खेत्तओ तुल्ले, तुल्लसंखेज्जपएसोगाढेपोग्गले तुल्लसंखेज्जपएसोगाढवइरित्तस्स पोग्गलस्स खेत्तओ नो तुल्ले, एवं तुल्लअसंखेज्जपएसोगाढे वि। से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ–खेत्ततुल्लए खेत्ततुल्लए।

गौतम! एकप्रदेशावगाढः पुद्गलः एकप्रदेशावगाढस्य पुद्गलस्य क्षेत्रतः तुल्यः, एकप्रदेशावगाढः पुद्गलः एकप्रदेशावगाढव्यतिरिक्तस्य पुद्गलस्य क्षेत्रतः नो तुल्यः, एवं यावत् दशप्रदेशावगाढः। तुल्यसंख्येयप्रदेशावगाढः पुद्गलः तुल्यसंख्येयप्रदेशावगाढस्य पुद्गलस्य क्षेत्रतः तुल्यः, तुल्यसंख्येयप्रदेशावगाढः पुद्गलः तुल्यसंख्येयप्रदेशावगाढव्यतिरिक्तस्य पुद्गलस्य क्षेत्रतः नो तुल्यः, एवं तुल्यासंख्येयप्रदेशावगाढः अपि। तत् तेनार्थेन गौतम! एवमुच्यते–क्षेत्रतुल्यकः क्षेत्रतुल्यकः।

गौतम! एक प्रदेशावगाढ पुद्गल एक प्रदेशावगाढ पुद्गल से क्षेत्रतः तुल्य है। एक प्रदेशावगाढ पुद्गल एक प्रदेशावगाढ व्यतिरिक्त पुद्गल से क्षेत्रतः तुल्य नहीं है। इसी प्रकार यावत् दस प्रदेशावगाढ की वक्तव्यता। समान संख्येय-प्रदेशावगाढ पुद्गल समान संख्येय-प्रदेशावगाढ पुद्गल से क्षेत्रतः तुल्य है। समान संख्येय-प्रदेशावगाढ पुद्गल समान संख्येय-प्रदेशावगाढ व्यक्तिरिक्त पुद्गल से क्षेत्रतः तुल्य नहीं है। इसी प्रकार समान असंख्येय-प्रदेशावगाढ की वक्तव्यता। गौतम! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है–क्षेत्र तुल्य क्षेत्र तुल्य है।

से केणट्ठेणं एवं वुच्चइ–कालतुल्लए कालतुल्लए?

गोयमा! एगसमयठितीए पोग्गले एगसमयठितीयस्स पोग्गलस्स कालओ तुल्ले, एगसमयठितीए पोग्गले एगसमयठितीयवइरित्तस्स पोग्गलस्स कालओ नो तुल्ले, एवं जाव दससमयट्ठितीए, तुल्लसंखेज्जसमयट्ठितीए एवं चेव, एवं तुल्लअसंखेज्जसमयट्ठितीए वि। से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ–कालतुल्लए कालतुल्लए।

तत् केनार्थेन भदन्त। एवमुच्यते–कालतुल्यकः कालतुल्यकः?

गौतम! एकसमयस्थितिकः पुद्गलः एकसमयस्थितिकस्य पुद्गलस्य कालतः तुल्यः, एकसमयस्थितिकः पुद्गलःएकसमयस्थितिकव्यतिरिक्तस्य पुद्गलस्य कालतः नो तुल्यः, एवं यावत् दशसमयस्थितिकः, तुल्यसंख्येयसमयस्थितिकः एवं चैव, एवं तुल्यासंख्येयसमयस्थितिकः अपि।

तत् तेनार्थेन गौतम! एवमुच्यते कालतुल्यकः कालतुल्यकः।

भंते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है–काल-तुल्य काल-तुल्य है?

गौतम! एक समय की स्थिति वाला पुद्गल एक समय की स्थिति वाले पुद्गल से कालतः तुल्य है। एक समय की स्थिति वाला पुद्गल एक समय की स्थिति से व्यतिरिक्त पुद्गल से कालतः तुल्य नहीं है। इसी प्रकार यावत् दस समय की स्थिति वाले, इसी प्रकार समान संख्येय समय की स्थिति वाले, इसी प्रकार समान असंख्येय समय की स्थिति वाले पुद्गल की वक्तव्यता। गौतम! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है–काल-तुल्य काल-तुल्य है।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ–भवतुल्लए-भवतुल्लए?

गोयमा! नेरइए नेरइयस्स भवट्ठयाए तुल्ले, नेरइयवइरित्तस्स भवट्ठयाए नो तुल्ले, तिरिक्खजोणिए एवं चेव, एवं मणुस्से, एवं देवे वि। से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ–भवतुल्लए भवतुल्लए।

तत् केनार्थेन भदन्त! एवमुच्यते–भवतुल्यकः भवतुल्यकः?

गौतम! नैरयिकः नैरयिकस्य भवार्थतया तुल्यः, नैरयिकव्यतिरिक्तस्य भवार्थतया नो तुल्यः, तिर्यग्योनिकः एवं चैव, एवं मनुष्यः, एवं देवः अपि। तत् तेनार्थेन गौतम! एवमुच्यते–भवतुल्यकः भवतुल्यकः।

भंते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है भव-तुल्य भव-तुल्य है।

गौतम! नैरयिक नैरयिक से भव की अपेक्षा तुल्य है, नैरयिक-व्यतिरिक्त से भव की अपेक्षा तुल्य नहीं है। इसी प्रकार तिर्यक् योनिक की, इसी प्रकार मनुष्य की, इसी प्रकार देव की वक्तव्यता। गौतम! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है–भव-तुल्य भव-तुल्य है।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ–भावतुल्लए भावतुल्लए?

गोयमा! एगगुणकालए पोग्गले एगगुणकालगस्स पोग्गलस्स भावओ तुल्ले, एगगुणकालए पोग्गले एगगुणकालावइरित्तस्स पोग्गलस्स भावओ नो तुल्ले, एवं जाव दसगुणकालए, एवं तुल्लसंखेज्जगुणकालए पोग्गले, एवं

तत् केनार्थेन भदन्त! एवमुच्यते–भावतुल्यकः भावतुल्यकः?

गौतम! एकगुणकालकः पुद्गलः एकगुणकालकस्य पुद्गलस्य भावतः तुल्यः, एकगुणकालकः पुद्गलः एकगुणकालकव्यतिरिक्तस्य पुद्गलस्य भावतः नो तुल्यः, एवं यावत् दशगुणकालकः, एवं तुल्यसंख्येयगुणकालकः

भंते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है भाव-तुल्य भाव-तुल्य है?

गौतम! एक गुण कृष्ण पुद्गल एक गुण कृष्ण पुद्गल से भावतः तुल्य है। एक गुण कृष्ण पुद्गल एक गुण कृष्ण व्यतिरिक्त पुद्गल से भावतः तुल्य नहीं है। इसी प्रकार यावत् दस गुण कृष्ण की, इसी प्रकार समान संख्येय गुण कृष्ण की, इसी प्रकार समान असंख्येय

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तुल्लअसंखेज्जगुणकालए वि, एवं तुल्लअणंतगुणकालए वि।
जहा कालए, एवं नीलए, लोहियए, हालिद्दए, सुक्किलए। एवं सुब्भिगंधे, एवं दुब्भिगंधे। एवं तित्ते जाव महुरे। एवं कक्खडे जाव लुक्खे। ओदइए भावे ओदइयस्स भावस्स भावओ तुल्ले, ओदइए भावे ओदइयभाववइरित्तस्स भावस्स भावओ नो तुल्ले, एवं ओवसमिए, खइए, खओवसमिए, पारिणामिए। सन्निवाइए भावे सन्निवाइयस्स भावस्स भावओ तुल्ले, सन्निवाइए भावे सन्निवाइयभाववइरित्तस्स भावस्स भावओ नो तुल्ले।

पुद्गलः, एवं तुल्यासंख्येयगुणकालकः अपि, एवं तुल्यानन्तगुणकालकः अपि। यथा कालकः, एवं नीलकः, लोहितकः, हारिद्रकः, शुक्लकः। एवं सुगन्धः, एवं दुर्गन्धः। एवं तिक्तः यावत् मधुरः। एवं कर्कशः यावत् रूक्षः। औदयिकः भावः औदयिकस्य भावस्य भावतः तुल्यः, औदयिकः भावः औदयिकभावव्यतिरिक्तस्य भावस्य भावतः नो तुल्यः, एवम् औपशमिकः, क्षायिकः, क्षायोपशमिकः, पारिणामिकः सान्निपातिकः भावः सान्निपातिकस्य भावस्य भावतः तुल्यः, सान्निपातिकः भावः सान्निपातिकभावव्यतिरिक्तस्य भावस्य भावतः नो तुल्यः।

गुण कृष्ण की वक्तव्यता, इसी प्रकार समान अनंत गुण कृष्ण की वक्तव्यता।
कृष्ण की भांति नील, लोहित, हारिद्र और शुक्ल की वक्तव्यता। इसी प्रकार सुगंध और दुर्गन्ध की वक्तव्यता। इसी प्रकार तिक्त यावत् मधुर रस की वक्तव्यता। इसी प्रकार कर्कश यावत् रूक्ष स्पर्श की वक्तव्यता। औदयिक भाव औदयिक भाव से भावतः तुल्य है। औदयिक भाव औदयिक व्यतिरिक्त भाव से भावतः तुल्य नहीं है। इसी प्रकार औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक और पारिणामिक भाव की वक्तव्यता। सांनिपातिक भाव सांनिपातिक भाव से भावतः तुल्य है, सांनिपातिक भाव सांनिपातिक व्यतिरिक्त भाव से भावतः तुल्य नहीं है।

से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ–भावतुल्लए भावतुल्लए।

तत् तेनार्थेन गौतम! एवमुच्यते–भावतुल्यकः भावतुल्यकः।

गौतम! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है भाव-तुल्य भाव-तुल्य है।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ–संठाणतुल्लए संठाणतुल्लए?

तत् केनार्थेन भदन्त! एवमुच्यते–संस्थानतुल्यकः संस्थानतुल्यकः?

भंते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है–संस्थान तुल्य संस्थान तुल्य है।

गोयमा! परिमंडले संठाणे परिमंडलस्स संठाणस्स संठाणओ तुल्ले, परिमंडले संठाणे परिमंडलसंठाणवइरित्तस्स संठाणस्स संठाणओ नो तुल्ले, एवं वट्टे, तंसे, चउरंसे, आयए। समचउरंससंठाणे समचउरंसस्स संठाणस्स संठाणओ तुल्ले, समचउरंसे संठाणे समचउरंससंठाणवइरित्तस्स संठाणस्स संठाणओ नो तुल्ले एवं परिमंडले वि, एवं साई खुज्जे वामणे हुंडे। से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ–संठाणतुल्लए संठाणतुल्लए।

गौतम! परिमंडलसंस्थानं परिमंडलसंस्थानव्यतिरिक्तस्य संस्थानस्य संस्थानतः तुल्यम्, परिमण्डलसंस्थानं–परिमण्डलसंस्थानव्यतिरिक्तस्य संस्थानस्य संस्थानतः नो तुल्यम्, एवं वृत्तः, त्र्यस्रः, चतुरस्रः, आयतः। समचतुरस्रसंस्थानं समचतुरस्रस्य संस्थानस्य संस्थानतः तुल्यम्, एवं परिमंडलः अपि। एवं सादिः, कुब्जः, वामनः, हुण्डः। तत् तेनार्थेन गौतम! एवमुच्यते–संस्थानतुल्यकः-संस्थानतुल्यकः।

गौतम! परिमंडल संस्थान परिमंडल संस्थान से संस्थानतः तुल्य है। परिमंडल संस्थान परिमंडल संस्थान व्यतिरिक्त संस्थान से संस्थानतः तुल्य नहीं है। इसी प्रकार वृत्त, चतुरस्र, आयत की वक्तव्यता। समचतुरस्र संस्थान समचतुरस्र संस्थान से संस्थानतः तुल्य है। समचतुरस्र संस्थान समचतुरस्र व्यतिरिक्त संस्थान से संस्थानतः तुल्य नहीं है। इसी प्रकार परिमंडल संस्थान की वक्तव्यता। इसी प्रकार सादि, कुब्ज, वामन और हुंड संस्थान की वक्तव्यता। गौतम! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है–संस्थान तुल्य संस्थान तुल्य है।

भाष्य

१. सूत्र ८०-८१

अनेकांत दर्शन के आधार पर यह कहा जा सकता है–प्रत्येक वस्तु में सदृशता और विसदृशता का गुण-धर्म विद्यमान है। प्रस्तुत आलापक में सदृशता और विसदृशता की छह दृष्टियों से विचारणा की गई है। प्रस्तुत प्रकरण में द्रव्य का अर्थ है व्यक्ति। इसका निदर्शन है–एक परमाणु दूसरे परमाणु से द्रव्य की दृष्टि से तुल्य है। इसी प्रकार द्विप्रदेशी स्कंध द्विप्रदेशी स्कंध से द्रव्य की दृष्टि से तुल्य है।

एक प्रदेशावगाढ़ पुद्गल एक प्रदेशावगाढ़ पुद्गल से क्षेत्र की दृष्टि से तुल्य है। यह क्षेत्र तुल्य का निदर्शन है।

एक समय की स्थिति वाला पुद्गल एक समय की स्थिति वाले पुद्गल से काल की दृष्टि से तुल्य है। यह काल तुल्य का निदर्शन है।

एक मनुष्य दूसरे मनुष्य से भव की दृष्टि से तुल्य है। यह भव तुल्य का निदर्शन है।

एक गुण काला पुद्गल एक गुण काले पुद्गल से तुल्य है। औदयिक भाव औदयिक भाव से तुल्य है। यह भाव तुल्य का निदर्शन है।

परिमंडल संस्थान परिमंडल संस्थान से तुल्य है। यह संस्थान तुल्य का निदर्शन है।

समचतुरस्र संस्थान आदि के लिए द्रष्टव्य ठाणं ६/३१ का टिप्पण। अणुओगदाराइं सूत्र २३४-२३५ का टिप्पण।

भाव के लिए भगवई १७/१६-१७ का भाष्य, ठाणं ६/१२४ का टिप्पण तथा अणुओगदाराइं सूत्र २७१-२८७ का टिप्पण।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भत्तपच्चक्खायस्स आहार-पदं

८२. भत्तपच्चक्खायए णं भंते! अणगारे मुच्छिए गिद्धे गढिए अज्झोववन्ने आहारमाहारेति, अहे णं वीससाए कालं करेइ, तओ पच्छा अमुच्छिए अगिद्धे अगढिए अणज्झोववन्ने आहारमाहारेति?

हंता गोयमा! भत्तपच्चक्खायए णं अणगारे मुच्छिए गिद्धे गढिए अज्झोववन्ने आहारमाहारेति, अहे णं वीससाए कालं करेइ, तओ पच्छा अमुच्छिए अगिद्धे अगढिए अणज्झोववन्ने आहारमाहारेति॥

८३. से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ–भत्तपच्चक्खायए णं अणगारे मुच्छिए गिद्धे गढिए अज्झोववन्ने आहारमाहारेति, अहे णं वीससाए कालं करेइ, तओ पच्छा अमुच्छिए अगिद्धे अगढिए अणज्झोववन्ने आहारमाहारेति?

गोयमा! भत्तपच्चक्खायए णं अणगारे मुच्छिए गिद्धे गढिए अज्झोववन्ने आहारे भवइ, अहे णं वीससाए कालं करेइ, तओ पच्छा अमुच्छिए अगिद्धे अगढिए अणज्झोववन्ने आहारे भवइ।

से तेणट्ठेणं गोयमा! जाव आहारमाहारेति॥

भक्तप्रत्याख्यातस्य आहार-पदम्

भक्तप्रत्याख्यातकः भदन्त! अनगारः मूर्च्छितः गृद्धः ग्रथितः अध्युपपन्नः आहारम् आहरति, अथ विस्रसया कालं करोति, ततः पश्चात् अमूर्च्छितः अगृद्धः अग्रथितः अनध्युपपन्नः आहारम् आहरति?

हन्त गौतम! भक्तप्रत्याख्यातकः अनगारः मूर्च्छितः गृद्धः ग्रथितः अध्युपपन्नः आहारम् आहरति, अथ विस्रसया कालं करोति, ततः पश्चात् अमूर्च्छितः, अगृद्धः अग्रथितः अनध्युपपन्नः आहारम् आहरति।

तत् केनार्थेन भदन्त! एवमुच्यते–भक्तप्रत्याख्यातकः अनगारः मूर्च्छितः गृद्धः ग्रथितः अध्युपपन्नः आहारम् आहरति, अथ विस्रसया कालं करोति, ततः पश्चात् अमूर्च्छितः अगृद्धः अग्रथितः अनध्युपपन्नः आहारम् आहरति?

गौतम! भक्तप्रत्याख्यातकः अनगारः मूर्च्छितः गृद्धः ग्रथितः अध्युपपन्नः आहारकः भवति, अथ विस्रसया कालं करोति, ततः पश्चात् अमूर्च्छितः अगृद्धः अग्रथितः अनध्युपपन्नः आहारकः भवति।

तत् तेनार्थेन गौतम! यावत् आहारम् आहरति।

भक्त-प्रत्याख्यात का आहार-पद

८२. भंते! भक्त-प्रत्याख्यान करने वाला अनगार मूर्च्छित, गृद्ध, ग्रथित और आसक्त होकर आहार करता है। उसके पश्चात् वह स्वभाव से काल करता है–मारणान्तिक समुद्घात करता है। उसके पश्चात् वह अमूर्च्छित, अगृद्ध, अग्रथित और अनासक्त होकर आहार करता है?

हां गौतम! भक्त-प्रत्याख्यान करने वाला अनगार मूर्च्छित, गृद्ध, ग्रथित और आसक्त होकर आहार करता है। उसके पश्चात् वह स्वभाव से काल करता है, उसके पश्चात् अमूर्च्छित, अगृद्ध, अग्रथित, अनासक्त होकर आहार करता है।

८३. भंते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है–भक्त-प्रत्याख्यान करने वाला अनगार मूर्च्छित, गृद्ध, ग्रथित और आसक्त होकर आहार करता है। उसके पश्चात् वह स्वभाव से काल करता है। उसके पश्चात् वह अमूर्च्छित, अगृद्ध, अग्रथित और अनासक्त होकर आहार करता है?

गौतम! भक्त-प्रत्याख्यान करने वाला अनगार मूर्च्छित, गृद्ध, ग्रथित और आसक्त होकर आहार करता है। उसके पश्चात् वह स्वभाव से काल करता है, उसके पश्चात् वह अमूर्च्छित , अगृद्ध, अग्रथित और अनासक्त होकर आहार करता है।

गौतम! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है–यावत् आहार करता है।

भाष्य

१. सूत्र ८२-८३

अभयदेव सूरि ने इस आलापक के विषय में अपनी ओर से संक्षिप्त सी टिप्पणी की है। उसका आशय यह है– गौतम ने प्रश्न पूछा, भगवान् महावीर ने उसका अभ्युपगम किया और कहा–किसी-किसी भक्त प्रत्याख्यान करने वाले व्यक्ति में ऐसा हो सकता है।[1]

जयाचार्य ने वृत्तिकार के मत का अनुसरण किया है। इस पर अपनी ओर से कोई टिप्पणी नहीं की।[2]

प्रस्तुत आलापक विमर्शनीय है। विमर्श का पहला बिन्दु यह है–इस आलापक का प्रतिपाद्य क्या है? यह प्रश्न उपस्थित कर गौतम क्या जानना चाहते हैं? यह स्पष्ट नहीं है।

गौतम ने केवल स्थिति का निरूपण किया, इतना ही पर्याप्त है अथवा अनशन के बाद आहार करना उचित है या अनुचित, यह प्रतिपाद्य है?

यदि स्थिति का निरूपण मात्र है तो भगवान् महावीर के उत्तर से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि ऐसा हो सकता है। इससे अधिक कोई प्रतिपाद्य प्रतीत नहीं होता।

विमर्श का दूसरा बिन्दु यह है–मारणान्तिक समुद्घात के लिए **'वीससाए कालं करेइ'** का प्रयोग क्यों किया गया? वृत्तिकार ने **'वीससाए कालं करेइ'** का अर्थ मारणान्तिक समुद्घात क्यों किया?

विमर्श का तीसरा बिन्दु यह है –क्या अनशन करने वाला आहार

१. भ. वृ. १४/८२–अत्रोत्तरं–हंता गोयमा! इत्यादि, अनेन तु प्रश्नार्थ एव अभ्युपगतः, कस्यापि भक्तप्रत्याख्यातुरेवंभूतभावस्य सद्भावादिति।

२. भ. जो. ढा. २९२. गाथा १-१३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कर सकता है? यदि कर सकता है तो क्या वह मुनि अवस्था में रह सकता है? यदि रह सकता है तो उसके लिए कोई प्रायश्चित्त का विधान है?

प्रस्तुत आलापक के अध्ययन से उठने वाले ये सारे प्रश्न अनुत्तरित हैं। आगम के व्याख्या काल में यह मान्य रहा है कि अनशन काल में यदि असमाधि उत्पन्न हो तो वह आहार कर सकता है।[1] क्या प्रस्तुत आलापक में उसकी प्रतिध्वनि है?

लवसत्तम देव-पदं

८४. अत्थि णं भंते! लवसत्तमा देवा, लवसत्तमा देवा?
हंता अत्थि॥

लवसप्तमदेव-पदम्

अस्ति भदन्त! लवसप्तमाः देवाः, लवसप्तमाः देवाः?
हन्त अस्ति।

लव सप्तम देव पद

८४. भंते! लवसप्तम देव लवसप्तम देव हैं?
हां, हैं।

८५. से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ–लवसत्तमा देवा लवसत्तमा देवा?
गोयमा! से जहानामए केइ पुरिसे तरुणे जाव निउणसिप्पोवगए सालीणं वा, वीहीणं वा, गोधूमाणं वा, जवाणं वा, जवजवाणं वा पक्काणं, परियाताणं, हरियाणं, हरियकंडाणं तिक्खेणं नवपज्जणएणं असिअएणं पडिसाहरिया-पडिसाहरिया पडिसंखिविया-पडिसंखिविया जाव इणामेव-इणामेव त्ति कट्टु सत्त लवे लुएज्जा, जदि णं गोयमा! तेसिं देवाणं एवतियं कालं आउए पहुप्पते तो णं ते देवा तेणं चेव भवग्गहणेणं सिज्झंता बुज्झंता मुच्चंता परिनिव्वायंता सव्व-दुक्खाणं अंतं करेंता। से तेणट्ठणं गोयमा! एवं वुच्चइ–लवसत्तमा देवा लवसत्तमा देवा॥

तत् केनार्थेन भदन्त! एवमुच्यते–लवसप्तमाः देवाः-लवसप्तमाः देवाः?
गौतम! अथ यथानामकः कश्चित् पुरुषः तरुणः यावत् निपुणशिल्पोपगतः शालीनां वा, व्रीहीनां वा, गोधूमानां वा, यवानां वा, यवयवानां वा, पक्वानां वा, परिजातानाम्, हरितानाम्, हरितकांडानां तीक्ष्णेण नवपायनकेन 'असिअएणं' (दे.) प्रतिसंहृत्य-प्रतिसंहृत्य प्रति-संक्षिप्य-प्रतिसंक्षिप्य यावत् इदमेव-इदमेव इति कृत्वा सप्त लवान् लुनीयात्, यदि गौतम! तेषां देवानाम् एतावत् कालम् आयुष्कं प्राभविष्यन् तदा ते देवाः तेन चैव भवग्रहणे न असेत्स्यन् 'बुज्झंता' अमोक्ष्यन् परिनिरवापयिष्यन् सर्वदुःखानाम् अंतम् अकरिष्यन्। तत् तेनार्थेन गौतम! एवमुच्यते–लवसप्तमाः देवाः लवसप्तमाः देवाः।

८५. भंते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है–लवसप्तम देव लवसप्तम देव हैं?
गौतम! जैसे कोई पुरुष तरुण यावत् सूक्ष्म शिल्प से समन्वित है। पक्व करने योग्य अवस्था को प्राप्त, परिजात, हरित, हरित कांड वाले, तीक्ष्ण की हुई दांती से विकीर्ण नाल वाले, शाली, व्रीही, गेहूं, यव अथवा यवयव को इकट्ठा कर, मुट्ठी में पकड़कर यावत् अभी अभी ऐसा प्रदर्शित कर चिमुटी बजाने जितने समय में सात लवों को काट देता है, सात लवों को काटने में जितना समय लगता है यदि गौतम! उतने समय तक यदि साधु का जीवन और रह जाता तो वे देव उसी जन्म में सिद्ध, प्रशान्त, मुक्त, परिनिर्वृत हो जाते, सब दुःखों का अन्त कर देते। गौतम! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है–लवसप्तम देव लवसप्तम देव हैं।

अणुत्तरोववाइयदेव-पदं

८६. अत्थि णं भंते! अणुत्तरोववाइया देवा अणुत्तरोववाइया देवा?
हंता अत्थि॥

अनुत्तरोपपातिकदेव-पदम्

अस्ति भदन्त! अनुत्तरोपपातिकाः देवाः अनुत्तरोपपातिकाः देवाः?
हन्त अस्ति।

अनुत्तरोपपातिक देव पद

८६. भंते! अनुत्तरोपपातिक देव अनुत्तरोप-पातिक देव हैं?
हां, हैं।

८७. से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ–अणुत्तरोववाइया देवा अणुत्तरो-ववाइया देवा?
गोयमा! अणुत्तरोववाइयाणं देवाणं अणुत्तरा सद्दा, अणुत्तरा रूवा, अणुत्तरा गंधा, अणुत्तरा रसा, अणुत्तरा फासा। से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ–अणुत्तरोववाइया देवा अणुत्तरोववाइया देवा॥

तत् केनार्थेन भदन्त! एवमुच्यते–अनुत्तरोपपातिकाः देवाः अनुत्तरोप-पातिकाः देवाः?
गौतम! अनुत्तरोपपातिकानां देवानाम् अनुत्तराः शब्दाः, अनुत्तराः रूपाः, अनुत्तराः गन्धाः, अनुत्तराः रसाः, अनुत्तराः स्पर्शाः। तत् तेनार्थेन गौतम! एवमुच्यते–अनुत्तरोपपातिकाः देवाः अनुत्तरोपपातिकाः देवाः।

८७. भंते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है–अनुत्तरोपपातिक देव अनुत्तरोपपातिक देव हैं?
गौतम! अनुत्तरोपपातिक देव अनुत्तर शब्द, अनुत्तर रूप, अनुत्तर गंध, अनुत्तर रस और अनुत्तर स्पर्श वाले होते हैं। गौतम! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है–अनुत्तरोपपातिक देव अनुत्तरोपपातिक देव हैं।

१. (क) व्य. सू. पी. चतुर्थः विभाग पृ. ४५।
(ख) व्य. भा. २/११७–
जदि वा न निव्वहेज्जा, असमाधी वा से तम्मि गच्छम्मि।
करणिज्जंऽणत्थगते, ववहारो पच्छ सुद्धो वा॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

८८. अणुत्तरोववाइया णं भंते! देवा केवतिएणं कम्मावसेसेणं अणुत्तरोववाइयदेवत्ताए उववन्ना?

गोयमा! जावतियं छट्ठभत्तिए समणे निग्गंथे कम्मं निज्जरेति एवतिएणं कम्मावसेसेणं अणुत्तरोववाइयदेवत्ताए उववन्ना॥

अनुत्तरोपपातिकाः भदन्त! देवाः कियता कर्मावशेषेण अनुत्तरोपपातिकदेवत्वेन उपपन्नाः?

गौतम! यावत् षष्ठभक्तिकः श्रमणः निर्ग्रन्थः कर्म निर्जीर्णाति एतावता कर्मावशेषेण अनुत्तरोपपातिकदेवत्वेन उपपन्नाः।

८८. भंते! अनुत्तरोपपातिक देव कितने कर्म अवशेष रहने पर अनुत्तरोपपातिक देव के रूप में उपपन्न हुए?

गौतम! श्रमण निर्ग्रंथ एक बेले (दो दिन के तप) में जितने कर्मों की निर्जरा करता है, इतने कर्मों के अवशेष रहने पर यदि आयुष्य पूरा हो जाए तो वे श्रमण निर्ग्रंथ अनुत्तरोपपातिक देव के रूप में उपपन्न होते हैं।

भाष्य

१. सूत्र ८४-८८

लव सप्तम देव—यदि सात लव जितना आयुष्य और होता तो वह मुक्त हो जाता किंतु इतने आयुष्य के अभाव में वह साधु मर कर लव सप्तम देव बनता है।

अनुत्तरोपपातिक देव—यदि बेले (दो उपवास) जितना आयुष्य और होता तो वह मुक्त हो जाता किंतु उसके अभाव में वह साधु मर कर अनुत्तरोपपातिक देव बनता है।

इन दोनों प्रसंगों में एक प्रश्न उपस्थित होता है— संसारी जीव कर्म के आधार पर ही संसार में टिक पाता है। उक्त दोनों प्रकार के देवों के कर्म अत्यल्प शेष रहते हैं फिर वे तैंतीस सागरोपम तक तथा वहां से च्युत हो मनुष्य की आयु तक कैसे संसार में रह सकते हैं?

अनुत्तरोपपातिक देवों को अनुत्तर शब्द आदि विषय प्राप्त होते हैं। वे उन विषयों का अनासक्त भाव से उपभोग करते हैं। उनका मोह उपशान्त होता है[1] इसलिए उनके गाढ़ कर्मों का बंध नहीं होता। अनुत्तरोपपातिक देवों को अल्प वेदना और अल्प निर्जरा वाला बतलाया गया है।[2] सिद्धसेन गणि के अनुसार अनुत्तरोपपातिक प्रतनुकर्मा होते हैं।[3] उक्त आधारों पर सहज ही इस निष्कर्ष पर पहुंचा जा सकता है—अनुत्तरोपपातिक देवों के घात्य कर्म प्रतनु होते हैं। मुख्यतः भवोपग्राही कर्मों का बंध होता रहता है। उन्हीं के आधार पर संसार में टिके रहते हैं।

इस विषय में पातंजल योग दर्शन का 'भवप्रत्ययो विदेहप्रकृति लयानां'—इस सूत्र का भाष्य और व्याख्या[4] तथा पातंजल योग दर्शन का ३/२६ का भाष्य द्रष्टव्य है।[5]

लवसप्तम देवों की स्थिति सर्वोत्कृष्ट बतलाई गई है।[6]

८९. सेवं भंते! सेवं भंते! त्ति॥

तदेवं भदन्त! तदेवं भदन्त! इति।

८९. भंते! वह ऐसा ही है। भंते! वह ऐसा ही है।

---

१. भ. ५/१०७।
२. भ. ६/१६।
३. त. सू. भा. वृ. ४/२७—सर्वे चानुत्तरोपपातिनः किल देवाः प्रतनुकर्माणो भवन्तीति।
४. पा. यो. द. १/१९।
५. पा. यो. द. पृ. ३१९-२१।
६. सूय. १/६/२४ तथा उसका टिप्पण।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अट्ठमो उद्देसो : आठवां उद्देशक

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
अबाहाए अंतर-पदं	**अबाधया अन्तर-पदम्**	**अबाधा अंतर पद**
६०. इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए सक्करप्पभाए य पुढवीए केवतिए अबाहाए अंतरे पण्णत्ते?	अस्याः भदन्त! रत्नप्रभायाः पृथिव्याः शर्कराप्रभायाः च पृथिव्याः कियत् अबाधया अन्तरं प्रज्ञप्तम्?	६०. भंते! इस रत्नप्रभा पृथ्वी और शर्कराप्रभा पृथ्वी के मध्य कितना अबाधा अंतर प्रज्ञप्त है?
गोयमा! असंखेज्जाइं जोयणसहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते॥	गौतम! असंख्येयानि योजनसहस्राणि अबाधया अन्तरं प्रज्ञप्तम्।	गौतम! असंख्येय हजार योजन अबाधा अंतर प्रज्ञप्त है।

भाष्य

१. सूत्र ६०

असंख्येय हजार योजन–इस प्रसंग में वृत्तिकार के अनुसार प्रमाणांगुल योजन निर्दिष्ट है।[1] जयाचार्य ने वृत्तिकार का मत स्वीकार किया है।[2]

प्रमाणांगुल के लिए द्रष्टव्य अणुओगद्दाराइं सूत्र ३८६ का टिप्पण।

६१. सक्करप्पभाए णं भंते! पुढवीए वालुयप्पभाए य पुढवीए केवतिए अबाहाए अंतरे पण्णत्ते?	शर्कराप्रभायाः भदन्त! पृथिव्याः वालुकाप्रभायाः च पृथिव्याः कियत् अबाधया अन्तरं प्रज्ञप्तम्?	६१. भंते! शर्कराप्रभा पृथ्वी और वालुकाप्रभा पृथ्वी के मध्य कितना अबाधा अंतर प्रज्ञप्त है?
एवं चेव। एवं जाव तमाए अहेसत्तमाए य॥	एवं चैव। एवं यावत् तमायाः अधःसप्तम्याः च।	पूर्ववत्। इस प्रकार यावत् तमा और अधः सप्तमी के मध्य अबाधा अंतर की वक्तव्यता।
६२. अहेसत्तमाए णं भंते! पुढवीए अलोगस्स य केवतिए अबाहाए अंतरे पण्णत्ते?	अधःसप्तम्याः भदन्त! पृथिव्याः अलोकस्य च कियत् अबाधया अन्तरं प्रज्ञप्तम्?	६२. भंते! अधःसप्तमी पृथ्वी और अलोक के मध्य कितना अबाधा अंतर प्रज्ञप्त है?
गोयमा! असंखेज्जाइं जोयणसहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते॥	गौतम! असंख्येयानि योजनसहस्राणि अबाधया अन्तरं प्रज्ञप्तम्।	गौतम! असंख्येय हजार योजन अबाधा अंतर प्रज्ञप्त है।
६३. इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए जोतिसस्स य केवतिए अबाहाए अंतरे पण्णत्ते?	अस्याः भदन्त! रत्नप्रभायाः पृथिव्याः ज्योतिषः च कियत् अबाधया अन्तरं प्रज्ञप्तम्?	६३. भंते! रत्नप्रभा पृथ्वी और ज्योतिष्क के मध्य कितना अबाधा अंतर प्रज्ञप्त है?
गोयमा! सत्तनउए जोयणसए अबाहाए अंतरे पण्णत्ते॥	गौतम! सप्तनवतिः योजनशतम् अबाधया अन्तरं प्रज्ञप्तम्।	गौतम! सात सौ नब्बे योजन का अबाधा अंतर प्रज्ञप्त है।
६४. जोतिसस्स णं भंते! सोहम्मीसाणाण य कप्पाणं केवतिए अबाहाए अंतरे पण्णत्ते?	ज्योतिषः भदन्त! सौधर्मेशानानां च कल्पानां कियत् अबाधया अन्तरं प्रज्ञप्तम्?	६४. भंते! ज्योतिष्क और सौधर्म-ईशान कल्प के मध्य कितना अबाधा अंतर प्रज्ञप्त है?

१. भ. वृ. १४/६० इह योजनं प्रायः प्रमाणांगुलनिष्पन्नं ग्राह्यं नगपुढविविमाणाइं मिणसु पमाणंगुलेणं तु।

२. भ. जो. ढा. ३००/११।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा! असंखेज्जाइं जोयणसहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते॥

गौतम! असंख्येयानि योजनसहस्राणि अबाधया अन्तरं प्रज्ञप्तम्।

गौतम! असंख्येय हजार योजन का अबाधा अंतर प्रज्ञप्त है।

९५. सोहम्मीसाणाणं भंते! सणंकुमार-माहिंदाण य केवतिए अबाहाए अंतरे पण्णत्ते?
एवं चेव॥

सौधर्मेशानानां भदन्त! सनत्कुमार-माहेन्द्राणां च कियत् अबाधया अन्तरं प्रज्ञप्तम्?
एवं चैव।

९५. भंते! सौधर्म-ईशान और सनत्कुमार-माहेन्द्र के मध्य कितना अबाधा अंतर प्रज्ञप्त है?
पूर्ववत्।

९६. सणंकुमार-माहिंदाणं भंते! बंभलोगस्स कप्पस्स य केवतिए अबाहाए अंतरे पण्णत्ते?
एवं चेव॥

सनत्कुमार-माहेन्द्राणां भदन्त! ब्रह्मलोकस्य कल्पस्य च कियत् अबाधया अन्तरं प्रज्ञप्तम्?
एवं चैव।

९६. भंते! सनत्कुमार-माहेन्द्र और ब्रह्मलोक कल्प के मध्य कितना अबाधा अंतर प्रज्ञप्त है?
पूर्ववत्।

९७. बंभलोगस्स णं भंते! लंतगस्स य कप्पस्स केवतिए अबाहाए अंतरे पण्णत्ते?
एवं चेव॥

ब्रह्मलोकस्य च भदन्त! लान्तकस्य च कल्पस्य कियत् अबाधया अन्तरं प्रज्ञप्तम्?
एवं चैव।

९७. भंते! ब्रह्मलोक और लांतक कल्प के मध्य कितना अबाधा अंतर प्रज्ञप्त है?

पूर्ववत्।

९८. लंतयस्स णं भंते! महासुक्कस्स य कप्पस्स केवतिए अबाहाए अंतरे पण्णत्ते?
एवं चेव। एवं महासुक्कस्स कप्पस्स सहस्सारस्स य, एवं सहस्सारस्स आणयपाणयाण य कप्पाणं, एवं आणयपाणयाणं आरणच्चुयाण य कप्पाणं, एवं आरणच्चुयाणं गेवेज्जविमाणाण य, एवं गेवेज्ज-विमाणाणं अणुत्तरविमाणाण य॥

लान्तकस्य भदन्त! महाशुक्रस्य च कल्पस्य कियत् अबाधया अन्तरं प्रज्ञप्तम्?
एवं चैव। एवं महाशुक्रस्य कल्पस्य सहस्रारस्य च, एवं सहस्रारस्य आनत-प्राणतानां च कल्पानाम्, एवं आनत-प्राणतानाम्, आरणाच्युतानां च कल्पानाम् एवम् आरणाच्युतानां ग्रैवेयकविमानानां च, एवं ग्रैवेयक-विमानानाम् अनुत्तरविमानानां च।

९८. भंते! लांतक और महाशुक्र कल्प के मध्य कितना अबाधा अंतर प्रज्ञप्त है?

पूर्ववत्। इसी प्रकार महाशुक्र कल्प और सहस्रार के मध्य, इसी प्रकार सहस्रार और आनत-प्राणत कल्प के मध्य, इसी प्रकार आनत-प्राणत और आरण-अच्युत कल्प के मध्य, इसी प्रकार आरण-अच्युत और ग्रैवेयक विमान के मध्य, इसी प्रकार ग्रैवेयक विमान और अनुत्तर विमान के मध्य अबाधा अंतर की वक्तव्यता।

९९. अणुत्तरविमाणाणं भंते! ईसिंपब्भाराए य पुढवीए केवतिए अबाहाए अंतरे पण्णत्ते?
गोयमा! दुवालस जोयणे अबाहाए अंतरे पण्णत्ते॥

अनुत्तरविमानानां भदन्त! ईषत्-प्राग्भारायाः पृथिव्याः कियत् अबाधया अन्तरं प्रज्ञप्तम्?
गौतम! द्वादशयोजनम् अबाधया अन्तरं प्रज्ञप्तम्।

९९. भंते! अनुत्तर विमान और ईषत् प्राग्भारा पृथ्वी के मध्य कितना अबाधा अंतर प्रज्ञप्त है?
गौतम! बारह योजन अबाधा अंतर प्रज्ञप्त है।

१००. ईसिंपब्भाराए णं भंते! पुढवीए अलोगस्स य केवतिए अबाहाए अंतरे पण्णत्ते?
गोयमा? देसूणं जोयणं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते॥

ईषत्प्राग्भारायाः भदन्त! पृथिव्याः अलोकस्य च कियत् अबाधया अन्तरं प्रज्ञप्तम्?
गौतम! देशोनं योजनम् अबाधया अन्तरं प्रज्ञप्तम्।

१००. भंते! ईषत् प्राग्भारा पृथ्वी और अलोक के मध्य कितना अबाधा अंतर प्रज्ञप्त है?

गौतम! एक योजन से कुछ न्यून अबाधा अंतर प्रज्ञप्त है।

भाष्य

१. सूत्र १००

ईषत् प्राग्भारा के संदर्भ में उत्सेध अंगुल का निर्देश किया गया है।[1]

१. भ. वृ. १४/१००

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रुक्खाणं पुणब्भव-पदं

१०१. एस णं भंते! सालरुक्खे उण्हाभिहए तण्हाभिहए दवग्गिजालाभिहए कालमासे कालं किच्चा कहिं गमिहिति? कहिं उववज्जिहिति?

गोयमा! इहेव रायगिहे नगरे सालरुक्खत्ताए पच्चायाहिती। से णं तत्थ अच्चिय-वंदिय-पूइय-सक्कारिय-सम्माणिए दिव्वे सच्चे सच्चोवाए सन्निहियपाडिहेरे लाउल्लोइयमहिए यावि भविस्सइ॥

रुक्षाणां पुनर्भव-पदम्

एषः भदन्त! शालरुक्षः उष्णाभिहतः तृष्णाभिहतः दवाग्निज्वालाभिहतः कालमासे कालं कृत्वा कुत्र गमिष्यति? कुत्र उपपत्स्यते?

गौतम! इहैव राजगृहे नगरे शालरुक्षत्वेन प्रत्याजनिष्यति। सः तत्र अर्चित-वन्दित-पूजित-सत्कृत-सम्मानितः दिव्यः सत्यः सत्यावपातः सन्निहित-प्रातिहार्यः लाउल्लोइयमहिए चापि भविष्यति।

वृक्ष का पुनर्भव पद

१०१. भंते! यह शालवृक्ष गर्मी से अभिहत, तृष्णा से अभिहत, दवाग्नि ज्वाला से अभिहत होकर कालमास में काल को प्राप्त कर कहां जाएगा? कहां उपपन्न होगा?

गौतम! इस राजगृह नगर में शालवृक्ष के रूप में पुनः उपपन्न होगा। वह वहां अर्चित, वंदित, पूजित, सत्कारित, सम्मानित, दिव्य (प्रधान), सत्य, सत्यावपात, सन्निहित प्रातिहार्य और लाउल्लोइयमहित–वृक्ष का भूमिभाग गोबर आदि से लिपा हुआ और भींत खड़िया से पुती हुई होगी।

१०२. से णं भंते! तओहिंतो अणंतरं उव्वट्टित्ता कहिं गमिहिति? कहिं उववज्जिहिति?

गोयमा! महाविदेहे वासे सिज्झिहिति जाव सव्वदुक्खाणं अंतं काहिति॥

स भदन्त! तस्मात् (तओहिंतो) अनन्तरम् उद्वर्त्य कुत्र गमिष्यति? कुत्र उपपत्स्यते?

गौतम! महाविदेहे वर्षे सेत्स्यति यावत् सर्वदुःखानाम् अन्तं करिष्यति।

१०२. भंते! वह शालवृक्ष वहां से अनंतर उद्वर्तन कर कहां जाएगा? कहां उपपन्न होगा?

गौतम! महाविदेह क्षेत्र में सिद्ध होगा यावत् सब दुःखों का अंत करेगा।

१०३. एस णं भंते! सालयट्ठिया उण्हाभिहया तण्हाभिहया दवग्गि-जालाभिहया कालमासे कालं किच्चा कहिं गमिहिति? कहिं उववज्जिहिति?

गोयमा! इहेव जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे विंझगिरिपायमूले महेसरिए नगरीए सामलिरुक्खत्ताए पच्चायाहिति। से णं तत्थ अच्चिय-वंदिय-पूइय-सक्कारिय-सम्माणिए दिव्वे सच्चे सच्चोवाए सन्निहियपाडिहेरे लाउल्लोइयमहिए यावि भविस्सइ॥

एषा भदन्त! शालयष्टिका उष्णाभिहता तृष्णाभिहता दवाग्निज्वालाभिहता कालमासे कालं कृत्वा कुत्र गमिष्यति? कुत्र उपपत्स्यते?

गौतम! इहैव जम्बुद्वीपे द्वीपे भारते वर्षे विन्ध्यगिरिपादमूले महेश्वर्यां नगर्यां शाल्मलिवृक्षत्वेन प्रत्याजनिष्यति। सः तत्र अर्चित-वन्दित-पूजित-सत्कृत-सम्मानितः दिव्यः सत्यः सत्यावपातः सन्निहितप्रातिहार्यः लाउल्लोइयमहिए चापि भविष्यति।

१०३. भंते! यह शालयष्टिक वृक्ष गर्मी से अभिहत, तृष्णा से अभिहत, दवाग्नि ज्वाला से अभिहत होकर कालमास में काल को प्राप्त कर कहां जाएगा? कहां उपपन्न होगा?

गौतम! इस जंबूद्वीप द्वीप में, भारतवर्ष में विंध्यगिरि की तलहटी में महेश्वरी नगरी में शाल्मली वृक्ष के रूप में उपपन्न होगा। वह वहां अर्चित, वंदित, पूजित, सत्कारित, सम्मानित, दिव्य, सत्य, सत्यावपात, सन्निहित प्रातिहार्य और 'लाउल्लोइयमहित'–वृक्ष का भूमिभाग गोबर आदि से लिपा हुआ और भींत खड़िया से पुती हुई होगी।

१०४. से णं भंते! तओहिंतो अणंतरं उव्वट्टित्ता कहिं गमिहिति? कहिं उववज्जिहिति?

गोयमा! महाविदेहे वासे सिज्झिहिति जाव सव्वदुक्खाणं अंतं काहिति॥

सः भदन्त! तस्मात् (तओहिंतो) अनन्तरम् उद्वर्त्य कुत्र गमिष्यति? कुत्र उपपत्स्यते?

गौतम! महाविदेहे वर्षे सेत्स्यति यावत् सर्वदुःखानाम् अन्तं करिष्यति।

१०४. भंते! वह वहां से अनंतर उद्वर्तन कर कहां जाएगा? कहां उपपन्न होगा?

गौतम! महाविदेह क्षेत्र में सिद्ध होगा यावत् सब दुःखों का अंत करेगा।

१०५. एस णं भंते! उंबरलट्ठिया उण्हाभिहया तण्हाभिहया दवग्गि-जालाभिहया कालमासे कालं किच्चा कहिं गमिहिति? कहिं उववज्जिहिति?

गोयमा! इहेव जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे पाडलिपुत्ते नगरे पाडलिरुक्खत्ताए

एषा भदन्त! उदुम्बरयष्टिका उष्णाभिहता तृष्णाभिहता दवाग्नि-ज्वालाभिहता कालमासे कालं कृत्वा कुत्र गमिष्यति? कुत्र उपपत्स्यते?

गौतम! इहैव जम्बुद्वीपे द्वीपे भारते वर्षे पाटलिपुत्रे पाटलिवृक्षत्वेन प्रत्याज-

१०५. भंते! यह उदुम्बरयष्टिका गर्मी से अभिहत, तृष्णा से अभिहत और दवाग्नि ज्वाला से अभिहत होकर कालमास में काल को प्राप्त कर कहां जाएगा? कहां उपपन्न होगा?

गौतम! इसी जंबूद्वीप द्वीप में भारतवर्ष में पाटलिपुत्र नगर में पाटली वृक्ष के रूप में पुनः

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पच्चायाहिति। से णं तत्थ अचिय-वंदिय-पूइय-सक्कारिय-सम्माणिए दिव्वे सच्चे सच्चोवाए सन्निहियपाडिहेरे लाउल्लोइय-महिए यावि भविस्सइ॥

निष्यति। सः तत्र अर्चित-वन्दित-पूजित-सत्कृत-सम्मानितः दिव्यः सत्यः सत्यावपातः सन्निहितप्रातिहार्यः लाउल्लोइयमहिए चापि भविष्यति।

उपपन्न होगा। वह वहां अर्चित, वंदित, पूजित, सत्कारित, सम्मानित, दिव्य, सत्य, सत्यावपात, सन्निहित प्रातिहार्य तथा लाउल्लोइयमहित होगा।

१०६. से णं भंते! तओहिंतो अणंतरं उव्वट्टित्ता कहिं गमिहिति? कहिं उववज्जिहिति?
गोयमा! महाविदेहे वासे सिज्झिहिति जाव सव्वदुक्खाणं अंतं काहिति॥

सः भदन्त! तस्मात् (तओहिंतो) अनन्तरम् उद्वर्त्य कुत्र गमिष्यति? कुत्र उपपत्स्यते?
गौतम! महाविदेहे वर्षे सेत्स्यति यावत् सर्वदुःखानाम् अन्तं करिष्यति।

१०६. भंते! वह वहां से अनंतर उद्वर्तन कर कहां जाएगा? कहां उपपन्न होगा?

गौतम! महाविदेह क्षेत्र में सिद्ध होगा यावत् सब दुःखों का अंत करेगा।

भाष्य

१. सूत्र १०१-१०६

इस आलापक में प्रत्यक्ष दृष्ट शालवृक्ष, शालयष्टिका और उदुंबर-यष्टिका के विषय में गौतम ने प्रश्न पूछा और महावीर ने उनके भावी जन्म का प्रतिपादन किया।

अचिय आदि विशेषणों की जानकारी के लिए द्रष्टव्य भ. १२/१५४-१५८ का भाष्य।

शालवृक्ष आदि की उन्नत गति का हेतु अकाम निर्जरा है। विशेष जानकारी के लिए द्रष्टव्य भगवई १/४८-५० का भाष्य।

वृत्तिकार ने वृक्षों के विषय में एक विशेष सूचना दी है—शालवृक्ष आदि वृक्षों में अनेक जीव होते हैं। यहां वृक्ष का निर्माता मूल जीव विवक्षित है।[1]

इस प्रकार के प्रश्न गौतम ने क्यों पूछे? यह प्रश्न अस्वाभाविक नहीं है। वृत्तिकार ने इस विषय में लिखा है— बहुत लोग वनस्पति को सजीव नहीं मानते। उनकी मान्यता को सामने रखकर गौतम ने वनस्पति के सन्दर्भ में प्रश्न पूछे और भगवान् महावीर से उनका समाधान पाया।[2]

अम्मड-अंतवासि-पदं

१०७. तेणं कालेणं तेणं समएणं अम्मडस्स परिव्वायगस्स सत्त अंतेवासिसया गिम्हकालसमयंसि जेट्ठमूलमासंमि गंगाए महानदीए उभओ कूलेणं कंपिल्लपुराओ नगराओ पुरिमतालं नयरं संपट्ठिया विहाराए॥

अम्बड-अन्तेवासि-पदम्

तस्मिन् काले तस्मिन् समये अम्बडस्य परिव्राजकस्य सप्त अन्तेवासिशतानि ग्रीष्मकालसमये ज्येष्ठमूलमासे गंगायां महानद्याम् उभयतः कूलेन काम्पिल्य-पुरात् नगरात् पुरिमतालं नगरं सम्प्रस्थिताः विहाराय।

अम्मड-अंतेवासी पद

१०७. उस काल उस समय अम्मड परिव्राजक के सात सौ अंतेवासी ग्रीष्मकाल समय में ज्येष्ठ मास में गंगा महानदी के दोनों तटों पर होते हुए कंपिलपुर नगर से पुरिमताल नगर की ओर विहार के लिए प्रस्थित हुए।

१०८. तए णं तेसिं परिव्वायगाणं तीसे अगामियाए छिण्णावायाए दीहमद्धाए अडवीए कंचि देसंतरमणुपत्ताणं से पुव्वग्गहिए उदए अणुपुव्वेणं परिभुंजमाणे झीणे।

ततः तेषां परिव्राजकानां तस्याम् अग्रामिकायां छिन्नापातायां दीर्घाध्वनि अटव्यां कञ्चित् देशान्तरम् अनुप्राप्तानां तत् पूर्वगृहीतम् उदकम् अनुपूर्वेण परिभुज्जमानं क्षीणम्।

१०८. वे परिव्राजक उस विशाल, वस्ती शून्य, आवागमन रहित तथा प्रलंब मार्ग वाली अटवी में कुछ दूरवर्ती प्रदेश में चले गए। पहले जो जल था, उसे पीते गए, पीते गए, आखिर वह समाप्त हो गया।

१०९. तए णं ते परिव्वया झीणोदगा समाणा तण्हाए पारब्भमाणा-पारब्भमाणा उदगदातारमपस्समाणा अण्णमण्णं सद्दावेंति, सद्दावेत्ता एवं वयासी—एवं खलु देवाणुप्पिया! अम्हं इमीसे अगामियाए छिण्णावायाए दीहमद्धाए अडवीए कंचि देसंतर-

ततः ते परिव्राजकाः क्षीणोदकाः सन्तः तृष्णया प्रारभमाणाः प्रारभमाणाः उदकदातारम् अपश्यन्तः अन्योन्यं शब्दयन्ति, शब्दयित्वा एवमवादिषुः— एवं खलु देवानुप्रियाः! अस्याम् अग्रामिकायां छिन्नापातायां दीर्घाध्वनि अटव्यां कञ्चित् देशान्तरमनुप्राप्तानां

१०९. जल के समाप्त हो जाने पर प्यास से अभिभूत हो गए। उन्हें कोई जल को देने वाला दिखाई नहीं दिया। परिव्राजकों ने एक दूसरे को बुलाया, बुलाकर इस प्रकार कहा—देवानुप्रियो! इस विशाल, वस्ती शून्य, आवागमन रहित तथा प्रलंब मार्ग वाली अटवी में कुछ दूरवर्ती प्रदेश में आ गए हैं। पहले

१. भ. वृ. १४/१०३—इह च यद्यपि शालवृक्षादावनेके जीवा भवन्ति तथाऽपि प्रथमजीवापेक्षं सूत्रत्रयमभिन्नेतव्यम्।

२. भ. वृ. १४/१०३—एवंविधप्रश्नाश्च वनस्पतीनां जीवत्वमश्रद्दधानं श्रोतारमपेक्ष्य भगवता गौतमेन कृता इत्यवसेयमिति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मणुपत्ताणं से पुव्वग्गहिए उदए अणुपुव्वेणं परिभुंजमाणे झीणे। तं सेयं खलु देवाणुप्पिया! अम्हं इमीसे अगामियाए छिण्णावायाए दीहमद्धाए अडवीए उदगदातारस्स सव्वओ समंता मग्गण-गवेसणं करित्तए त्ति कट्टु अण्णमण्णस्स अंतिए एयमट्ठं पडिसुणेंति, पडिसुणेत्ता तीसे अगामियाए छिण्णावायाए दीहमद्धाए अडवीए उदगदातारस्स सव्वओ समंता मग्गण-गवेसणं करेंति, करेत्ता उदगदातारमलभमाणा दोच्चं पि अण्णमण्णं सद्दावेंति, सद्दावेत्ता एवं वयासी–इहण्णं देवाणुप्पिया! उदगदातारो नत्थि तं नो खलु कप्पइ अम्हं अदिण्णं गिण्हित्तए, अदिण्णं साइज्जित्तए, तं मा णं अम्हे इयाणिं आवइकालं पि अदिण्णं गिण्हामो, अदिण्णं साइज्जामो, मा णं अम्हं तवलोवे भविस्सइ। तं सेयं खलु अम्हं देवाणुप्पिया! तिदंडए य कुंडियाओ य कंचणियाओ य करोडियाओ य भिसियाओ य छण्णालए य अंकुसए य केसरियाओ य पवित्तए य गणेत्तियाओ य छत्तए य वाहणाओ य धाउरत्ताओ य एगंते एडित्ता गंगं महानइं ओगाहित्ता वालुयासंथारए संथरित्ता संलेहणा-झूसियाणं भत्तपाण-पडियाइक्खियाणं पाओवगयाणं कालं अणवकंखमाणाणं विहरित्तए त्ति कट्टु अण्णमण्णस्स अंतिए एयमट्ठं पडिसुणेंति, पडिसुणेत्ता तिदंडए य कुंडियाओ य कंचणियाओ य करोडियाओ य भिसियाओ य छण्णालए य अंकुसए य केसरियाओ य पवित्तए य गणेत्तियाओ य छत्तए य वाहणाओ य धाउरत्ताओ य एगंते एडेंति, एडेत्ता गंगं महानइं ओगाहेंति, ओगाहेत्ता वालुयासंथारए संथरंति, संथरित्ता वालुयासंथारयं दुरुहंति, दुरुहित्ता पुरत्थाभिमुहा संपलियंकनिसण्णा करयलपरिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी–

तत् पूर्वगृहीतम् उदकम् अनुपूर्वेण परिभुज्जमानं क्षीणम्। ततः श्रेयः खलु देवानुप्रियाः! अस्माकम् अस्याम् अग्रामिकायां छिन्नापातायां दीर्घाध्वनि अटव्याम् उदकदातुः सर्वतः समन्तात् मार्गण-गवेषणां कर्तुम् इति कृत्वा अन्योन्यस्य अन्तिके एतमर्थं प्रतिशृण्वन्ति, प्रतिश्रुत्य तस्याम् अग्रामिकायां छिन्नापातायां दीर्घाध्वनि अटव्याम् उदकदातुः सर्वतः समन्तात् मार्गण-गवेषणां कुर्वन्ति, कृत्वा उदकदातारम् अलभेमानाः द्विः अपि अन्योन्यं शब्दयन्ति, शब्दयित्वा एवमवादिषुः–इह देवानुप्रियाः! उदकदाता नास्ति तत् नो खलु कल्पते अस्माकम् अदत्तं ग्रहीतुम्, अदत्तं 'साइज्जित्तए' तत् मा वयम् इदानीं आपत्कालम् अपि अदत्तं गृह्णीयाम, अदत्तं 'साइज्जामो' मा अस्माकं तपःलोपः भविष्यति। तत् श्रेयः खलु अस्माकं देवानुप्रियाः! त्रिदण्डकान् च कुण्डिकाः च काञ्चनिकाः च करोटिकाः च वृषिकाः च 'छण्णालए' च अंकुशकान् च केसरिकाः च पवित्रकान् च 'गणेत्तियाओ' च छत्रकान् च उपानहः च धातुरक्तान् च एकान्ते एडयित्वा गङ्गां महानदीम् अवगाह्य वालुका-संस्तारकान् संस्तृत्य संलेखनाजुष्टानां (जुषितानां) भक्तपानप्रत्याख्यातानां प्रायोपगतानां कालम् अनवकाङ्क्षतां विहर्तुम् इति कृत्वा अन्योन्यस्य अन्तिके एतमर्थं प्रतिशृण्वन्ति, प्रतिश्रुत्य त्रिदण्डकान् च कुण्डिकाः च काञ्चनिकाः च करोटिकाः च वृषिकाः च 'छण्णालए' च अंकुशकान् च केसरिकाः च पवित्रकान् च 'गणेत्तियाओ' च छत्रकान् च उपानहः च धातुरक्तान् च एकान्ते एडयन्ति, एडयित्वा गङ्गां महानदीम् अवगाहन्ते, अवगाह्य वालुकासंस्तारकान् संस्तृणन्ति, संस्तृत्य वालुकासंस्तारकम् आरोहन्ति, आरुह्य पौरस्त्याभिमुखाः संपर्यंक-निषण्णाः-करतलपरिगृहीतं शिरसावर्तं मस्तके अञ्जलिं कृत्वा एवमवादिषुः–

लिया हुआ जो जल था, वह पीते गए, पीते गए। आखिर वह समाप्त हो गया है।

देवानुप्रिय! यह श्रेय है कि हम इस विशाल, वस्ती शून्य, आवागमन रहित प्रलंब मार्ग वाली अटवी में किसी जल लेने की अनुमति देने वाले की चारों ओर मार्गणा-गवेषणा करें। इस प्रकार एक-दूसरे के पास इस अर्थ को सुना, सुनकर उस विशाल, वस्तीशून्य, आवागमन रहित प्रलंब मार्ग वाली अटवी में जल लेने की अनुमति देने वाले व्यक्ति की चारों ओर मार्गणा-गवेषणा की। मार्गणा-गवेषणा करने पर, जल देने वाले व्यक्ति के न मिलने पर दूसरी बार पुनः एक-दूसरे को बुलाया, बुलाकर इस प्रकार कहा–देवानुप्रियो! यहां कोई जल लेने की अनुमति देने वाला नहीं है। हमें अदत्त ग्रहण करना नहीं कल्पता, अदत्त का अनुमोदन करना नहीं कल्पता, इसलिए हम इस आपत् काल में भी अदत्त जल का ग्रहण न करें, अदत्त जल का अनुमोदन न करें, जिससे कि हमारे तप का लोप न हो।

देवानुप्रियो! हमारे लिए यह श्रेय है कि हम त्रिदंड, कमण्डलु, रुद्राक्ष-माला, मृत्पात्र, आसन, केसरिका (पात्र प्रमार्जन का वस्त्र खण्ड) टिकठी, अंकुश, छलनी, कलाई पर पहना जाने वाला रुद्राक्ष आभरण, छत्र, पदत्राण और गेरूएं वस्त्र को एकान्त में डाल दें, गंगा महानदी का अवगाहन कर, बालुका-संस्तारक बिछाकर संलेखना की आराधना में स्थित हो, भक्त-पान का प्रत्याख्यान कर प्रायोपगमन अनशन की अवस्था में मृत्यु की आकांक्षा न करते हुए रहें–इस प्रकार एक दूसरे के पास इस अर्थ को सुना, सुनकर त्रिदंड, कमण्डलु, रुद्राक्ष-माला, मृत्पात्र, आसन, केसरिका, टिकठी, अंकुश, छलनी, कलाई पर पहना जाने वाला रुद्राक्ष आभरण, छत्र, पदत्राण और गेरूएं वस्त्र को एकान्त में डालते हैं, अवगाहन कर बालुका का बिछौना बिछाते हैं, बिछाकर बालुका के बिछौने पर आरूढ होते हैं, आरूढ होकर पूर्व की ओर मुंह कर पर्यंकासन में बैठकर, हथेलियों से संपुट आकार वाली अंजलि को सिर के सम्मुख घुमाकर इस प्रकार बोले–

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नमोत्थु णं अरहंताणं जाव सिद्धि-गइनामधेयं ठाणं संपत्ताणं।
नमोत्थु णं समणस्स भगवओ महावीरस्स जाव संपाविउकामस्स।
नमोत्थु णं अम्मडस्स परिव्वायगस्स अम्हं धम्मायरियस्स धम्मोवदेसगस्स।
पुव्वि णं अम्हेहिं अम्मडस्स परिव्वायगस्स अंतिए थूलए पाणाइवाए पच्चक्खाए जावज्जीवाए, मुसावाए अदिण्णादाणे पच्चक्खाए जावज्जीवाए, सव्वे मेहुणे पच्चक्खाए जावज्जीवाए, थूलए परिग्गहे पच्चक्खाए जावज्जीवाए, इयाणिं अम्हे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए सव्वं पाणाइवायं पच्चक्खामो जावज्जीवाए सव्वं मुसावायं पच्चक्खामो जावज्जीवाए सव्वं अदिण्णादाणं पच्चक्खामो जावज्जीवाए सव्वं मेहुणं पच्चक्खामो जावज्जीवाए सव्वं परिग्गहं पच्चक्खामो जावज्जीवाए सव्वं कोहं माणं मायं लोहं पेज्जं दोसं कलहं अब्भक्खाणं पेसुण्णं परपरिवायं अरइरइं मायामोसं मिच्छादंसणसल्लं अकरणिज्जं जोगं पच्चक्खामो जावज्जीवाए सव्वं असणं पाणं खाइमं साइमं—चउव्विहं पि आहारं पच्चक्खामो जावज्जीवाए।

नमः अस्तु अर्हद्भ्यः यावत् सिद्धि-गतिनामधेयं स्थानं सम्प्राप्तेभ्यः।
नमः अस्तु श्रमणाय भगवते महावीराय यावत् सम्प्राप्तुकामाय।
नमः अस्तु अम्बडाय परिव्राजकाय अस्माकं धर्माचार्याय धर्मोपदेशकाय।
पूर्वम् अस्माभिः अम्बडस्य परिव्राजकस्य अन्तिके स्थूलकः प्राणातिपातः प्रत्याख्यातः यावज्जीवम्, मृषावादः अदत्तादानं प्रत्याख्यातं यावज्जीवम्, सर्वं मैथुनं प्रत्याख्यातं यावज्जीवम्, स्थूलकः परिग्रहः प्रत्याख्यातः यावज्जीवम् इदानीम्, वयं श्रमणस्य भगवतः महावीरस्य अन्तिके सर्वं प्राणातिपातं प्रत्याख्यामः यावज्जीवं सर्वं मृषावादं प्रत्याख्यामः यावज्जीवं सर्वम् अदत्तादानं प्रत्याख्यामः यावज्जीवं सर्वं मैथुनं प्रत्याख्यामः यावज्जीवं सर्वं परिग्रहं प्रत्याख्यामः यावज्जीवं सर्वं क्रोधं मानं मायां लोभं प्रेयः द्वेषं कलहम् अभ्याख्यानं पैशुन्यं परपरिवादं अरतिरतिं मायामृषां मिथ्यादर्शनशल्यम् अकरणीयं योगं प्रत्याख्यामः यावज्जीवं सर्वम् अशनं पानं खाद्यं स्वाद्यं-चतुर्विधम् अपि आहारं प्रत्याख्यामः यावज्जीवम्।

नमस्कार हो अर्हत् यावत् सिद्धि गति नाम वाले स्थान को संप्राप्त जिनवरों को।
नमस्कार हो भगवान् महावीर यावत् सिद्धि गति प्राप्त करने वाले जिनवर को।
नमस्कार हो हमारे धर्माचार्य धर्मोपदेशक अम्मड़ परिव्राजक को।
पहले हमने अम्मड़ परिव्राजक के पास स्थूल प्राणातिपात का यावज्जीवन के लिए प्रत्याख्यान किया, मृषावाद और अदत्तादान का यावज्जीवन के लिए प्रत्याख्यान किया, सर्व मैथुन का यावज्जीवन के लिए प्रत्याख्यान किया, स्थूल परिग्रह का यावज्जीवन के लिए प्रत्याख्यान किया। संप्रति हम श्रमण भगवान् महावीर की साक्ष्य से सर्व प्राणातिपात का यावज्जीवन के लिए प्रत्याख्यान करते हैं, सर्व मृषावाद का यावज्जीवन के लिए प्रत्याख्यान करते हैं, सर्व अदत्तादान का यावज्जीवन के लिए प्रत्याख्यान करते हैं, सर्व मैथुन का यावज्जीवन के लिए प्रत्याख्यान करते हैं, सर्व परिग्रह का यावज्जीवन के लिए प्रत्याख्यान करते हैं। सर्व क्रोध, मान, माया, लोभ, प्रेय, द्वेष, कलह, अभ्याख्यान, पैशुन्य, परपरिवाद, अरतिरति, मायामृषा, मिथ्यादर्शनशल्य और अकरणीय योग का यावज्जीवन के लिए प्रत्याख्यान करते हैं। सर्व अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य—चारों प्रकार के आहार का यावज्जीवन के लिए प्रत्याख्यान करते हैं।

जं पि य इमं सरीरं इट्ठं कंतं पियं मणुण्णं मणामं पेज्जं वेसासियं संमयं बहुमयं अणुमयं भंड-करंडग-समाणं मा णं सीयं, मा णं उण्हं, मा णं खुहा, मा णं पिवासा, मा णं वाला, मा णं चोरा, मा णं दंसा, मा णं मसगा, मा णं वाइय-पित्तिय-सिंभिय-सन्निवाइय विविहा रोगायंका परीसहोवसग्गा फुसंतु त्ति कट्टु एयंपि णं चरिमेहिं ऊसासनीसासेहिं वोसिरामि त्ति कट्टु संलेहणा-झूसिया भत्तपाण-पडियाइक्खिया पाओवगया कालं अणवकंखमाणा विहरंति।
तए णं ते परिव्वाया बहूइं भत्ताइं अणसणाए छेदेंति, छेदित्ता आलोइय-पडिक्कंता समाहिपत्ता कालमासे कालं

यदपि च इदं शरीरं इष्टं कान्तं प्रियं मनोज्ञं 'मणामं' प्रेयः वैश्वासिकं सम्मतं बहुमतम् अनुमतं भाण्डकरण्डकसमानं मा शीतम्, मा उष्णम्, मा क्षुधा, मा पिपासा, मा व्यालाः, मा चौराः, मा दंशाः, मा मशकाः, मा वातिकपैत्तिक-श्लैष्मिक-सान्निपातिक-विविधाः रोगातंकाः परीषहोपसर्गाः स्पृशन्तु इति कृत्वा एतद् अपि चरमैः उच्छ्वास-निश्वासैः व्युत्सृजामि इति कृत्वा संलेखना-जुष्टाः भक्तपान-प्रत्याख्याताः प्रायोपगताः कालम् अनवकाङ्क्षन्तः विहरन्ति। ततः ते परिव्राजकाः बहूनि भक्तानि अनशनेन छिन्दन्ति छित्त्वा आलोचित-

यह शरीर इष्ट, कांत, प्रिय, मनोज्ञ, मनोहर, स्थिरतर, विश्वसनीय, सम्मत, बहुमत, अनुमत और आभरण करण्डक के समान है। इसे सर्दी न लगे, गर्मी न लगे, भूख न सताए, प्यास न सताए, चोर पीड़ा न पहुंचाए, हिंस्र पशु इस पर आक्रमण न करे, दंश और मशक इसे न काटे, वात, पित्त, श्लेष्म और संनिपातजनित विविध प्रकार के रोग और आतंक तथा परीषह और उपसर्ग इसका स्पर्श न करें, इसलिए इसको भी हम अंतिम उच्छ्वास-निःश्वास तक छोड़ते हैं। ऐसा कर संलेखना की आराधना में स्थित हो भक्त-पान का प्रत्याख्यान कर प्रायोपगमन की अवस्था में मृत्यु की आकांक्षा नहीं करते हुए रहते हैं। उन परिव्राजकों ने अनशन के द्वारा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किच्चा बभलोए कप्पे देवत्ताए उववण्णा। तहिं तेसिं गई, तहिं तेसिं ठिई, तहिं तेसिं उववाए पण्णत्ते।

प्रतिक्रान्ताः समाधिप्राप्ताः कालमासे कालं कृत्वा ब्रह्मलोके कल्पे देवत्वेन उपपन्नाः। तत्र तेषां गतिः, तत्र तेषां स्थितिः, तत्र तेषाम् उपपातः प्रज्ञप्तः।

बहु भक्त का छेदन किया, छेदन कर आलोचना और प्रतिक्रमण कर समाधिपूर्ण दशा में कालमास में काल को प्राप्त कर ब्रह्मलोक कल्प में देव के रूप में उपपन्न हुए। वहीं उनकी गति, वहीं उनकी स्थिति और वहीं उनका उपपात प्रज्ञप्त है।

तेसि णं भंते! देवाणं केवतियं कालं ठिई पण्णत्ता?
गोयमा! दससागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।

तेषां भदन्त! देवानां कियत् कालं स्थितिः प्रज्ञप्ता?
गौतम! दशसागरोपमानि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

भंते! उन देवों की कितने काल की स्थिति प्रज्ञप्त है?
गौतम! दस सागरोपम की स्थिति प्रज्ञप्त है।

अत्थि णं भंते! तेसिं देवाणं इड्ढी इ वा जुई इ वा जसे इ वा बले इ वा वीरिए इ वा पुरिसक्कार-परक्कमे इ वा?

अस्ति भदन्त! तेषां देवानां ऋद्धिः इति वा, द्युतिः इति वा, यशः इति वा, बलम् इति वा, वीर्यम् इति वा, पुरुषाकार-पराक्रमः इति वा?

भंते! उन देवों के ऋद्धि, द्युति, यश, बल, वीर्य और पुरुषकार-पराक्रम है?

हंता अत्थि।
ते णं भंते! देवा परलोगस्स आराहगा?
हंता अत्थि॥

हन्त अस्ति।
ते भदन्त! देवाः परलोकस्य आराधकाः?
हन्त अस्ति।

हां, है।
भंते! वे देव परलोक के आराधक हैं?
हां, है।

अम्मड-चरिया-पदं

११०. बहुजणे णं भंते! अण्णमण्णस्स एवमाइक्खइ एवं भासइ एवं पण्णवेइ एवं परूवेइ–एवं खलु अम्मडे परिव्वायए कंपिल्लपुरे नगरे घरसए आहारमाहरेइ, घरसए वसहिं उवेइ। से कहमेयं भंते?

एवं खलु गोयमा! जं णं से बहुजणे अण्णमण्णस्स एवमाइक्खइ एवं भासइ एवं पण्णवेइ एवं परूवेइ–एवं खलु अम्मडे परिव्वायए कंपिल्लपुरे नगरे घरसए आहारमाहरेइ, घरसए वसहिं उवेइ, सच्चे णं एसमट्ठे। अहंपि णं गोयमा! एवमाइक्खामि एवं भासामि एवं पण्णवेमि एवं परूवेमि–एवं खलु अम्मडे परिव्वायए कंपिल्लपुरे नगरे घरसए आहारमाहरेइ, घरसए वसहिं उवेइ॥

अम्बड-चर्या-पदम्

बहुजनः भदन्त! अन्योऽन्यम् एवमाख्याति एवं भासते एवं प्रज्ञापयति एवं प्ररूपयति–एवं खलु अम्बडः परिव्राजकः काम्पिल्यपुरे नगरे गृहशते आहारम् आहरति, गृहशते वसतिम् उपैति। तत् कथमेतद्? भदन्त!

एवं खलु गौतम! यत् सः बहुजनः अन्योन्यम् एवमाख्याति एवं भासते एवं प्रज्ञापयति एवं प्ररूपयति–एवं खलु अम्बडः परिव्राजकः काम्पिल्यपुरे नगरे गृहशते आहारम् आहरति, गृहशते वसतिम् उपैति, सत्योऽयमर्थः। अहम् अपि गौतम! एवमाख्यामि एवं भाषे एवं प्रज्ञापयामि एवं प्ररूपयामि–एवं खलु अम्बडः परिव्राजकः काम्पिल्यपुरे नगरे गृहशते आहारम् आहरति, गृहशते वसतिम् उपैति।

अम्मड-चर्या-पद

११०. भंते! बहुत लोग परस्पर इस प्रकार का आख्यान, भाषण, प्रज्ञापन और प्ररूपण करते हैं–अम्मड परिव्राजक कंपिलपुर नगर के सौ घरों में आहार करता है, सौ घरों में निवास करता है। भंते! यह कैसे है?

गौतम! जो बहुत लोग परस्पर इस प्रकार आख्यान, भाषण, प्रज्ञापन और प्ररूपण करते हैं–अम्मड परिव्राजक कंपिलपुर नगर में सौ घरों में आहार करता है, सौ घरों में निवास करता है। यह अर्थ सत्य है। गौतम! मैं भी इस प्रकार आख्यान, भाषण, प्रज्ञापन और प्ररूपण करता हूं–अम्मड परिव्राजक कंपिलपुर नगर के सौ घरों में आहार करता है, सौ घरों में निवास करता है।

१११. से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ–अम्मडे परिव्वायए कंपिल्लपुरे नगरे घरसए आहारमाहरेइ, घरसए वसहिं उवेइ?
गोयमा! अम्मडस्स णं परिव्वायगस्स पगइभद्दयाए पगइउवसंतयाए पगइ-पतणुकोहमाणमायालोहयाए मिउमद्दव-संपण्णयाए अल्लीणयाए विणीययाए

तत् केनार्थेन भदन्त! एवमुच्यते–अम्बडः परिव्राजकः काम्पिल्यपुरे नगरे गृहशते आहारम् आहरति, गृहशते वसतिम् उपैति?
गौतम! अम्बडस्य परिव्राजकस्य प्रकृतिभद्रतया प्रकृत्युपशान्ततया प्रकृति-प्रतनुक्रोधमानमायालोभेन

१११. भंते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है–अम्मड़ परिव्राजक कंपिलपुर नगर में सौ घरों में आहार करता है, सौ घरों में निवास करता है?
गौतम! अम्मड परिव्राजक प्रकृति से भद्र और उपशान्त है। उसके क्रोध, मान, माया और लोभ प्रकृति से प्रतनु हैं। वह मृदु मार्दव

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

छट्ठंछट्ठेणं अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं उड्ढं बाहाओ पगिज्झिय-पगिज्झिय सूराभिमुहस्स आयावणभूमीए आयावेमाणस्स सुभेणं परिणामेणं पसत्थेहिं अज्झवसाणेहिं लेसाहिं विसुज्झमाणीहिं अण्णया कयाइ तदावरणिज्जाणं कम्माणं खओवसमेणं ईहापूह-मग्गण-गवेसणं करेमाणस्स वीरियलद्धीए वेउव्वियलद्धीए ओहिनाणलद्धी समुप्पण्णा।

मृदुमार्दव-सम्पन्नतया आलीनतया विनीततया षष्ठषष्ठेन अनिक्षिप्तेन तपः-कर्मणा ऊर्ध्वं बाहू प्रगृह्य-प्रगृह्य सूराभिमुखस्य आतापनभूम्याम् आतापयतः शुभेन परिणामेन प्रशस्तैः अध्यवसानैः लेश्याभिः विशुध्यमानाभिः अन्यदा कदाचित् तदावरणीयानां कर्मणां क्षयोपशमेन ईहापोहमार्गण-गवेषणं कुर्वतः वीर्यलब्धि-वैक्रियलब्धि-अवधिज्ञानलब्धिः समुत्पन्ना।

संपन्न, आलीन (संयतेन्द्रिय) और विनीत है। वह निरंतर बेले-बेले (दो-दो दिन का उपवास) के तप की साधना करता है। दोनों भुजाओं को ऊपर उठाकर सूर्य के सामने आतापन भूमि में आतापना लेता है। उसके शुभ परिणाम, प्रशस्त अध्यवसाय और लेश्या की उत्तरोत्तर होने वाली विशुद्धि से किसी समय तदावरणीय कर्म का क्षयोपशम हुआ। उसके होने पर ईहा, ऊहापोह, मार्गणा, गवेषणा करते हुए वीर्य लब्धि, वैक्रिय लब्धि और अवधिज्ञान लब्धि उत्पन्न हुई।

तए णं से अम्मडे परिव्वायए तीए वीरियलद्धीए वेउव्वियलद्धीए ओहिनाणलद्धीए समुप्पण्णाए जण-विम्हावणहेउं कंपिल्लपुरे नगरे घरसए आहारमाहरेइ, घरसए वसहिं उवेइ। से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ—अम्मडे परिव्वायए कंपिल्लपुरे नगरे घरसए आहारमाहरेइ, घरसए वसहिं उवेइ॥

ततः सः अम्बडः परिव्राजकः तया वीर्यलब्ध्या वैक्रियलब्ध्या अवधिज्ञान-लब्ध्या समुत्पन्नया जनविस्मापनहेतुं काम्पिल्यपुरे नगरे गृहशते आहारम् आहरति, गृहशते वसतिम् उपैति। तत् तेनार्थेन गौतम! एवमुच्यते—अम्बडः परिव्राजकः काम्पिल्यपुरे नगरे गृहशते आहारम् आहरति, गृहशते वसतिम् उपैति।

वह अम्मड परिव्राजक उस वीर्यलब्धि, वैक्रिय लब्धि और अवधिज्ञान लब्धि के होने पर जनसमूह को विस्मय में डालने के लिए कंपिलपुर नगर में सौ घरों में आहार करता है, सौ घरों में निवास करता है। गौतम! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है—अम्मड़ परिव्राजक कंपिलपुर नगर में सौ घरों में आहार करता है, सौ घरों में निवास करता है।

११२. पहू णं भंते! अम्मडे परिव्वायए देवाणुप्पियाणं अंतियं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए?
नो इणट्ठे समट्ठे।
गोयमा! अम्मडे णं परिव्वायए समणोवासए अभिगयजीवाजीवे उवलद्धपुण्णपावे आसव-संवर-निज्जर-किरियाहिगरण-बंध-मोक्खकुसले असहेज्ज देवासुरनाग-सुवण्ण-जक्ख-रक्खस-किन्नर किंपुरिस-गरुल-गंधव्व-महोरगाइएहिं निग्गंथाओ पावयणाओ अणइक्कमणिज्जे, इणमो निग्गंथे पावयणे निस्संकिए निक्कंखिए निव्वतिगिच्छे लद्धट्ठे गहियट्ठे पुच्छियट्ठे अभिगयट्ठे विणिच्छियट्ठे अट्ठिमिंजपेमाणुरागरत्ते, अयमाउसो! निग्गंथे पावयणे अट्ठे, अयं परमट्ठे, सेसे अणट्ठे, चउद्दसअट्ठमुद्दिट्ठपुण्णमासिणीसु पडिपुण्णं पोसहं अणुपालेमाणे, समणे निग्गंथे फासुएसणिज्जेणं असण-पाण-खाइम-साइमेणं वत्थ-पडिग्गह-कंबल-पाय-पुच्छणेणं ओसहभेसज्जेणं पाडिहारिएणं

प्रभुः भदन्त! अम्बडः परिव्राजकः देवानुप्रियाणाम् अन्तिकं मुण्डः भूत्वा अगारात् अनगारितां प्रव्रजितुम्?
नो अयमर्थः समर्थः।
गौतम! अम्बडः परिव्राजकः श्रमणोपासकः अभिगतजीवाजीवः उपलब्धपुण्यपापः आश्रव-संवर-निर्जरा-क्रियाऽधिकरण-बन्ध-मोक्ष-कुशलः असहाय्यः देवासुरनाग-सुपर्ण-यक्ष-राक्षस-किन्नर-किंपुरुष-गरुड-गान्धर्व-महोरगादिकैः नैर्ग्रन्थात् प्रवचनात् अनतिक्रमणीयः (इणमो) नैर्ग्रन्थे प्रवचने निःशंकितः निष्कांक्षितः निर्विचिकित्सः लब्धार्थः गृहीतार्थः पृष्टार्थः अभिगतार्थः विनिश्चतार्थः अस्थिमज्जाप्रेमानुरागरक्तः
इदमायुष्मन्! नैर्ग्रन्थं प्रवचनम् अर्थः, इदं परमार्थः, शेषम् अनर्थः, चतुर्दशाष्ट-मोद्दिष्ट-पूर्णमासीषु•
प्रतिपूर्णं पौषधम् अनुपालयन् श्रमणान् निर्ग्रन्थान् प्रासुकएषणीयेन अशन-पान-खाद्य-स्वाद्येन वस्त्र-प्रतिग्रह-कम्बल-

११२. भंते! क्या अम्मड परिव्राजक देवानुप्रिय के पास मुंड हो, अगार से अनगारिता में प्रव्रजित होने में समर्थ है?
यह अर्थ संगत नहीं है।
गौतम! श्रमणोपासक अम्मड परिव्राजक जीव-अजीव को जानने वाला, पुण्य-पाप के मर्म को समझने वाला, आस्रव, संवर, निर्जरा, क्रिया, अधिकरण, बंध और मोक्ष के विषय में कुशल, सत्य के प्रति स्वयं निश्चल, देव, असुर, नाग, सुपर्ण, यक्ष, राक्षस, किन्नर, किंपुरुष, गरुड, गंधर्व, महोरग आदि देव गणों के द्वारा निर्ग्रंथ प्रवचन से अविचलनीय, इस निर्ग्रंथ प्रवचन में शंका रहित, कांक्षा रहित, विचिकित्सा रहित, यथार्थ को सुनने वाला, ग्रहण करने वाला, उस विषय में प्रश्न करने वाला, उसे जानने वाला, उसका विनिश्चय करने वाला, प्रेमानुराग से अनुरक्त अस्थि मज्जा वाला, आयुष्मन्! यह निर्ग्रंथ प्रवचन यथार्थ है, यह परमार्थ है, शेष अनर्थ है (ऐसा मानने वाला) चतुर्दशी, अष्टमी, अमावस्या और पूर्णिमा को प्रतिपूर्ण पौषध का सम्यक् अनुपालन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पीढफलगसेज्जासंथारएणं पडिलाभेमाणे सीलवय-गुण-वेरमण-पच्चक्खाण-पोसहोववासेहिं अहापरिग्गहिएहिं तवोकम्मेहिं अप्पाणं भावेमाणे विहरइ जाव दढप्पइण्णो अंतं काहिति॥

पाद प्रौञ्छनेन औषधभैषज्येन प्रातिहारिकेण पीठफलकशय्यासंस्तारकेण प्रतिलाभयन् शीलव्रत-गुण-विरमण-प्रत्याख्यान-पौषधोपवासैः यथापरिगृहीतैः तपःकर्मभिः आत्मानं भावयन् विहरति, यावत् दृढप्रतिज्ञः अन्तं करिष्यति।

करने वाला, श्रमण निर्ग्रंथों को प्रासुक और एषणीय अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य, वस्त्र, पात्र, कंबल, पादप्रौञ्छन, औषध-भैषज्य, प्रातिहार्य पीठ-फलक, शय्या और संस्तारक का दान देने वाला, बहुत शीलव्रत, गुण, विरमण, प्रत्याख्यान और पौषधोपवास के द्वारा यथापरिगृहीत तपःकर्म के द्वारा आत्मा को भावित करते हुए रह रहा है यावत् दृढप्रतिज्ञ की भांति अंत करेगा।

भाष्य

१. सूत्र १०७-११२

औपपातिक सूत्र में परिव्राजक चर्या का विशद वर्णन है। उसके अनुसार सांख्य, योग, योगी कापिल आदि अनेक श्रेणी के परिव्राजकों का निर्देश उपलब्ध है। आठ ब्राह्मण परिव्राजकों तथा आठ क्षत्रिय परिव्राजकों का नामोल्लेख भी मिलता है।[1]

अम्मड के अंतेवासी और अम्मड की चर्या का भी विस्तृत विवरण किया गया है।[2] अम्मड का प्रकरण भगवती से औपपातिक में लिया गया है अथवा औपपातिक से भगवती में? यह विमर्शनीय है।

प्रकरण की समग्रता को देखते हुए इस निष्कर्ष तक पहुंचने में कोई कठिनाई नहीं है कि यह प्रकरण औपपातिक से भगवती में संगृहीत किया गया है। भगवती में परिव्राजक का कोई प्रकरण नहीं है। केवल अम्मड़ के शिष्यों और अम्मड की चर्या का प्रसंग उपलब्ध है। इसका दूसरा समर्थन हेतु यह है– भगवती में 'एवं जहा ओववाइए जाव आराहगा' इस संक्षिप्त पाठ में औपपातिक को देखने का निर्देश दिया गया है।

औपपातिक की वृत्ति में अम्मड के शिष्यों को महर्षि चरक का परिव्राजक बतलाया गया है।[3]

प्रस्तुत प्रकरण में विमर्शनीय बिन्दु ये हैं–

अम्मड परिव्राजक के शिष्यों ने पहले स्थूल प्राणातिपात आदि का प्रत्याख्यान किया तथा सर्व मैथुन का प्रत्याख्यान किया। पश्चात् सर्व प्राणातिपात आदि का प्रत्याख्यान किया। इन दोनों तथ्यों की परिव्राजक चर्या के साथ कैसे संगति हो सकती है?

अम्मड के लिए 'श्रमणोपासक' की चर्या का विधान भी कैसे संगत है?

कथावस्तु के निगमन में अम्मड के शिष्यों को परिव्राजक ही बतलाया गया है–**तए णं ते परिव्वाया बहूइं भत्ताइं अणसणाए छेदेंति।**[4] इससे प्रमाणित होता है कि अंत तक वे परिव्राजक रहे। अम्मड भी अंत तक परिव्राजक रहा।[5] इसलिए श्रमणोपासक का वर्णन एक विचारणीय विषय है।

स्थानांग में अम्मड परिव्राजक का उल्लेख है। वृत्तिकार अभयदेवसूरि के अनुसार वह औपपातिक में उल्लिखित अम्मड परिव्राजक से भिन्न है।[6]

अव्वाबाहदेव-सत्ति-पदं

११३. अत्थि णं भंते! अव्वाबाहा देवा अव्वाबाहा देवा?
हंता अत्थि॥

११४. से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ– अव्वाबाहा देवा अव्वाबाहा देवा?
गोयमा! पभू णं एगमेगे अव्वाबाहे देवे एगमेगस्स पुरिसस्स एगमेगंसि अच्छिपत्तंसि दिव्वं देविड्ढिं, दिव्वं देवज्जुतिं, दिव्वं देवाणुभागं, दिव्वं बत्तीसतिविहं नट्टविहिं उवदंसेत्तए, नो चेव णं तस्स पुरिसस्स किंचि आबाहं वा वाबाहं वा उप्पाएइ, छविच्छेयं वा करेइ, एसुहुमं च णं उवदंसेज्जा। से तेणट्ठेणं

अव्याबाधदेव-शक्ति-पदम्

अस्ति भदन्त! अव्याबाधाः देवाः अव्याबाधाः देवाः?
हन्त अस्ति।
तत् केनार्थेन भदन्त! एवमुच्यते– अव्याबाधाः देवाः अव्याबाधाः देवाः?
गौतम! प्रभुः एकैकः अव्याबाधः देवः एकैकस्य पुरुषस्य एकैकस्मिन् अक्षिपत्रे दिव्यां देवर्द्धिं, दिव्यां देवद्युतिं, दिव्यं देवानुभागं, दिव्यां द्वात्रिंशद्विधां नाट्यविधिम् उपदर्शयितुम्, नो चैव तस्य पुरुषस्य किञ्चित् आबाधां वा व्याबाधां वा उत्पादयति, छविच्छेदं वा करोति, इयत्सूक्ष्मं च उपदर्शयेत्। तत्

अव्याबाध देव शक्ति पद

११३. भंते! अव्याबाध देव अव्याबाध देव हैं?

हां, हैं।

११४. भंते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है–अव्याबाध देव अव्याबाध देव हैं?
गौतम! प्रत्येक अव्याबाध देव प्रत्येक मनुष्य के प्रत्येक अक्षि-पत्र पर दिव्य देवर्द्धि, दिव्य देव द्युति, दिव्य देवानुभाग, दिव्य बत्तीस प्रकार की नाट्य विधि का उपदर्शन करने में समर्थ है। वह उस पुरुष को किञ्चित् आबाध अथवा व्याबाध उत्पन्न नहीं करता, छविच्छेद भी करता है, इस कौशल के साथ उपदर्शन करता है।

१. ओव. पदं ८६-११४
२. ओव. पदं ११५-१४०
३. औप. वृ. पत्र १८०–अथ ये चरकपरिव्राजकाः ब्रह्मलोकं गतास्तदुपदर्शनेनाधिकृतार्थं समर्थयन्नाह–
४. ओव. पदं ११७
५. ओव. पदं १४० अम्मडेणं भंते! परिव्वायए कालमासे कालं किच्चा कहिं गच्छिहिति? कहिं उववज्जिहिति?
६. स्था. वृ. पत्र ४३४ यश्चौपपातिकोपाङ्गे महाविदेहे सेत्स्यतीत्यभिधीयते सोऽन्य इति संभाव्यते।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा! एवं वुच्चइ—अव्वाबाहादेवा अव्वाबाहा देवा॥

तेनार्थेन गौतम! एवमुच्यते—अव्याबाधाः देवाः अव्याबाधाः देवाः।

गौतम! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है—अव्याबाध देव अव्याबाध देव हैं।

सक्कस्स सत्ति-पदं

११५. पभू णं भंते! सक्के देविंदे देवराया पुरिसस्स सीसं सपाणिणा असिणा छिंदित्ता कमंडलुंसि पक्खिवित्तए?
हंता पभू॥

शक्रस्य शक्ति-पदम्

प्रभुः भदन्त! शक्रः देवेन्द्रः देवराजा पुरुषस्य शीर्षं सपाणिना असिना छित्त्वा कमण्डलुे प्रक्षेप्तुम्?
हन्त प्रभुः।

शक्र का शक्ति-पद

११५. भंते! देवराज देवेन्द्र शक्र हाथ में तलवार ले पुरुष के सिर का छेदन कर उसका कमंडलु में प्रक्षेप करने में समर्थ है?
हां, समर्थ है।

११६. से कहमिदाणिं पकरेंति?
गोयमा! छिंदिया-छिंदिया च णं पक्खिवेज्जा, भिंदिया-भिंदिया च णं पक्खिवेज्जा, कोट्टिया-कोट्टिया च णं पक्खिवेज्जा, चुण्णिया-चुण्णिया च णं पक्खिवेज्जा, तओ पच्छा खिप्पामेव पडिसंधाएज्जा, नो चेव णं तस्स पुरिसस्स किंचि आबाहं वा वाबाहं वा उप्पाएज्जा, छविच्छेयं पुण करेइ, एसुहुमं च णं पक्खिवेज्जा॥

सः कथम् इदानीं प्रकरोति?
गौतम! छित्त्वा-छित्त्वा च प्रक्षिपेत्, भित्त्वा-भित्त्वा च प्रक्षिपेत्, कुट्टित्वा-कुट्टित्वा च प्रक्षिपेत्, चूर्णित्वा-चूर्णित्वा च प्रक्षिपेत्, ततः पश्चात् क्षिप्रमेव प्रतिसंधातयेत्, नो चैव तस्य पुरुषस्य किंचित् आबाधां वा व्याबाधां वा उत्पादयेत्, छविच्छेदं पुनः करोति, इयत्सूक्ष्मं प्रक्षिपेत्।

११६. वह यह कैसे करता है?
गौतम! वह पुरुष के सिर को छिन्न-छिन्न कर उसका कमंडलु में प्रक्षेप करता है। भिन्न-भिन्न कर उसका कमंडलु में प्रक्षेप करता है। कूट-पीस कर उसका कमंडलु में प्रक्षेप करता है। उसे चूर्ण चूर्ण कर उसका कमंडलु में प्रक्षेप करता है। उसके पश्चात् क्षण भर में ही सिर का प्रतिसंधान कर देता है। उस पुरुष के किञ्चित् आबाध अथवा व्याबाध उत्पन्न नहीं करता, छविच्छेद भी करता है। वह इस कौशल के साथ सिर का कमण्डलु में प्रक्षेप करता है।

भाष्य

१. सूत्र ११३-११६

प्रस्तुत आलापक में दिव्य शक्ति के कौशल का प्रतिपादन किया गया है।

अव्याबाध देव मनुष्य के अक्षि-पक्ष्म-आंख की पलक पर बत्तीस प्रकार के नाटक का उपदर्शन करते हैं, फिर भी उस मनुष्य को कोई बाधा नहीं पहुंचाते, कष्ट नहीं देते, इसलिए इनकी संज्ञा अव्याबाध है।

लोकान्तिक देवों में अव्याबाध देव का उल्लेख है।[1] वृत्तिकार ने भी अव्याबाध का लोकान्तिक देव के रूप में उल्लेख किया है।[2] लोकान्तिक देव सम्यग् दृष्टि संपन्न होते हैं।[3] सर्वार्थसिद्धि में भी इनके बारे में कुछ विशेष विवरण उपलब्ध हैं—'लोकान्तिक देव स्वतंत्र हैं। इनमें कोई हीन और अधिक नहीं हैं। विषय विरत होने के कारण देव-ऋषि कहलाते हैं। दूसरे देवों के लिए ये अर्चनीय है। ये चतुर्दश पूर्व के धारक होते हैं। तीर्थंकर के निष्क्रमण के समय ये प्रतिबोध का दायित्व निभाते हैं।[4]

जंभगदेव-पदं

११७. अत्थि णं भंते! जंभगा देवा जंभगा देवा?
हंता अत्थि॥

जृम्भकदेव-पदम्

अस्ति भदन्त! जृम्भकाः देवाः जृम्भकाः देवाः?
हन्त अस्ति!

जृंभक देव पद

११७. भंते! जृंभक देव जृंभक देव हैं?
हां, हैं।

११८. से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ—जंभगा देवा जंभगा देवा?
गोयमा! जंभगा णं देवा निच्चं पमुदित-पक्कीलिया कंदप्परति-मोहणसीला। जे

तत् केनार्थेन भदन्त! एवमुच्यते—जृम्भकाः देवाः, जृम्भकाः देवाः?
गौतम! जृम्भकाः देवाः नित्यं प्रमुदित-प्रक्रीडिताः कंदर्परति-मोहनशीलाः। यः

११८. भंते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है—जृंभक देव जृंभक देव हैं?
गौतम! जृंभक देव नित्य प्रमुदित, बहुत क्रीडाशील, कंदर्प में रमण करने वाले और

१ (क) भ. ६/११०
(ख) त. सू. ४/२६

२. भ. वृ. १४/११३—व्याबाधन्ते—परं पीडयन्तीति व्याबाधस्तन्निषेधाद-व्याबाधाः, ते च लोकान्तिकदेवमध्यगताः द्रष्टव्याः।

३. त. सू. भा. ४/२५ की वृत्ति

४. सर्वार्थसिद्धिः ४/२५ की वृत्ति—सर्वे एते स्वतंत्राः हीनाधिकत्वाभावात्, विषयरतिविरहाद्देवर्षयः, इतरेषां देवानामर्चनीयाः, चतुर्दशपूर्वधराः तीर्थकरनिष्क्रमणप्रतिबोधनपरा वेदितव्याः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

णं ते देवे कुद्धे पासेज्जा, से णं पुरिसे महंतं अयसं पाउणेज्जा। जे णं ते देवे तुट्ठे पासेज्जा, से णं महंतं जसं पाउणेज्जा। से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ–जंभगा देवा जंभगा देवा॥

तान् देवान् क्रुद्धान् पश्येत्, सः पुरुषः महान्तम् अयशः प्राप्नुयात्। यः तान् देवान् तुष्टान् पश्येत्, सः महान्तं यशः प्राप्नुयात्। तत् तेनार्थेन गौतम! एवमुच्यते–जृम्भकाः देवाः जृम्भकाः देवाः।

कामवासना प्रिय होते हैं। वे देव जिसे क्रुद्ध होकर देखते हैं, वह पुरुष महान् अयश को प्राप्त होता है। वे देव जिसे तुष्ट होकर देखते हैं, वह पुरुष महान् यश को प्राप्त होता है। गौतम! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है– जृंभक देव जृंभक देव हैं।

११६. कतिविहा णं भंते! जंभगा देवा पण्णत्ता?
गोयमा! दसविहा पण्णत्ता, तं जहा–अन्नजंभगा, पाणजंभगा, वत्थजंभगा, लेणजंभगा, सयणजंभगा, पुप्फजंभगा, फलजंभगा, पुप्फ-फल-जंभगा, विज्जा-जंभगा, अविरत्तिजंभगा॥

कतिविधाः भदन्त! जृम्भकाः देवाः प्रज्ञप्ताः?
गौतम! दशविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–अन्नजृम्भकाः, पानजृम्भकाः, वस्त्र-जृम्भकाः, लयनजृम्भकाः, शयन-जृम्भकाः, पुष्पजृम्भकाः, फल-जृम्भकाः, पुष्प-फल-जृम्भकाः, विद्याजृम्भकाः, अव्यक्तिजृम्भकाः।

११६. भंते! जृंभक देव कितने प्रकार के प्रज्ञप्त हैं।
गौतम! दस प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे–अन्न जृंभक, पान जृंभक, वस्त्र जृंभक, लयन जृंभक, शयन जृंभक, पुष्प जृंभक, फल जृंभक, पुष्प-फल जृंभक, विद्या जृंभक, अव्यक्त जृंभक।

१२०. जंभगा णं भंते! देवा कहिं वसहिं उवेंति?
गोयमा! सव्वेसु चेव दीहवेयड्ढेसु, चित्तविचित्तजमगपव्वएसु, कंचणपव्वएसु य, एत्थ णं जंभगा देवा वसहिं उवेंति॥

जृम्भकाः भदन्त! देवाः कुत्र वसतिम् उपयान्ति?
गौतम! सर्वेषु चैव दीर्घवैताढ्येषु, चित्र-विचित्र-यमक-पर्वतेषु, काञ्चन-पर्वतेषु च, अत्र जृम्भकाः देवाः वसतिम् उपयान्ति।

१२०. भंते! जृंभक देव कहां निवास करते हैं?
गौतम! सब दीर्घ वैताढ्य पर्वतों पर चित्रकूट, विचित्रकूट, यमक पर्वतों पर और कांचन पर्वतों पर–इन स्थानों पर जृंभक देव निवास करते हैं।

१२१. जंभगाणं भंते! देवाणं केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता?
गोयमा! एगं पलिओवमं ठिती पण्णत्ता॥

जृम्भकानां भदन्त! देवानां कियत् कालं स्थितिः प्रज्ञप्ता?
गौतम! एकं पल्योपमं स्थितिः प्रज्ञप्ता।

१२१. भंते! जृंभक देवों की स्थिति कितने काल की प्रज्ञप्त है?
गौतम! एक पल्योपम की स्थिति प्रज्ञप्त है।

भाष्य

१. सूत्र ११७-१२१

प्रस्तुत आलापक में जृंभक देवों के कार्य और प्रकारों का निरूपण किया गया है। ये व्यंतर जाति के देव हैं। ये स्वच्छंद विहार करने वाले हैं। ये तुष्ट होकर अनुग्रह तथा रुष्ट होकर निग्रह करते रहते हैं। इनका निवास-स्थान तिर्यक् लोक में है। सूत्रकार ने इनके निम्नवर्ती निवास-स्थान बतलाए हैं–

• **दीर्घ वैताढ्य पर्वत**–ये दीर्घ विजयार्ध में अवस्थित हैं। पांच भरत, पांच ऐरावत और पांच महाविदेह–इनमें इनकी संख्या एक सौ सत्तर है।

• **चित्रकूट विचित्रकूट पर्वत**–इनकी अवस्थिति देवकुरु समूह में शीतोदा नदी के दोनों किनारों पर है।

• **यमक पर्वत** की अवस्थिति उत्तरकुरु समूह में शीता नदी के तट पर है।

• **काञ्चन पर्वत**–ये उत्तरकुरु समूह में शीता नदी से संबद्ध पांच नीलवान द्रह हैं। उनके पूर्व पश्चिम तटों पर दस-दस काञ्चन पर्वत हैं। इस प्रकार उत्तरकुरु में सौ काञ्चन पर्वत हैं।

देवकुरु में शीतोदा नदी के निषध आदि पांच द्रहों के दोनों तटों पर दस-दस कांचन पर्वत हैं। इस प्रकार देवकुरु में सौ काञ्चन पर्वत अवस्थित हैं।[1]

प्रज्ञापना में व्यंतर देवों के असंख्येय भौमेय नगरावास बतलाए गए हैं।[2]

शब्द-विमर्श

अन्न जृंभक–भोजन के अभाव और सद्भाव, अल्पता और बहुता, सरसता और नीरसता–आदि आदि क्रिया के संपादन में समर्थ जृंभक।

पान जृंभक–पानी के अभाव और सद्भाव, अल्पता और बहुता, सरसता और नीरसता–आदि आदि क्रिया के संपादन में समर्थ जृंभक देव।

१. (क) भ. वृ. १४/११७-१२१।
(ख) भ. जो. ढा. ३०२, गाथा ५२-५७।
२. पण्ण. २/४१-४७।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वस्त्र जृंभक–वस्त्र को घटाने-बढाने आदि की शक्ति वाले जृंभक देव।

लयन जृंभक– मकान आदि की सुरक्षा और विनाश में समर्थ जृभंक देव।

शयन जृंभक–शय्या आदि की सुरक्षा और विनाश में समर्थ जृंभक देव।

पुष्प जृंभक–पुष्प की रक्षा और विनाश में समर्थ जृंभक देव।

फल जृंभक–फल की रक्षा और विनाश में समर्थ जृंभक देव।

पुष्प-फल जृंभक–पुष्प-फल दोनों की सुरक्षा और विनाश में समर्थ जृंभक देव।

विद्या जृंभक–विद्या को न्यून और अधिक करने की शक्ति वाले जृंभक देव।[1]

अव्यक्त जृंभक–पूर्ववर्ती जृंभक एक-एक क्रिया के संपादन में समर्थ होते हैं। अव्यक्त जृंभक के क्रिया संपादन का कोई विभाग नहीं होता। वे संभवतः अनेक क्रियाओं के संपादन में समर्थ होते हैं।[2] जयाचार्य के अनुसार नाटक प्रमुख आदि के बिगाड़ने और सुधारने की शक्ति वाले जृंभक देव।[3]

१२२. सेवं भंते! सेवं भंते! त्ति जाव विहरइ॥

तदेवं भदन्त! तदेवं भदन्त! इति यावत् विहरति।

१२२. भंते! वह ऐसा ही है। भंते! वह ऐसा ही है यावत् विहरण करने लगे।

१. भ. जो. ढा. ३०२ गाथा ४५।
२. भ. वृ. १४/११७-१२१।
३. भ. जो. ढा. ३०२ गाथा ४५ :
विद्या जृंभक ते पर विद्या, ऊणी अधिक करीजियै।
नाटक प्रमुख बिगाड़े सुधारै, ते अव्यक्त जृंभगा लीजिए॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नवमो उद्देसो : नवां उद्देशक

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
सरूवि-सकम्मलेस्स-पदं	**सरूपि-सकर्मलेश्या-पदम्**	**सरूप-सकर्म लेश्या पद**
१२३. अणगारे णं भंते! भावियप्पा अप्पणो कम्मलेस्सं न जाणइ, न पासइ, तं पुण जीवं सरूविं सकम्मलेस्सं जाणइ-पासइ? **हंता गोयमा! अणगारे णं भावियप्पा अप्पणो कम्मलेस्सं न जाणइ, न पासइ, तं पुण जीवं सरूविं सकम्मलेस्सं जाणइ-पासइ॥**	अनगारः भदन्त! भावितात्मा आत्मनः कर्मलेश्यां न जानाति, न पश्यति, तत् पुनः जीवं सरूपिणं सकर्मलेश्यं जानाति-पश्यति? हन्त गौतम! अनगारः भावितात्मा आत्मनः कर्मलेश्यां न जानाति, न पश्यति, तत् पुनः जीवं सरूपिणं सकर्मलेश्यं जानाति-पश्यति।	१२३. भंते! भावितात्मा अनगार अपनी कर्म लेश्या को नहीं जानता, नहीं देखता और सरूप तथा सकर्म लेश्या वाले उस जीव को जानता-देखता है? हां गौतम! भावितात्मा अनगार अपनी कर्म लेश्या को नहीं जानता, नहीं देखता और सरूप तथा सकर्म लेश्या वाले उस जीव को जानता-देखता है।
१२४. अत्थि णं भंते! सरूवी सकम्म-लेस्सा पोग्गला ओभासेंति उज्जोएंति तवेंति पभासेंति? **हंता अत्थि॥**	अस्ति भदन्त! सरूपिणः सकर्म-लेश्याः पुद्गलाः अवभासन्ते उद्योतन्ते तपन्ति प्रभासन्ते? हन्त अस्ति।	१२४. भंते! क्या सरूप और सकर्म लेश्या वाले पुद्गल अवभासित, उद्योतित, तप्त और प्रभासित करते हैं? हां, करते हैं।
१२५. कयरे णं भंते! सरूवी सकम्मलेसा पोग्गला ओभासेंति जाव पभासेंति? **गोयमा! जाओ इमाओ चंदिमसूरियाणं देवाणं विमाणेहिंतो लेस्साओ बहिया अभिनिस्सडाओ पभासेंति, एवं एए णं गोयमा! ते सरूवी सकम्मलेस्सा पोग्गला ओभासेंति उज्जोएंति तवेंति पभासेंति॥**	कतरे भदन्त! सरूपिणः सकर्मलेश्याः पुद्गलाः अवभासन्ते यावत् प्रभासन्ते? गौतम! याः इमाः चन्द्रमस्-सूर्याणां देवानां विमानेभ्यः लेश्याः बहिः अभिनिस्सृतान् प्रभासन्ते एवं एते गौतम! ते सरूपिणः सकर्मलेश्याः पुद्गलाः अवभासन्ते उद्योतन्ते तपन्ति प्रभासन्ते।	१२५. भंते! कौनसे सरूप और सकर्मलेश्या वाले पुद्गल अवभासित यावत् प्रभासित करते हैं? गौतम! जैसे इन चंद्र-सूर्य देवों के विमानों से बाहर निकलने वाली प्रकाश रश्मियां प्रभासित करती हैं। इसी प्रकार गौतम! सरूप और सकर्म लेश्या के पुद्गल अवभासित, उद्योतित, तप्त और प्रभासित करते हैं।

भाष्य

१. सूत्र १२३-१२५

प्रस्तुत आलापक में **भावितात्मा, कर्मलेश्या, सरूपी और सकर्मलेश्या**—ये चार पद विमर्शनीय हैं।

भावितात्मा के लिए द्रष्टव्य भगवई १२/१४६-१६६ का भाष्य।

वृत्तिकार ने कर्मलेश्या का पहला अर्थ कर्म के योग्य लेश्या तथा दूसरा अर्थ कर्म की लेश्या किया है। द्रष्टव्य भगवई १४/१ का भाष्य।

भावितात्मा अनगार अपनी कर्म लेश्या को नहीं जानता, नहीं देखता। वृत्तिकार के अनुसार इसका आशय यह है—कर्म लेश्या और कर्म द्रव्य के श्लेष में हेतुभूत परमाणु स्कंध अति सूक्ष्म हैं इसलिए वे छद्मस्थ के ज्ञान का विषय नहीं बनते।[1]

भावितात्मा अनगार शरीर और आभामंडल के माध्यम से जीव को जानता-देखता है।[2]

आत्मा अमूर्त्त है और उसकी चैतन्य रश्मियां भी अमूर्त्त हैं। हम उसको नहीं जान सकते, नहीं देख सकते। शरीर जीव के ही होता है

१. भ. वृ. १४/१२४-१२५ कृष्णादिलेश्यायाः कर्मद्रव्यश्लेषणस्य चातिसूक्ष्मत्वेन छद्मस्थज्ञानागोचरत्वात्।

२. भ. वृ. १४/१२५ यो जीवः कर्म्मलेश्यावांस्तं पुनः जीवम् आत्मानं सरूविं ति सहरूपेण—रूपरूपवतोरभेदाच्छरीरेण वर्तते योऽसौ समासान्तविधेः सरूपी तं सरूपिणं सशरीरमित्यर्थः अत एव सकर्म्मलेश्यं कर्म्मलेश्यया सह वर्त्तमानं जानाति, शरीरस्य चक्षुग्राह्यत्वाज्जीवस्य च कथञ्चित् शरीराव्यतिरेकादिति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसलिए यह जीव का निश्चित लक्षण है। अनियत अथवा परिवर्तन-शील आभामंडल जीव के ही होता है। यह भी जीव का निश्चित लक्षण है।

शरीर और कर्मलेश्या के पुद्गल अवभासित, उद्योतित, तप्त और प्रभासित होते हैं। इससे स्पष्ट है कि जैसे शरीर पौद्गलिक है, वैसे ही कर्म लेश्या भी पौद्गलिक है। तात्पर्य में वह आभामंडल है।

आभामंडल के पुद्गल-परमाणु स्कंधों में अवभास, उद्योत, ताप और प्रभास की शक्ति होती है। उनकी तुलना चंद्र और सूर्य के विमानों से बाहर निकलने वाली रश्मियों के साथ की गई है। जैसे चंद्र-सूर्य से निकलने वाली रश्मियों में भी अवभास, उद्योत, ताप और प्रभास होता है, इसी प्रकार शरीर और आभामंडल से निकलने वाली रश्मियों में भी अवभास, उद्योत, ताप और प्रभास होता है।

आभामंडल—तुलना के लिए द्रष्टव्य भगवई १/६०-१०० तथा १/१०२ का भाष्य।

वृत्तिकार ने चंद्र आदि के विमान के पुद्गल को पृथ्वीकायिक जीव मानकर कर्म लेश्या की व्याख्या की है। उपचार से विमान से निकलने वाले पुद्गलों को भी कर्मलेश्यत्व बतलाया है।[1]

जयाचार्य ने वृत्तिकार के अभिमत पर विशद विमर्श किया है।[2]

अत्ताणत्त-पोग्गल-पदं

१२६. नेरइयाणं भंते! किं अत्ता पोग्गला? अणत्ता पोग्गला?
गोयमा! नोअत्ता पोग्गला, अणत्ता पोग्गला॥

आत्राणत्व-पुद्गल-पदम्

नैरयिकानां भदन्त! किम् आत्राः (आत्राः) पुद्गलाः? अनात्राः पुद्गलाः?
गौतम! नो आत्राः पुद्गलाः, अनात्राः पुद्गलाः।

आत्मा-अनात्मा-पुद्गल पद

१२६. भंते! क्या नैरयिकों के पुद्गल आत्त—रमणीय हैं?
गौतम! नैरयिकों के पुद्गल आत्त नहीं हैं, उनके पुद्गल अनात्त हैं।

१२७. असुरकुमाराणं भंते! किं अत्ता पोग्गला? अणत्ता पोग्गला?
गोयमा! अत्ता पोग्गला, नो अणत्ता पोग्गला। एवं जाव थणियकुमाराणं॥

असुरकुमाराणां भदन्त! किम् आत्राः पुद्गलाः? अनात्राः पुद्गलाः?
गौतम! आत्राः पुद्गलाः, नो अनात्राः पुद्गलाः। एवं यावत् स्तनितकुमाराणाम्।

१२७. भंते! क्या असुरकुमारों के पुद्गल आत्त हैं? पुद्गल अनात्त हैं?
गौतम! असुरकुमारों के पुद्गल आत्त हैं, उनके पुद्गल अनात्त नहीं हैं। इसी प्रकार यावत् स्तनित कुमार की वक्तव्यता।

१२८. पुढविकाइयाणं भंते! किं अत्ता पोग्गला? अणत्ता पोग्गला?
गोयमा! अत्ता वि पोग्गला, अणत्ता वि पोग्गला। एवं जाव मणुस्साणं। वाणमंतर-जोइसिय-वेमाणियाणं जहा असुरकुमाराणं॥

पृथिवीकायिकानां भदन्त! किम् आत्राः पुद्गलाः? अनात्राः पुद्गलाः?
गौतम! आत्राः अपि पुद्गलाः, अनात्राः अपि पुद्गलाः। एवं यावत् मनुष्याणाम्। वानमन्तर-ज्योतिष्क-वैमानिकानाम् यथा असुरकुमाराणाम्।

१२८. भंते! क्या पृथ्वीकायिक जीवों के पुद्गल आत्त हैं? पुद्गल अनात्त हैं?
गौतम! पृथ्वीकायिक जीवों के पुद्गल आत्त भी हैं और अनात्त भी हैं। इसी प्रकार यावत् मनुष्यों की वक्तव्यता। वाणमंतरों, ज्योतिष्कों और वैमानिकों की असुरकुमार की भांति वक्तव्यता।

इट्ठाणिट्ठादि-पोग्गल-पदं

१२९. नेरइयाणं भंते! किं इट्ठा पोग्गला? अणिट्ठा पोग्गला?
गोयमा! नो इट्ठा पोग्गला, अणिट्ठा पोग्गला। जहा अत्ता भणिया एवं इट्ठा वि, कंता वि, पिया वि, मणुण्णा वि भाणियव्वा। एए पंच दंडगा॥

इष्टानिष्टादि-पुद्गल-पदम्

नैरयिकाणां भदन्त! किं इष्टाः पुद्गलाः? अनिष्टाः पुद्गलाः?
गौतम! नो इष्टाः पुद्गलाः, अनिष्टाः पुद्गलाः। यथा आत्राः (अत्ता) भणिताः एवं इष्टाः अपि, कान्ताः अपि, प्रियाः अपि, मनोज्ञाः अपि भणितव्याः। एते पञ्च दण्डकाः।

इष्ट-अनिष्ट आदि पुद्गल पद

१२९. भंते! क्या नैरयिकों के पुद्गल इष्ट हैं? पुद्गल अनिष्ट हैं?
गौतम! नैरयिकों के पुद्गल इष्ट नहीं हैं, उनके पुद्गल अनिष्ट हैं। जैसे आप्त की भणिति है, वैसे ही इष्ट, कांत, प्रिय और मनोज्ञ पुद्गलों की वक्तव्यता। ये पांच दंडक हैं।

भाष्य

१. सूत्र १२६-१२९

आत्त पद के मुख्य संस्कृत रूप तीन बनते हैं—आत्म, आप्त और आर्त। प्रस्तुत प्रकरण में आप्त शब्द अधिक प्रासंगिक है। वृद्ध व्याख्या के अनुसार इसका अर्थ है रमणीय। वृत्ति में अत्त का एक अर्थ आत्र—दुःख से त्राण देने वाला किया है।[3] यह बलात् किया गया जैसा प्रतीत होता है।

१. भ. वृ. १४/१२५ इह च यद्यपि चन्द्रादिविमानपुद्गला एव पृथ्वीकायिकत्वेन सचेतनत्वात् सकर्म्मलेश्यास्तथाऽपि तन्निर्गतप्रकाशपुद्गलानां तद्धेतुकत्वेनोपचारात् सकर्म्मलेश्यत्वमवगंतव्यमिति।

२. भ. जो. ढा. ३०२ गा. १२-४३।

३. भ. वृ. १४/१२६ आ—अभिविधिना त्रायन्ते—दुःखात् संरक्षन्ति सुखं चोत्पादयन्तीति आत्राः आप्ता वा—एकान्तहिताः अत एव रमणीया इति वृद्धैर्व्याख्यातं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देवाणं भासासहस्स-पदं

१३०. देवे णं भंते! महिड्ढिए जाव महेसक्खे रूवसहस्सं विउव्वित्ता पभू भासासहस्सं भासित्तए?
हंता पभू॥

देवानां भाषासहस्र-पदम्

देवः भदन्त! महर्द्धिकः यावत् महेशाख्यः रूपसहस्रं विकृत्य प्रभुः भाषासहस्रं भाषितुम्?
हन्त प्रभुः।

देवों का सहस्र-भाषा पद

१३०. भंते! महर्द्धिक यावत् महान् ऐश्वर्यशाली के रूप में प्रख्यात देव हजार रूपों का निर्माण कर सहस्र भाषाएं बोलने में समर्थ हैं?
हां, समर्थ हैं।

१३१. सा णं भंते! किं एगा भासा? भासासहस्सं?
गोयमा! एगा णं सा भासा, नो खलु तं भासासहस्सं॥

सा भदन्त! किम् एका भाषा? भाषा-सहस्रम्।
गौतम! एका सा भाषा, नो खलु तत् भाषासहस्रम्।

१३१. भंते! क्या वह एक भाषा है? सहस्र भाषा है?
गौतम! वह एक भाषा है, वह सहस्र भाषा नहीं है।

भाष्य

१. सूत्र १३०-१३१

देवों की विक्रिया के विषय में एक विस्तृत विवरण तीसरे शतक में उपलब्ध है।[1] प्रस्तुत आलापक में विक्रिया के साथ भाषा के विषय में जिज्ञासा की गई है। जिज्ञासा यह है–हजार रूप और हजार भाषा–यह उचित है अथवा हजार रूप और एक भाषा–यह उचित है?

इस जिज्ञासा के उत्तर में भगवान् ने कहा–रूप हजार, पर भाषा एक होती है। वृत्तिकार ने इसका विवेचन किया है। उसका आशय यह है–भाषा उपयोग पूर्वक (चैतसिक प्रवृत्ति पूर्वक) बोली जाती है। एक जीव के एक समय में एक ही उपयोग होता है इसलिए एक जीव के हजार रूपों की भाषा एक ही होती है।[2]

सूरिय-पदं

१३२. तेणं कालेणं तेणं समएणं भगवं गोयमे अचिरुग्गयं बालसूरियं जासुमणाकुसुमपुंजप्पकासं लोहितगं पासइ, पासित्ता जायसड्ढे जाव समुप्पन्नकोउहल्ले जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता णच्चासण्णे णातिदूरे सुस्सूसमाणे नमंसमाणे अभिमुहे विणएणं पंजलियडे पज्जुवासमाणे एवं वयासी–
किमिदं भंते! सूरिए? किमिदं भंते! सूरियस्स अट्ठे?
गोयमा! सुभे सूरिए, सुभे सूरियस्स अट्ठे॥

सूर्य-पदम्

तस्मिन् काले तस्मिन् समये भगवान् गौतमः अचिरोद्गतं बालसूर्यं जपा-सुमनस्-कुसुमपुञ्जप्रकाशं लोहितकं पश्यति, दृष्ट्वा जातश्रद्धः यावत् समुत्पन्नकुतूहलः यत्रैव श्रमणः भगवान् महावीरः तत्रैव उपागच्छति, उपागम्य श्रमणं भगवन्तं महावीरं त्रिः आदक्षिण-प्रदक्षिणां करोति, कृत्वा वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्यित्वा नात्यासन्नः नातिदूरं शुश्रूषमाणः नमस्यन् अभिमुखः विनयेन प्राञ्जलिपुटः पर्युपासीनः एवमवादीत्–
किम् अयं भदन्त! सूर्यः? किम् अयं भदन्त! सूर्यस्यार्थः?
गौतम! शुभः सूर्यः, शुभः सूर्यस्यार्थः।

सूर्य पद

१३२. उस काल उस समय, भगवान् गौतम ने सद्यः उदित हुए जवाकुसुम पुञ्ज के प्रकाश के समान रक्तिम बाल सूर्य को देखा। देखकर एक श्रद्धा यावत् कुतूहल प्रबलतम बना। जहां श्रमण भगवान् महावीर हैं, वहां आते हैं, वहां आकर श्रमण भगवान् महावीर को दांई ओर से प्रारंभ कर तीन बार प्रदक्षिणा करते हैं, वंदन-नमस्कार करते हैं। वंदन-नमस्कार कर न अति निकट न अति दूर, शुश्रूषा और नमस्कार की मुद्रा में उनके सम्मुख सविनय बद्धांजलि होकर पर्युपासना करते हुए इस प्रकार बोले–
भंते! यह सूर्य क्या है? भंते! सूर्य का अर्थ क्या है?
गौतम! सूर्य शुभ है, सूर्य का अर्थ शुभ है।

१३३. किमिदं भंते! सूरिए? किमिदं भंते! सूरियस्स पभा?
गोयमा! सुभे सूरिए, सुभा सूरियस्स पभा॥

किम् अयं भदन्त! सूर्यः? किम् इयं भदन्त! सूर्यस्य प्रभा?
गौतम! शुभः सूर्यः, शुभा सूर्यस्य प्रभा।

१३३. भंते! यह सूर्य क्या है? भंते! सूर्य की प्रभा क्या है?
गौतम! सूर्य शुभ है, सूर्य की प्रभा शुभ है।

१३४. किमिदं भंते सूरिए? किमिदं भंते! सूरियस्स छाया?

किम् अयं भदन्त! सूर्यः? किम् इयं भदन्त! सूर्यस्य छाया?

१३४. भंते! यह सूर्य क्या है? भंते! सूर्य की छाया क्या है?

१. भगवई ३/४-२३।

२. भ. वृ. १४/१३०-१३१ एकाऽसौ भाषा, जीवैकत्वेनोपयोगैकत्वात्, एकस्य जीवस्यैकदा एक एवोपयोग इष्यते। ततश्च यदा सत्याद्यन्यतरस्यां भाषायां वर्त्तते, तदा नान्यस्यामित्येकैव भाषा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा! सुभे सूरिए, सुभा सूरियस्स छाया॥

गौतम! शुभः सूर्यः, शुभा सूर्यस्य छाया।

गौतम! सूर्य शुभ है, सूर्य की छाया शुभ है।

१३५. किमिदं भंते! सूरिए? किमिदं भंते! सूरियस्स लेस्सा?
गोयमा! सुभे सूरिए, सुभा सूरियस्स लेस्सा॥

किम् अयं भदन्त! सूर्यः? किम् इयं भदन्त! सूर्यस्य लेश्या?
गौतम! शुभः सूर्यः, शुभा सूर्यस्य लेश्या।

१३५. भंते! यह सूर्य क्या है? भंते! सूर्य की लेश्या क्या है?
गौतम! सूर्य शुभ है, सूर्य की लेश्या शुभ है।

भाष्य

१. सूत्र १३२-१३५

इस आलापक की व्याख्या पांचवें शतक (सूत्र २३६-२३८) के आधार पर की जा सकती है। वहां बतलाया गया है–'दिन में पुद्गल शुभ होते हैं और पुद्गल का परिणमन भी शुभ होता है।'

सूर्य की विद्यमानता में पुद्गल का परिणमन शुभ होता है इसलिए सूर्य को शुभ कहा गया है। सूर्य की प्रभा, छाया और लेश्या–ये स्वयं शुभ हैं, शुभ पुद्गलों के परिणमन का हेतु बनते हैं इसलिए इन्हें शुभ कहा गया है।

वृत्तिकार ने बतलाया है– सूर्य का विमान पृथ्वीकायिक जीवमय है। उन जीवों के आतप नाम कर्म की पुण्य प्रकृति का उदय है इसलिए वह लोक में प्रशस्त रूप में प्रतिष्ठित है।

सूर्य शब्द का अर्थ निरुक्त के आधार पर किया गया है–जो शूर व्यक्तियों के लिए–क्षमाशूर, तपःशूर, दान-शूर, संग्राम-शूर आदि के लिए हितकर होता है तथा जो शूर व्यक्तियों में साधु होता है, वह सूर्य है।[1]

समणाणं तेयलेस्सा-पदं

१३६. जे इमे भंते! अज्जत्ताए समणा निग्गंथा विहरंति, ते णं कस्स तेयलेस्सं वीईवयंति?
गोयमा! मासपरियाए समणे निग्गंथे वाणमंतराणं देवाणं तेयलेस्सं वीईवयइ।

दुमासपरियाए समणे निग्गंथे असुरिंदवज्जियाणं भवणवासीणं देवाणं तेयलेस्सं वीईवयइ।
एवं एएणं अभिलावेणं–तिमासपरियाए समणे निग्गंथे असुरकुमाराणं देवाणं तेयलेस्सं वीईवयइ।
चउम्मासपरियाए समणे निग्गंथे गह-गण-नक्खत्त-तारारूवाणं जोतिसियाणं देवाणं तेयलेस्सं वीईवयइ।
पंचमासपरियाए समणे निग्गंथे चंदिम-सूरियाणं जोतिसिंदाणं जोतिसराईणं तेयलेस्सं वीईवयइ।
छम्मासपरियाए समणे निग्गंथे सोहम्मी-साणाणं देवाणं तेयलेस्सं वीईवयइ।

सत्तमासपरियाए समणे निग्गंथे सणंकुमार-माहिंदाणं देवाणं तेयलेस्सं वीईवयइ।

श्रमणानां तेजोलेश्या-पदम्

ये इमे भदन्त! आर्यतया श्रमणाः निर्ग्रन्थाः विहरन्ति, ते कस्य तेजोलेश्यां व्यतिव्रजन्ति?
गौतम! मासपर्यायः श्रमणः निर्ग्रन्थः वानमन्तराणां देवानां तेजोलेश्यां व्यतिव्रजति।
द्विमासपर्यायः श्रमणः निर्ग्रन्थः असुरेन्द्रवर्जितानां भवनवासिनां देवानां तेजोलेश्यां व्यतिव्रजति।
एवम् एतेन अभिलापेन–त्रिमासपर्यायः श्रमणः निर्ग्रन्थः असुरकुमाराणां देवानां तेजोलेश्यां व्यतिव्रजति।
चतुर्मासपर्यायः श्रमणः निर्ग्रन्थः ग्रह-गण-नक्षत्र-तारारूपाणां ज्योतिष्कानां देवानां तेजोलेश्यां व्यतिव्रजति।
पञ्चमासपर्यायः श्रमणः निर्ग्रन्थः चन्द्र-मस्सूर्याणां ज्यौतिषेन्द्राणां ज्योती-राजानां तेजोलेश्यां व्यतिव्रजति।
षण्मासपर्यायः श्रमणः निर्ग्रन्थः सौधर्मे-शानानां देवानां तेजोलेश्यां व्यतिव्रजति।

सप्तमासपर्यायः श्रमणः निर्ग्रन्थः सनत्कुमार-माहेन्द्राणां देवानां तेजोलेश्यां व्यतिव्रजति।

श्रमणों का तेजोलेश्या पद

१३६. भंते! जो ये श्रमण निर्ग्रंथ आर्य रूप में विहार करते हैं, वे किसकी तेजोलेश्या का व्यतिक्रमण करते हैं?
गौतम! एक मास पर्याय वाला श्रमण निर्ग्रंथ वाणमंतर देवों की तेजोलेश्या का व्यतिक्रमण करता है।
दो मास पर्याय वाला श्रमण निर्ग्रंथ असुर-कुमार को छोड़कर शेष भवनवासी देवों की तेजोलेश्या का व्यतिक्रमण करता है।
इस प्रकार इस अभिलाप के अनुसार तीन मास पर्याय वाला श्रमण निर्ग्रंथ असुरकुमार देवों की तेजोलेश्या का व्यतिक्रमण करता है।
चार मास पर्याय वाला श्रमण निर्ग्रंथ ग्रह-गण नक्षत्र, तारा रूप ज्योतिष्क देवों की तेजोलेश्या का व्यतिक्रमण करता है।
पांच मास पर्याय वाला श्रमण निर्ग्रंथ ज्योतिषेन्द्र जयोतिषराज चंद्र-सूर्य की तेजोलेश्या का व्यतिक्रमण करता है।
छह मास पर्याय वाला श्रमण निर्ग्रंथ सौधर्म-ईशान देवों की तेजोलेश्या का व्यतिक्रमण करता है।
सात मास पर्याय वाला श्रमण निर्ग्रंथ सनत्कुमार-माहेन्द्र देवों की तेजोलेश्या का व्यतिक्रमण करता है।

१. भ. वृ. १४/१३३-१३५–शुभस्वरूपं सूर्यवस्तु, सूर्यविमान पृथ्वीकायिका-नामातपाभिधानपुण्यप्रकृत्युदयवर्त्तित्वात् लोकेऽपि प्रशस्ततया प्रतीतत्वात् ज्योतिषकेन्द्रत्वाच्च तथा शुभः सूर्यशब्दार्थस्तथाहि सूरेभ्यः क्षमातपोदान-संग्रामादिशूरेभ्यो हितः सूरेषु वा साधुः सूर्यः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अट्ठमासपरियाए समणे निग्गंथे बंभलोग-लंतगाणं देवाणं तेयलेस्सं वीईवयइ।

अष्टमासपर्यायः श्रमणः निर्ग्रन्थः ब्रह्मलोक-लान्तकानां देवानां तेजोलेश्यां व्यतिव्रजति।

आठ मास पर्याय वाला श्रमण निर्ग्रंथ ब्रह्मलोक-लांतक देवों की तेजोलेश्या का व्यतिक्रमण करता है।

नवमासपरियाए समणे निग्गंथे महा-सुक्क-सहस्साराणं देवाणं तेयलेस्सं वीईवयइ।

नवमासपर्यायः श्रमणः निर्ग्रन्थः महाशुक्र-सहस्राराणाम् देवानां तेजो-लेश्यां व्यतिव्रजति।

नौ मास पर्याय वाला श्रमण निर्ग्रंथ महाशुक्र-सहस्रार देवों की तेजोलेश्या का व्यतिक्रमण करता है।

दसमासपरियाए समणे निग्गंथे आणय-पाणय-आरणच्चुयाणं देवाणं तेयलेस्सं वीईवयइ।

दशमासपर्यायः श्रमणः निर्ग्रन्थः आनत-प्राणत-आरणा-च्युतानां देवानां तेजो-लेश्यां व्यतिव्रजति।

दस मास पर्याय वाला श्रमण निर्ग्रंथ आनत-प्राणत, आरण और अच्युत देवों की तेजोलेश्या का व्यतिक्रमण करता है।

एक्कारसमासपरियाए समणे निग्गंथे गेवेज्जगाणं देवाणं तेयलेस्सं वीईवयइ।

एकादशमासपर्यायः श्रमणः निर्ग्रन्थः ग्रैवेयकानां देवानां तेजोलेश्यां व्यतिव्रजति।

ग्यारह मास पर्याय वाला श्रमण निर्ग्रंथ ग्रैवेयक देवों की तेजोलेश्या का व्यतिक्रमण करता है।

बारसमासपरियाए समणे निग्गंथे अणुत्तरोववाइयाणं देवाणं तेयलेस्सं वीईवयइ।

द्वादशमासपर्यायः श्रमणः निर्ग्रन्थः अनुत्तरोपपातिकानां देवानां तेजोलेश्यां व्यतिव्रजति।

बारह मास पर्याय वाला श्रमण निर्ग्रंथ अनुत्तरोपपातिक देवों की तेजोलेश्या का व्यतिक्रमण करता है।

तेण परं सुक्के सुक्काभिजाए भवित्ता तओ पच्छा सिज्झति बुज्झति मुच्चति परिनिव्वायति सव्वदुक्खाणं अंतं करेति॥

तेन परं शुक्लः शुक्लाभिजातः भूत्वा ततः पश्चात् सिद्ध्यति 'बुज्झति' मुच्यते परिनिर्वाति सर्वदुःखानाम् अन्तं करोति।

उससे आगे शुक्ल, शुक्लाभिजात होकर उसके पश्चात् सिद्ध, प्रशान्त, मुक्त और परिनिर्वृत होता है, सब दुःखों का अंत करता है।

भाष्य

१. सूत्र १३६

प्रस्तुत सूत्र में देवों की तेजोलेश्या और साधनाजन्य तेजोलेश्या का तुलनात्मक विमर्श किया गया है। इस विषय में आर्य शब्द पर ध्यान देना आवश्यक है। जो श्रमण निर्ग्रंथ आर्य रूप में विहार करते हैं, वे देवों की तेजोलश्या का अतिक्रमण कर देते हैं।

'जो हेय धर्म का परित्याग कर चुका है, वह आर्य है'–यह आर्य पद का सामान्य अर्थ है। प्रज्ञापना में नौ प्रकार के आर्य बतलाए गए हैं, उनमें तीन प्रकार हैं–ज्ञानार्य, दर्शनार्य और चारित्रार्य।[1] प्रस्तुत प्रकरण में ज्ञानार्य, दर्शनार्य और चारित्रार्य विवक्षित हैं। ज्ञान, दर्शन और चारित्र की सम्यक् आराधना करने वाले श्रमण की तेजोलेश्या उत्तरोत्तर विकसित होती जाती है। व्यंतर देवों से असुरेन्द्र वर्जित भवनपति देवों की लेश्या विकसित होती है। इस प्रकार उत्तरोत्तर देवों की तेजोलेश्या विकसित होती है।

आर्यत्व की साधना करने वाला श्रमण निर्ग्रंथ एक वर्ष के साधना काल में अनुत्तर विमान के देवों की तेजोलेश्या का व्यतिक्रमण कर देता है। उसके पश्चात् वह शुक्ल, शुक्लाभिजात होकर सिद्ध हो जाता है।

वृत्तिकार ने तेजोलेश्या का अर्थ सुखासिका किया है।[2] शुक्ल शब्द शुक्ल लेश्या की ओर संकेत करता है। शुक्लाभिजात शब्द परम शुक्ल लेश्या की ओर संकेत करता है। वृत्तिकार ने इनके लक्षणों का भी निर्देश दिया है।[3]

१३७. सेवं भंते! सेवं भंते! त्ति जाव विहरइ॥

तदेवं भदन्त! तदेवं भदन्त! इति यावत् विहरति।

१३७. भंते! वह ऐसा ही है। भंते! वह ऐसा ही है। यावत् विहरण करने लगे।

---

१. पण्ण. १/९२।

२. भ. वृ. १४/१३६–तेजोलेश्यां–सुखासिकां, तेजोलेश्या हि प्रशस्त लेश्योपलक्षणं सा च सुखासिकाहेतुरिति कारणे कार्योपचारात् तेजोलेश्या-शब्देन सुखासिका विवक्षितेति।

३. भ. वृ. १४/१३६।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दसमो उद्देसो : दसवां उद्देशक

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
केवलि-पदं	केवलि-पदम्	केवली पद
१३८. केवली णं भंते! छउमत्थं जाणइ-पासइ? हंता जाणइ-पासइ॥	केवली भदन्त! छद्मस्थं जानाति-पश्यति? हन्त जानाति-पश्यति।	१३८. भंते! क्या केवली छद्मस्थ को जानता-देखता है? हां, जानता-देखता है।
१३९. जहा णं भंते! केवली छउमत्थं जाणइ-पासइ, तहा णं सिद्धे वि छउमत्थं जाणइ-पासइ? हंता जाणइ-पासइ॥	यथा भदन्त! केवली छद्मस्थं जानाति-पश्यति, तथा सिद्धोऽपि छद्मस्थं जानाति-पश्यति। हन्त जानाति-पश्यति।	१३९. भंते! जैसे केवली छद्मस्थ को जानता-देखता है, वैसे सिद्ध भी छद्मस्थ को जानता-देखता है? हां, जानता-देखता है।
१४०. केवली णं भंते! आहोहियं जाणइ-पासइ? एवं चेव। एवं परमाहोहियं, एवं केवलिं, एवं सिद्धं जाव–	केवली भदन्त! आधोवधिकं जानाति-पश्यति? एवं चैव। एवं परमाधोवधिकं, एवं केवलिनं, एवं सिद्धं यावत्	१४०. भंते! केवली आधोवधिक को जानता-देखता है? पूर्ववत्। इसी प्रकार केवली परमाधोवधिक को जानता-देखता है। इसी प्रकार केवली को जानता-देखता है। इसी प्रकार सिद्ध को जानता-देखता है यावत्।
१४१. जहा णं भंते! केवली सिद्धं जाणइ-पासइ, तहा णं सिद्धे वि सिद्धं जाणइ-पासइ? हंता जाणइ-पासइ॥	यथा भदन्त! केवली सिद्धं जानाति-पश्यति, तथा सिद्धोऽपि सिद्धं जानाति-पश्यति? हन्त! जानाति-पश्यति।	१४१. भंते! जैसे केवली सिद्ध को जानता-देखता है, वैसे सिद्ध भी सिद्ध को जानता-देखता है। हां, जानता-देखता है।
१४२. केवली णं भंते! भासेज्ज वा? वागरेज्ज वा? हंता भासेज्ज वा, वागरेज्ज वा॥	केवली भदन्त! भाषेत वा? व्याकुर्यात् वा? हन्त भाषेत वा, व्याकुर्यात् वा।	१४२. भंते! क्या केवली बोलते हैं? व्याकरण करते हैं? हां, बोलते हैं, व्याकरण करते हैं।
१४३. जहा णं भंते! केवली भासेज्ज वा वागरेज्ज वा, तहा णं सिद्धे वि भासेज्ज वा वागरेज्ज वा? नो इणट्ठे समट्ठे॥	यथा भदन्त! केवली भाषेत वा व्याकुर्यात् वा, तथा सिद्धोऽपि भाषेत वा व्याकुर्यात् वा? नो अयमर्थः समर्थः।	१४३. भंते! जैसे केवली बोलते हैं, व्याकरण करते हैं, वैसे सिद्ध भी बोलते हैं? व्याकरण करते हैं? यह अर्थ संगत नहीं है।
१४४. से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ–जहा णं केवली भासेज्ज वा वागरेज्ज वा नो तहा णं सिद्धे भासेज्ज वा वागरेज्ज वा? गोयमा! केवली णं सउट्ठाणे सकम्मे	तत् केनार्थेन भदन्त! एवमुच्यते–यथा केवली भाषेत वा व्याकुर्यात् वा नो तथा सिद्धः भाषेत वा व्याकुर्यात् वा? गौतम! केवली सोत्थानः सकर्मा सबलः	१४४. भंते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है–जैसे केवली बोलते हैं, व्याकरण करते हैं, वैसे सिद्ध नहीं बोलते, व्याकरण नहीं करते? गौतम! केवली सउत्थान, सकर्म, सबल,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सवले सवीरिए सपुरिसक्कार-परक्कमे, सिद्धे णं अणुट्ठाणे अकम्मे अबले अवीरिए अपुरिसक्कार-परक्कमे। से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ–जहा णं केवली भासेज्ज वा वागरेज्ज वा नो तहा णं सिद्धे भासेज्ज वा वागरेज्ज वा॥

सवीर्यः सपुरुषाकार-पराक्रमः, सिद्धः अनुत्थानः अकर्मा अबलः अवीर्यः अपुरुषाकार-पराक्रमः। तत् तेनार्थेन गौतम! एवमुच्यते–यथा केवली भाषेत वा व्याकुर्यात् वा नो तथा सिद्धः भाषेत वा व्याकुर्यात् वा।

सवीर्य, सपुरुषकार और सपराक्रम होता है। सिद्ध अनुत्थान, अकर्म, अवल, अवीर्य, अपुरुषकार और अपराक्रम होता है। गौतम! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है–जैसे केवली बोलते हैं, व्याकरण करते हैं वैसे सिद्ध नहीं बोलते, व्याकरण नहीं करते।

१४५. केवली णं भंते! उम्मिसेज्ज वा? निम्मिसेज्ज वा?
हंता उम्मिसेज्ज वा, निम्मिसेज्ज वा॥

केवली भदन्त! उन्मिषेत् वा? निमिषेत् वा?
हन्त उन्मिषेत् वा, निमिषेत् वा।

१४५. भंते! केवली उन्मेष करते हैं? निमेष करते हैं?
हां, उन्मेष करते हैं, निमेष करते हैं।

१४६. जहा णं भंते! केवली उम्मिसेज्ज वा, निम्मिसेज्ज वा, तहा णं सिद्धे वि उम्मिसेज्ज वा निम्मिसेज्ज वा?
नो इणट्ठे समट्ठे। एवं चेव। एवं आउंटेज्ज वा पसारेज्ज वा, एवं ठाणं वा सेज्जं वा निसीहियं वा चेएज्जा॥

यथा भदन्त! केवली उन्मिषेत वा, निमिषेत् वा, तथा सिद्धोऽपि उन्मिषेत् वा निमिषेत् वा?
नो अयमर्थः समर्थः। एवं चैव। एवम् आकुञ्चेत् वा प्रसारयेत् वा, एवं स्थानम् वा, शय्यां वा, निषीधिकां वा चेतयेत्।

१४६. भंते! जैसे केवली उन्मेष-निमेष करते हैं, वैसे सिद्ध भी उन्मेष-निमेष करते हैं?
यह अर्थ संगत नहीं है। पूर्ववत्। इसी प्रकार सिद्ध आकुंचन, प्रसारण, इसी प्रकार स्थान, शय्या, निषद्या नहीं करते हैं।

१४७. केवली णं भंते! इमं रयणप्पभं पुढविं रयणप्पभापुढवीति जाणइ-पासइ?
हंता जाणइ-पासइ॥

केवली भदन्त! इमां रत्नप्रभां पृथिवीं रत्नप्रभापृथिवी इति जानाति-पश्यति?
हन्त जानाति-पश्यति।

१४७. भंते! केवली 'इस रत्नप्रभा पृथ्वी को यह रत्नप्रभा पृथ्वी है'–ऐसा जानता-देखता है?
हां, जानता-देखता है।

१४८ जहा णं भंते! केवली इमं रयणप्पभं पुढविं रयणप्पभापुढवीति जाणइ-पासइ, तहा णं सिद्धे वि इमं रयणप्पभं पुढविं रयणप्पभापुढवीति जाणइ-पासइ?
हंता जाणइ-पासइ॥

यथा भदन्त! केवली इमां रत्नप्रभां पृथिवीं रत्नप्रभापृथिवी इति जानाति-पश्यति, तथा सिद्धोऽपि इमां रत्नप्रभां पृथिवीं रत्नप्रभापृथिवी इति जानाति-पश्यति?
हन्त जानाति-पश्यति।

१४८. भंते! जैसे केवली 'इस रत्नप्रभा पृथ्वी को यह रत्नप्रभा पृथ्वी है'–ऐसा जानता देखता है वैसे सिद्ध भी 'इस रत्नप्रभा पृथ्वी को यह रत्नप्रभा पृथ्वी है'–यह जानता-देखता है?
हां, जानता-देखता है।

१४९. केवली णं भंते! सक्करप्पभं पुढविं सक्करप्पभापुढवीति जाणइ-पासइ?
एवं चेव। एवं जाव अहेसत्तमं॥

केवली भदन्त! शर्कराप्रभां पृथिवीं शर्कराप्रभापृथिवी इति जानाति-पश्यति?
एवं चैव। एवं यावत् अधःसप्तमीम्।

१४९. भंते! केवली 'शर्कराप्रभा पृथ्वी को यह शर्कराप्रभा पृथ्वी है'–ऐसा जानता-देखता है?
पूर्ववत्। इसी प्रकार यावत् केवली अधःसप्तमी पृथ्वी को जानता-देखता है।

१५०. केवली णं भंते! सोहम्मं कप्पं सोहम्मकप्पे त्ति जाणइ-पासइ?
हंता जाणइ-पासइ। एवं चेव। एवं ईसाणं, एवं जाव अच्चुयं॥

केवली भदन्त! सौधर्मं कल्पं सौधर्मकल्पः इति जानाति-पश्यति?
हन्त जानाति-पश्यति। एवं चैव। एवम् ईशानम्, एवं यावत् अच्युतम्।

१५०. भंते! केवली 'सौधर्म कल्प को सौधर्म कल्प है'–ऐसा जानता-देखता है?
हां, जानता-देखता है। पूर्ववत्। इसी प्रकार केवली ईशान को, इसी प्रकार यावत् अच्युत को जानता-देखता है।

१५१. केवली णं भंते! गेवेज्जविमाणं गेवेज्जविमाणे त्ति जाणइ-पासइ?

केवली भदन्त! ग्रैवेयकविमानं ग्रैवेयक-विमानम् इति जानाति-पश्यति?

१५१. भंते! केवली 'ग्रैवेयक विमान को यह ग्रैवेयक विमान है' ऐसा जानता-देखता है?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एवं चेव। एवं अणुत्तरविमाणे वि॥

एवं चैव। एवम् अनुत्तरविमानम् अपि।

पूर्ववत्। इसी प्रकार केवली अनुत्तर विमान को जानता-देखता है।

१५२. केवली णं भंते ईसिंपब्भारं पुढविं ईसिंपब्भारपुढवीति जाणइ-पासइ?

एवं चेव॥

केवली भदन्त! ईषत्प्राग्भारां पृथिवीम् ईषत्प्राग्भारापृथिवी इति जानाति-पश्यति?

एवं चैव।

१५२. भंते! केवली 'ईषत् प्राग्भारा पृथ्वी को यह ईषत् प्राग्भारा पृथ्वी है'–ऐसा जानता-देखता है?

पूर्ववत्।

१५३. केवली णं भंते! परमाणुपोग्गलं परमाणुपोग्गले त्ति जाणइ-पासइ?

एवं चेव। एवं दुपएसियं खंधं, एवं जाव–

केवली भदन्त! परमाणुपुद्गलं परमाणु-पुद्गलः इति जानाति-पश्यति।

एवं चैव। एवं द्विप्रदेशिकं स्कन्धम्, एवं यावत्–

१५३. भंते! केवली 'परमाणु पुद्गल को यह परमाणु पुद्गल है' ऐसा जानता-देखता है?

पूर्ववत्। इसी प्रकार केवली द्विप्रदेशिक स्कंध को जानता-देखता है, इसी प्रकार यावत्–

१५४. जहा णं भंते! केवली अणंत-पएसियं खंधं अणंतपएसिए खंधे त्ति जाणइ-पासइ, तहा णं सिद्धे वि अणंतपएसियं खंधं अणंतपएसिए खंधे त्ति जाणइ पासइ?

हंता जाणइ-पासइ॥

यथा भदन्त! केवली अनन्तप्रदेशिकं स्कन्धम् अनन्तप्रदेशिकः स्कन्धः इति जानाति-पश्यति, तथा सिद्धोऽपि अनन्तप्रदेशिकं स्कन्धं अनन्तप्रदेशिकः स्कन्धः इति जानाति-पश्यति?

हन्त जानाति-पश्यति।

१५४. भंते! जैसे केवली 'अनंत प्रदेशी स्कंध को यह अनंत प्रदेशी स्कंध है' ऐसा जानता-देखता है वैसे सिद्ध भी 'अनंत प्रदेशी स्कंध को यह अनंत प्रदेशी स्कंध है'–ऐसा जानता-देखता है?

हां, जानता-देखता है।

भाष्य

१. सूत्र १३८-१५४

यह पद भवस्थ केवली के लिए प्रयुक्त है। सिद्ध मुक्त केवली हैं।

आधोवधिक, परमाधोवधिक के लिए द्रष्टव्य भगवई १/२०२-२०६ का भाष्य।

१५५. सेवं भंते! सेवं भंते! त्ति॥

तदेवं भदन्त! तदेवं भदन्त! इति।

१५५. भंते! वह ऐसा ही है। भंते! वह ऐसा ही है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पंचदसमं सतं

पन्द्रहवां शतक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आमुख

भगवती सूत्र का प्रस्तुत शतक न केवल जैन परम्परा के इतिहास की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है, अपितु समग्र प्राचीन भारतीय संस्कृति के इतिहास के लिए महत्त्वपूर्ण सूचना-स्रोत है। प्रस्तुत शतक में भगवान् महावीर के छद्मस्थ-जीवनकाल तथा तीर्थंकर-जीवनकाल के कुछ अत्यधिक महत्त्वपूर्ण प्रसंगों का पूर्णतः प्रामाणिक एवं सर्वांगीण वृत्तान्त आलेखित है।

भारतीय संस्कृति की दो धाराएं बहुत प्राचीन हैं–श्रमण परम्परा और ब्राह्मण परंपरा। कौन पहले और कौन पीछे–यह लंबी चर्चा का विषय है फिर भी यह कहा जा सकता है–श्रमण परम्परा का संबंध द्रविड़, असुर, पणि, व्रात्य आदि प्राचीनतम जातियों से रहा। दशवैकालिक निर्युक्ति में श्रमणों के पांच विभाग बतलाए गए हैं:[1]

१. निर्ग्रंथ–जैन मुनि

२. शाक्य–बौद्ध भिक्षु

३. तापस–जटाधारी, वनवासी, तपस्वी

४. गेरुक–त्रिदंडी, परिव्राजक

५. आजीवक

निशीथ चूर्णि में अन्यतीर्थिक श्रमणों के तीस गणों का उल्लेख मिलता है।[2] दशवैकालिक निर्युक्ति में श्रमण के अनेक पर्यायवाची नाम बतलाए गए हैं, उनमें चरक का भी उल्लेख है।[3]

आजीवक संप्रदाय श्रमण परंपरा का संप्रदाय है। गोशालक उस संप्रदाय के आचार्य बने। वे आजीवक संप्रदाय के प्रवर्तक नहीं थे। उन्होंने स्वयं अपने आपको आजीवक संप्रदाय का सातवां आचार्य स्वीकार किया।[4] आजीवक संप्रदाय के प्रवर्तक कुण्डियायन थे। उनके पश्चात् ऐणेयक, मल्लराम, मंडित, रोह, भारद्वाज, गौतमपुत्र अर्जुन–ये छह आचार्य हुए। सातवें आचार्य गोशालक बने।[5] इनका आचार्यत्वकाल क्रमशः बाईस, इक्कीस, बीस, उन्नीस, अठारह, सतरह तथा सोलह वर्ष का रहा।

आजीवक संप्रदाय भगवान् महावीर के युग में बहुत प्रतिष्ठित और प्रभावशाली था। आगम साहित्य में आजीवक के श्रमणों और गृहस्थ दोनों के धार्मिक तप और व्रत चर्या का उल्लेख मिलता है। स्थानांग में आजीवक के चार प्रकार के तप का उल्लेख है–उग्रतप, घोरतप, रस निर्यूहण और जिह्वेन्द्रिय प्रतिसंलीनता।[6]

सम्राट् अशोक के शिलालेखों में भी आजीवक भिक्षुओं को सम्राट् द्वारा गुफा दिए जाने का उल्लेख है।[7] वह सम्प्रदाय कब तक चलता रहा, यह ठीक से कह देना कठिन है, पर शिलालेखों आदि से ई. पू. दूसरी शताब्दी तक तो उसका अस्तित्व प्रमाणित होता ही है।[8]

दक्षिण भारत में आजीवक संप्रदाय संभवतः ईस्वी चौदहवीं शताब्दी तक जीवित रहा।[9] यह मत डॉ. बाशम द्वारा प्रस्तुत अध्ययन पर आधारित है, जो उन्होंने दक्षिण भारत की भाषाओं के साहित्य के आधार पर बनाया है।[10]

प्रस्तुत आगम में आजीवकों का स्थविर के साथ संवाद और उस विषय में गौतम की भगवान् महावीर से चर्चा का लंबा प्रकरण है।[11] इस प्रकरण में आजीवकों के बारह उपासकों के नाम बतलाए गए हैं–१. ताल २. ताल प्रलंब ३. उद्विध ४. संविध ५. अपविध ६. उदक ७. नामोदक ८. नार्मोदक ९. अनुपालक १०. शंखपालक ११. अयंपुल १२. कायरक।

---

१. दश. नि., हारिभद्रीय वृ. प. ६८

२. निशीथ चूर्णि, भाग-२, पृ. ११८-२००

३. दश. नि., गाथा १५८-१५९

४. भ., १५/१०१

५. वही, १५/१०१

६. ठाणं, ४/३५०

७. जनार्दन भट्ट, अशोक के धर्मलेख, पब्लिकेशन्स डिवीजन, दिल्ली, १९५७, पृ. ४०१ से ४०३।

८. चिमनलाल जयचंद शाह, उत्तर हिन्दुस्तान मां जैन धर्म, लोंगमैन्स एण्ड ग्रीन कं. लंदन, १९३०, पृ. ६४।

९. डा. सत्यरंजन बनर्जी, Foreword to A. L. Basham's 'History and Doctrines of Ajivikas'

१०. डॉ. बाशम, History and Dotrines of Ajivikas pp 188-204

११. भ., ८/२३०-२४२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आजीवक संप्रदाय का एक प्रमुख दार्शनिक सिद्धांत है–नियतिवाद। शकडालपुत्र नाम का कुंभकार आजीवक संप्रदाय का उपासक था। उपासक दशा के सातवें अध्ययन में उसके नियतिवादी दृष्टिकोण का निर्देश है।[1]

आर्द्रकुमार और गोशालक का सविस्तर संवाद सूत्रकृतांग में उपलब्ध है।[2] नंदी सूत्र में आजीवक अछिन्नछेदनयिक सूत्रों को आजीवक सूत्र परिपाटी के अनुसार बतलाया गया है।[3] आजीवक परिपाटी के अनुसार अछिन्नछेदनयिक सूत्रों का उल्लेख समवाओ में तीन स्थानों पर किया गया है।[4]

आजीवक-सम्मत सात परिकर्मों का उल्लेख नंदी[5] और समवायांग[6]–दोनों में है।

उक्त उल्लेखों से ज्ञात होता है–भगवान् महावीर के शासन के साथ आजीवक संप्रदाय का पर्याप्त संपर्क रहा है। दृष्टिवाद के प्रकरण में आजीवक का उल्लेख मूलस्रोत की एकता की ओर ध्यान आकृष्ट करता है। दृष्टिवाद की परम्परा भगवान् पार्श्व से चली आ रही है। यह स्वीकार करने में कोई बाधक प्रमाण प्रतीत नहीं होता। आजीवक सम्प्रदाय भगवान् पार्श्व की परम्परा से उद्भूत है–दर्शनसार का यह अभिमत भी सर्वथा निराधार नहीं लगता।[7] नियतिवादी श्रमणों के लिए 'पासत्थ' शब्द का प्रयोग भी ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्व का है।[8] इस विषय में 'उत्तराध्ययन : एक समीक्षात्मक अध्ययन' की कुछ पंक्तियां उद्धृत करना प्रासंगिक होगा–

सूत्रकृतांग (१/१/३ :२) में नियतिवादियों को पार्श्वस्थ कहा है–

एवमेगे हु पासत्था, ते भुज्जो विण्णगब्भिआ।
एवं उवट्ठिआ संता, ण ते दुक्ख विमोक्खया॥

वृत्तिकार ने पार्श्वस्थ का अर्थ 'युक्ति से बाहर ठहरने वाला' या 'पाश–बंधन में स्थित' किया है[9] किन्तु ये सारे अर्थ कल्पना से अधिक मूल्य नहीं रखते। वस्तुतः पार्श्वस्थ का अर्थ 'पार्श्व की परम्परा से संबंधित' होना चाहिए।

औपपातिक में आजीवकों के सात प्रकार बतलाए गए हैं–द्विगृहान्तरित, त्रिगृहान्तरित, सप्तगृहान्तरित, उत्पलवृंतिक, गृहसामुदायिक, विद्युतान्तरिक, उष्ट्रिका-श्रमण। ये अपने तप के प्रभाव से अच्युत कल्प तक देवरूप में उत्पन्न होते थे।[10]

जैन साहित्य में प्रकीर्ण सामग्री के आधार पर आजीवकों के दर्शन और आचार का एक विशद प्रारूप तैयार किया जा सकता है।

वासुदेवशरण अग्रवाल ने पाणिनि के आधार पर मस्करी का अर्थ नियतिवादी किया है–

'पाणिनि ने मस्करी शब्द परिव्राजक के लिये सिद्ध किया है (**मस्करमस्करिणौ वेणुपरिव्राजकयोः**, ६/१/१५४)। यहां मस्करी का अर्थ मक्खलि गोसाल से है जिन्होंने आजीवक सम्प्रदाय की स्थापना की थी। पतंजलि ने स्पष्ट यही अर्थ लिया है–मस्करी वह साधु नहीं है जो हाथ में मस्कर या बांस की लाठी लेकर चलता हो। फिर क्या है? मस्करी वह है जो यह उपदेश देता है कि कर्म मत करो, शांति का मार्ग ही श्रेयस्कर है (**न वै मस्करोऽस्यास्तीति मस्करी परिव्राजकः। किं तर्हि। मा कृत कर्माणि, मा कृत कर्माणि शान्तिर्वः श्रेयसीत्याहातो मस्करी परिव्राजकः**, भाष्य ६/१/१५४)। यह निश्चित रूप से मक्खलि गोसाल के कर्मापवाद सिद्धांत का उल्लेख है। वे कर्म या पुरुषार्थ की निन्दा करके नियति या भाग्य को ही सब कुछ मानते थे। किसी प्रकार के फल की प्राप्ति अपने या पराए कर्म या पराक्रम पर निर्भर नहीं करती, यह तो सब भाग्य का खेल है। पुरुषार्थ कुछ नहीं है, दैव ही प्रबल है। मक्खलि के दर्शन में यदृच्छा को कोई स्थान नहीं था, वे तो मानते थे कि क्रूर दैव ने सब कुछ पहले से ही नियत कर दिया है। बौद्ध ग्रंथों में कहा है कि बुद्ध मक्खलि गोसाल को सब आचार्यों में सबसे अधिक खतरनाक समझते थे।

अन्य प्रमाण से भी इंगित होता है कि पाणिनी को मस्करी के आजीवक दर्शन का परिचय था। (अस्ति नास्ति दिष्टं मतिः सूत्र में, ४/४/६०) आस्तिक, नास्तिक, दैष्टिक तीन प्रकार के दार्शनिकों का उल्लेख है। आस्तिक वे थे जिन्हें बौद्ध ग्रंथों में इस्सर करणवादी कहा गया है, जो यह मानते थे कि यह जगत् ईश्वर की रचना है। (**अयं लोको इस्सर निम्मितो**)। पाली ग्रन्थों के नत्थिक दिट्ठि दार्शनिक पाणिनि के नास्तिक थे। इसमें केशकम्बली के नत्थिक दिट्ठि अनुयायी प्रधान थे। (**इतो परलोक गतं नाम नत्थि अयं लोको उच्छिज्जति**, जातक ५/२३६)। यही लोकायत दृष्टिकोण था जिसे कठ उपनिषद् में कहा है–**अयं लोको न परः इति मानी**। पाणिनि के तीसरे दार्शनिक दैष्टिक या मक्खलि के नियतिवादी लोग थे जो पुरुषार्थ या कर्म का खंडन करके दैव की ही स्थापना करते थे।

---

१. उवा., अध्ययन ७
२. सू. द्वितीय, श्रुतस्कंध : छठा अध्ययन
३. नंदी, सू. १०३
४. (क) सम., २२/२
(ख) सम., ८८/२
(ग) सम., प्रकीर्णक समवाय १११
५. नंदी, सू. १०१
६. सम., प्रकीर्णक समवाय १०६
७. दर्शनसार
८. पासत्थ या पार्श्वस्थ की विशेष जानकारी के लिए द्रष्टव्य, अतीत का अनावरण
९. सू. वृ. १/३/२
१०. ओव. १५८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैन आगमों में मक्खली गोशाल को गोसाल मंखलिपुत्त कहा है (उवासगदसाओ)। संस्कृत में उसे ही मस्करी गोशालपुत्र कहा गया है (दिव्यावदान पृ. १४३)। मस्करी या मक्खलि या मंखलि का दर्शन सुविदित था। महाभारत में मंकि ऋषि की कहानी में नियतिवाद का ही प्रतिपादन है। (शुद्धं हि दैवमेवेदं हठे नैवास्ति पौरुषम्, शान्तिपर्व १७७/११-४)। मंकि ऋषि का मूल दृष्टिकोण निर्वेद या जैसा पतंजलि ने कहा है शान्ति परक था, अर्थात् अपने हाथ-पैर से कुछ न करना। यह पाणिनिवाद का ठीक उल्टा था। मंखलि गोसाल के शुद्ध नाम के विषय में कई अनुश्रुतियां थी। जैन प्राकृत रूप मंखलि था। भगवती सूत्र के अनुसार गोसाल मंख संज्ञक भिक्षु का पुत्र था (भगवती सूत्र १५।१)। शान्ति-पर्व का मंकि निश्चयरूप से मंखलि का ही दूसरा रूप है। मंखलि नाम उसका क्यों पड़ा, इस संबंध में एक विचित्र-सी कथा बौद्ध परम्परा में प्रचलित है; जिसके अनुसार गोशालक दास था। एक बार वह तेल का घड़ा उठाये आगे-आगे चल रहा था और उसका मालिक पीछे-पीछे। आगे फिसलन की भूमि आई। उसके स्वामी ने कहा–'तात! मा खलि, तात! मा खलि' 'अरे! स्खलित मत होना, स्खलित मत होना', पर गोशालक स्खलित हुआ और तेल भूमि पर बह चला। वह स्वामी के डर से भागने लगा। स्वामी ने उसका वस्त्र पकड़ लिया। वह वस्त्र छोड़ कर नंगा ही भाग चला। इस प्रकार वह नग्न साधु हो गया और लोग उसे 'मंखलि' कहने लगे।[1]

कहा जाता है कि मक्खलि का जन्म गोशाला या गोष्ठ में हुआ था, जिससे उनका यह नाम पड़ा। पाणिनि ने भी गोशाला में जन्म लेने वाले को गोशाल कहा है (गोशालायां जातः गोशालः, ४/३/३५, स्थानान्ते गोशालखरशालाद्य)[2]। सामञ्ञफलसुत्त में छह अन्यतीर्थिक तीर्थंकरों का उल्लेख मिलता है–पूरणकश्यप, मक्खली गोशाल, अजितकेशकंबल, पकुद कात्यायन, संजयवेलट्ठीपुत्त, निग्गंथ नातपुत्त।[3]

पूरणकश्यप ने छह अभिजातियां निर्धारित की, उनमें आजीवक संप्रदाय के लिए शुक्लाभिजाति और परमशुक्लाभिजाति का उल्लेख है।[4] प्रोफेसर हर्मन जेकोबी और प्रोफेसर ल्यूमेन ने इस वर्गीकरण को गोशालक द्वारा किया हुआ माना है[5] किन्तु वह यथार्थ नहीं है। इस विषय में 'उत्तराध्ययन : समीक्षात्मक अध्ययन' की कुछ पंक्तियों पर ध्यान देना आवश्यक है[6]–

मानवों का छह भागों में विभाजन गोशालक द्वारा नहीं, किन्तु पूरण कश्यप द्वारा किया गया था। पता नहीं, प्रोफेसर ल्यूमैन और डॉ. हर्मन जेकोबी ने उसे गोशालक द्वारा किया हुआ मानवों का विभाजन किस आधार पर माना?

पूरणकश्यप बौद्ध-साहित्य में उल्लिखित छह तीर्थंकरों में से एक है।[7] उन्होंने रंगों के आधार पर छह अभिजातियां निश्चित की थीं–

१. कृष्णाभिजाति–क्रूर कर्म वाले सौकरिक, शाकुनिक आदि जीवों का वर्ग।

२. नीलाभिजाति–बौद्ध-भिक्षु तथा कुछ अन्य कर्मवादी, क्रियावादी भिक्षुओं का वर्ग।

३. लोहिताभिजाति–एक शाटक निर्ग्रंथों का वर्ग।

४. हरिद्राभिजाति–श्वेत वस्त्रधारी या निर्वस्त्र।

५. शुक्लाभिजाति–आजीवक श्रमण-श्रमणियों का वर्ग।

६. परमशुक्लाभिजाति–आजीवक आचार्य–नन्द वत्स, कृश सांकृत्य, मस्करी गोशालक आदि का वर्ग।[8]

कुछ विद्वान् अनुयोगद्वार में उल्लिखित पंडरंग शब्द को आजीवक संप्रदाय का सूचक मानते हैं। यह सही नहीं है। प्रोफेसर बलदेव उपाध्याय ने पंडरंग के विषय में अपना मत इस प्रकार प्रकट किया है–

'विक्रम के पञ्चम शतक में सुप्रसिद्ध ज्योतिषी वराहमिहिर ने 'वृहज्जातक' के 'प्रव्रज्यायोग' प्रकरण में ये सात वर्ग किए थे–शाक अथवा रक्तपट, आजीवक, निर्ग्रंथ, तापस, चतुर्थ आश्रमी ब्राह्मण, वृद्धश्रावक तथा चरक। इन सात प्रकार के भिक्षुओं में आजीवकों को भी अन्यतम माना है। टीकाकार भट्टोत्पल (११वीं शताब्दी) ने इन्हें 'एकदण्डी' तथा नारायण का भक्त बतलाया है। निशीथ चूर्णि के भाष्यकार के समय (सप्तम शतक) ये लोग 'गोशालक शिष्य' होने के अतिरिक्त 'पाण्डुर भिक्षु' या 'पाण्डुरंग भिक्षु' कहलाने लगे थे। अनुयोगद्वार चूर्णि में पाण्डुरंग का पर्याय 'सरजस्क' है अर्थात् धूल से भरे अंगवाले। आजीवक भिक्षु नग्न ही रहते थे। अतः संभव जान पड़ता है कि शीत को रोकने के लिए वे अपने शरीर पर भस्म लगाते होंगे और इसी कारण उनका नाम 'पाण्डुरंग' (भूरे रंग वाला) साधु पड़ गया होगा।'[9]

---

१. आचार्य बुद्धघोष, धम्मपद-अट्ठकथा, १-१४३; मज्झिमनिकाय, अट्ठकथा, १-४२२।

२. पाणिनिकालीन भारत वर्ष, पृ. ३७६-७७

३. दीघनिकाय १–क्षीलखंधवग्गो, अध्याय-२, सामञ्ञफलसुत्तं २/२-३, पृ. ४१

४. अंगुत्तर निकाय, ६/६/३, पृ. ९३।

५. Sacred Books of the East, Vol. XLV, Introduction, p XXX

६. उत्तराध्ययन : एक समीक्षात्मक अध्ययन पृ. २४२-२४३

७. दीघनिकाय, १/२, पृ. १९,२०

८. अंगुत्तरनिकाय, ६/६/३, भाग ३, पृ. ३५-९३, ९४

९. भारतीय धर्म और दर्शन, लेखक आचार्य बलदेव उपाध्याय, पृ. १९०-१९१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनुयोगद्वार में 'पाण्डुरंग' अथवा 'पंडुरंग' शब्द है।[1] इसका अर्थ चूर्णिकार ने सरक्ख–सरजस्क, हरिभद्रसूरि ने भौत–राख लगाने वाला तथा मल्लधारी हेमचन्द्र ने भस्मोद्धूलित गात्र किया है। तात्पर्य में तीनों एक हैं।[2]

निशीथ चूर्णि में अन्यतीर्थिक श्रमण–श्रमणियों के तीस नामों का उल्लेख मिलता है–(१) आजीवक[3] (२) कप्पडिय[4] (३) कव्वडिय[5] (४) कावालिय[6] (५) कावाल[7] (६) कापालिका[8] (७) गेरूअ[9] (८) गोव्वय[10] (९) चरक[11] (१०) चरिका[12] (११) तच्चनिय[13] (१२) तच्चणगी[14] (१३) तडिय[15] (१४) तावस[16] (१५) तिडंगी परिव्वायग[17] (१६) दिसापोक्खिय[18] (१७) परिव्वाय[19] (१८) परिव्राजिका[20] (१९) पंचगव्वासणीय[21] (२०) पंचग्गितावीय[22] (२१) पंडरंग[23] (२२) पंडर भिक्खु[24] (२३) रत्तपड[25] (२४) रत्तपडा[26] (२५) वणवासी[27] (२६) भगवी[28] (२७) वृद्धसावक[29] (२८) सक्क–शाक्य[30] (२९) सरक्ख[31] (३०) समण[32] (३१) हड्डसरक्ख।[33]

इनमें पंडरंग और आजीवक का पृथक्–पृथक् उल्लेख है। भगवान् महावीर के समय में आजीवक संप्रदाय बहुत प्रभावशाली था।

उक्त उल्लेखों के आधार पर सहज ही ये निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं–

१. आजीवक संप्रदाय श्रमण परंपरा का एक संप्रदाय है।

२. उसके सिद्धांत, साधना और जीवन चर्या की जानकारी के प्रमुख स्रोत जैन आगम, उसके व्याख्या ग्रंथ तथा बौद्ध पिटक हैं।

३. आजीवक संप्रदाय के आचार्य गोशाल के जीवन वृत्त का विस्तार से विवरण प्रस्तुत शतक (१५) में उपलब्ध है।

४. दृष्टिवाद के प्रकरण में आजीवक परिपाटी का उल्लेख होना उनके सैद्धांतिक चिंतन की विशेषता को प्रदर्शित करता है।

५. नय का सिद्धांत आजीवक संप्रदाय को पार्श्व की परम्परा से जोड़ता है।

६. छह दिशाचरों ने पूर्वगत से अष्टांग महानिमित्त का निर्यूहण किया।[34] इससे आजीवक संप्रदाय का पूर्वज्ञान राशि की परंपरा से संबंध जुड़ गया।

प्रस्तुत शतक में गोशालक का जीवनवृत्त विस्तार से वर्णित है। इस प्रसंग में दो दार्शनिक सिद्धांतों का प्रतिपादन हुआ है–

१. नियतिवाद २. परिवर्त्तवाद (पउट्ट परिहार)[35]

नियतिवाद की चर्चा उवासगदसाओ (अध्ययन ७) में मिलती है। सूत्रकृतांग में भी वह प्रतिपादित है। परिवर्त्तवाद के सिद्धांत का प्रतिपादन अन्य आगमों में उपलब्ध नहीं है। आवश्यक चूर्णि में पउट्ट परिहार की समीचीन परिभाषा मिलती है।

अपने जीवन के अंतिम काल में गोशाल के हृदय-परिवर्तन का वृत्त तथा अनागत काल में संसार-भ्रमण के पश्चात् अंत में मोक्ष-प्राप्ति करने की भविष्यवाणी समग्र प्रकरण को रोचक और प्रेरक बना देती है। आंतरिक पश्चात्ताप का माहात्म्य सर्वत्र स्वीकृत है। यहां मृत्यु के पश्चात् बारहवें स्वर्ग में उत्पत्ति का उल्लेख भी प्रस्तुत प्रकरण की प्रामाणिकता के पक्ष में प्रत्यक्ष प्रमाण है। भावी जीवन में गोशाल के जीव द्वारा पुनः

---

१. अणु., २०,२६
२. अ. चू. पृ. १२–पंडुरंगा सारक्खा। अहावृ. पृ. १७–पांडुरंगा–भौताः। अमवृ. पृ. २२–पांडुराङ्गाः–भस्मोद्धूलितगात्राः।
३. निशीथ सूत्र सभाष्य चूर्णि, भाग २, पृ. ११८,२००
४. वही, २/२०७,४५६
५. वही, ३/१६८
६. वही, २/३८
७. वही, ४/१२५
८. वही, ४/६०
९. वही, २/३३२
१०. वही, ३/१६५
११. वही, २/११८,२००
१२. वही, ४/६०
१३. वही, ३/३५३,३२५
१४. वही, ४/६०
१५. वही, २/२०७,४५६
१६. वही, २/३,३३२
१७. वही, १/१२
१८. वही, ३/१६५
१९. वही, २/११८,२००
२०. वही, ४/६०
२१. वही, ३/१६५
२२. वही, ३/१६५
२३. वही, २/११६
२४. वही, ३/४१४
२५. वही, १/११३,१२१
२६. वही, १/१२३
२७. वही, ३/४१४
२८. वही, ४/६०
२९. वही, २/११८
३०. वही, २/३,११८
३१. वही, ३/२५३
३२. वही, २/३३२
३३. वही, २/२०७
३४. भगवई, १५/४-५
३५. वही, १५/७३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्याचार आदि का वृत्त उसकी आंतरिक चेतना की कलुषता का द्योतक है तथा अंत में चिरकालीन संसार-भ्रमण के पश्चात् मोक्ष-प्राप्ति के साथ वृत्त समाप्त होता है। यह समग्र प्रसंग 'शिष्य द्वारा अपने गुरु का विरोध एवं अपलाप के भयंकर दुष्परिणाम का' द्योतक है तथा विनय के लिए शिष्य-समुदाय को प्रेरित करता है।

गोशाल के संसार-भ्रमण के वृत्तांत में जैन दर्शन के 'विभिन्न गतियों में जीव द्वारा गति-आगति' के सिद्धांत को उजागर किया गया है जिसका विस्तृत विवेचन भगवती में ही चौबीसवें शतक से लेकर आगे के शतकों में उपलब्ध है।

कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि प्रस्तुत शतक भगवती के उन महत्त्वपूर्ण शतकों में है जिसका अध्ययन जैन विद्या के विभिन्न पक्षों को बहुत ही मार्मिक रूप में उजागर करता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पंचदसमं सतं : पन्द्रहवां शतक

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
गोसालग-पदं	**गोशालक-पदम्**	**गोशालक-पद**
१. तेणं कालेणं तेणं समएणं सावत्थी नामं नगरी होत्था—वण्णओ। तीसे णं सावत्थीए नगरीए बहिया उत्तर-पुरत्थिमे दिसीभाए, तत्थ णं कोट्ठए नामं चेइए होत्था—वण्णओ। तत्थ णं सावत्थीए नगरीए हालाहला नामं कुंभकारी आजीविओवासिया परिवसति—अड्ढा जाव बहुजणस्स अपरिभूया, आजीविय-समयंसि लद्धट्ठा गहियट्ठा पुच्छियट्ठा विणिच्छियट्ठा अट्ठिमिंजपेम्माणुरागरत्ता, अयमाउसो! आजीवियसमये अट्ठे, अयं परमट्ठे, सेसे अणट्ठेत्ति आजीवियसमएणं अप्पाणं भावेमाणी विहरइ॥	तस्मिन् काले तस्मिन् समये श्रावस्ती नाम नगरी आसीत्—वर्णकः। तस्याः श्रावस्त्याः नगर्याः बहिस्ताद् उत्तर-पोरस्त्यः दिग्भागः, तत्र कोष्ठकः नाम चैत्यम् आसीत्—वर्णकः। तत्र श्रावस्त्यां नगर्यां हालाहला नाम कुम्भकारी आजीविकोपासिका परिवसति—आढ्या यावत् बहुजनस्य अपरिभूता, आजीविक-समये लब्धार्था गृहीतार्था पृष्टार्था विनिश्चितार्था अस्थिमज्जा-प्रेमानुरागरक्ता, अयम् आयुष्मन्! आजीविकसमयः अर्थः, अयं परमार्थः, शेषः अनर्थः इति आजीविकसमयेन आत्मानं भावयन्ती विहरति।	१. उस काल उस समय श्रावस्ती नाम की नगरी थी—वर्णक। उस श्रावस्ती नगरी के बाहर उत्तर-पूर्व दिशा में कोष्ठक नाम का चैत्य था—वर्णक। उस श्रावस्ती नगरी में आजीवक-उपासिका हालाहला नाम की कुंभकारी रहती थी—आढ्य यावत् बहुजन के द्वारा अपरिभवनीय। आजीवक-सिद्धान्त में यथार्थ को सुनने वाली, ग्रहण करने वाली, (आजीवक सिद्धान्त के) प्रेमानुराग से अनुरक्त अस्थि मज्जा वाली, 'आयुष्मन्'! यह आजीवक-सिद्धांत यथार्थ है, यह परमार्थ है, शेष अनर्थ है। (ऐसा मानने वाली वह) इस प्रकार आजीवक-सिद्धान्त के द्वारा अपने आपको भावित करते हुए रह रही थी।
२. तेणं कालेणं तेणं समएणं गोसाले मंखलिपुत्ते चउव्वीसवासपरियाए हालाहलाए कुंभकारीए कुंभकारावणंसि आजीवियसंघसंपरिवुडे आजीवियसमएणं अप्पाणं भावेमाणे विहरइ॥	तस्मिन् काले तस्मिन् समये गोशालः मंखलिपुत्रः चतुर्विंशतिवर्षपर्यायः हालाहलायाः कुम्भकार्याः कुम्भ-कारापणे आजीविकसंघपरिवृतः आत्मानं भावयन् विहरति।	२. उस काल उस समय चौबीस वर्ष पर्याय वाला मंखलिपुत्र गोशाल[1] उस हालाहला कुंभकारी के कुंभकारापण में आजीवक-समुदाय से संपरिवृत होकर आजीवक-सिद्धान्त के द्वारा अपने आपको भावित करते हुए रह रहा था।

भाष्य

सूत्र २

१. चौबीस वर्ष पर्याय वाला मंखलिपुत्र गोशाल

भगवती शतक १५, सूत्र ५५ के अनुसार भगवान् महावीर ने मंखलिपुत्र गोशाल को जब शिष्य के रूप में स्वीकार किया था, उस समय भगवान् महावीर की दीक्षा को लगभग दो वर्ष पूर्ण हो चुके थे।[1] इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि प्रस्तुत प्रसंग के समय भगवान् महावीर के दीक्षा-पर्याय के छब्बीस वर्ष पूर्ण हो चुके थे तथा सत्ताइसवें वर्ष में शेष काल (चातुर्मास के अतिरिक्त काल) में श्रावस्ती[2] में प्रवास के दौरान यह घटना घटी थी। (विस्तार के लिए इसी शतक के सूत्र १४१ का भाष्य द्रष्टव्य है।)

---

१. आचार्य महाप्रज्ञ, श्रमण महावीर, पृष्ठ ११४। प्रस्तुत शतक (सू. ५०-५५) से यह स्पष्ट है कि दूसरे वर्ष के चातुर्मास के अन्त में कोल्लाग सन्निवेश से बाहर प्रणीत भूमि में गोशाल को शिष्य रूप में स्वीकृत किया था।

२. श्रमण महावीर, पृष्ठ २८२।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३. तए णं तस्स गोसालस्स मंखलिपुत्तस्स अण्णदा कदायि इमे छ दिसाचरा अंतियं पाउब्भवित्था, तं जहा–साणे, कलंदे, कण्णियारे, अच्छिदे, अग्गिवेसायणे, अज्जुणे गोमायुपुत्ते॥

ततः तस्य गोशालस्य मंखलिपुत्रस्य अन्यदा कदाचित् इमे षट् दिक्चराः अन्तिकं प्रादुरभूवन्, तद्यथा–सानः, कलन्दः, कर्णिकारः, अच्छिदः, अग्निवैश्यायनः, अर्जुनः गोमायुपुत्रः।

३. एक समय मंखलिपुत्र गोशाल के पास ये छह दिशाचर[1] अकस्मात् आए, जैसे–शान, कलन्द, कर्णिकार, अच्छिद्र, अग्निवैश्यायन और अर्जुन गोमायुपुत्र[2]।

भाष्य

सूत्र ३

१. दिशाचर

देखें–इसी शतक के सूत्र ७७ का भाष्य।

२. अर्जुन गोमायुपुत्र

यहां दिशाचरों में एक नाम है–अर्जुन गोमायुपुत्र। सूत्र १०१ में 'पोट्ट परिहार' के प्रसंग में गोशाल ने अपना छट्ठा 'पोट्ट परिहार' 'अर्जुनक गौतमपुत्र' बताया है। यदि ये दो नाम एक हैं, तो यहां पर भी संभवतः अर्जुन गोमायुपुत्र होना चाहिए अथवा दिशाचरों के प्रसंग में 'अर्जुन गौतमपुत्र' होना चाहिए। कुछ प्रतियों में सूत्र ३ में 'अर्जुन गौतमपुत्र' पाठ मिलता है।[1]

इस आधार पर ऐसा प्रतीत होता है कि छट्ठे पोट्ट परिहार में उदायी ने अर्जुन नामक दिशाचर के शरीर में तथा उसकी मृत्यु होने पर मंखलिपुत्र गोशाल के शरीर में प्रवेश किया था।

इस संदर्भ में इसी शतक के सूत्र ७७,१०१,१०२ द्रष्टव्य हैं।

४. तए णं ते छ दिसाचरा अट्ठविहं पुव्वगयं मग्गदसमं 'सएहिं-सएहिं' मतिदंसणेहिं निज्जूहंति, निज्जूहित्ता गोसालं मंखलिपुत्तं उवट्ठाइंसु॥

ततः ते षट् दिक्चराः अष्टविधं पूर्वगतं मार्गदशमं स्वकैः-स्वकैः मतिदर्शनैः निर्यूथन्ति निर्यूथयित्वा गोशालं मंखलिपुत्रम् उपास्थुः (उवट्ठाइंसु)

४. इन छह दिशाचरों ने अष्टविध महानिमित्त[1] का पूर्वगत के दसवें अंग से अपने-अपने मतिदर्शन से निर्यूहण किया। निर्यूहण कर मंखलिपुत्र गोशाल के सामने उपस्थित किया।

भाष्य

सूत्र ४

१. महानिमित्त

देखें–इसी शतक के सूत्र ७७ का भाष्य।

५. तए णं से गोसाले मंखलिपुत्ते तेणं अट्ठंगस्स महानिमित्तस्स केणइ उल्लोयमेत्तेणं सव्वेसिं पाणाणं, सव्वेसिं भूयाणं, सव्वेसिं जीवाणं, सव्वेसिं सत्ताणं इमाइं छ अणइक्कमणिज्जाइं वागरणाइं वागरेति, तं जहा–लाभं अलाभं सुहं दुक्खं जीवियं मरणं तहा॥

ततः सः गोशालः मंखलिपुत्रः तेन अष्टांगस्य महानिमित्तस्य केनचित् उल्लोकमात्रेण सर्वेषां प्राणानाम्, सर्वेषां भूतानाम्, सर्वेषां जीवानाम्, सर्वेषां सत्वानाम् इमानि षट् अनतिक्रमणीयानि व्याकरणानि व्याकरोति, तद्यथा–लाभम्, अलाभं, सुखं, दुःखं, जीवितं मरणं तथा॥

५. उस अष्टांग महानिमित्त के किसी सामान्य अध्ययन मात्र से सब प्राणी, सब भूत, सब जीव और सब सत्वों के लिए इन छह अनतिक्रमणीय व्याकरणों का व्याकरण किया, जैसे–लाभ, अलाभ, सुख, दुःख, जीवित तथा मरण।

६. तए णं से गोसाले मंखलिपुत्ते तेणं अट्ठंगस्स महानिमित्तस्स केणई उल्लोयमेत्तेण सावत्थीए नगरीए अजिणे जिणप्पलावी, अणरहा अरहप्पलावी, अकेवली केवलिप्पलावी, असव्वण्णू सव्वण्णुप्पलावी, अजिणे जिणसद्दं पगासेमाणे विहरइ॥

ततः सः गोशालः मंखलिपुत्रः तेन अष्टांगस्य महानिमित्तस्य केनचित् उल्लोकमात्रेण श्रावस्त्यां नगर्याम् अजिनः जिनप्रलापी, अनर्हत् अर्हत्प्रलापी, अकेवली केवलिप्रलापी, असर्वज्ञः सर्वज्ञप्रलापी, अजिनः जिनशब्दं प्रकाशयन् विहरति।

६. वह मंखलिपुत्र गोशाल महानिमित्त के किसी सामान्य अध्ययन मात्र से श्रावस्ती नगरी में अजिन होकर जिन-प्रलापी, अर्हत् न होकर अर्हत्-प्रलापी, केवली न होकर केवली-प्रलापी, सर्वज्ञ न होकर सर्वज्ञ-प्रलापी, जिन न होकर जिन शब्द से प्रकाशित करता हुआ विहरण करने लगा।

७. तए णं सावत्थीए नगरीए सिंघाडग-तिग-चउक्क-चच्चर-चउम्मुह-महापह-पहेसु बहुजणो अण्णमण्णस्स एवमाइक्खइ, एवं भासइ, एवं पण्णवेइ, एवं परूवेइ–एवं खलु देवाणुप्पिया! गोसाले मंखलिपुत्ते जिणे जिणप्पलावी,

ततः श्रावस्त्यां नगर्यां शृंगाटक-त्रिक-चतुष्क-चत्वर-चतुर्मुख-महापथ-पथेषु बहुजनः अन्योन्यम् एवमाख्याति, एवं भाषते, एवं प्ररूपयति–एवं खलु देवानुप्रियाः! गोशालः मंखलिपुत्रः जिनः जिनप्रलापी, अर्हत्

७. उस श्रावस्ती नगरी के शृंगाटकों, तिराहों, चौराहों, चौहटों, चार द्वार वाले स्थानों, जनमार्गों और मार्गों पर बहुजन परस्पर इस प्रकार आख्यान, भाषण, प्रज्ञापन एवं प्ररूपण करते हैं–देवानुप्रिय! मंखलिपुत्र गोशालक जिन होकर जिन-प्रलापी, अर्हत्

१. अंगसुत्ताणि, भाग २, भगवई, १५/३ का पाठान्तर–'गोयमपुत्ते'।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अरहा अरहप्पलावी, केवली केवलि-प्पलावी, सव्वण्णू सव्वण्णुप्पलावी, जिणे जिणसद्दं पगासेमाणे विहरइ। से कहमेयं मन्ने एवं?

अर्हत्प्रलापी, केवली केवलिप्रलापी, सर्वज्ञः सर्वज्ञप्रलापी जिनः जिनशब्दं प्रकाशयन् विहरति। तत् कथमेतत् मन्ये एवम्?

होकर अर्हत्-प्रलापी, केवली होकर केवली-प्रलापी, सर्वज्ञ होकर सर्वज्ञ-प्रलापी, जिन होकर अपने आपको जिन शब्द से प्रकाशित करता हुआ विहार कर रहा है। तो क्या यह ऐसा ही है?

८. तेणं कालेणं तेणं समएणं सामी समोसढे जाव परिसा पडिगया॥

तस्मिन् काले तस्मिन् समये स्वामी समवसृतः यावत् परिषद् प्रतिगता।

८. उस काल उस समय स्वामी समवसृत हुए यावत् परिषद् वापस नगर में चली गई।

९. तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स जेट्ठे अंतेवासी इंदभूती नामं अणगारे गोयमे गोत्तेणं सत्तुस्सेहे समचउरंससंठाणसंठिए वज्जरिसभनारायसंघयणे कणग-पुलगनिघसपम्हगोरे उग्गतवे दित्ततवे तत्ततवे महातवे ओराले घोरे घोरगुणे घोरतवस्सी घोरबंभचेरवासी उच्छूढसरीरे संखित्तविउलतेयलेस्से छट्ठंछट्ठेणं अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ॥

तस्मिन् काले तस्मिन् समये श्रमणस्य भगवतः महावीरस्य ज्येष्ठः अन्तेवासी इन्द्रभूतिः नाम अनगारः गौतमः सगोत्रेण सप्तोत्सेधः समचतुरस्र-संस्थानसंस्थितः वज्रर्षभनाराचसंहननः कनकपुलकनिकष-पक्ष्मगौरः उग्रतपाः दीप्ततपाः, तप्ततपाः महातपाः, 'ओराले' घोरः घोरगुणः घोरतपस्वी घोरब्रह्मचर्यवासी उत्क्षिप्तशरीरः संक्षिप्तविपुलतेजोलेश्यः षष्ठषष्ठेन अनिक्षिप्तेन तपःकर्मणा संयमेन तपसा आत्मानं भावयन् विहरति।

९. उस काल उस समय श्रमण भगवान् महावीर के ज्येष्ठ अंतेवासी गौतम सगोत्र सात हाथ की ऊंचाई वाले, समचतुरस्र संस्थान से संस्थित, वज्रऋषभनाराच संहननयुक्त, कसौटी पर खचित स्वर्णरेखा तथा पद्मकेसर की भांति पीताभ गौर वर्ण वाले, उग्रतपस्वी, दीप्ततपस्वी, तप्ततपस्वी, महातपस्वी, महान, घोर, घोर गुणों से युक्त, घोर तपस्वी, घोर ब्रह्मचर्यवासी, लधिमा ऋद्धि सम्पन्न, विपुल तेजोलश्या को अन्तर्लीन रखने वाले, बिना विराम षष्ठभक्त तपःकर्म तथा संयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए रह रहे हैं।

१०. तए णं भगवं गोयमे छट्ठक्खमणपारणगंसि पढमाए पोरिसीए सज्झायं करेइ, बीयाए पोरिसीए झाणं झियाइ, तइयाए पोरिसीए अतुरिय-मचवलमसंभंते मुहपोत्तियं पडिलेहेइ, पडिलेहेत्ता भायणवत्थाइं पडिलेहेइ, पडिलेहेत्ता भायणाइं पमज्जइ, पमज्जित्ता भायणाइं उग्गाहेइ, उग्गाहेत्ता जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—इच्छामि णं भंते! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे छट्ठक्खमण-पारणगंसि सावत्थीए नगरीए उच्च-नीय-मज्झिमाइं कुलाइं घरसमुदाणस्स भिक्खायरियाए अडित्तए। अहासुहं देवाणुप्पिया! मा पडिबंधं॥

ततः सः भगवान् गौतमः षष्ठक्षपण-पारणके प्रथमायां पौरुष्यां स्वाध्यायं करोति, द्वितीयायां पौरुष्यां ध्यानं ध्यायति, तृतीयायां पौरुष्याम् अत्वरित-मचपलमसंभ्रान्तः मुखपोतिकां प्रति-लिखति, प्रतिलिख्य भाजनवस्त्राणि प्रतिलिखति, प्रतिलिख्य भाजनानि प्रमार्जयति, प्रमार्ज्य भाजनानि उद्गृह्णाति, उद्गृह्य यत्रैव श्रमणः भगवान् महावीरः तत्रैव उपागच्छति, उपागम्य श्रमणं भगवन्तं महावीरं वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्यित्वा एवमवादीत्—इच्छामि भदन्त! युष्माभिः अनुज्ञातः सन् षष्ठक्षपणपारणके श्रावस्त्यां नगर्यां उच्च-नीच-मध्यमानि कुलानि गृहसमुदानस्य भिक्षाचर्यायै अटितुम्। यथासुखं देवानुप्रिय! मा प्रतिबंधम्।

१०. भगवान् गौतम षष्ठ भक्त के पारणा में प्रथम प्रहर में स्वाध्याय करते हैं, द्वितीय प्रहर में ध्यान करते हैं, तृतीय प्रहर में त्वरता, चपलता और संभ्रम रहित होकर मुखवस्त्रिका का प्रतिलेखन करते हैं, प्रतिलेखन कर पात्र-वस्त्र का प्रतिलेखन करते हैं प्रतिलेखन कर पात्रों का प्रमार्जन करते हैं, प्रमार्जन कर पात्रों को हाथ में लेते हैं, लेकर जहां श्रमण भगवान् महावीर हैं, वहां आते हैं आकर श्रमण भगवान् महावीर को वंदन-नमस्कार करते हैं, वंदन-नमस्कार कर वे इस प्रकार बोले—भंते! मैं आपकी अनुज्ञा पाकर षष्ठ भक्त के पारणा में श्रावस्ती नगर के उच्च, नीच और मध्यम कुलों की सामुदायिक भिक्षा चर्या के लिए घूमना चाहता हूं।
देवानुप्रिय! जैसा तुम्हें सुख हो, प्रतिबंध मत करो।

११. तए णं भगवं गोयमे समणेणं भगवया महावीरेणं अब्भणुण्णाए समाणे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियाओ कोट्ठयाओ चेइयाओ

ततः भगवान् गौतम! श्रमणेन भगवता महावीरेण अभ्यनुज्ञातः सन् श्रमणस्य भगवतः महावीरस्य अंतिकात् कोष्ठकात् चैत्यात् प्रतिनिष्क्रामति,

११. भगवान् गौतम श्रमण भगवान् महावीर की अनुज्ञा प्राप्त कर श्रमण भगवान् महावीर के पास से कोष्ठक चैत्य से बाहर आते हैं, बाहर आकर त्वरता, चपलता और संभ्रम-रहित

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता अतुरियमचवलमसंभंते जुगंतरपलोयणाए दिट्ठीए पुरओरियं सोहेमाणे-सोहेमाणे जेणेव सावत्थी नगरी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सावत्थीए नगरीए उच्च-नीय-मज्झिमाइं कुलाइं घरसमुदाणस्स भिक्खायरियं अडइ॥

प्रतिनिष्क्रम्य अत्वरितमचपलमसंभ्रांतः युगान्तरप्रलोकनया दृष्ट्या पुरतः ईर्यां शोधयन्-शोधयन् यत्रैव श्रावस्ती नगरी तत्रैव उपागच्छति, उपागम्य श्रावस्त्यां नगर्याम् उच्च-नीच-मध्यमानि कुलानि गृहसमुदानस्य भिक्षाचर्याम् अटति।

होकर युग-प्रमाण भूमि को देखने वाली दृष्टि से ईर्या का शोधन करते हुए, शोधन करते हुए जहां श्रावस्ती नगर है, वहां आते हैं, आकर श्रावस्ती नगर के उच्च, नीच और मध्यम कुलों की सामुदानिक भिक्षाचर्या के लिए घूमते हैं।

१२. तए णं भगवं गोयमे सावत्थीए नगरीए उच्च-नीय-मज्झिमाइं कुलाइं घरसमुदाणस्स भिक्खायरियाए अडमाणे बहुजणसद्दं निसामेइ, बहुजणो अण्णमण्णस्स एवमाइक्खइ एवं भासइ एवं पण्णवेइ एवं परूवेइ–एवं खलु देवाणुप्पिया! गोसाले मंखलिपुत्ते जिणे जिणप्पलावी जाव जिणे जिणसद्दं पगासेमाणे विहरइ। से कहमेयं मन्ने एवं?

ततः भगवान् गौतमः श्रावस्त्यां नगर्याम् उच्च-नीच-मध्यमानि कुलानि गृहसमुदानस्य भिक्षाचर्यायाम् अटन् बहुजनशब्दं निशमयति, बहुजनाः अन्योन्यं एवमाख्याति, एवं भाषते, एवं प्रज्ञापयति, एवं प्ररूपयति–एवं खलु देवानुप्रिय! गोशालः मंखलिपुत्रम्–जिनः जिनप्रलापी यावत् जिनः जिनशब्दं प्रकाशयन् विहरति। तत् कथमेतत् मन्ये एवम्?

१२. भगवान् गौतम श्रावस्ती नगर के उच्च, नीच और मध्यम कुलों की सामुदानिक भिक्षाचर्या के लिए घूमते हुए अनेक व्यक्तियों से ये शब्द सुनते हैं, अनेक व्यक्ति परस्पर इस प्रकार का आख्यान, भाषण, प्रज्ञापन एवं प्ररूपण करते हैं–देवानुप्रिय! मंखलिपुत्र गोशाल जिन होकर जिन-प्रलापी यावत् जिन होकर अपने आपको जिन शब्द से प्रकाशित करता हुआ विहार कर रहा है। तो क्या यह ऐसा ही है?

१३. तए णं भगवं गोयमे बहुजणस्स अंतियं एयमट्ठं सोच्चा निसम्म जायसड्ढे जाव समुप्पन्नकोउहल्ले अहापज्जत्तं समुदाणं गेण्हइ, गेण्हित्ता सावत्थीओ नगरीओ पडिनिक्खमइ, अतुरियमचवलमसंभंते जुगंतरपलोयणाए दिट्ठीए पुरओ रियं सोहेमाणे-सोहेमाणे जेणेव कोट्ठए चेइए, जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स अदूरसामंते गमणागमणाए पडिक्कमइ, पडिक्कमित्ता एसणमणेसणं आलोएइ, आलोएत्ता भत्तपाणं पडिदंसेइ, पडिदंसेत्ता समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता णच्चासन्ने णातिदूरे सुस्सूसमाणे नमंसमाणे अभिमुहे विणएणं पंजलियडे पज्जुवासमाणे एवं वयासी–एवं खलु अहं भंते! छट्ठक्खवणपारणगंसि तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे सावत्थीए नगरीए उच्च-नीय-मज्झिमाणि कुलाणि घरसमुदाणस्स भिक्खायरियाए अडमाणे बहुजणसद्दं निसामेमि, बहुजणो अण्णमण्णस्स एवमाइक्खइ एवं भासइ एवं पण्णवेइ एवं परूवेइ–एवं खलु देवाणुप्पिया! गोसाले मंखलिपुत्ते जिणे जिणप्पलावी जाव जिणे जिणसद्दं

ततः भगवान् गौतमः बहुजनस्य अन्तिकम् एतमर्थं श्रुत्वा निशम्य जातश्रद्धः यावत् समुत्पन्नकुतूहलः यथा–पर्याप्तं समुदानं गृह्णाति, गृहीत्वा श्रावस्त्याः नगर्याः प्रतिनिष्क्रामति, अत्वरितमचपलमसंभ्रान्तः युगान्तर-प्रलोकनया दृष्ट्या पुरतः ईर्यां शोधयन्–शोधयन् यत्रैव कोष्ठकं चैत्यं, यत्रैव श्रमणः भगवान् महावीरः तत्रैव उपागच्छति, उपागम्य श्रमणस्य भगवतः महावीरस्य अदूरसामन्ते गमनागमने प्रतिक्रामति, प्रतिक्रम्य, एषणाम् अनेषणाम् आलोचयति आलोच्य भक्तपानं प्रतिदर्शयति, प्रतिदर्श्य श्रमणं भगवन्तं महावीरं वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्यित्वा, नत्या-सन्नः नातिदूरः शुश्रूषमाणः नमस्यन् अभिमुखः विनयेन प्राञ्जलिपुटः पर्युपासीनः एवमवादीत्–एवं खलु अहं भदन्त! षष्ठक्षपणपारणके युष्माभिः अभ्यनुज्ञातः सन् श्रावस्त्यां नगर्याम् उच्च-नीच-मध्यमानि कुलानि गृह-समुदानस्य भिक्षाचर्यायै अटन् बहुजन-शब्दं निशमयामि, बहुजनः अन्योन्यम् एवमाख्याति, एवं भाषते, एवं प्रज्ञापयति, एवं प्ररूपयति–

१३. अनेक व्यक्तियों के पास इस अर्थ को सुनकर अवधारण कर भगवान् गौतम के मन में एक श्रद्धा यावत् कुतूहल उत्पन्न हुआ। वे यथापर्याप्त भिक्षा लेते हैं, लेकर श्रावस्ती नगर से बाहर आते हैं, त्वरा-चपलता-और संभ्रम-रहित होकर युग-प्रमाण भूमि को देखने वाली दृष्टि से ईर्या का शोधन करते हुए, शोधन करते हुए जहां कोष्ठक चैत्य है, जहां श्रमण भगवान् महावीर हैं, वहा आते हैं, आकर श्रमण भगवान् महावीर के न अति दूर और न अतिनिकट रहकर गमनागमन का प्रतिक्रमण करते हैं, प्रतिक्रमण कर एषणा और अनैषणा की आलोचना करते हैं, आलोचना कर भक्तपान दिखलाते हैं, दिखलाकर श्रमण भगवान् महावीर को वंदन-नमस्कार करते हैं, वंदन-नमस्कार कर इस प्रकार बोले–भंते! मैं षष्ठ भक्त के पारणे में आपकी अनुज्ञा पाकर श्रावस्ती नगर के उच्च, नीच और मध्यम कुलों में सामुदायिक भिक्षा के लिए घूमते हुए अनेक व्यक्तियों के ये शब्द सुनता हूं, अनेक व्यक्ति परस्पर इस प्रकार का आख्यान, भाषण, प्रज्ञापन और प्ररूपण करते हैं–देवानुप्रिय! मंखलिपुत्र गोशाल जिन होकर जिन-प्रलापी यावत् जिन होकर अपने आपको जिन शब्द से प्रकाशित करता हुआ विहार कर रहा है। भंते! क्या यह ऐसा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पगासेमाणे विहरइ। से कहमेयं भंते! एवं? तं इच्छामि णं भंते! गोसालस्स मंखलिपुत्तस्स उट्ठाण-पारियाणियं परिकहियं॥

एवं खलु देवानुप्रिय! गोशालः मंखलिपुत्रः जिनः जिनप्रलापी यावत् जिनः जिनशब्दं प्रकाशयन् विहरति। तत् कथमेतद् भदन्त। एवम्? तत् इच्छामि भदन्त! गोशालस्य मंखलिपुत्रस्य उत्थानपारियानिकं परिकथितम्।

ही है? भंते! मैं चाहता हूं आप मंखलिपुत्र गोशाल के जन्म से लेकर अब तक का चारित्र कहें।

१४. गोयमादी! समणे भगवं महावीरे भगवं गोयमं एवं वयासी–जण्णं गोयमा! से बहुजणो अण्णमण्णस्स एवमाइक्खइ एवं भासइ एवं पण्णवेइ एवं परूवेइ–एवं खलु गोसाले मंखलिपुत्ते जिणे जिणप्पलावी जाव जिणे जिणसद्दं पगासेमाणे विहरइ। तण्णं मिच्छा। अहं पुण गोयमा! एवमाइक्खामि जाव परूवेमि–एवं खलु एयस्स गोसालस्स मंखलीपुत्तस्स मंखली नामं मंखे पिता होत्था। तस्स णं मंखलिस्स मंखस्स भद्दा नामं भारिया होत्था–सुकुमालपाणिपाया जाव पडिरूवा। तए णं सा भद्दा भारिया अण्णदा कदायि गुव्विणी यावि होत्था।

गौतम! अयि! श्रमणः भगवान् महावीरः भगवन्तं गौतमम् एवमवादीत्–यत् गौतम! सः बहुजनः अन्योन्यम् एवमाख्याति, एवं भाषते एवं प्रज्ञापयति, एवं प्ररूपयति–एवं खलु गोशालः मङ्खलिपुत्रः जिनः जिनप्रलापी यावत् जिनः जिनशब्दं प्रकाशयन् विहरति। तत् मिथ्या। अहं पुनः गौतम! एवमाख्यामि यावत् प्ररूपयामि–एवं खलु एतस्य गोशालस्य मंखलिपुत्रस्य मंखली नाम मंखः पिता आसीत्। तस्य मंखलिनः मंखस्य भद्रा नाम् भार्या आसीत्–सुकुमार-पाणिपादा यावत् प्रतिरूपा। ततः सा भद्रा भार्या अन्यदा कदापि गुर्विणी चापि अभूत्।

१४. अयि गौतम! श्रमण भगवान् महावीर ने भगवान् गौतम को इस प्रकार कहा–गौतम! जो ये अनेक व्यक्ति परस्पर इस प्रकार आख्यान, भाषण, प्रज्ञापन और प्ररूपण करते हैं–मंखलिपुत्र गोशाल, जिन होकर जिन-प्रलापी यावत् जिन होकर अपने आपको जिन शब्द से प्रकाशित करता हुआ विहार कर रहा है–वह मिथ्या है। गौतम! मैं इस प्रकार आख्यान यावत् प्ररूपण करता हूं–इस मंखलिपुत्र गोशाल के पिता का नाम मंखलि था। उसकी जाति मंख थी। उस मंखलि मंख के भद्रा नाम की भार्या थी–सुकुमार हाथ पैर वाली यावत् प्रतिरूपा। वह भद्रा भार्या किसी दिन गर्भवती हुई।

१५. तेणं कालेणं तेणं समएणं सरवणे नामं सण्णिवेसे होत्था–रिद्धत्थिमियसमिद्धे जाव नंदणवणसन्निभप्पगासे, पासादीए दरिसणिज्जे अभिरूवे पडिरूवे। तत्थ णं सरवणे सण्णिवेसे गोबहुले नामं माहणे परिवसइ–अड्ढे जाव बहुजणस्स अपरिभूए, रिउव्वेद जाव बंभण्णएसु परिव्वायएसु य नयेसु सुपरिनिट्ठिए यावि होत्था। तस्स णं गोबहुलस्स माहणस्स गोसाला यावि होत्था।

तस्मिन् काले तस्मिन् समये सरवणः नाम सन्निवेशः आसीत्–ऋद्धिस्तिमितसमृद्धः यावत् नन्दनवनसन्निभप्रकाशः प्रासादिकः दर्शनीयः अभिरूपः प्रतिरूपः। तत्र सरवणे सन्निवेशे गोबहुलः नाम माहनः परिवसति–आढ्यः यावत् बहुजनस्य अपरिभूतः, ऋग्वेद यावत् ब्राह्मण्यकेषु परिव्राजकेषु च नयेषु सुपरिनिष्ठितः चापि आसीत्। तस्य गोबहुलस्य माहनस्य गोशाला चापि आसीत्।

१५. उस काल उस समय 'सरवण' नाम का सन्निवेश था–ऐश्वर्यशाली, शान्त और समृद्ध यावत् नंदनवन के समान प्रभा वाला, चित्त को प्रसन्न करने वाला, दर्शनीय, कमनीय और रमणीय। उस सरवण सन्निवेश में गोबहुल नाम का ब्राह्मण[1] रहता था–वह समृद्ध यावत् बहुजनों के द्वारा अपरिभूत था, ऋग्वेद यावत् अनेक ब्राह्मण[1] और परिव्राजक संबंधी नयों में निष्णात था। उस गोबहुल ब्राह्मण के गौशाला भी थी।

भाष्य

सूत्र १५

१. ब्राह्मण

द्रष्टव्य भ. २/२४ का भाष्य।

१६. तए णं से मंखली मंखे अण्णया कदायि भद्दाए भारियाए गुव्विणीए सद्धिं चित्तफलगहत्थगए मंखत्तणेणं अप्पाणं भावेमाणे पुव्वाणुपुव्वि चरमाणे गामाणुगामं दूइज्जमाणे जेणेव सरवणे सण्णिवेसे जेणेव गोबहुलस्स माहणस्स

ततः सः मंखली मंखः अन्यदा कदाचित् भद्रया भार्यया गुर्विण्या सार्धं चित्रफलकहस्तगतः मंखत्वेन आत्मानं भावयन् पूर्वानुपूर्वीं चरन् ग्रामानुग्रामं दवन् यत्रैव सरवणः सन्निवेशः यत्रैव गोबहुलस्य माहनस्य गोशाला तत्रैव

१६. मंखली मंख ने एक दिन गर्भवती भार्या भद्रा के साथ प्रस्थान किया। वह चित्रफलक हाथ में लेकर मंखत्व (भिक्षुत्व वृत्ति) के द्वारा अपना जीवन-यापन करता हुआ, क्रमानुसार विचरण तथा ग्रामानुग्राम परिव्रजन करता हुआ, जहां सरवण सन्निवेश था, जहां

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गोसाला तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता गोबहुलस्स माहणस्स गोसालाए एगदेसंसि भंडनिक्खेवं करेइ, करेत्ता सरवणे सण्णिवेसे उच्च-नीय-मज्झिमाइं कुलाइं घरसमुदाणस्स भिक्खायरियाए अडमाणे वसहीए सव्वओ समंता मग्गणगवेसणं करेइ, वसहीए सव्वओ समंता मग्गणगवेसणं करेमाणे अण्णत्थ वसहिं अलभमाणे तस्सेव गोबहुलस्स माहणस्स गोसालाए एगदेसंसि वासावासं उवागए॥

उपागच्छति, उपागम्य गोबहुलस्य माहनस्य गोशालायाम् एकदेशे भाण्डनिक्षेपं करोति, कृत्वा सरवणे सन्निवेशे उच्च-नीच-मध्यमानि कुलानि गृहसमुदानस्य भिक्षाचर्यायां अटन् वसतौ सर्वतः मार्गणगवेषणां करोति, वसतौ सर्वतः समन्तात् मार्गणगवेषणां कुर्वन् अन्यत्र वसतिम् अलभमानः (अलभमाणे) तस्यैव गोबहुलस्य माहनस्य गोशालायाम् एकदेशे वर्षावासम् उपागतः।

गोबहुल ब्राह्मण की गौशाला थी वहां आया, आकर गोबहुल ब्राह्मण का गौशाला के एक भाग में भांड का निक्षेप किया, निक्षेप कर सरवण सन्निवेश के उच्च, नीच तथा मध्यम कुलों में सामुदानिक भिक्षा के लिए घूमते हुए चारों ओर आवास-योग्य स्थान की मार्गणा-गवेषणा करते हुए, आवास-योग्य स्थान के न मिलने पर उसी गोबहुल ब्राह्मण की गौशाला के एक भाग में वर्षावास किया।

१७. तए णं सा भद्दा भारिया नवण्हं मासाणं-बहुपडिपुण्णाणं अद्धट्ठमाण य राइंदियाणं वीतिक्कंताणं सुकुमाल-पाणिपायं जाव पडिरूवगं दारगं पयाया॥

ततः सा भद्रा भार्या नवानां मासानां प्रतिपूर्णानाम् अर्धाष्टमानां च रात्रिंदिवानां व्यतिक्रान्तानां सुकुमालपाणिपादं यावत् प्रतिरूपकं दारकं प्रजाता।

१७. भद्रा भार्या ने बहु प्रतिपूर्ण नव मास साढे सात दिन-रात बीत जाने पर सुकुमार हाथ पैर वाले यावत् प्रतिरूप पुत्र को जन्म दिया।

१८. तए णं तस्स दारगस्स अम्मापियरो एक्कारसमे दिवसे वीतिक्कंते निव्वत्ते असुइजायकम्मकरणे संपत्ते बारसमे दिवसे अयमेयारूवं गोण्णं गुणनिप्फन्नं नामधेज्जं करेंति—जम्हा णं अम्हं इमे दारए गोबहुलस्स माहणस्स गोसालाए जाए तं होउ णं अम्हं इमस्स दारगस्स नामधेज्जं गोसाले-गोसाले त्ति। तए णं तस्स दारगस्स अम्मापियरो नामधेज्जं करेंति गोसाले ति॥

ततः तस्य दारकस्य अम्बपितरौ एकादशमे दिवसे व्यतिक्रान्ते निवृत्ते अशुचिजात-कर्मकरणे सम्प्राप्ते द्वादशमे दिवसे इदमेतद्रूपं गौणं गुणनिष्पन्नं नामधेयं कुर्वतः—यस्मात् अस्माकम् अयं दारकः गोबहुलस्य माहनस्य गोशालायां जातः तत् भवतु अस्माकम् अस्य दारकस्य नामधेयं गोशालः गोशालः इति। ततः तस्य दारकस्य अम्बापितरौ नामधेयं कुरुतः गोशालः इति।

१८. उस पुत्र के माता-पिता ग्यारह दिन बीत जाने पर अशुचिजात कर्म से निवृत्त हुए बारहवें दिन इस प्रकार का गुण-युक्त गुण-निष्पन्न नामकरण किया—क्योंकि हमारा यह बालक गोबहुल ब्राह्मण की गौशाला में उत्पन्न हुआ है इसलिए इस बालक का नाम 'गोशाल-गोशाल' ऐसा हो। तब उसके माता-पिता ने उस बालक का नाम गोशाल किया।

१९. तए णं से गोसाले दारए उम्मुक्कबाल-भावे विण्णयपरिणयमेत्ते जोव्वण-गमणुप्पत्ते सयमेव पाडिएक्कं चित्त-फलगं करेइ, करेत्ता चित्तफलगहत्थगए मंखत्तणेणं अप्पाणं भावेमाणे विहरइ॥

ततः सः गोशालः दारकः उन्मुक्त-बालभावः विज्ञकपरिणतिमात्रः यौवनक-मनुप्राप्तः स्वयमेव प्रत्येकं चित्रफलकं करोति, कृत्वा चित्रफलकहस्तगतः मंखत्वेन आत्मानं भावयन् विहरति।

१९. उस बालक गोशाल ने बाल-अवस्था को पारकर, विज्ञ और कला का पारगामी बन कर यौवन को प्राप्त किया। स्वयं स्वतंत्र रूप से चित्रफलक का निर्माण किया, निर्माण कर वह चित्रफलक को हाथों में लेकर मंखत्व-वृत्ति के द्वारा अपना जीवन-यापन करता हुआ विचरण करने लगा।

भगवओ विहार-पदं

२०. तेण कालेणं तेणं समएणं अहं गोयमा! तीसं वासाइं अगारवास-मज्झावसित्ता अम्मापिईहिं देवत्तगएहिं समत्तपइण्णे एवं जहा भावणाए जाव एगं देवदूसमादाय मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए॥

भगवतः विहार-पदम्

तस्मिन् काले तस्मिन् समये अहं गौतम! त्रिंशत् वर्षाणि अगारवासमध्य उषित्वा (अगारवासमज्झावसित्ता) अम्बापितृभ्यां देवत्वगताभ्यां समाप्त-प्रतिज्ञः एवं यथा भावनायां यावत् एकं देवदूष्यम् आदाय मुण्डः भूत्वा अनागाराद् अनगारितां प्रव्रजितः।

भगवान का विहार-पद

२०. गौतम! उस काल उस समय मैं तीस वर्ष घर में रह कर माता-पिता के दिवंगत होने पर मेरी प्रतिज्ञा सम्पन्न हो गई, इस प्रकार भावना अध्ययन की वक्तव्यता (आयारचूला १५/२६-२९) यावत् एक देवदूष्य को लेकर मुंड होकर अगारता से अनगारता में प्रव्रजित हो गया।

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

२१. तए णं अहं गोयमा! पढमं वासं अद्धमासं अद्धमासेणं खममाणे अट्ठियगामं निस्साए पढमं अंतरवासं वासावासं उवागए। दोच्चं वा मासं मासेणं खममाणे पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे गामाणुगामं दूइज्जमाणे जेणेव रायगिहे नगरे, जेणेव नालंदा बाहिरिया, जेणेव तंतुवायसाला, तेणेव उवागच्छामि, उवागच्छित्ता अहापडिरूवं ओग्गहं ओगिण्हामि, ओगिण्हित्ता तंतुवायसालाए एगदेसंसि वासावासं उवागए॥

ततः अहं गौतम! प्रथमं वर्षं अर्द्धमासम् अर्द्धमासेन क्षाम्यन् अस्थिकग्रामं निश्रया प्रथमम् अन्तरवासम् वर्षावासम् उपागतः। द्वितीयं वर्षं मासं मासेन क्षाम्यन् पूर्वानुपूर्वीं चरन् ग्रामानुग्रामं दवन् यत्रैव राजगृहं नगरम् यत्रैव नालन्दा बाहिरिका, यत्रैव तन्तुवायशाला, तत्रैव उपागच्छामि उपागम्य यथाप्रतिरूपम् अवग्रहम् अवगृह्णामि अवगृह्य तन्तुवायशालायाः एकदेशे वर्षावासम् उपागतः।

२१. गौतम! मैंने प्रथम वर्ष में अर्द्धमास-अर्द्धमास तप करते हुए अस्थिग्राम की निश्रा में प्रथम अंतरवास में वर्षावास किया। दूसरे वर्ष में मास-मास का तप करते हुए क्रमशः विचरण तथा ग्रामानुग्राम परिव्रजन करते हुए जहां राजगृह नगर था, जहां बाहिरिका नालन्दा थी, जहां तंतुवायशाला थी, वहां आया, आकर प्रवास योग्य स्थान की अनुमति ली, अनुमति लेकर तंतुवायशाला के एक भाग में वर्षावास किया।

पढम-मासखमण-पदं

२२. तए णं अहं गोयमा! पढमं मासखमणं उवसंपज्जित्ताणं विहरामि॥

प्रथम-मासक्षपण-पदम्

ततः अहं गोतम! मासक्षपणम् उपसम्पद्य विहरामि।

प्रथम मासखमण-पद

२२. गौतम! मैं प्रथम मासखमण तप को स्वीकार कर विहार करने लगा।

२३. तए णं से गोसाले मंखलिपुत्ते चित्तफलगहत्थगए मंखत्तणेणं अप्पाणं भावेमाणे पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे गामाणुगामं दूइज्जमाणे जेणेव रायगिहे नगरे, जेणेव नालंदा बाहिरिया, जेणेव तंतुवायसाला, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता तंतुवायसालाए एगदेसंसि भंडनिक्खेवं करेइ, करेत्ता रायगिहे नगरे उच्च-नीय-मज्झिमाइं कुलाइं घरसमुदाणस्स भिक्खायरियाए अडमाणे वसहीए सव्वओ समंता मग्गणगवेसणं करेइ, वसहीए सव्वओ समंता मग्गणगवेसणं करेमाणे अण्णत्थ कत्थ वि वसहिं अलभमाणे तीसे य तंतुवायसालाए एगदेसंसि वासावासं उवागए, जत्थेव णं अहं गोयमा!

ततः सः गोशालः मंखलिपुत्रः चित्रफलकहस्तगतः मंखत्वेन आत्मानं भावयन् पूर्वानुपूर्वीं चरन् ग्रामानुग्रामं दवन् यत्रैव राजगृहं नगरम्, यत्रैव नालन्दा बाहिरिका, यत्रैव तन्तुवायशाला, तत्रैव उपागच्छति, उपागम्य तन्तुवायशालायाः एकदेशे भाण्डनिक्षेपं करोति, कृत्वा राजगृहे नगरे उच्च-नीच-मध्यमानि कुलानि गृहसमुदानस्य भिक्षाचर्यायाम् अटन् वसतौ सर्वतः समन्तात् मार्गणगवेषणां करोति वसतौ सर्वतः समन्तात् मार्गणगवेषणां कुर्वन् अन्यत्र कुत्रापि वसतिम् अलभमानः तस्याः च तन्तुवाय-शालायाः एकदेशे वर्षावासम् उपागतः, यत्रैव अहं गौतम!

२३. वह मंखलिपुत्र गोशाल चित्रफलक को हाथ में लेकर मंखत्व वृत्ति से अपना जीवन-यापन करता हुआ, क्रमानुसार विचरण तथा ग्रामानुग्राम परिव्रजन करता हुआ, जहां राजगृह नगर, जहां बाहिरिका नालंदा, जहां तंतुवायशाला थी, वहां आया, आकर तंतुवायशाला के एक देश में भांड का निक्षेप किया, निक्षेप कर राजगृह नगर के उच्च, नीच तथा मध्यम कुलों में सामुदानिक भिक्षा के लिए घूमते हुए चारों ओर आवास-योग्य स्थान की गवेषणा की, चारों ओर मार्गणा-गवेषणा करते हुए कहीं भी आवास योग्य स्थान के प्राप्त न होने पर उसी तंतुवाय-शाला के एक भाग में वर्षावास किया। गौतम! जहां मैं था।

२४. तए णं अहं गोयमा! पढममासक्खमणपारणगंसि तंतुवायसालाओ पडिनिक्खमामि, पडिनिक्खमित्ता नालंदं बाहिरियं मज्झंमज्झेणं निग्गच्छामि, निग्गच्छित्ता जेणेव रायगिहे नगरे तेणेव उवागच्छामि, उवागच्छित्ता रायगिहे नगरे उच्च-नीय-मज्झिमाइं कुलाइं घरसमुदाणस्स भिक्खायरियाए अडमाणे विजयस्स गाहावइस्स गिहं अणुपविट्ठे॥

ततः अहं गौतम! प्रथममासकक्षपण-पारणके तन्तुवायशालायाः प्रतिनिष्क्रामामि, प्रतिनिष्क्रम्य नालन्दां बाहिरिकां मध्यमध्येन निर्गच्छामि, निर्गत्य यत्रैव राजगृहं नगरं तत्रैव उपागच्छामि, उपागम्य राजगृहे नगरे उच्च-नीच-मध्यमानि कुलानि गृहसमुदानस्य भिक्षाचर्याम् अटन् विजयस्य च गाहावइस्स गृहम् अनुप्रविष्टः।

२४. गौतम! मैंने प्रथम मासखमण के पारणे में तंतुवायशाला से प्रतिनिष्क्रमण किया, प्रतिनिष्क्रमण कर बाहिरिका नालंदा के बीचोंबीच निर्गमन किया, निर्गमन कर जहां राजगृह नगर था, वहां आया, वहां आकर राजगृह नगर के उच्च, नीच और मध्यम कुलों में सामुदानिक भिक्षा के लिए घूमते हुए मैंने गृहपति विजय के घर में अनुप्रवेश किया।

२५. तए णं से विजए गाहावई ममं

ततः सः विजयः गाहावई माम् आयन्तं

२५. गृहपति विजय ने मुझे आते हुए देखा,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एज्जमाणं पासइ, पासित्ता हट्ठतुट्ठ-चित्तमाणंदिए णंदिए पीइमणे परम-सोमणस्सिए हरिसवसविसप्प-माणहियए खिप्पामेव आसणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठेत्ता पायपीढाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता पाउयाओ ओममुयइ, ओमुइत्ता एगसाडियं उत्तरासंगं करेइ, करेत्ता अंजलि-मउलियहत्थे ममं सत्तट्ठपयाइं अणु-गच्छइ, अणुगच्छित्ता ममं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता ममं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता ममं विउलेणं असण-पाण-खाइम-साइमेणं पडिलाभेस्सामित्ति तुट्ठे, पडिलाभेमाणे वि तुट्ठे, पडिलाभिते वि तुट्ठे॥

पश्यति दृष्ट्वा हृष्टतुष्टचित्तः आनन्दितः नन्दितः प्रीतिमनाः परमसौमनस्यितः हर्षवशविसर्पदहृदयः क्षिप्रमेव आसनात् अभ्युत्तिष्ठति, अभ्युत्थाय पादपीठात् प्रत्यवरोहति, प्रत्यवरुह्य पादुकाः अवमुञ्चति, अवमुच्य एकशाटिकम् उत्तरासंगं करोति, कृत्वा अञ्जलिमुकुलितहस्तः मां सप्ताष्टपदानि अनुगच्छति, अनुगम्य मां त्रिः आदक्षिणं-प्रदक्षिणां करोति, कृत्वा मां वन्दे नमस्यति, वन्दित्वा नमस्यित्वा मां विपुलेन अशन-पान-खाद्य-स्वाद्येन प्रतिलाभयिष्यामि इति तुष्टः, प्रतिलाभयन् अपि तुष्टः प्रतिलाभितः अपि तुष्टः।

देखकर हृष्टतुष्टचित्त वाला, आनंदित, नंदित, प्रतिपूर्णमन वाला, परम सौमनस्य-युक्त और हर्ष से विकस्वर हृदय वाला हो गया। शीघ्र ही आसन से उठा, उठकर पाद-पीठ से नीचे उतरा। नीचे उतर कर पादुका को खोला, खोलकर एक पट वाले वस्त्र का उत्तरासंग किया। उत्तरासंग कर दोनों हाथ जोड़े हुए सात-आठ कदम मेरे सामने आया, सामने आकर मुझे दायीं ओर से प्रारम्भ कर तीन बार प्रदक्षिणा की, प्रदक्षिणा कर मुझे वंदन-नमस्कार किया, वन्दन-नमस्कार कर–मैं महावीर को विपुल अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य से प्रतिलाभित करूंगा यह सोचकर तुष्ट हुआ, प्रतिलाभित करता हुआ भी तुष्ट हुआ प्रतिलाभित करके भी तुष्ट हुआ।

२६. तए णं तस्स विजयस्स गाहावइस्स तेणं दव्वसुद्धेणं दायगसुद्धेणं पडिगाहग-सुद्धेणं तिविहेणं तिकरणसुद्धेणं दाणेणं मए पडिलाभिए समाणेदेवाउए निबद्धे संसारे परित्तीकए, गिहंसि ये से इमाइं पंच दिव्वाइं पाउब्भूयाइं, तं जहा–वसु-धारा वुट्ठा, दसद्धवण्णे कुसुमे निवातिए, चेलुक्खेवे कए, आहयाओ देवदुंदुभीओ, अंतरा वि य णं आगासे अहो दाणे, अहो दाणे त्ति घुट्ठे॥

ततः तस्य विजयस्य गाहावइस्स तेन द्रव्यशुद्धेन दायकशुद्धेन प्रतिग्राहक-शुद्धेन त्रिविधेन त्रिकरणशुद्धेन दानेन मयि प्रतिलाभिते सति देवायुषकः निबद्धः, संसारः परीतीकृतः, गृहे च तस्य इमानि पञ्च दिव्यानि प्रादुर्भूतानि, तद्यथा–वसुधारा वृष्टा, दशार्धवर्णः कुसुमः निपातितः, चेलोत्क्षेपः कृतः, आहताः देवदुन्दुभयः अन्तरा अपि च आकाशे अहो दानम्, अहो दानम् इति घुष्टम्।

२६. [1]गृहपति विजय ने द्रव्य शुद्ध, दाता शुद्ध, प्रतिग्राहक शुद्ध–इस प्रकार त्रिविध, त्रिकरण से शुद्ध दान के द्वारा मुझे प्रतिलाभित कर देवायुष्य का निबंध किया, संसार को परीत किया। उस समय उसके घर में ये पांच दिव्य प्रकट हुए, जैसे–रत्नों की धारा निपातवृष्टि, पांच वर्ण वाले फूलों की वृष्टि, ध्वजा फहराने लगी, देवदुन्दुभियां बजी, आकाश के अन्तराल में 'अहोदानम्-अहोदानम्' की उद्घोषणा हुई।

भाष्य

सूत्र २२-२६

प्रस्तुत सूत्र में भावी तीर्थंकर (महावीर) को विजय गृहपति द्वारा प्रदत्त दान का प्रसंग आया है। इस सूत्र के संदर्भ में कुछ विषय विवेचनीय हैं–

१. द्रव्य, दाता और प्रतिग्राहक की शुद्धि
२. त्रिविध–त्रिकरण शुद्ध दान
३. देवायुष्य का बंध
४. पांच दिव्यों का प्रकटीकरण

१. द्रव्य, दाता और प्रतिग्राहक की शुद्धि

दान की प्रक्रिया के तीन घटक हैं–

१. देय द्रव्य
२. दाता
३. पात्र (प्रतिग्राहक)

ये तीनों शुद्ध होने पर शुद्ध दान होता है। अभयदेवसूरि ने 'द्रव्य' की व्याख्या में बताया है–ओदन (चावल) आदि द्रव्य जब उद्गम आदि दोषों से रहित होता है, तब वह शुद्ध द्रव्य कहलाता है तथा 'दायक-शुद्धि' का अर्थ है–जो दाता आशंसा आदि दोषों से रहित होता है, वह शुद्ध दायक है।[1] शुद्ध प्रतिग्राहक अर्थात् सुपात्र। प्रस्तुत प्रसंग में भगवान् महावीर प्रतिग्राहक हैं। पंचमहाव्रतधारी निर्ग्रंथ साधु को 'सुपात्र' की कोटि में रखा गया है।[2] आचार्य भिक्षु ने लौकिक और लोकोत्तर दान के स्वरूप पर सूक्ष्म विवेचन किया है जिसकी मीमांसा इस प्रकार है[3] :

दान भारतीय साहित्य का सुपरिचित शब्द है। इसके पीछे अनुग्रह का मनोभाव रहा है। एक समर्थ व्यक्ति दूसरे असमर्थ व्यक्ति को दान देता है, इसका अर्थ है, वह उस पर अनुग्रह करता है। दान की परम्परा में असंख्य परिवर्तन हुए हैं। प्रत्येक परिवर्तन के पीछे एक विशिष्ट मान्यता रही है। प्राचीन काल में राजाओं की ओर से दानशालाएं चलती थीं। दुर्भिक्ष आदि में उनकी विशेष व्यवस्था की जाती थी। पद-यात्रियों को भी आहार आदि का दान दिया जाता था। सार्वजनिक कार्यों के लिए दान देने की प्रथा सम्भवतः

१. भ. वृ. १५/२६–'दव्वसुद्धेणं' ति द्रव्यं–ओदनादिकं शुद्धं–उद्गमादि-दोषरहितं यत्र दाने तत्तथा तेन 'दायगसुद्धेणं' ति दायकः शुद्धो यत्राशंसादिदोषरहितत्वात् ततथा तेन।

२. जैनेन्द्र सिद्धांत कोश, खंड २, पृ. ४२१-४२७।

३. भिक्षु विचार दर्शन, पृ. ११६-१२१।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नहीं जैसी थी। उस समय दान समाज-व्यवस्था का एक प्रधान अंग था। उससे पूर्वकाल में जाते हैं तो दान जैसा कोई तत्त्व था ही नहीं। न कोई देने वाला था और न कोई लेनेवाला। भगवान् ऋषभनाथ ने दीक्षा से पूर्व दान देना चाहा, पर कोई लेने वाला नहीं मिला।

भगवान् ऋषभनाथ श्रमण बने। एक वर्ष तक उन्हें कोई भिक्षा देने वाला नहीं मिला, उसके पश्चात् श्रेयांसकुमार ने उन्हें इक्षुरस का दान दिया।

साधुओं को दान देने का प्रवर्तन हुआ तब यह प्रश्न मोक्ष से जुड़ गया। धर्म का अंग बन गया। समाज में दीन-वर्ग की सृष्टि हुई तब दान करुणा से जुड़ गया।

याचकों ने दान की गाथाएं गायीं। दान सर्वोपरि तत्त्व बन गया। इससे अकर्मण्यता बढ़ने लगी, तब दान के लिए पात्र, अपात्र की सीमाएं बनने लगीं। इससे दाताओं का गर्व बढ़ने लगा, तब दाता के स्वरूप की मीमांसा की जाने लगी।

मांगने वालों का लोभ बढ़ गया, तब देय की मीमांसा होने लगी। दान के कारणों का विशद विवेचन हुआ। भारतीय साहित्य के हजारों-लाखों पृष्ठ इन मीमांसाओं से भरे हैं। आचार्य भिक्षु ने इस अध्याय में कुछ पृष्ठ और जोड़ दिए। उन्होंने दान का मोक्ष और संसार की दृष्टि से विश्लेषण किया। उनका अभिमत है कि जो लोग समूचे दान को धर्म मानते हैं, वे धर्म की शैली को नहीं जान पाए हैं। वे आक और गाय के दूध को एक मान रहे हैं।[1] मोक्ष का मार्ग संयम है। असंयमी को दान दिया जाए और उसे मोक्ष का मार्ग बताया जाए—यह विरोध है। दान को धर्म बताए बिना लोग नहीं देते, इसलिए सम्भव है दान को धर्म बताया जाता है।[2]

आचार्य भिक्षु की समूची दान-मीमांसा का सार इन शब्दों में है कि संयमी को दिया जाए, वह दान मोक्ष का मार्ग है और असंयमी को दिया जाए, वह दान संसार का मार्ग है। संयमी को दान देने से संसार घटता है और असंयमी को दान देने से संसार बढ़ता है।[3]

दाता वही होता है जो संयमी या असयंमी सभी को दे।[4] वह पग-पग पर संयमी-असंयमी की परख करने नहीं बैठता। अपने व्यवहार में जिसे संयमी मानता है, उसे मोक्ष-मार्ग की बुद्धि से देता है और जिसे असंयमी मानता है, उसे संसार-मार्ग की बुद्धि से देता है।

निश्चय-दृष्टि का निर्णय व्यवहार-दृष्टि से भिन्न भी हो सकता है। सम्भव है जिसे संयमी माना जाए, वह वास्तव में असंयमी हो और जिसे असंयमी माना जाए, वह वास्तव में संयमी हो। यह व्यक्तिगत बात है। सिद्धान्त की भाषा में यही कहा जा सकता है कि संयमी को दान देना मोक्ष का मार्ग है और असंयमी को दान देना संसार का मार्ग है। संयमी और असंयमी की परिभाषा अपनी-अपनी हो सकती है। आचार्य भिक्षु की भाषा यह है कि जो पूर्ण अहिंसक हो वह संयमी है और जो मनसा, वाचा, कर्मणा, कृत, कारित और अनुमति से अहिंसा का पालन न करे वह असंयमी है।

असंयमी मोक्ष-दान का अधिकारी नहीं है। जिसमें कुछ व्रत हों, वह संयमासंयमी भी मोक्ष-दान का अधिकारी नहीं है। एक आदमी छह काय के जीवों को मारकर दूसरों को खिलाता है, यह हिंसा का मार्ग है।[5] जीवों को मारकर खिलाने में पुण्य बतलाते हैं, वे सिंह की भांति निर्भय होकर नाद नहीं करते। उन्हें पूछने पर मेमने की भांति कांपने लग जाते हैं।[6] जो जीवों को मारकर खिलाने में पुण्य बतलाते हैं, उनकी जीभ तलवार की तरह चलती है।[7]

२. त्रिविध-त्रिकरण शुद्ध दान

इसका तात्पर्य है—कृत, कारित और अनुमोदित तथा मन, वचन और काया की शुद्धि।[8]

३. देवायुष्य का बंध

देव-आयुष्य कर्म-बंध के मुख्य चार हेतु माने गए हैं[9]—१. सराग संयम २. संयमासंयम ३. बालतप ४. अकाम निर्जरा।

प्रस्तुत सूत्र के अनुसार शुद्ध दान भी इसका एक हेतु है।

भगवती सूत्र में ही बताया गया है—गौतम! प्राणों का अतिपात न कर, झूठ न बोल कर, तथारूप श्रमण अथवा माहन को वन्दन-नमस्कार कर यावत् उसकी पर्युपासना कर उसे किसी प्रकार के मनोज्ञ एवं प्रीतिकर अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य से प्रतिलाभित कर—इस प्रकार जीव शुभ दीर्घ आयुष्य वाले कर्म का बंध करते हैं।[10]

दिगम्बर-परम्परा के अनुसार सम्यग्दृष्टि जीव द्वारा सुपात्र को विधिपूर्वक दिया गया दान तथा समाधिपूर्वक मृत्यु अच्युतकल्प तक में उत्पत्ति के हेतु हैं।[11]

---

१. व्रताव्रत, २।१४
समुचे दांन में धर्म कहे तो, नांइ जिण धर्म सेली रे।
आक ने गाय रो दूध अग्यांनी, कर दीयो भेल संभेली रे॥

२. वही, २।१५
इविरत में दांन ले पेलां रो, मोष रो मार्ग बतावे रे।
धर्म कह्यां विण लोक नहीं दे, जब कूर कपट चलावे रे॥

३. वही, १६।५७
सुपातर नें दीयां संसार घटे छे, कुपातर नें दीयां वधे संसार।
ए वीर वचन साचा कर जांणो, तिणमें संका नहीं छे लिगार रे॥

४. वही, १६।५०
पातर कुपातर हर कोइ नें देवे, तिणनें कहीजे दातार।
तिणमें पातर दांन मुगत रो पावडीयो, कुपातर सूं रूले संसार रे॥

५. व्रताव्रत, १७।६
कोइ छ काय जीयां रो गटको करावे, अथवा छ काय मारे नें खवावे।
ओ जीव हिंसा नों राहज खोटो, तिण में एकंत धर्म नें पुन बतावे॥

६. वही, १७।२८
जीव खवायां में पुन परूपे, ते सीह तणी परे कदे न गूंजे।
परगट कहितां भूंडा दीसे, त्यांने प्रश्न पूछ्यां गाडर जिम धूजे॥

७. वही, १७।२६
जीव खवायां में पुन परूपे, त्यां दुष्ट्यां ने कहिजे निश्चे अनारज।
त्यांरी जभिवहे तरवार सूं तीखी, त्यां विकलां रा किण विध सीझसी कारज॥

८. भ. वृ. १५/२६—'तिविहेणं' ति उक्तलक्षणेन त्रिविधेन। अथवा त्रिविधेन कृतकारितानुमतिभेदेन। तिकरणसुद्धेणं त्रिकरणशुद्धेण—मनोवाक्कायशुद्धेन।

९. ओव. सू. ३४।

१०. भ. ७/१२७ का भाष्य।

११. अमितगति श्रावकाचार, ११/१०२।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४. पांच दिव्यों का प्रकटीकरण

१. रत्नों की धारा निपात वृष्टि–'वसुहारा वुट्ठा' का अर्थ वृत्तिकार के अनुसार है–वसुधारा अर्थात् द्रव्यरूपा धारा की वृष्टि।[1]

वसु का एक अर्थ है–रत्न।[2] तदनुसार वसुवृष्टि का अर्थ होगा–'रत्नों की वृष्टि'। यह 'धारा-निपात' के रूप में होने से इसका तात्पर्य होगा। 'रत्नों की धारा निपात वृष्टि'–यह प्रथम दिव्य है। तीर्थंकरों के गर्भ में आने से छह मास पूर्व से लेकर जन्म पर्यन्त उनके जन्म-स्थान में प्रतिदिन तीन वार कुबेर द्वारा साढ़े तीन करोड़ रत्नों की वर्षा होती है।[3]

२. पांच वर्ण वाले फूलों की वृष्टि–पुद्गल में पांच वर्ण पाए जाते हैं जिनके अंतर्गत सभी वर्ण समाहित हो जाते हैं। तीर्थंकरों का एक अतिशय है–बहु वर्ण पुष्प वृष्टि। यह देवकृत अतिशय है–घुटने तक ऊंची पांच रंगवाले फूलों की वृष्टि।[4]

३. ध्वजा फहराने लगी–चेलोत्क्षेप का एक अर्थ होता है–वस्त्रों की वर्षा।[5] ठाणं में भी 'चेलोत्क्षेप' का उल्लेख इस प्रकार आया है–'चार कारणों से देव चेलोत्क्षेप करते हैं–१. अर्हन्तों का जन्म होने पर, २. अर्हन्तों के प्रव्रजित होने के अवसर पर, ३. अर्हन्तों के केवलज्ञान उत्पन्न होने के उपलक्ष में किए जाने वाले महोत्सव पर, ४. अर्हन्तों के परिनिर्वाण–महोत्सव पर।[6] तीर्थंकरों का एक अतिशय है–रत्नमय ध्वज।[7]

४. देवदुन्दुभियां बजी–यह भी तीर्थंकरों का एक अतिशय है।[8]

५. आकाश–अंतराल में 'अहोदानं' 'अहोदानं' की उद्घोषणा–साधना-काल में तपस्या के पारण में जब कोई तीर्थंकर को दान देता है, तब यह उद्घोषणा देवों द्वारा दान की महिमा को दर्शाने हेतु की जाती है।

२७. तए णं रायगिहे नगरे सिंघाडग-तिग--चउक्क-चच्चर-चउम्मुह-महापहपहेसु बहुजणो अण्णमण्णस्स एवमाइक्खइ एवं भासइ एवं पण्णवेइ एवं परूवेइ–धन्ने णं देवाणुप्पिया! विजये गाहावई, कयत्थे णं देवाणुप्पिया! विजये गाहावई, कयपुण्णे णं देवाणुप्पिया विजये गाहावई, कयलक्खे णं देवाणुप्पिया विजये गाहावई, कया णं लोया देवाणुप्पिया! विजयस्स गाहावइस्स, सुलद्धे णं देवाणुप्पिया! माणुस्सए जम्मजीवियफले विजयस्स गाहावइस्स, जस्स णं गिहंसि तहारूवे साधू साधुरूवे पडिलाभिए समाणे इमाइं पंच दिव्वाइं पाउब्भूयाइं, तं जहा–वसुधारा वुट्ठा जाव अहो दाणे, अहो दाणेत्ति घुट्ठे, तं धन्ने कयत्थे कयपुण्णे कयलक्खणे, कया णं लोया, सुलद्धे माणुस्सए जम्मजीवियफले विजयस्स गाहावइस्स, विजयस्स गाहावइस्स॥

ततः राजगृहे नगरे शृंगाटक-त्रिक-चतुष्क-चत्वर-चतुर्मुख-महापथ-पथेषु बहुजनः अन्योन्यम् एवमाख्याति एवं भाषते एवं प्रज्ञापयति एवं प्ररूपयति–धन्यः देवानुप्रियाः! विजयः 'गाहावई', कृतपुण्यः देवानुप्रियाः! विजयः 'गाहावई', कृतार्थः देवानुप्रियाः! विजयः 'गाहावई', कृतलक्षणः देवानुप्रियाः! विजयः 'गाहावई', कृताः लोकाः देवानुप्रियाः! विजयस्य 'गाहावइस्स', सुलब्धं देवानुप्रियाः! मानुष्यकं जन्मजीवितफलं विजयस्य 'गाहावइस्स' यस्य गृहे तथारूपः साधुः साधुरूपे प्रतिलाभिते सति इमानि पञ्च दिव्यानि प्रादुर्भूतानि, तद्यथा–वसुधारा वृष्टा यावत् अहोदानम्, अहोदानम् इति घुष्टम, तत् धन्यः कृतार्थः, कृतपुण्यः, कृतलक्षणः, कृतालोकाः सुलब्धं मानुष्यकं जन्मजीवितफलं विजयस्य 'गाहावइस्स', विजयस्य 'गाहावइस्स'।

२७. राजगृह नगर के शृंगाटकों, तिराहों, चौराहों, चौहटों, चार द्वार वाले स्थानों, राजमार्गों और मार्गों पर बहुजन परस्पर इस प्रकार आख्यान, भाषण, प्रज्ञापना एवं प्ररूपण करते हैं–देवानुप्रिय! गृहपति विजय धन्य है। देवानुप्रिय! गृहपति विजय कृतार्थ है! देवानुप्रिय! गृहपति विजय कृतपुण्य (भाग्यशाली) है। देवानुप्रिय! गृहपति विजय कृतलक्षण (लक्षण-संपन्न) है। देवानुप्रिय! गृहपति विजय ने इहलोक ओर परलोक दोनों को सुधार लिया, देवानुप्रिय! गृहपति विजय ने मनुष्य जन्म और जीवन का फल अच्छी तरह से प्राप्त किया है, जिस गृहपति विजय के घर में तथारूप साधु के साधुरूप में प्रतिलाभित होने पर ये पांच दिव्य प्रकट हुए, जैसे–रत्नों की धारा निपात वृष्टि यावत् आकाश के अंतराल में 'अहोदानम्-अहोदानम्' की उद्घोषणा। इसलिए वह धन्य, कृतार्थ, कृतपुण्य, कृतलक्षण है, उसने इहलोक और परलोक दोनों को सुधारा है, विजय गृहपति ने, विजय गृहपति ने मनुष्य जन्म और जीवन का अच्छा फल प्राप्त किया है।

२८. तए णं से गोसाले मंखलिपुत्ते बहुजणस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म समुप्पन्नसंसए समुप्पन्न-कोउहल्ले जेणेव विजयस्स गाहावइस्स गिहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पासइ विजयस्स

ततः गोशालाः मंखलिपुत्रः बहुजनस्य अन्तिके एतमर्थं श्रुत्वा निशम्य समुत्पन्नसंशयः समुत्पन्न-कुतूहलः यत्रैव विजयस्य 'गाहावइस्स' गृहं तत्रैव उपागच्छति, उपागम्य पश्यति

२८. बहुजन के पास इस अर्थ को सुनकर, अवधारण कर मंखलिपुत्र गोशाल के मन में संशय और कुतूहल उत्पन्न हुआ। जहां गृहपति विजय का घर था, वहां आया, आकर गृहपति विजय के घर रत्नों की धारा

१. भ. वृ. १५/२६–'वसुहारा वुट्ठ' त्ति वसुधारा द्रव्यरूपा वृष्टा।
२. अभि. चि. (नाममाला), ४/१२६।
३. जैनेन्द्र सिद्धांत कोश, खंड २, पृ. ३२१।
४. अभि. चि. (नाममाला), १/६३।
५. नाया. १/१४/८४, पृ. २६१।
६. ठाणं, ४/४४७, पृ. ४१८।
७. अभि. चि. (नाममाला), १/६१।
८. वही, १/६२।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गाहावइस्स गिहंसि वसुहारं वुट्ठं, दसद्धवण्णं कुसुमं निवडियं, ममं च णं विजयस्स गाहावइस्सगिहाओ पडिनिक्खममाणं पासइ, पासित्ता हट्ठतुट्ठे जेणेव ममं अंतिए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता ममं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता ममं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता ममं एवं वयासी—तुब्भे णं भंते! ममं धम्मायरिया, अहण्णं तुब्भं धम्मंतेवासी॥

विजयस्य 'गाहावइस्स' गृहे वसुधारां वृष्टां दशार्धवर्णं कुसुमं निपतितं मां च विजयस्य 'गाहावइस्स' गृहात् प्रतिनिष्क्रान्तं पश्यति, दृष्ट्वा हृष्टतुष्टः यत्रैव मम अन्तिकं तत्रैव उपागच्छति, उपागम्य मां त्रिः आदक्षिण-प्रदक्षिणां करोति, कृत्वा मां वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्यित्वा माम् एवमवादीत्—यूयं भदन्त! मम धर्माचार्याः, अहं तव धर्मान्तेवासी।

निपात वृष्टि तथा पांच वर्ण वाले फूलों की वृष्टि को देखा। गृहपति विजय के घर से मुझे प्रतिनिष्क्रमण करते हुए देखा, देखकर हृष्टतुष्ट हुआ। जहां मैं था, वहां आया, आकर मुझे दांयी ओर से प्रारम्भ कर तीन बार प्रदक्षिणा की, प्रदक्षिणा कर मुझे वंदन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार कर मुझे इस प्रकार बोला—भंते! आप मेरे धर्माचार्य हैं, मैं आपका धर्मान्तेवासी हूं।

२९. तए णं अहं गोयमा! गोसालस्स मंखलिपुत्तस्स एयमट्ठं नो आढामि, नो परिजाणामि, तुसिणीए संचिट्ठामि॥

ततः अहं गौतम! गोशालस्य मंखलिपुत्रस्य एतमर्थं नो आद्रिये, नो परिजानामि, तुष्णीकः सन्तिष्ठते।

२९. गौतम! मंखलिपुत्र गोशाल के इस अर्थ को मैंने आदर नहीं दिया, स्वीकार नहीं किया, मैं मौन रहा।

दोच्च-मासखमण-पदं

३०. तए णं अहं गोयमा! रायगिहाओ नगराओ पडिनिक्खमामि, पडिनिक्खमित्ता नालंदं बाहिरियं मज्झंमज्झेणं निग्गच्छामि, निग्गच्छित्ता जेणेव तंतुवायसाला, तेणेव उवागच्छामि, उवागच्छित्ता दोच्चं मासखमणं उवसंपज्जित्ताणं विहरामि॥

द्वितीय-मासक्षपण-पदम्

ततः अहं गौतम! रागृहात् नगरात् प्रतिनिष्क्रामामि प्रतिनिष्क्रम्य नालन्दां बाहिरिकां मध्यमध्येन निर्गच्छामि, निर्गत्य यत्रैव तन्तुवायशाला तत्रैव उपागच्छामि, उपागम्य द्वितीयं मासक्षपणम् उपसम्पद्य विहरामि।

दूसरा मासखमण-पद

३०. गौतम! मैंने राजगृह नगर से प्रतिनिष्क्रमण किया, प्रतिनिष्क्रमण कर बाहिरिका नालन्दा के बीचोंबीच निर्गमन किया, निर्गमन कर जहां तंतुवायशाला थी, वहां आया, आकर दूसरा मासखमण स्वीकार कर विहार करने लगा।

३१. तए णं अहं गोयमा! दोच्च-मासखमणपारणगंसि तंतुवायसालाओ पडिनिक्खमामि, पडिनिक्खमित्ता नालंदं बाहिरियं मज्झंमज्झेणं निग्गच्छामि, निग्गच्छित्ता जेणेव रायगिहे नगरे तेणेव उवागच्छामि, उवागच्छित्ता रायगिहे नगरे उच्च-नीय-मज्झिमाइं कुलाइं घरसमुदाणस्स भिक्खायरियाए अडमाणे आणंदस्स गाहावइस्स गिहं अणुप्पविट्ठे॥

ततः अहं गौतम! द्वितीयमासक्षपणपारणके तन्तुवायशालायाः प्रतिनिष्क्रामामि, प्रतिनिष्क्रम्य नालन्दां बाहिरिकां मध्यमध्येन निर्गच्छामि, निर्गत्य यत्रैव राजगृहं नगरं तत्रैव उपागच्छामि, उपागम्य राजगृहे नगरे उच्च-नीच-मध्यमानि कुलानि गृहसमुदानस्य भिक्षाचर्यायाम् अटन् आनन्दस्य गाहावइस्स गृहम् अनुप्रविष्टः।

३१. गौतम! मैंने दूसरे मासखमण के पारण में तंतुवायशाला से प्रतिनिष्क्रमण किया, प्रतिनिष्क्रमण कर बाहिरिका नालंदा के बीचोंबीच निर्गमन किया, निर्गमन कर जहां राजगृह नगर था, वहां आया, आकर राजगृह नगर के उच्च, नीच तथा मध्यम कुलों में सामुदानिक भिक्षा के लिए घूमते हुए गृहपति आनन्द के घर में मैंने अनुप्रवेश किया।

३२. तए णं से आणंदे गाहावई ममं एज्जमाणं पासइ, पासित्ता हट्ठतुट्ठ चित्त-माणंदिए णंदिए पीइमणे परमसोमणस्सिए हरिसवसविसप्पमाणहियए खिप्पामेव आसणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठेत्ता पायपीढाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता पाउयाओ ओमुयइ, ओमुइत्ता एगसाडियं उत्तरासंगं करेइ, करेत्ता अंजलिम-उलियहत्थे ममं सत्तट्ठपयाइं अणुगच्छइ, अणुगच्छित्ता ममं तिक्खुत्तो आयाहिण-

ततः सः आनन्दः 'गाहावई' माम् आयन्तं पश्यति, दृष्ट्वा हृष्टतुष्टचित्तः आनन्दितः नन्दितः प्रीतिमनाः परमसौमनस्थितः हर्षवशविसर्पद्हृदयः क्षिप्रमेव आसनात् अभ्युत्तिष्ठति, अभ्युत्थाय पादपीठात् प्रत्यवरोहति, प्रत्यवरुह्य पादुकाः अमुंचति, अवमुच्य एकशाटिकम् उत्तरासंगं करोति कृत्वा अंजलिमुकुलितहस्तः माम् सप्ताष्टपदानि अनुगच्छति,

३२. गृहपति आनन्द ने मुझे आते हुए देखा, देखकर हृष्टतुष्टचित्त वाला, आनंदित, नंदित, प्रीतिपूर्णमन वाला, परम सौमनस्य-युक्त और हर्ष से विकस्वरहृदय वाला हो गया। वह शीघ्र ही आसन से उठा, उठकर पादपीठ से नीचे उतरा, उतरकर पादुका को खोला, खोलकर एक पट वाले वस्त्र से उत्तरासंग किया, उत्तरासंग कर दोनों हाथ जोड़े हुए सात-आठ कदम मेरे सामने आया, आकर मुझे दायीं ओर से प्रारम्भ कर तीन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पयाहिणं करेइ, करेत्ता ममं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता ममं विउलाए खज्जगविहीए पडिलभेस्सामित्ति तुट्ठे, पडिलाभेमाणे वि तुट्ठे, पडिलाभिते वि तुट्ठे॥

अनुगम्य मां त्रिः आदक्षिण-प्रदक्षिणां करोति, कृत्वा मां वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्यित्वा मां विपुलेन खाद्यकविधिना प्रतिलाभयिष्यामि इति तुष्टः प्रतिलाभयन् अपि तुष्टः प्रतिलाभितः अपि तुष्टः।

बार प्रदक्षिणा की, प्रदक्षिणा कर मुझे वंदन-नमस्कार किया। वंदन-नमस्कार कर–मैं महावीर को विपुल खाद्यविधि से प्रतिलाभित करूंगा, यह सोच कर तुष्ट हुआ, प्रतिलाभित करता हुआ भी तुष्ट हुआ प्रतिलाभित करके भी तुष्ट हुआ।

३३. तए णं तस्स आणंदस्स गाहावइस्स तेणं दव्वसुद्धेणं दायगसुद्धेणं पडिगाहगसुद्धेणं तिविहेणं तिकरणसुद्धेणं दाणेणं मए पडिलाभिए समाणे देवाउए निबद्धे, संसारे परित्तीकए, गिहंसि य से इमाइं पंच दिव्वाइं पाउब्भूयाइं, तं जहा–वसुधारा वुट्ठा, दसद्धवण्णे कुसुमे निवातिए, चेलुक्खेवे कए, आहयाओ देवदुंदुभीओ, अंतरा वि य णं आगासे अहो दाणे, अहो दाणेत्ति घुट्ठे॥

ततः तस्य आनन्दस्य 'गाहावइस्स' तेन द्रव्यशुद्धेन दायकशुद्धेन प्रतिग्राहकशुद्धेन त्रिविधेन त्रिकरणशुद्धेन दानेन मयि प्रतिलाभिते सति देवायुष्कनिबद्धः, संसारः परीतीकृतः गृहे च तस्य इमानि पञ्च दिव्यानि प्रादुर्भूतानि, तद् यथा–वसुधारा वृष्टा, दशार्धवर्णः कुसुमः निपातितः, चेलोत्क्षेपः कृतः, आहताः देवदुन्दुभयः, अन्तरा अपि च आकाशे 'अहो दानम् अहो दानम्' इति घुष्टम्।

३३. उस गृहपति आनन्द ने द्रव्यशुद्ध, दाताशुद्ध, प्रतिग्राहक शुद्ध, त्रिविध, त्रिकरण से शुद्ध दान के द्वारा मुझे प्रतिलाभित कर देव-आयुष्य का निबंध किया, संसार को परीत किया, उस समय उसके घर में ये पांच दिव्य प्रकट हुए, जैसे–रत्नों की धारा निपात वृष्टि, पांच वर्ण वाले फूलों की वृष्टि, ध्वजा फहराने लगी, देवदुन्दुभियां बजीं, आकाश के अन्तराल में 'अहो दानम् अहो दानम्' की उद्घोषणा हुई।

३४. तए णं रायगिहे नगरे सिंघाडग-तिग-चउक्क-चच्चर-चउम्मुह-महापह-पहेसु बहुजणो अण्णमण्णस्स एवमाइक्खइ एवं भासइ एवं पण्णवेइ एवं परूवेइ–धन्ने णं देवाणुप्पिया! आणंदे गाहावई, कयत्थे णं देवाणुप्पिया! आणंदे गाहावई, कयपुण्णे णं देवाणुप्पिया! आणंदे गाहावई, कयलक्खणे णं देवाणुप्पिया! आणंदे गाहावई, कया णं लोया देवाणुप्पिया! आणंदस्स गाहावइस्स, सुलद्धे णं देवाणुप्पिया! माणुस्सए जम्मजीवियफले आणंदस्स गाहावइस्स, जस्स णं गिहंसि तहारूवे साधू साधुरूवे पडिलाभिए समाणे इमाइं पंच दिव्वाइं पाउब्भूयाइं, तं जहा वसुधारा वुट्ठा जाव अहो दाणे, अहो दाणे त्ति घुट्ठे, तं धन्ने कयत्थे कयपुण्णे कयलक्खणे, कया णं लोया, सुलद्धे माणुस्सए जम्मजीवियफले आणंदस्स गाहावइस्स, आणंदस्स गाहावइस्स॥

ततः राजगृहे नगरे शृंगाटक-त्रिक-चतुष्क-चत्वर-चतुर्मुख-महापथ-पथेषु बहुजनः अन्योन्यम् एवमाख्याति, एवं भाषते, एवं प्रज्ञापयति, एवं प्ररूपयति–धन्यः देवानुप्रियाः। आनन्दः 'गाहावई', कृतार्थः देवानुप्रियाः! आनन्दः 'गाहावई', कृतपुण्यः देवानुप्रियाः! आनन्दः 'गाहावई', कृतलक्षणः देवानुप्रियाः! आनन्दः 'गाहावई', कृताः लोकाः देवानुप्रियाः आनन्दस्य 'गाहवइस्स', सुलब्धं देवानुप्रियाः! मानुष्यकं जन्मजीवितफलम् आनन्दस्य 'गाहावइस्स' यस्य गृहे तथारूपः साधुः साधुरूपे प्रतिलाभिते सति इमानि पञ्च दिव्यानि प्रादुर्भूतानि, तद्यथा–वसुधारा वृष्टा यावत् अहोदानम्, अहोदानम् इति घुष्टम्, तत् धन्यः कृतार्थः कृतपुण्यः कृतलक्षणः, कृताः लोकाः, सुलब्धं मानुष्यकं जन्मजीवितफलम् आनन्दस्य 'गाहावइस्स', आनन्दस्य 'गाहावइस्स'।

३४. राजगृह नगर के शृंगाटकों, तिराहों, चौराहों, चौहटों, चार द्वार वाले स्थानों, राजमार्गों और मार्गों पर बहुजन परस्पर इस प्रकार आख्यान, भाषण, प्रज्ञापना एवं प्ररूपणा करते हैं–देवानुप्रिय! गृहपति आनंद धन्य है। देवानुप्रिय! गृहपति आनन्द कृतार्थ है। देवानुप्रिय! गृहपति आनन्द कृतपुण्य है। देवानुप्रिय! गृहपति आनन्द कृतलक्षण है। देवानुप्रिय! गृहपति आनंद ने इहलोक और परलोक दोनों को सुधार लिया, देवानुप्रिय! गृहपति आनंद ने मनुष्य जन्म और जीवन का अच्छी तरह से फल प्राप्त किया है, जिस गृहपति आनन्द के घर में तथारूप साधु ने साधुरूप में प्रतिलाभित होने पर ये पांच दिव्य प्रकट हुए, जैसे–रत्नों की धारा निपातवृष्टि यावत् 'अहोदानम्-अहोदानम्' की उद्घोषणा, इसलिए वह धन्य, कृतार्थ, कृतपुण्य, कृतलक्षण है, उसने इहलोक और परलोक दोनों को सुधारा है। गृहपति आनन्द ने, गृहपति आनन्द ने मनुष्य जन्म और जीवन का अच्छा फल प्राप्त किया है।

३५. तए णं से गोसाले मंखलिपुत्ते बहुजणस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म समुप्पन्नसंसए समुप्पन्न-कोउहल्ले जेणेव

ततः गोशालः मंखलिपुत्रः बहुजनस्य अन्तिकम् एतमर्थं श्रुत्वा निशम्य समुत्पन्न-संशयः समुत्पन्नकुतूहलः

३५. बहुजन के पास इस अर्थ को सुनकर, अवधारण कर मंखलिपुत्र गोशाल के मन में संशय और कुतूहल उत्पन्न हुआ। जहां

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आणंदस्स गाहावइस्स गिहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पासइ आणंदस्स गाहावइस्स गिहंसि वसुहारं वुट्ठं, दसद्धवण्णं कुसुमं निवडियं, ममं च णं आणंदस्स गाहावइस्स गिहाओ पडिनिक्खममाणं पासइ, पासित्ता हट्ठतुट्ठे जेणेव ममं अंतिए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता ममं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता ममं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता ममं एवं वयासी—तुब्भे णं भंते! ममं धम्मायरिया, अहण्णं तुब्भं धम्मंतेवासी॥

यत्रैव आनन्दस्य 'गाहावइस्स' गृहं तत्रैव उपागच्छति, उपागम्य पश्यति आनन्दस्य 'गाहावइस्स' गृहे वसुधारां वृष्टाम् दशार्धवर्णं कुसुमं निपतितम्, मां च आनन्दस्य 'गाहावइस्स' गृहात् प्रतिनिष्क्रान्तं पश्यति, दृष्ट्वा हृष्टतुष्टः यत्रैव मम अन्तिकं तत्रैव उपागच्छति, उपागम्य मां त्रिः आदक्षिण-प्रदक्षिणां करोति, कृत्वा मां वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्थित्वा माम् एवमवादीत्—यूयं भदन्तः! मम धर्माचार्याः अहं तव धर्मान्तेवासी।

गृहपति आनन्द का घर था, वहां आया, आकर गृहपति आनन्द के घर रत्नों की धारा निपात वृष्टि तथा पांच वर्णवाले फूलों की वृष्टि को देखा। गृहपति आनन्द के घर से प्रतिनिष्क्रमण करते हुए मुझे देखा, देखकर हृष्टतुष्ट हुआ, जहां मैं था, वहां आया, आकर मुझे दायीं ओर से प्रारम्भ कर तीन बार प्रदक्षिणा कर वंदन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार कर मुझे इस प्रकार बोला—भंते! आप मेरे धर्माचार्य हैं, मैं आपका धर्मान्तेवासी हूं।

३६. तए णं अहं गोयमा! गोसालस्स मंखलिपुत्तस्स एयमट्ठं नो आढामि, नो परिजाणामि, तुसिणीए संचिट्ठामि॥

ततः अहं गौतम! गोशालस्य मंखलि-पुत्रस्य एतमर्थं नो आद्रिये नो परिजानामि, तूष्णीकः सन्तिष्ठे।

३६. गौतम! मंखलिपुत्र गोशाल के इस अर्थ को मैंने आदर नहीं दिया, स्वीकार नहीं किया, मैं मौन रहा।

तच्च-मासखमण-पदं

३७. तए णं अहं गोयमा! रायगिहाओ नगराओ पडिनिक्खमामि, पडि-निक्खमित्ता नालंदं बाहिरियं मज्झं-मज्झेणं निग्गच्छामि, निग्गच्छित्ता जेणेव तंतुवायसाला, तेणेव उवागच्छामि, उवागच्छित्ता तच्चं मासखमणं उवसंपज्जित्ताणं विहरामि॥

तृतीय-मासक्षपण-पदम्

ततः अहं गौतम! राजगृहात् नगरात् प्रतिनिष्क्रामामि, प्रतिनिष्क्रम्य नालन्दां बाहिरिकां मध्यमध्येन निर्गच्छामि, निर्गत्य यत्रैव तन्तुवायशाला तत्रैव उपागच्छामि, उपागम्य तृतीयं मास-क्षपणम् उपसम्पद्य विहरामि।

तीसरा मासखमण-पद

३७. गौतम! मैंने राजगृह नगर से प्रतिनिष्क्रमण किया, प्रतिनिष्क्रमण कर बाहिरिका नालंदा के बीचोंबीच निर्गमन किया, निर्गमन कर जहां तंतुवायशाला थी, वहां आया, आकर तीसरा मासखमण स्वीकार कर विहार करने लगा।

३८. तए णं अहं गोयमा! तच्चमासखमण पारणगंसि तंतुवायसालाओ पडिनिक्ख-मामि, पडिनिक्खमित्ता नालंदं बाहिरियं मज्झंमज्झेणं निग्गच्छामि, निग्गच्छित्ता जेणेव रायगिहे नगरे तेणेव उवाग-च्छामि, उवागच्छित्ता रायगिहे नगरे उच्च-नीय-मज्झिमाइं कुलाइं घर-समुदाणस्स भिक्खायरियाए अडमाणे सुणंदस्स गाह-ावइस्स गिहं अणुपविट्ठे॥

ततः अहं गौतम! तृतीय-मासक्षपण-पारणके तन्तुवायशालायाः प्रति-निष्क्रामामि, प्रतिनिष्क्रम्य नालन्दां बाहिरिकां मध्यमध्येन निर्गच्छामि निर्गत्य यत्रैव राजगृहं नगरं तत्रैव उपागच्छामि उपागम्य राजगृहे नगरे उच्च-नीच-मध्यमानि कुलानि गृह-समुदानस्य भिक्षाचर्यायाम् अटन् सुनन्दस्य 'गाहावइस्स' गृहम् अनुप्रविष्टः।

३८. गौतम! मैंने तीसरे मासखमण के पारण में तंतुवायशाला से प्रतिनिष्क्रमण किया, प्रतिनिष्क्रमण कर बाहिरिका नालंदा के बीचोंबीच निर्गमन किया, निर्गमन कर जहां राजगृह नगर था, वहां आया, आकर राजगृह नगर के उच्च, नीच तथा मध्यम कुलों में सामुदानिक भिक्षाचर्या के लिए घूमते हुए गृहपति सुनंद के घर में मैंने अनुप्रवेश किया।

३९. तए णं से सुणंदे गाहावई ममं एज्ज-माणं पासइ, पासित्ता हट्ठतुट्ठचित्त-माणंदिए णंदिए पीइमणे परम-सोमणस्सिए हरिसवसविसप्पमाणहियए खिप्पामेव आसणाओ अब्भुट्ठेइ अब्भुट्ठेत्ता पायपीढाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता पाउयाओ ओमुयइ,

ततः सः सुनन्दः 'गाहावई' माम् आयन्तं पश्यति, दृष्ट्वा हृष्टतुष्टचित्तः आनन्दितः नन्दितः प्रीतिमनाः परमसौमनस्थितः हर्षवशविसर्पद्हृदयः क्षिप्रमेव आसनात् अभ्युत्तिष्ठति, अभ्युत्थाय पादपीठात् प्रत्यवरोहति, प्रत्यवरुह्य पादुकाः अवमुञ्चति,

३९. गृहपति सुनंद ने मुझे आते हुए देखा, देखकर हृष्टतुष्टचित्त वाला, आनंदित, नंदित, प्रीतिपूर्णमन वाला, परम सौमनस्य-युक्त और हर्ष से विकस्वर हृदय वाला हो गया। वह शीघ्र आसन से उठा, उठकर पादपीठ से नीचे उतरा, उतरकर पादुका को खोला, खोलकर एक पट वाले वस्त्र से

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ओमुइत्ता एगसाडियं उत्तरासंगं करेइ, करेत्ता अंजलिमउलियहत्थे ममं सत्तट्ठपयाइं अणुगच्छइ, अणुगच्छित्ता ममं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता ममं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता ममं विउलेणं सव्वकाम-गुणिएणं भोयणेणं पडिलाभेस्सामित्ति तुट्ठे, पडिलाभेमाणे वि तुट्ठे, पडिलाभिते वि तुट्ठे॥

अवमुच्य एकशाटिकम् उत्तरासंगं करोति, कृत्वा अञ्जलिमुकुलितहस्तः मां सप्ताष्टपदानि अनुगच्छति, अनुगम्य मां त्रिः आदक्षिण-प्रदक्षिणां करोति, कृत्वा मां वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्यित्वा मां विपुलेन सर्वकाम-गुणितेन भोजनेन प्रतिलाभयिष्यामि इति तुष्टः, प्रतिलाभयन् अपि तुष्टः, प्रतिलाभितः अपि तुष्टः।

उत्तरासंग किया, उत्तरासंग कर दोनों हाथ जोड़े हुए सात-आठ कदम मेरे सामने आया, सामने आकर मुझे दायीं ओर से प्रारम्भ कर तीन बार प्रदक्षिणा की, प्रदक्षिणा कर वंदन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार कर मैं महावीर को विपुल सर्वरसयुक्त भोजन से प्रतिलाभित करूंगा, यह सोचकर तुष्ट हुआ, प्रतिलाभित करता हुआ भी तुष्ट हुआ, प्रतिलाभित करके भी तुष्ट हुआ।

४०. तए णं तस्स सुणंदस्स गाहावइस्स तेणं दव्वसुद्धेणं दायगसुद्धेणं पडिगाहगसुद्धेणं तिविहेणं तिकरणसुद्धेणं दाणेणं मए पडिलाभिए समाणे देवाउए निबद्धे, संसारे परित्तीकए, गिहंसि ये से इमाइं पंच दिव्वाइं पाउब्भूयाइं, तं जहा—वसुधारा वुट्ठा, दसद्धवण्णे कुसुमे निवातिए, चेलुक्खेवे कए, आहयाओ देवदुंदुभीओ, अंतरा वि य णं आगासे अहो दाणे, अहो दाणे त्ति घुट्ठे॥

ततः तस्य सुनन्दस्य 'गाहावइस्स' तेन द्रव्यशुद्धेन, दायकशुद्धेन, प्रतिग्राहक-शुद्धेन त्रिविधेन त्रिकरणशुद्धेन दानेन मयि प्रतिलाभिते सति देवायुष्कः निबद्धः, संसारः परीतीकृतः, गृहे च तस्य इमानि दिव्यानि प्रादुर्भूतानि, तद्यथा—वसुधारा वृष्टा, दशार्धवर्णः कुसुमः निपातितः, चेलोत्क्षेपः कृतः, आहताः देवदुन्दुभयः, अन्तरा अपि च आकाशे अहोदानम् अहोदानम् इति घुष्टम्।

४०. उस गृहपति सुनंद ने द्रव्य शुद्ध,दाता शुद्ध, प्रतिग्राहक शुद्ध—इस प्रकार त्रिविध, त्रिकरण से शुद्धदान के द्वारा मुझे प्रतिलाभित कर देवायुष्य का निबंध किया, संसार को परीत किया, उस समय उसके घर में ये पांच दिव्य प्रकट हुए, जैसे—रत्नों की धारा निपातवृष्टि, पांच वर्ण वाले फूलों की वृष्टि, ध्वजा फहराने लगी, देवदुन्दुभियां बजीं, आकाश के अंतराल में 'अहोदानम्-अहोदानम्' की उद्घोषणा हुई।

४१. तए णं रायगिहे नगरे सिंघाडग-तिग--चउक्क-चच्चर-चउम्मुह-महापह-पहेसु बहुजणो अण्णमण्णस्स एमवमाइक्खइ एवं भासइ एवं पण्णवेइ एवं परूवेइ—धन्ने णं देवाणुप्पिया! सुणंदे गाहावई, कयत्थे णं देवाणुप्पिया! सुणंदे गाहावई, कय-पुण्णे णं देवाणुप्पिया! सुणंदे गाहावई, कयलक्खणे णं देवाणुप्पिया! सुणंदे गाहावई, कया णं लोया देवाणुप्पिया! सुणंदस्स गाहावइस्स, सुलद्धे णं देवाणुप्पिया! माणुस्सए जम्म-जीवियफले सुणंदस्स गाहावइस्स, जस्स णं गिहंसि तहारूवे साधू साधुरूवे पडिलाभिए समाणे इमाइं पंच दिव्वाइं पाउब्भूयाइं, तं जहा—वसुधारा वुट्ठा जाव अहो दाणे, अहो दाणे त्ति घुट्ठे, तं धन्ने कयत्थे कयपुण्णे कयलक्खणे, कया णं लोया, सुलद्धे माणुस्सए जम्मजीविय-फले सुणंदस्स गाहावइस्स, सुणंदस्स गा-हावइस्स॥

ततः राजगृहे नगरे शृंगाटक-त्रिक--चतुष्क-चत्वर - चतुर्मुख - महापथ-पथेषु, बहुजनः अन्योन्यम् एवमाख्याति एवं भाषते एवं प्रज्ञापयति एवं प्ररूपयति—धन्यः देवानुप्रियाः! सुनन्दः 'गाहावई', कृतार्थः देवानुप्रियाः! सुनन्दः 'गाहा-वई', कृतपुण्यः देवानुप्रियाः! सुनन्दः 'गाहावई', कृतलक्षणः देवानुप्रियाः! सुनन्दः 'गाहावई', कृताः लोकाः देवानुप्रियाः! सुनन्दस्य 'गाहावइस्स', सुलब्धं देवानुप्रियाः! मानुष्यकं जन्म-जीवितफलं सुनन्दस्य 'गाहावइस्स', यस्य गृहे तथारूपः साधुः साधुरूपे प्रतिलाभिते सति इमानि पञ्च दिव्यानि प्रादुर्भूतानि, तद्यथा—वसुधारा वृष्टा यावद् अहोदानम् अहोदानम् इति घुष्टम्, तत् धन्यः कृतार्थः कृतपुण्यः कृतलक्षणः, कृताः लोकाः, सुलब्धं मानुष्यकं जन्मजीवितफलम् सुनन्दस्य 'गाहावइस्स', सुनन्दस्य 'गाहावइस्स'।

४१. राजगृह नगर के शृंगाटकों, तिराहों, चौराहो, चौहटों, चार द्वार वाले स्थानों, राजमार्गों और मार्गों पर बहुजन परस्पर इस प्रकार आख्यान, भाषण, प्रज्ञापना, एवं प्ररूपण करते हैं—देवानुप्रिय! गृहपति सुनंद धन्य है, देवानुप्रिय! गृहपति सुनंद कृतार्थ है, देवानुप्रिय! गृहपति सुनंद कृतपुण्य है, देवानुप्रिय! गृहपति सुनंद कृतलक्षण है, देवानुप्रिय! गृहपति सुनंद ने इहलोक और परलोक दोनों को सुधार लिया है, देवानुप्रिय! गृहपति सुनंद ने मनुष्य जन्म और जीवन का फल अच्छी तरह से प्राप्त किया है, जिस गृहपति सुनंद के घर में तथारूप साधु के साधुरूप में प्रतिलाभित होने पर ये पांच दिव्य प्रकट हुए, जैसे—रत्नों की धारा निपातवृष्टि यावत् आकाश के अंतराल में 'अहोदानम् अहोदानम्' की उद्घोषणा। इसलिए वह धन्य, कृतार्थ, कृतपुण्य, कृतलक्षण है, उसने इहलोक और परलोक दोनों को सुधारा है, गृहपति सुनंद ने, गृहपति सुनन्द ने मनुष्य जन्म और जीवन का अच्छा फल प्राप्त किया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४२. तए णं से गोसाले मंखलिपुत्ते बहुजणस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म समुप्पन्नसंसए समुप्पन्न-कोउहल्ले जेणेव सुणंदस्स गाहावइस्स गिहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पासइ सुणंदस्स गाहावइस्स गिहंसि वसुहारं वुट्ठं, दसद्धवण्णं कुसुमं निवडियं, ममं च णं सुणंदस्स गाहावइस्स गिहाओ पडिनिक्खममाणं पासइ, पासित्ता हट्ठतुट्ठे जेणेव ममं अंतिए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता ममं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता ममं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता ममं एवं वयासी—तुब्भे णं भंते! ममं धम्मायरिया, अहण्णं तुब्भं धम्मंतेवासी॥

ततः सः गोशालः मंखलिपुत्रः बहुजनस्य अन्तिके एतमर्थं श्रुत्वा निशम्य समुत्पन्न संशयः समुत्पन्नकुतूहलः यत्रैव सुनन्दस्य 'गाहावइस्स' गृहं तत्रैव उपागच्छति, उपागम्य पश्यति सुनन्दस्य 'गाहावइस्स' गृहे वसुधारां वृष्टाम्, दशार्धवर्णं कुसुमं निपतितम्, मां च सुनन्दस्य 'गाहावइस्स' गृहात् प्रतिनिष्क्रान्तं पश्यति, दृष्ट्वा हृष्टतुष्टः यत्रैव मम अन्तिकं तत्रैव उपागच्छति, उपागम्य मां त्रिः आदक्षिण-प्रदक्षिणां करोति, कृत्वा मां वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्यित्वा माम् एवमवादीत्—यूयं भदन्तः! मम धर्माचार्याः, अहं तव धर्मान्तेवासी।

४२. बहुजन के पास इस अर्थ को सुन कर, अवधारण कर, मंखलिपुत्र गोशाल के मन में संशय एवं कुतूहल उत्पन्न हुआ, जहां गृहपति सुनंद का घर था, वहां आया, आ कर गृहपति सुनंद के घर रत्नों की धारा निपात वृष्टि तथा पांच वर्ण वाले फूलों की वृष्टि को देखा। गृहपति सुनंद के घर से मुझे प्रतिनिष्क्रमण करते हुए देखा, देखकर हृष्ट-तुष्ट हुआ, जहां मैं था, वहां आया, आ कर मुझे दायीं ओर से प्रारम्भ कर तीन बार प्रदक्षिणा की, प्रदक्षिणा कर वंदन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार कर मुझसे इस प्रकार बोला—भंते! आप मेरे धर्माचार्य हैं। मैं आपका धर्मान्तेवासी हूं।

४३. तए णं अहं गोयमा! गोसालस्स मंखलिपुत्तस्स एयमट्ठं नो आढामि, नो परिजाणामि, तुसिणीए संचिट्ठामि॥

ततः अहं गौतम! गोशालस्य मंखलिपुत्रस्य एतमर्थं नो आद्रिये, नो परिजानामि, तूष्णीकः सन्तिष्ठे।

४३. गौतम! मंखलिपुत्र गोशाल के इस अर्थ को मैंने आदर नहीं दिया, स्वीकार नहीं किया, मैं मौन रहा।

चउत्थ-मासखमण-पदं

४४. तए णं अहं गोयमा! रायगिहाओ नगराओ पडिनिक्खमामि, पडिनिक्ख-मित्ता नालंदं बाहिरियं मज्झंमज्झेणं निग्गच्छामि, निग्गच्छित्ता जेणेव तंतुवायसाला तेणेव उवागच्छामि, उवागच्छित्ता चउत्थं मासखमणं उवसंपज्जित्ताणं विहरामि॥

चतुर्थ-मासक्षपण-पदम्

ततः अहं गौतम! राजगृहात् नगरात् प्रतिनिष्कामामि, प्रतिनिष्क्रम्य नालन्दां बाहिरिकां मध्यमध्येन निर्गच्छामि, निर्गत्य यत्रैव तन्तुवायशाला तत्रैव उपागच्छामि, उपागम्य चतुर्थं मासक्षपणम् उपसम्पद्य विहरामि।

चतुर्थ मासखमण-पद

४४. गौतम! मैंने राजगृह नगर से प्रतिनिष्क्रमण किया, प्रतिनिष्क्रमण कर बाहिरिका नालंदा के बीचोंबीच निर्गमन किया, निर्गमन कर जहां तंतुवायशाला थी, वहां आया, आकर चतुर्थ मासखमण स्वीकार कर विहार करने लगा।

४५. तीसे णं नालंदाए बाहिरियाए अदूरसामंते, एत्थ णं कोल्लाए नामं सण्णिवेसे होत्था—सण्णिवेस-वण्णओ। तत्थ णं कोल्लाए सण्णिवेसे बहुले नामं माहणे परिवसइ—अड्ढे जाव बहुजणस्स अपरिभूए, रिउव्वेय जाव बंभण्णएसु परिव्वाएसु य नयेसु सुपरिनिट्ठिए यावि होत्था॥

तस्याः च नालन्दायाः बाहिरिकायाः अदूरसामन्तम् अत्र च कोल्लाकः नाम सन्निवेशः आसीत्—सन्निवेशः-वर्णकः। तत्र च कोल्लाके सन्निवेशे बहुलः नाम माहनः परिवसति आढ्यः यावत् बहुजनस्य अपरिभूतः, ऋग्वेद यावत् ब्राह्मण्यकेषु परिव्राजकेषु च नयेषु सुपरिनिष्ठितः चापि आसीत्।

४५. उस बाहिरिका नालंदा के न अति दूर और न अति निकट कोल्लाक नाम का सन्निवेश था—सन्निवेश वर्णक। उस कोल्लाक सन्निवेश में बहुल नाम का ब्राह्मण रहता था—आढ्य यावत् बहुजन के द्वारा अपरिभूत, ऋग्वेद यावत् अनेक ब्राह्मण और परिव्राजक संबंधी नयों में निष्णात था।

४६. तए णं से बहुले माहणे कत्तिय-चाउम्मासियपाडिवगंसि विउलेणं महुघयसंजुत्तेणं परमण्णेणं माहणे आयामेत्था॥

ततः सः बहुलः माहनः कार्तिक-चातुर्मासिकप्रतिपदि विपुलेन मधुघृतसंयुक्तेन परमान्नेन माहनान् आचामयत्।

४६. बहुल ब्राह्मण ने कार्तिक चातुर्मासिक प्रतिपदा के दिन को मधु-घृत-संयुक्त परमान्न से ब्राह्मणों को आचमन कराया-भोजन कराया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४७. तए णं अहं गोयमा! चउत्थ-मास-खमणपारणगंसि तंतुवायसालाओ पडिनिक्खिमामि, पडिनिक्खमित्ता नालंदं बाहिरियं मज्झंमज्झेणं निग्गच्छामि, निग्गच्छित्ता जेणेव कोल्लाए सण्णिवेसे तेणेव उवागच्छामि, उवागच्छित्ता कोल्लाए सण्णिवेसे उच्च-नीय-मज्झिमाइं कुलाइं घर-समुदाणस्स भिक्खायरियाए अडमाणे बहुलस्स माहणस्स गिहं अणुप्पविट्ठे॥

ततः अहं गौतम! चतुर्थ-मासक्षपण-पारणके तन्तुवायशालायाः प्रतिनिष्क्रामामि, प्रतिनिष्क्रम्य नालन्दां बाहिरिकां मध्यमध्येन निर्गच्छामि, निर्गत्य यत्रैव कोल्लाकः सन्निवेशः तत्रैव उपागच्छामि, उपागम्य कोल्लाके सन्निवेशे उच्च-नीच-मध्यमानि कुलानि गृहसमुदानस्य भिक्षाचर्याम् अटन् बहुलस्य माहनस्य गृहम् अनुप्रविष्टः।

४७. गौतम! मैंने चतुर्थ मासखमण के पारण में तंतुवायशाला से प्रतिनिष्क्रमण किया। प्रतिनिष्क्रमण कर बाहिरिका नालंदा के बीचोंबीच निर्गमन किया, निर्गमन कर जहां कोल्लाक सन्निवेश था, वहां आया, आकर कोल्लाक सन्निवेश के उच्च, नीच तथा मध्यम कुलों में सामुदानिक भिक्षाचर्या के लिए घूमते हुए बहुल ब्राह्मण के घर में मैंने अनुप्रवेश किया।

४८. तए णं से बहुले माहणे ममं एज्जमाणं पासइ, पासित्ता हट्ठतुट्ठचित्तमाणंदिए णंदिए पीइमणे परमसोमणस्सिए हरिस-वसविसप्पमाणहियए खिप्पामेव आसणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठेत्ता पाय-पीढाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता पाउयाओ ओमुयइ, ओमुइत्ता एगसाडियं उत्तरा संगं करेइ, करेत्ता अंजलिम-उलियहत्थे ममं सत्तट्ठपयाइं अणुगच्छइ, अणुगच्छित्ता ममं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता ममं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता ममं विउलेणं महुघयसंजुत्तेणं परमण्णेणं पडिला-भेस्सामित्ति तुट्ठे, पडिलाभेमाणे वि तुट्ठे, पडिलाभिते वि तुट्ठे॥

ततः सः बहुलः माहनः माम् आयन्तं पश्यति, दृष्ट्वा हृष्टतुष्टचित्तः आनन्दितः नन्दितः प्रीतिमनाः परमसौमनस्यितः हर्षवशविसर्पद्हृदयः क्षिप्रमेव आसनात् अभ्युत्तिष्ठति, अभ्युत्थाय पादपीठात् प्रत्यवरोहति प्रत्यवरुह्य पादुकाः अवमुञ्चति, अवमुच्य एकशाटिकम् उत्तरासंगं करोति, कृत्वा अञ्जलिमुकुलितहस्तः मां सप्ताष्टपदानि अनुगच्छति अनुगम्य मां त्रिः आदक्षिण-प्रदक्षिणां करोति, कृत्वा मां वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्यित्वा मां विपुलेन मधुघृत-संयुक्तेन परमान्नेन प्रतिलाभयिष्यामि इति तुष्टः, प्रतिलाभयन् अपि तुष्टः, प्रतिलाभिते अपि तुष्टः।

४८. बहुल ब्राह्मण ने मुझे आते हुए देखा, देखकर हृष्टतुष्टचित्त वाला, आनंदित, नंदित, प्रीतिपूर्णमन वाला, परम सौमनस्य युक्त तथा हर्ष से विकसकर हृदय वाला हो गया। वह शीघ्र ही आसन से उठा, उठकर पादपीठ से नीचे उतरा, उतरकर पादुका को खोला, खोलकर एक पट वाले वस्त्र से उत्तरासंग किया, उत्तरासंग कर दोनों हाथ जोड़े हुए सात-आठ कदम मेरे सामने आया, आकर मुझे दायीं ओर से प्रारम्भ कर तीन बार प्रदक्षिणा की, प्रदक्षिणा कर वंदन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार कर-मैं महावीर को विपुल मधु-घृत-संयुक्त परमान्न से प्रतिलाभित करूंगा, यह सोचकर तुष्ट हुआ, प्रतिलाभित करता हुआ भी तुष्ट हुआ, प्रतिलाभित करके भी तुष्ट हुआ।

४९. तए णं तस्स बहुलस्स माहणस्स तेणं दव्वसुद्धेणं दायगसुद्धेणं पडिगाहगसुद्धेणं तिविहेणं तिकरणसुद्धेणं दाणेणं मए पडिलाभिए समाणे देवाउए निबद्धे संसारे परित्तीकए, गिहंसि य से इमाइं पंच दिव्वाइं पाउब्भूयाइ, तं जहा-वसुधारा वुट्ठा, दसद्धवण्णे कुसुमे निवातिए, चेलु-क्खेवे कए, आहयाओ देवदुंदुभीओ, अंतरा वि य णं आगासे अहो दाणे, अहो दाणेत्ति घुट्ठे॥

ततः तस्य बहुलस्य माहनस्य तेन द्रव्यशुद्धेन, दायकशुद्धेन, प्रतिग्राहक-शुद्धेन, त्रिविधेन त्रिकरणशुद्धेन दानेन मयि प्रतिलाभिते सति देवायुष्कः निबद्धः, संसारः परीतीकृतः, गृहे च तस्य इमानि पञ्च दिव्यानि प्रादुर्भूतानि, तद्यथा-वसुधारा वृष्टा, दशार्धवर्णः कुसुमः निपातितः, चेलोत्क्षेपः कृतः, आहताः देवदुन्दुभयः, अन्तरा अपि च आकाशे अहोदानम् अहोदानम् इति घुष्टम्।

४९. बहुल ब्राह्मण ने द्रव्य शुद्ध, दाता शुद्ध, प्रतिग्राहक शुद्ध, त्रिविध त्रिकरण से शुद्धदान के द्वारा मुझे प्रतिलाभित कर देवायुष्य का निबंध किया, संसार को परीत किया, उसके घर पांच दिव्य प्रकट हुए, जैसे-रत्नों की धारा निपात वृष्टि, पांच वर्णवाले फूलों की वृष्टि, ध्वजा फहराने लगी, देवदुन्दुभियां बजीं, आकाश के अंतराल में 'अहोदानम्-अहोदानम्' की उद्घोषणा हुई।

५०. तए णं रायगिहे नगरे सिंघाडग-तिग-चउक्क-चच्चर-चउम्मुह-महापह-पहेसु बहुजणो अण्णमण्णस्स एवमाइक्खइ एवं भासइ एवं पण्णवेइ एवं परूवेइ-धन्ने णं देवाणुप्पिया! बहुले माहणे, कयत्थे णं

ततः राजगृहे नगरे शृंगाटक-त्रिक-चतुष्क-चत्वर-चतुर्मुख-महापथ-पथेषु बहुजनः अन्योन्यम् एवमाख्याति एवं भाषते एवं प्रज्ञापयति एवं प्ररूपयति-धन्यः देवानुप्रियाः! बहुलः माहनः,

५०. राजगृह नगर के शृंगाटकों, तिराहों, चौराहों, चौहटों, चार द्वार वाले स्थानों, राजमार्गों और मार्गों पर बहुजन परस्पर इस प्रकार आख्यान, भाषण, प्रज्ञापन एवं प्ररूपण करते हैं-देवानुप्रिय! बहुल ब्राह्मण

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

देवाणुप्पिया! बहुले माहणे, कयपुण्णे णं देवाणुप्पिया! बहुले माहणे, कयलक्खणे णं देवाणुप्पिया! बहुले माहणे, कया णं लोया देवाणुप्पिया! बहुलस्स माहणस्स, सुलद्धे णं देवाणुप्पिया! माणुस्सए जम्मजीवियफले बहुलस्स माहणस्स, जस्स णं गिहंसि तहारूवे साधू साधुरूवे पडिलाभिए समाणे इमाइं पंच दिव्वाइं पाउब्भूयाइं, तं जहा–वसुधारा वुट्ठा जाव अहो दाणे, अहो दाणेत्ति घुट्ठे, तं धन्ने कयत्थे कयपुण्णे कयलक्खणे, कया णं लोया, सुलद्धे माणुस्सए जम्मजीवियफले बहुलस्स माहणस्स, बहुलस्स माहणस्स॥

कृतार्थः देवानुप्रियाः। बहुलः माहनः, कृतपुण्यः देवानुप्रियाः! बहुलः माहनः, कृतलक्षणः देवानुप्रियाः! बहुलः माहनः, कृताः लोकाः देवानुप्रियाः! बहुलस्य माहनस्य, सुलब्धं देवानुप्रियाः! मानुष्यकं जन्मजीवित-फलं बहुलस्य माहनस्य, यस्य गृहे तथारूपः साधुः साधुरूपे प्रतिलाभिते सति इमानि पञ्च दिव्यानि प्रादुर्भूतानि, तद् यथा–वसुधारा वृष्टा यावत् अहोदानम्-अहोदानम्, इति घुष्टम्, तत् धन्यः कृतार्थः कृतपुण्यः कृतलक्षणः, कृताः लोकाः, सुलब्धं मानुष्यकं जन्मजीवितफलं बहुलस्य माहनस्य, बहुलस्य माहनस्य।

धन्य है, देवानुप्रिय! बहुल ब्राह्मण कृतार्थ है, देवानुप्रिय! बहुल ब्राह्मण कृतपुण्य है, देवानुप्रिय! बहुल ब्राह्मण कृतलक्षण है, देवानुप्रिय! बहुल ब्राह्मण ने इहलोक और परलोक दोनों को सुधार लिया है, देवानुप्रिय! बहुल ब्राह्मण ने मनुष्य जन्म और जीवन का फल अच्छी तरह से प्राप्त किया है, जिस बहुल ब्राह्मण के घर में तथारूप साधुके साधु रूप में प्रतिलाभित होने पर ये पांच दिव्य प्रकट हुए, जैसे–रत्नों की धारा निपात वृष्टि यावत् 'अहोदानम्-अहोदानम्' की उद्घोषणा। इसलिए वह धन्य, कृतार्थ, कृतपुण्य, कृतलक्षण है। उसने इहलोक और परलोक दोनों को सुधारा है। बहुल ब्राह्मण ने, बहुल ब्राह्मण ने मनुष्य जन्म और जीवन का अच्छा फल प्राप्त किया है।

५१. तए णं से गोसाले मंखलिपुत्ते ममं तंतुवायसालाए अपासमाणे रायगिहे नगरे सब्भिंतरबाहिरियाए ममं सव्वओ समंता मग्गण-गवेसणं करेइ, ममं कत्थवि सुतिं वा खुतिं वा पवत्तिं वा अलभमाणे जेणेव तंतुवायसाला तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता साडियाओ य पाडियाओ य कुंडियाओ य वाहणाओ य चित्तफलगं च माहणे आयामेइ, आया-मेत्ता सउत्तरोट्ठं भंडं कारेइ, कारेत्ता तंतुवायसालाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता नालंदं बाहिरियं मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव कोल्लाए सण्णिवेसे तेणेव उवागच्छइ॥

ततः सः गोशालः मंखलिपुत्रः मां तन्तुवायशालायाम् अपश्यन् राजगृहे नगरे साभ्यन्तरबाहिरिकायां मां सर्वतः समन्तात् मार्गणा-गवेषणां करोति, मम कुत्रापि श्रुतिं, क्षुतिं, प्रवृत्तिं वा अलभमानः यत्रैव तन्तुवायशाला तत्रैव उपागच्छति, उपागम्य शाटिकाः च पाटिकाः च कुण्डिकाः च उपानहः च चित्रफलकं च माहनान् आयच्छति, आयम्य ('आयामेत्ता' दे) सोत्तरोष्ठं भण्डं (भंडं) कारयति, कारयित्वा तन्तुवायशालायाः प्रतिनिष्क्रामति, प्रतिनिष्क्रम्य नालन्दां बाहिरिकां मध्यमध्येन निर्गच्छति, निर्गत्य यत्रैव कोल्लाकः सन्निवेशः तत्रैव उपागच्छति।

५१. तंतुवायशाला में मुझे न देखकर मंखलिपुत्र गोशाल ने राजगृह नगर के भीतर, बाहर चारों ओर मार्गणा-गवेषणा की। कहीं भी न मेरा शब्द सुनाई दिया, न छींक सुनाई दी और न कोई वार्ता। (मुझे कहीं भी न पाकर, वह वापिस) जहां तंतुवायशाला थी वहां आया, आकर शाटिका, उत्तरीय वस्त्र, भोजन आदि के बर्तन, पदत्राण, चित्रफलक आदि ब्राह्मण को दे दिए, देकर मस्तक तथा दाढी मूंछ का मुंडन कराया, कराकर तंतुवायशाला से प्रतिनिष्क्रमण किया, प्रतिनिष्क्रमण कर बाहिरिका नालंदा के बीचोंबीच निर्गमन किया, निर्गमन कर जहां कोल्लाक सन्निवेश था, वहां आया।

५२. तए णं तस्स कोल्लागस्स सण्णि-वेसस्स बहिया बहुजणो अण्णमण्णस्स एवमाइक्खइ जाव परूवेइ–धन्ने णं देवाणुप्पिया! बहुले माहणे, कयत्थे णं देवाणुप्पिया! बहुले माहणे, कयपुण्णे णं देवाणुप्पिया! बहुले माहणे, कयलक्खणे णं देवाणुप्पिया! बहुले माहणे, कया णं लोया देवाणुप्पिया! बहुलस्स माहणस्स, सुलद्धे णं देवाणुप्पिया! माणुस्सए जम्मजीवियफले बहुलस्स माहणस्स, बहुलस्स माहणस्स॥

ततः तस्य कोल्लाकस्य सन्निवेशस्य बहिस्तात् बहुजनः अन्योन्यं एवमा-ख्याति यावत् प्ररूपयति–धन्यः देवानुप्रियाः! बहुलः माहनः, कृतार्थः देवानुप्रियाः! बहुलः माहनः, कृतपुण्यः देवानुप्रियाः! बहुलः माहनः, कृत-लक्षणः देवानुप्रियाः! बहुलः माहनः, कृताः लोकाः देवानुप्रियाः! बहुलस्य माहनस्य, सुलब्धं देवानुप्रियाः! मानुष्यकं जन्मजीवितफलं बहुलस्य माहनस्य, बहुलस्य माहनस्य।

५२. उस कोल्लाक सन्निवेश के बाहर बहुजन परस्पर इस प्रकार का आख्यान यावत् प्ररूपण करते हैं–देवानुप्रिय! बहुल ब्राह्मण धन्य है, देवानुप्रिय! बहुल ब्राह्मण कृतार्थ है, देवानुप्रिय! बहुल ब्राह्मण कृतपुण्य है, देवानुप्रिय! बहुल ब्राह्मण कृतलक्षण है, देवानुप्रिय! बहुल ब्राह्मण ने इहलोक और परलोक–दोनों को सुधारा है, देवानुप्रिय! बहुल ब्राह्मण ने, बहुल ब्राह्मण ने मनुष्य जन्म और जीवन का अच्छा फल प्राप्त किया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गोसालस्स सिस्सरूवेण अंगीकरण-पदं

५३. तए णं तस्स गोसालस्स मंखलिपुत्तस्स बहुजणस्स अंतियं एयमट्ठं सोच्चा निसम्म अयमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था—जारिसिया णं ममं धम्मायरियस्स धम्मोवदेसगस्स समणस्स भगवओ महावीरस्स इड्ढी जुती जसे बले वीरिए पुरिसक्कार-परक्कमे लद्धे पत्ते अभिसमण्णागए, नो खलु अत्थि तारिसिया अण्णस्स कस्सइ तहारूवस्स समणस्स वा माहणस्स वा इड्ढी जुती जसे बले वीरिए पुरिसक्कार-परक्कमे लद्धे पत्ते अभिसमण्णागए, तं निस्संदिद्धं णं एत्थं ममं धम्मायरिए धम्मोवदेसए समणे भगवं महावीरे भविस्सतीति कट्टु कोल्लाए सण्णिवेसे सब्भिंतरबाहिरिए ममं सव्वओ समंता मग्गण-गवेसणं करेइ, ममं सव्वओ समंता मग्गण-गवेसणं करेमाणे 'कोल्लागस्स सण्णिवेसस्स' बहिया पणियभूमीए मए सद्धिं अभिसमण्णागए॥

गोशालस्य शिष्यरूपेण अंगीकरण-पदम्

ततः तस्य गोशालस्य मंखलिपुत्रस्य बहुजनस्य अन्तिकम् एतमर्थं श्रुत्वा निशम्य अयमेतद्रूपः आध्यात्मिकः चिन्तितः प्रार्थितः मनोगतः संकल्पः समुदपादि—यादृशी मम धर्माचार्यस्य धर्मोपदेशकस्य श्रमणस्य भगवतः महावीरस्य ऋद्धिः, द्युतिः, यशः, बलं, वीर्यं, पुरुषाकार-पराक्रमः लब्धः प्राप्तः अभिसमन्वागतः, नो खलु अस्ति तादृशी अन्यस्य कस्यचित् तथारूपस्य श्रमणस्य वा माहनस्य वा ऋद्धिः, यशः, बलं, वीर्यं, पुरुषाकार-पराक्रमः लब्धः प्राप्तः अभिसमन्वागतः, तत् निस्संदिग्धम् अत्र मम धर्माचार्यः धर्मोपदेशकः श्रमणः भगवान् महावीरः भविष्यति इति कृत्वा कोल्लाके सन्निवेशे साभ्यन्तरबाह्यके मम सर्वतः समन्तात् मार्गण-गवेषणां करोति, मम सर्वतः समन्तात् मार्गण-गवेषणां कुर्वन् 'कोल्लाकस्य सन्निवेशस्य' बहिस्तात् प्रणीतभूम्यां मया सार्धम् अभिसमन्वागतः।

गोशाल का शिष्य रूप में अंगीकरण-पद

५३. 'बहुजन के पास इस अर्थ को सुनकर, अवधारण कर मंखलिपुत्र गोशाल के मन में इस प्रकार का आध्यात्मिक, स्मृत्यात्मक, अभिलाषात्मक मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ—मेरे धर्माचार्य, धर्मोपदेशक श्रमण भगवान् महावीर की जैसी ऋद्धि, द्युति, यश, बल, वीर्य और पुरुषकार-पराक्रम, लब्ध, प्राप्त और अभिसमन्वागत है, अन्य किसी तथारूप श्रमण अथवा ब्राह्मण को वैसी ऋद्धि, द्युति, यश, बल, वीर्य, पुरुषकार-पराक्रम लब्ध, प्राप्त और अभिसमन्वागत नहीं है, इसलिए निस्संदेह मेरे धर्माचार्य धर्मोपदेशक श्रमण भगवान् महावीर होंगे, यह सोचकर उसने कोल्लाक सन्निवेश के भीतर-बाहर चारों ओर मेरी मार्गणा-गवेषणा की, चारों ओर मार्गणा-गवेषणा करते हुए कोल्लाक सन्निवेश के बाहर प्रणीतभूमि में वह मेरे साथ हो गया।

५४. तए णं से गोसाले मंखलिपुत्ते हट्ठतुट्ठे ममं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता ममं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—तुब्भे णं भंते! मम धम्मायरिया, अहण्णं तुब्भं अंतेवासी॥

ततः सः गोशालः मंखलिपुत्रः हृष्टतुष्टः मां त्रिः आदक्षिण-प्रदक्षिणां करोति, कृत्वा मां वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्यित्वा एवमवादीत्—यूयं भदन्ताः! मम धर्माचार्याः, अहं तव अन्तेवासी।

५४. मंखलिपुत्र गोशाल ने हृष्ट-तुष्ट होकर मुझे दायीं ओर से प्रारम्भ कर तीन बार प्रदक्षिणा की, प्रदक्षिणा कर मुझे वंदन नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार कर इस प्रकार बोला—भंते! आप मेरे धर्माचार्य हैं, मैं आपका अंतेवासी हूं।

५५. तए णं अहं गोयमा! गोसालस्स मंखलिपुत्तस्स एयमट्ठं पडिसुणेमि॥

ततः अहं गौतमः गोशालस्य मंखलिपुत्रस्य एतमर्थं प्रतिशृणोमि।

५५. गौतम! मैंने मंखलिपुत्र गोशाल के इस अर्थ को स्वीकार कर लिया।

५६. तए णं अहं गोयमा! गोसालेणं मंखलिपुत्तेणं सद्धिं पणियभूमीए छव्वासाइं लाभं अलाभं सुहं दुक्खं सक्कारमसक्कारं पच्चणुब्भवमाणे अणिच्चजागरियं विहरित्था॥

ततः अहं गौतम! गोशालेन मंखलिपुत्रेण सार्धं प्रणीतभूम्यां षड्वर्षाणि लाभम् अलाभं सुखं दुःखं सत्कारम् असत्कारं प्रत्यनुभवन् अनित्य-जागरिकां व्यहरत्।

५६. गौतम! मैंने मंखलिपुत्र गोशाल के साथ प्रणीतभूमि में छह वर्ष तक लाभ-अलाभ, सुख-दुःख, सत्कार-असत्कार का प्रत्यनुभव करते हुए अनित्य जागरिका का प्रयोग किया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भाष्य

सूत्र ५३-५६

१. प्रणीतभूमि

'पणियभूमीए'–इसका प्रयोग यहां दो बार–सू. ५३ तथा सू. ५६ में किया गया है। इसी शतक के सू. ८५ में भी 'पणिय' शब्द का प्रयोग 'पण्य' अर्थ में किया गया है। किन्तु प्रस्तुत सूत्र में यह 'प्रणीतभूमि' अर्थात् 'रमणीक भूमि' के अर्थ में प्रयुक्त है। टीकाकार अभयदेवसूरि ने इसके दो वैकल्पिक अर्थ दिए हैं–

१. भाण्डविश्रामस्थान

२. मनोज्ञभूमि।[1]

श्रीमज्जयाचार्य ने इसे 'रमणीक महि' बताया है।[2] पज्जोसवणाकप्पो[3] में भगवान् महावीर के वर्षावासों की सूची इस प्रकार दी गई है–

१ अस्थिग्राम

३ चंपा-पृष्ठचंपा

१२ वैशाली-वाणिज्य ग्राम

१४ राजगृह-नालंदा-बाहिरिका

६ मिथिला

२ भद्दिया

१ आलंभिया

१ पणियभूमि

१ पावा

इस सूची में आए हुए 'पणियभूमि' से तात्पर्य निकलता है–भगवान् महावीर ने एक वर्षावास जो 'अनार्य भूमि' में किया, उसका उल्लेख यहां 'पणियभूमि' से किया गया है।[4] आवश्यक चूर्णि के अनुसार भगवान् महावीर ने अनार्य भूमि में दो बार प्रवास किया था–अपने साधना-काल में पांचवें वर्ष में तथा नवें वर्ष में।[5] आचारांगभाष्य के अनुसार ''लाढ प्रदेश उपसर्ग-बहुल था। वहां विचरण करना दुष्कर होता था। इसलिए वह प्रदेश दुश्चर कहलाता था। भगवान् ने आठवां चातुर्मास राजगृह में बिताया। वहां से विहार कर वे वज्रभूमि गए। इससे ज्ञात होता है कि साधनाकाल के नौवें वर्ष में भगवान् का विहार अनार्य-देश में हुआ।

''चूर्णिकार के अनुसार वे वहां छह महीने तक रहे। आवश्यक चूर्णि के अनुसार यह ज्ञात होता है कि भगवान् ने अनार्य देश से आश्विन मास में निष्क्रमण किया था।

''भगवान् ने नौवां चातुर्मास वज्रभूमि में किया था, ऐसा प्रतीत होता है। पर्युषणाकल्प में 'एगं पणियभूमीए' ऐसा निर्देश है।''

पांचव वर्ष में केवल शेषकालीन प्रवास था, वर्षावास नहीं। नवें वर्ष का वर्षावास लाढ (राढ-देश), वज्र-भूमि और सुम्हभूमि में

---

१. (क) भ. वृ १५/५३–'पणियभूमीए' त्ति पणितभूमौ–भाण्डविश्रामस्थाने प्रणीतभूमौ वा–मनोज्ञभूमौ।
(ख) वही, १५/५६–'पणिएभूमीए' त्ति पणितभूमेरारभ्य प्रणीतभूमौ वा-मनोज्ञभूमौ विहृतवानिति योगः।

२. भ. जो. खं. ४, पृ. ३१२, शतक १५, पद्य १८५–
कोल्लाग सन्निवेस रै, बाहिर महि रमणीक।

३. नवसुत्ताणि, पृ. ५२६, पज्जोवसणाकप्पो, सू. ८३–तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे अट्ठियगामं नीसाए पढमं अंतरावासं वासादासं उवागए। चंपं च पिट्ठिचंपं च नीसाए तओ अंतरावासे वासावासं उवागए। वेसालिं नगरिं वाणियगामं च नीसाए दुवालस अंतरावासे वासावासं उवागए। रायगिहं नगरं नालंदं च बाहिरियं नीसाए चोद्दस अंतरावासे वासावासं उवागए। छ मिहिलाए, दो भद्दियाए, एगं आलभियाए, एगं सावत्थीए, एगं पणियभूमीए, एगं पावाए मज्झिमाए हत्थिपालगस्स रण्णो रज्जुगसभाए अपच्छिमं अंतरावासं वासावासं उवागए॥

४. अनार्य भूमि में आदिवासियों के बीच भगवान महावीर के प्रवासों का बहुत ही रोचक एवं तथ्यात्मक विवरण आयारो, आवश्यक चूर्णि आदि में उपलब्ध है जिसके आधार पर श्रमण महावीर पृ. ३४-४० में व्याख्या की गई है।

५. (क) आव. चू., पूर्वभाग, पृ. २६०–'भगवं चिंतेति–बहुं कम्मं निज्जरेयव्वं लाढादिसियं वच्चामि, ते अणारिया, तत्थ णिज्जरेमि, तत्थ भगवं अत्थारिय दिट्ठंतं करेति, ततो भगवं निग्गतो लाढविसयं पविट्ठो, कम्मनिज्जरातुरितो, तत्थ हीलणनिंदणाहिं बहुं निज्जरेति जहा बंभचेरेसु.....एवं विहरंता भद्दियं णगरीं गता, तत्थ वासारत्ते चाउम्मास-खमणेण अच्छति, विचित्तं तवोकम्मं ठाणादीहिं। एत्थ गाथाओ–
घोरा मंडव.....उवसग्गो॥४८०
लाढेसु व उवसग्गा घोरा पुन्नेकलसा य दो तेणा।
वज्जहया सक्केणं भद्दिय वासासु चउम्मासो॥४८१
(ख) आयारो, ६/३/१-१४; आ. चू., पृ. ३१७-३२०।
(ग) आचारांगभाष्यम्, पृष्ठ ४३१-४३७–लाढप्रदेशे उपसर्गबहुलत्वात् चरणं दुष्करमासीत्, तेन स दुश्चरः प्रोक्तः। भगवान् अष्टमं वर्षावासं राजगृहे कृतवान्। ततो विहारं कृत्वा वज्रभूमौ गतवान्। अनेन ज्ञायते साधनाकालस्य नवमे वर्षे अनार्यदेशे भगवतो विहारः जातः। (आवश्यकचूर्णि, पूर्वभाग, पृ. २६६ : ततो विहरंता रायगिहं गता। तत्थ अट्ठमं वासारत्तं। .....ताहे लाढा वज्जभूमिं सुद्धभूमिं च वच्चति।) तत्र भगवान् षण्मासावधिं तस्थिवान् इति चूर्णि-निर्देशः। (आचारांग चूर्णि, पृ. ३१६ : एवं तत्थ छम्मासे अच्छितो भगवं) आवश्यकचूर्ण्यनुसारेण ज्ञायते भगवान् अनार्यदेशात् प्रथमशरदि–आश्विनमासे निष्क्रमणं कृतवान्। (आवश्यक चूर्णि, पूर्वभाग, पृ. २६७ : ततो निग्गया पढमसरयदे, सिद्धत्थपुरं गता, सिद्धत्थपुराओ य कुंमागामं संपत्थिया) भगवान् नवमं चतुर्मासं वज्रभूमौ कृतवानिति प्रतीयते। पर्युषणाकल्पे 'एगं पणियभूमीए' इति निर्देशो दृश्यते। (पज्जोसवणाकप्पो, सूत्र ८३)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हुआ।[1] इस अनार्य भूमि में भगवान को वर्षावास में भी कोई मकान या बना हुआ आवास प्राप्त नहीं हुआ। इसलिए उन्होंने वहां अनियतवास[2] किया। यह प्रवास उद्यानादि[3] में होने से उसे 'पणियभूमि' कहा गया है। इस आधार पर यहां पणियभूमि का तात्पर्य है–वह रमणीक भूमि, जो प्राकृतिक सौन्दर्य के कारण 'प्रणीत' अर्थात् मनोरम दिखाई देती है।

'पणियभूमि' या 'पणियसाला' का अर्थ 'पण्य-भूमि' यानी 'क्रय-विक्रय शाला' अथवा 'दुकान' भी होता है, जहां भगवान् महावीर ने कभी-कभी प्रवास किया था।[4] पर यहां यह अर्थ संगत नहीं लगता।

२. छह वर्ष (छव्वासाइं)

यह पाठ चिन्तनीय है। आचारांग चूर्णि एवं आवश्यक चूर्णि के आधार पर (देखें, ऊपर का भाष्य) यह समय छह वर्ष न होकर 'छह मास' है।

प्रस्तुत सूत्र (भग. १५।५६) में बताया गया है कि भगवान् महावीर ने छह वर्ष तक 'अनित्य जागरिका' का प्रयोग किया। इसी संदर्भ में आवश्यक चूर्णि में है कि 'तत्थ य छम्मासे अणिच्च-जागरियं विहरिति।' आचारांग चूर्णि में भी 'एवं तत्थ छम्मासे अच्छितो भगवं।' अर्थात् वहां भगवान् छह महीने रहे। आचारांगवृत्ति (पत्र २८२) में भी 'तत्र चैवंविधे जनपदे भगवान् षण्मासावधिं कालं स्थितवानिति।' आवश्यक चूर्णि के अनुसार–'ततो निग्गया पढम सरवदे, सिद्धत्थपुरं गता.....' अर्थात्–भगवान् ने अनार्य देश से आश्विन मास में निष्क्रमण किया था। इस प्रकार भगवान् का नवां चातुर्मास वज्रभूमि में हुआ, जिसे पर्युषणाकल्प में 'पणियभूमि' कहा गया है।[5]

अब यह विमर्शनीय है कि भगवान् ने छह वर्ष तक अनित्य जागरिका की या छह मास तक?[6] उपर्युक्त प्रमाणों से प्रतीत होता है कि भगवान् ने अनित्य जागरिका का प्रयोग लगातार छह मास ही किया था, छह वर्ष तक नहीं। दूसरी बात है कि भगवान् महावीर गोशालक के साथ छह वर्ष पणियभूमि में रहे–यह भी कैसे संभव हो सकता है? जबकि पर्युषणाकल्प में पणियभूमि (यानी अनार्य-भूमि) में वर्षावास बिताया था। कुल मिलाकर चैत्र से भाद्रव तक छह मास ही वहां रहे थे तथा आश्विन में वहां से निर्गमन कर पुनः आर्य क्षेत्र में आ गए थे।

जहां तक भगवान् महावीर का गोशालक के साथ रहने का प्रश्न है, तो वह काल भी आठ वर्ष से कुछ अधिक का होता है। महावीर के साधना काल के तीसरे वर्ष से दसवें वर्ष के चातुर्मास से पूर्व तक गोशालक उनके साथ रहा, यह आवश्यक चूर्णि के वृत्तान्त से स्पष्ट होता है। इस दृष्टि से भी 'छह वर्ष' का उल्लेख संगत नहीं लगता। (महावीर और गोशालक के सहवास का समग्र काल कब से कब तक था, इस विषय में विस्तार से इसी शतक के सूत्र १४१,१४२ के भाष्यों में प्रकाश डाला गया है।)

---

१. आव. चू., पूर्वभाग, पृष्ठ २९६–
'गोभूमि वज्जलाढेत्ति गोवकोहे य वंसि जिणुदसमो।
रायगिहऽट्ठमवासं भवज्जूमी बहुवसग्गा॥४९१
ततो विहरंतो सामी गोभूमी वच्चति, तत्थ अंतरा अडविधणं, सदा गावीओ चरंति तेण गोभूमी। तत्थ गोसालो गोवालए भणति–अरे वज्जलाढा। एस पंथो कहिं वच्चति?, वज्जलाढा णाम मेकच्छा (भेच्छा), ताहे ते गोवा भणंति–कीस अक्कोससि? सो भणति–असुगए सुयपुत्ता सुट्ठु अक्कोसामि, तुब्भे एरिसगा मेच्छा, ताहे तेहिं मिलिता पिट्ठिऊण बंधित्ता वंसीसु छूढो, तत्थ अन्नेहिं पुणो मोइतो अणुकंपाए, ततो विहरंता रायगिहं गता। तत्थ अट्ठमं वासारत्तं चाउम्मासखमणं, विचित्ते य अभिग्गहे, बाहिं पारित्ता सरदे समतीए दिट्ठंतं करेति, सामी चिंतेति–बहुं कम्मं 'ण' सक्का णिज्जरेउं, ताहे सतेमेव अत्थारियदिट्ठंतं पडिकप्पेति, जहा एगस्स कुडंबियस्स साली जाता, ताहे सो कप्पडियपंथिए भणति–तुब्भं हियच्छितं भत्तं देमि मम लुणह, पच्छा भे जहासुहं वच्चह, एवं सो ओवातेण लुणावेति, एवं चेव ममेवि बहुं कम्मं अच्छति, एतं तऽच्छारिएहिं णिज्जरावेयव्वंति अणारियदेसेसु, ताहे लाढावज्जभूमिं सुद्धभूमिं च वच्चति। ते णिरणुकंपया णिद्दया य, तत्थ विहरितो, तत्थ सो अणारिओ जणो हीलति णिंदति जह बंभचेरेसु 'छुच्छुक्करेंति आहंसु समणं कुक्कुरा दंसतु' त्ति एवमादि, तदा य किर वासारत्तो तंमि जणवए केणइ दखनिओगेण लेहट्ठो आसी वसहीवि न लब्भति। एवं तत्थ छम्मासे अच्छितो भगवं। तत्थ य छम्मासे अणिच्चजागरियं विहरति। तत्र चैवंविधे जनपदे भगवान् षण्मासावधिं कालं स्थितवानिति। एस नवमो वासारत्तो।

२. (क) आ. चू., पूर्वभाग, पृष्ठ २९७–'अणियतवासं सिद्धत्थपुरं.....।'
(ख) श्रमण महावीर पृ. ३७–'भगवान् महावीर आहार-पानी लेने के लिए गांव में जाते थे। छह मासिक प्रवास में वे वर्षावास बिताने के लिए गांव में गये। कहीं भी कोई स्थान नहीं मिला। उन्होंने वह वर्षावास इधर-उधर घूमकर, पेड़ों के नीचे बिताया।'

३. (क) दस. चूलिका, २/५, हारिभद्रीय टीका, पत्र २८०–अनियत-वासो मासकल्पादिना 'अनिकेतवासो वा' अगृहे उद्यानादौ वासः।
(ख) दस. चू., जिनदासकृत, पृ. ३७०–'अणिएवासो' त्ति निकेतं–घरं तंमि ण वसियव्वं, उज्जाणाइ वासिणा होयव्वं।

४. आयारो, ९/२/२–
'आवेसण-सभा-पवासु, पणियसालासु एगदा वासो।
अदुवा पलियट्ठाणेसु, पलालपुंजेसु एगदा वासो॥

५. आचारांगभाष्यम्, पृ. ४३२।

६. यह अधिक संभव है कि अनित्य जागरिका का प्रयोग अनार्य भूमि में छह मास के प्रवास में गोशालक के साथ रहते हुए भगवान ने किया। छह वर्ष (छव्वासाइं) का पाठ 'छम्मासाइं' के स्थान में लिपिदोष के कारण हो गया हो, ऐसा संभव है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तिलथंभय-पदं

५७. तए णं अहं गोयमा! अण्णया कदायि पढमसरदकालसमयंसि अप्पवुट्ठिकायंसि गोसालेणं मंखलिपुत्तेणं सद्धिं सिद्धत्थगामाओ नगराओ कुम्मगामं नगरं संपट्ठिए विहाराए। तस्स णं सिद्धत्थगामस्स नगरस्स कुम्मगामस्स नगरस्स य अंतरा, एत्थ णं महं एगे तिलथंभए पत्तिए पुप्फए हरियग-रेरिज्जमाणे सिरीए अतीव-अतीव उवसोभेमाणे-उवसोभेमाणे चिट्ठइ॥

तिल-स्तम्भक-पदम्

ततः अहं गौतम! अन्यदा कदाचित् प्रथमशरत्कालसमये अल्पवृष्टिकाये गोशालेन मंखलिपुत्रेण सार्धं सिद्धार्थ-ग्रामात् नगरात् कूर्मग्रामं नगरं सम्प्रस्थितः विहाराय। तं सिद्धार्थग्रामं नगरं कूर्मग्रामं नगरं च अन्तरा (तस्य सिद्धार्थ ग्रामस्य कूर्मग्रामस्य नगरस्य च अन्तरा), अत्र महान् एकः तिल-स्तम्भकः पत्रितः, पुष्पितः हरित-कराराज्यमानः श्रिया अतीव-अतीव उपशोभमानः-उपशोभमानः तिष्ठति।

तिल-स्तंभ-पद

५७. गौतम! मैं एक दिन प्रथम शरद् काल समय में अल्पवृष्टिकाल में मंखलिपुत्र गोशाल के साथ सिद्धार्थ ग्राम नगर से कूर्म ग्राम नगर की ओर विहार के लिए संप्रस्थित हुआ। उस सिद्धार्थ ग्राम नगर और कूर्म ग्राम नगर के बीच में एक बड़ा तिल का पौधा पत्र-पुष्प-युक्त, हरा-भरा और विशिष्ट आभा से बहुत-बहुत उपशोभायमान खड़ा था।

५८. तए णं से गोसाले मंखलिपुत्ते तं तिलथंभगं पासइ, पासित्ता मम वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—एस णं भंते! तिलथंभए किं निप्फज्जिस्सइ नो निप्फज्जिस्सइ? एए य सत्त तिल-पुप्फजीवा उद्धाइत्ता-उद्धाइत्ता कहिं गच्छिहिंति? कहिं उववज्जिहिंति?
तए णं अहं गोयमा! गोसालं मंखलिपुत्तं एवं वयासी—गोसाला! एस णं तिलथंभए निप्फज्जिस्सइ, नो न निप्फज्जिस्सइ। एते य सत्ततिलपुप्फजीवा उद्धाइत्ता-उद्धाइत्ता एयस्स चेव तिलथंभगस्स एगाए तिलसंगलियाए सत्त तिला पच्चायाइस्संति॥

ततः सः गोशालः मंखलिपुत्रः तं तिलस्तम्भकं पश्यति, दृष्ट्वा मां वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्यित्वा एवमवादीत्—एषः भदन्तः! तिलस्तम्भं किं निष्पत्स्यते नो निष्पत्स्यते? एते च सप्त तिलपुष्पजीवः उद्दृत्य-उद्दृत्य कुत्र गमिष्यन्ति? कुत्र उपपत्स्यन्ते?
ततः अहं गौतम! गोशालं मंखलिपुत्रम् एवमवादीत्—गोशाल! एषः तिल-स्तम्भकः निष्पत्स्यते, नो न निष्पत्स्यते। एते च सप्ततिलजीवाः उद्दृत्य-उद्दृत्य एतस्य चैव तिलस्तम्भकस्य एकस्यां तिलसंगलियाए सप्त तिलाः प्रत्याजनिष्यन्ते।

५८. मंखलिपुत्र गोशाल ने उस तिल के पौधे को देखा, देखकर मुझे वंदन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार कर इस प्रकार बोला—भंते! यह तिल का पौधा निष्पन्न होगा या नहीं होगा? इस पौधे पर लगे सात फूलों के जीव मर कर कहां जाएंगे? कहां उपपन्न होंगे?

गौतम! मैंने मंखलिपुत्र गोशाल से इस प्रकार कहा—गोशाल! यह तिल का पौधा निष्पन्न होगा; निष्पन्न नहीं होगा, ऐसा नहीं है। इस पौधे पर लगे सात फूलों के जीव मर कर इसी पौधे की एक तिल फली में पुनः उपपन्न होंगे।

५९. तए णं से गोसाले मंखलिपुत्ते ममं एवं आइक्खमाणस्स एयमट्ठं नो सद्दहइ, नो पत्तियइ, नो रोएइ, एयमट्ठं असद्दहमाणे, अपत्तियमाणे, अरोएमाणे, ममं पणिहाए 'अयं णं मिच्छावादी भवउ' त्ति कट्टु ममं अंतियाओ सणियं-सणियं पच्चोसक्कइ, पच्चोसक्कित्ता जेणेव से तिलथंभए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता तं तिलथंभगं सलेट्ठुयायं चेव उप्पाडेइ, उप्पाडेत्ता एगंते एडेइ। तक्खणमेत्तं च णं गोयमा! दिव्वे अब्भवद्दलए पाउब्भूए। तए णं से दिव्वे अब्भवद्दलए खिप्पामेव पतणतणाति, खिप्पामेव पविज्जुयाति, खिप्पामेव नच्चोदगं णातिमट्टियं पविरलपफुसियं रयरेणुविणासणं दिव्वं सलिलोदगं वासं वासति, जेण से तिलथंभए आसत्थे

ततः सः गोशालः मम एवम् आचक्षाणस्य एतमर्थं नो श्रद्दधते नो प्रत्येति, नो रोचते, एतमर्थम् अश्रद्दधानः अप्रतियन् अरोचमानः मां प्रणिधाय 'अयं मिथ्या-वादी भवतु' इति कृत्वा मम अन्तिकात् शनैः-शनैः प्रत्यवष्वष्कते, प्रत्यवष्वष्क्य यत्रैकः सः तिल-स्तम्भकः तत्रैव उपागच्छति, उपागम्य तं तिलस्तम्भकं सलेष्टुकं चैव उत्पाटयति, उत्पाट्य एकान्ते एडयति। तत्क्षणमात्रं च गौतम! दिव्यः अभ्रबार्दलकः प्रादुर्भूतः। ततः सः दिव्यः अभ्रबार्दलकः क्षिप्रमेव प्रतनतनायति, क्षिप्रमेव विद्योतते, क्षिप्रमेव नात्युदकं नातिमृत्तिकां प्रविरल-प्रपृषत्कं रजःरेणु-विनाशनं दिव्यं सलिलोदकं वर्षां वर्षति, यत्र सः

९. मंखलिपुत्र गोशाल ने जो मैंने कहा, उस अर्थ पर श्रद्धा नहीं की, प्रतीति नहीं की, रुचि नहीं की, इस अर्थ पर अश्रद्धा करता हुआ,अप्रतीति करता हुआ, अरुचि करता हुआ, मुझे संकल्पित कर 'यह मिथ्यावादी हो' यह सोचकर मेरे पास से शनैः शनैः पीछे सरक गया, पीछे सरक कर जहां तिल का पौधा था, वहां आया, आकर उस तिल के पौधे को जड़ की मिट्टी-सहित उखाड़ा, उखाड़कर एकांत में फैंक दिया। गौतम! उसी क्षण आकाश में दिव्य बादल घुमड़ने लगा। वह दिव्य बादल शीघ्र ही जोर-जोर से गरजने लगा, शीघ्र ही बिजली चमकने लगी, शीघ्र वर्षा शुरू हो गई। न अधिक पानी बहा, न अधिक कीचड़ हुआ। रजों और धूलिकणों को जमाने वाली दिव्य बूंदाबांदी हुई। उससे तिल

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पच्चायाते बद्धमूले तत्थेव पतिट्ठिए। ते य सत्त तिलपुप्फजीवा उद्दाइत्ता-उद्दाइत्ता तस्सेव तिलथंभगस्स एगाए तिलसंगलियाए सत्त तिला पच्चायाता॥

तिलस्तम्भकः आश्वस्तः प्रत्याजातः बद्धमूलः तत्रैव प्रतिष्ठितः। ते च सप्त तिलपुष्पजीवाः उद्दृत्य-उद्दृत्य तस्यैव तिलस्तम्भकस्य एकस्यां तिलसंगलिकायां सप्त तिलाः प्रत्याजाताः।

के पौधे का रोपण हुआ। वह अंकुरित हुआ, बद्धमूल हुआ और वहीं पर प्रतिष्ठित हो गया। तिल पुष्प के वे सात जीव मर कर उसी तिल के पौधे की एक फली में सात तिलों के रूप में पुनः उपपन्न हो गए।

वेसियायण-बालतवस्सि-पदं

६०. तए णं अहं गोयमा! गोसालेणं मंखलिपुत्तेणं सद्धिं जेणेव कुम्मग्गामे नगरे तेणेव उवागच्छामि। तए णं तस्स कुम्मग्गामस्स नगरस्स बहिया वेसियायणे नामं बालतवस्सी छट्ठंछट्ठेणं अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं उड्ढं बाहाओ पगिज्झिय-पगिज्झिय सूराभिमुहे आयावणभूमीए आयावेमाणे विहरइ। आइच्चतेयतवियाओ य से छप्पदीओ सव्वओ समंता अभिनिस्सवंति, पाणभूय-जीव-सत्त-दयट्ठयाए च णं पडियाओ-पडियाओ 'तत्थेव-तत्थेव' भुज्जो-भुज्जो पच्चोरुभेइ॥

वैश्यायन-बालतपस्वि-पदम्

ततः अहं गौतम! गोशालेन मंखलिपुत्रेण सार्धं यत्रैव कुर्मग्रामं नगरं तत्रैव उपागच्छामि। ततः तस्य कूर्मग्राम-नगरस्य बहिस्तात् वैश्यायनः नाम बालतपस्वी षष्ठषष्ठेन अनिक्षिप्तेन तपःकर्मणा ऊर्ध्वं बाहू प्रगृह्य प्रगृह्य सूराभिमुखः आतापनभूम्याम् आतापयन् विहरति। आदित्यतेजस्तप्ताः च तस्य षट्पद्यः सर्वतः समन्तात् अभिनिस्रवन्ति, प्राण-भूत-जीव-सत्वदयार्थाय दयार्थ-तायै च पतिताः-पतिताः 'तत्रैव-तत्रैव' भूयः-भूयः प्रत्यवरोहति।

बाल तपस्वी वैश्यायन-पद

६०. गौतम! मैं मंखलिपुत्र गोशाल के साथ जहां कूर्मग्राम नगर था, वहां आया। उस कूर्मग्राम नगर के बाहर वैश्यायन नाम का बाल तपस्वी निरंतर षष्ठ-षष्ठ भक्त (दो-दो दिन का उपवास) तपःकर्म में आतापन भूमि में दोनों भुजाएं ऊपर उठाकर सूर्य के सामने आतापना लेते हुए विहार कर रहा था। सूर्य के ताप से तप्त होकर जूंएं उसकी जटाओं से निकल कर नीचे गिर रही थी, प्राण, भूत, जीव और सत्त्व की दया के लिए वह उन जूंओं को पुनः-पुनः सिर में डाल रहा था।

६१. तए णं से गोसाले मंखलिपुत्ते वेसियायणं बालतवस्सिं पासइ, पासित्ता ममं अंतियाओ सणियं-सणियं पच्चोसक्कइ, पच्चोसक्कित्ता जेणेव वेसियायणे बालतवस्सी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता वेसियायणं बालतवस्सिं एवं वयासी—किं भवं मुणी? मुणिए? उदाहु जूयासेज्जायरए?

ततः सः गोशालः मंखलिपुत्रः वैश्यायनं बालतपस्विनं पश्यति, दृष्ट्वा मम अन्तिकात् शनैः-शनैः प्रत्यवष्वष्कते प्रत्युष्वष्क्य यत्रैव वैश्यायनः बाल-तपस्वी तत्रैव उपागच्छति, उपागम्य वैश्यायनं बालतपस्विनम् एवमवादीत्—किं भवान् मुनिः? ज्ञातः? उताहो यूकाशय्यातरकः?

६१. मंखलिपुत्र गोशाल ने बाल तपस्वी वैश्यायन को देखा, देखकर मेरे पास से शनैः शनैः पीछे सरक गया, पीछे सरक कर जहां वैश्यायन बाल तपस्वी था, वहां आया, आकर वैश्यायन बाल तपस्वी को इस प्रकार बोला—क्या तुम मुनि हो, पिशाच हो अथवा जूओं के शय्यातर-जूंओं को आश्रय देने वाले?

६२. तए णं से वेसियायणे बालतवस्सी गोसालस्स मंखलिपुत्तस्स एयमट्ठं नो आढाति, नो परियाणति, तुसिणीए संचिट्ठइ॥

ततः सः वैश्यायनः बालतपस्वी गोशालस्य मंखलिपुत्रस्य एतमर्थं नो आद्रियते, नो परिजानाति, तूष्णीकः सन्तिष्ठते।

६२. बाल तपस्वी वैश्यायन ने मंखलिपुत्र गोशाल के इस अर्थ को आदर नहीं दिया, स्वीकार नहीं किया, वह मौन रहा।

६३. तए णं से गोसाले मंखलिपुत्ते वेसियायणं बालतवस्सिं दोच्चं पि तच्चं पि एवं वयासी—किं भवं मुणी? मुणिए? उदाहु जूयासेज्जायरए?

ततः सः गोशालः मंखलिपुत्रः वैश्यायनं बालतपस्विनं द्विः अपि त्रिः अपि एवमवादीत्—किं भवान् मुनिः? ज्ञातः? उताहो यूकाशय्यातरकः?

६३. मंखलिपुत्र गोशाल ने बाल तपस्वी वैश्यायन को दूसरी बार भी, तीसरी बार भी इस प्रकार कहा – क्या तुम मुनि हो, पिशाच हो अथवा जूओं के शय्यातर?

६४. तए णं से वेसियायणे बालतवस्सी गोसालेणं मंखलिपुत्तेणं दोच्चं पि तच्चं पि एवं वुत्ते समाणे आसुरुत्ते रुट्ठे कुविए चंडिक्किए मिसिमिसेमाणे आयावण-

ततः सः वैश्यायनः बालतपस्वी गोशालेन मंखलिपुत्रेण द्विः अपि त्रिःअपि एवम् उक्ते सति आशुरक्तः रुष्टः कुपितः 'चंडिक्किए' 'मिसि-

६४. मंखलिपुत्र गोशाल के दूसरी बार भी, तीसरी बार भी इस प्रकार कहने पर बाल तपस्वी वैश्यायन तत्काल आवेश में आ गया, रुष्ट हो गया, कुपित हो गया, उसका रूप

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भूमीओ पच्चोरुभइ, पच्चोरुभित्ता तेयास-मुग्घाएणं समोहण्णइ, समोहणित्ता सत्तट्ठपयाइं पच्चोसक्कइ, पच्चोसक्कित्ता गोसालस्स मंखलिपुत्तस्स वहाए सरीरगंसि तेयं निसिरइ॥

मिसेमाणे' आतापनभूम्याः प्रत्यवरोहति, प्रत्यवरुह्य तेजःसमुद्घातेन समवहन्यते, समवहन्य सप्ताष्टपदानि प्रत्यवष्वष्कते, प्रत्यवष्वष्क्य गोशालस्य मंखलिपुत्रस्य वधाय शरीरके तेजः निसृजति।

रौद्र हो गया, क्रोध की अग्नि में प्रदीप्त होकर आतापन भूमि से नीचे उतरा, नीचे उतरकर तैजस-समुद्घात से समवहत हुआ, समवहत होकर सात-आठ पैर पीछे सरका, पीछे सरक कर मंखलिपुत्र गोशाल के वध के लिए अपने शरीर से तेज को निकाला।

६५. तए णं अहं गोयमा! गोसालस्स मंखलिपुत्तस्स अणुकंपणट्ठयाए वेसियायणस्स बालतवस्सिस्स उसिणतेयपडिसाहरणट्ठयाए एत्थ णं अंतरा सीयलियं तेयलेस्सं निसिरामि, जाए सा ममं सीयलियाए तेयलेस्साए वेसियायणस्स बालतवस्सिस्स उसिणा तेयलेस्सा पडिहया॥

ततः अहं गौतम! गोशालस्य मंखलिपुत्रस्य अनुकम्पनार्थाय वैश्यायनस्य बालतपस्विनः उष्णतेजः प्रतिसंहरणार्थाय अत्र अन्तरा शीतलिकां तेजोलेश्यां निसृजामि यया सा मम शीतलिकया तेजोलेश्यया वैश्यायनस्य बालतपस्विनः उष्णा तेजोलेश्या प्रतिहता।

६५. 'गौतम! मैंने मंखलिपुत्र गोशाल की अनुकंपा के लिए बाल तपस्वी वैश्यायन की उष्ण तेजोलेश्या को प्रतिसंहृत करने के लिए गोशाल तक तेजोलेश्या पहुंचे, उससे पूर्व शीतल तेजोलेश्या को निकाला। मेरी शीतल तेजोलेश्या से बाल तपस्वी वैश्यायन की उष्ण तेजोलेश्या प्रतिहत हो गई।

६६. तए णं से वेसियायणे बालतवस्सी ममं सीयलियाए तेयलेस्साए साउसिणं तेयलेस्सं पडिहयं जाणित्ता गोसालस्स मंखलिपुत्तस्स सरीरगस्स किंचि आबाहं वा वाबाहं वा छविच्छेदं वा अकीरमाणं पासित्ता साउसिणं तेयलेस्सं पडिसाहरइ, पडिसाहरित्ता ममं एवं वयासी—से गतमेयं भगवं! गत-गतमेयं भगवं!

ततः सः वैश्यायनः बालतपस्वी मम शीतलिकया तेजोलेश्यया स्वकोष्णां तेजोलेश्यां प्रतिहतां ज्ञात्वा गोशालस्य मंखलिपुत्रस्य शरीरकस्य किञ्चित् आबाधां वा व्याबाधां वा छविच्छेदं वा अक्रियमाणं दृष्ट्वा स्वकोष्णां तेजोलेश्यां प्रतिसंहरति, प्रतिसंहृत्य माम् एवमवादीत्—तद् गतमेतद् भगवन्! गत-गतमेतद् भगवन्!

६६. बाल तपस्वी वैश्यायन ने मेरी शीतल तेजोलेश्या से अपनी उष्ण तेजोलेश्या को प्रतिहत जानकर, मंखलिपुत्र गोशाल के शरीर का किञ्चित् आबाध, व्याबाध, अथवा छविच्छेद न करते हुए देखकर अपनी उष्ण तेजोलेश्या का प्रतिसंहरण किया, प्रतिसंहरण कर इस प्रकार बोला—भगवन्! मैंने जान लिया, भगवन्! मैंने जान लिया, जान लिया!

भाष्य

सूत्र ६५-६६

१. तेजोलेश्या

लब्धि, ऋद्धि, योगज उपलब्धि, प्रातिहार्य, अतिशय, वचनातिशय आदि के विशद विवेचन से जैन वाङ्मय भरा हुआ है। वैसे बौद्ध एवं वैदिक साहित्य में भी इस विषय में बहुत मूल्यवान सामग्री उपलब्ध है। प्रस्तुत शतक में 'तेजोलेश्या' नामक एक विशेष लब्धि की चर्चा है जो चामत्कारिक ढंग से विपुल ऊर्जा-स्रोत के रूप में प्रयुक्त की जाती थी। अनुग्रह करने वाली तेजोलेश्या का 'शीत' और निग्रह करने वाली तेजोलेश्या को 'उष्ण' कहा जाता है। शीतल तेजोलेश्या उष्ण तेजोलेश्या के प्रहार को निष्फल बना देती है। अनुपयोग काल में तेजोलेश्या को 'संक्षिप्त' और उपयोग काल में उसे 'विपुल' अवस्था में रखा जा सकता है। विपुल-अवस्था में वह सूर्य बिम्ब के समान दुर्दर्श होती है। वह इतनी चकाचौंध पैदा कर देती है कि उसे खुली आंखों से देखा नहीं जा सकता। तेजोलेश्या का प्रयोग करने वाला अपनी तेजस्-शक्ति को बाहर निकालता है, तब वह महाज्वाला के रूप में विकराल होती है। प्रस्तुत शतक में स्पष्ट बताया गया है कि इस ऊर्जा का विनाशक (विस्फोटक) परिणमन एक साथ सोलह जनपदों को भस्मीसात् कर सकता है।[1]

पौद्गलिक ऊर्जा के विभिन्न रूपों का परस्पर में रूपान्तरण करने की अनेक विधियों एवं तकनीकों का विकास आज विज्ञान ने किया है। तेजोलेश्या में मनःकायिक प्रभाव के माध्यम से पौद्गलिक ऊर्जा के रूपान्तरण की प्रक्रिया को काम में लिया जाता है। किस प्रकार निर्दिष्ट विधि के द्वारा तपस्वी अपनी तैजस् शक्ति को इस रूप में रूपान्तरित कर देता है तथा संक्षिप्त-विपुल अवस्थाओं में रख सकता है, शीतल तेजोलेश्या उष्ण तेजोलेश्या को किस प्रकार निरस्त कर देती है आदि विषय अनुसंधान के विषय हैं तथा वैज्ञानिक क्षेत्रों में चलने वाले शस्त्रास्त्रों एवं प्रतिरोधी-शस्त्रास्त्रों (जैसे—anti-aircraft gun आदि) के प्रयोगों के साथ तुलनीय हैं।

दरअसल में भारतीय अध्यात्म-विद्याओं पर मौलिक अनुसंधान-कार्य वैज्ञानिक पद्धति से किया जाय तो अनेक नए तथ्यों का उद्घाटन हो सकता है। साधना आदि के द्वारा चेतना, लेश्या, भाव आदि चैतसिक शक्तियों के विकास की प्रक्रियाओं के

१. भ. १/१२१।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

साथ सूक्ष्म पौद्गलिक परिणतियों की व्याख्या को आधुनिक विज्ञान के जैव-पौद्गलिक सिद्धांतों के आधार पर समझने की अपेक्षा है। इसमें नवीनतम सूक्ष्मग्राही उपकरणों के अनुप्रयोग भी रहस्यों के उद्घाटन में सहायक बन सकते हैं।

प्रस्तुत सूत्रों में शीतल और उष्ण तेजोलेश्या के प्रयोग की चर्चा है।

इसके दो पक्ष हैं–

१. तेजोलेश्या–इस लब्धि की अनुग्रह-निग्रह की शक्ति की व्याख्या। इस विषय में प्राचीन ज्ञान एवं आधुनिक विज्ञान के संदर्भ में मीमांसा करना अपेक्षित है।

२. अनुकंपा–जैन आगमों एवं आचार्य भिक्षु के दर्शन के आधार पर अनुकंपा की मीमांसा।

१. तेजोलेश्या

तेजोलेश्या का अर्थ है–तैजस-शारीरिक विद्युत् के द्वारा अनुग्रह और निग्रह करने की क्षमता। यह हठयोग और तंत्रशास्त्र में प्रसिद्ध कुंडलिनी शक्ति है।

हम शरीरधारी हैं। शरीर दो प्रकार के हैं–स्थूल और सूक्ष्म। अस्थिचर्ममय शरीर स्थूल है। तैजस शरीर सूक्ष्म और कर्म-शरीर अतिसूक्ष्म है। हमारे पाचन, सक्रियता और तेजस्विता का मूल तैजस शरीर है। वह पूरे स्थूल शरीर में व्याप्त रहता है तथा दीप्ति और तेजस्विता उत्पन्न करता है। विद्युत्, प्रकाश और ताप–ये तीनों शक्तियां उसमें विद्यमान हैं। शरीर में दो प्रकार की विद्युत् हैं–घार्षणिक और धारावाही या मानसिक। घार्षणिक विद्युत् का उत्पादन शरीर करता है और धारावाही विद्युत् का उत्पादन मस्तिष्क करता है। मस्तिष्कीय विद्युत्-धारा स्नायु-मंडल में संचरित रहती है। वह ज्ञान-तंतुओं के द्वारा मस्तिष्क तक पहुंचती है और उससे मिले निर्देशों का शारीरिक अवयवों के द्वारा क्रियान्वयन कराती है। इसका मूल हेतु तैजस शरीर है। यह शरीर प्राणिमात्र के साथ निरन्तर रहता है। एक प्राणी मृत्यु के उपरान्त दूसरे जन्म में जाता है। अंतराल गति में भी तैजस शरीर उसके साथ रहता है। कर्म-शरीर सब शरीरों का मूल है। उसके बाद दूसरा स्थान तैजस शरीर का है। यह सूक्ष्म पुद्गलों से निर्मित होता है, इसलिए चर्म-चक्षु से दृश्य नहीं होता। यह स्वाभाविक भी होता है और तपस्या द्वारा उपलब्ध भी होता है। स्वाभाविक तैजस शरीर सब प्राणियों में होता है। तपस्या से उपलब्ध होने वाला तैजस शरीर सबमें नहीं होता। 'वह तपस्या से उपलब्ध होता है' इसका तात्पर्य यह है कि तपस्या से तैजस शरीर की क्षमता बढ़ जाती है। स्वाभाविक तैजस शरीर स्थूल शरीर से बाहर नहीं निकलता। तपोजनित तैजस शरीर शरीर के बाहर निकल सकता है। उसमें अनुग्रह और निग्रह की शक्ति होती है। उसके बाहर निकलने की प्रक्रिया का नाम तैजस समुद्घात है। जब वह किसी पर अनुग्रह करने के लिए बाहर निकलता है तब उसका वर्ण हंस की भांति सफेद होता है। वह तपस्वी के दाएं कंधे से निकलता है। उसकी आकृति सौम्य होती है। यह लक्ष्य हित-साधन कर (रोग आदि का उपशमन कर) फिर अपने मूल शरीर में प्रविष्ट हो जाता है।

जब वह किसी का निग्रह करने के लिए बाहर निकलता है तब उसका वर्ण सिन्दूर जैसा लाल होता है। वह तपस्वी के बांएं कंधे से निकलता है। उसकी आकृति रौद्र होती है। वह लक्ष्य का विनाश, दाह कर फिर अपने मूल शरीर में प्रविष्ट हो जाता है।

अनुग्रह करने वाली तेजोलेश्या को 'शीत' और निग्रह करने वाली तेजोलेश्या को 'उष्ण' कहा जाता है। शीतल तेजोलेश्या उष्ण तेजालेश्या के प्रहार को निष्फल बना देती है।

तेजोलेश्या अनुपयोग काल में 'संक्षिप्त' और उपयोग काल में 'विपुल' हो जाती है। विपुल-अवस्था में यह सूर्यबिम्ब के समान दुर्दर्श होती है। वह इतनी चकाचौंध पैदा करती है कि मनुष्य उसे खुली आंखों से देख नहीं सकता। तेजोलेश्या का प्रयोग करने वाला अपनी तैजस-शक्ति को बाहर निकालता है तब वह महाज्वाला के रूप में विकराल हो जाती है।

तेजोलेश्या का स्थान

तैजस शरीर हमारे समूचे स्थूल शरीर में रहता है। फिर भी उसके दो विशेष केन्द्र हैं–मस्तिष्क और नाभि का पृष्ठभाग। मन और शरीर के बीच सबसे बड़ा संबंध-सेतु मस्तिष्क है। नाभि के पृष्ठभाग में हमारे आहार का प्राण के रूप में परिवर्तन होता है। अतः शारीरिक दृष्टि से मस्तिष्क और नाभि का पृष्ठभाग–ये दोनों तेजोलेश्या के महत्त्वपूर्ण केन्द्र बन जाते हैं।

तेजोलेश्या के विकास-स्रोत

तेजोलेश्या के विकास का कोई एक ही स्रोत नहीं है। उसका विकास अनेक स्रोतों से किया जा सकता है। संयम, ध्यान, वैराग्य, भक्ति, उपासना, तपस्या आदि आदि उसके विकास के स्रोत हैं। इन विकास-स्रोतों की पूरी जानकारी लिखित रूप में कहीं भी उपलब्ध नहीं होती। यह जानकारी मौलिक रूप में आचार्य शिष्य को स्वयं देते थे।

गोशालक ने महावीर से पूछा–'भंते! तेजोलेश्या का विकास कैसे हो सकता है?' महावीर ने इसके उत्तर में उसे तेजोलेश्या के एक विकास-स्रोत का ज्ञान कराया। उन्होंने कहा–'जो साधक निरन्तर दो-दो उपवास करता है, पारणा के दिन मुट्ठीभर उड़द या मूंग खाता है और एक चूल्लू पानी पीता है, भुजाओं को ऊंचीकर सूर्य की आतापना लेता है, वह छह महीनों के भीतर ही तेजोलेश्या को विकसित कर लेता है।'

तेजोलेश्या के तीन विकास-स्रोत हैं–

१. आतापना–सूर्य के ताप को सहना।

२. क्षांति-क्षमा–समर्थ होते हुए भी क्रोध-निग्रहपूर्वक अप्रिय व्यवहार को सहन करना।

३. जल-रहित तपस्या करना।

परामनोविज्ञान में मनःप्रभाव (साइकोकाइनेसिस)

मन या चेतना के द्वारा पदार्थ के सीधे प्रभावित करने की क्रिया को मनःप्रभाव (साइकोकाइनेसिस) कहा गया है। बाह्य जगत् में मानवीय कार्यों के प्रति सामान्य मान्यता यही है कि प्रत्येक पदार्थ कार्य के लिए दैहिक अवयवों, यथा–मस्तिष्क, स्नायुओं, मांसपेशियों

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

व कर्मेन्द्रियों का होना अनिवार्य है। किन्तु जब कोई क्रिया बिना दैहिक माध्यम के, चित्त या मन द्वारा सीधे पदार्थ को प्रभावित करके सम्पन्न होती हो, तो उसे 'परामनोविज्ञान' की श्रेणी में ही रखा जाता है। जिस प्रकार बिना दैहिक (ऐन्द्रियिक) माध्यम के मन द्वारा सीधे ही प्रत्यक्षण कर सकने की क्षमता का विवेचन परामनोवैज्ञानिक कर चुके हैं, उसी प्रकार मन के द्वारा सीधे पदार्थ को प्रभावित करने की क्षमता के बारे में भी परामनोविज्ञान में अनुसंधान हुआ है। तेजोलेश्या 'मनःप्रभाव' की विलक्षण घटना है।

परामनोविज्ञान में एस्ट्रल प्रोजेक्शन और समुद्घात

एक हब्शी महिला है। उसका नाम है–लिलियन। वह अतीन्द्रिय प्रयोगों में दक्ष है। उससे पूछा गया–तुम अतीन्द्रिय घटनाएं कैसे बतलाती हो? उसने कहा, 'मैं एस्ट्रल प्रोजेक्शन के द्वारा उन घटनाओं को जान लेती हूं। प्रत्येक प्राणी में प्राण-धारा होती है। उसे एस्ट्रल बॉडी भी कहा जाता है। एस्ट्रल प्रोजेक्शन के द्वारा मैं प्राण शरीर से बाहर निकल कर, जहां घटना घटित होती हैं, वहां जाती हूं और सारी बातें जानकर दूसरों को बता देती हूं।'

विज्ञान द्वारा सम्मत यह एस्ट्रल प्रोजेक्शन की प्रक्रिया जैन परंपरा की समुद्घात प्रक्रिया है। समुद्घात का यही तात्पर्य है कि जब विशिष्ट घटना घटित होती है तब व्यक्ति स्थूल शरीर से प्राण शरीर को बाहर निकाल कर घटने वाली घटना तक पहुंचता है और घटना का पूरा ज्ञान कर लेता है। यह प्राण शरीर बहुत दूर तक जा सकता है। इसमें अपूर्व क्षमताएं हैं।

समुद्घात सात हैं–वेदना समुद्घात, कषाय समुद्घात, मारणान्तिक समुद्घात, वैक्रिय समुद्घात, तैजस समुद्घात, आहारक समुद्घात और केवली समुद्घात। जब व्यक्ति को क्रोध अधिक आता है तब उसका प्राण-शरीर शरीर से बाहर निकल जाता है। यह कषाय समुद्घात है। जब आदमी के मन में अति लालच आता है तब भी प्राण-शरीर बाहर निकल जाता है। इसी प्रकार भयंकर बीमारी में मरने की अवस्था में भी प्राण-शरीर बाहर निकल जाता है। आज के विज्ञान के सामने ऐसी अनेक घटनाएं घटित हुई हैं।

एक रोगी ऑपरेशन थियेटर में टेबल पर लेटा हुआ है। उसका मेजर ऑपरेशन होना है। डॉक्टर ऑपरेशन कर रहा है। उस समय उस व्यक्ति में वेदना समुद्घात घटित हुई। उसका प्राण-शरीर स्थूल शरीर से निकलकर ऊपर की छत के आसपास स्थिर हो गया। ऑपरेशन चल रहा है और वह रोगी अपने प्राण-शरीर से सारा ऑपरेशन देख रहा है। ऑपरेशन करते-करते एक बिन्दु पर डॉक्टर ने गलती की। तत्काल ऊपर से रोगी ने कहा, डॉक्टर! यह भूल कर रहे हो। डॉक्टर को पता नहीं चला कि कौन बोल रहा है। उसने भूल सुधारी। वेदना कम होते ही रोगी का प्राण-शरीर पुनः स्थूल शरीर में आ जाता है। प्रोजेक्शन की प्रक्रिया पूरी हो जाती है। होश आने पर रोगी ने डॉक्टर से कहा, छत पर लटकते हुए मैंने पूरा ऑपरेशन देखा है।

शरीर-प्रक्षेपण की अनेक प्रक्रियाएं हैं। इन प्रक्रियाओं में प्राण-शरीर बाहर चला जाता है।

उस हब्शी महिला लिलियन ने कहा–'मैं एस्ट्रल प्रोजेक्शन के द्वारा यथार्थ बात जान लेती हूं। मैं लोगों के आभामंडल में प्रविष्ट होकर उनके चरित्र का वर्णन कर सकती हूं। किन्तु शराबी आदमी के चरित्र को मैं नहीं जान सकती, क्योंकि शराबी आदमी का आभामंडल अस्त-व्यस्त हो जाता है। वह इतना धुंधला हो जाता है कि उसके रंगों का पता नहीं चलता।'

ओकल्ट साइन्स के वैज्ञानिकों ने यह तथ्य प्रगट किया कि आदमी जब तक अपने शरीर के विशिष्ट केन्द्रों को चुंबकीय क्षेत्र नहीं बना लेता–एलेक्ट्रो-मेग्नेटिक फील्ड नहीं बना लेता, तब तक उसमें पारदर्शन की क्षमता नहीं जाग सकती। चैतन्य-केन्द्रों और चक्रों की सारी कल्पना का मूल उद्देश्य है–शरीर को विद्युत्-चुम्बकीय क्षेत्र बना लेना। सहिष्णुता और समभाव–वृद्धि के प्रयोग-उपवास, आसन, प्राणायाम, आतापना, सर्दी-गर्मी को सहने का अभ्यास–इन सारी प्रक्रियाओं से शरीर के परमाणु विद्युत्-चुंबकीय क्षेत्र में बदल जाते हैं। और वह क्षेत्र इतना पारदर्शी बन जाता है कि भीतर की चेतना उस क्षेत्र से बाहर झांक सकती है।

प्राण-शक्ति का आध्यात्मिक तथा वैज्ञानिक महत्त्व

हमारे शरीर में शक्ति के दो स्रोत हैं–एक है काम की शक्ति का और दूसरा है ज्ञान की शक्ति का। ज्ञान की शक्ति ऊपर रहती है, काम की शक्ति नीचे रहती है। नीचे के स्रोत में कामनाएं, वासनाएं, इच्छाएं, हिंसा, असत्य, चोरी की भावना–ये सारी वृत्तियां पैदा होती हैं। ज्ञान का केन्द्र जो सिर में है, वहां सारी निम्न वृत्तियां समाप्त हो जाती हैं। चेतना का विकास, ज्ञान का विकास, बुद्धि का विकास, उदारता, परमार्थ–यह महान् चेतना वहां पैदा होती है।

शरीर की विद्युत् या प्राण-ऊर्जा जितनी शक्तिशाली बनती है, उतना शक्तिशाली बनता है जीवन। शरीर का आध्यात्मिक मूल्यांकन है उस ऊर्जा की सुरक्षा करना, ऊर्जा को विकसित करना और ऊर्जा के स्रोत को मोड़कर नीचे से ऊपर की ओर ले जाना। अध्यात्म का मार्ग ऊर्जा के ऊर्ध्वीकरण का मार्ग है।

ऊपर का स्रोत खुलता है तो प्राणशक्ति का प्रवेश होता है और नीचे का स्रोत खुला रहता है तो प्राणशक्ति का निर्गमन होता है, बिजली बाहर चली जाती है और आदमी शक्तिशून्य हो जाता है।

जो इस स्थूल शरीर से परे है, वह इन्द्रियों का विषय नहीं है। किन्तु हमारे शरीर में कुछ ऐसे तत्त्व हैं, जिनके विषय में चिंतन और अनुभव करते-करते हम अपनी बुद्धि और चिद्शक्ति के द्वारा इन्द्रियों की सीमा से परे जाकर सूक्ष्म शरीर की सीमा में प्रविष्ट हो सकते हैं। उनमें एक तत्त्व है प्राण-विद्युत्। अग्निदीपन, पाचन, शरीर का सौष्ठव और लावण्य, ओज–ये जितनी आग्नेय क्रियाएं हैं, ये सारी सप्त धातुमय इस शरीर की क्रियाएं नहीं हैं। विद्युत् शरीर-तैजस शरीर ही इस स्थूल शरीर की सारी क्रियाओं का संचालन करता है। उस सूक्ष्म शरीर में से विद्युत् का प्रवाह आ रहा है और उस विद्युत् प्रवाह से सब कुछ संचालित हो रहा है। उस सूक्ष्म शरीर को प्राण-शरीर भी कहा जाता है। यह शरीर प्राण का विकिरण करता है और उसी प्राण-शक्ति से क्रियाशीलता आती है। श्वास, मन, इन्द्रियां,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भाषा, आहार और विचार–ये सब प्राण-शक्ति के ऋणी हैं। प्राणशक्ति तैजस शरीर से निःसृत है।

प्रश्न होता है कि वह तैजस शरीर किसके द्वारा संचालित है? वह प्राणधारा को प्रवाहित अपने आप कर रहा है या किसी के द्वारा प्रेरित होकर कर रहा है? यदि अपने आप कर रहा है तो तैजस शरीर जैसा मनुष्य में है वैसा पशु में भी है, पक्षियों में भी है और छोटे-से-छोटे प्राणी में भी है। वनस्पति में भी तैजस शरीर है, प्राण-विद्युत् है। वनस्पति में भी ओरा होता है, आभामंडल होता है। आभामंडल (ओरा) उस सूक्ष्म शरीर-तैजस शरीर का विकिरण है। प्रश्न होता है, यह रश्मियों का विकिरण क्यों होता है? यदि तैजस शरीर का कार्य केवल विकिरण करना ही हो तो मनुष्य इतना ज्ञानी, इतना शक्तिशाली और इतना विकसित तथा एक अन्य प्राणी इतना अविकसित क्यों? यह सब तैजस शरीर का कार्य नहीं है। तैजस शरीर के पीछे भी एक प्रेरणा है सूक्ष्मतर शरीर की। वह सूक्ष्मतर शरीर है–कर्म-शरीर।

तीन शरीरों की एक शृंखला है–स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर और सूक्ष्मतर शरीर। स्थूल शरीर यह दृश्य शरीर है। सूक्ष्म शरीर है तैजस शरीर और सूक्ष्मतर शरीर है–कर्म-शरीर, कार्मण शरीर। प्राणी की मूलभूत उपलब्धियां तीन हैं–चेतना (ज्ञान), शक्ति और आनंद। चेतना का तारतम्य-अविकास और विकास, शक्ति का तारतम्य–अविकास और विकास, आनंद का तारतम्य–अविकास और विकास–यह सारा इन शरीरों के माध्यम से होता है।

कुंडलिनी : स्वरूप और जागरण

कुंडलिनी-जागरण का प्रश्न शरीरों के साथ जुड़ा हुआ है। तीन शरीरों में से जो मध्य का शरीर है, तैजस शरीर (सूक्ष्म शरीर), उसकी एक क्रिया का नाम है 'तेजोलब्धि'। हठयोग तंत्र में इसे 'कुंडलिनी' कहा गया है। कहीं-कहीं इसे 'चित्शक्ति' कहा जाता है। जैन साधना-पद्धति में इसे 'तेजोलब्धि' कहा जाता है। हठयोग में इसके पर्यायवाची नाम तीस गिनाए गए हैं। उनमें एक नाम है 'महापथ'। जैन साहित्य में 'महापथ' का प्रयोग मिलता है। भिन्न-भिन्न साधना-पद्धतियों में यह भिन्न-भिन्न नाम से पहचानी गयी है। यदि इसके स्वरूप-वर्णन में की गयी अतिशयोक्तियों को हटाकर इसका वैज्ञानिक विश्लेषण किया जाए तो इतना ही फलित निकलेगा कि हमारी प्राणशक्ति का विशेष विकास ही कुंडलिनी का जागरण है। प्राणशक्ति के अतिरिक्त, तैजस शरीर के विकिरणों के अतिरिक्त कुंडलिनी का अस्तित्व वैज्ञानिक ढंग से सिद्ध नहीं हो सकता। शरीर की सामान्य क्रियाओं में भी कुंडलिनी का अस्तित्व प्रमाणित होता है, पर होता है वह सामान्य शक्ति के विस्फोट के रूप में। वह कुछ ऐसा आश्चर्यकारी तथ्य नहीं है जिसे अमुक योगी ही प्राप्त कर सकते हैं या जिसे अमुक-अमुक योगियों ने ही प्राप्त किया है। कोई भी प्राणी ऐसा नहीं है, जिसकी कुंडलिनी जागृत न हो। वनस्पति के जीवों की भी कुंडलिनी जागृत है। यदि वह जागृत न हो तो वह सचेतन प्राणी नहीं हो सकता। वह अचेतन होता है। जैन आगम ग्रंथों में कहा गया–चैतन्य (कुंडलिनी) का अनंतवां भाग सदा जागृत रहता है।

कोई व्यक्ति विशिष्ट साधना के द्वारा अपनी इस तैजस शक्ति को विकसित कर लेता है और किसी व्यक्ति को अनायास ही गुरु का आशीर्वाद मिल जाता है तो साधना में तीव्रता आती है और कुंडलिनी का अधिक विकास हो जाता है। जिस व्यक्ति का तैजस शरीर जागृत है, उस व्यक्ति के सान्निध्य में जाने से भी दूसरे व्यक्ति की कुंडलिनी को (तैजस शरीर को) उत्तेजना मिल जाती है और वह अर्द्धजागृत कुंडलिनी पूर्ण जागृत हो जाती है। प्रश्न है विद्युत्-प्रवाहों का। 'क' और 'ख' दो व्यक्ति हैं। 'क' के विद्युत्-प्रवाह बहुत सक्रिय है। 'ख' के विद्युत्-प्रवाह कमजोर हैं। यदि 'ख' 'क' के पास जाता है तो 'क' के विद्युत्-प्रवाह 'ख' को प्रभावित करेंगे, उसमें एक प्रकार के विद्युत् स्पन्दन पैदा हो जाएंगे।

गुरु-कृपा का तात्पर्य है उस व्यक्ति का सान्निध्य जिसका तैजस शरीर जागृत है। गुरु-कृपा से मिलने वाला यह क्षणिक अनुभव या जागरण क्षणिक ही होता है, स्थायी नहीं होता। एक क्षण में अपूर्व अनुभव हुआ और दूसरे क्षण में वह समाप्त हो गया। इलैक्ट्रोड लगाने से क्षणिक अनुभव होता है और उसे हटा देने से वह अनुभव भी समाप्त हो जाता है। वैसा ही यह अनुभव होता है। अंततः कुंडलिनी का जागरण साधक को स्वयं ही करना पड़ता है।

कुंडलिनी-जागरण के मार्ग

प्रेक्षाध्यान, व्यायाम, तपस्या, भक्ति, प्राणायाम, उपवास, संगीत आदि अनेक साधन हैं, जिनके माध्यम से कुंडलिनी जागती है। पूर्व संस्कारों की प्रबलता से भी कुंडलिनी जागृत हो जाती है। कभी-कभी ऐसा होता है कि व्यक्ति गिरा, मस्तिष्क पर गहरा आघात लगा और कुंडलिनी जाग गयी। कुंडलिनी के जागने के अनेक कारण हैं। औषधियों के द्वारा भी कुंडलिनी जागृत होती है। अमुक-अमुक वनस्पतियों के प्रयोग से कुंडलिनी के जागरण में सहयोग मिलता है। तिब्बत में तीसरे नेत्र के उद्घाटन में वनस्पतियों का प्रयोग भी किया जाता था। पहले शल्यक्रिया करते, फिर वनौषधियों का प्रयोग करते थे। औषधियों का महत्त्व सभी परम्पराओं में मान्य रहा है। प्रसिद्ध सूक्त है–**अचिन्त्यो हि मणिमंत्रौषधीनां प्रभावः**–मणियों, मंत्रों और औषधियों का प्रभाव अचिन्त्य होता है। मंत्रों के द्वारा भी कुंडलिनी को जगाया जा सकता है। विविध मणियों, रत्नों के विकिरणों के द्वारा भी उसे जागृत किया जा सकता है।

प्राण-शक्ति की विद्युत् का चमत्कार

अंग-संचालन में प्राण-शक्ति का प्रयोग होता है। एक अंगुली को हिलाने के लिए भी कितने बड़े तंत्र का सहारा लेना पड़ता है। पहले सोचते हैं, मस्तिष्क के ज्ञानतंतु सक्रिय होते हैं और फिर वे क्रियावाही तंतुओं को निर्देश देते हैं। वह निर्देश वहां तक पहुंचता है, तो अंगुली हिलती है। मस्तिष्क की रचना बहुत विचित्र है। कोई वैज्ञानिक हमारे मस्तिष्क जैसे सूक्ष्म अवयवों का कम्प्यूटर बनाना चाहे तो आज की पूरी पृथ्वी भर जाए–इससे भी शायद ज्यादा बड़ा होगा।

बहुत बार ऐसा होता है कि बल्ब लगे रहते हैं किन्तु प्रकाश गायब हो जाता है। हम शरीर को देखते हैं, शरीर की भी यही हालत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है। शरीर पड़ा है, आंखें, कान, नाक पूरे के पूरे अवयव हैं, किन्तु बिजली गायब हो गई।

कुछ घटनाएं ऐसी होती हैं कि चिता में जलाने के लिए शव को लिटा दिया, वह बीच में ही खड़ा हो गया। पोस्टमार्टम के लिए रोगी को सुलाया गया और डॉक्टर पोस्टमार्टम करने बैठा। अस्त्र लगा, वह खड़ा हो गया। आपको आश्चर्य होगा कि यह कैसे हो सकता है? बिजली गायब हो गई थी, फिर कोई ऐसा बटन दबा, बिजली आ गई और वह जी गया। लोगों ने समझ लिया कि यह तो भूत हो गया। यह बहुत बड़ा चमत्कार है हमारी प्राण-शक्ति का।

प्राणशक्ति और विद्युत् एक बहुत बड़ा चमत्कार है।

पांचों इन्द्रियों की शक्तियां, बोलने की शक्ति, सोचने की शक्ति, चलने-फिरने की शक्ति, श्वास लेने की शक्ति और जीने की शक्ति–ये सारी शक्तियां एक ही शक्ति के विभिन्न रूप हैं। मूलतः एक है–प्राणशक्ति। यदि शक्ति नहीं है तो चेतना का उपयोग नहीं होता।

ज्ञान का विकास तब होता है जब प्राणशक्ति बढ़ जाती है। एक विशिष्ट ज्ञानी, जिसे परिभाषा में चतुर्दशपूर्वी कहा जाता है, वह ४८ मिनट के भीतर इतनी बड़ी ज्ञान राशि का अर्जन कर लेता है, जिसकी हम कल्पना नहीं कर सकते। वे इतनी बड़ी ज्ञान-राशि का केवल कुछ मिनटों में पुनरावर्तन कर लेते हैं।

प्राण-शक्ति जैसे-जैसे सूक्ष्म होती चली जाती है वैसे-वैसे उसकी क्षमता और कार्यशक्ति बढ़ती चली जाती है। ध्यान की साधना प्राणशक्ति को सूक्ष्म करने की साधना है। श्वास की संख्या जितनी बढ़ती है, शक्ति उतनी ही खर्च होती चली जाती है। श्वास की संख्या जितनी कम होती है, उतनी ही शक्ति बढ़ती चली जाती है।

विद्युत् के बिना चेतना के केन्द्रों को सक्रिय नहीं किया जा सकता और चेतना के केन्द्रों को सक्रिय किए बिना कोई भी विशिष्टता प्राप्त नहीं की जा सकती।

प्राण की ऊर्जा को संगृहीत करना और उस ऊर्जा का आध्यात्मिकीकरण करना, यह अपेक्षित है।

ऊर्जा के ऊर्ध्वीकरण के दो मुख्य साधन हैं :–

१. श्वास लेने की समुचित प्रक्रिया का अभ्यास।

२. चित्त को लंबे समय तक एक बिन्दु पर टिकाए रखने का अभ्यास।

२. अनुकंपा

प्रस्तुत सूत्र ६५ में प्रयुक्त 'अनुकंपा' शब्द की व्याख्या आचार्य भिक्षु[1] और श्रीमज्जयाचार्य[2] ने बहुत विस्तार से अपनी रचनाओं में की है।

आचार्य भिक्षु ने प्रस्तुत प्रसंग की मीमांसा में लिखा है–महावीर स्वामी ने अनुकंपा करते हुए लब्धि फोड़कर गोशालक को बचाया। उस समय भगवान छह लेश्या वाले और छद्मस्थ थे। मोह कर्म के कारण उनको यह राग आया।

गोशालक असंयती और कुपात्र था। उसका शारीरिक सहयोग भगवान श्री महावीर ने किया। यदि इसमें धर्म समझते तो सारा जगत दुःखी था, भगवान ने इस उदाहरण को फिर से दुहराया तो नहीं।

अपनी तेजोलेश्या के द्वारा गोशालक ने दो साधुओं को जलाकर भस्मसात् कर दिया। वहां लब्धिधारी साधु तो बहुत थे। उन महापुरुषों को उन्होंने नहीं बचाया? यह अनुकंपा सावद्य समझनी चाहिए।

'जिस समय महावीर में छहों लेश्याएं थीं तथा आठों ही कर्म थे, उस समय जो उन्होंने शीतल लेश्या का प्रयोग कर गोशालक को बचाया था, वह उनकी छद्मस्थ अवस्था की भूल थी; उस कार्य में धर्म की स्थापना करने वाला मूर्ख है।'

श्रीमज्जयाचार्य ने भी इसी तथ्य को विस्तार से समझाते हुए बताया है–

''यहां वृत्तिकार (अभयदेवसूरि) ने लिखा है[3] कि भगवान् ने यहां जो गोशालक का संरक्षण किया था, वह सरागभाव से किया था। सरागभाव से जो कार्य किया था, उसे धर्म किस प्रकार कह सकते हैं? पुनः 'दया के एकरसत्व से' ऐसा जो वृत्तिकार ने लिखा है, उसका भी 'सरागभाव से स्नेह–सहित अनुकंपा की' ऐसा अर्थ है। उसे स्नेह-सहित अनुकंपा कहें, या भाव से दया कहें–इसे मोह रूप दया ही जानना चाहिए।.....यह दया सावद्य जाननी चाहिए। वृत्तिकार ने यह भी कहा है कि 'आगे (सुनक्षत्र-सर्वानुभूति) मुनि द्वय को नहीं बचाएंगे, वह वीतरागभाव के कारण तथा लब्धि का प्रयोग नहीं करने के कारण।' यदि वे लब्धि का प्रयोग कर उन्हें बचाते तो वे अधिक दयावान् भगवान होते, किन्तु वीतराग होने के पश्चात् मोह रूप दया नहीं होती, इसलिए वीतरागत्व में रहे, तथा 'लब्धि का प्रयोग न करने से' ऐसा जो कहा है, उसका अर्थ भी यही है कि वीतराग होने के पश्चात् लब्धि का प्रयोग नहीं करते। इसका न्याय भी विचारना चाहिए। भगवान ने छद्मस्थावस्था में जो सराग-भाव से लब्धि का प्रयोग किया, उसमें धर्म कैसे कह सकते हैं?'' श्रीमज्जयाचार्य ने अनेक प्रमाणों से यह बताया है कि 'लब्धि का प्रयोग करना दोष है।' यह स्वयं केवलज्ञानी भगवान् द्वारा अनेक स्थानों पर प्रतिपादित है। तो फिर छद्मस्थ अवस्था में तीर्थंकर द्वारा कृत इस कार्य को दोष-मुक्त कैसे कहा जा सकता है?

इसका तात्पर्य यह हुआ कि छद्मस्थ-अवस्था के कारण भगवान् महावीर ने गोशालक की जो अनुकंपा की थी, वह सावद्य थी तथा भगवान महावीर जब तीर्थंकर बन चुके थे, तब उनके सामने ही उनके दो शिष्यों–सर्वानुभूति और सुनक्षत्र अणगार को जब गोशालक ने तेजोलेश्या द्वारा भस्मसात् कर दिया था। फिर भी उस समय चूंकि वे छद्मस्थ नहीं थे, उन्होंने शीतल लेश्या का प्रयोग कर अपने

१. (क) अनुकंपा री चौपई, ढाल १, गाथा ८–१०; ढाल ६, गाथा १२।
(ख) गोसाला री चौपई, ढाल १६, गाथा १५, १६।

२. (क) भ. जो. (शतक १५ पर रचित पद्य संख्या २४५ पर रचित वार्तिक तथा पद्य संख्या २४६), खण्ड ४, पृ. ३१७–३१८।
(ख) भ्रमविध्वंसनम्, अनुकंपाऽधिकार, बोल ४३वां, पृ. १७७–१७६।

३. भ. वृ. प. ६६८–इह च यद्गोशालकस्य संरक्षणं भगवता कृतं तत्सरागत्वेन दयैकरसत्वाद्भगवतः।
यच्च सुनक्षत्रसर्वानुभूतिमुनिपुङ्गवयोर्न करिष्यति तद्वीतरागत्वेन लब्ध्यनुपजीवकत्वादवश्यंभाविभावत्वाद्वेत्यवसेयमिति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

साधुओं की रक्षा नहीं की। इसके पीछे यही कारण था कि लब्धि का प्रयोग करना सावद्य कार्य है तथा तीर्थंकर कभी सावद्य कार्य नहीं करते।

आचार्य भिक्षु ने इसे छद्मस्थ अवस्था की चूक माना है। इसे लेकर आचार्य भिक्षु की कटु आलोचनाएं हुई हैं। किन्तु यह आचार्य भिक्षु की व्याख्या को न समझने के कारण हुई है। वस्तुतः भगवान् महावीर से बढ़कर उनके लिए कोई आराध्य नहीं था। एक ओर उन्होंने कहा–मुझे भगवान् महावीर का ही आधार है, और किसी का नहीं। दूसरी ओर वे भगवान् महावीर की भी आलोचना करते हैं। भगवान् ने गोशालक को बचाने के लिए शीतल तेजोलेश्या नामक योगशक्ति का प्रयोग किया और वैश्यायन ऋषि गोशालक को उष्ण तेजोलेश्या से मार रहा था, उससे उसे उबार लिया। आचार्य भिक्षु की साध्य-साधन की मीमांसा से यह कार्य आत्ममुक्ति का प्रमाणित नहीं होता। इसलिए उन्होंने कहा–'इस प्रसंग में भगवान् की वीतराग-साधना में चूक हुई, क्योंकि शक्ति का प्रयोग शुद्ध साधन नहीं है।'

भगवान महावीर द्वारा प्रस्तुत अनुकंपा (दया) के सिद्धांत को समझने के लिए जैन दर्शन के मौलिक सिद्धांतों को समझना होगा। आचार्य भिक्षु ने इस दृष्टि से जो स्पष्टता की है, उसका पूर्वाग्रह-रहित अनुशीलन अपेक्षित है। 'भिक्षु विचार-दर्शन'[1] में इस विषय में विस्तृत विश्लेषण किया गया है, जिसके कुछ अंश यहां उद्धृत हैं :–

सांसारिक उपकार और मोक्ष-मार्ग की भिन्नता को स्पष्ट करते हुए आचार्य भिक्षु ने कहा–'जो सांसारिक उपकार हैं, वे मोहवश किए जाते हैं। सांसारिक जीव उनकी प्रशंसा करते हैं, साधु उनकी सराहना नहीं करते। इन सांसारिक उपकारों में जिन-धर्म का अंश भी नहीं है। जो इनमें धर्म बतलाते हैं, वे मूढ़ हैं।'[2] यह धार्मिक तथ्य है; इसकी अभिव्यक्ति करते हुए उनकी अन्तरात्मा में कभी कंपन नहीं हुआ। सांसारिक उपकार में जो व्यावहारिक लाभ है उनकी उन्हें स्पष्ट अनुभूति थी। उसका उन्होंने मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया है। जो व्यक्ति किसी जीव को मृत्यु से बचाता है, उसके साथ उसका स्नेह-बन्ध हो जाता है। इस जीवन में ही नहीं, किन्तु आगामी जन्म में भी उसे देखते ही स्नेह उत्पन्न होता है।[3] जो व्यक्ति किसी जीव को मारता है उसके साथ उसका द्वेष-बन्ध हो जाता है। पर-जन्म में भी उसे देखकर द्वेष-भाव उभर आता है।[4] मित्र के साथ मित्रता और शत्रु के साथ शत्रुता चलती जाती है। ये दोनों राग-द्वेष के भाव हैं, ये धर्म नहीं है।[5]

कोई अनुकंपावश किसी का सहयोग करता है और कोई किसी के कार्य में विघ्न डालता है। ये राग और द्वेष के मनोभाव हैं। इनकी परम्परा बहुत लम्बी होती है। आत्म-मुक्ति का सहयोग ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप के द्वारा ही किया जा सकता है।[6]

आचार्य भिक्षु की चिन्तन-दिशा स्वतंत्र नहीं थी। उनका चिन्तन जैनागमों की परिक्रमा किए चला, पर परिक्रमा का मार्ग उन्होंने विस्तृत बना दिया। उन्होंने कहा–जीवन और मृत्यु अपने आप में न काम्य है और न अकाम्य। ये परिवर्तन के अवश्यम्भावी चरण हैं। पहले चरण में प्राणी नये जीवन के लिए आता है और दूसरे में नये जीवन के लिए चला जाता है। पुद्गल की भूमिका में जीवन काम्य है और मृत्यु अकाम्य। आत्मा की भूमिका में जीवन और मृत्यु न काम्य है और न अकाम्य। असंयममय जीवन और मृत्यु अकाम्य है, संयममय जीवन और मृत्यु काम्य है। निष्कर्ष की भाषा में असंयम अकाम्य है और संयम काम्य। काम्य और अकाम्य सापेक्ष हैं। इनका निर्णय साध्य के आधार पर ही किया जा सकता है।

आचार्य भिक्षु ने कहा–'जीव जीता है, वह अहिंसा या दया नहीं है। कोई मरता है, वह हिंसा नहीं है। मारने की प्रवृत्ति हिंसा है और मारने की प्रवृत्ति का संयम करना अहिंसा है।'[7]

आचार्य भिक्षु की भाषा में संयम और धर्म अभिन्न हैं। जीवन और मृत्यु की इच्छा असंयम है, इसलिए वह अधर्म है। वह अहिंसा नहीं है, किन्तु मोह है। मोहात्मक प्रवृत्ति से जीवन की परम्परा का अन्त नहीं होता, किन्तु वह बढ़ती ही है।

मोह-मूढ़ मानस का साध्य जीवन बन जाता है। जो जीवन को साध्य मानकर जीता है, वह पवित्रता या संयम को प्रधान नहीं मान सकता। संयम को प्रधानता वही दे सकता है जिसका साध्य जीवन-मुक्ति हो।

महावीर की चेतना गोशालक की रक्षा के प्रसंग के समय मोहाणुओं से अनावृत नहीं थी। सुनक्षत्र और सर्वानुभूति अणगार के प्रसंग में अनावृत हो चुकी थी।

---

१. भिक्षु विचार-दर्शन' लेखक–आचार्य महाप्रज्ञ, प्र. जैन विश्व भारती, लाडनूं।

२. अनुकंपा, ११।३८-३९–
जितरा उपगार संसार तणां छे, जे जे करे ते मोह वस जांणों।
साध तो त्यांनें कदे न सरावे, संसारी जीव तिणरा करसी बखांणों॥
संसार तणां उपगार कीयां में, जिण धर्म रो अंस नहीं छे लिगार।
संसार तणां उपगार कीयां में, धर्म कहे ते तो मूढ गिंवार॥

३. अनुकंपा, ११। ४३–
जीव नें जीयां बचावें तिण सूं, बन्ध जाऐं तिणसो राग सनेह।
जो पर भव में ऊ आय मिले तो, देखत पांण जागे तिण सूं नेह॥

४. वही, ११। ४४–
जीव नें जीव मारे छें तिण सूं, बन्ध जाऐं तिण सूं धेष वशेख।
ते पर भव में ऊ आय मिले तो, देखत पांण जागे तिण सूं धेष ॥

५. अनुकंपा, ११। ४५–
मित्री सूं मित्रीपणों चलीयो जावे, वेरी सूं वेरीपणों चलीयो जावे।
ओ तो राग धेष कर्मा रा चाला, ते श्री जिण धर्म माहें नहीं आवे॥

६. वही, ११। ४६,५०–
कोई अणुकंपा आंणी घर मंडावे, कोई मंडता घर ने देवे भंगाय।
ओ प्रतख राग ने धेष उघाड़ी, ते आगे लगा दोनूं चलीया जाय॥
कहि-कहि नें कितरोएक कहूं, संसार तणा उपगार अनेक।
ग्यांन दरसण चारित नें तप बिनां, मोक्ष तणों उपगार नहीं छे एक॥

७. अणुकंपा, ५।११–
जीव जीवे ते दया नहीं, मरे ते हो हिंसा मत जांण।
मारणवाला ने हिंसा कही, नहीं मारे हो ते तो दया गुण खांण॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मोहाणुओं और पदार्थों से प्रभावित व्यक्ति जो कार्य करते हैं उनके लिए हम पूर्ण अहिंसा की कल्पना ही नहीं कर सकते।

पूर्ण अहिंसक वही हो सकता है जो अपने को बाहरी वातावरण से सर्वथा अप्रभावित रख सके। बाहरी वातावरण से हमारा तात्पर्य शक्ति, मोहाणु और पदार्थ से है। इनमें से किसी एक से भी प्रभावित आत्मा हिंसा से नहीं बच सकती।

साध्य-साधन-संगति

शुद्ध साध्य के लिए साधन भी शुद्ध होने चाहिए। इस विचार को आचार्य भिक्षु की भाषा में जो अभिव्यक्ति मिली, वह उनसे पहले नहीं मिली।

आध्यात्मिक जगत् का साध्य है आत्मा की पवित्रता और उसका साधन वही है। आत्मा की अपवित्रता कभी भी आत्मिक पवित्रता का साधन नहीं बन सकती। पहले क्षण का साधन दूसरे क्षण में साध्य बन जाता है और वही उसके अगले चरण का साधन बन जाता है। पवित्रता ही साध्य है और वही साधन है।

आचार्य भिक्षु ने कहा था–'शुद्ध साध्य का साधन अशुद्ध नहीं हो सकता और शुद्ध साधन का साध्य अशुद्ध नहीं हो सकता। मोक्ष साध्य है और उसका साधन है संयम। वह संयम के द्वारा ही प्राप्त हो सकता है।'

दया उपादेय तत्त्व है। अहिंसा का पालन वही कर सकता है, जिसका मन दया से भीगा हुआ हो। पर साधन की विकृति से दया भी विकृत बन जाती है।

आत्मवादी का साध्य है मोक्ष–आत्मा का पूर्ण विकास। उसके साधन हैं–सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चारित्र।[1] अज्ञानी को ज्ञानी, मिथ्यादृष्टि को सम्यक्दृष्टि और असंयमी को संयमी बनाना साध्य के अनुकूल है।[2] यह साध्य-साधन की संगति है।

६७. तए णं गोसाले मंखलिपुते मम एवं वयासी–किं णं भंते! एस जूयासिज्जायरए तुब्भे एवं वयासी–से गतमेयं भगवं! गत-गतमेयं भगवं?

ततः सः गोशालः मंखलिपुत्रः माम् एवमवादीत्–किं भदन्त! एषः यूकाशय्यातरकः युष्मान् एवमवादीत्–तद् गतमेतद् भगवन्! गत-गतमेतद् भगवन्!

६७. मंखलिपुत्र गोशाल ने इस प्रकार कहा–भंते! इस जूओं के शय्यातर ने आपको इस प्रकार कैसे कहा–भगवन्! मैंने जान लिया, भगवन्! मैंने जान लिया? जान लिया?

६८. तए णं अहं गोयमा! गोसालं मंखलिपुत्तं एवं वयासी–तुमं णं गोसाला! वेसियायणं बालतवस्सिं पासंसि, पासित्ता ममं अंतियाओ सणियं-सणियं पच्चोसक्कसि, जेणेव वेसियायणे बालतवस्सी तेणेव उवागच्छसि, उवागच्छित्ता वेसियायणं बालतवस्सिं एवं वयासी–किं भवं मुणी? मुणिए? उदाहु जूयासेज्जायरए? तए णं से वेसियायणे बालतवस्सी तव एयमट्ठं नो आढाति, नो परिजाणति, तुसिणीए संचिट्ठइ। तए णं तुमं गोसाला! वेसियायणं बालतवस्सिं दोच्चं पि तच्चं पि एवं वयासी–किं भवं मुणी? मुणिए? उदाहु जूयासेज्जायरए? तए णं से वेसियायणे बालतवस्सी तुमं दोच्चं पि तच्चं पि एवं वुत्ते समाणे आसुरुत्ते जाव पच्चोसक्कति, पच्चोसक्कित्ता तव वहाए सरीरगंसि तेयलेस्सं निसिरइ। तए णं अहं गोसाला! तव अणुकंपणट्ठयाए वेसियायणस्स बालतवस्सिस्स उसिण-

ततः अहं गौतम! गौशालं मंखलिपुत्रम् एवमवादीत्–त्वं गोशाल! वैश्यायनं बालतपस्विनं पश्यति, दृष्ट्वा मम अन्तिकात् शनैः-शनैः प्रत्यवष्वष्कते यत्रैव वैश्यायनः बालतपस्वी तत्रैव उपागच्छति, उपागम्य वैश्यायनं बालतपस्विनम् एवमवादीत्–किं भवान् मुनिः? ज्ञातः? उताहु यूकाशय्यातरकः? ततः सः वैश्यायनः बालतपस्वी तव एतमर्थं नो आद्रियते, नो परिजानाति, तूष्णीकः संतिष्ठते। ततः त्वं गोशाल! वैश्यायनं बालतपस्विनं द्विः अपि, त्रिः अपि एवमावदीत्–किं भवान् मुनिः? ज्ञातः? उताहु यूकाशय्यातरकः? ततः सः वैश्यायन बालतपस्वी त्वया द्विः अपि त्रिः अपि एवम् उक्ते सति आशुरक्तः यावत् प्रत्यवष्वष्कते, प्रत्यवष्वष्क्य तव वधाय शरीरके तेजोलेश्यां निसृजति। ततः अहं गोशाल! तव अनुकम्पनार्थाय वैश्यायनस्य बालतपस्विनः उष्णतेजः

६८. गौतम! मैंने मंखलिपुत्र गोशाल से इस प्रकार कहा–गोशाल! तुमने बाल तपस्वी वैश्यायन को देखा, देखकर मेरे पास से धीरे-धीरे पीछे सरक गए, जहां बाल तपस्वी वैश्यायन था, वहां आए, आकर बाल तपस्वी वैश्यायन को इस प्रकार कहा–क्या तुम मुनि हो, पिशाच हो अथवा जूओं के शय्यातर? बाल तपस्वी वैश्यायन ने तुम्हारे इस अर्थ को आदर नहीं दिया, स्वीकार नहीं किया, वह मौन रहा। गोशाल! तुमने बाल तपस्वी वैश्यायन को दूसरी बार भी, तीसरी बार भी इस प्रकार कहा–क्या तुम मुनि हो? पिशाच हो? अथवा जूओं को शय्यातर? तुम्हारे दूसरी बार, तीसरी बार इस प्रकार कहने पर बाल तपस्वी वैश्यायन तत्काल आवेश में आ गया यावत् पीछे सरका, सरक कर तुम्हारे वध के लिए शरीर से तेजोलेश्या को निकाला। गोशाल! मैंने तुम्हारी अनुकंपा के लिए बाल तपस्वी वैश्यायन की उष्ण तेजोलेश्या का प्रतिसंहरण करने के लिए, वह

१. (क) तत्त्वार्थ, १/१–
सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः।
(ख) अणुकंपा, ४।१७–
ग्यांन दरसण चारित तप बिना, ओर मुगति रो नहीं उपाय हो।
छोडा मेला उपगार संसार नां, तिण थी सदगति किण विध जाय हो॥

२. अणुकंपा, ४।१६,२०–
अग्यांनी रो ग्यांनी कीयां थकां, हुवो निश्चे पेला रो उधार हो।
कीयो मिथ्याती रो समकती, तिण उतरीयो भव पार हो॥
असंजती नें कीयो संजती, ते तो मोष तणां दलाल हो।
तपसी कर पार पोंहचावीयो, तिण मेट्या सर्व हवाल हो॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तेयपडिसाहरणट्ठयाए एत्थ णं अंतरा सीयलियं तेयलेस्सं निसिरामि, जाए सा ममं सीयलियाए तेयलेस्साए वेसियायणस्स बालतवस्सिस्स उसिणा तेयलेस्सा पडिहया। तए णं से वेसियायणे बालतवस्सी ममं सीयलियाए तेयलेस्साए सउसिणं तेयलेस्सं पडिहयं जाणित्ता तव य सरीरगस्स किंचि आबाहं वा वाबाहं वा छविच्छेदं वा अकीरमाणं पासित्ता सउसिणं तेयलेस्सं पडिसाहरति, पडिसाहरित्ता ममं एवं वयासी—से गतमेयं भगवं! गत-गतमेयं भगवं!

प्रतिसंहरणार्थाय अत्र अन्तरा शीतलिकां तेजोलश्यां निसृजामि, यया सा मम शीतलिकया तेजोलेश्यया वैश्यायनस्य बालतपस्विनः उष्णा तेजोलेश्या प्रतिहता। ततः सः वैश्यायनः बाल-तपस्वी मम शीतलिकया तेजोलेश्यया स्वकोष्णां तेजोलेश्यां प्रतिहतां ज्ञात्वा तव च शरीरकस्य किञ्चित् अबाधां वा व्याबाधां वा छविच्छेदं अक्रियमाणं दृष्ट्वा स्वकोष्णां तेजोलेश्यां प्रतिसंहरति, प्रतिसंहृत्य माम् एवमवादीत्—तद् गतमेतद् भगवन्! गतगतमेतद् भगवन्!

तुम्हारे शरीर तक पहुंचे, उससे पूर्व शीतल तेजोलेश्या को निकाला। मेरी शीतल तेजोलेश्या से बाल तपस्वी वैश्यायन की उष्ण तेजोलेश्या प्रतिहत हो गई। बाल तपस्वी वैश्यायन ने मेरी शीतल तेजोलेश्या के द्वारा अपनी उष्ण तेजोलेश्या को प्रतिहत जानकर, तुम्हारे शरीर में किञ्चित् आबाध, व्याबाध अथवा छविच्छेद न करते हुए देखकर अपनी उष्ण तेजोलेश्या का प्रतिसंहरण किया, प्रतिसंहरण कर मुझे इस प्रकार कहा—भगवन्! मैंने जान लिया, भगवन्! मैंने जान लिया, जान लिया।

६९. तए णं से गोसाले मंखलिपुत्ते ममं अंतियाओ एयमट्ठं सोच्चा निसम्म भीए तत्थे तसिए उव्विग्गे संजायभए ममं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—कहण्णं भंते! संखित्तविउलतेयलेस्से भवति?

ततः सः गोशालः मंखलिपुत्रः मम अन्तिकात् एतमर्थं श्रुत्वा निशम्य भीतः त्रस्तः तृषितः उद्विग्नः संजातभयः मां वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्यित्वा एवमवादीत्—कथं भदन्त! संक्षिप्त-विपुलतेजोलेश्यः भवति।

६९. मंखलिपुत्र गोशाल मेरे पास इस अर्थ को सुनकर, अवधारण कर भीत और प्रकम्पित हो गया, उसके कंठ प्यास से सूख गये। वह उद्विग्न और भय से व्याकुल हो गया। उसने मुझे वंदन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार कर इस प्रकार कहा—भगवन्! संक्षिप्त विपुल तेजोलेश्या वाला कैसे होता है?

७०. तए णं अहं गोयमा! गोसालं मंखलिपुत्तं एवं वयासी—जेणं गोसाला एगाए सणहाए कुम्मासपिंडियाए एगेण य वियडासएणं छट्ठंछट्ठेणं अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं उड्ढं बाहाओ पगिज्झिय-पगिज्झिय सूराभिमुहे आयावणभूमीए आयावेमाणे विहरइ। से णं अंतो छण्हं मासाणं संखित्तविउलतेयलेस्से भवइ॥

ततः अहं गौतम! गोशालं मंखलिपुत्रं एवमवादीत्—यः गोशालः! एकया सनखया कूर्मासपिण्डिकया एकेन च विकटाशयेन षष्ठषष्ठेन अनिक्षिप्तेन तपःकर्मणा उर्ध्वं बाहू प्रगृह्य-प्रगृह्य सूराभिमुखः आतापनभूम्याम् आतापयन् विहरति। सः अन्तः षण्णां मासानां संक्षिप्तविपुलतेजोलेश्यः भवति।

७०. गौतम! मैंने मंखलिपुत्र गोशाल से इस प्रकार कहा—गोशाल! एक मुट्ठीभर कुल्माष पिण्डिका खाता है, एक चुल्लु पानी पीता है, निरंतर बेले-बेले की तपस्या करता है, आतापन-भूमि में सूर्य के सामने दोनों भुजाएं ऊपर उठाकर आतापना लेता है, वह छह मास के अंतराल में संक्षिप्त विपुल तेजोलेश्या वाला हो जाता है।

७१. तए णं से गोसाले मंखलिपुत्ते ममं एयमट्ठं सम्मं विणएणं पडिसुणेति॥

ततः सः गोशालः मंखलिपुत्रः मम एतमर्थं सम्यक् विनयेन प्रतिशृणोति।

७१. मंखलिपुत्र गोशाल ने मेरे इस अर्थ को विनयपूर्वक स्वीकार किया।

तिलथंभय-निप्फत्तीए गोसालस्स अवक्कमण-पदं

७२. तए णं अहं गोयमा! अण्णदा कदायि गोसालेणं मंखलिपुत्तेणं सद्धिं कुम्म-गामाओ नगराओ सिद्धत्थग्गामं नगरं संपट्ठिए विहाराए। जाहे य मो तं देसं हव्वमागया जत्थ णं से तिलथंभए। तए णं से गोसाले मंखलिपुत्ते ममं एवं वयासी—तुब्भे णं भंते। तदा ममं एव-माइक्खह जाव परूवेह—गोसाला! एस णं तिलथंभए निप्फज्जिस्सइ, नो न

तिलस्तम्भक-निष्पत्त्या गोशालकस्य अपक्रमण-पदम्

ततः अहं गौतम! अन्यदा कदाचित् गोशालेन मंखलिपुत्रेण सार्धं कूर्मग्रामात् नगरात् सिद्धार्थग्रामं नगरं सम्प्रस्थितः विहाराय। यदा च आवां तं देशं हव्यं आगच्छावः यत्र सः तिलस्तम्भकः। ततः सः गोशालः मंखलिपुत्रः माम् एवमवादीत्—यूयं भदन्त! तदा माम् एवमाख्यात यावत् प्ररूपयत—गोशाल! एषः तिलस्तम्भकः निष्पत्स्यते, नो न

तिल के पौधे की निष्पत्ति : गोशाल का अपक्रमण-पद

७२. गौतम! मैं एक दिन मंखलिपुत्र गोशाल के साथ कूर्मग्राम नगर से सिद्धार्थग्राम नगर की ओर विहार के लिए प्रस्थित हुआ। हम उस भू-भाग के निकट आये, जहां वह तिल का पौधा था। मंखलिपुत्र गोशाल ने मुझे इस प्रकार कहा—भंते! आपने तब मुझे ऐसा कहा था यावत् प्ररूपणा की थी—गोशाल! यह तिल का पौधा निष्पन्न होगा; निष्पन्न नहीं होगा, ऐसा नहीं है। ये सात तिल फूलों के जीव मर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निप्फज्जिस्सइ। एते य सत्त तिल-पुप्फजीवा उद्दाइत्ता-उद्दाइत्ता एयस्स चेव तिलथंभगस्स एगाए तिलसंगलियाए सत्त तिला पच्चायाइस्संति, तण्णं मिच्छा। इमं च णं पच्चक्खमेव दीसइ–एस णं से तिलथंभए नो निप्फन्ने, अनिप्फन्नमेव। ते य सत्त तिलपुप्फजीवा उद्दाइत्ता-उद्दाइत्ता नो एयस्सं चेव तिलथंभगस्स एगाए तिलसंगलियाए सत्त तिला पच्चायाया॥

निष्पत्स्यते। एते च सप्त तिलपुष्पजीवाः उद्दुत्य-उद्दुत्य एतस्य चैव तिल-स्तंम्भकस्य एकस्यां तिल 'संगलियाए' सप्त तिलाः प्रत्याजनिष्यन्ते, तत् मिथ्या। इदं च प्रत्यक्षमेव दृश्यते–एषः सः तिलस्तम्भकः नो निष्पन्नः, अनिष्पन्नः एव। ते सप्त तिलपुष्पजीवाः उद्दुत्य-उद्दुत्य नो एतस्य चैव तिलस्तम्भकस्य एकस्यां तिल-'संगलियाए' सप्त तिलाः प्रत्याजाताः।

कर इसी तिल के पौधे की एक तिलफली में सात तिल के रूप में उपपन्न होंगे, वह मिथ्या है। यह प्रत्यक्ष दिखाई देता है–वह तिल का पौधा निष्पन्न नहीं हुआ, अनिष्पन्न ही है। वे सात तिल फूलों के जीव मरकर इस तिल के पौधे की एक तिलफली में सात तिल के रूप में उपपन्न नहीं हुए हैं।

७३. तए णं अहं गोयमा! गोसालं मंखलिपुत्तं एवं वयासी–तुमं णं गोसाला! तदा ममं एवमाइक्खमाणस्स जाव परूवेमाणस्स एयमट्ठं नो सद्दहसि, नो पत्तियसि, नो रोएसि, एयमट्ठं असद्दहमाणे, अपत्तियमाणे, अरोएमाणे, ममं पणिहाए 'अयण्णं मिच्छावादी भवउ' त्ति कट्टु ममं अंतियाओ सणियं-सणियं पच्चोसक्कसि, पच्चोसक्कित्ता जेणेव से तिलथंभए तेणेव उवागच्छसि, उवागच्छित्ता तं तिलथंभगं सलेट्ठुयायं चेव उप्पाडेसि, उप्पाडेत्ता एगंतमंते एडेसि। तक्खणमेत्तं गोसाला! दिव्वे अब्भवद्दलए पाउब्भूए। तए णं से दिव्वे अब्भवद्दलए खिप्पामेव पतणतणाति, खिप्पामेव पविज्जुयाति, खिप्पामेव नच्चोदगं णातिमट्टियं पविरलपफुसियं रयरेणुविणासणं दिव्वं सलिलोदगं वासं वासति, जेण से तिलथंभए आसत्थे पच्चायाते बद्धमूले तत्थेव पतिट्ठिए। तेय सत्त तिलपुप्फजीवा उद्दाइत्ता-उद्दाइत्ता तस्स चेव तिलथंभगस्स एगाए तिलसंगलियाए सत्त तिला पच्चायाया। तं एस णं गोसाला! से तिलथंभए निप्फन्ने, नो अनिप्फन्नमेव। ते य सत्त तिलपुप्फजीवा उद्दाइत्ता-उद्दाइत्ता एयस्स चेव तिलथंभयस्स एगाए तिल-संगलियाए सत्त तिला पच्चायाया। एवं खलु गोसाला! वणस्सइकाइया पउट्टपरिहारं परिहरंति॥

ततः अहं गौतम! गोशालं मंखलिपुत्रम् एवमवादीत्–त्वं गोशाल! तदा मम एवमाख्यातः यावत् प्ररूपयतः एतमर्थं नो श्रद्दधसे, नो प्रत्येषि, नो रोचसे एतमर्थम् अश्रद्दधानः अप्रतियन्, अरोचमानः मां प्रणिधाय 'अयं मिथ्यावादी भवतु' इति कृत्वा मम अन्तिकात् शनैः-शनैः प्रत्यवष्वष्कते, प्रत्यवष्वष्क्य यत्रैव सः तिलस्तम्भकं तत्रैव उपागच्छति, उपागम्य तं तिलस्तम्भकं सलेष्टुकं चैव उत्पाटयति, उत्पाट्य एकान्ते एडसि। तत्क्षणमात्रं गोशाल! दिव्यः अभ्रबार्दलकः प्रादुर्भूतः। ततः सः दिव्यः अभ्रबार्दलकः क्षिप्रमेव प्रतनतनायति क्षिप्रमेव विद्योतते, क्षिप्रमेव नात्युदकं नातिमृत्तिकां प्रविरलपृषत्कं रजःरेणु-विनाशनं दिव्यं सलिलोदकं वर्षां वर्षति, येन सः तिल-स्तम्भकः आश्वस्तः प्रत्याजातः बद्धमूलः, तत्रैव प्रतिष्ठितः। ते च सप्त तिलपुष्पजीवाः उद्दुत्य-उद्रदुत्य तस्य चैव तिल-स्तम्भकस्य एकस्यां तिल-'संगलियाए' सप्त तिलाः प्रत्याजाताः। तत् एषः गोशाल! सः तिलस्तम्भकः निष्पन्नः, नो अनिष्पन्नः एव। ते च सप्त तिल-पुष्पजीवाः उद्दुय-उद्रदुत्य एतस्य चैव तिलस्तम्भकस्य एकस्यां तिल-'संगलियाए' सप्त तिलाः प्रत्याजाताः। एवं खलु गौतम! वनस्पतिकायिकाः 'पउट्टे परिहारं' परिहरन्ति।

७३. गौतम! मैंने मंखलिपुत्र गोशाल से इस प्रकार कहा–गोशाल! उस समय तुमने मेरे आख्यान एवं प्ररूपण करने पर इस अर्थ पर श्रद्धा नहीं की, प्रतीति नहीं की, रुचि नहीं की। इस अर्थ पर अश्रद्धा करते हुए, अप्रतीति करते हुए, अरुचि करते हुए मुझे संकल्पित कर 'यह मिथ्यावादी हो'–ऐसा सोच कर तुम मेरे पास से शनैः-शनैः पीछे सरक गए, सरक कर जहां तिल का पौधा था, वहां गए, जाकर तिल के पौधे को जड़ की मिट्टी सहित उखाड़ा, उखाड़ कर एकांत में फैंक दिया। गोशाल! उसी समय आकाश में दिव्य बादल घुमड़ने लगा। वह दिव्य बादल शीघ्र ही जोर-जोर से गरजने लगा, शीघ्र ही बिजली चमकने लगी। शीघ्र ही वर्षा शुरू हो गई। न अधिक पानी बहा, न अधिक कीचड हुआ। रजों और धूलिकणों को जमाने वाली दिव्य बूंदाबांदी हुई। उससे तिल के पौधे का रोपण हुआ। वह अंकुरित हुआ, बद्धमूल हुआ और वहीं पर प्रतिष्ठित हो गया। वे सात तिल फूलों के जीव मर कर उसी तिल के पौधे की एक तिलफली में सात तिलों के रूप में उपपन्न हुए। इसलिए गोशाल! यह तिल का पौधा निष्पन्न हुआ है, अनिष्पन्न नहीं हुआ। ये सात तिल फूलों के जीव मर कर इस तिल के पौधे की एक तिलफली में सात तिलों के रूप में उपपन्न हुए हैं। गोशाल! इस प्रकार वनस्पति-कायिक जीवों का 'पउट्ट परिहार'[1] होता है–वनस्पतिकायिक जीव मर कर पुनः उसी शरीर में उपपन्न हो जाते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भाष्य

सूत्र ७२-७३

१. पउट्ट परिहार

अभयदेवसूरी ने 'पउट्ट परिहार' का अर्थ इस प्रकार किया है– वनस्पतिकाय का एक ही जीव पुनः पुनः मरकर उसी शरीर में उत्पन्न हो सकता है। यह वनस्पतिकायिक परिवर्तवाद है।[1]

आवश्यक चूर्णि के अनुसार वनस्पति में पउट्ट परिहार होता है। वनस्पति का जीव मरकर पुनः उसी शरीर में पैदा हो जाता हे, यह है पउट्ट परिहार।[2] गोशालक ने इस सिद्धान्त के आधार पर पउट्ट परिहार के सिद्धान्त को सब जीवों पर लागू किया और नियतिवाद के सिद्धान्त की स्थापना की।

पोट्ट-परिहार (पउट्ट परिहार) का सिद्धांत

पुनर्जन्मवाद के अंतर्गत कौन-सा जीव अगले जन्म में कहां जन्म ले सकता है? आदि विषयों की विस्तृत मीमांसा की गई है। एक गति से अन्य गति, एक लिंग से अन्य लिंग, एक 'काय' से अन्य 'काय' आदि में पुनर्जन्म के कुछ नियमों का ब्यौरा जैन आगमों में बहुत ही व्यवस्थित रूप में मिलता है। प्रस्तुत आगम में 'पोट्ट-परिहार' की चर्चा दो संदर्भों में हैं–

१. वनस्पतिकायिक जीव का उसी वनस्पतिकायिक शरीर में पुनः उत्पन्न होना।

२. गोशालक के अनुसार उसका स्वयं का जीव सोलह वर्षों में पोट्ट-परिहार द्वारा सात बार पुनर्जन्म कर अंत में 'गौतम पुत्र अर्जुन' के रूप में उत्पन्न होता है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि गोशालक के मतानुसार मनुष्य भी पोट्ट-परिहार कर सकता है।

'पोट्ट-परिहार' का यह सिद्धांत अनेक दृष्टियों से चर्चनीय है। विशेषतः 'पुनर्जन्मवाद' के संदर्भ में चल रहे आधुनिक अनुसंधान-कार्य द्वारा कुछ ऐसे घटना-प्रसंग सामने आए हैं जिनमें एक व्यक्ति की मृत्यु होने पर उसी मृत शरीर में अन्य व्यक्ति का जीव उत्पन्न हो जाता है।[3] इस प्रकार की घटनाओं की सुसंगत व्याख्या अपेक्षित है।[4]

७४. तए णं से गोसाले मंखलिपुत्ते ममं एवमाइक्खमाणस्स जाव परूवेमाणस्स एयमट्ठं नो सद्दहइ, नो पत्तियइ, नो रोएइ, एयमट्ठं असद्दहमाणे अपत्तियमाणे अरोएमाणे जेणेव से तिलथंभए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता ताओ तिलथंभयाओ तं तिलसंगलियं खुड्डइ, खुड्डित्ता करयलंसि सत्त तिले पप्फोडेइ॥

ततः सः गोशालः मंखलिपुत्रः मम एवमाख्यतः यावत् प्ररूपयतः एतमर्थं नो श्रद्दधते नो प्रत्येति, नो रोचते, एतमर्थम् अश्रद्दधानः अप्रतियन् अरोचमानः यत्रैव सः तिलस्तम्भकः तत्रैव उपागच्छति, उपागम्य तस्मात् तिल-स्तम्भात् तां तिलसंगलियं 'खुड्डइ', 'खुड्डित्ता' करतले सप्त तिलान् प्रस्फोटयति।

७४. मंखलिपुत्र गोशाल ने मेरे इस प्रकार आख्यान यावत् प्ररूपण करने पर इस अर्थ पर श्रद्धा नहीं की, प्रतीति नहीं की, रुचि नहीं की, इस अर्थ पर अश्रद्धा, अप्रतीति और अरुचि करता हुआ जहां तिल का पौधा था, वहां आया, आकर उस तिल के पौधे से तिल की फली को तोड़ा, तोड़कर हाथ में सात तिलों का प्रस्फोटन किया।

७५. तए णं तस्स गोसालस्स मंखलिपुत्तस्स ते सत्त तिले गणमाणस्स अयमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था–एवं खलु सव्वजीवा वि पउट्टपरिहारं परिहरंति–'एस णं गोयमा! गोसालस्स मंखलिपुत्तस्स पउट्टे', एस णं गोयमा! गोसालस्स मंखलिपुत्तस्स ममं अंतियाओ आयाए अवक्कमणे पण्णत्ते॥

ततः तस्य गोशालस्य मंखलिपुत्रस्य तान् सप्त तिलान् गणयतः अयमेतद्रूपः आध्यात्मिकः चिन्तितः प्रार्थितः मनोगतः संकल्पः समुदपादि–एवं खलु सर्वे जीवाः अपि 'पउट्ट-परिहारं' परिहरन्ति–एषः गौतम! गोशालस्य मंखलिपुत्रस्य 'पउट्टे' एषः गौतम! गोशालस्य मंखलिपुत्रस्य मम अन्तिकात् आदाय अपक्रमणं प्रज्ञप्तम्।

७५. उन सात तिलों की गणना करते हुए मंखलिपुत्र गोशाल के मन में इस प्रकार का आध्यात्मिक, स्मृत्यात्मक, अभिलाषात्मक मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ–इसी प्रकार सब जीवों के पोट्ट-परिहार होता है–गौतम! यह मंखलिपुत्र गोशाल का 'पउट्ट' का सिद्धान्त है। गौतम! यह मंखलिपुत्र गोशाल का मेरे पास से स्वयं अपक्रमण हो गया।

गोसालस्स तेयलेस्सुप्पत्ति-पदं

७६. तए णं से गोसाले मंखलिपुत्ते एगाए सणहाए कुम्मासपिंडियाए एगेण य वियडासएणं छट्ठंछट्ठेणं अणिक्खित्तेणं

गोशालस्य तजोलेश्योत्पत्ति-पदम्

ततः सः गोशालः मंखलिपुत्रः एकया सनखया कूर्मासपिण्डिकया एकेन च विकटाशयेन षष्ठषष्ठेन अनिक्षिप्तेन

गोशाल के तेजोलेश्या का उत्पत्ति-पद

७६. मंखलिपुत्र गोशाल एक मुट्ठी भर कुल्माष पिण्डिका और एक चुल्लु भर पानी पीता है, निरन्तर बेले बेले की तपस्या करता है,

१. भ. वृ. १५/७३–मृत्वा मृत्वा यस्तस्यैव वनस्पतिशरीरस्य परिहारः–परिभोगस्तत्रैवोत्पादोऽसौ परिवृत्यपरिहारस्तं परिहरन्ति–कुर्वन्तीत्यर्थः।

२. आव. चू. पृ. २९९–"ते एवं वणप्फइईण पउट्टपरिहारो, पउटपरिहारो नाम परावर्त्य परावर्त्य तस्मिन्नेव सरीरके उववज्जंति तं।"

३. जैन दर्शन और विज्ञान, पृ. १०५ (Dr. Ian Stevenson. Twenty Cases Suggestive of Re-incarnation में वर्णित घटना की समीक्षा)।

४. जैन दर्शन और विज्ञान, पृ. १०६, १०७।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तवोकम्मेणं उड्ढं बाहाओ पगिज्झिय-पगिज्झिय सूराभिमुहे आयावणभूमीए आयावेमाणे विहरइ। तए णं से गोसाले मंखलिपुत्ते अंतो छण्हं मासाणं संखित्तविउलतेयलेसे जाए॥

तपः-कर्मणा उर्ध्वं बाहू प्रगृह्य-प्रगृह्य सूराभिमुखः आतापनभूम्याम् आतापयन् विहरति। ततः सः गोशालः मंखलिपुत्रः अन्तः षण्णां मासानां संक्षिप्त-विपुल-तेजोलेश्यः जातः।

आतापन भूमि में सूर्य के सामने दोनों भुजाएं ऊपर उठाकर आतापना लेता है। मंखलिपुत्र गोशाल छह माह के अंतराल में संक्षिप्त विपुल तेजोलेश्या वाला हो गया।

गोसालस्स पुव्वकहा-उवसंहार-पदं

७७. तए णं तस्स गोसालस्स मंखलिपुत्तस्स अण्णदा कदाति इमे छ दिसाचरा अंतियं पाउब्भवित्था, तं जहा—साणे, कलंदे, कण्णियारे, अच्छिदे, अग्गिवेसायणे, अज्जुणे, गोमायुपुत्ते। तए णं ते छ दिसाचरा अट्ठविहं पुव्वगयं मग्गदसमं सएहिं-सएहिं मतिदंसणेहिं निज्जूहंति, निज्जूहित्ता गोसालं मंखलिपुत्तं उवट्ठाइंसु। तए णं से गोसाले मंखलिपुत्ते तेणं अट्ठंगस्स महानिमित्तस्स केणइ उल्लोयमेत्तेणं सव्वेसिं पाणाणं, सव्वेसिं भूयाणं, सव्वेसिं जीवाणं, सव्वेसिं सत्ताणं इमाइं छ अणइक्कमणिज्जाइं वागरणाइं वागरेति, तं जहा—

गोशालस्य पूर्वकथा-उपसंहार-पदम्

ततः तस्य गोशालस्य मंखलिपुत्रस्य अन्यदा कदाचित् इमे षट् दिक्चराः अन्तिकं प्रादुरभूवन् तद्यथा—सानः, कलन्दः, कर्णिकारः, अच्छिदः, अग्नि-वैश्यायनः, अर्जुनः गोमायुपुत्रः। ततः ते षट् दिक्चराः अष्टविधं पूर्वगतं मार्गदशमं स्वकैः स्वकैः मतिदर्शनैः निर्यूथयन्ति, निर्यूथयित्वा गोशालं मंखलिपुत्रम् उपास्थुः (उवट्ठाइंसु) ततः सः गोशालः मंखलिपुत्रः तेन अष्टांगस्य महानिमित्तस्य केनचित् उल्लोकमात्रेण सर्वेषां प्राणानाम्, सर्वेषां भूतानाम्, सर्वेषां जीवानाम्, सर्वेषां सत्वानाम् इमानि षट् अनतिक्रमणीयानि व्याकरणानि व्याकरोति, तद्यथा—

गोशाल की पूर्व कथा का उपसंहार-पद

७७. [1]मंखलिपुत्र गोशाल के पास एक दिन ये छह दिशाचर[2] प्रकट हुए, जैसे—शान, कलंद, कर्णिकार, अच्छिद, अग्नि-वैश्यायन और अर्जुन गोमायुपुत्र। उन दिशाचरों ने अष्टविध महानिमित्त[3] का पूर्वगत के दसवें अंग से[4] अपने-अपने मति दर्शन से निर्यूहण किया। निर्यूहण कर मंखलिपुत्र गोशाल के सामने उपस्थित किया। उस अष्टांग महानिमित्त के सामान्य अध्ययन मात्र से सब प्राणी, सब भूत, सब जीव और सब सत्त्वों के लिए इन छह अनतिक्रमणीय व्याकरणों का व्याकरण किया, जैसे—

लाभं अलाभं सुहं दुक्खं,
जीवियं मरणं तहा।

तए णं से गोसाले मंखलिपुत्ते णं अट्ठंगस्स महानिमित्तस्स केणइ उल्लोयमेत्तेणं सावत्थीए नगरीए अजिणे जिणप्पलावी, अणरहा अरहप्पलावी, अकेवली केवलिप्पलावी, असव्वण्णू सव्वण्णुप्पलावी, अजिणे जिणसद्दं पगासेमाणे विहरइ, तं नो खलु गोयमा! गोसाले मंखलिपुत्ते जिणे जिणप्पलावी, अरहा अरहप्पलावी, केवली केवलि-प्पलावी, सव्वण्णू सव्वण्णुप्पलावी, जिणे जिणसद्दं पगासेमाणे विहरइ, गोसाले णं मंखलिपुत्ते अजिणे जिणप्पलावी, अणरहा अरहप्पलावी, अकेवली केवलिप्पलावी, असव्वण्णू सव्वण्णुप्पलावी, अजिणे जिणसद्दं पासेमाणे विहरई॥

लाभम् अलाभम् सुखं दुःखं,
जीवितं मरणं तथा।

ततः सः गोशालः मंखलिपुत्रः तेन अष्टांगस्य महानिमित्तस्य केनचित् उल्लोकमात्रेण श्रावस्त्यां नगर्याम् अजिनः जिनप्रलापी, अनर्हत् अर्हत्-प्रलापी, अकेवली केवलीप्रलापी, असर्वज्ञः सर्वज्ञप्रलापी, अजिनः जिन-शब्दं प्रकाशयन् विहरति, तत् नो खलु गौतम! गोशालः मंखलिपुत्रः जिनः जिनप्रलापी, अर्हत् अर्हत्प्रलापी केवली केवलिप्रलापी, सर्वज्ञः सर्वज्ञ-प्रलापी, जिनः जिन-शब्दं प्रकाशयन् विहरति, गोशालः मंखलिपुत्रः अजिनः जिनप्रलापी, अनर्हत् अर्हत्प्रलापी, अकेवली केवलिप्रलापी, असर्वज्ञः सर्वज्ञप्रलापी, अजिनः जिनशब्दं प्रकाशयन् विहरति।

लाभ, अलाभ, सुख, दुःख, जीवन तथा मरण।

मंखलिपुत्र गोशाल अष्टांग महानिमित्त के सामान्य अध्ययनमात्र से श्रावस्ती नगर में अजिन होकर जिन-प्रलापी, अर्हत् न होकर अर्हत्-प्रलापी, केवली न होकर केवली-प्रलापी, सर्वज्ञ न होकर सर्वज्ञ-प्रलापी, जिन न होकर जिन शब्द से अपने आपको प्रकाशित करता हुआ विहरण करने लगा। इसलिए गौतम! मंखलिपुत्र गोशाल जिन होकर जिन-प्रलापी नहीं है, अर्हत् होकर अर्हत्-प्रलापी नहीं है, केवली होकर केवली-प्रलापी नहीं है, सर्वज्ञ होकर सर्वज्ञ-प्रलापी नहीं है। अजिन होकर जिन शब्द से अपने आपको प्रकाशित करता हुआ विहार कर रहा है। मंखलिपुत्र गोशाल अजिन होकर जिन-प्रलापी है, अर्हत् न होकर अर्हत्-प्रलापी है, केवली न होकर केवली-प्रलापी है, सर्वज्ञ न होकर सर्वज्ञ-प्रलापी है, जिन न होकर जिन शब्द से अपने आपको प्रकाशित करता हुआ विहार कर रहा है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भाष्य

१. सूत्र ७७

प्रस्तुत शतक के सूत्र ३ से ७ को यहां (प्रस्तुत सूत्र ७७ में) पुनः लगभग ज्यों का त्यों दोहराया गया है। लगता है 'दिशाचर' वाली घटना जो सूत्र ४ में आ गई थी, उसका अनुसंधान करने के लिए इसे फिर दोहराया गया है। सूत्र ८ से सूत्र १३ में श्रावस्ती में भगवान् महावीर के आगमन तथा श्रावस्ती नगर में फैल रहे संवाद कि 'मंखलिपुत्र गोशालक जिन-प्रलापी.....होकर अपने आपको 'जिन' शब्द से प्रकाशित करता हुआ विहार कर रहा है, क्या यह ऐसा ही है?' इस पर गौतम गणधर द्वारा महावीर को प्रश्न पूछना तथा उसके उत्तर में गोशालक के वृत्त को बतलाने का प्रारंभ करना–यहां तक का विषय है। सूत्र १४ से ७५ तक गोशालक का पूरा वृत्तान्त है, जिसमें गोशालक के जन्म, भगवान् महावीर के साथ गोशालक के प्रथम मिलन से लेकर उसके अलग होने तक की घटनाएं वर्णित हैं। सूत्र ७६ में अलग होने के बाद गोशालक द्वारा तेजोलेश्या-प्राप्ति की घटना दी गई है।

अगले सूत्र (सूत्र ७८) में परिषद् भगवान् के मुख से गोशालक के पूरे वृत्त को सुन कर संतुष्ट होने तथा विसर्जित होने की बात है। सूत्र ७९ से पुनः श्रावस्ती में इसकी प्रतिक्रिया तथा आगे का घटना-वृत्त प्रारंभ होता है।

इस समग्र वृत्त से यद्यपि यह स्पष्ट नहीं होता कि महावीर से अलग होने के पश्चात् गोशालक को छह दिशाचर कब मिलते हैं तथा कब से वह अपने आपको 'जिन' घोषित करता है, फिर भी इतना तो स्पष्ट है कि श्रावस्ती में अपने २६वें वर्षावास में भगवान महावीर के आगमन के समय गोशालक का श्रमण-पर्याय का चौबीसवां वर्ष चल रहा था (क्योंकि गोशालक ने महावीर के साधना-काल के तीसरे वर्ष के प्रारंभ में महावीर के शिष्यत्व को प्राप्त करने में सफलता प्राप्त की थी।); चौबीस वर्ष की पर्याय से पूर्व ही दिशाचरों का मिलन एवं गोशालक द्वारा अपने आपको 'जिन' बताने की घोषणा–ये दोनों घटनाएं हो चुकी थीं।

यह तो स्पष्ट है कि गोशाल ने अपने श्रमण-पर्याय के नवें वर्ष में तेजोलेश्या की प्राप्ति की थी। दिशाचरों से मिलन एवं 'जिनत्व' की घोषणा की घटनाएं दश से लेकर तेईस वर्ष के पर्याय-काल में हुई–ऐसा माना जा सकता है। इन आधारों पर महावीर और गोशालक का तुलनात्मक जीवन-प्रसंगों को इस प्रकार रखा जा सकता है–

महावीर	गोशालक
दीक्षा का तीसरा वर्ष	दीक्षा का प्रथम वर्ष
दीक्षा का दसवां वर्ष	दीक्षा का आठवां वर्ष–महावीर से अलग हुआ।
दीक्षा का ग्यारहवां वर्ष	दीक्षा का नवां वर्ष–तेजोलेश्या की प्राप्ति
दीक्षा के बारहवें से पच्चीसवें वर्ष के बीच तेरहवें वर्ष में जिनत्व-प्राप्ति	दीक्षा के दसवें से तेईसवें वर्ष के बीच–दिशाचरों से मिलन एवं जिनत्व की घोषणा
दीक्षा के छब्बीसवें वर्ष में–श्रावस्ती आगमन, नगरवासियों के गोशालक के विषय में चर्चा–गोशालक का पूर्व वृत्त प्रकट करना। महावीर के समवशरण में गोशालक द्वारा तेजोलेश्या का प्रयोग–महावीर हत होने पर छह मास तक रुग्ण।	दीक्षा के चौबीसवें वर्ष में श्रावस्ती प्रवास के दौरान जनता में 'जिन'–होने के विषय में चर्चा–अपने वृत्त को जनता में प्रसारित होने पर क्रुद्ध होकर महावीर के पास जाना–अपनी ही तेजोलेश्या से प्रतिहत होकर सात दिन बाद अपने श्रमण-पर्याय के चौबीसवें वर्ष में ही मृत्यु
श्रावस्ती की घटना के सोलह वर्ष पश्चात् दीक्षा के तयालीसवें वर्ष में निर्वाण-प्राप्ति	गोशालक की मृत्यु के बाद सत्रहवें वर्ष में महावीर का निर्वाण

२. दिशाचर

अभयदेवसूरि ने दिशाचर का अर्थ 'मर्यादा को मानने वाला' शिष्य किया है। उन्होंने टीकाकार और चूर्णिकार का मत उद्धृत किया है। टीकाकार के अनुसार दिशाचर भगवान् के पार्श्वस्थीभूत शिष्य हैं। चूर्णिकार के अनुसार वे पार्श्वापत्यीय-पार्श्व की परंपरा के मुनि हैं।[1]

३. अष्टांग निमित्त

अष्टांग निमित्तों के आठ प्रकार हैं–१. दिव्य २. उत्पात ३. आंतरिक्ष ४. भौम ५. अंग ६. स्वर ७. लक्षण ८. व्यञ्जन।[2]

पूर्वगत–दृष्टिवाद का एक अंग, जिसके अंतर्गत चौदह पूर्व होते हैं।[3]

४. मग्गदसमं

वृत्तिकार ने गति-मार्ग और नृत्य-मार्ग इन दो मार्गों की संभावना की है। उनके अनुसार नवम शब्द यहां लुप्त है इसलिए व्याख्यागत पाठ 'नवम-दसमौ'–इस प्रकार होना चाहिए।[4]

१. भ. १५/२ वृत्ति–दिशं–मेरां चरन्ति-यान्ति मन्यन्ते भगवतो वयं शिष्याः इति दिक्चराः देशाटा वा, दिक्चराः भगवच्छिष्याः पार्श्वस्थीभूताः इति टीकाकारः, पासावच्चिजा त्ति चूर्णिकारः।

२. भ. १५/४ : वृत्ति–अष्टविधम्–अष्टं प्रकारं निमित्तमिति शेषः तद्येदं–दिव्यं, औत्पातं, आंतरिक्षं, भौमं, आंगं, स्वरं, लक्षणं, व्यंजनं चेति।

३. भ. १५/४ : वृत्ति–पूर्वगतं–पूर्वाभिधान श्रुतविशेषमध्यगतम्।

४. भ. १५/४ वृत्ति–गीतमार्गनृत्यमार्ग–लक्षणो सम्भाव्येते, 'दसम' त्ति अत्र नवमशब्दस्य लुप्तस्य दर्शितान्नवमदशमाविति दृश्यं, ततश्च मार्गो नवमदशमौ यत्र तत्तथा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७८. तए णं सा महतिमहालया महच्च-परिसा समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठा समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता जामेव दिसं पाउब्भूया तामेव दिसं पडिगया॥

ततः सा महामहती महार्च्यपरिषद् श्रमणस्य भगवतः महावीरस्य अन्तिके एतमर्थं श्रुत्वा निशम्य हृष्टतुष्टा श्रमणं भगवन्तं महावीरं वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्यित्वा यस्याः एव दिशः प्रादुर्भूता तस्यामेव दिशि प्रतिगता।

७८. वह विशालतम परिषद् श्रमण भगवान् महावीर के पास इस अर्थ को सुनकर, अवधारण कर हृष्ट-तुष्ट हो गई। श्रमण भगवान् महावीर को वंदन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार कर जिस दिशा से आई थी उसी दिशा में लौट गई।

गोसालस्स अमरिस-पदं

७९. तए णं सावत्थीए नगरीए सिंघाडग--तिग-चउक्क-चच्चर-चउम्मुह-महापह-पहेसु बहुजणो अण्णमण्णस्स एवमाइक्खइ जाव परूवेइ—जण्णं देवाणुप्पिया! गोसाले मंखलिपुत्ते जिणे जिणप्पलावी जाव जिणे जिणसद्दं पगासेमाणे विहरइ तं मिच्छा। समणे भगवं महावीरे एवमाइक्खइ जाव परूवेइ—एवं खलु तस्स गोसालस्स मंखलिपुत्तस्स मंखली नामं मंखे पिता होत्था। तए णं तस्स मंखस्स एवं चेव तं सव्वं भाणियव्वं जाव अजिणे जिणसद्दं पगासेमाणे विहरइ, तं नो खलु गोसाले मंखलिपुत्ते जिणे जिणप्पलावी जाव विहरइ, गोसाले मंखलिपुत्ते अजिणे जिणप्पलावी जाव विहरइ, समणे भगवं महावीरे जिणे जिणप्पलावी जाव जिणसद्दं पगासेमाणे विहरइ॥

गोशालस्य-अमर्ष-पदम्

ततः श्रावस्त्यां नगर्यां शृंगाटक-त्रिक-चतुष्क-चत्वर-चतुर्मुख-महापथ-पथेषु बहुजनः अन्योन्यम् एवमाख्याति यावत् प्ररूपयति—यत् देवानुप्रिया! गोशालः मंखलिपुत्रः जिनः जिनप्रलापी यावत् जिनः जिनशब्दं प्रकाशयन् विहरति तत् मिथ्या। श्रमणः भगवान् महावीरः एवमाख्याति यावत् प्ररूपयति—एवं खलु तस्य गोशालस्य मंखलिपुत्रस्य मंखली नाम मंखः पिता आसीत्। तस्य मंखस्य एवं चैव तत् सर्वं भणितव्यं यावत् अजिनः जिनशब्दं प्रकाशयन् विहरति, तत् नो खलु गोशालः मंखलिपुत्रः जिनः जिनप्रलापी यावत् विहरति, गौशालः मंखलिपुत्रः अजिनः जिनप्रलापी यावत् विहरति, श्रमणः भगवान् महावीरः जिनः जिनप्रलापी यावत् जिनशब्दं प्रकाशयन् विहरति।

गोशाल का अमर्ष-पद

७९. श्रावस्ती नगर के शृंगाटकों, तिराहों, चौराहों, चार द्वार वाले स्थानों, राजमार्गों और मार्गों पर बहुजन परस्पर इस प्रकार आख्यान यावत् प्ररूपण करते हैं—देवानुप्रिय! मंखलिपुत्र गोशाल जिन होकर जिन-प्रलापी, यावत् जिन होकर जिन शब्द से अपने आपको प्रकाशित करता हुआ विहार कर रहा है, वह मिथ्या है। श्रमण भगवान् महावीर इस प्रकार आख्यान यावत् प्ररूपण करते हैं—मंखलिपुत्र गोशाल के पिता का नाम मंखली था। उसकी जाति मंख थी। मंख की पूर्ववत् सर्ववक्तव्यता यावत् जिन न होकर जिन शब्द से प्रकाशित करता हुआ विहार कर रहा है। इसलिए मंखलिपुत्र गोशाल जिन न होकर जिन-प्रलापी है यावत् विहार कर रहा है। मंखलिपुत्र गोशाल अजिन होकर जिन-प्रलापी है, यावत् विहार कर रहा है। श्रमण भगवान् महावीर जिन होकर जिन-प्रलापी हैं, यावत् जिन शब्द से अपने आपको प्रकाशित करते हुए विहार कर रहे हैं।

८०. तए णं से गोसाले मंखलिपुत्ते बहुजणस्स अंतियं एयमट्ठं सोच्चा निसम्म आसुरुत्ते रुट्ठे कुविए चंडिक्किए मिसिमिसेमाणे आयावणभूमीओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता सावत्थिं नगरिं मज्झंमज्झेणं जेणेव हालाहलाए कुंभकारीए कुंभकारावणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता हालाहलाए कुंभकारीए कुंभकारावणंसि आजीवियसंघसंपरिवुडे महया अमरिसं वहमाणे एवं चावि विहरइ॥

ततः सः गोशालः मंखलिपुत्रः बहुजनस्य अन्तिकम् एतमर्थं श्रुत्वा निशम्य आशुरक्तः, रुष्टः कुपितः 'चंडिक्किए' 'मिसिमिसेमाणे' आतापनभूम्याः प्रत्यवरोहति, प्रत्यवरुह्य श्रावस्तिं नगरीं मध्यमध्येन यत्रैव हालाहलायाः कुम्भकार्याः कुम्भकारापणः तत्रैव उपागच्छति, उपागम्य हालाहलायाः कुम्भकार्याः कुम्भकारापणे आजीविक-संघपरिवृतः महान्तम् अमर्षं वहमानः एवं चापि विहरति।

८०. मंखलिपुत्र गोशाल बहुजन के पास इस अर्थ को सुन कर, अवधारण कर तत्काल आवेश में आ गया, रुष्ट हो गया, कुपित हो गया, उसका रूप रौद्र हो गया, क्रोध की अग्नि में प्रदीप्त होकर आतापन-भूमि से नीचे उतरा, नीचे उतरकर श्रावस्ती नगर के बीचोंबीच जहां हालाहला कुंभकारी का कुंभकारापण था, वहां आया, आकर हालाहला कुंभकारी के कुंभकारापण में आजीविक-संघ से संपरिवृत होकर महान् अमर्ष का भार ढोता हुआ विहरण करने लगा।

गोसालस्स आणंदथेरसमक्खे अक्कोसपदंसण-पदं

८१. तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतेवासी आणंदे

गोशालस्य आनन्दस्थविरसमक्षे आक्रोश-प्रदर्शन-पदम्

तस्मिन् काले तस्मिन् समये श्रमणस्य भगवतः महावीरस्य अन्तेवासी

गोशाल का स्थविर आनंद के समक्ष आक्रोश का प्रदर्शन-पद

८१. उस काल और उस समय श्रमण भगवान् महावीर का अंतेवासी आनन्द नाम का

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नामं थेरे पगइभद्दए जाव विणीए छट्ठंछट्ठेणं अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ॥

आनन्दः नाम स्थविरः प्रकृतिभद्रकः यावत् विनीतः षष्ठषष्ठेन अनिक्षिप्तेन तपःकर्मणा संयमेन तपसा आत्मानं भावयन् विहरति।

स्थविर प्रकृति से भद्र यावत् विनीत था। वह निरंतर बेले-बेले तपःकर्म के द्वारा संयम और तपस्या से अपने आपको भावित करता हुआ विहार कर रहा है।

८२. तए णं से आणंदे थेरे छट्ठक्खमणपारणगंसि पढमाए पोरिसीए एवं जहा गोयमसामी तहेव आपुच्छइ, तहेव जाव उच्च-नीय-मज्झिमाइं कुलाइं घरसमुदाणस्स भिक्खायरियाए अडमाणे हालाहलाए कुंभकारीए कुंभकारावणस्स अदूरसामंते वीइवयइ॥

ततः सः आनन्दः स्थविरः षष्ठक्षपणपारणके प्रथमायां पौरुष्याम् एवं यथा गौतमस्वामी तथैव आपृच्छति, तथैव यावत् उच्च-नीच-मध्यमानि कुलानि गृहसमुदानस्य भिक्षाचर्यायाम् अटन् हालाहलायाः कुम्भकार्याः कुम्भकारापणस्य अदूरसामन्ते व्यतिव्रजति।

८२. आनंद स्थविर ने बेले के पारण में प्रथम पोरिसी में इस प्रकार जैसे गौतम स्वामी ने श्रमण भगवान् महावीर से पूछा, वैसे ही यावत् उच्च, नीच तथा मध्यम कुलों सामुदानिक भिक्षाचर्या के लिए घूमता हुआ हालाहला कुंभकारी के कुंभकारापण से न अति दूर और न अति निकट जा रहा था।

८३. तए णं से गोसाले मंखलिपुत्ते आणंदं थेरं हालाहलाए कुंभकारीए कुंभकरावणस्स अदूरसामंतेणं वीइवयमाणं पासइ, पासित्ता एवं वयासी—एहि ताव आणंदा! इओ एगं महं उवमियं निसामेहि।

ततः सः गोशालः मंखलिपुत्रः आनन्दं स्थविरं हालाहलायाः कुम्भकार्याः कुम्भकारापणस्य अदूरसामन्तात् व्यतिव्रजन्तं पश्यति, दृष्ट्वा एवमवादीत्—एहि तावत् आनन्द! इतः एकं महान्तम् उपमितं निशाम्य।

८३. मंखलिपुत्र गोशाल ने आनंद स्थविर को हालाहला कुंभकारी के कुंभकारापण से न अति दूर और न अति निकट जाते हुए देखा, देखकर इस प्रकार कहा—आनंद! तुम इधर आओ, एक बड़ी उपमा को सुनो।

८४. तए णं से आणंदे थेरे गोसालेणं मंखलिपुत्तेणं एवं वुत्ते समाणे जेणेव हालाहलाए कुंभकारीए कुंभकारावणे, जेणेव गोसाले मंखलिपुत्ते तेणेव उवागच्छइ॥

ततः सः आनन्दः स्थविरः गोशालेन मंखलिपुत्रेणं एवम् उक्ते सति यत्रैव हालाहलायाःकुम्भकार्याः कुम्भकारापणः यत्रैव गोशालः मंखलिपुत्रः तत्रैव उपागच्छति।

८४. स्थविर आनन्द मंखलिपुत्र गोशाल के इस प्रकार कहने पर जहां हालाहला कुंभकारी के कुंभकारापण था, जहां मंखलिपुत्र गोशाल था, वहां आया।

८५. तए णं से गोसाले मंखलिपुत्ते आणंदं थेरं एवं वयासी— एवं खलु आणंदा! इत्तो चिरातीयाए अद्धाए केइ उच्चावया वणिया अत्थत्थी अत्थलुद्धा अत्थगवेसी अत्थकंखिया अत्थपिवासा अत्थ-गवेसणयाए नाणाविहविउलपणियभंडमायाए सगडीसागडेणं सुबहुं भत्तपाणं पत्थयणं गहाय एगं महं अगामियं अणोहियं छिन्नावायं दीहमद्धं अडविं अणुप्पविट्ठा॥

ततः सः गोशालः मंखलिपुत्रः आनन्दस्थविरम् एवमवादीत्—एवं खलु आनन्द! इतः चिरातीते अध्वनि केचिद् उच्चावचाः वणिजः अर्थार्थिनः अर्थलुब्धाः अर्थगवेषिणः अर्थकांक्षिताः अर्थपिपासाः अर्थगवेषणायै नानाविधविपुलपण्यभाण्डम् आदाय शकटीशाकटेन सुबहु भक्तपानं पथ्यदनं गृहीत्वा एकां महतीं अग्रामिकाम् अनौधिकां छिन्नापातां दीर्घध्वानम् अटवीम् अनुप्रविष्टाः।

८५. मंखलिपुत्र गोशाल ने आनन्द स्थविर से इस प्रकार कहा—आनन्द! चिर अतीत काल में कुछ उच्च तथा निम्न, धनार्थी, अर्थ-लुब्ध, अर्थ-गवेषी, अर्थ-कांक्षी, अर्थ-पिपासु वणिक अर्थ की गवेषणा के लिए नाना प्रकार के विपुल पण्य[1] के भांड लेकर गाड़ी-गाड़ों में बहुत पथ्य भक्तपान लेकर एक विशाल बस्ती-शून्य, जल-रहित, आवागमन-रहित प्रलंब मार्ग वाली अटवी में अनुप्रविष्ट हो गए।

भाष्य

१. पण्य

सू. ५६ का भाष्य द्रष्टव्य है।

८६. तए णं तेसिं वणियाणं तीसे अगामियाए अणोहियाए छिन्नावायाए दीहमद्धाए अडवीए किंचि देसं अणुप्पत्ताणं समाणाणं से पुव्वगहिए उदए

ततः तेषां वणिजां तस्याम् अग्रामिकायाम् अनौधिकायां छिन्नापातायां दीर्घाध्वनि अटव्यां किञ्चित् देशम् अनुप्राप्तानां सतां तद् पूर्वगृहीतम्

८६. उन वणिकों के उस विशाल बस्ती-शून्य, जल-रहित, आवागमन-रहित प्रलंब-मार्गवाली अटवी में कुछ दूर जाने पर पहले लिया हुआ जो जल था, वह बार-बार पीते-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अणुपुव्वेणं परिभुज्जमाणे-परिभुज्जमाणे झीणे॥

उदकम् अनुपूर्वेण परिभुञ्जमानं-परिभुञ्जमानं क्षीणम्।

पीते समाप्त हो गया।

८७. तए णं ते वणिया झीणोदगा समाणा तण्हाए परब्भमाणा अण्णमण्णे सद्दावेंति, सद्दावेत्ता एवं वयासी—एवं खलु देवाणुप्पिया! अम्हं इमीसे अगामियाए अणोहियाए छिन्नावायाए दीहमद्धाए अडवीए किंचि देसं अणुप्पत्ताणं समाणाणं से पुव्वगहिए उदए अणुपुव्वेणं परिभुज्जमाणे-परिभुज्जमाणे झीणे, तं सेयं खलु देवाणुप्पिया! अम्हं इमीसे अगामियाए जाव अडवीए उदगस्स सव्वओ समंता मग्गण-गवेसणं करेत्तए त्ति कट्टु अण्णमण्णस्स अंतिए एयमट्ठं पडिसुणेंति, पडिसुणेत्ता तीसे णं अगामियाए जाव अडवीए उदगस्स सव्वओ समंता मग्गण-गवेसणं करेंति, उदगस्स सव्वओ समंता मग्गण-गवेसणं करेमाणा एगं महं वणसंडं आसादेंति—किण्हं किण्होभासं जाव महामेहनिकुरंबभूयं पासादीयं दरिसणिज्जं अभिरूवं पडिरूवं।

ततः ते वणिजः क्षीणोदकाः सन्तः तृष्णया प्रारभमाणाः अन्योन्यान् शब्दयन्ति, शब्दयित्वा एवमवादीत्—एवं खलु देवानुप्रियाः! अस्माकम् अस्याम् अग्रामिकायाम् अनौधिकायाम् छिन्नापातायां दीर्घाध्वनि अटव्यां किञ्चित् देशम् अनुप्राप्तानां सतां तद् पूर्वगृहीतम् उदकम् अनुपूर्वेण परिभुञ्जमानं—परिभुञ्जमानं क्षीणम् तत् श्रेयः खलु देवानुप्रियाः! अस्माकम् अस्याम् अग्रामिकायां यावत् अटव्याम् उदकस्य सर्वतः समन्तात् मार्गण-गवेषणां कर्तुम् इति कृत्वा अन्योन्यस्य अन्तिके एतमर्थं प्रतिशृण्वन्ति, प्रतिश्रुत्य तस्याम् अग्रामिकायां यावत् अटव्याम् उदकस्य सर्वतः समन्तात् मार्गण-गवेषणां कुर्वन्ति, उदकस्य सर्वतः समन्तात् मार्गण-गवेषणां कुर्वन्तः एवं महान्तं वनषण्डम् आसादयन्ति—कृष्णं कृष्णभां (किण्होभासं) यावत् महत् मेघनिकुरम्बभूतं प्रासादिकं दर्शनीयम् अभिरूपं प्रतिरूपं।

८७. जल के समाप्त होने पर, प्यास के प्रारम्भ होने पर वणिकों ने एक-दूसरे को बुलाया, बुलाकर इस प्रकार कहा—देवानुप्रिय! हम इस विशाल बस्ती-शून्य, जल-रहित, आवागमन-रहित प्रलंब मार्ग वाली अटवी में हैं। कुछ दूर जाने पर पहले लिया हुआ जो जल था, वह बार-बार पीते पीते समाप्त हो गया। देवानुप्रियो! हमारे लिए यह श्रेय है कि हम इस विशाल बस्ती-शून्य यावत् अटवी में चारों ओर जल की मार्गणा-गवेषणा करें। इस प्रकार एक दूसरों के पास इस अर्थ को स्वीकार किया, स्वीकार कर उस विशाल बस्ती शून्य यावत् अटवी में चारों ओर जल की मार्गणा-गवेषणा करते हुए एक विशाल वनषंड को प्राप्त किया—कृष्ण, कृष्ण अवभास वाला, यावत् काली कजरारी घटा से समान चित्त को प्रसन्न करने वाला, दर्शनीय, कमनीय और रमणीय।

तस्स णं वणसंडस्स बहुमज्झदेसभाए, एत्थ णं महेगं वम्मीयं आसादेंति। तस्स णं वम्मीयस्स चत्तारि वप्पूओ अब्भुग्गयाओ, अभिनिसढाओ, तिरियं सुसंपग्गहियाओ, अहे पन्नगद्धरूवाओ, पन्नगद्धसंठाणसंठियाओ, पासादियाओ दरिसणिज्जाओ अभिरूवाओ पडिरूवाओ॥

तस्य वनषण्डस्य बहुमध्यदेशभागे अत्र महान्तम् एकं वल्मीकम् आसादयन्ति। तस्य वल्मीकस्य वपूंसि चत्वारि अभ्युद्गतानि अभिनिस्सटानि (अभिनिसढाओ), तिर्यक् सुसम्प्रगृहीतानि, अधःपन्नगार्द्धसंस्थान-संस्थितानि, प्रासादिकानि दर्शनीयानि अभिरूपाणि प्रतिरूपाणि।

उस वनषंड के बहु मध्य देश भाग में एक बड़ा वल्मीक (बांबी) मिला। उस वल्मीक (बांबी) के चार ऊंचे और जटा-शटा वाले शिखर थे; वे मध्य भाग में स्वल्प विस्तार वाले थे, निम्न भाग में वे सर्प के अर्द्ध रूप वाले, अर्द्ध सर्पाकार संस्थान से संस्थित, चित्त को प्रसन्न करने वाले, दर्शनीय, कमनीय और रमणीय थे।

८८. तए णं ते वणिया हट्ठतुट्ठा अण्णमण्णं सद्दावेंति, सद्दावेत्ता एवं वयासी—एवं खलु देवाणुप्पिया! अम्हे इमीसे अगामियाए अणोहियाए छिन्नावायाए दीहमद्धाए अडवीए उदगस्स सव्वओ समंता मग्गण-गवेसणं करेमाणेहिं इमे वणसंडे आसादिए—किण्हे किण्होभासे। इमस्स णं वणसंडस्स बहुमज्झदेसभाए इमे वम्मीए आसादिए। इमस्स णं वम्मीयस्स

ततः ते वणिजः हृष्ट-तुष्टाः अन्योन्यं शब्दयन्ति, शब्दयित्वा एवमवादिषुः—एवं खलु देवानुप्रियाः! अस्माभिः अस्याम् अग्रामिकायाम् अनौधिकायां छिन्नापातायां दीर्घाध्वनि अटव्याम् उदकस्य सर्वतः समन्तात् मार्गण-गवेषणां कुर्वद्भिः अयं वनषण्डः आसादितः—कृष्णः कृष्णभाः (किण्होभासे) अस्य वनषण्डस्य बहुमध्य-

८८. वणिकों ने हृष्ट-तुष्ट होकर एक दूसरे को बुलाया, बुलाकर इस प्रकार कहा—देवानुप्रियो! हमने इस विशाल बस्ती-शून्य, जल-रहित, आवागमन-रहित प्रलंब मार्ग वाली अटवी में जल के चारों ओर मार्गणा-गवेषणा करते हुए इस वनषंड को प्राप्त किया—कृष्ण, कृष्ण अवभास वाला। इस वनषंड के बहुमध्यदेश भाग में इस वल्मीक को प्राप्त किया। इस वल्मीक के चार ऊंचे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चत्तारि वप्पूओ अब्भुग्गयाओ, अभिनिसढाओ, तिरियं सुसंपग्गहियाओ, अहे पन्नगद्धरूवाओ, पन्नगद्धसंठाणसंठियाओ, पासादियाओ दरिसणिज्जाओ अभिरूवाओ पडिरूवाओ तं सेयं खलु देवाणुप्पिया! अम्हं इमस्स वम्मीयस्स पढमं वप्पुं भिंदित्तए, अवियाइं ओरालं उदगरयणं अस्सादेस्सामो॥

देशभागे अयं वल्मीकः आसादितः अस्य वल्मीकस्य चत्वारि वप्रूंसि अभ्युद्गतानि अभिनिस्सटानि (अभिनिसढाओ), तिर्यक् सुसम्प्रगृहीतानि, अधः पन्नगार्द्धरूपाणि, पन्नगार्द्धसंस्थानसंस्थितानि, प्रासादिकानि दर्शनीयानि, अभिरूपाणि प्रतिरूपाणि तत् श्रेयः खलु देवानुप्रियाः! अस्माकम् अस्य वल्मीकस्य प्रथमं वप्रुभेत्तुम्, अपि च 'ओरालं' उदकरत्नम् आसादयिष्यामः।

और जटा-शटा वाले शिखर हैं, वे मध्य भाग में स्वल्प विस्तार वाले, निम्न भाग में सर्प के अर्द्ध रूप वाले, अर्द्ध सर्पाकार संस्थान से संस्थित, चित्त को प्रसन्न करने वाले, दर्शनीय, कमनीय और रमणीय हैं, इसलिए देवानुप्रिय! हमारे लिए यह श्रेय है कि हम इस वल्मीक के प्रथम शिखर का भेदन करें। इससे हम प्रधान जल-रत्न को प्राप्त करेंगे।

८६. तए णं ते वणिया अण्णमण्णस्स अंतियं एयमट्ठं पडिसुणेंति, पडिसुणेत्ता तस्स वम्मीयस्स पढमं वप्पुं भिंदंति। ते णं तत्थ अच्छं पत्थं जच्चं तणुयं फालियवण्णाभं ओरालं उदगरयणं आसादेंति। तए णं ते वणिया हट्ठतुट्ठा पाणियं पिबंति, पिबित्ता वाहणाइं पज्जेंति, पज्जेत्ता भायणाइं भरेंति, भरेत्ता दोच्चं पि अण्णमण्णं एवं वदासी–एवं खलु देवाणुप्पिया! अम्हेहिं इमस्स वम्मीयस्स पढमाए वप्पूए भिन्नाए ओराले उदगरयणे अस्सादिए, तं सेयं खलु देवाणुप्पिया! अम्हं इमस्स वम्मीयस्स दोच्चं पि वप्पुं भिंदित्तए, अवियाइं एत्थ ओरालं सुवण्णरयणं अस्सादेस्सामो॥

ततः ते वणिजः अन्योन्यस्य अन्तिकम् *एतमर्थं प्रतिशृण्वन्ति, प्रतिश्रुत्य तस्य वल्मीकस्य प्रथमं वप्रुः भिन्दन्ति।* ते तत्र अच्छं पथ्यं जात्यं तनुकं स्फटिकवर्णाभं 'ओरालं' उदकरत्नम् आसादयन्ति। ततः ते वणिजः हृष्टतुष्टाः पानीयं पिबन्ति। पीत्वा वाहनानि पाययन्ति, पाययित्वा भाजनानि भरन्ति, भृत्वा द्विः अपि अन्योन्यम् एवमवादिषुः–एवं खलु देवानुप्रियाः! अस्माभिः अस्य वल्मीकस्य प्रथमस्य वप्रुषः भिन्नात् 'ओराले' उदकरत्नम् आसादितम्, तत् श्रेयः खलु देवानुप्रियाः! अस्माकम् अस्य वल्मीकस्य द्वितीयम् अपि वप्रुः भेत्तुम्, अपि च अत्र 'ओराले' सुवर्णरत्नम् आसादयिष्यामः।

८६. वणिकों ने एक दूसरे के पास इस अर्थ को *स्वीकार किया, स्वीकार कर उस वल्मीक के प्रथम शिखर का भेदन किया।* उन्होंने वहां स्वच्छ, पथ्य, जात्य, हल्का और स्फटिक वर्ण की आभा वाले प्रधान जल-रत्न को प्राप्त किया। उन वणिकों ने हृष्ट-तुष्ट होकर जल को पीया, पीकर बैलों को पिलाया, पिलाकर जल पात्रों को जल से भरा, भरकर दूसरी बार एक दूसरे से इस प्रकार कहा–देवानुप्रियो! हमने इस वल्मीक के प्रथम शिखर को भेदकर प्रधान जल-रत्न प्राप्त किया, इसलिए देवानुप्रियो! हमारे लिये यह श्रेय है कि हम इस वल्मीक के दूसरे शिखर का भेदन कर वहां प्रधान स्वर्ण-रत्न प्राप्त करेंगे।

६०. तए णं ते वणिया अण्णमण्णस्स अंतियं एयमट्ठं पडिसुणेंति, पडिसुणेत्ता तस्स वम्मीयस्स दोच्चं पि वप्पुं भिंदंति। ते णं तत्थ अच्छं जच्चं तावणिज्जं महत्थं महग्घं महरिहं ओरालं सुवण्णरयणं अस्सादेंति। तए णं ते वणिया हट्ठतुट्ठा भायणाइं भरेंति, भरेत्ता पवहणाइं भरेंति, भरेत्ता तच्चं पि अण्णमण्णं एवं वयासी–एवं खलु देवाणुप्पिया! अम्हे इमस्स वम्मीयस्स पढमाए वप्पूए भिन्नाए ओराले उदगरयणे अस्सादिए, दोच्चाए वप्पूए भिन्नाए ओराले सुवण्णरयणे अस्सादिए, तं सेयं खलु देवाणुप्पिया! अम्हं इमस्स वम्मीयस्स तच्चं पि वप्पुं

ततः ते वणिजः अन्योन्यस्य अन्तिकम् एतमर्थं प्रतिशृण्वन्ति, प्रतिश्रुत्य तस्य वल्मीकस्य द्वितीयम् अपि वप्रुः भिन्दन्ति। ते तत्र अच्छं जात्यं तापनीयं महार्थं महार्घ्यं महार्हम् 'ओरालं' सुवर्ण-रत्नम् आसादयन्ति। ततः ते वणिजः हृष्टतुष्टाः भाजनानि भरन्ति, भृत्वा प्रवाहनानि भरन्ति, भृत्वा त्रिः अपि अन्योन्यम् एवमवादिषुः–एवं खलु देवानुप्रियाः! अस्माभिः अस्य वल्मीकस्य प्रथमस्य वप्रुषः भिन्नात् 'ओराले' उदकरत्नम् आस्वादितम् द्वितीयस्य वप्रुषः भिन्नात् 'ओराले' सुवर्णरत्नम् आसादितम्, तत् श्रेयः खलु देवानुप्रियाः।

६०. वणिकों ने एक दूसरे के पास इस अर्थ को स्वीकार किया, स्वीकार कर उस वल्मीक के दूसरे शिखर का भेदन किया। वहां स्वच्छ, जात्य, ताप को सहन करने वाला, महान् अर्थ वाला, महान मूल्य वाला, महान अर्हता वाला और प्रधान स्वर्ण-रत्न प्राप्त किया। वणिकों ने हृष्ट-तुष्ट होकर पात्रों को भरा, भरकर वाहनों को भरा, भरकर तीसरी बार भी एक दूसरे से इस प्रकार कहा–देवानुप्रियो! हमने इस वल्मीक के पहले शिखर का भेदन कर प्रधान जल-रत्न को प्राप्त किया। दूसरे शिखर का भेदन कर प्रधान स्वर्ण-रत्न को प्राप्त किया। इसलिए देवानुप्रियो! हमारे लिए श्रेय हैं कि हम इस

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भिंदित्तए, अवियाइं एत्थं ओरालं मणिरयणं अस्सादेस्सामो॥

अस्माकम् अस्य वल्मीकस्य तृतीयम् अपि वपुः भेत्तुम् अपि च अत्र 'ओरालं' मणिरत्नम् आसादयिष्यामः।

वल्मीक के तीसरे शिखर का भी भेदन करें। यहां हम प्रधान मणिरत्न प्राप्त करेंगे।

९१. तए णं ते वणिया अण्णमण्णस्स अंतियं एयमट्ठं पडिसुणेंति, पडिसुणेत्ता तस्स वम्मीयस्स तच्चं पि वप्पुं भिंदंति। ते णं तत्थ विमलं निम्मलं नित्तलं निक्कलं महत्थं महग्घं महरिहं ओरालं मणिरयणं अस्सादेंति। तए णं ते वणिया हट्ठतुट्ठा भायणाइं भरेंति, भरेत्ता पवहणाइं भरेंति, भरेत्ता चउत्थं पि अण्णमण्णं एवं वयासी—एवं खलु देवाणुप्पिया! अम्हे इमस्स वम्मीयस्स पढमाए वप्पूए भिन्नाए ओराले उदगरयणे अस्सादिए, दोच्चाए वप्पूए भिन्नाए ओराले सुवण्णरयणे अस्सादिए, तच्चाए वप्पूए भिन्नाए ओराले मणिरयणे अस्सादिए, तं सेयं खलु देवाणुप्पिया! अम्हं इमस्स वम्मीयस्स चउत्थं पि वप्पुं भिंदित्तए, अवियाइं उत्तमं महग्घं महरिहं ओरालं वइरयणं अस्सादेस्सामो॥

ततः ते वणिजः अन्योन्यस्य अन्तिकम् एतमर्थं प्रतिशृण्वन्ति, प्रतिश्रुत्य तस्य वल्मीकस्य तृतीयम् अपि वपुः भिन्दन्ति। ते तत्र विमलं निर्मलं निस्तलं (नित्तलं) निष्कलं (निक्कलं) महार्थं महार्घ्यं महार्हं 'ओरालं' मणिरत्नम् आसादयन्ति।
ततः ते वणिजः हृष्टतुष्टाः भाजनानि भरन्ति, भृत्वा प्रवाहनानि भरन्ति, भृत्वा चतुः अपि अन्योन्यम् एवमवादिषुः—एवं खलु देवानुप्रियाः! अस्माभिः अस्य वल्मीकस्य प्रथमस्य वपुषः भिन्नात् 'ओराले' उदकरत्नम् आसादितम् द्वितीयस्य वपुषः भिन्नात् 'ओराले' सुवर्णरत्नम् आसादितम्, तृतीयस्य वपुषः भिन्नात् 'ओराले' मणिरत्नम् आसादितम्, तत् श्रेयः खलु देवानुप्रियाः! अस्माकम् अस्य वल्मीकस्य चतुर्थम् अपि वपुः भेत्तुम्, अपि च उत्तमं महार्घ्यं महार्हं 'ओरालं' वज्ररत्नम् आसादयिष्यामः।

९१. वणिकों ने एक दूसरे के पास इस अर्थ को स्वीकार किया, स्वीकार कर उस वल्मीक के तीसरे शिखर का भेदन किया, वहां विमल, निर्मल, निस्तल (गोलाकर), दूषण-रहित, महान् अर्थ वाला, महान् मूल्य वाला, महान् अर्हता वाला और प्रधान मणि-रत्न प्राप्त किया। वणिकों ने हृष्ट-तुष्ट होकर भाजनों को भरा, वाहनों को भरा, भर कर चौथी बार भी एक दूसरे से इस प्रकार कहा—देवानुप्रियो! हमने इस वल्मीक के पहले शिखर का भेदन कर प्रधान जल-रत्न को प्राप्त किया। दूसरे शिखर का भेदन कर प्रधान स्वर्ण-रत्न को प्राप्त किया, तीसरे शिखर का भेदन कर प्रधान मणि-रत्न को प्राप्त किया। इसलिए देवानुप्रियो! हमारे लिए श्रेय है कि हम इस वल्मीक के चौथे शिखर का भी भेदन करें, उत्तम महान् मूल्य वाला, महान् अर्हता वाला और प्रधान वज्र-रत्न प्राप्त होगा।

९२. तए णं तेसिं वणियाणं एगे वणिए हियकामए सुहकामए पत्थकामए आणुकंपिए निस्सेसिए हिय-सुह-निस्सेसकामए ते वणिए एवं वयासी—एवं खलु देवाणुप्पिया! अम्हे इमस्स वम्मीयस्स पढमाए वप्पूए भिन्नाए ओराले उदगरयणे अस्सादिए, दोच्चाए वप्पूए भिन्नाए ओराले सुवण्णरयणे अस्सादिए, तच्चाए वप्पूए भिन्नाए ओराले मणिरयणे अस्सादिए, तं होउ अलाहि पज्जत्तं णे, एसा चउत्थी वप्पू मा भिज्जउ, चउत्थी णं वप्पू सउवसग्गा यावि होत्था॥

ततः तेषां वणिजाम् एकः वणिक् हितकामकः सुखकामकः पथ्यकामकः आनुकम्पिकः नैःश्रेयसिक (निस्सेसिए) हित-सुख-निःश्रेयस्कामकः (निस्सेसकामकः) तान् वणिजः एवमवादिषु—एवं खलु देवानुप्रियाः! अस्माभिः अस्य वल्मीकस्य प्रथमस्य वपुषः भिन्नात् 'ओराले' उदकरत्नम् आसादितम् द्वितीयस्य वपुषः भिन्नात् 'ओराले' सुवर्णरत्नम् आसादितम्, तृतीयस्य वपुषः भिन्नात् 'ओराले' मणिरत्नम् आसादितम्, तत् भवतु अलं (अलाहि) पर्याप्तम् अस्माकम् एतद् चतुर्थं वपुः मा भिन्द्यताम्, चतुर्थं वपुः सोपसर्गं चापि भवेत् (होत्था—अभूत्)

९२. उन वणिकों में एक वणिक हित की कामना करने वाला, शुभ की कामना करने वाला, पथ्य की कामना करने वाला अनुकंपा करने वाला, निःश्रेयस करने वाला, हित, शुभ, और निःश्रेयस की कामना करने वाला था। उस वणिक ने इस प्रकार कहा—देवानुप्रियो! हमने इस वल्मीक के पहले शिखर का भेदन कर प्रधान जल-रत्न प्राप्त किया, दूसरे शिखर का भेदन कर प्रधान स्वर्ण-रत्न प्राप्त किया, तीसरे शिखर का भेदन कर प्रधान मणि-रत्न प्राप्त किया, बस हमारे लिए पर्याप्त है, इस चौथे शिखर का भेदन मत करो। चौथा शिखर उपसर्ग-सहित है।

९३. तए णं ते वणिया तस्स वणियस्स हियकामगस्स सुहकामगस्स पत्थका-

ततः ते वणिजः तस्य हितकामकस्य सुखकामकस्य पथ्यकामकस्य

९३. हित की कामना करने वाले, शुभ की कामना करने वाले, पथ्य की कामना करने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मगस्स आणुकंपियस्स निस्सेसियस्स हिय-सुह-निस्सेसकामगस्स एवमाइक्खमाणस्स जाव परूवेमाणस्स एयमट्ठं नो सद्दहंति, 'नो पत्तियंति नो रोयंति, एयमट्ठं असद्दहमाणा अपत्तिय-माणा अरोएमाणा तस्स वम्मीयस्स चउत्थं पि वप्पुं भिंदंति। ते णं तत्थ उग्गविसं चंडविसं घोरविसं महाविसं अतिकायं महाकायं मसिमूसाकालगं नयणविसरोसपुण्णं अंजणपुंज-निगरप्पगासं रत्तच्छं जमलजुयल-चंचल-चलंतजीहं धरणितलवेणिभूयं उक्कड-फुड-कुडिल - जडुल - कक्खड - विकड-फडाडोव-करणदच्छं लोहागर-धम्ममाण-धमधमेंतघोसं अणागलिय-चंडतिव्वरोसं समुहं तुरियं चवलं धमंतं दिट्ठीविसं सप्पं संघट्टेंति॥

आनुकम्पिकस्य नैःश्रेयसिकस्य (निस्सेसियस्स) हित-सुख-निःश्रेयस्यस्कामकस्य एवम् आख्यतः यावत् प्ररूपयतः एतमर्थं नो श्रद्दधते, नो प्रतियन्ति, नो रोचन्ते, एतमर्थम् अश्रद्दधानाः अप्रतियन्तः अरोचमानाः तस्य वल्मीकस्य चतुर्थम् अपि वपुः भिन्दन्ति। ते तत्र उग्रविषं चण्डविषं घोरविषं महाविषं अतिकायं महाकायं मषीमूषाकालकं नयनविषरोषपूर्णम् अञ्जनपुञ्जनिकरप्रकाशं रक्ताक्षं यमलयुगलचञ्चलचलतजिह्वं धरणितल-वेणीभूतम् उत्कट-स्फुट-कुटिल-जटिल - कर्कश - विकट-स्फटाटोप-करणदक्षं लोहाकर-ध्मायमान-धमधमायमानघोषम् अनाकलित-चण्डतीव्ररोषं श्वमुखं त्वरितं चपलं धमन्तं दृष्टिविषं सर्पं संघट्टन्ति।

वाले, अनुकंपा करने वाले, निःश्रेयस करने वाले, हित, शुभ और निःश्रेयस की कामना करने वाले उस वणिक के इस प्रकार आख्यान करने पर यावत् प्ररूपण करने पर उन वणिकों ने इस अर्थ पर श्रद्धा नहीं की, प्रतीति नहीं की, रुचि नहीं की। इस अर्थ पर अश्रद्धा करते हुए, अप्रतीति करते हुए, अरुचि करते हुए, उस वल्मीक के चौथे शिखर का भेदन किया। वहां उग्र विष, प्रचण्ड विष, घोर विष और महाविष वाले, स्थूल काय, महाकाय, स्याही और मूषा के समान काले, चपल एवं चलती हुई द्विजिह्वा वाले, पृथ्वी-तल पर वेणी के सदृश, उत्कट, स्फुट, कुटिल, जटिल, कर्कश एवं विकट फटाटोप करने में दक्ष, लुहार की धौंकनी के सदृश धमधम (सूं सूं) घोष करने वाले, अनाकलित प्रचण्ड तीव्र रोष वाले, श्वान की भांति मुंह वाले त्वरित, चपल, दृष्टिविष सर्प का स्पर्श हुआ।

९४. तए णं से दिट्ठीविसे सप्पे तेहिं वणिएहिं संघट्टिए समाणे आसुरुत्ते रुट्ठे कुविए चंडिक्किए मिसिमिसेमाणे सणियं-सणियं उट्ठेइ, उट्ठेत्ता सरसरसरस्स वम्मीयस्स सिहरतलं दुरुहति, दुरुहित्ता आदिच्चं निज्झाति, निज्झाइत्ता ते वणिए अणिमिसाए दिट्ठीए सव्वओ समंता समभिलोएति॥

ततः सः दृष्टिविषः सर्पः तैः वणिग्भिः संघट्टिते सति आशुरक्तः रुष्टः कुपितः 'चंडिक्किए' 'मिसिमिसेमाणे' शनैः-शनैः उत्तिष्ठति, उत्थाय सरसरसरस्य वल्मीकस्य शिखरतलम् आरोहति, आरुह्य आदित्यं निध्यायति, निध्याय तान् वणिजः अनिमिषया दृष्ट्या सर्वतः समन्तात् समभिलोकते।

९४. वह दृष्टिविष सर्प उन वणिकों का स्पर्श होते ही तत्काल आवेश में आ गया। वह रुष्ट हो गया, कुपित हो गया, उसका रूप रौद्र, क्रोध की अग्नि में प्रदीप्त होकर वह धीरे-धीरे उठा, उठ कर सर सर करता हुआ वल्मीक के शिखर-तल पर चढा, चढकर सूर्य को एकटक देखा, देख कर अनिमेष दृष्टि से चारों ओर उन वणिकों को देखा।

९५. तए णं ते वणिया तेणं दिट्ठीविसेणं सप्पेणं अणिमिसाए दिट्ठीए सव्वओ समंता समभिलोइया समाणा खिप्पामेव सभंडमत्तोवगरणमायाए एगाहच्चं कूडाहच्चं भासरासी कया यावि होत्था। तत्थ णं जे से वणिए तेसिं वणियाणं हियकामए सुहकामए पत्थकामए आणुकंपिए निस्सेसिए हियसुहनिस्सेसकामए से णं आणुकंपियाए देवयाए सभंडमत्तोवगरण-मायाए नियगं नगरं साहिए॥

ततः ते वणिजः तेन दृष्टिविषेण सर्पेण अनिमिषया दृष्ट्या सर्वतः समन्तात् समभिलोकिताः सन्तः क्षिप्रमेव स्वभाण्डामात्रोपकरणम् आदाय एगाहत्यं कूटाहत्यं भस्मराशिः कृता चापि अभूः। तत्र यः सः वणिक् तेषां वणिजां हितकामकः सुखकामकः पथ्यकामकः आनुकम्पिकः नैःश्रेयसिकः हित-सुख-निःश्रेयस्कामकः सः आनुकंपिकया देवतया स्वभाण्डा-मात्रोपकरणम् आदाय निजकं नगरं साधितः।

९५. उस दृष्टिविष सर्प द्वारा अनिमेष दृष्टि से चारों ओर देखे जाने पर वे वणिक शीघ्र ही अपने भांड-अमत्र-उपकरण-सहित एक ही प्रहार में कूटाघात की भांति राख के ढेर जैसे हो गए। उन वणिकों की हित की कामना करने वाले, शुभ की कामना करने वाले, पथ्य की कामना करने वाले, अनुकंपा करने वाले, निःश्रेयस करने वाले, हित, शुभ और निःश्रेयस की कामना करने वाले उस वणिक को अनुकंपा करने वाले देव ने अपने भांड-अमत्र-उपकरण-सहित अपने नगर में पहुंचा दिया।

९६. एवामेव आणंदा! तव वि धम्मायरिएणं धम्मोवएसएणं समणेणं नायपुत्तेणं ओराले परियाए अस्सादिए, ओराला कित्ति-

एवमेव आनन्द! तवापि धर्माचार्येण धर्मोपदेशकेन श्रमणेन ज्ञातपुत्रेण 'ओराले' पर्यायः आसादितः,

९६. आनन्द! इसी प्रकार तुम्हारे धर्माचार्य धर्मोपदेशक ज्ञातपुत्र श्रमण ने प्रधान पर्याय प्राप्त किया, प्रधान कीर्ति, वर्ण, शब्द, श्लोक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वण्ण-सद्द-सिलोगा सदेवमणुया-सुरे लोए पुव्वंति, गुव्वंति, थुव्वंति–इति खलु समणे भगवं महावीरे, इति खलु समणे भगवं महावीरे। तं जदि मे से अज्ज किंचि वि वदति तो णं तवेणं तेएणं एगाहच्चं कूडाहच्चं भासरासिं करेमि, जहा वा वालेणं ते वणिया। तुमं च णं आणंदा! सारक्खामि संगोवामि जहा वा से वणिए तेसिं वणियाणं हियकामए जाव निस्सेसकामए आणुकंपियाए देवयाए सभंडमत्तोवगरणमायाए नियगं नगरं साहिए। तं गच्छ णं तुमं आणंदा! तव धम्मायरियस्स धम्मोवएसगस्स समणस्स नायपुत्तस्स एयमट्ठं परिकहेहि॥

'ओराला' कीर्ति-वर्ण-शब्द-श्लोकाः सदेवमनुजासुरे लोके प्लवन्ते, गुप्यन्ति, स्तूयन्ते–इति खलु श्रमणः भगवान् महावीरः, इति खलु श्रमणः भगवान् महावीरः। तत् यदि मम सः अद्य किंचिद् अपि वदति तदा तं तपसा तेजसा एकाहत्यं कूटाहत्यं भस्मराशिं करोमि, यथा वा व्यालेन ते वणिजः। त्वां च आनन्द! संरक्षामि संगोपयामि यथा वा सः वणिक् तेषां वणिजां हितकामकः यावत् निःश्रेयस्कामकः आनुकम्पिकया देवतया स्वभाण्डामात्रोपकरणम् आदाय निजकं नगरं साधितः। तत् गच्छ त्वम् आनन्द! तव धर्माचार्यस्य धर्मोपदेशकस्य श्रमणस्य ज्ञातपुत्रस्य एतमर्थं परिकथय।

प्रसारित हो रहे हैं, गूंज रहे हैं, स्तुति का विषय बने हुए हैं–ये श्रमण भगवान् महावीर! श्रमण भगवान् महावीर! इसलिए यदि आज से वे मुझे कुछ कहते हैं तो उन्हें तपः-तेज से एक ही प्रहार में कूटाघात की भांति मैं उसी प्रकार राख का ढेर कर दूंगा, जैसे उस सर्प के द्वारा ये वणिक। आनंद! मैं तुम्हारा संरक्षण और संगोपन करूंगा, जैसे उन वणिकों की हित कामना करने वाला यावत् निःश्रेयस की कामना करने वाले उस वणिक को अनुकंपा करने वाले ने भांड़-अमत्र-उपकरण-सहित अपने नगर में पहुंचा दिया। इसलिए आनंद! तुम जाओ, तुम्हारे धर्माचार्य धर्मोपदेशक श्रमण ज्ञातपुत्र को यह अर्थ कहो।

आणंदथेरस्स भगवओ निवेदण-पदं

९७. तए णं से आणंदे थेरे गोसालेणं मंखलिपुत्तेणं एवं वुत्ते समाणे भीए जाव संजायभए गोसालस्स मंखलिपुत्तस्स अंतियाओ हालाहलाए कुंभकारीए कुंभकारावणाओ पडिनिक्खमति, पडिनिक्खमित्ता सिग्घं तुरियं सावत्थिं नगरिं मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव कोट्ठए चेइए, जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी–एवं खलु अहं भंते! छट्ठक्खमणपारणगंसि तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे सावत्थीए नगरीए उच्च-नीय-मज्झिमाइं कुलाइं घरसमुदाणस्स भिक्खायरियाए अडमाणे हालाहलाए कुंभकारीए कुंभकारावणस्स अदूरसामंते वीइवयामि, तए णं गोसाले मंखलिपुत्ते ममं हालाहलाए कुंभकारीए कुंभकारावणस्स अदूरसामंतेणं वीइवयमाणं पासित्ता एवं वयासी–एहि ताव आणंदा! इओ एगं महं उवमियं निसामेहि।

आनन्दस्थविरस्य भगवतः निवेदन-पदम्

ततः सः आनन्दः स्थविरः गोशालेन मंखलिपुत्रेण एवम् उक्ते सति भीतः यावत् सञ्जातभयः गोशालस्य मंखलिपुत्रस्य अन्तिकात् हालाहलायाः कुम्भकार्याः कुम्भकारापणात् प्रतिनिष्क्रामति, प्रतिनिष्क्रम्य शीघ्रं त्वरितं श्रावस्तीं नगरीं मध्यमध्येन निर्गच्छति, निर्गत्य यत्रैव कोष्ठकं चैत्यम् यत्रैव श्रमणः भगवान् महावीरः तत्रैव उपागच्छति, उपागम्य श्रमणं भगवन्तं महावीरं त्रिः आदक्षिण-प्रदक्षिणां करोति, कृत्वा वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्यित्वा एवमवादीत्–एवं खलु अहं भदन्त! षष्ठक्षपणपारणके युष्माभिः अभ्यनुज्ञातः सन् श्रावस्त्यां नगर्याम् उच्च-नीच-मध्यमानि कुलानि गृह-समुदानस्य भिक्षाचर्यायाम् अटन् हालाहलायाः कुम्भकार्याः कुम्भकारापणस्य अदूरसामन्ते व्यतिव्रजामि, ततः गोशालः मंखलिपुत्रः मां हालाहलायाः कुम्भकार्याः कुम्भकारापणस्य अदूरसामन्तेन व्यतिव्रजन्तं दृष्ट्वा एवमवादीत्–एहि तावत् आनन्द! इतः एकं महान्तम् उपमितं निशामय।

आनंद स्थविर का भगवान् से निवेदन-पद

९७. आनन्द स्थविर मंखलिपुत्र गोशाल के इस प्रकार कहने पर भीत यावत् भय से व्याकुल हो गया। उसने मंखलिपुत्र गोशाल के पास से हालाहला कुंभकारी के कुंभकारापण से प्रतिनिष्क्रमण किया, प्रतिनिष्क्रमण कर शीघ्र त्वरित गति से श्रावस्ती नगरी के बीचोंबीच निर्गमन किया, निर्गमन कर जहां कोष्ठक चैत्य था, जहां श्रमण भगवान् महावीर थे, वहां आया, आकर श्रमण भगवान् को दांयी ओर से प्रारम्भ कर तीन बार प्रदक्षिणा की, प्रदक्षिणा कर वंदन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार कर इस प्रकार कहा–भंते! मैं बेले के पारण में आपकी अनुज्ञा से श्रावस्ती नगरी के उच्च, नीच तथा मध्यम कुलों में सामुदानिक भिक्षाचर्या के लिए घूमते हुए हालाहला कुंभकारी के कुंभकारापण से न अति दूर और न अति निकट जा रहा था। मंखलिपुत्र गोशाल ने हालाहला कुंभकारी के कुंभकारापण से न अति दूर और न अति निकट मुझे जाते हुए देखकर इस प्रकार कहा–आनंद! तुम यहां आओ, एक बड़ी उपमा को सुनो।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तए णं अहं गोसालेणं मंखलिपुत्तेणं एवं वुत्ते समाणे जेणेव हालाहलाए कुंभकारीए कुंभकारावणे, जेणेव गोसाले मंखलिपुत्ते, तेणेव उवागच्छामि।

ततः अहं गोशालेन मंखलिपुत्रेण एवम् उक्ते सति यत्रैव हालाहलायाः कुम्भकार्याः कुम्भकारापणः यत्रैव गोशालः मंखलिपुत्रः तत्रैव उपागच्छामि।

मंखलिपुत्र गोशाल के इस प्रकार कहने पर मैं जहां हालाहाल कुंभकारी का कुंभकारापण था जहां मंखलिपुत्र गोशाल था, वहां आया।

तए णं से गोसाले मंखलिपुत्ते ममं एवं वयासी—एवं खलु आणंदा! इओ चिरातीताए अद्धाए केइ उच्चावया वणिया एवं तं चेव सव्वं निरवसेसं भणियव्वं जाव नियगं नगरं साहिए। तं गच्छ णं तुमं आणंदा! तव धम्मायरियस्स धम्मोवएसगस्स समणस्स नायपुत्तस्स एयमट्ठं परिकहेहि॥

ततः सः गोशालः मंखलिपुत्रः माम् एवमवादीत्—एवं खलु आनन्द! इतः चिरातीते अध्वनि केचिद् उच्चावचाः वणिजः एवं तच्चैव सर्वं निरवशेषं भणितव्यं यावत् निजकं नगरं साधितः। तत् गच्छ त्वम् आनन्द! तव धर्माचार्यस्य धर्मोपदेशकस्य श्रमणस्य ज्ञातपुत्रस्य एतमर्थं परिकथय।

मंखलिपुत्र गोशाल ने इस प्रकार कहा—चिर अतीत काल में कुछ उच्च तथा निम्न वणिक इस प्रकार पूर्ववत् सर्व निरवशेष वक्तव्य है यावत् अपने नगर पहुंचा दिया। इसलिए आनन्द! तुम जाओ तुम्हारे धर्माचार्य धर्मोपदेशक श्रमण ज्ञातपुत्र को यह अर्थ कहो।

९८. तं पभू णं भंते! गोसाले मंखलिपुत्ते तवेणं तेएणं एगाहच्चं कूडाहच्चं भासरासिं करेत्तए? विसएणं भंते! गोसालस्स मंखलिपुत्तस्स तवेणं तेएणं एगाहच्चं कूडाहच्चं भासरासिं करेत्तए? समत्थे णं भंते! गोसाले मंखलिपुत्ते तवेणं तेएणं एगाहच्चं कूडाहच्चं भासरासिं करेत्तए?

तत् प्रभुः भदन्त! गोशालः मंखलिपुत्रः तपसा तेजसा एकाहत्यं कूटाहत्यं भस्मराशिं कर्तुम्? विषयः भदन्त! गोशालस्य मंखलिपुत्रस्य तपसा तेजसा एकाहत्यं कूटाहत्यं भस्मराशिं कर्तुम्? समर्थः भदन्त! गोशालः मंखलिपुत्रः तपसा तेजसा एकाहत्यं कूटाहत्यं भस्मराशिं कर्तुम् ?

९८. भंते! क्या मंखलिपुत्र गोशाल अपने तपः तेज से एक प्रहार में कूटाघात की भांति राख का ढेर करने में प्रभु है? भंते! क्या तपः-तेज से एक प्रहार में कूटाघात की भांति राख का ढेर करना मंखलिपुत्र गोशाल का विषय है? क्या मंखलिपुत्र गोशाल तपः-तेज से एक प्रहार में कूटाघात की भांति राख का ढेर करने में समर्थ है?

पभू णं आणंदा! गोसाले मंखलिपुत्ते तवेणं तेएणं एगाहच्चं कूडाहच्चं भासरासिं करेत्तए। विसए णं आणंदा! गोसालस्स मंखलिपुत्तस्स तवेणं तेएणं एगाहच्चं कूडाहच्चं भासरासिं करेत्तए। समत्थे णं आणंदा! गोसाले मंखलिपुत्ते तवेणं तेएणं एगाहच्चं कूडाहच्चं भासरासिं करेत्तए, नो चेव णं अरहंते भगवंते, पारियावणियं पुण करेज्जा। जावतिए णं आणंदा! गोसालस्स मंखलिपुत्तस्स तवे तेए, एत्तो अणंतगुणविसिट्ठतराए चेव तवे तए अणगाराणं भगवंताणं, खंतिखमा पुण अणगारा भगवंतो। जावइए णं आणंदा! अणगाराणं भगवंताणं तवे तेए एत्तो अणंतगुणविसिट्ठतराए चेव तवे तेए थेराणं भगवंताणं, खंतिखमा पुण थेरा भगवंतो। जावतिए णं आणंदा! थेराणं भगवंताणं तवे तेए एत्तो अणंतगुणविसिट्ठतराए चेव तवे तेए अरहंताणं भगवंताणं, खंतिखमा पुण अरहंता भगवंतो। तं पभू णं आणंदा! गोसाले

आनन्द! मंखलिपुत्र गोशाल अपने तपः-तेज में एक प्रहार में कूटाघात की भांति राख का ढेर करने में प्रभु है। आनन्द! अपने तपः-तेज से एक प्रहार में कूटाघात की भांति राख का ढेर करना मंखलिपुत्र गोशाल का विषय है। आनन्द! मंखलिपुत्र गोशाल अपने तपः-तेज से एक प्रहार में कूटाघात की भांति राख का ढेर करने में समर्थ है। किन्तु वह अर्हत् भगवान् को एक प्रहार में कूटाघात की भांति राख का ढेर नहीं कर सकता, वह उन्हें परितापित कर सकता है। आनन्द! मंखलिपुत्र गोशाल का जितना तपः-तेज है, उससे अनन्त गुण विशिष्टतर तपः-तेज अनगार भगवान् का है, अनगार भगवान् क्षांतिक्षम होते हैं। आनन्द! अनगार भगवान् का जितना तपःतेज है उससे अनंत गुण विशिष्टतर तपःतेज स्थविर भगवान् का है, स्थविर भगवान् क्षांतिक्षम होते हैं। आनन्द! स्थविर भगवान् का जितना तपः-तेज है, उससे अनन्त गुण विशिष्टतर तपः-तेज अर्हत् भगवान् का है, अर्हत् भगवान् क्षांतिक्षम होते हैं। इसलिए आनन्द!

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मंखलिपुत्ते तवेणं तेएणं एगाहच्चं कूडाहच्चं भासरासिं करेत्तए, विसए णं आणंदा! गोसालस्स मंखलिपुत्तस्स तवेणं तेएणं एगाहच्चं कूडाहच्चं भासरासिं करेत्तए, समत्थे णं आणंदा! गोसाले मंखलिपुत्ते तवेणं तेएणं एगाहच्चं कूडाहच्चं भासरासिं करेत्तए, नो चेव णं अरहंते भगवंते, पारियावणियं पुण करेज्जा॥

तत् प्रभुः आनन्द! गोशालः मंखलिपुत्रः तपसा तेजसा एकाहत्यं कूटाहत्यं भस्मराशिं कर्तुम्, विषयः आनन्द! गोशालस्य मंखलिपुत्रस्य तपसा तेजसा एकाहत्यं कूटाहत्यं भस्मराशिं कर्तुम्, समर्थः आनन्द ! गोशालः मंखलिपुत्रः तपसा तेजसा एकाहत्यं कूटाहत्यं भस्मराशिं कर्तुम्, नो चैव अर्हतः भगवतः, पारितापनिकीं पुनः कुर्यात्।

मंखलिपुत्र गोशाल अपने तपःतेज से एक प्रहार में कूटाघात की भांति राख का ढेर करने में प्रभु है, आनन्द! अपने तपःतेज से एक प्रहार में कूटाघात की भांति राख का ढेर करना मंखलिपुत्र गोशाल का विषय है, आनन्द! मंखलिपुत्र गोशाल अपने तपःतेज से एक प्रहार में कूटाघात की भांति राख का ढेर करने में समर्थ है। किन्तु वह अर्हत् भगवान् को (ऐसा) नहीं कर सकता, (केवल) उन्हें परितापित कर सकता है।

आणंदथेरेण गोयमाईणं अणुण्णवण-पदं

आनन्दस्थविरेण गौतमादीनाम् अनुज्ञापन-पदम्

आनन्द स्थविर द्वारा गौतम आदि को अनुज्ञापन-पद

९९. तं गच्छ णं तुमं आणंदा! गोयमाईणं समणाणं निग्गंथाणं एयमट्ठं परिकहेहि–मा णं अज्जो! तुब्भं केई गोसालं मंखलिपुत्तं धम्मियाए पडिचोयणाए पडिचोएउ, धम्मियाए पडिसारणाए पडिसारेउ, धम्मिएणं पडोयारेणं पडोयारेउ, गोसाले णं मंखलिपुत्ते समणेहिं निग्गंथेहिं मिच्छं विप्पडिवन्ने॥

तत् गच्छ त्वम् आनन्द! गौतमादिभ्यः श्रमणेभ्यः निर्ग्रन्थेभ्यः एतमर्थं परिकथय–मा आर्य! युष्मत्सु कोऽपि गोशालं मंखलिपुत्रं धार्मिकया प्रतिचोदनया प्रतिचोदयतु, धार्मिकया प्रतिसारणया प्रतिसारयतु, धर्मिकेन प्रत्युपचारेण प्रत्युपचारयतु, गोशालः मंखलिपुत्रः श्रमणेभ्यः निर्ग्रन्थेभ्यः मिथ्या विप्रतिपन्नः।

९९.आनंद! इसलिए तुम जाओ,गौतम आदि श्रमण निग्रन्थों को यह अर्थ कहो–आर्यो! तुम मंखलिपुत्र गोशाल को धार्मिक प्रति-प्रेरणा से प्रतिप्रेरित मत करो, धार्मिक प्रतिस्मरण से प्रतिस्मारित मत करो, धार्मिक प्रत्युपचार-तिरस्कार से प्रत्युपचारित मत करो। मंखलिपुत्र गोशाल श्रमण-निर्ग्रन्थों के प्रति मिथ्यात्व-विप्रतिपन्न है।

१००. तए णं से आणंदे थेरे समणेणं भगवया महावीरेणं एवं वुत्ते समाणे समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता जेणेव गोयमादी समणा निग्गंथा तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता गोयमादी समणे निग्गंथे आमंतेति, आमंतेत्ता एवं वयासी–एवं खलु अज्जो! छट्ठक्खमणपारणगंसि समणेणं भगवया महावीरेणं अब्भणुण्णाए समाणे सावत्थीए नगरीए उच्च-नीय-मज्झिमाइं कुलाइं तं चेव सव्वं जाव गोयमाईणं समणाणं निग्गंथाणं एयमट्ठं परिकहेहि, तं मा णं अज्जो! तुब्भं केई गोसालं मंखलिपुत्तं धम्मियाए पडिचोयणाए पडिचोएउ, धम्मियाए पडिसारणयाए पडिसारेउ, धम्मिएणं पडोयारेणं पडोयारेउ, गोसाले णं मंखलिपुत्ते समणेहिं निग्गंथेहिं मिच्छं विप्पडिवन्ने॥

ततः सः आनन्दः स्थविरः श्रमणेन भगवता महावीरेण एवम् उक्ते सति श्रमणं भगवन्तं महावीरं वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्यित्वा यत्रैव गौतमादयः श्रमणाः निर्ग्रन्थाः तत्रैव उपागच्छति, उपागम्य गौतमादीन् श्रमणान् निर्ग्रन्थान् आमन्त्रयति आमन्त्र्य एवमवादीत्–एवं खलु आर्य! षष्ठक्षपणपारणके श्रमणेन भगवता महावीरेण अभ्यनुज्ञाते सति श्रावस्त्यां नगर्याम् उच्च-नीच-मध्यमानि कुलानि तत् चैव सर्वं यावत् गौतमादिभ्यः श्रमणेभ्यः निर्ग्रन्थेभ्यः एतमर्थं परिकथय, तत् मा आर्य! युष्मत्सु कोऽपि गोशालं मंखलिपुत्रं धार्मिकया प्रतिचोदनया प्रतिचोदयतु, धार्मिकया प्रतिसारणया प्रतिसारयतु, धर्मिकेन प्रत्युपचारेण प्रत्युपचारयतु, गोशालः मंखलिपुत्रः श्रमणेभ्यः निर्ग्रन्थेभ्यः मिथ्या विप्रतिपन्नः।

१००. श्रमण भगवान् महावीर के इस प्रकार कहने पर आनन्द स्थविर ने श्रमण भगवान् महावीर को वंदन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार कर जहां गौतम आदि श्रमण निर्ग्रन्थ थे, वहां आया, आकर गौतम आदि श्रमण निर्ग्रन्थों को आमन्त्रित किया, आमंत्रित कर इस प्रकार कहा–आर्यो! मैं बेले के पारण में श्रमण भगवान् महावीर की अनुज्ञा से श्रावस्ती नगर के उच्च, नीच तथा मध्यम कुलों में यावत् गौतम आदि श्रमण निर्ग्रन्थों को यह अर्थ कहो–आर्यो! तुम मंखलिपुत्र गोशाल को धार्मिक प्रति प्रेरणा से प्रतिप्रेरित मत करो, धार्मिक प्रतिस्मारणा से प्रतिस्मारित मत करो, धार्मिक प्रत्युपचार तिरस्कार से प्रत्युपचारित मत करो। मंखलिपुत्र श्रमण निर्ग्रन्थों के प्रति मिथ्यात्व-विप्रतिपन्न है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गोसालस्स भगवंतं पइ अक्कोसपुव्वं ससिद्धंतनिरूवण-पदं

१०१. जावं च णं आणंदे थेरे गोयमाईणं समणाणं निग्गंथाणं एयमट्ठं परिकहेइ, तावं च णं से गोसाले मंखलिपुत्ते हालाहलाए कुंभकारीए कुंभकारावणाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता आजीवियसंघसंपरिवुडे महया अमरिसं वहमाणे सिग्घं तुरियं सावत्थिं नगरिं मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव कोट्ठए चेइए, जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स अदूरसामंते ठिच्चा समणं भगवं महावीरं एवं वदासी–सुट्ठु णं आउसो कासवा! ममं एवं वयासी, साहू णं आउसो कासवा! ममं एवं वयासी–गोसाले मंखलिपुत्ते ममं धम्मंतेवासी, गोसाले मंखलिपुत्ते ममं धम्मंतेवासी।

जे णं से गोसाले मंखलिपुत्ते तव धम्मंतेवासी से णं सुक्के सुक्का-भिजाइए भवित्ता कालमासे कालं किच्चा अण्णयरेसु देवलोएसु देवत्ताए उववन्ने, अहण्णं उदाई नामं कुंडियायणीए अज्जुणस्स गोयमपुत्तस्स सरीरगं विप्पजहामि, विप्पजहित्ता गोसालस्स मंखलिपुत्तस्स सरीरगं अणुप्पविसामि, अणुप्पविसित्ता इमं सत्तमं पउट्टपरिहारं परिहरामि।

जे वि आइं आउसो कासवा! अम्हं समयंसि केइ सिज्झिंसु वा सिज्झंति वा सिज्झिस्संति वा सव्वे ते चउरासीतिं महाकप्पसयसहस्साइं, सत्त दिव्वे, सत्त संजूहे, सत्त सण्णिगब्भे, सत्त पउट्ट-परिहारे, पंच कम्मणि सयसहस्साइं सट्ठिं च सहस्साइं छच्च सए तिण्णि य कम्मंसे अणुपुव्वेणं खवइत्ता तओ पच्छा सिज्झंति बुज्झंति मुच्चंति परिनिव्वायंति सव्वदुक्खाणमंतं करेंसु वा करेंति वा करिस्संति वा।

से जहा वा गंगा महानदी जओ पवूढा, जहिं वा पज्जुवत्थिया, एस णं अद्धा

गोशालस्य भगवन्तं प्रति आक्रोशपूर्वं स्वसिद्धान्त-निरूपण-पदम्

यावत् च आनन्दः स्थविरः गौतमादिभ्यः श्रमणेभ्यः निर्ग्रन्थेभ्यः एतमर्थं परिकथयति, तावत् च सः गोशालः मंखलिपुत्रः हालाहलायाः कुम्भकार्याः कुम्भकारापणात् प्रतिनिष्क्रामति, प्रतिनिष्क्रम्य आजीविकसंघपरिवृतः महान्तम् अमर्षं वहमानः शीघ्रं त्वरितं श्रावस्त्याः नगर्याः मध्यमध्येन निर्गच्छति, निर्गत्य यत्रैव कौष्ठकं चैत्यम्, यत्रैव श्रमणः भगवान् महावीरः तत्रैव उपागच्छति, उपागम्य श्रमणस्य भगवतः महावीरस्य उदूरसामन्ते स्थित्वा श्रमणं भगवन्तं महावीरम् एवमवादीत्–सुष्ठु आयुष्मन् काश्यप! माम् एवमवादीत् साधु आयुष्मन् काश्यप! माम् एवमवादीत्–गोशालः मंखलिपुत्रः मम धर्मान्तेवासी, गोशालः मंखलिपुत्रः मम धर्मान्तेवासी।

यः सः गोशालः मंखलिपुत्रः तव धर्मान्तेवासी सः शुक्लः शुक्लाभिजात्यः भूत्वा कालमासे कालं कृत्वा अन्यतरेषु देवलोकेषु देवत्वेन उपपन्नः, अथ उदायी नाम कौण्डिकायणीयस्य अर्जुनस्य गौतमपुत्रस्य शरीरकं विप्रजहामि, विप्रजहाय गोशालस्य मंखलिपुत्रस्य शरीरकम् अनुप्रविशामि, अनुप्रविश्य इमं सप्तमं 'पउट्ट परिहारं' परिहरामि।

येऽपि 'आइं' आयुष्मन् काश्यप! अस्माकं समये केचित् असैत्सुः वा सिध्यन्ति वा सेत्स्यन्ति वा सर्वे ते चतुरशीतिः महाकल्पशतसहस्राणि सप्त दिव्यान् सप्त संयूथान्, सप्त संज्ञिगर्भान्, सप्त 'पउट्ट परिहारे' पञ्च कर्माणि शतसह-स्राणि षष्टिः च सहस्राणि षड् च शतानि त्रीन् च कर्मांशान् अनुपूर्वेण क्षपयित्वा ततः पश्चात् सिध्यन्ति 'बुज्झंति' मुच्यन्ते परिनिर्वान्ति सर्वदुःखानाम् अन्तम् अकार्षुः वा कुर्वन्ति वा करिष्यन्ति वा।

अथ यथा वा गंगा महानदी यतः प्रव्यूढा, यत्र वा पर्युपस्थिता एषः अध्वा

गोशाल का भगवान के प्रति आक्रोश-पूर्वक स्वसिद्धान्त-निरूपण-पद

१०१. जब आनंद स्थविर ने गौतम आदि श्रमण निर्ग्रन्थों को यह अर्थ कहा, तो मंखलिपुत्र गोशाल ने हालाहला कुंभकारी के कुंभकारापण से प्रतिनिष्क्रमण किया, प्रतिनिष्क्रमण कर आजीवक-संघ से संपरिवृत होकर महान् अमर्ष का भार ढोता हुआ शीघ्र त्वरित गति से श्रावस्ती नगरी के बीचोंबीच निर्गमन किया, निर्गमन कर जहां कोष्ठक चैत्य था, जहां श्रमण भगवान् महावीर थे, वहां आकर श्रमण भगवान् महावीर के न अति दूर और न अति निकट स्थित होकर श्रमण भगवान् महावीर से इस प्रकार कहा–आयुष्मन् काश्यप! तुमने मेरे विषय में अच्छा कहा, आयुष्मन् काश्यप! तुमने मेरे विषय में इस प्रकार साधु कहा–मंखलिपुत्र गोशाल मेरा धर्मान्तेवासी है, मंखलिपुत्र गोशाल मेरा धर्मान्तेवासी है।

जो मंखलिपुत्र गोशाल तुम्हारा धर्मान्तेवासी था, वह शुक्ल शुक्लाभिजात होकर काल-मास में मृत्यु को प्राप्त कर किसी देवलोक में देवरूप में उपपन्न हुआ है। मैं कोण्डिकायन गौत्रीय हूं, मेरा नाम उदायी है। मैंने गौतम पुत्र अर्जुन के शरीर को छोड़ा, छोड़कर मंखलिपुत्र गोशाल के शरीर में अनुप्रवेश किया, अनुप्रवेश कर यह सातवां 'पोट्ट-परिहार' किया है।

आयुष्मन् काश्यप! हमारे सिद्धान्त के अनुसार जो सिद्ध हुए हैं, जो सिद्ध हो रहे हैं, जो सिद्ध होंगे, वे सब चौरासी लाख महाकल्प, सात दिव्य, सात संयूथ, सात संज्ञी गर्भ, सात पोट्ट परिहार, पांच लाख साठ हजार छह सौ तीन कर्मों को क्रमशः क्षय कर उसके पश्चात् सिद्ध, प्रशान्त, मुक्त और परिनिर्वृत हुए हैं सब दुःखों को अंत किया है, करते हैं, अथवा करेंगे।

जैसे महानदी गंगा जहां से प्रवृत्त हुई है, और जहां पर्यवसित हुई है, वह मार्ग लंबाई में पांच

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पंचजोयणसयाइं आयामेणं, अद्धजोयणं विक्खंभेणं, पंच धणुसयाइं उव्वेहेणं। एएणं गंगापमाणेणं सत्त गंगाओ सा एगा महागंगा। सत्त महागंगाओ सा एगा सादीणगंगा। सत्त सादीणगंगाओ सा एगा मदुगंगा। सत्त मदुगंगाओ सा एगा लोहियगंगा। सत्त लोहियगंगाओ सा एगा आवतीगंगा। सत्त आवतीगंगाओ सा एगा परमावती। एवामेव सपुव्वावरेणं एगं गंगासयसहस्सं सत्तरसहस्सा छच्च अगुणपन्नं गंगासया भवंतीति मक्खाया।

पञ्चयोजनशतानि आयामेन, अर्धयोजनं विष्कम्भेण, पञ्च धनुःशतानि उद्वेधेन। एतेन गंगाप्रमाणेन सप्तगंगा सा एका महागंगा। सप्तमहागंगाः सा एका सादीनगंगा। सप्तसादीनगंगाः सा एका मृत्युगंगा (मदुगंगा)। सप्त मृत्युगंगाः (मदुगंगा) सा एका लोहितगंगा। सप्त लोहितगंगाः सा एका आवतीगंगा। सप्त आवतीगंगाः सा एका परमावती। एवमेव सपूर्वापरेण एकं गंगाशतसहस्रं सप्ततिः सहस्रा षट् च एकोनपञ्चाशत् गंगाशतानि भवन्तीति आख्यातानि।

सौ योजन, चौड़ाई में आधा योजन और गहराई में पांच सौ धनुष है। इस गंगा के प्रमाण वाली सात गंगा से एक महागंगा, सात महागंगा से एक सादीन गंगा, सात सादीन गंगा से एक मृत गंगा, सात मृत गंगा से एक लोहित गंगा, सात लोहित गंगा से एक आवती गंगा, सात आवती गंगा से एक परमावती गंगा। इस प्रकार पूर्वापर के योग से एक लाख सत्रह हजार छह सौ उन्चास गंगा नदी हैं, ऐसा कहा गया है।

तासिं दुविहे उद्धारे पण्णत्ते, तं जहा– सुहुमबोंदिकलेवरे चेव बायरबोंदिकलेवरे चेव तत्थ णं जे से सुहुमबोंदिकलेवरे से ठप्पे। तत्थ णं जे से बायरबोंदिकलेवरे तओ णं वाससए गए, वाससए गए एगमेगं गंगावालुयं अवहाय जावतिएणं कालेणं से कोट्ठे खीणे णीरए निल्लेवे निट्ठिए भवति सेत्तं सरे सरप्पमाणे। एएणं सरप्पमाणेणं तिण्णि सरसयसाहस्सीओ से एगे महाकप्पे, चउरासीतिं महाकप्पसयसहस्साइं से एगे महामाणसे।

तेषां द्विविधः उद्धारः प्रज्ञप्तः, तद्यथा– सूक्ष्मबोन्दिकलेवरः चैव, बादरबोन्दिकलेवरः चैव। तत्र यः सः सूक्ष्मबोन्दिकलेवरः सः ठप्पे (स्थाप्यः)। तत्र यः सः बादरबोन्दिकलेवरः ततः वर्षशते गते, वर्षशते गते एकाम् एकाम् गंगाबालुकाम् अपहाय यावता कालेन सः कोष्ठः क्षीणः नीरजः निर्लेपः निस्थितः भवति तदेतद् सरः सरःप्रमाणम्। एतेन सरःप्रमाणेन तिस्रः सरःशतसाहस्रयः सः एकः महाकल्पः, चतुरशीतिः महाकल्पशतसहस्राणि सः एकः महामानसः।

उनका दो प्रकार से उद्धार प्रज्ञप्त है, जैसे– १. सूक्ष्म बोन्दि कलेवर २. बादर बोन्दि कलेवर।

जो सूक्ष्म बोन्दि कलेवर है, वह स्थाप्य है। जो बादर बोन्दि कलेवर है, उसमें से सौ सौ वर्षों के बीत जाने पर गंगा की बालुका का एक-एक कण निकाला जाए, जितने काल से वह कोष्ठक क्षीण, रज-रहित, निर्लेप और समाप्त हो जाए, वह है शर, शर-प्रमाण। ऐसे तीन लाख शर-प्रमाण काल से एक महाकल्प होता है। चौरासी लाख महाकल्प से महामानस होता है।

१. अणंताओ संजूहाओ जीवे चयं चइत्ता उवरिल्ले माणसे संजूहे देवे उववज्जति। से णं तत्थ दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरइ, विहरित्ता ताओ देवलोगाओ आउक्खएणं भवक्खएणं ठिइक्खएणं अणंतरं चयं चइत्ता पढमे सण्णिगब्भे जीवे पच्चायाति।

१. अनन्तान् संयूथान् जीवः च्यवं च्युत्वा उपरितने मानसे संयूथे देवे उपपद्यते। सः तत्र दिव्यानि भोगभोगानि भुञ्जानः विहरति, विहृत्य तस्मात् देवलोकात् आयुःक्षयेण भवक्षयेण स्थितिक्षयेण अनन्तरं च्यवं च्युत्वा प्रथमे संज्ञिगर्भे जीवः प्रत्यायाति।

१. अनंत संयूथ में जीव च्यवन कर उपरितन मानस में संयूथ देव के रूप में उपपन्न होता है। वहां वह दिव्य भोग भोगता है। भोगों को भोगता हुआ विहरण करता है। विहरण कर उस देवलोक से आयु-क्षय, भव-क्षय और स्थिति-क्षय के अनंतर प्रथम संज्ञी गर्भ में जीव के रूप में पुनः उत्पन्न हुआ।

२. से णं तओहिंतो अणंतरं उव्वट्टित्ता मज्झिल्ले माणसे संजूहे देवे उववज्जइ। से णं तत्थ दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरइ, विहरित्ता ताओ देवलोगाओ आउक्खएणं भवक्खएणं ठिइक्खएणं अणंतरं चयं चइत्ता दोच्चे सण्णिगब्भे जीवे पच्चायाति।

२. सः तस्मात् अनन्तरम् उद्वर्त्य मध्यमे मानसे संयूथे देवे उपपद्यते। सः तत्र दिव्यानि भोगभोगानि भुञ्जानः विहरति, विहृत्य तस्मात् देवलोकात् आयुःक्षयेण भवक्षयेण स्थितिक्षयेण अनन्तरं च्यवं च्युत्वा द्वितीये संज्ञिगर्भे जीवः प्रत्यायाति।

२. वहां से अनन्तर उद्वर्तन कर मध्यम मानस में संयूथ देव के रूप में उपपन्न हुआ। वह दिव्य भोगार्ह भोगों को भोगता हुआ विहरण करता है, विहरण कर उस देवलोक से आयु-क्षय, भव-क्षय और स्थिति-क्षय के अनंतर च्यवन कर दूसरी बार संज्ञी गर्भ में जीव के रूप में पुनः उत्पन्न हुआ।

३. से णं तओहिंतो अणंतरं उव्वट्टित्ता हेट्ठिल्ले माणसे संजूहे देवे उववज्जइ। से णं तत्थ दिव्वाइं भोगभोगाइं जाव चइत्ता तच्चे सण्णिगब्भे जीवे पच्चायाति।

३. सः तस्मात् अनंतरं उद्वर्त्य अधस्तने मानसे संयूथे देवे उपपद्यते। सः तत्र दिव्यानि भोगभोगानि यावत् च्युत्वा तृतीये संज्ञिगर्भे जीवः प्रत्यायाति।

३. वहां से अनंतर उद्वर्तन कर निम्नवर्ती मानस में संयूथ देव के रूप में उपपन्न हुआ। वहां दिव्य भोगार्ह भोगों को यावत् च्यवन कर तीसरी बार संज्ञी गर्भ में जीव के रूप में उत्पन्न हुआ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४. से णं तओहिंतो जाव उव्वट्टित्ता उवरिल्ले माणुसुत्तरे संजूहे देवे उववज्जइ। से णं तत्थ दिव्वाइं भोगभोगाइं जाव चइत्ता चउत्थे सण्णिगब्भे जीवे पच्चायाति।

५. से णं तओहिंतो अणंतरं उव्वट्टित्ता मज्झिल्ले माणुसुत्तरे संजूहे देवे उववज्जइ। से णं तत्थ दिव्वाइं भोगभोगाइं जाव चइत्ता पंचमे सण्णिगब्भे जीवे पच्चायाति।

६. से णं तओहिंतो अणंतरं उव्वट्टित्ता हिट्ठिल्ले माणुसुत्तरे संजूहे देवे उववज्जइ। से णं तत्थ दिव्वाइं भोगभोगाइं जाव चइत्ता छट्ठे सण्णिगब्भे जीवे पच्चायाति।

७. से णं तओहिंतो अणंतरं उव्वट्टित्ता—बंभलोगे नामं से कप्पे पण्णत्ते—पाईण-पडीणायते उदण-दाहिणविच्छिण्णे, जहा ठाणपदे जाव पंच वडेंसगा पण्णत्ता, तं जहा—असोगवडेंसए जाव पडिरूवा— से णं तत्थ देवे उववज्जइ। से णं तत्थ दस सागरोवमाइं दिव्वाइं भोगभोगाइं जाव चइत्ता सत्तमे सण्णिगब्भे जीवे पच्चायाति।

से णं तत्थ नवण्हं मासाणं बहुपडिपुण्णाणं अद्धट्ठमाणं राईदियाणं वीतिक्कंताणं सुकुमालगभद्दलए मिउ-कुंडलकुंचियकेसए मट्ठगंडतल-कण्णपीढए देवकुमारसप्पभए दारए पयाति। से णं अहं कासवा! तए णं अहं आउसो कासवा! कोमारियपव्वज्जाए कोमारएणं बंभचेरवासेणं अविद्धकण्णए चेव संखाणं पडिलभामि, पडिलभित्ता इमे सत्त पउट्टपरिहारे परिहरामि, तं जहा—

१. एणेज्जस्स २. मल्लरामस्स ३. मंडियस्स ४. रोहस्स ५. भारद्दाइस्स ६. अज्जुणगस्स गोयमपुत्तस्स[1] ७. गोसालस्स मंखलिपुत्तस्स।

तत्थ णं जे से पढमे पउट्टपरिहारे से णं रायगिहस्स नगरस्स बहिया मंडिकुच्छिंसि चेइयंसि उदाइस्स कुंडियायणस्स सरीरं विप्पजहामि, विप्पजहित्ता एणेज्जगस्स

४. सः तस्मात् यावत् उद्वर्त्य उपरितने मानुषोत्तरे संयूथे देवे उपपद्यते। सः तत्र दिव्यानि भोगभोगानि यावत् च्युत्वा चतुर्थे संज्ञिगर्भे जीवः प्रत्यायाति।

५. सः तस्मात् अनन्तरम् उद्वर्त्य मध्यमे मानुषोत्तरे संयूथे देवे उपपद्यते। सः तत्र दिव्यानि भोगभोगानि यावत् च्युत्वा पञ्चमे संज्ञिगर्भे जीवः प्रत्यायाति।

६. सः तस्मात् अनन्तरम् उद्वर्त्य अधस्तने मानुषोत्तरे संयूथे देवे उपपद्यते। सः तत्र दिव्यानि भोगभोगानि यावत् च्युत्वा षष्ठे संज्ञिगर्भे जीवः प्रत्यायाति।

७. सः तस्मात् अनन्तरम् उद्वर्त्य—ब्रह्मलोकः नाम सः कल्पः प्रज्ञप्तः—प्राचीन-प्रतीचीनायतः उदीचीन-दक्षिण-विस्तीर्णः, यथा 'ठाणपदे' यावत् पञ्च अवतंसकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—अशोकावतंसकः यावत् प्रतिरूपाः—सः तत्र देवे उपपद्यते। सः तत्र दश सागरोपमानि दिव्यानि भोगभोगानि यावत् च्युत्वा सप्तमे संज्ञिगर्भे जीवः प्रत्यायाति।

सः तत्र नवानां मासानां बहुप्रतिपूर्णानाम् अर्द्धाष्टमानां रात्रिंदिवानां व्यतिक्रान्तानां सुकुमारकभद्रकः मृदु-कुण्डलकुञ्चित-केशकः मृष्टगण्डतल-कर्णपीठकः देवकुमार-सप्रभकः दारकः प्रजन्यते। सः अहं काश्यप! तत अहं आयुष्मन् काश्यप! कौमारिकप्रव्रज्यायां कौमारकेन ब्रह्मचर्यवासेन अविद्धकर्णकः चैव संख्यानं प्रतिलभे, प्रतिलभ्य इमान् सप्त 'पउट्ट परिहारे' परिहरामि, तद्यथा—

१. एणेयकस्य २. मल्लरामस्य ३. मण्डितस्य ४. रोहस्य ५. भारद्वाजस्य ६. अर्जुनकस्य गौतमपुत्रस्य ७. गोशालस्य मंखलिपुत्रस्य।

तत्र यः सः प्रथमः 'पउट्ट परिहारे' सः राजगृहस्य नगरस्य बहिः मण्डिकुक्षौ चैत्ये उदायिनः कौण्डिकायणस्य शरीरं विप्रजाहामि, विप्रहाय एणेयकस्य

४. वहां से अनंतर उद्वर्तन कर उपरितन मानस में संयूथ देव के रूप में उपपन्न हुआ। वहां दिव्य भोगार्ह भोगों को यावत् च्यवन कर चौथी बार संज्ञी गर्भ में जीव के रूप में उत्पन्न हुआ।

५. वहां से अनंतर उद्वर्तन कर मध्यम मानुषोत्तर संयूथ देव में उपपन्न हुआ। वहां दिव्य भोगार्ह भोगों को यावत् च्यवन कर पांचवीं बार संज्ञी गर्भ में जीव के रूप में उत्पन्न हुआ।

६. वहां से अनंतर उद्वर्तन कर निम्नवर्ती मानुषोत्तर में संयूथ देव के रूप में उपपन्न हुआ। वहां दिव्य भोगार्ह भोगों को यावत् च्यवन कर छठी बार संज्ञी गर्भ में जीव के रूप में उत्पन्न हुआ।

७. वहां से अनंतर उद्वर्तन कर—ब्रह्मलोक नाम का कल्प प्रज्ञप्त है—वह पूर्व-पश्चिम में आयत और दक्षिण में विस्तीर्ण है, प्रज्ञापना के स्थान पद की भांति यावत् पांच अवतंसक प्रज्ञप्त हैं, जैसे—अशोकावतंसक यावत् प्रतिरूप—वहां देव रूप में उपपन्न हुआ। वहां दस सागरोपम तक दिव्य भोगार्ह भोगों को यावत् च्यवन कर सातवीं बार संज्ञी गर्भ में जीव के रूप में उत्पन्न हुआ।

वहां बहुप्रतिपूर्ण नौ मास तथा साढे सात रात दिन के बीत जाने पर सुकुमाल, भद्र, मृदुकुंडल के समान घुंघराले केश वाले कान के आभूषणों के समान चमकते हुए कपोल तथा देवकुमार सदृश प्रभा वाले पुत्र के रूप में जन्म लिया। काश्यप! वह मैं हूं। आयुष्मन् काश्यप! मैंने कौमारिक-प्रव्रज्या व कौमारक ब्रह्मचर्यवास के साथ अविद्धकर्ण के रूप में ही संख्यान (गणित) को प्राप्त किया। प्राप्त कर मैंने ये सात 'पोट्ट परिहार' किए, जैसे—

१. एणेयक २. मल्लराम ३. मंडित ४. रोह ५. भारद्वाज ६. गौतमपुत्र अर्जुनक ७. मंखलिपुत्र गोशाल।

प्रथम पोट्ट परिहार में मैंने राजगृह नगर के बाहर मंडिककुक्षि चैत्य में कौण्डिकायन गौत्रीय उदायी के शरीर को छोड़ा, छोड़कर एणेयक के शरीर में अनुप्रवेश किया,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सरीरगं अणुप्पविसामि, अणुप्पविसित्ता बावीसं वासाइं पढमं पउट्टपरिहारं परिहरामि।

तत्थ णं जे से दोच्चे पउट्टपरिहारे से णं उद्दंडपुरस्स नगरस्स बहिया चंदोयरणंसि चेइयंसि एणेज्जगस्स सरीरगं विप्पजहामि, विप्पजहित्ता मल्लरामस्स सरीरगं अणुप्पविसामि, अणुप्पविसित्ता एक्कवीसं वासाइं दोच्चं पउट्टपरिहारं परिहरामि।

तत्थ णं जे से तच्चे पउट्टपरिहारे से णं चंपाए नगरीए बहिया अंगमंदिरंसि चेइयंसि मल्लरामस्स सरीरगं विप्पजहामि, विप्पजहित्ता मंडियस्स सरीरगं अणुप्पविसामि, अणुप्पविसित्ता वीसं वासाइं तच्चं पउट्टपरिहारं परिहरामि।

तत्थ णं जे से चउत्थे पउट्टपरिहारे से णं वाणारसीए नगरीए बहिया काममहावणंसि चेइयंसि मंडियस्स सरीरगं विप्पजहामि, विप्पजहित्ता रोहस्स सरीरगं अणुप्पविसामि, अणुप्पविसित्ता एकूणवीसं वासाइं चउत्थं पउट्टपरिहारं परिहरामि।

तत्थ णं जे से पंचमे पउट्टपरिहारे से णं आलभियाए नगरीए बहिया पत्तकालगंसि चेइयंसि रोहस्स सरीरगं विप्पजहामि, विप्पजहित्ता भारद्वाइस्स सरीरगं अणुप्पविसामि, अणुप्पविसित्ता अट्ठारस वासाइं पंचमं पउट्टपरिहारं परिहरामि।

तत्थ णं जे से छट्ठे पउट्टपरिहारे से णं वेसालीए नगरीए बहिया कोंडियायणंसि चेइयंसि भारद्वाइस्स सरीरं विप्पजहामि, विप्पजहित्ता अज्जुणगस्स गोयमपुत्तस्स सरीरगं अणुप्पविसामि, अणुप्पविसित्ता सत्तरस वासाइं छट्ठं पउट्टपरिहारं परिहरामि।

तत्थ णं जे से सत्तमे पउट्टपरिहारे से णं इहेव सावत्थीए नगरीए हालाहलाए कुंभकारीए कुंभकारावणंसि अज्जुणगस्स गोयमपुत्तस्स सरीरगं विप्पजहामि, विप्पजहित्ता गोसालस्स मंखलिपुत्तस्स सरीरगं अलं थिरं धुवं धारणिज्जं सीयसहं उण्हसहं खुहासहं विविहदंसमसगपरीसहोवसग्गसहं थिरसंघयणं ति कट्टु

शरीरकम् अनुप्रविशामि, अनुप्रविश्य द्वाविंशतिः वर्षाणि प्रथमं 'पउट्ट परिहारं' परिहरामि।

तत्र यः सः द्वितीयः 'पउट्ट परिहारे' सः उद्दण्डपुरस्य बहिः चन्द्रावतरणे चैत्ये एणेयकस्य शरीरकं विप्रजहामि, विप्रहाय मल्लरामस्य शरीरकम् अनुप्रविशामि, अनुप्रविश्य एकविंशतिः वर्षाणि द्वितीयं 'पउट्ट परिहारं' परिहरामि।

तत्र यः सः तृतीयः 'पउट्ट परिहारे' सः चम्पायाः नगर्याः बहिः अङ्गमन्दिरे चैत्ये मल्लरामस्य शरीरकं विप्रजहामि, विप्रहाय मण्डितस्य शरीरकम् अनुप्रविशामि, अनुप्रविश्य विंशतिः वर्षाणि 'पउट्ट परिहारं' परिहरामि।

तत्र यः सः चतुर्थः 'पउट्ट परिहारे' सः वाणारस्याः नगर्याः बहिः काममहावने चैत्ये मण्डितस्य शरीरकं विप्रजहामि, विप्रहाय रोहस्य शरीरकम् अनुप्रविशामि, अनुप्रविश्य एकोनविंशतिः वर्षाणि चतुर्थं 'पउट्ट परिहारं' परिहरामि।

तत्र यः सः पंचमः 'पउट्ट परिहारे' सः आलभिकायाः नगर्याः बहिः प्राप्तकाले चैत्ये रोहस्य शरीरकं विप्रजहामि, विप्रहाय भारद्वाजस्य शरीरकम् अनुप्रविशामि, अनुप्रविश्य अष्टादश वर्षाणि पंचमं 'पउट्ट परिहारं' परिहरामि।

तत्र यः सः षष्ठः 'पउट्ट परिहारे' सः वैशाल्याः नगर्याः बहिः कुण्डियायणे चैत्ये भारजस्य शरीरकं विप्रजहामि, विप्रहाय अर्जुनकस्य गौतमपुत्रस्य शरीरकम् अनुप्रविशामि, अनुप्रविश्य सप्तदश वर्षाणि षष्ठं 'पउट्ट परिहारं' परिहरामि।

तत्र यः सः सप्तमः 'पउट्ट परिहारे' सः इहैव श्रावस्त्यां नगर्यां हालाहलायाः कुम्भकार्याः कुम्भकारापणे अर्जुनकस्य गौतमपुत्रकस्य शरीरकं विप्रजहामि, विप्रहाय गोशालस्य मंखलिपुत्रस्य शरीरकम् अलं स्थिरं ध्रुवं धारणीयं शीतसहं उष्णसहं क्षुधासहं विविध-दंशमसक-परीषहोपसर्गसहं स्थिर-

अनुप्रवेश कर बाईस वर्ष तक प्रथम 'पोट्ट परिहार' में रहा।

दूसरे पोट्ट परिहार में मैंने उद्दण्डपुर नगर के बाहर चंद्रावतरण चैत्य में एणेयक के शरीर को छोड़ा, छोड़कर मल्लराम के शरीर में अनुप्रवेश किया, अनुप्रवेश कर इक्कीस वर्ष तक दूसरे पोट्ट परिहार में रहा।

तीसरे पोट्ट परिहार में मैंने चंपा नगरी के बाहर अंगमंदिर चैत्य में मल्लराम के शरीर को छोड़ा, छोड़कर मंडित के शरीर में अनुप्रवेश किया, अनुप्रवेश कर बीस वर्ष तक तीसरे पोट्ट परिहार में रहा।

चौथे पोट्ट परिहार में मैंने वाराणसी नगरी के बाहर काममहावन चैत्य में मंडित के शरीर को छोड़ा, छोड़कर रोह के शरीर में अनुप्रवेश किया, अनुप्रवेश कर उन्नीस वर्ष तक चौथे 'पोट्ट परिहार' में रहा।

पांचवे पोट्ट परिहार में मैंने आलभिका नगरी के बाहर प्राप्तकालक चैत्य में रोह के शरीर को छोड़ा, छोड़कर भारद्वाज के शरीर में अनुप्रवेश किया, अनुप्रवेश कर अठारह वर्ष तक पांचवें 'पोट्ट परिहार' में रहा।

छठे पोट्ट परिहार में मैंने वैशाली नगरी के बाहर कोण्डिकायन चैत्य में भारद्वाज के शरीर को छोड़ा, छोड़कर गौतम पुत्र अर्जुनक के शरीर में अनुप्रवेश किया। अनुप्रवेश कर सतरह वर्ष तक छठे पोट्ट परिहार में रहा।

सातवें पोट्ट परिहार में मैंने इसी श्रावस्ती नगरी के हालाहला कुंभकारी के कुंभकारापण में गौतमपुत्र अर्जुनक के शरीर को छोड़ा, छोड़कर मैंने मंखलिपुत्र गोशाल के शरीर को समर्थ, स्थिर, ध्रुव, धारण करने योग्य, सर्दी को सहन करने वाला, गर्मी को सहन करने वाला, क्षुधा को सहन करने वाला, विविध दंश, मशक आदि परीषह और उपसर्ग को

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तं अणुण्णविसामि, अणुण्णविसित्ता सोलस वासाइं इमं सत्तमं पउट्टपरिहारं परिहरामि। एवामेव आउसो कासवा! एगेणं तेत्तीसेणं वाससएणं सत्त पउट्टपरिहारा परिहरिया भवंतीति मक्खाया, तं सुट्ठु णं आउसो कासवा! ममं एवं वयासी–साहू णं आउसो कासवा! ममं एवं वयासी–गोसाले मंखलिपुत्ते ममं धम्मंतेवासी, गोसाले मंखलिपुत्ते ममं धम्मंतेवासी॥

संघयनम् इति कृत्वा तम् अनुप्रविशामि, अनुप्रविश्य षोडश वर्षाणि इमं सप्तमं 'पउट्ट परिहारं' परिहरामि। एवमेव आयुष्मन्! काश्यप! एकेन त्रयस्त्रिंशता वर्षशतेन सप्त 'पउट्ट परिहारा' परिहृताः भवन्ति इति आख्यातः, तत् सुष्ठु आयुष्मन् काश्यप! माम् एवमवादीत्–साधु आयुष्मन् काश्यप! माम् एवमवादीत्–गोशालः मंखलिपुत्रः मम धर्मान्तेवासी, गोशालः मंखलिपुत्रः मम धर्मान्तेवासी।

सहन करने वाला, स्थिर संहनन वाला जानकर उसमें अनुप्रवेश किया। अनुप्रवेश कर सोलह वर्षों से इस सातवें 'पोट्ट परिहार'! में मैं रह रहा हूं। आयुष्मन् काश्यप! इसी प्रकार मैंने एक सौ तैतीस वर्षों में मेरे ये सात पोट्ट परिहार हुए हैं। यह मैं कहता हूं। इसलिए आयुष्मन् काश्यप! तुमने मुझे इस प्रकार अच्छा कहा। आयुष्मन् काश्यप! तुमने मुझे इस प्रकार साधु कहा–मंखलिपुत्र गोशाल मेरा धर्मान्तेवासी है, मंखलिपुत्र गोशाल मेरा धर्मान्तेवासी है।

भगवया गोसालगवयणस्स पडियार-पदं

१०२. तए णं समणे भगवं महावीरे गोसालं मंखलिपुत्तं एवं वयासी–गोसाला! से जहानामए तेणए सिया, गामेल्लएहिं परब्भमाणे-परब्भमाणे कत्थ य गड्डं वा दरिं वा दुग्गं वा णिण्णं वा पव्वयं वा विसमं वा अणस्सादेमाणे एगेणं महं उण्णालोमेण वा सणलोमेण वा कप्पासपम्हेण वा तणसूएण वा अत्ताणं आवरेत्ताणं चिट्ठेज्जा, से णं अणावरिए आवरियमिति अप्पाणं मण्णइ, अपच्छण्णे य पच्छण्णमिति अप्पाणं मण्णइ, अणिलुक्के णिलुक्कमिति अप्पाणं मण्णइ, अपलाए पलायमिति अप्पाणं मण्णइ, एवामेव तुमं पि गोसाला! अण्णे संते अण्णमिति अप्पाणं उपलभसि, तं मा एवं गोसाला! नारिहसि गोसाला! सच्चेव ते सा छाया नो अण्णा॥

भगवता गोशालकवचनस्य प्रतिकार-पदम्

ततः श्रमणः भगवान् महावीरः गोशालं मंखलिपुत्रं एवमादीत्–गोशाल! सः यथा–नामकः स्तेनकः स्यात्, ग्रामेयकैः परभवन् परभवन् कुत्र च गर्तां वा दरीं वा दुर्गं वा निम्नं वा पर्वतं वा विषमं वा अनासादयन् एकेन महता ऊर्णालोम्ना वा शणलोम्ना वा कर्पासपक्ष्मणा वा तृणसूकेन वा आत्मानम् आवृत्य तिष्ठेत्, सः अनावृतः आवृतम् इति आत्मानं मन्यते, अप्रच्छन्नः च प्रच्छन्नम् इति आत्मानं मन्यते, 'अणिलुक्के णिलुक्कम्' इति आत्मानं मन्यते, अपलायितः पलायितम् इति आत्मानं मन्यते, एवमेव त्वम् अपि गोशाल! अनन्यः सन् अन्यम् इति आत्मानम् उपलभसे, तत् मा एवं गोशाल! नार्हसि गोशाल! सत्या एव तव सा छाया नो अन्या।

भगवान् द्वारा गोशालक के वचन का प्रतिकार-पद

१०२. श्रमण भगवान् महावीर ने मंखलिपुत्र गोशाल से इस प्रकार कहा–गोशाल! जैसे कोई चोर है। वह ग्रामीणों द्वारा कहीं पर भी गड्ढा, गुफा, दुर्ग, निम्न स्थान, पर्वत अथवा विषम स्थान के न मिलने पर एक बड़े ऊन के कंबल से, सण के रोम से, कपास के बने हुए रोम से, तृण सूत्र से अपने आपको आवृत कर बैठ जाता है, वह अनावृत होकर भी अपने आपको आवृत मानता है, अप्रच्छन्न होते हुए भी अपने आपको प्रच्छन्न मानता है, अदृश्य–छिपा हुआ न होते हुए भी अपने आपको अदृश्य मानता है। इसी प्रकार गोशाल! तुम अन्य न होकर भी अपने आपको अन्य बता रहे हो, इसलिए गोशाल! तुम ऐसा मत करो, यह तुम्हारे लिए उचित नहीं है। गोशाल! तुम वही हो, वही तुम्हारी छाया है, अन्य नहीं है।

गोसालस्स पुणरक्कोस-पदं

१०३. तए णं से गोसाले मंखलिपुत्ते समणेणं भगवया महावीरेणं एवं वुत्ते समाणे आसुरुत्ते रुट्ठे कुविए चंडिक्किए मिसिमिसेमाणे समणं भगवं महावीरं उच्चावयाहिं आओसणाहिं आओसइ, उच्चावयाहिं उद्धंसणाहिं उद्धंसेति, उच्चावयाहिं निब्भंछणाहिं निब्भंछेति, उच्चावयाहिं निच्छोडणाहिं निच्छोडेति, निच्छोडेत्ता एवं वयासी–नट्ठे सि कदाइ, विणट्ठेसि कदाइ, भट्ठे सि कदाइ, नट्ठ-

गोशालस्य पुनः आक्रोश-पदम्

ततः सः गोशालः मंखलिपुत्रः श्रमणेन भगवता महावीरेण एवम् उक्ते सति आशुरक्तः रूष्टः कुपितः 'चंडिक्किए' 'मिसिमिसेमाणे' श्रमणं भगवंतं महावीरम् उच्चावचाभिः आक्रोशनाभिः आक्रोशति, उच्चावचाभिः उद्घर्षणाभिः उद्घर्षति, उच्चावचाभिः निर्भर्त्सनाभिः निर्भर्त्सयन्ते, उच्चवचाभिः निश्छोटनाभिः निश्छोटयन्ति, निश्छोट्य एवमवादीत्–नष्टोऽसि कदाचित्, विनष्टोऽसि

गोशाल का पुनः आक्रोश-पद

१०३. श्रमण भगवान् महावीर के इस प्रकार कहने पर मंखलिपुत्र गोशाल तत्काल आवेश में आ गया। रुष्ट हो गया, कुपित हो गया, उसका रूप रौद्र हो गया, क्रोध की अग्नि में प्रदीप्त होकर श्रमण भगवान् महावीर के प्रति उच्चावच आक्रोश-युक्त वचनों से आक्रोश प्रकट किया, उच्चावच उद्घर्षणा-युक्त वचनों से उद्घर्षण किया, उच्चावच निर्भर्त्सना-युक्त वचनों से निर्भर्त्सना की, उच्चावच तिरस्कार-युक्त वचनों से तिरस्कार किया। तिरस्कार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विणट्ठ-भट्ठे सि कदाइ, अज्ज न भवसि, नाहि ते ममाहिंतो सुहमत्थि॥

कदाचित् भ्रष्टोऽसि कदाचित्, नष्ट-विनष्ट-भ्रष्टोऽसि कदाचित्, अद्य न भवसि नहि ते मत् सुखम् अस्ति।

कर इस प्रकार कहा–तुम कभी आचार से नष्ट हो गए, कभी विनष्ट हो गए, कभी भ्रष्ट हो गए, तुम कभी नष्ट, विनष्ट और भ्रष्ट हो गए। आज तुम जीवित नहीं रहोगे। मेरे द्वारा तुम्हें सुख प्राप्त नहीं हो सकता।

गोसालेण सव्वाणुभूतिस्स भासरासी-करण-पदं

गोशालेन सर्वानुभूतेः भस्मराशि-करण-पदम्

गोशाल द्वारा सर्वानुभूति का भस्म-राशि करण-पद

१०४. तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतेवासी पाईण-जाणवए सव्वाणुभूती नामं अणगारे पगइभद्दए पगइउवसंते पगइपयणु-कोहमाणमायालोभे मिउमद्दवसंपन्ने अल्लीणे विणीए धम्मायरियाणुरागेणं एयमट्ठं असद्दहमाणे उट्ठाए उट्ठेइ, उट्ठेत्ता जेणेव गोसाले मंखलिपुत्ते तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता गोसालं मंखलिपुत्ते एवं वयासी–जे वि ताव गोसाला! तहारूवस्स समणस्स वा माहणस्स वा अंतियं एगमवि आरियं धम्मियं सुवयणं निसामेति, से वि ताव वंदति नमंसति सक्कारेति सम्माणेति कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं पज्जुवासति, किमंग पुण तुमं गोसाला! भगवया चेव पव्वाविए, भगवया चेव मुंडाविए, भगवया चेव सेहाविए, भगवया चेव सिक्खाविए, भगवया चेव बहुस्सुतीकए, भगवओ चेव मिच्छं विप्पडिवन्ने? तं मा एवं गोसाला! नारिहसि गोसाला! सच्चेव ते सा छाया, नो अण्णा॥

तस्मिन् काले तस्मिन् समये श्रमणस्य भगवतः महावीरस्य अन्तेवासी प्राचीन-जानपदः सर्वानुभूतिः नाम अनगारः प्रकृतिभद्रकः प्रकृत्युपशान्तः प्रकृतिप्रतनुक्रोधमानमायालोभः मृदु-मार्दवसम्पन्नः आलीनः विनीतः धर्माचार्यानुरागेन एतमर्थम् अश्रद्दधानः उत्थया उत्तिष्ठति, उत्थाय यत्रैव गोशालः मंखलिपुत्रः तत्रैव उपागच्छति, उपागम्य गोशालं मंखलिपुत्रम् एवमवादीत्–यः अपि तावत् गोशाल! तथारूपस्य श्रमणस्य वा माहनस्य वा अन्तिकम् एकम् अपि आर्यं धार्मिकं सुवचनं निशाम्यति, सः अपि तावत् वन्दते नमस्यति सत्कारयति सम्मानयति कल्याणं मङ्गलं देवतं चैत्यं पर्युपास्ते, किमङ्ग पुनः त्वं गोशाल! भगवता चैव प्रव्राजितः, भगवता चैव मुण्डितः, भगवता चैव शिक्षितः, भगवता चैव शिक्षयितः, भगवता चैव बहुश्रुतीकृतः, भगवतः चैव मिथ्या विप्रतिपन्नः? तत् मा एवं गोशाल! नार्हसि गोशाल! सत्या एव तव सा छाया, नो अन्या।

१०४. उस काल उस समय श्रमण भगवान् महावीर के अन्तेवासी पूर्वजनपद के निवासी सर्वानुभूति नाम का अनगार था। वह प्रकृति से भद्र और उपशान्त था। उसके क्रोध, मान, माया और लोभ प्रतनु थे। वह मृदु-मार्दव-सम्पन्न, आलीन (संयतेन्द्रिय) और विनीत था। धर्माचार्य के अनुराग से अनुरक्त था। इस अर्थ पर अश्रद्धा करते हुए वह उठने की मुद्रा में उठा, उठकर जहां मंखलिपुत्र गोशाल था वहां आया, वहां आकर मंखलिपुत्र गोशाल से इस प्रकार कहा–गोशाल! जो तथारूप श्रमण अथवा ब्राह्मण के पास एक भी आर्य धार्मिक वचन का श्रवण करता है, वह भी उन्हें वन्दन करता है।, नमस्कार करता है, सत्कार-सम्मान करता है, कल्याणकारी, मंगल, देव और प्रशस्त-चित्त वाले श्रमण की पर्युपासना करता है। गोशाल! भगवान् ने तुम्हें प्रव्रजित किया, भगवान् ने तुम्हें मुंडित किया, भगवान् ने तुम्हें शैक्ष बनाया, भगवान् ने तुम्हें शिक्षित किया, भगवान् ने तुम्हें बहुश्रुत बनाया। तुम भगवान् के प्रति ही मिथ्यात्व-विप्रतिपन्न हो गए? गोशाल! तुम ऐसा मत करो, यह तुम्हारे लिए उचित नहीं हैं। गोशाल! तुम वही हो, वही तुम्हारी छाया है, अन्य नहीं है।

१०५. तए णं से गोसाले मंखलिपुत्ते सव्वाणुभूतिणा अणगारेणं एवं वुत्ते समाणे आसुरुत्ते रुट्ठे कुविए चंडिक्किए मिसिमिसेमाणे सव्वाणुभूतिं अणगारं तवेणं तेएणं एगाहच्चं कूडाहच्चं भासरासिं करेति॥

ततः सः गोशालः मंखलिपुत्रः सर्वानुभूतिना अनगारेण एवम् उक्ते सति आशुरक्तः रुष्टः कुपितः 'चंडिक्किए' 'मिसिमिसेमाणे' सर्वानुभूतिम् अनगारं तपसा तेजसा एकाहत्यं कूटाहत्यं भस्मराशिं करोति।

१०५. सर्वानुभूति अनगार के इस प्रकार कहने पर मंखलिपुत्र गोशाल तत्काल आवेश में आ गया। वह रुष्ट हो गया, कुपित हो गया, उसका रूप रौद्र हो गया। क्रोध की अग्नि में प्रदीप्त होकर उसने सर्वानुभूति अनगार को अपने तपः-तेज से कूटाघात की भांति एक प्रहार में राख का ढेर कर दिया।

१०६. तए णं से गोसाले मंखलिपुत्ते सव्वाणुभूतिं अणगारं तवेणं तेएणं

ततः सः गोशालः मंखलिपुत्रः सर्वानुभूतिम् अनगारं तपसा तेजसा

१०६. मंखलिपुत्र गोशाल सर्वानुभूति अनगार को अपने तपः-तेज से कूटाघात की भांति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एगाहच्चं कूडाहच्चं भासरासिं करेत्ता दोच्चं पि समणं भगवं महावीरं उच्चावयाहिं आओसणाहिं आओसइ, उच्चावयाहिं उद्धंसणाहिं उद्धंसेति, उच्चावयाहिं निब्भंछणाहिं निब्भंछेति, उच्चावयाहिं निच्छोडणाहिं निच्छोडेति, निच्छोडेत्ता एवं वयासी—नट्ठेसि कदाइ, विणट्ठेसि कदाइ, भट्ठेसि कदाइ, नट्ठ-विणट्ठ-भट्ठेसि कदाइ, अज्ज न भविसि, नाहि ते ममाहिंतो सुहमत्थि॥

एकाहत्यं कूटाहत्यं भस्मराशिं कृत्वा द्विः अपि श्रमणं भगवन्तं महावीरम् उच्चावचाभिःआक्रोशनाभिः आक्रोशति, उच्चावचाभिः उद्घर्षणाभिः उद्घर्षति, उच्चावचाभिः निर्भर्त्सनाभिः निर्भर्त्सयन्ते, उच्चावचाभिः निश्छोटनाभिः निश्छोटयन्ति, निश्छोट्य एवमवादीत्—नष्टोऽसि कदाचित्, विनष्टोऽसि कदाचित्, भ्रष्टोऽसि कदाचित् नष्ट-विनष्ट-भ्रष्टोऽसि कदाचित्, अद्य न भवसि, नहि ते मत् सुखम् अस्ति।

एक प्रहार में राख का ढेर कर दूसरी बार भी श्रमण भगवान् महावीर के प्रति उच्चावच आक्रोश-युक्त वचनों से आक्रोश प्रकट किया, उच्चावच उद्घर्षणा-युक्त वचनों से उद्घर्षण किया, उच्चावच निर्भर्त्सना-युक्त वचनों से निर्भर्त्सना की, उच्चावच तिरस्कार-युक्त वचनों से तिरस्कार किया, तिरस्कार कर इस प्रकार कहा—तुम कभी आचार से नष्ट हो गए, तुम कभी विनष्ट हो गए, तुम कभी भ्रष्ट हो गए, तुम कभी नष्ट, विनष्ट और भ्रष्ट हो गए। आज तुम जीवित नहीं रहोगे। मेरे द्वारा तुम्हें सुख प्राप्त नहीं हो सकता।

गोसालेण सुनक्खत्तस्स परितावण-पदं

१०७. तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतेवासी कोसलजाणवए सुनक्खत्ते नामं अणगारे पगइभद्दए जाव विणीए धम्मायरियाणु-रागेणं एयमट्ठं असद्दहमाणे उट्ठाए उट्ठेइ, उट्ठेत्ता जेणेव गोसाले मंखलिपुत्ते तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता गोसालं मंखलिपुत्तं एवं वयासी—जे वि ताव गोसाला! तहारूवस्स समणस्स वा माहणस्स वा अंतियं एगमवि आरियं धम्मियं सुवयणं निसामेति, से वि ताव वंदति नमंसति सक्कारेति सम्माणेति कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं पज्जुवासति, किमंग पुण तुमं गोसाला! भगवया चेव पव्वाविए, भगवया चेव मुंडाविए, भगवया चेव सेहाविए, भगवया चेव सिक्खाविए, भगवया चेव बहुस्सुतीकए, भगवओ चेव मिच्छं विप्पडिवन्ने? तं मा एवं गोसाला! नारिहसि गोसाला! सच्चेव ते सा छाया, नो अण्णा॥

गोशालेन सुनक्षत्रस्य परितापन-पदम्

तस्मिन् काले तस्मिन् समये श्रमणस्य भगवतः महावीरस्य अन्तेवासी कौशल-जानपदः सुनक्षत्रः नाम अनगारः प्रकृति-भद्रकः यावत् विनीतः धर्माचार्यानुरागेन एतमर्थम् अश्रद्दधानः उत्थया उत्तिष्ठति, उत्थाय यत्रैव गोशालः मंखलिपुत्रः तत्रैव उपागच्छति, उपागम्य गोशालं मंखलिपुत्रम् एवमवादीत्—यः अपि तावत् गोशाल! तथारूपस्य श्रमणस्य वा माहनस्य वा अन्तिकम् एकम् अपि आर्यं धार्मिकं सुवचनं निशाम्यति, सः अपि तावत् वन्दते नमस्यति सत्करोति संमन्यते कल्याणं मङ्गलं दैवतं चैत्यं पर्युपास्ते, किमङ्ग पुनः त्वं गोशाल! भगवता चैव प्रव्राजितः, भगवता चैव मुण्डितः, भगवता चैव शिक्षितः, भगवता चैव शिक्षयितः, भगवता चैव बहुश्रुतीकृतः, भगवतः चैव मिथ्या विप्रतिपन्नः? तत् मा एवं गोशाल! सत्या एव तव सा छाया, नो अन्या।

गोशाल द्वारा सुनक्षत्र को परिताप-पद

१०७. उस काल उस समय श्रमण भगवान महावीर का अंतेवासी कौशल जनपद का निवासी सुनक्षत्र नामक अनगार था। प्रकृति से भद्र यावत् विनीत था। धर्माचार्य के अनुराग से अनुरक्त था। इस अर्थ के प्रति अश्रद्धा करते हुए उठने की मुद्रा में उठा, उठकर जहां मंखलिपुत्र गोशाल था, वहां आया, वहां आकर मंखलिपुत्र गोशाल को इस प्रकार कहा—गोशाल! जो तथारूप श्रमण अथवा ब्राह्मण के पास एक भी आर्य धार्मिक सुवचन का श्रवण करता है, वह उन्हें वंदन करता है, नमस्कार करता है, सत्कार-सम्मान करता है, कल्याणकारी, मंगल, देव, और प्रशस्तचित्त वाले श्रमण की पर्युपासना करता है। गोशाल! भगवान् ने तुम्हें प्रव्रजित किया, भगवान ने तुम्हें मुंडित किया, भगवान ने तुम्हें शैक्ष बनाया, भगवान् ने तुम्हें शिक्षित किया, भगवान ने तुम्हें बहुश्रुत बनाया, तुम भगवान के प्रति ही मिथ्यात्व-विप्रतिपन्न हो गए? इसलिए गोशाल! तुम ऐसा मत करो, यह तुम्हारे लिए उचित नहीं है। गोशाल! तुम वही हो, वही तुम्हारी छाया है, तुम अन्य नहीं हो।

१०८. तए णं से गोसाले मंखलिपुत्ते सुनक्खत्तेणं अणगारेणं एवं वुत्ते समाणे आसुरुत्ते रुट्ठे कुविए चंडिक्किए मिसि-मिसेमाणे सुनक्खत्तं अणगारं तवेणं तेएणं परितावेइ॥

ततः सः गोशालः मंखलिपुत्रः सुनक्षत्रेण अनगारेण एवम् उक्ते सति आशुरक्तः रुष्टः कुपितः 'चंडिक्किए' 'मिसिमिसेमाणे' सुनक्षत्रम् अनगारं तपसा तेजसा परितापयति।

१०८. सुनक्षत्र अनगार के इस प्रकार कहने पर मंखलिपुत्र गोशाल तत्काल आवेश में आ गया। वह रुष्ट हो गया, कुपित हो गया। उसका रूप रौद्र हो गया। क्रोध की अग्नि में प्रदीप्त होकर उसने अपने तपः-तेज से सुनक्षत्र अनगार को परितापित किया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१०६. तए णं से सुनक्खत्ते अणगारे गोसालेणं मंखलिपुत्तेणं तवेणं तेएणं परितावि‌ए समाणे जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता सयमेव पंच महव्वयाइं आरुभेति, आरुभेत्ता समणा य समणीओ य खामेइ, खामेत्ता आलोइय-पडिक्कंते समाहिपत्ते आणुपुव्वीए कालगए॥

ततः सः सुनक्षत्रः अनगारः गोशालेन मंखलिपुत्रेण तपसा तेजसा परितापिते सति यत्रैव श्रमणः भगवान् महावीरः तत्रैव उपागच्छति, उपागम्य श्रमणं भगवन्तं महावीरं त्रिः वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्यित्वा स्वयमेव पञ्च महाव्रतानि आरोहति, आरुह्य श्रमणान् च श्रमणीः च क्षमयति, क्षमयित्वा आलोचित-प्रतिक्रान्तः समाधिप्राप्तः आनुपूर्व्या कालगतः।

१०६. मंखलिपुत्र गोशाल के तपःतेज से परितापित होने पर सुनक्षत्र अनगार, जहां श्रमण भगवान् महावीर थे, वहां आया, आकर श्रमण भगवान् महावीर को तीन बार वन्दन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार कर स्वयं ही पंच-महाव्रतों का आरोपण किया, आरोपण कर श्रमण-श्रमणियों से क्षमा-याचना की, क्षमा-याचना कर, आलोचना-प्रतिक्रमण कर, समाधि को प्राप्त कर क्रमशः मृत्यु को प्राप्त हो गया।

गोसालेण भगवओ वहाए तेयनिसिरण-पदं

गोशालस्य भगवतः वधाय तेजः-निसर्जन-पदम्

गोशाल का भगवान के वध के लिए तेज-निसर्जन-पद

११०. तए णं से गोसाले मंखलिपुत्ते सुनक्खत्तं अणगारं तवेणं तेएणं परितावेत्ता तच्चं पि समणं भगवं महावीरं उच्चावयाहिं आओसणाहिं आओसइ, उच्चावयाहिं उद्धंसणाहिं उद्धंसेति, उच्चावयाहिं निब्भंछणाहिं निब्भंछेति, उच्चावयाहिं निच्छोडणाहिं निच्छोडेति, निच्छोडेत्ता एवं वयासी—नट्ठे सि कदाइ, विणट्ठे सि कदाइ, भट्ठे सि कदाइ, नट्ठ-विणट्ठ-भट्ठे सि कदाइ, अज्ज न भवसि, नाहि ते ममाहिंतो सुहमत्थि॥

ततः सः गोशालः मंखलिपुत्रः सुनक्षत्रम् अनगारं तपसा तेजसा परिताप्य त्रिः अपि श्रमणं भगवन्तं महावीरं उच्चावचाभिः आक्रोशनाभिः आक्रोशति, उच्चावचाभिः उद्घर्षणाभिः उद्घर्षति, उच्चावचाभिः निर्भर्त्सनाभिः निर्भर्त्सयन्ते, उच्चावचाभिः निश्छोटनाभिः निश्छोटयन्ति, निश्छोट्य एवमवादीत्—नष्टोऽसि कदाचित्, विनष्टोऽसि कदाचित्, भ्रष्टोऽसि कदाचित्, नष्ट-विनष्ट-भ्रष्टोऽसि कदाचित्, अद्य न भवसि, नहि तव मत् सुखम् अस्ति।

११०. अपने तपः-तेज से सुनक्षत्र अनगार को परितापित कर मंखलिपुत्र गोशाल ने तीसरी बार भी श्रमण भगवान् महावीर के प्रति उच्चावच आक्रोश-युक्त वचनों से आक्रोश प्रकट किया, उच्चावच उद्घर्षण-युक्त वचनों से उद्घर्षणा की, उच्चावच निर्भर्त्सना-युक्त वचनों से निर्भर्त्सना की, उच्चावच तिरस्कार-युक्त वचनों से तिरस्कृत किया, तिरस्कार कर इस प्रकार कहा—तुम कभी आचार से विनष्ट हो गए, कभी नष्ट हो गए, कभी भ्रष्ट हो गए। कभी विनष्ट, नष्ट और भ्रष्ट हो गए, तुम आज जीवित नहीं रहोगे। मेरे द्वारा तुम्हें सुख प्राप्त नहीं हो सकता।

१११. तए णं समणे भगवं महावीरे गोसालं मंखलिपुत्तं एवं वयासी—जे वि ताव गोसाला! तहारूवस्स समणस्स वा माहणस्स वा अंतियं एगमवि आरियं धम्मियं सुवयणं निसामेति, से वि ताव वंदति नमंसति सक्कारेति सम्माणेति कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं पज्जुवासति, किमंग पुण गोसाला! तुमं मए चेव पव्वाविए, मए चेव मुंडाविए, मए चेव सेहाविए, मए चेव सिक्खाविए, मए चेव बहुस्सुतीकए, ममं चेव मिच्छं विप्पडिवन्ने? तं मा एवं गोसाला! नारिहसि गोसाला! सच्चेव ते सा छाया, नो अण्णा॥

ततः श्रमणः भगवान् महावीरः गोशालं मंखलिपुत्रम् एवमवादीत्—यः अपि तावत् गोशाल! तथारूपस्य श्रमणस्य वा माहनस्य वा अन्तिकम् एकम् अपि आर्यं धार्मिकं सुवचनं निशाम्यति, सः अपि तावत् वन्दते नमस्यति सत्करोति संमन्यते कल्याणं मङ्गलं दैवतं चैत्यं पर्युपास्ते, किमङ्ग पुनः गोशाल! त्वं मया चैव प्रव्राजितः, मया चैव मुण्डितः, मया चैव शिक्षितः, मया चैव शिक्षयितः, मया चैव बहुश्रुतीकृतः, मम चैव मिथ्या विप्रतिपन्नः? तत् मा एवं गोशाल! नार्हसि गोशाल! सत्या एव तव सा छाया, नो अन्या।

१११. श्रमण भगवान् महावीर ने मंखलिपुत्र गोशाल से इस प्रकार कहा—गोशाल! जो तथारूप श्रमण अथवा ब्राह्मण के पास एक भी आर्य धार्मिक सुवचन का श्रवण करता है, वह वंदन-नमस्कार करता है, सत्कार-सम्मान करता है। कल्याणकारी, मंगल, देव और प्रशस्त चित्त वाले श्रमण की पर्युपासना करता है। गोशाल! मैंने तुम्हें प्रव्रजित किया, मैंने तुम्हें मुंडित किया, मैंने तुम्हें शैक्ष बनाया, मैंने तुम्हें शिक्षित किया, मैंने तुम्हें बहुश्रुत किया, तुम मेरे प्रति ही मिथ्यात्व-विप्रतिपन्न हो गए? इसलिए गोशाल! तुम ऐसा मत करो, यह तुम्हारे लिए उचित नहीं है। गोशाल! तुम वही हो, वही तुम्हारी छाया है, तुम अन्य नहीं हो।

११२. तए णं से गोसाले मंखलिपुत्ते

ततः सः गोशालः मंखलिपुत्रः श्रमणेन

११२. श्रमण भगवान् महावीर के इस प्रकार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समणेणं भगवया महावीरेणं एवं वुत्ते समाणे आसुरुत्ते रुट्ठे कुविए चंडिक्किए मिसिमिसेमाणे तेयासमुग्घाएणं समोहण्णइ, समोहणित्ता सत्तट्ठ पयाइं पच्चोसक्कइ; पच्चोसक्कित्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स वहाए सरीरगंसि तेयं निसिरति–से जहानामए वाउक्कलिया इ वा वायमंडलिया इ वा सेलंसि वा कुड्डंसि वा थंभंसि वा थूभंसि वा आवारिज्जमाणी वा निवारिज्जमाणी वा सा णं तत्थ नो कमति नो पक्कमति।

एवामेव गोसालस्स वि मंखलिपुत्तस्स तवे तेए समणस्स भगवओ महावीरस्स वहाए सरीरगंसि निसिट्ठे समाणे से णं तत्थ नो कमति नो पक्कमति अंचियंचिं करेति, करेत्ता आयाहिण-पयाहिणं करेति, करेत्ता उड्ढं वेहासं उप्पइए, से णं तओ पडिहए पडिनियत्तमाणे तमेव गोसालस्स मंखलिपुत्तस्स सरीरगं अणुडहमाणे-अणुडहमाणे अंतो-अंतो अणुप्पविट्ठे॥

भगवता महावीरेण एवम् उक्ते सति आशुरक्तः रुष्टः कुपितः 'चंडिक्किए' 'मिसिमिसेमाणे' तेजःसमुद्घातेन समवहन्यते, समवहत्य सप्ताष्ट पदानि प्रत्यवष्वष्कते, प्रत्यवष्वष्क्य श्रमणस्य भगवतः महावीरस्य वधाय शरीरके तेजः निसृजन्ति–अथ यथानामिका वातोत्कलिका इति वा, वातमण्डलिका इति वा शैले वा कुडये वा स्तम्भे वा स्तूपे वा आवार्यमाणा वा निवार्यमाणा वा सा तत्र नो क्राम्यति वा नो प्रक्राम्यति वा।

एवमेव गोशालस्य अपि मंखलिपुत्रस्य तपः तेजः श्रमणस्य भगवतः महावीरस्य वधाय शरीरके निसृष्टं सत् तत्र नो क्राम्यति नो प्रक्राम्यति अञ्चि-ताञ्चि करोति, कृत्वा आदक्षिण-प्रदक्षिणां करोति, कृत्वा ऊर्ध्वं विहायसम् उत्पतितम्, तत् ततः प्रतिहतं प्रतिनिवर्तमानं तम् एव गोशालस्य मंखलिपुत्रस्य शरीरकम् अनुदहन्-अनुदहन् अन्तः-अन्तः अनुप्रविष्टम्।

कहने पर मंखलिपुत्र गोशाल तत्काल आवेश में आ गया, वह रुष्ट हो गया, कुपित हो गया। उसका रूप रौद्र हो गया। क्रोध की अग्नि से प्रदीप्त होकर वह तैजस समुद्घात से समवहत हुआ, समवहत होकर सात-आठ पैर पीछे सरका, पीछे सरक कर श्रमण भगवान् महावीर के वध के लिए अपने शरीर से तेज का निसर्जन किया। जिस प्रकार उत्कलिका वात, मंडलिका वात, पर्वत, भित्ति, स्तम्भ अथवा स्तूप से आवारित अथवा निवारित होती हुई उनका क्रमण नहीं करती और प्रक्रमण नहीं करती।

इसी प्रकार श्रमण भगवान् महावीर के वध के लिए मंखलिपुत्र गोशाल के शरीर से निकला हुआ तपःतेज उनका क्रमण नहीं करता, प्रक्रमण नहीं करता, गमनागमन करता है, दायीं ओर से प्रारम्भ कर प्रदक्षिणा करता है–प्रदक्षिणा कर वह शक्ति आकाश में ऊंची उछली, वहां से प्रतिहत होकर लौटती हुई उसी मंखलिपुत्र गोशाल के शरीर को जलाती हुई, जलाती हुई उसके भीतर अनुप्रविष्ट हो गई।

११३. तए णं से गोसाले मंखलिपुत्ते सएणं तेएणं अण्णाइट्ठे समाणे समणं भगवं महावीरं एवं वयासी–तुमं णं आउसो कासवा! ममं तवेणं तेएणं अण्णाइट्ठे समाणे अंतो छण्हं मासाणं पित्तज्जरपरिगयसरीरे दाहवक्कंतीए छउमत्थे चे कालं करेस्ससि॥

ततः सः गोशालः मंखलिपुत्रः स्वकेन तेजसा अन्वाविष्टः सन् श्रमणं भगवन्तं महावीरम् एवमवादीत्–त्वम् आयुष्मान् काश्यप! मम तपसा तेजसा अन्वाविष्टः सन् अन्तं षण्णां मासानां पित्तज्वरपरिगतशरीरः दाहावक्रान्तिकः छद्मस्थः चैव कालं करिष्यसि।

११३. मंखलिपुत्र गोशाल ने स्वयं के तेज से अनाविष्ट होने पर श्रमण भगवान् महावीर को इस प्रकार कहा–आयुष्मन् काश्यप! मेरे तपः-तेज से अनाविष्ट होकर तुम्हारा शरीर पित्तज्वर से व्याप्त हो जाएगा, उसमें जलन पैदा हो जाएगी, तुम छह मास के भीतर छद्मस्थ अवस्था में मृत्यु को प्राप्त करोगे।

११४. तए णं समणे भगवं महावीरे गोसालं मंखलिपुत्तं एवं वयासी–नो खलु अहं गोसाला! तव तवेणं तेएणं अण्णाइट्ठे समाणे अंतो छण्हं मासाणं पित्तज्जर-परिगयसरीरे दाहवक्कंतीए छउमत्थे चेव कालं करेस्सामि, अहण्णं अण्णाइं सोलस वासाइं जिणे सुहत्थी विहरिस्सामि। तुमं णं गोसाला! अप्पणा चेव सएणं तेएणं अण्णाइट्ठे समाणे अंतो सत्तरत्तस्स पित्तज्जरपरिगयसरीरे दाहवक्कंतीए छउमत्थे चेव कालं करेस्ससि॥

ततः श्रमणः भगवान् महावीरः गोशालं मंखलिपुत्रम् एवमवादीत्–नो खलु अहं गोशाल! तव तपसा तेजसा अन्वाविष्टः सन् अन्तं षण्णां मासानां पित्तज्वरपरिगतशरीरः दाहावक्रान्तिकः छद्मस्थः चैव कालं करिष्यामि, अहम् अन्यानि षोडश वर्षाणि जिनः सुहस्ती विहरिष्यामि। त्वं गोशाल! आत्मना चैव स्वकेन तेजसा अन्वाविष्टः सन् अन्तः सप्तरात्रस्य पित्तज्वरपरिगतशरीरः दाहावक्रान्तिकः छद्मस्थः चैव कालं करिष्यसि।

११४. श्रमण भगवान् महावीर ने मंखलिपुत्र गोशाल से इस प्रकार कहा–गोशाल! तुम्हारे तपः-तेज से पराभूत होकर, मेरा शरीर पित्तज्वर से व्याप्त नहीं होगा, उसमें जलन पैदा नहीं होगी, मैं छह माह के भीतर मृत्यु को प्राप्त नहीं करूंगा। मैं अन्य सोलह वर्ष तक जिन-अवस्था में गंध-हस्ती की भांति विहरण करूंगा। गोशाल! स्वयं अपने तपः-तेज से पराभूत होकर तुम्हारा शरीर पित्तज्वर से व्याप्त हो जाएगा, उसमें जलन पैदा हो जाएगी, तुम सात दिन के भीतर छद्मस्थ अवस्था में ही मृत्यु को प्राप्त करोगे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सावत्थीए जणपवाद-पदं

११५. तए णं सावत्थीए नगरीए सिंघाडग-तिग-चउक्क-चच्चर-चउम्मुह-महापह-पहेसु बहुजणो अण्णमण्णस्स एवमाइक्खइ जाव एवं परूवेइ–एवं खलु देवाणुप्पिया! सावत्थीए नगरीए बहिया कोट्ठए चेइए दुवे जिणा संलवंति–एगे वदंति तुमं पुव्विं कालं करेस्ससि, एगे वदंति तुमं पुव्विं कालं करेस्ससि। तत्थ णं के पुण सम्मावादी? के मिच्छावादी? तत्थ णं जे से अहप्पहाणे जणे से वदति–समणे भगवं महावीरे सम्मावादी, गोसाले मंखलिपुत्ते मिच्छावादी॥

श्रावस्त्यां जनापवाद-पदम्

ततः श्रावस्त्यां नगर्यां शृंगाटक-त्रिक-चतुष्क-चत्वर-चतुर्मुख-महापथ-पथेषु बहुजनः अन्योन्यम् एवमाख्याति यावत् एवं प्ररूपयति–एवं खलु देवानुप्रिय! श्रावस्त्यां नगर्यां बहिः कोष्ठके चैत्ये द्वौ जिनौ संलपतः–एकः वदति त्वं पूर्वं कालं करिष्यसि, एकः वदति त्वं पूर्वं कालं करिष्यसि। तत्र कः पुनः सम्यग्वादी? कः मिथ्यावादी? तत्र यः यथाप्रधानः जनः स वदति–श्रमणः भगवान् महावीरः सम्यग्वादी, गोशालः मंखलिपुत्रः मिथ्यावादी।

श्रावस्ती में जनप्रवाद-पद

११५. श्रावस्ती नगरी के शृंगाटकों, तिराहों, चौराहों, चौहटों, चार द्वार वाले स्थानों, राजमार्गों, मार्गों पर बहुजन परस्पर इस प्रकार आख्यान यावत् प्ररूपण करते हैं–देवानुप्रियो! श्रावस्ती नगरी के बाहर कोष्ठक चैत्य में दो जिन संलाप करते हैं। एक कहता है–तुम पहले काल करोगे। एक कहता है–तुम पहले काल करोगे। उनमें कौन सम्यग्वादी है? कौन मिथ्यावादी है। उनमें जो यथाप्रधान जन (मुख्य व प्रतिष्ठित व्यक्ति) है, वह कहता है–श्रमण भगवान् महावीर सम्यग्वादी है, मंखलिपुत्र गोशाल मिथ्यावादी है।

गोसालेण समणाणं पसिणवागरण-पदं

११६. अज्जोति! समणे भगवं महावीरे समणे निग्गंथे आमंतेत्ता एवं वयासी–अज्जो! से जहानामए तणरासी इ वा कट्ठरासी इ वा पत्तरासी इ वा तयारासी इ वा तुसरासी इ वा भुसरासी इ वा गोमयरासी इ वा अवकररासी इ वा अगणिझामिए अगणिझूसिए अगणि-परिणामिए हयतेए गयतेए नट्ठतेए भट्ठतेए लुत्ततेए विणट्ठतेए जाए, एवामेव गोसाले मंखलिपुत्ते ममं वहाए सरीरगंसि तेयं निसिरित्ता हयतेए गयतेए नट्ठतेए भट्ठतेए लुत्ततेए विणट्ठतेए जाए, तं छंदेणं अज्जो! तुब्भे गोसालं मंखलिपुत्तं धम्मियाए पडिचोयणाए पडिचोएह, धम्मियाए पडिसारणाए पडिसारेह, धम्मिएणं पडोयारेणं पडोयारेह, अट्ठेहि य हेऊहि य पसिणेहि य वागरणेहि य कारणेहि य निप्पट्ठपसिणवागरणं करेह॥

गोशालेन श्रमणानां प्रश्नव्याकरण-पदम्

आर्य इति! श्रमणः भगवान् महावीरः श्रमणान् निर्ग्रन्थान् आमन्त्र्य एवमवादीत्–आर्य! अथ यथानामकः तृणराशिः इति वा काष्ठराशिः इति वा पत्रराशिः इति वा त्वग् राशिः इति वा तुषराशिः इति वा बुसराशिः इति वा गोमयराशिः इति वा अवकरराशिः इति वा अग्निध्मातः इति वा अग्निजुष्टः इति वा अग्निपरिणामितः इति वा हततेजाः गततेजाः नष्टतेजाः भ्रष्टतेजाः लुप्ततेजाः विनष्टतेजाः जातः, एवमेव गोशालः मंखलिपुत्रः मम वधाय शरीरके तेजः निसृत्य हततेजाः गततेजाः नष्टतेजाः भ्रष्टतेजाः लुप्ततेजाः विनष्टतेजाः जातः, तत् छन्देन आर्य! यूयं गोशालं मंखलिपुत्रं धार्मिक्या प्रतिचोदनया प्रतिचोदयत, धार्मिक्या प्रतिसारणया प्रतिसारयत, धार्मिकेन प्रत्युपचारेण प्रत्युपचारयत, अर्थैः च हेतुभिः च प्रश्नैः च व्याकरणैः च कारणैः च निःपृष्टप्रश्नव्याकरणं कुरुत।

गोशाल से श्रमणों का प्रश्नव्याकरण-पद

११६. 'आर्यो–श्रमण भगवान् महावीर ने श्रमण निर्ग्रंथों को आमन्त्रित कर इस प्रकार कहा–'आर्यो! जैसे तृण का ढेर, काठ का ढेर, पत्रों का ढेर, छाल का ढेर, तुष का ढेर, भूसे का ढेर, गोमय (गोबर) का ढेर, अकुरडी का ढेर, अग्नि से जल जाने पर, अग्नि से झुलस जाने पर, अग्नि से परिणमित होने पर उसका तेज हत हो जाता है, उसका तेज चला जाता है, उसका तेज लुप्त हो जाता है, उसका तेज विनष्ट हो जाता है, इसी प्रकार मेरे वध के लिए अपने शरीर से तेज का निसर्जन कर मंखलिपुत्र गोशाल हत-तेज, गत-तेज, लुप्त-तेज और विनष्ट-तेज वाला हो गया है, इसलिए आर्यो! तुम मंखलिपुत्र गोशाल को धार्मिक प्रतिस्मारणा से प्रतिस्मारित करो, धार्मिक प्रत्युपचार से प्रत्युचारित करो, अर्थों, हेतुओं, प्रश्नों, व्याकरणों और कारणों के द्वारा निरुत्तर-प्रश्न एवं व्याकरण-रहित करो।

११७. तए णं ते समणा निग्गंथा समणेणं भगवया महावीरेणं एवं वुत्ता समाणा समणं भगवं महावीरं वंदंति नमंसंति, वंदित्ता, नमंसित्ता जेणेव गोसाले मंखलिपुत्ते तेणेव उवागच्छंति, उवाग-

ततः ते श्रमणाः निर्ग्रन्थाः श्रमणेन भगवता महावीरेण एवम् उक्ताः सन्तः श्रमणं भगवन्तं महावीरं वन्दन्ते नमस्यन्ति, वन्दित्वा नमस्थित्वा यत्रैव गोशालः मंखलिपुत्रः तत्रैव उपागच्छन्ति,

११७. श्रमण भगवान् महावीर के इस प्रकार कहने पर श्रमण निर्ग्रन्थों ने श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार कर जहां मंखलिपुत्र गोशाल था वहां गए, जाकर मंखलिपुत्र गोशाल को धार्मिक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

च्छित्ता गोसालं मंखलिपुत्तं धम्मियाए पडिचोयणाए पडिचोएंति, धम्मियाए पडिसारणाए पडिसारेंति, धम्मिएणं पडोयारेणं पडोयारेंति, अट्ठेहि य हेऊहि य पसिणेहि य, वागरणेहि कारणेहि य निप्पट्ठपसिणवागरणं करेंति॥

उपागम्य गोशालं मंखलिपुत्रं धार्मिक्या प्रतिचोदनया प्रतिचोदयन्ति, धार्मिक्या प्रतिसारणया प्रतिसारयन्ति, धार्मिकेन प्रत्युपचारेण प्रत्युपचारयन्ति अर्थैः च हेतुभिः च प्रश्नैश्च व्याकरणैः च कारणैः च निःपृष्टप्रश्नव्याकरणं कुर्वन्ति।

प्रतिप्रेरणा से प्रतिप्रेरित किया, धार्मिक प्रतिस्मारणा से प्रतिस्मारित किया, धार्मिक प्रत्युपचार से प्रत्युपचारित किया। विभिन्न अर्थों, हेतुओं, प्रश्नों, व्याकरणों और कारणों के द्वारा निरुत्तर-प्रश्न एवं व्याकरण-रहित किया।

११८. तए णं से गोसाले मंखलिपुत्ते समणेहिं निग्गंथेहिं धम्मियाए पडिचोयणाए पडिचोइज्जमाणे धम्मियाए पडिसारणाए पडिसारिज्जमाणे, धम्मिएणं पडोयारेण य पडोयारेज्जमाणे, अट्ठेहि य हेऊहि य पसिणेहि य वागरणेहि य कारणेहि य निप्पट्ठपसिणवागरणे कीरमाणे आसुरुत्ते रुट्ठे कुविए चंडिक्किए मिसिमिसेमाणे नो संचाएति समणाणं निग्गंथाणं सरीरगस्स किंचि आबाहं वा वाबाहं वा उप्पाएत्तए, छविच्छेदं वा करेत्तए॥

ततः सः गोशालः मंखलिपुत्रः श्रमणैः निर्ग्रन्थैः धार्मिक्या प्रतिचोदनया प्रतिचोद्यमानः, धार्मिक्या प्रतिसारणया प्रतिसार्यमाणः, धार्मिकेन प्रत्युपचारेण प्रत्युपचार्यमाणः, अर्थैः च हेतुभिः च प्रश्नैः च व्याकरणैः च कारणैः च निःपृष्टप्रश्नव्याकरणः क्रियमाणः आशुरक्तः रुष्टः कुपितः 'चंडिक्किए' 'मिसिमिसेमाणे' नो शक्नोति श्रमणानां निर्ग्रन्थानां शरीरकस्य किञ्चित् आबाधां वा व्याबाधां वा उत्पादयितुं, छविच्छेदं वा कर्तुम्।

११८. श्रमण-निर्ग्रन्थों द्वारा धार्मिक प्रतिप्रेरणा से प्रतिप्रेरित होने पर, धार्मिक प्रतिस्मारणा से प्रतिस्मारित होने पर, धार्मिक प्रत्युपचार से प्रत्युपचारित होने पर, विभिन्न अर्थों, हेतुओं, प्रश्नों, व्याकरणों और कारणों के द्वारा निरुत्तर-प्रश्न एवं व्याकरण-रहित किए जाने पर मंखलिपुत्र गोशाल तत्काल आवेश में आ गया, वह रुष्ट हो गया, कुपित हो गया, उसका रूप रोद्र हो गया। क्रोध की अग्नि से प्रदीप्त होकर वह श्रमण निर्ग्रन्थों के शरीर को किञ्चित आबाधा, अथवा व्याबाधा पहुंचाने में, अथवा छविच्छेद करने में समर्थ नहीं हुआ।

गोसालस्स संघभेद-पदं

११९. तए णं ते आजीविया थेरा गोसालं मंखलिपुत्तं समणेहिं निग्गंथेहिं धम्मियाए पडिचोयणा पडिचेएज्जमाणं, धम्मियाए पडिसारणाए पडिसारिज्जमाणं, धम्मिएणं पडोयारेण य पडोयारेज्जमाणं, अट्ठेहि य हेऊहि य पसिणेहि य वागरणेहि य कारणेहि य निप्पट्ठपसिणवागरणं कीरमाणं, आसुरुत्तं रुट्ठं कुवियं चंडिक्कियं मिसिमिसेमाणं समणाणं निग्गंथाणं सरीगस्स किंचि आबाहं वा वाबाहं वा छविच्छेदं वा अकरेमाणं पासंति, पासित्ता गोसालस्स मंखलिपुत्तस्स अंतियाओ आयाए अवक्कमंति, अवक्कमित्ता जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेंति, करेत्ता वंदंति नमंसंति, वंदित्ता नमंसित्ता समणं भगवं महावीरं उवसंपज्जित्ताणं विहरंति। अत्थेगतिया आजीविया थेरा गोसालं चेव मंखलिपुत्तं उवसंपज्जित्ताणं विहरंति॥

गोशालस्य संघभेद-पदम्

ततः ते आजीविकाः स्थविराः गोशालं मंखलिपुत्रं श्रमणैः निर्ग्रन्थैः धार्मिक्या प्रतिचोदनया प्रतिचोद्यमानं, धार्मिक्या प्रतिसारणया प्रतिसार्यमाणं, धार्मिकेन प्रत्युपचारेण प्रत्युपचार्यमाणं, अर्थैः च हेतुभिः च प्रश्नैः च व्याकरणैः च कारणैः च निःपृष्टव्याकरणं क्रियमाणम्, आशुरक्तं रुष्टं कुपितं 'चंडिक्कियं' 'मिसिमिसेमाणं' श्रमणानां निर्ग्रन्थानां शरीरकस्य किञ्चित् आबाधां वा व्याबाधां वा छविच्छेदं वा अकुर्वन्तं पश्यन्ति, दृष्ट्वा गोशालस्य मंखलिपुत्रस्य अन्तिकात् 'आयए' (आदाय) अपक्रामन्ति, अपक्रम्य यत्रैव श्रमणः भगवान् महावीरः तत्रैव उपागच्छन्ति, उपागम्य श्रमणं भगवन्तं महावीरं त्रिः आदक्षिण-प्रदक्षिणां कुर्वन्ति, कृत्वा वन्दन्ते नमस्यन्ति, वन्दित्वा नमस्थित्वा श्रमणं भगवन्तं महावीरम् उपसम्पद्य विहरन्ति। अस्त्येके आजीविकाः स्थविराः गोशालं चैव मंखलिपुत्रम् उपसम्पद्य विहरन्ति।

गोशाल का संघभेद-पद

११९. श्रमण निर्ग्रन्थों द्वारा धार्मिक प्रतिप्रेरणा से प्रतिप्रेरित किए जाने पर, धार्मिक प्रतिस्मारणा से प्रतिस्मारित किए जाने पर, धार्मिक प्रत्युपचार से प्रत्युपचारित किए जाने पर विभिन्न अर्थों, हेतुओं, प्रश्नों, व्याकरणों और कारणों के द्वारा निरुत्तर-प्रश्न एवं व्याकरण-रहित किए जाने पर मंखलिपुत्र गोशाल तत्काल आवेश में आ गया। रुष्ट हो गया, कुपित हो गया, उसका रूप रौद्र हो गया, क्रोध की अग्नि से प्रदीप्त होकर वह श्रमण निर्ग्रन्थों के शरीर को किञ्चित् आबाधा, व्याबाधा अथवा छविच्छेद न करते हुए, मंखलिपुत्र गोशाल को आजीवक स्थविरों ने देखा, देखकर उन्होंने मंखलिपुत्र गोशाल के पास से अपने आप अपक्रमण किया, अपक्रमण कर जहां श्रमण भगवान् महावीर थे वहां आए, आकर श्रमण भगवान् महावीर को दायीं ओर से प्रारम्भ कर तीन बार प्रदक्षिणा की, प्रदक्षिणा कर वंदन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार कर भगवान् महावीर को स्वीकार कर विहार करने लगे। कुछ आजीवक स्थविर मंखलिपुत्र गोशाल को ही स्वीकार कर विहार करने लगे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भाष्य

१. सूत्र १०५-११६

प्राचीन भारत में २५००-२६०० वर्षों पूर्व भी विभिन्न सम्प्रदायों एवं मतावलम्बियों के बीच वाद-विवाद, टकराव आदि की घटनाओं के प्रचुर उल्लेख प्राच्य साहित्य में उपलब्ध है। प्रस्तुत शतक में गोशालक ने भगवान् महावीर के समवसरण में स्वयं उपस्थित होकर अपने सिद्धांतों को प्रस्तुत कर भगवान् महावीर को असत्य घोषित करने की घटना को विस्तार से प्रस्तुत किया गया है। इसी चर्चा-प्रसंग में भगवान् महावीर के दो निर्ग्रन्थों–सर्वानुभूति अनगार एवं सुनक्षत्र अनगार द्वारा प्रतिकार किए जाने पर गोशालक क्रोध के आवेश में आकर तेजोलेश्या द्वारा उन्हें भस्मीभूत कर देता है और अंत में स्वयं भगवान् महावीर द्वारा सत्योद्घाटन किए जाने पर क्रुद्ध होकर उन पर भी गोशालक तेजोलेश्या का प्रयोग कर उन्हें मारने की कोशिश करता है। चर्चा में जो विवाद हुआ, उसकी प्रतिक्रिया स्वरूप पूरे श्रावस्ती नगर में चर्चा फैल जाती है और 'कौन सत्य?' कौन असत्य?' के विषय में जन-चर्चा चलती है। आखिर गोशालक स्वयं अपनी ही तेजोलेश्या से आहत हो जाता है। भगवान् महावीर पर भी तेजोलेश्या का दुष्प्रभाव छह मास तक तीव्र पीड़ा उत्पन्न करने वाला सिद्ध हुआ।

इस समग्र घटना-प्रसंग के दो पहलू हैं–

१. इतना घोर विरोध होने पर भी भगवान् महावीर द्वारा क्षमा का प्रयोग।

२. गोशालक द्वारा असत्यावलम्बन, तीव्र क्रोध और दो साधुओं पर तेजोलेश्या का घातक प्रयोग तथा भगवान् महावीर पर भी तेजोलेश्या का पीड़ाकारक प्रयोग आदि।

गोसालस्स पडिगमण-पदं

१२०. तए णं से गोसाले मंखलिपुत्ते जस्सट्ठाए हव्वमागए तमट्ठं असाहेमाणे, रुंदाइं पलोएमाणे, दीहुण्हाइं नीससमाणे, दाढियाए लोमाइं लुंचमाणे, अवडुं कंडूयमाणे, पुयलिं पप्फोडेमाणे, हत्थे विणिद्धुणमाणे, दोहि वि पाएहिं भूमिं कोट्टमाणे हा हा अहो! हओहमस्सि त्ति कट्टु समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियाओ कोट्ठयाओ चेइयाओ पडिनिक्खमति, पडिनिक्खमित्ता जेणेव सावत्थी नगरी, जेणेव हालाहलाए कुंभकारीए कुंभकारावणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता हालाहलाए कुंभकारीए कुंभकारावणंसि अंबकूणगहत्थगए, मज्जपाणगं पियमाणे, अभिक्खणं गायमाणे, अभिक्खणं नच्चमाणे, अभिक्खणं हालाहलाए कुंभकारीए अंजलिकम्मं करेमाणे, सीयलएणं मट्टियापाणएणं आयंचिणउदएणं गायाइं परिसिंचमाणे विहरइ॥

गोशालस्य प्रतिक्रमण-पदम्

ततः सः गोशालः मंखलिपुत्रः यस्यार्थेन 'हव्वं' आगतः तम् अर्थम् असाधयन् 'रुंदाइं' प्रलोकमानः, दीर्घोष्णानि निःश्वसन्, 'दाढियाए' लोमानि लुञ्चन्, अवटुं कण्डुयमानः, 'पुयलिं' प्रस्फोटयन् हस्तान् 'विणिद्धुणमाणे', द्वाभ्याम् अपि पादाभ्यां भूमिं कुट्टन् हा हा अहो हतः अहम् अस्मि इति कृत्वा श्रमणस्य भगवतः महावीरस्य अन्तिकात् कोष्ठकात् चैत्यात् प्रतिनिष्क्रामति, प्रतिनिष्क्रम्य यत्रैव श्रावस्ती नगरी यत्रैव हालाहलायाः कुंभकार्याः कुम्भकारापणे तत्रैव उपागच्छति, उपागम्य हालाहलायाः कुंभकार्याः कुम्भकारापणे आम्रकूणक-हस्तगतः मद्यपानकं पिबन् अभीक्ष्णं गायन्, अभीक्ष्णं नृत्यन् अभीक्ष्णं हालाहलायाः कुम्भकार्याः अञ्जलिकर्म कुर्वन्, शीतलकेन मृत्तिकापानकेन आतञ्चन-उदकेन गात्राणि परिषिञ्चत् विहरति।

गोशाल का प्रतिक्रमण-पद

१२०. [1]मंखलिपुत्र गोशाल जिस प्रयोजन के लिए शीघ्र आया, उस प्रयोजन को सिद्ध न कर पाने पर, दिशाओं की ओर दीर्घ दृष्टिपात करते हुए, दीर्घ और गर्म निःश्वास लेते हुए, दाढी के बालों को नोचते हुए, गर्दन के पृष्ठ भाग को खुजलाते हुए, कूल्हे के भाग का प्रस्फोट करते हुए, हाथों को मलता हुआ, दोनों पैरों को भूमि पर पटकते हुए 'हा हा, अहो' इस प्रकार बोलता हुआ श्रमण भगवान् महावीर के पास से, कोष्ठक चैत्य से प्रतिनिष्क्रमण किया, प्रतिनिष्क्रमण कर जहां श्रावस्ती नगरी थी, जहां हालाहला कुंभकारी का कुंभकारापण था, वहां आया, आकर हालाहला कुंभकारी के कुंभकारापण में आम्रफल को हाथ में लेकर मद्यपानक को पीते हुए, बार-बार गाते हुए, बार-बार नाचते हुए, बार बार हालाहला कुंभकारी को प्रणाम करते हुए मिट्टी के बर्तन में रहे हुए आतञ्चन-उदक से अपने गात्र का परिसिंचन करता हुआ विहरण कर रहा था।

भाष्य

सूत्र १२०

शब्द-विमर्श

अवडु (अवटू)–गर्दन का पृष्ठ भाग।[1]

पुयलि–वृत्तिकार ने इसे 'पुततलि' माना है।[2] इससे इसका अर्थ होता है–कूल्हा।

पप्फोडेमाणे–चमरेन्द्र के प्रसंग में 'अप्फोडेमाणे' का अर्थ 'करास्फोटन' किया गया है।[3] उसका तात्पर्य है–हाथों को आकाश में उछालना। यहां पर 'पुतप्रदेश का प्रस्फोट करने' का तात्पर्य है–कूल्हे के भाग को उछालना अथवा उस पर हाथ से प्रहार करना।[4] आचार्य भिक्षु ने इसका अर्थ किया है–साथल को कूटना।[5]

आयंचिण-उदअ (आतञ्चन-उदक)–दो या अधिक प्रकार के तरल पदार्थों के मिश्रण से बनाया गया तरल पदार्थ जो गाढा बन जाता है।[6]

१. भ. वृ. १५/१२०–'अवडुं' ति कृकाटिकां।
२. वही, १५/१२०–'पुयलिं पप्फोडेमाणे' त्ति 'पुततलीं' पुतप्रदेशं प्रस्फोटयन्।
३. भ. वृ. ३/११२–'अप्फोडेइ' त्ति करास्फोटं करोति।
४. आप्टे. प्रस्फोटनं–Striking, beating.
५. गोसाला री चौपई, ढाल २० से पूर्व दूहा ४ (भ. जो. खं. ४, पृ. ४१०)–''बले साथल बेहूं कूटतो थको''।
६. Monier-Monier Williams Sanskrit English Dictionary

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गोसालेणं नाणासिद्धंत-परूवण-पदं

१२१. अज्जोति! समणे भगवं महावीरे समणे निग्गंथे आमंतेत्ता एवं वयासी—जावतिए णं अज्जो! गोसालेणं मंखलिपुत्तेणं ममं वहाए सरीरगंसि तेये निसट्ठे से णं अलाहि पज्जत्ते सोलसण्हं जणवयाणं, तं जहा—१. अंगाणं २. वंगाणं ३. मगहाणं ४. मलयाणं ५. मालवगाणं ६. अच्छाणं ७. वच्छाणं ८. कोच्छाणं ९. पाढाणं १०. लाढाणं ११. वज्जीणं १२. मोलीणं १३. कासीणं १४. कोसलाणं १५. अवाहाणं १६. सुंभुत्तराणं घाताए वहाए उच्छादणयाए भासीकरणयाए।

गोशालेन नानासिद्धान्त-प्ररूपण-पदम्

आर्य इति! श्रमणः भगवान् महावीरः श्रमणान् निर्ग्रन्थान् आमन्त्र्य एवमवादीत्—यावत् आर्य! गोशालेन मंखलिपुत्रेण मम वधाय शरीरके तेजः निसृष्टं तत् अलं (अलाहि) पर्याप्तं षोडशानां जनपदानाम् तद्यथा—१. अङ्गानाम् २. वङ्गानाम् ३. मगधानाम् ४. मलयानाम् ५. मालवकानाम् ६. अच्छानाम् ७. वत्सानाम् ८. कोच्छानाम् ९. पाठानाम् १०. लाढानाम् ११. वज्रीनाम् १२. मोलीनाम् १३. काशीनाम् १४. कोशलानाम् १५. अवाहानाम् १६. शुम्भोत्तराणाम् घाताय वधाय उच्छादनायै भस्मीकरणाय।

गोशाल के द्वारा नानासिद्धान्त-प्ररूपण-पद

१२१. आर्यो! श्रमण भगवान् महावीर ने श्रमण निर्ग्रन्थों को आमन्त्रित कर इस प्रकार कहा—आर्यो! मंखलिपुत्र गोशाल ने मेरे वध के लिए जितने तेज का निसर्जन किया, वह सोलह जनपदों का घात, वध, उच्छेदन और भस्मीसात् करने के लिए पर्याप्त था, जैसे—१. अंग २. बंग ३. मगध ४. मलय ५. मालव ६. अच्छ ७. वत्स ८. कौत्स ९. पाठ ११. वज्र १२. मौली १३. काशी १४. कौशल १५. अवध १६. शुम्भोत्तर।

जं पि य अज्जो! गोसाले मंखलिपुत्ते हालाहलाए कुंभकारीए कुंभकारावणंसि अंबकूणगहत्थगए, मज्जपाणं पियमाणे अभिक्खणं गायमाणे, अभिक्खणं नच्चमाणे, अभिक्खणं हालाहलाए कुंभकारीए अंजलिकम्मं करेमाणे विहरइ, तस्स वि य णं वज्जस्स पच्छादणट्ठयाए इमाइं अट्ठ चरिमाइं पण्णवेइ, तं जहा—१. चरिमे पाणे २. चरिमे गेये ३. चरिमे नट्टे ४. चरिमे अंजलिकम्मे ५. चरिमे पोक्खलसंवट्टए महामेहे ६. चरिमे सेयणए गंधहत्थी ७. चरिमे महासिलाकंटए संगामे ८. अहं च णं इमीसे ओसप्पिणिसमाए चउवीसाए तित्थगराणं चरिमे तित्थगरे सिज्झिस्सं जाव अंतं करेस्सं।

यद् अपि च। आर्य! गोशालः मंखलिपुत्रः हालाहलायाः कुम्भकार्याः कुम्भकारापणे आम्रकूणकहस्तगतः मद्यपानकं पिबन्, अभीक्ष्णं गायन्, अभीक्ष्णं नृत्यन्, अभीक्ष्णं हालाहलायाः कुम्भकार्याः अञ्जलिकर्म कुर्वन् विहरति, तस्यापि च वर्ज्यस्य प्रच्छादनार्थाय इमानि अष्ट चरमाणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—१.चरमं पानं २. चरमं गेयं ३. चरमं नृत्यं ४. चरमम् अञ्जलिकर्म ५. चरमः पुष्कल-संवर्तकः महामेघः ६. चरमः सेचनकः गन्धहस्ती ७. चरमः महाशिलाकंटकः संग्रामः ८. अहं च अस्याम् अवसर्पिणी-समायां चतुर्विंशतिः (चउवीसाए) तीर्थकराणाम् चरमः तीर्थकरः सेत्स्यामि यावद् अन्तं करिष्यामि।

आर्यो! मंखलिपुत्र गोशाल हालाहला कुंभकारी के कुंभकारापण में आम्रफल को हाथ में लेकर मद्यपान को पीता हुआ, बार बार गाता हुआ, बार-बार नृत्य करता हुआ, बार-बार हालाहला कुंभकारी को प्रणाम करता हुआ विहरण कर रहा है, वह अपने पाप कर्म के प्रच्छादन के लिए इन आठ चरमों की प्ररूपणा करता है, जैसे—१. चरम पान २. चरम गीत ३. चरम नृत्य ४. चरम अंजलि ५. चरम पुष्कल- संवर्तक महामेघ ६. चरम सेचनक गंधहस्ती ७. चरम महाशिला कंटक संग्राम ८. मैं इस अवसर्पिणी काल के चौबीस तीर्थकरों चरम तीर्थकर के रूप में सिद्ध होऊंगा यावत् सब दुःखों का अन्त करूंगा।

जं पि य अज्जो! गोसाले मंखलिपुत्ते सीयलएणं मट्टियापाणएणं आयंचिणउदएणं गायाइं परिसिंचमाणे विहरइ, तस्स वि णं वज्जस्स पच्छादणट्ठयाए इमाइं चत्तारि पाणगाइं चत्तारि अपाणगाइं पण्णवेति॥

यत् अपि च आर्य! गोशालः मंखलिपुत्रः शीतलकेन मृत्तिकापानके आतञ्चन-उदकेन गात्राणि परिषिञ्चत् विहरति, तस्यापि च वर्ज्यस्य प्रच्छदनार्थाय इमानि चत्वारि पानकानि इमानि चत्वारि अपानकानि प्रज्ञापयति।

आर्यो! मंखलिपुत्र गोशाल मिट्टी के बर्तन में रहे हुए शीतल आतञ्चन-जल से गात्र का परिसिञ्चन करता हुआ विहरण कर रहा है, वह अपने पाप कर्म के प्रच्छादन के लिए इन चार पानकों और चार अपानकों की प्रज्ञापना करता है।

भाष्य

सूत्र १२१

प्रस्तुत सूत्र में ऐतिहासिक, वैज्ञानिक एवं सैद्धांतिक मान्यताओं की दृष्टि से कुछ महत्त्वपूर्ण तथ्य प्रस्तुत हुए हैं।

आठ चरम

गोशालक द्वारा अपने अंतिम समय को निकट जानकर आठ 'चरमों' का प्रतिपादन किया गया। इसमें जो आठ बातें हैं, वे कुछ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विचित्र-सी लगती हैं। वृत्तिकार के अनुसार–गोशालक अपनी ही तेजोलेश्या द्वारा दग्ध हो जाने पर उसके दाह का उपशम करने के लिए मद्यपान, गीत, नृत्य और (हालाहला के साथ) अंजलिकर्म आदि का सेवन कर रहा था। उसने अपने इन दोषों को छिपाने के लिए 'आठ चरमों' का काल्पनिक सिद्धांत गढ़ लिया तथा ऐसा निरूपण किया कि निर्वाण से पूर्व इस प्रकार के 'चरमों' का होना अवश्यंभावी होता है। आठ में से चार चरमों का संबंध व्यक्तिशः गोशालक की उस समय की प्रवृत्ति के साथ जुड़ता है तथा शेष चारों का संबंध ऐतिहासिक घटनाओं के साथ है।[1] इन घटनाओं में महाशिलाकंटक संग्राम[2] तथा सेचनक गंधहस्ती[3] के ऐतिहासिक प्रसंग महावीर और गोशालक के युग की बहुत ही महत्त्वपूर्ण घटनाओं से जुड़े हुए हैं।

सोलह जनपद

सोलह जनपदों के नामों का भारतीय प्राचीन इतिहास एवं महावीर (या बुद्ध) कालीन भूगोल के अध्ययन की दृष्टि से बहुत बड़ा महत्त्व है।

तेजोलेश्या की ऊर्जा द्वारा इन सोलह जनपदों को भस्म कर देने की क्षमता आधुनिक अणु-अस्त्रों एवं नाभिकीय शस्त्रों के साथ तुलनीय है।

१२२. से किं तं पाणए?

पाणए चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा–१. गोपुट्ठए २. हत्थमद्दियए ३. आतवतत्तए ४. सिलापब्भट्ठए। सेत्तं पाणए॥

अथ किं तत् पानकम्?

पानकं चतुर्विधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा–१. गो-पृष्ठकम् २. हस्तमर्दितकम् ३. आतपतप्तकम् ४. शिलाप्रभ्रष्टकम्।

१२२. वह पानक क्या है?

पानक चार प्रकार का प्रज्ञप्त है, जैसे–१. गाय की पीठ से गिरा हुआ २. हाथ के मर्दन से उत्पन्न ३. सूर्य के आतप से तप्त ४. शिला से प्रभ्रष्ट। यह है पानक।

१२३. से किं तं अपाणए?

अपाणए चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा–१. थालपाणए २. तयापाणए ३. सिंबलिपाणए ४. सुद्धपाणए॥

अथ किं तत् अपानकम्?

अपानकं चतुर्विधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा–१. स्थालपानकम् २. त्वच्पानकम् ३. शिम्बलिपानकम् ४. शुद्धपानकम्।

१२३. वह अपानक क्या है?

अपानक चार प्रकार का प्रज्ञप्त है, जैसे–१. स्थाल पानक २. त्वचा पानक ३. सिंबलि (मटर आदि की फली) का पानक ४. शुद्ध पानक।

१२४. से किं तं थालपाणए?

थालपाणए–जे णं दाथालगं वा दावारगं वा दाकुंभगं वा दाकलसं वा सीतलगं उल्लगं हत्थेहिं परामुसइ, न य पाणियं पियइ। सेत्तं थालपाणए॥

अथ किं तत् स्थालपानकम्?

स्थालपानकम्–यः दकस्थालकं वा दकवादकं वा दककुंभकं वा दककलशं वा शीतलकं आर्द्रकं हस्ताभ्यां परामृशति, न च पानीयं पिबति। तद् तद् स्थालपानकम्।

१२४. वह स्थाल-पानक क्या है?

स्थाल-पानक–पानी से आर्द्र स्थाल, वारक (सिकोरा), घड़ा, कलश अथवा शीतलक, जिसका हाथ से स्पर्श किया जा सके, किन्तु जिसे पीया न जा सके। यह है स्थाल-पानक।

१२५. से किं तं तयापाणए?

तयापाणए–जे णं अंबं वा अंबाडगं वा जहा पओगपदे जाव बोरं वा तेंबरुयं वा तरुणगं आमगं आसगंसि आवीलेति पवीलेति वा, न य पाणियं पियइ। सेत्तं तयापाणए॥

अथ किं तत् त्वच्पानकम्?

त्वच्पानकम्–यः आम्रं वा आम्रातकं वा यथा प्रयोगपदे यावत् बदरं वा 'तेंबरुयं' वा तरुणकम् आमकं आस्यके आपीडयति वा प्रपीडयति वा, न च पानीयं पिबति। तदेतद् त्वच्पानकम्।

१२५. वह त्वचा-पानक क्या है?

त्वचा-पानक–आम्र, अम्बाडक आदि प्रज्ञापना प्रयोग-पद (१६/५५) की भांति यावत् बेर अथवा तिन्दुरुक, जो तरुण और अपक्व है, उसे मुख में रखकर स्वल्प चूसे, अथवा विशेष रूप से चूसे किन्तु उसका पानी न पी सके। यह है त्वचा-पानक।

१२६. से किं तं सिंबलिपाणए?

सिंबलिपाणए–जे णं कलसंगलियं वा

अथ किं तत् शिम्बलिपानकम्?

शिम्बलिपानकम्–यः कल 'संगतियं'

१२६. वह सिंबलि-पानक क्या है?

सिंबलि-पानक–ग्वार की फली, मूंग की फली

१. भ. वृ. १५/१२१–'चरमे' ति न पुनरिदं भविष्यतीतिकृत्वा चरमं, तत्र पानकादीनि चत्वारि स्वगतानि, चरमता चैषां स्वस्य निर्वाणगमनेन पुनरकरणात्, एतानि च किल निर्वाण-काले जिनस्यावश्यम्भावीनीति नास्त्येतेषु दोष इत्यस्य तथा नाहमेतानि दाहोपशममायोपसेवामीत्यस्य चार्थस्य प्रकाशनार्थत्वादवद्यप्रच्छादनार्थानि भवन्ति, पुष्कलसंवर्त्तकादीनि तु त्रीणि बाह्यानि प्रकृतानुपयोगेऽपि चरमसामान्याज्जनचित्तरञ्जनाय चरमाण्युक्तानि।

२. भ. वृ. ७/१७३-२१० तथा जैन आगम निरयावलिया, १/६४-१४१ में मगध साम्राज्य और वज्जी गणतंत्र के बीच हुए युद्धों का पूरा विवरण विस्तार से उपलब्ध है। भारतीय इतिहास के लिए विद्वज्जनों के लिए यह विलक्षण उल्लेख शोध-कार्य की दृष्टि से अनुसंधेय है।

३. कूणिक अजातशत्रु के भाई हल्ल और विहल्ल के पास यह विलक्षण हाथी एवं देव प्रदत्त हार थे, जिन्हें हड़पने के उद्देश्य से यह भयंकर युद्ध किया गया था। विस्तृत वर्णन के लिए देखें–उत्तराध्ययन, लक्ष्मीवल्लभकृत वृत्ति, पत्र ११।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुग्गसंगलियं वा माससंगलियं वा सिंबलिसंगलियं वा तरुणियं आमियं आसगंसि आवीलेति वा पवीलेति वा, न य पाणियं पियति। सेत्तं सिंबलिपाणए॥

वा मुद्गसंगलियं' वा माष 'संगलियं' वा शिम्बलि 'संगलियं' वा तरुणिकां वा आमिकां आस्यके आपीडयति वा प्रपीडयति वा, न च पानीयं पिबति। तदेतद् शिम्बलिपानकम्।

उड़द की फली, अथवा सिंबली की फली, जो तरुण और अपक्व है, को मुंह में स्वल्प चबाता है अथवा विशेष चबाता है। यह है सिंबलि-पानक।

१२७. से किं तं सुद्धपाणए?

सुद्धपाणए–जे णं छम्मासे सुद्धखाइमं खाइ, दो मासे पुढविसंथारोवगए, दो मासे कट्ठसंथारोवगए, दो मासे दब्भसंथारोवगए, तस्स णं बहुपडिपुण्णाणं छण्हं मासाणं अंतिमराईए इमे दो देवा महिड्ढिया जाव महेसक्खा अंतियं पाउब्भवंति, तं जहा–पुण्णभद्दे य माणिभद्दे य। तए णं ते देवा सीयलएहिं उल्लएहिं हत्थेहिं गायाइं परामुसंति, जे णं ते देवे साइज्जति, से णं आसीरविसत्ताए कम्मं पकरेति, जे णं ते देवे नो साइज्जति, तस्स णं संसि सरीरगंसि अगणिकाए संभवति, से णं सएणं तेएणं सरीरगं झामेति, झामेत्ता तओ पच्छा सिज्झति जाव अंतं करेति। सेत्तं सुद्धपाणए॥

अथ किं तत् शुद्धपानकम्?

शुद्धपानकम्–यः षड्मासान् शुद्धखाद्यं खादति, द्वौ मासौ पृथ्वीसंस्तारकोपगतः, द्वौ मासौ काष्ठसंस्तारकोपगतः, द्वौ मासौ दर्भसंस्तारकोपगतः तस्य बहुप्रतिपूर्णानां षण्णां मासानां अन्तिमरात्रौ इमौ द्वौ देवौ महर्द्धिकौ यावत् महेशाख्यौ अन्तिकम् प्रादुर्भवतः, तद्यथा–पूर्णभद्रः च माणिभद्रः च। ततः तौ देवौ शीतलकैः आर्द्रकैः हस्तैः गात्राणि परामृशतः यः तौ देवौ 'साइज्जति', सः आशीविषत्वेन कर्म प्रकरोति, यः तौ देवौ नो–'साइज्जति', तस्य स्वस्मिन् शरीरके अग्निकायः संभवति, सः स्वकेन तेजसा शरीरकं ध्यायति, ध्यात्वा ततः पश्चात् सिध्यति यावत् अन्तं करोति। तदेतद् शुद्धपानकम्।

१२७. वह शुद्ध-पानक क्या है?

शुद्ध-पानक–जो छह मास तक शुद्ध खादिम आहार करता है, दो मास पृथ्वी-संस्तारक पर, दो मास काष्ठ-संस्तारक पर, दो मास दर्भ-संस्तारक पर सोता है, बहुप्रतिपूर्ण छह मास की अंतिम रात्रि में उसके ये दो देव प्रकट होते हैं, जैसे–पूर्णभद्र और माणिभद्र। वे देव शीतल और जलार्द्र हाथों से उसका स्पर्श करते हैं, जो उन देवों का अनुमोदन करता है, वह आशीविष के रूप में कर्म करता है, जो उन देवों का अनुमोदन नहीं करता है, उसके स्वयं के शरीर में अग्निकाय उत्पन्न हो जाता है। अग्निकाय अपने तेज से शरीर को जलाता है, जलाने के पश्चात् सिद्ध यावत् सब दुःखों का अंत करता है। यह है शुद्ध-पानक।

अयंपुल-आजीविओवासय-पदं

१२८. तत्थ णं सावत्थीए नयरीए अयंपुले नामं आजीविओवासए परिवसइ–अड्ढे जहा हालाहला जाव आजीवियसमएणं अप्पाणं भावेमाणे विहरइ। तए णं तस्स अयंपुलस्स आजीविओवासगस्स अण्णया कदायि पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि कुडुंबजागरियं जागरमाणस्स अयमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था–किं संठिया णं हल्ला पण्णत्ता?

अयम्पुल-आजीविकोपासक-पदम्

तत्र श्रावस्त्यां नगर्याम् अयम्पुलः नाम आजीविकोपासकः परिवसति–आढ्यः, यथा हालाहला यावत् आजीविकसमयेन आत्मानं भावयन् विहरति। ततः तस्य अयम्पुलस्य आजीविकोपासकस्य अन्यदा कदाचित् पूर्वरात्रापरात्रकालसमये कुटुम्बजागरिकायां जाग्रतः अयमेतद्रूपः आध्यात्मिकः चिन्तितः प्रार्थितः मनोगतः संकल्पः समुदपादि–किं संस्थिता 'हल्ला' प्रज्ञप्ता?

अयम्पुल–आजीविकोपासक-पद

१२८. श्रावस्ती नगरी में अयंपुल आजीवक-उपासक रहता था–आढ्य, हालाहला कुंभकारी की भांति वक्तव्यता यावत् आजीवक-सिद्धान्त के द्वारा अपने आपको भावित करते हुए विहार कर रहा था। उस अयंपुल आजीवक उपासक के किसी एक दिन पूर्वरात्र-अपररात्र काल समय में कुटुंब-जागरिका करते हुए इस प्रकार का आध्यात्मिक स्मृत्यात्मक, अभिलाषात्मक और मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ–हल्ला नामक कीट किस संस्थान वाला प्रज्ञप्त है?

१२९. तए णं तस्स अयंपुलस्स आजीविओवासगस्स दोच्चं पि अयमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था–एवं खलु ममं धम्मायरिए धम्मोवदेसए गोसाले मंखलिपुत्ते उप्पन्ननाणदंसणधरे जिणे

ततः तस्य अयम्पुलस्य आजीविकोपासकस्य द्विः अपि अयमेतद्रूपः आध्यात्मिकः चिन्तितः प्रार्थितः मनोगतः संकल्पः समुदपादि–एवं खलु मम धर्माचार्यः धर्मोपदेशकः गोशालः मंखलिपुत्रः उत्पन्नज्ञानदर्शनधरः जिनः

१२९. उस आजीवक-उपासक अयंपुल के दूसरी बार भी इस प्रकार का आध्यात्मिक, स्मृत्यात्मक, अभिलाषात्मक और मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ–मेरे धर्माचार्य धर्मोपदेशक मंखलिपुत्र गोशाल उत्पन्न-ज्ञान-दर्शन के धारक, अर्हत् जिन, केवली, सर्वज्ञ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अरहा केवली सव्वण्णू सव्वदरिसी इहेव सावत्थीए नगरीए हालाहलाए कुंभकारीए कुंभकारावणंसि आजीवियसंघसंपरिवुडे आजीवियसमएणं अप्पाणं भावेमाणे विहरइ, तं सेयं खलु मे कल्लं पाउप्पभाए रयणीए जाव उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते गोसालं मंखलिपुत्तं वंदित्ता जाव पज्जुवासित्ता इमं एयारूवं वागरणं वागरित्तए त्ति कट्टु एवं संपेहेति, संपेहेत्ता कल्लं पाउप्पभाए रयणीए जाव उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते ण्हाए कयबलिकम्मे जाव अप्पमहग्घाभरणालंकियसरीरे साओ गिहाओ पडिनिक्खमति, पडिनिक्खमित्ता पायविहारचारेणं सावत्थिं नगरिं मज्झंमज्झेणं जेणेव हालाहलाए कुंभकारीए कुंभकारावणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता गोसालं मंखलिपुत्तं हालाहलाए कुंभकारीए कुंभकारावणंसि अंबकूवगहत्थगयं मज्जपाणगं पीयमाणं अभिक्खणं गायमाणं, अभिक्खणं नच्चमाणं, अभिक्खणं हालाहलाए कुंभकारीए अंजलिकम्मं करेमाणं सीयलएणं मट्टिया पाणएणं आयंचिण-उदयएणं गायाइं परिसिंचमाणे पासइ, पासित्ता लज्जिए विलिए विड्डे सणियं-सणियं पच्चोसक्कइ॥

अर्हत् केवली सर्वज्ञः सर्वदर्शी इहैव श्रावस्त्यां नगर्यां हालाहलायाः कुम्भकार्याः कुम्भकारापणे आजीविकसंघपरिवृतः आजीविकसमयेन आत्मानं भावयन् विहरति, तत् श्रेयः खलु मे कल्यं प्रादुष्प्रभातायां रजन्यां यावत् उत्थिते सूरे सहस्ररश्मौ दिनकरे तेजसा ज्वलति गोशालं मंखलिपुत्रं वन्दित्वा यावत् पर्युपास्य इमम् एतद्रूपं व्याकरणं व्याकर्तुम् इति कृत्वा एवं सम्प्रेक्षते, सम्प्रेक्ष्य कल्यं प्रादुष्प्रभातायां रजन्यां यावद् उत्थिते सूरे सहस्ररश्मौ दिनकरे तेजसा ज्वलति स्नातः कृतबलिकर्मा यावद् अल्पमहार्घ्याभरणालंकृतशरीरः स्वकात् गृहात् प्रतिनिष्क्रामति, प्रतिनिष्क्रम्य पादविहारचारेण श्रावस्तीं नगरीं मध्यमध्येन यत्रैव हालाहलायाः कुम्भकार्याः कुम्भकारापणः तत्रैव उपागच्छति, उपागम्य गोशालं मंखलिपुत्रं हालाहलायाः कुम्भकार्याः कुम्भकारापणे आम्रकूणकहस्तगतं मद्यपानकं पिबन्तम्, अभीक्ष्णं गायन्तम्, अभीक्ष्णं नृत्यन्तम्, अभीक्ष्णं हालाहलायाः कुम्भकार्याः अञ्जलिकर्म कुर्वन्तं, शीतलकेन मृत्तिकापानकेन 'आयंचिण'-उदकेन गात्राणि परिसिञ्चन्तं पश्यति दृष्ट्वा लज्जितः 'वीलिए' व्रीडितः शनैः-शनैः प्रत्यवष्वष्कते।

और सर्वदर्शी है। वे इस श्रावस्ती नगरी में हालाहला कुंभकारी के कुंभकारापण में आजीवक-संघ से संपरिवृत होकर आजीवक-सिद्धांत के द्वारा अपने आपको भावित करते हुए विहार कर रहे हैं। इसलिए कल उषाकाल में पौ फटने पर यावत् सहस्ररश्मि दिनकर सूर्य के उदित और तेज से देदीप्यमान होने पर मंखलिपुत्र गोशाल को वंदना कर यावत् पर्युपासना कर यह इस प्रकार का व्याकरण पूछना मेरे लिए श्रेयस्कर होगा ऐसी संप्रेक्षा की। संप्रेक्षा कर दूसरे दिन उषाकाल में पौ फटने पर यावत् सहस्ररश्मि दिनकर सूर्य के उदित और तेज से देदीप्यमान होने पर स्नान किया, बलिकर्म किया यावत् अल्पभार और बहुमूल्य वाले आभूषणों से शरीर को अलंकृत कर अपने घर से प्रतिनिष्क्रमण किया। प्रतिनिष्क्रमण कर पैदल चलते हुए श्रावस्ती नगरी के बीचोंबीच जहां हालाहला कुंभकारी का कुंभकारापण था, वहां आया, वहां आकर हालाहला कुंभकारी के कुंभकारापण में मंखलिपुत्र गोशाल को हाथ में आम्रफल लेकर मद्यपानक पीते हुए, बार-बार गाते हुए, बार-बार नाचते हुए, बार-बार हालाहला कुंभकारी से अंजलि-कर्म करते हुए मिट्टी के बर्तन में रहे हुए शीतल आतञ्जल जल से अपने गात्र का परिसिंचन करते हुए देखा, देखकर लज्जित हुआ, उसकी लज्जा प्रगाढ़ होती चली गई। वह धीरे-धीरे पीछे सरक गया।

१३०. तए णं ते आजीविया थेरा अयंपुलं आजीवियोवासगं लज्जियं जाव पच्चोसक्कमाणं पासइ, पासित्ता एवं वयासी—एहि जाव अयंपुला! इतो॥

ततः ते आजीविकाः स्थविराः अयम्पुलम् आजीविकोपासकं लज्जितं यावत् प्रत्यवष्वष्कमाणं पश्यति, दृष्ट्वा एवमवादीत्—एहि तावत् अयम्पुल! इतः।

१३०. आजीवक-स्थविरों ने आजीवक उपासक अयंपुल को लज्जित यावत् पीछे सरकते हुए देखा, देखकर इस प्रकार कहा—अयंपुल! यहां आओ।

१३१. तए णं से अयंपुले आजीवियोवासए आजीवियथेरेहिं एवं वुत्ते समाणे जेणेव आजीविया थेरा तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता आजीविए थेरे वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता नच्चासन्ने जाव पज्जुवासइ॥

ततः सः अयम्पुलः आजीविकोपासकः आजीविकस्थविरैः एवम् उक्तः सन् यत्रैव आजीविकाः स्थविराः तत्रैव उपागच्छति, उपागम्य आजीविकान् स्थविरान् वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्यित्वा न अत्यासन्नः यावत् पर्युपास्ते।

१३१. आजीवक-उपासक अयंपुल आजीवक-स्थविरों के इस प्रकार कहने पर जहां आजीवक-स्थविर थे, वहां आया, आकर आजीवक-स्थविरों को वंदन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार कर न अति दूर और न अति निकट—यावत् पर्युपासना करने लगा।

१३२. अयंपुलाति! आजीविया थेरा

अयम्पुल! अयि! आजीविकाः स्थविराः

१३२. अयि अयंपुल! आजीवक-स्थविरों ने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अयंपुलं आजीवियोवासगं एवं वयासी–से नूणं ते अयंपुला! पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि कुडुंबजागरियं जागरमाणस्स अयमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था–किंसंठिया णं हल्ला पण्णत्ता?

अयम्पुलम् आजीविकोपासकम् एवमवादिषुः–अथ नूनं ते अयम्पुल! पूर्वरात्रापररात्रकालसमये कुटुंबजागरिकायां जाग्रतः अयमेतद्रूपः आध्यात्मिकः चिन्तितः प्रार्थितः मनोगतः संकल्पः समुदपादि–किं संस्थिता 'हल्ला' प्रज्ञप्ता?

आजीवक–उपासक अयंपुल से इस प्रकार कहा–अयंपुल! पूर्वरात्र-अपररात्र काल समय में कुटुंब-जागरिका करते हुए इस प्रकार का आध्यात्मिक, स्मृत्यात्मक, अभिलाषात्मक मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ–हल्ला नामक कीट किस संस्थान वाला प्रज्ञप्त है?

तए णं तव अयंपुला! दोच्चं पि अयमेयारूवे तं चेव सव्वं भाणियव्वं जाव सावत्थिं नगरिं मज्झंमज्झेणं जेणेव हालाहलाए कुंभकारीए कुभकारावणे, जेणेव इहं तेणेव हव्वमागए। से नूणं ते अयंपुला! अट्ठे समट्ठे?

ततः तव अयम्पुल! द्विः अपि अयमेतद्रूपः तत् चैव सर्वं भणितव्यं यावत् श्रावस्तीं नगरीं मध्यमध्येन यत्रैव हालाहलायाः कुम्भकार्याः कुम्भकारापणः यत्रैव इह तत्रैव 'हव्वं' आगतः। सः नूनं ते अयम्पुल! अर्थः समर्थः?

अयंपुल! तुम्हें दूसरी बार भी इस प्रकार का पूर्ववत् सर्व वक्तव्यता यावत् श्रावस्ती नगरी के बीचोंबीच जहां हालाहला कुंभकारी का कुंभकारापण है, जहां हम हैं, वहां शीघ्र जाऊं। अयंपुल! का यह अर्थ संगत है?

हंता अत्थि।

हन्त अस्ति।

हां, है।

जं पि य अयंपुला! तव धम्मायरिए धम्मोवदेसए गोसाले मंखलिपुत्ते हालाहलाए कुंभकारीए कुभकारावणंसि अंबकूणगहत्थगए जाव अंजलिं करेमाणे विहरइ, तत्थ वि णं भगवं इमाइं अट्ठ चरिमाइं पण्णवेति, तं जहा–चरिमे पाणे जाव अंतं करेस्सति।

यदि च अयम्पुल! तव धर्माचार्यः धर्मोपदेशकः गोशालः मंखलिपुत्रः हालाहलायाः कुम्भकार्याः कुम्भकारापणे आम्रकूणकहस्तगतः यावत् अञ्जलिं कुर्वन् विहरति, तत्रापि भगवान् इमानि अष्ट चरमानि प्रज्ञापयति, तद् यथा–चरमं पानं यावत् अंतं करिष्यति।

अयंपुल! तुम्हारे धर्माचार्य धर्मोपदेशक मंखलिपुत्र गोशाल हालाहला कुंभकारी के कुंभकारापण में हाथ में आम्रफल लेकर यावत् अंजलि-कर्म करते हुए विहार कर रहे हैं। वहां भी भगवान् ने इन आठ चरमों का प्रज्ञापन किया है, जैसे–चरम पान यावत् सब दुःखों का अंत करेगा।

जं पि य अयंपुला! तव धम्मायरिए धम्मोवदेसए, गोसाले मंखलिपुत्ते सीयलएणं मट्टिया पाणएणं आयंचिणउदयणं गायाइं परिसिंचमाणे विहरइ, तत्थ वि णं भगवं इमाइं चत्तारि पाणगाइं, चत्तारि अपाणगाइं पण्णवेति।

यदपि च अयम्पुल! तव धर्माचार्यः धर्मोपदेशकः गोशालः मंखलिपुत्रः शीतलकेन मृत्तिकां पानकेन आतञ्चन-उदकेन गात्राणि परिसिञ्चन् विहरति, तत्रापि भगवान् इमानि चत्वारि पानकानि, चत्वारि अपानकानि प्रज्ञापयति।

अयंपुल! तुम्हारे धर्माचार्य धर्मोपदेशक मंखलिपुत्र गोशाल मिट्टी के बर्तन में रहे हुए, शीतल आतञ्चन-जल से अपने गात्र को आतञ्चन हुए विहार कर रहे हैं, वहां भगवान् ने इन चार पानकों और चार अपानकों की प्रज्ञापना की है।

से किं तं पाणए? पाणए जाव तओ पच्छा सिज्झति जाव अंतं करेति।

अथ किं तत् पानकम्? पानकं यावत् ततः पश्चात् सिद्ध्यति यावद् अन्तं करोति।

वह पानक क्या है? पानक यावत् उसके पश्चात् सिद्ध होता है, यावत् सब दुःखों का अंत करता है।

तं गच्छ णं तुमं अयंपुला! एस चेव तव धम्मायरिए धम्मोवदेसए गोसाले मंखलिपुत्ते इमं एयारूवं वागरणं वागरेहिति॥

तत् गच्छ त्वम् अयम्पुल! एषः चैव तव धर्माचार्यः धर्मोपदेशकः गोशालः मंखलिपुत्रः इमम् एतद्रूपं व्याकरणं व्याकरयिष्यति।

अयंपुल! इसलिए तुम जाओ। ये तुम्हारे ही धर्माचार्य धर्मोपदेशक मंखलिपुत्र गोशाल यह इस प्रकार का व्याकरण करेंगे।

१३३. तए णं से अयंपुले आजीविओवासए आजीविएहिं थेरेहिं एवं वुत्ते समाणे हट्ठतुट्ठे उट्ठाए उट्ठेइ, उट्ठेत्ता जेणेव गोसाले मंखलिपुत्ते तेणेव पहारेत्थ गमणाए॥

ततः सः अयम्पुल! आजीविकोपासकः आजीविकैः स्थविरैः एवम् उक्तः सन् हृष्टतुष्टः उत्थया उत्तिष्ठति, उत्थाय यत्रैव गोशालः मंखलिपुत्रः तत्रैव प्रादीधरत् गमनाय।

१३३. आजीवक-उपासक अयंपुल आजीवक-स्थविरों के इस प्रकार कहने पर हृष्ट-तुष्ट होकर उठने की मुद्रा में उठा। उठकर जहां मंखलिपुत्र गोशाल था, वहां जाने के लिए तत्पर हुआ।

१३४. तए णं ते आजीविया थेरा गोसालस्स मंखलिपुत्तस्स अंबकूणगए-

ततः ते आजीविकाः स्थविराः गोशालस्य मंखलिपुत्रस्य आम्रकूणक-

१३४. आजीवक-स्थविरों ने मंखलिपुत्र गोशाल को एकांत में आम्रफल को फैंकने के लिए

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

डावणट्ठयाए एगंतमंते संगारं कुव्वंति॥

'एडावण'-अर्थाय एकान्तम् अन्ते संगरं कुर्वन्ति।

संकेत किया।

१३५. तए णं से गोसाले मंखलिपुत्ते आजीवियाणं थेराणं संगारे पडिच्छइ, पडिच्छित्ता अंबकूणगं एगंतमंते एडेइ॥

ततः सः गोशालः मंखलिपुत्रः आजीविकानां स्थविराणां संगरं प्रतीच्छति, प्रतीष्य आम्रकूणकम् एकान्तम् अन्ते एडयति।

१३५. मंखलिपुत्र गोशाल ने आजीवक-स्थविरों के संकेत को ग्रहण किया, ग्रहण कर आम्रफल को एकांत में फैंक दिया।

१३६. तए णं से अयंपुले आजीवियोवासए जेणेव गोसाले मंखलिपुत्ते तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता गोसालं मंखलिपुत्तं तिक्खुत्तो जाव पज्जुवासति॥

ततः सः अयम्पुलः आजीविकोपासकः यत्रैव गोशालः मंखलिपुत्रः तत्रैव उपागच्छति, उपागम्य गोशालं मंखलिपुत्रं त्रिः यावत् पर्युपास्ते।

१३६. आजीवक-उपासक अयंपुल जहां मंखलिपुत्र गोशाल था, वहां आया, आकर मंखलिपुत्र गोशाल को तीन बार यावत् पर्युपासना की।

१३७. अयंपुलादि! गोसाले मंखलिपुत्ते अयंपुलं आजीवियोवासगं एवं वयासी–से नूणं अयंपुला! पुव्वरत्तावरत्तकाल-समयंसि जाव जेणेव ममं अंतियं तेणेव हव्वमागए। से नूणं अयंपुला! अट्ठे समट्ठे?

हंता अत्थि।

तं नो खलु एस अंबकूणए, अंबचोयए णं एसे। किंसंठिया हल्ला पण्णत्ता?

वंसीमूलसंठिया हल्ला पण्णत्ता। वीणं वाएहि रे वीरगा! वीणं वाएहि रे वीरगा!

अयम्पुल ! अयि ! गोशालः मंखलिपुत्रः अयम्पुलम् आजीविकोपासकम् एवमवादीत्–अथ नूनम् अयम्पुल ! पूर्वरात्र-अपररात्र कालसमये यावत् यत्रैव मम अन्तिकं तत्रैव 'हव्वं' आगतः। सः नूनम् अयम्पुल ! अर्थः समर्थः ?

हन्त अस्ति

तत् नो खलु एषः आम्रकूणकः आम्र-'चोयए' एषः। किं संस्थिता 'हल्ला' प्रज्ञप्ता?

वंशीमूलसंस्थिता 'हल्ला' प्रज्ञप्ता। वीणां वादय रे वीरक ! वीणां वादय रे वीरक !

१३७. अयंपुल! मंखलिपुत्र गोशाल ने आजीवक-उपासक अयंपुल से इस प्रकार कहा–अयंपुल! पूर्वरात्र-अपररात्र काल समय में यावत् जहां मैं हूं वहां शीघ्र आए। अयंपुल! यह अर्थ संगत है?

हां, है।

इसलिए यह आम्रफल नहीं, यह आम्र का छिलका है। हल्ला किस संस्थान वाली प्रज्ञप्त है?

हल्ला बांस-मूल के संस्थान वाली प्रज्ञप्त है। रे वीरो! वीणा बजाओ। रे वीरो! वीणा बजाओ।

१३८. तए णं से अयंपुले आजीवियोवासए गोसालेणं मंखलिपुत्तेणं इमं एयारूवं वागरणं वागरिए समाणे हट्ठतुट्ठचित्त-माणंदिए णंदिए पीइमणे परम-सोमणस्सिए हरिसवसविसप्पमाण हियए गोसालं मंखलिपुत्तं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता पसिणाइं पुच्छइ, पुच्छित्ता अट्ठाइं परियादियइ, परिया-दिइत्ता उट्ठाए उट्ठेइ, उट्ठेत्ता गोसालं मंखलिपुत्तं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता जामेव दिसं पाउब्भूए तामेव दिसं पडिगए॥

ततः सः अयम्पुलः आजीविकोपासकः गोशालेन मंखलिपुत्रेण इमम् एतद्रूपं व्याकरणं व्याकृतः सन् हृष्टतुष्टचित्तः आनन्दितः नन्दितः प्रीतिमनाः परम-सौमनस्यितः हर्षवशविसर्पद्मानहृदयः गोशालं मंखलिपुत्रं वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्यित्वा प्रश्नान् पृच्छति, पृष्ट्वा अर्थान् पर्यादत्ते, पर्यादाय उत्थया उत्तिष्ठति, उत्थाय गोशालं मंखलिपुत्रं वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्यित्वा यस्याः एव दिशः प्रादुर्भूतः तस्यामेव दिशि प्रतिगतः।

१३८. मंखलिपुत्र गोशाल के यह इस प्रकार की व्याकरण करने पर आजीवक उपासक अयंपुल हृष्ट-तुष्ट चित्तवाला, आनंदित, नंदित, प्रीतिपूर्ण मन वाला, परम सौमनस्य-युक्त और हर्ष से विकस्वर हृदय वाला हो गया। मंखलिपुत्र गोशाल को वंदन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार कर प्रश्नों को पूछा। पूछ कर अर्थों को ग्रहण किया, ग्रहण कर उठने की मुद्रा में उठा। उठकर मंखलिपुत्र गोशाल को वंदन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार कर जिस दिशा से आया उसी दिशा में लौट गया।

गोसालस्स अप्पणो नीहरण-निद्देस-पदं

गोशालस्य आत्मनः निर्हरण-निर्देश-पदम्

गोशाल द्वारा अपनी मरणोत्तर क्रिया का निर्देश-पद

१३९. तए णं से गोसाले मंखलिपुत्ते अप्पणो मरणं आभोएइ, आभोएत्ता

ततः सः गोशालः मंखलिपुत्रः आत्मनः मरणम् आभोगयति, आभोग्य

१३९. मंखलिपुत्र गोशाल ने अपने मरण को जानकर आजीवक स्थविरों को बुलाया,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आजीविए थेरे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—तुब्भे णं देवाणुप्पिया! ममं कालगयं जाणित्ता सुरभिणा गंधोदएणं ण्हाणेह, ण्हाणेत्ता पम्हलसुकुमालाए गंधकासाईए गायाइं लूहेह, लूहेत्ता सरसेणं गोसीसचंदणेणं गायाइं अणुलिंपह, अणुलिंपित्ता महरिहं हंसलक्खणं पडसाडगं नियंसेह, नियंसेत्ता सव्वालंकारविभूसियं करेह, करेत्ता पुरिससहस्सवाहिणीं सीयं दुरुहेह, दुरुहेत्ता सावत्थीए नयरीए सिंघाडग-तिग-चउक्क-चच्चर - चउम्मुह - महापह--पहेसु महया-महया सद्देणं उग्घोसेमाणा-उग्घोसेमाणा एवं वदह—एवं खलु देवाणुप्पिया! गोसालं मंखलिपुत्ते जिणे जिणप्पलावी, अरहा अरहप्पलावी, केवली केवलिप्पलावी, सव्वण्णू सव्वण्णुप्पलावी, जिणे जिणसद्दं पगासेमाणे विहरित्ता इमीसे ओसप्पिणीए चउवीसाए तित्थगराणं चरिमे तित्थगरे, सिद्धे जाव सव्वदुक्खप्पहीणे—इड्ढिसक्कारसमुदएणं मम सरीरगस्स नीहरणं करेह॥

आजीविकान् स्थविरान् शब्दयति, शब्दयित्वा एवमवादीत्—यूयं देवानुप्रियाः ! मां कालगतं ज्ञात्वा सुरभिणा गन्धोदकेन स्नपयतः, स्नात्वा पक्ष्मलसुकुमालया गन्धकाषायिणा गात्राणि रूक्षयत, रूक्षयित्वा सरसेन गोशीर्षचन्दनेन गात्राणि अनुलिम्पतः, अनुलिप्य महार्हं हंसलक्षणं पटशटकं 'नियंसेह', 'नियंसेत्ता' सर्वालङ्कारविभूषितं कुरुतः, कृत्वा पुरुषसहस्रवाहिनीं शिबिकाम् (दुरुहेह) (दुरुहेत्ता) श्रावस्त्यां नगर्यां शृंगाटक-त्रिक-चतुष्क-चत्वर-चतुर्मुख-महापथ-पथेषु महता-महता शब्देन उद्घोषयन्तः-उद्घोषयन्तः एवं वदत—एवं खलु देवानुप्रियाः ! गोशालः मंखलिपुत्रः जिनः जिनप्रलापी, अर्हत् अर्हत्प्रलापी, केवली केवलिप्रलापी, सर्वज्ञः सर्वज्ञप्रलापी, जिनः जिनशब्दं प्रकाशयन् विहृत्य अस्याम् अवसर्पिण्यां चतुर्विंशतिः तीर्थकराणां चरमः तीर्थकरः, सिद्धः यावत् सर्वदुःखप्रहीणः—ऋद्धिसत्कारसमुदयेन मम शरीरस्य निर्हरणं कुरुतः।

बुलाकर इस प्रकार कहा—देवानुप्रियो! तुम मुझे मृत्यु को प्राप्त जानकर सुरभित गंधोदक से स्नान करवाना, स्नान करा कर रोएंदार सुकुमार गंध-वस्त्र से शरीर को पौंछना, पौंछकर सरस गोशीर्ष चंदन का गात्र पर अनुलेप करना। अनुलेप कर बहुमूल्य अथवा महापुरुष योग्य हंसलक्षण वाला पट-शाटक पहनाना। पहनाकर सर्व अलंकारों से विभूषित करना, विभूषित कर हजार पुरुषों द्वारा वहन की जाने वाली शिविका में चढ़ाना, चढ़ाकर श्रावस्ती नगरी के शृंगाटकों, तिराहों, चौराहों, चौहटों, चार द्वार वाले स्थानों, राजमार्गों और मार्गों पर महान्-महान् शब्दों के द्वारा उद्घोष करते हुए, उद्घोष करते हुए इस प्रकार कहना—देवानुप्रियो! मंखलिपुत्र गोशाल जिन होकर जिन-प्रलापी, अर्हत् होकर अर्हत-प्रलापी, केवली होकर केवली-प्रलापी, सर्वज्ञ होकर सर्वज्ञ-प्रलापी, जिन होकर 'जिन' शब्द से अपने आपको प्रकाशित करता हुआ, विहरण कर इस अवसर्पिणी काल में चौबीस तीर्थंकरों में अंतिम तीर्थंकर था, उसने सिद्ध यावत् सब दुःखों को क्षीण कर दिया। इस प्रकार ऋद्धि-सत्कार-समुदय के द्वारा मेरे शरीर की मरणोत्तर क्रिया करना।

१४०. तए णं ते आजीविया थेरा गोसालस्स मंखलिपुत्तस्स एयमट्ठं विणएणं पडिसुणेंति॥

ततः ते आजीविकाः स्थविराः गोशालस्य मंखलिपुत्रस्य एतमर्थं विनयेन प्रतिशृण्वन्ति।

१४०. आजीवक-स्थविरों ने मंखलिपुत्र गोशाल के इस अर्थ को विनयपूर्वक स्वीकार किया।

गोसालस्स परिणाम-परिवत्तणपुव्वं कालधम्म-पदं

१४१. तए णं गोसालस्स मंखलिपुत्तस्स सत्तरत्तंसि परिणममाणंसि पडिलद्धसम्मत्तस्स अयमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था—नो खलु अहं जिणे जिणप्पलावी, अरहा अरहप्पलावी, केवली केवलिप्पलावी, सव्वण्णू सव्वण्णुप्पलावी, जिणे जिणसद्दं पगासेमाणे विहरिते अहण्णं गोसाले चेव मंखलिपुत्ते समणघायए समणमारए समणपडिणीए आयरियउवज्झायाणं अयसकारए अवण्णकारए अकित्तिकारए बहूहिं

गोशालस्य परिणाम-परिवर्तनपूर्वं कालधर्म-पदम्

ततः तस्य गोशालस्य मंखलिपुत्रस्य सप्तरात्रे परिणमति (परिणममाणंसि) प्रतिलब्धसम्यक्त्वस्य अयमेतद्रूपः आध्यात्मिकः चिन्तितः प्रार्थितः मनोगतः संकल्पः समुदपादि—नो खलु अहं जिनः जिनप्रलापी, अर्हत् अर्हत्-प्रलापी, केवली केवलिप्रलापी, सर्वज्ञः सर्वज्ञप्रलापी, जिनः जिनशब्दं प्रकाशयन् विहरतः अहं गोशालः चैव मंखलिपुत्रः चैव श्रमणघातकः श्रमण-मारकः श्रमणप्रत्यनीकः आचार्य-उपाध्यायानाम् अयशकारकः अवर्ण-

गोशाल का परिणाम-परिवर्तनपूर्वक कालधर्म-पद

१४१. [1]मंखलिपुत्र गोशाल के सातवीं रात में परिणमन करते हुए, सम्यक्त्व के प्राप्त होने पर इस प्रकार का आध्यात्मिक, स्मृत्यात्मक, अभिलाषात्मक मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ—मैं जिन होकर जिन-प्रलापी नहीं हूं, अर्हत् होकर अर्हत्-प्रलापी नहीं हूं, केवली होकर केवली-प्रलापी नहीं हूं, सर्वज्ञ होकर सर्वज्ञ-प्रलापी नहीं हूं, मैंने जिन न होकर जिन शब्द से प्रकाशित करते हुए विहार किया। मैं ही मंखलिपुत्र गोशाल हूं। मैं श्रमण-घातक, श्रमण-मारक, श्रमण-प्रत्यनीक, आचार्य-उपाध्यायों का अयश करने वाला, अवर्ण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

असब्भावुब्भावणाहिं मिच्छत्ताभिनिवेसेहिं य अप्पाणं वा परं वा तदुभयं वा वुग्गाहेमाणे वुप्पाएमाणे विहरित्ता सएणं तेएणं अण्णाइट्ठे समाणे अंतो सत्तरत्तस्स पित्तज्जरपरिगयसरीरे दाहवक्कंतीए छउमत्थे चेव कालं करेस्सं। समणे भगवं महावीरे जिणे जिणप्पलावी, अरहा अरहप्पलावी, केवली केवलिप्पलावी, सव्वण्णू सव्वण्णुप्पलावी, जिणे जिणसद्दं पगासेमाणे विहरइ–एवं संपेहेति, संपेहेत्ता आजीविए थेरे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता उच्चावय-सवह-साविय‍ए पकरेति, पकरेत्ता एवं वयासी–नो खलु अहं जिणे जिणप्पलावी जाव पगासेमाणे विहरए। अहण्णं गोसाले चेव मंखलिपुत्ते समणघायए समणमारए समणपडिणीए आयरिय-उवज्झायाणं अयसकारए, अवण्णकारए अकित्तिकारए बहूहिं असब्भावुब्भावणाहिं मिच्छत्ताभिनिवेसेहिं य अप्पाणं वा परं वा तदुभयं वा वुग्गाहेमाणे वुप्पाएमाणे विहरित्ता सएणं तेएणं अण्णाइट्ठे समाणे अंतो सत्तरत्तस्स पित्तज्जरपरिगयसरीरे दाहवक्कंतीए छउमत्थे चेव कालं करेस्सं। समणे भगवं महावीरे जिणे जिणप्पलावी जाव जिणसद्दं पगासेमाणे विहरइ, तं तुब्भं णं देवाणुप्पिया! ममं कालगयं जाणित्ता वामे पाए सुंबेणं बंधेह, बंधेत्ता तिक्खुत्तो मुहे उट्ठुभेह, उट्ठुभेत्ता सावत्थीए नगरीए सिंघाडग-तिग-चउक्क-चच्चर-चउम्मुह-महापह-पहेसु आकड्ढ-विकड्ढिं करेमाणा महया-महया सद्देणं उग्घोसेमाणा-उग्घोसेमाणा एवं वदह–नो खलु देवाणुप्पिया! गोसाले मंखलिपुत्ते जिणे जिणप्पलावी जाव विहरिए। एस णं गोसाले चेव मंखलिपुत्ते समणघायए जाव छउमत्थे चेव कालगए। समणे भगवं महावीरे जिणे जिणप्पलावी जाव विहरइ। महया अणड्ढी-असक्कार-समुदएणं ममं सरीरगस्स नीहरणं करेज्जाह–एवं वदित्ता कालगए॥

कारकः अकीर्तिकारकः बहुभिः असद्भावोद्भावनाभिः मिथ्यात्वाभिनिवेशैः च आत्मानं च परं च तदुभयं वा व्युद्ग्राहयन् व्युत्पादयन् विहृत्य स्वकेन तेजसा अन्वाविष्टः सन् अन्तः सप्तरात्रस्य पित्तज्वरपरिगतः शरीरः दाहावक्रान्तिकः छद्मस्थः चैव कालं करिष्यामि। श्रमणः भगवान् महावीरः जिनः जिनप्रलापी, अर्हत् अर्हत्-प्रलापी, केवली केवलिप्रलापी, सर्वज्ञः सर्वज्ञ-प्रलापी, जिनः जिनशब्दं प्रकाशयन् विहरति–एवं सम्प्रेक्षते, सम्प्रेक्ष्य आजीविकान् स्थविरान् शब्दयति, शब्दयित्वा उच्चावच-शपथ-शापितकान् प्रकरोति, प्रकृत्य एवमवादीत्–नो खलु अहं जिनः जिनप्रलापी यावत् प्रकाशयन् विहृतः। अहं गोशालः चैव मंखलिपुत्रः श्रमण-घातकः श्रमणमारकः श्रमण-प्रत्यनीकः आचार्य-उपाध्यायानाम् अयशकारकः अवर्णकारकः अकीर्ति-कारकः बहुभिः असद्-भावोद्भावनाभिः मिथ्यात्वाभिनिवेशैः च आत्मानं वा परं वा तदुभयं वा व्युद्ग्राहयन् व्युत्पादयन् विहृत्य स्वकेन तेजसा अन्वाविष्टः सन् अन्तः सप्तरात्रस्य पित्तज्वरपरिगतशरीरः दाहावक्रान्तिकः छद्मस्थःचैव कालं करिष्यामि। श्रमणः भगवान् महावीरः जिनः जिनप्रलापी यावत् जिनशब्दं प्रकाशयन् विहरति, तत् यूयं देवानुप्रियाः! मां कालगतं ज्ञात्वा वा मे पादे शुम्बेन बध्नीत, बद्ध्वा त्रिः मुखे अवष्ठीवत, अवष्ठीव्य श्रावस्त्यां नगर्यां शृंगाटक-त्रिक-चतुष्क-चत्वर-चतुर्मुख-महापथ-पथेषु आकर्ष–विकृष्टिं कुर्वन्तः महता-महता शब्देन उद्घोषयन्तः उद्घोषयन्तः एवं वदथ– नो खलु देवानुप्रियाः! गोशालः मंखलि-पुत्रः जिनः जिनप्रलापी यावत् विहृतः। एषः गोशालः चैव मंखलिपुत्रः श्रमण-घातकः यावत् छद्मस्थः चैव कालगतः। श्रमणः भगवान् महावीरः जिनः जिन-प्रलापी यावत् विहृतः। महता अनृद्धि–असत्कार-समुदयेन मम शरीरकस्य निर्हरणं कुरुतः (करेज्जाह)–एवम् उदित्वा कालगतः।

करने वाला, अकीर्ति करने वाला हूं। मैंने बहुत असद्भाव की उद्भावना और मिथ्यात्व अभिनिवेश के द्वारा स्वयं को दूसरे को तथा दोनों को भ्रांत करते हुए, मिथ्या धारणा में व्युत्पन्न करते हुए विहरण किया। अपने तेज से अभिभूत होकर सात रात के भीतर मेरा शरीर पित्त-ज्वर से ग्रस्त होकर दाह से अपक्रांत होकर मैं छद्मस्थ अवस्था में ही मृत्यु को प्राप्त करूंगा। श्रमण भगवान् महावीर जिन होकर जिन-प्रलापी, अर्हत् होकर अर्हत्-प्रलापी, केवली होकर केवली-प्रलापी, सर्वज्ञ होकर सर्वज्ञ-प्रलापी, जिन होकर जिन शब्द से अपने आपको प्रकाशित करते हुए विहार कर रहे हैं–इस प्रकार संप्रेक्षा की, संप्रेक्षा कर आजीवक स्थविरों को बुलाया, बुलाकर शपथ दिलाकर इस प्रकार कहा–मैं जिन होकर जिन-प्रलापी नहीं हूं यावत् प्रकाशित करते हुए विहरण किया। मैं ही मंखलिपुत्र गोशाल हूं। मैं श्रमण-घातक, श्रमण-मारक, श्रमण-प्रत्यनीक, आचार्य-उपाध्यायों का अयश करने वाला, अवर्ण करने वाला, अकीर्ति करने वाला हूं। मैंने बहुत असद्भाव की उद्भावना और मिथ्यात्व अभिनिवेश के द्वारा स्वयं को, दूसरे को तथा दोनों को भ्रांत करते हुए, मिथ्या धारणा में व्युत्पन्न करते हुए विहरण किया। अपने तेज से पराभूत होने पर मेरा शरीर पित्तज्वर से व्याप्त हो गया, मैं सात रात के भीतर दाह से अपक्रांत होकर छद्मस्थ अवस्था में ही मृत्यु को प्राप्त करूंगा। इसलिए देवानुप्रियो! तुम मुझे मृत्यु को प्राप्त जानकर मेरे बाएं पैर को रज्जु से बांधना, बांधकर तीन बार मुंह पर थूकना, थूककर श्रावस्ती नगरी से शृंगाटकों, तिराहों, चौराहों, चौहटों, चार द्वार वाले स्थानों, राजमार्गों और मार्गों पर मुझे घसीटते हुए बाढ स्वर से उद्घोषणा करते हुए, उद्घोषणा करते हुए इस प्रकार कहना–देवानुप्रियो! मंखलिपुत्र गोशाल जिन होकर जिन-प्रलापी नहीं था। यावत् छद्मस्थ-अवस्था में मृत्यु को प्राप्त हुआ है। श्रमण भगवान् महावीर जिन होकर जिन-प्रलापी हैं यावत् विहरण कर रहे हैं। महान् अऋद्धि और असत्कार समुदय के द्वारा मेरे शरीर की मरणोत्तर क्रिया करना–इस प्रकार कहकर वह मृत्यु को प्राप्त हो गया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भाष्य

१. सूत्र १४१

प्रस्तुत शतक में उपलब्ध काल-विषयक सामग्री तथा भगवान् महावीर के महत्त्वपूर्ण जीवन-प्रसंगों के आधार पर हम एक परिपूर्ण काल-क्रम बना सकते हैं। पहले निम्नांकित तथ्यों पर ध्यान देना होगा–

१. महावीर ने ३० वर्ष की आयु में (मृगशीर्ष मास में) दीक्षा ग्रहण की।[1] दीक्षा के समय एक वस्त्र रखा था, उसे दीक्षा के तेरह मास पश्चात् त्याग दिया और सर्वथा अचेलक हो गए।[2]

२. उनके साधना-काल के दूसरे वर्षावास में प्रथम मास में (अर्थात् दीक्षा के बीस मास पश्चात्) राजगृह के बाहिरिका नालन्दा में तन्तुवायशाला में गोशालक से प्रथम मिलन तथा गोशालक द्वारा शिष्य बनाने की प्रार्थना का अस्वीकार।[3] उस समय तक गोशालक वस्त्रधारी था।

३. उसी वर्षावास के दूसरे, तीसरे मास के अन्त में भी गोशालक द्वारा पुनः शिष्य बनाने की प्रार्थना और महावीर द्वारा पुनः अस्वीकार।[4]

४. चतुर्थ मास के अन्त में (अर्थात् मृगशीर्ष कृष्णा प्रतिपदा) के दिन जब महावीर ने वहां से कोल्लाक सन्निवेश में अपना चतुर्थ मासखमण का पारण किया, तब गोशाल ने तंतुवायशाला में अपने वस्त्र, भांड आदि छोड़ दिए। तत्पश्चात् वह कोल्लाक सन्निवेश पहुंचा तथा उस समय पुनः प्रार्थना करने पर महावीर ने कोल्लाक सन्निवेश के बाहर पणियभूमि में उसे अपना शिष्य बना लिया।[5]

(यह महावीर की दीक्षा के चौबीस मास पश्चात् हुआ, जबकि महावीर स्वयं अपनी दीक्षा के तेरह मास पश्चात् ही अचेलक हो गए थे। इसका तात्पर्य कि महावीर पहले अचेलक हो गए थे, गोशाल बाद में हुआ।)

५. भगवान महावीर का जन्म ई. पू. ५९९
भगवान महावीर की दीक्षा ई. पू. ५६९
भगवान महावीर का कैवल्य ई. पू. ५५७
–ये सर्वमान्य तिथियां हैं।

उक्त तथ्यों के आधार पर महावीर ने ५६९ ई. पू. मृगशिर (नवम्बर) कृष्णा दशमी को दीक्षा ग्रहण की थी और उसके पश्चात् प्रथम वर्षावास (५६८ ई. पू. जुलाई–अक्टूबर) अस्थिक ग्राम में बिताया। दीक्षा के १३ मास बाद उन्होंने वस्त्र त्याग दिया तथा अचेलक हो गए। यह घटना भी ५६८ ई. पू. नवम्बर-दिसम्बर की है। इसके पश्चात् महावीर ने द्वितीय वर्षावास ५६७ ई. पू. (जुलाई-अक्टूबर) नालंदा बाहिरिका की तंतुवायशाला में किया। तंतुवायशाला में वर्षावास का प्रथम मासखमण प्रारंभ हुआ–उस समय वहां मंखत्व-वृत्ति वाले, हाथ में चित्र फलक तथा वस्त्रधारी, दंडधारी गोशाल (मंखलिपुत्र) का भी आगमन हुआ; उसने भी वहीं वर्षावास किया। उस समय महावीर अचेलक थे, गोशाल सचेलक था। प्रथम मासखमण के पारणा के बाद गोशाल ने महावीर के दिव्य-अतिशयों से प्रभावित होकर स्वयं को शिष्य के रूप में स्वीकार करने की विनती की, किन्तु महावीर ने उसे स्वीकार नहीं किया। तंतुवायशाला में दूसरा और तीसरा मासखमण हुआ; प्रत्येक बार पारणा के बाद गोशाल द्वारा प्रार्थना की गई और महावीर द्वारा अस्वीकृत हुई।

चतुर्थ मासखमण सम्पन्न होने पर ५६७ ई. पू., नवम्बर में वर्षावास संपन्न हुआ। महावीर तंतुवायशाला से विहार कर कोल्लाक सन्निवेश में पारणा करने के पश्चात् बाहर पणियभूमि में पहुंचे। उधर गोशाल ने जब महावीर को तंतुवायशाला में नहीं देखा, तो अपने समस्त भांड-उपकरण, वस्त्र, चित्रफलक आदि वहीं छोड़कर महावीर को खोजते-खोजते कोल्लाग सन्निवेश पहुंचा और पुनः स्वयं को शिष्य बनाने के लिए अनुनय किया; इस बार महावीर ने उसे शिष्य रूप में स्वीकार कर लिया।

इसका तात्पर्य यह हुआ कि महावीर स्वयं तो अपनी दीक्षा के १३ मास बाद अचेलक हो गए थे तथा गोशाल की दीक्षा इसके १२ मास पश्चात् हुई। गोशाल तब तक सचेलक था।

ई. पू. ५६७ नवम्बर से लेकर ई. पू. ५५९ तक (८ वर्षों तक) गोशाल महावीर के शिष्य के रूप में उनके साथ रहा।[6] ई. पू. ५६० में लाढ, वज्रभूमि, सुम्हभूमि, अनार्यदेश में तथा ई. पू. ५५९ में कूर्मग्राम से सिद्धार्थ ग्राम की यात्रा के दौरान तिल के पौधे को उखाड़ने की घटना हुई;[7] तत्पश्चात् वापिस कूर्मग्राम में आते समय अग्नि वैश्यायन बालतपस्वी द्वारा गोशाल पर उष्ण तेजोलेश्या का प्रयोग, महावीर द्वारा शीतल तेजोलेश्या छोड़कर गोशाल की रक्षा तथा महावीर द्वारा तेजोलेश्या-प्राप्ति की विधि गोशालक को बताने की घटनाएं हुई;[8] पुनः दूसरी बार कूर्मग्राम से सिद्धार्थग्राम की ओर जाते समय तिल के पौधे की निष्पत्ति, महावीर द्वारा वनस्पतिकायिक जीवों में 'पउट्ट परिहार' के सिद्धांत का प्रतिपादन तथा गोशाल द्वारा सभी जीवों में पउट्ट परिहार के सिद्धांत का निरूपण करना और महावीर से अपक्रमण अर्थात् पृथग् होने की घटनाएं हुई।[9]

अलग होने के पश्चात् छह मास तक विधि के अनुसार तपस्या कर ई. पू. ५५८ में गोशाल ने तेजोलेश्या की उपलब्धि की।[10] इसके पश्चात् वह आजीवक-संप्रदाय में सम्मिलित हो गया।

---

१. भ. १५।२०।
२. आयारो, ९।१/४।
३. वही, १५।२३-२९
४. भ. १५/३०-४२।
५. भ. १५/४५-५५।
६. (क) भ. १५/५६।
(ख) आव. चूर्णि, पूर्वभाग, पृ. २९७,२९८।
(ग) श्रमण महावीर, पृ. ११५।
७. वही, १५/५७-५९; आव. चूर्णि, पृ. २९७-२९८; श्रमण महावीर, पृ. ११५।
८. भ. १५/६०-६१; आव. चूर्णि, पूर्वभाग, पृ. २९८; श्रमण महावीर, पृ. ११५,११६।
९. वही, १५/७२-७५; आव. चूर्णि, पूर्वभाग, पृ. २९९।
१०. वही, १५।७६।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रावस्ती में छह दिशाचरों से अष्टविध महानिमित्त की विद्या को प्राप्त कर अपने आपको 'जिनत्व' की प्राप्ति वाला घोषित कर विचरने लगा।

भगवान महावीर ने साधना-काल के १३वें वर्ष में अर्थात् ई. पू. ५५७ में कैवल्य प्राप्त किया।[७]

ई. पू. ५४३ में २४ वर्ष की भिक्षु पर्याय वाला गोशाल[८] श्रावस्ती में अपने आपको अजिन होते हुए भी जिन के रूप में घोषित कर रहा था, तब कैवल्य-प्राप्ति के १६ वर्ष पश्चात् भगवान महावीर का श्रावस्ती में आगमन हुआ।[९] वहीं पर भगवान महावीर ने गोशाल का पूर्व वृत्तांत परिषद् के बीच सुनाया[१०]; इसकी चर्चा पूरे श्रावस्ती में फैलने से गोशाल आवेश में आया तथा आतापनभूमि से उतर कर हालाहला कुंभकारी के कुंभकारापण में आया।[११] तत्पश्चात् वे सारी घटनाएं घटित हुईं जिनका वर्णन भगवती के १५वें शतक में है तथा अन्त में अपनी ही तेजोलेश्या से हत होकर सातवें दिन गोशाल मृत्यु को प्राप्त हुआ। इस प्रकार गोशाल का २४ वर्षीय प्रव्रज्या-जीवन ई. पू. ५६७ से ई. पू. ५४३ तक रहा।

इन सभी ऐतिहासिक तथ्यों एवं अंकों के परिप्रेक्ष्य में यह भलीभांति स्पष्ट होता है कि–

(१) महावीर गोशाल के साथ प्रथम मिलन से पूर्व ही अचेलक हो गए थे। (५६८ ई. पू. नवम्बर)

(२) गोशाल महावीर के संपर्क में (५६८ ई. पू., जून-जुलाई) में आया।

(३) चार मास तक वह सवस्त्र था तथा उसी रूप में रहकर अचेलक महावीर का शिष्य बनने के लिए प्रार्थना करता रहा, पर सफलता नहीं मिली।

(४) नालन्दा बाहिरिका के तंतुवायशाला के वर्षावास के संपन्न होने के पश्चात् जब महावीर कोल्लाक सन्निवेश चले गए थे तब गोशाल तंतुवायशाला में वस्त्र आदि छोड़कर महावीर के पास कोल्लाग सन्निवेश में पणियभूमि में पहुंचता है और पुनः अपनी प्रार्थना को दोहराता है। उस समय अचेलक महावीर द्वारा अचेलक गोशाल को शिष्य के रूप में स्वीकार किया गया। (यह घटना ई. पू. ५६७ के नवम्बर में हुई)

उक्त ऐतिहासिक प्रमाण के पश्चात् यह शंका निर्मूल हो जाती है कि महावीर ने अचेलकत्व की शिक्षा गोशाल से ग्रहण की। साथ ही यह कहना कि 'जैन आगम में वर्णित शिष्य गोशाल वास्तव में महावीर का गुरु था'–यह आरोप भी अपने आपमें निराधार और अप्रमाणित हो जाता है। (यहां भगवान् महावीर का विहार, वर्षावास आदि का काल-क्रम के साथ पूर्ण विवरण दिया जा रहा है–)

सन् ई. पू.	दीक्षा का वर्ष	विहार-क्षेत्र	वर्षावास
५६९–५६८	पहला	कुण्डग्राम, ज्ञातखण्डवन, कर्मारग्राम, कोल्लाक सन्निवेश, मोराक-सन्निवेश, दूइज्जंतग-आश्रम, अस्थिग्राम (वर्धमान)।	अस्थिक ग्राम (वर्धमान)
५६८–५६७	दूसरा	मोराक सन्निवेश, दक्षिण-वाचाला, कनकखल आश्रमपद, उत्तर-वाचाला, श्वेताम्बी, सुरभिपुर, थूणाक सन्निवेश, राजगृह, नालन्दा।	नालन्दा सन्निवेश
५६७–५६६	तीसरा	कोल्लाक सन्निवेश, सुवर्णखल, ब्राह्मणग्राम, चम्पानगरी।	चम्पानगरी
५६६–५६५	चौथा	कालाय सन्निवेश, पृष्ठचंपा, पत्तकालाय, कुमाराक सन्निवेश, चोराक सन्निवेश, पृष्ठचम्पा।	पृष्ठ चम्पा
५६५–५६४	पांचवां	कयंगला सन्निवेश, श्रावस्ती, हलेद्दुक-ग्राम, नंगला ग्राम (वासुदेव मंदिर में), आवर्त्त (बलदेव मंदिर में), चौराक सन्निवेश, कलंकबुका सन्निवेश, राढ देश, पूर्णकलश, भद्दिया नगरी।	भद्दिया नगरी
५६४–५६३	छठा	कदली समागम, जम्बूसंड, तंबाय सन्निवेश, कूपिय सन्निवेश, वैशाली (कम्मारशाला में) ग्रामाक सन्निवेश (विभेलक यक्ष-मंदिर में), शालीशीर्ष, भद्दिया नगरी।	भद्दिया नगरी
५६३–५६२	७वां	मगध के विभिन्न भाग, आलंभिया।	आलंभिया
५६२–५६१	८वां	कुंडाक सन्निवेश (वासुदेव मंदिर में), भद्दन्न सन्निवेश (बलदेव के मंदिर में), बहुसालगग्राम (शालवन के उद्यान में), लोहार्गला, पुरिमताल, (शकटमुख उद्यान में), उन्नाग, गोभूमि, राजगृह।	राजगृह
५६१–५६०	९वां	लाढ (राढ-देश), वज्रभूमि, सुम्हभूमि।	वज्रभूमि
५६०–५५९	१०वां	सिद्धार्थपुर, कूर्मग्राम, सिद्धार्थपुर, वैशाली, वाणिज्यग्राम, श्रावस्ती।	श्रावस्ती
५५९–५५८	११वां	सानुलट्ठिय सन्निवेश, दृढ़भूमि, पेढाल ग्राम (पोलास चैत्य में), बालुका, सुयोग, तोसलिगांव, मोसलि, सिद्धार्थपुर, वज्रगांव, आलंभिया,	वैशाली

१. आयार चूला १५।३८।
२. भ. १५/२।
३. वही, १५/१।
४. वही, १५/१४-७८।
५. वही, १५/८०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सन् ई. पू.	दीक्षा का वर्ष	विहार-क्षेत्र	वर्षावास
		सेयविया, श्रावस्ती, कौशाम्बी, वाराणसी, राजगृह, मिथिला, वैशाली (समरोद्यान के बलदेव मंदिर में)।	
५५८-५५७	१२वां	सुंसमारपुर, भोगपुर, नन्दग्राम, मेंढियग्राम, कौशाम्बी, सुमंगल, सुच्छेता, पालक, चम्पा (यज्ञ शाला में)।	चम्पा
५५७-५५६	१३वां	जंभियग्राम, मेंढियग्राम, छम्माणि, मध्यमपावा, जंभियग्राम, राजगृह।	राजगृह
५५६-५५५	१४वां	ब्राह्मणकुण्ड (बहुशाल के चैत्य में), विदेह जनपद, वैशाली।	वैशाली
५५५-५५४	१५वां	वत्सभूमि, कौशाम्बी, कौशल जनपद, श्रावस्ती, विदेह जनपद, वाणिज्यग्राम।	वाणिज्यग्राम
५५४-५५३	१६वां	मागध जनपद, राजगृह।	राजगृह
५५३-५५२	१७वां	चम्पा, विदेह जनपद, वाणिज्यग्राम।	वाणिज्यग्राम
५५२-५५१	१८वां	वाराणसी, आलभिका, राजगृह।	राजगृह
५५१-५५०	१९वां	मगध जनपद, राजगृह।	राजगृह
५५०-५४९	२०वां	वत्स जनपद, आलंभिया, कौशाम्बी, वैशाली।	वैशाली
५४९-५४८	२१वां	मिथिला, काकंदी, श्रावस्ती, अहिच्छत्रा, राजपुर, कांपिल्यपुर, पोलासपुर, वाणिज्यग्राम।	वाणिज्यग्राम
५४८-५४७	२२वां	मगध जनपद, राजगृह।	राजगृह
५४७-५४६	२३वां	कयंगला, श्रावस्ती, वाणिज्यग्राम।	वाणिज्यग्राम
५४६-५४५	२४वां	ब्राह्मणकुंडग्राम (बहुशाल चैत्य), वत्स जनपद, मगध जनपद, राजगृह।	राजगृह
५४५-५४४	२५वां	चम्पा, मिथिला, काकन्दी, मिथिला।	मिथिला
५४४-५४३	२६वां	अंग जनपद, चम्पा, मिथिला।	मिथिला
५४३-५४२	२७वां	वैशाली, श्रावस्ती, मेढियग्राम (शालकोष्ठक चैत्य), मिथिला	मिथिला
५४२-५४१	२८वां	कौशल-पांचाल, श्रावस्ती, अहिच्छत्रा, हस्तिनापुर, मोकानगरी, वाणिज्यग्राम।	वाणिज्यग्राम
५४१-५४०	२९वां	राजगृह।	राजगृह
५४०-५३९	३०वां	चम्पा, पृष्ठचम्पा, विदेह, वाणिज्यग्राम।	वाणिज्यग्राम
५३९-५३८	३१वां	कौशल-पांचाल, साकेत, श्रावस्ती, काम्पिल्य, वैशाली।	वैशाली
५३८-५३७	३२वां	विदेह जनपद, कौशल जनपद, काशी जनपद, वाणिज्यग्राम, वैशाली।	वैशाली
५३७-५३६	३३वां	मगध, राजगृह, चम्पा, पृष्ठचंपा, राजगृह।	राजगृह
५३६-५३५	३४वां	राजगृह (गुणशील चैत्य में), नालन्दा।	नालन्दा
५३५-५३४	३५वां	विदेह जनपद, वाणिज्यग्राम, कोल्लाक सन्निवेश, वैशाली।	वैशाली
५३४-५३३	३६वां	कौशल जनपद, पांचाल जनपद, सूरसेन जनपद, साकेत, कांपिल्यपुर, सौरपुर, मथुरा, नंदीपुर, विदेह जनपद, मिथिला।	मिथिला
५३३-५३२	३७वां	मगध जनपद, राजगृह।	राजगृह
५३२-५३१	३८वां	मगध जनपद, राजगृह, नालन्दा।	नालन्दा
५३१-५३०	३९वां	विदेह जनपद, मिथिला।	मिथिला
५३०-५२९	४०वां	विदेह जनपद, मिथिला।	मिथिला
५२९-५२८	४१वां	मगध जनपद, राजगृह।	राजगृह
५२८-५२७	४२वां	राजगृह, पावा।	पावा

उक्त तालिका में से भग. १५वें शतक के आधार पर गोशाल के साथ महावीर के प्रसंग इस प्रकार बनते हैं–

ई. पू.	आयु	महावीर के जीवन-प्रसंग	गोशाल के जीवन-प्रसंग
५६९	३०	दीक्षा	
५६८	३१	प्रथम वर्षावास–अस्थिकग्राम; वस्त्रत्याग[1]	
५६७	३२	द्वितीय वर्षावास–नालंदा (बाहिरिका)	दीक्षा[2] (वर्षावास के पश्चात्) तब तक वस्त्रधारी

१. प्रथम वर्षावास के पश्चात् दूसरे मास में महावीर द्वारा वस्त्र-त्याग।

२. महावीर के दूसरे वर्षावास में प्रथम मास में गोशाल का महावीर से प्रथम बार मिलन तंतुवायशाला में हुआ। चतुर्थ मास के पश्चात् अपने वस्त्र, पात्र आदि वहां छोड़कर कोल्लाक सन्निवेश के बाहर पणियभूमि में महावीर द्वारा शिष्य के रूप में स्वीकार।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ई. पू.	आयु	महावीर के जीवन-प्रसंग	गोशाल के जीवन प्रसंग
५६६	३३	तृतीय वर्षावास	पहला वर्षावास, दीक्षा पर्याय १ वर्ष (महावीर के साथ)
५६५	३४	चतुर्थ वर्षावास	दूसरा वर्षावास, दीक्षा पर्याय २ वर्ष (महावीर के साथ)
५६४	३५	पंचम वर्षावास	तीसरा वर्षावास, दीक्षा पर्याय ३ वर्ष (महावीर के साथ)
५६३	३६	षष्ठ वर्षावास	चौथा वर्षावास, दीक्षा पर्याय ४ वर्ष (महावीर के साथ)
५६२	३७	सप्तम वर्षावास	पांचवां वर्षावास, दीक्षा पर्याय ५ वर्ष (महावीर के साथ)
५६१	३८	अष्टम वर्षावास	छठा वर्षावास, दीक्षा पर्याय ६ वर्ष (महावीर के साथ)
५६०	३९	नवम वर्षावास महावीर से अलग	सातवां वर्षावास, दीक्षा पर्याय ७ वर्ष (महावीर के साथ)
५५९	४०	दशम वर्षावास	८वां वर्षावास, दीक्षा पर्याय ८ वर्ष
५५८	४१	ग्यारहवां	९वें वर्षावास से पूर्व महावीर से अलग, इसी वर्ष तेजोलेश्या-प्राप्ति, दीक्षा पर्याय ९ वर्ष
५५७	४२	बारहवें वर्षावास के पश्चात् कैवल्य	१०वां वर्षावास, दीक्षा पर्याय १० वर्ष, दिशाचरों से मिलन, निमित्त-भाषी, जिनत्व-प्राप्ति
५५६	४३	१३वां वर्षावास	११वां वर्षावास, दीक्षा पर्याय ११ वर्ष
५५५	४४	१४वां वर्षावास	१२वां वर्षावास, दीक्षा पर्याय १२ वर्ष
५५४	४५	१५वां वर्षावास	१३वां वर्षावास, दीक्षा पर्याय १३ वर्ष
५५३	४६	१६वां वर्षावास	१४वां वर्षावास, दीक्षा पर्याय १४ वर्ष
५५२	४७	१७वां वर्षावास	१५वां वर्षावास, दीक्षा पर्याय १५ वर्ष
५५१	४८	१८वां वर्षावास	१६वां वर्षावास, दीक्षा पर्याय १६ वर्ष
५५०	४९	१९वां वर्षावास	१७वां वर्षावास, दीक्षा पर्याय १७ वर्ष
५४९	५०	२०वां वर्षावास	१८वां वर्षावास, दीक्षा पर्याय १८ वर्ष
५४८	५१	२१वां वर्षावास	१९वां वर्षावास, दीक्षा पर्याय १९ वर्ष
५४७	५२	२२वां वर्षावास	२०वां वर्षावास, दीक्षा पर्याय २० वर्ष
५४६	५३	२३वां वर्षावास	२१वां वर्षावास, दीक्षा पर्याय २१ वर्ष
५४५	५४	२४वां वर्षावास	२२वां वर्षावास, दीक्षा पर्याय २२ वर्ष
५४४	५५	२५वां वर्षावास	२३वां वर्षावास, दीक्षा पर्याय २३ वर्ष
५४३	५६	२६वां वर्षावास; वर्षावास से पूर्व तेजोलेश्या की घटना (श्रावस्ती की घटना)	२४वें वर्षावास के पश्चात्, २४ वर्ष की दीक्षा पर्याय में मृत्यु।
५४२-५२६		२७वें वर्षावास से-४१वें वर्षावास तक	
५२७		४२वें वर्षावास में-निर्वाण	गोशाल की मृत्यु के १६ वर्ष पश्चात्

गोसालस्स नीहरण-पदं

१४२. तए णं आजीविया थेरा गोसालं मंखलिपुत्तं कालगयं जाणित्ता हालाहलाए कुंभकारीए कुंभकारावणस्स दुवाराइं पिहेंति, पिहेत्ता हालाहलाए कुंभकारीए कुंभकारावणस्स बहुमज्झदेसभाए सावत्थिं नगरिं आलिहंति, आलिहित्ता गोसालस्स मंखलिपुत्तस्स सरीरगं वामे पादे सुंबेणं बंधंति, बंधित्ता तिक्खुत्तो मुहे उद्दुभंति, उद्दुभित्ता सावत्थीए नगरीए सिंघाडग-तिग--चउक्क - चच्चर - चउम्मुह - महापह-

गोशालस्य निर्हरण-पदम्

ततः आजीविकाः स्थविराः गोशालं मंखलिपुत्रं कालगतं ज्ञात्वा हालाहलायाः कुम्भकार्याः कुम्भकारापणस्य द्वाराणि पिदधते पिधाय हालाहलायाः कुम्भकार्याः कुम्भकारापणस्य बहुमध्यदेशभागे श्रावस्तीं नगरीम् आलिखन्ति, आलिख्य गोशालस्य मंखलिपुत्रस्य शरीरकं वामे पदे शुम्बेन बध्नन्ति, बद्ध्वा त्रिः मुखे अवष्ठीवन्ति, अवष्ठीव्य श्रावस्त्यां नगर्यां शृंगाटक-त्रिक-चतुष्क-चत्वर-चतुर्मुख-महापथ-

गोशाल का निर्हरण-पद

१४२. [1]मंखलिपुत्र गोशाल को मृत्यु-प्राप्त जानकर आजीवक स्थविरों ने हालाहला कुंभकारी के कुंभकारापण के बहु मध्यदेश भाग में श्रावस्ती नगरी का चित्रांकन कर मंखलिपुत्र गोशाल के बाएं पैर को रज्जु से बांधा, बांधकर तीन बार मुंह पर थूका, थूककर चित्रित श्रावस्ती नगरी के शृंगाटकों, तिराहों, चौराहों, चौहटों, चार द्वार वाले स्थानों, राजमार्गों और मार्गों पर निम्न-निम्न स्वर में उद्घोष करते हुए, उद्घोष करते हुए इस प्रकार कहा-देवानुप्रियो! मंखलिपुत्र

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पहेसु आकड्ढ-विकड्ढिं करेमाणा णीयं-णीयं सद्देणं उग्घोसेमाणा-उग्घोसेमाणा एवं वयासी--नो खलु देवाणुप्पिया! गोसाले मंखलिपुत्ते जिणे जिणप्पलावी जाव विहरिए। एस णं गोसाले चेव मंखलिपुत्ते समणघायए जाव छउमत्थे चेव कालगए। समणे भगवं महावीरे जिणे जिणप्पलावी जाव विहरइ--सवह-पडिमोक्खणगं करेंति,करेत्ता दोच्चं पिं पूया-सक्कार-थिरीकरणट्ठयाए गोसालस्स मंखलि-पुत्तस्स वामाओ पादाओ सुंबं मुयंति, मुइत्ता हालाहलाए कुंभकारीए कुंभका-रावणस्स 'दुवार-वयणाइं' अवंगुणंति, अवंगुणित्ता गोसालस्स मंखलिपुत्तस्स सरीरगं सुरभिणा गंधोदएणं ण्हाणेंति, तं चेव जाव महया इड्ढिसक्कारसमुदएणं गोसालस्स मंखलिपुत्तस्स सरीरगस्स नीहरणं करेंति॥

पथेषु आकर्ष-विकृष्टिं कुर्वन्तः नीचैः-नीचैः शब्देन उद्घोषयन्तः-- उद्घोष-यन्तः एवमवादिषु--नो खलु देवानु-प्रियाः ! गोशालः मंखलिपुत्रः जिनः जिनप्रलापी यावत् विहृतः। एषः गोशालः चैव मंखलिपुत्रः श्रमणघातकः यावत् छद्मस्थः चैव कालगतः। श्रमणः भगवान् महावीरः जिनः जिनप्रलापी यावत् विहरति, शपथ-प्रतिमोचनकं (पडिमोक्खणगं) कुर्वन्ति, कृत्वा द्विः अपि पूजा-सत्कार-स्थिरीकरणार्थाय गोशालस्य मंखलिपुत्रस्य वामात् पादात् शुम्बं मुञ्चन्ति मुक्त्वा हालाहलायाः कुम्भकार्याः कुम्भकारापणस्य 'द्वार-वदनानि' 'अवंगुणंति' 'अवंगुणित्ता' गोशालस्य मंखलिपुत्रस्य शरीरकं सुरभिणा गन्धोदकेन स्नान्ति, तत् चैव यावत् महता ऋद्धिसत्कारसमुदयेन गोशालस्य मंखलिपुत्रस्य शरीरकस्य निर्हरणं कुर्वन्ति।

गोशाल जिन होकर जिन-प्रलापी नहीं था, यावत् विहरण किया। यही मंखलिपुत्र गोशाल है, श्रमण घातक यावत् छद्मस्थ-अवस्था में मृत्यु को प्राप्त हुआ है। श्रमण भगवान् महावीर जिन होकर जिन-प्रलापी है यावत् विहरण कर रहे हैं। शपथ-प्रतिमोचन करते हैं, करके दूसरी बार भी पूजा, सत्कार और स्थिरीकरण के लिए मंखलिपुत्र गोशाल के बाएं पैर से रज्जु को मुक्त किया, मुक्त कर हालाहला कुंभकारी के कुंभकारापण के द्वार को खोला, खोल कर मंखलिपुत्र गोशाल के शरीर को सुरभित गंधोदक से स्नान कराया, पूर्ववत् यावत् महान् ऋद्धि-सत्कार, समुदय के द्वारा मंखलिपुत्र गोशाल के शरीर की मरणोत्तर क्रिया की।

भाष्य

१. सूत्र १४२

'गोशालक' के जीवन-वृत्त पर इतना व्यापक और मौलिक प्रकाश अन्यत्र किसी प्राचीन ग्रंथ में उपलब्ध नहीं है। बौद्ध त्रिपिटकों[1] में विकीर्ण रूप से मक्खली गोशाल की चर्चाएं हैं तथा अन्य जैन ग्रंथों[2] में भी हमें कुछ महत्त्वपूर्ण सामग्री मिलती है, परन्तु प्रस्तुत शतक में व्यवस्थित और शृंखलाबद्ध रूप में गोशालक के जीवन, दर्शन, मान्यताओं एवं व्यक्तित्व के विधायक-निषेधात्मक दोनों पक्षों पर जो मार्मिक प्रकाश डाला गया है, वह अन्यत्र नहीं है तथा भारतीय विद्या के प्रत्येक जिज्ञासु विद्वान एवं विद्यार्थी के लिए बहुत ही उपयोगी है।

पता नहीं क्यों इन महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक उल्लेखों की 'भारतीय इतिहास' के लेखकों द्वारा या तो उपेक्षा हुई है या उन्हें किंचित् विकृत रूप देकर प्रस्तुत किया गया है।

तटस्थ विद्वानों द्वारा भगवान् महावीर के व्यक्तित्व को एक महान् आदर्श के रूप में बताया गया है तथा उस संदर्भ में उक्त घटना की समीक्षा की गई है। अन्य कुछ विद्वानों ने समग्र घटना को साम्प्रदायिक टकराव के रूप में ग्रहण किया है तथा प्रस्तुत प्रकरण को भी उसी नजरिये से देखने की कोशिश की है। वस्तुस्थिति यह है कि गोशालक के समग्र जीवन को ध्यान में रख कर यदि समीक्षा की जाए तो स्पष्ट हो जाता है कि किस प्रकार पाखण्ड रचने वाले व्यक्ति अपनी चामत्कारिक शक्तियों के बल पर अपनी तमाम दुर्बलताओं के बावजूद जन-चेतना को प्रभावित कर देते हैं। गोशाल के विषय में उपलब्ध प्रमाण जो जैन साहित्य के अतिरिक्त बौद्ध साहित्य में संवादी रूप में मिलते हैं उसके अनाध्यात्मिक और निम्न स्तरीय व्यक्ति को उजागर कर रहे हैं। बुद्ध तत्कालीन मतों व मत-प्रवर्तकों में आजीवक संघ और गोशालक को सबसे बुरा समझते थे। सत्पुरुष और असत्पुरुष का वर्णन करते हुए वे कहते हैं--'कोई व्यक्ति ऐसा होता है जो कि बहुत जनों के अलाभ के लिए होता है, बहुत जनों की हानि के लिए होता है, बहुत जनों के दुःख के लिए होता है, वह देवों के लिए भी अलाभकारक और हानिकारक होता है; जैसे--मक्खली गोशाल। गोशाल से अधिक दुर्जन मेरी दृष्टि में कोई नहीं है। जैसे धीवर मछलियों को जाल में फंसाता है, वैसे वह मनुष्यों को अपने जाल में फंसाता है।'[3] प्रसंगान्तर से बुद्ध यह भी कहते हैं--'श्रमणधर्मों में सबसे निकृष्ट और जघन्य मान्यता गोशाल की है, जैसे कि सब प्रकार के वस्त्रों में मनुष्यों के केश की कम्बल। वह कंबल शीतकाल में शीतल, ग्रीष्मकाल में उष्ण तथा दुर्वर्ण, दुर्गंध, दुःस्पर्श वाली होती है।[4] जीवन-व्यवहार में ऐसा ही निरुपयोगी गोशाल का नियतिवाद है।'[5]

इस प्रसंग में आचार्य भिक्षु ने बताया है कि 'उस युग में

१. जैसे--दीघनिकाय, सामञ्ञफलसुत्त।

२. जैन आगम एवं अन्य ग्रंथ, जैसे--
(क) उवासगदसाओ, अ. ६,७।
(ख आवश्यक चूर्णि, प्रथम भाग, पत्र २८३-२९२।

३. अंगुत्तर निकाय, १-१८-४;५।

४. टीका ग्रंथों के अनुसार यह कम्बल मनुष्य के केशों से बनती है।

५. The Book of Gradual Sayings, vol. I, p. 286.

६. गौसाला री चौपई, ढाल १८, गाथा १९,२०।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भी जब स्वयं तीर्थंकर विद्यमान थे, गोशालक जैसा पाखण्डी व्यक्ति अधिक लोकप्रिय बन गया था। भगवान् महावीर के अनुयायियों की संख्या केवल एक लाख गुणसठ हजार (१५९०००) थी, जबकि गोशालक के अनुयायी ग्यारह लाख इकसठ हजार (११६१०००) थे।'[1]

प्रश्न होता है वे चरित्र, संयम व साधना की दृष्टि से बुद्ध व महावीर जितने ऊंचे नहीं थे फिर भी आजीवक संघ इतना विस्तृत कैसे हो सका? इसके संभावित कारण हैं–ज्यौतिष-विद्या या भविष्य-सम्भाषण व कठोर तपश्चर्या। महावीर[2] व बुद्ध[3] के संघ में निमित्त-सम्भाषण वर्जित था। गोशालक व उनके सहचारी इस दिशा में उन्मुक्त थे। पार्श्वनाथ के पार्श्वस्थ भिक्षु मुख्यतया निमित्त सम्भाषण से ही आजीविका चलाते थे।[4] गोशालक को निमित्त सिखलाने वाले भी उन्हीं में से थे और वे ही उनके मुख्य सहचर थे। तपश्चर्या भी आजीवक संघ की उत्कट थी। जैन आगम इसका मुक्त समर्थन करते हैं।[5] बौद्ध निकाय भी गोशालक के तपोनिष्ठ होने की सूचना देते हैं।[6] गवेषकों की सामान्य धारणा भी इसी पक्ष में है। आचार्य नरेन्द्रदेव के अनुसार आजीवक पंचाग्नि तपते थे। उत्कटुक रहते थे। चमगादड़ की भांति हवा में झूलते थे। उनके इस कष्ट-तप के कारण ही समाज में इनका मान था। लोग निमित्त, शकुन, स्वप्न आदि का फल इनसे पूछते थे।[7]

बहुत सारी त्रुटियों के रहते हुए भी गोशालक का समाज में आदर पा जाना इसलिए अस्वाभाविक नहीं है कि तप और निमित्त दोनों ही भारतीय समाज के प्रधान आकर्षण सदा से रहे हैं।

इतिहास की दृष्टि से जिन विद्वानों ने गोशालक एवं आजीवक–सम्प्रदाय के संबंध में शोध–कार्य किया है, उनमें हर्नले[8], ई. लायमान[9], ए. एल. बाशम[10], डब्ल्यू. शूब्रिंग[11], वेणी माधव बरूआ[12], जोसेफ डेल्यू[13] आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। समग्र दृष्टि से इन सबका मूल्यांकन करने पर ऐसा प्रतीत होता है कि इन्होंने जो अभिमत या धारणाएं प्रस्तुत की हैं, वे अपने आप में पूर्ण नहीं हैं। गोशालक के जीवन एवं आजीवकों के सिद्धांतों के विषय में और अधिक निष्पक्ष, पूर्वाग्रह-रहित एवं सर्वांगीण अनुशीलन, चिन्तन एवं अनुसंधान की अपेक्षा है, जिससे ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष निकाले जा सके। अभी तक किए गए प्रयत्नों की एक संक्षिप्त समीक्षा यहां की जा रही है।

गोशालक के सिद्धांत व विचार कुछ भी रहे हों, यह तो निर्विवाद ही है कि वे उस समय के एक बहुजन-मान्य और ख्याति-लब्ध धर्म-नायक थे। इनका धर्म-संघ भगवान् महावीर के धर्म-संघ से भी बड़ा था, यह जैन परम्परा भी मानती है।[14] महावीर के दस श्रावकों की तरह इनके भी बारह प्रमुख श्रावक थे।[15] बुद्ध का यह कथन भी कि 'वह मछलियों की तरह लोगों को अपने जाल में फंसाता है' गोशालक के प्रभाव को ही व्यक्त करता है।

गोशालक की श्रमण-परम्परा को त्रिपिटकों में 'आजीवक' तथा आगमों में 'आजीविक' कहा गया है। दोनों ही शब्द एकार्थक से ही हैं। लगता है, प्रतिपक्ष के द्वारा ही यह नाम निर्धारण हुआ है। आजीवक व आजीविक शब्द का अभिप्राय है–आजीविका के लिए ही तपश्चर्या आदि करने वाला।[16] आजीवक स्वयं इसका क्या अर्थ करते थे, यह कहीं उल्लिखित नहीं मिलता। जैन आगमों की तरह बौद्ध पिटकों में भी उनकी भिक्षाचरी-नियमों के कठोर होने का उल्लेख है। मज्झिमनिकाय के अनुसार उनके बहुत सारे नियम निर्ग्रंथों के समान और कुछ एक नियम उनसे भी कठोर थे।[17]

गोशालक का संसार-शुद्धिवाद आगमों और त्रिपिटकों में बहुत समानता से उपलब्ध होता है। चौरासी लाख महाकल्प का परिमाण आगमों की सुस्पष्ट व्याख्या से मिलता है। डॉ. बाशम[18] ने इन सारे विषयों पर बहुत विस्तार से लिखा है।

जैन और आजीवकों के अधिकांश प्रसंग पारस्परिक भर्त्सना के सूचक हैं, वहां कुछ एक विवरण दोनों के सामीप्य-सूचक भी हैं। उसका कारण दोनों के कुछ एक आचारों की समानता हो सकती है। नग्नत्व दोनों परम्पराओं में मान्य रहा है। दोनों परम्पराओं ने इन विशेषताओं को लेकर ही अन्य धार्मिकों की अपेक्षा एक दूसरे को श्रेष्ठ माना है। जैन आगम बतलाते हैं–तापस ज्योतिष्क तक, कांदर्पिक सौधर्म तक, चरक परिव्राजक ब्रह्मलोक तक, किल्विषिक लांतक कल्प तक, तिर्यंच सहस्रार कल्प तक, आजीवक व आभियोगिक अच्युत कल्प तक, दर्शन-भ्रष्ट वेषधारी नवम ग्रैवेयक तक जाते हैं।[19] यहां आजीवकों के मरकर बारहवें स्वर्ग तक पहुंचने

१. निशीथ सू., उ. १३–६६; दस. सू., अ. ८, गा. ५०।
२. विनयपिटक, चुल्लवग्ग, ५–६–२।
३. आवश्यक चूर्णि, पत्र २७३; त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्रम्, पर्व १०, श्लोक १३४–३५; तीर्थंकर महावीर, भा. २, पृ. १०३।
४. ठाणं सूत्र, ठा. ४, उ. २, सू. ३०९ : आजीवियाणं चउव्विहे तवे पं. तं.–उग्ग तवे घोर तवे रसणिज्जूहणता जिब्भिंदियपडिसंलीणता।–
५. संयुत्तनिकाय १०, नाना तित्थिय सुत्त।
६. बौद्ध धर्म-दर्शन, पृ. ४।
७. A. F. R. Hoernle, Uvasagdasao, Appendices I.II.
८. E. Leumann, WZKM, pp. 328-350, 1889.
९. A. L. Basham, History and Doctrines of the Ajivikas, A Vanished Indian Religion, 2002.
१०. W. Schubring, ZDMG, 104 (1954), pp. 256-263.
११. B. M. Barua, Pre-Buddhistic Indian Philosophy, Calcutta, 1921.
१२. Jozef Deleu, Viyahapannatti (Bhagavai), pp. 214-220.
१३. कल्पसूत्र, सू. १३६।
१४. भ., शतक ८, उद्देशक ५।
१५. भ. वृ., १/११३; जैनागम शब्द संग्रह, पृ. १३४; Hoernle, Ajivikas in Encyclopaedia of Religions and Ethics; E. J. Thomas, Life of Buddha, p.130.
१६. महासच्चक सुत्त, १–४–६।
१७. The History and Doctrines of Ajivakas.
१८. भ. १/११३ : तापस–स्वतः गिरे हुए पत्तों का भोजन करने वाले साधु;
कान्दर्पिक–परिहास और कुचेष्टा करने वाले साधु;
चरक परिव्राजक–डाका डालकर भिक्षा लेने वाले त्रिदण्डी तापस;
किल्विषिक–चतुर्विध संघ तथा ज्ञानादिक के अवगुण बोलने वाले साधु;
आभियोगिक–विद्या, मंत्र, वशीकरण आदि अभियोग-कार्य करने वाले साधु;
दर्शन-भ्रष्ट–निह्नव।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

का उल्लेख है, जबकि अन्य अधिक-से-अधिक पांचवें स्वर्ग तक ही रह गये हैं।

आजीवकों की भिक्षाचरी-विधि जो अपने आपमें विशिष्ट-सी थी, उसकी चर्चा 'आमुख' में की जा चुकी है।[1]

भगवती में आजीवक उपासकों के आचार-विचार का श्लाघात्मक ब्यौरा मिलता है।[2] वहां बताया गया है–'वे गोशालक को अरिहन्त देव मानते हैं, माता-पिता की शुश्रूषा करते हैं, गूलर, बड़, बोर, अंजीर व पाकर (प्लक्ष या पिलक्खु)–इन पांच प्रकार के फलों का भक्षण नहीं करते, पलांडु (प्याज), लहसुन आदि कन्द-मूल का भक्षण नहीं करते, बैलों को निर्लंछन नहीं कराते, उनके नाक-कान का छेदन नहीं कराते व त्रस-प्राणियों की हिंसा हो, ऐसा व्यापार नहीं करते।'

बौद्ध त्रिपिटकों में उल्लिखित 'अभिजातियों' (लेश्याओं) का आजीवकों द्वारा किये गये वर्गीकरण में निर्ग्रंथों को चतुर्थ श्रेणी, आजीवकों और उनके अनुयायी-गण को पंचम श्रेणी तथा नन्द वत्स, कृश सांकृत्य और मक्खली गोशाल को षष्ठ श्रेणी में रखा गया है[3]; यह भी बताता है कि आजीवकों ने अपने से दूसरा स्थान अचेलक निर्ग्रंथों को ही दिया है। यह इस तथ्य की ओर इंगित करता है कि इन दोनों संप्रदायों में परस्पर में कितना सामीप्य था।

अब हमें उन धारणाओं पर चिन्तन करना होगा, जिनमें कुछ विद्वानों ने अपनी कल्पित मान्यताओं के आधार पर यह बताने की कोशिश की है कि महावीर और गोशालक के बीच 'गुरु-शिष्य' के संबंध का जो उल्लेख भगवती के पन्द्रहवें शतक में हुआ है, वह सांप्रदायिक भावना से अभिप्रेरित है और वास्तविकता शायद इससे बिल्कुल विपरीत है।

इतिहास और शोध के क्षेत्र में तटस्थता आये, यह नितांत अपेक्षित है। साम्प्रदायिक व्यामोह इस क्षेत्र से दूर रहे, यह भी अनिवार्यतः अपेक्षित है। पर तटस्थता और नवीन स्थापना भी भयावह हो जाती है, जब वे एक व्यामोह का रूप ले लेती है। गोशालक के संबंध में विगत वर्षों में गवेषणात्मक प्रवृत्ति बढ़ी है। आजीवक मत और गोशालक पर पश्चिम और पूर्व के विद्वानों ने बहुत कुछ नया भी ढूंढ निकाला है। पर खेद का विषय है कि नवीन स्थापना के व्यामोह में कुछ एक विद्वान् गोशालक संबंधी इतिहास को मूल से ही औंधे पैर खड़ा कर देना चाह रहे हैं। डॉ. वेणीमाधव बरुआ कहते हैं–''यह तो कहा ही जा सकता है कि जैन और बौद्ध परम्पराओं से मिलने वाली जानकारी से यह प्रमाणित नहीं हो सकता कि जिस प्रकार जैन गोशालक को महावीर के दो ढोंगी शिष्यों में से एक ढोंगी शिष्य बताते हैं; वैसा वह था। प्रत्युत उन जानकारियों से विपरीत ही प्रमाणित होता है, अर्थात् मैं कहना चाहता हूं कि इस विवादग्रस्त प्रश्न पर इतिहासकार प्रयत्नशील होते हैं तो उन्हें कहना ही होगा कि उन दोनों में एक दूसरे का कोई ऋणी है तो वास्तव में गुरु ही ऋणी है, न कि जैनों द्वारा माना गया उनका ढोंगी शिष्य।''[4] डॉ. बरुआ ने अपनी धारणा की पृष्ठभूमि में यह भी माना है–''महावीर पहले तो पार्श्वनाथ के पंथ में थे, किन्तु एक वर्ष बाद जब वे अचेलक हुए, तब आजीवक पंथ में चले गए।''[5] इसके साथ-साथ डॉ. बरुआ ने इस आधार को ही अपने पक्ष में गिनाया है कि गोशालक भगवान् महावीर से दो वर्ष पूर्व जिन-पद प्राप्त कर चुके थे।[6] यद्यपि डॉ. बरुआ ने यह भी स्वीकार किया है कि ये सब कल्पना के ही महान् प्रयोग हैं;[7] तो भी उनकी उन कल्पनाओं ने किसी-किसी को अवश्य प्रभावित किया है। तदनुसार उल्लेख भी किया जाने लगा है और वह उल्लेख भी द्विगुणित होकर। गोपालदास जीवाभाई पटेल लिखते हैं–''महावीर और गोशालक छह वर्ष तक एक साथ रहे थे; अतः जैन सूत्रों में गोशालक के विषय में विशेष परिचय मिलना ही चाहिए। भगवती, सूत्रकृतांग, उपासकदसांग आदि सूत्रों में गोशालक के विषय में विस्तृत या संक्षिप्त कुछ उल्लेख मिलते हैं। किन्तु उन सबमें गोशालक को चरित्र-भ्रष्ट तथा महावीर का एक शिष्य ठहराने का इतना अधिक प्रयत्न किया गया लगता है कि सामान्यतया ही उन उल्लेखों को आधारभूत मानने का मन नहीं रह जाता। गोशालक के सिद्धांत को यथार्थ रूप से रखने का यथाशक्ति प्रयत्न वेणीमाधव बरुआ ने अपने ग्रंथ[8] में किया है।''[9]

धर्मानन्द कोशम्बी प्रभृति ने भी इसी प्रकार का आशय व्यक्त किया है। लगता है, इस धारणा के मूल उन्नायक डॉ. हर्मन जेकोबी[10] रहे हैं। तदनन्तर अनेक लोग इस पर लिखते ही गये।

डॉ. बाशम आजीवकों के इतिहास और सिद्धांत के मर्मज्ञ एवं ख्यातिप्राप्त विशेषज्ञ माने जाते हैं। उनके ग्रंथ 'हिस्ट्री एण्ड डॉक्ट्रीन्स ऑफ आजीविकास' को इस दृष्टि से भारतीय विद्या के क्षेत्र में बहुत महत्त्व दिया गया है, किन्तु कुछ मूलभूत त्रुटियों के कारण उनके मंतव्यों को सर्वग्राह्य नहीं कहा जा सकता। पूर्व भाष्यों में स्पष्ट किए गए तथ्यों एवं तिथियों के संदर्भ में डॉ. बाशम के आनुमानिक निर्णयों की समीक्षा की जाए तो ज्ञात होगा कि इतिहास के क्षेत्र में ऐसे निष्कर्ष स्वीकृत नहीं किए जा सकते।

कुछ आधारों को हम सही मान लें और बिना किसी हेतु के ही कुछ एक को असत्य मान लें; यह ऐतिहासिक पद्धति नहीं हो सकती। वे आधार निर्हेतुक इसलिए भी नहीं माने जा सकते कि जैन और बौद्ध दो विभिन्न परम्पराओं के उल्लेख इस विषय में एक दूसरे का समर्थन करते हैं। डॉ. जेकोबी ने भी तो परामर्श दिया है–''अन्य प्रमाणों के अभाव में हमें इन कथाओं के प्रति सजगता रखनी चाहिए।''[11]

१. भ. १५/आमुख।
२. भ. श. ८/२४२।
३. अंगुत्तरनिकाय, ६-६-५७; संयुत्तनिकाय, २४-७-८ के आधार पर।
४. The Ajivikas, J.D.L., vol. II. 1920, pp. 17-18.
५. वही, पृ. १८।
६. वही, पृ. १८।
७. वही, पृ. २१।
८. Pre-Buddhistic Indian Philosophy, pp. 297-318.
९. महावीर स्वामी नो संयम धर्म (सूत्रकृतांग का गुजराती अनुवाद), पृ. ३४।
१०. S. B. E., Vol. XLV, Introduction, pp. XXIX to XXXII.
११. Ibid, p. XXXIII.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तथारूप निराधार स्थापनाएं बहुत बार इसलिए भी आगे-से-आगे बढ़ती जाती हैं कि वर्तमान गवेषक मूल की अपेक्षा टहनियों का आधार अधिक लेते हैं। प्राकृत व पाली की अनभ्यास दशा में वे आगमों और त्रिपिटकों का सर्वांगीण अवलोकन नहीं कर पाते और अंग्रेज़ी व हिन्दी प्रबन्धकों के एकांगी प्रमाण उनके सर्वाधिक आधार बन जाते हैं। यह देखकर तो बहुत ही आश्चर्य होता है कि शास्त्र-सुलभ सामान्य तथ्यों के लिए भी विदेशी विद्वानों व उनके ग्रंथों के प्रमाण दिए जाते हैं। जैन आगमों के एतद्विषयक वर्णनों को केवल आक्षेपात्मक समझ बैठना भूल है। जैन आगम जहां गोशालक व आजीवक-मत की निम्नता व्यक्त करते हैं, वहां वे गोशालक को अच्युत कल्प तक पहुंचाकर, उन्हें मोक्षगामी बतला कर और उनके अनुयायी भिक्षुओं को वहां तक पहुंचने की क्षमता प्रदान कर उन्हें गौरव भी देते हैं। गोशालक के विषय में–वह गोशाला में जन्मा था, वह मंख था, वह आजीवकों का नायक था आदि बातों को हम जैन आगमों के आधार पर मानें और जैनागमों की इस बात को कि वह महावीर का शिष्य था; निराधार ही हम यों कहें कि वह महावीर का गुरु था, बहुत ही हास्यास्पद होगा। यह तो प्रश्न ही तब पैदा होता, जब जैन आगम उसे शिष्य बतलाते और बौद्ध व आजीवक शास्त्र उसके गुरु होने का उल्लेख करते; प्रत्युत स्थिति तो यह है कि महावीर के सम्मुख गोशालक स्वयं स्वीकार करते हैं कि "गोशालक तुम्हारा शिष्य था, पर मैं वह नहीं हूं। मैंने तो उस मृत गोशालक के शरीर में प्रवेश पाया है। यह शरीर उस गोशालक का है, पर आत्मा भिन्न है।" इस प्रकार विरोधी प्रमाण के अभाव में ये कल्पनात्मक प्रयोग नितांत अर्थशून्य ही ठहरते हैं। यह प्रसन्नता की बात है कि इस निराधार धारणा के उठते ही अनेक गवेषक विद्वान् इसका निराकरण भी करने लगे हैं।[1]

आजीवक भिक्षुओं के अब्रह्म-सेवन का उल्लेख आर्द्रककुमार प्रकरण में आया है, इसे भी कुछ एक लोग नितांत आक्षेप मानते हैं।[2] केवल जैन आगम ही ऐसा कहते तो यह सोचने का आधार बनता, पर बौद्ध शास्त्र भी आजीवकों के अब्रह्म-सेवन की मुक्त पुष्टि करते हैं।[3] निग्गण्ठ ब्रह्मचर्यवास में और आजीवक अब्रह्मचर्यवास में गिनाए भी गए हैं।[4] गोशालक कहते थे, तीन अवस्थाएं होती हैं–बद्ध, मुक्त और न बद्ध न मुक्त। वे स्वयं को मुक्त–कर्म-लेप से परे मानते थे। उनका कहना था, मुक्त पुरुष स्त्री-सहवास करे तो उसे भय नहीं।[5] ये सारे प्रसंग भले ही उनके आलोचक सम्प्रदायों के हों, पर आजीवकों की अब्रह्म-विषयक मान्यता को एक गवेषणीय विषय अवश्य बना देते हैं। एक दूसरे के पोषक होकर ये प्रसंग अपने-आप में निराधार नहीं रह जाते। इतिहासविद् डॉ. सत्यकेतु विद्यालंकार ने गोशालक के भगवान् महावीर से होने वाले तीन मतभेदों में एक स्त्री-सहवास बताया है।[6] कुल मिलाकर कहा जा सकता है, आजीवकों को जैन आगमों का अब्रह्म के पोषक बतलाना आक्षेप मात्र ही नहीं है और कोई सम्प्रदाय-विशेष ब्रह्मचर्य को सिद्धान्त-रूप से मान्यता न दे, यह भी कोई अनहोनी बात नहीं है। भारत वर्ष में अनेक सम्प्रदाय रहे हैं, जिनके सिद्धांत त्याग और भोग के सभी संभव विकल्पों को मानते रहे हैं। हम अब्रह्म की मान्यता पर ही आश्चर्यान्वित क्यों होते हैं? उन्हीं धर्म-नायकों में अजित-केशकम्बल जैसे भी थे, जो आत्म-अस्तित्व भी स्वीकार नहीं करते थे। यह भी एक प्रश्न ही है कि ऐसे लोग तपस्या क्यों करते थे? अस्तु; नवीन स्थापनाओं के प्रचलन में और प्रचलित स्थापनाओं के निराकरण में बहुत ही जागरूकता और गम्भीरता अपेक्षित है।

१४३. तए णं समणे भगवं महावीरे अण्णदा कदायि सावत्थीओ नगरीओ कोट्ठयाओ चेइयाओ पडिनिक्खमति, पडिनिक्खमित्ता बहिया जणवयविहारं विहरइ॥

ततः श्रमणः भगवान् महावीरः अन्यदा कदाचित् श्रावस्त्याः नगर्याः कोष्टकात् चैत्यात् प्रतिनिष्क्रामति, प्रतिनिष्क्रम्य बहिः जनपदविहारं विहरति।

१४३. श्रमण भगवान् महावीर ने किसी एक दिन श्रावस्ती नगरी से कोष्ठक चैत्य से प्रतिनिष्क्रमण किया, प्रतिनिष्क्रमण कर बाहर जनपद-विहार करने लगे।

भगवओ रोगायंक-पाउब्भवण-पदं

१४४. तेणं कालेणं तेणं समएणं मेंढियगामे नामं नगरे होत्था–वण्णओ। तस्स णं मेंढियगामस्स नगरस्स बहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए, एत्थं णं साणकोट्ठए नामं चेइए होत्था–वण्णओ जाव पुढविसिलापट्टओ। तस्स णं साणकोट्ठगस्स चेइयस्स अदूरसामंते,

भगवतः रोगातंक-प्रादुर्भवन–पदम्

तस्मिन् काले तस्मिन् समये मेण्ढियग्रामं नाम नगरम् आसीत्–वर्णकः। तस्य मेण्ढियग्रामस्य नगरस्य बहिस्तात् उत्तर पौरस्त्यः दिग्भागः, तत्र शाणकोष्टकः नाम चैत्यम् आसीत्–वर्णकः यावत् पृथिवीशिलापट्टकः। तस्य शाण-कोष्टकस्य चैत्यस्य

भगवान् के रोग-आतंक-प्रादुर्भवन-पद

१४४. उस काल और उस समय 'मेंढियग्राम' नाम का नगर था–वर्णक। उस मेंढिय ग्राम नगर के बाहर उत्तर पूर्व दिशिभाग। यहां 'शान कोष्ठक' नाम का चैत्य था–वर्णक यावत् पृथ्वी-शिला-पट्टक। उस शान कोष्ठक चैत्य के न अति दूर और न अति निकट, एक महान मालुका-कच्छ था–कृष्ण, कृष्णाभास

१. डॉ. कामताप्रसाद, वीर; वर्ष ३, अंक १२-१३; चीमनलाल जयचंद शाह, उत्तर हिन्दुस्तान मां जैन धर्म, पृ. ५८ से ६१; डॉ. ए. एस. गोपानी Ajivika Sect--A New Interpretation, भारतीय विद्या, खण्ड २, पृ. २०१-१०; खण्ड ३, पृ. ४७-५६।

२. महावीर स्वामी नो संयम धर्म, पृ. ३४।

३. Ajivakas, vol. I; मज्झिमनिकाय, भाग १, पृ. ५१४; Encyclopaedia of Religions and Ethics, Dr. Hoernle, p. 261.

४. मज्झिमनिकाय, सन्दक सुत्त, २-३-६।

५. गोपालदास पटेल, महावीर कथा, पृ. १७७; श्रीचंद रामपुरिया, तीर्थंकर वर्धमान, पृ. ८३।

६. भारतीय संस्कृति और उसका इतिहास, पृ. १६३।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एत्थ णं महेगे मालुयाकच्छए यावि होत्था—किण्हे किण्होभासे जाव महामेहनिकुरंबभूए पत्तिए पुप्फिए फलिए हरियगरेरिज्जमाणे सिरीए अतीव-अतीव उवसोभेमाणे चिट्ठति। तत्थ णं मेंढियगामे नगरे रेवती नामं गाहावइणी परिवसति—अड्ढा जाव बहुजणस्स अपरिभूया॥

अदूरसामंते, अत्र महान् एकः मालुका-कच्छकः चापि आसीत्—कृष्णः कृष्णा-भासः यावत् महामेघनिकुरम्बभूतः पत्रितः पुष्पितः फलितः हरितकराराज्य-मानः श्रिया अतीव-अतीव उपशोभमानः तिष्ठति। तत्र मेण्ढियग्रामे नगरे रेवती नाम 'गाहावइणी' परिवसति—आढ्या यावत् बहुजनस्य अपरिभूता।

वाला यावत् काली कजरारी घटा के समान, पत्र, पुष्प और फलयुक्त, हरा-भरा, विशिष्ट श्री से बहुत-बहुत उपशोभायमान खड़ा था। उस मेंढिय-ग्राम नगर में रेवती नाम की गृह स्वामिनी रहती थी—वह आढ्या यावत् बहुजन के द्वारा अपरिभूत थी।

१४५. तए णं समणे भगवं महावीरे अण्णदा कदायि पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे गामाणुगामं दूइज्जमाणे सुहंसुहेणं विहरमाणे जेणेव मेंढियगामे नगरे जेणेव साणकोट्ठए चेइए तेणेव उवागच्छइ जाव परिसा पडिगया॥

ततः श्रमणः भगवान् महावीरः अन्यदा कदाचित् पूर्वानुपूर्वीं चरन् ग्रामानुग्रामं दवन् सुखंसुखेन विहरन् यत्रैव मेण्ढियग्रामं नगरं यत्रैव शाणकोष्ठकं चैत्यं तत्रैव उपागच्छति यावत् परिषद् प्रतिगता।

१४५. श्रमण भगवान् महावीर किसी एक दिन क्रमानुसार विचरण, ग्रामानुग्राम परिव्रजन और सुखपूर्वक विहार करते हुए जहां मेंढ़िय-ग्राम नगर था, जहां शान कोष्ठक चैत्य था, वहां आए, यावत् परिषद् वापस नगर में चली गई।

१४६. तए णं समणस्स भगवओ महावीरस्स सरीरगंसि विपुले रोगायंके पाउब्भूए—उज्जले विउले पगाढे कक्कसे कडुए चंडे दुक्खे दुग्गे तिव्वे दुरहियासे, पित्तज्जरपरिगयसरीरे दाहवक्कंतिए यावि विहरति, अवि याइं लोहियवच्चाइं पि पकरेइ, चाउवण्णं च णं वागरेति—एवं खलु समणे भगवं महावीरे गोसालस्स मंखलिपुत्तस्स तवेणं अण्णइट्ठे समाणे अंतो छण्हं मासाणं पित्तज्जर-परिगयसरीरे दाहवक्कंतिए छउमत्थे चेव कालं करेस्सति॥

ततः श्रमणस्य भगवतः महावीरस्य शरीरके विपुलः रोगातङ्कः प्रादुर्भूतः—उज्ज्वलः विपुलः प्रगाढः कर्कशः कटुकः चण्डः दुक्खं दुर्गः तीव्रः दुरध्यासः, पित्तज्वर-परिगतशरीरः दाहावक्रान्तिकः चापि विहरति, अपि 'याइं' लोहित-वर्चांसि अपि प्रकरोति, चतुर्वर्णः च व्याकरोति—एवं खलु श्रमणः भगवान् महावीरः गोशालस्य मंखलिपुत्रस्य तपसा तेजसा अन्वाविष्टः सन् अन्तः षण्णां मासानां पित्तज्वरपरिगतशरीरः दाहावक्रान्तिकः छद्मस्थः चैव कालं करिष्यति।

१४६. श्रमण भगवान् महावीर के शरीर में विपुल रोग-आतंक प्रकट हुआ—उज्ज्वल; विपुल, प्रगाढ, कर्कश, कटुक, चण्ड, दुःखद, कष्ट साध्य, तीव्र और दुःसह। उनका शरीर पित्तज्वर से व्याप्त हो गया। उसमें जलन पैदा हो गई। उनके शौच में खून आने लगा, चारों वर्णों के लोगों ने कहा—मंखलिपुत्र गोशाल के तपः तेज से पराभूत श्रमण भगवान् महावीर का शरीर पित्तज्वर से व्याप्त हो गया, उसमें जलन पैदा हो गई, ये छह माह के भीतर छद्मस्थ-अवस्था में ही मृत्यु को प्राप्त करेंगे।

सीहस्स माणसियदुक्ख-पदं

१४७. तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतेवासी सीहे नामं अणगारे—पगइभद्दए जाव विणीए मालुयाकच्छगस्स अदूरसामंते छट्ठंछट्ठेणं अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं उड्ढं बाहाओ पगिज्झिय-पगिज्झिय सूराभिमुहे आयावणभूमीए आयावेमाणे विहरति॥

सिंहस्य मानसिकदुःख-पदम्

तस्मिन् काले तस्मिन् समये श्रमणस्य भगवतः महावीरस्य अन्तेवासी सिंहः नाम अनगारः—प्रकृतिभद्रकः यावत् विनीतः मालुकाकच्छकस्य अदूर-सामन्ते षष्ठषष्ठेन अनिक्षिप्तेन तपः-कर्मणा उर्ध्वं बाहाः (बाहाओ) प्रगृह्य-प्रगृह्य सुराभिमुखः आतापनभूम्यां आतापयन् विहरति।

सिंह का मानसिक-दुःख पद

१४७. उस काल उस समय श्रमण भगवान् महावीर का अंतेवासी सिंह नाम का अनगार—प्रकृति से भद्र यावत् विनीत। मालुकाकच्छ से न अति दूर और न अति निकट निरन्तर षष्ठ-षष्ठ भक्त (दो-दो दिन के उपवास) तपः कर्म में आतापन-भूमि में दोनों भुजाएं ऊपर उठाकर सूर्य के सामने आतापना लेते हुए विहार कर रहा था।

१४८. तए णं तस्स सीहस्स अणगारस्स झाणंतरियाए वट्टमाणस्स अयमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था—एवं खलु ममं

ततः तस्य सिंहस्य अनगारस्य ध्यानान्तरिकायां वर्तमानस्य अयमेत-द्रूपः आध्यात्मिकः चिन्तितः प्रार्थितः मनोगतः संकल्पः समुदपादि—एवं खलु

१४८. ध्यानांतर में वर्तमान सिंह अनगार के इस प्रकार का आध्यात्मिक, स्मृत्यात्मक, अभिलाषात्मक, मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ—मेरे धर्माचार्य धर्मोपदेशक श्रमण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धम्मायरियस्स धम्मोवदेसगस्स समणस्स भगवओ महावीरस्स, सरीरगंसि विउले रोगायंके पाउब्भूए- उज्जले जाव छउमत्थे चेव कालं करेस्सति, वदिस्संति य णं अण्णति-त्थिया-छउमत्थे चेव कालगए-इमेणं एयारूवेणं महया मणोमाणसिएणं दुक्खेणं अभिभूए समाणे आयावणभूमीओ पच्चोरुभइ, पच्चोरुभित्ता जेणेव मालुयाकच्छए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता, मालुयाकच्छगं अंतो-अंतो अणुपविसइ, अणुपविसित्ता महया-महया सद्देणं कुहुकुहुस्स परुण्णे॥

मम धर्माचार्यस्य धर्मोपदेशकस्य श्रमणस्य भगवतः महावीरस्य शरीरके विपुलः रोगातङ्कः प्रादुर्भूतः-उज्ज्वलः यावत् छद्मस्थः चैव कालं करिष्यति, वदिष्यति च अन्यतीर्थिकाः-छद्मस्थः चैव कालगतः-अनेन एतद्रूपेण महता मनोमानसिकेन दुःखेन अभिभूतः सन् आतापनभूम्याः प्रत्यवरोहति, प्रत्यवरुह्य यत्रैव मालुकाकच्छकः तत्रैव उपागच्छति, उपागम्य मालुकाकच्छकम् अन्तः-अन्तः अनुप्रविशति, अनुप्रविश्य महता महता शब्देन कुहुकुहोः प्ररुदितः।

भगवान् महावीर के शरीर में विपुल रोग-आतंक प्रकट हुआ है-उज्ज्वल यावत् छद्मस्थ-अवस्था में ही मृत्यु को प्राप्त करेंगे। अन्यतीर्थिक भी इस प्रकार कहते हैं-छद्मस्थ अवस्था में ही मृत्यु को प्राप्त होंगे-यह इस प्रकार के महान मनोमानसिक दुःख से पराभूत होकर आतापन-भूमि से नीचे उतरा, उतरकर जहां मालुकाकच्छ था, वहां आया, आकर मालुकाकच्छ के भीतर-भीतर अनुप्रवेश किया, अनुप्रवेश कर बाढ स्वर से 'कुहु कुहु' शब्द करते हुए रुदन करने लगा।

भगवया सीहस्स आसासण-पदं

१४९. अज्जोति! समणे भगवं महावीरे समणे निग्गंथे आमंतेति, आमंतेत्ता एवं वयासी-एवं खलु अज्जो! ममं अंतेवासी सीहे नामं अणगारे पगइभद्दए जाव विणीए मालुयाकच्छगस्स अदूरसामंते छट्ठंछट्ठेणं अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं उड्ढं बाहाओ पगिज्झिय-पगिज्झिय सूराभिमुहे आयावणभूमीए आयावेमाणे विहरति।

तए णं तस्स सीहस्स अणगारस्स झाणंतरियाए वट्टमाणस्स अयमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था-एवं खलु ममं धम्मायरियस्स धम्मोवदेसगस्स समणस्स भगवओ महावीरस्स सरीरगंसि विउले रोगायंके पाउब्भूए-उज्जले जाव छउमत्थे चेव कालं करेस्सति, वदिस्संति, य णं अण्णतित्थिया-छउमत्थे चेव कालगए-इमेणं एयारूवेणं महया मणोमाणसिएणं दुक्खेणं अभिभूए समाणे आयावण-भूमीओ पच्चोरुभइ, पच्चोरुभित्ता जेणेव मालुयाकच्छए तेणेव उवागच्छइ, उवाग-च्छित्ता मालुयाकच्छगं अंतो-अंतो अणु-पविसइ, अणुपविसित्ता महया-महया सद्देणं कुहुकुहुस्स परुण्णे। तं गच्छह णं अज्जो! तुब्भे सीहं अणगारं सद्दाह॥

भगवता सिंहस्य आश्वासन-पदम्

आर्य इति! श्रमणः भगवान् महावीरः श्रमणान् निर्ग्रन्थान् आमन्त्रयति, आमन्त्र्य एवमवादीत्-एवं खलु आर्य! मम अन्तेवासी सिंहः नाम अनगारः प्रकृतिभद्रकः यावत् विनीतः मालुकाकच्छकस्य अदूरसामन्ते षष्ठषष्ठेन अनिक्षिप्तेन तपःकर्मणा उर्ध्वं बाहूः प्रगृह्य-प्रगृह्य सूराभिमुखः आतापनभूम्याम् आतापयन् विहरति।

ततः तस्य सिंहस्य अनगारस्य ध्यानान्तरिकायां वर्तमानस्य अयमेतद्रूपः आध्यात्मिकः चिन्तितः प्रार्थितः मनोगतः संकल्पः समुदपादि-एवं खलु मम धर्माचार्यस्य धर्मोपदेशकस्य श्रमणस्य भगवतः महावीरस्य शरीरके विपुलः रोगातङ्कः प्रादुर्भूतः-उज्ज्वलः यावत् छद्मस्थः चैव कालं करिष्यति, वदिष्यन्ति च अन्यतीर्थिकाः-छद्मस्थः चैव कालगतः अनेन एतद्रूपेण महता मनोमानसिकेन दुःखेन अभिभूतः सन् आतापनभूम्याः प्रत्यवरोहति, प्रत्यवरुह्य यत्रैव मालुका-कच्छकः तत्रैव उपागच्छति, उपागम्य मालुकाकच्छकम् अन्तः-अन्तः अनुप्रविशति, अनुप्रविश्य महता-महता शब्देन कुहुकुहोः प्ररुदितः। तत् गच्छथ आर्य! यूयं सिंहम् अनगारं शब्दयत।

भगवान् द्वारा सिंह को आश्वासन-पद

१४९. अयि आर्यो! श्रमण भगवान् महावीर ने श्रमण-निर्ग्रन्थों को आमंत्रित किया, आमंत्रित कर इस प्रकार कहा-आर्यो! मेरा अंतेवासी सिंह नामक अनगार, प्रकृति भद्र यावत् विनीत मालुकाकच्छ के न अति दूर और न अति निकट निरंतर षष्ठ-षष्ठ भक्त के तपः-कर्म में आतापन-भूमि में दोनों भुजाएं ऊपर उठाकर, सूर्य के सामने आतापना लेते हुए विहार कर रहा है।

ध्यानांतर में वर्तमान उस सिंह अनगार के इस प्रकार का आध्यात्मिक, स्मृत्यात्मक, अभिलाषात्मक, मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ-मेरे धर्माचार्य धर्मोपदेशक श्रमण भगवान् महावीर के शरीर में विपुल रोग-आतंक प्रकट हुआ है-उज्ज्वल यावत् छद्मस्थ-अवस्था में ही मृत्यु को प्राप्त करेंगे। अन्यतीर्थिक यह कहते हैं-छद्मस्थ-अवस्था में मृत्यु को प्राप्त होंगे।

यह इस प्रकार मनोमानसिक दुःख से अभिभूत होकर आतापन भूमि से नीचे उतरा, उतरकर जहां मालुकाकच्छ था, वहां आया। आकर मालुकाकच्छ के भीतर-भीतर अनुप्रवेश किया, अनुप्रवेश कर बाढ स्वर से 'कुहु कुहु' शब्द करते हुए रुदन करने लगा।

इसलिए आर्यो! तुम जाओ, सिंह अनगार को बुलाओ।

१५०. तए णं ते समणा निग्गंथा समणेणं भगवया महावीरेणं एव वुत्ता समाणा समणं भगवं महावीरं वंदंति नमंसंति,

ततः ते श्रमणाः निर्ग्रन्थाः श्रमणेन भगवता महावीरेण एवम् उक्ताः सन्तः श्रमणं भगवन्तं महावीरं वन्दन्ते

१५०. श्रमण भगवान् महावीर के इस प्रकार कहने पर श्रमण निर्ग्रन्थों ने श्रमण भगवान् महावीर को वंदन-नमस्कार किया, वंदन-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वंदित्ता नमंसित्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियाओ साणकोट्ठगाओ चेइयाओ पडिनिक्खमंति, पडिनिक्खमित्ता जेणेव मालुयाकच्छए, जेणेव सीहे अणगारे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता सीहं अणगारं एवं वयासी–सीहा! धम्मायरिया सद्दावेंति॥

नमस्यन्ति, वन्दित्वा नमस्यित्वा श्रमणस्य भगवतः महावीरस्य अन्तिकात् शाणकोष्ठकात् चैत्यात् प्रतिनिष्क्रामन्ति, प्रतिनिष्क्रम्य यत्रैव मालुकाकच्छकः, यत्रैव सिंहः अनगारः तत्रैव उपागच्छन्ति, उपागम्य सिंहम् अनगारम् एवमवादीत्–सिंह ! धर्माचार्याः शब्दयन्ति।

नमस्कार कर श्रमण भगवान् महावीर के पास से शान कोष्ठक चैत्य से प्रतिनिष्क्रमण किया, प्रतिनिष्क्रमण कर जहां मालुकाकच्छ था, जहां सिंह अनगार था–वहां आए, आकर सिंह अनगार से इस प्रकार कहा–सिंह! धर्माचार्य बुलाते हैं।

१५१. तए णं से सीहे अणगारे समणेहिं निग्गंथेहिं सद्धिं मालुया-कच्छगाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता जेणेव साणकोट्ठए चेइए, जेणेव समणे भगवं महावीरे, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं जाव पज्जुवासति॥

ततः सः सिंहः अनगारः श्रमणैः निर्ग्रन्थैः सार्धं मालुकाकच्छकात् प्रतिनिष्क्रामति, प्रतिनिष्क्रम्य यत्रैव शाणकोष्ठकं चैत्यम्, यत्रैव श्रमणः भगवान् महावीरः, तत्रैव उपागच्छति, उपागम्य श्रमणं भगवन्तं महादीरं त्रिः आदक्षिण–प्रदक्षिणां यावत् पर्युपास्ते।

१५१. श्रमण निर्ग्रन्थों के साथ सिंह अनगार ने मालुकाकच्छ से प्रतिनिष्क्रमण किया, प्रतिनिष्क्रमण कर जहां शान कोष्ठक चैत्य था, जहां श्रमण भगवान् महावीर थे, वहां आया, आकर श्रमण भगवान् महावीर को दायीं ओर से प्रारम्भ कर तीन बार प्रदक्षिणा यावत् पर्युपासना की।

१५२. सीहादि! समणे भगवं महावीरे सीहं अणगारं एवं वयासी–से नूणं ते सीहा! झाणंतरियाए वट्टमाणस्स अयमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था–एवं खलु ममं धम्मायरियस्स धम्मोवदेसगस्स समणस्स भगवओ महावीरस्स सरीरगंसि विउले रोगायंके पाउब्भूए– उज्जले जाव छउमत्थे चेव कालं करेस्सति, वदिस्संति य णं अण्णतित्थिया–छउमत्थे चेव कालगए–इमेणं एयारूवेणं महया मणोमाणसिएणं दुक्खेणं अभिभूए समाणे आयावण-भूमीओ पच्चोरुभित्ता, जेणेव मालुया-कच्छए तेणेव उवागच्छित्ता मालुया-कच्छगं अंतो-अंतो अणुपविसित्ता महया-महया सद्देणं कुहुकुहुस्स परुण्णे।
से नूणं ते सीहा ! अट्ठे समट्ठे ?
हंता अत्थि।
तं नो खलु अहं सीहा ! गोसालस्स मंखलिपुत्तस्स तवेणं तेएणं अण्णाइट्ठे समाणे अंतो छण्हं मासाणं पित्तज्जरपरिगयसरीरे दाहवक्कंतिए छउमत्थे चेव कालं करेस्सं अहण्णं अद्ध सोलस वासाइं जिणे सुहत्थी विहरिस्सामि, तं गच्छह णं तुमं सीहा ! मेंढियगामं नगरं, रेवतीए गाहावतिणीए

सिंह अयि! श्रमणः भगवान् महावीरः सिंहम् अनगारम् एवमवादीत्–अथ नूनं ते सिंह ! ध्यानांतरिकायां वर्तमानस्य अयमेतद्रूपः आध्यात्मिकः चिन्तितः प्रार्थितःमनोगतः संकल्पः समुदपादि–एवं खलु मम धर्माचार्यस्य धर्मोपदेशकस्य श्रमणस्य भगवतः महावीरस्य शरीरके विपुलः रोगातङ्कः प्रादुर्भूतः–उज्ज्वलः यावत् छद्मस्थः चैव कालं करिष्यति, वदिष्यन्ति च अन्यतीर्थिकाः–छद्मस्थः चैव कालगतः–अनेन एतद्रूपेण महता मनोमानसिकेन दुःखेन अभिभूतः सन् आतापनभूम्याः प्रत्यवरोहति, यत्रैव मालुकाकच्छकः तत्रैव उपागम्य मालुकाकच्छकम् अन्तः-अन्तः अनुप्रविश्य महता-महता शब्देन कुहुकुहोः प्ररुदितः।
अथ नूनं ते सिंह ! अर्थः समर्थः?
हन्त अस्ति।
तत् नो अहं सिंह! गोशालस्य मंखलिपुत्रस्य तपसा तेजसा अन्वाविष्टः सन् अन्तः षण्णां मासानां पित्तज्वरपरिगतशरीरः दाहावक्रान्तिकः छद्मस्थः चैव कालं करिष्यामि, अहम् अर्धषोडश वर्षाणि जिनः सुहस्ती विहरिष्यामि तत् गच्छ त्वं सिंह ! मेण्ढियग्रामं नगरम् रेवत्याः

१५२. अयि सिंह! श्रमण भगवान् महावीर ने सिंह अनगार को इस प्रकार कहा–सिंह! ध्यानांतर में वर्तमान तुम्हारे इस प्रकार का आध्यात्मिक, स्मृत्यात्मक, अभिलाषात्मक, मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ–मेरे धर्माचार्य धर्मोपदेशक श्रमण भगवान् महावीर के शरीर में विपुल रोग-आतंक प्रकट हुआ–उज्ज्वल यावत् छद्मस्थ अवस्था में ही मृत्यु को प्राप्त करेंगे। अन्यतीर्थिक कहते हैं–छद्मस्थ अवस्था में ही मृत्यु को प्राप्त करेंगे। यह इस प्रकार के महान् मनोमानसिक दुःख से अभिभूत होकर तुम आतापन भूमि से नीचे उतर कर, जहां मालुकाकच्छ था, वहां आकर, मालुकाकच्छ के भीतर-भीतर अनुप्रवेश कर बाढ स्वर से 'कुहु कुहु' शब्द करते हुए रुदन करने लगा।

सिंह! क्या यह अर्थ संगत है?
हां, है।
सिंह! यह ऐसा नहीं है कि मंखलिपुत्र गोशाल के तपः तेज से पराभूत होकर मेरा शरीर पित्त-ज्वर से व्याप्त हो गया, उसमें जलन हो गई, मैं छह माह के भीतर छद्मस्थ-अवस्था में ही मृत्यु को प्राप्त करूंगा। मैं साढ़े पंद्रह वर्ष तक जिन-अवस्था में गन्धहस्ती के समान विहरण करूंगा। इसलिए सिंह! तुम मेंढियग्राम नगर,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गिहं, तत्थं णं रेवतीए गाहावतिणीए ममं अट्ठाए दुवे 'कवोय-सरीरा' उवक्खडिया, तेहिं नो अट्ठो, अत्थि से अण्णे पारियासिए मज्जारकडए कुक्कुडमंसए, तमाहराहि, एएणं अट्ठो॥

'गाहावतिणीए' गृहम्, तत्र 'गाहावतिणीए' रेवत्या मम अर्थाय द्वौ कपोत-शरीरौ उपस्कृतौ, ताभ्यां नो अर्थः, अस्ति सः अन्यः पारिवासितः मार्जारिकृतकः कुक्कुटमांसकः, तम् आहर, एतेन अर्थः।

गृहस्वामिनी रेवती के घर जाओ, वहां गृहपत्नी ने मेरे लिए दो कपोत-शरीर-मकोय के फल पकाए हैं। वे मेरे लिए प्रयोजनीय नहीं हैं। उसके पास अन्य बासी रखा हुआ मार्जारकृत अर्थात् चित्रक वनस्पति से भावित, कुक्कुट-मांस-चौपतिया शाक है, वह लाओ, वह प्रयोजनीय है।

सीहेण रेवईए भेसज्जाणयण-पदं

१५३. तए णं से सीहे अणगारे समणेणं भगवया महावीरेणं एवं वुत्ते हट्ठतुट्ठ-चित्तमाणंदिए णंदिए पीइमाणे परम-सोमणस्सिए हरिसवसविसप्पमाणहियए समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ वंदित्ता नमंसित्ता अतुरियमचवलमसंभंतं मुहपोत्तियं पडिलेहेति, पडिलेहेत्ता भायणवत्थाइं पडिलेहेति, पडिलेहेत्ता भायणाइं पमज्जइ, पमज्जित्ता भायणाइं उग्गाहेइ, उग्गाहेत्ता जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियाओ साणकोट्ठगाओ चेइयाओ पडिनिक्खमति, पडि-निक्खमित्ता अतुरियमचवलमसंभंतं जुगंतरपलोयणाए दिट्ठीए पुरओ रियं सोहेमाणे-सोहेमाणे जेणेव मेंढियगामे नगरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता मेंढियगामं नगरं मज्झंमज्झेणं जेणेव रेव-तीए गाहावइणीए गिहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता रेवतीए गाहावतिणीए गिहं अणुप्पविट्ठे॥

सिंहेन रेवत्या भैषज्यानयन–पदम्

ततः सः सिंहः अनगारः श्रमणेन भगवता महावीरेण एवम् उक्तः सन् हृष्ट-तुष्टचित्तः आनन्दितः नंदितः प्रीतिमनाः परमसौमस्यितः हर्षवश-विसर्पद्हृदयः श्रमणं भगवन्तं महावीरं वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्यित्वा अत्वरितमचपलमसम्भ्रान्तं मुखपोतिकां प्रतिलिखति, प्रतिलेख्य भाजन-वस्त्राणि प्रतिलिखति, प्रतिलेख्य भाजनानि प्रमार्ष्टि, प्रमृज्य भाजनानि उद्गृह्णाति, उद्गृह्य यत्रैव श्रमणः भगवान् महावीरः तत्रैव उपागच्छति, उपागम्य श्रमणं भगवन्तं महावीरं वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्यित्वा श्रमणस्य भगवतः महावीरस्य अन्तिकात् शाणकोष्ठक–चैत्यात् प्रतिनिष्क्रामति, प्रतिनिष्क्रम्य अत्वरितमचपलमसम्भ्रान्तं युगान्तर-प्रलोकनया दृष्ट्या पुरतः ईर्यां शोधयन्-शोधयन् यत्रैव मेण्ढियग्रामं नगरं तत्रैव उपागच्छति, उपागम्य मेण्ढियग्रामं नगरं मध्यमध्येन यत्रैव रेवत्याः 'गाहावतिणीए' गृहं तत्रैव उपागच्छति, उपागम्य रेवत्याः। 'गाहावतिणीए' गृहम् अनुप्रविष्टः।

सिंह द्वारा रेवती के घर से भैषज्य आनयन-पद

१५३. श्रमण भगवान् महावीर के इस प्रकार कहने पर सिंह अनगार हृष्ट-तुष्ट हो गया। उसका चित्त आनंदित, नंदित, प्रीतिपूर्ण मन वाला, परम सौमनस्य-युक्त, हर्ष से विकस्वर हृदय वाला हो गया। उसने श्रमण भगवान् महावीर को वंदन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार कर त्वरता, चपलता और संभ्रम-रहित होकर मुखवस्त्रिका का प्रतिलेखन किया, प्रतिलेखन कर पात्र-वस्त्र का प्रतिलेखन किया, प्रतिलेखन कर पात्रों का प्रमार्जन किया, प्रमार्जन कर पात्रों को हाथ में लिया, हाथ में लेकर जहां श्रमण भगवान् महावीर थे, वहां आया, आकर श्रमण भगवान् महावीर को वंदन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार कर श्रमण भगवान् महावीर के पास से, शान कोष्ठक चैत्य से प्रतिनिष्क्रमण किया, प्रतिनिष्क्रमण कर त्वरता, चपलता और संभ्रम-रहित होकर युगप्रमाण भूमि को देखने वाली दृष्टि से ईर्या का शोधन करते हुए शोधन करते हुए, जहां मेंढियग्राम नगर था, वहां आया, आकर मेंढियग्राम नगर के बीचों-बीच जहां गृहस्वामिनी रेवती का घर था, वहां आया, आकर रेवती के घर में अनुप्रविष्ट हो गया।

१५४. तए णं सा रेवती गाहावतिणी सीहं अणगारं एज्जमाणं पासति, पासित्ता हट्ठतुट्ठा खिप्पामेव आसणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठेत्ता सीहं अणगारं सत्तट्ठ पयाइं अणुगच्छइ, अणुगच्छित्ता तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेति, करेत्ता वंदति नमंसति, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी–संदिसंतु णं देवाणुप्पिया! किमागमणप्पयोयणं ?

ततः सा रेवती गाहावतिणी सिंहम् अनगारम् आयन्तं पश्यति, दृष्ट्वा हृष्टतुष्टा क्षिप्रमेव आसनात् अभ्युत्तिष्ठति, अभ्युत्थाय सिंहम् अनगारं सप्ताष्टौ पदानि अनुगच्छति, अनुगम्य त्रिः आदक्षिण-प्रदक्षिणां करोति, कृत्वा वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्यित्वा एवमवादीत्–संदिशन्तु देवानुप्रियाः ! किमागमन-प्रयोजनम्?

१५४. गृहस्वामिनी रेवती ने सिंह अनगार को आते हुए देखा। वह देखकर हृष्ट-तुष्ट हो गई। शीघ्र ही आसन से उठी, उठकर सात-आठ पैर सिंह अनगार के सामने गई। सामने जाकर दायीं ओर से प्रारम्भ कर तीन बार प्रदक्षिणा की। प्रदक्षिणा कर वंदन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार कर इस प्रकार कहा–देवानुप्रिय! आप संदेश दें–आपके आगमन का प्रयोजन क्या है?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१५५. तए णं से सीहे अणगारे रेवतिं गाहावइणिं एवं वयासी–एवं खलु तुमे देवाणुप्पिए! समणस्स भगवओ महावीरस्स अट्ठाए दुवे कवोय-सरीरा उवक्खडिया, तेहिं नो अट्ठो, अत्थि ते अण्णे पारियासिए मज्जारकडए कुक्कुडमंसए एयमाहराहि, तेणं अट्ठो॥

ततः सः सिंहः अनगारः रेवतीं 'गाहावतिणीं' एवमवादीत्–एवं खलु त्वया देवानुप्रिये! श्रमणस्य भगवतः महावीरस्य अर्थाय द्वौ कपोत-शरीरौ उपस्कृतौ, ताभ्याः नो अर्थः, अस्ति ते अन्यः पारिवासितः मार्जारकृतकः कुक्कुटमांसकः एतम् आहर, तेन अर्थः।

१५५. सिंह अनगार ने गृहस्वामिनी रेवती से इस प्रकार कहा–देवानुप्रिय! श्रमण भगवान् महावीर के लिए तुमने दो कपोत-शरीर अर्थात् मकाय के फल पकाए हैं, वे प्रयोजनीय नहीं हैं। तुमने कल अन्य बासी रखा हुआ, मार्जारकृत अर्थात् चित्रक वनस्पति से भावित कुक्कुटमांस अर्थात् चौपतिया शाक है, वह लाओ, वह प्रयोजनीय है।

भाष्य

१. सूत्र १५२-१५५

इस प्रकरण में कुछ ऐसे शब्दों का प्रयोग हुआ है, जो बड़े अटपटे लगते हैं, क्योंकि सुनने में मांसवाचक होने से संदेह होता है कि क्या मांसाहार का वर्जन उस समय नहीं था? किन्तु यह भ्रांति है क्योंकि जिन शब्दों का प्रयोग यहां हुआ है वे सब 'शाकाहार' या वनस्पति के अर्थ में प्रयुक्त है।[1] वृत्तिकार ने भी यह शंका प्रस्तुत की है,[2] पर उसका समाधान अपने प्रकार से करने का प्रयत्न किया है। हमें इन शब्दों के अर्थों को जानने के लिए वनस्पति-कोश एवं प्राचीन निघण्टु आदि को सामने रखना होगा।

इस प्रसंग में तीन शब्दों पर विचार करना अपेक्षित है–

१. कवोय-सरीरा
२. मज्जारकडए
३. कुक्कुडमंसए।

कपोत शरीर

कवोय–सरीर शब्द का सामान्य अर्थ कपोत-शरीर अर्थात् 'कबूतर का शरीर' ऐसा समझा जाएगा। किन्तु वनस्पति-कोश-साहित्य के अनुशीलन से पता चला है कि 'कपोत शरीर' नाम 'मकोय' नामक वनस्पति का है, जिसका दूसरा प्रसिद्ध नाम 'काममाची' भी

---

१. जै. आ. व. को. पृ. ३१०–मांस प्रकरण–आगमों में पशु, पक्षी और जलचर के नाम वनस्पति के अर्थ में प्रयुक्त हुए हैं। कहीं-कहीं इनके नाम के साथ मांस शब्द का प्रयोग भी हुआ है, जिससे ये शब्द चिंतनीय बन गए हैं। सूर्य प्रज्ञप्ति के १०वें पाहुड के १२०वें सूत्र में कृत्तिका नक्षत्र से लेकर भरणीनक्षत्र तक २८ नक्षत्रों का भोजन दिया गया है। उसमें लिखा है–उस नक्षत्र में वे वस्तु खाकर जाने से कार्य की सिद्धि होती है।

१. रोहिणी नक्षत्र में मांस, मृगसरा नक्षत्र में मृगमांस, अश्लेषा नक्षत्र में दीपिक मांस, पूर्व फाल्गुनी नक्षत्र में मेष मांस, उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र नखी मांस उत्तराभाद्रपदा में वराहमांस, रेवति नक्षत्र में जलचर मांस, अश्विनी नक्षत्र में तित्तिरि मांस खाकर जाने से कार्य की सिद्धि होती है।

२. भगवती सूत्र में उल्लेख है कि गोशाल के द्वारा तेजोलब्धि का प्रयोग करने से भगवान महावीर के शरीर में दाह लग गई। उस समय अपने शिष्य सिंह नामक अणगार को कहा–तुम मेंढियाग्राम नामक नगर में रेवती गाथापति के घर जाओ। उसने मेरे लिए दो कपोतशरीर उपस्कृत किया है, उसको मत लाना, लेकिन बासी मार्जारकृत कुक्कुटमांस है उसको ले आना। यहां कपोतशरीर और कुक्कुटमांस ये शब्द चिंतनीय हैं। ऊपर के दोनों सूत्रों–भगवती और सूर्यप्रज्ञप्ति में शब्दों के साथ मांस शब्द आया है। पहले मांस शब्द विमर्शनीय है। मांस शब्द का अर्थ मांस ही होता है या इसका दूसरा अर्थ भी उपयुक्त हो सकता है? पक्षी या पशु वाचक शब्द वनस्पति विशेष के वाचक हैं। ऐसी मान्यता जैनों में परम्परा से आ रही है। तब मांस शब्द का अर्थ भी वनस्पति के संदर्भ में खोजना आवश्यक हो गया है। इस प्रश्न का समाधान हमें आयुर्वेद के ग्रंथों में ही खोजना होगा। श्रीमद् वृद्धवाग्भट्ट विरचित अष्टांगसंग्रह के सूत्रस्थान सप्तमोध्याय, श्लोक १६८, पृ. ६३ पर ध्यान देना होगा–

भल्लातकस्य त्वग् मांसं बृंहणं स्वादु शीतलम्॥

भिलावे की छाल और मांस बृंहण (रस रक्तादिवर्धक), स्वादु तथा शीतल होते हैं। भिलावे के मांस का अर्थ होता है–भिलावे का गूदा भाग।

दूसरा उदाहरण कैयदेव निघंटु के ओषधिवर्ग पृ. ५० के श्लोक हैं। श्लोक २५३ और २५४ में बीजपूर (बिजौरा) के पर्यायवाची नाम हैं। श्लोक २५५ और २५६ में उसके गुणधर्म हैं। जो यहां उद्धृत किए जा रहे हैं:

उष्णं वातकफश्वासकासतृष्णावमिप्रणुत्।
तस्य त्वक् कटु तिक्तोष्णा गुर्वी स्निग्धा च दुर्जरा॥२५५॥
कृमिश्लेष्मानिलहरा मांसं स्वादु हिमं गुरु।
बृंहणं श्लेष्मलं स्निग्धं, पित्तमारुतनाशनम्॥२५६॥

बिजौरे का फल उष्ण वीर्य होता है। वात एवं कफ नाशक, श्वास, कास, तृष्णा तथा वमन को दूर करने वाला होता है। इसके फल की त्वचा–कटुतिक्त, उष्णवीर्य, गुरु, स्निग्ध, चिरपाकी, कृतिहर, कफ और वात को दूर करने वाली होती है।

मांस–फल का गूदा–स्वादिष्ट, शीतल, गुरु, बृंहण (धातुवर्धक) कफवर्धक, स्निग्ध तथा वातपित्त को नष्ट करता है।

(कैयदेव निघंटु ओषधि वर्ग. पृ. ५१)

ऊपर के दो प्रमाणों से स्पष्ट है कि मांस शब्द का प्रयोग वनस्पतियों के गूदे के अर्थ में होता है। प्रज्ञापना (१/३५) में एगट्ठिया (एकास्थिक) वर्ग है, जिसमें ३२ वनस्पतियों के नाम हैं। एकास्थिक का अर्थ है–एक गुठली वाले। यहां अस्थि शब्द गुठली के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। त्वचा, मज्जा, नस, गर्भाशय आदि शब्द भी वनस्पति के विवरण में दिए हुए हैं। इससे स्पष्ट है कि अस्थि और मांस शब्द वनस्पति के लिए प्रयुक्त हुए हैं।

२. भ. वृ. १५/१५५–'दुवे कवोया' इत्यादेः श्रूयमाणमेवार्थं केचिन्मन्यते, अन्ये त्वाहुः–कपोतकः पक्षिविशेषस्तद्वद् ये फले वर्णसाधर्म्यात्ते कपोते–कूष्माण्डे ह्रस्वे कपोते कपोतके ते च ते शरीरे वनस्पतिजीवदेहत्वात् कपोतकशरीरे, अथवा कपोतकशरीरे इव धूसरवर्णसाधर्म्यादेव कपोतकशरीरे कूष्माण्डफले एव ते उपसंस्कृते–संस्कृते।

'मज्जारकडए' इत्यादेरपि केचित् श्रूयमाणमेवार्थं मन्यन्ते, अन्ये त्वाहुः मार्जारो–वायुविशेषस्तदुपशमनाय कृतं–संस्कृतं मार्जारिकृतम्, अपरे त्वाहुः–मार्जारो–विरालिकाभिधानो वनस्पतिविशेषस्तेन कृतं–भावितं यत्तत्तथा, किं तत्? इत्याह–'कुर्कुटकमांसकं' बीजपूरकं कटाहम्।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है। इस विषय में 'जैन आगम : वनस्पति कोश' का निम्नांकित विवेचन मननीय है[1]–

कवोयसरीर (कपोतशरीर) मकोय (भ. १५/१५२)

विमर्श–कपोत का पर्यायवाची एक नाम पारापत है। पारापत के फल कबूतर के अंडों के समान होते हैं। पारापतपदी आयुर्वेद में काकजंघा को कहते हैं। धन्वन्तरि निघंटु पृ. १८६ में काकजंघा को काकमाची विशेष माना है। काकमाची शब्द मकोय शाक का वाचक है।

पारापत के पर्यायवाची नाम–

सारास्लकः सारफलो, रसालश्च पारापतः॥३२५॥
कपोताण्डोपमफलो, महापारावतोऽपरः॥

सारास्ल, सारफल, रसाल ये पारावत के पर्याय हैं, इसके फल कबूतर के अंडों के सदृश होते हैं। (कैयदेव नि. औषधिवर्ग पृ. ६२)

पारापतपदी के पर्यायवाची नाम–

काकजङ्घा, ध्वाङ्क्षजङ्घा, काकपादा तु लोमशा
पारापतपदी दासी, नदीक्रान्ता प्रचीबला॥२०॥

ध्वाङ्क्षजङ्घा, काकपादा, लोमशा, पारापतपदी, नदीक्रान्ता और प्रचीबला ये काकजंघा (काकमाची विशेष) के पर्याय हैं।

(धन्वतरि नि. ४/२०, पृ. १८६)

शास्त्रीय गुणों की दृष्टि से काकजंघा विषमज्वरनाशक, कफपित्तशामक, तिक्त, चर्मरोगनाशक एवं रक्तपित्त बाधिर्य, क्षत, विष एवं कृमि में लाभदायक होनी चाहिए।

(भाव. नि. ४/२०, पृ. १८६)

काकमाची के अन्य भाषाओं में नाम–

हिन्दी–मकोय, छोटीमकोय। बंगाली–काकमाची, गुडकामाई। मराठी–कानोणी। गुजराती–पीलुड़ी। फारसी–रूबाह तुर्बुक। अरबी इनबुस्सा लव। अंग्रेजी–ग्रीवशप छलसहीहरवश (गार्डेन नाइटशेड)। ले.–Solanum nigrum linn (सोलॅनम् नाइग्रम् लिन.) Fam. Solanaceae (सोलेनॅसी)।

उत्पत्ति स्थान–यह प्रायः सब प्रान्तों में एवं ८००० फीट तक पश्चिम हिमालय में उत्पन्न होती है।

विवरण–इसका क्षुप १ से १.५ हाथ तक ऊंचा होता है और शाखाएं सघन होती हैं। यह गर्मी में नष्ट हो जाता है और वर्षा के अंत में उत्पन्न हो जाड़े में खूब हराभरा दिखलाई पड़ता है। इसके पत्ते अखंड, लहरदार या कभी-कभी दन्तुर या खंडित, लट्वाकार, प्रासवत् लट्वाकार या आयताकार, ४×१.७ इंच तक बड़े और उनका फलक प्रायः वृन्त पर नीचे तक फैला रहता है।

पुष्प छोटे, सफेद और पत्र कोण से हटकर निकले हुए पुष्पदंड पर समस्थ मूर्धजक्रम में निकले रहते हैं। फल गोल और पकने पर काले हो जाते हैं। कभी-कभी लाल या पीले भी होते हैं।

(भाव. नि. पृ. ४३८)

इसका तात्पर्य यह हुआ कि यहां कवोयसरीर शब्द 'मकोय' के फल के लिए प्रयुक्त है, न कि कबूतर के शरीर के लिए।

यद्यपि वृत्तिकार ने इसका अर्थ कुष्मांड यानी कुम्हड़ा (या पेठा) किया है तथा उसका आधार 'वर्ण-साम्य' बताया है, फिर भी कोशकारों के अनुसार यह स्पष्टतः 'मकोय' का ही द्योतक सिद्ध होता है।

मज्जारकड

'मार्जारकृत' का सामान्यतः संबंध 'मार्जार' यानी बिल्ली के साथ जुड़ता है, किन्तु वनस्पति कोशों के आधार पर इसका अर्थ 'रक्त चित्रक' होता है। 'जैन आगम वनस्पति कोश' के अनुसार–

मज्जारकड–मज्जार (मार्जार) रक्त चित्रक भ. १५/१५२।

मार्जार के पर्यायवाची नाम–

कालो व्यालः कालमूलोऽतिदीप्यो
मार्जारोऽग्निदाहकः पावकश्च।
चित्राङ्गोऽयं रक्तचित्रो महाङ्गः,
स्यादुदाहृश्चित्रकोऽन्यो गुणाढ्यः॥४६॥

काल, व्याल, कालमूल, अतिदीप्य, मार्जार, अग्नि, दाहक, पावक, चित्राङ्ग, रक्तचित्र तथा महाङ्ग ये सब रक्त चित्रक के ग्यारह नाम हैं। (राज. नि. ६/४६, पृ. १४३)

चित्रक की उपयोगिता–

विषज्वर में यकृत, प्लीहा वृद्धि होकर पाण्डु हो गया हो तो इसका सेवन करना चाहिए।

विमर्श–प्रस्तुत प्रकरण में मज्जारशब्द चोपतिया शाक में संस्कार (पुट) देने के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। चित्रक का पुट हुआ चोपतिया शाक विषज्वर को नाश करने में द्विगुणित लाभ करता है। क्योंकि चोपतिया शाक त्रिदोषघ्न और ज्वर नाशक है और रक्त चित्रक भी विषम ज्वर नाशक है इसीलिए भगवान् महावीर ने सिंह अनगार के द्वारा रेवती के घर से यह संस्कारित शाक मंगाया था।

वृत्तिकार ने 'मर्जार' का संबंध वायु विशेष या 'विरालिका' नामक वनस्पति-विशेष के साथ जोड़ा है, पर वनस्पति द्वारा प्रदत्त विवरण अधिक संगत और प्रामाणिक प्रतीत होता है।[2]

कुक्कुडमंस

'कुर्कुट' अर्थात् मुर्गे और 'मंस' अर्थात् 'मांस' के साथ शाब्दिक संबंध जुड़ने से यह शब्द भ्रामक बन जाता है। जैन आगम वनस्पति कोश में इसकी मीमांसा इस प्रकार की गई है–

कुक्कुडमंस–(कुक्कुटमांस) चोपतिया शाक, सुनिषण्णक भ. १५/१५२।

कुक्कुट के पर्यायवाची नाम–

शितिवारः शितिवरः स्वस्तिकः सुनिषण्णकः
श्रीवारकः सुचिपत्रः, पर्णकः कुक्कुटः शिखी॥

शितिवार, शितिवर, स्वस्तिक, सुनिषण्णक, श्रीवारक, सूचिपत्र, पर्णक, कुक्कुट और शिखी ये चौपतिया के संस्कृत नाम हैं।

(भाव. नि. शाकवर्ग. पृ. ६/७३, ६७४)

अन्य भाषाओं में नाम–

हिन्दी–चौपतिया, सुनसुनिया साग। बंगाली सुषुणीशाक, शुनिशाक, शुशुनी शाक। लेटिन–Marsilea minuta linn (मार्सिलिया माइन्सूटा लिन.) Fam. Rhizocarpeae (राइज्झो कार्पी)।

१. जै. आ. व. को., पृ. ३११-३१२।
२. जै. आ. व. को., पृ. ३१४-३१५।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उत्पत्ति स्थान–यह शाकवर्गीय वनस्पति भारतवर्ष के प्रायः सब प्रान्तों के सजल स्थानों में कहीं न कहीं पायी जाती है। वर्षाऋतु में यह अधिक उत्पन्न होती है।

विवरण–इसके नीचे पतला एवं सशाख कांड होता है। इसके पत्ते पानी के ऊपर तैरते हुए दिखाई पड़ते हैं। प्रत्येक पत्रदंड पर चार-चार पत्ते स्वस्तिक क्रम में निकले रहते हैं, इस कारण इसे चतुष्पत्री या चौपतिया भी कहते हैं, पत्ते और दंड आकार के छोटे बड़े हुआ करते हैं। पत्ते चांगेरी के पत्तों के समान किन्तु उनसे बड़े होते हैं। बीजाणुकोष एक विशेष प्रकार की अंडाकार परन्तु कुछ-कुछ चिपटी रचना के अन्दर रहते हैं, जो फलों की तरह मालूम होती है। इसका साग निद्राजनक तथा दीपन गुणवाला होता है। निद्रा लाने के लिए तथा अग्निमांद्य में इसका उपयोग करते हैं। (भा. नि. शाकवर्ग वृ. ६७४)

विमर्श–बंगाल में यह शाक बहुलता से खाया जाता है। भगवान् महावीर ने ज्वरदोष को मिटाने के लिए इस शाक को मंगाया था। त्रिदोषघ्न और ज्वरनाशक इस शाक के गुण हैं।[1]

यहां पर वृत्तिकार ने इसका संबंध बीजपूरक कटाह यानी बिजौरा पाक के साथ जोड़ा है, पर वनस्पति कोश से प्राप्त जानकारी अधिक प्रामाणिक प्रतीत होती है।

उपर्युक्त समग्र विवेचन से यह भलीभांति स्पष्ट हो रहा है कि भ्रांतिवश कुछ विद्वान् केवल शाब्दिक साम्य के आधार पर यह मान्यता बनाते रहे हैं कि जैन आगम में जैन मुनियों द्वारा 'मांसाहार' के उल्लेख मिलते हैं।

वनस्पति और प्राणी-जगत् के नामों का साम्य केवल प्राचीन प्राकृत-संस्कृत भाषा में ही नहीं, बहुधा अन्य भाषाओं में भी प्रचलित है। आधुनिक वनस्पति-विज्ञान में अनेक वनस्पतियों के नाम अंग्रेजी में भी प्राणियों के नाम के साथ सादृश्य रखते हैं।[2] अस्तु, यह अपेक्षित है कि उपरितन सादृश्य के आधार पर ही विद्वान किसी बिभत्स निष्कर्ष पर न पहुंचे; नए अनुसंधान के लिए सूक्ष्म अनुशीलन और ठोस प्रमाणों का आधार लिया जाय।[3]

१५६. तए णं सा रेवती गाहावइणी सीहं अणगारं एवं वयासी–केस णं सीहा! से नाणी वा तवस्सी वा, जेणं तव एस अट्ठे मम ताव रहस्सकडे हव्वमक्खाए, जओ णं तुमं जाणासि?

ततः सा रेवती 'गाहावइणी' सिंहम् अनगारम् एवमवादीत्–कः एषः सिंहः ! सः ज्ञानी वा तपस्वी वा, येन तव एषः अर्थः मम तावत् रहस्यकृतः 'हव्वं' आख्यातः यतः त्वं जानासि?

१५६. गृहस्वामिनी रेवती ने सिंह अनगार से इस प्रकार कहा–सिंह! वह ऐसा ज्ञानी अथवा तपस्वी कौन है जिसने मेरा यह रहस्यपूर्ण अर्थ बताया, जिससे यह तुम जानते हो?

१५७. तए णं से सीहे अणगारे रेवइं गाहावइणिं एवं वयासी–एव खलु रेवई! ममं धम्मायरिए धम्मोवदेसए समणे भगवं महावीरे उप्पण्णनाणदंसणधरे अरहा जिणे केवली तीयपच्चुप्पन्नमणागयवियाणए सव्वण्णू सव्वदरिसी जेणं मम एस अट्ठे तव ताव रहस्सकडे हव्वमक्खाए, जओ णं अहं जाणामि॥

ततः सः सिंहः अनगारः रेवतीं 'गाहावइणिं' एवमवादीत्–एवं खलु रेवति ! मम धर्माचार्यः धर्मोपदेशकः श्रमणः भगवान् महावीरः उत्पन्नज्ञान-दर्शनधरः अर्हत् जिनः केवली अतीत-प्रत्युत्पन्नानागतविज्ञायकः सर्वज्ञः सर्वदर्शी येन मम एषः अर्थः तव तावत् रहस्यकृतः 'हव्वं' आख्यातः, यद् अहं जानामि।

१५७. सिंह अनगार ने गृहस्वामिनी रेवती से इस प्रकार कहा–रेवती! मेरे धर्माचार्य धर्मोपदेशक श्रमण भगवान् महावीर उत्पन्न-ज्ञान-दर्शन के धारक, अर्हत्, जिन, केवली, अतीत, वर्तमान और भविष्य के विज्ञाता, सर्वज्ञ और सर्वदर्शी हैं। उन्होंने मुझे तुम्हारा यह रहस्यपूर्ण अर्थ बताया, जिससे यह मैं जानता हूं।

१५८. तए णं सा रेवती गाहावतिणी सीहस्स अणगारस्स अंतियं अयमट्ठं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठा जेणेव भत्तघरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पत्तगं मोएति, मोएत्ता जेणेव सीहे अणगारे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सीहस्स अणगारस्स पडिग्गहगंसि तं सव्वं सम्मं निस्सिरति॥

ततः सा रेवती गाहावतिणी सिंहस्य अनगारस्य अन्तिकम् एतमर्थं श्रुत्वा निशम्य हृष्टतुष्टा यत्रैव भक्तगृहं तत्रैव उपागच्छति, उपागम्य पात्रकं मुञ्चति, मुक्त्वा यत्रैव सिंहः अनगारः तत्रैव उपागच्छति, उपागम्य सिंहस्य अनगारस्य प्रतिग्रहके तत् सर्वं सम्यक् निसृजति (निस्सिरति)।

१५८. गृहस्वामिनी रेवती सिंह अनगार के पास इस अर्थ को सुनकर, अवधारणकर हृष्ट-तुष्ट हो गई। जहां भोजनगृह था, वहां आई, आकर चौपतिया शाक वाला बर्तन निकाला, निकालकर जहां सिंह अनगार था, वहां आई, वहां आकर सिंह अनगार के पात्र में वह सर्व चौपतिया शाक सम्यक् रूप से निसर्जित किया।

---

१. जै आ. व. को., पृ. ३१२-३१३।

२. New Concepts in Botany, vol. I. pp. 436, 437 (by Dr. Archna Jain).

Name of Vegetation (resembling animal's name)	Botanical Name
Otster Mushroom	Plearicus
Chicken	Polyporus
Wolf Moss	Letharia vulpina
Dog Lichens	Peltigera canina
Old Man's beard	Usnea berbata
Horse tail	Equisetum
Giant horse tail	Calamophyton, Calamites
Maiden hair Fern	Adiantum
Lady Fern	Athyrium

३. देखें, आचार्य महाप्रज्ञ, 'मांसाहार : एक विवेचन', लेख, अर्हत् वचन, वर्ष १३, अंक ३,४, २००१, पृ. १५-१८ कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१५९. तए णं तीए रेवतीए गाहावतिणीए तेणं दव्वसुद्धेणं दायगसुद्धेणं पडिग्गाहगसुद्धेणं तिविहेणं तिकरणसुद्धेणं दाणेणं सीहे अणगारे पडिलाभिए समाणे देवाउए निबद्धे, संसारे परित्तीकए गिहंसि य से इमाइं पंच दिव्वाइं पाउब्भूयाइ, तं जहा–वसुधारा वुट्ठा, दसद्धवण्णे कुसुमे निवातिए, चेलुक्खेवे कए, आहयाओ देवदुंदुभीओ, अंतरा वि य णं आगासे अहो दाणे, अहो दाणे त्ति घुट्ठे॥

ततः तया रेवत्या तेन द्रव्यशुद्धेन दायकशुद्धेन प्रतिग्राहकशुद्धेन त्रिविधेन त्रिकरणशुद्धेन दानेन सिंहः अनगारः प्रतिलाभितः सन् देवायुष्कः निबद्धः, संसारः परीतीकृतः गृहे च तस्या इमानि पञ्च दिव्यानि प्रादुर्भूतानि, तद्यथा– वसुधारा वृष्टा, दशार्धवर्णः कुसुमः निपातितः, आहताः देवदुन्दु-भयः, अन्तरा अपि च आकाशे अहोदानम् अहोदानम् इति घुष्टम्।

१५९. गृहस्वामिनी रेवती ने द्रव्य शुद्ध,दाता शुद्ध, प्रतिग्राहक शुद्ध–त्रिविध, त्रिकरण शुद्ध दान के द्वारा सिंह अनगार को प्रतिलाभित कर देवायुष्य का निबंध किया, संसार को परीत किया, उसके घर ये पांच दिव्य प्रकट हुए, जैसे–रत्नों की धारा निपातवृष्टि, पांच वर्ण वाले फूलों की वृष्टि, ध्वजा फहराने लगी, देव दुन्दुभियां बजीं, आकाश के अंतराल में 'अहोदानम् अहोदानम्' की उद्घोषणा हुई।

१६०. तए णं रायगिहे नगरे सिंघाडग--तिग-चउक्क-चच्चर-चउम्मुह-महापह--पहेसु बहुजणो अण्णमण्णस्स एवमाइक्खइ एवं भासइ एवं पण्णवेइ एवं परूवेइ–धन्ना णं देवाणुप्पिया! रेवई गाहावइणी, कयत्था णं देवाणुप्पिया! रेवई गाहावइणी, कयपुण्णा णं देवाणुप्पिया! रेवई गाहावइणी, कयलक्खणा णं देवाणुप्पिया! रेवई गाहावइणी, कया णं लोया देवाणुप्पिया! रेवतीए गाहावतिणीए, सुलद्धे णं देवाणुप्पिया! माणुस्सए जम्मजीवियफले रेवतीए गाहावतिणीए, जस्स णं गिहंसि तहारूवे साधू साधुरूवे पडिलाभिए समाणे इमाइं पंच दिव्वाइं पाउब्भूयाइं, तं जहा–वसुधारा वुट्ठा जाव अहो दाणे, अहो दाणे त्ति घुट्ठे, तं धन्ना कयत्था कयपुण्णा कयलक्खणा, कया णं लोया, सुलद्धे माणुस्सए जम्मजीवियफले रेवतीए गहावतिणीए, रेवतीए गाहावतिणीए॥

ततः राजगृहे नगरे शृंगाटक-त्रिक-चतुष्क-चत्वर-चतुर्मुख-महापथ-पथेषु बहुजनः अन्योन्यम् एवमाख्याति एवं भाषते एवं प्रज्ञापयति, एवं प्ररूपयति– धन्या देवानुप्रियाः! रेवती गाहावाइणी, कृतार्था देवानुप्रियाः! रेवती 'गाहावइणी', कृतपुण्या देवानुप्रियः! रेवती 'गाहावइणी', कृतलक्षणा देवानुप्रियाः! रेवती 'गाहावइणी', कृताः लोकाः देवानुप्रियाः! रेवत्या 'गाहावतिणीए' सुलब्धं देवानुप्रियाः! मानुष्यकं जन्मजीवितफलं रेवत्या 'गाहावतिणीए' यस्य गृहे तथारूपः साधु साधुरूपे प्रतिलाभिते सति इमानि पञ्च दिव्यानि प्रादुर्भूतानि, तद्यथा– वसुधारा वृष्टा यावत् अहोदानम् अहोदानम् इति घुष्टम्, तत् धन्या कृतार्था कृतपुण्या कृतलक्षणा, कृताः लोकाः, सुलब्धं मानुष्यकं जन्म–जीवितफलं रेवत्या 'गाहावतिणीए' रेवत्या 'गाहावतिणीए'।

१६०. राजगृह[1] नगर के शृंगाटकों, तिराहों, चौराहों, चौहटों, चार द्वार वाले स्थानों, राजमार्गों और मार्गों पर बहुजन इस प्रकार आख्यान, भाषण, प्रज्ञापन एवं प्ररूपणा करते हैं–देवानुप्रियो! गृहस्वामिनी रेवती धन्या है, देवानुप्रियो! गृहस्वामिनी रेवती कृतार्थ है, देवानुप्रियो! गृहस्वामिनी रेवती कृतपुण्या है। देवानुप्रियो! गृहस्वामिनी रेवती कृतलक्षणा है। देवानुप्रियो! गृहस्वामिनी रेवती ने इहलोक और परलोक–दोनों को सुधार लिया है। देवानुप्रियो! गृहस्वामिनी ने मनुष्य जन्म और जीवन का फल अच्छी तरह से प्राप्त किया है, जिसके घर में तथारूप साधु के साधु रूप में प्रतिलाभित होने पर ये पांच दिव्य प्रकट हुए, जैसे–रत्नों की धारा निपातवृष्टि यावत् 'अहोदानम्-अहोदानम्' की उद्घोषणा। इसलिए वह धन्या, कृतार्था कृतपुण्या और कृतलक्षणा है। उसने इहलोक और परलोक दोनों को सुधारा है। गृहस्वामिनी रेवती ने मनुष्य जन्म और जीवन का फल अच्छी तरह से प्राप्त किया है।

भाष्य

१. सूत्र १६०

यहां मूल पाठ में 'रायगिहे' है[1], जबकि यह सारा प्रसंग 'मेंढियग्राम' का चल रहा है। किस कारण से यहां 'राजगृह' का उल्लेख हो गया है–यह विमर्शनीय है। संभवतः 'जाव' की पूर्ति में यह विपर्यास हो गया हो, ऐसा लगता है।

१६१. तए णं से सीहे अणगारे रेवतीए गाहावतिणीए गिहाओ पडिनिक्खमति, पडिनिक्खमित्ता मेंढियगामं नगरं मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जहा गोयमसामी जाव भत्तपाणं पडिदंसेति, पडिदंसेत्ता समणस्स भगवओ

ततः सः सिंहः अनगारः रेवत्याः 'गाहावतिणीए' गृहात् प्रतिनिष्क्रामति, प्रतिनिष्क्रम्य मेण्ढियग्रामं नगरं मध्यमध्येन निर्गच्छति, निर्गत्य यथा गौतमस्वामी यावत् भक्तपानं प्रतिदर्शयति, प्रतिदर्श्य श्रमणस्य

१६१. सिंह अनगार ने गृहस्वामिनी के घर से प्रतिनिष्क्रमण किया, प्रतिनिष्क्रमण कर मेंढ़िय ग्राम नगर के बीचोंबीच निर्गमन किया, निर्गमन कर गौतम स्वामी की भांति यावत् भक्त-पान दिखलाया, दिखलाकर श्रमण भगवान् महावीर के हाथ में उस सर्व

१. अंगसुत्ताणि, भाग २ (भगवई), १५/१६०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महावीरस्स पाणिंसि तं सव्वं सम्मं निस्सिरति॥

भगवतः महावीरस्य पाणौ तत् सर्वं सम्यक् निसृजति (निस्सिरति)।

(चौपतिया शाक) का निसर्जन किया।

भगवओ आरोग्ग-पदं

१६२. तए णं समणे भगवं महावीरे अमुच्छिए अगिद्धे अगढिए अणज्झोववन्ने बिलमिव पन्नगभूएणं अप्पाणेणं तमाहारं सरीरकोट्ठगंसि पक्खिवति॥

भगवतः आरोग्य-पदम्

ततः श्रमणः भगवान् महावीरः अमूर्च्छितः अगृद्धः अग्रथितः अनध्युपपन्नः बिलमिव पन्नगभूतेन आत्मना तम् आहारं शरीरकोष्ठके प्रक्षिपति।

भगवान का आरोग्य-पद

१६२. श्रमण भगवान् महावीर ने अमूर्च्छित, अगृद्ध, अग्रथित और अनासक्त होकर बिल में प्रविष्ट सर्प के सदृश अपने आपको बनाकर उस आहार को शरीर रूप कोष्ठक में डाल दिया।

१६३. तए णं समणस्स भगवओ महावीरस्स तमाहारं आहारियस्स समाणस्स से विपुले रोगायंके खिप्पामेव उवसंते, हट्ठे जाए, अरोगे, बलियसरीरे। तुट्ठा समणा, तुट्ठाओ समणीओ, तुट्ठा सावया, तुट्ठाओ सावियाओ तुट्ठा देवा, तुट्ठाओ देवीओ, सदेवमणुयासुरे लोए तुट्ठे—हट्ठे जाए समणे भगवं महावीरे, हट्ठे जाए समणे भगवं महावीरे॥

ततः श्रमणस्य भगवतः महावीरस्य तम् आहारम् आहरतःसतः सः विपुलः रोगातङ्कः क्षिप्रमेव उपशान्तः, हृष्टः जातः अरोगः, बलिकशरीरः। तुष्टाः श्रमणाः, तुष्टाः श्रमण्यः, तुष्टाः श्रावकाः, तुष्टाः श्राविकाः, तुष्टाः देवाः, तुष्टाः देव्यः, सदेवमनुजासुरः लोकः तुष्टः-हृष्टः जातः श्रमणः भगवान् महावीरः, हृष्टः जातः श्रमणः भगवान् महावीरः।

१६३. श्रमण भगवान् महावीर के उस आहार को लेने पर वह विपुल रोग-आतंक शीघ्र ही उपशांत हो गया, शरीर हृष्ट, अरोग और बलिष्ठ हो गया। श्रमण तुष्ट हो गए, श्रमणियां तुष्ट हो गईं, श्रावक तुष्ट हो गए, श्राविकाएं तुष्ट हो गईं, देव तुष्ट हो गए, देवियां तुष्ट हो गईं। देव, मनुष्य असुर-सहित पूरा लोक तुष्ट हो गया—श्रमण भगवान् महावीर हृष्ट हो गए, श्रमण भगवान् महावीर हृष्ट हो गए।

सव्वाणुभूतिस्स उववाय-पदं

१६४. भंतेति! भगवं गोयमे समणं भगवं महावीरं वंदति नमंसति, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—एवं खलु देवाणुप्पियाणं अंतेवासी पाईणजाणवए सव्वाणुभूती नामं अणगारे पगइभद्दए जाव विणीए, से णं भंते! तदा गोसालेणं मंखलिपुत्तेणं तवेणं तेएणं भासरासीकए समाणे कहिं गए? कहिं उववन्ने?

एवं खलु गोयमा! ममं अंतेवासी पाईणजाणवए सव्वाणुभूती नामं अणगारे पगइभद्दए जाव विणीए, से णं तदा गोसालेणं मंखलिपुत्तेणं तवेणं तेएणं भासरासीकए समाणे उड्ढं चंदिम-सूरिय जाव बंभ-लंतक-महासुक्के कप्पे वीइवइत्ता सहस्सारे कप्पे देवत्ताए उववन्ने। तत्थ णं अत्थेगतियाणं देवाणं अट्ठारस सागरोवमाइं ठिती पण्णत्ता। तत्थ णं सव्वाणुभूतिस्स वि देवस्स अट्ठारस सागरोवमाइं ठिती पण्णत्ता।

से णं भंते! सव्वाणुभूती देवे ताओ देव-

सर्वानुभूतेः उपपात-पदम्

भदन्त! अयि! भगवान् गौतमः श्रमणं भगवन्तं महावीरं वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्यित्वा एवमवादीत्—एवं खलु देवानुप्रियाणाम् अन्तेवासी प्राचीनजानपदः सर्वानुभूतिः नाम अनगारः प्रकृतिभद्रकः यावत् विनीतः, सः भदन्त! तदा गोशालेन मंखलिपुत्रेण तपसा तेजसा भस्मराशीकृतः सन् कुत्र गतः? कुत्र उपपन्नः?

एवं खलु गौतम! मम अन्तेवासी प्राचीनजानपदः सर्वानुभूतिः नाम अनगारः प्रकृतिभद्रकः यावत् विनीतः, स तदा गोशालेन मंखलिपुत्रेण तपसा तेजसा भस्मराशीकृतः सन् उर्ध्वं चन्द्रमस्-सूर्यं यावत् ब्रह्म-लान्तक-महाशुक्रान् कल्पान् व्यतिव्रज्य सहस्रारे कल्पे देवत्वेन उपपन्नः। तत्र अस्त्येककानां देवानाम् अष्टादश सागरोपमानि स्थितिः प्रज्ञप्ता। तत्र सर्वानुभूतेः अपि देवस्य अष्टादश सागरोपमानि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

सः भदन्त! सर्वानुभूतिः देवः तस्मात्

सर्वानुभूति का उपपात-पद

१६४. अयि भंते! भगवान् गौतम ने श्रमण भगवान् महावीर से इस प्रकार कहा—देवानुप्रिय का अंतेवासी पूर्व जनपद का निवासी सर्वानुभूति नाम का अनगार प्रकृति से भद्र यावत् विनीत। भन्ते! तब वह मंखलिपुत्र गोशाल के तपःतेज से राख का ढेर होने पर कहां गया है? कहां उपपन्न हुआ है?

गौतम! मेरा अंतेवासी पूर्व जनपद का निवासी सर्वानुभूति नाम का अनगार—प्रकृति से भद्र यावत् विनीत। मंखलिपुत्र गोशाल के तपः-तेज से राख का ढेर होने पर ऊर्ध्व चंद्र-सूर्य यावत् ब्रह्म, लांतक, महाशुक्र कल्प का व्यतिक्रमण कर सहस्रार कल्प में देव रूप में उत्पन्न हुआ है। वहां कुछ देवों की स्थिति अठारह सागरोपम प्रज्ञप्त है। सर्वानुभूति देव की स्थिति अठारह सागरोपम प्रज्ञप्त है।

भंते! सर्वानुभूति देव उस देवलोक से आयु-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लोगाओ आउक्खएणं भवक्खएणं ठिइक्खएणं अणंतरं चयं चइत्ता कहिं गच्छिहिति? कहिं उववज्जिहिति?
गोयमा! महाविदेहे वासे सिज्झिहिति जाव सव्वदुक्खाणं अंतं करेहिति॥

देवलोकात् आयुःक्षयेण भवक्षयेण स्थितिक्षयेण अनन्तरं च्यवं च्युत्वा कुत्र गमिष्यति? कुत्र उपपत्स्यते?
गौतम ! महाविदेहे वर्षे सेत्स्यति यावत् सर्वदुःखानाम् अन्तं करिष्यति।

क्षय, भव-क्षय और स्थिति-क्षय के अनंतर च्यवन कर कहां जाएगा? कहां उपपन्न होगा?

गौतम! महाविदेह वास में सिद्ध होगा यावत् सब दुःखों का अंत करेगा।

सुनक्खत्तस्स उववाय-पदं

सुनक्षत्रस्य उपपात-पदम्

सुनक्षत्र का उपपात-पद

१६५. एवं खलु देवाणुप्पियाणं अंतेवासी कोसलजाणवए सुनक्खत्ते नामं अणगारे पगइभद्दए जाव विणीए। से णं भंते! तदा गोसालेणं मंखलिपुत्तेणं तवेणं तेएणं परितावि‍ए समाणे कालमासे कालं किच्चा कहिं गए? कहिं उववन्ने? एवं खलु।
गोयमा! ममं अंतेवासी सुनक्खत्ते नामं अणगारे पगइभद्दए जाव विणीए, से णं तदा गोसालेणं मंखलिपुत्तेणं तवेणं तेएणं परितावि‍ए समाणे जेणेव ममं अंतिए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता वंदति नमंसति, वंदित्ता नमंसित्ता सयमेव पंच महव्वयाइं आरुभेति, आरुभेत्ता समणा य समणीओ य खामेति, खामेत्ता आलोइय-पडिक्कंते समाहिपत्ते कालमासे कालं किच्चा उड्ढं चंदिम-सूरिय जाव आणयपाणयारणे कप्पे वीइवइत्ता अच्चुए कप्पे देवत्ताए उववन्ने। तत्थ णं अत्थेगतियाणं देवाणं बावीसं सागरोवमाइं ठिती पण्णत्ता। तत्थ णं सुनक्खत्तस्स वि देवस्स बावीसं सागरोवमाइं ठिती पण्णत्ता।

सुनक्षत्रस्य उपपात-पदम्

एवं खलु देवानुप्रियाणाम् अन्तेवासी कोशलजानपदः सुनक्षत्रः नाम अनगारः प्रकृतिभद्रकः यावत् विनीतः। सः भदन्त ! तदा गोशालेन मंखलिपुत्रेण तपसा तेजसा परितापितः सन् कालमासे कालं कृत्वा कुत्र गतः? कुत्र उपपन्नः?
एवं खलु गौतम ! मम अन्तेवासी सुनक्षत्रः नाम अनगारः प्रकृतिभद्रकः यावत् विनीतः सः तदा गोशालेन मंखलिपुत्रेण तपसा तेजसा परितापितः सन् यत्रैव अन्तिकं तत्रैव उपागच्छति उपागम्य वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्यित्वा स्वयमेव पञ्च महाव्रतानि आरोहति, आरुह्य श्रमणान् च श्रमणीः च क्षमयति, क्षमयित्वा आलोचित-प्रतिक्रान्तः समाधिप्राप्तः कालमासे कालं कृत्वा ऊर्ध्वं चन्द्रमस्-सूर्यं यावद् आनतप्राणतारणान् कल्पान् व्यतिव्रज्य अच्युते कल्पे देवत्वेन उपपन्नः। तत्र अस्त्येककानां देवानां द्वाविंशतिः पल्योपमानि स्थितिः प्रज्ञप्ता। तत्र सुनक्षत्र-स्यापि देवस्य द्वाविंशतिः सागरोपमानि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

सुनक्षत्र का उपपात-पद

१६५. देवानुप्रिय का अंतेवासी कौशल जनपद-निवासी सुनक्षत्र नाम का अनगार–प्रकृति से भद्र यावत् विनीत। भंते! मंखलिपुत्र गोशाल के तपःतेज से परितापित होकर कालमास में मृत्यु को प्राप्त कर वह कहां गया है? कहां उपपन्न हुआ है?

गौतम! मेरा अंतेवासी सुनक्षत्र नाम का अनगार–प्रकृति से भद्र यावत् विनीत। मंखलिपुत्र गोशाल के तपःतेज से परितापित होने पर जहां मैं था, वहां आया, आकर वंदन-नमस्कार किया। वंदन-नमस्कार कर स्वयं ही पांच महाव्रतों का आरोपण किया। आरोपण कर श्रमण-श्रमणियों से क्षमायाचना की, क्षमायाचना कर आलोचना-प्रतिक्रमण कर, समाधि को प्राप्त होकर कालमास में मृत्यु को प्राप्त कर ऊर्ध्व चंद्र-सूर्य यावत् आनत-प्राणत, आरण कल्प का व्यतिक्रमण कर अच्युत कल्प में देवरूप में उपपन्न हुआ है। वहां कई देवों की स्थिति बाईस सागरोपम प्रज्ञप्त है। वहां सुनक्षत्र देव की स्थिति बाईस सागरोपम प्रज्ञप्त है।

से णं भंते! सुनक्खत्ते देवे ताओ देवलोगाओ आउक्खएणं भवक्खएणं ठिइक्खएणं अणंतरं चयं चइत्ता कहिं गच्छिहिति? कहिं उववज्जिहिति?
गोयमा! महाविदेहे वासे सिज्झिहिति जाव सव्वदुक्खाणं अंतं काहिति॥

सः भदन्तः ! सुनक्षत्रः देवः तस्मात् देव-लोकात् आयुःक्षयेण भवक्षयेण स्थितिक्षयेण अनन्तरं च्यवं च्युत्वा कुत्र गमिष्यति ? कुत्र उपपत्स्यते?
गौतम ! महाविदेहे वर्षे सेत्स्यति यावत् सर्वदुःखानाम् अन्तं करिष्यति।

भंते! सुनक्षत्र देव उस देवलोक से आयु-क्षय-भव-क्षय और स्थिति–क्षय के अनंतर कहां जाएगा? कहां उपपन्न होगा?

गौतम! महाविदेह वास में सिद्ध होगा यावत् सब दुःखों का अंत करेगा।

गोसालस्स भवब्भमण-पदं

गोशालस्य भवभ्रमण-पदम्

गोशाल का भवभ्रमण-पद

१६६. एवं खलु देवाणुप्पियाणं अंतेवासी कुसिस्से गोसाले नामं मंखलिपुत्ते से णं भंते! गोसाले मंखलिपुत्ते कालमासे कालं किच्चा कहिं गए? कहिं उववन्ने?

एवं खलु देवानुप्रियाणाम् अन्तेवासी कुशिष्यः गोशालः नाम मंखलिपुत्रः सः भदन्त! गोशालः मंखलिपुत्रः कालमासे कालं कृत्वा कुत्र गतः? कुत्र उपपन्नः?

१६६. देवानुप्रिय के अंतेवासी कुशिष्य का नाम था मंखलिपुत्र गोशाल। भंते! वह मंखलिपुत्र गोशाल कालमास में मृत्यु को प्राप्त कर कहां गया है? कहां उपपन्न हुआ है?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एवं खलु गोयमा! ममं अंतेवासी कुसिस्से गोसाले नामं मंखलिपुत्ते समणघायए जाव छउमत्थे चेव कालमासे कालं किच्चा उड्ढं चंदिम- -सूरिय जाव अच्चुए कप्पे देवत्ताए उववन्ने। तत्थ णं अत्थेगतियाणं देवाणं बावीसं सागरोवमाइं ठिती पण्णत्ता तत्थ णं गोसालस्स वि देवस्स बावीसं सागरोवमाइं ठिती पण्णत्ता॥

एवं खलु गौतम! मम अन्तेवासी कुशिष्यः गोशालः नाम मंखलिपुत्रः श्रमण-घातकः यावत् छद्मस्थः चैव कालमासे कालं कृत्वा ऊर्ध्वं चन्द्रमस्-सूर्यं यावत् अच्युते कल्पे देवत्वेन उपपन्नः। तत्र अस्त्येकेषां देवानां द्वाविंशतिः सागरोपमाणि स्थितिः प्रज्ञप्ता तत्र गोशालस्यापि देवस्य द्वाविंशतिः सागरोपमाणि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

गौतम! मेरा अंतेवासी कुशिष्य जिसका नाम था मंखलिपुत्र गोशाल, वह श्रमण-घातक यावत् छद्मस्थ-अवस्था में ही मृत्यु को प्राप्त कर ऊर्ध्व चंद्र, सूर्य यावत् अच्युत कल्प में देवरूप में उपपन्न हुआ। वहां कुछ देवों की स्थिति बाईस सागरोपम प्रज्ञप्त है। गोशाल देव की स्थिति भी बाईस सागरोपम प्रज्ञप्त है।

१६७. से णं भंते! गोसाले देवे ताओ देवलोगाओ आउक्खएणं भवक्खएणं ठिइक्खएणं अणंतरं चयं चइत्ता कहिं गच्छिहिति? कहिं उववज्जिहिति?
गोयमा! इहेव जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे विंझगिरिपायमूले पुंडेसु जणवएसु सयदुवारे नगरे संमुतिस्स रण्णो भद्दाए भारियाए कुच्छिंसि पुत्तत्ताए पच्चायाहिति। से णं तत्थ नवण्हं मासाणं बहुपडिपुण्णाणं अद्धट्ठमा य राइंदियाणं वीइक्कंताणं जाव सुरूवे दारए पयाहिति॥

सः भदन्त! गोशालः देवः तस्मात् देवलोकात् आयुःक्षयेण भवक्षयेण स्थितिक्षयेण अनन्तरं च्यवं च्युत्वा कुत्र गमिष्यति? कुत्र उपपत्स्यते?
गौतम! इहैव जम्बुद्वीपे द्वीपे भारते वर्षे विन्ध्यगिरि पादमूले पुण्ड्रेषु जनपदेषु शतद्वारे नगरे सन्मतेः राज्ञः भद्रायाः भार्यायाः कुक्षौ पुत्रत्वेन प्रत्याजनिष्यते। सः तत्र नवानां मासानां प्रतिपूर्णानाम् अर्धाष्टमानां रात्रिंदिवानां व्यतिक्रान्तानां यावत् सुरूपः दारकः प्रजनिष्यते।

१६७. गोशाल देव उस देवलोक से आयु-क्षय, भव-क्षय, और स्थिति-क्षय के अनंतर च्यवन कर कहां जाएगा? कहां उपपन्न होगा?

गौतम! इस जंबूद्वीप द्वीप में भारत वर्ष में विंध्यगिरि के मूल में पुण्ड्र जनपद के शतद्वार नगर के राजा सन्मति की भार्या भद्रा की कुक्षि से पुत्र के रूप में उपपन्न होगा। बहु प्रतिपूर्ण नौ मास और साढे सात रात दिन के व्यतिक्रान्त होने पर यावत् सुरूप पुत्र के रूप में पैदा होगा।

१६८. जं रयणिं च णं से दारए जाइहिति, तं रयणिं च णं सयदुवारे नगरे सब्भिंतर-बाहिरिए भारग्गसो य कुंभग्गसो य पउमवासे य रयणवासे य वासे वासिहिति॥

यस्यां रजन्यां सः दारकः जनिष्यते, तस्यां रजन्यां शतद्वारे नगरे साभ्यन्तर-बाह्यके भाराग्रशः च कुम्भाग्रशः च पद्मवर्षः च रत्नवर्षः च वर्षः वर्षिष्यति।

१६८. जिस रजनी में वह पुत्र उत्पन्न होगा, उस रजनी में शतद्वार नगर के भीतर और बाहर भार-प्रमाण और कुंभ-प्रमाण फूलों और रत्नों की वर्षा होगी।

१६९. तए णं तस्स दारगस्स अम्मापियरो एक्कारसमे दिवसे वीइक्कंते निव्वत्ते असुइजायकम्मकरणे संपत्ते बारसमे दिवसे अयमेयारूवं गोण्णं गुणनिप्फन्नं नामधेज्जं काहिंति-जम्हा णं अम्हं इमंसि दारगंसि जायंसि समाणंसि सयदुवारे नगरे सब्भिंतरबाहिरिए भारग्गसो य कुंभग्गसो य पउमवासे य रयणवासे वुट्ठे, तं होउ णं अम्हं इमस्स दारगस्स नामधेज्जं महापउमे-महापउमे। तए णं तस्स दारगस्स अम्मापियरो नामधेज्जं करेहिंति महापउमे त्ति॥

ततः तस्य दारकस्य अम्बापितरौ एकादशमे दिवसे व्यतिक्रान्ते निवृत्ते अशुचिजातकर्मकरणे सम्प्राप्ते द्वादशमे दिवसे इदमेतद्रूपं गौणं गुणनिष्पन्नं नामधेयं करिष्यतः यस्मात् अस्माकं अस्मिन् दारके जाते सति शतद्वारे नगरे साभ्यन्तरबाह्यके भाराग्रशः च कुम्भाग्रशः च पद्मवर्षः च रत्नवर्षः वृष्टः, तत् भवतु अस्माकम् अस्य दारकस्य नामधेयं महापद्मः-महापद्मः। ततः तस्य दारकस्य अम्बापितरौ नामधेयं करिष्यतः महापद्मः इति।

१६९. उस बालक के माता-पिता ग्यारह दिवस के बीत जाने पर, अशुचि जातकर्म से निवृत्त होने पर बारहवें दिवस के आने पर इस प्रकार का गुणयुक्त गुणनिष्पन्न नामकरण करेंगे, क्योंकि इस बालक के उत्पन्न होने पर शतद्वार नगर के भीतर और बाहर, भार-प्रमाण और कुंभ-प्रमाण फूलों और रत्नों की वृष्टि हुई, इसलिए हमें इस बालक का नामकरण करना चाहिए महापद्म-महापद्म। उस बालक के माता-पिता उसका नामकरण करेंगे-'महापद्म'।

१७०. तए णं ते महापउमं दारगं अम्मापियरो सातिरेगट्ठवासजायगं जाणित्ता सोभणंसि

ततः तं महापद्मं दारकम् अम्बापितरौ सातिरेकाष्टवर्षकं ज्ञात्वा शोभने

१७०. बालक महापद्म को आठ वर्ष से कुछ अधिक आयु वाला जानकर माता-पिता

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

तिहि-करण-दिवस-नक्खत्त-मुहुत्तंसि महया-महया रायाभिसेगेणं अभिसिंचेहिंति। से णं तत्थ राया भविस्सति—महया हिमवंत-महंत-मलय-मंदर-महिंदसारे वण्णओ जाव विहरिस्सइ॥

तिथिकरण-नक्षत्र-मुहूर्ते महता-महता राजाभिषेकेण अभिसेक्ष्यतः। सः तत्र राजा भविष्यति—महत् हिमवत्-महत्-मलय-मन्दर-महेन्द्रसारः वर्णकः यावत् भविष्यति।

शोभन तिथि, करण, दिवस, नक्षत्र और मुहूर्त में उसे महान् राज्याभिषेक से अभिषिक्त करेंगे। वह वहां राजा होगा—महान हिमालय, महान् मलय मेरु और महेन्द्र की भांति वर्णक यावत् विहरण करेगा।

१७१. तए णं तस्स महापउमस्स रण्णो अण्णदा कदायि दो देवा महिड्ढिया जाव महेसक्खा सेणाकम्मं काहिंति, तं जहा—पुण्णभद्दे य माणिभद्दे य॥

तए णं सयदुवारे नगरे बहवे राईसर-तलवर-माडंबिय-कोडुंबिय-इब्भ-सेट्ठि-सेणावइ-सत्थवाहप्पभितओ अण्णमण्णं सद्दावेहिंति, सद्दावेत्ता एवं वदेहिंति—जम्हा णं देवाणुप्पिया! महापउमस्स रण्णो दो देवा महिड्ढियाणं जाव महेसक्खा सेणाकम्मं करेंति, तं जहा—पुण्णभद्दे य माणिभद्दे य, तं होउ णं देवाणुप्पिया! अम्हं महापउमस्स रण्णो दोच्चे वि नामधेज्जे देवसेणे-देवसेणे। तए णं तस्स महापउमस्स रण्णो दोच्चे वि नामधेज्जे भविस्सति देवसेणे त्ति॥

ततः तस्य महापद्मस्य राज्ञः अन्यदा कदाचित् द्वौ देवौ महर्द्धिकौ यावत् महेशाख्यौ सेनाकर्म करिष्यतः, तद्यथा—पूर्णभद्रः च माणिभद्रः च।

ततः शतद्वारे नगरे बहवः राजेश्वर-'तलवर' माडम्बिक-कौटुम्बिक-इभ्य-श्रेष्ठि - सेनापति - सार्थवाहप्रभृतयः अन्योन्यम् शब्दयिष्यन्ति, शब्दयित्वा एवं वदिष्यन्ति—यस्मात् देवानुप्रियाः! महापद्मस्य राज्ञः द्वौ देवौ महर्द्धिकौ यावत् महेशाख्यौ सेनाकर्म कुरुतः, तद् यथा—पूर्णभद्रः च माणिभद्रः च, तत् भवतु देवानुप्रियाः! अस्माकं महापद्मस्य राज्ञः द्वितीयमपि नामधेयं देवसेनः-देवसेनः। ततः तस्य महापद्मस्य राज्ञः द्वितीयमपि नामधेयं भविष्यति देवसेनः इति।

१७१. किसी दिन महापद्म राजा को महर्द्धिक यावत् महान् ऐश्वर्यशाली दो देव जैसे—पुण्यभद्र और माणिभद्र, सैन्य-कर्म की शिक्षा देंगे।

तब उस शत-द्वार नगर में अनेक राजा, ईश्वर, तलवर, माडम्बिक, कौटुम्बिक, इभ्य, श्रेष्ठी, सेनापति, सार्थवाह आदि एक दूसरे को बुलाएंगे, बुलाकर इस प्रकार कहेंगे—देवानुप्रियो! महापद्म राजा को दो महर्द्धिक यावत् महान ऐश्वर्यशाली दो देव जैसे—पुण्यभद्र और माणिभद्र, सैन्य कर्म की शिक्षा दे रहे हैं, इसलिए देवानुप्रियो! हमारे राजा महापद्म का दूसरा नाम होना चाहिए देवसेन-देवसेन। तब उस राजा महापद्म का दूसरा नाम 'देवसेन' होगा।

१७२. तए णं तस्स देवसेणस्स रण्णो अण्णया कयाइ सेते संखतल-विमल-सन्निगासे चउद्दंते हत्थिरयणे समुप्पज्जिस्सइ। तए णं से देवसेणे राया तं सेयं संखतल-विमल-सन्निगासं चउद्दंतं हत्थिरयणं दूढे समाणे सयदुवारं नगरं मज्झंमज्झेणं अभिक्खणं-अभिक्खणं अतिजाहिति य निज्जाहिति य। तए णं सयदुवारे नगरे बहवे राईसर-तलवर-माडंबिय-कोडुंबिय-इब्भ-सेट्ठि-सेणावइ-सत्थवाहप्पभितओ अण्णमण्णं सद्दावेहिंति, सद्दावेत्ता वदेहिंति—जम्हा णं देवाणुप्पिया! अम्हं देवसेणस्स रण्णो सेते संखतल-विमल-सन्निगासे चउद्दंते हत्थिरयणे समुप्पन्ने, तं होउ णं देवाणुप्पिया! अम्हं देवसेणस्स रण्णो तच्चे वि नामधेज्जे विमलवाहणे-विमलवाहणे। तए णं तस्स देवसेणस्स रण्णो तच्चे वि नामधेज्जे भविस्सति विमलवाहणे त्ति॥

ततः तस्य देवसेनस्य राज्ञः अन्यदा कदाचित् श्वेतं शङ्खतल-विमल-सन्निकाशं चतुर्दन्तं हस्तिरत्नं समुत्पत्स्यते। ततः सः देवसेनः राजा तं श्वेतं शङ्खतल-विमल-सन्निकाशं चतुर्दन्तं हस्तिरत्नं आरूढः (द्रूढे) सन् शतद्वारनगरं मध्य-मध्येन अभीक्ष्णम्-अभीक्ष्णम् अतियास्यति च निर्यास्यति च। ततः शतद्वारे नगरे बहवः राजेश्वर-'तलवर'-माडम्बिक - कौटुम्बिक - इभ्य-श्रेष्ठि-सेनापति-सार्थवाहप्रभृतयः अन्योन्यं शब्दयिष्यन्ति, शब्दयित्वा वदिष्यन्ति—यस्मात् देवानुप्रियाः! अस्माकं देवसेनस्य राज्ञः श्वेतं शङ्खतल-विमल-सन्निकाशं चतुर्दन्तं हस्तिरत्नं समुत्पन्नम्, तत् भवतु देवानुप्रियाः! अस्माकं देवसेनस्य राज्ञः तृतीयमपि नामधेयं विमलवाहनः-विमलवाहनः। ततः तस्य देवसेनस्य राज्ञः तृतीयमपि नामधेयं भविष्यति विमलवाहनः इति।

१७२. किसी दिन राजा महापद्म के विमल शंखतल के समान श्वेत चतुर्दन्त हस्ति-रत्न उत्पन्न होंगे। तब राजा देवसेन विमल शंख-तलके समान श्वेत चतुर्दन्त हस्ति-रत्न पर आरूढ़ होकर शतद्वार नगर के बीचोबीच होते हुए बार-बार प्रवेश और निष्क्रमण करेंगे। शतद्वार नगर में अनेक राजा, ईश्वर, तलवर, माडम्बिक, कौटुम्बिक, इभ्य, श्रेष्ठी, सेनापति, सार्थवाह आदि दूसरे को बुलाएंगे, बुलाकर इस प्रकार कहेंगे—देवानुप्रियो! हमारे राजा देवसेन के विमल शंख तल के समान श्वेत चतुर्दन्त हस्ति-रत्न उत्पन्न हुआ है, इसलिए देवानुप्रियो! हमारे राजा देवसेन का तीसरा नाम विमलवाहन-विमलवाहन होना चाहिए। तब से उस देवसेन राजा का तीसरा नाम 'विमलवाहन' होगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१७३. तए णं से विमलवाहणे राया अण्णया कदायि समणेहिं निग्गंथेहिं मिच्छं विप्पडिवज्जिहिति--अप्पेगतिए आओ-सेहिति,अप्पेगतिए अवहसिहिति, अप्पेगतिए निच्छोडेहिति, अप्पेगतिए निब्भंछेहिति, अप्पेगतिए बंधेहिति, अप्पेगतिए निरुंभेहिति, अप्पेगतियाणं छविच्छेदं करेहिति, अप्पेगतिए पमारेहिति, अप्पेगतिए उद्दवेहिति, अप्पेगतियाणं वत्थं पडिग्गहं कंबलं पायपुंछणं आच्छिंदिहिति विच्छिंदिहिति भिंदिहिति अवहरिहिति, अप्पेगतियाणं भत्तपाणं वोच्छिंदिहिति, अप्पेगतिए निन्नगरे करेहिति, अप्पेगतिए निव्विसए करेहिति॥

ततः सः विमलवाहनः राजा अन्यदा कदाचित् श्रमणेषु निर्ग्रन्थेषु मिथ्या विप्रतिपत्स्यते–अप्येककान् आक्रोक्ष्यति, अप्येककान् अपहसिष्यति, अप्येककान् निश्छोटयिष्यन्ति, अप्येककान् निर्भर्त्सयिष्यते, अप्येककान् भन्त्स्यति, अप्येककान् निरोत्स्यति, अप्येककानां छविच्छेदं करिष्यति, अप्येककान् प्रमारयिष्यति, अप्येककान् उपद्रोष्यति, अप्येककानां वस्त्रं प्रतिग्रहं कम्बलं पादप्रोञ्छनम् आच्छेत्स्यति विच्छेत्स्यति भिन्त्स्यति अपहरिष्यति, अप्येककानां भक्तपानं व्यवच्छेत्स्यति, अप्येककान् निर्नगरान् करिष्यति, अप्येककान् निर्विषयान् करिष्यति।

१७३. राजा विमलवाहन किसी दिन श्रमण निर्ग्रन्थों के प्रति मिथ्यात्व से विप्रतिपन्न होगा–वह अनेक श्रमण निर्ग्रन्थों के प्रति आक्रोश करेगा, अनेक श्रमण निर्ग्रन्थों का उपहास करेगा, अनेक श्रमण निर्ग्रन्थों का तिरस्कार करेगा, अनेक श्रमण निर्ग्रन्थों की निर्भर्त्सना करेगा, अनेक श्रमण निर्ग्रन्थों को बांधेगा, अनेक श्रमण-निर्ग्रन्थों को कारागार में डाल देगा, अनेक श्रमण निर्ग्रन्थों का छविच्छेद करेगा, अनेक श्रमण निर्ग्रन्थों को पीटेगा, अनेक श्रमण निर्ग्रन्थों को मारेगा, अनेक श्रमण निर्ग्रन्थों के वस्त्र, पात्र, कंबल, पादप्रोञ्छन का आच्छेदन, विच्छेदन, भेदन और अपहरण करेगा, अनेक श्रमण निर्ग्रन्थों के भक्तपान का विच्छेद करेगा, अनेक श्रमण निर्ग्रन्थों को नगर-रहित करेगा, अनेक श्रमण-निर्ग्रन्थों को निर्वासित करेगा।

१७४. तए णं सयदुवारे नगरे बहवे राईसर-तलवर-माडंबिय-कोडुंबिय-इब्भ-सेट्ठि-सेणावइ-सत्थवाहप्पभितओ अण्णमण्णं सद्दावेहिंति, सद्दावेत्ता एवं वदिहिंति–एवं खलु देवाणुप्पिया! विमलवाहणे राया समणेहि निग्गंथेहि मिच्छं विप्पडिवन्ने–अप्पेगतिए आओसति जाव निव्विसए करेति, तं नो खलु देवाणुप्पिया! एयं अम्हं सेयं, नो खलु एयं विमलवाहणस्स रण्णो सेयं, नो खलु एयं रज्जस्स वा रट्ठस्स वा बलस्स वा वाहणस्स वा पुरस्स वा अंतेउरस्स वा जणवयस्स वा सेयं, जण्णं विमलवाहणे राया समणेहिं निग्गंथेहिं मिच्छं विप्पडिवन्ने। तं सेयं खलु देवाणुप्पिया! अम्हं विमलवाहणं रायं एयमट्ठं विण्णवेत्तए त्ति कट्टु अण्णमण्णस्स अंतियं एयमट्ठं पडिसुणेहिंति, पडिसुणेत्ता जेणेव विमलवाहणे राया तेणेव उवागच्छिहिति, उवागच्छित्ता करयल-परिग्गहियं दसनहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु विमलवाहणं रायं जएणं विजएणं वद्धावेहिंति, वद्धावेत्ता एवं वदिहिंति–एवं खलु देवाणुप्पिया! समणेहिं निग्गंथेहिं मिच्छं विप्पडिवन्ना, अप्पेगतिए आओसंति जाव अप्पेगतिए

ततः शतद्वारे नगरे राजेश्वर 'तलवर'-माडम्बिक-कौटुम्बिक - इभ्य - श्रेष्ठि-सेनापति-सार्थवाह प्रभृतयः अन्योन्यं शब्दयिष्यन्ति, शब्दयित्वा एवं वदिष्यन्ति–एवं खलु देवानुप्रियाः। विमलवाहनःराजा श्रमणेषु निर्ग्रन्थेषु मिथ्या विप्रतिपन्ना–अप्येककान् आक्रोशयति यावत् निर्विषयान् करोति, तत् नो खलु देवानुप्रियाः ! एतद् अस्माकं श्रेयः, नो खलु एतद् विमलवाहनस्य श्रेयः, नो खलु एतद् राज्यस्य वा राष्ट्रस्य वा बलस्य वा वाहनस्य वा पुरस्य वा अन्तःपुरस्य वा जनपदस्य वा श्रेयः यत् विमलवाहनः राजा श्रमणेषु निर्ग्रन्थेषु मिथ्या विप्रतिपन्नः। तत् श्रेयः खलु देवानुप्रियाः ! अस्माकं विमलवाहनं राजानम् एतमर्थं विज्ञापयितुम् इति कृत्वा अन्योन्यस्य अन्तिकम् एतमर्थं प्रतिश्रोष्यन्ति, प्रतिश्रुत्य यत्रैव विमल-वाहनः राजा तत्रैव उपागमिष्यन्ति, उपागम्य करतलपरिगृहीतं दशनखं शिरसावर्त्तं मस्तके अञ्जलिं कृत्वा विमलवाहनं राजानं जयेन विजयेन वर्द्धयिष्यन्ति, वर्धयित्वा एवं वदिष्यन्ति–एवं खलु देवानुप्रियाः !

१७४. शतद्वार नगर के अनेक राजा, ईश्वर, तलवर, माडम्बिक, कौटुम्बिक, इभ्य, श्रेष्ठी, सेनापति, सार्थवाह आदि एक दूसरे को बुलाएंगे, बुलाकर इस प्रकार कहेंगे–देवानुप्रियो! राजा विमलवाहन श्रमण निर्ग्रन्थों के प्रति मिथ्यात्व से विप्रतिपन्न हो गया है–अनेक श्रमण निर्ग्रन्थों के प्रति आक्रोश करता है यावत् निर्वासित करता है–इसलिए देवानुप्रियो! न यह हमारे लिए श्रेय है, न राजा विमलवाहन के लिए श्रेय है, न यह राज्य, राष्ट्र, सेना, वाहन, पुर, अन्तःपुर और जनपद के लिए श्रेय है, क्योंकि राजा विमलवाहन मिथ्यात्व से विप्रतिपन्न हो गया है। इसलिए देवानुप्रियो! यह श्रेय है कि हम राजा विमलवाहन को इस अर्थ की जानकारी दें, इस प्रकार एक दूसरे के पास इस अर्थ को स्वीकार करेंगे, स्वीकार कर जहां राजा विमलवाहन है, वहां आएंगे, वहां जाकर दोनों हथेलियों से निष्पन्न संपुट आकार वाली दस नखात्मक अञ्जलि को घुमाकर मस्तक पर टिकाकर विमलवाहन राजा को जय-विजय के द्वारा वर्धापित करेंगे, वर्धापित कर इस प्रकार कहेंगे–देवानुप्रिय! श्रमण निर्ग्रन्थों के प्रति मिथ्यात्व से विप्रतिपन्न होकर आप अनेक श्रमण निर्ग्रन्थों के प्रति आक्रोश करते हैं यावत् अनेक श्रमण-निर्ग्रन्थों को निर्वासित

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निव्विसए करेंति तं नो खलु एयं देवाणुप्पियाणं सेयं नो खलु एयं अम्हं सेयं, नो खलु एयं रज्जस्स वा जाव जणवयस्स वा सेयं जण्णं देवाणुप्पिया! समणेहिं निग्गंथेहिं मिच्छं विप्पडिवन्ना, तं विरमंतु णं देवाणुप्पिया! एयस्स अट्ठस्स अकरणयाए॥

श्रमणेषु निर्ग्रन्थेषु मिथ्या विप्रतिपन्ना अप्येककान् आक्रोशन्ति यावत् अप्येककान् निर्विषयान् कुर्वन्ति, तत् नो खलु एतद् देवानुप्रियाणां श्रेयः, नो खलु एतद् अस्माकं श्रेयः, नो खलु एतद् राज्यस्य वा यावत् जनपदस्य वा श्रेयः, यत् देवानुप्रियाः। श्रमणेषु निर्ग्रन्थेषु मिथ्या विप्रतिपन्ना, तद् विरमन्तु देवानुप्रियाः! एतस्य अर्थस्य अकरणाय (अकरणतायै)।

करते हैं, इसलिए यह न देवानुप्रियों के लिए श्रेय है, न हमारे लिए श्रेय है, न हमारे राज्य यावत् जनपद के लिए श्रेय है, क्योंकि देवानुप्रिय! (आप) श्रमण निर्ग्रन्थों के प्रति मिथ्यात्व से विप्रतिपन्न हो, इसलिए विराम लो, देवानुप्रिय! इस अर्थ को मत करो।

१७५. तए णं से विमलवाहणे राया तेहिं बहूहिं राईसर-तलवर-माडंबिय-कोडुंबिय-इब्भ-सेट्ठि-सेणावइ-सत्थवाहप्पभिईहिं एयमट्ठं विण्णत्ते समाणे नो धम्मो त्ति नो तवो त्ति मिच्छाविणएणं एयमट्ठं पडिसुणेहिति॥

ततः सः विमलवाहनः राजा तैः बहुभिः राजेश्वर-तलवर-माडम्बिक-कौटुम्बिक-इभ्य-श्रेष्ठि-सेनापति-सार्थवाहप्रभृतिभिः एतमर्थं विज्ञप्तः सन् नो धर्मः इति नो तपः इति मिथ्याविनयेन एतमर्थं प्रतिश्रोष्यन्ति।

१७५. अनेक राजा, ईश्वर, तलवर, माडम्बिक, कौटुम्बिक, राज्य, श्रेष्ठी, सेनापति, सार्थवाह आदि के द्वारा इस अर्थ के विज्ञात होने पर राजा विमलवाहन ने 'यह न धर्म है, न तप है' ऐसा मानकर मिथ्या-विनय-पूर्वक इस वचन को स्वीकार किया।

१७६. तस्स णं सयदुवारस्स नगरस्स बहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसीभागे, एत्थ णं सुभूमिभागे नामं उज्जाणे भविस्सइ—सव्वोउय-पुप्फ-फलस-मिद्धे—वण्णओ॥

तस्य शतद्वारस्य नगरस्य बहिः उत्तरपौरस्त्यः दिग्भागः अत्र सुभूमिभागं नाम उद्यानम् भविष्यति—सर्वर्तुक-पुष्प-फलसमृद्धं—वर्णकः।

१७६. उस शतद्वार नगर के बाहर, उत्तर-पूर्व दिशि भाग में, सुभूमि-भाग नाम का उद्यान होगा—सर्वऋतु में पुष्प, फल से समृद्ध—वर्णक।

१७७. तेणं कालेणं तेणं समएणं विमलस्स अरहओ पओप्पए सुमंगले नामं अणगारे जाइसंपन्ने, जहा धम्मघोसस्स वण्णओ जाव संखित्तविउलतेयलेस्से तिन्नाणोवगए सुभूमिभागस्स उज्जाणस्स अदूरसामंते छट्ठंछट्ठेणं अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं उड्ढं बाहाओ पगिज्झिय-पगिज्झिय सूराभिमुहे आयावणभूमीए आयावेमाणे विहरिस्सति॥

तस्मिन् काले तस्मिन् समये विमलस्य अर्हतः, 'पओप्पए' सुमंगलः नाम अनगारः जातिसम्पन्नः, यथा धर्मघोषस्य वर्णकः यावत् संक्षिप्त-विपुल-तेजोलेश्यः त्रिज्ञानोपगतः सुभूमिभागस्य उद्यानस्य अदूरसामन्ते षष्ठ-षष्ठेन अनिक्षिप्तेन तपःकर्मणा ऊर्ध्वं बाहू प्रगृह्य-प्रगृह्य सूराभिमुखः आतापनभूम्याम् आतापयन् विहरिष्यति।

१७७. उस काल उस समय अर्हत् विमल के प्रपौत्र (प्रशिष्य) जाति-संपन्न, जैसे धर्मघोष का वर्णक यावत् संक्षिप्त विपुल तेजोलेश्या और तीन ज्ञान से सम्पन्न। सुभूमि-भाग उद्यान के न अति दूर और न अति निकट निरन्तर बेले-बेले की तपः-साधना के द्वारा, दोनों भुजाओं को ऊपर उठाकर सूर्य के सामने आतापन-भूमि में आतापना लेता हुआ विहरण करेगा।

१७८. तए णं से विमलवाहणे राया अण्णदा कदायि रहचरियं काउं निज्जाहिति॥

ततः सः विमलवाहनः राजा अन्यदा कदाचित् रथचर्यां कर्तुं निर्यास्यति।

१७८. एक दिन राजा विमलवाहन रथचर्या करने के लिए निर्गमन करेगा।

१७९. तए णं से विमलवाहणे राया सुभूमिभागस्स उज्जाणस्स अदूरसामंते रहचरियं करेमाणे सुमंगले अणगारं छट्ठंछट्ठेणं अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं उड्ढं बाहाओ पगिज्झिय-पगिज्झिय सूराभिमुहं आयावणभूमीए आयावेमाणं पासिहिति, पासित्ता आसुरुत्ते रुट्ठे कुविए चंडिक्किए मिसिमिसेमाणे सुमंगलं

ततः सः विमलवाहनः राजा सुभूमिभागस्य उद्यानस्य अदूरसामन्ते रथचर्यां कुर्वन् सुमंगलम् अनगारं षष्ठषष्ठेन अनिक्षिप्तेन तपःकर्मणा ऊर्ध्वं बाहू प्रगृह्य-प्रगृह्य सूराभिमुखं आतापनभूम्याम् आतापयन्तं द्रक्ष्यति, दृष्ट्वा आशुरक्तः रुष्टः कुपितः 'चंडिक्किए' 'मिसिमिसेमाणे' सुमंगलम्

१७९. सुभूमि-भाग उद्यान के न अति दूर और न अति निकट राजा विमलवाहन रथचर्या करता हुआ सुमंगल (नामक) अनगार को निरन्तर बेले-बेले तपःकर्म करता हुआ आतापन-भूमि में दोनों भुजाएं ऊपर उठाकर सूर्य के सामने आतापना लेता हुआ देखेगा, देखकर वह (राजा) तत्काल आवेश में आएगा, रुष्ट हो जाएगा, कुपित हो जाएगा,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अणगारं रहसिरेणं नोल्लावेहिति॥

अनगारं रथशिरसा नोदयिष्यति (नोल्लावेहिति)।

उसका रूप रौद्र हो जाएगा, क्रोध की अग्नि में प्रदीप्त होकर रथ का अग्रिम हिस्सा[1] सुमंगल अनगार के ऊपर चढ़ाकर उन्हें उछाल कर नीचे गिराएगा।[2]

भाष्य

सूत्र १७९

१. रथ का अग्रिम हिस्सा (रहसिरेण)

रथ के अग्रिम भाग का आकार आगे से तीक्ष्ण और लंबा होता है। श्रीमज्जयाचार्य ने इसका अर्थ किया है–

'रथ ने शिर ए जाणवूं, कागमुंहा करि केह।'[1]

'कागमुहौ' शब्द का अर्थ है–वह मकान जो आगे से तीखा और लंबा हो; कौवे के मुख के समान।[2]

२. उछाल कर नीचे गिराएगा (नोल्लावेइहि)

जयाचार्य ने 'अणगारं नोल्लावेइहि' का अर्थ किया है–

'मुनि ऊपर ते फेरस्यै, उलाली न्हाखीस्येह।'[3]

इसका तात्पर्य है–राजा तीक्ष्णमुंह वाले रथ को मुनि के ऊपर चढ़ा कर उन्हें उछाल कर नीचे गिराएगा। वृत्तिकार ने 'नोल्लावेइहि' का अर्थ किया है 'प्रेरयिष्यति।'[4]

१८०. तए णं से सुमंगले अणगारे विमलवाहणेणं रण्णा रहसिरेणं नोल्लाविए समाणे सणियं-सणियं उट्ठेहेहिति, उट्ठेत्ता दोच्चं पि उड्ढं बाहाओ पगिज्झिय-पगिज्झिय सूराभिमुहे आयावणभूमीए आयावेमाणे विहरिस्सति॥

ततः सः सुमंगलः अनगारः विमलवाहनेन राज्ञा रथशिरसा नोदयितः (नोल्लाविए) सन् शनैः-शनैः उत्थास्यति, उत्थाय द्विः अपि ऊर्ध्वं बाहू प्रगृह्य-प्रगृह्य सूराभिमुखः आतापनभूम्याम् आतापयन् विहरिष्यति।

१८०. तब वह सुमंगल अनगार विमलवाहन राजा के द्वारा रथ के अग्रिम हिस्से से गिराए जाने पर धीरे-धीरे उठेंगे, उठ कर आतापन-भूमि में दूसरी बार दोनों भुजाएं ऊपर उठा कर सूर्य के सामने आतापना लेते हुए विहरण करेंगे।

१८१. तए णं से विमलवाहणे राया सुमंगलं अणगारं दोच्चं पि रहसिरेणं नोल्लावेहिति॥

ततः सः विमलवाहनः राजा सुमंगलम् अनगारं द्विः अपि रथशिरसा नोदयिष्यति (नोल्लावेहिति)

१८१. तब वह विमलवाहन राजा दूसरी बार भी रथ के अग्रिम हिस्से से सुमंगल अनगार को ऊपर उछाल कर नीचे गिराएगा।

१८२. तए णं से सुमंगले अणगारे विमलवाहणेणं रण्णा दोच्चं पि रहसिरेणं नोल्लाविए समाणे सणियं-सणियं उट्ठेहिति, उट्ठेत्ता ओहिं पउंजेहिति, पउंजित्ता विमलवाहणस्स रण्णो तीतद्धं आभोएहिति, आभोएत्ता विमलवाहणं रायं एवं वइहिति–नो खलु तुमं विमलवाहणे राया, नो खलु तुमं देवसेणे राया, नो खलु तुमं महापउमे राया, तुमण्णं इओ तच्चे भवग्गहणे गोसाले नामं मंखलिपुत्ते होत्था–समणघायए जाव छउमत्थे चेव कालगए, तं जइ ते तदा सव्वाणुभूतिणा अणगारेणं पभूणा वि होऊणं सम्मं सहियं खमियं तितिक्खियं अहियासियं, जइ ते तदा सुनक्खत्तेणं अणगारेणं पभूणा वि होऊणं सम्मं सहियं खमियं तितिक्खियं अहियासियं, जइ ते तदा समणेणं भगवया महावीरेणं पभूणा

ततः सः सुमंगलः अनगारः विमलवाहनेन राज्ञा द्विः अपि रथशिरसा नोदयितः (नोल्लाविए) सन् शनैः-शनैः उत्थास्यति, उत्थाय अवधिं प्रयोक्ष्यति, प्रयुज्य विमलवाहनस्य राज्ञः अतीताध्वानम् आभोगयिष्यति (आभोएहिति) आभोग्य विमलवाहनं राजानम् एवं वदिष्यति–नो खलु त्वं विमलवाहनः राजा, नो खलु त्वं देवसेनः राजा, नो खलु त्वं महापद्मः राजा, त्वम् इतः तृतीये भवग्रहणे गोशालः नाम मंखलिपुत्रः आसीत्–श्रमणघातकः यावत् छद्मस्थः चैव कालगतः, तत् यदि ते तदा सर्वानुभूतिना अनगारेण प्रभुणा अपि भूत्वा सम्यक् सोढं क्षमितं तितिक्षितम् अध्यासितम्, यदि ते तदा सुनक्षत्रेण अनगारेण प्रभुणा अपि भूत्वा सम्यक्

१८२. तब वह सुमंगल अनगार विमलवाहन राजा के द्वारा रथ के अग्रिम हिस्से से दूसरी बार गिराए जाने पर धीरे-धीरे उठेंगे, उठ कर अवधि (ज्ञान) का प्रयोग करेंगे, प्रयोग कर विमलवाहन राजा के अतीत-काल को देखेंगे, देखकर विमलवाहन राजा को इस प्रकार कहेंगे–तुम विमलवाहन राजा नहीं हो, तुम देवसेन राजा नहीं हो, तुम महापद्म राजा नहीं हो, तूं इससे पूर्व तीसरे भव में गोशाल नामक मंखलिपुत्र था–श्रमणघातक यावत् छद्मस्थ-अवस्था में ही मृत्यु को प्राप्त हुआ था, उस समय यद्यपि सर्वानुभूति अनगार ने प्रभु होने पर भी तुम्हें सम्यक् सहन किया, क्षमा की, तितिक्षा की, अधिसहन किया; उस समय यद्यपि सुनक्षत्र अनगार ने प्रभु होने पर भी तुम्हें सम्यक् सहन किया, क्षमा की, तितिक्षा की, अधिसहन किया; उस समय श्रमण भगवान् महावीर ने प्रभु होने पर भी तुम्हें

१. भ. जो. खण्ड ४, पद्य संख्या १०३८, पृ. ३६६।
२. राजस्थानी शब्द कोश, सं. सीताराम लाळस, प्र. राजस्थानी शोध-संस्थान, जोधपुर, प्रथम खंड (द्वितीय परिवर्द्धित संस्करण)।
३. भ. जो. खण्ड ४, पद्य संख्या १०३८, पृ. ३६६।
४. भ. वृ. १५/१७९।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वि होऊणं सम्मं सहियं खमियं तितिक्खियं अहियासियं, तं नो खलु ते अहं तहा सम्मं सहिस्सं खमिस्सं तितिक्खिस्सं अहियासिस्सं अहं ते नवरं—सहयं सरहं ससारहियं तवेणं तेएणं एगाहच्चं कूडाहच्चं भासरासिं करेज्जामि॥

सोढं क्षमितं तितिक्षितम् अध्यासितम्, यदि ते तदा श्रमणेन भगवता महावीरेण प्रभुणा अपि भूत्वा सम्यक् सोढं क्षमितं तितिक्षितम् अध्यासितम्, तत् नो खलु ते अहं तथा सम्यक् सहिष्ये क्षमिष्ये तितिक्षिष्ये अध्यासिष्ये, अहं ते नवरम्—सहयं सरथं ससारथिकं तपसा तेजसा एकाहत्यं कूटाहत्यं भस्मराशिं करिष्यामि।

सम्यक् सहन किया, क्षमा की, तितिक्षा की, अधिसहन किया; किन्तु निश्चित ही मैं ऐसा नहीं हूं जो तुम्हें उस प्रकार सम्यक् सहन करूंगा, क्षमा करूंगा, तितिक्षा करूंगा, अधिसहन करूंगा; मैं तो तुम्हें घोड़े-सहित, रथ-सहित और सारथि-सहित मेरे तपःतेज से कूटाघात की भांति एक प्रहार में राख का ढेर कर दूंगा।

१८३. तए णं से विमलवाहणे राया सुमंगलेणं अणगारेणं एवं वुत्ते समाणे आसुरुत्ते रुट्ठे कुविए चंडिक्किए मिसिमिसेमाणे सुमंगलं अणगारं तच्चं पि रहसिरेणं नोल्लावेहिति॥

ततः सः विमलवाहनः राजा सुमंगलेन अनगारेण एवम् उक्तः सन् आशुरक्तः रुष्टः कुपितः 'चंडिक्किए' 'मिसिमिसेमाणे' सुमंगलम् अनगारं त्रिः अपि रथशिरसा नोदयिष्यति(नोल्लावेहिति)।

१८३. उस समय सुमंगल अनगार के द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर वह विमलवाहन राजा तत्काल आवेश में आ जायेगा, रुष्ट हो जायेगा, कुपित हो जायेगा, उसका रूप रौद्र हो जायेगा, क्रोध की अग्नि से प्रदीप्त होकर वह तीसरी बार भी रथ का अग्रिम हिस्सा सुमंगल अनगार के ऊपर चढ़ा कर उन्हें उछाल कर नीचे गिराएगा।

१८४. तए णं से सुमंगले अणगारे विमलवाहणेणं रण्णा तच्चं पि रहसिरेणं नोल्लाविए समाणे आसुरुत्ते जाव मिसिमिसेमाणे आयावणभूमीओ पच्चोरुभइ, पच्चोरुभित्ता तेया-समुग्घाएणं समोहण्णिहिति, समोहणित्ता सत्तट्ठ पयाइं पच्चोसक्किहिति, पच्चोसक्कित्ता विमलवाहणं रायं सहयं सरहं ससारहियं तवेणं तेएणं एगाहच्चं कूडाहच्चं भासरासिं करेहिति॥

ततः सः सुमंगलः अनगारः विमलवाहनेन राज्ञा त्रिः अपि नोदयितः (नोल्लाविए) सन् आशुरक्तः यावत् 'मिसिमिसेमाणे' आतापनभूम्याः प्रत्यवरोहति, प्रत्यवरुह्य तैजस-समुद्घातेन समवहनिष्यति, समवहत्य सप्ताष्टपदानि प्रत्यवष्वष्किष्यते, प्रत्यवष्वष्क्य विमलवाहनं राजानं सहयं सरथं ससारथिकं तपसा तेजसा एकाहत्यं कूटाहत्यं भस्मराशिं करिष्यति।

१८४. तब विमलवाहन राजा के द्वारा तीसरी बार भी गिराए जाने पर वह सुमंगल अनगार तत्काल आवेश में आकर यावत् क्रोध की अग्नि से प्रदीप्त होकर आतापन भूमि से नीचे उतरेगा, नीचे उतरकर तैजस-समुद्घात से समवहत होगा, समवहत होकर सात-आठ पैर पीछे सरकेगा, पीछे सरक कर विमल-वाहन राजा को घोड़े-सहित, रथ-सहित और सारथि-सहित अपने तपः-तेज से कूटाघात की भांति एक प्रहार में राख का ढेर कर देगा।

१८५. सुमंगले णं भंते! अणगारे विमल-वाहणं रायं सहयं जाव भासरासिं करेत्ता कहं गच्छिहिति? कहिं उववज्जिहिति?
गोयमा! सुमंगले अणगारे विमलवाहणं रायं सहयं जाव भासरासिं करेत्ता बहूहिं छट्ठट्ठम-दसम-दुवालसेहिं मासद्धमास-खमणेहिं विचित्तेहिं तवोकम्मेहिं अप्पाणं भावेमाणे बहूइं वासाइं सामण्णपरियागं पाउणेहिति, पाउणित्ता मासियाए संलेहणाए अत्ताणं झूसित्ता, सट्ठिं भत्ताइं अणसणाए छेदेत्ता आलोइयपडिक्कंते समाहिपत्ते उड्ढं चंदिम जाव गेविज्ज-विमाणावाससयं वीइवइत्ता सव्वट्ठसिद्धे

सुमंगलः भदन्त! अनगारः विमल-वाहनं राजानं सहयं यावत् भस्मराशिं कृत्वा कुत्र गमिष्यति? कुत्र उपपत्स्यते?
गौतम! सुमंगलः अनगारः विमलवाहनं राजानं सहयं यावत् भस्मराशिं कृत्वा बहुभिः षष्ठाष्टम-दशम-द्वादशैः मासार्द्धमासक्षपणैः विचित्रैः तपःकर्मभिः आत्मानं भावयन् बहूनि वर्षाणि श्रामण्यपर्यायकं प्राप्स्यति, प्राप्य मासिक्या संलेखनया आत्मानं जोषित्वा, षष्टिं भक्तानि अनशनेन छित्त्वा आलोचित-प्रतिक्रान्तः समाधिप्राप्तः ऊर्ध्वं चन्द्रमस् यावत्

१८५. भन्ते! सुमंगल अनगार विमलवाहन राजा को घोड़े-सहित यावत् राख का ढेर कर कहां जायेगा? कहां उपपन्न होगा?
गौतम! सुमंगल अनगार विमलवाहन राजा को घोड़े-सहित यावत् राख का ढेर करने के पश्चात् अनेक षष्ठ-षष्ठ भक्त (दो-दो दिन का उपवास), अष्टम-अष्टम भक्त (तीन-तीन दिन का उपवास), दशम-दशम भक्त (चार-चार दिन का उपवास), द्वादश-द्वादश भक्त (पांच-पांच दिन का उपवास) (आदि से लेकर) अर्ध मासक्षपण (पन्द्रह दिन का उपवास) और मासक्षपण (तीस दिन का उपवास) के रूप में विचित्र तपःकर्म के द्वारा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महाविमाणे देवत्ताए उववज्जिहिति। तत्थ णं देवाणं अजहन्नमणुक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं ठिती पण्णत्ता। तत्थ णं सुमंगलस्स वि देवस्स अजहन्नमणुक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं ठिती पण्णत्ता।

ग्रैवेयकविमानावासशतं व्यतिव्रज्य सर्वार्थसिद्धे महाविमाने देवत्वेन उपपत्स्यते। तत्र देवानाम् अजघन्योत्कर्षेण त्रयस्त्रिंशत् सागरोपमानि स्थितिः प्रज्ञप्ता। तत्र सुमंगलस्यापि देवस्य अजघन्यानुत्कर्षेण त्रयस्त्रिंशत् सागरोपमानि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

अपने आपको भावित करते हुए बहुत वर्षों तक श्रामण्य-पर्याय को प्राप्त करेगा, प्राप्त कर एक मासिक संलेखना के द्वारा अपने आपको कृश बनाकर अनशन के द्वारा साठ भक्तों का छेदन कर, आलोचना और प्रतिक्रमण कर समाधिपूर्ण दशा में (दिवंगत होकर) ऊर्ध्वलोक में चन्द्रमा यावत् ग्रैवेयक विमानावास-शतक का व्यतिक्रमण कर सर्वार्थसिद्ध महाविमान में देवरूप में उपपन्न होगा। वहां देवताओं की जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति तेतीस सागरोपम की प्रज्ञप्त है। वहां सुमंगल देव की स्थिति भी जघन्य और उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम की प्रज्ञप्त है।

से णं भंते! सुमंगले देवे ताओ देवलोगाओ आउक्खएणं भवक्खएणं ठिइक्खएणं अणंतरं चयं चइत्ता कहिं गच्छिहिति? कहिं उववज्जिहिति?
गोयमा! महाविदेहे वासे सिज्झिहिति जाव सव्वदुक्खाणं अंतं काहिति॥

सः भदन्त! सुमंगलः देवः तस्मात् देवलोकात् आयुःक्षयेण भवक्षयेण स्थितिक्षयेण अनन्तरं च्यवं च्युत्वा कुत्र गमिष्यति? कुत्र उपपत्स्यते?
गौतम! महाविदेहे वर्षे सेत्स्यति यावत् सर्वदुःखानाम् अन्तं करिष्यति।

भंते! वह सुमंगल देव उस देवलोक से आयु-क्षय, भव-क्षय और स्थिति-क्षय के अनन्तर च्यवन कर कहां जायेगा?, कहां उपपन्न होगा?
गौतम! महाविदेह वास में सिद्ध होगा यावत् सब दुःखों का अन्त करेगा।

१८६. विमलवाहणे णं भंते! राया सुमंगलेणं अणगारेणं सहये जाव भासरासीकए समाणे कहिं गच्छिहिति? कहिं उववज्जिहिति?
गोयमा! विमलवाहणे णं राया सुमंगलेणं अणगारेणं सहये जाव भासरासीकए समाणे अहेसत्तमाए पुढवीए उक्कोसकालट्ठिइयंसि नरयंसि नेरइयत्ताए उववज्जिहिति।
से णं ततो अणंतरं उव्वट्टित्ता मच्छेसु उववज्जिहिति। तत्थ वि णं सत्थवज्झे दाहवक्कंतीए कालमासे कालं किच्चा दोच्चं पि अहेसत्तमाए पुढवीए उक्कोसकालट्ठिइयंसि नरयंसि नेरइयत्ताए उववज्जिहिति।

से णं तओणंतरं उव्वट्टित्ता दोच्चं पि मच्छेसु उववज्जिहिति। तत्थ णं वि सत्थवज्झे दाहवक्कंतीए कालमासे कालं किच्चा छट्ठाए तमाए पुढवीए उक्कोसकालट्ठिइयंसि नरगंसि नेरइयत्ताए उववज्जिहिति।
से णं तओहिंतो अणंतरं उव्वट्टित्ता इत्थियासु उववज्जिहिति। तत्थ वि णं

विमलवाहनः भदन्त! राजा सुमंगलेन अनगारेण सहयः यावत् भस्मराशिकृतः सन् कुत्र गमिष्यति? कुत्र उपपत्स्यते?
गौतम! विमलवाहनः राजा सुमंगलेन अनगारेण सहयः यावत् भस्मराशिकृतः सन् अधःसप्तम्यां पृथिव्याम् उत्कर्षकालस्थितिके नरके नैरयिकत्वेन उपपत्स्यते।
सः ततः अनन्तरम् उद्वर्त्य मत्स्येषु उपपत्स्यते। तत्र अपि शस्त्रवध्यः दाहावक्रान्तिकः (दाहावक्कंतीए) कालमासे कालं कृत्वा द्विः अपि अधःसप्तम्यां पृथिव्याम् उत्कर्षकालस्थितिके नरके नैरयिकत्वेन उपपत्स्यते।
सः ततः अनन्तरम् उद्वर्त्य द्विः अपि मत्स्येषु उपपत्स्यते। तत्रापि शस्त्रवध्यः दाहावक्रान्तिकः कालमासे कालं कृत्वा षष्ठ्यां तमायां पृथिव्याम् उत्कर्षकालस्थितिके नरके नैरयिकत्वेन उपपत्स्यते।
सः तस्मात् अनन्तरम् उद्वर्त्य स्त्रीषु उपपत्स्यते। तत्रापि शस्त्रवध्यः

१८६. भन्ते! सुमंगल अनगार के द्वारा घोड़े-सहित यावत् राख का ढेर कर दिए जाने पर राजा विमलवाहन कहां जायेगा? कहां उपपन्न होगा?
गौतम! सुमंगल अनगार के द्वारा घोड़े-सहित यावत् राख का ढेर कर दिए जाने पर राजा विमलवाहन अधःसप्तमी पृथ्वी में उत्कृष्ट कालस्थितिवाली नरक में नैरयिक के रूप में उपपन्न होगा।
वह उसके अनन्तर वहां से उद्वृत्त होकर मत्स्य के रूप में उपपन्न होगा। वहां पर भी शस्त्रवध्य होता हुआ दाह की उत्पत्ति से कालमास में काल (मृत्यु) को प्राप्त कर दूसरी बार भी अधःसप्तमी पृथ्वी में उत्कृष्ट कालस्थितिवाली नरक में नैरयिक के रूप में उपपन्न होगा।
वह उसके अनन्तर वहां से उद्वृत्त होकर दूसरी बार भी मत्स्य के रूप में उपपन्न होगा। वहां पर भी शस्त्रवध्य होता हुआ दाह की उत्पत्ति से कालमास में काल को प्राप्त कर छट्ठी तमा पृथ्वी में उत्कृष्ट कालस्थितिवाली नरक में नैरयिक के रूप में उपपन्न होगा।
वह उसके अनन्तर वहां से उद्वृत्त होकर स्त्री के रूप में उपपन्न होगा। वहां पर भी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सत्थवज्झे दाहवक्कंतीए कालमासे कालं किच्चा दोच्चं पि छट्ठाए तमाए पुढवीए उक्कोसकालट्ठिइयंसि नरगंसि नेरइयत्ताए उववज्जिहिति।

दाहावक्रान्तिकः कालमासे कालं कृत्वा द्विः अपि षष्ठ्यां तमायां पृथिव्याम् उत्कर्षकालस्थिके नरके नैरयिकत्वेन उपपत्स्यते।

शस्त्रवध्य होता हुआ दाह की उत्पत्ति से कालमास में काल को प्राप्त कर दूसरी बार भी छट्ठी तमा पृथ्वी में उत्कृष्ट कालस्थितिवाली नरक में नैरयिक के रूप में उपपन्न होगा।

से णं तओहिंतो अणंतरं उव्वट्टित्ता दोच्चं पि इत्थियासु उववज्जिहिति। तत्थ वि णं सत्थवज्झे दाहवक्कंतीए कालमासे कालं किच्चा पंचमाए धूमप्पभाए पुढवीए उक्कोसकालट्ठिइयंसि नरगंसि नेरइयत्ताए उववज्जिहिति।

सः तस्मात् अनन्तरम् उद्वर्त्य द्विः अपि स्त्रीषु उपपत्स्यते। तत्रापि शस्त्रवध्यः दाहावक्रान्तिकः कालमासे कालं कृत्वा पञ्चभ्यां धूमप्रभायां पृथिव्याम् उत्कर्षकालस्थितिके नरके नैरयिकत्वेन उपपत्स्यते।

वह उसके अनन्तर वहां से उद्वृत्त होकर दूसरी बार भी स्त्री के रूप में उपपन्न होगा। वहां पर भी शस्त्रवध्य होता हुआ दाह की उत्पत्ति से कालमास में काल को प्राप्त कर पांचवीं धूमप्रभा पृथ्वी में उत्कृष्ट कालस्थितिवाली नरक में नैरयिक के रूप में उपपन्न होगा।

से णं ततो अणंतरं उव्वट्टित्ता उरएसु उववज्जिहिति। तत्थ वि णं सत्थवज्झे दाहवक्कंतीए कालमासे कालं किच्चा दोच्चं पि पंचमाए धूमप्पभाए पुढवीए उक्कोसकालट्ठिइयंसि नरगंसि नेरइयत्ताए उववज्जिहिति।

सः ततः अनन्तरम् उद्वर्त्य उरगेषु उपपत्स्यते। तत्रापि शस्त्रवध्यः दाहावक्रान्तिकः कालमासे कालं कृत्वा द्विः अपि पञ्चम्यां धूमप्रभायां पृथिव्याम् उत्कर्षकालस्थितिके नरके नैरयिकत्वेन उपपत्स्यते।

वह उसके अनन्तर वहां से उद्वृत्त होकर उरःपरिसर्प-(पेट के बल पर चलने वाले सांप) के रूप में उपपन्न होगा। वहां पर भी शस्त्रवध्य होता हुआ दाह की उत्पत्ति से कालमास में काल को प्राप्त कर दूसरी बार भी धूमप्रभा पृथ्वी में उत्कृष्ट कालस्थिति-वाली नरक में नैरयिक के रूप में उपपन्न होगा।

से णं तओहिंतो अणंतरं उव्वट्टित्ता दोच्चं पि उरएसु उववज्जिहिति। तत्थ वि णं सत्थवज्झे दाहवक्कंतीए कालमासे कालं किच्चा चउत्थीए पंकप्पभाए पुढवीए उक्कोसकालट्ठिइयंसि नरगंसि नेरइयत्ताए उववज्जिहिति।

सः तस्मात् अनन्तरम् उद्वर्त्य द्विः अपि उरगेषु उपपत्स्यते। तत्रापि शस्त्रवध्यः दाहावक्रान्तिकः कालमासे कालं कृत्वा चतुर्थ्यां पङ्कप्रभायां पृथिव्याम् उत्कर्षकालस्थितिके नरके नैरयिकत्वेन उपपत्स्यते।

वह उसके अनन्तर वहां से उद्वृत्त होकर दूसरी बार भी उरपरिसर्प के रूप में उपपन्न होगा। वहां पर भी शस्त्रवध्य होता हुआ दाह की उत्पत्ति से कालमास में काल को प्राप्त कर चौथी पंकप्रभा पृथ्वी में उत्कृष्ट कालस्थिति वाली नरक में नैरयिक के रूप में उपपन्न होगा।

से णं ततो अणंतरं उव्वट्टित्ता सीहेसु उववज्जिहिति। तत्थ वि णं सत्थवज्झे दाहवक्कंतीए कालमासे कालं किच्चा दोच्चं पि चउत्थीए पंकप्पभाए पुढवीए उक्कोसकालट्ठिइयंसि नरगंसि नेरइयत्ताए उववज्जिहिति।

सः ततः अनन्तरम् उद्वर्त्य सिंहेषु उपपत्स्यते। तत्रापि शस्त्रवध्यः दाहावक्रान्तिकः कालमासे कालं कृत्वा द्विः अपि चतुर्थ्यां पङ्कप्रभायां पृथिव्याम् उत्कर्षकालस्थितिके नरके नैरयिकत्वेन उपपत्स्यते।

वह उसके अनन्तर वहां से उद्वृत्त होकर सिंह के रूप में उपपन्न होगा। वहां पर भी शस्त्र-वध्य होता हुआ दाह की उत्पत्ति से कालमास में काल को प्राप्त कर दूसरी बार भी चौथी पंकप्रभा पृथ्वी में उत्कृष्ट कालस्थिति-वाली नरक में नैरयिक के रूप में उपपन्न होगा।

से णं तओहिंतो अणंतरं उव्वट्टित्ता दोच्चं पि सीहेसु उववज्जिहिति। तत्थ वि णं सत्थवज्झे दाहवक्कंतीए कालमासे कालं किच्चा तच्चाए वालुयप्पभाए पुढवीए उक्कोसकालट्ठिइयंसि नरगंसि नेरइयत्ताए उववज्जिहिति।

सः तस्मात् अनन्तरम् उद्वर्त्य द्विः अपि सिंहेषु उपपत्स्यते। तत्रापि शस्त्रवध्यः दाहावक्रान्तिकः कालमासे कालं कृत्वा तृतीयायां वालुकाप्रभायां पृथि-व्याम् उत्कर्षकालस्थितिके नरके नैरयिकत्वेन उपपत्स्यते।

वह उसके अनन्तर वहां से उद्वृत्त होकर दूसरी बार भी सिंह के रूप में उपपन्न होगा। वहां पर भी शस्त्रवध्य होता हुआ दाह की उत्पत्ति से कालमास में काल को प्राप्त कर तीसरी बालुकाप्रभा पृथ्वी में उत्कृष्ट कालस्थितिवाली नरक में नैरयिक के रूप में उपपन्न होगा।

से णं ततो अणंतरं उव्वट्टित्ता पक्खीसु उववज्जिहिति। तत्थ वि णं सत्थवज्झे दाहवक्कंतीए कालमासे कालं किच्चा दोच्चं पि तच्चाए वालुयप्पभाए पुढवीए

सः ततः अनन्तरम् उद्वर्त्य पक्षिषु उपपत्स्यते। तत्रापि शस्त्रवध्यः दाहावक्रान्तिकः कालमासे कालं कृत्वा द्विः अपि तृतीयायां बालुकाप्रभायां

वह उसके अनन्तर वहां से उद्वृत्त होकर पक्षी के रूप में उपपन्न होगा। वहां पर भी शस्त्रवध्य होता हुआ दाह की उत्पत्ति से कालमास में काल को प्राप्त कर दूसरी बार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उक्कोसकालट्ठिइयंसि नरगंसि नेरइयत्ताए उववज्जिहिति।

पृथिव्याम् उत्कर्षकालस्थितिके नरके नैरयिकत्वेन उपपत्स्यते।

भी तीसरी बालुकाप्रभा पृथ्वी में उत्कृष्ट कालस्थितिवाली नरक में नैरयिक के रूप में उपपन्न होगा।

से णं तओणंतरं उव्वट्टित्ता दोच्चं पि पक्खीसु उववज्जिहिति। तत्थ वि णं सत्थवज्झे दाहवक्कंतीए कालमासे कालं किच्चा दोच्चाए सक्करप्पभाए पुढवीए उक्कोसकालट्ठिइयंसि नरगंसि नेरइयत्ताए उववज्जिहिति।

सः ततः अनन्तरम् उद्वर्त्य द्विः अपि पक्षिषु उपपत्स्यते। तत्रापि शस्त्रवध्यः दाहावक्रान्तिकः कालमासे कालं कृत्वा द्वितीयायां शर्कराप्रभायां पृथिव्याम् उत्कर्षकालस्थितिके नरके नैरयिकत्वेन उपपत्स्यते।

वह उसके अनन्तर वहां से उद्वृत्त होकर दूसरी बार भी पक्षी के रूप में उपपन्न होगा। वहां पर भी शस्त्रवध्य होता हुआ दाह की उत्पत्ति से कालमास में काल को प्राप्त कर दूसरी शर्कराप्रभा पृथ्वी में उत्कृष्ट कालस्थितिवाली नरक में नैरयिक के रूप में उपपन्न होगा।

से णं ततो अणंतरं उव्वट्टित्ता सिरीसवेसु उववज्जिहिति। तत्थ वि णं सत्थवज्झे दाहवक्कंतीए कालमासे कालं किच्चा दोच्चं पि दोच्चाए सक्करप्पभाए पुढवीए उक्कोसकालट्ठिइयंसि नरगंसि नेरइयत्ताए उववज्जिहिति।

सः ततः अनन्तरम् उद्वर्त्य सरीसृपेषु उपपत्स्यते। तत्रापि शस्त्रवध्यः दाहावक्रान्तिकः कालमासे कालं कृत्वा द्विः अपि द्वितीयायां शर्कराप्रभायां पृथिव्याम् उत्कर्षकालस्थितिके नरके नैरयिकत्वेन उपपत्स्यते।

वह उसके अनन्तर वहां से उद्वृत्त होकर सरीसृप के रूप में उपपन्न होगा। वहां पर भी शस्त्रवध्य होता हुआ दाह की उत्पत्ति से कालमास में काल को प्राप्त कर दूसरी बार भी दूसरी शर्कराप्रभा पृथ्वी में उत्कृष्ट कालस्थितिवाली नरक में नैरयिक के रूप में उपपन्न होगा।

से णं तओणंतरं उव्वट्टित्ता दोच्चं पि सिरीसवेसु उववज्जिहिति। तत्थ वि णं सत्थवज्झे दाहवक्कंतीए कालमासे कालं किच्चा इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए उक्कोसकालट्ठिइयंसि नरगंसि नेरइयत्ताए उववज्जिहिति।

सः ततः अनन्तरम् उद्वर्त्य द्विः अपि सरीसृपेषु उपपत्स्यते। तत्रापि शस्त्रवध्यः दाहावक्रान्तिकः कालमासे कालं कृत्वा अस्यां रत्नप्रभायां पृथिव्याम् उत्कर्षकालस्थितिके नरके नैरयिकत्वेन उपपत्स्यते।

वह उसके अनन्तर वहां से उद्वृत्त होकर दूसरी बार भी सरीसृप के रूप में उपपन्न होगा। वहां पर भी शस्त्रवध्य होता हुआ दाह की उत्पत्ति से कालमास में काल को प्राप्त कर इस पहली रत्नप्रभा पृथ्वी में उत्कृष्ट कालस्थितिवाली नरक में नैरयिक के रूप में उपपन्न होगा।

से णं ततो अणंतरं उव्वट्टित्ता सण्णीसु उववज्जिहिति। तत्थ वि णं सत्थवज्झे दाहवक्कंतीए कालमासे कालं किच्चा असण्णीसु उववज्जिहिति। तत्थ वि णं सत्थवज्झे दाहवक्कंतीए कालमासे कालं किच्चा दोच्चं पि इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए पलिओवमस्स असंखेज्जइभागट्ठिइयंसि नरगंसि नेरइयत्ताए उववज्जिहिति।

सः ततः अनन्तरम् उद्वर्त्य संज्ञिषु उपपत्स्यते। तत्रापि शस्त्रवध्यः दाहावक्रान्तिकः कालमासे कालं कृत्वा असंज्ञिषु उपपत्स्यते। तत्रापि शस्त्रवध्यः दाहावक्रान्तिकः कालमासे कालं कृत्वा द्विः अपि अस्यां रत्नप्रभायां पृथिव्यां पल्योपमस्य असंख्येयभागस्थितिके नरके नैरयिकत्वेन उपपत्स्यते।

वह उसके अनन्तर वहां से उद्वृत्त होकर संज्ञी जीव के रूप में उपपन्न होगा। वहां पर भी शस्त्रवध्य होता हुआ दाह की उत्पत्ति से कालमास में काल को प्राप्त कर असंज्ञी जीव के रूप में उत्पन्न होगा। वहां पर भी शस्त्रवध्य होता हुआ दाह की उत्पत्ति से कालमास में काल को प्राप्त कर दूसरी बार भी इस पहली रत्नप्रभा पृथ्वी में पल्योपम के असंख्येयभाग स्थितिवाली नरक में नैरयिक के रूप में उपपन्न होगा।

से णं ततो अणंतरं उव्वट्टित्ता जाइं इमाइं खहयरविहाणाइं भवंति, तं जहा—चम्मपक्खीणं, लोमपक्खीणं, समुग्गपक्खीणं, वियपक्खीणं, तेसु अणेगसयसहस्सखुत्तो उद्दाइत्ता-उद्दाइत्ता तत्थेवतत्थेव भुज्जो-भुज्जो पच्चायाहिति। सव्वत्थ वि णं सत्थवज्झे दाहवक्कंतीए कालमासे कालं किच्चा जाइं इमाइं भुयपरिसप्पविहाणाइं भवंति, तं जहा—गोहाणं, नउलाणं, जहा पण्णवणापए

सः ततः अनन्तरम् उद्वर्त्य यानि इमानि खेचरविधानानि भवन्ति, तद्यथा—चर्मपक्षिणाम्, लोमपक्षिणाम्, समुद्गपक्षिणाम् (समुद्गपक्षिणाम्), विततपक्षिणाम्, तेषु अनेकशतसहस्रकृत्वः उद्द्रुत्य-उद्द्रुत्य तत्रैव-तत्रैव भूयः-भूयः प्रत्याजनिष्यते। सर्वत्रापि शस्त्रवध्यः दाहावक्रान्तिकः कालमासे कालं कृत्वा यानि इमानि भुजपरिसर्पविधानानि भवन्ति, तद्

वह उसके अनन्तर वहां से उद्वृत्त होकर जो ये खेचर (पक्षी) के भेदों का विधान किया गया है, जैसे—चर्मपक्षी, रोमपक्षी, समुद्गपक्षी और विततपक्षी, इन जीवों के रूप में अनेक शतसहस्र बार मर कर पुनः उन्हीं जीवों के रूप में बार-बार जन्म लेगा।

इन सभी स्थानों में भी शस्त्रवध्य होता हुआ दाह की उत्पत्ति से कालमास में काल को प्राप्त कर ये जो भुजपरिसर्प (हाथों के बल

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जाव जाहगाणं चउप्पइयाणं, तेसु अणेगसयसहस्सखुत्तो उद्दाइत्ता-उद्दाइत्ता तत्थेव-तत्थेव भुज्जो-भुज्जो पच्चायाहिति।

यथा–गोधानाम् नकुलानाम्, यथा प्रज्ञापनापदे यावत् जाहकानाम् चतुष्पादिकानां, तेषु अनेकशतसहस्रकृत्वः उद्द्रुत्य-उद्द्रुत्य तत्रैव-तत्रैव भूयः-भूयः प्रत्याजनिष्यते।

चलने वाले गोह आदि) जीवों के भेदों का विधान किया गया है, जैसे–गोह, नेवला, जैसा प्रज्ञापना (प्रथम) पद में बताया गया है यावत् जाहक तक चतुष्पद वाले प्राणी हैं, उनमें अनेक शतसहस्र बार मर कर पुनः उन्हीं जीवों के रूप में बार-बार जन्म लेगा।

सव्वत्थ वि णं सत्थवज्झे दाहवक्कंतीए कालमासे कालं किच्चा जाइं इमाइं उरपरिसप्पविहाणाइं भवंति, तं जहा–अहीणं, अयगराणं, आसालियाणं, महोरगाणं, तेसु अणेगसयसहस्सखुत्तो उद्दाइत्ता-उद्दाइत्ता तत्थेव-तत्थेव भुज्जो-भुज्जो पच्चायाहिति।

सर्वत्रापि शस्त्रवध्यः दाहावक्रान्तिकः कालमासे कालं कृत्वा यानि इमानि उरपरिसर्पविधानानि भवन्ति, तद् यथा–अहीनाम् अजगराणाम् आशालिकानाम्, महोरगाणाम्, तेषु अनेकशतसहस्रकृत्वः उद्द्रुत्य-उद्द्रुत्य तत्रैव-तत्रैव भूयः-भूयः प्रत्याजनिष्यते।

इन सभी स्थानों में भी शस्त्रवध्य होता हुआ दाह की उत्पत्ति से कालमास में काल को प्राप्त कर ये जो उरपरिसर्प जीवों के भेदों का विधान किया गया है, जैसे–सांप, अजगर, आशालिका और महोरग हैं, उनमें अनेक शतसहस्र बार मर कर पुनः उन्हीं जीवों के रूप में बार-बार जन्म लेगा।

सव्वत्थ वि णं सत्थवज्झे दाहवक्कंतीए कालमासे कालं किच्चा जाइं इमाइं चउप्पदविहाणाइं भवंति, तं जहा–एगखुराणं, दुखुराणं, गंडीपदाणं, सणप्पदाणं, तेसु अणेगसयसहस्स खुत्तो उद्दाइत्ता-उद्दाइत्ता तत्थेव-तत्थेव भुज्जो-भुज्जो पच्चायाहिति।

सर्वत्रापि शस्त्रवध्यः दाहावक्रान्तिकः कालमासे कालं कृत्वा यानि इमानि चतुष्पदविधानानि भवन्ति, तद् यथा–एकखुराणाम्, द्विखुराणाम्, गण्डीपदानाम् सनखपदानाम्, तेषु अनेकशतसहस्रकृत्वः उद्द्रुत्य-उद्द्रुत्य तत्रैव-तत्रैव भूयः-भूयः प्रत्याजनिष्यते।

इन सभी स्थानों में भी शस्त्रवध्य होता हुआ दाह की उत्पत्ति से कालमास में काल को प्राप्त कर ये जो चतुष्पद जीवों के भेदों का विधान किया गया है, जैसे–एक खुर वाले (घोड़ा आदि), दो खुर वाले (बैल आदि), गण्डीपद (हाथी आदि) और सनख-पद (शेर आदि) हैं, उनमें अनेक शतसहस्र बार मर कर पुनः उन्हीं जीवों के रूप में बार-बार जन्म लेगा।

सव्वत्थ वि णं सत्थवज्झे दाहवक्कंतीए कालमासे कालं किच्चा जाइं इमाइं जलयरविहाणाइं भवंति, तं जहा–मच्छाणं कच्छभाणं जाव सुंसुमाराणं, तेसु अणेगसयहस्स खुत्तो उद्दाइत्ता-उद्दाइत्ता तत्थेव-तत्थेव भुज्जो-भुज्जो पच्चायाहिति।

सर्वत्रापि शस्त्रवध्यः दाहावक्रान्तिकः कालमासे कालं कृत्वा यानि इमानि जलचरविधानानि भवन्ति, तद् यथा–मत्स्यानाम् कच्छपानाम् यावत् सुंसुमाराणाम्, तेषु अनेकशतसहस्रकृत्वः उद्द्रुत्य-उद्द्रुत्य तत्रैव-तत्रैव भूयः-भूयः प्रत्याजनिष्यते।

इन सभी स्थानों में भी शस्त्रवध्य होता हुआ दाह की उत्पत्ति से कालमास में काल को प्राप्त कर ये जो जलचर जीवों के भेदों का विधान किया गया है, जैसे–मत्स्य, कछुआ यावत् सुंसुमार (मगरमच्छ) तक हैं, उनमें अनेक शतसहस्र बार मर कर पुनः उन्हीं जीवों के रूप में बार-बार जन्म लेगा।

सव्वत्थ वि णं सत्थवज्झे दाहवक्कंतीए कालमासे कालं किच्चा जाइं इमाइं चउरिंदियविहाणाइं भवंति, तं जहा–अंधियाणं, पोत्तियाणं, जहा–पण्णवणापदे जाव गोमयकीडाणं, तेसु अणेगसयसहस्सखुत्तो उद्दाइत्ता-उद्दाइत्ता तत्थेव-तत्थेव भुज्जो-भुज्जो पच्चायाहिति॥

सर्वत्रापि शस्त्रवध्यः दाहावक्रान्तिकः कालमासे कालं कृत्वा यानि इमानि चतुरिन्द्रियविधानानि भवन्ति, तद् यथा–अन्धिकानाम् 'पोत्तियाणं', यथा प्रज्ञापनापदे यावत् गोमयकीटानाम्, तेषु अनेकशतसहस्रकृत्वः उद्द्रुत्य-उद्द्रुत्य तत्रैव-तत्रैव भूयः-भूयः प्रत्याजनिष्यते।

इन सभी स्थानों में भी शस्त्रवध्य होता हुआ दाह की उत्पत्ति से कालमास में काल को प्राप्त कर ये जो चतुरिन्द्रिय जीवों के भेदों का विधान किया गया है, जैसे–अन्धिका, पोत्तिका, जैसा प्रज्ञापना (प्रथम) पद में बताया गया है यावत् गोमयकीटक (गोबर का कीड़ा) तक हैं, उनमें अनेक शतसहस्र बार मर कर पुनः उन्हीं जीवों के रूप में बार-बार जन्म लेगा।

सव्वत्थ वि णं सत्थवज्झे दाहवक्कंतीए कालमासे कालं किच्चा जाइं इमाइं तेइंदियविहाणाइं भवंति, तं जहा–उवचियाणं जाव हत्थिसोंडाणं, तेसु अणेगसयसहस्सखुत्तो उद्दाइत्ता-उद्दा-

सर्वत्रापि शस्त्रवध्यः दाहावक्रान्तिकः कालमासे कालं कृत्वा यानि इमानि त्रीन्द्रियविधानानि भवन्ति, तद् यथा–उपचितानां यावत् हस्तिशौण्डानाम्, तेषु अनेकशतसहस्रकृत्वः उद्द्रुत्य-

इन सभी स्थानों में भी शस्त्रवध्य होता हुआ दाह की उत्पत्ति से कालमास में काल को प्राप्त कर ये जो त्रीन्द्रिय जीवों के भेदों का विधान किया गया है, जैसे–उपचित यावत् हस्तिसुण्डी तक हैं, उनमें अनेक शतसहस्र

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इत्ता तत्थेव-तत्थेव भुज्जो-भुज्जो पच्चायाहिति॥

सव्वत्थ वि णं सत्थवज्झे दाहवक्कंतीए कालमासे कालं किच्चा जाइं इमाइं बेइंदियविहाणाइं भवंति, तं जहा—पुलाकिमियाणं जाव समुद्दलिक्खाणं, तेसु अणेगसयसहस्सखुत्तो उद्दाइत्ता-उद्दाइत्ता तत्थेव-तत्थेव भुज्जो-भुज्जो पच्चायाहिति।

सव्वत्थ वि णं सत्थवज्झे दाहवक्कंतीए कालमासे कालं किच्चा जाइं इमाइं वणस्सइविहाणाइं भवंति, तं जहा—रुक्खाणं, गुच्छाणं जाव कुहणाणं तेसु अणेगसयसहस्सखुत्तो उद्दाइत्ता-उद्दाइत्ता तत्थेव-तत्थेव भुज्जो-भुज्जो पच्चायाइस्सइ—उस्सन्नं च णं कडुयरुक्खेसु, कडुयवल्लीसु।

सव्वत्थ वि णं सत्थवज्झे दाहवक्कंतीए कालमासे कालं किच्चा जाइं इमाइं वाउक्काइयविहाणाइं भवंति, तं जहा—पाईणवायाणं जाव सुद्धवायाणंतेसु अणेगसयसहस्सखुत्तो उद्दाइत्ता-उद्दाइत्ता तत्थेव-तत्थेव भुज्जो-भुज्जो पच्चायाहिति।

सव्वत्थ वि णं सत्थवज्झे दाहव-क्कंतीए कालमासे कालं किच्चा जाइं इमाइं तेउक्काइयविहाणाइं भवंति, तं जहा—इंगालाणं जाव सूरकंतमणि-निस्सियाणं, तेसु अणेगसयसहस्स खुत्तो उद्दाइत्ता-उद्दाइत्ता तत्थेव-तत्थेव भुज्जो-भुज्जो पच्चायाहिति।

सव्वत्थ वि णं सत्थवज्झे दाहवक्कंतीए कालमासे कालं किच्चा जाइं इमाइं आउक्काइयविहाणाइं भवंति, तं जहा—ओसाणं जाव खातोदगाणं, तेसु अणेग-सयसहस्सखुत्तो उद्दाइत्ता-उद्दाइत्ता तत्थेव-तत्थेव भुज्जो-भुज्जो पच्चाया-इस्सइ—उस्सन्नं च णं खारोदएसु खत्तोदएसु।

सव्वत्थ वि णं सत्थवज्झे दाहवक्कंतीए कालमासे कालं किच्चा जाइं इमाइं पुढविक्काइयविहाणाइं भवंति, तं जहा—

उद्दाल्य तत्रैव-तत्रैव भूयः-भूयः प्रत्याजनिष्यते।

सर्वत्रापि शस्त्रवध्यः दाहावक्रान्तिकः कालमासे कालं कृत्वा यानि इमानि द्वीन्द्रियविधानानि भवन्ति, तद् यथा—पुलाकृमिकानां यावत् समुद्रलिक्षाणाम्, तेषु अनेकशतसहस्रकृत्वः उद्दाल्य-उद्दाल्य तत्रैव-तत्रैव भूयः-भूयः प्रत्याजनिष्यते।

सर्वत्रापि शस्त्रवध्यः दाहावक्रान्तिकः कालमासे कालं कृत्वा यानि इमानि वनस्पतिविधानानि भवन्ति, तद् यथा—वृक्षाणाम्, गुच्छानाम् यावत् कुहनानाम्, तेषु अनेकशतसहस्रकृत्वः उद्दाल्य-उद्दाल्य तत्रैव-तत्रैव भूयः-भूयः प्रत्याजनिष्यते—'उत्सन्नं' च कटुक-वृक्षेषु, कटुकवल्लीषु।

सर्वत्रापि शस्त्रवध्यः दाहावक्रान्तिकः कालमासे कालं कृत्वा यानि इमानि वायुकायिकविधानानि भवन्ति, तद् यथा—प्राचीनवातानाम् यावत् शुद्ध-वातानाम् तेषु अनेकशतसहस्रकृत्वः उद्दाल्य-उद्दाल्य तत्रैव-तत्रैव भूयः-भूयः प्रत्याजनिष्यते।

सर्वत्रापि शस्त्रवध्यः दाहावक्रान्तिकः कालमासे कालं कृत्वा यानि इमानि तेजस्कायिकविधानानि भवन्ति, तद् यथा—अंगाराणाम् यावत् सूरकान्त-मणि-निश्रितानाम्, तेषु अनेकशत-सहस्रकृत्वः उद्दाल्य-उद्दाल्य तत्रैव-तत्रैव भूयः-भूयः प्रत्याजनिष्यते।

सर्वत्रापि शस्त्रवध्यः दाहावक्रान्तिकः कालमासे कालं कृत्वा यानि इमानि अप्कायिकविधानानि भवन्ति, तद् यथा—'ओसाणं' यावत् 'खातोदगाणं' तेषु अनेकशतसहस्रकृत्वः उद्दाल्य-उद्दाल्य तत्रैव-तत्रैव भूयः-भूयः प्रत्याजनिष्यते—'उस्सन्नं च क्षारोदकेषु 'खत्त' उदकेषु।

सर्वत्रापि शस्त्रवध्यः दाहावक्रान्तिकः कालमासे कालं कृत्वा यानि इमानि पृथ्वीकायिकविधानानि भवन्ति, तद्

बार मर कर पुनः उन्हीं जीवों के रूप में बार-बार जन्म लेगा।

इन सभी स्थानों में भी शस्त्रवध्य होता हुआ दाह की उत्पत्ति से कालमास में काल को प्राप्त कर ये जो द्वीन्द्रिय जीवों के भेदों का विधान किया गया है, जैसे—पुलाकृमिक यावत् समुद्रलिक्षा तक हैं, उनमें अनेक शतसहस्र बार मर कर पुनः उन्हीं जीवों के रूप में बार-बार जन्म लेगा।

इन सभी स्थानों में भी शस्त्रवध्य होता हुआ दाह की उत्पत्ति से कालमास में काल को प्राप्त कर ये जो वनस्पति जीवों के भेदों का विधान किया गया है, जैसे—वृक्ष, गुच्छ यावत् कुहण (भूंफोड आदि) तक हैं, उनमें अनेक शतसहस्र बार मर कर पुनः उन्हीं जीवों के रूप में बार-बार जन्म लेगा—बहुल रूप में कटुकवृक्ष, कटुकवल्ली में बार-बार जन्म लेगा।

इन सभी स्थानों में भी शस्त्रवध्य होता हुआ दाह की उत्पत्ति से कालमास में काल को प्राप्त कर ये जो वायुकायिक जीवों के भेदों का विधान किया गया है, जैसे—पूर्ववात यावत् शुद्धवात तक हैं, उनमें अनेक शतसहस्र बार मर कर पुनः उन्हीं जीवों के रूप में बार-बार जन्म लेगा।

इन सभी स्थानों में भी शस्त्रवध्य होता हुआ दाह की उत्पत्ति से कालमास में काल को प्राप्त कर ये जो तेजस्कायिक जीवों के भेदों का विधान किया गया है, जैसे—अंगार यावत् सूर्यकान्तमणि निश्रित अग्नि तक हैं, उनमें अनेक शतसहस्र बार मर कर पुनः उन्हीं जीवों के रूप में बार-बार जन्म लेगा।

इन सभी स्थानों में भी शस्त्रवध्य होता हुआ दाह की उत्पत्ति से कालमास में काल को प्राप्त कर ये जो अप्कायिक जीवों के भेदों का विधान किया गया है, जैसे—ओस, यावत् खातोदग (खाई का पानी) तक हैं, उनमें अनेक शतसहस्र बार मर कर पुनः उन्हीं जीवों के रूप में बार-बार जन्म लेगा—बहुलरूप में खाराजल और खातोदग में बार-बार जन्म लेगा।

इन सभी स्थानों में भी शस्त्रवध्य होता हुआ दाह की उत्पत्ति से कालमास में काल को प्राप्त कर ये जो पृथ्वीकायिक जीवों के भेदों

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुढवीणं, सक्कराणं जाव सूरकंताणं तेसु अणेगसयसहस्सखुत्तो उद्दाइत्ता-उद्दाइत्ता तत्थेव-तत्थेव भुज्जो-भुज्जो पच्चायाहिति–उस्सन्नं च णं खरबायर-पुढविक्काइएसु।

यथा–पृथ्वीनाम् शर्कराणाम् यावत् सूरकान्तानाम् तेषु अनेकशत-सहस्रकृत्वः उद्द्रुत्य-उद्द्रुत्य तत्रैव-तत्रैव भूयः-भूयः प्रत्याजनिष्यते–'उस्सन्नं' च खरबादरपृथ्वीकायिकेषु।

का विधान किया गया है, जैसे–शर्करा यावत् सूर्यकान्त तक हैं, उनमें अनेक शतसहस्र बार मर कर पुनः उन्हीं जीवों के रूप में बार-बार जन्म लेगा–बहुल रूप में खर बादर पृथ्वीकायिक जीवों में–कठोर पृथ्वी में बार-बार जन्म लेगा।

सव्वत्थ वि णं सत्थवज्झे दाहवक्कंतीए कालमासे कालं किच्चा रायगिहे नगरे बाहिं खरियत्ताए उववज्जिहिति।

सर्वत्रापि शस्त्रवध्यः दाहावक्रान्तिकः कालमासे कालं कृत्वा राजगृहे नगरे बहिः 'खरियत्ताए' उपपत्स्यते।

इन सभी स्थानों में भी शस्त्रवध्य होता हुआ दाह की उत्पत्ति से कालमास में काल को प्राप्त कर राजगृह नगर में बाहर की ओर रहने वाली वेश्या के रूप में उत्पन्न होगा।

तत्थ वि णं सत्थवज्झे दाहवक्कंतीए कालमासे कालं किच्चा दोच्चं पि रायगिहे नगरे अंतो खरियत्ताए उववज्जिहिति।

तत्रापि शस्त्रवध्यः दाहावक्रान्तिकः कालमासे कालं कृत्वा द्विः अपि राजगृहे नगरे अन्तः 'खरियत्ताए' उपपत्स्यते।

वहां पर भी शस्त्रवध्य होता हुआ दाह की उत्पत्ति से कालमास में काल को प्राप्त कर दूसरी बार भी राजगृह नगर में अन्दर की ओर रहने वाली वेश्या के रूप में उत्पन्न होगा।

तत्थ वि णं सत्थवज्झे दाहवक्कंतीए कालमासे कालं किच्चा इहेव जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे विंझगिरिपायमूले बेभेले सण्णिवेसे माहणकुलंसि दारियत्ताए पच्चायाहिति।

तत्रापि शस्त्रवध्यः दाहावक्रान्तिकः कालमासे कालं कृत्वा इहैव जम्बूद्वीपे द्वीपे भारते वर्षे विन्ध्यगिरि पादमूले बेभेले सन्निवेशे माहनकुले दारिकात्वेन प्रत्याजनिष्यते।

वहां पर भी शस्त्रवध्य होता हुआ दाह की उत्पत्ति से कालमास में काल को प्राप्त कर इसी जम्बूद्वीप में भारत-वर्ष के अन्दर विन्ध्यगिरि की तलहटी में स्थित बेभेल सन्निवेश में ब्राह्मण कुल में पुत्री के रूप में उत्पन्न होगा।

तए णं दारियं अम्मापियरो उम्मुक्क-बालभावं जोव्वणगमणुप्पत्तं पडिरूवएणं सुक्केणं, पडिरूवएणं विणएणं, पडिरूवयस्स भत्तारस्स भारियत्ताए दलइस्सति। सा णं तस्स भारिया भविस्सति–इट्ठा कंता जाव अणुमया, भंडकरंडगसमाणा तेल्लकेला इव सुसंगोविया, चेलपेडा इव सुसंपरिगहिया, रयणकरंडओ विव सुसरक्खिय, सुसंगोविया, मा णं सीयं, मा णं उण्हं जाव परिसहोवसग्गा फुसंतु। तए णं सा दारिया अण्णदा कदायि गुव्विणी ससुरकुलाओ कुलघरं निज्जमाणी अंतरा दवग्गिजालाभिहया कालमासे कालं किच्चा दाहिणिल्लेसु अग्गि-कुमारेसु देवेसु देवत्ताए उववज्जिहिति।

ततः तां दारिकाम् अम्बापितरौ उन्मुक्तबालभावां यौवनकमनुप्राप्ता प्रतिरूपकेण शुल्केन प्रतिरूपकेण विनयेन, प्रतिरूपकस्य भर्त्रे भार्यात्वेन दास्यतः। सा तस्य भार्या भविष्यति–इष्टा कान्ता यावत् अनुमता, भाण्डकरण्डकसमाना 'तेल्लकेला'वत् संगोपिता, चेलपेटावत् सुसम्परिगृहीता, रत्नकरण्डकवत् सुसंरक्षिता, सुसंगोपिता, मा शीतम्, मा उष्णः यावत् परीषहोप-सर्गाः स्पृशन्तु। ततः सा दारिका अन्यदा कदाचित् गुर्विणी श्वसुर-कुलात् कुलगृहं निर्यान्ती अन्तरा दवाग्नि–ज्वालाभिहता कालमासे कालं कृत्वा दाक्षिणात्येषु अग्निकुमारेषु देवेषु देवत्वेन उपपत्स्यते।

तत्पश्चात् वह कन्या (माता-पिता के द्वारा) क्रमशः उन्मुक्त बालभाव एवं यौवन को प्राप्त कर उचित कन्यादान के साथ विनयपूर्वक योग्य पति के साथ पत्नी के रूप में विवाहित की जाएगी। वह कन्या उस पति की इष्ट, कान्त यावत् अनुमत पत्नी बनेगी; वह आभरण-करण्डक के समान आदेय बनेगी; वह तेल के पात्र जैसी समुचित रूप में रक्षणीय होगी, वह वस्त्र की मंजूषा की तरह समुचित रूप में उपद्रव-रहित स्थान में गृहीत और निवेशित होगी, वह आभरण-करण्डक की भांति सुसंरक्षित और सुसंगोपित होती हुई, 'इसे सर्दी न लगे, गर्मी न लगे यावत् परीषह और उपसर्ग इसका स्पर्श न करे' (इस अभिसन्धि से पालित होगी।) तब वह दारा अन्य समय में गर्भिणी होकर श्वसुर कुल से अपने पीहर जाती हुई बीच में दवाग्नि की ज्वाला से अभिहत होती हुई कालमास में काल को प्राप्त कर दाक्षिणात्य अग्निकुमार देवों में देव के रूप में उपपन्न होगी।

से णं तओहिंतो अणंतरं उव्वट्टित्ता माणस्सं विग्गहं लभिहिति, लभित्ता केवलं बोहिं बुज्झिहिति, बुज्झित्ता मुंडे

सः तस्मात् अनन्तरम् उद्वर्त्त्य मानुष्यं विग्रहं लप्स्यते, लब्ध्वा केवलां बोधिं 'बुज्झिहिति', 'बुज्झित्ता' मुण्डः भूत्वा

तदनन्तर वह जीव वहां से उद्वृत्त होकर मनुष्य शरीर को प्राप्त करेगा, प्राप्त कर सम्पूर्ण बोधि का अनुभव करेगा, अनुभव कर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइहिति।

अगारात् अनगारितां प्रव्रजिष्यति।

मुंड होकर अगार धर्म से अनगार धर्म में प्रव्रजित होगा।

तत्थ वि य णं विराहियसामण्णे कालमासे कालं किच्चा दाहिणिल्लेसु असुर-कुमारेसु देवेसु देवत्ताए उववज्जिहिति।

तत्रापि विराधितश्रामण्यः कालमासे कालं कृत्वा दाक्षिणात्येषु असुरकुमारेषु देवेषु देवत्वेन उपपत्स्यते।

वहां पर भी श्रामण्य की विराधना कर कालमास में काल को प्राप्त कर दाक्षिणात्य असुरकुमार देवों में देव के रूप में उपपन्न होगा।

से णं तओहिंतो अणंतरं उव्वट्टित्ता माणस्सं विग्गहं लभिहिति, लभित्ता केवलं बोहिं बुज्झिहिति, बुज्झित्ता मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइहिति।

सः तस्मात् अनन्तरम् उद्वर्त्य मानुष्यं विग्रहं लप्स्यते, लब्ध्वा केवलां बोधिं 'बुज्झिहिति', 'बुज्झित्ता' मुण्डः भूत्वा अगारात् अनगारितां प्रव्रजिष्यति।

तदनन्तर वह जीव वहां से मर कर मनुष्य शरीर को प्राप्त करेगा, प्राप्त कर सम्पूर्ण बोधि का अनुभव करेगा, अनुभव कर मुंड होकर अगार धर्म से अनगार धर्म में प्रव्रजित होगा।

तत्थ वि य णं विराहियसामण्णे कालमासे कालं किच्चा दाहिणिल्लेसु नाग-कुमारेसु देवेसु देवत्ताए उववज्जिहिति।

तत्रापि विराधितश्रामण्यः कालमासे कालं कृत्वा दाक्षिणात्येषु नागकुमारेषु देवेषु देवत्वेन उपपत्स्यते।

वहां पर भी श्रामण्य की विराधना कर कालमास में काल को प्राप्त कर दाक्षिणात्य नागकुमार देवों में देव के रूप में उपपन्न होगा।

से णं तओहिंतो अणंतरं एवं एएणं अभिलावेणं दाहिणिल्लेसु सुवण्ण-कुमारेसु, एवं विज्जुकुमारेसु, एवं अग्गिकुमारवज्जं जाव दाहिणिल्लेसु थणियकुमारेसु।

सः तस्मात् अनन्तरम् एवम् एते अभिलापेन दाक्षिणत्येषु सुपर्णकुमारेषु, एवं विद्युतकुमारेषु, एवम् अग्नि-कुमारवर्जं यावत् दाक्षिणत्येषु स्तनितकुमारेषु।

तदनन्तर वह जीव वहां से इस प्रकार अभिलाप से दाक्षिणात्य सुपर्ण कुमार देवों में, इसी प्रकार विद्युत् कुमार देवों में, इसी प्रकार अग्नि कुमार देवों को छोड़कर यावत् दाक्षिणात्य स्तनित कुमार देवों में (देव के रूप में उपपन्न होगा)।

से णं 'तओहिंतो अणंतरं' उव्वट्टित्ता माणुस्सं विग्गहं लभिहिति लभित्ता केवलं बोहिं बुज्झिहिति, बुज्झित्ता मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइहिति। तत्थ वि य णं विराहियसामण्णे जोइसिएसु देवेसु उववज्जिहिति।

सः तस्मात् अनन्तरम् उद्वर्त्य मानुष्यं विग्रहं लप्स्यते, लब्ध्वा केवलां बोधिं 'बुज्झिहिति' 'बुज्झित्ता' मुण्डः भूत्वा अगारात् अनगारितां प्रव्रजिष्यति। तत्रापि विराधितश्रामण्यः ज्योतिष्केषु देवेषु उपपत्स्यते।

तदनन्तर वह जीव वहां से मर कर मनुष्य शरीर को प्राप्त करेगा, प्राप्त कर सम्पूर्ण बोधि का अनुभव करेगा, अनुभव कर मुंड होकर अगार धर्म से अनगार धर्म में प्रव्रजित होगा। वहां पर भी श्रामण्य की विराधना कर ज्योतिष्क देवों में उपपन्न होगा।

से णं तओहिंतो अणंतरं चयं चइत्ता माणुस्सं विग्गहं लभिहति, लभित्ता केवलं बोहिं बुज्झिहिति, बुज्झित्ता मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइहिति तत्थ वि णं अविरा-हियसामण्णे कालमासे कालं किच्चा सोहम्मे कप्पे देवत्ताए उववज्जिहति।

सः तस्मात् अनन्तरं च्यवं च्युत्वा मानुष्यं विग्रहं लप्स्यते, लब्ध्वा केवलां बोधिं 'बुज्झिहिति' बुज्झित्ता' मुण्डः भूत्वा अगारात् अनगारितां प्रव्रजिष्यति। तत्रापि अविराधित-श्रामण्यः कालमासे कालं कृत्वा सौधर्मे कल्पे देवत्वेन उपपत्स्यते।

तदनन्तर वह जीव वहां से च्यवन कर मनुष्य शरीर को प्राप्त करेगा, प्राप्त कर सम्पूर्ण बोधि का अनुभव करेगा, अनुभव कर मुंड होकर अगार धर्म से अनगार धर्म में प्रव्रजित होगा। वहां पर भी श्रामण्य की विराधना न कर कालमास में काल को प्राप्त कर सौधर्म कल्प में देव के रूप में उपपन्न होगा।

से णं तओहिंतो अणंतरं चयं चइत्ता माणुस्सं विग्गहं लभिहति। तत्थ वि णं अविराहियसामण्णे कालमासे कालं किच्चा सणंकुमारे कप्पे देवत्ताए उववज्जिहति।

सः तस्मात् अनन्तरं च्यवं च्युत्वा मानुष्यं विग्रहं लप्स्यते। तत्रापि अविराधितश्रामण्यः कालमासे कालं कृत्वा सनत्कुमारे कल्पे देवत्वेन उपपत्स्यते।

तदनन्तर वह जीव वहां से च्यवन कर मनुष्य शरीर को प्राप्त करेगा। वहां पर भी श्रामण्य की विराधना न कर कालमास में काल को प्राप्त कर सनत्कुमार कल्प में देव के रूप में उपपन्न होगा।

से णं तओहिंतो एवं जहा सणंकुमारे तहा बंभलोए, महासुक्के, आणए, आरणे।

सः तस्मात् एवं यथा सनत्कुमारे तथा ब्रह्मलोके, महाशुक्रे, आनते, आरणे।

तदनन्तर वह जीव वहां से इसी प्रकार जैसे सनत्कुमार में वैसे ही ब्रह्मलोक में, महाशुक्र में, आनत में, आरण में उपपन्न होगा।

से णं तओहिंतो अणंतरं चयं चइत्ता

सः तस्मात् अनन्तरं च्यवं च्युत्वा

तदनन्तर वह जीव वहां से च्यवन कर मनुष्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

माणुस्सं विग्गहं लभिहिति, लभित्ता केवलं बोहिं बुज्झिहिति, बुज्झित्ता मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइहिति। तत्थ वि य णं अविराहियसामण्णे कालमासे कालं किच्चा सव्वट्ठसिद्धे महाविमाणे देवत्ताए उववज्जिहिति।
से णं तओहिंतो अणंतरं चयं चइत्ता महाविदेहे वासे जाइं इमाइं कुलाइं भवंति–अड्ढाइं जाव अपरिभूयाइं, तहप्पगारेसु कुलेसु पुत्तत्ताए पच्चायाहिति, एवं जहा ओववाइए दढप्पइण्णवत्तव्वया सच्चेववत्तव्वया निरवसेसा भाणियव्वा जाव केवलवरनाणदंसणे समुप्पज्जिहिति॥

मानुष्यं विग्रहं लप्स्यते, लब्ध्वा केवलां बोधिं 'बुज्झिहिति' 'बुज्झित्ता' मुण्डः भूत्वा अगारात् अनगारितां प्रव्रजिष्यति। तत्रापि अविराधितश्रामण्यः कालमासे कालं कृत्वा सर्वार्थसिद्धे महाविमाने देवत्वेन उपपत्स्यते।
सः तस्मात् अनन्तरं च्यवं च्युत्वा महाविदेहे वर्षे यानि इमानि कुलानि भवन्ति–आढ्यानि यावत् अपरिभूतानि, तथाप्रकारेषु कुलेषु पुत्रत्वेन प्रत्याजनिष्यते, एवं यथा औपपातिके दृढ़प्रतिज्ञस्य वक्तव्यता सा चैव वक्तव्यता निरवशेषा भणितव्या यावत् केवलवरज्ञानदर्शनं समुत्पत्स्यते।

शरीर को प्राप्त करेगा, प्राप्त कर सम्पूर्ण बोधि का अनुभव करेगा, अनुभव कर मुंड होकर अगार धर्म से अनगार धर्म में प्रव्रजित होगा। वहां पर भी श्रामण्य की विराधना न कर कालमास में काल को प्राप्त कर सर्वार्थसिद्ध महाविमान में देव के रूप में उपपन्न होगा।
तदनन्तर वह जीव वहां से च्यवन कर महाविदेह वर्ष में जो ये कुल हैं–आढ्य यावत् अपरिभूत, उन कुलों में पुत्रत्व के रूप में जन्म लेगा, इसी प्रकार जैसी औपपातिक में दृढ़प्रतिज्ञ की वक्तव्यता है वही वक्तव्यता अविकल रूप से बतलानी चाहिए यावत् उत्तम केवलज्ञान, केवलदर्शन को प्राप्त करेगा।

१८७. तए णं से दढप्पइण्णे केवली अप्पणो तीतद्धं आभोएहिइ, आभोएत्ता समणे निग्गंथे सद्दावेहिति, सद्दावेत्ता एवं वदिहिइ–एवं खलु अहं अज्जो! इओ चिरातीयाए अद्धाए गोसाले नामं मंखलिपुत्ते होत्था–समणघायए जाव छउमत्थे चेव कालगए, तम्मूलगं च णं अहं अज्जो अणादीयं अणवदग्गं दीहमद्धं चाउरंतसंसारकंतारं अणुपरियट्टिए, तं मा णं अज्जो तुब्भं केइ भवतु आयरियपडिणीए उवज्झायपडिणीए आयरियउवज्झायाणं अयसकारए अवण्णकारए अकित्तिकारए, मा णं से वि एवं चेव अणादीयं अणवदग्गं दीहमद्धं चाउरंतसंसारकंतारं अणुपरियट्टिहिति, जहा णं अहं॥

ततः सः दृढ़प्रतिज्ञः केवली आत्मनः अतीताध्वानम् आभोगयिष्यति, आभोग्य श्रमणान् निर्ग्रन्थान् शब्दयिष्यति, शब्दयित्वा एवं वदिष्यति–एवं खलु अहम् आर्य! इतः चिरातीते अध्वनि गोशालः नाम मंखलिपुत्रः आसीत्–श्रमणघातकः यावत् छद्मस्थः चैव कालगतः, तन्मूलकं च अहम् आर्य! अनादिकं 'अणवदग्गं' दीर्घाध्वानं चतुरन्तसंसारकंतारमनुपरिवर्तितः (अनुपर्यटितः), तत् मा आर्य! युष्माकं कोऽपि भवतु आचार्यप्रत्यनीकः उपाध्यायप्रत्यनीकः आचार्योपाध्यायानाम् अयशकारकः अवर्णकारकः अकीर्तिकारकः, मा सः अपि एवं चैव अनादिकम् 'अणवदग्गं' दीर्घाध्वानं चतुरन्तं संसार-कान्तारं अनुपरिवर्तिष्यते, यथा अहम्।

१८७. उसके पश्चात् वह दृढ़प्रतिज्ञ केवली अपना अतीतकाल देखेगा, देख कर श्रमण-निर्ग्रंथों को बुलाएगा, बुला कर इस प्रकार कहेगा–आर्यो! मैं ही निश्चित चिर अतीत काल में गोशाल नामक मंखलिपुत्र था–श्रमण-घातक यावत् छद्मस्थ-अवस्था में ही काल को प्राप्त किया था, आर्यो! उसके फलस्वरूप मैंने (गोशाल के जीव ने) आदि-अन्त-हीन दीर्घपथ वाले चतुर्गत्यात्मक संसार-कान्तार में पर्यटन किया, इसलिए आर्यो! तुम में से कोई आचार्य का प्रत्यनीक, उपाध्याय का प्रत्यनीक, आचार्य और उपाध्याय का अयशकारक, अवर्णकारक और अकीर्तिकारक मत बनना, और इस प्रकार आदि-अन्त-हीन दीर्घपथ वाले चतुर्गत्यात्मक संसार-कान्तार में पर्यटन मत करना, जैसे कि मैंने (किया)।

१८८. तए णं ते समणा निग्गंथा दढप्पइण्णस्स केवलिस्स अंतियं एयमट्ठं सोच्चा निसम्म भीया तत्था तसिया संसारभउव्विग्गा दढप्पइण्णं केवलिं वंदिहिंति नमंसिहिंति, वंदित्ता नमंसित्ता तस्स ठाणस्स आलोएहिंति पडिक्कमिहिंति निंदिहिंति जाव अहारियं पायच्छित्तं तवोकम्मं पडिवज्जिहिंति॥

ततः ते श्रमणाः निर्ग्रन्थाः दृढ़प्रतिज्ञस्य केवलिनः अन्तिकम् एतमर्थं श्रुत्वा निशम्य भीताः त्रस्ताः तृषिताः (तसिया) संसारभयोद्विग्नाः दृढ़प्रतिज्ञं केवलिनं वन्दिष्यन्ते नमस्यिष्यन्ति, वन्दित्वा नमस्यित्वा तस्य स्थानस्य आलोचयिष्यन्ति प्रतिक्रमिष्यन्ति निन्दिष्यन्ति यावत् यथार्हं (जहारियं) प्रायश्चित्तं तपःकर्म प्रतिपत्स्यन्ते।

१८८. उसके पश्चात् वे श्रमण निर्ग्रंथ दृढ़प्रतिज्ञ केवली के पास इस अर्थ को सुनकर और अवधारण कर भीत, त्रस्त, तृषित और संसार के भय से उद्विग्न होकर, दृढ़प्रतिज्ञ केवली को वन्दन करेंगे, नमस्कार करेंगे, वन्दन-नमस्कार कर उस स्थान की आलोचना करेंगे, प्रतिक्रमण करेंगे, निन्दा करेंगे यावत् यथायोग्य प्रायश्चित्त तपःकर्म को स्वीकार करेंगे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१८९. तए णं से दढप्पइण्णे केवली बहूइं वासाइं केवलिपरियागं पाउणिहिति, पाउणित्ता अप्पणो आउसेसं जाणेत्ता भत्तं पच्चक्खाहिति, एवं जहा ओववाइए जाव सव्वदुक्खाणमंतं काहिति॥

ततः सः दृढ़प्रतिज्ञः केवली बहूनि वर्षाणि केवलिपर्यायकं प्राप्स्यति, प्राप्य आत्मनः आयुः शेषं ज्ञात्वा भक्तं प्रत्याख्यास्यति, एवं यथा औपपातिके यावत् सर्वदुःखानाम् अन्तं करिष्यति।

१८९. वह दृढ़प्रतिज्ञ केवली बहुत वर्षों तक केवली पर्याय को प्राप्त करेंगे, प्राप्त कर अपनी आयु का अन्त निकट जान कर भक्तप्रत्याख्यान करेंगे–अनशन स्वीकार करेंगे, इस प्रकार जैसा औपपातिक में बतलाया गया है वैसा यावत् सब दुःखों का अन्त करेंगे, तक बतलाना चाहिए।

१९०. सेवं भंते! सेवं भंते! त्ति जाव विहरइ॥

तदेवं भदन्त! तदेवं भदन्त! इति यावत् विहरति।

१९०. भन्ते! वह ऐसा ही है, भन्ते! वह ऐसा ही है यावत् विहरण कर रहे हैं।

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

सोलसमं सतं

सोलहवां शतक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आमुख

प्रस्तुत शतक का प्रारंभ 'राजगृह के प्रश्न' इस शृंखला से होता है। चार उद्देशक (सूत्र ५३) तक वही क्रम चलता है। पांचवें उद्देशक के प्रश्न 'उल्लुकातीर नगर में' किए गए हैं। छठे उद्देशक से आगे पूर्ण शतक में किसी स्थान विशेष का उल्लेख नहीं है।

प्रस्तुत शतक का पहला प्रश्न वायुकाय से संबद्ध है। उसकी आंशिक चर्चा दूसरे शतक में भी है।[1] वायुकाय के बिना अग्निकाय नहीं होती, इस बिन्दु का उल्लेख एक महत्वपूर्ण सूचना है।[2]

अविरति के आधार पर अधिकरण और अधिकरणी की व्याख्या एक सूक्ष्म अध्यात्म-दर्शन का संकेत है। साधारणतया प्रवृत्ति के आधार पर अच्छे बुरे का निर्णय किया जाता है। प्रस्तुत शतक में अविरति के आधार पर प्राणी की अन्तर्दशा का अंकन किया गया है। एक मनुष्य शस्त्र का प्रयोग कर रहा है। वह जन साधारण की दृष्टि में दुष्प्रवृत्ति है। एक व्यक्ति शस्त्र का प्रयोग नहीं कर रहा है किन्तु शस्त्र का प्रयोग करने से विरत नहीं है। वह भी हिंसक है। उसका हेतु है अविरति। वह शस्त्र का प्रयोग करने से विरत नहीं हुआ। इसलिए आचरण की मीमांसा केवल दुष्प्रवृत्ति के आधार पर ही नहीं, अविरति के आधार पर की जानी चाहिए।[3]

प्रस्तुत शतक में भगवान् महावीर से देवों के साक्षात्कार के अनेक प्रश्न हैं। पहला प्रश्न शक्र के आगमन का है।[4] इस प्रसंग में एक उल्लेखनीय तत्त्व चर्चा है सावद्य और निरवद्य भाषा की।[5]

मुनि की शल्य चिकित्सा का प्रसंग भी बहुत विवेचनीय है।[6]

निर्जरा का सिद्धांत महावीर की साधना पद्धति का एक महत्वपूर्ण अंग है। प्रस्तुत शतक में मुनि की तपस्या और नैरयिक के होने वाली निर्जरा का तुलनात्मक विवेचन किया गया है। कष्ट सहने से निर्जरा होती है, यह सामान्य नियम है। इसकी पृष्ठभूमि में अनेक नियम जुड़े हुए हैं, जिनका उमास्वाति ने विशद विवेचन किया है।[7] प्रस्तुत प्रकरण में निर्जरा की पृष्ठभूमि का एक नियम निदर्शित है। जिस जीव के कर्मबंध साधना के द्वारा शिथिलीकृत होता है, उसके स्वल्प तप से अधिक निर्जरा होती है। जिसके कर्म बंध प्रगाढ़ होते हैं उसके दीर्घकाल तक कष्ट सहन करने से भी निर्जरा कम होती है। इस विषय को स्पष्ट करने के लिए सूत्रकार ने वृद्ध पुरुष, अहरन, तरुण पुरुष, सूखे घास का पूला और तप्त तवा–इन पांच दृष्टांतों के द्वारा निर्जरा के मात्रा-भेद को समझाया है।[8]

भगवान् महावीर के पास देवराज शक्र का आगमन, संभ्रम के साथ प्रश्न करण और पुनः गमन। महाशुक्र विमान में दो देवों का उपपात और उनकी सैद्धांतिक चर्चा। गंगदत्त देव द्वारा प्रश्न का समाधान और उसका भगवान् महावीर के पास आगमन। उसकी तेजोलेश्या से अभिभूत होकर शक्र का तत्काल गमन। भगवान् महावीर द्वारा गंगदत्त के वक्तव्य का अनुमोदन। गंगदत्त के पूर्वभव का निरूपण। यह सब भगवान् महावीर के जीवन वृत्त का एक अद्भुत प्रसंग है।[9]

प्रस्तुत आगम का निर्माण किसी क्रमबद्ध विषय के प्रतिपादन के लिए नहीं हुआ। इसमें प्रश्नों की एक शृंखला है। उस शृंखला में नाना प्रकार के प्रश्न निबद्ध हैं।

गौतम स्वामी ने स्वप्न के विषय में जिज्ञासा की और भगवान् ने बयांलीस स्वप्नों और तीस महास्वप्नों का प्रतिपादन किया।[10]

यह पूर्वगत स्वप्नशास्त्र का अवतरण है अथवा अष्टांग महानिमित्त गत स्वप्नशास्त्र का–यह अनुसंधेय है।

इस प्रकार प्रस्तुत शतक अनेक विषयों का संग्रह ग्रंथ है।

---

१. भ. २/६-१२
२. भ. १६/५
३. भ. १६/८-६
४. भ. १६/३३
५. भ. १६/३४-४०
६. भ. १६/४८-५०
७. द्रष्टव्य भ. ६/१-४ का भाष्य
८. भ. १६/५१-५२
९. भ. १६/५४-७५
१०. भ. १६/८३-८४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सोलसमं सतं : सोलहवां शतक

पढमो उद्देसो : पहला उद्देशक

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
संगहणी गाहा १. अहिगरणि २. जरा ३. कम्मे, ४. जावतियं ५. गंगदत्त ६. सुमिणे य। ७. उवओग ८. लोग ९. बलि १०. ओहि ११. दीव १२. उदही १३. दिसा १४. थणिते॥१॥	संग्रहणी गाथा १. अधिकरणी २. जरा ३. कर्म ४. यावत्क ५. गंगदत्त ६. स्वप्नं च। ७. उपयोग ८. लोक ९. बलि १०. अवधि ११. द्वीप १२. उदधि १३. दिशा १४. स्तनितः॥	संग्रहणी गाथा १. अहरन २. जरा ३. कर्म ४. यावत्क ५. गंगदत्त ६. स्वप्न ७. उपयोग ८. लोक ९. बलि १०. अवधि ११. द्वीप १२. उदधि १३. दिशा १४. स्तनित।
वाउयाय-पदं	वायुकाय-पदम्	वायुकाय पद
१. तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे जाव पज्जुवासमाणे एवं वयासी–अत्थि णं भंते! अधिकरणिंसि वाउयाए वक्कमति? हंता अत्थि॥	तस्मिन् काले तस्मिन् समये राजगृहं यावत् पर्युपासीनः एवमवादीत्–अस्ति भदन्त! अधिकरण्यां वायुकायः अवक्रामति? हन्त अस्ति।	१. उस काल उस समय राजगृह नगर यावत् पर्युपासना करते हुए गौतम ने इस प्रकार कहा–भंते! क्या अधिकरण–अहरन में वायुकाय उत्पन्न होता है? हां, होता है।
२. से भंते! किं पुट्ठे उद्दाइ, अपुट्ठे उद्दाइ॥ गोयमा! पुट्ठे उद्दाइ, नो अपुट्ठे उद्दाइ॥	सः भदन्त! किं स्पृष्टः उद्द्राति? अस्पृष्टः उद्द्राति। गौतम! स्पृष्टः उद्द्राति, नो अस्पृष्टः उद्द्राति।	२. भंते! क्या वायुकायिक जीव स्पृष्ट होकर मरता है? अस्पृष्ट रह कर मरता है? गौतम! स्पृष्ट होकर मरता है, अस्पृष्ट रह कर नहीं मरता।
३. से भंते! किं ससरीरी निक्खमइ? असरीरी निक्खमइ? गोयमा! सिय ससरीरी निक्खमइ, सिय असरीरी निक्खमइ॥	सः भदन्त! किं सशरीरी निष्क्रामति? अशरीरी निष्क्रामति? गौतम! स्यात् सशरीरी निष्क्रामति, स्यात् अशरीरी निष्क्रामति।	३. भंते! क्या वायुकायिक जीव सशरीर निष्क्रमण करता है? अशरीर निष्क्रमण करता है? गौतम! वह स्यात् सशरीर निष्क्रमण करता है, स्यात् अशरीर निष्क्रमण करता है।
४. से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ–सिय ससरीरी निक्खमइ, सिय असरीरी निक्खमइ? गोयमा! वाउयायस्स णं चत्तारि सरीरया पण्णत्ता, तं जहा–ओरालिए, वेउव्विए, तेयए, कम्मए। ओरालिय-वेउव्वियाइं विप्पजहाय तेयय-कम्मएहिं निक्खमइ। से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं	तत् केनार्थेन भदन्त! एवमुच्यते–स्यात् सशरीरी निष्क्रामति स्यात्, अशरीरी निष्क्रामति? गौतम! वायुकायस्य चत्वारि शरीरकाणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा–औदारिकः, वैक्रियः, तैजसः कर्मकः। औदारिक-वैक्रिये विप्रजहाय तैजस-कर्मकाभ्यां निष्क्रामति। तत् तेनार्थेन गौतम!	४. भंते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है–वायुकायिक जीव स्यात् सशरीर निष्क्रमण करता है, स्यात् अशरीर निष्क्रमण करता है? गौतम! वायुकायिक जीव के चार शरीर प्रज्ञप्त हैं, जैसे–औदारिक, वैक्रिय, तैजस और कार्मण। वह औदारिक और वैक्रिय शरीर को छोड़कर तैजस और कार्मण शरीर के साथ निष्क्रमण करता है। गौतम! इस अपेक्षा से

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वुच्चइ–सिय ससरीरी निक्खमइ, सिय असरीरी निक्खमइ॥

एवमुच्यते–स्यात् सशरीरी निष्क्रामति स्यात् अशरीरी निष्क्रामति।

यह कहा जा रहा है–वायुकायिक जीव स्यात् सशरीर निष्क्रमण करता है, स्यात् अशरीर निष्क्रमण करता है।

भाष्य

१. सूत्र १-४

एक लौहार अहरन पर लोह को कूटता है। उस समय वायु पैदा होती है, उसके विषय में चार सूत्रों का विधान किया गया है। लोह कूटने के समय जो वायु पैदा होती है, वह आक्रान्त वायु है। स्थानांग सूत्र में आक्रान्त वायु को अचित्त–निर्जीव बतलाया गया है।[1] अचित्त वायु के लिए दो से चार तक के सूत्र सार्थक नहीं हैं। इस विषय में वृत्तिकार ने विमर्श किया है। उसके अनुसार आक्रांत वायु प्रारंभ में अचित्त होती है, पश्चात् सचेतन भी हो जाती है।[2] इस विषय में ठाणं ५/१८३ का टिप्पण द्रष्टव्य है।

आक्रान्त वायु के सचित्त हो जाने पर उसके विषय में मृत्यु और निष्क्रमण–ये दो प्रश्न किये गये हैं। प्रस्तुत आगम के दूसरे शतक में इन प्रश्नों के विषय में चर्चा की जा चुकी है।[3]

अगणिकाय-पदं

५. इंगालकारियाए णं भंते! अगणिकाए केवतियं कालं संचिट्ठइ?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तिण्णि राइंदियाइं। अण्णे वि तत्थ वाउयाए वक्कमति, न विणा वाउयाएणं अगणिकाए उज्जलति॥

अग्निकाय-पदम्

५. अङ्गारकारिकायां भदन्त! अग्निकायः कियन्तं कालं संतिष्ठते?

गौतम! जघन्येन अन्तर्मुहूर्त्तम्, उत्कर्षेण त्रीणि रात्रिंदिवानि अन्योऽपि तत्र वायुकायः अवक्रामति, न विना वायुकायेन अग्निकायः उज्ज्वलति।

अग्निकाय पद

५. भंते! अंगारकारिका कोयला बनाने की भट्ठी में अग्निकाय कितने समय तक रहता है?

गौतम! जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त्त, उत्कृष्टतः तीन दिन-रात। वहां अन्य जीव वायुकाय भी उत्पन्न होता है। वायुकाय के बिना अग्निकाय प्रज्वलित नहीं होता।

भाष्य

१. सूत्र ५

अंगारकारिका में विद्यमान अग्निकाय की स्थिति का वही निर्देश है, जो सामान्य अग्निकाय की स्थिति का है। इस विषय में प्रज्ञापना पद (४/७२) द्रष्टव्य है।

इस अवस्था में प्रस्तुत सूत्र के विधान का उद्देश्य क्या है, यह प्रश्न उपस्थित हो सकता है। इस प्रश्न का उत्तर सूत्र का उत्तर-भाग हो सकता है। उसमें एक नियम का निर्देश है, वह नियम है–अग्नि और वायु की व्याप्ति। व्याख्या साहित्य में यत्राग्निस्तत्र वायुः–यह सूत्र प्रचलित है।[4] उस नियम का आधार यह है–वायु के बिना अग्नि प्रज्वलित नहीं होती।

किरिय-पदं

६. पुरिसे णं भंते! अयं अयकोट्ठंसि अयोमएणं संडासएणं उव्विहमाणे वा पव्विहमाणे वा कतिकिरिए?

गोयमा! जावं च णं से पुरिसे अयं अयकोट्ठंसि अयोमएणं संडासएणं उव्विहति वा पव्विहति वा, तावं च णं से पुरिसे काइयाए जाव पाणाइवाय-किरियाए–पंचहिं किरियाहिं पुट्ठे, जेसिं पि णं जीवाणं सरीरेहिंतो अए निव्वत्तिए, अयकोट्ठे निव्वत्तिए, संडासए निव्वत्तिए, इंगाला निव्वत्तिया, इंगालकड्ढणी निव्वत्तिया, भत्था निव्वत्तिया, ते वि णं

क्रिया-पदम्

६. पुरुषः भदन्त! अयः अयस्कोष्ठे अयोमयेन संदंशकेन उद्विध्यन् प्रविध्यन् वा कतिक्रियः?

गौतम! यावत् च सः पुरुषः अयः अयस्कोष्ठे अयोमयेन संदंशकेन उद्विध्यति, वा प्रविध्यति वा, तावत् सः यः पुरुषः कायिक्या यावत् प्राणातिपातक्रियया–पञ्चभिः क्रियाभिः स्पृष्टः येषाम् अपि जीवानां शरीरात् अयः निर्वर्तितः, अयस्कोष्ठे निवर्तितः संदंशकेन निर्वर्तितः, अङ्गाराः निर्वर्तिताः अङ्गारकर्षणी निर्वर्तिता,

क्रिया-पद

६. भंते! लोह के कोठे में तप्त लोह को लोहमय संडासी से निकालता अथवा डालता हुआ पुरुष कितनी क्रियाओं से स्पृष्ट होता है?

गौतम! जब तक पुरुष लोहे के कोठे में तप्त लोह को लोहमय संडासी से निकालता अथवा डालता है तब तक वह पुरुष कायिकी यावत् प्राणातिपात क्रिया–पांचों क्रियाओं से स्पृष्ट होता है। जिन जीवों के शरीर से लोह निष्पन्न हुआ है, लोहे का कोठा निष्पन्न हुआ है, संडासी निष्पन्न हुई है, अंगारे निष्पन्न हुए हैं, अंगारा निकालने वाली ईषत् वक्र लोहमयी यष्टि निष्पन्न हुई है, धौंकनी निष्पन्न हुई है, वे

१. ठाणं ५/१८३

२. भ. वृ. १६/२-४ : अयं चाक्रान्तसंभवत्वेनादावचेतनतयोत्पन्नोऽपि पश्चात् सचेतनीभवतीति संभाव्यत इति।

३. भ. २/९-१२ भाष्य।

४. भ. वृ. सू. १६/५ अन्योऽप्यत्र वायुकायो व्युत्क्रामति, यत्राग्निस्तत्र वायुरिति कृत्वा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जीवा काइयाए जाव पाणाइवाय-किरियाए–पंचहिं किरियाहिं पुट्ठा॥

यस्या निर्वर्तिताः, ते अपि जीवाः कायिक्या यावत् प्राणातिपातक्रियया-पञ्चभिः क्रियाभिः स्पृष्टाः।

जीव भी कायिकी यावत् प्राणातिपात क्रिया–पांचों क्रियाओं से स्पृष्ट होते हैं।

७. पुरिसे णं भंते! अयकोट्ठाओ अयोमएणं संडासएणं गहाय अहिकरणिंसि उक्खिव्वमाणे वा निक्खिव्वमाणे वा कतिकिरिए?

गोयमा! जावं च णं से पुरिसे अयं अयकोट्ठाओ अयोमएणं संडासएणं गहाय अहिकरणिंसि उक्खिवइ वा निक्खिवइ वा तावं च णं से पुरिसे काइयाए जाव पाणाइवायकिरियाए–पंचहिं किरियाहिं पुट्ठे, जेसिं पि णं जीवाणं सरीरेहिंतो अयो निव्वत्तिए, संडासए निव्वत्तिए, चम्मेट्ठे निव्वत्तिए, मुट्ठिए निव्वत्तिए, अधिकरणी निव्वत्तिया, अधिकरणिखोडी निव्वत्तिया, उदगदोणी निव्वत्तिया, अधिकरणसाला निव्वत्तिया, ते वि णं जीवा काइयाए जाव पाणाइवाय-किरियाए–पंचहिं किरियाहिं पुट्ठा॥

पुरुषः भदन्त! अयः अयस्कोष्ठात् अयोमयेन संदंशकेन गृहीत्वा अधिकरण्याम् उत्क्षिप्यमानः वा निक्षिप्यमानः वा कतिक्रियः?

गौतम! यावत् च सः पुरुषः अयः अयस्कोष्ठात् अयोमयेन संदंशकेन गृहीत्वा अधिकरण्याम् उत्क्षिपति वा प्रक्षिपति वा तावत् सः पुरुषः कायिक्या यावत् प्राणातिपातक्रियया–पञ्चभिः क्रियाभिः स्पृष्टः, येषाम् अपि जीवानां शरीरात् अयः निर्वर्तितः, संदंशकः निर्वर्तितः, चर्मेष्टः निर्वर्तितः; मुष्टिकः निर्वर्तितः, अधिकरणी निर्वर्तिता, अधिकरण'खोडी' निर्वर्तिता, उदकद्रोणी निर्वर्तिता, अधिकरणशाला निर्वर्तिता, ते अपि जीवाः कायिक्या यावत् प्राणातिपातक्रियया–पञ्चभिः क्रियाभिः स्पृष्टाः।

७. भंते! लोहे के कोठे से लोहमय संडासी से तप्त लोह को लेकर अधिकरण में निकालता अथवा डालता हुआ पुरुष कितनी क्रियाओं से स्पृष्ट होता है?

गौतम! जब तक पुरुष लोहे के कोठे से लोहमय संडासी से लोह को निकालकर अधिकरणी में निकालता अथवा डालता है तब तक वह पुरुष कायिकी यावत् प्राणातिपात क्रिया–पांचों क्रियाओं से स्पृष्ट होता है। जिन जीवों के शरीर से लोह निष्पन्न हुआ, संडासी निष्पन्न हुई, घन निष्पन्न हुआ, हथौड़ा निष्पन्न हुआ, अहरन निष्पन्न हुई, अहरन की लकड़ी निष्पन्न हुई, उदक-द्रोणी निष्पन्न हुई, अधिकरण शाला निष्पन्न हुई, वे जीव भी कायिकी यावत् प्राणातिपात क्रिया–पांचों क्रियाओं से स्पृष्ट होते हैं।

भाष्य

१. सूत्र ६-७

प्रस्तुत आलापक में पांच क्रिया से स्पृष्ट होने के दो विधान हैं–

१. लोहे की संडासी का प्रयोग करने वाला पांच क्रियाओं से स्पृष्ट होता है।

२. जिन जीवों के शरीर से लोह और लोह की संडासी आदि निर्मित हुए हैं वे जीव भी पांच क्रियाओं से स्पृष्ट होते हैं।

प्रथम विधान स्पष्ट है। लोह की संडासी आदि के जीव पांच क्रियाओं से स्पृष्ट होते हैं, इसका हेतु वृत्तिकार ने अविरति भाव बतलाया है।[1] तुलना के लिए द्रष्टव्य भगवई ५/१३४-१३५ का भाष्य।

शरीर के दो प्रकार बतलाए गए हैं–बद्ध और मुक्त। मुक्त शरीर निर्जीव होता है। इस विषय में चूर्णिकार ने एक सिद्धांत का प्रतिपादन किया है–मुक्त शरीर के पुद्गल जीव के द्वारा निष्पादित औदारिक शरीर काय-प्रयोग से मुक्त नहीं होते, किसी दूसरे परिणाम से परिणत नहीं होते तब तक वे उसी जीव के शरीर कहलाते हैं।[2] इस सिद्धान्त के आधार पर संभावना की जा सकती है–मुक्त शरीर-पुद्गलों का परिणामान्तर नहीं होता तब तक उनके साथ ममत्व का सूक्ष्म धागा जुड़ा रहता है। अविरति और ममत्व पांच क्रिया से स्पृष्ट होने के निमित्त बन जाते हैं।

शब्द विमर्श–

इंगालकट्ठणी–अंगारा निकालने वाली ईषत् वक्र लोहमय यष्टि।

भत्था–धौंकनी।

मुट्ठिए–हथौड़ा।

चम्मेट्ठे–घन।

अधिकरणी–अहरन।

अधिकरणी खोडी–जिस काठ पर अहरन रखी जाती है।

उदग दोणी–पानी की कुण्डी।

अधिकरण शाला–लुहार शाला।

---

१. भ. वृ. १६/७ इह यावःप्रभृतिपदार्थनिर्वर्त्तकजीवानां पञ्चक्रियत्वमविरतिभावेनावसेयमिति।

२. अनु. चू. पृ ६२-६३ ते य पोग्गला तं जीवणिव्वत्तियं ओरालिय-शरीरकायप्पयोगं ण मुयंति ण जाव अण्णपरिणामेण परिणमंति ताव ताइं पत्तेयं तस्सरीराइं भण्णन्ति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अधिकरणी-अधिकरण-पदं

८. जीवे णं भंते! किं अधिकरणी? अधिकरणं?
गोयमा! जीवे अधिकरणी वि, अधिकरणं पि॥

९. से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ–जीवे अधिकरणी वि, अधिकरणं पि?
गोयमा! अविरतिं पडुच्च। से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ–जीवे अधिकरणी वि अधिकरणं पि॥

१०. नेरइए णं भंते! किं अधिकरणी? अधिकरणं?
गोयमा! अधिकरणी वि, अधिकरणं पि। एवं जहेव जीवे तहेव नेरइए वि। एवं निरंतरं जाव वेमाणिए॥

११. जीवे णं भंते! किं साहिकरणी? निरहिकरणी?
गोयमा! साहिकरणी, नो निरहिकरणी॥

१२. से केणट्ठेणं–पुच्छा।
गोयमा! अविरतिं पडुच्च। से तेणट्ठेणं जाव नो निरहिकरणी। एवं जाव वेमाणिए॥

१३. जीवे णं भंते! किं आयाहिकरणी? पराहिकरणी? तदुभयाहिकरणी?
गोयमा! आयाहिकरणी वि, पराहिकरणी वि, तदुभयाहिकरणी वि॥

१४. से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ–जाव तदुभयाहिकरणी वि?
गोयमा! अविरतिं पडुच्च। से तेणट्ठेणं जाव तदुभयाहिकरणी वि। एवं जाव वेमाणिए॥

१५. जीवाणं भंते! अधिकरणे किं आयप्पयोगनिव्वत्तिए? परप्पयोगनिव्वत्तिए? तदुभयप्पयोगनिव्वत्तिए?

अधिकरणी-अधिकरण-पदम्

जीवः भदन्त! किम् अधिकरणी? अधिकरणम्?
गौतम! जीवः अधिकरणी अपि, अधिकरणम् अपि।

तत् केनार्थेन भदन्त! एवमुच्यते–जीवः अधिकरणी अपि, अधिकरणम् अपि?
गौतम! अविरतिं प्रतीत्य। तत् तेनार्थेन गौतम! एवमुच्यते–जीवः अधिकरणी अपि, अधिकरणम् अपि।

नैरयिकः भदन्त! किम् अधिकरणी? अधिकरणम्?
गौतम! अधिकरणी अपि, अधिकरणम् अपि। एवं यथैव जीवः तथैव नैरयिकाः अपि। एवं निरन्तरम् यावत् वैमानिकाः।

जीवः भदन्त! किं साधिकरणी? निरधिकरणी?
गौतम! साधिकरणी, नो निरधिकरणी।

तत् केनार्थेन–पृच्छा।
गौतम! अविरतिं प्रतीत्य। तत् तेनार्थेन यावत् नो निरधिकरणी। एवं यावत् वैमानिकः।

जीवः भदन्त! किम् आत्माधिकरणी? पराधिकरणी? तदुभयाधिकरणी?
गौतम! आत्माधिकरणी अपि, पराधिकरणी अपि, तदुभयाधिकरणी अपि।

तत् केनार्थेन भदन्त! एवमुच्यते–यावत् तदुभयाधिकरणी अपि?
गौतम! अविरतिं प्रतीत्य। तत् तेनार्थेन यावत् तदुभयाधिकरणी अपि। एवं यावत् वैमानिकः।

जीवानां भदन्त! अधिकरणं किम् आत्मप्रयोगनिर्वर्तितः? परप्रयोगनिर्वर्तितः? तदुभयप्रयोगनिर्वर्तितः?

अधिकरणी-अधिकरण पद

८. भंते! क्या जीव अधिकरणी है? अधिकरण है?
गौतम! जीव अधिकरणी भी है, अधिकरण भी है।

९. भंते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है–जीव अधिकरणी भी है, अधिकरण भी है?
गौतम! अविरति की अपेक्षा। इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है–जीव अधिकरणी भी है, अधिकरण भी है।

१०. भंते! क्या नैरयिक अधिकरणी है? अधिकरण है?
गौतम! अधिकरणी भी है, अधिकरण भी है। इस प्रकार जैसे जीव, वैसे ही नैरयिक की वक्तव्यता। इस प्रकार निरन्तर यावत् वैमानिक की वक्तव्यता।

११. भंते! क्या जीव अधिकरणी सहित है? अधिकरणी रहित है?
गौतम! अधिकरणी सहित है, अधिकरणी रहित नहीं है।

१२. यह किस अपेक्षा से–पृच्छा।
गौतम! अविरति की अपेक्षा। इस अपेक्षा से यावत् अधिकरणी रहित नहीं है। इस प्रकार यावत् वैमानिक की वक्तव्यता।

१३. भंते! क्या जीव आत्म-अधिकरणी है? पर-अधिकरणी है? तदुभय-अधिकरणी है?
गौतम! आत्म-अधिकरणी भी है, पर-अधिकरणी भी है, तदुभय-अधिकरणी भी है।

१४. भंते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है–यावत् तदुभय अधिकरणी भी है?
गौतम! अविरति की अपेक्षा। इस अपेक्षा से यावत् तदुभय-अधिकरणी भी है। इस प्रकार यावत् वैमानिक की वक्तव्यता।

१५. भंते! जीवों का अधिकरण क्या आत्म-प्रयोग से निष्पन्न होता है? पर-प्रयोग से निष्पन्न होता है? तदुभय-प्रयोग से निष्पन्न होता है?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा! आयप्पयोगनिव्वत्तिए वि, परप्पयोगनिव्वत्तिए वि, तदुभयप्पयोगनिव्वत्तिए वि॥

गौतम! आत्मप्रयोगनिर्वर्तितः अपि, परप्रयोगनिर्वर्तितः अपि, तदुभयप्रयोगनिर्वर्तितः अपि।

गौतम! जीवों का अधिकरण आत्म-प्रयोग से निष्पन्न भी है, पर-प्रयोग से निष्पन्न भी है, तदुभय-प्रयोग से निष्पन्न भी है।

१६. से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ?
गोयमा! अविरतिं पडुच्च। से तेणट्ठेणं जाव तदुभयप्पयोगनिव्वत्तिए वि। एवं जाव वेमाणियाणं॥

तत् केनार्थेन भदन्त! एवमुच्यते?
गौतम! अविरतिं प्रतीत्य। तत् तेनार्थेन यावत् तदुभयप्रयोगनिर्वर्तितः अपि। एवं यावत् वैमानिकानाम्।

१६. भंते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है?
गौतम! अविरति की अपेक्षा। इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है यावत् तदुभय-प्रयोग निष्पन्न भी है। इस प्रकार यावत् वैमानिक की वक्तव्यता।

भाष्य

सूत्र ८-१६

प्रस्तुत आलापक में जीव को अधिकरणी और अधिकरण--दोनों बतलाया है।

अधिकरण शब्द के अनेक अर्थ हैं--कलह, शस्त्र का प्रयोग, यंत्र, हल, गाड़ी आदि।

प्रस्तुत प्रकरण में अधिकरण पद के द्वारा शरीर और इन्द्रियां तथा हल, गाड़ी आदि बाह्य परिग्रह विवक्षित हैं। जीव के अधिकरण होता है इसलिए वह अधिकरणी है। जीव शरीर आदि अधिकरणों से कथंचित् अभिन्न है, इस अपेक्षा से उसे अधिकरण भी कहा गया है।[1]

जीव के अधिकरणी और अधिकरण होने का मूल हेतु अविरति है। विरति की अवस्था में शरीर, इन्द्रिय के होने पर भी जीव अधिकरणी और अधिकरण नहीं होता।[2]

प्रमत्त संयती के अनुपरत कायिकी क्रिया नहीं होती। द्रष्टव्य-ठाणं २/६ का टिप्पण।

सिद्ध और संयती जीव अधिकरण के प्रकरण में विवक्षित नहीं हैं। प्रस्तुत पाठ पर यह जयाचार्य की समीक्षा है।[3]

केवल शस्त्र ही अधिकरण नहीं होता, शरीर भी अधिकरण है। इस अपेक्षा से सभी जीव अधिकरणी भी हैं, अधिकरण भी हैं। शरीर का अधिकरण सहभावी है इसलिए वह साधिकरणी भी है।[4]

कोई मनुष्य अपने निमित्त से अधिकरणी है, कोई दूसरे के निमित्त से अधिकरणी है, कोई दोनों के निमित्त से अधिकरणी है। अधिकरणी होने का मूल हेतु अविरति है।

अधिकरण का संबंध किससे है? परिग्रह से, अविरति से अथवा शस्त्र प्रयोग से?

इन तीनों प्रश्नों पर विमर्श आवश्यक है।

अविरति की अपेक्षा सभी असंयमी जीव अधिकरणी भी हैं और अधिकरण भी हैं।

परिग्रह (शस्त्र आदि) की अपेक्षा मनुष्य और देव अधिकरणी और अधिकरण--दोनों हैं। नैरयिक जीव अपनी विक्रिया शक्ति के द्वारा शस्त्रों का निर्माण भी करते हैं और उनका प्रयोग भी करते हैं।[5]

१७. कति णं भंते! सरीरगा पण्णत्ता?
गोयमा! पंच सरीरगा पण्णत्ता, तं जहा--ओरालिए, वेउव्विए, आहारए, तेयए, कम्मए॥

कति भदन्त! शरीरकाणि प्रज्ञप्तानि?
गौतम! पञ्चशरीरकाणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा--औदारिकम्, वैक्रियम्, आहारकम्, तैजसम्, कार्मकम्।

१७. भंते! शरीर कितने प्रज्ञप्त हैं?
गौतम! शरीर पांच प्रज्ञप्त हैं, जैसे--औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस और कार्मण।

---

१. भ. वृ. १६/८ अधिकरणं--दुर्गतिनिमित्तं वस्तु तच्च विवक्षया शरीरमिन्द्रियाणि च, तथा बाह्यो हलगन्त्र्यादिपरिग्रहस्तदस्यास्तीत्यधिकरणी जीवः अहिकरणं पि ति शरीराद्यधिकरणेभ्यः कथञ्चिद व्यतिरिक्तत्वादधिकरणं जीवः।

२. भ. वृ. १६/९ एतच्च द्वयं जीवस्याविरतिं प्रतीत्योच्यते तेन यो विरतिमान् असौ शरीरादिभावेऽपि नाधिकरणी नाप्यधिकरणमविरतियुक्तस्यैव शरीरादेरधिकरणत्वादिति।

३. भ. जो. ढा. ३४८, गाथा--३०-३२
प्रश्न करै को ताहि, सअधिकरणी जीव छै।
निरधिकरणी नांहि, एहवो आख्यो सूत्र में॥
जीव विषै तो लेह, सिद्ध संजती पिण सहु।
निरधिकरणी तेह, उत्तर कहिए तेहनो॥
जीवेणं बच एक, जीव अव्रती मांहिलो।
एक जीव संपेख, ते आश्री ए संभवै॥

४. भ. वृ. सू. १६/११ सह--सहभाविनाऽधिकरणेन--शरीरादिना वर्त्तत इति, समासान्ते विधिः साधिकरणी, संसारिजीवस्य शरीरेन्द्रियरूपाधिकरणस्य सर्वदैव सहचारित्वात् साधिकरणत्वमुपदिश्यते। शस्त्राद्यधिकरणापेक्षया तु स्वस्वामिभावस्य। तदविरतिरूपस्य सहवर्त्तित्वाज्जीवः साधिकरणीत्युच्यते।

५. जीवा. ३/११०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१८. कति णं भंते! इंदिया पण्णत्ता?
गोयमा! पंच इंदिया पण्णत्ता, तं जहा–सोइंदिए, चक्खिंदिए, घाणिंदिए, रसिंदिए, फासिंदिए॥

कति भदन्त! इन्द्रियाणि प्रज्ञप्तानि?
गौतम! पञ्च इन्द्रियाणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा–श्रोत्रेन्द्रियम्, चक्षुरिन्द्रियम्, घ्राणेन्द्रियम्, रसनेन्द्रियम्, स्पशन्द्रियम्।

१८. भंते! इन्द्रियां कितनी प्रज्ञप्त हैं?
गौतम! इन्द्रियां पांच प्रज्ञप्त हैं, जैसे–श्रोत्र-इन्द्रिय, चक्षु-इन्द्रिय, घ्राण-इन्द्रिय, रसन-इन्द्रिय, स्पर्श-इन्द्रिय।

१९. कतिविहे णं भंते! जोए पण्णत्ते?
गोयमा! तिविहे जोए पण्णत्ते, तं जहा–मणजोए, वइजोए, कायजोए॥

कतिविधः भदन्त! योगः प्रज्ञप्तः?
गौतम! त्रिविधः योगः प्रज्ञप्तः, तद्यथा–मनोयोगः वाग्योगः, काययोगः।

१९. भंते! योग के कितने प्रकार प्रज्ञप्त हैं?
गौतम! योग के तीन प्रकार प्रज्ञप्त हैं, जैसे–मन योग, वचन योग, काय योग।

२०. जीवे णं भंते! ओरालियसरीरं निव्वत्तेमाणे किं अधिकरणी? अधिकरणं?
गोयमा! अधिकरणी वि, अधिकरणं पि॥

जीवः भदन्त! औदारिकशरीरं निर्वर्त्यमानः किम् अधिकरणी? अधिकरणम्।
गौतम! अधिकरणी अपि, अधिकरणम् अपि।

२०. भंते! जीव औदारिक शरीर को निष्पन्न करता हुआ क्या अधिकरणी है? अधिकरण है?
गौतम! अधिकरणी भी है, अधिकरण भी है।

२१. से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ–अधिकरणी वि, अधिकरणं पि?
गोयमा! अविरतिं पडुच्च। से तेणट्ठेणं जाव अधिकरणं पि॥

तत् केनार्थेन भदन्त! एवमुच्यते–अधिकरणी अपि, अधिकरणम् अपि?
गौतम! अविरतिं प्रतीत्य! तत् तेनार्थेन यावत् अधिकरणम् अपि।

२१. भंते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है–जीव अधिकरणी भी है? अधिकरण भी है?
गौतम! अविरति की अपेक्षा। इस अपेक्षा से यावत् अधिकरण भी है।

२२. पुढविकाइएणं णं भंते! ओरालियसरीरं निव्वत्तेमाणे किं अधिकरणी? अधिकरणं?
एवं चेव। एवं जाव मणुस्से। एवं वेउव्वियसरीरं पि, नवरं–जस्स अत्थि॥

पृथ्वीकायिकानां भदन्त! औदारिकशरीरं निर्वर्त्यमानः किम् अधिकरणी? अधिकरणम्?
एवं चैव। एवं यावत् मनुष्यः एवं वैक्रियशरीरम् अपि, नवरम्–यस्य अस्ति।

२२. भंते! पृथ्वीकायिक जीव औदारिक शरीर को निष्पन्न करता हुआ क्या अधिकरणी है? अधिकरण है?
पूर्ववत्। इसी प्रकार यावत् मनुष्य की वक्तव्यता। इसी प्रकार वैक्रिय शरीर की वक्तव्यता, इतना विशेष है–जिसके वह शरीर है।

२३. जीवे णं भंते! आहारगसरीरं निव्वत्तेमाणे किं अधिकरणी?–पुच्छा।
गोयमा! अधिकरणी वि, अधिकरणं पि॥

जीवः भदन्त! आहारकशरीरं निर्वर्त्यमानः किम् अधिकरणी?–पृच्छा।
गौतम! अधिकरणी अपि, अधिकरणम् अपि।

२३. भंते! जीव आहारक शरीर को निष्पन्न करता हुआ क्या अधिकरणी है?–पृच्छा।
गौतम! अधिकरणी भी है, अधिकरण भी है।

२४. से केणट्ठेणं जाव अधिकरणं पि?

गोयमा! पमायं पडुच्च। से तेणट्ठेणं जाव अधिकरणं पि। एवं मणुस्से वि। तेयासरीरं जहा ओरालियं, नवरं–सव्वजीवाणं भाणियव्वं। एवं कम्मगसरीरं पि॥

तत् केनार्थेन यावत् अधिकरणम् अपि?

गौतम! प्रमादं प्रतीत्य। तत् तेनार्थेन यावत् अधिकरणम् अपि। एवं मनुष्योऽपि। तैजसशरीरं यथा औदारिकम् नवरम्–सर्वजीवानां भाणितव्यम्। एवं कार्मकशरीरम् अपि।

२४. यह किस अपेक्षा से यावत् अधिकरण भी है?
गौतम! प्रमाद की अपेक्षा। इस अपेक्षा से यावत् अधिकरण भी है। इसी प्रकार मनुष्य की वक्तव्यता। तैजस शरीर की औदारिक शरीर की भांति वक्तव्यता, इतना विशेष है–वह सर्व जीवों के वक्तव्य है। इसी प्रकार कर्म शरीर की वक्तव्यता।

२५. जीवे णं भंते! सोइंदियं निव्वत्तेमाणे किं अधिकरणी? अधिकरणं?

जीवः भदन्त! श्रोत्रेन्द्रियं निर्वर्त्यमानः किम् अधिकरणी? अधिकरणम्?

२५. भंते! जीव श्रोत्रेन्द्रिय को निष्पन्न करता हुआ क्या अधिकरणी है? अधिकरण है?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एवं जहेव ओरालियसरीरं तहेव सोइंदियं पि भाणियव्वं, नवरं–जस्स अत्थि सोइंदियं। एवं चक्खिंदिय-घाणिंदिय-जिब्भिंदिय-फासिंदियाण वि, नवरं जाणियव्वं–जस्स जं अत्थि॥

एवं यथैव औदारिकशरीरं तथैव श्रोत्रेन्द्रियम्। नवरम्–यस्य अस्ति श्रोत्रेन्द्रियं एवं चक्षुरिन्द्रिय-घ्राणेन्द्रिय-जिह्वेन्द्रिय-स्पर्शेन्द्रियाणाम् अपि, नवरम् ज्ञातव्यं–यस्य यत् अस्ति।

इस प्रकार जैसे औदारिक शरीर की वक्तव्यता वैसे ही श्रोत्रेन्द्रिय की वक्तव्यता, इतना विशेष है–जिसके श्रोत्रेन्द्रिय है। इसी प्रकार चक्षुरिन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, जिह्वेन्द्रिय, स्पर्शेन्द्रिय की वक्तव्यता, इतना विशेष है–जिस जीव के जितनी इन्द्रियां हैं।

२६. जीवे णं भंते! मणजोगं निव्वत्तेमाणे किं अधिकरणी? अधिकरणं?
एवं जहेव सोइंदियं तहेव निरवसेसं। वइजोगो एवं चेव, नवरं–एगिंदिय-वज्जाणं। एवं कायजोगो वि, नवरं–सव्वजीवाणं जाव वेमाणिए।

जीवः भदन्त! मनोयोगं निर्वर्त्यमानः किम् अधिकरणी? अधिकरणम्?
एवं यथैव श्रोत्रेन्द्रियं तथैव निरवशेषम्। वाग्योगो एवं चैव, नवरम्–एकेन्द्रिय-वर्जाणाम्। एवं काययोगोऽपि, नवरम्–सर्वजीवानां यावत् वैमानिकानाम्।

२६. भंते! जीव मनोयोग को निष्पन्न करता हुआ क्या अधिकरणी है, अधिकरण है?
इस प्रकार जैसे श्रोत्रेन्द्रिय की वक्तव्यता, वैसे ही निरवशेष वक्तव्य है। वचन योग की पूर्ववत् वक्तव्यता, इतना विशेष है–एकेन्द्रिय वर्जित। इसी प्रकार काययोग की वक्तव्यता, इतना विशेष है–सर्व जीवों के यावत् वैमानिक।

भाष्य

१. सूत्र २०-२६

प्रस्तुत आलापक में शरीर रचना के संदर्भ में अधिकरणी और अधिकरण की मीमांसा की गई है। अधिकरणी और अधिकरण का हेतु अविरति बतलाया गया है। आहारक शरीर का निर्माण केवल संयमी मुनि करता है इसलिये उसके अधिकरणी और अधिकरण का हेतु प्रमाद है। जयाचार्य ने इसे अशुभ योग रूप प्रमाद बतलाया है।[1]

तैजस शरीर और कर्म शरीर के निर्वर्तन अथवा निर्माण का निर्देश एक नई जानकारी देता है। तैजस और कार्मण शरीर का संबंध अनादिकालीन है।[2] जीवाजीवाभिगम में तैजस और कार्मण की स्थिति अनादि अपर्यवसित और अनादि सपर्यवसित बतलाई गई है।[3]

यदि ये दोनों शरीर अनादिकालीन हैं तो इनका निर्माण कैसे हो सकता है? इनके निर्माण के समय जीव अधिकरणी, अधिकरण भी कैसे हो सकता है? इस प्रश्न का उत्तर प्रमाण के आधार पर दिया जा सकता है। तैजस और कार्मण शरीर का जघन्य प्रमाण अंगुल का असंख्यातवां भाग, उत्कृष्ट प्रमाण औदारिक शरीर जितना तथा केवली समुद्घात के समय लोक प्रमाण, इसी प्रकार मारणान्तिक समुद्घात के समय लंबाई में लोकांत से लोकांत तक है।[4]

उक्त संदर्भों का निष्कर्ष यह है–तैजस और कार्मण शरीर अनादि कालीन हैं किन्तु नए जन्म के साथ उनका आकार बदलता रहता है। वे शरीर नाम कर्म की प्रकृति के द्वारा परिवर्तित होते रहते हैं। औदारिक शरीर के अनुरूप उनका निर्माण होता है, आकार-संरचना होती है। इस दृष्टि से उनके निर्वर्तन का सिद्धान्त संगत है।

जस्स अत्थि–वैक्रिय शरीर देव, नारक और वायुकाय के होता है। पंचेन्द्रिय तिर्यंच और मनुष्य के लब्धिजन्य होता है।[5]

जस्स अत्थि (१६/१५) द्रष्टव्य यंत्र

	श्रोत्रेन्द्रिय	चक्षुरिन्द्रिय	घ्राणेन्द्रिय	रसनेन्द्रिय	स्पर्शेन्द्रिय
एकेन्द्रिय	×	×	×	×	×
द्वीन्द्रिय	×	×	×	✓	✓
त्रीन्द्रिय	×	×	✓	✓	✓
चतुरिन्द्रिय	×	✓	✓	✓	✓
पंचेन्द्रिय	✓	✓	✓	✓	✓

२७. सेवं भंते! सेवं भंते! त्ति॥

तदेवं भदन्त! तदेवं भदन्त! इति।

२७. भंते! वह ऐसा ही है। भंते! वह ऐसा ही है।

१.भ. जो. ढा. ३४६. गाथा १६-२१
आहारक शरीर सोय, छठे गुण ठाणेज ह्वै।
ज्यां अविरत नहिं कोय, तिणसूं प्रमाद आश्रयी॥
लब्धि फोड़वै जेह, अशुभ जोग रूपी तिको।
प्रमाद कहिये तेह, तिणमें नहिं जिण आमन्या॥
पद छत्तीसम मांहि, आहारक तेजु वैक्रिय।
लब्धि फोड़वै ताहि, क्रिया पंच उत्कृष्ट थी॥
शीतल तेजू जाण, वली उष्ण तेजू कही।
शतक पनरमें वाण, तिणसूं बिहुं तेजू विषे॥
जंघा विद्याचार, वली वैक्रिय फोड़वै।
विण आलोयां धार, कह्यो विराधक केवली॥
तिणसूं एह संवाद, लब्धि आहारक फोड़वै।
अशुभ जोग प्रमाद, प्रायश्चित्त आवै तसु॥

२. तत्त्वार्थाधिगम सू. २/४२–अनादिसंबंधे च।

३. जीवा. ६/१७४, १७६

४. तत्त्वार्थभाष्यानुसारिणी टीका २/४६ : एतयोश्च तैजसकार्मणयोरवरतः प्रमाणमंगुलासंख्येयभागः उत्कृष्टतश्चौदारिकशरीरप्रमाणे, केवलिनः समुद्घाते लोकप्रमाणे वा भवतः मारणान्तिकसमुद्घाते वा आयामतो लोकान्ता-ल्लोकान्तायते स्यातामिति।

५. भ. वृ. १६/२२-२६ तत्र नारकदेवानां वायोः पञ्चेन्द्रियतिर्यक्मनुष्याणां च तदस्तीति ज्ञेयम्।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बीओ उद्देसो : दूसरा उद्देशक

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
जीवाणं जरा-सोग-पदं	जीवानाम् जरा-शोक-पदम्	जीवों का जरा-शोक पद
२८. रायगिहे जाव एवं वयासी–जीवाणं भंते! किं जरा? सोगे? गोयमा! जीवाणं जरा वि, सोगे वि॥	राजगृहं यावत् एवमवादीत्–जीवानां भदन्त! किं जरा? शोकः? गौतम! जीवानां जरा अपि, शोकः अपि।	२८. राजगृह नगर यावत् गौतम ने इस प्रकार कहा–क्या जीवों के जरा है? शोक है? गौतम! जीवों के जरा भी है, शोक भी है।
२९. से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ–जीवाणं जरा वि, सोगे वि? गोयमा! जे णं जीवा सारीरं वेदणं वेदेंति तेसि णं जीवाणं जरा, जे णं जीवा माणसं वेदणं वेदेंति तेसि णं जीवाणं सोगे। से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ–जीवाणं जरा वि, सोगे वि। एवं नेरइयाण वि। एवं जाव थणियकुमाराणं॥	तत् केनार्थेन भदन्त! एवमुच्यते– जीवानां जरा अपि, शोकः अपि? गौतम! ये जीवाः शारीरां वेदनां वेदयन्ति, तेषां जीवानां जरा, ये जीवा मानसां वेदनां वेदयन्ति तेषां जीवानां शोकः। तत् तेनार्थेन गौतम! एवमुच्यते–जीवानां जरा अपि, शोकः अपि। एवं नैरयिकाणाम् अपि। एवं यावत् स्तनितकुमाराणाम्।	२९. भंते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है–जीवों के जरा भी है, शोक भी है? गौतम! जो जीव शारीरिक वेदना का वेदन करते हैं, उन जीवों के जरा तथा जो जीव मानसिक वेदना का वेदन करते हैं, उन जीवों के शोक होता है। गौतम! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है–जीवों के जरा भी होती है, शोक भी होता है। इसी प्रकार नैरयिक की वक्तव्यता। इसी प्रकार यावत् स्तनितकुमार की वक्तव्यता।
३०. पुढविकाइयाणं भंते! किं जरा? सोगे? गोयमा! पुढविकाइयाणं जरा, नो सोगे॥	पृथिवीकायिकानां भदन्त! किं जरा? शोकः? गौतम! पृथिवीकायिकानां जरा, नो शोकः।	३०. भंते! क्या पृथ्वीकायिक जीवों के जरा है? शोक है? गौतम! पृथ्वीकायिक जीवों के जरा है, शोक नहीं है।
३१. से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ–पुढविकाइयाणं जरा, नो सोगे? गोयमा! पुढविकाइया णं सारीरं वेदणं वेदेंति, नो माणसं वेदणं वेदेंति। से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ–पुढविकाइयाणं जरा, नो सोगे। एवं जाव चउरिंदियाणं। सेसाणं जहा जीवाणं जाव वेमाणियाणं॥	तत् केनार्थेन भदन्त! एवमुच्यते– पृथिवीकायिकानां जरा, नो शोकः? गौतम! पृथिवीकायिकाः शारीरां वेदनां वेदयन्ति, नो मानसां वेदनां वेदयन्ति। तत् तेनार्थेन गौतम! एवमुच्यते– पृथिवीकायिकानां जरा, नो शोकः। एवं यावत् चतुरिन्द्रियाणाम्। शेषाणां यथा जीवानां यावत् वैमानिकानाम्।	३१. भंते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है–पृथ्वीकायिक जीवों के जरा है, शोक नहीं है? गौतम! पृथ्वीकायिक जीव शारीरिक वेदना का वेदन करते हैं, मानसिक वेदना का वेदन नहीं करते। गौतम! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है–पृथ्वीकायिक जीवों के जरा होती है, शोक नहीं होता। इस प्रकार यावत् चतुरिन्द्रिय की वक्तव्यता। शेष जीवों की भांति वक्तव्य हैं यावत् वैमानिक की वक्तव्यता।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भाष्य

१. सूत्र २८-३१

दुःख के दो प्रकार हैं—शारीरिक और मानसिक। जरा बुढ़ापे का वाचक है। बुढ़ापे को दुःख माना गया है।

जम्मं दुक्खं जरा दुक्खं रोगा य मरणाणि य।
अहो दुक्खो हु संसारो, जत्थ कीसंति जंतवो॥[1]

जरा शब्द के द्वारा शारीरिक दुःखों की ओर संकेत किया गया है। शोक शब्द के द्वारा मानसिक दुःखों की ओर संकेत किया गया है।

अमनस्क जीव शारीरिक दुःख का वेदन करते हैं इसलिए उनके जरा होती है, शोक नहीं होता। समनस्क जीव जरा और शोक—दोनों का वेदन करते हैं।

३२. सेवं भंते! सेवं भंते! त्ति जाव पज्जुवासति॥

तदेवं भदन्त! तदेवं भदन्त! इति यावत् पर्युपास्ते।

३२. भंते! वह ऐसा ही है। भंते वह ऐसा ही है। यह कहकर यावत् पर्युपासना करने लगे।

सक्कस्स ओग्गह-अणुजाणणा-पदं

३३. तेणं कालेणं तेणं समएणं सक्के देविंदे देवराया वज्जपाणी पुरंदरे जाव दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरइ। इमं च णं केवलकप्पं जंबुद्दीवं दीवं विपुलेणं ओहिणा आभोएमाणे-आभोएमाणे पासति, एत्थ णं समणं भगवं महावीरं जंबुद्दीवे दीवे। एवं जहा ईसाणे तइयसए तहेव सक्के वि, नवरं—आभिओगे ण सद्दावेति, हरी पायत्ताणियाहिवई, सुघोसा घंटा, पालओ विमाणकारी, पालगं विमाणं उत्तरिल्ले निज्जाणमग्गे, दाहिण-पुरत्थिमिल्ले रतिकरपव्वए, सेसं तं चेव जाव नाममं सावेत्ता पज्जुवासति। धम्मकहा जाव परिसा पडिगया॥

शक्रस्य अवग्रह-अनुज्ञापना-पदम्

तस्मिन् काले तस्मिन् समये शक्रः देवेन्द्रः देवराजः वज्रपाणिः पुरन्दरः यावत् दिव्यान् भोगभोगान् भुञ्जानः विहरति। इमं च केवलकल्पं जम्बूद्वीपं द्वीपं विपुलेन अवधिना आभोगयन् आभोगयन् पश्यति, अत्र श्रमणं भगवन्तं महावीरं जम्बूद्वीपे द्वीपे। एवं यथा ईशाने तृतीयशते तथैव शक्रोऽपि, नवरम्—आभियोगान् न शब्दयति, हरिः पादातानिकाधिपतिः सुघोषा घण्टा, पालकः विमानकारी, पालकं विमानम्, औदीच्ये निर्याणमार्गः, दक्षिणपौरस्त्ये, रतिकरपर्वतः शेषं तत् चैव यावत् नामकं श्रावयित्वा पर्युपास्ते। धर्मकथा यावत् परिषद् प्रतिगता।

शक्र का अवग्रह-अनुज्ञापन पद

३३. उस काल उस समय वज्रपाणि, पुरन्दर देवराज देवेन्द्र शक्र यावत् दिव्य भोगार्ह भोगों को भोगता हुआ विहरण कर रहा था। इस सम्पूर्ण जम्बूद्वीप द्वीप को विपुल अवधिज्ञान के द्वारा जानता हुआ, जानता हुआ देखता है—यहां श्रमण भगवान् महावीर जम्बूद्वीप द्वीप में है। इस प्रकार जैसे तृतीय शतक में ईशान की वक्तव्यता, उसी प्रकार शक्र की वक्तव्यता, इतना विशेष है—शक्र आभियोगिक देवों को आमन्त्रित नहीं करता। उसकी पदाति सेना का अधिपति हरिणगमेषी देव, सुघोषा घंटा, विमान-निर्माता पालक, विमान का नाम पालक, निर्गमन का मार्ग उत्तर दिशा। दक्षिण-पूर्व में रतिकर पर्वत। शेष पूर्ववत् यावत् नाम बताकर पर्युपासना की। भगवान् ने धर्म कहा यावत् परिषद् लौट गई।

३४. तए णं से सक्के देविंदे देवराया समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं धम्मं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठे समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—कतिविहे णं भंते! ओग्गहे पण्णत्ते?

सक्का! पंचविहे ओग्गहे पण्णत्ते, तं जहा—देविंदोग्गहे, रायोग्गहे, गाहावइ-ओग्गहे, सागारियओग्गहे, साहम्मि-ओग्गहे।

जे इमे भंते! अज्जत्ताए समणा निग्गंथा विहरंति एएसि णं ओग्गहं अणुजाणामीति कट्टु समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता तमेव दिव्वं जाणविमाणं दुरुहति, दुरुहित्ता

ततः सः शक्रः देवेन्द्रः देवराजः श्रमणस्य भगवतः महावीरस्य अन्तिकं धर्मं श्रुत्वा निशम्य हृष्टतुष्टः श्रमणं भगवन्तं महावीरं वन्दते नमस्यति, वंदित्वा नमस्यित्वा एवमवादीत्—कतिविधः भदन्त! अवग्रहः प्रज्ञप्तः?

शक्र! पञ्चविधः अवग्रहः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—देवेन्द्रावग्रहः, राजावग्रहः, गाथापत्यवग्रहः, सागारिकावग्रहः, साधर्मिकावग्रहः।

ये इमे भदन्त! आर्यतया श्रमणाः निर्ग्रन्थाः विहरन्ति एतेभ्यः अवग्रहम् अनुजानामि इति कृत्वा श्रमणं भगवन्तं महावीरं वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्यित्वा तदेव दिव्यं यानविमानम्

३४. देवराज देवेन्द्र शक्र श्रमण भगवान् महावीर के पास धर्म को सुनकर, अवधारण कर, हृष्ट तुष्ट हो गया। उसने श्रमण भगवान् महावीर को वंदन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार कर इस प्रकार कहा—भंते! अवग्रह कितने प्रकार का प्रज्ञप्त है?

शक्र! अवग्रह पांच प्रकार का प्रज्ञप्त है, जैसे—देवेन्द्र-अवग्रह, राज-अवग्रह, गृहपति-अवग्रह, सागारिक-अवग्रह, साधर्मिक-अवग्रह।

भंते! जो ये श्रमण निर्ग्रंथ आर्य रूप में विहरण करते हैं, उन्हें अवग्रह की अनुज्ञा देता हूं। यह कहकर श्रमण भगवान् महावीर को वंदन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार कर उसी दिव्य यान-विमान पर चढा, चढकर जिस

१. उत्तर. १६/१५।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जामेव दिसं पाउब्भूए तामेव दिसं पडिगए॥

आरोहति, आरुह्य यस्याः एव दिशः प्रादुर्भूतः तस्यामेव दिशि प्रतिगतः।

दिशा से आया था, उसी दिशा में लौट गया।

भाष्य

१. सूत्र ३३-३४

इस आलापक में भगवान् महावीर के जीवन का एक विशिष्ट प्रसंग है। एक बार सौधर्म स्वर्ग के अधिपति देवेन्द्र शक्र भगवान् महावीर के पास आए और अवग्रह के विषय में जिज्ञासा की। भगवान् ने पांच प्रकार के अवग्रह बतलाए। उस समय सौधर्मेन्द्र शक्र ने कहा–मैं आर्य रूप में विद्यमान श्रमण निर्ग्रंथों को अवग्रह की अनुज्ञा करता हूं।

अवग्रह के अनेक अर्थ हैं–आश्रय, आवास, पात्र, अपने अधिकार की वस्तु के उपभोग की आज्ञा आदि।

दक्षिण भरत पर सौधर्मेन्द्र शक्र का अधिकार है। उसने अपनी अधिकार-भूमि का उपयोग करने की अनुज्ञा दी।

सक्क-संबंधि-वागरण-पदं

३५. भंतेति! भगवं गोयमे समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी–जण्णं भंते! सक्के देविंदे देवराया तुब्भे एवं वदइ, सच्चे णं एसमट्ठे?
हंता सच्चे॥

शक्र-सम्बन्धि-व्याकरण-पदम्

भदन्त इति! भगवान् गौतमः श्रमणं भगवन्तं महावीरं वन्दते नमस्यति, वंदित्वा नमस्यित्वा एवमावादीत्–यत् भदन्त! शक्रः देवेन्द्रः देवराजः युष्मान् एवं वदति, सत्यः एषः अर्थः?
हन्त सत्यः।

शक्र संबन्धी व्याकरण पद

३५. अयि भंते! भगवान् गौतम ने श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार कर इस प्रकार कहा–भंते! देवराज देवेन्द्र शक्र ने आपसे जो कहा, क्या वह अर्थ सत्य है?
हां, सत्य है।

३६. सक्के णं भंते! देविंदे देवराया किं सम्मावादी? मिच्छावादी?
गोयमा! सम्मावादी, नो मिच्छावादी॥

शक्रः भदन्त! देवेन्द्रः देवराजः किं सम्यग्वादी? मिथ्यावादी?
गौतम! सम्यग्वादी, नो मिथ्यावादी।

३६. भंते! देवराज देवेन्द्र शक्र क्या सम्यग्वादी है? मिथ्यावादी है?
गौतम! सम्यग्वादी है, मिथ्यावादी नहीं है।

३७. सक्के णं भंते! देविंदे देवराया किं सच्चं भासं भासति? मोसं भासं भासति? सच्चामोसं भासं भासति? असच्चामोसं भासं भासति?
गोयमा! सच्चं पि भासं भासति जाव असच्चामोसं पि भासं भासति॥

शक्रः भदन्त! देवेन्द्रः देवराजः किं सत्यां भाषां भाषते? मृषां भाषां भाषते? सत्यामृषां भाषां भाषते? असत्यामृषां भाषां भाषते?
गौतम! सत्याम् अपि भाषां भाषते यावत् असत्यामृषां अपि भाषां भाषते।

३७. भंते! देवराज देवेन्द्र शक्र क्या सत्य भाषा बोलता है? मृषा भाषा बोलता है? सत्यामृषा भाषा बोलता है? असत्यामृषा भाषा बोलता है?
गौतम! सत्य भाषा भी बोलता है यावत् असत्यामृषा भाषा भी बोलता है।

३८. सक्के णं भंते! देविंदे देवराया किं सावज्जं भासं भासति? अणवज्जं भासं भासति?
गोयमा! सावज्जं पि भासं भासति, अणवज्जं पि भासं भासति॥

शक्रः भदन्त! देवेन्द्रः देवराजः किं सावद्यां भाषां भाषते? अनवद्यां भाषां भाषते?
गौतम! सावद्याम् अपि भाषां भाषते, अनवद्याम् अपि भाषां भाषते।

३८. भंते! देवराज देवेन्द्र शक्र क्या सावद्य भाषा बोलता है? अनवद्य भाषा बोलता है?
गौतम! सावद्य भाषा भी बोलता है, अनवद्य भाषा भी बोलता है।

३९. से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ–सक्के देविंदे देवराया सावज्जं पि भासं भासति, अणवज्जं पि भासं भासति?
गोयमा! जाहे णं सक्के देविंदे देवराया सुहुमकायं अणिज्जूहित्ता णं भासं भासति ताहे णं सक्के देविंदे देवराया सावज्जं भासं भासति, जाहे णं सक्के देविंदे देवराया सुहुमकायं निज्जूहित्ता णं

तत् केनार्थेन भदन्त! एवमुच्यते–शक्रः देवेन्द्रः देवराजः सावद्याम् अपि भाषां भाषते, अनवद्याम् अपि भाषां भाषते?
गौतम! यदा शक्रः देवेन्द्रः देवराजः सूक्ष्मकायम् अनिर्यूह्य भाषां भाषते तदा शक्रः देवेन्द्रः देवराजः सावद्यां भाषां भाषते, यदा शक्रः देवेन्द्रः देवराजः सूक्ष्मकायम् निर्यूह्य भाषां भाषते तदा

३९. भंते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है–देवराज देवेन्द्र शक्र सावद्य भाषा भी बोलता है, अनवद्य भाषा भी बोलता है?
गौतम! जब देवराज देवेन्द्र शक्र सूक्ष्मकाय का निर्यूहण किए बिना बोलता है, तब देवराज देवेन्द्र शक्र सावद्य भाषा बोलता है। जब देवराज देवेन्द्र शक्र सूक्ष्मकाय का निर्यूहण कर बोलता है, तब देवराज देवेन्द्र

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भासं भासति ताहे णं सक्के देविंदे देवराया अणवज्जं भासं भासति। से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ–सक्के देविंदे देवराया सावज्जं पि भासं भासति, अणवज्जं पि भासं भासति॥

शक्रः देवेन्द्रः देवराजः अनवद्यां भाषां भाषते। तत् तेनार्थेन गौतम! एवमुच्यते–शक्रः देवेन्द्रः देवराजः सावद्याम् अपि भाषां भाषते, अनवद्याम् अपि भाषां भाषते।

शक्र निरवद्य भाषा बोलता है। गौतम! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है–देवराज देवेन्द्र शक्र सावद्य भाषा भी बोलता है, अनवद्य भाषा भी बोलता है।

४०. सक्के णं भंते! देविंदे देवराया किं भवसिद्धीए? अभवसिद्धीए? सम्मदिट्ठीए? मिच्छदिट्ठीए? परित्तसंसारिए? अणंतसंसारिए? सुलभबोहिए? दुल्लभबोहिए? आराहए? विराहए? चरिमे? अचरिमे?

गोयमा! सक्के णं देविंदे देवराया भवसिद्धीए, नो अभवसिद्धिए। सम्मदिट्ठीए, नो मिच्छदिट्ठीए। परित्तसंसारिए, नो अणंतसंसारिए। सुलभबोहिए, नो दुल्लभबोहिए। आराहए, नो विराहए। चरिमे, नो अचरिमे। एवं जहा मोउद्देसए सणंकुमारे जाव नो अचरिमे॥

शक्रः भदन्त! देवेन्द्रः देवराजः किं भवसिद्धिकः? अभवसिद्धिकः? सम्यग् दृष्टिकः? मिथ्यादृष्टिकः? परीतसंसारिकः? अनन्तसंसारिकः? सुलभबोधिकः? दुर्लभबोधिकः? आराधकः? विराधकः? चरमः? अचरमः?

गौतम! शक्रः देवेन्द्रः देवराजः भवसिद्धिकः, नो अभवसिद्धिकः। सम्यग्दृष्टिकः नो मिथ्यादृष्टिकः। परीतसंसारिकः, नो अपरीतसंसारिकः। सुलभबोधिकः , नो दुर्लभबोधिकः। आराधकः, नो विराधकः। चरमः, नो अचरमः। एवं यथा मोकोद्देशके सनत्कुमारः यावत् नो अचरमः।

४०. भंते! देवराज देवेन्द्र शक्र क्या भवसिद्धिक है? अभवसिद्धिक है? सम्यक दृष्टि है? मिथ्या दृष्टि है? परित संसारी है? अनंत संसारी है? सुलभ बोधि है? दुर्लभ बोधि है? आराधक है? विराधक है? चरम है? अचरम है?

गौतम! देवराज देवेन्द्र शक्र भवसिद्धिक है, अभवसिद्धिक नहीं है। सम्यग् दृष्टि है, मिथ्या दृष्टि नहीं है। परित संसारी है, अनन्त संसारी नहीं है। सुलभ बोधि है, दुर्लभ बोधि नहीं है। आराधक है, विराधक नहीं है। चरम है, अचरम नहीं है। इस प्रकार मोक उद्देशक (भ. ३/७२-७३) में सनत्कुमार की भांति वक्तव्यता यावत् अचरम नहीं है।

भाष्य

१. सूत्र ३५-४०

देवेन्द्र शक्र ने अवग्रह के बारे में जो कहा, उसके सत्यापन के लिए गौतम स्वामी ने भगवान् महावीर से पूछा और भगवान् ने गौतम के वक्तव्य का अनुमोदन किया।

इसके पश्चात् गौतम ने इन्द्र के विषय में अनेक प्रश्न पूछे। उनका उत्तर मूलपाठ में स्पष्ट है। सावद्य और अनवद्य भाषा के विषय में विमर्श आवश्यक है।

सावद्य और निरवद्य के सूत्र का पारंपरिक अर्थ इस प्रकार है–

वृत्तिकार ने सावद्य का अर्थ गर्हित कर्म किया है।[1] चूर्णिकार ने सूक्ष्मकाय का अर्थ हस्त आदि वस्तु किया है।[2] वृत्तिकार ने अपनी वृत्ति में इसका उल्लेख किया है।[3] वृत्ति में मतांतर का उल्लेख है। उसके अनुसार सुहुमकाय का अर्थ है वस्त्र[4]।

अणिज्जूहित्ता का अर्थ अपोह्य–अदत्त्वा–दिए बिना किया है।[5]

इसका तात्पर्यार्थ यह है–शक्र मुंह पर हाथ, वस्त्र आदि दिए बिना बोलता है तब उसकी भाषा सावद्य होती है। जब देवराज शक्र मुंह पर सूक्ष्मकाय–हाथ, वस्त्र आदि लगाकर बोलता है तब बोलते समय जीव संरक्षण होता है, इसलिए उसकी भाषा अनवद्य है।[6]

जयाचार्य ने वृत्ति के मत का समर्थन किया है, अपने वार्तिक में जीव का अर्थ वायुकाय का जीव किया है।[7]

उक्त व्याख्या के विमर्श बिन्दु–

१. अवद्य शब्द के अनेक अर्थ होते हैं–गर्हित, निंदित, पाप, प्रायश्चित्त योग्य, अस्वीकार करने योग्य, पाप युक्त, नीच और अप्रशंसनीय।[8]

प्रस्तुत प्रकरण में अवद्य का अर्थ गर्हित किया जाए अथवा पाप?

---

१. भ. वृ. १६/३९, सावज्जं ति सहावद्येन–गर्हितकर्म्मणेति सावद्या तां।

२. भ. चूर्णि पृष्ठ ४० सूक्ष्मकायमपोह्य हस्तादि मुखे दत्त्वा जीवसंरक्षणार्थं सुहुम भा साधूणं मुक्कं।

३. भ. वृ. १६/३९ सूक्ष्मकायं हस्तादिकं वस्त्विति वृद्धाः।

४. भ. वृ. १६/३९ अन्ये त्वाहुः–सुहुमकायं ति वस्त्रम्।

५. भ. वृ. १६/३९ अणिज्जुहित्तत्ति 'अपोह्य' अदत्त्वा।

६. भ. वृ. १६/३९ हस्ताद्यावृतमुखस्य हि भाषमाणस्य जीवसंरक्षणतोऽनवद्या भाषा भवति, अन्या तु सावद्येति।

७. भ. जो. ढाल ३५० गाथा ६९-७० तथा वार्तिक–

सूक्ष्मकाय कहाय, हस्तादिक वस्तु प्रतै।
वृद्ध वदै इम वाय, अन्य आचार्य वस्त्र कहै॥
हस्तादिक आवृत्त, बोलतां जंतू-रक्षा।
निरवद वचन उचित्त, अन्य वच सावज्ज इम वृत्तौ॥

वार्तिक–'वृत्ति' में जीव नीं रक्षा कही ते वायुकाय नां जीव जाण्या देवलोक में विकलेन्द्री नां प्रज्यासा नां स्थानक नथी। अनै मनुष्य लोक में इंन्द्रादिक आवै तेहनां मुख नैं विषे माखी-माछरादिक प्रवेश नो उपद्रव न संभवै, तै भणी ए वायुकाय नीं रक्षा जाणवी।

८. आप्टे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२. अणिज्जूहित्ता का अर्थ–दूर किए बिना तथा णिज्जूहित्ता का अर्थ 'दूर कर' होता है। पाइय शब्द महण्णव में निर्यूह–निर्+यूह धातु का अर्थ परित्याग करना, रचना, निर्माण करना, बाहर निकालना किया है।

निर्यूढ का अर्थ निस्सारित, निष्कासित, अमनोज्ञ, उद्धृत, ग्रंथांतर से अवतारित और रहित किया है।[1]

शाब्दिक मीमांसा करने पर चूर्णिकार और वृत्तिकार द्वारा किया हुआ अर्थ अगम्य बन रहा है।

'सूक्ष्मकाय का निर्यूहण किए बिना' इसका अर्थ है मुंह पर हाथ, वस्त्र आदि दिए बिना शक्र बोलता है, वह उसकी सावद्य भाषा है। जब देवेन्द्र शक्र सूक्ष्मकाय का निर्यूहण कर अर्थात् मुंह पर हाथ, वस्त्र आदि देकर बोलता है, तब वह अनवद्य भाषा है। यह व्याख्या शब्द मीमांसा के आधार पर विचारणीय है। वृत्तिकार ने णिज्जूहित्ता का अर्थ नहीं किया है। केवल अणिज्जूहित्ता का अर्थ किया है। अणिज्जूहित्ता णिज्जूहित्ता का विपर्यय है। हमें सर्वप्रथम णिज्जूहित्ता के अर्थ पर विचार करना चाहिए।

भवसिद्धिक आदि के लिए द्रष्टव्य भगवई ३/७२–७३ का भाष्य।

चेय-अचेयकड-कम्म-पदं

४१. जीवाणं भंते! किं चेयकडा कम्मा कज्जंति? अचेयकडा कम्मा कज्जंति?

गोयमा! जीवाणं चेयकडा कम्मा कज्जंति, नो अचेयकडा कम्मा कज्जंति॥

चेतस्-अचेतःकृत-कर्म-पदम्

जीवानां भदन्त! किं चेतःकृतानि कर्माणि क्रियन्ते? अचेतःकृतानि कर्माणि क्रियन्ते?

गौतम! जीवानां चेतःकृतानि कर्माणि क्रियन्ते, नो अचेतःकृतानि कर्माणि क्रियन्ते।

चैतन्य-अचैतन्य कृत कर्म पद

४१. भंते! जीवों के कर्म चैतन्य के द्वारा कृत हैं? अचैतन्य के द्वारा कृत हैं?

गौतम! जीवों के कर्म चैतन्य के द्वारा कृत हैं, अचैतन्य के द्वारा कृत नहीं हैं।

४२. से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ–जीवाणं चेयकडा कम्मा कज्जंति, नो अचेयकडा कम्मा कज्जंति?

गोयमा! जीवाणं आहारोवचिया पोग्गला, बोंदिचिया पोग्गला, कलेवरचिया पोग्गला तहा तहा णं ते पोग्गला परिणमंति, नत्थि अचेयकडा कम्मा समणाउसो!

दुट्ठाणेसु, दुसेज्जासु, दुन्निसीहियासु तहा तहा णं ते पोग्गला परिणमंति, नत्थि अचेयकडा कम्मा समणाउसो!

आयंके से वहाए होति, संकप्पे से वहाए होति, मरणंते से वहाए होति तहा तहा णं ते पोग्गला परिणमंति, नत्थि अचेयकडा कम्मा समणाउसो!

से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ–जीवाणं चेयकडा कम्मा कज्जंति, नो अचेयकडा कम्मा कज्जंति। एवं नेरइयाण वि। एवं जाव वेमाणियाणं।

तत् केनार्थेन भदन्त! एवमुच्यते–जीवानां चेतःकृतानि कर्माणि क्रियन्ते, नो अचेतःकृतानि कर्माणि क्रियन्ते?

गौतम! जीवानाम् आहारोपचिताः पुद्गलाः, 'बोंदि'चिताः पुद्गलाः, कलेवरचिताः पुद्गलाः तथा तथा ते पुद्गलाः परिणमन्ति न सन्ति अचेतस्कृतानि कर्माणि, श्रमणायुष्मन्! दुःस्थानेषु, दुःशय्यासु, दुर्निषीधिकासु तथा तथा ते पुद्गलाः परिणमन्ति, न सन्ति अचेतःकृतानि कर्माणि श्रमणायुष्मन्!

आतङ्कः तस्य वधाय भवति, संकल्पः तस्य वधाय भवति, मरणान्तः तस्य वधाय भवति, तथा तथा ते पुद्गलाः परिणमन्ति, न सन्ति अचेतःकृतानि कर्माणि श्रमणायुष्मन्! तत् तेनार्थेन गौतम! एवमुच्यते–जीवानां चेतःकृतानि कर्माणि क्रियन्ते, नो अचेतःकृतानि कर्माणि क्रियन्ते। एवं नैरयिकाणाम् अपि। एवं यावत् वैमानिकानाम्।

४२. भंते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है–जीवों के कर्म चैतन्य के द्वारा कृत हैं, अचैतन्य के द्वारा कृत नहीं हैं?

गौतम! जैसे पुद्गल जीवों के आहार के रूप में उपचित हैं, शरीर के रूप में उपचित हैं, कलेवर के रूप में उपचित हैं, वे उस उस रूप में परिणत होते हैं। आयुष्मन् श्रमण! वैसे ही कर्म-पुद्गल कर्म रूप में परिणत होते हैं इसलिए कर्म अचेतन के द्वारा कृत नहीं हैं।

जैसे पुद्गल दुःस्थान, दुःशय्या और दुर्निषद्या में उस उस रूप में (अशुभ रूप में) परिणत होते हैं, आयुष्मन् श्रमण! वैसे ही कर्म पुद्गल भी कर्म रूप में परिणत होते हैं, इसलिए कर्म अचैतन्य कृत नहीं हैं। जैसे आतंक वध के लिए होता है। संकल्प वध के लिए होता है। मरणांत वध के लिए होता है। आयुष्मन् श्रमण! वैसे ही कर्म पुद्गल कर्म रूप में परिणत होते हैं इसलिए कर्म अचैतन्य के द्वारा कृत नहीं हैं। गौतम! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है–जीवों के कर्म चैतन्य के द्वारा कृत हैं, अचैतन्य के द्वारा कृत नहीं हैं। इसी प्रकार नैरयिकों की वक्तव्यता। इसी प्रकार यावत् वैमानिकों की वक्तव्यता।

---

१. (क) शब्द कल्पद्रुम में निर्यूह शब्द के अर्थ इस प्रकार हैं–शेखर, आपीड़म्, द्वारम्, निर्यासः, क्वाथरसः नागदंतः।

(ख) आप्टे संस्कृत हिन्दी कोश में निर्यूह शब्द की व्युत्पत्ति 'उह' शब्द के आधार पर की गई है–निर्+उह+क (पृषोदरादित्वात् साधुः) कंगूरा, मीनार, बुर्ज या कलश, शिरोभूषण, चूड़ामणि, मुकुट, नागदंत, दीवार में लगी खूंटी, दरवाजा, सत्त्व, काढा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भाष्य

१. सूत्र ४१-४२

कर्म का कर्ता कौन? इस प्रश्न पर अनेक विचारकों ने चिन्तन किया है। सांख्य दर्शन के अनुसार कर्म का कर्ता प्रकृति है। वही बद्ध और मुक्त होती है। पुरुष बद्ध और मुक्त नहीं होता।[1]

प्रस्तुत सूत्र में सांख्य दर्शन के मत को अस्वीकार कर जैन दर्शन के अभिमत की स्थापना की है–कर्म चैतन्य कृत है।

प्रस्तुत प्रकरण में **चेय** का प्रयोग चैतन्य के अर्थ में हुआ है। समयसार में चेदा का प्रयोग मिलता है। इसका अर्थ आत्मा किया है–चेदा–आत्मा। अमृतचंद्र ने चेदा का अर्थ चेतयिता–आत्मा किया है। कर्तृत्व के प्रश्न पर आचार्य कुन्दकुन्द ने दोनों नयों–निश्चय नय और व्यवहार नय से समीक्षा की है। निश्चय नय के आधार पर उनकी वक्तव्यता यह है–आत्मा अपने भावों की कर्त्ता है, पुद्गल की कर्ता नहीं है। कर्म पौद्गलिक हैं इसलिए आत्मा कर्म की कर्त्ता नहीं है।[2]

व्यवहार नय के अनुसार आत्मा कर्म-पुद्गल की कर्त्ता है।[3]

प्रस्तुत प्रकरण में नय की विवक्षा किए बिना सामान्य सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है। कर्म चैतन्य द्वारा कृत है, इसके समर्थन में कुछ उदाहरण भी प्रस्तुत किए गए हैं–

१. जीवों के पुद्गल आहार रूप में, शरीर के रूप में, कलेवर (शरीर के अंगों) के रूप में उपचित होते हैं। जैसे–आहार, शरीर और कलेवर चैतन्य द्वारा कृत हैं, वैसे ही कर्म चैतन्य द्वारा कृत हैं। जैसे आहार शरीर के रूप में परिणत होता है वैसे ही कर्म प्रायोग्य पुद्गल कर्म के रूप में परिणत होते हैं। जैसे आहार चैतन्य कृत है, वैसे ही कर्म चैतन्य कृत हैं।

२. दूषित स्थान, शय्या और निषद्या में असातवेदनीय के कर्म पुद्गल अशुभ रूप में परिणत होते हैं। दुःख का संवेदन जीव को होता है। इससे सिद्ध होता है कि कर्म चैतन्य कृत हैं। यदि कर्म पुद्गल चैतन्य के द्वारा अकृत हों तो वे जीव को दुःखी नहीं बना सकते।

३. आतंक, संकल्प और मरणान्त कष्ट जीव के वध का हेतु बनता है। आतंक, संकल्प और मरणान्त कष्ट के जनक असातवेदनीय कर्म के पुद्गल उस रूप में परिणत होते हैं और जीव उनका संवेदन करता है। इससे भी कर्म का चैतन्य-कर्तृत्व सिद्ध होता है।[4]

वृत्तिकार ने चय की वैकल्पिक व्याख्या संचय के रूप में की है।

४३. सेवं भंते! सेवं भंते! त्ति जाव विहरइ॥

तदेवं भदन्त! तदेवं भदन्त! इति यावत् विहरति।

४३. भंते! वह ऐसा ही है। भंते! वह ऐसा ही है। ऐसा कह कर यावत् विहरण करने लगे।

---

१. समयसार गाथा ३३४-३३६।

२. समयसार गाथा ८६ :
णिच्छयणयस्स एवं आदा, अप्पाणमेव हि करेदि।
वेदयदि पुणो तं चेव, जाण अत्ता दु अत्ताणं॥

३. समयसार गाथा ९० :
ववहारस्स दु आदा पुद्गलकम्मं करेदि णेयविहं।
तं चेव य वेदयदे, पुग्गलकम्मं अणेयविहं॥

४. भ. वृ. १६/४१-४२।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तइओ उद्देसो : तीसरा उद्देशक

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
कम्म-पदं	कर्म-पदम्	कर्म पद
४४. रायगिहे जाव एवं वयासी–कति णं भंते! कम्मपगडीओ पण्णत्ताओ? गोयमा! अट्ठ कम्मपगडीओ पण्णत्ताओ, तं जहा–नाणावरणिज्जं जाव अंतराइयं। एवं जाव वेमाणियाणं॥	राजगृहं यावत् एवमवादीत्–कति भदन्त! कर्मप्रकृतयः प्रज्ञप्ताः। गौतम! अष्ट कर्मप्रकृतयः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–ज्ञानावरणीयं यावत् आन्तरायिकम्, एवं यावत् वैमानिकानाम्।	४४. राजगृह नगर यावत् गौतम ने इस प्रकार कहा–भंते! कर्म प्रकृतियां कितनी प्रज्ञप्त हैं? गौतम! कर्म प्रकृतियां आठ प्रज्ञप्त हैं जैसे–ज्ञानावरणीय यावत् आंतरायिक। इस प्रकार यावत् वैमानिक की वक्तव्यता।
४५. जीवे णं भंते! नाणावरणिज्जं कम्मं वेदेमाणे कति कम्मपगडीओ वेदेति?	जीवः भदन्त! ज्ञानावरणीयं कर्म वेदयन् कति कर्मप्रकृतीः वेदयति?	४५. भंते! जीव ज्ञानावरणीय कर्म का वेदन करता हुआ कितनी कर्म प्रकृतियों का वेदन करता है?
गोयमा! अट्ठ कम्मपगडीओ–एवं जहा पण्णवणाए वेदावेउद्देसओ सो चेव निरवसेसो भाणियव्वो। वेदाबंधो वि तहेव, बंधावेदो वि तहेव, बंधाबंधो वि तहेव भाणियव्वो जाव वेमाणियाणं ति॥	गौतम! अष्ट कर्मप्रकृतीः–एवं यथा प्रज्ञापनायां वेदावेदोद्देशकः सः चैव निरवशेषः भणितव्यः। वेदाबन्ध अपि तथैव, बन्धावेदः अपि तथैव, बन्धाबन्धः अपि तथैव भणितव्यः यावत् वैमानिकानाम् अपि।	गौतम! आठ कर्म प्रकृतियों का वेदन करता है–इस प्रकार जैसे प्रज्ञापना का वेदावेदक उद्देशक (पण्णवणा पद २७) निरवशेष वक्तव्य है। वेद-बंध पद (पण्णवणा २८) भी उसी प्रकार बंध-वेद पद (पण्णवणा २५) भी उसी प्रकार बंधा-बंध पद (पण्णवणा २४) भी उसी प्रकार वक्तव्य है, यावत् वैमानिकों की वक्तव्यता।
४६. सेवं भंते! सेवं भंते! त्ति जाव विहरइ॥	तदेवं भदन्त! तदेवं भदन्त! इति यावत् विहरति।	४६. भंते! वह ऐसा ही है, भंते वह ऐसा ही है, यह कहकर यावत् विहरण करने लगे।
४७. तए णं समणे भगवं महावीरे अण्णदा कदायि रायगिहाओ नगराओ गुणसिलाओ चेइयाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता बहिया जणवयविहारं विहरइ॥	ततः श्रमणः भगवान् महावीरः अन्यदा कदाचित् राजगृहात् नगरात् गुणशीलकात् चैत्यात् प्रतिनिष्क्रामति, प्रतिनिष्क्रम्य बहिः जनपदविहारं विहरति।	४७. श्रमण भगवान् महावीर ने किसी दिन राजगृह नगर के गुणशीलक चैत्य से प्रतिनिष्क्रमण किया। प्रतिनिष्क्रमण कर बाहर जनपद विहार करने लगे।
अंसिया-छेदणे वेज्जस्स किरिया-पदं	अर्शच्छेदने वैद्यस्य क्रिया-पदं	अर्श छेदन में वैद्य का क्रिया पद
४८. तेणं कालेणं तेणं समएणं उल्लुयतीरे नामं नगरे होत्था–वण्णओ। तस्स णं उल्लुयतीरस्स नगरस्स बहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसिभाए, एत्थ णं एगजंबुए नामं चेइए होत्था–वण्णओ। तए णं समणे भगवं महावीरे अण्णदा कदायि	तस्मिन् काले तस्मिन् समये उल्लुकातीरं नाम नगरम् आसीत्–वर्णकः। तस्य उल्लुकातीरस्य नगरस्य बहिः उत्तरपौरस्त्यः दिग्भागः, अत्र एक जम्बुकं नाम चैत्यम् आसीत्–वर्णकः। ततः श्रमणः भगवान् महावीरः अन्यदा कदाचित्	४८. उस काल उस समय उल्लूकातीर नामक नगर था–वर्णक। उस उल्लूकातीर नगर के बाहर उत्तर पूर्व दिशि भाग, वहां एकजम्बूक नाम का चैत्य था–वर्णक। श्रमण भगवान् महावीर किसी दिन क्रमानुसार विचरण, ग्रामानुग्राम परिव्रजन और सुखपूर्वक विहार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे गामाणुगामं दुइज्जमाणे सुहंसुहेणं विहरमाणे एगजंबुए समोसढे जाव परिसा पडिगया॥

पूर्वानुपूर्वीं चरन् ग्रामानुग्रामं द्रवन् सुखंसुखेन विहरन् एकजम्बुके समवसृतः यावत् परिषत् प्रतिगता।

करते हुए एकजंबूक चैत्य में समवसृत हुए यावत् परिषद् लौट गई।

४६. भंतेति! भगवं गोयमे समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी–अणगारस्स णं भंते! भावियप्पणो छट्ठंछट्ठेणं अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं उड्ढं बाहाओ पगिज्झिय-पगिज्झिय सूराभिमुहे आयावणभूमीए आयावेमाणस्स तस्स णं पुरत्थिमेणं अवड्ढं दिवसं नो कप्पति हत्थं वा पादं वा बाहं वा ऊरुं आउंटावेत्तए वा पसारेत्तए वा, पच्चत्थिमेणं से अवड्ढं दिवसं कप्पति हत्थं वा पादं वा बाहं वा ऊरुं वा आउंटावेत्तए वा पसारेत्तए वा। तस्स णं अंसियाओ लंबंति। तं च वेज्जे अदक्खु। ईसिं पाडेति, पाडेत्ता अंसियाओ छिंदेज्जा। से नूणं भंते! जे छिंदति तस्स किरिया कज्जति, जस्स छिज्जति नो तस्स किरिया कज्जति, णण्णत्थेगेणं धम्मंतराएणं?

हंता गोयमा! जे छिंदति तस्स किरिया कज्जति, जस्स छिज्जति नो तस्स किरिया कज्जति, णण्णत्थेगेणं धम्मंतराएणं॥

भदन्त इति! भगवान् गौतमः भगवन्तं महावीरं वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्यित्वा एवमवादीत्–अनगारस्य भदन्त! भावितात्मनः षष्ठषष्ठेन अनिक्षिप्तेन तपःकर्मणा उर्ध्वं बाहाः प्रगृह्य-प्रगृह्य सूराभिमुखे आतापन-भूम्याम् आतापयतः तस्य पौरस्त्येन अपार्धं दिवसं नो कल्पते हस्तं वा पादं वा बाहुं वा उरुं वा आकुञ्चयितुं वा प्रसारयितुं वा, पाश्चात्येन तस्य अपार्धं दिवसं कल्पते हस्तं वा पादं वा बाहुं वा उरुं वा आकुञ्चयितुं वा प्रसारयितुं वा। तस्य अर्शिकाः लम्बन्ते। तं वैद्यः अद्राक्षीत् ईषत् पातयति, पातयित्वा अर्शिकाः छिन्द्यात्। यः छिनत्ति तस्य क्रिया क्रियते, यस्य छिद्यते न तस्य क्रिया क्रियते, नान्यत्र एकेन धर्मान्तरायिकेन?

हन्त गौतम! यः छिनत्ति तस्य क्रिया क्रियते, यस्य छिद्यते नो तस्य क्रिया क्रियते, नान्यत्र एकेन धर्मान्तरायिकेन।

४६. अयि भंते! भगवान् गौतम ने श्रमण भगवान् महावीर को वंदन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार कर इस प्रकार कहा–भंते! निरंतर बेले बेले तपःकर्म के द्वारा आतापन भूमि में दोनों भुजाएं ऊपर उठाकर सूर्य के सामने आतापना लेते हुए भावितात्मा अनगार के लिए दिन के पूर्वार्द्ध में हाथ, पैर, भुजा और साथल का संकोचन अथवा फैलाव कल्प की सीमा में नहीं है–विहित नहीं है। दिन के उत्तरार्ध में हाथ, पैर, भुजा और साथल का संकुचन अथवा फैलाव विहित है। उस भावितात्मा अनगार के अर्श-मस्सा लटक रहा है। वैद्य ने उसे देखा, पैर सिकोड़ कर घुटनों को ऊंचा कर भूमि पर लिटाया, लिटा कर अर्श-मस्से का छेदन किया। भंते! जो छेदन करता है, उसके क्रिया होती है? जिसका छेदन करता है, उसके एक धर्मान्तराय के सिवाय अतिरिक्त क्रिया नहीं होती?

हां, गौतम! जो छेदन करता है, उसके क्रिया होती है। जिसका छेदन करता है, उसके एक धर्मान्तराय के सिवाय क्रिया नहीं होती।

५०. भंते! वह ऐसा ही है। भंते! वह ऐसा ही है।

भाष्य

१. सूत्र ४८-४६

प्रस्तुत आलापक का संबंध मुनि की शल्य क्रिया से है। शल्य क्रिया से पूर्व भावितात्मा मुनि की कायोत्सर्ग मुद्रा का वर्णन है। वह मुनि कायोत्सर्ग की मुद्रा में आतापन भूमि में खड़ा है। उसके मस्से लटक रहे हैं। किसी वैद्य ने देखा। उस मुनि को भूमि पर लिटाया और उसकी शल्य क्रिया कर डाली। इसमें मुनि और वैद्य दोनों का संबंध है।

इस विषय में सूत्र का वक्तव्य है–वैद्य क्रिया का भागी है, मुनि क्रिया का भागी नहीं है, क्रिया का अर्थ है प्रवृत्ति। सूत्र में क्रिया के शुभ और अशुभ होने का उल्लेख नहीं है।

वृत्तिकार ने वैद्य के द्वारा होने वाली क्रिया के दो रूप बतलाए हैं। यदि वैद्य धर्म बुद्धि से क्रिया करता है तो वह शुभ है। यदि वह लोभ आदि की वृत्ति से करता है तो वह अशुभ है।

मुनि के क्रिया नहीं होती। उसके केवल धर्मान्तराय होता है। वृत्तिकार ने धर्मान्तराय के दो अर्थ किए हैं–

१. शुभध्यान का विच्छेद।

२. अर्श-छेद की क्रिया का अनुमोदन।[1]

जयाचार्य का मत वृत्तिकार की व्याख्या से भिन्न है। उन्होंने छेद-सूत्रों के संदर्भ में इस सूत्र की समीक्षा की है। निशीथ का उल्लेख है–कोई मुनि के अर्श का छेदन करता है और मुनि उसका अनुमोदन करता है तो चातुर्मासिक प्रायश्चित्त का भागी होता है।[2]

१. भ. वृ. १६/४६–वैद्यस्य क्रिया व्यापाररूपा सा च शुभा धर्मबुद्ध्या छिन्दानस्य लोभादिना त्वशुभा। क्रियते–भवति 'जस्स छिज्जई'त्ति यस्य साधोरर्शांसि छिद्यन्ते नो तस्य क्रिया भवति निर्व्यापारत्वात्, किं सर्वथा क्रियाया अभावः? नैवमत आह–नन्नत्थेत्यादि, नेति योऽयं निषेधः, सोन्यत्रैकस्माद्धर्म्मान्तरायाद्, धर्म्मान्तरायलक्षणक्रिया तस्यापि भवतीति भावः। धर्मान्तरायश्च शुभध्यान-विच्छेदादर्शश्छेदनानुमोदनाद्वेति।'

२. (क) निशीथ ३/३४ जे भिक्खू अप्पणो कायं.....। अंसियंसि वा.....। अण्णयरेणं तिक्खेणं सत्थजाएणं.... अच्छिंदंतं वा विच्छिंदंतं वा सातिज्जति।

(ख) भ. जो. ढा. ३५१. गाथा ५७-५८

मुनिनी हाल छेदंत, लिहने अनुमोदै मुनि।
दंड चउमासी हुंत, नशीत उद्देशे तीसरे॥
अनुमोद्यां पाप, तो गृहि छेदा पुण्य किम?
जिन आज्ञा चित्त स्थाप, आज्ञा विण नहिं धर्म पुण्य॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जयाचार्य ने आचारचूला को उद्धृत कर बतलाया है–मुनि गृहस्थ द्वारा की जाने वाली शल्य-चिकित्सा की मन से भी वाञ्छा नहीं करता।[1]

आगम के उक्त पाठों के संदर्भ में वृत्तिकार द्वारा व्याख्यात शुभ क्रिया और मुनि द्वारा अनुमोदन–ये दोनों वाक्य विचारणीय हैं।

५०. सेवं भंते! सेवं भंते! त्ति॥　　तदेवं भदन्त! तदेवं भदन्त! इति।

१. (क) आ. चू. १३/१४/२६-२७

(ख) भ. जो. ढा. ३५१ गाथा १०८-१०९

मुनि तनु व्रणज थाय, गृहिछेदै शस्त्रै करी।
मुनि मन करि वांछै नांहि, न करावै वच काय करि॥
व्रण छटी न ताहि, राधि रुधिर काढ़ै गृही।
मुनि मन कर वांछै नांहि, न करावै वच काय करि॥

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

चउत्थो उद्देसो : चौथा उद्देशक

मूल

नेरइयाणं निज्जरा-पदं

५१. रायगिहे जाव एवं वयासी–जावतियं णं भंते! अन्नगिलायए समणे निग्गंथे कम्मं निज्जरेति एवतियं कम्मं नरएसु नेरइया वासेण वा वासेहिं वा वाससएण वा खवयंति?

नो इणट्ठे समट्ठे।

जावतियं णं भंते! चउत्थभत्तिए समणे निग्गंथे कम्मं निज्जरेति एवतियं कम्मं नरएसु नेरइया वाससएण वा वाससएहिं वा वाससहस्सेण वा खवयंति?

नो इणट्ठे समट्ठे।

जावतियं णं भंते! छट्ठभत्तिए समणे निग्गंथे कम्मं निज्जरेति एवतियं कम्मं नरएसु नेरइया वाससहस्सेण वा वाससहस्सेहिं वा वाससयसहस्सेण वा खवयंति?

नो इणट्ठे समट्ठे।

जावतियं णं भंते! अट्ठमभत्तिए समणे निग्गंथे कम्मं निज्जरेति एवतियं कम्मं नरएसु नेरइया वाससयसहस्सेण वा वाससयसहस्सेहिं वा वासकोडीए वा खवयंति?

नो इणट्ठे समट्ठे।

जावतियं णं भंते! दसमभत्तिए समणे निग्गंथे कम्मं निज्जरेति एवतियं कम्मं नरएसु नेरइया वासकोडीए वा वासकोडीहिं वा वासकोडाकोडीए वा खवयंति?

नो इणट्ठे समट्ठे॥

५२. से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ– जावतियं अन्नगिलायए समणे निग्गंथे कम्मं निज्जरेति एवतियं कम्मं नरएसु नेरइया

संस्कृत छाया

नैरयिकाणां निर्जरा-पदम्

राजगृहं यावत् एवमवादीत्–यावत्कं भदन्त! अन्नग्लायकः श्रमणः निर्ग्रन्थः कर्म निर्जीर्यति एतावत् कर्म नरकेषु नैरयिकाः वर्षेण वा वर्षैः वा वर्षशतेन वा क्षपयन्ति?

नो एषः अर्थः समर्थः।

यावत्कं भदन्त! चतुर्थभक्तिकः श्रमणः निर्ग्रन्थः कर्म निर्जीर्यति एतावत् कर्म नरकेषु नैरयिकाः वर्षशतेन वा वर्षशतैः वा वर्षसहस्रेण वा क्षपयन्ति?

नो एषः अर्थः समर्थः।

यावत्कं भदन्त! षष्ठभक्तिः श्रमणः निर्ग्रन्थः कर्म निर्जीर्यति एतावत् कर्म नरकेषु नैरयिकाः वर्षसहस्रेण वा वर्षसहस्रैः वा वर्षशतसहस्रेण वा क्षपयन्ति?

नो एषः अर्थः समर्थः।

यावत्कं भदन्त! अष्टमभक्तिकः श्रमणः निर्ग्रन्थः कर्म निर्जीर्यति एतावत् कर्म नरकेषु नैरयिकाः वर्षशतसहस्रेण वा वर्षशतसहस्रैः वा वर्षकोट्या वा क्षपयन्ति?

नो एषः अर्थः समर्थः।

यावत्कं भदन्त! दशमभक्तिकः श्रमणः निर्ग्रन्थः कर्म निर्जीर्यति एतावत् कर्म नरकेषु नैरयिकाः वर्षकोट्या वा वर्षकोटीभिः वा वर्षकोटाकोट्या वा क्षपयन्ति?

नो एषः अर्थः समर्थः।

तत् केनार्थेन भदन्त! एवमुच्यते–यावत्कं अन्नग्लायकः श्रमणः निर्ग्रन्थः कर्म निर्जीर्यति एतावत् कर्म नरकेषु

हिन्दी अनुवाद

नैरयिक का निर्जरा पद

५१. राजगृह नगर यावत् गौतम ने इस प्रकार कहा–भंते! रूक्षभोजी श्रमण-निर्ग्रंथ जितने कर्मों की निर्जरा करता है–क्या नरकों में नैरयिक एक वर्ष, अनेक वर्ष अथवा सौ वर्षों में इतने कर्मों का क्षय करते हैं?

यह अर्थ संगत नहीं है।

भंते! चतुर्थ भक्त (उपवास) करने वाला श्रमण-निर्ग्रन्थ जितने कर्मों की निर्जरा करता है–क्या नरक में नैरयिक इतने कर्मों का सौ वर्ष, सैकड़ों वर्ष अथवा हजार वर्ष में क्षय करते हैं?

यह अर्थ संगत नहीं है।

भंते! षष्ठ भक्त (दो दिन का उपवास) करने वाला श्रमण निर्ग्रन्थ जितने कर्मों की निर्जरा करता है–क्या नरक में नैरयिक इतने कर्मों का हजार वर्ष में, हजारों वर्ष में अथवा लाख वर्ष में क्षय करते हैं?

यह अर्थ संगत नहीं है।

भंते! अष्टम भक्त (तीन दिन का उपवास) करने वाला श्रमण-निर्ग्रन्थ जितने कर्मों की निर्जरा करता है–क्या नरक में नैरयिक इतने कर्मों का लाख वर्ष, लाखों वर्ष अथवा करोड़ वर्ष में क्षय करते हैं?

यह अर्थ संगत नहीं है।

भंते! दसम भक्त (चार दिन का उपवास) करने वाला श्रमण-निर्ग्रन्थ जितने कर्मों की निर्जरा करता है–क्या नरक में नैरयिक इतने कर्मों का करोड़ वर्ष, करोड़ों वर्ष अथवा कोटाकोटि वर्ष में क्षय करते हैं?

यह अर्थ संगत नहीं है।

५२. भंते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है–रूक्षभोजी श्रमण-निर्ग्रन्थ जितने कर्मों की निर्जरा करता है–नरक में नैरयिक इतने कर्मों

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वासेण वा वासेहिं वा वाससएण वा नो खवयंति, जावतियं चउत्थभत्तिए—एवं तं चेव पुव्वभणियं उच्चारेयव्वं जाव वासकोडाकोडीए वा नो खवयंति?

गोयमा! से जहानामए केइ पुरिसे जुण्णे जराजज्जरियदेहे सिढिलतयावलितरंग-संपिणद्धगत्ते पविरल-परिसडिय-दंतसेढी उण्हाभिहए तण्हाभिहए आउरे झुसिए पिवासिए दुब्बले किलंते एगं महं कोसंब-गंडियं सुक्कं जडिलं गंठिल्लं चिक्कणं वाइद्धं अपत्तियं मुंडेण परसुणा अक्कमेज्जा, तए णं से पुरिसे महंताइं-महंताइं सद्दाइं करेइ, नो महंताइं-महंताइं दलाइं अवद्दालेइ, एवामेव गोयमा! नेरइयाणं पावाइं कम्माइं गाढीकयाइं, चिक्कणीकयाइं, सिलिट्ठीकयाइं, खिलीभूताइं भवंति। संपगाढं पि य णं ते वेदणं वेदेमाणा नो महानिज्जरा नो महापज्जवसाणा भवंति।

नैरयिकाः वर्षेण वा वर्षैः वा वर्षशतेन वा नो क्षपयन्ति, यावत् चतुर्थभक्तिकः—एवं तत् चैव पूर्वभणितम् उच्चारयितव्यः यावत् वर्षकोटाकोट्या वा नो क्षपयन्ति?

गौतम! अथ यथानामकः कश्चित् जीर्णः जराजर्जरितदेहः शिथिलत्वचवलितरङ्ग-सम्पिनद्ध-गात्रः-प्रविरल-परिशटित-दन्तश्रेणिः उष्णाभिहतः तृष्णाभिहतः आतुरः 'झुसिए' पिपासितः दुर्बलः क्लान्तः एकां महतीं कोशाम्रकण्डिकां शुष्कां जटिलां ग्रन्थिमतीं 'चिक्कणं' व्याविद्धम् अपात्रिकाम् मुण्डेन परशुना अवक्राम्येत्, ततः सः पुरुषः महतः महतः शब्दान् करोति, नो महतः महतः दलान् अवदलयति, एवमेव गौतम! नैरयिकाणां पापानि कर्माणि गाढीकृतानि, 'चिक्कणी'कृतानि, श्लिष्टीकृतानि, खिलीभूतानि भवन्ति। सम्प्रगाढाम् अपि ते वेदनां वेदयन्तः नो महानिर्जराः नो महापर्यवसानाः भवन्ति।

गौतम! जैसे कोई पुरुष वृद्ध है, उसका शरीर जरा से जर्जरित है, त्वचा के शिथिल होने से चेहरे पर झुर्रियां पड़ गई हैं, दांतों की श्रेणी कहीं विरल हो गई है, कहीं दंत विहीन हो गई है। गर्मी से अभिहत, प्यास से अभिहत, आतुर, बुभुक्षित, पिपासित, दुर्बल और क्लांत है। वह पुरुष एक महान् कुसुंब वृक्ष की शुष्क, जटिल, गुंडीली, 'चिकनी', टेढ़ी, शाखा पर पत्ती-रहित कुंद फरसे से प्रहार करता है, तब वह पुरुष जोर जोर से शब्द करता है। किन्तु वह उस विशाल वृक्ष की शाखा के बड़े बड़े टुकड़े नहीं कर सकता। गौतम! इसी प्रकार नैरयिकों के कर्म गाढ़ किए हुए होते हैं, चिकने किए हुए होते हैं, संसृष्ट किए हुए होते हैं, और अलंघ्य होते हैं। वे प्रगाढ वेदना का वेदन करते हुए भी महानिर्जरा वाले नहीं होते, महापर्यवसान वाले नहीं होते।

से जहानामए केइ पुरिसे अहिकरणिं आउडेमाणे महया-महया सद्देणं, महया-महया घोसेणं, महया-महया परंपरा-घाएणं नो संचाएइ, तीसे अहिगरणीए केइ अहाबायरे पोग्गले परिसाडित्तए, एवामेव गोयमा! नेरइयाणं पावाइं कम्माइं गाढीकयाइं, चिक्कणीकयाइं, सिलिट्ठीकयाइं खिलीभूताइं भवंति। संपगाढं पि य णं ते वेदणं वेदेमाणा नो महानिज्जरा नो महापज्जवसाणा भवंति।

अथ यथानामकः कश्चित् अधिकरणीम् आकुटन् महता महता शब्देन, महता महता घोषेण, महता महता परम्पराघातेन नो शक्नोति, तस्याः अधिकरण्याः काञ्चित् यथा बादरान् पुद्गलान् परिशाटयितुम्, एवमेव गौतम! नैरयिकाणां पापानि कर्माणि गाढीकृतानि, 'चिक्कणी' कृतानि, श्लिष्टीकृतानि, खिलीभूतानि भवन्ति। सम्प्रगाढाम् अपि च ते वेदनां वेदयन्तः नो महानिर्जराः नो महापर्यवसानाः भवन्ति।

जैसे कोई पुरुष अहरन को तेज शब्द, तेज घोष और निरन्तर तेज आघात के साथ हथौड़े से पीटता हुआ उस अहरन के स्थूल पुद्गलों का परिशाटन करने में समर्थ नहीं होता। गौतम! इसी प्रकार नैरयिकों के पाप कर्म गाढ़ रूप में किए हुए होते हैं, चिकने किए हुए होते हैं, संसृष्ट किए हुए होते हैं और अलंघ्य होते हैं। वे प्रगाढ़ वेदना का वेदन करते हुए भी महानिर्जरा वाले नहीं होते, महापर्यवसान वाले नहीं होते।

से जहानामए केइ पुरिसे तरुणे बलवं जाव मेहावी निउणसिप्पोवगए एगं महं सामलि-गंडियं उल्लं अजडिलं अगंठिल्लं अचिक्कणं अवाइद्धं सपत्तियं तिक्खेण परसुणा अक्कमेज्जा, तए णं से पुरिसे नो महंताइं-महंताइं सद्दाइं करेति, महंताइं-महंताइं दलाइं अवद्दालेति, एवामेव गोयमा! समणाणं निग्गंथाणं अहावादराइं कम्माइं

अथ यथानामकः कश्चित् पुरुषः तरुणः बलवान् यावत् मेधावी निपुणशिल्पोपगतः एकां महतीं शाल्मलि-कण्डिकाम् आर्द्राम् अजटिलाम् अग्रन्थिमतीम् 'अचिक्कणं' अव्याविद्धाम् सपात्रिकाम् तीक्ष्णेण परशुना अवक्राम्येत्, ततः सः पुरुषः नो महतः महतः शब्दान् करोति, महतः महतः दलान् अवदलयति, एवमेव गौतम! श्रमणानां निर्ग्रन्थानाम्

जैसे कोई पुरुष तरुण, बलवान् यावत् निपुण और सूक्ष्म शिल्प से समन्वित है। वह पुरुष एक महान् शाल्मली की गंडिका आर्द्र, सरल, गांठ रहित, चिकनाई रहित, सीधी शाखा पर पत्ती सहित तीक्ष्ण हथौड़े से आक्रमण करता है, वह पुरुष बहुत जोर-जोर से शब्द नहीं करता किन्तु शाखा के बड़े-बड़े टुकड़े कर देता है। गौतम! इसी प्रकार श्रमण निर्ग्रंथों के शिथिल रूप में किए हुए, निःसत्त्व किए हुए

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सिढिलीकयाइं, निट्ठियाइं कयाइं, विप्परिणामियाइं खिप्पामेव परिविद्धत्थाइं भवंति। जावतियं तावतियं पि णं ते वेदणं वेदेमाणा महानिज्जरा महापज्जवसाणा भवंति।

से जहा वा केइ पुरिसे सुक्कतणहत्थगं जायतेयंसि पक्खिवेज्जा–से नूणं गोयमा! से सुक्के तणहत्थए जायतेयंसि पक्खित्ते समाणे खिप्पामेव मसमसाविज्जति?

हंता मसमसाविज्जति।

एवामेव गोयमा! समणाणं निग्गंथाणं अहाबायराइं कम्माइं, सिढिलीकयाइं, निट्ठियाइं कयाइं, विप्परिणामियाइं खिप्पामेव विद्धत्थाइं भवंति। जावतियं तावतियं पि णं ते वेदणं वेदेमाणा महानिज्जरा महापज्जवसाणा भवंति।

से जहानामए केइ पुरिसे तत्तंसि अयकवल्लंसि उदगबिंदुं पक्खिवेज्जा, से नूणं गोयमा! से उदगबिंदू तत्तंसि अयकवल्लंसि पक्खित्ते समाणे खिप्पामेव विद्धंसमागच्छइ?

हंता विद्धंसमागच्छइ।

एवामेव गोयमा! समणाणं निग्गंथाणं अहाबायराइं कम्माइं सिढिलीकयाइं, निट्ठियाइं कयाइं, विप्परिणामियाइं खिप्पामेव विद्धत्थाइं भवंति। जावतियं तावतियं पि णं वेदणं वेदेमाणा महानिज्जरा महापज्जवसाणा भवंति।

से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ–जावतियं अन्नगिलायए समणे निग्गंथे कम्मं निज्जरेति तं चेव जाव वासकोडाकोडीए वा नो खवयंति॥

यथा बादराणि कर्माणि शिथिलीकृतानि, निष्ठितानि कृतानि, विपरिणामितानि क्षिप्रमेव परिविध्वस्तानि भवन्ति यावत्कं तावत्कं अपि ते वेदनां वेदयन्तः महानिर्जराः महापर्यवसानाः भवन्ति।

अथ यथा वा कश्चित् पुरुषः शुष्कतृणहस्तकं जाततेजसि प्रक्षिपेत्–सः अथ नूनं गौतम! सः शुष्कः तृणहस्तगतः जाततेजसि प्रक्षिप्तः सन् क्षिप्रमेव 'मसमसाविज्जति'?

हन्त मसमसाविज्जति। एवमेव गौतम! श्रमणानां निर्ग्रन्थानाम् यथा बादराणि कर्माणि शिथिलीकृतानि, निष्ठितानि कृतानि, विपरिणामितानि क्षिप्रमेव विध्वस्तानि भवन्ति। यावत्कं तावत्कं अपि ते वेदनां वेदयन्तः महानिर्जराः महापर्यवसानाः भवन्ति।

अथ यथानामकः कश्चित् पुरुषः तप्ते 'अयकवल्लंसि' उदकबिन्दुं प्रक्षिपेत् सः (अथ) नूनं गौतम! सः उदकबिन्दुः तप्ते 'अयकवल्लंसि' प्रक्षिप्तः सन् क्षिप्रमेव विध्वंसमागच्छति?

हन्त! विध्वंसमागच्छति।

एवमेव गौतम! श्रमणानां निर्ग्रन्थानां यथा बादराणि कर्माणि शिथिलीकृतानि, निष्ठितानि कृतानि, विपरिणामितानि क्षिप्रमेव विध्वस्तानि भवन्ति। यावत्कं तावत्कं अपि ते वेदनां वेदयन्तः महानिर्जराः महापर्यवसानाः भवन्ति।

तत्तेनार्थेन गौतम! एवमुच्यते–यावत्कं अन्नग्लायकः श्रमणः निर्ग्रंथ, कर्म निर्जीर्यति तद्यैव यावत् वर्षकोटाकोट्या वा नो क्षपयन्ति॥

और विपरिणमन को प्राप्त किए हुए सूक्ष्म कर्म-पुद्गल शीघ्र विध्वस्त हो जाते हैं। वे जिस-तिस मात्रा में भी वेदना का वेदन करते हुए महानिर्जरा और महा-पर्यवसान वाले होते हैं।

गौतम! जैसे कोई पुरुष सूखे घास के पूलों को अग्नि में डालता है, वह अग्नि में डाला हुआ सूखा घास का पूला शीघ्र ही भस्म हो जाता है?

हां, भस्म हो जाता है।

गौतम! इसी प्रकार श्रमण-निर्ग्रंथों के शिथिल रूप में किए हुए, निःसत्त्व किए हुए और विपरिणमन को प्राप्त किए हुए स्थूल कर्म-पुद्गल शीघ्र ही विध्वस्त हो जाते हैं। वे जिस-तिस मात्रा में भी वेदना का वेदन करते हुए महानिर्जरा और महापर्यवसान वाले होते हैं।

गौतम! जैसे कोई पुरुष तपे हुए लोहे के तवे पर पानी की बूंद गिराता है। तपे हुए लोहे के तवे पर गिराई हुई पानी की बूंद शीघ्र ही विध्वस्त हो जाती है?

हां, विध्वस्त हो जाती है।

गौतम! उसी प्रकार श्रमण-निर्ग्रंथों के शिथिल रूप में किए हुए, निःसत्त्व किए हुए और विपरिणमन को प्राप्त किए हुए स्थूल कर्म-पुद्गल शीघ्र ही विध्वस्त हो जाते हैं। वे जिस-तिस मात्रा में वेदना का वेदन करते हुए महानिर्जरा और महापर्यवसान वाले होते हैं।

गौतम! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है–अन्नग्लायक श्रमण-निर्ग्रंथ जितने कर्मों की निर्जरा करता है, पूर्ववत् यावत् नरक में नैरयिक इतने कर्मों का करोड़ वर्ष, करोड़ों वर्ष अथवा कोटाकोटि वर्ष में क्षय नहीं करता।

भाष्य

१. सूत्र ५१-५२

प्रस्तुत आलापक में निर्जरा का तारतम्य बतलाया गया है। विशेष विवरण के लिए द्रष्टव्य भगवई ६/१-४ का भाष्य।

निर्जरा के तारतम्य का हेतु है अध्यवसाय की विशुद्धि का अपकर्ष और प्रकर्ष।[1] छठे शतक में अपकर्ष और प्रकर्ष की व्याख्या के लिए तीन दृष्टान्त बतलाए गए हैं। प्रस्तुत आलापक में 'शाल्मली की गण्डिका' का दृष्टान्त है और कर्दम राग का दृष्टान्त नहीं है। जयाचार्य

१. उत्तर. ३०/१-४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ने शुष्क तृण और तप्त तवे के दृष्टान्त का आराधना में सुन्दर चित्रण किया है।[1]

शब्द-विमर्श

अन्नग्लायक–चूर्णिकार ने इसका अर्थ निस्पृहभाव से बासी भोजन करने वाला रूखा-सूखा भोजन करने वाला किया है। वृत्तिकार ने इसका अर्थ अन्न के बिना ग्लान होने वाला, भूख को सहन न कर सकने वाला किया है।[2] निर्जरा के प्रकरण में चूर्णिकार का मत अधिक संगत है।

कौसंब–कुसुंब वृक्ष।

गंडिया–गंडिका, कंडिका, शाखा।

जडिल–जटिल, जटावाला।

वृत्तिकार के अनुसार वृद्ध व्याख्या में इसका अर्थ वलितोद्वलित–घुमावदार, टेढी-मेढी किया गया है।

वाइद्धं–विशिष्ट द्रव्यों से उपलिप्त, वृद्ध व्याख्या में इसका अर्थ वक्र किया गया है।

अपत्तियं–अपात्रिका, धार रहित।[2]

मुंड–भोथरा

५३. सेवं भंते! सेवं भंते! त्ति जाव विहरइ॥

तदेवं भदन्त! तदेवं भदन्त! इति यावत् विहरति।

५३. भंते! वह ऐसा ही है। भंते! वह ऐसा ही है। ऐसा कहकर यावत् विहरण करने लगे।

---

२. आराधना ८/७-८

सूको तृण पूलो जिम अग्नि विसेहो रे।
शीघ्र भसम हुवै निज कर्म दहेहो रे॥
जिम तप्त तवे जल बिंदु बिललावै रे।
तिम दुःख समचिते, सह्यां अघ क्षय थावै रे॥

१. ३. भ. वृ. १६/५२।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पंचमो उद्देसो : पांचवां उद्देशक

मूल

सक्कस्स उक्खित्तपसिणवागरण-पदं

५४. तेणं कालेणं तेणं समएणं उल्लुयतीरे नामं नगरे होत्था–वण्णओ। एगजंबुए चेइए–वण्णओ। तेणं कालेणं तेणं समएणं सामी समोसढे जाव परिसा पज्जुवासति। तेणं कालेणं तेणं समएणं सक्के देविंदे देवराया वज्जपाणी–एवं जहेव बितियउद्देसए तहेव दिव्वेणं जाणविमाणेणं आगओ जाव जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी–देवे णं भंते! महिड्ढिए जाव महेसक्खे बाहिरए पोग्गले अपरियाइत्ता पभू आगमित्तए?

नो इणट्ठे समट्ठे।

देवे णं भंते! महिड्ढिए जाव महेसक्खे बाहिरए पोग्गले परियाइत्ता पभू आगमित्तए?

हंता पभू।

देवे णं भंते! महिड्ढिए जाव महेसक्खे एवं एएणं अभिलावेणं गमित्तए वा, भासित्तए वा, विआगरित्तए वा, उम्मिसावेत्तए वा, निमिसावेत्तए वा, आउंटावेत्तए वा, ठाणं वा सेज्जं वा निसीहियं वा चेइत्तए वा, विउव्वित्तए वा, परियारेत्तए वा जाव हंता पभू– इमाइं अट्ठ उक्खित्तपसिणवागरणाइं पुच्छइ, पुच्छित्ता संभंतियवंदणएणं वंदति, वंदित्ता तमेव दिव्वं जाणविमाणं दुरुहति, दुरुहित्ता जामेव दिसं पाउब्भूए तामेव दिसं पडिगए॥

गंगदत्तदेवस्स संदब्भे परिणममाण-परिणय-पदं

५५. भंतेति! भगवं गोयमे समणं भगवं

संस्कृत छाया

शक्रस्य उत्क्षिप्त-प्रश्न-व्याकरण-पदम्

तस्मिन् काले तस्मिन् समये उल्लूकातीरं नाम नगरम्–आसीत्। एकजम्बुकं चैत्यम्–वर्णकः। तस्मिन् काले तस्मिन् समये स्वामी समवसृतः यावत् परिषद् पर्युपास्ते। तस्मिन् काले तस्मिन् समये शक्रः देवेन्द्रः देवराजः वज्रपाणिः–एवं यथैव द्वितीयोद्देशके तथैव दिव्येन यानविमानेन आगतः यावत् यत्रैव श्रमणः भगवान् महावीरः तत्रैव उपागच्छति, उपागम्य श्रमणं भगवन्तं महावीरं वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्यित्वा एवमवादीत्–देवः भदन्त! महर्द्धिकः यावत् महेशाख्यः बाह्यकान् पुद्गलान् अपर्यादाय प्रभुः आगन्तुम्?

नो एषः अर्थः समर्थः।

देवः भदन्त! महर्द्धिकः यावत् महेशाख्यः बाह्यकान् पुद्गलान् पर्यादाय प्रभुः आगन्तुम्?

हन्त प्रभुः।

देवः भदन्त! महर्द्धिकः यावत् महेशाख्यः एवम् एतेन अभिलापेन गन्तुं वा, भाषितुं वा, व्याकर्तुं वा, उन्मेषयितुं वा निमेषयितुं वा, आकुञ्चयितुं वा, स्थानं वा शय्यां वा निषीधिकां वा, चेतयितुं वा, विकर्तुम् वा, परिचारयितुं वा यावत् हन्त प्रभुः–इमानि अष्ट उत्क्षिप्तप्रश्न-व्याकरणानि पृच्छति, पृष्ट्वा सांभ्रान्तिकवन्दनकेन वन्दते वन्दित्वा तमेव दिव्यं यानविमानम् आरोहति, आरुह्य यस्याः दिशः प्रादुर्भूतः तस्यामेव दिशि प्रतिगतः।

गंगदत्तदेवस्य संदर्भे परिणमत्-परिणत-पदम्

भदन्त इति! भगवान् गौतमः श्रमणं

हिन्दी अनुवाद

शक्र का उत्क्षिप्त प्रश्न व्याकरण पद

५४. उस काल उस समय उल्लूकातीर नाम का नगर था–वर्णक। एकजंबूक चैत्य–वर्णक। उस काल उस समय स्वामी समवसृत हुए यावत् परिषद् पर्युपासना करने लगी। उस काल उस समय वज्रपाणि देवराज देवेन्द्र शक्र–इस प्रकार जैसे द्वितीय उद्देशक की वक्तव्यता वैसे ही दिव्य यान-विमान से आया यावत् जहां श्रमण भगवान् महावीर हैं, वहां आया, आकर श्रमण भगवान् महावीर को वंदन-नमस्कार किया, वन्दन नमस्कार कर इस प्रकार बोला–भंते! महान् ऋद्धि यावत् महान् ऐश्वर्य वाला देव बाहरी पुद्गलों का ग्रहण किए बिना आने में समर्थ है?

यह अर्थ संगत नहीं है।

भंते! महान् ऋद्धि यावत् महान् ऐश्वर्य वाला देव बाह्य पुद्गलों का ग्रहण कर आने में समर्थ है?

हां, समर्थ है।

भंते! महान् ऋद्धि यावत् महान् ऐश्वर्य वाला देव इस अभिलाप के अनुसार बाह्य पुद्गलों को ग्रहण किए बिना गमन करने, बोलने, व्याकरण करने, चक्षु का उन्मेष और निमेष करने, शरीर के संकोचन, आसन, शय्या, निषद्या करने, विक्रिया करने, परिचारणा करने में समर्थ है।

इन आठ प्रश्न व्याकरणों को खड़े-खड़े पूछा, पूछकर संभ्रम पूर्वक वंदना की, वंदना कर उसी दिव्य यान-विमान पर चढ़ा, चढ़कर जिस दिशा से आया, उसी दिशा में लौट गया।

गंगदत्त देव के संदर्भ में परिणममाण-परिणत पद

५५. अयि भंते! भगवान् गौतम ने श्रमण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी–अण्णदा णं भंते! सक्के देविंदे देवराया देवाणुप्पियं वंदति नमंसति सक्कारेति जाव पज्जुवासति, किण्णं भंते! अज्ज सक्के देविंदे देवराया देवाणुप्पियं अट्ठ उक्खित्त-पसिणवागरणाइं पुच्छइ, पुच्छित्ता संभंतियवंदणएणं वंदइ नमंसइ जाव पडिगए?

गोयमादि! समणे भगवं महावीरे भगवं गोयमं एवं वयासी–एवं खलु गोयमा! तेणं कालेणं तेणं समएणं महासुक्के कप्पे महासामाणे विमाणे दो देवा महिड्ढिया जाव महेसक्खा एगविमाणंसि देवत्ताए उववन्ना, तं जहा–मायिमिच्छ-दिट्ठिउववन्नए य, अमायिसम्मदिट्ठि-उववन्नए य।

तए णं से मायिमिच्छदिट्ठिउववन्नए देवे तं अमायिसम्मदिट्ठिउववन्नगं देवं एवं वयासी–परिणममाणा पोग्गला नो परिणया, अपरिणया; परिणमंतीति पोग्गला नो परिणया, अपरिणया।

तए णं से अमायिसम्मदिट्ठिउववन्नए देवे तं मायिमिच्छदिट्ठिउववन्नगं देवं एवं वयासी–परिणममाणा पोग्गला परिणया, नो अपरिणया; परिणमंतीति पोग्गला परिणया, नो अपरिणया। तं मायिमिच्छदिट्ठिउववन्नगं एवं पडिहणइ, पडिहणित्ता ओहिं पउंजइ, पउंजित्ता ममं ओहिणा आभोएइ, आभोएत्ता अयमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था–एवं खलु समणे भगवं महावीरे जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे उल्लुयतीरस्स नगरस्स बहिया एगजंबुए चेइए अहापडिरूवं ओग्गहं ओगिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ, तं सेयं खलु मे समणं भगवं महावीरं वंदित्ता जाव पज्जुवासित्ता इमं एयारूवं वागरणं पुच्छित्तए त्ति कट्टु एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता चउहिं सामाणियसाहस्सीहिं, तिहिं परिसाहिं, सत्तहिं अणिएहिं, सत्तहिं अणियाहिवईहिं, सोलसहिं आयरक्ख-देवसाहस्सीहिं अण्णेहिं बहूहिं

भगवन्तं महावीरं वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्थित्वा एवमवादीत्–अन्यदा भदन्त! शक्रः देवेन्द्रः देवराजः देवानुप्रियं वन्दते नमस्यति सत्करोति यावत् पर्युपास्ते, किं (किण्णं) भदन्त! अद्य शक्रः देवेन्द्रः देवराजः देवानुप्रियम् अष्ट उत्क्षिप्तप्रश्नव्याकरणानि पृच्छति, पृष्ट्वा सांभ्रान्तिकवंदनकेन वन्दते नमस्यति यावत् प्रतिगतः?

गौतम अयि! श्रमणः भगवान् महावीरः भगवन्तं गौतमम् एवमवादीत्–एवं खलु गौतम! तस्मिन् काले तस्मिन् समये महाशुक्रे कल्पे महासामाये विमाने द्वौ देवौ महर्द्धिकौ यावत् महेशाख्यौ एकविमाने देवत्वेन उपपन्नौ, तद्यथा–मायिमिथ्यादृष्ट्युपपन्नकः च अमायि-सम्यग्दृष्ट्युपपन्नकः च। ततः सः मायिमिथ्यादृष्ट्युपपन्नकः देवः तम् अमायिसम्यग्दृष्ट्युपपन्नकं देवम् एवमवादीत्–परिणमन्तः पुद्गलाः नो परिणताः, अपरिणताः, परिणमन्ति इति पुद्गलाः नो परिणताः, अपरिणताः।

ततः सः अमायिसम्यग्दृष्ट्युपपन्नकः देवः तं मायिमिथ्यादृष्ट्युपपन्नकं देवम् एवमवादीत्–परिणमन्तः पुद्गलाः परिणताः, नो अपरिणताः, परिणमन्ति इति पुद्गलाः परिणताः, नो अपरिणताः। तं मायिमिथ्यादृष्ट्युपपन्नकम् एवं प्रतिहन्ति, प्रतिहन्य अवधिं प्रयुङ्क्ते, प्रयुज्य माम् अवधिना आभोगयति (आभोएइ), आभोग्य (आभोएत्ता) अयमेतद्रूपः आध्यात्मिकः चिन्तितः प्रार्थितः मनोगतः संकल्पः समुदपादि–एवं खलु श्रमणः भगवान् महावीरः जम्बूद्वीपे द्वीपे भारते वर्षे उल्लुकातीरस्य नगरस्य बहिः एकजम्बुके चैत्ये यथा प्रतिरूपम् अवग्रहम् अवगृह्य संयमेन तपसा आत्मानं भावयन् विहरति, तत् श्रेयः खलु मम श्रमणं भगवन्तं महावीरं वन्दित्वा यावत् पर्युपास्य इमम् एतद्रूपं व्याकरणं प्रष्टुम् इति कृत्वा एवं सम्प्रेक्षते, सम्प्रेक्ष्य चतसृभिः सामानिक-साहस्रीभिः, तिसृभिः परिषद्भिः, सप्तभिः अनीकैः, सप्तभिः अनीकाधिपतिभिः,

भगवान् महावीर को वंदन-नमस्कार किया। वंदन-नमस्कार कर इस प्रकार बोले–भंते! देवराज देवेन्द्र शक्र जब कभी देवानुप्रिय को वंदन-नमस्कार करता है, सत्कार करता है यावत् पर्युपासना करता है! भंते! क्या कारण है–आज देवराज देवेन्द्र शक्र ने देवानुप्रिय से खड़े खड़े आठ प्रश्न-व्याकरण पूछे, पूछकर संभ्रम पूर्वक वंदन-नमस्कार किया, यावत् उसी दिशा में लौट गया?

अयि गौतम! श्रमण भगवान् महावीर ने भगवान् गौतम से इस प्रकार कहा–गौतम! उस काल उस समय महाशुक्र कल्प में महासामान्य विमान में दो देव महान् ऋद्धि यावत् महान् ऐश्वर्य वाले एक विमान में देवरूप में उपपन्न हुए जैसे–मायी मिथ्यादृष्टि उपपन्नक, अमायी सम्यग्दृष्टि उपपन्नक।

मायी मिथ्यादृष्टि उपपन्नक देव ने अमायी सम्यग्दृष्टि उपपन्नक देव से इस प्रकार कहा–परिणममाण पुद्गल परिणत नहीं हैं, अपरिणत हैं। परिणमन कर रहे हैं इसलिए पुद्गल परिणत नहीं हैं, अपरिणत हैं।

अमायी सम्यग्दृष्टि उपपन्नक देव ने उस मायी मिथ्यादृष्टि उपपन्नक देव से इस प्रकार कहा–परिणममान पुद्गल परिणत हैं, अपरिणत नहीं हैं। परिणमन कर रहे हैं इसलिए पुद्गल परिणत हैं, अपरिणत नहीं हैं।

मायी मिथ्यादृष्टि उपपन्नक देव को इस प्रकार प्रतिहत किया। प्रतिहत कर अवधि का प्रयोग किया, प्रयोग कर मुझे अवधिज्ञान से देखा, देखकर इस प्रकार का आध्यात्मिक स्मृत्यात्मक, अभिलाषात्मक एवं मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ–श्रमण भगवान् महावीर जंबूद्वीप द्वीप में भारत वर्ष में उल्लूकातीर नगर के बाहर एकजम्बुक चैत्य में योग्य स्थान की अनुमति लेकर संयम और तप से अपने आपको भावित करते हुए विहार कर रहे हैं। इसलिए मेरे लिए श्रेय है कि मैं श्रमण भगवान् महावीर की वंदना यावत् पर्युपासना कर यह इस प्रकार का व्याकरण पूछूं। इस प्रकार संप्रेक्षा की, संप्रेक्षा कर चार हजार सामानिक, तीन प्रकार की परिषद्, सात प्रकार की सेना, सात सेनाधिपति, सोलह हजार आत्मरक्षक देव, अन्य बहु महासामान्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महासामाणविमाणवासीहिं वेमाणिएहिं देवेहिं देवीहि य सद्धिं संपरिवुडे जाव दुंदुहि-निग्घोस-नाइयरवेणं जेणेव जंबुद्दीवे दीवे, जेणेव भारहे वासे, जेणेव उल्लुयतीरे नगरे, जेणेव एगजंबुए चेइए, जेणेव ममं अंतियं तेणेव पहारेत्थ गमणाए। तए णं से सक्के देविंदे देवराया तस्स देवस्स तं दिव्वं देविड्ढिं दिव्वं देवजुतिं दिव्वं देवाणुभागं दिव्वं तेयलेस्सं असहमाणे ममं अट्ठ उक्खित्तपसिणवागरणाइं पुच्छित्ता संभंतियवंदणएणं वंदित्ता जाव पडिगए॥

षोडशैः आत्मरक्षदेवसाहस्रीभिः, अन्यैः बहुभिः महासामान्यविमानवासिभिः वैमानिकैः देवैः, देवीभिः च सार्धं सम्परिवृतः यावत् दुन्दुभि-निर्घोष-नादितरवेण यत्रैव जम्बूद्वीपः द्वीपः, यत्रैव भारतः वर्षः, यत्रैव उल्लुकातीरम् नगरम्, यत्रैव एकजम्बुकम् चैत्यम्, यत्रैव ममान्तिकं तत्रैव प्रधारयेत् गमनाय। ततः स शक्रः देवेन्द्रः देवराजः तस्य देवस्य तां दिव्यां देवर्द्धिं दिव्यां देवद्युतिं दिव्यं देवानुभागं दिव्यां तेजोलेश्याम् असहमानः माम् अष्ट उत्क्षिप्तप्रश्न-व्याकरणानि पृष्ट्वा सांभ्रान्तिकवन्दनकेन वन्दित्वा यावत् प्रतिगतः।

विमानवासी वैमानिक देवों से संपरिवृत होकर यावत् दुंदुभि-निर्घोष से नादित रव के साथ जहां जंबूद्वीप द्वीप है, जहां भारत वर्ष है, जहां उल्लूकातीर नगर है, जहां एकजंबुक चैत्य है, जहां मैं हूं, वहां आने के लिए प्रस्थान किया। देवराज देवेन्द्र शक्र उस देव की दिव्य देव-ऋद्धि, दिव्य देव-द्युति, दिव्य देव-अनुभाग, दिव्य तेजोलेश्या को सहन न करता हुआ मेरे पास खड़े-खड़े आठ प्रश्न व्याकरण पूछकर, संभ्रमपूर्वक वंदना कर यावत् लौट गया।

भाष्य

१. सूत्र ५४-५५

सौधर्मेन्द्र शक्र द्वारा प्रश्न पूछने का पहला प्रसंग १६/३३ में है। प्रस्तुत आलापक में दूसरा प्रसंग है।

बाह्य पुद्गलों को ग्रहण किए बिना कोई भी क्रिया नहीं हो सकती–यह क्रिया का सर्व साधारण नियम है। यह वृत्तिकार का मत है[1] किन्तु स्थानांग में तीन प्रकार की क्रियाएं बतलाई गई हैं–

१. पर्यादाय–बाहरी पुद्गलों को लेकर।

२. अपर्यादाय–बाहरी पुद्गलों को लिए बिना।

३. पर्यादाय-अपर्यादाय–बाहरी पुद्गलों को लेकर भी और न लेकर भी।

सौधर्मेन्द्र के प्रश्न का संबंध उत्तर विक्रिया से है इसलिए भगवान् ने उत्तर दिया–महर्द्धिक देव बाहरी पुद्गलों का ग्रहण किए बिना आगमन, गमन आदि क्रियाएं नहीं कर सकते। इस विषय में भगवई ६/१६३-१६७ तक का पाठ और भाष्य द्रष्टव्य है।

सौधर्मेन्द्र का शीघ्रता में आना, खड़े-खड़े प्रश्न पूछना और शीघ्र चले जाना–आश्चर्य का विषय बन गया। गौतम स्वामी ने इस विषय में जिज्ञासा की तब उत्तर में भगवान् महावीर ने शीघ्रता का हेतु बतलाया। वह सूत्र में स्पष्ट है। इस प्रसंग में 'परिणममान-परिणत' इस सिद्धांत का भगवान् ने समर्थन किया।

द्रष्टव्य भगवई १/३६४-३७२ का भाष्य। मायी मिथ्यादृष्टि एवं अमायी सम्यग्दृष्टि के लिए द्रष्टव्य भगवई १/१०१ का भाष्य।

५६. जावं च णं समणे भगवं महावीरे भगवओ गोयमस्स एयमट्ठं परिकहेति तावं च णं से देवे तं देसं हव्वमागए। तए णं से देवे समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी–एवं खलु भंते! महासुक्के कप्पे महासामाणे विमाणे एगे मायिमिच्छदिट्ठिउववन्नए देवे ममं एवं वयासी–परिणममाणा पोग्गला नो परिणया, अपरिणया; परिणमंतीति पोग्गला नो परिणया, अपरिणया। तए णं अहं तं मायिमिच्छदिट्ठिउववन्नगं देवं एवं वयासी–परिणममाणा पोग्गला परिणया, नो अपरिणया; परिणमंतीति

यावत् च श्रमणः भगवान् महावीरः भगवतः गौतमस्य एतमर्थं परिकथयति तावत् च सः देवः तं देशं 'हव्व' मागतः। ततः सः देवः श्रमणं भगवन्तं महावीरं त्रिः आदक्षिण-प्रदक्षिणां करोति, कृत्वा वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्यित्वा एवमवादीत्–एवं खलु भदन्त! महाशुक्रे कल्पे महासामान्ये विमाने एकः मायिमिथ्यादृष्ट्युपपन्नकः देवः माम् एवमवादीत्–परिणमन्तः पुद्गलाः नो परिणताः, अपरिणताः, परिणमन्ति इति पुद्गलाः नो परिणताः, अपरिणताः। ततः अहं तं मायिमिथ्यादृष्ट्युपपन्नकं देवं एवमवादीत्–परिणमन्तः पुद्गलाः परिणताः, नो अपरिणताः, परिणमन्ति

५६. जिस समय श्रमण भगवान् महावीर ने भगवान् गौतम को यह अर्थ कहा, उसी समय वह देव उस देश-भाग में शीघ्र आ गया। उस देव ने श्रमण भगवान् महावीर को दायीं ओर से प्रारंभ कर तीन बार प्रदक्षिणा की, प्रदक्षिणा कर वंदन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार कर इस प्रकार बोला–भंते! महाशुक्र कल्प महासामान्य विमान में एक मायी मिथ्यादृष्टि उपपन्नक देव ने मुझे इस प्रकार कहा–परिणममान पुद्गल परिणत नहीं हैं, अपरिणत हैं। परिणमन कर रहे हैं, इसलिए वे पुद्गल परिणत नहीं हैं, अपरिणत हैं। तब मैंने उस मायी मिथ्यादृष्टि उपपन्नक देव से इस प्रकार कहा–परिणममान पुद्गल परिणत हैं, अपरिणत नहीं हैं। परिणमन कर

१. भ. वृ. १६/५४-५५

२. ठाणं ३/४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पोग्गला परिणया, नो अपरिणया, से कहमेयं भंते! एवं?

इति पुद्गलाः परिणताः, नो अपरिणताः, तत् कथमेतद् भदन्त! एवम्?

रहे हैं इसलिए वे पुद्गल परिणत हैं, अपरिणत नहीं हैं। भंते! यह कैसे है?

५७. गंगदत्तादि! समणे भगवं महावीरे गंगदत्तं देवं एवं वयासी–अहं पि णं गंगदत्ता! एवमाइक्खामि भासेमि पण्णवेमि परूवेमि–परिणममाणा पोग्गला परिणया, नो अपरिणया; परिणमंतीति पोग्गला परिणया, नो अपरिणया, सच्चमेसे अट्ठे॥

गंगदत्त अयि! श्रमणः भगवान् महावीरः गंगदत्तं देवं एवमवादीत्–अहमपि गंगदत्त! एवमाख्यामि भाषे प्रज्ञापयामि प्ररूपयामि–परिणमन्तः पुद्गलाः परिणताः, नो अपरिणताः, परिणमन्ति इति पुद्गलाः परिणताः, नो अपरिणताः, सत्यः एषः अर्थः।

५७. अयि गंगदत्त! श्रमण भगवान् महावीर ने गंगदत्त देव से इस प्रकार कहा–गंगदत्त! मैं भी इसी प्रकार आख्यान करता हूं, भाषण, प्रज्ञापन और प्ररूपण करता हूं–परिणमन पुद्गल परिणत हैं, अपरिणत नहीं हैं। परिणमन कर रहे हैं इसलिए पुद्गल परिणत हैं, अपरिणत नहीं हैं। यह अर्थ सत्य है।

५८. तए णं से गंगदत्ते देवे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं एयमट्ठं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठे समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता नच्चासन्ने जाव पज्जुवासति॥

ततः सः गंगदत्तः देवः श्रमणस्य भगवतः महावीरस्य अन्तिकम् एतमर्थं श्रुत्वा निशम्य हृष्टतुष्टः श्रमणं भगवन्तं महावीरं वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्यित्वा नात्यासन्नः यावत् पर्युपास्ते।

५८. गंगदत्त देव श्रमण भगवान् महावीर के पास इस अर्थ को सुनकर, अवधारण कर हृष्ट तुष्ट हो गया। श्रमण भगवान् महावीर को वंदन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार कर न अति-निकट यावत् पर्युपासना करने लगा।

गंगदत्तदेवस्स अप्पविसए पसिण-पदं

गंगदत्तस्य आत्मविषये प्रश्न-पदम्

गंगदत्त देव का आत्म विषयक प्रश्न पद

५९. तए णं समणे भगवं महावीरे गंगदत्तस्स देवस्स तीसे य महतिमहालियाए परिसाए धम्मं परिकहेइ जाव आराहए भवति॥

ततः श्रमणः भगवान् महावीरः गंगदत्तस्य देवस्य तस्यौ च महातिमहत्यौ परिषदि धर्मं परिकथयति यावत् आराधकः भवति।

५९. श्रमण भगवान् महावीर ने गंगदत्त देव को उस विशालतम परिषद् में धर्म कहा यावत् आराधक होता है।

६०. तए णं से गंगदत्ते देवे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए धम्मं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठे उट्ठाए उट्ठेइ, उट्ठेत्ता समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी–अहण्णं भंते! गंगदत्ते देवे किं भवसिद्धिए? अभवसिद्धिए? सम्मदिट्ठी? मिच्छदिट्ठी? परित्तसंसारिए? अणंतसंसारिए? सुलभबोहिए? दुल्लभबोहिए? आराहए? विराहए? चरिमे? अचरिमे?
गंगदत्ताइ! समणे भगवं महावीरे गंगदत्तं देवं एवं वयासी–गंगदत्ता! तुमण्णं भवसिद्धिए, नो अभवसिद्धिए। सम्मदिट्ठि, नो मिच्छदिट्ठी। परित्तसंसारिए नो अणंतसंसारिए। सुलभबोहिए, नो दुल्लभबोहिए। आराहए, नो विराहए। चरिमे, नो अचरिमे॥

ततः सः गंगदत्तः देवः श्रमणस्य भगवतः महावीरस्य अन्तिके धर्मं श्रुत्वा निशम्य हृष्टतुष्टः उत्थया उत्तिष्ठति, उत्थाय श्रमणं भगवन्तं महावीरं वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्यित्वा एवमवादीत्–अहं भदन्त! गंगदत्तः देवः किं भवसिद्धिकः? अभवसिद्धिकः? सम्यग्दृष्टिः? मिथ्यादृष्टिः? परीतसंसारिकः? अनन्तसंसारिकः? सुलभबोधिकः? दुर्लभबोधिकः? आराधकः? विराधकः? चरमः? अचरमः?
गंगदत्त अयि! श्रमणः भगवान् महावीरः गंगदत्तं देवम् एवमवादीत्–गंगदत्त! त्वं भवसिद्धिकः, नो अभवसिद्धिकः। सम्यग्दृष्टिः, नो मिथ्यादृष्टिः। परीतसंसारिकः, नो अनन्तसंसारिकः। सुलभबोधिकः, नो दुर्लभबोधिकः। आराधकः, नो विराधकः। चरमः, नो अचरमः।

६०. गंगदत्त देव श्रमण भगवान् महावीर के पास धर्म को सुनकर अवधारण कर हृष्ट तुष्ट हो गया। वह उठने की मुद्रा में उठा, उठकर श्रमण भगवान् महावीर को वंदन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार कर इस प्रकार बोला–भंते! मैं गंगदत्त देव क्या भवसिद्धिक हूं? अभवसिद्धिक हूं? सम्यग्दृष्टि हूं? मिथ्यादृष्टि हूं? परित संसारी हूं? अनन्त संसारी हूं? सुलभ बोधि हूं? दुर्लभ बोधि हूं? आराधक हूं? विराधक हूं? चरम हूं? अचरम हूं?

अयि गंगदत्त! श्रमण भगवान् महावीर ने गंगदत्त देव से इस प्रकार कहा–गंगदत्त! तुम भविसिद्धिक हो, अभवसिद्धिक नहीं। सम्यग्दृष्टि हो, मिथ्यादृष्टि नहीं। परित संसारी हो, अनंत संसारी नहीं। सुलभ बोधि हो, दुर्लभ बोधि नहीं। आराधक हो, विराधक नहीं। चरम हो, अचरम नहीं।

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

भाष्य

सूत्र ६०

द्रष्टव्य भगवई ३/७३ का भाष्य।

गंगदत्तदेवेण नट्ट-उवदंसण-पदं

६१. तए णं से गंगदत्ते देवे समणेणं भगवया महावीरेणं एवं वुत्ते समाणे हट्ठतुट्ठचित्तमाणंदिए पीइमणे परम-सोमणस्सिए हरिसवसविसप्प- माणहियए समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी–तुब्भे णं भंते! सव्वं जाणह सव्वं पासह, सव्वओ जाणह सव्वओ पासह, सव्वं कालं जाणह सव्वं कालं पासह, सव्वे भावे जाणह सव्वे भावे पासह।

जाणंति णं देवाणुप्पिया! मम पुव्विं वा पच्छा वा ममेयरूवं दिव्वं देविड्ढिं दिव्वं देवजुइं दिव्वं देवाणुभावं लद्धं पत्तं अभिसमण्णागयं ति, तं इच्छामि णं देवाणुप्पियाणं भत्तिपुव्वगं गोयमातियाणं समणाणं निग्गंथाणं दिव्वं देविड्ढिं दिव्वं देवजुइं दिव्वं देवाणुभावं दिव्वं बत्तीसतिबद्धं नट्टविहिं उवदंसित्तए॥

गंगदत्तदेवेन नाट्य–उपदर्शन-पदं

ततः सः गंगदत्तः देवः श्रमणेन भगवता महावीरेण एवम् उक्तः सन् हृष्ट-तुष्टचित्तः आनन्दितः प्रीतिमनाः परमसौमनस्थितः हर्षवशविसर्पद्हृदयः श्रमणं भगवन्तं महावीरं वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्थित्वा एवमवादीत्–यूयं भदन्त! सर्वं जानीथ सर्वं पश्यथ, सर्वतः जानीथ सर्वतः पश्यथ, सर्वं कालं जानीथ सर्वं कालं पश्यथ, सर्वान् भावान् जानीथ सर्वान् भावान् पश्यथ।

जानन्ति देवानुप्रियाः! मम पूर्वं वा पश्चात् वा मम एतद्रूपां दिव्यां देवर्धिं दिव्यां देवद्युतिं दिव्यं देवानुभावं लब्धं प्राप्तम् अभिसमन्वागतम् इति, तत् इच्छामि देवानुप्रियाणां भक्तिपूर्वकं गौतमादिकानां श्रमणानां निर्ग्रन्थानां दिव्यां देवर्धिं दिव्यां देवद्युतिं दिव्यं देवानुभावं दिव्यं द्वात्रिंशद्बद्धं नाट्यविधिम् उपदर्शयितुम्।

गंगदत्त देव द्वारा नाट्य-उपदर्शन पद

६१. गंगदत्त देव श्रमण भगवान् महावीर के इस प्रकार कहने पर हृष्टतुष्ट चित्त वाला, आनंदित, नंदित, प्रीतिपूर्ण मन वाला, परम सौमनस्य युक्त और हर्ष से विकस्वर हृदय वाला हो गया। श्रमण भगवान् महावीर को वंदन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार कर इस प्रकार बोला–भंते! तुम सब जानते हो, सब देखते हो, सब ओर से जानते हो, सब ओर से देखते हो, सब काल को जानते हो,सब काल को देखते हो, सब भावों को जानते हो, सब भावों को देखते हो।

देवानुप्रिय! मेरे पूर्व और पश्चात् को जानते हैं–मुझे इस प्रकार की दिव्य ऋद्धि, दिव्य द्युति, दिव्य देव अनुभाव लब्ध, प्राप्त और अभिसमन्वागत है। इसीलिए मैं देवानुप्रिय! गौतम आदि श्रमण-निर्ग्रन्थों को भक्तिपूर्वक दिव्य देव-ऋद्धि, दिव्य देवद्युति, दिव्य देवानुभाव, दिव्य बत्तीस प्रकार की नाट्यविधि दिखलाना चाहता हूं।

६२. तए णं समणे भगवं महावीरे गंगदत्तेणं देवेणं एवं वुत्ते समाणे गंगदत्तस्स देवस्स एयमट्ठं नो आढाइ, नो परियाणइ, तुसिणीए संचिट्ठति॥

ततः श्रमणः भगवान् महावीरः गंगदत्तेन देवेन एवम् उक्तः सन् गंगदत्तस्य देवस्य एतमर्थं नो आढाइ, नो परिजानाति, तूष्णीकः सन्तिष्ठते।

६२. गंगदत्त देव के इस प्रकार कहने पर श्रमण भगवान् महावीर ने गंगदत्त देव के इस अर्थ को आदर नहीं दिया, स्वीकार नहीं किया, वे मौन रहे।

६३. तए णं से गंगदत्ते देवे समणं भगवं महावीरं दोच्चं पि तच्चं पि एवं वयासी–तुब्भे णं भंते! सव्वं जाणह सव्वं पासह, सव्वओ जाणह सव्वओ पासह, सव्वं कालं जाणह सव्वं कालं पासह, सव्वे भावे जाणह सव्वे भावे पासह।

जाणंति णं देवाणुप्पिया! मम पुव्विं वा पच्छा वा ममेयरूवं दिव्वं देविड्ढिं दिव्वं देवजुइं दिव्वं देवाणुभावं लद्धं पत्तं अभिसमण्णागयं ति, तं इच्छामि णं देवाणुप्पियाणं भत्तिपुव्वगं गोयमातियाणं समणाणं निग्गंथाणं दिव्वं देविड्ढिं दिव्वं

ततः सः गगदत्तः देवः श्रमणं भगवन्तं महावीरं द्विः अपि त्रिः अपि एवमवादीत्–यूयं भदन्त! सर्वं जानीथ सर्वं पश्यथ, सर्वतः जानीथ सर्वतः पश्यथ, सर्वं कालं जानीथ सर्वं कालं पश्यथ, सर्वान् भावान् जानीथ सर्वान् भावान् पश्यथ।

जानन्ति देवानुप्रियाः! मम पूर्वं वा पश्चात् वा मम एतद्रूपां दिव्यां देवर्द्धिं दिव्यां देवद्युतिं दिव्यं देवानुभावं लब्धं प्राप्तम् अभिसमन्वागतम् इति, तत् इच्छामि देवानुप्रियाणां भक्तिपूर्वकं गौतमादिकानां श्रमणानां निर्ग्रन्थानां

६३. गंगदत्त देव ने श्रमण भगवान् महावीर को दूसरी बार भी, तीसरी बार भी इस प्रकार कहा–भंते! तुम सब जानते हो, सब देखते हो, सब ओर से जानते हो, सब ओर से देखते हो, सब काल को जानते हो, सब काल को देखते हो, सब भावों को जानते हो, सब भावों को देखते हो।

देवानुप्रिय! तुम मेरे पूर्व और पश्चात् को जानते हो। मुझे इस प्रकार दिव्य देव-ऋद्धि, दिव्य देव-द्युति, दिव्य देवानुभाव लब्ध, प्राप्त और अभिसमन्वागत है इसलिए देवानुप्रिय! गौतम आदि श्रमण-निर्ग्रंथों को भक्तिपूर्वक दिव्य देव-ऋद्धि, दिव्य देवद्युति, दिव्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देवजुई दिव्वं देवाणुभावं दिव्वं बत्तीसतिबद्धं नट्टविहिं उवदंसित्तए त्ति कट्टु जाव बत्तीसतिबद्धं नट्टविहिं उवदंसेति, उवदंसेत्ता जाव तामेव दिसं पडिगए॥

दिव्यां देवर्द्धिं दिव्यां देवद्युतिं दिव्यं देवानुभावं दिव्यं द्वात्रिंशद्बद्धं नाट्यविधिम् उपदर्शयितुम् इति कृत्वा यावत् द्वात्रिंशद्बद्धं नाट्यविधिम् उपदर्शयति, उपदर्श्य यावत् तस्यामेव दिशि प्रतिगता।

देवानुभाव, दिव्य बत्तीस प्रकार की नाट्य विधि दिखलाना चाहता हूं। यह कहकर बत्तीस प्रकार की नाट्य विधि का उपदर्शन किया, उपदर्शन कर यावत् जिस दिशा से आया था, उसी दिशा में लौट गया।

भाष्य

सूत्र ६१-६३

प्रस्तुत आगम में देवों द्वारा नाट्य विधि के उपदर्शन का उल्लेख ३/७८ में है। वहां संक्षिप्त पाठ है। प्रस्तुत प्रकरण (१६/६३) में पाठ विस्तृत है। इसका विस्तार रायपसेणइय सूत्र के आधार पर किया गया है।

६४. भंतेति! भगवं गोयमे समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी–गंगदत्तस्स णं भंते! देवस्स सा दिव्वा देविड्ढी दिव्वा देवज्जुती दिव्वे देवाणुभावे कहिं गते? कहिं अणुप्पविट्ठे?

गोयमा! सरीरं गए, सरीरं अणुप्पविट्ठे, कूडागारसालादिट्ठंतो जाव सरीरं अणुप्पविट्ठे। अहो णं भंते! गंगदत्ते देवे महिड्ढिए महज्जुइए महब्बले महायसे महेसक्खे॥

भदन्त इति! श्रमणः गौतमः भगवन्तं महावीरं वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्थित्वा एवमवादीत्–गंगदत्तस्य भदन्त! देवस्य सा दिव्या देवर्द्धिः दिव्या देवद्युतिः दिव्यः देवानुभावः कुत्र गतः? कुत्र अनुप्रविष्टः?

गौतम! शरीरं गतः, शरीरम् अनुप्रविष्टः, कूटागारशाला दृष्टान्तः यावत् शरीरम् अनुप्रविष्टः। अहो भदन्त! गंगदत्तः देवः महर्द्धिकः महाद्युतिकः महाबलः महायशः महेशाख्यः।

६४. अयि भंते! भगवान् गौतम ने श्रमण भगवान् महावीर को वंदन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार कर इस प्रकार कहा–भंते! गंगदत्त देव की वह दिव्य देव-ऋद्धि, दिव्य देवद्युति, दिव्य देवानुभाव कहां गया? कहां अनुप्रविष्ट हो गया?

गौतम! शरीर में गया, शरीर में अनुप्रविष्ट हो गया। कूटागार शाला दृष्टान्त यावत् शरीर में अनुप्रविष्ट हो गया।

भंते! गंगदत्त देव महान् ऋद्धि, महान् द्युति, महान् बल, महान् यश और महान् ऐश्वर्यशाली है।

भाष्य

सूत्र ६४

द्रष्टव्य भगवई ३/२३-२६ का भाष्य।

गंगदत्तदेवस्स पुव्वभव-पदं

६५. गंगदत्तेणं भंते! देवेणं सा दिव्वा देविड्ढी सा दिव्वा देवज्जुती से दिव्वे देवाणुभागे किण्णा लद्धे? किण्णा पत्ते? किण्णा अभिसमण्णागए? पुव्वभवे के आसी? किं नामए वा? किं वा गोत्तेणं? कयरंसि वा गामंसि वा नगरंसि वा निगमंसि वा रायहाणीए वा खेडंसि वा कव्वडंसि वा मडंबंसि वा पट्टणंसि वा दोणमुहंसि वा आगरंसि वा आसमंसि वा संबाहंसि वा सण्णिवेसंसि वा? किं वा दच्चा? किं वा भोच्चा? किं वा किच्चा? किं वा समायरित्ता? कस्स वा तहारूवस्स समणस्स वा माहणस्स वा अंतिए एगमवि आरियं धम्मियं सुवयणं सोच्चा निसम्म जण्णं गंगदत्तेणं देवेणं सा दिव्वा देविड्ढी सा दिव्वा देवज्जुती से

गंगदत्तदेवस्य पूर्वभव-पदम्

६५. गंगदत्तेन भदन्त! देवेन सा दिव्या देवर्द्धिः सा दिव्या देवद्युतिः सः दिव्यः देवानुभावः कथं लब्धः? कथं प्राप्तः? कथम् अभिसमन्वागतः? पूर्वभवे कः आसीत्? किं नामकः वा? किं वा गोत्रेण? कतरस्मिन् ग्रामे वा नगरे वा निगमे वा राजधान्यां वा 'खेडंसि' वा कर्बटं वा 'मडंबंसि' वा पत्तने वा द्रोणमुखे वा आकरे वा आश्रमे वा सम्बाधे वा सन्निवेशे वा? किं वा दत्वा? किं वा भुक्त्वा? किं वा कृत्वा? किं वा समाचर्य? कस्य वा तथारूपस्य श्रमणस्य वा माहनस्य वा अन्तिके एकमपि आर्यं धार्मिकं सुवचनं श्रुत्वा निशम्य यत् गंगदत्तेन देवेन सा दिव्या देवर्द्धिः सा दिव्या देवद्युतिः सः दिव्यः

गंगदत्त देव का पूर्वभव पद

६५. भंते! गंगदत्त देव को वह दिव्य देव-ऋद्धि वह दिव्य देवद्युति, वह दिव्य देवानुभाव कैसे लब्ध, प्राप्त और अभिसमन्वागत हुआ? यह पूर्व भव में कौन था? नाम क्या था? गौत्र क्या था? किस ग्राम, नगर, निगम, राजधानी, खेट, कर्बट, मडंब, पत्तन, द्रोणमुख, आकर, आश्रम, संबाध और सन्निवेश में रहता था? इसने क्या दिया? क्या भोगा? क्या किया? क्या समाचरण किया? किस तथारूप श्रमण-ब्राह्मण के पास एक भी आर्य धार्मिक सुवचन को सुना, अवधारण किया, जिससे गंगदत्त देव को वह दिव्य-ऋद्धि, दिव्य देवद्युति, दिव्य देवानुभाव लब्ध, प्राप्त और अभिसमन्वागत हुआ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दिव्वे देवाणुभागे लद्धे पत्ते अभिसमण्णागए?

देवानुभावः लब्धः प्राप्तः अभिसमन्वागतः?

भाष्य

सूत्र ६५

द्रष्टव्य भगवई ३/३० का भाष्य।

६६. गोयमादी! समणे भगवं महावीरे भगवं गोयमं एवं वयासी–एवं खलु गोयमा! तेणं कालेणं तेणं समएणं इहेव जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे हत्थिणापुरे नामं नगरे होत्था–वण्णओ। सहसंबवणे उज्जाणे–वण्णओ। तत्थ णं हत्थिणापुरे नगरे गंगदत्ते नाम गाहावती परिवसति–अड्ढे जाव बहुजणस्स अपरिभूए॥

गौतम अयि! श्रमणः भगवान् महावीरः भगवन्तं गौतमम् एवमवादीत्–एवं खलु गौतम! तस्मिन् काले तस्मिन् समये इहैव जम्बूद्वीपे द्वीपे भारते वर्षे हस्तिनापुरं नाम नगरम् आसीत्–वर्णकः। सहस्राम्रवनम् उद्यानम्–वर्णकः। तत्र हस्तिनापुरे नगरे गंगदत्तः नाम 'गाहावती' परिवसति–आढ्यः यावत् बहुजनाय अपरिभूतः।

६६. अयि गौतम! श्रमण भगवान् महावीर ने भगवान् गौतम से इस प्रकार कहा–गौतम! उस काल उस समय इस जंबूद्वीप द्वीप में भारत वर्ष में हस्तिनापुर नाम का नगर था–वर्णक। सहस्राम्रवन उद्यान–वर्णक। वहां हस्तिनापुर नगर में गंगदत्त नाम का गृहपति रहता था–आढ्य यावत् बहुजन के द्वारा अपरिभूत।

६७. तेणं कालेणं तेणं समएणं मुणिसुव्वए अरहा आदिगरे जाव सव्वण्णू सव्वदरिसी आगासगएणं चक्केणं, आगासगएणं छत्तेणं, आगासियाहिं चामराहिं, आगास-फालियामएणं सपायवीढेणं सीहासणेणं, धम्मज्झएणं पुरओ पकड्ढिज्जमाणेणं-पकड्ढिज्जमाणेणं सीसगण-संपरिवुडे पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे गामाणुगामं दूइज्जमाणे सुहंसुहेणं विहरमाणे जेणेव हत्थिणापुरे नगरे जेणेव सहसंबवणे उज्जाणे जाव विहरति। परिसा निग्गया जाव पज्जुवासति॥

तस्मिन् काले तस्मिन् समये मुनिसुव्रतः अर्हन् आदिकरः यावत् सर्वज्ञः सर्वदर्शी आकाशगतेन चक्रेण, आकाशगतेन छत्रेण, आकाशिकाभिः चामराभिः, आकाशस्फटिकमयेन सपादपीठेन सिंहासनेन, धर्मध्वजेन पुरतः प्रकृष्यमाणेन-प्रकृष्यमाणेन शिष्यगण-सम्परिवृतः चरन् ग्रामानुग्रामं दवन् सुखंसुखेन विहरन् यत्रैव हस्तिनापुरं नगरं यत्रैव सहस्राम्रवनम् उद्यानं यावत् विहरति। परिषद् निर्गता यावत् पर्युपास्ते।

६७. उस काल उस समय मुनिसुव्रत अर्हत् आदिकर यावत् सर्वज्ञ सर्वदर्शी थे। उनके आगे आगे आकाश में धर्मचक्र चलता था, उनके ऊपर आकाशगत छत्र, उनके पार्श्व में चामर डुलते थे। उनके आकाश जैसा स्वच्छ पादपीठ सहित सिंहासन था, उनके आगे आगे धर्मध्वज चल रहा था। वे शिष्य गण से संपरिवृत होकर क्रमानुसार विचरण, ग्रामानुग्राम परिव्रजन, और सुखपूर्वक विहरण करते हुए जहां हस्तिनापुर नगर था, जहां सहस्राम्रवन उद्यान था यावत् विहरण करने लगे। परिषद् ने नगर से निर्गमन किया यावत् पर्युपासना करने लगी।

६८. तए णं से गंगदत्ते गाहावती इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे हट्ठतुट्ठे ण्हाए कयबलिकम्मे जाव अप्पमहग्घाभरणालंकियसरीरे साओ गिहाओ पडिनिक्खमति, पडिनिक्खमित्ता पायविहारचारेणं हत्थिणापुरं नगरं मज्झंमज्झेणं निग्गच्छति, निग्गच्छित्ता जेणेव सहसंबवणे उज्जाणे जेणेव मुणिसुव्वए अरहा तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता मुणिसुव्वयं अरहं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ जाव तिविहाए पज्जुवासणाए पज्जुवासति॥

ततः सः 'गाहावती' अनया कथया लब्धार्थः सन् हृष्टतुष्टः स्नातः कृतबलिकर्मा यावत् अल्पमहार्घ्याभरणालंकृतशरीरः स्वकात् गृहात् प्रतिनिष्क्रामति, प्रतिनिष्क्रम्य पादविहारचारेण हस्तिनापुरं नगरं मध्यमध्येन निर्गच्छति, निर्गत्य यत्रैव सहस्राम्रवने उद्याने यत्रैव मुनिसुव्रतः अर्हन् तत्रैव उपागच्छति, उपागम्य मुनिसुव्रतम् अर्हंतं त्रिः आदक्षिण-प्रदक्षिणां करोति यावत् त्रिविधया पर्युपासनया पर्युपास्ते।

६८. गंगदत्त गृहपति इस कथा को सुनकर हृष्ट तुष्ट हुआ। उसने स्नान किया, बलिकर्म किया यावत् अल्पभार और बहुमूल्य वाले आभरणों से शरीर को अलंकृत किया। अपने घर से प्रतिनिष्क्रमण किया, प्रतिनिष्क्रमण कर पैदल चलते हुए हस्तिनापुर नगर के बीचोंबीच निर्गमन किया, निर्गमन कर जहां सहस्राम्रवन उद्यान था, जहां अर्हत् मुनिसुव्रत थे, वहां आया, आकर अर्हत् मुनिसुव्रत को दायीं ओर से प्रारंभ कर तीन बार प्रदक्षिणा की यावत् तीन प्रकार की पर्युपासना के द्वारा पर्युपासना करने लगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६६. तए णं मुणिसुव्वए अरहा गंगदत्तस्स गाहावतिस्स तीसे य महतिमहालियाए परिसाए धम्मं परिकहेइ जाव परिसा पडिगया॥

ततः मुनिसुव्रतः अर्हन् गंगदत्तस्य 'गाहावतिस्स' तस्यै च महातिमहत्यै परिषदि धर्मं परिकथयति यावत् परिषद् प्रतिगता।

६६. अर्हत् मुनिसुव्रत ने गंगदत्त गृहपति को उस विशालतम परिषद् में धर्म कहा यावत् परिषद् लौट गई।

७०. तए णं से गंगदत्ते गाहावती मुणिसुव्वयस्स अरहओ अंतियं धम्मं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठे उट्ठाए उट्ठेति, उट्ठेत्ता मुणिसुव्वयं अरहं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी–सद्दहामि णं भंते! निग्गंथं पावयणं जाव से जहेयं तुब्भे वदह, जं नवरं देवाणुप्पिया! जेट्ठपुत्तं कुडुंबे ठावेमि, तए णं अहं देवाणुप्पियाणं अंतियं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वयामि।

ततः सः गंगदत्तः 'गाहावती' मुनिसुव्रतस्य अर्हतः अन्तिकं धर्मं श्रुत्वा निशम्य हृष्टतुष्टः उत्थया उत्तिष्ठति, उत्थाय मुनिसुव्रतम् अर्हन्तं वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्यित्वा एवमवादीत्–श्रद्दधामि भन्ते! निर्ग्रन्थं प्रवचनं यावत् तत् यथेदं यूयं वदथ यत् नवरं देवानुप्रियाः! ज्येष्ठपुत्रं कुटुम्बे स्थापयामि, ततोऽहं देवानुप्रियाणाम् अन्तिकं मुण्डः भूत्वा अगारात् अनगारितां प्रव्रजामि।

७०. गंगदत्त गृहपति अर्हत् मुनिसुव्रत के पास धर्म को सुनकर, अवधारण कर हृष्ट तुष्ट हो गया। वह उठने की मुद्रा में उठा, उठकर अर्हत् मुनिसुव्रत को वंदन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार कर इस प्रकार बोला–भंते! मैं निर्ग्रन्थ प्रवचन में श्रद्धा करता हूं। भंते! यह इष्ट है, भंते! यह प्रतीप्सित है, भंते! यह इष्ट प्रतीप्सित है। जैसा आप कह रहे हैं, इतना विशेष है–देवानुप्रिय! मैं ज्येष्ठ पुत्र को कुटुम्ब में स्थापित करूंगा फिर मैं देवानुप्रिय के पास मुंड होकर अगार से अनगारिता में प्रव्रजित हो जाऊंगा।

अहासुहं देवाणुप्पिया! मा पडिबंधं॥

यथासुखं देवानुप्रियाः! मा प्रतिबन्धम्।

देवानुप्रिय! जैसा तुम्हें सुख हो, प्रतिबंध मत करो।

७१. तए णं से गंगदत्ते गाहावई मुणिसुव्वएणं अरहया एवं वुत्ते समाणे हट्ठतुट्ठे मुणिसुव्वयं अरहं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता मुणिसुव्वयस्स अरहओ अंतियाओ सहसंबवणाओ उज्जाणाओ पडिनिक्खमति, पडिनिक्खमित्ता, जेणेव हत्थिणापुरे नगरे जेणेव सए गिहे तेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता विउलं असण-पाण-खाइम-साइमं उवक्खडावेति, उवक्खडावेत्ता मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियणं आमंतेति, आमंतेत्ता तओ पच्छा ण्हाए जहा पूरणे जाव जेट्ठपुत्तं कुडुंबे ठावेति। तं मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियणं जेट्ठपुत्तं च आपुच्छइ, आपुच्छित्ता पुरिससहस्सवाहिणिं सीयं दुरुहति, दुरुहित्ता मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधिपरिजणेणं जेट्ठपुत्तेण य समणुगम्ममाणमग्गे सव्विड्ढीए जाव दुंदुहि-निग्घोस-नादितरवेणं हत्थिणापुरं मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव सहसंबवणे उज्जाणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता छत्तादिते तित्थगरातिसए पासति। एवं जहा उद्दायणे जाव सयमेव

ततः सः गंगदत्तः 'गाहावई' मुनिसुव्रतेन अर्हता एवम् उक्तः सन् हृष्टतुष्टः मुनिसुव्रतम् अर्हन्तं वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्यित्वा मुनिसुव्रतस्य अर्हतः अन्तिकात् सहस्राम्रवनात् उद्यानात् प्रतिनिष्क्रामति, प्रतिनिष्क्रम्य यत्रैव हस्तिनापुरं नगरं यत्रैव स्वके गृहे तत्रैव उपागच्छति, उपागम्य विपुलम् अशन-पान-खाद्य-स्वाद्यम् उपस्कारयति, उपस्कार्य मित्र-ज्ञाति-निजक-स्वजन-सम्बन्धि-परिजनम् आमन्त्रयति, आमन्त्र्य ततः पश्चात् स्नातः यथा पूरणः यावत् ज्येष्ठपुत्रं कुटुम्बे स्थापयति। तं मित्र-ज्ञाति-निजक-स्वजन-सम्बन्धि-परिजनं ज्येष्ठपुत्रं च आपृच्छति, आपृच्छ्य पुरुषसहस्र-वाहिनीं शिबिकाम् आरोहति, आरुह्य मित्र-ज्ञाति-निजक-स्वजन-सम्बन्धि-परिजनेन ज्येष्ठपुत्रेण च समनुगम्य-मानमार्गः सर्वर्द्धया यावत् दुन्दुभि-निर्घोषनादितरवेण हस्तिनापुरं मध्य-मध्येन निर्गच्छति, निर्गत्य यत्रैव सहस्राम्रवनम् उद्यानम् तत्रैव उपागच्छति, उपागम्य छत्रादीन्

७१. गंगदत्त गृहपति अर्हत् मुनिसुव्रत के इस प्रकार कहने पर हृष्ट तुष्ट हो गया। अर्हत् मुनिसुव्रत को वंदन-नमस्कार किया। वंदन-नमस्कार कर अर्हत् मुनिसुव्रत के पास से सहस्राम्रवन उद्यान से प्रतिनिष्क्रमण किया, प्रतिनिष्क्रमण कर जहां हस्तिनापुर नगर था, जहां अपना घर था, वहां आया, आकर विपुल अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य तैयार करवाया, करवाकर मित्र, ज्ञाति, कुटुम्बी, स्वजन, संबंधी, परिजनों को आमंत्रित किया, आमंत्रित कर उसके पश्चात् स्नान किया, पूरण गृहपति (भ. ३/१०२) की भांति यावत् ज्येष्ठ पुत्र को कुटुम्ब में स्थापित किया। मित्र, ज्ञाति, कुटुम्ब, स्वजन, संबंधी, परिजनों और ज्येष्ठ पुत्र को पूछा, पूछकर हजार पुरुषों द्वारा वहन की जाने वाली शिविका में चढा, चढ़कर चलने लगा, पीछे पीछे चल रहे मित्र, ज्ञाति, कुटुम्बी, स्वजन, संबंधी, परिजनों और ज्येष्ठ पुत्र के साथ संपूर्ण ऋद्धि यावत् दुन्दुभि के निर्घोष से नादित शब्द के साथ हस्तिनापुर नगर के बीचोंबीच निर्गमन किया, निर्गमन कर जहां सहस्राम्रवन उद्यान था, वहां आया, आकर छत्र आदि तीर्थंकरों के अतिशय को देखा,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आभरणे ओमुयइ, ओमुइत्ता सयमेव पंचमुट्ठियं लोयं करेति, करेत्ता जेणेव मुणिसुव्वए अरहा एवं जहेव उद्दायणे तहेव पव्वइए, तहेव एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ जाव मासियाए संलेहणाए अत्ताणं झूसेइ, झूसेत्ता सट्ठिं भत्ताइं अणसणाए छेदेति, छेदेत्ता आलोइय-पडिक्कंते समाहिपत्ते कालमासे कालं किच्चा महासुक्के कप्पे महासामाणे विमाणे उववायसभाए देवसयणिज्जंसि जाव गंगदत्तदेवत्ताए उववन्ने॥

तीर्थकरातिशयान् पश्यति। एवं यथा उद्दायणः यावत् स्वयमेव आभरणान् अवमुञ्चति, अवमुच्य स्वयमेव पञ्चमुष्टिकं लोचं करोति, कृत्वा यत्रैव मुनिसुव्रतः अर्हन् एवं यथैव उद्दायणः तथैव प्रव्रजितः, तथैव एकादश अङ्गानि अधीते यावत् मासिक्या संलेखनया आत्मानं जोषति, जोषित्वा षष्टिं भक्तानि अनशनेन छिनत्ति, छित्त्वा आलोचित-प्रतिक्रान्तः समाधिप्राप्तः कालमासे कालं कृत्वा महाशुक्रे कल्पे महासामान्ये विमाने उपपातसभायां देवशयनीये यावत् गंगदत्तदेवत्वेन उपपन्नः।

इस प्रकार उद्रायण (भ. १३/११७) की भांति यावत् स्वयं ही आभरण उतारे, उतार कर स्वयं ही पंचमुष्टि लोच किया, लोच कर जहां अर्हत् मुनिसुव्रत इस प्रकार जैसे उद्रायण वैसे ही प्रव्रजित हुआ। उसी प्रकार ग्यारह अंगों का अध्ययन किया यावत् एक मास की संलेखना से अपने शरीर को कृश बनाया, कृश बनाकर साठ भक्त (भोजन के समय) का छेदन किया, छेदन कर आलोचना-प्रतिक्रमण कर, समाधि प्राप्त कर कालमास में काल कर महाशुक्र कल्प में महासामान्य विमान में उपपात सभा में देवशयनीय में यावत् गंगदत्त देव के रूप में उपपन्न हुआ।

७२. तए णं से गंगदत्ते देवे अहुणोववन्नमेत्तए समाणे पंचविहाए पज्जत्तीए पज्जत्त-भावं गच्छति (तं जहा—आहारपज्जत्तीए जाव भासा-मणप-ज्जत्तीए) एवं खलु गोयमा! गंगदत्तेणं देवेणं सा दिव्वा देविड्ढी सा दिव्वा देवज्जुती से दिव्वे देवाणुभागे लद्धे पत्ते अभिसमण्णागए॥

ततः सः गंगदत्तः देवः अधुनोपपन्नकः सन् पञ्चविधया पर्याप्त्या पर्याप्तभावं गच्छति। (तद्यथा—आहारपर्याप्त्या यावत् भाषा-मनःपर्याप्त्या) एवं खलु गौतम! गंगदत्तेण देवेन सा दिव्या देवर्द्धिः सा दिव्या देवद्युतिः सः दिव्यः देवानुभावः लब्धः प्राप्तः अभिसमन्वागतः।

७२. गंगदत्त देव अभी उपपन्न मात्र होने पर पंच प्रकार की पर्याप्ति से पर्याप्त भाव को प्राप्त हो गया (जैसे—आहार पर्याप्ति यावत् भाषा-मनः पर्याप्ति) गौतम! इस प्रकार गंगदत्त देव को वह दिव्य देव-ऋद्धि, वह दिव्य देवद्युति, वह दिव्य देवानुभाव लब्ध, प्राप्त और अभि-समन्वागत है।

७३. गंगदत्तस्स णं भंते! देवस्स केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता?
गोयमा! सत्तरस सागरोवमाइं ठिती पण्णत्ता॥

गंगदत्तस्य भदन्त! देवस्य कियत् कालं स्थितिः प्रज्ञप्ता?
गौतम! सप्तदश सागरोपमाणि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

७३. भंते! गंगदत्त देव की स्थिति कितने काल की प्रज्ञप्त है?
गौतम! सतरह सागरोपम की स्थिति प्रज्ञप्त है।

७४. गंगदत्ते णं भंते! देवे ताओ देवलोगाओ आउक्खएणं भवक्खएणं ठिइक्खएणं अणंतरं चयं चइत्ता कहिं गच्छिहिति? कहिं उववज्जिहिति?
गोयमा! महाविदेहे वासे सिज्झिहिति जाव सव्वदुक्खाणं अंतं काहिति॥

गंगदत्तः देवः तस्मात् देवलोकात् आयुःक्षयेण भवक्षयेण स्थितिक्षयेण अनन्तरं च्यवं च्युत्वा कुत्र गमिष्यति? कुत्र उपपत्स्यते?
गौतम! महाविदेहे वर्षे सेत्स्यति यावत् सर्वदुःखानाम् अन्तं करिष्यति।

७४. भंते! गंगदत्त देव उस देवलोक से आयु-क्षय, भव-क्षय और स्थिति-क्षय के अनंतर च्यवन कर कहां जाएगा? कहां उपपन्न होगा? गौतम! महाविदेह वास में सिद्ध होगा यावत् सब दुःखों का अंत करेगा।

७५. सेवं भंते! सेवं भंते! त्ति॥

तदेवं भदन्त! तदेवं भदन्त! इति।

७५. भंते! वह ऐसा ही है। भंते! वह ऐसा ही है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

छट्ठो उद्देसो : छट्ठा उद्देशक

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
सुविण-पदं	स्वप्न-पदम्	स्वप्न-पद
७६. कतिविहे णं भंते? सुविणदंसणे पण्णत्ते?	कतिविधं भदन्त! स्वप्नदर्शनं प्रज्ञप्तम्?	७६. भंते! स्वप्न-दर्शन कितने प्रकार का प्रज्ञप्त है?
गोयमा! पंचविहे सुविणदंसणे पण्णत्ते, तं जहा—अहातच्चे, पताणे, चिंतासुविणे, तव्विवरीए, अव्वत्तदंसणे॥	गौतम! पञ्चविधं स्वप्नदर्शनं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—यथातथ्यम्, प्रतानम्, चिन्ता-स्वप्नम्, तद्विपरीतम्, अव्यक्तदर्शनम्।	गौतम! स्वप्न-दर्शन पांच प्रकार का प्रज्ञप्त है, जैसे—यथातथ्य, प्रतान, चिंता-स्वप्न, तद्विपरीत, अव्यक्त दर्शन।
७७. सुत्ते णं भंते! सुविणं पासति? जागरे सुविणं पासति? सुत्तजागरे सुविणं पासति?	सुप्तः भदन्त! स्वप्नं पश्यति? जागरः स्वप्नं पश्यति? सुप्तजागरः स्वप्नं पश्यति?	७७. भंते! क्या जीव सुप्त अवस्था में स्वप्न देखता है? जागृत अवस्था में स्वप्न देखता है? सुप्त-जागृत अवस्था में स्वप्न देखता है?
गोयमा! नो सुत्ते सुविणं पासति, नो जागरे सुविणं पासति, सुत्तजागरे सुविणं पासति॥	गौतम! नो सुप्तः स्वप्नं पश्यति, नो जागरः स्वप्नं पश्यति, सुप्तजागरः स्वप्नं पश्यति।	गौतम! सुप्त अवस्था में स्वप्न नहीं देखता, जागृत अवस्था में स्वप्न नहीं देखता, सुप्त-जागृत अवस्था में स्वप्न देखता है।
७८. जीवा णं भंते! किं सुत्ता? जागरा? सुत्तजागरा?	जीवाः भदन्त! किं सुप्ताः? जागराः? सुप्त-जागराः?	७८. भंते! क्या जीव सुप्त हैं? जागृत हैं? सुप्त-जागृत हैं?
गोयमा! जीवा सुत्ता वि, जागरा वि, सुत्तजागरा वि॥	गौतम! जीवाः सुप्ताः अपि, जागराः अपि, सुप्तजागराः अपि।	गौतम! जीव सुप्त भी हैं, जागृत भी हैं, सुप्त-जागृत भी हैं।
७९. नेरइयाणं भंते! किं सुत्ता—पुच्छा।	नैरयिकाणाम् भदन्त! किं सुप्ताः— पृच्छा।	७९. भंते! नैरयिक सुप्त हैं—पृच्छा।
गोयमा! नेरइया सुत्ता, नो जागरा, नो सुत्तजागरा। एवं जाव चउरिंदिया॥	गौतम! नैरयिकाः सुप्ताः, नो जागराः, नो सुप्तजागराः। एवं यावत् चतुरिन्द्रियाः।	गौतम! नैरयिक सुप्त हैं, जागृत नहीं हैं, सुप्त-जागृत नहीं हैं। इसी प्रकार यावत् चतुरिन्द्रिय की वक्तव्यता।
८०. पंचिंदियतिरिक्खजोणिया णं भंते! किं सुत्ता—पुच्छा।	पंचेन्द्रियतिर्यग्योनिकाः भदन्त! किं सुप्ताः—पृच्छा।	८०. भंते! पंचेन्द्रिय तिर्यक्योनिक क्या सुप्त हैं? पृच्छा।
गोयमा! सुत्ता, णो जागरा, सुत्तजागरा वि। मणुस्सा जहा जीवा। वाणमंतर-जोइसिय-वेमाणिया जहा नेरइया॥	गौतम! सुप्ताः, नो जागराः, सुप्तजागराः अपि। मनुष्याः यथा जीवाः। वानमन्तर-ज्योतिष्क-वैमानिकाः यथा नैरयिकाः।	गौतम! सुप्त हैं, जागृत नहीं हैं। सुप्त-जागृत भी हैं। मनुष्य की जीव की भांति वक्तव्यता। वाणमंतर, ज्योतिष्क और वैमानिक की नैरयिक की भांति वक्तव्यता।
८१. संवुडे णं भंते! सुविणं पासति? असंवुडे सुविणं पासति? संवुडासंवुडे सुविणं पासति?	संवृतः भदन्त! स्वप्नं पश्यति? असंवृतः स्वप्नं पश्यति? संवृतासंवृतः स्वप्नं पश्यति?	८१. भंते! क्या संवृत स्वप्न देखता है? असंवृत स्वप्न देखता है? संवृतासंवृत स्वप्न देखता है?
गोयमा! संवुडे वि सुविणं पासति,	गौतम! संवृतः अपि स्वप्नं पश्यति,	गौतम! संवृत भी स्वप्न देखता है, असंवृत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

असंवुडे वि सुविणं पासति, संवुडासंवुडे वि सुविणं पासति। संवुडे सुविणं पासति अहातच्चं पासति। असंवुडे सुविणं पासति तहा वा तं होज्जा, अण्णहा वा तं होज्जा। संवुडासंवुडे सुविणं पासति तहा वा तं होज्जा, अण्णहा वा तं होज्जा॥

असंवृतः अपि स्वप्नं पश्यति, संवृतासंवृतः अपि स्वप्नं पश्यति। संवृतः स्वप्नं पश्यति यथातथ्यं पश्यति। असंवृतः स्वप्नं पश्यति तथा वा तत् भवेत्, अन्यथा वा तत् भवेत्। संवृतासंवृतः स्वप्नं पश्यति तथा वा तत् भवेत् अन्यथा वा तत् भवेत्।

भी स्वप्न देखता है, संवृतासंवृत भी स्वप्न देखता है। संवृत स्वप्न देखता है, वह यथातथ्य देखता है। असंवृत स्वप्न देखता है, वह वैसा भी होता है, अन्यथा भी होता है। संवृतासंवृत स्वप्न देखता है, वह वैसा भी होता है, अन्यथा भी होता है।

८२. जीवा णं भंते! किं संवुडा? असंवुडा? संवुडासंवुडा?
गोयमा! जीवा संवुडा वि, असंवुडा वि, संवुडासंवुडा वि। एवं जहेव सुत्ताणं दंडओ तहेव भाणियव्वो॥

जीवाः भदन्त! किं संवृताः? असंवृताः? संवृतासंवृताः?
गौतम! जीवाः संवृताः अपि, असंवृताः अपि, संवृतासंवृताः अपि। एवं यथैव सुप्तानां दण्डकः तथैव भणितव्यः।

८२. भंते! क्या जीव संवृत हैं? असंवृत हैं? संवृतासंवृत हैं?
गौतम! जीव संवृत भी हैं, असंवृत भी हैं, संवृतासंवृत भी हैं। जैसे सुप्त के दण्डक वैसे ही संवृत की वक्तव्यता।

८३. कति णं भंते सुविणा पण्णत्ता?
गोयमा! बायालीसं सुविणा पण्णत्ता॥

कति भदन्त! स्वप्नाः प्रज्ञप्ताः?
गौतम! द्वाचत्वारिंशत् स्वप्नाः प्रज्ञप्ताः।

८३. भंते! स्वप्न कितने प्रज्ञप्त हैं?
गौतम! स्वप्न बयालीस प्रज्ञप्त हैं।

८४. कति णं भंते! महासुविणा पण्णत्ता?
गोयमा! तीसं महासुविणा पण्णत्ता॥

कति भदन्त! महास्वप्नाः प्रज्ञप्ताः?
गौतम! त्रिंशत् महास्वप्नाः प्रज्ञप्ताः।

८४. भंते! महास्वप्न कितने प्रज्ञप्त हैं?
गौतम! महास्वप्न तीस प्रज्ञप्त हैं।

८५. कति णं भंते! सव्वसुविणा पण्णत्ता?
गोयमा! बावत्तरिं सव्वसुविणा पण्णत्ता॥

कति भदन्त! सर्वस्वप्नाः प्रज्ञप्ताः?
गौतम! द्विसप्ततिः सर्वस्वप्नाः प्रज्ञप्ताः।

८५. भंते! सर्वस्वप्न कितने प्रज्ञप्त हैं?
गौतम! सर्व स्वप्न बहत्तर प्रज्ञप्त हैं।

८६. तित्थगरमायरो णं भंते! तित्थगरंसि गब्भं वक्कममाणंसि कति महासुविणे पासित्ता णं पडिबुज्झंति?
गोयमा! तित्थगरमायरो तित्थगरंसि गब्भं वक्कममाणंसि एएसिं तीसाए महासुविणाणं इमे चोद्दस महासुविणे पासित्ता णं पडिबुज्झंति, तं जहा—गय-उसभ जाव सिहिं च॥

तीर्थंकरमातरः भदन्त! तीर्थंकरे गर्भम् अवक्रामति कति महास्वप्नान् दृष्ट्वा प्रतिबुध्यन्ते?
गौतम! तीर्थंकरमातरः तीर्थंकरे गर्भम् अवक्रामति एतेषां त्रिंशत् महास्वप्नानां इमान् चतुर्दशमहास्वप्नान् दृष्ट्वा प्रतिबुध्यन्ते, तद्यथा—गज-ऋषभ यावत् शिखिनं च।

८६. भंते! तीर्थंकर की माता तीर्थंकर के गर्भ में आने के समय कितने महास्वप्न देखकर जागृत होती हैं?
गौतम! तीर्थंकर की माता तीर्थंकर के गर्भ में आने के समय इन तीस महास्वप्नों में से ये चौदह महास्वप्न देखकर जागृत होती हैं, जैसे—गज, वृषभ यावत् अग्नि।

८७. चक्कवट्टिमायरो णं भंते! चक्कवट्टिंसि गब्भं वक्कममाणंसि कति महासुविणे पासित्ता णं पडिबुज्झंति?
गोयमा! चक्कवट्टिमायरो चक्कवट्टिंसि गब्भं वक्कममाणंसि एएसिं तीसाए महासुविणाणं इमे चोद्दस महासुविणे पासित्ता णं पडिबुज्झंति, तं जहा—गय-उसभ जाव सिहिं च॥

चक्रवर्तिमातरः भदन्त! चक्रवर्तौ गर्भम् अवक्रामति ऐतेषां त्रिंशत् महास्वप्नान् दृष्ट्वा प्रतिबुध्यन्ते?
गौतम! चक्रवर्तिमातरः चक्रवर्तौ गर्भम् अवक्रामति एतेषां त्रिंशत् महास्वप्नानां इमान् चतुर्दशमहास्वप्नान् दृष्ट्वा प्रतिबुध्यन्ते, तद्यथा—गज-ऋषभ यावत् शिखिनं च।

८७. भंते! चक्रवर्ती की माता चक्रवर्ती के गर्भ में आने के समय कितने महास्वप्न देखकर जागृत होती हैं?
गौतम! चक्रवर्ती की माता चक्रवर्ती के गर्भ में आने के समय इन तीस महास्वप्न में से ये चौदह महास्वप्न देखकर जागृत होती हैं, जैसे—गज, वृषभ यावत् अग्नि।

८८. वासुदेवमायरो णं—पुच्छा।
गोयमा! वासुदेवमायरो वासुदेवंसि गब्भं वक्कममाणंसि एएसिं चोद्दसण्हं

वासुदेवमातरः—पृच्छा।
गौतम! वासुदेवमातरः वासुदेवे गर्भम् अवक्रामति एतेषां चतुर्दशानां

८८. वासुदेव की माता—पृच्छा।
गौतम! वासुदेव की माता वासुदेव के गर्भ में आने के समय इन चौदह महास्वप्नों में से

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महासुविणाणं अण्णयरे सत्त महासुविणे पासित्ता णं पडिबुज्झंति॥

महास्वप्नानाम् अन्यतरान् सप्त महास्वप्नान् दृष्ट्वा प्रतिबुध्यन्ते।

किन्हीं सात महास्वप्नों को देखकर जागृत होती हैं।

८९. बलदेवमायरो–पुच्छा।
गोयमा! बलदेवमायरो जाव एएसिं चोद्दसण्हं महासुविणाणं अण्णयरे चत्तारि महासुविणे पासित्ता णं पडिबुज्झंति॥

बलदेवमातरः–पृच्छा।
गौतम! बलदेवमातरः यावत् एतेषां महास्वप्नानाम् अन्यतरान् चतुरः महास्वप्नान् दृष्ट्वा प्रतिबुध्यन्ते।

८९. बलदेव की माता–पृच्छा।
गौतम! बलदेव की माता यावत् इन चौदह महास्वप्नों में से किन्हीं चार महास्वप्नों को देखकर जागृत होती हैं।

९०. मंडलियमायरो णं भंते!–पुच्छा?
गोयमा! मंडलियमायरो जाव एएसिं चोद्दसण्हं महासुविणाणं अण्णयरं एगं महासुविणं पासित्ता णं पडिबुज्झंति॥

माण्डलिकमातरः भदन्त!–पृच्छा।
गौतम! माण्डलिकमातरः यावत् एतेषां चतुर्दशानां महास्वप्नानाम् अन्यतरम् एकं महास्वप्नं दृष्ट्वा प्रतिबुध्यन्ते।

९०. भंते! मांडलिक की माता–पृच्छा।
गौतम! मांडलिक की माता यावत् इन चौदह महास्वप्नों में से किसी एक महास्वप्न को देखकर जागृत होती हैं।

भगवओ महासुविण-दंसण-पदं

९१. समणे भगवं महावीरे छउमत्थकालियाए अंतिमराइयंसि इमे दस महासुविणे पासित्ता णं पडिबुद्धे, तं जहा–

१. एगं च णं महं घोररूवदित्तधरं तालपिसायं सुविणे पराजियं पासित्ता णं पडिबुद्धे।

२. एगं च णं महं सुक्किलपक्खगं पुंसकोइलगं सुविणे पासित्ता णं पडिबुद्धे।

३. एगं च णं महं चित्तविचित्तपक्खगं पुंसकोइलगं सुविणे पासित्ता णं पडिबुद्धे।

४. एगं च णं महं दामदुगं सव्वरयणामय सुविणे पासित्ता णं पडिबुद्धे।

५. एगं च णं महं सेयं गोवग्गं सुविणे पासित्ता णं पडिबुद्धे।

६. एगं च णं महं पउमसरं सव्वओ समंता कुसुमियं सुविणे पासित्ता णं पडिबुद्धे।

७. एगं च णं महं सागरं उम्मीवीयी-सहस्सकलियं भूयाहिं तिण्णं सुविणे पासित्ता णं पडिबुद्धे।

८. एगं च णं [illegible] दिणयरं तेयसा जलंतं सुविणे पासित्ता णं [illegible] बुद्धे।

९. एगं च णं महं हरिवेरुलियवण्णाभेणं नियगेणं अंतेणं माणुसुत्तरं पव्वयं सव्वओ समंता आवेढियं परिवेढियं सुविणे पासित्ता णं पडिबुद्धे।

१०. एगं च णं महं मंदरे पव्वए मंदरचूलियाए उवरिं सीहासणवरगयं अप्पाणं सुविणे पासित्ता णं पडिबुद्धे।

भगवतः महास्वप्न-दर्शन-पदम्

श्रमणः भगवान् महावीरः छद्मस्थकालिक्याम् अन्तिमरात्रिकायाम् इमान् दश महास्वप्नान् दृष्ट्वा प्रतिबुद्धः, तद्यथा–

१. एकं च महान्तं घोररूपदीप्तधरं तालपिशाचं स्वप्ने पराजितं दृष्ट्वा प्रतिबुद्धः।

२. एकं च महान्तं शुक्लपक्षकं पुंस्कोकिलकं स्वप्ने दृष्ट्वा प्रतिबुद्धः।

३. एकं च महान्तं चित्रविचित्रपक्षकं पुंस्कोकिलकं स्वप्ने दृष्ट्वा प्रतिबुद्धः।

४. एकं महद् दामद्विकं सर्वरत्नमयं स्वप्ने दृष्ट्वा प्रतिबुद्धः।

५. एकं च महान्तं श्वेतं गोवर्गं स्वप्ने दृष्ट्वा प्रतिबुद्धः।

६. एकं च महत् पद्मसरः सर्वतः समन्तात् कुसुमितं स्वप्ने दृष्ट्वा प्रतिबुद्धः।

७. एकं च महान्तं सागरम् उर्मिवीचिसहस्रकलितं भुजाभ्यां तीर्णं स्वप्ने दृष्ट्वा प्रतिबुद्धः।

८. एकं च महान्तं दिनकरं तेजसा ज्वलन्तं स्वप्ने दृष्ट्वा प्रतिबुद्धः।

९. एकं च महान्तं हरिवैडूर्यवर्णाभेन निजकेन आन्त्रेण मानुषोत्तरं पर्वतं सर्वतः समन्तात् आवेष्टितं परिवेष्टितं स्वप्ने दृष्ट्वा प्रतिबुद्धः।

१०. एकं च महान्तं मन्दरे पर्वते मन्दरचूलिकायाः उपरि सिंहासनवरगतम् आत्मानं स्वप्ने दृष्ट्वा प्रतिबुद्धः।

भगवान् का महास्वप्न-दर्शन पद

९१. श्रमण भगवान् महावीर छद्मस्थकालीन अवस्था में रात के अंतिम भाग में इन दस महास्वप्नों को देखकर जागृत हुए, जैसे–

१. महान् घोर रूप वाले दीप्तिमान एक ताल पिशाच (ताड़ जैसे लंबे पिशाच) को स्वप्न में पराजित हुआ देखकर प्रतिबुद्ध हुए।

२. श्वेत पंखों वाले एक बड़े पुंस्कोकिल को स्वप्न में देखकर प्रतिबुद्ध हुए।

३. चित्र विचित्र पंखों वाले एक बड़े पुंस्कोकिल को स्वप्न में देखकर प्रतिबुद्ध हुए।

४. सर्वरत्नमय दो बड़ी मालाओं को स्वप्न में देखकर प्रतिबुद्ध हुए।

५. एक महान् श्वेत गोवर्ग को स्वप्न में देखकर प्रतिबुद्ध हुए।

६. चिहुं ओर कुसुमित एक बड़े पद्म सरोवर को स्वप्न में देखकर प्रतिबुद्ध हुए।

७. स्वप्न में हजारों ऊर्मियों और वीचियों से परिपूर्ण एक महासागर को भुजाओं से तीर्ण हुआ देखकर प्रतिबुद्ध हुए।

८. तेज से जाज्वल्यमान एक महान् सूर्य को स्वप्न में देखकर प्रतिबुद्ध हुए।

९. स्वप्न में भूरे व नीले वर्ण वाली अपनी आंतों से मानुषोत्तर पर्वत को चारों ओर से आवेष्टित और परिवेष्टित हुआ देखकर प्रतिबुद्ध हुए।

१०. स्वप्न में महान् मंदर पर्वत की मंदर चूलिका पर अवस्थित सिंहासन के ऊपर अपने आपको बैठे हुए देखकर प्रतिबुद्ध हुए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१. जण्णं समणे भगवं महावीरे एगं महं घोररूवदित्तधरं तालपिसायं सुविणे पराजियं पासित्ता णं पडिबुद्धे, तण्णं समणेणं भगवया महावीरेणं मोहणिज्जे मूलाओ उग्घाइए।

२. जण्णं समणे भगवं महावीरे एगं महं सुक्किलपक्खगं पुंसकोइलगं सुविणे पासित्ता णं पडिबुद्धे, तण्णं समणे भगवं महावीरे सुक्कज्झाणोवगए विहरति।

३. जण्णं समणे भगवं महावीरे एगं महं चित्तविचित्तपक्खगं पुंसकोइलगं सुविणे पासित्ता णं पडिबुद्धे, तण्णं समणे भगवं महावीरे विचित्तं ससमय-परसमइयं दुवालसंगं गणिपिडगं आघवेति पण्णवेति परूवेति दंसेति निदंसेति उवदंसेति, तं जहा—आयारं, सूयगडं जाव दिट्ठिवायं।

४. जण्णं समणे भगवं महावीरे एगं महं दामदुगं सव्वरयणामयं सुविणे पासित्ता णं पडिबुद्धे, तण्णं समणे भगवं महावीरे दुविहे धम्मे पण्णवेति, तं जहा—अगार-धम्मं वा, अणगारधम्मं वा।

५. जण्णं समणे भगवं महावीरे एगं महं सेयं गोवग्गं सुविणे पासित्ता णं पडिबुद्धे, तण्णं समणस्स भगवओ महावीरस्स चाउव्वण्णाइण्णे समणसंघे, तं जहा—समणा, समणीओ, सावया, सावियाओ।

६. जण्णं समणे भगवं महावीरे एगं महं पउमसरं सव्वओ समंता कुसुमियं सुविणे पासित्ता णं पडिबुद्धे, तण्णं समणे भगवं महावीरे चउव्विहे देवे पण्णवेति, तं जहा—भवणवासी, वाणमंतरे, जोतिसिए, वेमाणिए।

७. जण्णं समणे भगवं महावीरे एगं महं सागरं उम्मीवीयीसहस्सकलियं भूयाहिं तिण्णं सुविणे पासित्ता णं पडिबुद्धे, तण्णं समणेणं भगवया महावीरेणं अणादीए अणवदग्गे दीहमद्धे चाउरंते संसारकंतारे तिण्णे।

८. जण्णं समणे भगवं महावीरे एगं महं दिणयरं तेयसा जलंतं सुविणे पासित्ता णं

१. यत् श्रमणः भगवान् महावीरः एकं च महान्तं घोररूपदीप्तधरं तालपिशाचं स्वप्ने पराजितं दृष्ट्वा प्रतिबुद्धः, तत् श्रमणेन भगवता-महावीरेण मोहनीयं कर्म मूलतः उद्घातितम्।

२. यत् श्रमणः भगवान् महावीरः एकं च महान्तं शुक्लपक्षकं पुंस्कोकिलकं स्वप्ने दृष्ट्वा प्रतिबुद्धः, तत् श्रमणः भगवान् महावीरः शुक्लध्यानोपगतः विहरति।

३. यत् श्रमणः भगवान् महावीरः एकं च महान्तं चित्रविचित्रपक्षकं पुंस्कोकिलकं स्वप्ने दृष्ट्वा प्रतिबुद्धः, तत् श्रमणः भगवान् महावीरः विचित्रं स्वसमय-परसामयिकं द्वादशाङ्गं गणिपिटकम् आख्याति प्रज्ञापयति प्ररूपयति दर्शयति निदर्शयति, उपदर्शयति, तद्यथा- आचारं, सूत्रकृतं यावत्।

४. यत् श्रमणः भगवान् महावीरः एकं महद् दामद्विकं सर्वरत्नमयं स्वप्ने दृष्ट्वा प्रतिबुद्धः तत् श्रमणः भगवान् महावीरः द्विविधं धर्मं प्रज्ञापयति, तद्यथा- अगारधर्मं वा, अनगारधर्मं वा।

५. यत् श्रमणः भगवान् महावीरः एकं च महान्तं श्वेतं गोवर्गं स्वप्ने दृष्ट्वा प्रतिबुद्धः, तत् श्रमणस्य भगवतः महा-वीरस्य चातुर्वर्णाकीर्णः श्रमणसंघः, तद्यथा-श्रमणाः श्रमण्यः, श्रावकाः श्राविकाः।

६. यत् श्रमणः भगवान् महावीरः एकं महत् पद्मसरः सर्वतः समन्तात् कुसुमितं स्वप्ने दृष्ट्वा प्रतिबुद्धः तत् श्रमणः भगवान् महावीरः चतुर्विधान् देवान् प्रज्ञापयति, तद्यथा-भवन-वासिनः वानमन्तरान्, ज्योतिष्कान्, वैमानिकान्।

७. यत् श्रमणः भगवान् महावीरः एकं महान्तं सागरम् ऊर्मिवीचिसहस्रकलितं भुजाभ्यां तीर्णं स्वप्ने दृष्ट्वा प्रतिबुद्धः, तत् श्रमणेन भगवता महावीरेण अनादिकम् अनवदग्रं दीर्घाध्वानं चातुरन्तं संसारकन्तारं तीर्णम्।

८. यत् श्रमणः भगवान् महावीरः एकं च महान्तं दिनकरं तेजसा ज्वलन्तं स्वप्ने

१. श्रमण भगवान् महावीर महान् घोर रूप वाले दीप्तिमान् एक ताल-पिशाच को स्वप्न में पराजित हुआ देखकर प्रतिबुद्ध हुए, उसके फलस्वरूप श्रमण भगवान् महावीर ने मोहनीय कर्म को मूल से उखाड़ फैंका।

२. श्रमण भगवान् महावीर श्वेत पंखों वाले एक बड़े पुंस्कोकिल को स्वप्न में देखकर प्रतिबुद्ध हुए, उसके फलस्वरूप श्रमण भगवान् महावीर शुक्ल ध्यान को प्राप्त हुए।

३. श्रमण भगवान् महावीर चित्र विचित्र पंखों वाले एक बड़े पुंस्कोकिल को स्वप्न में देखकर प्रतिबुद्ध हुए, उसके फलस्वरूप श्रमण भगवान् महावीर ने स्वसमय और पर-समय का निरूपण करने वाले द्वादशांग गणिपिटक का आख्यान, प्रज्ञापन, प्ररूपण, दर्शन, निदर्शन और उपदर्शन किया, जैसे- आचार, सूत्रकृत् यावत् दृष्टिवाद।

४. श्रमण भगवान् महावीर सर्वरत्नमय दो बड़ी मालाओं को स्वप्न में देखकर प्रतिबुद्ध हुए, उसके फलस्वरूप श्रमण भगवान् महावीर ने इन दो प्रकार के धर्मों की प्रज्ञापना की, जैसे—अगार धर्म और अनगार धर्म।

५. श्रमण भगवान् महावीर एक महान् श्वेत गोवर्ग को स्वप्न में देखकर प्रतिबुद्ध हुए, उसके फलस्वरूप श्रमण भगवान् महावीर के चतुर्वर्णात्मक श्रमण संघ हुआ, जैसे—श्रमण, श्रमणी, श्रावक और श्राविका।

६. श्रमण भगवान् महावीर चिहुं ओर कुसुमित एक बड़े पद्म सरोवर को स्वप्न में देखकर प्रतिबुद्ध हुए, उसके फलस्वरूप श्रमण भगवान् महावीर ने चार प्रकार के देवों का प्रज्ञापन किया, जैसे—भवनपति, वाणमंतर, ज्योतिष्क और वैमानिक।

७. श्रमण भगवान् महावीर स्वप्न में हजारों ऊर्मियों और वीचियों से परिपूर्ण एक महा-सागर को भुजाओं से तीर्ण हुआ देखकर प्रतिबुद्ध हुए, उसके फलस्वरूप श्रमण भगवान् महावीर ने अनादि, अनंत, प्रलंब और चार अंत वाले संसार रूपी कानन को पार किया।

८. श्रमण भगवान् महावीर तेज से जाज्वल्यमान एक महान् सूर्य को स्वप्न में

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पडिबुद्धे, तण्णं समणस्स भगवओ महावीरस्स अणंते अणुत्तरे निव्वाघाए निरावरणे कसिणे पडिपुण्णे केवलवरनाणदंसणे समुप्पन्ने।

९. जण्णं समणे भगवं महावीरे एगं महं हरिवेरुलिय वण्णाभेणं नियगेणं अंतेणं माणुसुत्तरं पव्वयं सव्वओ समंता आवेढियं परिवेढियं सुविणे पासित्ता णं पडिबुद्धे, तण्णं समणस्स भगवओ महावीरस्स ओराला कित्ति-वण्ण-सद्द-सिलोया सदेवमणुयासुरे लोए परिभमंति–इति खलु समणे भगवं महावीरे, इति खलु समणे भगवं महावीरे।

१०. जण्णं समणे भगवं महावीरे मंदरे पव्वए मंदरचूलियाए उवरिं सीहासणवरगयं अप्पाणं सुविणे पासित्ता णं पडिबुद्धे, तण्णं समणे भगवं महावीरे सदेवमणुयासुराए परिसाए मज्झगए केवली धम्मं आघवेति पण्णवेति परूवेति दंसेति निदंसेति उवदंसेति॥

दृष्ट्वा प्रतिबुद्धः, तत् श्रमणस्य भगवतः महावीरस्य अनन्तम् अनुत्तरम् निर्व्याघातं निरावरणं कृत्स्नं प्रतिपूर्णं केवलवरज्ञानदर्शनं समुत्पन्नम्।

९. यत् श्रमणः भगवान् महावीरः एकं महान्तं हरिवैडूर्यवर्णाभेन निजकेन आन्त्रेण मानुषोत्तरं पर्वतं सर्वतः समन्तात् आवेष्टितं परिवेष्टितं स्वप्ने दृष्ट्वा प्रतिबुद्धः, तत् श्रमणस्य भगवतः महावीरस्य 'ओराला' कीर्ति-वर्ण-शब्द-श्लोकाः सदेवमनुजासुरे लोके परिभ्रमन्ति– इति खलु श्रमणः भगवान् महावीरः, इति खलु श्रमणः भगवान् महावीरः।

१०. यत् श्रमणः भगवान् महावीरः मन्दरे पर्वते मन्दरचूलिकायाः उपरि सिंहासनवरगतम् आत्मानं स्वप्ने दृष्ट्वा प्रतिबुद्धः, तत् श्रमणः भगवान् महावीरः सदेवमनुजासुरायां परिषदि मध्यगतः केवली धर्मम् आख्याति प्रज्ञापयति प्ररूपयति दर्शयति निदर्शयति उपदर्शयति।

देखकर प्रतिबुद्ध हुए, उसके फलस्वरूप श्रमण भगवान् महावीर को अनंत, अनुत्तर, निर्व्याघात, निरावरण, पूर्ण, प्रतिपूर्ण केवल ज्ञान और केवल दर्शन प्राप्त हुए।

९. श्रमण भगवान् महावीर स्वप्न में भूरे और नील वर्ण वाली अपनी आंतों से मानुषोत्तर पर्वत को चारों ओर से आवेष्टित और परिवेष्टित हुआ देखकर प्रतिबुद्ध हुए, उसके फलस्वरूप श्रमण भगवान् महावीर की देव, मनुष्य और असुरों के लोक में प्रधान कीर्ति, वर्ण, शब्द और श्लाघा व्याप्त हुई। श्रमण भगवान् महावीर ऐसे हैं, श्रमण भगवान् महावीर ऐसे हैं–ये शब्द सर्वत्र फैल गए।

१०. श्रमण भगवान् महावीर स्वप्न में महान् मंदर पर्वत की मंदर चूलिका पर अवस्थित सिंहासन पर अपने आपको बैठे हुए देखकर प्रतिबुद्ध हुए, उसके फलस्वरूप श्रमण भगवान् महावीर ने देव, मनुष्य और असुर की परिषद् के बीच केवली प्रज्ञप्त धर्म का आख्यान, प्रज्ञापन, प्ररूपण, दर्शन, निदर्शन और उपदर्शन किया।

सुविण-फल-पदं

९२. इत्थी वा पुरिसे वा सुविणंते एगं महं हयपंतिं वा गयपंतिं वा नरपंतिं वा किन्नरपंतिं वा किंपुरिसपंतिं वा महोरगपंतिं वा गंधव्वपंतिं वा वसभपंतिं वा पासमाणे पासति, दुहमाणे दुहति, दूहमिति अप्पाणं मन्नति, तक्खणामेव बुज्झति, तेणेव भवग्गहणेणं सिज्झति जाव सव्वदुक्खाणं अंतं करेति॥

स्वप्न-फल-पदम्

स्त्री वा पुरुषः वा स्वप्नान्ते एकां महतीं हयपंक्तिं वा गजपंक्तिं वा किन्नरपंक्तिं वा किम्पुरुषपंक्तिं वा गन्धर्वपंक्तिं वा वृषभपंक्तिं वा पश्यन् पश्यति, आरोहन् आरोहति, आरूढम् इति आत्मानं मन्यते, तत्क्षणमेव 'बुज्झति' तेनैव भवग्रहणेन सिद्ध्यति यावत् सर्वदुःखानाम् अन्तं करोति।

स्वप्न-फल-पद

९२. स्त्री अथवा पुरुष स्वप्न के अंत में एक महान् अश्व पंक्ति, गज पंक्ति, नर पंक्ति, किन्नर पंक्ति, किंपुरुष पंक्ति, महोरग पंक्ति, गंधर्व पंक्ति, वृषभ पंक्ति को देखता हुआ देखता है, चढता हुआ चढता है, मैं चढ गया हूं, ऐसा स्वयं को मानता है, उसी क्षण वह जागृत हो जाए तो उसी भव-ग्रहण में सिद्ध होता है यावत् सब दुःखों का अंत करता है।

९३. इत्थी वा पुरिसे वा सुविणंते एगं महं दामिणिं पाईणपडिणायतं दुहओ समुद्दे पुट्ठं पासमाणे पासति, संवेल्लेमाणे संवेल्लेइ, संवेल्लियमिति अप्पाणं मन्नति, तक्खणामेव बुज्झति, तेणेव भवग्गहणेणं सिज्झति जाव सव्वदुक्खाणं अंतं करेति॥

स्त्री वा पुरुषः वा स्वप्नान्ते एकां महतीं दामिनीं प्राचीन-प्रतीचीनायातां द्विधतः समुद्रान् स्पृष्टं पश्यन् पश्यति, संवेल्लन् संवेल्लति संवेल्लितं इति आत्मानं मन्यते, तत्क्षणमेव 'बुज्झति', तेनैव भवग्रहणेन सिद्ध्यति यावत् सर्वदुःखानाम् अन्तं करोति।

९३. स्त्री अथवा पुरुष स्वप्न के अंत में पूर्व से पश्चिम तक फैली हुई, समुद्र के दोनों छोरों का स्पर्श करती हुई एक महान् रस्सी को देखता हुआ देखता है, समेटता हुआ समेटता है। मैंने समेटा है, ऐसा स्वयं को मानता है, वह उसी क्षण जागृत हो जाए तो उसी भव-ग्रहण में सिद्ध होता है यावत् सब दुःखों का अंत करता है।

९४. इत्थी वा पुरिसे वा सुविणंते एगं महं

स्त्री वा पुरुषः वा स्वप्नान्ते एकां महतीं

९४. स्त्री अथवा पुरुष स्वप्न के अंत में पूर्व से

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रज्जुं पाईणपडिणायतं दुहओ लोगंते पुट्ठं पासमाणे पासति, छिंदमाणे छिंदति, छिन्नमिति अप्पाणं मन्नति, तक्खणामेव बुज्झति, तेणेव भवग्गहणेणं सिज्झति जाव सव्वदुक्खाणं अंतं करेति॥

रज्जुं प्राचीनप्रतीचीनायातां द्वितः लोकान्तान् स्पृष्टं पश्यन् पश्यति, छिंदन् छिनत्ति, छिन्नम् इति आत्मानं पश्यति, तत्क्षणमेव 'बुज्झति', तेनैव भवग्रहणेन सिद्धयति यावत् सर्वदुःखानाम् अन्तं करोति।

पश्चिम तक फैली हुई लोक के दोनों छोरों का स्पर्श करती हुई एक महान् रज्जु को देखता हुआ देखता है, काटता हुआ काटता है। मैंने काट दिया है, ऐसा स्वयं को मानता है, वह उसी क्षण जागृत हो जाए तो उसी भवग्रहण में सिद्ध होता है यावत् सब दुःखों का अंत करता है।

९५. इत्थी वा पुरिसे वा सुविणंते एगं महं किण्हसुत्तगं वा नीलसुत्तगं वा लोहियसुत्तगं वा हालिद्दसुत्तगं वा सुक्किलसुत्तगं वा पासमाणे पासति, उग्गोवेमाणे उग्गोवेति, उग्गोवितमिति अप्पाणं मन्नति, तक्खणामेव बुज्झति, तेणेव भवग्गहणेणं सिज्झति जाव सव्वदुक्खाणं अंतं करेति॥

स्त्री वा पुरुषः वा स्वप्नान्ते एकं महान्तं कृष्णसूत्रकं वा नीलसूत्रकं वा लोहितसूत्रकं वा हारिद्रसूत्रकं वा शुक्ल-सूत्रकं वा पश्यन् पश्यति, उद्गोपयन् उद्गोपयति, उद्गोपितम् इति आत्मानं मन्यते, तत्क्षणमेव 'बुज्झति' तेनैव भवग्रहणेन सिद्धयति यावत् सर्वदुःखानाम् अन्तं करोति।

९५. स्त्री अथवा पुरुष स्वप्न के अंत में एक महान् काले सूत्र, नीले सूत्र, लाल सूत्र, पीले सूत्र अथवा श्वेत सूत्र को देखता हुआ देखता है, सुलझाता हुआ सुलझाता है, मैंने इसे सुलझाया है, ऐसा स्वयं को मानता है, वह उसी क्षण जागृत हो जाए तो उसी भव-ग्रहण में सिद्ध होता है यावत् सब दुःखों का अंत करता है।

९६. इत्थी वा पुरिसे वा सुविणंते एगं महं अयरासिं वा तंबरासिं वा तउयरासिं वा सीसगरासिं वा पासमाणे पासति, दुरुहमाणे दुरुहति, दुरूढमिति अप्पाणं मन्नति, तक्खणामेव बुज्झति, दोच्चे भवग्गहणे सिज्झति जाव सव्वदुक्खाणं अंतं करेति॥

स्त्री वा पुरुषः वा स्वप्नान्ते एकं महान्तं अयःराशिं वा, आरोहन् आरोहति, आरूढम् इति आत्मानं मन्यते तत्क्षणमेव 'बुज्झति', द्वितीये भवग्रहणे सिद्धयति यावत् सर्वदुःखानाम् अन्तं करोति।

९६. स्त्री अथवा पुरुष स्वप्न के अंत में एक महान् लोह राशि, ताम्र राशि, रांगा राशि, सीसा राशि को देखता हुआ देखता है, उस पर चढता हुआ चढता है। मैं चढ़ गया हूं, ऐसा स्वयं को मानता है। वह उसी क्षण जागृत हो जाए तो दूसरे भव-ग्रहण में सिद्ध होता है यावत् सब दुःखों का अंत करता है।

९७. इत्थी वा पुरिसे वा सुविणंते एगं महं हिरण्णरासिं वा सुवण्णरासिं वा रयणरासिं वा वइरासिं वा पासमाणे पासति, दुरुहमाणे दुरुहति, दुरूढमिति अप्पाणं मन्नति, तक्खणामेव बुज्झति, तेणेव भवग्गहणेणं सिज्झति जाव सव्वदुक्खाणं अंतं करेति॥

स्त्री वा पुरुषः वा स्वप्नान्ते एकं महान्तं हिरण्यराशिं वा सुवर्णराशिं वा रजतराशिं वा वज्रराशिं वा पश्यन् पश्यति, आरोहन् आरोहति, आरूढम् इति आत्मानं मन्यते, तत्क्षणमेव 'बुज्झति', तेनैव भवग्रहणेन सिद्धयति यावत् सर्वदुःखानाम् अन्तं करोति।

९७. स्त्री अथवा पुरुष स्वप्न के अंत में एक महान् हिरण्य-राशि, स्वर्ण-राशि, रजत-राशि, वज्र-राशि को देखता हुआ देखता है, उस पर चढता हुआ चढता है। मैं चढ गया हूं, ऐसा स्वयं को मानता है। वह उसी क्षण जागृत हो जाए तो उसी भव-ग्रहण में सिद्ध होता है यावत् सब दुःखों का अंत करता है।

९८. इत्थी वा पुरिसे वा सुविणंते एगं महं तणरासिं वा कट्ठरासिं वा पत्तरासिं वा तयरासिं वा तुसरासिं वा भुसरासिं वा गोमयरासिं वा अवकररासिं वा पासमाणे पासति, विक्खिरमाणे विक्खिरति, विक्खिण्णमिति अप्पाणं मन्नति, तक्खणामेव बुज्झति, तेणेव भवग्गहणे सिज्झति जाव सव्वदुक्खाणं अंतं करेति॥

स्त्री वा पुरुषः वा स्वप्नान्ते एकं महान्तं तृणराशिं वा काष्ठराशिं वा पत्रराशिं वा त्वक्राशिं वा तुषराशिं वा बुसराशिं वा गोमयराशिं वा अवकरराशिं वा पश्यन् पश्यति, विकीर्यमाणं विकिरति, विकीर्णम् इति आत्मानं मन्यते, तत्क्षणमेव 'बुज्झति', तेनैव भवग्रहणेन सिद्धयति यावत् सर्वदुःखानाम् अन्तं करोति।

९८. स्त्री अथवा पुरुष स्वप्न के अंत में एक महान् तृण के ढेर, काठ के ढेर, पत्तों के ढेर, छाल के ढेर, तुष के ढेर, भूसे के ढेर, गोमय (गोबर) के ढेर, अकूरडी के ढेर को देखता हुआ देखता है उसे बिखेरता हुआ बिखेरता है, मैंने बिखेर दिया है, ऐसा स्वयं को मानता है, वह उसी क्षण जागृत हो जाए तो उसी भव-ग्रहण में सिद्ध यावत् सब दुःखों का अंत करता है।

९९. इत्थी वा पुरिसे वा सुविणंते एगं महं

स्त्री वा पुरुषः वा स्वप्नान्ते एकं महान्तं

९९. स्त्री अथवा पुरुष स्वप्न के अंत में एक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सरथंभं वा वीरथंभं वा वंसीमूलथंभं वा वल्लीमूलथंभं वा पासमाणे पासति, उम्मूलेमाणे उम्मूलेति, उम्मूलितमिति अप्पाणं मन्नति, तक्खणामेव बुज्झति, तेणेव भवग्गहणेणं सिज्झति जाव सव्वदुक्खाणं अंतं करेति।।

शरस्तम्भं वा वीरणस्तंभं वा वंशीमूलस्तम्भं वा वल्लीमूलस्तंभं वा पश्यन् पश्यति, उन्मूलयन् उन्मूलयति, उन्मूलितम् इति आत्मानं मन्यते, तत्क्षणमेव 'बुज्झति' तेनैव भवग्रहणेन सिद्धयति यावत् सर्वदुःखानाम् अन्तं करोति।

महान् शरकंडे के स्तम्भ, वीरण के स्तम्भ, वंशीमूल के स्तम्भ, वल्लीमूल के स्तम्भ को देखता हुआ देखता है, उन्मूलन करता हुआ उन्मूलन करता है, मैंने उन्मूलन कर दिया है, ऐसा स्वयं को मानता है। वह उसी क्षण जागृत हो जाए तो उसी भव-ग्रहण में सिद्ध यावत् सब दुःखों का अंत करता है।

१००. इत्थी वा पुरिसे वा सुविणंते एगं महं खीरकुंभं वा दधिकुंभं वा घयकुंभं वा मधुकुंभं वा पासमाणे पासति, उप्पाडेमाणे उप्पाडेति, उप्पाडितमिति अप्पाणं मन्नति, तक्खणामेव बुज्झति, तेणेव भवग्गहणेणं सिज्झति जाव सव्वदुक्खाणं अंतं करेति।।

स्त्री वा पुरुषः वा स्वप्नान्ते एकं महान्तं क्षीरकुम्भं वा दधिकुम्भं वा घृतकुम्भं वा मधुकुम्भं वा पश्यन् पश्यति, उत्पाटयन् उत्पाटयति, उत्पाटितम् इति आत्मानं मन्यते, तत्क्षणमेव 'बुज्झति' तेनैव भवग्रहणेन सिद्धयति यावत् सर्वदुःखानाम् अन्तं करोति।

१००. स्त्री अथवा पुरुष स्वप्न के अंत में क्षीर कुंभ, दधि कुंभ, घृत कुंभ, मधु कुंभ को देखता हुआ देखता है, उठाता हुआ उठाता है, मैंने उठाया है, ऐसा स्वयं को मानता है। वह उसी क्षण जागृत हो जाए तो उसी भव-ग्रहण में सिद्ध यावत् सब दुःखों का अंत करता है।

१०१. इत्थी वा पुरिसे वा सुविणंते एगं महं सुराविय़डकुंभं वा सोवीरविय़डकुंभं वा तेल्लकुंभं वा वसाकुंभं वा पासमाणे पासति, भिंदमाणे भिंदति, भिन्नमिति अप्पाणं मन्नति, तक्खणामेव बुज्झति, दोच्चे भवग्गहणे सिज्झति जाव सव्वदुक्खाणं अंतं करेति।।

स्त्री वा पुरुषः वा स्वप्नान्ते एकं महान्तं सुराविकटकुम्भं वा सौवीरविकटकुम्भं वा तैलकुम्भं वा वसाकुम्भं वा पश्यन् पश्यति, भिन्दानः भिनत्ति, भिन्नम् इति आत्मानं मन्यते, तत्क्षणमेव 'बुज्झति', द्वितीये भवग्रहणे सिद्धयति यावत् सर्वदुःखानाम् अन्तं करोति।

१०१. स्त्री अथवा पुरुष स्वप्न के अन्त में एक महान् मदिरा से आकीर्ण कुंभ, कांजी के जल से आकीर्ण कुंभ, तेल कुंभ, वसा कुंभ को देखता हुआ देखता है, भेदन करता हुआ भेदन करता है। मैंने भेदन कर दिया, ऐसा स्वयं को मानता है। वह उसी क्षण जागृत हो जाए तो दूसरे भव-ग्रहण में सिद्ध होता है यावत् सब दुःखों का अंत करता है।

१०२. इत्थी वा पुरिसे वा सुविणंते एगं महं पउमसरं कुसुमियं पासमाणे पासति, ओगाहमाणे ओगाहति, ओगाढमिति अप्पाणं मन्नति, तक्खणामेव बुज्झति, तेणेव भवग्गहणेणं सिज्झति जाव सव्वदुक्खाणं अंतं करेति।।

स्त्री वा पुरुषः वा स्वप्नान्ते एकं महत् पद्मसरः कुसुमितं पश्यन् पश्यति, अवगाहमानः अवगाहते, अवगाढम् इति आत्मानं मन्यते, तत्क्षणमेव 'बुज्झति', तेनैव भवग्रहणेन सिद्धयति यावत् सर्वदुःखानाम् अन्तं करोति।

१०२. स्त्री अथवा पुरुष स्वप्न के अंत में एक महान् कुसुमित पद्म सरोवर को देखता हुआ देखता है, अवगाहन करता हुआ अवगाहन करता है, मैंने अवगाहन कर लिया, ऐसा स्वयं को मानता है। वह उसी क्षण जागृत हो जाए तो उसी भव-ग्रहण में सिद्ध होता है यावत् सब दुःखों का अंत करता है।

१०३. इत्थी वा पुरिसे वा सुविणंते एगं महं सागरं उम्मीवीयीसहस्सकलियं पासमाणे पासति, तरमाणे तरति, तिण्णमिति अप्पाणं मन्नति, तक्खणामेव बुज्झति, तेणेव भवग्गहणेणं सिज्झति जाव सव्वदुक्खाणं अंतं करेति।।

स्त्री वा पुरुषः वा स्वप्नान्ते एकं महान्तं सागरम् ऊर्मिवीचिसहस्रकलितं पश्यन् पश्यति, तीर्यमाणः तरति, तीर्णम् इति आत्मानं मन्यते, तत्क्षणमेव 'बुज्झति', तेनैव भवग्रहणेन सिद्धयति यावत् सर्वदुःखानाम् अन्तं करोति।

१०३. स्त्री अथवा पुरुष स्वप्न के अंत में एक हजारों ऊर्मियों और तरंगों से युक्त एक महान् समुद्र को देखता हुआ देखता है, तरता हुआ तरता है, मैं तर गया, ऐसा स्वयं को मानता है। वह उसी क्षण जागृत हो जाए तो उसी भव-ग्रहण में सिद्ध होता है यावत् सब दुःखों का अंत करता है।

१०४. इत्थी वा पुरिसे वा सुविणंते एगं महं भवणं सव्वरयणामयं पासमाणे पासति, अणुप्पविसमाणे अणुप्पविसति,

स्त्री वा पुरुषः वा स्वप्नान्ते एकं महत् भवनं सर्वरत्नमयं पश्यन् पश्यति, अनुप्रविशन् अनुप्रविशति, अनुप्रविष्टम्

१०४. स्त्री अथवा पुरुष स्वप्न के अंत में एक महान् रत्नमय मकान को देखता हुआ देखता है, अनुप्रवेश करता हुआ अनुप्रवेश करता है,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अणुप्पविट्ठमिति अप्पाणं मन्नति, तक्खणामेव बुज्झति, तेणेव भवग्गहणेणं सिज्झति जाव सव्वदुक्खाणं अंतं करेति॥

इति आत्मानं मन्यते, तत्क्षणमेव 'बुज्झति', तेनैव भवग्रहणेन सिद्धयति यावत् सर्वदुःखानाम् अन्तं करोति।

मैं अनुप्रविष्ट हो चुका हूं, ऐसा स्वयं को मानता है। वह उसी क्षण जागृत हो जाए तो उसी भव-ग्रहण में सिद्ध होता है यावत् सब दुःखों का अन्त करता है।

१०५. इत्थी वा पुरिसे वा सुविणंते एगं महं विमाणं सव्वरयणामयं पासमाणे पासति, दुहमाणे दुहति, दूढमिति अप्पाणं मन्नति, तक्खणामेव बुज्झति, तेणेव भवग्गहणेणं सिज्झति जाव सव्वदुक्खाणं अंतं करेति॥

स्त्री वा पुरुषः वा स्वप्नान्ते एकं महत् विमानं सर्वरत्नमयं पश्यन् पश्यति, दुहमाणे दुहति, दूढं इति आत्मानं मन्यते, तत्क्षणमेव 'बुज्झति', तेनैव भवग्रहणेन सिद्धयति यावत् सर्वदुःखानाम् अन्तं करोति।

१०५. स्त्री अथवा पुरुष स्वप्न के अंत में एक महान् सर्वरत्नमय विमान को देखता हुआ देखता है, उस पर चढ़ता हुआ चढता है, मैं चढ़ गया हूं, ऐसा स्वयं को मानता है, वह उसी क्षण जागृत हो जाए तो उसी भव-ग्रहण में सिद्ध होता है यावत् सब दुःखों का अंत करता है।

भाष्य

सूत्र ७६-१०५

स्वप्न स्वाप-क्रिया में होने वाला एक विकल्प है। निद्रा की अपेक्षा चेतना की तीन अवस्थाएं होती हैं–

१. सुप्त–प्रगाढ़ निद्रा की अवस्था।

२. जागृत–निद्रा-मुक्त अवस्था।

३. सुप्त-जागृत–न अति सुप्त, न अति जागृत, मध्य अवस्था।

प्रस्तुत प्रकरण में स्वप्न की कोटियां, प्रकार, स्वप्न द्रष्टा और स्वप्न का फल–इन चार विषयों पर विचार किया गया है। सूत्र ७६ में स्वप्न दर्शन की पांच कोटियां तथा सूत्र ८३ में स्वप्न के बयालीस प्रकार बतलाए गए हैं। सूत्र ८४ में तीस महास्वप्न का उल्लेख है। स्वप्न असंख्येय होते हैं। ४२ का वर्गीकरण विशिष्ट फल सूचक स्वप्न की अपेक्षा से किया गया है। महा स्वप्न महत्तम फल के सूचक होते हैं।[1]

सूत्र ८१ के अनुसार संवृत, असंवृत और संवृतासंवृत–तीनों प्रकार के मनुष्य स्वप्न देखते हैं। इस प्रसंग में भगवान् महावीर के दस स्वप्नों का भी उल्लेख है। (सूत्र ९१) महावीर के स्वप्न-दर्शन का पाठ स्थानांग-सूत्र में भी उपलब्ध है।[2]

एक प्रश्न उपस्थित होता है–भगवती का पाठ स्थानांग में उद्धृत किया गया अथवा स्थानांग का पाठ भगवती में उद्धृत किया गया?

आयारो के नौवें अध्ययन में महावीर की साधना का विशद वर्णन मिलता है। उसमें महावीर के दस स्वप्नों का उल्लेख नहीं है। आचार चूला के पंद्रहवें अध्ययन में महावीर के जीवन के कुछ प्रसंग हैं किन्तु उनमें दस स्वप्नों का उल्लेख नहीं है। दस स्वप्नों का मूल स्रोत भगवती को ही माना जा सकता है। स्थानांग संग्रह सूत्र है इसलिए अनुमान किया जा सकता है कि उसमें इस विषय का संग्रह भगवती से किया गया।

तीर्थंकर की माता चौदह महास्वप्न देखती है, इसका उल्लेख पर्युषणा कल्प में है। प्रस्तुत आगम के ग्यारहवें शतक में तीर्थंकर वासुदेव, बलदेव और मांडलिक माता के स्वप्न का उल्लेख है।[3]

स्वप्न दर्शन की पांच कोटियों का उल्लेख है। बयालीस स्वप्न और तीस महास्वप्न के नामों का यहां उल्लेख नहीं है। चौदह महास्वप्नों का उल्लेख ग्यारहवें शतक में है।[4]

स्वप्न-फल के आधार पर स्वप्नों की संख्या का निर्धारण किया जा सकता है। सूत्र ९२ से १०५ तक सैंतालीस स्वप्नों का उल्लेख हुआ है। इनमें से स्वप्न और महास्वप्न के पृथक्करण के लिए अनुसंधान आवश्यक है।

स्वप्न दर्शन की पांच कोटियां बहुत मौलिक हैं। अभयदेवसूरि के अनुसार स्वप्न-दर्शन की पांच कोटियों का विवरण इस प्रकार है–

१. **यथा तथ्य**–इस कोटि का स्वप्न यथार्थ होता है। इसके दो भेद किए गए हैं–

दृष्टार्थ अविसंवादी–किसी ने स्वप्न में देखा, मुझे कोई फल दे रहा है और जागने पर किसी ने फल दे दिया। यह दृष्ट अर्थ का अविसंवादी है।

फलाविसंवादी–इस स्वप्न का फल अविसंवादी होता है। किसी ने स्वप्न में स्वयं को गाय, वृषभ, हाथी आदि पर आरूढ़ देखा और उसे कालान्तर में संपत्ति का लाभ हुआ। इसमें फल का संवाद है।

२. **प्रतान**–विस्तार से देखा गया स्वप्न।

३. **चिन्तास्वप्न**–स्वप्न की यह कोटि प्रख्यात है। जागृत अवस्था का चिंतन स्वप्न बन जाता है। विशेषावश्यक भाष्य में स्वप्न के सात निमित्त बतलाए गए हैं–

अनुभूत–जिन वस्तुओं का पहले अनुभव किया जा चुका है।

दृष्ट–जो वस्तुएं देखी हुई हैं।

चिन्तित–जिसके विषय में पहले चिंतन किया गया है।

श्रुत–जो सुना हुआ है किसी शास्त्र के आधार पर जाना हुआ है।

---

१. भ. पू. सू. १४/७६ : बयालीसं सुविण त्ति विशिष्टफलसूचकस्वप्नापेक्षया द्विचत्वारिंशदन्यथाऽसंख्येयास्ते संभवन्तीति। ' महासुविण त्ति' महत्तमफल-सूचकाः।

२. ठाणं १०/१०३

३. भ. ११/१४२।

४. वही, ११/१४२।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकृति विकार—वात-पित्त जनित विकार।

देव—अनुकूल अथवा प्रतिकूल।

अनूप—सजल प्रदेश।

इनके अतिरिक्त व्यक्ति के स्वार्जित पुण्य और पाप भी इष्ट और अनिष्ट स्वप्न के निमित्त बनते हैं।[1] ये सब निमित्तज स्वप्न हैं। स्वप्न की पांच कोटियों में से चिन्तास्वप्न की कोटि के स्वप्न हैं।

उत्तराध्ययन वृत्ति में उद्धृत एक गाथा के अनुसार चिंतास्वप्न फलदायी नहीं होते। उसका प्रतिपाद्य यह है—अनुभूत, दृष्ट और चिंतित स्वप्नों को छोड़कर स्वस्थ शरीर वाले मनुष्य द्वारा देखा गया स्वप्न सफल होता है।[2]

रात के प्रथम प्रहर में दृष्ट स्वप्न वर्ष भर में, दूसरे प्रहर में दृष्ट स्वप्न छह मास में, तीसरे प्रहर में दृष्ट स्वप्न तीन माह में और चौथे प्रहर में दृष्ट स्वप्न तत्काल फल देता है।[3] विस्तार के लिए द्रष्टव्य श्री भिक्षु आगम विषय कोश।

४. तद्विपरीत—यह स्वप्न विपरीत अर्थ देने वाला होता है। स्वप्न द्रष्टा व्यक्ति स्वप्न में जो वस्तु देखता है, जागने पर उससे विपरीत वस्तु की प्राप्ति होती है। उदाहरण स्वरूप कोई व्यक्ति स्वप्न में स्वयं को अमेध्य—अपवित्र वस्तु से लिप्त देखता है। जागने पर उसे मेध्य वस्तु—स्वर्ण की प्राप्ति होती है।

वृत्तिकार ने इसकी व्याख्या में एक मतांतर का उल्लेख किया है। उसके अनुसार मिट्टी के स्थल पर आरूढ़ व्यक्ति स्वप्न में स्वयं को अश्वारूढ़ देखता है। यह तद्विपरीत स्वप्न है।[4]

५. अव्यक्त-दर्शन—इस कोटि के स्वप्नों में स्वप्न की विषयवस्तु का दर्शन स्पष्ट नहीं होता।[5]

प्रस्तुत प्रकरण में स्वप्न के आध्यात्मिक फल का विवरण उपलब्ध है। लोह राशि और सुरा-कुंभ देखने वाला दूसरे भव में सिद्ध होता है। शेष स्वप्न देखने वाला उसी भव में सिद्ध होता है। इसकी व्याख्या का स्रोत अनुसंधेय है।

वृत्तिकार ने स्वप्नान्त का अर्थ स्वप्न का विभाग अथवा अवसान किया है।[6]

स्वप्न द्रष्टा तीन प्रकार के व्यक्ति होते हैं—संवृत, असंवृत और संवृतासंवृत। असंवृत और संवृतासंवृत व्यक्ति द्वारा देखा गया स्वप्न यथार्थ हो भी सकता है और यथार्थ नहीं भी हो सकता। संवृत मुनि के द्वारा देखा गया स्वप्न यथार्थ होता है। चित्त समाधि के प्रकरण में बतलाया गया है—आत्मयोगी मुनि स्वप्न देखता है और वह यथार्थ होता है। यह चित्त समाधि का तीसरा स्थान है। संवृत मुनि यथार्थ स्वप्न देखता है और उस स्वप्न का फल है दुःख से मुक्ति।[7]

शब्द विमर्श

दामिणि—गाय आदि को बांधने की एक प्रकार की रज्जु।

संवेल्लेमाणे—समेटता हुआ।

उग्गोवेमाणे—सुलझाता हुआ।

आवेढियं—आवेष्टित।

परिवेढियं—बार बार आवेष्टित।

गंध-पोग्गल-पदं

१०६. अह भंते! कोट्ठपुडाण वा जाव केयइपुडाण वा अणुवायंसि उब्भिज्जमाणाण वा निब्भिज्जमाणाण वा उक्किरिज्जमाणाण वा विक्किरिज्जमाणाण वा ठाणाओ वा ठाणं संकामिज्जमाणाणं किं कोट्ठे वाति जाव केयई वाति?

गोयमा! नो कोट्ठे वाति जाव नो केयई वाति, घाणसहगया पोग्गला वांति॥

गन्ध-पुद्गल-पदम्

अथ भन्ते! कोष्ठपुटानां वा यावत् केतकीपुटानां वा अनुवाते उद्भिद्यमानानां वा निर्भिद्यमानानां वा उत्कीर्यमाणानां वा विकीर्यमाणानां वा स्थानात् स्थानं संक्रम्यमाणानां किं कोष्ठे वाति यावत् केतकी वाति?

गौतम! नो कोष्ठे वाति यावत् नो केतकी वाति, घ्राणसहगताः पुद्गलाः वान्ति।

गंध-पुद्गल पद

१०६. भंते! कोष्ठ-पुट यावत् केतकी-पुट आघ्राता—गंध ग्रहण करने वाले पुरुष की अनुकूल दिशा में खोले जा रहे हैं, ढक्कन उतारे जा रहे हैं, उत्कीर्ण किया जा रहा है, विकीर्ण किया जा रहा है, एक स्थान से दूसरे स्थान पर संक्रांत किया जा रहा है, इस अवस्था में कोष्ठपुट नाक के पास आता है? यावत् केतकीपुट नाक के पास आता है?

गौतम! न कोष्ठपुट नाक के पास आता है, न केतकीपुट नाक के पास आता है। गंध सहगत पुद्गल नाक के पास आते हैं।

---

१. वि. भा. गा. १७०३ :
अणुहूय दिट्ठ चिंतिय, सुय-पयइ वियार-देवयाऽणूया।
सुमिणस्स निमित्ताइं, पुण्णं पावं च नाभावो॥

२. उत्तरा. सुखबोधा वृत्ति पत्र १३० :
अणुहूय दिट्ठ चिंतिय विवज्जियं, सव्वमेव जं सुमिणं।
जायइ अवितह फलयं, सत्थसरीरेहि जं दिट्ठं॥

३. वही वृत्ति पत्र १३० :
पढमम्मि वासफलया, बीए जामम्मि होंति छम्मासा।
तइयम्मि तिमासफला, चरिमे सज्जफला होंति॥

४. भ. वृ. १६/७६ : 'तव्विवरीय' त्ति यादृशं वस्तु स्वप्ने दृष्टं तद्विपरीतस्यार्थस्य जागरणे यत्र प्राप्तिः स तद्विपरीतस्वप्नो यथा कश्चिदात्मानं अमेध्यविलिप्तं स्वप्ने पश्यति जागरितस्तु मेध्यमर्थं कंचनं प्राप्नोतीति, अन्ये तु तद्विपरीतमेवाहुः—कश्चिद् स्वरूपेण मृत्तिकास्थलमारूढः स्वप्ने च पश्यत्यात्मानमश्वारूढमिति।

५. भ. वृ. १६/७६ : अव्यक्तं—अस्पष्टं दर्शनं—अनुभवः स्वप्नार्थस्य यत्रासावव्यक्तदर्शनः।

६. वही, १६/९२ स्वप्नान्ते स्वप्नस्य विभागे अवसाने वा।

७. दशाश्रुतस्कंध ५/७ सुमिणंदंसणे वा से असमुप्पन्नपुव्वे समुप्पज्जेज्जा अहातच्चं सुमिणं पासित्तए।.....
अहातच्चं तु सुमिणं खिप्पं पासइ संवुडे।
सव्वं च ओहं तरति, दुक्खतो य विमुच्चइ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भाष्य

सूत्र १०६

प्रस्तुत सूत्र में सुगंधित द्रव्यों के पुटों का वर्णन किया गया है। रायपसेणइय सूत्र में २१ पुटों का उल्लेख है–कोष्ठ, तगर, इलायची चोय, चंपक, दमनक, कुंकुम, चंदन, खस, मरुआ, गंधमालती, यूथिका, बेला, स्नान-मल्लिका, केतकी, पाढल, नेवारी, अगर, लौंग, वासक, कपूर।

कोट्ठ–यह सुगन्धित द्रव्य है।

केतकी–केवड़ा। द्रष्टव्य जैन आगम वनस्पति कोश।

अनुवायंसि–अभयदेवसूरि ने अनुवात का अर्थ–'जिस देश से अनुकूल वायु आ रही है', किया है।[1] मलयगिरि ने अनुवात का अर्थ 'विवक्षित आघ्रायक पुरुष की दिशा में हवा चल रही है', किया है।[2]

उब्भिज्जमाण–प्रबलता से अथवा ऊपर की ओर से दीर्यमान,[3] उदघाट्यमान।[4]

निब्भिज्जमाण–नीचे की ओर से दीर्यमान।[5]

प्रस्तुत सूत्र में एक जिज्ञासा और उसका समाधान मिलता है। कोष्ठपुट आदि सुगंधी द्रव्य एक स्थान पर रखे हुए हैं। विवक्षित पुरुष कुछ दूरी पर है। अनुकूल हवा चल रही है और वह दूर बैठा-बैठा सुगंधी द्रव्य की सुरभि ले रहा है। यहां प्रश्न उपस्थित होता है–क्या वह कोष्ठपुट की सुगंधी ले रहा है? कोष्ठपुट दूर है। उसकी सुगंधी कैसे ले सकता है? इस प्रश्न के उत्तर में कहा गया–वह कोष्ठपुट से सुगंधी नहीं ले रहा है। कोष्ठपुट के सुगंधित परमाणु फैल रहे हैं। वे नाक के पास जा रहे हैं। वह घ्राण सहगत पुद्गलों की सुरभि ले रहा है।[6]

१०७. सेवं भंते! सेवं भंते! त्ति॥

तदेवं भदन्त! तदेवं भदन्त! इति।

१०७. भंते! वह ऐसा ही है। भंते! वह ऐसा ही है।

---

१. भ. वृ. १६/१०६ अनुकूलवातो यत्र देशे सोऽनुवातोऽतस्तत्र यस्मादेशाद्-वायुरागच्छति तत्रेत्यर्थः।

२. रायपसेणइय वृत्ति पत्र ९२ अनुवाते–आघ्रायकविवक्षितपुरुषाणामनुकूलं वाते वाति सति।

३. भ. वृ. ६/१०६ उब्भिज्जमाणाण य त्ति प्राबल्येनोर्द्ध्वं वा दीर्यमाणानाम्।

४. रायपसेणइय वृत्ति पत्र ९२ उद्भिद्यमानानां उदघाट्यमानानाम्।

५. भ. वृ. १६/१०६ : निब्भिज्जमाणानां प्राबल्याभावे नाधो वा दीर्यमाणानाम्।

६. भ. वृ. १६/१०६।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सत्तमो उद्देसो : सातवां उद्देशक

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
१०८. कतिविहे णं भंते! उवओगे पण्णत्ते? **गोयमा! दुविहे उवओगे पण्णत्ते, एवं जहा उवओगपदं पण्णवणाए तहेव निरवसेसं नेयव्वं, पासणयापदं च नेयव्वं॥**	कतिविधः भदन्त! उपयोगः प्रज्ञप्तः? गौतम! द्विविधः उपयोगः प्रज्ञप्तः, एवं यथा उपयोगपदं प्रज्ञापनायां तथैव निरवशेषं भणितव्यम्, दर्शनपदं च नेतव्यम्।	१०८. भंते! उपयोग कितने प्रकार का प्रज्ञप्त है? गौतम! उपयोग दो प्रकार का प्रज्ञप्त है–इस प्रकार प्रज्ञापना का उपयोग पद (पण्णवणा पद २९) निरवशेष ज्ञातव्य है और दर्शन पद (पद ३०) भी ज्ञातव्य है।
१०९. सेवं भंते! सेवं भंते! त्ति॥	तदेवं भदन्त! तदेवं भदन्त! इति।	१०९. भंते! वह ऐसा ही है। भंते! वह ऐसा ही है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अट्ठमो उद्देसो : आठवां उद्देशक

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
लोगस्स चरिमंते जीवाजीवादिमग्गणा-पदं	लोकस्य चरमान्ते जीवाजीवादि-मार्गणा-पदम्	लोक के चरमान्त में जीव-अजीव आदि का मार्गणा पद
११०. केमहालए णं भंते! लोए पण्णत्ते?	कियन्महन् भदन्त! लोकः प्रज्ञप्तः?	११०. भंते! लोक कितना बड़ा प्रज्ञप्त है?
गोयमा! महतिमहालए लोए पण्णत्ते, जहा बारसमसए तहेव जाव असंखेज्जाओ जोयणकोडाकोडीओ परिक्खेवेणं॥	गौतम! महन्महान् लोकः प्रज्ञप्तः, यथा द्वादशमशते तथैव असंख्येयाः योजन-कोटाकोट्यः परिक्षेपेण।	गौतम! लोक विशालतम प्रज्ञप्त है, जैसे बारहवें शतक में वैसे ही यावत् परिधि में असंख्येय योजन कोड़ाकोड प्रमाण है।
१११. लोयस्स णं भंते! पुरत्थिमिल्ले चरिमंते किं जीवा, जीवदेसा, जीव-पदेसा, अजीवा, अजीवदेसा, अजीव-पदेसा?	लोकस्य भदन्त! पौरस्त्ये चरमान्ते किं जीवाः, जीवदेशाः, जीवप्रदेशाः अजीवाः, अजीवदेशाः, अजीव-प्रदेशाः?	१११. भंते! लोक के पूर्व चरमान्त में क्या जीव हैं? जीव-देश हैं? जीव-प्रदेश हैं? अजीव हैं? अजीव-देश हैं? अजीव-प्रदेश हैं?
गोयमा! नो जीवा, जीवदेसा वि, जीव-पदेसा वि, अजीवा वि, अजीवदेसा वि, अजीवपदेसा वि। जे जीवदेसा ते नियमं एगिंदियदेसा य, अहवा एगिंदियदेसा य बेइंदियस्स य देसे—एवं जहा दसमसए अग्गेयी दिसा तहेव, नवरं—देसेसु अणिंदियाण आइल्लविरहिओ। जे अरूवी अजीवा ते छव्विहा, अद्धासमयो नत्थि। सेसं तं चेव निरवसेसं॥	गौतम! नो जीवाः, जीवदेशाः अपि, जीव-प्रदेशाः अपि, अजीवाः अपि, अजीवदेशाः अपि, अजीवप्रदेशाः अपि। ये जीवदेशाः ते नियमम् एकेन्द्रियदेशाः च, अथवा एकेन्द्रियदेशाः च द्वीन्द्रियस्य च देशः—एवं यथा दशमशते आग्नेयी दिशा तथैव, नवरम्—देशेषु अनिन्द्रियाणाम् आदिम-विरहितः। ये अरूपिणः अजीवाः ते षड्विधाः, अध्वासमयः नास्ति। शेषं तत् चैव निरवशेषम्।	गौतम! जीव नहीं हैं। जीव के देश भी हैं, जीव के प्रदेश भी हैं। अजीव भी हैं, अजीव के देश भी हैं, अजीव के प्रदेश भी हैं। जो जीव के देश हैं, वे नियमतः एकेन्द्रिय के देश हैं अथवा एकेन्द्रिय के देश और द्वीन्द्रिय का देश है—इस प्रकार दसवें शतक में आग्नेयी दिशा की भांति वक्तव्यता, इतना विशेष है—देशों में प्रथम विकल्प विरहित अनिन्द्रियों की वक्तव्यता। जो अरूपी अजीव हैं, उनके छह प्रकार हैं। अध्वा समय नहीं है। शेष पूर्ववत् निरवेशष वक्तव्य है।
११२. लोगस्स णं भंते! दाहिणिल्ले चरिमंते किं जीवा?	लोकस्य भदन्त! दाक्षिणात्ये चरमान्ते किं जीवाः?	११२. भंते! लोक के दक्षिण चरमान्त में क्या जीव हैं?
एवं चेव। एवं पच्चत्थिमिल्ले वि, उत्तरिल्ले वि॥	एवं चैव। एवं पाश्चात्ये अपि, औदीच्ये अपि।	पूर्ववत्। इसी प्रकार पश्चिम चरमान्त, इसी प्रकार उत्तर चरमान्त की वक्तव्यता।
११३. लोगस्स णं भंते! उवरिल्ले चरिमंते किं जीवा—पुच्छा।	लोकस्य भदन्त! उपरितने चरमान्ते किं जीवाः? पृच्छा।	११३. भंते! लोक के उर्ध्व चरमान्त में क्या जीव हैं—पृच्छा।
गोयमा! नो जीवा, जीवदेसा वि जाव अजीवपदेसा वि। जे जीवदेसा ते नियमं एगिंदियदेसा य अणिंदियदेसा य, अहवा एगिंदियदेसा य अणिंदियदेसा य	गौतम! नो जीवाः, जीवदेशाः अपि यावत् अजीवप्रदेशाः अपि। ये जीव-देशाः ते नियमम् एकेन्द्रियदेशाः, च अनिन्द्रियदेशाः च अथवा एकेन्द्रिय-	गौतम! जीव नहीं हैं। जीव के देश भी हैं यावत् अजीव के प्रदेश भी हैं। जो जीव के देश हैं वे नियमतः एकेन्द्रिय के देश हैं और अनिन्द्रिय के देश हैं। अथवा एकेन्द्रिय के देश

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बेइंदियस्स य देसे, अहवा एगिंदियदेसा य अणिंदियदेसा य बेइंदियाण य देसा, एवं मज्झिल्लविरहिओ जाव पंचिंदियाणं। जे जीवप्पदेसा ते नियमं एगिंदियप्पदेसा य अणिंदियप्पदेसा य, अहवा एगिंदियप्पदेसा य अणिंदियप्पदेसा य बेइंदियस्स पदेसा य, अहवा एगिंदियप्पदेसा य अणिंदियप्पदेसा य बेइंदियाण य पदेसा, एवं आदिल्ल-विरहिओ जाव पंचिंदियाणं। अजीवा जहा दसमसए तमाए तहेव निरवसेसं॥

देशाः च अनिन्द्रियदेशाः च द्वीन्द्रियस्य च देशः, अथवा एकेन्द्रियदेशाः च अनिन्द्रियदेशाः च द्वीन्द्रियाणां च देशाः एवं मध्यमविरहितः यावत् पञ्चेन्द्रियाणाम्। ये जीवप्रदेशाः ते नियमम् एकेन्द्रियप्रदेशाः च अनिन्द्रियप्रदेशाः च अथवा एकेन्द्रियप्रदेशाः च अनिन्द्रियप्रदेशाः च द्वीन्द्रियस्य प्रदेशाः च अथवा एकेन्द्रियप्रदेशाः च अनिन्द्रियप्रदेशाः च द्वीन्द्रियाणां च प्रदेशाः। एवम् आदिम-विरहितः यावत् पञ्चेन्द्रियाणाम्। अजीवाः यथा दशमशते तमायां तथैव निरवशेषम्।

हैं, अनिन्द्रिय के देश हैं और द्वीन्द्रिय का देश है। अथवा एकेन्द्रिय के देश हैं, अनिन्द्रिय के देश हैं और द्वीन्द्रियों के देश हैं। इस प्रकार मध्यम विकल्प विरहित यावत् पंचेन्द्रियों की वक्तव्यता। जो जीव के प्रदेश हैं, वे नियमतः एकेन्द्रिय के प्रदेश हैं और अनिन्द्रिय के प्रदेश हैं। अथवा एकेन्द्रिय के प्रदेश हैं, अनिन्द्रिय के प्रदेश हैं और द्वीन्द्रिय के प्रदेश हैं। अथवा एकेन्द्रिय के प्रदेश हैं, अनिन्द्रिय के प्रदेश हैं और द्वीन्द्रियों के प्रदेश हैं। इस प्रकार प्रथम विकल्प विरहित यावत् पंचेन्द्रियों की वक्तव्यता। अजीव जैसे दशम शतक में तमा की वक्तव्यता वैसे ही निरवशेष वक्तव्य है।

११४. लोगस्स णं भंते! हेट्ठिल्ले चरिमंते किं जीवा–पुच्छा।
गोयमा! नो जीवा, जीवदेसा वि जाव अजीवपदेसा वि, जे जीवदेसा ते नियमं एगिंदियदेसा, अहवा एगिंदियदेसा य बेइंदियस्स देसे, अहवा एगिंदियदेसा य बेइंदियाण य देसा, एवं मज्झिल्ल-विरहिओ जाव अणिंदियाणं। पदेसा आइल्लविरहिया सव्वेसिं जहा पुरत्थिमिल्ले चरिमंते तहेव। अजीवा जहेव उवरिल्ले चरिमंते तहेव॥

लोकस्य भदन्त! अधस्तने चरमान्ते किं जीवाः–पृच्छा।
गौतम! नो जीवाः, जीवदेशाः अपि यावत् अजीवप्रदेशाः अपि, ये जीवदेशाः ते नियमम् एकेन्द्रियदेशाः, अथवा एकेन्द्रियदेशाः च द्वीन्द्रियस्य देशः अथवा एकेन्द्रियदेशाः च द्वीन्द्रियाणां च देशाः, एवं मध्यमविरहितः यावत् अनिन्द्रियाणां। प्रदेशाः आदिम-विरहिताः सर्वेषां यथा पौरस्त्ये चरमान्ते तथैव। अजीवाः यथैव उपरितने चरमान्ते तथैव।

११४. भंते! लोक के अधस्तन चरमान्त में जीव–पृच्छा।
गौतम! जीव नहीं हैं। जीव के देश भी हैं यावत् अजीव के प्रदेश भी हैं। जो जीव के देश हैं, वे नियमतः एकेन्द्रिय के देश हैं। अथवा एकेन्द्रिय के देश हैं और द्वीन्द्रिय का देश है, अथवा एकेन्द्रिय के देश हैं और द्वीन्द्रियों के देश हैं। इस प्रकार मध्यम विकल्प विरहित यावत् अनिन्द्रियों की वक्तव्यता। सबके प्रदेश आदि विकल्प विरहित पूर्व चरमान्त की भांति वक्तव्य है। जीवों की ऊर्ध्व चरमान्त की भांति वक्तव्यता।

११५. इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए पुरत्थिमिल्ले चरिमंते किं जीवा–पुच्छा।
गोयमा! नो जीवा, एवं जहेव लोगस्स तहेव चत्तारि वि चरिमंता जाव उत्तरिल्ले, उवरिल्ले तहेव, जहा दसमसए विमला दिसा तहेव निरवसेसं। हेट्ठिल्ले चरिमंते जहेव लोगस्स हेट्ठिल्ले चरिमंते तहेव, नवरं–देसे पंचिंदिएसु तियभंगो त्ति सेसं तं चेव। एवं जहा रयणप्पभाए चत्तारि चरिमंता भणिया एवं सक्करप्पभाए वि। उवरिम-हेट्ठिल्ला जहा रयणप्पभाए हेट्ठिल्ले। एवं जाव अहेसत्तमाए। एवं सोहम्मस्स वि जाव अच्चुयस्स। गेवेज्जविमाणाणं एवं चेव, नवरं–उवरिम-हेट्ठिल्ले चरिमंतेसु देसेसु पंचिंदियाण वि मज्झिल्ल-विरहिओ चेव,

अस्याः भदन्त! रत्नप्रभायाः पृथिव्याः पौरस्त्ये चरमान्ते किं जीवाः–पृच्छा।
गौतम! नो जीवाः, एवं यथैव लोकस्य तथैव चत्वारः अपि चरमान्ताः यावत् औदीच्ये, उपरितने तथैव, यथा दशमशते विमला दिशा तथैव निरवशेषम्। अधस्तने चरमान्ते यथैव लोकस्य अधस्तने चरमान्ते तथैव नवरम्–देशे पञ्चेन्द्रियेषु त्रिकभङ्गः इति शेषं तत् चैव। एवं यथा रत्नप्रभायाः चत्वारः चरमान्ताः भणिताः एवं शर्कराप्रभायाः अपि। उपरितन-अधस्तनाः यथा रत्नप्रभायाः अधस्तनाः। एवं यावत् अधःसप्तम्याः। एवं सौधर्मस्यापि यावत् अच्युतस्य। ग्रैवेयकविमानानाम् एवं चैव, नवरम्–

११५. भंते! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के पूर्व चरमान्त में क्या जीव हैं? पृच्छा।
गौतम! जीव नहीं हैं। इस प्रकार जैसे लोक की वक्तव्यता वैसे ही चारों चरमान्त की वक्तव्यता यावत् उत्तर चरमान्त, ऊर्ध्व चरमान्त की दशम शतक में विमला दिशा की भांति निरवशेष वक्तव्यता। लोक के निम्नवर्ती भाग के चरमान्त की भांति अधःस्तन चरमान्त की वक्तव्यता, इतना विशेष है। पंचेन्द्रिय में देश के तीन भंग वक्तव्य हैं शेष पूर्ववत्। जिस प्रकार रत्नप्रभा के चार चरमान्तों की वक्तव्यता उसी प्रकार शर्कराप्रभा की वक्तव्यता। उपरिवर्ती और निम्नवर्ती भाग की रत्नप्रभा के निम्नवर्ती भाग की भांति वक्तव्यता। इस प्रकार यावत् अधःसप्तमी की वक्तव्यता। इसी प्रकार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सेसं तहेव। एवं जहा गेवेज्जविमाणा तहा अणुत्तरविमाणा वि, ईसिंपब्भारा वि॥

उपरितन-अधस्तनेषु चरमान्तेषु देशेषु पञ्चेन्द्रियाणाम् अपि मध्यमविरहितः चैव, शेषं तथैव। एवं यथा ग्रैवेयक-विमानानि तथा अनुत्तरविमानानि अपि, ईषत्प्राग्भारा अपि।

सौधर्म यावत् अच्युत की वक्तव्यता। ग्रैवेयक विमानों की पूर्ववत् वक्तव्यता, इतना विशेष है–ऊर्ध्व एवं अधोवर्ती चरमान्तों में पंचेन्द्रियों के देशों में मध्यम विकल्प विरहित। शेष पूर्ववत्। ग्रैवेयक विमानों की भांति अनुत्तर विमान और ईषत् प्राग्भास की वक्तव्यता।

भाष्य

सूत्र ११०-११५

द्रष्टव्य भगवई १०/१-७ का भाष्य।

लोक के छह चरमान्त हैं–

पूर्व चरमान्त, दक्षिण चरमान्त, पश्चिम चरमान्त, उत्तर चरमान्त, ऊर्ध्व चरमान्त, अधः चरमान्त।

इन छह चरमान्तों में जीव और अजीव की अवस्थिति के नियमों का निरूपण किया गया है–

पूर्व चरमान्त	अवस्थिति
जीव है	नहीं
जीव देश है	हैं
जीव प्रदेश है	हैं
अजीव है	हैं
अजीव देश है	हैं
अजीव प्रदेश है	हैं

१. अनेक एकेन्द्रिय के अनेक देश है।

२. अनेक एकेन्द्रिय के अनेक देश, एक द्वीन्द्रिय का एक देश है।

३. अनेक एकेन्द्रिय के अनेक देश, एक द्वीन्द्रिय के अनेक देश हैं।

४. अनेक एकेन्द्रिय के अनेक देश, अनेक द्वीन्द्रिय के अनेक देश हैं।

इसी तरह त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय की वक्तव्यता।

अनेक एकेन्द्रिय के अनेक देश, एक अनिन्द्रिय का एक देश नहीं।

अनेक एकेन्द्रिय के अनेक देश, एक अनिन्द्रिय के अनेक देश।

इसी प्रकार दक्षिण चरमान्त, पश्चिम चरमान्त, उत्तर चरमान्त की वक्तव्यता–

अनेक एकेन्द्रिय के अनेक प्रदेश है।

अनेक एकेन्द्रिय के अनेक प्रदेश, एक द्वीन्द्रिय के अनेक प्रदेश हैं।

अनेक एकेन्द्रिय के अनेक प्रदेश, अनेक द्वीन्द्रिय के अनेक प्रदेश हैं।

इसी तरह त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय व अनिन्द्रिय की वक्तव्यता।

उपरि चरमान्त

१. अनेक एकेन्द्रिय व अनेक अनिन्द्रिय के अनेक देश।

२. अनेक एकेन्द्रिय व अनेक अनिन्द्रिय के अनेक देश, एक द्वीन्द्रिय का एक देश।

३. अनेक एकेन्द्रिय व अनेक अनिन्द्रिय के अनेक देश, अनेक द्वीन्द्रिय के अनेक देश।

इसी प्रकार त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय के विकल्प ज्ञातव्य हैं।

अनेक एकेन्द्रिय व अनेक अनिन्द्रिय के अनेक प्रदेश।

अनेक एकेन्द्रिय व अनेक अनिन्द्रिय के अनेक प्रदेश, एक द्वीन्द्रिय के अनेक प्रदेश।

अनेक एकेन्द्रिय व अनेक अनिन्द्रिय के अनेक प्रदेश, अनेक द्वीन्द्रिय के अनेक प्रदेश।

इसी प्रकार त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय के विकल्प ज्ञातव्य हैं।

अधश्चरमान्त

अनेक एकेन्द्रिय के अनेक देश

अनेक एकेन्द्रिय के अनेक देश, एक द्वीन्द्रिय का एक देश।

अनेक एकेन्द्रिय के अनेक देश, अनेक द्वीन्द्रिय के अनेक देश।

इसी प्रकार त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय व अनिन्द्रिय की वक्तव्यता।

अनेक एकेन्द्रिय के अनेक प्रदेश

अनेक एकेन्द्रिय के अनेक प्रदेश, एक द्वीन्द्रिय के अनेक प्रदेश।

अनेक एकेन्द्रिय के अनेक प्रदेश, अनेक द्वीन्द्रिय के अनेक प्रदेश।

इसी प्रकार त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय व अनिन्द्रिय की वक्तव्यता।

रत्नप्रभा पृथ्वी

पूर्व चरमान्त

जीव नहीं हैं

जीव देश हैं

जीव प्रदेश हैं

अनेक एकेन्द्रिय के अनेक देश

अनेक एकेन्द्रिय के अनेक देश, एक द्वीन्द्रिय का एक देश।

अनेक एकेन्द्रिय के अनेक देश, एक द्वीन्द्रिय के अनेक देश।

अनेक एकेन्द्रिय के अनेक देश, अनेक द्वीन्द्रिय के अनेक देश।

इसी प्रकार त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय व अनिन्द्रिय की वक्तव्यता।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूर्व चरमान्त की तरह पश्चिम, उत्तर, दक्षिण चरमान्त की वक्तव्यता।

उपरि चरमान्त व अधश्चरमान्त

अनेक एकेन्द्रिय के अनेक देश

अनेक एकेन्द्रिय के अनेक देश, एक द्वीन्द्रिय का एक देश।

अनेक एकेन्द्रिय के अनेक देश, अनेक द्वीन्द्रिय के अनेक देश।

इसी प्रकार त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय व अनिन्द्रिय की वक्तव्यता पंचेन्द्रिय में द्विक सांयोगिक विकल्प तीन होंगे–दो पूर्ववत्। तीसरा अनेक एकेन्द्रिय के अनेक देश, एक पंचेन्द्रिय के अनेक देश।

शर्कराप्रभा यावत् अधः सप्तमी में रत्नप्रभा की तरह वक्तव्यता।

रत्नप्रभा पृथ्वी

अनेक एकेन्द्रिय के अनेक प्रदेश

अनेक एकेन्द्रिय के अनेक प्रदेश, एक द्वीन्द्रिय के अनेक प्रदेश।

अनेक एकेन्द्रिय के अनेक प्रदेश, अनेक द्वीन्द्रिय के अनेक प्रदेश।

इसी प्रकार त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय व अनिन्द्रिय की वक्तव्यता। शर्करा आदि छहों नरकों में रत्नप्रभा की तरह वक्तव्यता। सौधर्म यावत् अच्युत देवलोक में रत्नप्रभा की तरह देश, प्रदेश की वक्तव्यता। नौ ग्रैवेयक, पांच अनुत्तरविमान और ईषत् प्राग्भारा पृथ्वी में रत्नप्रभा की तरह वक्तव्यता।

अधश्चरमान्त में पंचेन्द्रिय की द्वीन्द्रिय की भांति वक्तव्यता।

परमाणुपोग्गलस्स गति-पदं

११६. परमाणुपोग्गले णं भंते! लोगस्स पुरत्थिमिल्लाओ चरिमंताओ पच्चत्थिमिल्लं चरिमंतं एगसमएणं गच्छति? पच्चत्थिमिल्लाओ चरिमंताओ पुरत्थिमिल्लं चरिमंतं एगसमएणं गच्छति? दाहिणिल्लाओ चरिमंताओ उत्तरिल्लं चरिमंतं एगसमएणं गच्छति? उत्तरिल्लाओ चरिमंताओ दाहिणिल्लं चरिमंतं एगसमएणं गच्छति? उवरिल्लाओ चरिमंताओ हेट्ठिलं चरिमंतं एगसमएणं गच्छति? हेट्ठिल्लाओ चरिमंताओ उवरिल्लं चरिमंतं एगसमएणं गच्छति?

हंता गोयमा! परमाणुपोग्गले णं लोगस्स पुरत्थिमिल्लं तं चेव जाव उवरिल्लं चरिमंतं एगसमएणं गच्छति॥

परमाणुपुद्गलस्य गति-पदम्

परमाणुपुद्गलः भदन्त! लोकस्य पौरस्त्यात् चरमान्तात् पाश्चात्यं चरमान्तम् एकसमयेन गच्छति? पाश्चात्यात् चरमान्तात् पौरस्त्यं चरमान्तम् एकसमयेन गच्छति? दाक्षिणात्यात् चरमान्तात् औदीच्यं चरमान्तम् एकसमयेन गच्छति? औदीच्यात् चरमान्तात् दाक्षिणात्यं चरमान्तम् एकसमयेन गच्छति? उपरितनात् चरमान्तात् अधस्तनं चरमान्तम् एकसमयेन गच्छति? अधस्तनात् चरमान्तात् उपरितनं चरमान्तम् एकसमयेन गच्छति?

हन्त गौतम! परमाणुपुद्गलः लोकस्य पौरस्त्यं तत् चैव यावत् उपरितनं चरमान्तम् एकसमयेन गच्छति।

परमाणु पुद्गल का गति पद

११६. भंते! परमाणु पुद्गल पूर्व चरमान्त से पश्चिम चरमान्त में एक समय में जाता है? पश्चिम चरमान्त से पूर्व चरमान्त में एक समय में जाता है? दक्षिण चरमान्त से उत्तर चरमान्त में एक समय में जाता है? उत्तर चरमान्त से दक्षिण चरमान्त में एक समय में जाता है? ऊर्ध्व चरमान्त से अधस्तन चरमान्त में एक समय में जाता है? अधस्तन चरमान्त से ऊर्ध्व चरमान्त में एक समय में जाता है?

हां गौतम! परमाणु पुद्गल लोक के पूर्व चरमान्त से पूर्ववत् यावत् ऊर्ध्व चरमान्त में एक समय में जाता है।

भाष्य

सूत्र ११६

पंचास्तिकाय में तीन अस्तिकाय निष्क्रिय–गतिशून्य हैं।[1] जीव और पुद्गल–ये दो गति क्रिया युक्त हैं। पुद्गल गति के विषय में प्रज्ञापना का निर्देश है–एक परमाणु भी गति करता है यावत् अनंत प्रदेशी स्कंध भी गति करता है।[2] प्रश्न उपस्थित होता है–प्रस्तुत सूत्र का विधान क्यों किया गया?

इसका उत्तर यह है कि एक समय में लोक के एक चरमान्त से दूसरे चरमान्त तक गति केवल परमाणु की होती है, स्कंध की नहीं होती। इसका समर्थन पुद्गल की नोभवोपपात गति से होता है[3]–से किं तं पोग्गल णो भवोववायगती? पोग्गल णो भवोववायगती जण्णं परमाणु पोग्गले लोगस्स पुरत्थिमिल्लाओ चरिमंताओ पच्चत्थिमिल्लं चरिमंतं एगसमएणं गच्छति.....।

किरिया-पदं

११७. पुरिसे णं भंते! वासं वासति, वासं नो वासतीति हत्थं वा पायं वा बाहं वा ऊरुं वा आउंटावेमाणे वा पसारेमाणे वा कतिकिरिए?

क्रिया-पदम्

पुरुषः भदन्त! वर्षं वर्षति, वर्षं नो वर्षति इति हस्तं वा पादं वा बाहां वा ऊरुं वा आकुञ्चयन् वा प्रसारयन् वा कतिक्रियः?

क्रिया-पद

११७. भंते! वर्षा हो रही है या नहीं हो रही है–यह जानने के लिए हाथ, पैर, बाहु, जंघा का आकुंचन और प्रसारण करते हुए पुरुष के कितनी क्रिया लगती है?

१. त. र. वा. ५/६-७, आ आकाशादेक द्रव्याणि निष्क्रियाणि च।

२. पण्ण. १६/४३।

३. पण्ण. ३६/६२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा! जावं च णं से पुरिसे वासं वासति, वासं नो वासतीति हत्थं वा पायं वा बाहं वा ऊरुं वा आउंटावेति वा पसारेति वा, तावं च णं से पुरिसे काइयाए अहिगरणियाए पाओसियाए पारितावणियाए पाणातिवायकिरियाए–पंचहिं किरियाहिं पुट्ठे॥

गौतम! यावत् च सः पुरुषः वर्षं वर्षति, वर्षं नो वर्षति इति हस्तं वा पादं वा बाहां वा ऊरुं वा आकुञ्चयति वा प्रसारयति वा तावत् च सः पुरुषः कायिक्या आधिकरणिक्या प्रादोषिक्या पारितापनिक्या प्राणातिपातिक्रियया–पञ्चभिः क्रियाभिः स्पृष्टः।

गौतम! वर्षा हो रही है या वर्षा नहीं हो रही है–यह जानने के लिए पुरुष जिस समय हाथ, पैर, बाहु, जंघा का आकुंचन अथवा प्रसारण करता है उस समय वह पुरुष कायिकी, आधिकरणिकी प्रादोषिकी, पारितापनिकी, प्राणातिपात क्रिया–इन पांच क्रियाओं से स्पृष्ट होता है।

भाष्य

सूत्र ११७

यह सापेक्ष सूत्र है। सूत्र का वक्तव्य है–वर्षा की अवगति के लिए हाथ फैलाने वाला पांच क्रियाओं से स्पृष्ट होता है।

वृत्तिकार ने इस विषय का कोई स्पष्टीकरण नहीं किया। जयाचार्य ने इसके रहस्य का स्पर्श करते हुए लिखा है–यदि हाथ पसारने पर जल बिन्दु का स्पर्श नहीं हुआ तो वह तीन क्रिया से स्पृष्ट होता है। जल बिन्दु से स्पर्श होने पर वह पांच क्रिया से स्पृष्ट होता है।[1]

जयाचार्य के मंतव्य का समर्थन नौवें शतक से होता है। पृथ्वीकायिक जीव पृथ्वीकाय का श्वास-उच्छ्वास लेता हुआ कितनी क्रिया से स्पृष्ट होता है? इसके उत्तर में भगवान् ने बतलाया–स्यात् तीन क्रिया से, स्यात् चार क्रिया से, स्यात् पांच क्रिया से। यदि परितापन होता है तो वह चार क्रिया से स्पृष्ट होता है। यदि प्राण वियोजन होता है तो वह पांच क्रिया से स्पृष्ट होता है। परिताप के बिना चौथी क्रिया तथा प्राण वियोजन के बिना पांचवीं क्रिया से कोई स्पृष्ट नहीं होता।[2]

अलोए गतिनिसेध-पदं

११८. देवे णं भंते! महिड्ढिए जाव महेसक्खे लोगंते ठिच्चा पभू अलोगंसि हत्थं वा पायं वा बाहं वा ऊरुं वा आउंटावेत्तए वा पसारेत्तए वा?
नो इणट्ठे समट्ठे॥

अलोकगतिनिषेध-पदम्

देवः भदन्त! महर्द्धिकः यावत् महेशाख्यः लोकान्ते स्थित्वा प्रभुः अलोके हस्तं वा पादं वा बाहां वा ऊरुं वा आकुञ्चयितुं वा प्रसारयितुं वा?
नो एषः अर्थः समर्थः।

अलोक-गति निषेध पद

११८. भंते! महर्द्धिक यावत् महान् ऐश्वर्यशाली के रूप में प्रख्यात देव लोकान्त में स्थित होकर अलोक में हाथ, पैर, बाहु अथवा जंघा का आकुंचन एवं प्रसारण करने में समर्थ है?
यह अर्थ संगत नहीं है।

११९. से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ–देवे णं महिड्ढिए जाव महेसक्खे लोगंते ठिच्चा नो पभू अलोगंसि हत्थं वा पायं वा बाहं वा ऊरुं वा आउंटावेत्तए वा पसारेत्तए वा?

गोयमा! जीवाणं आहारोवचिया पोग्गला, बोंदिचिया पोग्गला, कलेवरचिया पोग्गला। पोग्गलामेव पप्प जीवाण य अजीवाण य गतिपरियाए आहिज्जइ।
अलोए णं नेवत्थि जीवा, नेवत्थि पोग्गला। से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ–देवे महिड्ढिए जाव महेसक्खे लोगंते ठिच्चा नो पभू अलोगंसि हत्थं वा पायं वा बाहं वा ऊरुं वा आउंटावेत्तए वा पसारेत्तए वा॥

तत् केनार्थेन भदन्त! एवमुच्यते–देवः महर्द्धिकः यावत् महेशाख्यः लोकान्ते स्थित्वा नो प्रभुः अलोके हस्तं वा पादं वा बाहां वा ऊरुं वा आकुञ्चयितुं वा प्रसारयितुं वा?
गौतम! जीवानाम् आहारोपचिताः पुद्गलाः, बोन्दिचिताः पुद्गलाः कलेवरचिताः पुद्गलाः। पुद्गलानेव प्राप्य जीवानां च अजीवानां च गतिपर्यायः अधीयते। अलोके नैव सन्ति जीवाः नैव सन्ति पुद्गलाः। तत् तेनार्थेन गौतम! एवमुच्यते–देवः महर्द्धिकः यावत् महेशाख्यः लोकान्ते स्थित्वा नो प्रभुः अलोके हस्तं वा पादं वा बाहां वा ऊरुं वा आकुञ्चयितुं वा प्रसारयितुं वा।

११९. भंते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है–महर्द्धिक यावत् महान् ऐश्वर्यशाली के रूप में प्रख्यात देव लोक के अंत में स्थित होकर अलोक में हाथ, पैर, बाहु अथवा जंघा का आकुंचन एवं प्रसारण करने में समर्थ नहीं है?
गौतम! पुद्गल जीवों का अनुगमन करते हैं, वे आहार के रूप में उपचित हैं, वे बोंदी के रूप में चित हैं, वे कलेवर के रूप में चित हैं। पुद्गलों का आश्रय लेकर जीवों और अजीवों का गति-पर्याय कहा गया है। अलोक में जीव नहीं हैं, पुद्गल नहीं हैं। गौतम! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है–महर्द्धिक यावत् महान् ऐश्वर्यशाली के रूप में प्रख्यात देव लोक के अंत में स्थित होकर अलोक में हाथ, पैर, बाहु अथवा जंघा का आकुंचन एवं प्रसारण करने में समर्थ नहीं है।

---

१. भ. जो. ढा. ३६० गाथा १३ :
एहवूं इहा जणाय, जल बिन्दु फर्श्ये पंच क्रिया।
छांट न लागी काय, तो त्रिण क्रिया गणाय छे॥

२. भ. ६/२५८।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भाष्य

सूत्र ११८-११९

आगम साहित्य में गति के अनेक नियम हैं–

१. जहां धर्मास्तिकाय है, वहां गति है। अलोक में धर्मास्तिकाय नहीं है इसलिए वहां गति नहीं है, जीव और अजीव का प्रवेश नहीं है।

२. जहां जीव और पुद्गल का गति पर्याय है, वहां लोक है। जहां लोक है वहां जीव और पुद्गल का गति पर्याय है।

३. लोकान्त के स्वभाव से पुद्गल रूक्ष हो जाते हैं इसलिए जीव और पुद्गल लोकान्त से बाहर जाने में समर्थ नहीं होते।[1]

महर्द्धिक देव लोकान्त में स्थित होकर आलोक में हाथ-पैर नहीं पसार सकता–इसका आधार पुद्गल की रूक्षता है। प्रस्तुत सूत्र में पुद्गल को आधार मानकर ही अलोक में गति न होने का प्रतिपादन किया गया है–

'पोग्गलामेव पप्प जीवाण य अजीवाण य गतिपरियाए आहिज्जइ।'

अभयदेवसूरि ने इसके तात्पर्यार्थ में लिखा है–जिस क्षेत्र में पुद्गल है वहीं जीवों और पुद्गलों की गति होती है। अलोक में जीव भी नहीं है पुद्गल भी नहीं हैं। वहां जीव और पुद्गल की गति नहीं होती। गति के अभाव में देव अलोक में अपना हाथ पैर नहीं पसार सकते।[2]

शरीरधारी जीव की गति पुद्गल के सहयोग के बिना नहीं हो सकती। यह प्रस्तुत सूत्र से स्पष्ट है। अजीव की गति भी पुद्गल के आश्रय से होती है, यह विमर्शयोग्य तथ्य है। पुद्गल समूचे लोक में व्याप्त हैं। क्या इस आधार पर इस सिद्धांत की स्थापना की गई है–जिस क्षेत्र में पुद्गल हैं वहीं पुद्गलों की गति होती है। पुद्गलों का आश्रय लेकर पुद्गलों की गति होती है। इस सिद्धांत की व्याख्या कुछ और अधिक अपेक्षा रखती है।

जीव और पुद्गल का भोग्य और भोक्ता का संबंध है। वृत्तिकार ने उस स्वभाव का उल्लेख 'पुद्गल जीव के अनुगामी स्वभाव वाले हैं' के रूप में किया है। जीव उन पुद्गलों का आहार, शरीरावयव और शरीर के रूप में उपचय करता है।[3]

१२०. सेवं भंते! सेवं भंते! त्ति॥ तदेवं भदन्त! तदेवं भदन्त! इति। १२०. भंते! वह ऐसा ही है। भंते! वह ऐसा ही है।

---

१. ठाणं १०/१।

२. भ. वृ. १६/११८-११९ : इदमुक्तं भवति–यत्र क्षेत्रे पुद्गलास्तत्रैव जीवानां पुद्गलानां च गतिर्भवति एव चालोके नैव सन्ति जीवाः नैव च सन्ति पुद्गलाः इति जीवपुद्गलानां गतिर्नास्ति। तदभावाच्चालोके देवो हस्ताद्यकुष्टयितुं प्रसारयितुं वा न प्रभुरिति।

३. भ. वृ. १६/११८-११९।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नवमो उद्देसो : नौवां उद्देशक

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
बलिस्स सभा-पदं	**बलिनः सभा-पदम्**	**बलि का सभा-पद**
१२१. कहिण्णं भंते! बलिस्स वइरोयणिंदस्स वइरोयणरण्णो सभा सुहम्मा पण्णत्ता?	कुत्र भदन्त! बलिनः वैरोचनेन्द्रस्य वैरोचनराजस्य सभा सुधर्मा प्रज्ञप्ता?	१२१. भंते! वैरोचनेन्द्र वैरोचनराज बलि की सभा कहां प्रज्ञप्त है?
गोयमा! जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरे णं तिरियमसंखेज्जे जहेव चमरस्स जाव बायालीसं जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता, एत्थ णं बलिस्स वइरोयणिंदस्स वइरोयणरण्णो रुयगिंदे नामं उप्पायपव्वए पण्णत्ते। सत्तरस एक्कवीसे जोयणसए– एवं पमाणं जहेव तिगिच्छिकूडस्स पासायवडेंसगस्स वि तं चेव पमाणं, सीहासणं सपरिवारं बलिस्स परियारेणं, अट्ठो तहेव, नवरं–रुयगिंदप्पभाइं-रुयगिंदप्पभाइं-रुयगिंदप्पभाइं। सेसं तं चेव जाव बलिचंचाए रायहाणीए अण्णेसिं च जाव रुयगिंदस्स णं उप्पायपव्वयस्स उत्तरे णं छक्कोडिसए तहेव जाव चत्तालीसं जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता, एत्थ णं बलिस्स वइरोयणिंदस्स वइरोयणरण्णो बलिचंचा नामं रायहाणी पण्णत्ता। एगं जोयणसयसहस्सं पमाणं, तहेव जाव बलिपेढस्स उववाओ जाव आयरक्खा सव्वं तहेव निरवसेसं, नवरं–सातिरेगं सागरोवमं ठिती पण्णत्ता। सेसं तं चेव जाव बली वइरोयणिंदे, बली वइरोयणिंदे॥	गौतम! जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य उत्तरे तिर्यग् असंख्येयान् यथैव चमरस्य यावत् द्विचत्वारिंशद् योजनसहस्राणि अवगाह्य, अत्र बलिनः वैरोचनेन्द्रस्य वैरोचनराजस्य रुचकेन्द्रः नाम उत्पातपर्वतः प्रज्ञप्तः। सप्तदश एकविंशतिः योजनशतानि–एवं प्रमाणं यथैव तिगिच्छकूटस्य प्रासादावतंसकस्यापि तत् चैव प्रमाणम्, सिंहासनं सपरिवारं बलिनः परिचारेण, अर्थः तथैव, नवरम्–रुचकेन्द्रप्रभाणि-रुचकेन्द्रप्रभाणि-रुचकेन्द्रप्रभाणि। शेषं तत् चैव यावत् बलिचञ्चायाः राजधान्याः अन्येषां च यावत् रुचकेन्द्रस्य उत्पातपर्वतस्य उत्तरे षट्कोटिशतं तथैव यावत् चत्वारिंशद् योजनसहस्राणि अवगाह्य, अत्र च बलिनः वैरोचनेन्द्रस्य वैरोचनराजस्य बलिचञ्चा नाम राजधानी प्रज्ञप्ता। एकं योजनशतसहस्रं प्रमाणं, तथैव यावत् बलिपीठस्य उपपातः यावत् आत्मरक्षकाः सर्वं तथैव निरवशेषम्, नवरम्–सातिरेकं सागरोपमं स्थितिः प्रज्ञप्ता। शेषं तत् चैव यावत् बली वैरोचनेन्द्रः, बली वैरोचनेन्द्रः।	गौतम! जंबूद्वीप द्वीप में मेरु पर्वत से उत्तर भाग में तिरछे असंख्य द्वीप-समुद्र चमर की भांति यावत् बयांलीस हजार योजन अवगाहन करने पर वैरोचनेन्द्र वैरोचनराज बलि का रुचकेन्द्र नाम का उत्पात पर्वत प्रज्ञप्त है–उसकी ऊंचाई सतरह सौ इक्कीस योजन प्रज्ञप्त है। प्रमाण तिगिच्छकूट प्रसादावतंसक की भांति वक्तव्य है। बलि का सिंहासन उसके परिवार के सिंहासनों सहित वक्तव्य है। इतना विशेष है–वे रुचकेन्द्र प्रभा वाले हैं, रुचकेन्द्र प्रभा वाले हैं, रुचकेन्द्र प्रभा वाले हैं। शेष पूर्ववत् यावत् बलिचंचा राजधानी में दूसरों पर यावत् उस रुचकेन्द्र उत्पात पर्वत के उत्तर से छह सौ करोड़ उसी प्रकार यावत् चालीस हजार योजन अवगाहन करने पर वैरोचनेन्द्र वैरोचनराज की बलिचंचा नामक राजधानी प्रज्ञप्त है–एक लाख योजन प्रमाण, उसी प्रकार यावत् बलिपीठ का उपपात यावत् सर्व आत्मरक्षक देव निरवशेष वक्तव्य हैं, इतना विशेष है–स्थिति सागरोपम से कुछ अधिक प्रज्ञप्त है। शेष पूर्ववत् यावत् वैरोचनेन्द्र बलि, वैरोचनेन्द्र बलि।
१२२. सेवं भंते! सेवं भंते! जाव विहरइ॥	तदेवं भदन्त! तदेवं भदन्त! यावत् विहरति।	१२२. भंते! वह ऐसा ही है। भंते! वह ऐसा ही है। यावत् विहरण करने लगे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दसमो उद्देसो : दसवां उद्देशक

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
ओहि-पदं	अवधि-पदम्	अवधि पद
१२३. कतिविहा णं भंते! ओही पण्णत्ता? गोयमा! दुविहा ओही पण्णत्ता। ओहीपदं निरवसेसं भाणियव्वं॥	कतिविधः भदन्त! अवधिः प्रज्ञप्तः? गौतम! द्विविधः अवधिः प्रज्ञप्तः अवधिपदं निरवशेषं भणितव्यम्।	१२३. भंते! अवधि कितने प्रकार का प्रज्ञप्त है? गौतम! अवधि दो प्रकार का प्रज्ञप्त है। अवधि पद (पण्णवणा पद ३३) निरवशेष वक्तव्य है।
१२४. सेवं भंते! सेवं भंते! जाव विहरइ॥	तदेवं भदन्त! तदेवं भदन्त! यावत् विहरति।	१२४. भंते! यह ऐसा ही है। भंते! वह ऐसा ही है। यावत् विहरण करने लगे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एगादसमो उद्देसो : ग्यारहवां उद्देशक

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
दीवकुमारादि-पदं	द्वीपकुमारादि-पदम्	द्वीपकुमार आदि पद
१२५. दीवकुमारा णं भंते! सव्वे समाहारा? सव्वे समुस्सासनिस्सासा? नो इणट्ठे समट्ठे। एवं जहा पढमसए बितियउद्देसए दीवकुमाराणं वत्तव्वया तहेव जाव समाउया, समुस्सास-निस्सासा॥	द्वीपकुमाराः भदन्त! सर्वे समाहाराः? सर्वे समोच्छ्वासनिःश्वासाः? नो एषः अर्थः समर्थः। एवं यथा प्रथमशते द्वितीयोद्देशके द्वीपकुमाराणां वक्तव्यता तथैव यावत् समायुषः समोच्छ्वासनिःश्वासाः।	१२५. भंते! क्या सब द्वीपकुमार समान आहार वाले हैं? समान उच्छ्वास निःश्वास वाले हैं? यह अर्थ संगत नहीं है। इस प्रकार जैसे प्रथम शतक के द्वितीय उद्देशक (भगवई १/७४-७५) में द्वीपकुमारों की वक्तव्यता, उसी प्रकार यावत् समान आयुष्य और समान उच्छ्वास निःश्वास वाले नहीं हैं।
१२६. दीवकुमाराणं भंते! कति लेस्साओ पण्णत्ताओ? गोयमा! चत्तारि लेस्साओ पण्णत्ताओ, तं जहा-कण्हलेस्सा, नीललेस्सा, काउलेस्सा, तेउलेस्सा॥	द्वीपकुमाराणां भदन्त! कतिलेश्याः प्रज्ञप्ताः? गौतम! चतस्रः लेश्याः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-कृष्णलेश्या, नीललेश्या, कापोतलेश्या, तेजोलेश्या।	१२६. भंते! द्वीपकुमारों में कितनी लेश्याएं प्रज्ञप्त हैं? गौतम! चार लेश्याएं प्रज्ञप्त हैं, जैसे-कृष्णलेश्या, नीललेश्या, कापोतलेश्या, तेजोलेश्या।
१२७. एएसि णं भंते! दीवकुमाराणं कण्हलेस्साणं जाव तेउलेस्साण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा? बहुया वा? तुल्ला वा? विसेसाहिया वा? गोयमा! सव्वत्थोवा दीवकुमारा तेउलेस्सा, काउलेस्सा असंखेज्जगुणा, नीललेस्सा विसेसाहिया, कण्हलेस्सा विसेसाहिया॥	एतेषां भदन्त! द्वीपकुमाराणां कृष्णलेश्यानां यावत् तेजोलेश्यानां कतरे कतरेभ्यः अल्पाः वा? बहुकाः वा? तुल्याः वा? विशेषाधिकाः वा? गौतम! सर्वस्तोकाः द्वीपकुमाराः तेजोलेश्याः, कापोतलेश्याः असंख्येयगुणाः, नीललेश्याः विशेषाधिकाः, कृष्णलेश्याः विशेषाधिकाः।	१२७. भंते! कृष्णलेश्या वाले यावत् तेजोलेश्या वाले इन द्वीपकुमारों में कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं? गौतम! तेजोलेश्या वाले द्वीपकुमार सबसे अल्प हैं। कापोतलेश्या वाले उनसे असंख्येय गुण हैं। नीललेश्या वाले उनसे विशेषाधिक हैं। कृष्णलेश्या वाले उनसे विशेषाधिक हैं।
१२८. एएसि णं भंते! दीवकुमाराणं कण्हलेस्साणं जाव तेउलेस्साण य कयरे कयरेहिंतो अप्पिड्ढिया वा? महिड्ढिया वा? गोयमा! कण्हलेस्सारहिंतो नीललेस्सा महिड्ढिया जाव सव्वमहिड्ढिया तेउलेस्सा॥	एतेषां भदन्त! दीपकुमाराणां कृष्णलेश्यानां यावत् तेजोलेश्यानां च कतरे कतरेभ्यः अल्पर्द्धिकाः वा? महर्द्धिकाः वा? गौतम! कृष्णलेश्येभ्यः नीललेश्याः महर्द्धिकाः यावत् सर्वमहर्द्धिकाः तेजोलेश्याः।	१२८. भंते! कृष्णलेश्या वाले यावत् तेजोलेश्या वाले इन द्वीपकुमारों में कौन किससे अल्पर्द्धिक अथवा महर्द्धिक हैं? गौतम! नीललेश्या वाले कृष्णलेश्या वालों से महर्द्धिक हैं यावत् तेजोलेश्या वाले सबसे महर्द्धिक हैं।
१२९. सेवं भंते! सेवं भंते! जाव विहरइ॥	तदेवं भदन्त! तदेवं भदन्त! यावत् विहरति।	१२९. भंते! वह ऐसा ही है। भंते! वह ऐसा ही है। यावत् विहरण करने लगे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१२-१४ उद्देसा : बारहवां से चौदहवां उद्देशक

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
१३०. उदहिकुमारा णं भंते! सव्वे समाहारा?	उदधिकुमाराः भदन्त! सर्वे समाहाराः?	१३०. भंते! क्या सब उदधिकुमार समान आहार वाले हैं?
एवं चेव॥	एवं चैव।	पूर्ववत्, द्वीपकुमार की भांति वक्तव्यता।
१३१. सेवं भंते! सेवं भंते! त्ति॥	तदेवं भदन्त! तदेवं भदन्त!	१३१. भंते! वह ऐसा ही है। भंते! वह ऐसा ही है।
१३२. एवं दिसाकुमारा वि॥	एवं दिशाकुमाराः अपि।	१३२. इसी प्रकार दिशाकुमार भी वक्तव्य हैं।
१३३. एवं थणियकुमारा वि॥	एवं स्तनितकुमाराः अपि।	१३३. इसी प्रकार स्तनितकुमार भी वक्तव्य हैं।
१३४. सेवं भंते! सेवं भंते! जाव विहरइ॥	तदेवं भदन्त! तदेवं भदन्त! यावत् विहरति।	१३४. भंते! वह ऐसा ही है। भंते! वह ऐसा ही है, यावत् विहरण करने लगे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिशिष्ट

	पृष्ठ
१. नामानुक्रम– (क) व्यक्ति और स्थान	३९७-४०१
(ख) देव	४०२-४०४
(ग) पशु-पक्षी	४०५-४०७
२. शब्दार्थ एवं शब्द-विमर्शानुक्रम	४०८-४११
३. भाष्य-विषयानुक्रम	४१२-४१५
४. पारिभाषिक शब्दानुक्रम	४१६-४२५
५. अभयदेवसूरिकृत वृत्ति– शतक १२,१३,१४,१५,१६	४२६-४८२
६. आधारभूत ग्रंथ सूची	४८३-४८९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिशिष्ट-१ (क)

नामानुक्रम : व्यक्ति और स्थान

अ

अंग १५/१२१,१४१ (भा.)
अग्नि वैश्यायन १५/३,७७
अच्छ १५/१२१
अच्छिद्र १५/३,७७
अजितकेशकंबल १५/आमुख, १४२ (भा.)
अनार्य भूमि १५/५३-५६ (भा.) १४१ (भा.)
अनुपालक १५/आमुख
अपविध १५/आमुख
अभयदेवसूरि (ये सारे अंक भाष्य के हैं।) १२/३०,१०२-१०७, १०८-१११,१५४-१५८,१९२-१९६,२०१-२०४,२०६-२१०; १३/४४,६६-७०,७१,९८,१२७-१२८,१३०-१४५, १४/३,१६-२०,४४-४७,४८,५१,७२-७३,७७,८२-८३, १०७-११२, १५/२६,५३-५६,६५-६६,७३,७७
अभीचि कुमार १३/१०२, १०८, ११०, १२०, १२१, ११०-१२१ (भा.)
अम्मड परिव्राजक १४/१०७,११०-११२,१०७-११२ (भा.)
अयंपुल आजीवक १५/आमुख,१२८,१२९-१३३,१३६-१३८
अरुणोदय समुद्र १३/९६
अर्जुन गोमायुपुत्र १५/३,३ (भा.),७७
अर्जुनक गौतमपुत्र १५/३ (भा.), ७३ (भा.),१०१
अर्हत् मुनिसुव्रत १६/६७-७१
अर्हत् विमल १५/१७७
अवध १५/१२१
अस्थिग्राम १५/२१,५३-५६ (भा.), १४१ (भा.)

आ

आचार्य कुन्दकुन्द १६/४१-४२ (भा.)
आचार्य नरेन्द्रदेव १५/१४२ (भा.)
आचार्य भारमलजी १५/६५-६६ (भा.)
आचार्य भिक्षु १५/२६ (भा.) ६५-६६ (भा.), १२० (भा.), १४२ (भा.)
आनंद श्रावक (गृहपति आनंद) १२/६ (भा.), ३१-३५
आनंद स्थविर १५/८१-८५, ९६-१०१
आर्द्रकुमार १५/आमुख, १४२ (भा.)
आलंभिका नगरी १५।१०१
आलंभिया १५/५३-५६ (भा.), १४१ (भा.)

ई

ई. लायमान १५/१४२ (भा.)

उ

उत्तर कुरु १४/११७-१२१ (भा.)
उदक १५/आमुख
उदयन राजा १२/३०,३२,४०
उदायण १३/आमुख
उदायी १५/१०१
उद्रायण राजा १३/आमुख, १०२,१०३,१०४,१०७-१११,११३, ११५-१२०,११०-१२१ (भा.), १६/७१
उद्दण्डपुर नगर १५/१०१
उद्विध १५/आमुख
उमास्वाति १२/६९-८० (भा.), १३/५५-६० (भा.), १६/आमुख
उल्लुकातीर नगर १६/आमुख, ४८,५४,५५

ऋ

ऋषभदत्त १२/३८, १३/११९

ए

ए. एल. बाशम १५/आमुख, १४२ (भा.)

ऐ

ऐणेयक १५/आमुख, १०१

क

कंपिलपुर नगर १४/१०७,११०,१११
कर्णिकार १५/३,७७
कलन्द १५/३,७७
कांचन पर्वत १४/१२०,११७-१२१ (भा.)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

काममहावन चैत्य १५/१०१
कायरक १५/आमुख
काशी १५/१२१,१४१ (भा.)
काश्यप १५/१०१,१०३
कुण्डियायन १५/आमुख
कूणिक राजा १३/१२०,११०-१२१ (भा.)
कूर्म ग्राम नगर १५/५७,६०,७२,१४१ (भा.)
कृणिक नगर १३/१०७
केशीकुमार १३/१०२,११०,१११-११८,१२०
कोण्डिकायन गौत्रीय १५/१०१
कोल्लाक सन्निवेश १५/४५,४७,५१-५३,१४१ (भा.)
कोष्ठक चैत्य १२/१, ३, १५, १६, १५/१, ११, १०१, ११५, १२०, १४३
कौणिक राजा १२/३२
कौत्स १५/१२१
कौशल (जनपद) १५/१०७,१२१,१४१ (भा.)
कौशाम्बी नगरी १२/३०, १५/१४१ (भा.)

ग

गंगदत्त गृहपति १६/६६,६८-७१
गंगा महानदी १४/१०७,१०९
गार्गी और मैत्रेयी १२/आमुख
गुणशीलक चैत्य १३/१००, १६/४७
गृहपति विजय १५/२४-२६,२६ (भा.), २७,२८
गृहपति सुनंद १५/३८-४२
गृहस्वामिनी रेवती १५/१४४,१५२-१६०
गोबहुल १५/१५,१६
गोशाल १५/१८,१९,१०२,१०७,१११,११४,१४१ (भा.), १४२ (भा.), १६७
गोशालक १५/आमुख, ५३-५६ (भा.), ६५-६६(भा.), ७७ (भा.), १०५-११९ (भा.), १२१,१४१ (भा.), १४२ (भा.)
गोशालक दास १५/आमुख
गोसालमंख १५/आमुख
गौतमपुत्र अर्जुन १५/आमुख, १०१

च

चंद्रावतरण चैत्य १२/३०, १५/१०१
चंपा नगरी १३/१०१,१०५,१२०,११०-१२१ (भा.); १५/१०१,१४१ (भा.)
चंपा-पृष्ठचंपा १५/५३-५६ (भा.) १४१ (भा.)
चित्रकूट १४/१२०,११७-१२१ (भा.)
चेटक राजा १२/३०,१३/आमुख

ज

जंबूक चैत्य १६/४८,५४,५५
जंबूद्वीप द्वीप १३/९६,१५०; १४/१०३-१०६; १५/१६७,१८६; १६/३३,५५,६६,१२१
जमालि १३/११४-११७
जयाचार्य–(ये सारे अंक भाष्य के हैं) १२/४-५,१३,९९,१००, ११७,१७८-१८२,२०५; १३/३,३३,६६-७०,७१,११०-१२१, १२७-१२८; १४/१,२,३,८२-८३,११७-१२१,१२३-१२५; १५/५३-५६, ६५-६६,१७९; १६/८-१६,३५-४०,४८-४९
जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण १३/५५-६० (भा.)
जोसेफ डेल्यू १५/१४२ (भा.)
ज्ञातपुत्र १५/९६,९७

झ

झेलम नदी १३/आमुख

ड

डब्ल्यू शूब्रिंग १५/१४२ (भा.)
डॉ. वेणीमाधव बरूआ १५/१४२ (भा.)
डॉ. सत्यकेतु विद्यालंकर १५/१४२ (भा.)

त

तंतुवायशाला १५/२१,२३,२४,३०,३१,३७,४४,४५,४७,१४१ (भा.)
तपस्वी वैश्यायन १५/६०-६६,६८,१४१ (भा.)
ताल १५/आमुख
तालप्रलंब १५/आमुख

द

दीर्घ विजयार्ध १४/११७-१२१ (भा.)
दीर्घ वैताढ्य पर्वत १४/१२०,११७-१२१ (भा.)
देव कुरु १४/११७-१२१ (भा.)
देवसेन १५/१७१,१७२,१८२
देवानंदा १२/३९
द्रोणाचार्य १२/आमुख

ध

धर्मघोष १५/१७७

न

नंदनवन १५/१५
नामोदक १५/आमुख
नायपुत्र १२/३० (भा.)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नार्मोदक १५/आमुख
निग्गंथ नायपुत्र १५/आमुख
नीलवानद्रह १४/११७-१२१ (भा.)

प

पं. दलसुख मालवणिया १२/आमुख
पकुद कात्यायन १५/आमुख
पणियभूमि १५/५३-५६ (भा.), १४१ (भा.)
पण्डू जनपद १५/६७
पद्मावती १३/आमुख, १०२,१०७,११६-११८
पाण्डुरंग १५/आमुख
पाटलिपुत्र नगर १४/१०५
पाठ १५/१२१
पावा १५/५३-५६ (भा.), १४१ (भा.)
पुरिमताल नगर १४/१०७
पूरण काश्यप १५/आमुख
पूरण गृहपति १६/७१
पूर्वजनपद १५/१०४
पूर्णभद्र चैत्य १३/१०१,१०५
प्रणीत भूमि १५/५३,५६,५३-५६ (भा.)
प्रभावती १३/आमुख, १०२
प्रोफेसर, बलदेव उपाध्याय १५/आमुख
प्रोफेसर ल्यूमेन १५/आमुख
प्रोफेसर हर्मन जेकोबी १५/आमुख, १४२ (भा.)

ब

बंग १५/१२१
बहुल ब्राह्मण १५/४५-५०,५२
बाहिरिका नालन्दा १५/२१,२३,२४,३०,३१,३७,४४,४५,४७, १४१ (भा.)
बुद्ध १५/आमुख, १२१ (भा.), १४२ (भा.)
बेभेल सन्निवेश १५/१८६
ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती १२/१७८-१८२ (भा.)

भ

भगवान् ऋषभनाथ १५/२६ (भा.)
भगवान् गौतम १२/२०,२१,२७,२८,६६,६७,६९-८३,९७-१००,१०२-११५,११८-१२०,१२२-१२६,१२८-१३५, १३९-१४२,१४५-१५२,१५४,१६३-१७२,१७४,१७८-२२५; १३/१-१२,१४,१६-२२,२४-२६,२९,३१-३८,४२, ४४-६३,६६,८७-९१,१२२,१२४-१४५,१४७,१४९-१५०, १६६,१६८; १४/आमुख, १-२०,२२,२४-२५,२७, २९,३०, ३८,३९-४२,४४,४८-५२,५४-६०,७१,७३,७४,७७-९४, ७८-७९ (भा.), ८२-८३ (भा.), ९९-१०६,१०१-१०६(भा.) १०९-११२,११४,११६,११८-१२१,१२३-१३६, १४४; १५/९-१४,२०-२४, २६ (भा.) २९-३१,३६-३८, ४३,४४,४७,५५-६०,६८,७०,७२,७३,७५,७७ (भा.), ८२, १००,१०१,१६१,१६४-१६७,१८५; १६/आमुख, १-२४, २८-३१,३५-४०,३५-४० (भा.) ४१,४२,४४,४५,४९,५१, ५२,५५,५४-५५ (भा.), ५६,६१,६३,६४,६६,७३,७४,७६-९०,१०८,११०,१११,११३-११७,११९,१२१-१२३,१२६-१२८
भगवान् पार्श्व (पार्श्वनाथ) १२/३० (भा.), १५/आमुख, १४२ (भा.)
भगवान् महावीर १२/२,३,१५-२०,२२,२६,२७,३० (भा.), ३१,३३,३९,४०,४१,४१-४८ (भा.),६४,१२९,१५९-१६१; १३/१००,१०१,१०४,१०५,१०९,११०,११७,११८,१२०; १४/आमुख, ७७,७८-७९ (भा.), ८२-८३ (भा.) १०१-१०६ (भा.) १०९-१३२; १५/आमुख, २ (भा.), ९-११, १३-१४,२५-२६ (भा.) २९-३२,३९,४८,५३, ५३-५६ (भा.) ६५-६६ (भा.) ७७ (भा.), ७८ (भा.), ७९,८१, ८२,९६,९७,९९-१०४,१०६,१०७,१०९-११७,११९,१०५-११९ (भा.), १२०,१२१,१२१ (भा.), १४१,१४१ (भा.), १४२,१४२ (भा.), १४३,१४५-१४७, १४९-१५३,१५५, १५२-१५५ (भा.) १५७,१६१-१६४,१८२; १६/आमुख, ३३, ३४,३३-३४ (भा.) ३५,३५-४० (भा.) ४७-४९,५४-५५,५४-५५ (भा.), ५६-६४,६६,९१
भगवान् महावीर का विहार क्षेत्र १५/१४१ (भा.)
भट्टोत्पल (टीकाकार) १५/आमुख
भद्दिया १५/५३-५६ (भा.) १४१ (भा.)
भद्रा १५/१४,१६,१७,१६७
भरत क्षेत्र १४/११७-१२१ (भा.), १६/३३-३४ (भा.)
भारत १५/आमुख, १०५-११९ (भा.)
भारत वर्ष १३/आमुख; १४/१०३,१०५; १५/१५२-१५५ (भा.), १६७, १८६; १६/५५,६६
भारद्वाज १५/आमुख, १०१
भीष्म १२/आमुख

म

मंकि ऋषि १५/आमुख
मंखलि १५/१४
मंखलि गोसाल १५/आमुख

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मंखलिपुत्र गोशाल १५/२, २ (भा.) ३,३ (भा.), ४,६,७,१२-१४,२८,२९,३५,३६,४२,४३,५१,५३-७७,७७ (भा.) ७९, ८०,८३-८५, ९७-१२१,१२९,१३२-१४१,१४१ (भा.) १४२,१४६,१६४-१६६,१८२,१८६
मंखली मंख १५/१६
मंडिककुक्षि चैत्य १५/१०१
मंडित १५/आमुख, १०१
मक्खली गोशाल १५/आमुख, १४१ (भा.), १४२ (भा.)
मगध १५/१२१,१४१ (भा.)
मलय १५/१२१
मलयगिरि १४/७२-७३
मल्लधारी हेमचन्द्र १५/आमुख
मल्लराम १५/आमुख, १०१
मस्करी गोशालीपुत्र १५/आमुख
महर्षि चरक १४/१६-२० (भा.), १०७-११२ (भा.)
महापद्म १५/१६९-१७२,१८२
महाविदेह क्षेत्र/वास १२/२८; १३/१२२; १४/१०२,११७-१२१ (भा.); १५/१६४,१६५,१८५,१८६; १६/७४
महेन्द्र राजा १३/१०२,११२
मालव १५/१२१
माहेश्वरी नगरी १४/१०३
मिथिला १५/५३-५६ (भा.) १४१ (भा.)
मुल्तान १३/आमुख
मृगवन उद्यान १३/१०२,१०४,१०५,१०९
मृगावती देवी १२/३०,३३-४०
मेंढियग्राम १५/१४४,१४५,१५२,१५३,१६० (भा.) १६१
मेरु पर्वत १३/९६; १६/१२१
मौली १५/१२१

य

यमक पर्वत १४/१२०,११७-१२१ (भा.)

र

रमणीक भूमि १५/५३-५६ (भा.)
राजगृह नगर १२/६६,६९,१०२,१२२; १३/१,९५,१००,१२४,१४९; १४/१,७१,७७,७७ (भा.), १०१; १५/२१,२३,२४,२७,३०,३१,३४,३७,३८,४१,४४,५०,५१,१०१,१४१ (भा.) १६०,१६० (भा.), १८६; १६/आमुख, १,२८,४४,४७,५१
राजगृह-नालन्दा बाहिरिका १५/५३-५६ (भा.) १४१ (भा.)
राजा सन्मति १५/१०७
रोह १५/आमुख, १०१

ल

लाढ प्रदेश १५/५३-५६ (भा.), १४१ (भा.)
लिलियन (हब्शी महिला) १५/६५-६६ (भा.)

व

वज्र १५/१२१
वज्र भूमि १५/५३-५६ (भा.), १४१ (भा.)
वत्स १५/१२१,१४१ (भा.)
वराहमिहिर (ज्योतिषी) १५/आमुख
वाराणसी १५/१०१,१४१ (भा.)
विंध्यगिरि १४/१०३; १५/१६७,१८६
विचित्रकूट १४/१२०,११७-१२१ (भा.)
विमलवाहन १५/१७२-१७५,१७८-१८६
वीतीभय नगर १३/१०२,१०४-१०७,१०९-१११,१२०
वैशाली १३/आमुख; १५/१०१,१४१ (भा.)
वैशाली-वाणिज्यग्राम १५/५३-५६ (भा.), १४१ (भा.)

श

शंखपालक १५/आमुख
शकडालपुत्र १५/आमुख
शतद्वार नगर १५/१०७,१६८,१६९,१७२,१७४,१७६
शतानीक राजा १२/३०
शान १५/३,७७
शान कोष्ठक चैत्य १५/१४४,१४५,१५०,१५१
शान्त्याचार्य १२/३० (भा.)
शिवभद्र कुमार १३/१११
शीता नदी १४/११७-१२१ (भा.)
शीतोदा नदी १४/११७-१२१ (भा.)
शुम्भोत्तर १५/१२१
श्रमणोपासक पुष्कली १२/१,८,९,९ (भा.), १०-१४
श्रमणोपासक शंख (पोक्खली) १२/आमुख, १,४,५,४-५ (भा.), ६,६ (भा.), ७,८,१०-१३,१३ (भा.) १४,१५,१८,१९,२२,२६-२८; १३/१०३
श्रमणोपासिका उत्पला १२/१,६,९,९ (भा.), १०,११
श्रमणोपासिका जयंती १२/आमुख, ३०,३० (भा.) ३३,३४,३७-४८,४१-४८ (भा.) ४९-५९,४९-५२ (भा.) ६४
श्रावस्ती नगरी/नगर १२/१,३,६,७,१५,१६; १५/१,२ (भा.), ६,७,१०-१३,७७,७७ (भा.) ७९,८०,९७,१००,१०१,११५,१०५-११९ (भा.) १२०,१२८,१२९,१३२,१३९,१४१,१४१ (भा.), १४२,१४३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रेयांस कुमार १५/२६ (भा.)

स

संजयवेलट्ठीपुत्र १५/आमुख
संविध १५/आमुख
सम्राट अशोक १५/आमुख
सरवण सन्निवेश १५/१५
सर्वानुभूति अनगार १५/१०४-१०६,१०५-११९ (भा.) १६४,१८२
सहस्रानीक राजा १२/३०
सहस्राम्रवन १६/६६-६८,७१
सिंह अनगार १५/१४७-१५५,१५२-१५५ (भा.) १५६-१५९, १६१
सिद्धसेनगणि १४/३,८४-८५ (भा.)
सिद्धार्थ ग्राम नगर १५/५७,७२,१४१ (भा.)
सिन्धु सौवीर १३/आमुख,१०२,१०५,१११
सुनक्षत्र अनगार १५/१०७-११०,१०५-११९ (भा.),१६५,१८२
सुभूमि भाग उद्यान १५/१७६,१७७,१७९
सुमंगल अनगार १५/१७९-१८६
सुम्ह भूमि १५/५३-५६ (भा.), १४१ (भा.)
सौवीरराज १३/आमुख

ह

हरिभद्र सूरि १५/आमुख
हर्नले १५/१४२ (भा.)
हस्तिनापुर १६/६६-६८,७१
हालाहला कुंभकारी १५/१,२,८०,८२-८४,९७,१०१,१२०, १२१,१२८,१२९,१३२,१४१ (भा.), १४२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिशिष्ट-१ (ख)

नामानुक्रम : देव

अ

अग्निकुमार १५/१८६
अग्रमहिषी १२/१२७
अच्युत कल्प १२/१९८,२१५; १४/१५०; १५/१४२ (भा.), १६५,१६६
अनुत्तर विमान १२/१३३,१४४,१३३-१५२,२१६ (भा.); १३/३५,३७; १४/९८,९९,१३६ (भा.), १५१; १६/११५
अनुत्तरोपपातिक १२/१८८,१९८; १३/३६; १४/७८,७९, ७८-७९ (भा.), १३६; १४/आमुख, ८६-८८, ८४-८८ (भा.)
अपराजित देव १२/१६९; १३/२५
अभीची देव १३/१२१-१२२
अरिष्ट विमान १३/४९
अरुणाभ विमान १२/२७
अव्याबाध देव १४/आमुख, ११३,११४,११३-११६ (भा.)
असुर १४/आमुख, ११२; १६/९१
असुरकुमार १२/८५,८९,९०,९१,८१-९६ (भा.), १२८,१४१; १३/२५-२७,२६ (भा.), २७ (भा.), ३७,९३,९५,१२१, ११०-१२१ (भा.); १४/२ (भा.) २०,२३,२४,२१-२४ (भा.), २६,२७,३१,३३,३५,५६-५८,६०,६२,६७,१२७, १२८,१३६; १५/१८६
असुरकुमारावास १२/१३९; १३/१२१,११०-१२१ (भा); १४/२
असुरराज चमर १३/९६-९८
असुरेन्द्र १२/१२८; १३/९६-९८; १४/१३६ (भा.)

आ

आदित्य १२/१२६,१२५-१२६ (भा.)
आनत १५/१८६
आनत कल्पवासी १२/१९८
आनत-प्राणत १४/१३६; १५/१६५
आनत-प्राणत कल्प १२/१४२; १३/३४; १४/९८
आभियोगिक देव १६/३३
आरण १५/१८६
आरण-अच्युत १४/१३६
आरण-अच्युत कल्प १२/१४२; १३/३४; १४/९८

इ

इन्द्र १६/३५-४० (भा.)

ई

ईशान १२/१४१,१३३-१५२ (भा.), १९८; १४/१ (भा.), १३६,१५०

उ

उदधिकुमार १६/१३०
उपपात १२/१७७; १४/१,२,२ (भा.); १६/आमुख

क

किंपुरुष १४/११२; १६/९२
किन्नर १४/११२; १६/९२

ग

गंगदत्त देव १६/आमुख, ५७-६५,७१-७४
गंधर्व १४/११२; १६/९२
गरुड १४/११२
ग्रह-गण १२/१२८; १४/१३६
ग्रैवेयक १२/१४३,१९८,१४/१३६; १५/१४२ (भा.)
ग्रैवेयक विमान १२/२१६; १३/३६,३७; १४/९८; १५/१४२ (भा.); १६/११५
ग्रैवेयक विमानावास १५/१८५

च

चंद्र १२/१२२,१२३ (भा.), १२४,१२४ (भा.), १२५,१२७-१२८; १४/१२५,१२३-१२५ (भा.), १३६; १५/१६४,१६५,१६६
चंद्रग्रहण १२/१२४ (भा.), १२६
चन्द्रमा १२/१२३,१२३ (भा.), १२४,१२४ (भा.) १२५; १५/१८५
चन्द्रलेश्या १२/१२३
चमर १६/१२१
चमरचंचा १३/९६-९८
चमरेन्द्र १५/१२० (भा.)
च्यवन १२/२८,१५४,१५७,१५८; १३/३३,३४,९५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

च्युत १२/१६९-१७७ (भा.), १९२-१९६ (भा.)

ज

जृंभक देव १४/आमुख, ११७-१२१,११७-१२१ (भा.)
ज्योतिषदेव १२/१२८
ज्योतिषराज १२/१२५,१२७-१२८; १४/१३६
ज्योतिषेन्द्र १२/१२५,१२७-१२८; १४/१३६
ज्योतिष्क १२/९०,९५,८१-९६ (भा.) १४१,१६८,१८८,१९८; १३/२४,३१,३१ (भा.) ३३; १४/२०,२४,३५,६०,६७, ९४,१२८,१३६; १५/१४२ (भा.), १८६; १६/८०,९१
ज्योतिष्कावास १४/२

त

तमस्कायिक देव १४/२५
तारा १२/१२८; १४/१३६
ताल पिशाच १६/९१

द

दिशा कुमार १६/१३२
देव १२/२७,२८,८३,१२० (भा.), १२५,१२८,१३९,१४४, १३३-१५२ (भा.),१५४,१५७,१५८,१५४-१५८ (भा.), १६३,१६४,१६८,१६३-१६८ (भा.), १६९,१७६,१७७, १६९-१७७ (भा.), १७८,१८५-१८८,१९०,१९८,२०७; १३/२४,२५,३८,१३२-१३४,१३७,१३८,१४०,१४१; १४/ आमुख, १ (भा.), २ (भा.) ६-८,११,१२,१८,१६-२० (भा.), २२,२३,२४,२१-२४ (भा.) २५,२५-२७ (भा.), २९, ३०,३६,३७,३९,६८,६९,१०९,११२,११३-११६ (भा.) १३०, १३०-१३१ (भा.); १५/१०१,१२७,१६४,१८५, १८६; १६/आमुख, ५५,५४-५५ (भा.) ५६,९१,११८,११९, १२१
देव ऋषि १४/११३-११६ (भा.)
देव के दो प्रकार १४/३०
देवगति १२/१६९,१८५-१९० (भा.),१४/६१-६७ (भा.)
देवराज देवेन्द्र अच्युत १४/७५
देवराज देवेन्द्र शक्र १४/२,७४,११५; १६/आमुख, ३३,३४,३५-४०,५४-५५
देवलोक १२/१८,१५४,१५७,१५८; १३/१२२; १४/१; १५/ १०१,१६४,१६५,१६७,१८५,१८६
देव वृष्टि १४/२१-२४ (भा.)
देवस्थिति १४/१ (भा.)
देवावास १४/१,१ (भा.)
देवी १२/१३९,१४४,१३३-१५२ (भा.); १४/३९
देवेन्द्र ईशान १४/आमुख, २५,७५
देवेन्द्र शक्र १४/आमुख; १६/३३-३४ (भा.), ३५-४० (भा.)
द्वीपकुमार १६/१२५-१२८,१३०

न

नक्षत्र १२/१२८; १४/१३६
नाग १४/११२
नागकुमार १३/२८; १४/२४; १५/१८६

प

पालक विमान १६/३३
पूर्णभद्र देव १५/१२७,१७१

ब

बलिचंचा १६/१२१
ब्रह्म १५/१६४
ब्रह्मलोक १३/८८-९१ (भा.); १४/१३६; १५/१०१,१४२ (भा.), १८६
ब्रह्मलोक कल्प १३/४९; १४/९६,९७,१०९

भ

भवनवासी देव १२/१२८,१७७,१८८,१९८; १३/२४,२५; १४/ १३६
भव्यद्रव्य देव १२/१६३,१६४,१६३-१६८(भा.),१६९,१७८, १७८-१८२ (भा.), १८३-१८५,१९१,१९२, १९२-१९६ (भा.), १९७
भाव देव १२/१६३,१६८,१६३-१६८ (भा.), १७७,१६९-१७७ (भा.), १८२,१८४,१८५-१९० (भा.), १९१,१९६,१९२-१९६ (भा.), १९७,१९८

म

मणिभद्र देव १५/१२७,१७१
मरुत देव १२/१५४-१५८ (भा.)
महाकल्प १५/१०१
महाशुक्र १४/१३६; १५/१८६
महाशुक्र कल्प १४/९८; १५/१६४; १६/५६,७१
महाशुक्र कल्पवासी १२/१९८
महाशुक्र विमान १६/आमुख
महासामान्य विमान १६/५६,७१
महोरग १४/११२; १६/९२
माहेन्द्र १४/९५,१३६
माहेन्द्र कल्प १३/४९
माहेन्द्र कल्पवासी १२/१९८
मृगांक विमान १२/१२५

य

यक्ष १४/११२

र

राक्षस १४/११२
राहुविमान १२/१२३,१२३ (भा.)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

राहू १२/२२, १२३, १२३ (भा.), १२४, १२४ (भा.), १२५-१२६ (भा.)

ल

लवसप्तम देव १४/आमुख, ८४-८५,८४-८८ (भा.)
लांतक १४/१३६; १५/१६४
लांतक कल्प १४/९७-९८; १५/१४२ (भा.)
लांतक कल्पवासी १२/१९८
लोकान्तिक देव १४/११३-११६ (भा.)

व

वाणमन्तर १२/१२८,१६८,१८८,१९८; १३/२४,२९,२९ (भा.), ३०,३१ (भा.); १४/२०,२४,३५,६०,१२८,१३६; १६/८०,९१
वाणव्यंतर १२/९०,९५,८१-९६ (भा.), १४१
विद्युत्कुमार १५/१८६
विमानावास १२/१४२,१४३; १३/३२-३४
वैमानिक १२/८३,८५,८६,८७,९०,९१,९३,९५,९६,८१-९६ (भा.), १३३-१५२ (भा.), १६८,१७६,१८८,१९८,२०८, २१०; १३/२४,९५,११०-१२१ (भा.); १४/१ (भा.), २ (भा.) ३,५,८,१०,१४,२०,२४,२७,३१,५५,६०,६७, ७३, ७४,७५,१२८; १६/१०,१२,१४,१६,२६,३१,४४,४५,५५, ८०,९१
वैमानिकावास १२/११३; १४/२
वैरोचनेन्द्र बलि १६/१२१
वैशेचनेन्द्र वैरोचनराज बलि १६/१२१
व्यंतर १२/१९२-१९६ (भा.); १४/११७-१२१ (भा.), १३६ (भा.)

श

शशि १२/१२५,१२५-१२६ (भा.)

स

संयूथ देव १५/१०१
सनत्कुमार १३/३३; १४/१ (भा.),७५,९५,१३६; १५/१८६; १६/४०
सनत्कुमारकल्प १२/१४२,१३३-१५२ (भा.), १९८; १३/४९
सर्वार्थसिद्ध १२/१३३,१३३-१५२ (भा.),१६९,१७६,१६९-१७७ (भा.), १८५,१८८; १५/१८५-१८६
सर्वार्थसिद्धक १३/२५
सहस्रार १४/१३६
सहस्रारकल्प १३/३३,३४,९८; १५/१४२ (भा.), १६४
सुघोष घंटा विमान १६/३३
सुपर्णकुमार १५/१८६
सुवर्ण १४/११२
सूर्य १२/१२३ (भा.), १२४,१२४ (भा.); १४/१२५,१२३-१२५ (भा.), १३२-१३५, १३२-१३५ (भा.); १३६, १५/१६४-१६६
सूर्यग्रहण १२/१२४ (भा.)
सौधर्म १२/१४१,१३३-१५२ (भा.), १९८; १३/३३; १४/१ (भा.), १३६; १५/१४२ (भा.); १६/११५
सौधर्म-ईशान कल्प १४/९४,९५
सौधर्मकल्प १२/२७,११३,१९८,२१४,२१७,२३२,२३३; १४/१५०; १५/१८६
सौधर्म स्वर्ग १६/३३ (भा.)
सौधर्मेन्द्र शक्र १६/३३ (भा.), ५४-५५ (भा.)
स्तनितकुमार १२/८९,९१,९२,८१-९६ (भा.), ११४,१३९, २०७; १३/२८; १४/३३,५७,६२,१२७; १५/१८६; १६/२९,१३३
स्तनितकुमारावास १४/२
स्वर्ग १५/१४२ (भा.)

ह

हरिणगवेषी देव १६/३३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिशिष्ट-१ (ग)

नामानुक्रम : पशु-पक्षी

अ

१. अंधिय (अन्धिका) १५/१८६
Caipisid Bug
२. अच्छ (रींछ) १२/१६०
Sloth Bear
३. अजा, अया (बकरी) १२/१३२
Goat
४. अयगर (अजगर) १५/१८६
Python
५. अही (सांप) १५/१८६
Snake

आ

६. आसालिय (आशालिका) १५/१८६
Very Large Snake

उ

७. उरपरिसर्प (पेट के बल पर चलने वाले सर्प) १५/१८६

८. उवचिया (उपचित) १५/१८६

९. उसभ (वृषभ) १६/८६,८७,९२
Bull

क

१०. कंक (सफेद चील) १२/१६१
White bellied sea-eagle
११. कच्छभ (कछुआ) १५/१८६
Tortoise, Turtle
१२. कुक्कुड (कुक्कुट) १२/१५९
Grey Jungli fow
१३. कौवे १५/१७९ (भा.)

ग

१४. गंडीपद (हाथी) १४/२९-३९ (भा.), १५/१८६
Elephant
१५. गय (गज) १६/८६,८७,९२
Elephant
१६. गो (गाय, गौ) १४/२९-३९ (भा.), १६/९१
Cow
१७. गोनंगूल (वानर) १२/१५९
Monkey
१८. गोमयकीडग (गोमयकीटक, गोबर का कीड़ा) १५/१८६
Beetle
१९. गोह (गोहा) १५/१८६
A Kind of Lizard

च

२०. चम्मपक्खी (चर्मपक्षी) १५/१८६
A kind of Bird

छ

२१. छप्पदीओ (जूंओं) १५/६०,६१,६३,६७
Louse

ज

२२. जलोय (जौंक) १३/१५३
Leech
२३. जाहग (जाहक) १५/१८६
Hedgehog
२४. जीवंजीव (चकोर पक्षी) १३/१५६,१४९,१६६ (भा.)
Common or blue legged Bustard

ढ

२५. ढंक (द्रोण काक) १२/१६१
Jungli Crow

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

त

२६. तरच्छ (लकड़बग्घा) १२/१६०
Hyena

द

२७. दिट्ठिविसं (दृष्टिविष सर्प) १५/९३,९४
A kind of Cobra
२८. दीविय (चित्तिदार तेंदुआ) १२/१६०
Spotted Dove

न

२९. नउल (नेवला) १५/१८६
Mongoose
३०. नाग (नाग) १२/१५४,१५४-१५८ (भा.); १४/आमुख

प

३१. पुंसकोइलगं (पुंसकोकिल) १६/९१
Crow-peasant
३२. पक्खिविराली (विराल पक्षी) १३/१५५,१४९-१६६ (भा.)
Flying Fox, The large Fruit Bat
३३. पक्खी (पक्षी) १५/१८६
Bird
३४. पन्नग (सर्प) १२/१५४-१५८ (भा.), १५/१६२
Snake
३५. परस्सर (पराशर) १२/१६०
Wombat
३६. पुलाकिमिय (पुलाकृमिक) १५/१८६
A kind of Worm
३७. पोत्तिय (पोत्तिका) १५/१८६
A Wasp

ब

३८. बंदर १४/२९-३९ (भा.)
Monkey
३९. बीयंबीयग (बबा.ग पक्षी) १३/१५४,१४९-१६६ (भा.)
A kind of house Swift
४०. बैल १५/१४२ (भा.), १८६
Ox

भ

४१. भुजपरिसर्प (हाथों के बल चलने वाले गोह आदि) १५/१८६

म

४२. मंडुक्क (मेंढ़क) १२/१५९; १३/१२७-१२८ (भा.)
Frog
४३. मच्छ (मत्स्य) १५/१८६
Fish
४४. मद्दुय (मद्गुक, जलकाक) १२/१६१
Snake Bird or Darter
४५. महोरग (महोरग) १५/१८६
Very Large Snake

ल

४६. लोमपक्खी (रोमपक्षी) १५/१८६
A kind of Bird

व

४७. वग, विग (भेड़िया) १२/१६०
Wolf
४८. वग्घ (व्याघ्र) १२/१६०
Tiger
४९. वल्गुलिका (छोटी चमगादड़) १३/१५२,१५३,१६२,१४९-१६६ (भा.)
५०. वियपक्खी (विततपक्षी) १५/१८६
A kind of Bird
२२. विलय (विलक, पीलक) १२/१६१
Golden Oriole
५१. वेरुलिय (गरुड़) १३/१६०,१४९-१६६ (भा.)

स

५२. संसुमार (मगरमच्छ) १५/१८६
Crocodile
५३. समुग्गपक्खी (समुद्गपक्षी) १५/१८६
A kind of Bird
५४. समुद्दलिक्खा (समुद्रलिक्षा) १५/१८६
Sea-louse
५५. समुद्दवायस (समुद्रकाक) १३/१५८
Brown Headed Gull
५६. सिखी, सिहि (मोर) १२/१६१
Common Peafow
५७. सिरीसिव (सरीसृप) १५/१८६
Komodo-Dragon

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५८. सीहं (सिंह) १२/१६०; १५/१८६
Lion

ह

५९. हंस (हंस) १३/१५७
Flamingo

६०. हत्थिसोंडा (हस्तिसुण्डी) १५/१८६
A kind of Caterpillar

६१. हयं, हय (अश्व, घोड़ा) १५/१८२,१८४,१८६; १६/९२
Horse

६२. हल्ला (कीट) १५/१२८,१३२,१३७
A kind of Worm

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिशिष्ट-२

शब्दार्थ एवं शब्द-विमर्शानुक्रम

अ

अक्षमा १२/१०२-१०७
अणगारं नोल्लावेइहि १५/१७९
अधर्मप्ररञ्जन १२/५२-५४
अधर्मप्रलोकी १२/५३-५४
अधर्म समुदाचार १२/५३-५४
अधर्माख्याति १२/५३-५४
अधर्मानुग १२/५३-५४
अधर्मिष्ठ १२/५३-५४
अधिकरण शाला १६/६-७
अधिकरणी १६/६-७
अधिकरणी खोडी १६/६-७
अनंतर-आहारक १३/५
अनंतर उपपन्नक १४/४-५
अनंतर-खेदोपपन्नक १४/१४
अनंतर निर्गत १४/९-१३
अनंतर-परंपर अनिर्गत १४/९-१३
अनंतर-परंपर अनुपपन्नक १४/४-५
अनंतर-परंपर खेद अनुपपन्नक १४/१४
अनंतरावगाढ १३/५
अनंतरोपपन्नक १३/५
अनुत्तरोपपातिक देव १४/८४-८८
अनुभाव परिवर्तन १२/२२-२५
अनुवायंती १६/१०६
अपकर्ष १२/१०२-१०७
अपत्तियं १६/५१-५२
अबुद्ध जागरिका १२/२०-२१
अभिध्या १२/१०२-१०७
अभिरममाणे १३/१४९-१६६
अभिसमन्वागत १२/९७
अप्फोडेमाणे १५/१२०
अर्जुन गौतमपुत्र १५/३
अलाबुक १२/१२४
अवग्रह १६/३३-३४
अवडु (आवट्ट) १५/१२०
अवद्दालिय १३/१४९-१६६
अवधिमरण १३/१३०-१४५
अविग्रह गति १४/५४-५५
अविरत्ता १२/१२८
अवीचि द्रव्य १४/७२-७३
अवीचिमरण १३/१३०-१४५
आवेढियं १६/७६-१०६

आ

आशीष १२/१०२-१०७
आचरण १२/१०२-१०७
आत्मोत्कर्ष १२/१०२-१०७
आत्यंतिकमरण १३/१३०-१४५
आदित्य १२/१२५-१२६
आयंचिण-उदअ (आतञ्चन-उदक) १५/१२०
आर्य १४/१३६
आसाएमाणा १२/४-५
आसयंति १३/९८

इ

इंदिय वसट्टे १२/५९-६३
इच्छा १२/१०२-१०७

उ

उग्गोवेमाणे १६/७६-१०५
उत्कर्ष १२/११०-१०७
उदग द्रोणी १६/६-७
उद्वर्तना १३/४
उन्नत १२/१०२-१०७
उन्नाम १२/१०२-१०७
उन्माद १४/१६-२०
उपधि १२/१०२-१०७
उपयोग आत्मा १२/२००
उब्भिज्जमाण १६/१०६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उल्लंबिया १३/१४९-१६६
उव्विहिय उव्विहिय १३/१४९-१६६

औ

औत्पत्तिकी १२/१०८-१११
औदारिक पुद्गल-परिवर्त्त १२/८१-९६
औधनिक लयन १३/९८
औपकरिक लयन १३/९८

क

कंबल कडं १३/१४९-१६०
कपोत शरीर १५/१५२-१५५
करण १४/४४-४७
कर्मलेश्या १४/१,१२३-१२५
कलह १२/१०२-१०७
कल्क १२/१०२-१०७
कषाय आत्मा १२/२००
कांक्षा १२/१०२-१०७
कामाशा १२/१०२-१०७
काय १३/१२७-१२८
किल्विष १२/१०२-१०७
कुक्कुडमांस १५/१५२-१५५
कुक्षि का भेदन १२/१२४
कुरुक १२/१०२-१०७
कृत १२/९७
केतकी १६/१०६
कोट्ठ १६/१०६
कोप १२/१०२-१०७
कौसंब १६/५१-५२
क्रीडारति १४/२५-२७
क्रोध १२/१०२-१०७

ख

खञ्जन १२/१२४

ग

गंडिया १६/५१-५२
गति १३/५५-६०
गर्व १२/१०२-१०७
गूहन १२/१०२-१०७
गृद्धि १२/१०२-१०७
गृहीत १२/९७
ग्रहण १२/१०२-१०७; १३/५५-६०

घ

घायगत्ताए १२/१३३-१५२

च

चंब कडं १३/१४९-१६६
चक्र रत्न १२/१६३-१६८
चम्मेट्ठ १६/६-७
चरम १३/५; १४/१
चाण्डिक्य १२/१०२-१०७
चारित्र आत्मा १२/२००

छ

छंद १२/१३

ज

जडिल १६/५१-५२
जल-प्रपात लयन १३/९८
जागरिका १२/२०-२१
जागृत १६/७६-१०५
जिम्ह १२/१०२-१०७
जीवंजीवक १३/१४९-१६६
जीविताशा १२/१०२-१०७
ज्ञान आत्मा १२/२००

ड

डेवेमाणे १३/१४९-१६६

ण

णूम १२/१०२-१०७

त

तिर्यक् पर्वत १४/६८-६९
तिर्यक् भित्ति १४/६८-६९
तृष्णा १२/१०२-१०७

द

दर्प १२/१०२-१०७
दर्शन आत्मा १२/२००
दामिणि १६/७६-१०५
दिशाचर १५/७७
दुर्नाम १२/१०२-१०७
देवातिदेव १२/१६३-१६८
दोष १२/१०२-१०७
द्रव्य आत्मा १२/२००

ध

धर्मदेव १२/१६३-१६८
धार्मिक १२/५३-५४

न

नंदि १२/१०२-१०७
नरगत्ताए १२/१३३-१५२
नरदेव १२/१६३-१६८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नव निधि १२/१६३-१६८
निकृति १२/१०२-१०७
निब्भिज्जमाण १६/१०६
निर्जीण १२/९७
निर्यानिक लयन १३/९८
निर्विष्ट १२/९७
निसीयंति १३/९८
निःसृत १२/९७
निःसृष्ट १२/९७
नेमि व्रतिरूपक १४/७४-७५
नोइंद्रिय उपयुक्त १३/५

प

पउट्ट परिहार १५/७२-७३
पक्खिविराली १३/१४९-१६६
पणियभूमि १५/५३-५६
परंपर उपपन्नक १४/४-५
परंपर खेदोपपन्नक १४/१४
परंपर आहारक १३/५
परंपर निर्गत १४/९-१३
परंपरावगाढ १३/५
परंपरोपपन्नक १३/५
परपरिवाद १२/१०२-१०७
परम १४/१
परिपार्श्व १४/१
पप्फोडेमाणे १५/१२०
परिचारणा १२/१२४
परिभायमाणा १२/४-५
परिभुञ्जमाणा १२/४-५
परिणमित १२/९७
परिवेढियं १६/७६-१०५
पर्याप्त १२/९७
पाक्षिक पौषध १२/४-५
पारिणामिकी १२/१०८-१११
पुयलि १५/१२०
प्रज्ञापराध १४/१६-२०
प्रतिकुंचन १२/१०२-१०७
प्रतिहार १२/१५४-१५८
प्रदेश संख्या परिवर्तन १२/२२-२५
प्रस्थापित १२/९७
प्रार्थना १२/१०२-१०७

ब

बंध परिवर्तन १२/२२-२५
बद्ध १२/९७
बीजंबीजक १३/१४९-१६६
बुद्ध जागरिका १२/२०-२१

भ

भण्डन १२/१०२-१०७
भत्था १६/६-७
भवसिद्धिक १२/४९-५२
भव्यद्रव्य देव १२/१६३-१६८
भाइल्लगत्ताए १२/१३३-१५२
भावदेव १२/१६३-१६८
भिध्या १२/१०२-१०७
भिस १३/१४९-१६६
भेद १२/६९-८०
भोगाशा १२/१०२-१०७

म

मज्जारकड १५/१५२-१५५
मद १२/१०२-१०७
मनोमानसिक १३/११०-१२१
मयगत्ताए १२/१३३-१५२
मरण १३/१३०-१४५
मरणाशा १२/१०२-१०७
महत्तर १३/४३
महापइरिक्कतरा १३/४३
महापवेसणतरा १३/४३
महावित्थिण्णतर १३/४३
महोगासतरा १३/४३
मान १२/१०२-१०७
माया १२/१०२-१०७
मुंड १६/५१-५२
मुट्ठिए १६/६-७
मूर्च्छा १२/१०२-१०७

य

योग आत्मा १२/२००

र

रहसिरेणे १५/१७९
राग १२/१०२-१०७
रोष १२/१०२-१०७

ल

लव सप्तम देव १४/८४-८८
लालपनता १२/१०२-१०७
लोभ १२/१०२-१०७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

व

वलय १२/१०२-१०७
वल्गुलिका १३/१४९-१६६
वसुहारा वुट्ठा १५/२२-२६
वहगत्ताए १२/१३३-१५२
वाइद्धं १६/५१-५२
विग्गह कंडक १३/८८-९१
विग्गह विग्गहिए १३/८८-९१
विग्रह १३/८८-९१
विग्रह गति १४/५४-५५
विग्रहिक १३/८८-९१
विलयकडं १३/१४९-१६६
विवाद १२/१०२-१०७
विसाएमाणा १२/४-५
वीचि द्रव्य १४/७२-७३
वीर्य आत्मा १२/२००
वेरुलिय १३/१४९-१६६
वेसत्ताए १२/१३३-१५२
वैसालिए १२/३०
व्यवशमन काल १२/१२८

श

शशि १२/१२५-१२६

स

संघात १२/६९-८०
संघात-भेद १२/६९-८०
संचिट्ठणा १२/१९१
संज्वलन १२/१०२-१०७
संवेल्लेमाणे १६/७६-१०५
सपक्ष १२/१२४
सप्रतिदिश १२/१२४
समतुरंगेमाणे १३/१४९-१६६
सयंति १३/९८
सातिओग १२/१०२-१०७
सिन्धु सौवीर १३/१०२
सुंब कडं १३/१४९-१६६
सुदृष्ट जागरिका १२/२०-२१
सुप्त १६/७६-१०५
सुप्त-जागृत १६/७६-१०५
स्तम्भ १२/१०२-१०७
स्थिति परिवर्तन १२/२२-२५
स्पृष्ट १२/९७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिशिष्ट-३

भाष्य-विषयानुक्रम

अ

अग्निकाय १६/५
अग्निकाय का अतिक्रमण १४/५४-५५,५६-५७,५८-६०
अद्धासमय (व्यावहारिक काल) १३/७१
अधःसप्तमी में तीन ज्ञान १३/१३
अधर्मास्तिकाय के प्रदेश एवं षड्द्रव्य के प्रदेशों का परस्पर स्पर्श १३/६१-६२
अधिकरणी-अधिकरण पद १६/८-१६
अनुकंपा १५/६५-६६
अनुत्तर विमान १३/३५
अनुत्तरोपपातिक देव १४/८४-८८
अम्मड परिव्राजक की चर्या १४/१०७-११२
अर्हत्, निर्ग्रंथ और वैशालिक १२/३०
अवकाशान्तर एवं तनुवात में वर्ण की पृच्छा १२/११२-११३
अव्याबाध देव की दिव्य शक्ति १४/११३-११६
अष्टविध आत्मा का अल्प-बहुत्व १२/२०५
अष्टांग निमित्त १५/७७
असुरकुमार देवों के आवास १३/२६
अस्तिकायों की परस्पर स्पर्शना १३/७२-७३

आ

आकाशास्तिकाय के प्रदेश एवं षड्द्रव्य के प्रदेशों का परस्पर स्पर्श १३/६३
आठ आत्माओं की उपलब्धि और अनुपलब्धि १२/२०१-२०४
आठ-चरम १५/१२१
आत्मा : ज्ञान और दर्शन १२/२०६-२१०
आत्मा और शरीर १३/१२८
आत्मा के आठ प्रकार १२/२००
आप्त १४/१२६-१२९
आभामंडल एवं कर्मलेश्या १४/१२३-१२५
आयुष्य बंध का सिद्धांत १४/१
आर्य १४/१३६
आसंयति और संयति १३/९८

इ

इन्द्रिय लोलुपता से कर्मबन्धन १२/५९-६३

ई

ईषत् प्राग्भारा १४-१००

उ

उत्तर विक्रिया में बाहरी पुद्गलों का ग्रहण १६/५४-५५
उद्रायण के दो महारानियां १३/१००
उद्रायण के मानसिक द्वन्द्व और उत्तराधिकारी की नियुक्ति १३/१००-१२१
उद्वर्तना १३/४,६
उन्माद के प्रकार १४/१६-२०
उपपद्यमान ही उत्पन्न होना १२/१५९-१६१

औ

औत्पत्तिकी बुद्धि एवं पारिणामिकी बुद्धि १२/१०८-१११
औदारिक पुद्गल परिवर्त १२/९७

क

कर्म परिवर्तन १२/२२-२५
कवोय-सरीर, मज्जारकडए और कुक्कुडमंसए १५/१५२-१५५
काय (शरीर) का स्वरूप १३/१२८
कुंडलिनी जागरण के मार्ग १५/६५-६६
कुंडलिनी : स्वरूप और जागरण १५/६५-६६
केवली १४/१३८-१५४
क्रिया पद १६/६-७

ग

गंध पुद्गल १६/१०६
गति का सिद्धांत १३/५५-६०
गति के नियम १६/११८-११९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गर्भ में वर्णादि १२/११९
गोशालक का जीवन वृत्त १५/१४२
गौतम स्वामी १४/७७

च

चतुःस्पर्शी १२/११७
चारों गति के जीवों के अनुश्रव १४/६१-६७
चार गतियों के विभाग का हेतु-कर्म १२/१२०
चेतना की अवस्थाएं १२/१०८-१११
चैतन्य-अचैतन्य कृत कर्म १६/४१-४२
चौबीस वर्ष पर्याय वाला मंखलिपुत्र गोशाल १५/२

छ

छह दिशाचर और गोमायुपुत्र १५/३

ज

जागरिका एवं उसके प्रकार १२/२०-२१
जीव और पुद्गल १२/१०२-१०७
जीव की अवस्थाएं १२/१०२-१०७
जीव के नाना रूपों में संसार में भ्रमण १२/१३३-१५२
जीवास्तिकाय के प्रदेश एवं षड्द्रव्य के प्रदेशों का परस्पर स्पर्श १३/६४-६५
जीवों के जरा-शोक पद १६/२८-३१
जृंभक देव एवं उनके प्रकार १४/११७-१२१

त

तमस्काय का निर्माण १४/२५-२७
तीन गमक १३/६
तेजोलेश्या १५/६५-६६

द

दया १५/६५-६६
दिव्य सर्प का दरसाव १२/१५४-१५८
दिशा १३/४७-५५
दिशाचर १५/७७
दुर्बलता, बलवत्ता, आलस्य, दक्षता १२/५५-५८
देवायुष्य का बंध १५/२२-२६
देवों का असंज्ञी के रूप में उद्वर्तन १३/२७
देवों की सहस्रभाषा १४/१३०-१३१
देवों के पांच प्रकार १२/१६३-१६८
देवों द्वारा नाट्य विधि १६/६१-६३
देवों में कषाय की विद्यमानता १३/२७
देवों में लेश्याएं १३/३१
द्रव्य, दाता और प्रतिग्राहक की शुद्धि १५/२२-२६
द्रव्यलेश्या एवं भावलेश्या १२/११७
द्विशरीरी १२/१५४-१५८
द्वयणुक स्कंध के अवगाह का नियम १३/७९-८३

ध

धर्मदेव का संस्थान काल १२/१९१
धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय का अमूर्त्तत्व १३/८६-८७
धर्मास्तिकाय के प्रदेश एवं षड्द्रव्य के प्रदेशों का परस्पर स्पर्श १३/६१-६२

न

नरक में अग्निकाय १४/५४-५५
नरक में उपपत्ति के नियम १३/३
नरक में तीन लेश्याएं १३/१८-२२
नरक में तेजस्काय १३/४४,४६
नरक में पृथ्वी, अप् आदि कायों का स्पर्श १३/४४
नरक में पृथ्वी आदि छह काय १३/४६
नरकावास १३/४३
नरकावासों की मोटाई आदि १३/४५
निर्जरा के तारतम्य का हेतु १६/५१-५२
नैरयिक का अनंतर उपपन्नक आदि १४/४-५
नैरयिक का अनंतर खेद उपपन्नक आदि १४/१४
नैरयिक का अनंतर निर्गत आदि १४/९-१३
नैरयिक का आहार आदि १४/७१,७२-७३
नैरयिक के आयुष्य का बंध १४/६-८,९-१३
नैरयिक के आहार एवं शरीर १३/४०
नैरयिक के वीचि द्रव्यों एवं अवीचि द्रव्यों का आहार १४/७२-७३
नैरयिकों की गति १४/३

प

पंचविध देवों का अन्तर काल १२/१९२-१९६
पंचविध देवों का उद्वर्तन १२/१८५-१९०
पंचविध देवों की विक्रिया १२/१८३-१८४
पंचविध देवों की स्थिति १२/१७८-१८२
पंचास्तिकाय १३/५५-६०
पंचास्तिकाय की सत्ता में होने वाली प्रवृत्तियां १३/५५-६०
पउट्ट परिहार १५/६५-६६
परमाणु-पुद्गल का चरम-अचरम रूप १४/५१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परमाणु-पुद्गल की गति १६/११६
परामनोविज्ञान में मनःप्रभाव १५/६५-६६
परिणामी नित्यवाद १४/४४-४७
पांच क्रिया १६/११७
पांच स्थावर काय के व्याप्ति का नियम १३/८४-८५
पाक्षिक पौषध १२/४-५
पुद्गल का स्वरूप १४/४४-४७
पुद्गल द्रव्य : अणु और स्कंध १२/६९-८०
पुद्गल-परिवर्त्त १२/८१-९६
पुद्गल-परिवर्त्त का कालमान १२/९८
पुद्गल-परिवर्त्त के निवर्तना निष्पत्ति काल १२/९९-१००
पुद्गलास्तिकाय के प्रदेश एवं षड्द्रव्य के प्रदेशों का परस्पर स्पर्श १३/६४-६५
पुद्गलास्तिकाय के प्रदेशों का षड्द्रव्य के प्रदेशों से स्पृष्ट होना १३/६६-७०
पोट्ट-परिहार का सिद्धांत १५/६५-६६,१४१
पौषध का स्वरूप १२/६
पौषध में भोजन करने की आज्ञा देना १२/१३
प्रणीतभूमि में भगवान् महावीर का वर्षावास १५/५३-५६
प्रमाणांगुल योजन १४/९०
प्रवृत्ति और निवृत्ति १५/६५-६६
प्राण-शक्ति का आध्यात्मिक तथा वैज्ञानिक महत्त्व १५/६५-६६
प्राण-शक्ति की विद्युत् का चमत्कार १५/६५-६६
प्रियधर्मा-दृढ़धर्मा १२/१९

ब

बंध स्थिति १३/१४७
ब्राह्मण १५/१५

भ

भक्त-प्रत्याख्यान (अनशन) १४/८२-८३
भगवान् महावीर का महत्त्वपूर्ण जीवन-प्रसंग १५/१४१
भगवान् महावीर का विहार, वर्षावास आदि का काल-क्रम के साथ पूर्ण विवरण १५/१४१
भगवान् महावीर को विजय गृहपति द्वारा प्रदत्त दान १५/२२-२६
भगवान् महावीर तथा गोशालक (उपलब्ध काल-विषयक सामग्री एवं महत्त्वपूर्ण जीवन प्रसंग) १५/१४१
भगवान् महावीर द्वारा सत्योद्घाटन एवं गोशालक द्वारा तेजोलेश्या का घातक प्रयोग १५/१०५-११९
भवसिद्धिक १२/४९-५२
भव्य-द्रव्य देव की उत्पत्ति १२/१६९-१७७
भावितात्मा अनगार १४/१२३-१२५
भावितात्मा अनगार की बहुविध विक्रिया १३/१४९-१६६
भावितात्मा अनगार के असुरकुमार के आयुष्य का बंध कैसे? १४/२
भाषा का स्वरूप १३/१२४

म

मन का स्वरूप १३/१२६
मरण एवं उसके प्रकार १३/१३०-१४५
महानिमित्त १५/४
महावीर और गौतम के वार्तालाप १४/७८-७९
महावीर और गोशालक का तुलनात्मक जीवन-दर्शन १५/७७
मुनि की शल्य क्रिया १६/४८-४९
मेंढियग्राम के प्रसंग में रायगिह का उल्लेख १५/१६०

र

रत्नप्रभा पृथ्वी में कापोत लेश्या १३/३
रत्नप्रभा में विद्यमान नारक जीव १३/५
रहसिरेण और नोल्लावेइ १५/१७९
राहू और चन्द्रमा १२/१२३
राहू के दो भेद १२/१२४

ल

लवसप्तम देव १४/८४-८८
लेश्या १३/३३
लेश्यानुसारी उपपात १४/१,२
लोक के चरमान्तों में जीव-अजीव की वक्तव्यता १६/११०-११५
लोक में समस्त जीवों का जन्म-मृत्यु पद १२/१३०-१३२
लोक स्वरूप १३/८८-९१
लोकोपचार विनय १४/२९-३९

व

वर्षा के दो कारण १४/२१-२४
वस्तु में सदृशता और विसदृशता का गुण धर्म १४/८०-८१
वाणमंतर देवों के आवास १३/२९
वायुकाय १६/१-४
विक्रिया १४/६८-६९
विग्रह गति १४/३
वृक्ष का पुनर्भव १४/१०१-१०६
वैरानुबंध के कारण सम्यग्दृष्टि से विरहित १३/११०-१२१

श

शक्र का अवग्रह-अनुज्ञापन पद १६/३३-३४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शक्र की भाषा : सावद्य या अनवद्य १६/३५-४०
शक्र संबंधी व्याकरण १६/३५-४०
शय्यातरी जयन्ती श्रमणोपासिका १२/३०
शरीर :अष्टस्पर्शी और चतुस्पर्शी १२/११४-११६
शरीर के संदर्भ में अधिकरणी और अधिकरण की मीमांसा १६/२०-२६
शीलव्रत १२/२७
श्रमणों की साधनजन्य तेजोलेश्या १४/१३६
श्रमणोपासिका जयन्ति के प्रश्न १२/४१-४८
शशि और आदित्य १२/१२५-१२६
श्रावक के धार्मिक स्वरूप १२/१
श्रावक को वंदन-नमस्कार १२/९

ष

षड्द्रव्य में वर्णादि १२/११८
षड्द्रव्यों के प्रदेश के नियम १३/७२-७३
षड्द्रव्यों के प्रदेशों का अवगाह, अवस्थिति अथवा व्याप्ति का निरूपण १३/७४-७८

स

सत्य को देखने की दो दृष्टियों १४/४९-५०
समुद्घात १३/१६८
सम्यक् मिथ्यादृष्टि १३/१४-१६
साध्य-साधन संगति १५/६५-६६
सिंह अनगार द्वारा रेवती के से भैषज्य ग्रहण १५/१५२-१५५
सिन्धु सौवीर १३/१०२
सुख-दुःख के हेतु १४/४८
सुगंधित द्रव्यों के पुट १६/१०६
सूर्य १४/१३२-१३५
सोना अच्छा या जागना? १२/५३-५४
सोलह जनपद १५-१२१
स्कंध की उत्पत्ति : संघात और भंद १२/६९-८०
स्याद्वाद का सिद्धांत १२/२११-२२५
स्वप्न दर्शन १६/७६-१०५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिशिष्ट-४

पारिभाषिक शब्दानुक्रम

अ

अंतरालगति १४/आमुख, ४-५ (भा.)
अकर्म १२/१२०
अकर्मभूमि १२/१७३
अकर्मभूमिज १२/१६९, १६९-१७७ (भा.)
अकाम निर्जरा १४/आमुख, १०१-१०६ (भा.)
अक्षमा १२/१०३
अगार १२/२७; १३/१०८,११०,१२०; १४/११२; १५/१८६; १६/७०,९१
अग्नि १४/४४ (भा.)
अग्निकाय १४/५४,५५,५४-५५ (भा.) ५६-५७,५६-५७ (भा.) ५८-६०,५८-६० (भा.); १५/१८६; १६/आमुख, ५,५ (भा.)
अज्ञान १२/२०८,२०६-२१० (भा.); १४/३ (भा.), ३६
अचरम १४/५१,५१ (भा.); १६/४०,६०
अचित्त १३/१२४,१२४ (भा.) १२६,१२८
अजिन १५/६,७७,७९
अजीव १३/१२४,१२४ (भा.), १२६,१२८; १४/११२
अजीव देश १६/१११
अजीव प्रदेश १६/१११,११३
अठारह पाप १२/आमुख
अणु-अस्त्र १५/१२१ (भा.)
अदत्त १४/१०९
अदत्तादान १२/४१,४२,१०२; १४/१०९
अदुःखी १४/४८
अद्धासमय १३/६१,६१-६२ (भा.) ६३ (भा.), ६८,७१,७१ (भा.), ७२-७३ (भा.), ७४-७८ (भा.) ८१-८३
अधर्मास्तिकाय १२/११८ (भा.); १३/५५,५७,५५-६० (भा.),६१,६२,६१-६२ (भा.), ६३,६४,६६-६८, ७१,७९-८३,८६,८७,८६-८७ (भा.)
अधःसप्तमी १२/१३८,१७१,१७३,२१३; १३/१,१२,१३ (भा.), ४२-४६,४५ (भा.); १४/४०-४२,९१,९२,१५०; १५/१८६; १६/११५
अधस्तन १३/८८
अधिकरण १६/आमुख, ८-१०, ८-१६ (भा.) २०-२६,२०-२६ (भा.)
अधिकरणी १६/आमुख, ८-१५,८-१६ (भा.), २०-२६,२०-२६ (भा.)
अधोलोक १३/४७,४८,९१; १४/३ (भा.)
अध्यवसाय १४/१ (भा.) ६-८ (भा.), १११; १६/५१-५२ (भा.)
अनंत १२/८०,१३४,१४५-१५२, १३३-१५२ (भा.), १३/८४-८५; १४/४४,४६-४८,८१
अनंतर उद्वर्तन १२/१८५-१९०, १८५-१९० (भा.); १३/१२२; १४/१०२,१०४,१०६
अनंतर उपपन्नक १३/५,५१ (भा.); १४/४-५,४-५ (भा.), ६,६-८ (भा.)
अनंतर खेदोपपन्नक १४/१४,१४ (भा.)
अनंतर निर्गत १४/९,११,९-१३ (भा.)
अनंतर-परंपर अनिर्गत १४/९,१०,१३,९-१३ (भा.)
अनंतर-परंपर अनुपपन्नक १४/४,५,४-५ (भा.), ८,६-८ (भा.)
अनंतर-परंपर खेद-अनुपपन्नक १४/१४,१४ (भा.)
अनगार १२/२१,२७,६६; १४/१ (भा.), २ (भा.), ८२,८३,८२-८३ (भा.); १५/१८६; १६/९१
अनगारिता १३/१०८,११०,१२०; १४/११२; १६/७०
अनन्त काल १२/१९२-१९४,१९६
अनशन १३/१२१; १४/८२-८३ (भा.), १०९
अनाकारोपयोग १२/११,२०१-२०४ (भा.); १३/३-५
अनाप्त १४/१२६-१२८
अनित्य जागरिका १५/५६,५३-५६ (भा.)
अनिन्द्रिय १६/१११,११३,११४
अनिष्ट १४/१२९
अनुकंपा १५/६५,६५-६६ (भा.), ९३,९५,९६
अनेकांत (दर्शन) १२/२११-२२५ (भा.); १४/८०-८१ (भा.)
अनैतिकता १२/५३-५४ (भा.)
अन्तराय १२/११६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अन्तर्द्वीप १२/१७३
अन्तर्द्वीपज १२/१६९,१६९-१७७ (भा.)
अन्तर्मुहूर्त्त १२/१९२,१९६,१९२-१९६ (भा.); १३/३ (भा.), १८-२२ (भा.)
अन्यतीर्थिक श्रमण १५/आमुख, १४९,१५२
अपरिमित १२/४३
अपानक के प्रकार १५/१२३-१२७ (भा.)
अप्कायिक १३/८४-८५; १५/१८६
अबाधा अंतर १४/९०-१००
अबुद्ध जागरिका १२/२०-२१, २०-२१ (भा.)
अभवसिद्धिक १३/३-५ (भा.), ४ (भा.), ५ (भा.), ३६; १६/३५-४० (भा.), ६०
अभूत भवन् १२/४९-५२ (भा.)
अभ्याख्यान १२/४१-४२; १४/१०९
अमनस्क १६/२८-३१ (भा.)
अमायी सम्यग्दृष्टि उपपन्नक १४/३०; १६/५५
अरति-रति १२/४१-४२; १४/१०९
अरहंत भगवान १४/२४
अरूपी १३/१२४,१२४ (भा.), १२६,१२८
अर्थ १२/३; १४/७८,७९; १५/२९,३५,४३,५५,६९,७१,७४, ८५
अर्धपुद्गल परिवर्त्त १२/१९३,१९४; १३/३ (भा.)
अर्श १६/४९,४८-४९ (भा.)
अर्हत् १२/२१,३०,३० (भा.), ३३,१६७,१६३-१६८ (भा.); १४/१०९; १५/६,७,७७,९८,१३९,१४१,१५७
अर्हत्-प्रलापी १५/६,७,७७,१३९,१४१
अलोक १३/५२-५४,५५-६० (भा.); १६/११८
अलोकाकाश १३/५५-६० (भा.), ६१-६२ (भा.),६३ (भा.), ७४-७८ (भा.)
अल्पनिर्जरा १४/८४-८८ (भा.)
अवकाशान्तर १३/४७,४८
अवक्तव्य (स्यात्) १२/आमुख, २१४,२१५,२१८-२२५,२११-२२५ (भा.)
अवगाह १३/आमुख, ५५-६० (भा.), ७४-७८ (भा.)
अवगाहना १३/५८
अवग्रह १२/११०; १६/३३,३३-३४ (भा.)
अवग्रह के प्रकार १६/३४
अवधि १६/१२३
अवधिज्ञान १४/१११; १६/५५
अवसर्पिणी १२/१२६; १५/१३९
अवहेलना १२/१९
अवाय १२/११०
अविग्रह गति समापन्नक १४/५५,५५ (भा.), ५७,६०
अविरति १६/आमुख, ६-७ (भा.), ९,१२,१४,१६,८-१६ (भा.), २१,२०-२६ (भा.)
अवीचि द्रव्य १४/७२,७३,७२-७३ (भा.)
अशन १२/४,६-७,१२-१४,१८; १४/१०९
अशरीर १६/३,४
अशुभ भाव १२/१९१ (भा.)
अष्टविध आत्मा १२/२००-२०५,२०० (भा.),२०१-२०४ (भा.), २०५ (भा.)
अष्टांग महानिमित्त १५/आमुख, ७७,७७ (भा.); १६/आमुख
असंज्ञी १३/३ (भा.), ४,४ (भा.), ५,५ (भा.) ७,२७,३१
असंयमी १५/२२-२६ (भा.)
असातवेदनीय कर्म १२/२२,५९,५९-६३ (भा.)
अस्तिकाय १३/५५-६० (भा.)
अहोदानम् १५/२६,२२-२६ (भा.), २७,३३,३४,४०,४१,४९, ५०,१५९-१६०

आ

आकाश १३/५५-६० (भा.), ६१-६२ (भा.), ६३ (भा.), ६४-६५ (भा.), ६६-७० (भा.), ७९-८३ (भा.)
आकाशास्तिकाय १२/११८ (भा.); १३/५५,५८,५५-६० (भा.), ६१,६३-६४,६६-६८,७१-७४,७६,७७,७९-८२,८६,८७, ८६-८७ (भा.)
आचार्य-उपाध्याय १५/१४१,१८६
आजीवक १५/आमुख, १४२ (भा.)
आजीवक उपासक १५/१२८,१२९,१३०-१३३,१३६,१३७
आजीवक संघ १५/१२९
आजीवक संप्रदाय १५/आमुख, १४२ (भा.)
आजीवक सिद्धांत १५/आमुख, १,१२८,१२९
आजीवक स्थविर १५/आमुख, ११९,१३०-१३५,१३९-१४२
आठ चरम १५/१२१,१२१ (भा.), १३२
आतापना १४/१११; १५/६५-६६ (भा.), ७०,७६,१७७,१८०
आत्मा १२/२००-२२५; १३/१२४,१२४ (भा.), १२६,१२८, १२८ (भा.); १४/११२,१२३-१२५ (भा.)
आत्मा के प्रकार १२/२००,२०० (भा.)
आधोवधिक १४/१४०
आनापान १२/९७; १३/६०,५५-६० (भा.)
आप्त १४/१२६-१२९,१२८-१२९ (भा.)
आभामंडल १४/आमुख, १२३-१३५ (भा.); १५/६५-६६ (भा.)
आयाम-मध्य १३/४७,४८,४९
आयाम-विष्कंभ १२/१३०-१३२ (भा.)
आयुष्य १३/११०-१२१ (भा.); १४/१ (भा.), २ (भा.), १४,१४ (भा.), ८४-८८ (भा.)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आयुष्य कर्म १२/२२,५९; १३/१३०-१४५ (भा.); १४/७१, ७१ (भा.)
आयुष्य बंध १४/१ (भा.), २ (भा.), ६-८,६-८ (भा.) ११-१३,९-१३ (भा.)
आराधक १४/१०९; १६/४०,६०
आर्त्त १२/२२-२५,५९-६३
आलस्य १२/५७-५८
आलीन १४/१११
आलोचना १२/२७; १४/१०९; १६/७१
आवलिका १२/१२६
आवेश १५/६४
आश्रव १४/११२
आहार १३/९३; १४/७१,७१ (भा.) ७२-७३,७२-७३ (भा.), ८२,८३,८२-८३ (भा.), १०९-१११
आहारक शरीर १२/८१-९६ (भा.); १६/२३,२०-२६ (भा.)
आहार द्रव्य वर्गणा १४/७२-७३

इ

इन्द्रिय १२/५९-६३ (भा.); १३/६०
इन्द्रिय उपयुक्त १३/५ (भा.)
इन्द्रिय के प्रकार १६/१८

ई

ईर्या १५/१५३
ईषत्प्राग्भारा १२/२१६; १४/९९,१००,१०० (भा.), १५२; १६/११५
ईहा १२/११०

उ

उच्चार-प्रस्रवण भूमि १२/६
उच्छ्वास निःश्वास १४/१०९, १६/१२५
उत्थान १२/१११; १४/६१,६२
उत्सर्पिणी १२/१२६
उदय १४/१६-२०,१६-२० (भा.)
उदुम्बरयष्टिका वृक्ष १४/आमुख, १०५,१०१-१०६ (भा.)
उद्वर्तन १३/४,४ (भा.),९,१३ (भा.), १५,१७,२७
उन्माद १४/आमुख, १६/२०,१६-२० (भा.)
उन्माद के प्रकार १४/१६-२० (भा.)
उन्मेष १४/१४५,१४६
उपचय १२/२२-२५,५९-६३
उपपद्यमान उपपन्न १२/१५९-१६१
उपयोग १३/५९,५५-६०; १६/१०८
उपरितन १३/८८
उपवास १२/६,६ (भा.), ११,१३,१४; १३/१०३; १५/६५-६६ (भा.), १४७,१८५; १६/५१
उपसर्ग १४/१०९

ऊ

ऊर्ध्वलोक १३/४९,९१; १४/३ (भा.)

ए

एकान्त नित्यवाद १४/४४-४७ (भा.)
एकेन्द्रिय १२/१८३-१८४,१८३-१८४ (भा.); १४/३,३ (भा.), २९-३९ (भा.), ५७,५७ (भा.), ६४; १५/१८६; १६/१११,११३,११४
एषणा १२/२१; १५/१३
एषणीय १४/११२

औ

औत्पत्तिकी १२/१०९,१०८-१११ (भा.)
औदयिक १४/८१,८०-८१ (भा.)
औपशमिक १४/८१

क

कपोत शरीर १५/१५२,१५५,१५२-१५५ (भा.)
करण १४/४४,४४-४७ (भा.)
कर्म १२/आमुख, २२-२५,२२-२५ (भा.) ५९-६३,५९-६३ (भा.), ९९,१०२-१०७ (भा.), १०९,१२०,१२० (भा.); १३/१२८ (भा.); १४/६१,६२,७१,७१ (भा.), ८८,८४-८८ (भा.); १५/आमुख, १०१; १६/४१,४२,४१-४२ (भा.), ५१,५२
कर्म परिवर्तन १२/२२-२५ (भा.)
कर्म प्रकृति १३/१४७; १६/४४,४५
कर्मभूमिज १२/१६९-१७७ (भा.)
कर्मलेश्या १४/१ (भा.), १२३,१२३-१२५ (भा.)
कर्मशरीर १२/११४-११६ (भा.); १६/२४
कर्म सिद्धांत १२/१२० (भा.)
कलह १२/४१-४२; १४/१०९
कषाय १२/आमुख, २२-२५ (भा.); १३/२७
कामभोग १२/१२८
काय १३/१२८,१२८ (भा.), १२९; १५/७२-७३ (भा.)
काय के प्रकार १३/१२९
काय वर्गणा १३/१२८ (भा.)
कायिकी १६/६,७,८-१६ (भा.)
कायोत्सर्ग १६/४८-४९ (भा.)
कार्मण शरीर १२/१५४-१५८ (भा.); १३/१२८ (भा.); १४/५४-५५ (भा.); १५/४
कार्मिकी १२/१०९
काल १२/११८; १५/११५
कुंडलिनी १५/६५-६६ (भा.)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुक्कुटमांस १५/१५२,१५५,१५२-१५५ (भा.)
कुहु कुहु शब्द १५/१४८,१४९
कृष्ण पक्ष १२/१२४
कृष्ण पाक्षिक १३/३ (भा.) २७,३६
केवलज्ञान १४/२४,१६-२४ (भा.); १५/१८६; १६/९१
केवल दर्शन १५/१८६; १६/९१
केवली १२/२१,२०-२१ (भा.), १६७; १४/५१ (भा.), ७८-७९ (भा.), १३८-१५४,१३८-१५४ (भा.) १५७; १५/६,७,७७,१३४,१४१,१८७-१८९
केवली प्रज्ञप्त धर्म १६/९१
केवली प्रलापी १५/६,७,७७,१३९,१४१
केवली समुद्घात १४/५१ (भा.)
क्रिया १६/६,७,६-७ (भा.), ८-१६ (भा.), ४९,४८-४९ (भा.), ११७
क्रोध १२/आमुख, २२,४१,४२,१०२-१०७ (भा.); १३/२७ (भा.); १४/१०९,१११; १५/१०५-११९ (भा.), १७९, १८३
क्रोध विवेक १२/१०८
क्षमायाचना १२/२६; १५/१०९,१६५
क्षय १६/५१,५२,५१-५२ (भा.)
क्षयोपशम १२/१०८-१११ (भा.) २०१-२०४ (भा.); १४/१११
क्षायिक १४/८१
क्षायोपशमिक १२/आमुख; १४/८१
क्षुल्लक प्रतर १३/८८,८९-९१ (भा.)

ख

खाद्य १२/४,६-७,१२-१४,१८; १४/१०९

ग

गंध १२/१०२-१०७,१०२-१०७ (भा.) १०८-११९; १४/८७
गंध-हस्ती १५/११४,१५२
गति १२/१२० (भा.), १८५-१९० (भा.), १९१; १३/५६,५५-६० (भा.); १४/१ (भा.), ३,३ (भा.), ६१-६७ (भा.); १५/७२-७३ (भा.)
गर्भ १२/११९, ११९ (भा.)
गुणस्थान १२/१९१ (भा.); १३/१४-१६ (भा.)
गुरुता १२/४१
गेरुक १५/आमुख
ग्रहण १२/१२२,१२३,१२३ (भा.), १२४; १३/६०,५५-६० (भा.)

घ

घनवात १२/११३
घनोदधि १२/११३
घात्यकर्म १४/८४-८८ (भा.)
घ्राणेन्द्रिय १२/६१; १६/२५,२०-२६ (भा.)

च

चक्रवर्ती १२/१६५,१६३-१६८ (भा.), १७८-१८२ (भा.); १६/८७
चक्षुरिन्द्रिय १२/६०; १६/२५,२०-२६ (भा.)
चतुरिन्द्रिय १२/११५; १४/३३,२९-३९ (भा.), ५८,६६' १५/१८६; १६/३१
चतुर्गत्यात्मक संसार १२/२२-२५; १३/१०; १५/१८७
चतुर्दश पूर्व १४/११३-११६ (भा.)
चतुस्पर्शी १२/११७ (भा.)
चय १२/२२-२५,५९-६३
चरम १३/५ (भा.); १४/५१,५१ (भा.); १५/१२१,१२१ (भा.); १६/४०,६०
चातुर्मासिक प्रायश्चित्त १६/४८-४९ (भा.)
चित्रक वनस्पति १५/१५२,१५५
चित्रफलक १५/१९,२३
चौपतिया शाक १५/१५२,१५५,१५८,१६१

छ

छद्मस्थ १४/१२३-१२५ (भा.), १३८,१३९; १५/६५-६६ (भा.), ११३,११४,१४१,१४२,१४६,१४८,१४९,१५२, १८७
छह दिशाचर १५/आमुख, ३,३ (भा.) ४,७७,७७ (भा.)
छाद्मस्थिक समुद्घात के प्रकार १३/१६८

ज

जन्म १२/१३१,१३२,१३०-१३२ (भा.)
जरा १६/२८-३१,२८-३१ (भा.), ५२
जागरिका १२/आमुख, १९-२१,२०-२१ (भा.); १५/१२८
जानते देखते हैं १४/७८,७९
जिन १२/२१,१६७; १५/६,७,१२-१४,७७,७७ (भा.) ७९,११४,१३९,१४१,१४२,१५२,१५७
जिन-प्रलापी १५/६,७,१२-१४,७७,७७ (भा.), ७९,१३९, १४१,१४२
जिनवर १४/१०९
जिह्वेन्द्रिय १६/२५
जीव १२/आमुख, ४१-६३,९७ (भा.), १०२-१०७ (भा.), ११९,१३१,१३२,१३०-१३२ (भा.), १४५-१५२,१३३-१५२ (भा.); १३/५ (भा.), ५६-६०,५५-६० (भा.), ६४-६५ (भा.), ८४-८७,१२४,१२४-१२५ (भा.), १२६,१२८; १४/४८,४८ (भा.), ६१-६७ (भा.), ११२,१२३,१२३-१२५ (भा.); १५/५,१८६; १६/८-१६ (भा.), २०-२६,२०-२६ (भा.), २८-३१,२८-३१ (भा.), ७९,८०,११९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जीव देश १६/१११,११३
जीव प्रदेश १६/१११
जीवास्तिकाय १३/५५,५९,५५-६० (भा.),६१,६१-६२ (भा.), ६३,६४-६५,६४-६५ (भा.), ६८,७१,७२,७४,७६-७८, ८१,८२
जैन खगोल १२/१२३ (भा.)
ज्ञान १२/२१,२०६,२०७,२०६-२१० (भा.); १३/५९
ज्ञानावरण १२/२०-२१ (भा.), १०८-१११ (भा.), २०६-२०७ (भा.)
ज्ञानावरणीय कर्म १२/११६; १६/४४-४५

त

तदावरणीय कर्म १४/१११
तप १५/आमुख, २१; १६/आमुख
तपःकर्म १२/१,२१,२७,३०; १३/१०२,१२०; १४/११२; १५/८१,१४७,१४९,१७९
तपःतेज १५/९८,१०५,१०६,१०८-११४,१४६,१५२,१६४, १८२
तमःप्रभा १२/१३७,१७३; १३/४५ (भा.)
तमस्काय १४/आमुख, २५-२७, २५-२७ (भा.)
तमा पृथ्वी १३/११,१६,४३; १४/९१; १५/१८६
तापस १५/आमुख
तीर्थंकर १२/३०,१६३-१६८ (भा.); १३/२७ (भा.); १४/२१-२४ (भा.) ११३-११६; १५/आमुख, २२-२६ (भा.), १२१,१२९,१४२ (भा.); १६/७१,८६
तिर्यक्योनिक १४/८१
तिर्यक्लोक १३/५०,९१,८१-९१ (भा.); १४/११७-१२१
तिल १५/५८,७२-७५
तिल का पौधा १५/५७-५९,७२-७४
तुल्य के प्रकार १४/८०-८१, ८०-८१ (भा.)
तेज १५/६४,११२,११६,१२१
तेजोलब्धि १२/१५४-१५८ (भा.)
तेजोलेश्या १३/२७,३१,३१(भा.); १४/आमुख, ५४-५५ (भा.), १३६; १५/६५,६६,६५-६६ (भा.) ६८,७७ (भा.), १०५-११९ (भा.), १२१ (भा.); १४१ (भा.), १७७; १६/आमुख
तैजसकाय १३/४४
तैजसकायिक १३/४४,८४-८५; १५/१८६
तैजस शरीर १२/१५४-१५८ (भा.); १५/६५-६६ (भा.); १६/४
तैजस समुद्घात १५/६४,११२,१८४
त्रसनाड़ी १४/३ (भा.)
त्रीन्द्रिय १२/१४१,२०८; १४/२९-३९ (भा.) ६५,६६; १५/१८६

द

दक्षत्व १२/५७,५८
दया १५/६५-६६ (भा.)
दर्भ संस्तारक १२/६,११; १३/१६३
दर्शन १२/२१,२०९,२१०,२०६-२१० (भा.); १३/५९
दर्शनावरणीय कर्म १२/२०१-२०४ (भा.)
दान १५/१६,२२-६६ (भा.)
दिशा १२/आमुख, ४५ (भा.), ५०-५४,६१-६२ (भा.); १३/५०
दिशाओं के नाम १३/५१
दिशाचर १५/आमुख, ७७,७७ (भा.)
दीक्षा १५/१४१ (भा.)
दुःखी १४/४८,४८ (भा.)
दुर्बल १२/५५-५६
दृढ़धर्मा १२/१९
दृष्टिवाद १५/आमुख
देवों के प्रकार १२/१६३-१६८,१६३-१६८ (भा.)
दैव १५/आमुख
दैष्टिक १५/आमुख
द्वादशांग गणिपिटक १६/९१
द्विशरीरी १२/१५४,१५७,१५८,१५४-१५८ (भा.)
द्वीन्द्रिय १२/२०८; १४/२९-३९ (भा.), ५८,६४,६५; १५/१८६; १६/१११,११३,११४
द्वीन्द्रियकायिक १२/१४१
द्वीन्द्रियावास १२/१४१

ध

धर्माचार्य १५/२८,३५,४२,५४
धर्माचार्य धर्मोपदेशक १४/१०९; १५/५३,९६,९७,१२९,१३३, १४८,१४९
धर्मान्तराय १६/४९,४८-४९ (भा.)
धर्मान्तेवासी १५/२८,३५,४२,५४
धर्मास्तिकाय १२/११६,११८ (भा.); १३/५५,५६,५५-६० (भा.), ६१,६२,६१-६२ (भा.), ६३ (भा.), ६३-८३,८६, ८७,८६-८७ (भा.)
धारणा १२/११०
धूमप्रभा १२/१३६; १३/१०,४३,४५ (भा.); १५/१८६
ध्यान १५/१०

न

नरक १२/१५९-१६१,१८५-१९० (भा.); १३/३,३ (भा.), ४-६,१४-१८,१८-२२ (भा.), ४३,४४ (भा.), १२१; १४/९-१३ (भा.), ५४-५५ (भा.), ६१-६७ (भा.); १५/१८६; १६/५१,५२,५१-५२ (भा.)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नरकावास १२/१३४-१३८; १३/२-११; १४/१७,४३,४३ (भा.)
नरदेव १२/१८५-१९० (भा.)
नाट्य विधि १६/६३,६४
नाभिकीय शस्त्र १५/१२१ (भा.)
नाम कर्म १४/१३२-१३५ (भा.)
नारक १२/१५९-१६१; १३/३ (भा.) ४ (भा.), ५ (भा.); १४/७१
निमेष १४/१४५,१४६
नियतिवाद १५/आमुख
निरवद्य भाषा १६/आमुख, ३५-४० (भा.)
निर्ग्रंथ १२/३०; १४/८८,११२,१३६; १५/आमुख, १०१,११६, ११८,११९,१०५-११९ (भा.), १४९-१५१,१७३,१७४, १८७,१८८; १६/५१,५२,५१-५२ (भा.), ६४
निर्ग्रंथ प्रवचन १४/११२; १६/७०
निर्जरा १४/८८,८४-८८ (भा.), ११२; १६/आमुख, ५१,५२, ५१-५२ (भा.)
नैतिकता १२/५३-५४ (भा.)
नैयायिक १३/१२४-१२५ (भा.); १४/आमुख
नैरयिक १२/७९,८३,८४,८६-९५,८१-९६ (भा.), ११४-११६, १३४, १३५,१५९-१६१,१७१,२०८,२१०; १३/३-६,१४-२२, ३८,४०,४० (भा.) ४३,४४,९३,९५,१३३-१३५,१३७, १३८,१४१; १४/३,३ (भा.), ४,५,४-५ (भा.), ६-१४,१७, १८,२०,१६-२० (भा.) ३२,३३,२९-३९ (भा.), ४०-४२,५४,५५,५७,६१,७१,७१ (भा.), ७२,७३,७२-७३ (भा.), ८१,१२६-१२९; १५/१८६; १६/आमुख, ८-१६ (भा.), २९,४२,५१,५२,५१-५२ (भा.), ७९,८०
नैरयिकावास १२/११३
नोइन्द्रिय उपयुक्त १३/५ (भा.)

प

पंक प्रभा १३/९-११,१३,४५ (भा.), ४८; १५/१८६
पंच महाव्रत १५/१०९
पंचमुष्टि लोच १३/११९; १४/७१
पंचविध देव १२/१६३-१९९
पंचास्तिकाय १३/आमुख, ५५,५५-६० (भा.)
पंचेन्द्रिय १६/११३,११५
पंचेन्द्रियतिर्यक्योनिक १२/१४१,१६४; १४/३४,५९,६०, ५८-६० (भा.), ६७; १६/८०
पउट्ट परिहार १५/आमुख, ७३,७२-७३ (भा.), १४१ (भा.)
परंपर उपपन्नक १३/५,५ (भा.); १४/४,५,४-५ (भा.), ७,८, ६-८ (भा.)
परंपर-खेदोपपन्नक १४/१४,१४ (भा.)
परंपर निर्गत १४/९,१०,१२,९-१३ (भा.)
परपरिवाद १२/४१,४२,१०४; १४/१०९
परमाणु १२/आमुख, ६४-८६ (भा.), ८१-९६ (भा.), ९९-१०० (भा.), २११-२२५ (भा.); १३/५८,५५-६० (भा.), ६४-६५ (भा.), ६६-७० (भा.), १२४ (भा.); १४/४४-४७ (भा.), ५१ (भा.), ७२-७३ (भा.) ८०-८१ (भा.), १२३-१२५ (भा.)
परमाणु पुद्गल १२/६९-८०,८१,११८ (भा.), १३१-१३२, १३०-१३२ (भा.), २१७; १४/आमुख, ४९-५१,५१ (भा.), ८१,१२३-१२५ (भा.), १५३; १६/११६
परमाधोवधिक १४/१४०
पराक्रम १५/आमुख
परिग्रह १२/४१,४२,१०२; १३/२७; १४/४२,१०९; १६/८-१६ (भा.)
परिग्रह विरमण १२/१०८
परिणमन १४/४४,४४-७७ (भा.),७१,१३२-१३५ (भा.); १६/५५,५६
परिणाम १४/४०-४२,४४,४४-४७ (भा.), ४८,४८ (भा.), ५१ (भा.), ५२
परिणाम के प्रकार १४/१५२
परिणामी नित्यवाद १४/४४-४७ (भा.), ४८ (भा.)
परिनिर्वाण १४/२४,२१-२४ (भा.)
परिमंडल संस्थान १४/८१,८०-८१ (भा.)
परिमित १२/४४
परिव्राजक १४/१०७-११२,१०७-११२ (भा.); १५/१५
पर्यंकासन १४/१०९
पर्याप्ति १२/११९ (भा.)
पर्याय १२/२११-२२५ (भा.); १४/५० (भा.)
पर्युपासना १२/८,१५,१६,३०,३९,६६,६९,१२२,१३०,१५४; १३/१०४,१०६,१०९; १४/३५,१३२; १५/१०७,१३६, १५१; १६/५८
पल्योपम १२/२७,१७८,१७८-१८२ (भा.), १९१,१९४; १३/१२१; १४/१२१
पाक्षिक पौषध १२/आमुख, ४,४-५ (भा.),६,११-१५; १३/१०३
पातंजल योग दर्शन १४/८४-८८ (भा.)
पान १२/४,६-७,१२-१४,१८; १४/१०९
पानक के प्रकार १५/१२२
पाप १४/११२; १५/१२१; १६/५२
पारणा १२/१५; १५/१०,१३
पारिणामिक भाव १४/८१
पारिणामिकी १२/१०९,१०८-१११ (भा.)
पित्तज्वर १५/११३,११४,१४१,१४६,१५२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुण्य १४/११२,१३२-१३५ (भा.)
पुद्गल १२/आमुख, ६९-८० (भा.), ८१-९६ (भा.), ९७ (भा.), ९९-१०० (भा.), १०२-१०७ (भा.), ११८ (भा.); १३/५५-६० (भा.), १२४ (भा.), १२६ (भा.), १२८,१३०-१४५ (भा.); १४/आमुख १८,२०,१६-२० (भा.), ४०,४४-४७, ४४-४७ (भा.), ४८ (भा.), १८,६९,६८-६९ (भा.), ७१, ७१ (भा.), ७२-७३ (भा.), ८१,८०-८१ (भा.), १२४,१२५,१२३-१२५ (भा.), १२६-१२९,१३२-१३५ (भा.); १६/६-७ (भा.), ४२,४१-४२ (भा.), ५२, ५४-५७, १०६,११९
पुद्गल परिवर्त्त १२/आमुख, ८१-९६,८१-९६ (भा.), ९७-१००, ९८ (भा.), ९९-१०० (भा.)
पुद्गल के प्रकार १२/८२
पुद्गलास्तिकाय १२/११६; १३/५५,६०,५५-६० (भा.), ६१, ६१-६२ (भा.); १३/६३,६३ (भा.), ६४-६५ (भा.), ६५-७०,७१,७४,७८-८०
पुनर्जन्म १२/आमुख, २२-२५ (भा.); १३/आमुख; १४/आमुख, १ (भा.); १५/७२-७३ (भा.)
पुरुषकार-पराक्रम १२/१११; १४/६१-६३,६७
पुरुषार्थ १४/६१-६७ (भा.); १५/आमुख
पूर्व १२/१७९-१८१,१७८-१८२ (भा.), १९१
पृथ्वियां १२/६६-६७,११३,१३३; १३/१,४२
पृथ्वीकायिक १२/११५,१३४-१३५ (भा.), १३७,१३९-१४२, १४४,२०८; १३/८४-८५; १४/आमुख, २०,३३,६३,१२३-१२५ (भा.), १२८,१३२-१३५ (भा.); १५/१८६; १६/२२,३०,३१
पैशुन्य १२/४१,४२; १४/१०९
पोट्ट परिहार १५/३ (भा.), ७२-७३ (भा.), ७५,१०१,१४१ (भा.)
पौषध १२/आमुख, ४-५ (भा.), ६ (भा.), १३ (भा.); १४/११२
पौषध के प्रकार १२/४-५ (भा.)
पौषधशाला १२/६,६ (भा.), १२-१५; १३/१०३
पौषधोपवास १२/४-५ (भा.),२७; १४/११२
प्रकर्ष १२/२२-२५,[illegible]-६३
प्रतिक्रमण १२/१२,२७; १३/१२१; १४/१०९; १५/१३,१०९, १६५,१८८; १६/७१
प्रतिजागरणा १२/४,४-५ (भा.), ६,११-१५,१८; १३/१०३
प्रतिलेखन १२/६; १५/१५२
प्रत्यनीक १५/१८६
प्रत्याख्यान १२/२७; १४/१०९,११२,१०७-११२ (भा.)
प्रदक्षिणा १२/१५; १४/१३२; १५/२८,३२,३५,३९,९७,११२, १५१,१५४; १६/६८
प्रदेश १२/१३१,१३२,१३०-१३२ (भा.), २११-२२५ (भा.); १३/५२-५४,५८,५५-६० (भा.), ६१,६२,६१-६२ (भा.), ६३-८३,६६-७० (भा.), ७२-७३ (भा.), ८६,८७,८८-९१ (भा.); १४/७३,७२-७३ (भा.)
प्रदेशावगाढ़ १४/८१,८०-८१ (भा.)
प्रमत्त १४/३७
प्रमाणांगुल १४/९० (भा.)
प्रमाद १६/२४
प्रव्रजित १२/६४; १३/१०८,११०,१२०; १४/११२; १५/१८६; १६/७०,७१
प्रसादावतंसक १४/७४,७५
प्राणशक्ति १५/६५-६६ (भा.)
प्राणातिपात १२/४१-४८,१०२,१०२-१०७ (भा.); १४/१०९, १०७-११२ (भा.)
प्राणातिपात क्रिया १६/६७
प्राणातिपात विरमण १२/१०८
प्रायोपगमन अनशन १४/१०९
प्रासुक १४/११२
प्रियधर्मा १२/१९,१९ (भा.)
प्रेय १२/४१,४२; १४/१०९

ब

बंध १२/२२-२५,५९-६३; १३/११०-१२१ (भा.); १४/११२; १६/४५
बद्धायु १२/१९२-१९६ (भा.)
बल १२/१११; १४/६१,६२
बलदेव १६/८९
बलिष्ठ १२/५५,५६
बाल तपस्वी १४/२ (भा.); १५/६०-६६,६८
बालुका प्रभा १३/४५ (भा.); १४/९१; १५/१८६
बालुका संस्तारक १४/१०९
बाह्य (बाहरी) पुद्गल १६/५४,५५,५४-५५ (भा.)
बुद्ध जागरिका १२/२०-२१,२०-२१ (भा.)
बेले (दो उपवास) १४/८८,८४-८८ (भा.), १११; १५/८१,८२,१७७,१७९; १६/४९
ब्रह्मचर्य १२/६,६ (भा.), ११,१३,१४,२१,६६
ब्रह्मलोक १३/८८-९१ (भा.)
ब्राह्मण परंपरा १५/आमुख

भ

भक्तपान १४/१०९
भक्त प्रत्याख्यान १४/८२,८३,८२-८३ (भा.)
भवग्रहण १६/९२-१०५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भवसिद्धिक १२/४९-५२, ४९-५२ (भा.); १३/३-५,३ (भा.), ४ (भा.); ५ (भा.), १६/३५-४० (भा.), ६०
भाग्य १५/आमुख
भाव १२/१९१ (भा.); १४/८०-८१ (भा.)
भावितात्मा अनगार १३/आमुख, १४९-१६५,१४९-१६६ (भा.); १४/१,२,२ (भा.), २९-३१,१२३,१२३-१२५ (भा.); १६/४९
भाषा १३/१२४,१२४ (भा.), १२५; १४/२९-३९ (भा.), १३०, १३१,१३०-१३१ (भा.); १६/३७-३९
भाषा के प्रकार १३/१२५
भाषा वर्गणा १३/१२४ (भा.)
भेद १२/६९-८०, ६९-८० (भा.), ८१
भोगार्ह भोग १४/७४-७५; १६/३३

म

मणिपीठिका १४/७४,७५
मन १३/११०-१२१ (भा.), १२६,१२६ (भा.), १२७,१२८ (भा.); १४/७८-७९ (भा.)
मन के प्रकार १३/१२७
मनन १३/१२६,१२६ (भा.)
मनुष्य १२/१४१; १४/३५,६०,५८-६० (भा.), ६७,८१,८०-८१ (भा.); १५/७२-७३ (भा.); १६/२२,८०
मनुष्य लोक १४/५६-५७
मनो द्रव्य वर्गणा १४/७९
मनोमानसिक दुःख १५/१४८,१४९,१५२
मनोवर्गणा १३/१२६ (भा.)
मरण १२/१३१,१३२,१३०-१३२ (भा.); १३/आमुख, १३०-१४५,१३०-१४५ (भा.); १५/१३९
मरण के प्रकार १३/आमुख, १३०-१४५,१३०-१४५ (भा.); १५/६
महाआश्रवतर १३/४३,४६
महाकर्मतर १३/४३,४६
महाक्रियातर १३/४३,४६
महानरक १३/१२,१३,४३
महानिमित्त १५/४-६,७७
महावेदनतर १३/४३,४६
महास्वप्न १६/आमुख, ८४,८६-९०
मांडलिक १६/९०
मान १२/आमुख, २२, ४१-४२,१०४; १३/२७ (भा.); १४/१०९,१११
मानसिक वेदना १६/२९,३१,२९-३१ (भा.)
माया १२/२२,४१-४२,१०५; १३/२७ (भा.); १४/१०९,१११
मायामृषा १२/४१-४२; १४/१०९
मायीमिथ्यादृष्टि उपपन्नक १४/३०; १६/५५-५६
मारणान्तिक समुद्घात १४/८२,८२-८३ (भा.)
मार्जारकृत १५/१५२,१५५,१५२-१५५ (भा.)
मासखमण १५/२२,२४,३०,३१,३७,३८,४४,४७,१४१ (भा.)
मिथ्यात्व विप्रतिपन्न १५/९९,१००,१०४,१०७,१७४
मिथ्यात्वी १५/११५; १६/३६
मिथ्यादर्शन शल्य १२/४१-४८; १४/१०९
मिथ्यादृष्टि १२/२०६-२१० (भा.); १३/१४,१६, १४-१६ (भा.), १७,३७,११०-१२१ (भा.); १६/६०
मीमांसक दर्शन १३/१२४
मुखवस्त्रिका १५/१५८
मृषावाद १२/४१,४२,१०२; १४/१०९
मैथुन १२/४१-४२,१०२,१२७; १४/२५-२७ (भा.), १०९
मोक्ष १४/११२
मोहनीय कर्म १२/२०१-२०४ (भा.); १४/१६-२०,१६-२० (भा.), १६/९१

य

यक्षावेश १४/१६-२०,१६-२० (भा.)
युग प्रमाण भूमि १५/११,१३
योग के प्रकार १६/१९
योजन १२/१३०,१३०-१३२ (भा.); १३/२,२६ (भा.), २९ (भा.), ३५ (भा.), ४५ (भा.); १४/७४,७५,९०,९२-९४, ९९,१००
योनि १४/७१,७१ (भा.)

र

रज्जु १३/४५ (भा.), ८८-९१ (भा.), १४९
रत्नप्रभा पृथ्वी १२/आमुख, ६७,१३४-१३६,१३८,१७१,१७५, २११-२१३,२११-२२५ (भा.); १३/१-७,३ (भा.), ४ (भा.), १४-१७,२७,४२-४६,४५ (भा.),४७,५०,१२१; १४/४०-४२,९०,९३,१४७,१४८; १५/१८६; १६/११५
रस १२/१०२-१०७,१०२-१०७ (भा.), १०८-११९; १४/८७
रसनेन्द्रिय १२/६२; १६/२०-२६ (भा.)
रुचक प्रदेश १३/५०,५२-५४
रूक्ष १४/४४-४७,४४-४७ (भा.)
रूप १४/८७
रूपी १३/१२४,१२६,१२८

ल

लघुता १२/४२
लब्धि-त्रस १४/५६-५७ (भा.)
लिंग १५/७२-७३ (भा.)
लेश्या १२/११७,११७ (भा.); १३/३ (भा.), ८,१८-२२, १८-२२ (भा.), २७ (भा.), ३८; १४/आमुख, १,१ (भा.),

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२,११,१३५,१३२-१३५ (भा.); १६/१२६-१२८
लोक १२/५१-५२,१३०-१३२,१३०-१३२ (भा.); १३/आमुख, ४७-५०,५२-५५,५५-६० (भा.), ८८-९१,८८-९१ (भा.); १६/११०-११४,११६
लोकाकाश १३/५५-६० (भा.),७२-७३ (भा.), ७४-७८ (भा.)
लोकान्त १६/११८
लोभ १२/२२,४१,४२; १३/२७ (भा.); १४/१०९,१११
लोहित १४/८१

व

वंदन-नमस्कार १२/३,९,१२,१५,१८,२०,२२,२६,२९,३९; १३/१०४,१०९,११७,११८; १४/३०,१३२; १५/१०, १३,२८, ३२,३५,३९,४२,४८,७८,१०९,११९,१३८,१८८; १६/३४,३५, ५४-५६,५८,७०,७१
वज्रऋषभनाराच संहनन १५/९
वनस्पतिकायिक १२/१३४,१३५,१३९-१४२,२०८; १३/८४-८५; १४/६३; १५/७३,७२-७३ (भा.), १८६
वनस्पतिकाल १२/१९२,१९६; १४/१०१-१०६ (भा.)
वर्ण १२/१०२-१०७,१०२-१०७ (भा.), १०८-११९; १४/४४, ४४-४७ (भा.), ५१ (भा.)
वर्षा १४/२१-२४,२१-२४ (भा.); १६/११७
वर्षावास १५/१४१ (भा.)
वायु १६/१-४ (भा.), ५,५ (भा.)
वायुकाय १५/१८६; १६/आमुख, १,५,३५-४० (भा.)
वायुकायिक १२/११५; १३/८४-८५; १६/२-४
वासुदेव १६/८८
विक्रिया १२/१८३,१८४,१८३-१८४ (भा.); १३/आमुख, १५०, १४९-१६६ (भा.); १४/६८-६९ (भा.), १३०-१३१ (भा.); १६/८-१६ (भा.)
विग्रह गति १४/३,३ (भा.), १०,९-१३ (भा.), १४ (भा.), ५५,५४-५५ (भा.)
विग्रह गति समापन्नक १४/५५,५५ (भा.), ५७,६०
विचिकित्सा १४/७७
विनय १४/२९-३९ (भा.)
विनय विधि १४/आमुख
विपुल अवधिज्ञान १६/३३
विपुल तेजोलेश्या १५/९,६९,७०,७६,१७७
विभंग ज्ञान १३/४ (भा.), ५ (भा.)
विभक्ति भाव १२/१२०
विराधना १४/१,२,२ (भा.); १५/१८६
वीचि द्रव्य १४/७२,७३,७२-७३ (भा.)
वीर्य १२/१११; १४/६१,६२
वीर्य लब्धि १४/१११
वृक्ष १४/१०१-१०३,१०१-१०६ (भा.)
वेद १३/३,२७; १६/४५
वेदना १४/४१; १६/२९,३१
वैक्रिय शरीर १२/९७,१५४-१५८ (भा.); १६/४,२२
वैक्रिय-समुद्घात १३/१५०
वैनयिकी १२/१०९
वैयावृत्त्य १२/५८,५५-५८ (भा.)
वैशालिक श्रावक १२/३० (भा.)
व्याकरण १४/१४२-१४४

श

शब्द १३/१२४ (भा.)
शय्यातर १२/३०,३० (भा.)
शरीर १३/आमुख, ५५-६० (भा.), १२८ (भा.); १५/१२७, १४४,१५२; १६/६-७ (भा.)
शरीर के प्रकार १६/१७
शर्करा प्रभा १२/१३६,१७१,२१३; १३/७-९,१६,४५,४५ (भा.); १४/९०,९१,१४९; १५/१८६; १६/११५
शल्य चिकित्सा १६/आमुख, ४८-४९ (भा.)
शस्त्र १४/३८,३९,२९-३९ (भा.); १६/आमुख
शाक्य १५/आमुख
शालयष्टिक वृक्ष १४/आमुख, १०३,१०१-१०६ (भा.)
शालवृक्ष १४/१०१,१०२,१०१-१०६ (भा.)
शुक्ल १४/८१,१३६ (भा.)
शुक्ल पक्ष १२/१२४
शुक्ल पाक्षिक १३/३ (भा.)
शुक्ल लेश्या १४/१३६ (भा.); १६/९१
शुक्लाभिजात १४/१३६,१३६ (भा.)
शुभ भाव १२/१९१ (भा.)
शोक १६/२८-३१,२८-३१ (भा.)
श्रमण १५/आमुख, १४४,१५०,१५१,१६३,१७३,१७४,१८७, १८८; १६/५१,५२,९१
श्रमण घातक १५/१४१,१६६,१८७
श्रमण परंपरा १५/आमुख
श्रमण प्रत्यनीक १५/१४१
श्रमण मारक १५/१४१
श्रमणी १५/१६३; १६/९१
श्रमणोपासक १२/आमुख, १,२-१९,२६,२७; १३/१०२,१२०, १२१; १४/११२,१०७-११२ (भा.)
श्रमणोपासिका १२/१,६,९,११,३०,३३,३७-४१,४१-४८ (भा.), ६४
श्रवण १२/३३
श्रामण्य १५/१८६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रावक १२/१ (भा.), २०-२१ (भा.), ३०; १५/१६३; १६/९१
श्राविका १५/१६३; १६/९१
श्रोत्रेन्द्रिय १२/५९; १६/२५,२६,२०-२६ (भा.)

ष

षष्ठ भक्त १२/२७; १३/१०,१३,६०

स

संज्ञा १३/२७ (भा.)
संज्ञी १३/३,३ (भा.), ४,४ (भा.), ५
संघात १२/६९-८० (भा.), ८१
संघात-भेद १२/आमुख, ६९-८० (भा.)
संयमासंयमी १५/२२-२६ (भा.)
संयमी १५/२२-२६ (भा.)
संलेखना १२/२७; १३/१२१; १४/१०९; १५/१८५; १६/७१
संवर १४/११२
संस्थान १३/५२-५४,९०; १४/८१,८०-८१ (भा.); १५/९, १२८,१३२,१३७
सकर्मलेश्या १४/१२३-१२५,१२३-१२५ (भा.)
सचित्त १३/१२४,१२४ (भा.), १२६,१२८
सप्तभंगी १२/आमुख, २११-२२५ (भा.)
समचतुरस्र संस्थान १४/८१,८०-८१ (भा.), १५/९
समनस्क १६/२८-३१ (भा.)
समभिरूढ़ नय १२/१०२-१०७ (भा.)
समय १२/१२६,१९१ (भा.); १३/७२-७३ (भा.); १४/३ (भा.), ५,४-५ (भा.), ४४-४७,४४-४७ (भा.), ४८,४८ (भा.), ८१, ८०-८१ (भा.), ८५,१३०-१३१ (भा.)
समय क्षेत्र १३/६१-६२ (भा.), ७१ (भा.)
समाधिपूर्ण १४/१०९
समुद्घात १३/१६८; १५/६५-६६ (भा.)
सम्यक्त्व १३/१३ (भा.)
सम्यग्दृष्टि १३/१४-१६,१४-१६ (भा.), १७,११०-१२१ (भा.); १४/२ (भा.), ११३-११६ (भा.); १५/२२-२६ (भा.)
सम्यग्मिथ्यादृष्टि १३/१४,१६,१४-१६ (भा.) १७,३७
सम्यग्वादी १५/११५; १६/३६
सर्वज्ञ १२/२१, ३३,१६७; १५/६,७,७७,१३९,१४१,१५७
सर्वज्ञ-प्रलापी १५/६,७,७७,१३९,१४१
सर्वदर्शी १२/२१,३३,१६७; १५/१५७
सशरीर १६/३,४
सांतर-निरंतर उपपन्न १३/९५
सांनिपातिक भाव १४/८१
साकारोपयोग १२/११७; १३/३
सागरोपम १२/१५९-१६१,१८२,१९३; १४/८४-८८ (भा.); १५/१६४,१६५,१६६,१८५; १६/७३
सातवां अवकाशान्तर १२/११२
सातवां तनुवात १२/११३
सादि अपर्यवसित १३/५२-५४
सादि सपर्यवसित १३/५२-५४
साधु १४/८५,८४-८८ (भा.)
सावद्य भाषा १६/आमुख, ३८,३५-४० (भा.)
सिद्ध १२/५०-५२,१५६,१८९; १३/१२२; १४/८५,१०२, १०४,१०६,१३९,१४०,१४१,१४३,१४४,१४६,१४८,१५४,१३८-१५४ (भा.); १५/१०१,१२१,१२७,१६४,१६५,१८५; १६/७४,९२-१०५
सिद्धिगति १४/१०९
सुखी १४/४८ (भा.)
सुदृष्ट जागरिका १२/१९-२१,२०-२१ (भा.)
सुप्त १२/५३-५४,५३-५४ (भा.)
सुप्त अवस्था १६/७७-८०
सुप्त जागृत अवस्था १६/७७-७९
सुलभ बोधि १६/४०
सोलह जनपद १५/१२१,१२१ (भा.)
स्कंध १२/आमुख, ६९-८०,६९-८० (भा.), ९९-१०० (भा.), २१८-२१५,२११-२२५ (भा.); १३/६६-७० (भा.); १४/४७,४४-४७ (भा.), ८१,१५३,१५४
स्थावर १३/८४-८५ (भा.); १४/५६-५७ (भा.)
स्थिति १३/५७,५५-६० (भा.); १४/७१,८१
स्पर्श १२/१०२-१०७,१०२-१०७ (भा.),१०८-११९; १३/४४,४४ (भा.); १४/८७
स्पर्शनेन्द्रिय १२/६३; १६/२५,२०-२६ (भा.)
स्पृष्ट १६/आमुख, २,६,७
स्वप्न १६/आमुख, ७६,७७,८१,८३,९२-१०५
स्वप्न शास्त्र १६/आमुख
स्वाध्याय १५/१०
स्निग्ध १४/४४,४४-४७ (भा.)
स्यात् १२/आमुख, २०१-२०४ (भा.), २११,२१२,२१४,२११-२२५ (भा.)
स्यात् अस्ति (स्यादस्ति) १२/आमुख, २०१-२०४ (भा.)
स्यात् नास्ति (स्यान्नास्ति) १२/आमुख, २०१-२०४ (भा.)
स्याद्वाद १२/आमुख, २११-२२५ (भा.); १४/आमुख
स्वाद्य १२/४,६,७,१२-१४,११८; १४/१०९

ह

हारिद्र १४/८१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिशिष्ट-५

अभयदेवसूरि-कृता भगवती-वृत्ति

सर्वज्ञमीश्वरमनन्तमसङ्गमग्र्यं,
सर्व्वीयमस्मरमनीशमनीहमिद्धम्।
सिद्धं शिवं शिवकरं करणव्यपेतं,
श्रीमज्जिनं जितरिपुं प्रयतः प्रणौमि॥१॥
नत्वा श्रीवर्द्धमानाय, श्रीमते च सुधर्म्मणे।
सर्वानुयोगवृद्धेभ्यो, वाण्यै सर्वविदस्तथा॥२॥
एतट्टीकाचूर्णी जीवाभिगमादिवृत्तिलेशांश्च।
संयोज्य पञ्चमाङ्गं विवृणोमि विशेषतः किञ्चित्॥३॥

अथ द्वादशं शतकम्

प्रथम उद्देशकः

व्याख्यातं विविधार्थमेकादशं शतम्, अथ तथाविधमेव द्वादशमारभ्यते, तस्य चोद्देशकार्थाभिधानार्था गाथेयम्–

संखे' त्यादि॥ शङ्खश्रमणोपासकविषयः प्रथम उद्देशकः। 'जयंति' त्ति जयन्त्यभिधानश्राविकाविषयो द्वितीयः। 'पुढवि' त्ति रत्नप्रभापृथिवीविषयस्तृतीयः। 'पुग्गल' त्ति पुद्गलविषयश्चतुर्थः। 'अइवाए' त्ति प्राणातिपातादिविषयः पञ्चमः। 'राहु' त्ति राहुवक्तव्यतार्थः षष्ठः। 'लोगे य' त्ति लोकविषयः सप्तमः। 'नागे य' त्ति सर्प्पवक्तव्यतार्थोऽष्टमः। 'देव' त्ति देवभेदविषयो नवमः। 'आय' त्ति आत्मभेदनिरूपणार्थो दशम इति॥

तत्र प्रथमोद्देशके किञ्चिल्लिख्यते–

१२/४-५. 'आसाएमाण' त्ति ईषत्स्वादयन्तो बहु च त्यजन्तः इक्षुखण्डादेरिव 'विस्साएमाण' त्ति विशेषेण स्वादयन्तोऽल्पमेव त्यजन्तः खर्जूरादेरिव 'परिभाएमाण' त्ति ददतः 'परिभुंजेमाण' त्ति सर्वमुपभुञ्जाना अल्पमप्यपरित्यजन्तः, एतेषां च पदानां वार्त्तमानिकप्रत्यया-न्तत्वेऽप्यतीतप्रत्ययान्तता द्रष्टव्या, ततश्च तद्विपुलमश-नाद्यास्वादितवन्तः सन्तः 'पक्खियं पोसहं पडिजागरमाणा विहरिस्सामो' त्ति पक्षे–अर्द्धमासि भवं पाक्षिकं 'पौषधम्' अव्यापारपौषधं 'प्रतिजाग्रतः' अनुपालयन्तः विहरिष्यामः, स्थास्यामः यच्चेहातीतकालीनप्रत्ययान्तत्वेऽपि वार्त्तमानिक-प्रत्ययोपादानं तद्भोजनानन्तरमेवाक्षेपेण पौषधाभ्युपगमप्रदर्शनार्थं, एवमुत्तरत्रापि गमनिका कार्येत्येके, अन्ये तु व्याचक्षते–इह किल पौषधं पर्वदिनानुष्ठानं, तच्च द्वेधा–इष्टजनभोजनदानादिरूपमाहारादिपौषधरूपं च, तत्र शङ्ख इष्टजनभोजनदानरूपं पौषधं कर्त्तुकामः सन् यदुक्तवांस्तद्दर्शयतेदमुक्तं–'तए णं अम्हे तं विउलं असणपाणखाइमसाइमं अस्साएमाणा' इत्यादि।

१२/६०. पुनश्च शङ्ख एव संवेगविशेषवशादाद्य-पौषधविनिवृत्तमनाः द्वितीयपौषधं चिकीर्षुर्यच्चिन्तितवांस्तद्दर्शय-तेदमुक्तम्–'नो खलु मे सेयं त' मित्यादि, 'एगस्स अबिइयस्स' त्ति 'एकस्य' बाह्यसहायापेक्षया केवलस्य 'अद्वितीयस्य' तथाविधक्रोधादिसहायापेक्षया केवलस्यैव, न चैकस्येति भणनादेकाकिन एव पौषधशालायां पौषधं कर्त्तुं कल्पत इत्यवधारणीयं, एतस्य चरितानुवादरूपत्वात् तथा ग्रंथान्तरे बहूनां श्रावकाणां पौषधशालायां मिलनश्रवणाद्दोषाभावात्परस्परेण स्मारणादिविशिष्टगुणसम्भवाच्चेति। 'गमणागमणाए पडिक्कमइ' त्ति ईर्यापथिकीं प्रतिक्रामतीत्यर्थः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१२/१३. 'छंदेणं' त्ति स्वाभिप्रायेण न तु मदीयाज्ञयेति।

१२/१५-१७. 'पुव्वरत्तावरत्तकाल-समयंसि' त्ति पूर्वरात्रश्च–रात्रेः पूर्वो भागः अपगता रात्रिरपररात्रः स च पूर्वरात्रापररात्रस्तल्लक्षणः कालसमयो यः स तथा तत्र 'धम्मजागरियं' ति धर्माय धर्मचिन्तया वा जागरिका– जागरणं धर्म्मजागरिका तां 'पारित्तएत्ति कट्टु एवं संपेहेइ' त्ति 'पारयितुं' पारं नेतुम् 'एवं सम्प्रेक्षते' इत्यालोचयति, किमित्याह– 'इतिकर्त्तुम्' एतस्यैवार्थस्य करणायेति। 'अभिगमो णत्थि' त्ति पञ्चप्रकारः पूर्वोक्तोऽभिगमो नास्त्यस्य, सचित्तादि-द्रव्याणां विमोचनीयानामभावादिति।

'जहा पढमं' ति यथा तेषामेव प्रथमनिर्गमस्तथा द्वितीय-निर्गमोऽपि वाच्य इत्यर्थः।

१२/१८. 'हिज्जो' त्ति ह्यो–ह्यस्तनदिने।

१२/१९-२१. 'सुदुक्खुजागरियं जागरिए' त्ति सुट्ठु दरिसणं जस्स सो सुदक्खू तस्स जागरिया–प्रमाद-निद्राव्यपोहेन जागरणं सुदक्खुजागरिया तां जागरितः कृतवानित्यर्थः, 'बुद्धा बुद्धजागरियं जागरंति' त्ति बुद्धाः केवलावबोधेन, ते च बुद्धानां–व्यपोढाज्ञाननिद्राणां जागरिका– प्रबोधो बुद्धजागरिका तां कुर्वन्ति 'अबुद्धा अबुद्धजागरियं जागरंति' त्ति अबुद्धाः केवलज्ञानाभावेन यथासम्भवं शेषज्ञानसद्भावाच्च बुद्धसदृशास्ते चाबुद्धानां– छद्मस्थज्ञानवतां या जागरिका सा तथा तां जाग्रति॥

अथ भगवन्तं शङ्खस्तेषां मनाक्परिकुपितश्रमणोपासकानां कोपोपशमनाय क्रोधादि-विपाकं पृच्छन्नाह–

१२/२२. 'कोहवसट्टे ण' मित्यादि, 'इसिभद्दपुत्तस्स' त्ति अनन्तर-शतोक्तस्येति॥

द्वादशशते प्रथमः॥१२-१॥

द्वितीय उद्देशकः

अनन्तरोद्देशके श्रमणोपासकविशेषप्रश्निितार्थनिर्णयो महावीर-कृतो दर्शितः इह तु श्रमणोपासिकाविशेषप्रश्निितार्थ-निर्णयस्तत्कृत एव दर्श्यते, इत्येवंसंबद्धस्यास्येदमादिसूत्रम्–

१२/३०. 'तेणं कालेणं' मित्यादि, 'पोत्ते' त्ति पौत्रः–पुत्रस्यापत्यं 'चेडगस्स' त्ति वैशालीराजस्य 'नत्तुए' ति नप्ता–दौहित्रः 'भाउज्ज' त्ति भ्रातृजाया 'वेसालीसावगाणं अरहंताणं पुव्वसेज्जारी' त्ति वैशालिकोभगवान्महावीरस्तस्य वचनं शृण्वन्ति श्रावयन्ति वा तद्रसिकत्वादिति वैशालिकश्रावकास्तेषाम् 'आर्हतानाम्' अर्हद्देवतानां साधूनामिति गम्यं 'पूर्वशय्यातरा' प्रथमस्थानदात्री, साधवो ह्यपूर्वे समायातास्तद्गृह एव प्रथमं वसतिं याचन्ते तस्याः स्थानदात्रीत्वेन प्रसिद्धत्वादिति सा पूर्वशय्यातरा।

१२/४९-५२. 'सभावओ' त्ति स्वभावतः पुद्गलानां मूर्त्तत्ववत् 'परिणामओ' त्ति 'परिणामेन' अभूतस्य भवनेन पुरुषस्य तारुण्यवत्।

'सव्वेवि णं भंते! भवसिद्धिया जीवा सिज्झिस्संति' त्ति भवा–भाविनी सिद्धिर्येषां ते भवसिद्धिकास्ते सर्वेऽपि भदन्त! जीवाः सेत्स्यन्ति? इति प्रश्नः, 'हंते' त्यादि तूत्तरम्, अयं चास्यार्थः–समस्ता अपि भवसिद्धिका जीवाः सेत्स्यन्त्यन्यथा भवसिद्धिकत्वमेव न स्यादिति। अथ सर्वभवसिद्धिकानां सेत्स्यमानताऽभ्युपगमे भवसिद्धिकशून्यता लोकस्य स्यात्, नैवं, समयज्ञातात्, तथाहि–सर्व एवानागतकालसमया वर्त्तमानतां लप्स्यन्ते–

'भवति स नामातीतः प्राप्तो यो नाम वर्त्तमानत्वम्।
एष्यंश्च नाम स भवति यः प्राप्स्यति वर्त्तमानत्वम्॥१॥'

इत्यभ्युपगमात्, न चानागतकालसमयविरहितो लोको भविष्यतीति।

अथैतामेवाशङ्कां जयन्ती प्रश्नद्वारेणास्मदुक्तसमय ज्ञातापेक्षया ज्ञातान्तरेण परिहर्त्तुमाह–

'जइ णं' मित्यादि इत्येके व्याख्यान्ति, अन्ये तु व्याचक्षते–सर्वेऽपि भदन्त! भवसिद्धिका जीवाः सेत्स्यन्ति–ये केचन सेत्स्यन्ति ते सर्वेऽपि भवसिद्धिका एव नाभवसिद्धिका एकोऽपि, अन्यथा भवसिद्धिकत्वमेव न स्यादित्यभिप्रायः, 'हंते' त्याद्युत्तरम्।

अथ यदि ये केचन सेत्स्यन्ति सर्वेऽपि भवसिद्धिका एव नाभवसिद्धिक एकोऽपीत्यभ्युपगम्यते तदा कालेन सर्वभवसिद्धिकानां सिद्धिगमनाद् भव्यशून्यता जगतः स्यादिति जयन्त्याशङ्कां तत्परिहारं च दर्शयितुमाह–'जइ णं' मित्यादि, 'सव्वागाससेढि' त्ति सर्वाकाशस्य–बुद्ध्या चतुरस्रप्रतरीकृतस्य श्रेणिः–प्रदेशपङ्क्तिः सर्वाकाशश्रेणिः 'परित्त' त्ति एकप्रदेशिकत्वेन विष्कम्भाभावेन परिमिता 'परिवुड' त्ति श्रेण्यन्तरैः परिकरिता, स्वरूपमेतत्तस्याः, अत्रार्थे वृद्धोक्ता भावनागाथा भवन्ति–

'तो'[1] भन्नइ किं न सिज्झति अहव किमभव्वसावसेसत्ता।
निल्लेवणं न जुज्जइ तेसिं तो कारणं अन्नं॥१॥'

अयमर्थः–यदि भवसिद्धिकाः सेत्स्यन्तीत्यभ्युपगम्यते ततो भणति शिष्यः–कस्मान्न ते सर्वेऽपि सिद्ध्यन्ति?, अन्यथा भवसिद्धिकत्वस्यैवाभावात्, अथवाऽपरं दूषणं–कस्मादभव्य-सावशेषत्वाद्–अभव्यावशेषत्वेनाभव्यान् विमुच्येत्यर्थः तेषां भव्यानां निर्लेपनं न युज्यते?, युज्यत एवेति भावः, यस्मादेवं ततः कारणं–सिद्धेर्हेतुरन्यद्भव्यत्वातिरिक्तं वाच्यं, तत्र सति सर्वभव्यनिर्लेपनप्रसङ्गादिति॥

'भन्नइ[2] तेसिमभव्वेवि पइ अनिल्लेवणं न उ विरोहो।
न उ सव्वभव्वसिद्धी सिद्धा सिद्धंतसिद्धीओ॥२॥'

१. तदा भणति किं न सिध्यन्ति अथवाऽभव्यावशिष्टत्वं (भवति)।
निर्लेपनं न युज्यते तेषां तद्भव्यत्वादन्यत्कारणं वाच्यं सिद्धेः॥१॥

२. भण्यते भव्यानामभव्यानपि प्रति तेषामनिर्लेपो न तु विरोधो।
यतः सिद्धान्तसिद्धेर्न तु सर्वभव्यसिद्धिः सिद्धा॥२॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अयमर्थो–भण्यते अत्रोत्तरं भव्यत्वमेव सिद्धिगमनकारणं न त्वन्यत्किञ्चित्, तत्र च सत्यपि भव्यत्वे सिद्धिगमनकारणे 'तेषां' भव्यानां 'अभव्यानपि प्रति' अभव्यानप्याश्रित्य 'अनिर्लेपनम्' अव्यवच्छेदः, अभव्यानवशिष्य यद्भव्यानां निर्लेपनमुक्तं तदपि नेत्यर्थः 'न तु' न पुनरिहार्थे 'विरोधः' बाधाऽस्ति सिद्धान्तसिद्धत्वात्, एतदेवाह–न तु इत्यादि, न हि **सर्वभव्यसिद्धिः सिद्धा सिद्धांतसिद्धेरिति॥**

'किह' पुण भव्वबहुत्ता सव्वागास-प्पएसदिट्ठंता।
नवि सिज्झिहिंति तो भणइ किंनु भव्वत्तणं तेसिं?॥३॥
जइ होऊ णं भव्वावि केइ सिद्धिं न चेव गच्छंति।
एवं तेवि अभव्वा को व विसेसो भवे तेसिं?॥४॥
भन्नइ भव्वो जोगो दारुय दलियंति वावि पज्जाया।
जोगोवि पुण न सिज्झइ कोई रुक्खाइदिट्ठंता॥५॥
पडिमाईणं जोगा बहवो गोसीसचंदणदुमाई।
संति अजोगावि इहं अन्ने एरंडभेंडाई॥६॥
न य पुण पडिमुप्पायणसंपत्ती होइ सव्वजोगाणं।
जेसिंपि असंपत्ती न य तेसि अजोग्गया होइ॥७॥
किं पुण जा संतत्ती सा नियमा होइ जोग्गरुक्खाणं।
न य होइ अजोग्गाणं एमेव य भव्वसिज्झणया॥८॥
सिज्झिस्संति य भव्वा सव्वेवित्ति भणियं च जं पहुणा।
तंपि य एयाएच्चिय दिट्ठीएँ जयंतिपुच्छाए॥९॥
भव्यानामेव सिद्धिरित्येतया दृष्ट्या–मतेनेति॥
'[2]अहवा पडुच्च कालं न सव्वभव्वाण होइ वोच्छित्ती।
जं तीतणागयाओ अद्धाओ दावि तुल्लाओ॥१०॥
तत्थातीतद्धाए सिद्धो एक्को अणंतभागो सिं।
कामं तावइओ च्चिय सिज्झिहिइ अणागयद्धाए॥११॥
ते दो अणंतभागा होउं सोच्चिय अणंतभागो सिं।
एवंपि सव्वभव्वाण सिद्धिगमणं अणिट्ठिं॥१२॥'

तौ द्वावप्यनन्तभागौ मीलितौ सर्वजीवानामनन्त एव भाव इति, यत्पुनरिदमुच्यते–

अतीताद्धातोऽनागताद्धाऽनन्तगुणेति तन्मतान्तरं, तस्य चेदं बीजं–यदि द्वे अपि ते समाने स्यातां तदा मुहूर्त्तादावतिक्रान्तेऽतीताद्धा समधिका अनागताद्धा च हीनेति हतं समत्वम्, एवं च मुहूर्त्तादिभिः प्रतिक्षणं क्षीयमाणाऽप्यनागताद्धा यतो न क्षीयते ततोऽवसितं ततः साऽनन्तगुणेति, यच्चोभयोः समत्वं तदेवं–यथाऽनागताद्धाया अन्तो नास्ति एवमतीताद्धाया आदिरिति समतेति॥

जीवाश्च न सुप्ताः सिद्ध्यन्ति किं तर्हि जागरा एवेति सुप्तजागरसूत्रम्–

१२/५३-५४. तत्र च 'सुत्तत्तं' ति निद्रावशत्वं 'जागरियत्तं' ति जागरणं जागरः सोऽस्यास्तीति जागरिकस्तद्भावो जागरिकत्वम् 'अहम्मिय' त्ति धर्म्मेण–श्रुतचारित्ररूपेण चरन्तीति धार्मिकास्तन्निषेधादधार्म्मिकाः, कुत एतदेवमित्यत आह–'अहम्माणुया' धर्मं–श्रुतरूपमनुगच्छन्तीति धर्मानुगास्तन्निषेधादधर्मानुगाः, कुत एतदेवमित्यत आह–'अहम्मिट्ठा' धर्म्मः–श्रुतरूप एवेष्टो–वल्लभः पूजितो वा येषां ते धर्मेष्टाः धर्मिणां वेष्टा धर्मीष्टाः अतिशयेन वा धर्म्मिणो धर्मिष्ठास्तन्निषेधादधर्मेष्टा अधर्मीष्टा अधर्म्मिष्ठा वा, अत एव 'अहम्मक्खाई' न धर्मख्यान्तीत्येवंशीला अधर्माख्यायिनः अथवा न धर्मात् ख्यातिर्येषां तेऽधर्मख्याततयः 'अहम्मपलोइ' ति न धर्म्ममुपादेयतया प्रलोकयन्ति ये तेऽधर्मप्रलोकिनः 'अहम्मपलज्जण' त्ति न धर्मे प्ररज्यन्ते–आसजन्ति ये तेऽधर्मप्ररज्जनाः, एवं च 'अहम्मसमुदाचार' त्ति न धर्मरूपः–चारित्रात्मकः समुदाचारः–समाचारः सप्रमोदो वाऽऽचारो येषां ते तथा, अत एव 'अहम्मेण चेवे' त्यादि, 'अधर्मेण' चारित्रश्रुतविरुद्धरूपेण 'वृत्तिं' जीविकां 'कल्पयन्तः' कुर्वाणा इति॥

अनन्तरं सुप्तजाग्रतां साधुत्वं प्ररूपितम्, अथ दुर्बलादीनां तथैव तदेव प्ररूपयन् सूत्रद्वयमाह–

१२/५५-५६. 'बलियत्तं भंते!' इत्यादि, 'बलियत्तं' ति बलमस्यास्तीति बलिकस्तद्भावो बलिकत्वं 'दुब्बलियत्तं' ति दुष्टं बलमस्यास्तीति दुर्बलिकस्तद्भावो दुर्बलिकत्वं।

१२/५७.५८. दक्षत्वं च तेषां साधु ये नेन्द्रियवशा भवन्तीतीन्द्रियवशानां यद्भवति तदाह–

१२/५९-६३.'सोइंदिय' त्यादि, सोइंदिय-वसट्टे' त्ति श्रोत्रेन्द्रियवशेन–तत्पारतन्त्र्येण ऋतः–पीडितः श्रोत्रेन्द्रियवशार्त्तः श्रोत्रेन्द्रियवशं वा ऋतो–गतः श्रोत्रेन्द्रियवशार्त्तः॥

द्वादशशते द्वितीयः॥१२-२॥

---

१. कथं पुनर्भव्यबहुत्वात्सर्वाकाशप्रदेशदृष्टान्तात्।
नैव सेत्स्यन्ति तदा भण्यते तेषां किं भव्यत्वं पुनर्भवति?॥३॥
केचिद्भव्या भूत्वाऽपि यदि सिद्धिं नैव गच्छेयु।
रेवं तेऽप्यभव्याः को वा विशेषस्तयोर्भव्याभव्ययोर्भवेत्॥४॥
भण्यते भव्यो योग्यो दारु च दलिकमिति चापि पर्यायाः।
योग्योऽपि पुनः कश्चिन्न सिद्ध्यति वृक्षादिदृष्टान्तात्॥५॥
बहवो गोशीर्षचन्दनाद्याः प्रतिमानां योग्या द्रुमाः।
सन्ति अन्ये एरण्डभिण्डाद्या अयोग्या अपि सन्ति॥६॥
नैव च सर्वेषां योग्यानां प्रतिमोत्पादनसम्पत्तिर्भवति।
येषामप्यसम्प्राप्तिर्न च तेषामयोग्यता भवति॥७॥
किं पुनर्या सम्प्राप्तिः सा नियमाद् योग्यवृक्षाणां।
भवति नैवायोग्यानां एवमेव च सर्वभव्यसिद्धिरपि॥८॥
सर्वेऽपि भव्याः सेत्स्यन्तीति प्रभुणा यद्भणितं।
तदप्यनयैव दृष्ट्या जयन्तीपृच्छायाम्॥९॥

२. अथवा कालं प्रतीत्य सर्वभव्यानां व्युच्छित्तिर्न भवति।
यतोऽतीतानागताद्धे द्वे अपि तुल्य स्तः॥१०॥
तत्रातीताद्धायां भव्यजीवानामनन्तभाग एकः।
सिद्धस्तावानेव चानागताद्धायां सेत्स्यति प्रकामम्॥११॥
तौ द्वावपि अनन्तभागौ संमील्यैषामनन्तभागः स एवैव।
एवमपि सर्वभव्यानां सिद्धिगमनं न निर्दिष्टम्॥१२॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तृतीय उद्देशकः

अनन्तरं श्रोत्रादीन्द्रियवशार्त्ता अष्टकर्म्मप्रकृतीर्बध्नन्तीत्युक्तं, तद्बन्धनाच्च नरकपृथिवीष्वप्युत्पद्यन्त इति नरकपृथिवी-स्वरूपप्रतिपादनाय तृतीयोद्देशकमाह, तस्य चेदमादिसूत्रम्–

१२/६६-६७. 'रायगिहे' इत्यादि, 'किंनामा किंगोय' त्ति तत्र नाम–यादृच्छिकमभिधानं गोत्रं च–अन्वर्थिकमिति 'एवं जहा जीवाभिगमे' इत्यादिना यत्सूचितं तदिदं–'दोच्चा णं भंते! पुढवी किंनामा किंगोया पन्नत्ता?, गोयमा! वंसा नामेणं सक्करप्पभा गोत्तेण' मित्यादीति॥

द्वादशशते तृतीयः ॥१२-३॥

चतुर्थ उद्देशकः

अनन्तरं पृथिव्य उक्तास्ताश्च पुद्गलात्मिका इति पुद्गलांश्चिन्तयंश्चतुर्थोद्देशकमाह, तस्य चेदमादिसूत्रम्–

१२/६९-८०. 'रायगिहे' इत्यादि 'एगयओ' त्ति एकत्वतः एकतयेत्यर्थः 'साहन्नंति' त्ति संहन्येते संहतौ भवत इत्यर्थः, द्विप्रदेशिक-स्कन्धस्य भेदे एको विकल्पः, त्रिप्रदेशिकस्य द्वौ, चतुष्प्रदेशिकस्य चत्वारः, पञ्चप्रदेशिकस्य षट्, षट्प्रदेशिकस्य दश, सप्तप्रदेशिकस्य चतुर्दश, अष्टप्रदेशिकस्यैकविंशतिः, नवप्रदेशिकस्याष्टाविंशतिः, दशप्रदेशिकस्य चत्वारिंशत्, सङ्ख्यातप्रदेशिकस्य द्विधाभेदे ११ त्रिधा भेदे २१ चतुर्द्धा भेदे ३१ पञ्चधाभेदे ४१ षोढात्वे ५१ सप्तधात्वे ६१ अष्टधात्वे ७१ नवधात्वे ८१ दशधात्वे ९१ सङ्ख्यातभेदत्वे त्वेक एवं विकल्पः, तमेवाह–'संखेज्जहा कज्जमाणे संखेज्जा परमाणुपोग्गला भवंति' त्ति, असङ्ख्यातप्रदेशिकस्य तु द्विधात्वे १२ त्रिधात्वे २३ चतुर्द्धात्वे ३४ पञ्चधात्वे ४५ षोढात्वे ५६ सप्तधात्वे ६७ अष्टधात्वे ७८ नवधात्वे ८९ दशभेदत्वे १०० सङ्ख्यातभेदत्वे द्वादश–

असङ्ख्यातभेदकरणे त्वेक एव, तमेवाह–'असंखेज्जा परमाणुपोग्गला भवंति' त्ति, अनन्तप्रदेशिकस्य तु द्विधात्वे १३ त्रिधात्वे २५ चतुर्द्धात्वे ३७ पञ्चधात्वे ४९ षड्विधत्वे ६१ सप्तधात्वे ७३ अष्टधात्वे ८५ नवधात्वे ९७ दशधात्वे १०९ सङ्ख्यातत्वे १२ असङ्ख्यातत्वे १३ अनन्तभेदकरणे त्वेक एव विकल्पः, तमेवाह–'अणंतहा कज्जमाणे' इत्यादि॥

'दो भंते! परमाणुपोग्गला साहण्णंती' त्यादिना पुद्गलानां प्राक् संहननमुक्तं 'से भिज्जमाणे दुहा कज्जइ' इत्यादिना च तेषां भेद उक्तः, अथ तामेवाश्रित्याह–

१२/८१. 'एएसि णं' मित्यादि, 'एतेषाम्' अनन्तरोक्तस्वरूपाणां परमाणुपुद्गलानां परमाणूनामित्यर्थः 'साहणणाभेयाणुवाएणं' त्ति 'साहणण' त्ति प्राकृतत्वात् संहननं–सङ्घातो भेदश्च–वियोजनं तयोरनुपातो–योगः संहननभेदानुपातस्तेन सर्वपुद्गलद्रव्यैः सह परमाणूनां संयोगेन वियोगेन चेत्यर्थः, 'अणंताणंत' त्ति अनन्तेन गुणिता अनन्ता अनन्तानन्ताः, एकोऽपि हि परमाणु-र्द्व्यणुकादिभिरनन्ताणुकान्तैर्द्रव्यैः सह संयुज्यमानोऽनन्तान् परिवर्त्तान् लभते, प्रतिद्रव्यं परिवर्त्तभावात्, अनन्तरत्वाच्च परमाणूनां, प्रतिपरमाणु चानन्तत्वात्परिवर्त्तानां परमाणुपुद्गलपरिवर्त्ता-नामनन्तानन्तत्वं द्रष्टव्यमिति।

'पुग्गलपरियट्ट' त्ति पुद्गलैः–पुद्गलद्रव्यैः सह परिवर्त्ताः–परमाणूनां मीलनानि पुद्गलपरिवर्त्ताः 'समनुगन्तव्याः' अनुगन्तव्या भवन्तीति हेतोः 'आख्याताः' प्ररूपिताः भगवद्भिरिति गम्यते, मकारश्च प्राकृतशैलीप्रभवः॥

अथ पुद्गलपरावर्त्तस्यैव भेदाभिधानायाह–

१२-८२. 'कइविहे णं' मित्यादि, 'ओरालियपोग्गलपरियट्टे' त्ति औदारिकशरीरे वर्त्तमानेन जीवेन यदौदारिकशरीरप्रायोग्य-द्रव्याणामौदारिकशरीरतया सामस्त्येन ग्रहणमसावौदारिक-पुद्गलपरिवर्त्तः, एवमन्येऽपि।

१२-८३. 'नेरइयाणं' ति नारकजीवानामनादौ संसारे संसरतां सप्तविधः पुद्गलपरावर्त्तः प्रज्ञप्तः॥

१२/८४. 'एगमेगस्से' त्यादि, अतीतानन्ता अनादित्वात् अतीतकालस्य जीवस्य चानादित्वात् अपरापरपुद्गल-ग्रहणस्वरूपत्वाच्चेति। 'पुरक्खडे' ति पुरस्कृता भविष्यन्तः 'कस्सइ अत्थि कस्सइ नत्थि' त्ति कस्यापि जीवस्य दूरभव्यस्याभव्यस्य वा ते सन्ति, कस्यापि न सन्ति, उद्धृत्य यो मानुषत्वमासाद्य सिद्धिं यास्यति सङ्ख्येयैरसङ्ख्येयैर्वा भवैर्यास्यति यः सिद्धिं तस्यापि परिवर्त्तो नास्ति, अनन्तकालपूर्यत्वात्तस्येति। 'एगत्तिय' त्ति एकत्विकाः–एकनारकाद्याश्रयाः 'सत्त' त्ति औदारिकादिसप्तविधपुद्गल-विषयत्वात्सप्तदण्डकाश्चतुर्विंशतिदण्डका भवन्ति, एकत्व-पृथक्त्वदण्डकानां चायं विशेषः–एकत्वदण्डकेषु पुरस्कृतपुद्गल-परावर्त्ताः कस्यापि न सन्त्यपि, बहुत्वदण्डकेषु तु ते सन्ति, जीवसामान्याश्रयणादिति॥

१२/८८. 'एगमेगस्से' त्यादि, 'नत्थि एक्कोवि' त्ति नारकत्वे वर्त्तमानस्यौदारिकपुद्गलग्रहणाभावादिति॥

१२/८९-९६. 'एगमेगस्स णं भंते! नेरइयस्स असुरकुमारत्ते' इत्यादि, इह च नैरयिकस्य वर्त्तमानकालीनस्य असुरकुमारत्वे चातीतानागत-कालसम्बन्धिनि 'एगुत्तरिया जाव अणंता व' त्ति अनेनेदं सूचितं–'कस्सइ अत्थि कस्सइ नत्थि, जस्सत्थि तस्स जहन्नेणं एक्को वा दोन्नि वा तिन्नि वा उक्कोसेणं संखेज्जा वा असंखेज्जा वा अणंता वा' इति 'एवं जत्थ वेउव्वियसरीरं तत्थ एकोत्तरिओ' त्ति यत्र वायुकाये मनुष्यपञ्चेन्द्रियतिर्यक्षु व्यन्तरादिषु च वैक्रियशरीरं तत्रैको वेत्यादि वाच्यमित्यर्थः, 'जत्थ नत्थी' त्यादि यत्राप्यकायादौ नास्ति वैक्रियं तत्र यथा पृथिवीकायिकत्वे तथा वाच्यं, न सन्ति वैक्रियपुद्गलपरावर्त्ता इति वाच्यमित्यर्थः, 'तेयापोग्गले' त्यादि तैजसकार्म्मण-पुद्गलपरावर्त्ता भविष्यन्त एकादयः सर्वेषु नारकादिजीवपदेषु

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूर्ववद्वाच्यास्तैजस-कार्म्मणयोः सर्वेषु भावादिति।

'मणपोग्गले' त्यादि, मनःपुद्गलपरावर्त्ताः पञ्चेन्द्रियेष्वेव सन्ति, भविष्यन्तश्च ते एकोत्तरिकाः पूर्ववद्वाच्याः, 'विगलिंदिएसु नत्थि' त्ति विकलेन्द्रियग्रहणेन चैकेन्द्रिया अपि ग्राह्याः तेषामपीन्द्रियाणामसम्पूर्णत्वात् मनोवृत्तेश्चाभावाद् अतस्तेष्वपि मनःपुद्गलपरावर्त्ता न सन्ति।

'वइपोग्गलपरियट्टा एवं चेव' त्ति तैजसादिपरिवर्त्तवत्सर्वनारकादिजीवपदेषु वाच्याः, नवरमेकेन्द्रियेषु वचनाभावान्न सन्तीति वाच्याः।

'नेरइयाण' मित्यादिना पृथक्त्वदण्डकानाह, जाव वेमाणियाण' मित्यादिना पर्यन्तिमदण्डको दर्शितः॥

अथौदारिकादिपुद्गलपरावर्त्तानां स्वरूपमुपदर्शयितुमाह–

१२/९७. 'से केणट्ठेण' मित्यादि, 'गहियाइं' ति स्वीकृतानि 'बद्धाइं' ति जीवप्रदेशैरात्मीकरणात्, कुतः ? इत्याह–'पुट्ठाइं' ति यतः पूर्वं स्पृष्टानि तनौ रेणुवत् अथवा 'पुष्टानि' पोषितान्यपरापरग्रहणतः 'कडाइं' ति पूर्वपरिणामापेक्षया परिणामान्तरेण कृतानि 'पट्ठवियाइं' ति प्रस्थापितानि–स्थिरीकृतानि जीवेन 'निविट्ठाइं' ति यतः स्थापितानि ततो निविष्टानि जीवेन स्वयं 'अभिनिविट्ठाइं' ति अभि–अभिविधिना निविष्टानि सर्वाण्यपि जीवे लग्नानीत्यर्थः 'अभिसमन्नागयाइं' ति अभिविधिना सर्वाणीत्यर्थः समन्वागतानि–सम्प्राप्तानि जीवेन रसानुभूतिं समाश्रित्य 'परियाइयाइं' ति पर्यासानि–जीवेन सर्वावयवैरात्तानि तद्रसादानद्वारेण 'परिणामियाइं' ति रसानुभूतित एव परिणामान्तरमापादितानि 'निज्जिण्णाइं' ति क्षीणरसीकृतानि 'निसिरियाइं' ति जीवप्रदेशेभ्यो निःसृतानि, कथं ?–'निसिट्ठाइं' ति जीवेन निःसृष्टानि स्वप्रदेशेभ्यस्त्याजितानि, इहाद्यानि चत्वारि पदान्यौदारिकपुद्गलानां ग्रहणविषयाणि तदुत्तराणि तु पञ्च स्थितिविषयाणि तदुत्तराणि तु चत्वारि विगमविषयाणीति॥

अथ पुद्गलपरावर्त्तानां निर्वर्त्तनकालं तदल्पबहुत्वं च दर्शयन्नाह–

१२/९८,९९. 'ओरालिये' त्यादि, 'केवइकालस्स' त्ति कियता कालेन निर्वर्त्यते ?, 'अणंताहिं उस्सप्पिणिओसप्पिणीहिं' ति एकस्य जीवस्य ग्राहकत्वात् पुद्गलानां चानन्तत्वात् पूर्वगृहीतानां च ग्रहणस्यागण्यमानत्वादनन्ता अवसर्प्पिण्य इत्यादि सुष्ठूक्तमिति।

'सव्वत्थोवे कम्मगपोग्गले' त्यादि, सर्वस्तोकः कार्म्मणपुद्गलपरिवर्त्तनिर्वर्त्तनाकालः, ते हि सूक्ष्मा बहुतमपरमाणुनिष्पन्नाश्च भवन्ति, ततस्ते सकृदपि बहवो गृह्यन्ते, सर्वेषु च नारकादिपदेषु वर्त्तमानस्य जीवस्य तेऽनुसमयं ग्रहणमायान्तीति स्वल्पकालेनापि तत्सकलपुद्गलग्रहणं भवतीति, ततस्तैजसपुद्गलपरिवर्त्तनिर्वर्त्तनाकालोऽनन्तगुणो, यतः स्थूलत्वेन तैजसपुद्गलानामल्पनामेकदा ग्रहणम्, एकग्रहणे चाल्पप्रदेशनिष्पन्नत्वेन तेषामल्पानामेव तदणूनां ग्रहणं भवत्यतोऽनन्तगुणोऽसाविति, तत औदारिकपुद्गलपरिवर्त्तनिर्वर्त्तनाकालोऽनन्तगुणो, यत औदारिकपुद्गला अतिस्थूराः, स्थूराणां चाल्पानामेवैकदा ग्रहणं भवति अल्पतरप्रदेशाश्च ते ततस्तद्ग्रहणेऽप्येकदाऽल्पा एवाणवो गृह्यन्ते, न च कार्म्मण-तैजसपुद्गलवत्तेषां सर्वपदेषु ग्रहणमस्ति, औदारिकशरीरिणामेव तद्ग्रहणाद्, अतो बृहतैव कालेन तेषां ग्रहणमिति, तत आनप्राणपुद्गलपरिवर्त्तनाकालोऽनन्तगुणः, यद्यपि हि औदारिकपुद्गलेभ्य आनप्राणपुद्गलाः सूक्ष्मा बहुप्रदेशिकाश्चेति तेषामल्पकालेन ग्रहणं संभवति तथाऽप्यपर्याप्तकावस्थायां तेषामग्रहणात्पर्याप्तकावस्थायामप्यौदारिक-शरीरपुद्गलापेक्षया तेषामल्पीयसामेव ग्रहणान्न शीघ्रं तद्ग्रहणमित्यौदारिकपुद्गलपरिवर्त्तनिर्वर्त्तनाकालादनन्तगुणताऽऽनप्राणपुद्गलपरिवर्त्तनिर्वर्त्तनाकालस्येति, ततो मनःपुद्गल-परिवर्त्तनिर्वर्त्तनाकालोऽनन्तगुणः, कथम् ?, यद्यप्यानप्राणपुद्गलेभ्यो मनःपुद्गलाः सूक्ष्मा बहुप्रदेशाश्चेत्यल्पकालेन तेषां ग्रहणं भवति तथाऽप्येकेन्द्रियादिकायस्थितिवशान्मनसश्चिरेण लाभान्मानसपुद्गलपरिवर्त्तो बहुकालसाध्य इत्यनन्तगुण उक्तः, ततोऽपि वाक्पुद्गलपरिवर्त्तनिर्वर्त्तनाकालोऽनन्तगुणः, कथम् ?, यद्यपि मनसः सकाशाद्भाषाः शीघ्रतरं लभ्यते द्वीन्द्रियाद्यवस्थायां च भवति तथाऽपि मनोद्रव्येभ्यो भाषाद्रव्याणामतिस्थूलतया स्तोकानामेवैकदा ग्रहणात्त-तोऽनन्तगुणो वाक्पुद्गलपरिवर्त्तनिर्वर्त्तनाकाल इति, ततो वैक्रियपुद्गलपरिवर्त्तनिर्वर्त्तनाकालोऽनन्तगुणो, वैक्रियशरीरस्यातिबहुकाललभ्यत्वादिति॥

पुद्गलपरिवर्त्तानामेवाल्पबहुत्वं दर्शयन्नाह–

१२/१००. 'एएसि ण' मित्यादि, सर्वस्तोका वैक्रियपुद्गलपरिवर्त्ता बहुतमकालनिर्वर्त्तनीयत्वात्तेषां, ततोऽनन्तगुणा वाग्विषया अल्पतरकालनिर्वर्त्त्यत्वात्, एवं पूर्वोक्तयुक्त्या बहुबहुतराः क्रमेणान्येऽपि वाच्या इति॥

द्वादशशते चतुर्थः॥१२।४॥

॥ ग्रन्थाग्रम् ॥ १२००० ॥

पञ्चम उद्देशकः

अनन्तरोद्देशके पुद्गला उक्तास्तत्प्रस्तावात्कर्मपुद्गलस्वरूपाभिधानाय पञ्चमोद्देशकमाह–

१२/१०२. 'रायगिहे' इत्यादि 'पाणाइवाए' त्ति प्राणातिपातजनितं तज्जनकं वा चारित्रमोहनीयं कर्मोपचारात् प्राणातिपात एव, एवमुत्तरत्रापि, तस्य च पुद्गलरूपत्वाद्वर्णादयो भवन्तीत्यत उक्तं, 'पंचवन्ने' इत्यादि, आह च–

'पंचरसपंचवन्नेहिं परिणयं दुविहगंधचउफासं।
दवियमणंतपएसं सिद्धेहिं अणंतगुण हीणं॥१॥'

इति

(पञ्चभी रसैः पञ्चभिर्वर्णैः परिणतं द्विविधगन्धं चतुःस्पर्शम्।
अनन्तप्रदेशं द्रव्यं सिद्धेभ्योऽनन्तगुणं हीनम्॥१॥)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'चउफासे' त्ति स्निग्धरूक्षशीतोष्णाख्याश्चत्वारः स्पर्शाः सूक्ष्मपरिणामपरिणतपुद्गलानां भवंति, सूक्ष्मपरिणामं च कर्मेति।

१२/१०३. 'कोहे' त्ति क्रोधपरिणामजनकं कर्म्म, तत्र क्रोध इति सामान्यं नाम कोपादयस्तु तद्विशेषाः, तत्र कोपः क्रोधोदयात्स्वभावाच्चलनमात्रं, रोषः–क्रोधस्यैवानुबन्धो, दोषः आत्मनः परस्य वा दूषणं, एतच्च क्रोधकार्यं, द्वेषो वाऽप्रीतिमात्रम्, अक्षमा–परकृतापराधस्यासहनं, सञ्ज्वलनो–मुहुर्मुहुः क्रोधाग्निना ज्वलनं, कलहो–महता शब्देनान्योऽन्यमसमञ्जसभाषणं, एतच्च–क्रोधकार्यं, चाण्डिक्यं रौद्राकारकरणं, एतदपि क्रोधकार्यमेव, भण्डनं–दण्डादिभिर्युद्धं, एतदपि क्रोधकार्यमेव, विवादो–विप्रतिपत्तिसमुत्थवचनानि, इदमपि तत्कार्यमेवेति, क्रोधैकार्था वैते शब्दाः।

१२/१०४. 'माणे' त्ति मानपरिणामजनकं कर्म्म, तत्र मान इति सामान्यं नाम, मदादयस्तु तद्विशेषाः, तत्र मदो–हर्षमात्रं दर्पो–दृप्तता, स्तम्भः–अनम्रता, गर्वः–शौण्डीर्यं, 'अत्तुक्कोसे' त्ति आत्मनः परेभ्यः सकाशाद्गुणैरुत्कर्षणम्–उत्कृष्टताऽभिधानं परपरिवादः–परेषामपवदनं परिपातो वा गुणेभ्यः परिपातनमिति, 'उक्कोसे' त्ति उत्कर्षणं आत्मनः परस्य वा मनाक् क्रियायोत्कृष्टताकरणं उत्काशनं वा–प्रकाशनमभिमानात्स्वकीयसमृद्ध्यादेः 'अवक्कासे' त्ति अपकर्षणमवकर्षणं वा अभिमानादात्मनः परस्य वा क्रियारम्भात् कुतोऽपि व्यावर्त्तनमिति अप्रकाशो वाऽभिमानादेवेति, 'उण्णए' त्ति उच्छ्रिन्नं नतं–पूर्वप्रवृत्तं नमनमभिमानादुन्नतम्, उच्छ्रिन्नो वा नयो–नीतिरभिमानादेवोन्नयो नयाभाव इत्यर्थः, 'उण्णामे' त्ति प्रणतस्य मदानुप्रवेशादुन्नमनं, 'दुन्नामे' त्ति मदादुष्टं नमनं दुर्न्नाम इति, इह च स्तम्भादीनि मानकार्याणि मानवाचका वैते ध्वनय इति।

१२/१०५. 'माय' त्ति सामान्यं उपध्यादयस्तद्भेदाः, तत्र 'उवहि' त्ति उपधीयते येनासावुपधिः–वञ्चनीयसमीपगमनहेतुर्भावः 'नियडि' त्ति नितरां करणं निकृतिः–आदरकरणेन परवञ्चनं पूर्वकृतमायाप्रच्छादनार्थं वा मायान्तरकरणं 'वलए' त्ति येन भावेन वलयमिव वक्रं वचनं चेष्टा वा प्रवर्त्तते स भावो वलयं 'गहणे' त्ति परव्यामोहनाय यद्वचनजालं तद्गहनमिव गहनं 'णूमे' त्ति परवञ्चनाय निम्नताया निम्नस्थानस्य वाऽश्रयणं तन्नूमंति 'कक्के' त्ति कल्कं हिंसादिरूपं पापं तन्निमित्तो यो वाचनाभिप्रायः स कल्कमेवोच्यते 'कुरुए' त्ति कुत्सितं यथा भवत्येवं रूपयति–विमोहयति यत्तत्कुरूपं भाण्डादिकर्म मायाविशेष एव, 'जिम्हे' त्ति येन परवञ्चनाभिप्रायेण जैह्म्यं–क्रियासु मान्द्यमालम्बते स भावो जैह्म्यमेवेति 'किब्बिसे' त्ति यतो मायाविशेषाज्जन्मान्तरेऽत्रैव वा भवे किल्बिषः–किल्बिषिको भवति स किल्बिष एवेति, 'आयरणये' त्ति यतो मायाविशेषा-दादरणं–अभ्युपगमं कस्यापि वस्तुनः करोत्यसावादरणं, ताप्रत्ययस्य च स्वार्थिकत्वद् आयरणया, आचरणं वा–परप्रतारणाय विविधक्रियाणामाचरणं, 'गूढनया' गूहनं गोपायनं स्वरूपस्य 'वंचणया' वञ्चनं–परस्य प्रतारणं 'पलिउंचणया' प्रतिकुञ्चनं सरलतया प्रवृत्तस्य वचनस्य खण्डनं 'साइजोगे' त्ति अविश्रम्भसम्बन्धः सातिशयेन वा द्रव्येण निरतिशयस्य योगस्तत्प्रतिरूपकरणमित्यर्थः, मायैकार्था वैते ध्वनय इति।

१२/१०६. 'लोभे' त्ति सामान्यं इच्छादयस्तद्विशेषाः, तत्रेच्छा–अभिलाषमात्रं 'मुच्छा कंखा गेही' त्ति मूर्च्छा–संरक्षणानुबन्धः काङ्क्षा–अप्राप्तार्थाशंसा 'गेहि' त्ति गृद्धिः–प्राप्तार्थेष्वासक्तिः 'तण्ह' त्ति तृष्णा–प्राप्तार्थानामव्ययेच्छा 'भिज्ज' त्ति अभिव्याप्त्या विषयाणां ध्यानं–तदेकाग्रत्वमभिध्या पिधानादिवदकारलोपाद्भिध्या 'अभिज्झ' त्ति न भिध्या अभिध्या भिध्यासदृशं भावान्तरं, तत्र दृढाभिनिवेशो भिध्या ध्यानलक्षणत्वात्तस्याः, अदृढाभिनिवेशस्त्वभिध्या चित्तलक्षणत्वात्तस्याः, ध्यानचित्तयोस्त्वयं विशेषः–'जं थिरमज्झवसाणं तं झाणं जं चलं तयं चित्तं' ति (यत्स्थिरमध्यवसानं तद्ध्यानं यच्चलं तच्चित्तम्॥) 'आसासणय' त्ति आशंसनं–मम पुत्रस्य शिष्यस्य वा इदमिदं च भूयादित्यादिरूपा आशीः 'पत्थणय' त्ति प्रार्थनं–परं प्रतीष्टार्थयाञ्चा 'लालप्पणय' त्ति प्रार्थनमेव भृशं लपनतः। 'कामास' त्ति शब्दरूपप्राप्तिसंभावना 'भोगास' त्ति गन्धादिप्राप्तिसम्भावना 'जीवितास' त्ति जीवितव्यप्राप्तिसम्भावना, 'मरणास' त्ति कस्याञ्चिदवस्थायां मरणप्राप्तिसम्भावना, इदं च क्वचिन्न दृश्यते, 'नंदिरागे' त्ति समृद्धौ सत्यां रागो–हर्षो नन्दिरागः।

१२/१०७. 'पेज्जे' त्ति प्रेम–पुत्रादिविषयः स्नेहः 'दोसे' त्ति अप्रीतिः कलहः–इह प्रेमहासादिप्रभवं युद्धं, यावत्करणात् 'अब्भक्खाणे पेसुन्ने अरइरई परपरिवाए मायामोसे' त्ति दृश्यम्॥

अथोक्तानामेवाष्टादशानां प्राणातिपातादिकानां पापस्थानानां ये विपर्ययास्तेषां स्वरूपाभिधानायाह–

१२/१०८. 'अहे' त्यादि, 'अवन्ने' त्ति वधादिविरमणानि जीवोपयोगस्वरूपाणि जीवोपयोगश्चामूर्त्तोऽमूर्त्तत्वाच्च तस्य वधादिविरमणानाममूर्त्तत्वं तस्माच्चावर्णादित्वमिति॥

जीवस्वरूपविशेषमेवाधिकृत्याह–

१२/१०९. 'उप्पत्तिय' त्ति उत्पत्तिरेव प्रयोजनं यस्याः सा औत्पत्तिकी, ननु क्षयोपशमः प्रयोजनमस्याः? सत्यं, स खल्वन्तरङ्गत्वात्सर्वबुद्धिसाधारण इति न विवक्ष्यते, न चान्यच्छास्त्रकर्माभ्यासादिकमपेक्षत इति,

'वेणइय' त्ति विनयो–गुरुशुश्रूषा स कारणमस्यास्तत्प्रधाना वा वैनयिकी, 'कम्मय' त्ति अनाचार्यकं कर्म्म साचार्यकं शिल्पं कादाचित्कं वा कर्म शिल्पं तु नित्यव्यापारः, ततश्च कर्म्मणो जाता कर्म्मजा, 'पारिणामिय' त्ति परिः–समन्तान्नमनं परिणामः–सुदीर्घकालपूर्वापरार्थावलोकनादिजन्य आत्मधर्मः स कारणं यस्याः सा पारिणामिकी बुद्धिरिति वाक्यशेषः, इयमपि वर्णादिरहिता जीवधर्म्मत्वेनामूर्त्तत्वात्॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जीवधर्माधिकारादवग्रहादिसूत्रं कर्म्मादिसूत्रं च, अमूर्त्ताधिकारादवकाशान्तरसूत्रं अमूर्त्तत्वविपर्ययात्तनुवातादिसूत्राणि चाह–तत्र च।

१२/११२,११३. 'सत्तमे णं भंते! उवासंतरे' त्ति प्रथमद्वितीयपृथिव्योर्यदन्तराले आकाशखण्डं तत्प्रथमं तदपेक्षया सप्तमं सप्तम्या अधस्तात्तस्योपरिष्टात्सप्तमस्तनुवातस्तस्योपरि सप्तमो घनवातस्तस्याप्युपरि सप्तमो घनोदधिस्तस्याप्युपरि सप्तमी पृथिवी, तनुवातादीनां च पञ्चवर्णादित्वं पौद्गलिकत्वेन मूर्त्तत्वात्, अष्टस्पर्शत्वं च बादरपरिणामत्वात्, अष्टौ च स्पर्शाः शीतोष्णस्निग्धरूक्षमृदुकठिनलघुगुरुभेदादिति। जम्बूद्वीपे इत्यत्र यावत्करणाल्लवणसमुद्रादीनि पदानि वाच्यानि 'जाव वेमाणियावासा' इह यावत्करणादसुरकुमारावासादिपरिग्रहः, ते च भवनानि नगराणि विमानानि तिर्यग्लोके तन्नगर्यश्चेति।

१२/११४.'वेउव्वियतेयाइं पडुच्च' त्ति वैक्रियतैजसशरीरे हि बादरपरिणामपुद्गलरूपे ततो बादरत्वात्तयोर्नारकाणामष्टस्पर्शत्वं, 'कम्मगं पडुच्च' त्ति कार्म्मणं हि सूक्ष्मपरिणामपुद्गलरूपमतश्चतुःस्पर्शं, ते च शीतोष्णस्निग्धरूक्षाः।

१२/११६. 'धम्मत्थिकाए' इह यावत्करणादेवं दृश्यम्–'अधम्मत्थिकाए आगासत्थिकाए पोग्गलत्थिकाए अद्धासमए आवलिया मुहुत्ते' इत्यादि, 'दव्वलेसं पडुच्च' त्ति इह द्रव्यलेश्यावर्णः

१२/११७. 'भावलेसं पडुच्च' त्ति भावलेश्या–आन्तरः परिणामः, इह च कृष्णलेश्यादीनि परिग्रहसञ्ज्ञाऽवसानानि अवर्णादीनि जीवपरिणामत्वात्, औदारिकादीनि चत्वारि शरीराणि पञ्चवर्णादिविशेषणानि अष्टस्पर्शानि च बादरपरिणामपुद्गलरूपत्वात्, सर्वत्र च चतुःस्पर्शत्वे सूक्ष्मपरिणामः कारणं अष्टस्पर्शत्वे च बादरपरिणामः कारणं वाच्यमिति।

१२/११८. 'सव्वदव्व' त्ति सर्वद्रव्याणि धर्मास्तिकायादीनि 'अत्थेगइया सव्वदव्वा पंचवन्ने' त्यादि बादरपुद्गलद्रव्याणि प्रतीत्योक्तं सर्वद्रव्याणां मध्ये कानिचित्पञ्चवर्णादीनीति भावार्थः 'चउफासा' इत्येतच्च पुद्गलद्रव्याण्येव सूक्ष्माणि प्रतीत्योक्तं 'एगगंधे' त्यादि च परमाण्वादिद्रव्याणि प्रतीत्योक्तं, यदाह परमाणुद्रव्यमाश्रित्य–

'कारणमेव तदन्त्यं सूक्ष्मो नित्यश्च भवति परमाणुः।
एकरस वर्णगन्धो द्विस्पर्शः कार्यलिङ्गश्च॥१॥'

इति, स्पर्शद्वयं च सूक्ष्मसम्बन्धिनां चतुर्णां स्पर्शानामन्यतरदविरुद्धं भवति, तथाहि–स्निग्धोष्णलक्षणं स्निग्धशीतलक्षणं वा रूक्षशीतलक्षणं रूक्षोष्णलक्षणं वेति, 'अवण्णे' त्यादि च धर्मास्तिकायादिद्रव्याण्याश्रित्योक्तं, द्रव्याश्रितत्वात्प्रदेशपर्यवाणां द्रव्यसूत्रानन्तरं तत्सूत्रं, तत्र च प्रदेशा–द्रव्यस्य निर्विभागा अंशाः पर्यवास्तु धर्माः, ते चैवंकरणादेवं वाच्याः–'सव्वपएसा णं भंते! कइवण्णा? पुच्छा गोयमा! अत्थेगइया सव्वपएसा पंचवन्ना जाव अट्ठफासा' इत्यादि। एवं च पर्यवसूत्रमपि, इह च मूर्त्तद्रव्याणां प्रदेशाः पर्यवाश्च मूर्त्तद्रव्यवत्पञ्चवर्णादयः, अमूर्त्तद्रव्याणां चामूर्त्तद्रव्यवदवर्णादय इति। अतीताद्धादित्रयं चामूर्त्तत्वादवर्णादिकम्। वर्णाद्यधिकारादेवेदमाह–

१२/११९. 'जीवे ण' मित्यादि, 'परिणामं परिणमइ' त्ति स्वरूपं गच्छति कतिवर्णादिना रूपेण परिणमतीत्यर्थः 'पंचवन्नं' ति गर्भव्युत्क्रमणकाले जीवशरीरस्य पञ्चवर्णादित्वात् गर्भव्युत्क्रमणकाले जीवपरिणामस्य पञ्चवर्णादित्वमवसेयमिति॥ अनन्तरं गर्भं व्युत्क्रामन् जीवो वर्णादिभिर्विचित्रं परिणामं परिणमतीत्युक्तम्।

अथ विचित्रपरिणाम एव जीवस्य यतो भवति तद्दर्शयितुमाह–

१२/१२०. 'कम्मओ ण' मित्यादि, कर्म्मतः सकाशान्नो अकर्म्मतः–न कर्म्माणि विना जीवो 'विभक्तिभावं' विभागरूपं भावं नारकतिर्यग्मनुष्यामरभवेषु नानारूपं परिणाममित्यर्थः 'परिणमति' गच्छति तथा 'कम्मओ णं जए' त्ति गच्छति तांस्तान्नारकादिभावानिति 'जगत्' जीवसमूहो जीवद्रव्यस्यैव वा विशेषो जङ्गमाभिधानो 'जगन्ति जङ्गमान्याहु' रिति वचनादिति॥

द्वादशशते पञ्चमः॥ १२-५॥

षष्ठम उद्देशकः

जगतो विभक्तिभावः कर्म्मत इति पञ्चमोद्देशकान्ते उक्तं, स च राहुग्रसने चन्द्रस्यापि स्यादिति शङ्कानिरासाय षष्ठोद्देशकमाह, तस्य चेदमादिसूत्रम्–

१२/१२२,१२३. 'रायगिहे' इत्यादि, 'मिच्छंते एवमाहंसु' त्ति, इह तद्वचनमिथ्यात्वमप्रमाणकत्वात् कुप्रवचनसंस्कारोपनीतत्वाच्च, ग्रहणं हि राहुचन्द्रयोर्विमानापेक्षं, न च विमानयोग्रासकग्रसनीयसम्भवोऽस्ति आश्रयमात्रत्वान्नर-भवनानामिव, अथेदं गृहमनेन ग्रस्तमिति दृष्टस्तद्व्यवहारः?, सत्यं स खल्वाच्छाद्याच्छादकभावे सति नान्यथा, आच्छादनभावेन च ग्रासविवक्षायामिहापि न विरोध इति। अथ यदत्र सम्यक् तद्दर्शयितुमाह–'अहं पुणे' त्यादि॥

'खंजणवन्नाभे' त्ति खञ्जनं–दीपमल्लिकामलस्तस्य यो वर्णस्तद्वदाभा यस्य तत्तथा 'लाउयवन्नाभे' त्ति 'लाउयं' ति तुम्बिका तच्चेहापक्कावस्थं ग्राह्यमिति। 'भासरासिवण्णाभे' त्ति भस्मराशिवर्णाभं, ततश्च किमित्याह–'जया ण' मित्यादि, 'आगच्छमाणे व' त्ति गत्वाऽतिचारेण ततः प्रतिनिवर्त्तमानः कृष्णवर्णादिना विमानेनेति शेषः 'गच्छमाणे व' त्ति स्वभावचारेण चरन्, एतेन च पदद्वयेन स्वाभाविकी गतिरुक्ता, 'विउव्वमाणे व' त्ति विकुर्वणां कुर्वन् 'परियारेमाणे व' त्ति परिचारयन् कामक्रीडां कुर्वन्, एतस्मिन् द्वयेऽतित्वरया प्रवर्त्तमानो विसंस्थुलचेष्टया स्वविमानमसमञ्जसं वलयति, एतच्च द्वयमस्वाभाविकविमानगतिग्रहणायोक्तमिति, 'चंदलेसं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुरच्छिमेणं आवरेत्ताणं' ति स्वविमानेन चन्द्रविमानावरणे चन्द्रदीप्तेरावृत्तत्वाच्चन्द्रलेश्यां पुरस्तादावृत्त्य 'पच्चच्छिमेणं वीइवयइ' त्ति चन्द्रापेक्षया परेण यातीत्यर्थः 'पुरच्छिमेणं चंदे उवदंसेइ पच्चच्छिमेणं राहु' त्ति राह्वपेक्षया पूर्वस्यां दिशि चन्द्र आत्मानमुपदर्शयति चन्द्रापेक्षया च पश्चिमायां राहुरात्मानमुपदर्शयतीत्यर्थः। एवंविधस्वभावतायां च राहोश्चन्द्रस्य यद्भवति तदाह-'जया ण' मित्यादि, 'आवरेमाणे' इत्यत्र द्विर्वचनं तिष्ठतीति क्रियाविशेषणत्वात् 'चंदेण राहुस्स कुच्छी भिन्न' त्ति राहोरंशस्य मध्येन चन्द्रो गत इति वाच्यं, चन्द्रेण राहोः कुक्षिर्भिन्न इति व्यपदिशन्तीति, 'पच्चोसक्कइ' त्ति 'प्रत्यवसर्प्पति' व्यावर्त्तते 'वंते' त्ति 'वान्तः' परित्यक्तः, 'सपक्खिं सपडिदिसं' ति सपक्षं-समानदिग् यथा भवति सप्रतिदिक्-समानविदिक् च यथा भवतीत्येवं चन्द्रलेश्यां 'आवृत्य' अवष्टभ्य तिष्ठतीत्येवं योगः, अत आवरणमात्रमेवेदं वैस्रसिकं चन्द्र राहुणा ग्रसनं न तु कार्मणमिति॥

अथ राहोर्भेदमाह-

'कइविहे ण' मित्यादि, यश्चन्द्रस्य सदैव संनिहितः संचरति स ध्रुवराहुः, आह च-

किण्हं राहुविमाणं निच्चं चंदेण होइ अविरहियं।
चउरंगुलमप्पत्तं हेट्ठा चंदस्स तं चरइ॥१॥' इति

(कृष्णं राहुविमानं चन्द्रेणाविरहितं (भवति) चतुरङ्गुलाप्राप्तं नित्यं चन्द्रास्याधस्तात्तच्चरति॥१॥)

यस्तु पर्व्वणि-पौर्णमास्यामावास्ययोश्चन्द्रादित्ययोरुपरागं करोति स पर्वराहुरिति। 'तत्थ णं जे से ध्रुवराहू' इत्यादि 'पाडिवए' त्ति प्रतिपद आरभ्येति शेषः पञ्चदशभागेन स्वकीयेन करणभूतेन पञ्चदशभागं 'चंदस्स लेस्सं' ति विभक्तिव्यत्ययाच्चन्द्रस्य लेश्यायाः चन्द्रबिम्बसम्बन्धिनमित्यर्थः आवृण्वन् आवृण्वन् प्रत्यहं तिष्ठति, 'पढमाए' त्ति प्रथमतिथौ, 'पन्नरसेसु' त्ति पञ्चदशसु दिनेषु अमावास्यायामित्यर्थः 'पन्नरसमं भागं' 'आवरित्ताणं चिट्ठइ' त्ति वाक्यशेषः, एवं च यद्भवति तदाह-'चरिमे' त्यादि, चरमसमये पञ्चदशभागोपेतस्य कृष्ण पक्षस्यान्तिमे काले कालविशेषे वा चन्द्रो रक्तो भवति-राहुणोपरक्तो भवति सर्वथाऽप्याच्छादित इत्यर्थः, अवशेषे समये प्रतिपदादिकाले चन्द्रो रक्तो वा विरक्तो वा भवति, अंशेन राहुणोपरक्तोऽशान्तरेण चानुपरक्तः आच्छादितानाच्छादित इत्यर्थः। 'तमेव' त्ति तमेव चन्द्रलेश्यापञ्चदशभागं शुक्लपक्षस्य प्रतिपदादिष्विति गम्यते 'उपदर्शयन् २' पञ्चदशभागेन स्वयमपसरणतः प्रकटयन् प्रकटयंस्तिष्ठति, 'चरिमसमये' त्ति पौर्णमास्यां चन्द्रो विरक्तो भवति सर्वथैव शुक्लीभवतीत्यर्थः सर्वथाऽनाच्छादितत्वादिति, इह चायं भावार्थः-षोडशभागीकृतस्य चन्द्रस्य षोडशो भागोऽवस्थित एवास्ते, ये चान्ये भागास्तान् राहुः प्रतितिथ्येकैकं भागं कृष्णपक्षे आवृणोति शुक्ले तु विमुञ्चतीति, उक्तञ्च ज्योतिष्करण्डके-

'सोलसभागे काऊण उडुवई हायएत्थ पन्नरसं।
तत्तियमेत्ते भागे पुणोवि परिवड्ढई जोण्हा॥१॥'

(षोडश भागान् कृत्वोडुपतिर्हापयत्यत्र पञ्चदश।
तावन्मात्रान् भागान् पुनरपि वर्द्धयति ज्योत्स्नायाः॥१॥)

इति, इह तु षोडशभागकल्पना न कृता व्यवहारिणां षोडशभागस्यावस्थितस्यानुपलक्षणादिति सम्भावयाम इति, ननु चन्द्रविमानस्य पञ्चैकषष्टिभागन्यूनयोजनप्रमाणत्वाद् राहुविमानस्य च ग्रहविमानत्वेनार्द्धयोजनप्रमाणत्वात्कथं पञ्चदशे दिने चन्द्रविमानस्य महत्त्वेनेतरस्य च लघुत्वेन सर्वावरणं स्यात्? इति, अत्रोच्यते, यदिदं ग्रहविमानानामर्द्धयोजनमिति प्रमाणं तत्प्रायिकं, ततश्च राहोर्ग्रहस्योक्ताधिकप्रमाणमपि विमानं संभाव्यते, अन्ये पुनराहुः-लघीयसोऽपि राहुविमानस्य महता तमिस्ररश्मिजालेन तदाव्रियत इति, ननु कतिपयान् दिवसान् यावद् ध्रुवराहुविमानं वृत्तमुपलभ्यते ग्रहण इव कतिपयांश्च न तथेति किमत्र कारणम्?, अत्रोच्यते, येषु दिवसेष्वत्यर्थं तमसाऽभिभूयते शशी तेषु तद्विमानं वृत्तमाभाति येषु पुनर्नाभिभूयतेऽसौ विशुद्ध्यमानत्वात् तेषु न वृत्तमाभाति, तथा चोक्तम्-

'वट्टच्छेओ कइवइदिवसे ध्रुवराहुणो विमाणस्स।
दीसइ परं न दीसइ जह गहणे पव्वराहुस्स॥१॥'

आचार्य आह-

'अच्चत्थं नहि तमसाऽभिभूयते जं ससी विसुज्झंतो।
तेण न वट्टच्छेओ गहणे उ तमो तमोबहुलो॥१॥' इति।

(कतिपयदिवसेषु ध्रुवराहोर्विमानस्य वृत्तभागो दृश्यते यथा ग्रहणे पर्वराहोः कतिपयेषु च न तथा दृश्यते॥१॥ यद्विशुद्ध्यमानः शशी तमसाऽत्यर्थं नैवाभिभूयतेऽतो न वृत्तभागः (उपलभ्यते) ग्रहणे तमस्तमोबहुलः पर्वराहुः॥२॥)

'तत्थ णं जे से पव्वे' त्यादि, 'बायालीसाए मासाणं' सार्द्धस्य वर्षत्रयस्योपरि चन्द्रस्य लेश्यामावृत्य तिष्ठतीति गम्यं, सूरस्याप्येवं नवरमुत्कृष्टतयाऽष्टचत्वारिंशता संवत्सराणामिति॥

अथ चन्द्रस्य 'ससि' त्ति यदभिधानं तस्यान्वर्थाभिधानायाह-

१२/१२५. 'से केण' मित्यादि, 'मियंके' त्ति मृगचिह्नत्वात् मृगाङ्के विमानेऽधिकरणभूते 'सोमे' त्ति 'सौम्यः' अरौद्राकारो नीरोगो वा 'कंते' त्ति कान्तियोगात् 'सुभए' त्ति सुभगः-सौभाग्ययुक्तत्वाद्बल्लभो जनस्य 'पियदंसणे' त्ति प्रेमकारिदर्शनः, कस्मादेवम्? अत आह-सुरूपः 'से तेण' मित्यादि अथ तेन कारणेनोच्यते 'ससी' ति सह श्रिया वर्त्तत इति सश्रीः तदीयदेवादीनां स्वस्य च कान्त्यादियुक्तत्वादिति, प्राकृतभाषापेक्षया च ससीति सिद्धम्॥

अथादित्यशब्दस्यान्वर्थाभिधानायाह-

१२/१२६. 'से केण' मित्यादि, 'सूराईय' त्ति सूरः आदिः-प्रथमो येषां

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ते सूरादिकाः, के? इत्याह-'समयाइ व' त्ति समयाः-अहोरात्रादिकालभेदानां निर्विभागा अंशाः, तथाहि-सूर्योदयमवधिं कृत्वाऽहोरात्रारम्भकः समयो गण्यते आवलिका मुहूर्तादयश्चेति 'से तेण' मित्यादि अथ तेनार्थेन सूर आदित्य इत्युच्यते, आदौ अहोरात्रसमयादीनां भव आदित्य इति व्युत्पत्तेः, त्यप्रत्ययश्चेहार्षत्वादिति॥

अथ तयोरेवाग्रमहिष्यादिदर्शनायाह-

१२/१२७,१२८. 'चंदस्से' त्यादि,

'पढमजोव्वणुट्ठाणबलत्थे' त्ति 'प्रथमयौवनोत्थाने' प्रथमयौवनोद्भमे यद्बलं-प्राणस्तत्र यस्तिष्ठति स तथा 'अचिरवत्तविवाहकज्जे' अचिरवृत्तविवाहकार्यः 'वन्नओ महाबले' त्ति महाबलोद्देशके वासगृहवर्णको दृश्य इत्यर्थः 'अणुरत्ताए' त्ति अनुरागवत्या 'अविरत्ताए' त्ति विप्रियकरणेऽप्यविरक्तया 'मणाणुकूलाए' त्ति पतिमनसोऽनुकूलवृत्तिकया 'विउसमणकालसमयंसि' त्ति व्यवशमनं-पुंवेदविकारोपशमस्तस्य यः कालसमयः स तथा तत्र रतावसान इत्यर्थः, इति भगवता पृष्टो गौतम आह-'ओरालं समणाउसो' त्ति, 'तस्स णं गोयमा! पुरिसस्स कामभोगेहिंतो' इहाग्रेतनः 'एत्तो' त्ति शब्दो योज्यते ततश्चैतेभ्य उक्तस्वरूपेभ्यो व्यन्तराणां देवानामनन्तगुणविशिष्टतया चैव कामभोगा भवन्तीति, क्वचित्तु एत्तोशब्दो नाभिधीयते एवेति॥

द्वादशशते षष्ठः ॥ १२-६ ॥

सप्तम उद्देशकः

अनन्तरोद्देशके चन्द्रादीनामतिशयसौख्यमुक्तं, ते च लोकस्यांशे भवन्तीति लोकांशे जीवस्य जन्ममरणवक्तव्यताप्ररूपणार्थः सप्तमोद्देशक उच्यते, तस्य चेदमादिसूत्रम्-

१२/१३०. 'तेण' मित्यादि, 'परमाणुपोग्गलमेत्तेवि' त्ति इहापि सम्भावनायां 'अयासयस्स' त्ति षष्ठ्याश्चतुर्थ्यर्थत्वाद् अजाशताय 'अयावयं' ति अजाव्रजम् अजावाटकमित्यर्थः उक्कोसेणं अयासहस्सं पक्खिवेज्ज' त्ति यदिहाजाशतप्रायोग्ये वाटके उत्कर्षेणाजासहस्रप्रक्षेपणमभिहितं तत्तासामतिसङ्कीर्णतयाऽवस्थानख्यापनार्थमिति, 'पउरगोयराओ पउरपाणीयाओ' त्ति प्रचुरचरणभूमयः प्रचुरपानीयाश्च, अनेन च तासां प्रचुरमूत्रपुरीषसम्भवो बुभुक्षापिपासाविरहेण सुस्थतया चिरंजीवित्वं चोक्तं 'नहेहि व' त्ति नखाः-खुराग्रभागास्तैः 'नो चेव णं एयंसि एमहालयंसि लोगंसि' इत्यस्य 'अत्थि केइ पमाणुपोग्गलमेत्तेवि पएसे' इत्यादिना पूर्वोक्ताभिलापेन सम्बन्धः, महत्त्वाल्लोकस्य, कथमिदमिति चेदत आह-'लोगस्से' त्यादि क्षयिणो ह्येवं न संभवतीत्यत उक्तं लोकस्य शाश्वतभावं प्रतीत्येति योगः, शाश्वतत्वेऽपि लोकस्य संसारस्य सादित्वे नैवं स्यादित्यनादित्वं तस्योक्तं, नानाजीवापेक्षया संसारस्यानादित्वेऽपि विवक्षितजीवस्यानित्यत्वे नोक्तोऽर्थः स्यादतो जीवस्य नित्यत्वमुक्तं, नित्यत्वेऽपि जीवस्य कर्माल्पत्वे तथाविधसंसरणाभावान्नोक्तं वस्तु स्यादतः कर्म्मबाहुल्यमुक्तं, कर्म्मबाहुल्येऽपि जन्मादेरल्पत्वे नोक्तोऽर्थः स्यादिति जन्मादिबाहुल्य-मुक्तमिति॥

एतदेव प्रपञ्चयन्नाह-

१२/१३३-१५२. 'कइ णं' मित्यादि, नरगत्ताए' त्ति नरकावासपृथिवीकायिकतयेत्यर्थः 'असइं' ति असकृद्- अनेकशः 'अदुव' त्ति अथवा 'अणंतखुत्तो' त्ति अनन्तकृत्वः-अनन्तवारान् 'असंखेज्जेसु पुढविकाइयावाससयसहस्सेसु' त्ति इहासङ्ख्यातेषु पृथिवीकायिकावासेषु एतावतैव सिद्धेर्यच्छतसहस्रग्रहणं तत्तेषामतिबहुत्वख्यापनार्थं, नवरं 'तेइंदिएसु' इत्यादि त्रीन्द्रियादिसूत्रेषु द्वीन्द्रियसूत्रात् त्रीन्द्रियचतुरिन्द्रियेत्यादिनैव विशेष इत्यर्थः 'नो चेव णं देवीत्ताए' त्ति ईशानान्तेष्वेव देवस्थानेषु देव्य उत्पद्यन्ते सनत्कुमारादिषु पुनर्नेतिकृत्वा 'नो चेव णं देवीत्ताए' इत्युक्तं 'नो चेव णं देवत्ताए देवीत्ताए व' त्ति अनुत्तरविमानेष्वनन्तकृत्वो देवा नोत्पद्यन्ते देव्यश्च सर्वथैवेति 'नो चेव ण' मित्याद्युक्तमिति, 'अरित्ताए' त्ति सामान्यतः शत्रुभावेन 'वेरियत्ताए' ति वैरिकः-शत्रुभावानुबन्धयुक्तस्तत्तया 'घायगत्ताए' त्ति मारकतया 'वहगत्ताए' त्ति व्यधकतया ताडकतयेत्यर्थः 'पडिणीयत्ताए' त्ति प्रत्यनीकतया-कार्योपघातकतया 'पच्चामित्तत्ताए' त्ति अमित्रसहायतया 'दासत्ताए' त्ति गृहदासीपुत्रतया 'पेसत्ताए' त्ति प्रेष्यतया-आदेश्यतया 'भयगत्ताए' त्ति भृतकतया दुष्कालादौ पोषिततया 'भाइल्लगत्ताए' त्ति कृष्यादिलाभस्य भागग्राहकत्वेन 'भोगपुरिसत्ताए' त्ति अन्यैरुपार्जितार्थानां भोगकारिनरतया 'सीसत्ताए' त्ति शिक्षणीयतया 'वेसत्ताए' त्ति द्वेष्यतयेति॥

द्वादशशते सप्तमः ॥१२-७॥

अष्टम उद्देशकः

सप्तमे जीवानामुत्पत्तिश्चिन्तिता, अष्टमेऽपि सैव भङ्ग्यन्तरेण चिन्त्यते, इत्येवंसम्बद्धस्यास्येदमादिसूत्रम्-

१२/१५४. 'तेण' मित्यादि, 'बिसरीरेसु' त्ति द्वे शरीरे येषां ते द्विशरीरास्तेषु, ये हि नागशरीरं त्यक्त्वा मनुष्यशरीरमवाप्य सेत्स्यन्ति ते द्विशरीरा इति, 'नागेसु' त्ति सर्पेषु हस्तिषु वा 'तत्थ' त्ति नागजन्मनि यत्र वा क्षेत्रे जातः।

१२/१५५. 'अच्चिए' त्यादि, इहार्चितादिपदानां पञ्चानां कर्म्मधारयः तत्र चार्चितश्चन्दनादिना वन्दितः स्तुत्या पूजितः पुष्पादिना सत्कारितो-वस्त्रादिना सन्मानितः प्रतिपत्तिविशेषेण 'दिव्वे' त्ति प्रधानः 'सच्चे' त्ति स्वप्नादिप्रकारेण तदुपदिष्टस्यावितथत्वात् 'सच्चोवाए' त्ति सत्यावपातः सफलसेव इत्यर्थः, कुत एतत्? इत्याह-'सन्निहियपाडिहेरे' त्ति सन्निहितं-अदूरवर्ति प्रातिहार्यपूर्वसङ्गतिकादिदेवताकृतं प्रतिहारकर्म यस्य स तथा।

१२/१५७,१५८. 'मणीसु' त्ति पृथिवीकायविकारेषु 'लाउल्लोइयमहिए' त्ति 'लाइयं' ति छगणादिना भूमिकायाः संमृष्टीकरणं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'उल्लोइयं' त्ति सेटिकादिना कुड्यानां धवलनं एतेनैव द्वयेन महितो यः स तथा, एतच्च विशेषणं वृक्षस्य पीठापेक्षया, विशिष्टवृक्षा हि बद्धपीठा भवन्तीति॥

१२/१५९. 'गोलंगूलवसभे' त्ति गोलाङ्गूलानां–वानराणां मध्ये महान् स एव वा विदग्धो विदग्धपर्यायत्वाद्वृषभशब्दस्य, एवं कुर्कुटवृषभोऽपि, एवं मण्डूकवृषभोऽपि, 'निस्सील' त्ति समाधानरहिताः 'निव्वय' त्ति अणुव्रतरहिताः 'निग्गुण' त्ति गुणव्रतैः क्षमादिभिर्वा रहिताः 'नेरइयत्ताए उववज्जेज्जा' इति प्रश्नः, इह च 'उववज्जेज्जा इत्येतदुत्तरं, तस्य चासम्भवमाशङ्कमानस्तत्परिहारमाह–'समणे' इत्यादि, असम्भवश्चैवं–यत्र समये गोलाङ्गूलादयो न तत्र समये नारकास्ते अतः कथं ते नारकतयोत्पद्यन्ते इति वक्तव्यं स्याद्?, अत्रोच्यते–श्रमणो भगवान् महावीरो न तु जमाल्यादिः एवं व्याकरोति–यदुत उत्पद्यमानमुत्पन्नमिति वक्तव्यं स्यात्, क्रियाकालनिष्ठाकालयोरभेदाद्, अतस्ते गोलाङ्गूलप्रभृतयो नारकतयोत्पत्तुकामा नारका एवेतिकृत्वा सुष्ठूच्यते 'नेरइयत्ताए उववज्जेज्ज' त्ति, 'उस्सप्पिणिउद्देसए' त्ति सप्तमशतस्य षष्ठ इति॥

द्वादशशतेऽष्टमः॥१२-८॥

नवम उद्देशकः

अष्टमोद्देशके देवस्य नागादिषूत्पत्तिरुक्ता नवमे तु देवा एव प्ररूप्यन्ते। इत्येवंसम्बद्धस्यास्येदमादिसूत्रम्–

१२/१६३. 'कइविहा ण' मित्यादि, दीव्यन्ति–क्रीडां कुर्वन्ति दीव्यन्ते वा–स्तूयन्ते वाऽऽराध्यतयेति देवाः 'भवियदव्वदेव' त्ति द्रव्यभूता देवा द्रव्यदेवाः, द्रव्यता चाप्राधान्याद्भूतभावित्वाद्भाविभावत्वाद्वा, तत्राप्राधान्याद्देवगुणशून्या देवा द्रव्यदेवा यथा साध्वाभासा द्रव्यसाधवः, भूतभावपक्षे तु भूतस्य देवत्वपर्यायस्य प्रतिपन्नकारणा भावदेवत्वाच्च्युता द्रव्यदेवाः, भाविभावपक्षे तु भाविनो देवत्वपर्यायस्य योग्या देवतयोत्पत्स्यमाना द्रव्यदेवाः, तत्र भाविभावपक्षपरिग्रहार्थमाह–भव्याश्च ते द्रव्यदेवाश्चेति भव्यद्रव्यदेवाः, 'नरदेव' त्ति नराणां मध्ये देवा–आराध्याः क्रीडाकान्त्यादियुक्ता वा नराश्च ते देवाश्चेति वा नरदेवाः, 'धम्मदेव' त्ति धर्मेण–श्रुतादिना देवा धर्म्मप्रधाना वा देवा धर्मदेवाः, 'देवाइदेव' त्ति देवान् शेषानतिक्रान्ताः पारमार्थिकदेवत्वयोगाद्देवा देवातिदेवाः, 'देवाहिदेव' त्ति क्वचिद्दृश्यते तत्र च देवानामधिकाः पारमार्थिकदेवत्वयोगाद् देवा देवाधिदेवाः, 'भावदेव' त्ति भावेन–देवगत्यादिकर्मोदयजातपर्यायेण देवा भावदेवाः।

१२/१६४. 'जे भविए' इत्यादि, इह जातौ एकवचनमतो बहुवचनार्थे व्याख्येयं, ततश्च ये भव्याः–योग्याः पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिका वा मनुष्या वा देवेषूत्पत्तुं ते यस्माद्भाविदेवभावा इति गम्यं अथ 'तेनार्थेन' तेन कारणेन हे गौतम! तान् प्रत्येवमुच्यते–भव्यद्रव्यदेवा इति।

१२/१६५.'जे इमे' इत्यादि, 'चाउरंतचक्कवट्टि' त्ति चतुरन्ताया भरतादिपृथिव्या एते स्वामिन इति चातुरन्ताः चक्रेण वर्त्तनशीलत्वाच्चक्रवर्त्तिनस्ततः कर्म्मधारयः, चतुरन्तग्रहणेन च बासुदेवादीनां व्युदासः, ते यस्मादिति वाक्यशेषः 'उप्पन्नसमत्तचक्करयणप्पहाण' त्ति आर्षत्वान्निर्देशस्योत्पन्नं समस्तरत्नप्रधानं चक्रं येषां ते तथा 'सागरवरमेहलाहिवइणो' त्ति सागर एव वरा मेखला–काञ्ची यस्याः सा सागरवरमेखला–पृथ्वी तस्या अधिपतयो ये ते तथा, सागरमेखलान्तपृथिव्यधिपतय इति भावः, 'सेव तेणट्ठेणं' ति अथ 'तेनार्थेन' तेन कारणेन गौतम! तान् प्रत्येवमुच्यते–नरदेवा इति।

१२/१६६. 'जे इमे' इत्यादि, ये इमेऽनगारा भगवन्तस्ते यस्मादिति वाक्यशेषः ईर्यासमिता इत्यादि 'से तेणट्ठेणं' ति अथ तेनार्थेन गौतम! तान् प्रत्येवमुच्यते धर्मदेवा इति।

१२/१६७. 'जे इमे' इत्यादि, ये इमेऽर्हन्तो भगवन्तस्ते यस्मादुत्पन्नज्ञानदर्शनधरा इत्यादि 'से तेणट्ठेणं' ति अथ तेनार्थेन तान् प्रति गौतम एवमुच्यते–देवातिदेवा इति।

१२/१६८. 'जे इमे' इत्यादि, ये इमे भवनपतयस्ते यस्माद्देवगतिनामगोत्रे कर्मणी वेदयन्ति अनेनार्थेन तान् प्रत्येवमुच्यते–भावदेवा इति।

१२/१६९-१७७. एवं देवान् प्ररूप्य तेषामेवोत्पादं प्ररूपयन्नाह–'भवियदव्वदेवा णं भंते!' इत्यादि, 'भेदो' त्ति 'जइ नेरइएहिंतो उववज्जंति किं रयणप्पभापुढविनेरइएहिंतो' इत्यादि भेदो वाच्यः, जहा वक्कंतीए' त्ति यथा प्रज्ञापनाषष्ठपदे, नवरमित्यादि, 'असंखेज्जवासाउय' त्ति असङ्ख्यातवर्षायुष्काः कर्म्मभूमिजाः पञ्चेन्द्रियतिर्यग्मनुष्या असङ्ख्यातवर्षायुषामकर्म्मभूमिजादीनां साक्षादेव गृहीतत्वात् एतेभ्यश्चोद्वृत्ता भव्यद्रव्यदेवा न भवन्ति, भावदेवेष्वेव तेषामुत्पादात्, सर्वार्थसिद्धिकास्तु भव्यद्रव्यसिद्धा एव भवन्तीत्यत एतेभ्योऽन्ये सर्वे भव्यद्रव्यदेवतयोत्पादनीया इति,

धर्म्मदेवसूत्रे 'नवर' मित्यादि, 'तम' त्ति षष्ठपृथिवी तत उद्वृत्तानां चारित्रं नास्ति, तथाऽधःसप्तम्यास्तेजसो वायोरसङ्ख्येयवर्षायुष्ककर्मभूमिजेभ्योऽकर्मभूमिजेभ्योऽन्तरद्वीपजेभ्यश्चोद्वृत्तानां मानुषत्वाभावान्न चारित्रं, ततश्च न धर्म्मदेवत्वमिति।

देवाधिदेवसूत्रे 'तिसु पुढवीसु उववज्जंति' त्ति तिसृभ्यः पृथिवीभ्य उद्वृत्ता देवातिदेवा उत्पद्यन्ते 'सेसाओ खोडेयव्वाओ' त्ति शेषाः पृथिव्यो निषेधयितव्या इत्यर्थः ताभ्य उद्वृत्तानां देवातिदेवत्वस्याभावादिति।

'भावदेवा णं' मित्यादि, इह च बहुतरस्थानेभ्य उद्वृत्ता भवनवासितयोत्पद्यन्ते असञ्ज्ञिनामपि तेषूत्पादाद् अत उक्तं 'जहा वक्कंतीए भवणवासीणं उववाओ' इत्यादि॥

अथ तेषामेव स्थितिं प्ररूपयन्नाह–

१२/१७८. 'भवियदव्वदेवाण' मित्यादि, 'जहन्नेणं' अंतोमुहुत्तं' ति अन्तर्मुहूर्त्तायुषः पञ्चेन्द्रियतिरश्चो देवेषूत्पादाद्भव्यद्रव्यदेवस्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जघन्याऽन्तर्मुहूर्त्तस्थितिः, 'उक्कोसेणं तिन्नि पलिओवमाइं' ति उत्तरकुर्वादिमनुजादीनां देवेष्वेवोत्पादात् ते च भव्यद्रव्यदेवाः तेषां चोत्कर्षतो यथोक्ता स्थितिरिति।

१२/१७९. 'सत्त वाससयाइं' ति यथा ब्रह्मदत्तस्य 'चउरासीपुव्वसयसहस्साइं' ति यथा भरतस्य।

१२/१८०. धर्मदेवानां 'जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं' ति योऽन्तर्मुहुर्त्तावशेषायुश्चारित्रं प्रतिपद्यते तदपेक्षमिदं, 'उक्कोसेणं देसूणा पुव्वकोडी' ति तु यो देशोनपूर्वकोट्यायुश्चारित्रं प्रतिपद्यते तदपेक्षमिति, ऊनता च पूर्वकोट्या अष्टाभिर्वर्षैः अष्टवर्षस्यैव प्रव्रज्यार्हत्वात्, यच्च षड्वर्षस्त्रिवर्षो वा प्रव्रजितोऽतिमुक्तको वैरस्वामी वा तत्कादाचित्कमिति न सूत्रावतारीति।

१२/१८१. देवातिदेवानां 'जहन्नेणं बावत्तरिं वासाइं' ति श्रीमन्महावीरस्येव 'उक्कोसेणं चउरासीइ पुव्वसयसहस्साइं' ति ऋषभस्वामिनो यथा।

१२/१८२. भावदेवानां 'जहन्नेणं दस वाससहस्साइं' ति यथा व्यन्तराणां 'उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं' ति यथा सर्वार्थसिद्धदेवानां॥

१२/१८३. अथ तेषामेव विकुर्वणां प्ररूपयन्नाह-'भवियव्वदव्वदेवा ण' मित्यादि 'एगत्तं पभू विउव्वित्तए' त्ति भव्यद्रव्यदेवो मनुष्यः पञ्चेन्द्रियतिर्यग्वा वैक्रियलब्धिसम्पन्नः 'एकत्वम्' एकरूपं 'प्रभुः' समर्थो विकुर्वयितुं 'पुहुत्तं' ति नानारूपाणि।

१२/१८४. देवातिदेवास्तु सर्वथा औत्सुक्यवर्जितत्वान्न विकुर्वते शक्तिसद्भावेऽपीत्यत उच्यते-'नो चेव ण' मित्यादि, 'संपत्तीए' त्ति वैक्रियरूपसम्पादनेन, विकुर्वणशक्तिस्तु विद्यते, तल्लब्धिमात्रस्य विद्यमानत्वात्॥

अथ तेषामेवोद्वर्त्तनां प्ररूपयन्नाह-

१२/१८५. 'भवियदव्वे' त्यादि, इह च भविकद्रव्यदेवानां भाविदेवभवस्वभावत्वान्नारकादिभवत्रयनिषेधः।

१२/१८६. नरदेवसूत्रे तु 'नेरइएसु उववज्जंति' त्ति अत्यक्तकामभोगा नरदेवा नैरयिकेषूत्पद्यन्ते शेषत्रये तु तन्निषेधः, तत्र च यद्यपि केचिच्चक्रवर्त्तिनो देवेषूत्पद्यन्ते तथाऽपि ते नरदेवत्वत्यागेन धर्मदेवत्वप्राप्ताविति न दोषः,

१२/१९०. 'जहा वक्कंतीए असुरकुमाराणां उव्वट्टणा तहा भाणियव्व' त्ति असुरकुमारा बहुषु जीवस्थानेषु गच्छन्तीतिकृत्वा तैरतिदेशः कृतः असुरादयो हीशानान्ताः पृथिव्यादिष्वपि गच्छन्तीति॥

अथ तेषामेवानुबन्धं प्ररूपयन्नाह-

१२/१९१. 'भवियदव्वदेवे ण' मित्यादि, 'भवियदव्वदेवेइ' त्ति भव्यद्रव्यदेव इत्यमुं पर्यायमत्यजन्नित्यर्थः 'जहन्नेणमंतोमुहुत्त' मित्यादि पूर्ववदिति। 'एवं जहेव ठिई सच्चेव संचिट्ठणावि' त्ति 'एवम्' अनेन न्यायेन यैव 'स्थितिः' भवस्थितिः प्राग् वर्णिता सैवैषां संस्थितिरपि तत्पर्यायानुबन्धोऽपीत्यर्थः, विशेषं त्वाह- 'नवर' मित्यादि, धर्मदेवस्य जघन्येनैकं समयं स्थितिः अशुभभावं गत्वा ततो निवृत्तस्य शुभभावप्रतिपत्तिसमयानन्तरमेव मरणादिति॥

अथैतेषामेवान्तरं प्ररूपयन्नाह-

१२/१९२. 'भवियदव्वदेवस्स णं भंते!' इत्यादि, 'जहन्नेणं दसवाससहस्साइं अंतोमुहुत्तमब्भहियाइं' ति भव्यद्रव्यदेवस्यान्तरं जघन्येन दशवर्षसहस्राण्यन्तर्मुहूर्त्ताभ्यधिकानि, कथं?, भव्यद्रव्यदेवो भूत्वा दशवर्षसहस्रस्थितिषु व्यन्तरादिषूत्पद्य च्युत्वा शुभपृथिव्यादौ गत्वाऽन्तर्मुहूर्तं स्थित्वा पुनर्भव्यद्रव्यदेव एवोपजायत इत्येवं, एतच्च टीकामुपजीव्य व्याख्यातं, इह कश्चिदाह-ननु देवत्वाच्च्युतस्यानन्तरमेव भव्यद्रव्यदेवतयोत्पत्तिसम्भवाद्दशवर्षसहस्राण्येव जघन्यतस्तस्यान्तरं भवत्यतः कथमन्तर्मुहूर्त्ताभ्यधिकानि तान्युक्तानि इति, अत्रोच्यते-सर्वजघन्यायुर्देवश्च्युतः सन् शुभपृथिव्यादिषूत्पद्य भव्यद्रव्यदेवेषूत्पद्यत इति टीकाकारमतमवसीयते, तथा च यथोक्तमन्तरं भवतीति, अन्ये पुनराहुः-इह बद्धायुरेव भव्यद्रव्यदेवोऽभिप्रेतस्तेन जघन्यस्थितिकाद्देवत्वाच्च्युत्वाऽन्तर्मुहूर्तस्थितिकभव्यद्रव्यदेवत्वेनोत्पन्नस्यान्तर्मुहूर्तोपरि देवायुषो बन्धनाद् यथोक्तमन्तरं भवतीति, अथवा भव्यद्रव्यदेवस्य जन्ममनोर्मरणयोर्वाऽन्तरस्य ग्रहणाद् यथोक्तमन्तरमिति।

१२/१९३. 'नरदेवाण' मित्यादि, 'जहन्नेणं साइरेगं सागरोवमं' ति, कथम्?, अपरित्यक्तसङ्गाश्चक्रवर्त्तिनो नरकपृथिवीषूत्पद्यन्ते, तासु च यथास्वमुत्कृष्टस्थितयो भवन्ति, ततश्च नरदेवो मृतः प्रथमपृथिव्यामुत्पन्नस्तत्र चोत्कृष्टां स्थितिं सागरोपमप्रमाणानुभूय नरदेवो जातः, इत्येवं सागरोपमं, सातिरेकत्वं च नरदेवभवे चक्ररत्नोत्पत्तेरर्वाचीनकालेन द्रष्टव्यं, उत्कृष्टतस्तु देशोनं पुद्गलपरावर्त्तार्द्धं, कथं?, चक्रवर्त्तित्वं हि सम्यग्दृष्टय एव निर्वर्त्तयन्ति, तेषां च देशोनापार्द्धपुद्गलपरावर्त्त एव संसारो भवति, तदन्त्यभवे च कश्चिन्नरदेवत्वं लभत इत्येवमिति॥

१२/१९४. 'धम्मदेवस्स ण' मित्यादि, 'जहन्नेणं पलिओवमपुहत्तं' ति कथं?, चारित्रवान् कश्चित् सौधर्मे पल्योपमपृथक्त्वायुष्केषूत्पद्य ततश्च्युतो धर्मदेवत्वं लभत इत्येवमिति, यच्च मनुजत्वे उत्पन्नश्चारित्रं विनाऽऽस्ते तदधिकमपि सत् पल्योपमपृथक्त्वेऽन्तर्भावितमिति।

१२/१९६. 'भावदेवस्स ण' मित्यादि, 'जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं' ति, कथं?, भावदेवश्च्युतोऽन्तर्मुहूर्त्तमन्यत्र स्थित्वा पुनरपि भावदेवो जात इत्येवं जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तमन्तरमिति॥

अथैतेषामेवाल्पबहुत्वं प्ररूपयन्नाह-

१२/१९७. 'एएसि णं' मित्यादि, 'सव्वत्थोवा नरदेव' त्ति भरतैरवतेषु प्रत्येकं द्वादशानामेव तेषामुत्पत्तेर्विजयेषु च वासुदेवसम्भवात् सर्वेष्वेकदाऽनुत्पत्तेरिति। 'देवाइदेवा संखेज्जगुण' त्ति भरतादिषु प्रत्येकं तेषां चक्रवर्त्तिभ्यो द्विगुणतयोत्पत्तेर्विजयेषु च वासुदेवोपेतेष्वप्युत्पत्तेरिति। 'धम्मदेवा संखेज्जगुणं' त्ति साधूनामेकदाऽपि कोटीसहस्रपृथक्त्वसद्भावादिति, 'भवियदव्वदेवा असंखेज्जगुण' त्ति देशविरतादीनां देवगतिगामिनाम-सङ्ख्यातत्वात्, 'भावदेवा असंखेज्जगुण' त्ति स्वरूपेणैव तेषामतिबहुत्वादिति॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथ भावदेवविशेषाणां भवनपत्यादीनामल्पबहुत्वप्ररूपणायाह–

१२/१९८. 'एएसि ण' मित्यादि, 'जहा जीवाभिगमे तिविहे' इत्यादि, इह च 'तिविहे' त्ति त्रिविधजीवाधिकार इत्यर्थः देवपुरुषाणामल्पबहुत्वमुक्तं तथेहापि वाच्यं, तच्चैवं–'सहस्सारे कप्पे देवा असंखेज्जगुणा महासुक्के असंखेज्जगुणा लंतए असंखेज्जगुणा बंभलोए देवा असंखेज्जगुणा माहिंदे देवा असंखेज्जगुणा सणंकुमारे कप्पे देवा असंखेज्जगुणा ईसाणे देवा असंखेज्जगुणा सोहम्मे देवा संखेज्जगुणा भवणवासिदेवा असंखेज्जगुणा वाणमंतरा देवा असंखेज्जगुण' त्ति॥

द्वादशशते नवमः ॥१२-९॥

दशम उद्देशकः

नवमोद्देशके देवा उक्तास्ते चात्मन इत्यात्मस्वरूपस्य भेदतो निरूपणाय दशमोद्देकशमाह, तस्य चेदमादिसूत्रम्–

१२/२००. 'कइविहा ण' मिति, 'आय' त्ति अतति–सन्ततं गच्छति अपरापरान् स्वपरपर्यायानित्यात्मा, अथवा अतधातोर्गमनार्थत्वेन ज्ञानार्थत्वादतति–सन्ततमवगच्छति उपयोगलक्षणत्वादित्यात्मा, प्राकृतित्वाच्च सूत्रे स्त्रीलिङ्गनिर्देशः, तस्य चोपयोगलक्षणत्वात्सामान्येनैकविधत्वेऽप्युपाधिभेदादष्टधात्वं, तत्र 'दवियाय' त्ति द्रव्यं–त्रिकालानुगाम्युपसर्जनीकृतकषायादिपर्यायं तद्रूप आत्मा द्रव्यात्मा सर्वेषां जीवानां, 'कसायाय' त्ति क्रोधादिकषायविशिष्ट आत्मा कषायात्मा अक्षीणानुपशान्तकषायाणां, 'जोगाय' त्ति योगा–मनःप्रभृति-व्यापारास्तत्प्रधान आत्मा योगात्मा योगवतामेव, 'उवओगाय' त्ति उपयोगः–साकारानाकारभेदस्तत्प्रधान आत्मा उपयोगात्मा सिद्धसंसारिस्वरूपः सर्वजीवानां, अथवा विवक्षितवस्तूपयोगापेक्षयोपयोगात्मा, 'नाणाय' त्ति ज्ञानविशेषित उपसर्जनीकृतदर्शनादिरात्मा ज्ञानात्मा सम्यग्दृष्टेः, एवं दर्शनात्मादयोऽपि नवरं दर्शनात्मा सर्वजीवानां, चारित्रात्मा विरतानां, वीर्यं–उत्थानादि तदात्मा सर्वसंसारिणामिति, उक्तञ्च–

"जीवानां द्रव्यात्मा ज्ञेयः सकषायिणां कषायात्मा।
योगः सयोगिनां पुनरुपयोगः सर्वजीवानाम्॥१॥
ज्ञानं सम्यग्दृष्टेर्दर्शनमथ भवति सर्वजीवानाम्।
चारित्रं विरतानां तु सर्वसंसारिणां वीर्यम्॥२॥' इति॥

एवमष्टधाऽऽत्मानं प्ररूप्याथ यस्यात्मभेदस्य यदन्यदात्मभेदान्तरं युज्यते च न युज्यते च तस्य तद्दर्शयितुमाह–

१२/२०१. 'जस्स ण' मित्यादि, इहाष्टौ पदानि स्थाप्यन्ते, तत्र प्रथमपदं शेषैः सप्तभिः सह चिन्त्यते, तत्र यस्य जीवस्य 'द्रव्यात्मा' द्रव्यात्मत्वं जीवत्वमित्यर्थः तस्य कषायात्मा 'स्यादस्ति' कदाचिदस्ति सकषायावस्थायां 'स्यान्नास्ति' कदाचिन्नास्ति क्षीणोपशान्तकषायावस्थायां, यस्य पुनः कषायात्माऽस्ति तस्य द्रव्यात्मा द्रव्यात्मत्वं–जीवत्वं नियमादस्ति, जीवत्वं विना कषायाणामभावादिति।

१२/२०२. तथा यस्य द्रव्यात्मा तस्य योगात्माऽस्ति, योगवतामिव, नास्ति चायोगिसिद्धानामिव, तथा यस्य योगात्मा तस्य द्रव्यात्मा नियमादस्ति, जीवत्वं विना योगानामभावात्।

एतदेव पूर्वसूत्रोपमानेन दर्शयन्नाह–

१२/२०३. एवं जहा दवियाये' त्यादि। तथा यस्य जीवस्य द्रव्यात्मा तस्य नियमादुपयोगात्मा, यस्याप्युपयोगात्मा तस्य नियमाद्द्रव्यात्मा, एतयोः परस्परेणाविनाभूतत्वाद् यथा सिद्धस्य, तदन्यस्य च द्रव्यात्माऽस्त्युपयोगात्मा चोपयोगलक्षणत्वाज्जीवानां, एतदेवाह–'जस्स दवियाये' त्यादि। तथा 'जस्स दवियाया तस्स नाणीया भयणाए जस्स पुण नाणाया तस्स दवियाया नियमं अत्थि' त्ति यस्य जीवस्य द्रव्यात्मा तस्य ज्ञानात्मा स्यादस्ति यथा सम्यग्दृष्टीनां स्यान्नास्ति यथा मिथ्यादृष्टीनामित्येवं भजना, यस्य तु ज्ञानात्मा तस्य द्रव्यात्मा नियमादस्ति, यथा सिद्धस्येति। 'जस्स दवियाया तस्स दंसणाया नियमं अत्थि' त्ति यथा सिद्धस्य केवलदर्शनं 'जस्सवि दंसणाया तस्स दवियाया नियमं अत्थि' त्ति यथा चक्षुर्दर्शनादिदर्शनवतां जीवत्वमिति, तथा 'जस्स दवियाया तस्स चरित्ताया भयणाए' त्ति यतः सिद्धस्याविरतस्य वा द्रव्यात्मत्वे सत्यपि चारित्रात्मा नास्ति विरतानां चास्तीति भजनेति, 'जस्स पुण चरित्ताया तस्स दवियाया नियमं अत्थि' त्ति चारित्रिणां जीवत्वाव्यभिचारित्वादिति, 'एवं वीरियातेवि समं' ति यथा द्रव्यात्मनश्चारित्रात्मना सह भजनोक्ता नियमश्चैवं वीर्यात्मनाऽपि सहेति, तथाहि–यस्य द्रव्यात्मा तस्य वीर्यात्मा नास्ति, यथा सकरणवीर्यापेक्षया सिद्धस्य तदन्यस्य त्वस्तीति भजना, वीर्यात्मनस्तु द्रव्यात्माऽस्त्येव यथा संसारिणामिति ७॥

अथ कषायात्मना सहान्यानि षट् पदानि चिन्त्यन्ते–

१२/२०४. 'जस्स ण' मित्यादि, यस्य कषायात्मा तस्य योगात्माऽस्त्येव, नहि सकषायोऽयोगी भवति, यस्य तु योगात्मा तस्य कषायात्मा स्याद्वा न वा, सयोगानां सकषायाणामकषायाणां च भावादिति, 'एवं उवओगाया, एवी' त्यादि, अयमर्थः–यस्य कषायात्मा तस्योपयोगात्माऽवश्यं भवति, उपयोगरहितस्य कषायाणामभावात्, यस्य पुनरुपयोगात्मा तस्य कषायात्मा भजनया, उपयोगात्मतायां सत्यामपि कषायिणामेव कषायात्मा भवति निष्कषायाणां तु नासाविति भजनेति, तथा 'कसायाया य नाणाया य परोप्परं–दोवि भइयव्वाओ' त्ति, कथम्?, यस्य कषायात्मा तस्य

१. यद्यपि प्रशमरतौ 'जीवाजीवानां द्रव्यात्मा सकषायिणां कषायात्मेति पाठः व्याख्याद्वये च तथैव विवरणं तथैवोल्लेखोऽन्यत्रापि, तथापि अभियुक्तैरेष पाठोऽभिमतोऽत्र, न चाशङ्क्यं लेखकदूषणं, यतः प्रागत्रैव प्रतिपादने सर्वजीवानां द्रव्यात्मेति व्याख्यान्तमन्यथा व्याख्यास्यन् द्रव्यात्मा जीवाजीवानामिति, न चोच्यते सूत्रकृद्भिः कषायादिभिः सहवृत्तिता नियमः। जीवप्रकरणमनुसरद्भिस्त्यक्ता वाऽजीवा अभियुक्तैः स्युः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ज्ञानात्मा स्यादस्ति स्यान्नास्ति, यतः कषायिणः सम्यग्दृष्टेर्ज्ञानात्माऽस्ति मिथ्यादृष्टेस्तु तस्य नास्त्यसाविति भजना, तथा यस्य ज्ञानात्मास्ति तस्य कषायात्मा स्यादस्ति स्यान्नास्ति, ज्ञानिनां कषायभावात् तदभावाच्चेति भजनेति, 'जहा कसायाया उवओगाया य तहा कसायाया य दंसणाया य' त्ति अतिदेशः, तस्माच्चेदं लब्धं-'जस्स कसायाया तस्स दंसणाया नियमं अत्थि' दर्शनरहितस्य घटादेः कषायात्मनोऽभावात् 'जस्स पुण दंसणाया तस्स कसायाया सिय अत्थि सिय नत्थि' दर्शनवतां कषायसद्भावात्तदभावाच्चेति, दृष्टान्तार्थस्तु प्राक् प्रसिद्ध एवेति. 'कसायाया य चरित्ताया य दोवि परोप्परं भइयव्वाओ' त्ति भजना चैवं-यस्य कषायात्मा तस्य चारित्रात्मा स्यादस्ति स्यान्नास्ति, कथं?, कषायिणां चारित्रस्य सद्भावात् प्रमत्तयतीनामिव तदभावाच्चासंयतानामिवेति, तथा यस्य चारित्रात्मा तस्य कषायात्मा स्यादस्ति स्यान्नास्ति, कथं?, सामायिकादिचारित्रिणां कषायाणां भावाद् यथाख्यातचारित्रिणां च तदभावादिति, 'जहा कसायाया य जोगाया य तहा कसायाया वीरियाया य भाणियव्वाओ' त्ति दृष्टान्तः प्राक् प्रसिद्धः, दार्ष्टान्तिकस्त्वेवं-यस्य कषायात्मा तस्य वीर्यात्मा नियमादस्ति, न हि कषायवान् वीर्यविकलोऽस्ति, यस्य पुनर्वीर्यात्मा तस्य कषायात्मा भजनया, यतो वीर्यवान् सकषायोऽपि स्याद् यथा संयतः अकषायोऽपि स्याद् यथा केवलीति ६।

अथ योगात्माऽग्रेतनपदैः पञ्चभिः सह चिन्तनीयस्तत्र च लाघवार्थमतिदिशन्नाह-'एवं जहा कसायायाए वत्तव्वया भणिया तहा जोगायाएवि उवरिमाहिं समं भाणियव्व' त्ति, सा चैवम्-यस्य योगात्मा तस्योपयोगात्मा नियमाद् यथा सयोगानां, यस्य पुनरुपयोगात्मा तस्य योगात्मा स्यादस्ति यथा सयोगानां स्यान्नास्ति यथाऽयोगिनां सिद्धानां चेति, तथा यस्य योगात्मा तस्य ज्ञानात्मा स्यादस्ति सम्यग्दृष्टीनामिव स्यान्नास्ति मिथ्यादृष्टीनामिव, यस्य ज्ञानात्मा तस्यापि योगात्मा स्यादस्ति सयोगिनामिव स्यान्नास्त्ययोगिनामिवेति, तथा यस्य योगात्मा तस्य दर्शनात्माऽस्त्येव योगिनामिव यस्य च दर्शनात्मा तस्य योगात्मा स्यादस्ति योगवतामिव स्यान्नास्त्ययोगिनामिव, तथा यस्य योगात्मा तस्य चारित्रात्मा स्यादस्ति विरतानामिव स्यान्नास्त्यविरतानामिव, यस्यापि चारित्रात्मा तस्य योगात्मा स्यादस्ति सयोगचारित्रवतामिव स्यान्नास्त्ययोगिनामिवेति।

वाचनान्तरे पुनरिदमेवं दृश्यते-'जस्स चरित्ताया तस्स जोगाया नियम' त्ति तत्र च चारित्रस्य प्रत्युपेक्षणादिव्यापाररूपस्य विवक्षितत्वात्तस्य च योगाविनाभावित्वात् यस्य चारित्रात्मा तस्य योगात्मा नियमादित्युच्यत इति, तथा यस्य योगात्मा तस्य वीर्यात्माऽस्त्येव योगसद्भावे वीर्यस्यावश्यम्भावात्, यस्य तु वीर्यात्मा तस्य योगात्मा भजनया यतो वीर्यविशेषवान् सयोग्यपि स्याद् यथा सयोगकेवल्यादिः अयोग्यपि स्याद् यथाऽयोगिकेवलीति ५॥

अथोपयोगात्मना सहान्यानि चत्वारि चिन्त्यन्ते तत्रातिदेशमाह-'जह दवियाये' त्यादि, एवं च भावना कार्या-यस्योपयोगात्मा तस्य ज्ञानात्मा स्यादस्ति यथा सम्यग्दृशां स्यान्नास्ति यथा मिथ्यादृशां, यस्य च ज्ञानात्मा तस्यावश्यमुपयोगात्मा सिद्धानामिवेति १, तथा यस्योपयोगात्मा तस्य दर्शनात्माऽस्त्येव यस्यापि दर्शनात्मा तस्योपयोगात्माऽस्त्वेव यथा सिद्धादीनामिवेति २, तथा यस्योपयोगात्मा तस्य चारित्रात्मा स्यादस्ति स्यान्नास्ति यथा संयतानामसंयतानां च, यस्य तु चारित्रात्मा तस्योपयोगात्माऽस्त्येवेति यथा संयतानां ३, तथा यस्योपयोगात्मा तस्य वीर्यात्मा स्यादस्ति संसारिणामिव स्यान्नास्ति सिद्धानामिव, यस्य पुनर्वीर्यात्मा तस्योपयोगात्माऽस्त्येव संसारिणामिवेति ४।

अथ ज्ञानात्मना सहान्यानि त्रीणि चिन्त्यन्ते-'जस्स नाणे' त्यादि, तत्र यस्य ज्ञानात्मा तस्य दर्शनात्माऽस्त्येव सम्यग्दृशामिव, यस्य च दर्शनात्मा तस्य ज्ञानात्मा स्यादस्ति यथा सम्यग्दृशां स्यान्नास्ति यथा मिथ्यादृशामत एवोक्तं 'भयणाए' त्ति १, तथा 'जस्स नाणाया तस्स चरित्ताया सिय अत्थि' त्ति संयतानामिव 'सिय नत्थि' त्ति असंयतानामिव 'जस्स पुण चरित्ताया तस्स नाणाया नियमं अत्थि' त्ति ज्ञानं विना चारित्रस्याभावादिति २, तथा 'णाणाये' त्यादि अस्यार्थः-यस्य ज्ञानात्मा तस्य वीर्यात्मा स्यादस्ति केवल्यादीनामिव स्यान्नास्ति सिद्धानामिव, यस्यापि वीर्यात्मा तस्य ज्ञानात्मा स्यादस्ति सम्यग्दृष्टेरिव स्यान्नास्ति मिथ्यादृश इवेति ३॥

अथ दर्शनात्मना सह द्वे चिन्त्येते-'जस्स दंसणाये' त्यादि, भावना चास्य-यस्य दर्शनात्मा तस्य चारित्रात्मा स्यादस्ति संयतानामिव स्यान्नास्त्यसंयतानामिव, यस्य च चारित्रात्मा तस्य दर्शनात्माऽस्त्येव साधूनामिवेति?, तथा यस्य दर्शनात्मा तस्य वीर्यात्मा स्यादस्ति संसारिणामिव स्यान्नास्ति सिद्धानामिव, यस्य च वीर्यात्मा तस्य दर्शनात्माऽस्त्वेव संसारिणामिवेति २॥

अथान्तिमपदयोर्योजना-'जस्स चरित्ते' त्यादि, यस्य चारित्रात्मा तस्य वीर्यात्माऽस्त्वेव, वीर्यं विना चारित्रस्याभावात्, यस्य पुनर्वीर्यात्मा तस्य चारित्रात्मा स्यादस्ति साधूनामिव स्यान्नास्त्यसंयतामिवेति॥

अधुनैषामेवात्मनामल्पबहुत्वमुच्यते-

१२/२०५. 'सव्वत्थोवाओ चरित्ताया ओ' त्ति चारित्रिणां सङ्ख्यातत्वात् 'णाणायाओ अणंतगुणाओ' त्ति सिद्धादीनां सम्यग्दृशां चारित्रेभ्योऽनन्तगुणत्वात् 'कसायाओ अणंतगुणाओ' त्ति सिद्धेभ्यः कषायोदयवतामनन्तगुणत्वात् 'जोगायाओ विसेसाहियाओ' त्ति अपगतकषायोदयैर्योगवद्भिरधिका इत्यर्थः

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'वीरियायाओ विसेसाहियाओ' त्ति अयोगिभिरिधिका इत्यर्थः, अयोगिनां वीर्यवत्त्वादिति, 'उवओगदवियदंसणायाओ तिण्णिवि तुल्लाओ विसेसाहियाओ' त्ति परस्परापेक्षया तुल्याः, सर्वेषां सामान्यजीवरूपत्वात्, वीर्यात्मभ्यः सकाशादुपयोगद्रव्य-दर्शनात्मानो विशेषाधिका यतो वीर्यात्मानः सिद्धाश्च मीलिता उपयोगाद्यात्मानो भवन्ति, ते च वीर्यात्मभ्यः सिद्धराशि-नाऽधिका भवन्तीति, भवन्ति चात्र गाथाः–

''[1]कोडीसहस्सपुहुत्तं जईण तो थोवियाओ चरणाया।
णाणायाऽणंतगुणा पडुच्च सिद्धे य सिद्धाओ॥१॥
होंति कसायायाओऽणंतगुणा जेण ते सरागाणं।
जोगाया भणियाओ अयोगिवज्जाण तो अहिया॥२॥
जं सेलेसिगयाणवि लद्धी विरियं तओ समहियाओ।
उवओगदवियदंसण सव्वजिया णं ततो अहिया॥३॥' इति॥

अथात्मन एव स्वरूपनिरूपणायाह–

१२/२०६. 'आया भंते! नाणे' इत्यादि, आत्मा ज्ञानं योऽयमात्माऽसौ ज्ञानं न तयोर्भेदः अथात्मनोऽन्यज्ज्ञानमिति प्रश्नः, उत्तरं तु–आत्मा स्याज्ज्ञानं सम्यक्त्वे सति मत्यादिज्ञानस्व-भावत्वात्तस्य, स्यादज्ञानं मिथ्यात्वे सति तस्य मत्यज्ञानादि-स्वभावत्वात्, ज्ञानं पुनर्नियमादात्मा आत्मधर्मत्वाज्ज्ञानस्य, न च सर्वथा धर्मो धर्मिणो भिद्यते, सर्वथा भेदे हि विप्रकृष्टगुणिनो गुणमात्रोपलब्धौ प्रतिनियतगुणिविषय एवं संशयो न स्यात्, तदन्येभ्योऽपि तस्य भेदाविशेषात्, दृश्यते च यदा कश्चिद्धरिततरुतरुणशाखा-विसरर-न्ध्रोदरान्तरतः किमपि शुक्लं पश्यति तदा किमियं पताका किमियं बलाका? इत्येवं प्रतिनियतगुणिविषयोऽसौ, नापि धर्मिणो धर्मः सर्वथैवाभिन्नः, सर्वथैवाभेदे हि संशयानुत्पत्तिरेव, गुणग्रहणत एव गुणिनोऽपि गृहीतत्वादतः कथञ्चिदभेदपक्षमाश्रित्य ज्ञानं पुनर्नियमा-दात्मेत्युच्यत इति, इह चात्मा ज्ञानं व्यभिचरति ज्ञानं त्वात्मानं न व्यभिचरति खदिरवनस्पतिवदिति सूत्रगर्भार्थ इति॥

अमुमेवार्थं दण्डके निरूपयन्नाह–

१२/२०८. 'आये' त्यादि, नारकाणां 'आत्मा' आत्मस्वरूपं ज्ञानं उतान्यन्नारकाणां ज्ञानं? तेभ्यो व्यतिरिक्तमित्यर्थः इति प्रश्नः, उत्तरं तु आत्मा नारकाणां स्याज्ज्ञानं सम्यग्दर्शनभावात् स्यादज्ञानं मिथ्यादर्शनभावात्, ज्ञानं पुनः 'से' त्ति तन्नारकसम्बन्धि आत्मा न तद्व्यतिरिक्तमित्यर्थः।

१२/२०९. 'आया भंते! पुढविक्काइयाण' मित्यादि, 'आत्मा' आत्मस्वरूपमज्ञानमुतान्यत्तत्तेषां? उत्तरं तु–आत्मा तेषामज्ञानरूपो नान्यत्तत्तेभ्य इति भावार्थः। एवं दर्शनसूत्राण्यपि, नवरं सम्यग्दृष्टिमिथ्यादृष्टयोर्दर्शनस्याविशिष्टत्वादात्मा दर्शनं दर्शनमप्यात्मैवेति वाच्यं, यत्र हि धर्मे विपर्ययो नास्ति तत्र नियम एवोपनीयते न व्यभिचारो, यथेहैव दर्शनि, यत्र तु विपर्ययोऽस्ति तत्र व्यभिचारो नियमश्च यथा ज्ञाने, आत्मा ज्ञानरूपोऽज्ञानरूपश्चेति व्यभिचारः, ज्ञानं त्वात्मैवेति नियम इति॥

आत्माधिकाराद्रत्नप्रभादिभावानात्मत्वादिभावेन चिन्तयन्नाह–

१२/२११. 'आया भंते!' इत्यादि, अतति–सततं गच्छति तांस्तान् पर्यायानित्यात्मा ततश्चात्मा–सद्रूपा रत्नप्रभा पृथिवी 'अन्न' त्ति अनात्मा असद्रूपेत्यर्थः 'सिय आया सिय नोआय' त्ति स्यात्सती स्यादसती 'सिय अवत्तव्वं' ति आत्मत्वेनानात्मत्वेन च व्यपदेष्टुमशक्यं वस्त्विति भावः, कथमवक्तव्यम्? इत्याह–आत्मेति च नोआत्मेति च वक्तुमशक्यमित्यर्थः।

१२/२१२. 'अप्पणो आइट्ठे' त्ति आत्मनः–स्वस्य रत्नप्रभाया एवं वर्णादिपर्यायैः 'आदिष्टे' आदेशे सति तैर्व्यपदिष्टा सतीत्यर्थः आत्मा भवति, स्वपर्यायापेक्षया सतीत्यर्थः, 'परस्स आइट्ठे नोआय' त्ति परस्य शर्करादिपृथिव्यन्तरस्य पर्यायैरादिष्टै–आदेशे सति तैर्व्यपदिष्टा सतीत्यर्थः नोआत्मा–अनात्मा भवति, पररूपापेक्षयाऽसतीत्यर्थः, 'तदुभयस्स आइट्ठे अवत्तव्वं' ति तयोः–स्वपरयोरुभयं तदेव वोभयं तदुभयं तस्य पर्यायैरादिष्टे–आदेशे सति तदुभयपर्यायैर्व्यपदिष्टेत्यर्थः 'अवक्तव्यम्' अवाच्यं वस्तु स्यात्, तथाहि–न ह्यसौ आत्मेति वक्तुं शक्या, परपर्यायापेक्षयाऽनात्मत्वात्तस्याः, नाप्यनात्मेति वक्तुं शक्या, स्वपर्यायापेक्षया तस्या आत्मत्वादिति, अवक्तव्यत्वं चात्मानात्मशब्दापेक्षयैव न तु सर्वथा, अवक्तव्यशब्देनैव तस्या उच्यमानत्वाद्, अनभिलाप्यभावानामपि भावपदार्थ-वस्तुप्रभृतिशब्दैरनभिलाप्यशब्देन वाऽभिलाप्यत्वादिति।

एवं परमाणुसूत्रमपि॥

१२/२१८,२१९. द्विप्रदेशिकसूत्रे षड् भङ्गाः, तत्राद्यास्त्रयः सकलस्कन्धापेक्षाः पूर्वोक्ता एव तदन्ये तु त्रयो देशापेक्षाः। तत्र च 'गोयमे' त्यत आरभ्य व्याख्यायते–'अप्पणो' त्ति स्वस्य पर्यायैः 'आदिट्ठे' त्ति आदिष्टे–आदेशे सति आदिष्ट इत्यर्थः द्विप्रदेशिकस्कन्ध आत्मा भवति १ एवं परस्य पर्यायैरादिष्टोऽनात्मा २ तदुभयस्य–द्विप्रदेशिकस्कन्ध-तदन्यस्कन्धलक्षणस्य पर्यायैरादिष्टोऽसावक्तव्यं वस्तु स्यात्, कथम्?, आत्मेति चानात्मेति चेति ३। तथा द्विप्रदेशत्वात्तस्य देश एक आदिष्टः, सद्भावप्रधानाः–सत्तानुगताः पर्यवा यस्मिन् स सद्भावपर्यवः, अथवा तृतीयाबहुवचनमिदं स्वपर्यवैरित्यर्थः, द्वितीयस्तु देश आदिष्टः असद्भावपर्यवः परपर्यायैरित्यर्थः, परपर्यवाश्च तदीयद्वितीयदेशसम्बन्धिनो वस्त्वन्तरसम्बन्धिनो वेति, ततश्चासौ द्विप्रदेशिकः स्कन्धः क्रमेणात्मा चेति नोआत्मा चेति ४, तथा तस्य देश आदिष्टः सद्भावपर्यवो

---

१. यतीनां कोटीसहस्रपृथक्त्वं ततः स्तोकाश्चरणात्मानः ज्ञाना-त्मानोऽनन्तगुणाः सिद्धाः सिद्धान् प्रतीत्य॥१॥ कषायात्मानोऽ-अनन्तगुणा भवन्ति यतस्ते सरागाणां ततो योगात्मानोऽधिका अयोगिवर्ज्या यतो भणिताः॥२॥ यच्छैलेशीगतानामपि लब्धिवीर्यं ततस्ते समधिकाः। उपयोगद्रव्यदर्शनात्मानः सर्वे जीवास्ततोऽधिकाः॥३॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देशश्चोभयपर्यवस्ततोऽसावात्मा चावक्तव्यं चेति ५, तथा तस्यैव देश आदिष्टोऽसद्भावपर्यवो देशस्तूभयपर्यवस्ततोऽसौ नोआत्मा चावक्तव्यं च स्यादिति ६, सप्तमः पुनरात्मा च नोआत्मा चावक्तव्यं चेत्येवंरूपो न भवति द्विप्रदेशिके द्व्यंशत्वादस्य त्रिप्रदेशिकादौ तु स्यादिति सप्तभङ्गी।

१२/२२०,२२१. त्रिप्रदेशिकस्कन्धे तु त्रयोदश भङ्गास्तत्र पूर्वोक्तेषु सप्तस्वाद्याः सकलादेशास्त्रयस्तथैव, तदन्येषु तु त्रिषु त्रयस्त्रय एकवचनबहुवचनभेदात्, सप्तमस्त्वेकविध एव, स्थापना चेयम्–

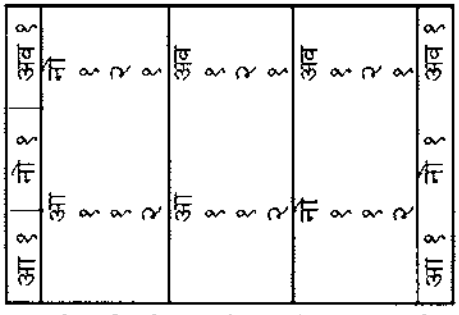

यच्चेह प्रदेशद्वयेऽप्येकवचनं क्वचित्तत्तस्य प्रदेशद्वयस्यैकप्रदेशावगाढत्वादिहेतुनैकत्वविवक्षणात्, भेदविवक्षायां च बहुवचनमिति।

१२/२२२,२२३. चतुष्प्रदेशिकेऽप्येवं नवरमेकोनविंशतिर्भङ्गाः, तत्र त्रयः सकलादेशाः तथैव शेषेषु चतुर्षु प्रत्येकं चत्वारो विकल्पाः, ते चैवं चतुर्थादिषु त्रिषु– सप्तमस्त्वेवम्–

१२/२२४,२२५. पञ्चप्रदेशिके तु द्वाविंशतिस्तत्राद्यास्त्रयस्तथैव, तदुत्तरेषु च त्रिषु प्रत्येकं चत्वारो विकल्पास्तथैव, सप्तमे तु सप्त, तत्र त्रिकसंयोगे किलाष्टौ भङ्गका भवन्ति, तेषु च सप्तैवेह ग्राह्या एकस्तु तेषु न पतत्यसम्भवात्, इदमेवाह–'तिगसंजोगे' त्यादि, तत्रैतेषां स्थापना– 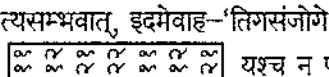 यश्च न पतति स पुनरयम् २२२ षट्प्रदेशिके त्रयोविंशतिरिति॥

द्वादशशते दशमः॥१२-१०॥

समाप्तं च द्वादशशतविवरणम्॥१२॥

गम्भीररूपस्य महोदधेर्यत्पोतः परं पारमुपैति मङ्क्षु।
गतावशक्तोऽपि निजप्रकृत्या, कस्याप्यदृष्टस्य विजृम्भितं तत्॥१॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथ त्रयोदशं शतकम्

प्रथम उद्देशकः

व्याख्यातं द्वादशं शतं, तत्र चानेकधा जीवादयः पदार्था उक्ताः, त्रयोदशशतेऽपि त एव भङ्ग्यन्तरेणोच्यन्त इत्येवंसम्बन्धमिदं व्याख्यायते, तत्र पुनरियमुद्देशकसङ्ग्रहगाथा–

'पुढवी' त्यादि, 'पुढवी' त्ति नरकपृथिवीविषयः प्रथमः १, 'देव' त्ति देवप्ररूपणार्थो द्वितीयः २ 'अणंतर' त्ति अनन्तराहारा नारका इत्याद्यर्थः प्रतिपादनपरस्तृतीयः ३, 'पुढवि' त्ति पृथिवीगतवक्तव्यताप्रतिबद्धश्चतुर्थः ४, 'आहारे' त्ति नारकाद्याहारप्ररूपणार्थः पञ्चमः ५, 'उववाए' त्ति नारकाद्युपपातार्थः षष्ठः ६, 'भास' त्ति भाषार्थः सप्तमः ७ 'कम्म' त्ति कर्म्मप्रकृतिरूपणार्थोऽष्टमः८, 'अणगारे केयाघडिय' त्ति अनगारो–भावितात्मा लब्धिसामर्थ्यात् 'केयाघडिय' त्ति रज्जुबद्धघटिकाहस्तः सन् विहायसि व्रजेदित्याद्यर्थप्रतिपादनार्थो नवमः ९, 'समुग्घाए' त्ति समुद्घातप्रतिपादनार्थो दशम इति।

तत्र प्रथमोद्देशके किंञ्चिल्लिख्यते–

१३/३. 'केवइया काउलेसा उववज्जंति' त्ति रत्नप्रभापृथिव्यां कापोतलेश्या एवोत्पद्यन्ते न कृष्णलेश्यादय इति कापोतलेश्यानेवाश्रित्य प्रश्नः कृत इति। 'केवइया कण्हपक्खिए' इत्यादि, एषां च लक्षणमिदं–

'जेसिमवड्ढो पोग्गलपरियट्टो सेसओ उ संसारो।
ते सुक्कपक्खिया खलु अहिगे पुण कण्हपक्खीया॥१॥'

(येषामपार्धः पुद्गलपरावर्त्तः शेषः संसारः।
ते शुक्लपाक्षिकाः खलु अधिके पुनः कृष्णपाक्षिकाः॥१॥)
इति।

'चक्खुदंसणी न उववज्जंति' त्ति इन्द्रियत्यागेन तत्रोत्पत्तेरिति, तर्हि अचक्षुर्दर्शिनिः कथमुत्पद्यन्ते?, उच्यते, इन्द्रियानाश्रितस्य सामान्योपयोगमात्रस्याचक्षुर्दर्शनशब्दाभिधेयस्योत्पादसमयेऽपि भावादचक्षुर्दर्शिनि उत्पद्यन्त इत्युच्यत इति, 'इत्थीवेयगे' त्यादि, स्त्रीपुरुषवेदा नोत्पद्यन्ते भवप्रत्ययान्नपुंसकवेदत्वात्तेषां, 'सोइंदियओवउत्ता' इत्यादि श्रोत्राद्युपयुक्ता नोत्पद्यन्ते इन्द्रियाणां तदानीमभावात् 'नोइंदिओवउत्ता उववज्जंति' त्ति नोइन्द्रियं–मनस्तत्र च यद्यपि मनःपर्याप्त्यभावे द्रव्यमनो नास्ति तथाऽपि भावमनसश्चैतन्यरूपस्य सदा भावात्तेनोपयुक्तानामुत्पत्तेर्नोइन्द्रियोपयुक्ता उत्पद्यन्त इत्युच्यत इति, 'मणजोगी' त्यादि मनोयोगिनो वाग्योगिनश्च नोत्पद्यन्ते, उत्पत्तिसमयेऽपर्याप्तकत्वेन मनोवाचोरभावादिति, 'कायजोगी उववज्जंति' त्ति सर्वसंसारिणां काययोगस्य सदैव भावादिति॥

अथ रत्नप्रभानारकाणामेवोद्वर्त्तनामभिधातुमाह–

१३/४. 'इमीसे ण' मित्यादि, 'असन्नी न उववट्टंति' त्ति उद्वर्त्तना हि परभवप्रथमसमये स्यात् न च नारका असञ्ज्ञिषूत्पद्यन्तेऽस्तेऽसञ्ज्ञिनः सन्तो नोद्वर्त्तन्त इत्युच्यते, एवं 'विभंगनाणी न उववट्टंती' त्यपि भावनीयं, शेषाणि तु पदान्युत्पादवद्व्याख्येयानि, उक्तञ्च चूर्ण्याम्–

'असन्निणो य विब्भंगिणो य उव्वट्टणाइ वज्जेज्जा।
दोसुवि य चक्खुदंसणी मणवइ तह इंदियाइं वा॥१॥' इति॥

अनन्तरं रत्नप्रभानारकाणामुत्पादे उद्वर्त्तनायां च परिणाममुक्तमथ तेषामेव सत्तायां तदाह–

१३/५. 'इमीसे ण' मित्यादि, 'केवइया अणंतरोववन्नग' त्ति कियन्तः प्रथमसमयोत्पन्नाः? इत्यर्थः 'परंपरोववन्नग' त्ति उत्पत्तिसमयापेक्षया द्व्यादिसमयेषु वर्त्तमानाः 'अणंतरावगाढ' त्ति विवक्षितक्षेत्रे प्रथमसमयावगाढाः 'परंपरोगाढ' त्ति विवक्षितक्षेत्रे द्वितीयादिकः समयोऽवगाढे येषां ते परम्परावगाढाः 'केवइया चरिम' त्ति चरमो नारकभवेषु स एव भवो येषां ते चरमाः, नारकभवस्य वा चरमसमये वर्त्तमानाश्चरमाः, अचरमास्त्वितरे, 'असन्नी सिय अत्थि सिय नत्थि' त्ति असञ्ज्ञिभ्य उद्वृत्य ये नारकत्वेनोत्पन्नास्तेऽपर्याप्तकावस्थायामसञ्ज्ञिनो भूतभावत्वात्ते चाल्पा इति कृत्वा 'सिय अत्थी' त्याद्युक्तं, मानमायालोभकषायोपयुक्तानां नोइन्द्रियोपयुक्तानामनन्तरोपपन्नानामनन्तरावगाढाना-मनन्तराहारकाणामनन्तरपर्याप्तकानां च कादाचित्कत्वात् 'सिय अत्थि' इत्यादि वाच्यं, शेषाणां तु बहुत्वात्सङ्ख्याता इति वाच्यमिति॥

अनन्तरं सङ्ख्यातविस्तृतनरकावासनारकवक्तव्यतोक्ता, अथ तद्विपर्ययवक्तव्यतामभिधातुमाह–

१३/६. 'इमीसे ण' मित्यादि, 'तिन्नि गमग' त्ति 'उववज्जंति उव्वट्टंति पन्नत्त' त्ति एते त्रयो गमाः, 'ओहिनाणी ओहिदंसणी य संखेज्जा उव्वट्टावेयव्व' त्ति, कथं?, ते हि तीर्थङ्करादय एव भवन्ति, ते च स्तोकाः स्तोकत्वाच्च सङ्ख्याता एवेति।

१३/७. 'नवरं असन्नी तिसुवि गमएसु न भन्नति' कस्मात्?, उच्यते–असञ्ज्ञिनः प्रथमायामेवोत्पद्यन्ते 'असन्नी खलु पढमं' इति वचनादिति।

१३/८. 'णाणत्तं लेसासु लेसाओ जहा पढमसए' त्ति, इहाद्यपृथिवीद्वयापेक्षया तृतीयादिपृथिवीषु नानात्वं लेश्यासु भवति, ताश्च यथा प्रथमशते तथाऽध्येयाः, तत्र च सङ्ग्रहगाथेयं–

'काऊ दोसु तइयाइ मीसिया नीलिया चउत्थीए।
पंचमियाए मीसा कण्हा तत्तो परमकण्हा॥१॥'
(द्वयोः कापोता तृतीयायां मिश्रा चतुर्थ्यां नीला।
पञ्चम्यां मिश्रा कृष्णा ततः परमकृष्णा॥१॥) इति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१३/९. 'नवरं ओहिनाणी ओहिदंसणी य न उववज्जंति' त्ति कस्मात्?, उच्यते, ते हि प्रायस्तीर्थकरा एव, ते च चतुर्थ्या उद्वृत्ता नोत्पद्यन्त इति।

१३/१२. 'जाव अपइट्ठाणे' त्ति इह यावत्करणात् 'काले महाकाले रोरुए महारोरुए' त्ति दृश्यम्, इह च मध्यम एव सङ्ख्येयविस्तृत इति।

१३/१३. 'नवरं तिसु णाणेसु न उववज्जंति न उव्वट्टंति' त्ति सम्यक्त्वभ्रष्टानामेव तत्रोत्पादात् तत उद्वर्त्तनाच्चाद्येषु त्रिषु ज्ञानेषु नोत्पद्यन्ते नापि चोद्वर्त्तन्त इति 'पन्नत्ताएसु तहेव अत्थि' त्ति एतेषु पञ्चसु नरकावासेषु कियन्त आभिनिबोधिकज्ञानिनः श्रुतज्ञानिनोऽवधिज्ञानिनश्च प्रज्ञप्ताः? इत्यत्र तृतीयगमे तथैव– प्रथमादिपृथिवीष्विव सन्ति, तत्रोत्पन्नानां सम्यग्दर्शनलाभे आभिनिबोधिकादिज्ञानत्रयभावादिति॥

अथ रत्नप्रभादिनारकवक्तव्यतामेव सम्यग्दृष्ट्यादीनाश्रित्याह–

१३/१४-१७. 'इमीसे ण' मित्यादि, 'नो सम्मामिच्छादिट्ठी उववज्जंति' त्ति 'न सम्ममिच्छो कुणइ काल' (सम्यग्मिथ्यादृग् न करोति कालम्) मिति वचनात् मिश्रदृष्टयो न म्रियन्ते नापि तद्भवप्रत्ययं तेषामवधिज्ञानं स्यात् येन मिश्रदृष्टयः सन्तस्ते उत्पद्येरन्, 'सम्मामिच्छदिट्ठीहिं नेरइएहिं अविरहिया विरहिया व' त्ति कादाचित्कत्वेन तेषां विरहसम्भवादिति॥

अथ नारकवक्तव्यतामेव भङ्ग्यन्तरेणाह–

१३/१८. 'से नूण' मित्यादि, 'लेसट्ठाणेसु' त्ति लेश्याभेदेषु 'संकिलिस्समाणेसु' त्ति अविशुद्धिं गच्छत्सु 'कण्हलेसं परिणमइ' त्ति कृष्णलेश्यां याति ततश्च 'कण्हलेसे' त्यादि।

१३/२१. 'संकिलिस्समाणेसु वा विसुद्धमाणेसु व' त्ति प्रशस्तलेश्यास्थानेषु अविशुद्धिं गच्छत्सु अप्रशस्तलेश्यास्थानेषु च विशुद्धिं गच्छत्सु, नीललेश्यां परिणमतीति भावः॥

त्रयोदशशते प्रथमः॥१३-१॥

द्वितीय उद्देशकः

प्रथमोद्देशके नारका उक्ताः द्वितीये त्वौपपातिकत्वसाधर्म्याद्देवा उच्यन्ते इत्येवंसम्बन्धस्यास्येदं सूत्रम्–

१३/२६. 'कइविहे' त्यादि, 'संखेज्जवित्थडावि असंखेज्जवित्थडावि' त्ति इह गाथा–

'जंबुद्दीवसमा खलु भवणा जे हुंति सव्वखुड्डागा।
संखेज्जवित्थडा मज्झिमा उ सेसा असंखेज्जा॥१॥

(यानि सर्वक्षुल्लानि भवनानि तानि जम्बूद्वीपसमानि भवन्ति मध्यमानि सङ्ख्येयविस्तृतानि शेषाणि त्वसङ्ख्येयविस्तृतानि॥१॥)' इति।

१३/२७. 'दोहिवि वेदेहिं उववज्जंति' त्ति द्वयोरपि स्त्रीपुंवेदयोरुत्पद्यन्ते, तयोरेव तेषु भावात्, 'असण्णी उव्वट्टंति' त्ति असुरादीशानान्तदेवानामसञ्ज्ञिष्वपि पृथिव्यादिषूत्पादात्, 'ओहिनाणी ओहिदंसणी य न उव्वट्टंति' त्ति असुराद्युद्वृत्तानां तीर्थकरादित्वालाभात् तीर्थकरादीनामेवावधिमतामुद्वृत्तेः, 'पण्णत्तएसु तहेव' त्ति 'प्रज्ञप्तकेषु' प्रज्ञप्तपदोपलक्षित-गमाधीतेष्वसुरकुमारेषु तथैव यथा प्रथमोद्देशके। 'कोहकसाई' इत्यादि, क्रोधमानमायाकषायोदयवन्तो देवेषु कादाचित्का अत उक्तं 'सिय अत्थी' त्यादि, लोभकषायोदयवन्तस्तु सार्वदिका अत उक्तं 'संखेज्जा लोभकसाई पन्नत्त' त्ति, 'तिसुवि गमएसु चत्तारि लेसाओ भाणियव्वाओ' त्ति 'उववज्जंति उव्वट्टंति पन्नत्ता' इत्येवंलक्षणेषु त्रिष्वपि गमेषु चतस्रो लेश्या-स्तेजोलेश्यान्ता भणितव्याः, एता एव हि असुरकुमारादीनां भवन्तीति।

१३/२८. 'जत्थ जत्तिया भवण' त्ति यत्र निकाये यावन्ति भवनलक्षाणि तत्र तावन्त्युच्चारणीयानि, यथा–

'चउसट्ठी असुराणं नागकुमाराण होइ चुलसीई।
बावत्तरि कणगाणं वाउकुमाराण छन्नउई॥१॥
दीवदिसाउदहीणं विज्जुकुमारिंदथणियमग्गीणं।
जुयलाणं पत्तेयं छावत्तरिमो सयसहस्सा॥२॥'

(असुराणां चतुःषष्टिर्नागकुमाराणां चतुरशीतिर्भवन्ति द्वासप्ततिः कनकानां षण्णवतिर्वायुकुमाराणाम्॥१॥ द्वीपदिग्उदधिविद्युत्-कुमारेन्द्रस्तनिताग्नीनां युगलानां प्रत्येकं षट्सप्तति-र्लक्षाः॥२॥) इति।

१३/२९. व्यन्तरसूत्रे 'संखेज्जवित्थड' त्ति, इह गाथा–

'जंबुद्दीवसमा खलु उक्कोसेणं हवंति ते नगरा।
खुड्डा खेत्तसमा खलु विदेहसमगा उ मज्झिमगा॥१॥'

(उत्कृष्टेन जम्बूद्वीपसमानि तानि नगराणि भरतसमानि क्षुल्लानि विदेहसमानि मध्यमानि॥१॥) इति।

१३/३१. ज्योतिष्कसूत्रे सङ्ख्यातविस्तृता विमानावासाः 'एगसट्ठिभागं काऊण जोयण' मित्यादिना ग्रन्थेन प्रमातव्याः 'नवरं एगा तेउलेस्स' त्ति व्यन्तरेषु लेश्याचतुष्टयमुक्तमेतेषु तु तेजोलेश्यैवैका वाच्या, तथा 'उववज्जंतेसु पन्नत्तेसु य असन्नी नत्थि' त्ति व्यन्तरेष्वसञ्ज्ञिन उत्पद्यन्त इत्युक्तमिह तु तन्निषेधः प्रज्ञप्तेष्वपीह तन्निषेध उत्पादाभावादिति।

१३/३२,३३. सौधर्म्मसूत्रे 'ओहिनाणी' ततश्च्युता यतस्तीर्थकरादयो भवन्त्यतोऽवधिज्ञानादयश्च्यावयितव्याः 'ओहिनाणी ओहिदंसणी य संखेज्जा चयंति' त्ति सङ्ख्यातानामेव तीर्थकरादित्वेनोत्पादादिति। 'छ गमग' त्ति उत्पादादयस्त्रयः सङ्ख्यातविस्तृतानाश्रित्य अत एव च त्रयोऽसङ्ख्यात-विस्तृतानाश्रित्य एवं षड् गमाः, 'नवरं इत्थिवेयगे' त्यादि, स्त्रियः सनत्कुमारादिषु नोत्पद्यन्ते न च सन्ति उद्वृत्तौ तु स्युः 'असन्नी तिसुवि गमएसु न भन्नइ' त्ति सनत्कुमारादिदेवानां सञ्ज्ञिभ्य एवोत्पादेन च्युतानां च सञ्ज्ञिष्वेव गमनेन गमत्रयेष्वसञ्ज्ञित्वस्याभावादिति। 'एवं जाव सहस्सारे' त्ति सहस्रारान्तेषु तिरश्चामुत्पादेनासङ्ख्यातानां त्रिष्वपि गमेषु भावादिति। 'णाणत्तं विमाणेसु लेसासु य' त्ति तत्र विमानेषु

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नानात्वं 'बत्तीसअट्ठवीसे' त्यादिना ग्रन्थेन समवसेयं, लेश्यासु पुनरिदं-

'तेऊ १ तेऊ २ तहा तेउ पम्ह ३ पम्हा ४ य पम्हसुक्का य ५। सुक्का य ६ परमसुक्का ७ सुक्काइविमाणवासीणं॥१॥'

(तेजः १ तेजः २ तथा तेजः ३ पद्मा च ४ पद्मशुक्ला च ५ शुक्ला च ६ परमशुक्ला ७ शुक्रादिविमानवासिनां (लेश्या)॥१॥) इति, इह च सर्वेष्वपि शुक्रादिदेवस्थानेषु परमशुक्लेति।

१३/३४. आनतादिसूत्रे 'संखेज्जवित्थडेसु' इत्यादि, उत्पादेऽवस्थाने च्यवने च सङ्ख्यातविस्तृतत्वाद्विमानानां सङ्ख्याता एव भवन्तीति भावः, असङ्ख्यातविस्तृतेषु पुनरुत्पादच्यवनयोः सङ्ख्याता एव, यतो गर्भजमनुष्येभ्य एवानतादिषूत्पद्यन्ते ते च सङ्ख्याता एव, तथाऽऽनतादिभ्यश्च्युता गर्भजमनुष्येष्वेवोत्पद्यन्तेऽतः समयेन सङ्ख्यातानामे-वोत्पादच्यवनसम्भवः, अवस्थितिस्त्वसङ्ख्यातानामपि स्यादसङ्ख्यातजीवितत्वेनैकदैव जीवितकालेऽसङ्ख्यातानामुत्पादादिति। 'पन्नत्तेसु असंखेज्जा नवरं नोइंदिओवउत्ते' त्यादि प्रज्ञापकगमेऽसङ्ख्येया वाच्याः केवलं नोइंद्रियोपयुक्तादिषु पञ्चसु पदेषु सङ्ख्याता एव, तेषामुत्पादावसर एव भावाद्, उत्पत्तिश्च सङ्ख्यातानामेवेति दर्शितं प्रागिति।

१३/३५. 'पंच अणुत्तरोववाइय' त्ति तत्र मध्यमं सङ्ख्यातविस्तृतं योजनलक्षप्रमाणत्वादिति।

१३/३६. 'नवरं कण्हपक्खिए' त्यादि, इह सम्यग्दृष्टीनामेवोत्पादात् कृष्णपाक्षिकादिपदानां गमत्रयेऽपि निषेधः, 'अचरिमावि खोडिज्जंति' त्ति येषां चरमोऽनुत्तरदेवभवः स एव ते चरमास्तदितरे त्वचरमास्ते च निषेधनीयाः, यतश्चरमा एव मध्यमे विमाने उत्पद्यन्त इति। 'असंखेज्जवित्थडेसुवि एए न भन्नंति' त्ति इहैते कृष्णपाक्षिकादयः 'नवरं अचरिमा अत्थि' त्ति यतो बाह्यविमानेषु पुनरुत्पद्यन्त इति। 'तिन्नि आलावग' त्ति सम्यग्दृष्टिमिथ्यादृष्टिसम्यग्मिथ्यादृष्टिविषया इति।

१३/३९. 'नवरं तिसुवि आलावगेसु' इत्यादि, उप्पत्तीए चवणे पन्नत्तालावए य मिथ्यादृष्टिः सम्यग्मिथ्यादृष्टिश्च न वाच्यः, अनुत्तरसुरेषु तस्यासम्भवादिति॥

त्रयोदशशते द्वितीयः॥१३-२॥

तृतीय उद्देशकः

अनन्तरोद्देशके देववक्तव्यतोक्ता, देवाश्च प्रायः परिचारणावन्त इति परिचारणानिरूपणार्थं तृतीयोद्देशकमाह, तस्य चेदमादि सूत्रम्-

१३/४०. 'नेरइया ण' मित्यादि, 'अणंतराहार' त्ति उपपातक्षेत्रप्राप्ति-समय एवाहारयन्तीत्यर्थः, 'तओ निव्वत्तणय' त्ति ततः शरीरनिर्वृत्तिः 'एवं परियारणे' त्यादि, परिचारणापदं-प्रज्ञापनायां चतुस्त्रिंशत्तमं, तच्चैवं-'तओ परियाइयणया तओ परिणामणया तओ परियारणया तओ पच्छा विउव्वणया?, हंता गोयमा' इत्यादि, 'तओ परियाइयणय' त्ति ततः पर्यापानम्-अङ्गप्रत्यङ्गैः समन्तादापानमित्यर्थः 'तओ परिणामणय' त्ति तत आपीतस्य-उपात्तस्य परिणतिरिन्द्रियादिविभागेन 'तओ परियारणय' त्ति ततः शब्दादिविषयोपभोग इत्यर्थः 'तओ पच्छा विउव्वणय' त्ति ततो विक्रिया नानारूपा इत्यर्थ इति॥

त्रयोदशशते तृतीयः॥१३-३॥

चतुर्थ उद्देशकः

अनन्तरोद्देशके परिचारणोक्ता, सा च नारकादीनां भवतीति नारकाद्यर्थप्रतिपादनार्थं चतुर्थोद्देशकमाह। तस्य चेदमादिसूत्रम्-

१३/४२. 'कइ ण' मित्यादि, इह च द्वारगाथे क्वचिद् दृश्येते, तद्यथा-

'नेरइय १ फास २ पणिही ३ निरयंते ४ चेव लोयमज्झे य ५। दिसिविदिसाण य पवहा ६ पवत्तणं अत्थिकाएहिं ७॥१॥
अत्थी पएसफुसणा ८ ओगाहणया य जीवमोगाढा।
अत्थि पएसनिसीयण बहुस्समे लोगसंठाणे॥२॥'

इति, अनयोश्चार्थ उद्देशकार्थाधिगमावगम्य एवेति।

१३/४३. 'महंततरा चेव' त्ति आयामतः 'विच्छिन्नतरा चेव' त्ति विष्कम्भतः 'महावासतरा चेव' त्ति अवकाशो-बहूनां विवक्षितद्रव्याणामवस्थानयोग्यं क्षेत्रं महानवकाशो येषु ते महावकाशाः अतिशयेन महावकाशा महावकाशतराः, ते च महाजनसङ्कीर्णा अपि भवन्तीत्यत उच्यते 'महापइरिक्कतरा चेव' त्ति महत्प्रतिरिक्तं-विजनमतिशयेन येषु ते तथा 'नो तहा महापवेसणतरा चेव' त्ति 'नो' नैव 'तथा' तेन प्रकारेण यथा षष्ठपृथिवीनरका अतिशयेन महत्प्रवेशनं-गत्यन्तरान्नरकगतौ जीवानां प्रवेशो येषु ते तथा, षष्ठपृथिव्यपेक्षयाऽसङ्ख्यगुणहीनत्वात्तन्नारकाणामिति, नोशब्द उत्तरपदद्वयेऽपि सम्बन्धनीयः, यत एव नो महाप्रवेशनतरा अत एव 'नो आइन्नतरा चेव' त्ति नात्यन्तमाकीर्णाः-सङ्कीर्णा नारकैः 'नो आउलतरा चेव' त्ति इतिकर्त्तव्यतया ये आकुला नारकलोकास्तेषामतिशयेन योगादाकुलतरास्ततो नोशब्दयोगः, किमुक्तं भवति?-'अणोमाणतरा चेव' त्ति अतिशयेनासङ्कीर्णा इत्यर्थः क्वचित्पुनरिदमेवं दृश्यते-'अणोयणतरा चेव' त्ति तत्र चानोदनतराः व्याकुलजनाभावादतिशयेन परस्परं नोदनवर्जिता इत्यर्थः 'महाकम्मतर' त्ति आयुष्कवेदनीयादिकर्म्मणां महत्त्वात् 'महाकिरियतर' त्ति कायिक्यादिक्रियाणां महत्त्वात् तत्काले कायमहत्त्वात्पूर्वकाले च महारम्भादित्वाद् अत एव महाश्रवतरा इति 'महावेयणतर' त्ति महाकर्मत्वात्, 'नो तहे' त्यादिना निषेधतस्तदेवोक्तं, विधिप्रतिषेधतो वाक्यप्रवृत्तेः, नोशब्दश्चेह प्रत्येकं सम्बन्धनीयः पदचतुष्टय इति, तथा 'अप्पड्ढियतर' त्ति अवध्यादिऋद्धेरल्पत्वात् 'अप्पज्जुइयतर' त्ति दीप्तेरभावात् एतदेव व्यतिरेकेणोच्यते-'नो तहा महड्ढिए' इत्यादि, नोशब्दः पदद्वयेऽपि सम्बन्धनीयः॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१३/४४. स्पर्शद्वारे 'एवं जाव वणस्सइफासं' त्ति यावत्करणात्तेजस्कायिकस्पर्शसूत्रं वायुकायिकस्पर्शसूत्रं च सूचितं, तत्र च कश्चिदाह–ननु सप्तस्वपि पृथिवीषु तेजस्कायिकवर्जपृथिवीकायिकादिस्पर्शो नारकाणां युक्तः येषां तासु विद्यमानत्वात् बादरतेजसां तु समयक्षेत्र एव सद्भावात् सूक्ष्मतेजसां पुनस्तत्र सद्भावेऽपि स्पर्शनेन्द्रियाविषयत्वादिति, अत्रोच्यते, इह तेजस्कायिकस्येव परमाधार्मिकविनिर्मितज्वलनसदृशवस्तुनः स्पर्शः तेजस्कायिकस्पर्श इति व्याख्येयं न तु साक्षात्तेजस्कायिकस्यैव असंभवात् अथवा भवान्तरानुभूततेजस्कायिकपर्यायपृथिवीकायिकादिजीवस्पशपिक्षयेदं व्याख्येयमिति।

१३/४५. प्रणिधिद्वारे 'पणिहाय' त्ति प्रणिधाय–प्रतीत्य 'सव्वमहंतिय' त्ति सर्वथा महती अशीतिसहस्राधिकयोजनलक्षप्रमाणत्वाद्रत्नप्रभाबाहल्यस्य शर्क्करप्रभाबाहल्यस्य च द्वात्रिंशत्सहस्राधिकयोजनलक्षमानत्वात् 'सव्वखुड्डिया सव्वंतेसु' त्ति सर्वथा लघ्वी 'सर्व्वान्तेषु' पूर्वापरदक्षिणोत्तरविभागेषु, आयामविष्कम्भाभ्यां रज्जुप्रमाणत्वाद्रत्नप्रभायास्ततो महत्तरत्वात् शर्कराप्रभायाः, 'एवं जहा जीवाभिगमे' इत्यादि, अनेन च यत्सूचितं तदिदं–'हंता गोयमा! इमा णं रयणप्पभा पुढवी दोच्चं पुढविं पणिहाय जाव सव्वखुड्डिया सव्वंतेसु। दोच्चा णं भंते! पुढवी तच्चं पुढविं पणिहाय सव्वखुड्डिया जाव सव्वंतेसु, एवं एएणं अभिलावेणं जाव छट्ठिया पुढवी अहे सत्तमं पुढविं पणिहाय जाव सव्वखुड्डिया सव्वंतेसु' त्ति।

१३/४६. निरयान्तद्वारे 'निरयपरिसामंतेसु' त्ति निरयावासानां पार्श्वत इत्यर्थः 'जहा नेरइयउद्देसए' त्ति जीवाभिगमसम्बन्धिनि, तत्र चैवमिदं सूत्रम्–'आउक्काइया तेउक्काइया वाउक्काइया वणस्सइकाइया, ते णं जीवा महाकम्मतरा चेव जाव महावेयणतरा चेव?, हंता गोयमा!' इत्यादि।

१३/४८,४९. लोकमध्यद्वारे 'चउत्थीए पंकप्पभाए' इत्यादि, रुचकस्याधो नवयोजनशतान्यतिक्रम्याधोलोको भवति लोकान्तं यावत्, स च सातिरेकाः सप्त रज्जवस्तन्मध्यभागः चतुर्थ्याः पञ्चम्याश्च पृथिव्या यदवकाशान्तरं तस्य सातिरेकमर्द्धमतिवाह्य भवतीति, तथा रुचकस्योपरि नवयोजनशतान्यतिक्रम्योर्द्धलोको व्यपदिश्यते लोकान्तमेव यावत्। स च सप्त रज्जवः किञ्चिन्न्यूनास्तस्य च मध्यभागप्रतिपादनायाह–'उप्पिं सणंकुमारमाहिंदाणं कप्पाण' मित्यादि।

१३/५०. तथा 'उवरिमहेट्ठिल्लेसु खुड्डागपयरेसु' त्ति लोकस्य वज्रमध्यत्वाद्रत्नप्रभाया रत्नकाण्डे सर्वक्षुल्लकं प्रतरद्वयमस्ति, तयोश्चोपरिमो यत आरभ्य लोकस्योपरिमुखा वृद्धिः 'हेट्ठिल्ले' त्ति अधस्तनो यत आरभ्य लोकस्याधोमुखा वृद्धिः तयोरुपरिमाधस्तनयोः 'खुड्डागपयरेसु' त्ति क्षुल्लकप्रतरयोः सर्वलघुप्रदेशप्रतरयोः 'एत्थ णं' ति प्रज्ञापकेनोपायतः प्रदर्श्यमाने तिर्यग्लोकमध्येऽष्टप्रदेशको रुचकः प्रज्ञप्तः, यश्च तिर्यग्लोकमध्ये प्रज्ञप्तः स सामर्थ्यात्तिर्यग्लोकायाममध्यं भवत्येवेति, किम्भूतोऽसावष्टप्रदेशिको रुचकः? इत्याह–'जओ णं इमाओ' इत्यादि, तस्य चेयं स्थापना–

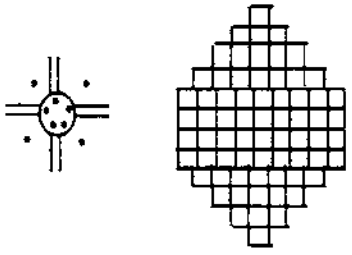

दिग्विदिक्प्रवहद्वारे 'किमाइय' त्ति क आदिः–प्रथमो यस्याः सा किमादिका आदिश्च विवक्षया विपर्ययेणापि स्यादित्यत आह–'किंपवह' त्ति प्रवहति–प्रवर्त्तते अस्मादिति प्रवहः कः प्रवहो यस्याः सा तथा 'कतिपएसाइय' त्ति कति प्रदेशा आदिर्यस्याः सा कतिप्रदेशादिका 'कतिपएसुत्तर' त्ति कतिप्रदेशा उत्तरे–वृद्धौ यस्याः सा तथा 'लोगं पडुच्च मुरजसंठिय' त्ति लोकान्तस्य परिमण्डलाकारत्वेन मुरजसंस्थानता दिशः स्यात्ततश्च लोकान्तं प्रतीत्य मुरजसंस्थितेत्युक्तं, एतस्य च पूर्वां दिशमाश्रित्य चूर्णिकारकृतेयं भावना–'पुव्वुत्तराए पएसहाणीए तहा दाहिणपुव्वाए रुयगदेसे मुरजहेट्ठं दिसि अंते चउप्पएसा दट्ठव्वा मज्झे य तुंडं हवइ' त्ति, एतस्य चेयं स्थापना–

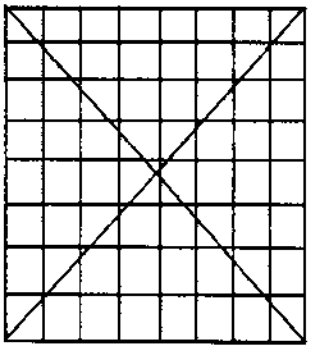

'अलोगं पडुच्च सगडुद्धिसंठिय' त्ति रुचके तु तुण्डं कल्पनीयं आदौ संकीर्णत्वात् तत उत्तरोत्तरं विस्तीर्णत्वादिति।

१३/५३. 'एगपएसविच्छिन्न' त्ति, कथम्? अत आह–'अणुत्तर' त्ति वृद्धिवर्जिता यत इति।

१३/५६. प्रवर्त्तनद्वारे 'आगमणगमणे' इत्यादि, आगमनगमने प्रतीते भाषा–व्यक्तवचनं 'भास व्यक्तायां वाचि' इति वचनात् उन्मेषः–अक्षिव्यापारविशेषः मनोयोगवाग्योगकाययोगाः प्रतीता एव तेषां च द्वन्द्वस्ततस्ते, इह च मनोयोगादयः सामान्यरूपाः आगमनादयस्तु तद्विशेषा इति भेदेनोपात्ताः, भवति च सामान्यग्रहणेऽपि विशेषग्रहणं तत्स्वरूपोपदर्शनार्थमिति, 'जे यावन्ने तहप्पगार' त्ति 'ये चाप्यन्ये' आगमनादिभ्योऽपरे 'तथाप्रकाराः' आगमनादिसदृशाः भ्रमणचलनादयः 'चला भाव' त्ति चलस्वभावाः पर्यायाः सर्वे ते धर्मास्तिकाये सति प्रवर्त्तन्ते, कुत? इत्याह–'गइलक्खणे णं धम्मत्थिकाए' त्ति।'

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१३/५७. 'ठाणनिसीयणतुयट्टण' त्ति कायोत्सर्गासनशयनानि प्रथमाबहुवचनलोपदर्शनात्, तथा मनसश्चानेकत्वस्यैकत्वस्य भवनमेकत्वीभावस्तस्य यत्करणं तत्तथा।

१३/५८. 'आगासत्थिकाएण' मित्यादि, जीवद्रव्याणां चाजीवद्रव्याणां च भेदेन भाजनभूतः, अनेन चेदमुक्तं भवति–एतस्मिन् सति जीवादीनामवगाहः प्रवर्त्तते एतस्यैव प्रश्नितत्वादिति, भाजनभावमेवास्य दर्शयन्नाह–'एगेणवी' त्यादि, एकेन–परमाण्वादिना 'से' त्ति असौ आकाशास्तिकायप्रदेश इति गम्यते 'पूर्णः' भृतस्तथा द्वाभ्यामपि ताभ्यामसौ पूर्णः, कथमेतत्? उच्यते, परिणामभेदात् यथाऽपवरकाकाशमेकप्रदीपप्रभापटलेनापि पूर्यते द्वितीयमपि तत्तत्र माति यावच्छतमपि तेषां तत्र माति, तथौषधिविशेषापादितपरिणामादेकत्र पारदकर्षे सुवर्णकर्षशतं प्रविशति, पारदकर्षीभूतं च सदौषधिसामर्थ्यात् पुनः पारदस्य कर्षः सुवर्णस्य च कर्षशतं भवति विचित्रत्वात्पुद्गलपरिणामस्येति, 'अवगाहणालक्खणे णं' ति इहावगाहना–आश्रयभावः।

१३/५९. 'जीवत्थिकाएण' मित्यादि, जीवास्तिकायेनेति अन्तर्भूतभावप्रत्ययत्वाज्जीवास्तिकायत्वेन जीवतयेत्यर्थः भदन्त! जीवानां किं प्रवर्त्तते? इति प्रश्नः, उत्तरं तु प्रतीतार्थमेवेति।

१३/६०. 'पोग्गलत्थिकाएण' मित्यादि, इहौदारिकादिशरीराणां श्रोत्रेन्द्रियादीनां मनोयोगान्तानामानप्राणानां च ग्रहणं प्रवर्त्तते इति वाक्यार्थः, पुद्गलमयत्वादौदारिकादीनामिति।

अस्तिकायप्रदेशस्पर्शद्वारे–

१३/६१. 'एगे भंते! धम्मत्थिकायप्पएसे' इत्यादि, 'जहन्नपए तिहिं' ति जघन्यपदं लोकान्तनिष्कुटरूपं यत्रैकस्य धर्मास्तिकायादिप्रदेशस्यातिस्तोकैरन्यैः स्पर्शना भवति तच्च भूम्यासन्नापवरककोणदेशप्रायं , इहोपरितनेनैकेन द्वाभ्यां च पार्श्वत एको विवक्षितः प्रदेशः स्पृष्टः, एवं जघन्येन त्रिभिरिति। 'उक्कोसपए छहिं' ति विवक्षितस्यैक उपर्येकोऽधस्तनश्चत्वारो दिक्षु इत्येवं षड्भिरिदं च प्रतरमध्ये, स्थापना च– ⁘। 'जहन्नपदे चउहिं' ति धर्मास्तिकायप्रदेशो जघन्यपदेऽधर्मास्तिकायप्रदेशैश्चतुर्भिः स्पृष्ट इति, कथं?, तथैव त्रयः, चतुर्थस्तु धर्मास्तिकायप्रदेशस्थानस्थित एवेति, उत्कृष्टपदे सप्तभिरिति, कथं?, षड् दिक्षट्के, सप्तमस्तु धर्मास्तिकायप्रदेशस्थ एवेति २, आकाशप्रदेशैः सप्तभिरेव, लोकान्तेऽप्यलोकाकाशप्रदेशानां विद्यमानत्वात् ३, 'केवतिएहिं जीवत्थिकाए' इत्यादि 'अणंतेहिं' ति अनन्तैरनन्तजीवसम्बन्धिनामनन्तानां प्रदेशानां तत्रैकधर्मास्तिकायप्रदेशे पार्श्वतश्च दिक्त्रयादौ विद्यमानत्वादिति ४, एवं पुद्गलास्तिकायप्रदेशैरपि ५, 'केवतिएहिं अद्धासमएहिं' इत्यादि, अद्धासमयः समयक्षेत्र एव न परतोऽतः स्यात्स्पृष्टः स्यान्नेति, 'जइ पुट्ठे नियमं अणंतेहिं' ति अनादित्वादद्धासमयानां अथवा वर्त्तमानसमयालिङ्गितान्यनन्तानि द्रव्याण्यनन्ता एव समया, इत्यनन्तैस्तैः स्पृष्ट इत्युच्यत इति ६।

१३/६२. अधर्मास्तिकायप्रदेशस्य शेषाणां प्रदेशैः स्पर्शना धर्मास्तिकायप्रदेशस्पर्शनाऽनुसारेणावसेया ६।

१३/६३. 'एगे भंते! आगासत्थिकायपएसे' इत्यादि, 'सिय पुट्ठे' त्ति लोकमाश्रित्य 'सिय नो पुट्ठे' त्ति अलोकमाश्रित्य 'जइ पुट्ठे' इत्यादि यदि स्पृष्टस्तदा जघन्यपदे एकेन धर्मास्तिकायप्रदेशेन स्पृष्टः, कथम्?, एवंविधलोकान्तवर्त्तिना धर्मास्तिकायैकप्रदेशेन शेषधर्मास्तिकायप्रदेशेभ्यो निर्गतेनैकोऽग्रभागवर्त्यलोकाकाशप्रदेशः स्पृष्टो वक्रगतस्त्वसौ द्वाभ्यां यस्य चालोकाकाशप्रदेशस्याग्र तोऽधस्तादुपरि च धर्मास्तिकायप्रदेशाः सन्ति स त्रिभिर्धर्मास्तिकायप्रदेशैः स्पृष्टः, स चैवम्–

यस्त्वेवं– 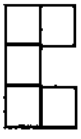

लोकान्ते कोणगतो व्योमप्रदेशोऽसावेकेन धर्मास्तिकायप्रदेशेन तदवगाढेनान्येन चोपरिवर्त्तिनाऽधोवर्तिना वा द्वाभ्यां च दिग्द्वयावस्थिताभ्यां स्पृष्ट इत्येवं चतुर्भिः यश्चाध उपरि च तथा दिग्द्वये तत्रैव वर्त्तमानेन धर्मास्तिकायप्रदेशेन स्पृष्टः स पञ्चभिः यः पुनरध उपरि च तथा दिक्त्रये तत्रैव च प्रवर्त्तमानेन धर्मास्तिकायप्रदेशेन स्पृष्टः स षड्भिः, यश्चाध उपरि च तथा दिक्चतुष्टये तत्रैव च वर्त्तमानेन धर्मास्तिकायप्रदेशेन स्पृष्टः स सप्तभिर्धर्म्मास्तिकायप्रदेशैः स्पृष्टो भवतीति १, एवमधर्मास्तिकायप्रदेशैरपि २ 'केवइएहिं आगासत्थिकायपएसेहिं?, 'छहिं' ति एकस्य लोकाकाशप्रदेशस्यालोकाकाशप्रदेशस्य वा षड्दिग्व्यवस्थितैरेव स्पर्शनात् षड्भिरित्युक्तम् ३ जीवास्तिकायसूत्रे 'सिय पुट्ठे' त्ति यद्यसौ लोकाकाशप्रदेशो विवक्षितस्ततः स्पृष्टः 'सिय नो पुट्ठे' त्ति यद्यसावलोकाकाशप्रदेशविशेषस्तदा न स्पृष्टो जीवानां तत्राभावादिति ४-५ एवं पुद्गलाद्धाप्रदेशैः ६।

१३/६४. 'एगे भंते! जीवत्थिकायप्पएसे' इत्यादि, जघन्यपदे लोकान्तकोणलक्षणे सर्वाल्पत्वात्तत्र स्पर्शकप्रदेशानां चतुर्भिरिति, कथम्?, अध उपरि वा एको द्वौ च दिशोरेकस्तु यत्र जीवप्रदेश एवावगाढ इत्येवं, एकश्च जीवास्तिकायप्रदेश एकत्राकाशप्रदेशादौ केवलिसमुद्घात एव लभ्यत इति, 'उक्कोसपए सत्तहिं' ति पूर्ववत्, 'एवं अहम्मे' त्यादि पूर्वोक्तानुसारेण भावनीयम् ६।

१३/६५. धर्मास्तिकायादीनां ४ पुद्गलास्तिकायस्य चैकैकप्रदेशस्य स्पर्शनोक्ता।

अथ तस्यैव द्विप्रदेशादिस्कन्धानां तां दर्शयन्नाह–

'दो भंते!' इत्यादि, इह चूर्णिकारव्याख्यानमिदं–लोकान्ते द्विप्रदेशिकः स्कन्ध एकप्रदेशसमवगाढः स च प्रतिद्रव्यावगाहं प्रदेश इति नयमताश्रयणेनावगाहप्रदेशस्यैकस्यापि भिन्नत्वाद् द्वाभ्यां स्पृष्टः, तथा यस्तस्योपर्यधस्ताद्वा प्रदेशस्तस्यापि पुद्गलद्वयस्पर्शनेन नयमतादेव भेदाद् द्वाभ्यां, तथा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पार्श्वप्रदेशावेकैकमणुं स्पृशतः परस्परव्यवहितत्वाद् इत्येवं जघन्यपदे षड्भिर्धर्मास्तिकायप्रदेशैर्द्व्यणुकस्कन्धः स्पृश्यते, नयमतानङ्गीकरणे तु चतुर्भिरेव द्व्यणुकस्य जघन्यतः स्पर्शना स्यादिति'। वृत्तिकृता त्वेवमुक्तम्–

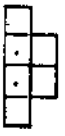

'इह यद्विन्दुद्वयं तत्परमाणुद्वयमिति मन्तव्यं तत्र चार्वाचीनः परमाणुर्धर्मास्तिकायप्रदेशेनार्वाक्स्थितेन स्पृष्टः, परभागवर्त्ती च परतः स्थितेन एवं द्वौ, तथा ययोः प्रदेशयोर्मध्ये परमाणू स्थाप्येते तयोरग्रेतनाभ्यां प्रदेशाभ्यां तौ स्पृष्टौ एकेनैको द्वितीयेन च द्वितीय इति चत्वारो द्वौ चावगाढत्वादेव स्पृष्टावित्येवं षट्। 'उक्कोसपए बारसहिं' ति, कथं?, परमाणुद्वयेन द्वौ द्विप्रदेशावगाढत्वात्स्पृष्टौ द्वौ चाधस्तनौ उपरितनौ च द्वौ पूर्वापरपार्श्वयोश्च द्वौ २ दक्षिणोत्तरपार्श्वयोश्चैकैक इत्येवमेते द्वादशेति १

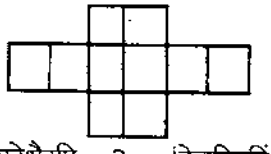

एवमधर्मास्तिकायप्रदेशैरपि २, 'केवतिएहिं आगासत्थिकायप्पएसेहिं?, 'बारसहिं' ति इह जघन्यपदं नास्ति लोकान्तेऽप्याकाशप्रदेशानां विद्यमानत्वादिति द्वादशभिरित्युक्तं ३, 'सेसं जहा धम्मत्थिकायस्स' त्ति, अयमर्थः–'दो भंते! पोग्गलत्थिकायप्पएसा केवतिएहिं जीवत्थिकायप्पएसेहिं पुट्ठा?, गोयमा! अणंतेहिं ४। एवं पुद्गलास्तिकायप्रदेशैरपि ५, अद्धासमयैः स्यात् स्पृष्टौ स्यान्न, यदि स्पृष्टौ तदा नियमादनन्तैरिति ६।

१३/६७. 'तिन्नि भंते!' इत्यादि, 'जहन्नपए अट्ठहिं' ति, कथं?, पूर्वोक्तनयमतेनावगाढप्रदेशस्त्रिधा अधस्तनोऽप्युपरितनोऽपि वा त्रिधा द्वौ पार्श्वत इत्येवमष्टौ। 'उक्कोसपए सत्तरसहिं' ति प्राग्वद्भावनीयं, इह च सर्वत्र जघन्यपदे विवक्षितपरमाणुभ्यो द्विगुणा द्विरूपाधिकाश्च स्पर्शकाः प्रदेशा भवन्ति, उत्कृष्टपदे तु विवक्षितपरमाणुभ्यः पञ्चगुणा द्विरूपाधिकाश्च ते भवन्ति, तत्र चैकाणोर्द्विगुणत्वे द्वौ द्वयसहितत्वे च चत्वारो जघन्यपदे स्पर्शकाः प्रदेशाः उत्कृष्टपदे त्वेकाणोः पञ्चगुणत्वे द्विकसहितत्वे च सप्त स्पर्शकाः प्रदेशा भवन्ति, एवं द्व्यणुकत्र्यणुकादिष्वपि, स्थापना चेयम्–

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	परमाणुसंख्या
४	६	८	१०	१२	१४	१६	१८	२०	२२	जघन्यस्पर्श
७	१२	१७	२२	२७	३२	३७	४२	४७	५२	उत्कृष्टस्पर्श

एतदेवाह–'एवं एएणं गमएण' मित्यादि, 'आगासत्थिकायस्य सव्वत्थ उक्कोसपयं भाणियव्वं' ति 'सर्वत्र' एकप्रदेशिकाद्यनन्तप्रदेशिकान्ते सूत्रगणे उत्कृष्टपदमेव न जघन्यकमित्यर्थः आकाशस्य सर्वत्र विद्यमानत्वादिति।

१३/६८. 'संखेज्जा भंते!' इत्यादि, 'तेणेव' त्ति यत् सङ्ख्येयकमयः स्कन्धस्तेनैव प्रदेशसङ्ख्येयकेन द्विगुणेन द्विरूपाधिकेन स्पृष्टः, इह भावना–विंशतिप्रदेशिकः स्कन्धो लोकान्त एकप्रदेशे स्थितः स च नयमतेन विंशत्याऽवगाढप्रदेशैः विंशत्यैव च नयमतेनैवाधस्तनैरुपरितनैर्वा प्रदेशैः द्वाभ्यां च पार्श्वप्रदेशाभ्यां स्पृश्यत इति, उत्कृष्टपदे तु विंशत्या निरुपचरितैरवगाढप्रदेशैः, एवमधस्तनै २० रुपरितनैः २० पूर्वापरपार्श्वयोश्च विंशत्या २० द्वाभ्यां च दक्षिणोत्तरपार्श्वस्थिताभ्यां स्पृष्टस्तश्च विंशतिरूपः सङ्ख्यातागुकः स्कन्धः पञ्चगुणया विंशत्या प्रदेशानां प्रदेशद्वयेन च स्पृष्ट इति, अत एव चोक्तम् 'उक्कोसपए तेणेव संखेज्जएणं पंचगुणेणं दुरूवाहिएणं' ति॥

१३/६९. 'असंखेज्जा' इत्यादौ षट्सूत्री तथैव॥

१३/७०. 'अणंता भंते!' इत्यादिरपि षट्सूत्री तथैव, नवरमिह यथा जघन्यपदे औपचारिका अवगाहप्रदेशा अधस्तना उपरितना वा तथोत्कृष्टपदेऽपि, न हि निरुपचरिता अनन्ता आकाशप्रदेशा अवगाहतः सन्ति, लोकस्याप्यसङ्ख्यातप्रदेशात्मकत्वादिति। इह च प्रकरणे इमे वृद्धोक्तगाथे भवतः–

'धम्माइपएसेहिं दुपएसाई जहन्नयपयम्मि।
दुगुणदुरूवहिएणं तेणेव कहं नु हु फुसेज्जा॥१॥
एत्थ पुण जहन्नपयं लोगंते तत्थ लोगमालिहिउं।
फुसणा दावेयव्वा अहवा खंभाइकोडीए॥२॥'

इति (जघन्यपदे द्विप्रदेशादिर्द्विगुणद्विरूपाधिकैर्धर्मादिप्रदेशैस्तेनैव कथं नु स्पृशेत्?॥१॥ अत्र जघन्यपदं लोकान्ते ततो लोकमालिख्य स्पर्शनां दर्शयेद् अथवा स्तम्भादिकोट्याम्॥२॥)

१३/७१. 'एगे भंते! अद्धासमए' इत्यादि, इह वर्त्तमानसमयविशिष्टः समयक्षेत्रमध्यवर्त्ती परमाणुरद्धासमयो ग्राह्यः, अन्यथा तस्य धर्मास्तिकायादिप्रदेशैः सप्तभिः स्पर्शना न स्यात्, इह च जघन्यपदं नास्ति, मनुष्यक्षेत्रमध्यवर्त्तित्वादद्धासमयस्य, जघन्यपदस्य च लोकान्त एव सम्भवादिति, तत्र सप्तभिरिति, कथम्?, अद्धासमयविशिष्टं परमाणुद्रव्यमेकत्र धर्मास्तिकायप्रदेशेऽवगाढमन्ये च तस्य षट्सु दिक्ष्विति सप्तेति, जीवास्तिकायप्रदेशैश्चानन्तैरेकप्रदेशेऽपि तेषामनन्तत्वात्, 'एवं जाव अद्धासमएहिं' ति, इह यावत्करणादिदं सूचितम्–एकोऽद्धासमयोऽनन्तैः पुद्गलास्तिकायप्रदेशैरद्धासमयैश्च स्पृष्ट इति, भावना चास्यैवम्–अद्धासमयविशिष्टमणुद्रव्यमद्धासमयः, स चैकः पुद्गलास्तिकायप्रदेशैरनन्तैः स्पृश्यते, एकद्रव्यस्य स्थाने पार्श्वतश्चानन्तानां पुद्गलानां सद्भावात्, तथाऽद्धासमयैरनन्तैरसौ स्पृश्यते अद्धासमयविशिष्टानामनन्तानामप्यणुद्रव्याणामद्धासमयत्वेन विवक्षितत्वात् तेषां च तस्य स्थाने तत्पार्श्वतश्च सद्भावादिति।

धर्मास्तिकायादीनां प्रदेशतः स्पर्शनोक्ताऽथ द्रव्यतस्तामाह–

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१३/७२. 'धम्मत्थिकाएण' मित्यादि, 'नत्थि एगेणवि' त्ति सकलस्य धर्मास्तिकायद्रव्यस्य प्रश्नितत्वात् तद्व्यतिरिक्तस्य च धर्मास्तिकायप्रदेशस्याभावादुक्तं नास्ति—न विद्यतेऽयं पक्षो यदुत एकेनापि धर्मास्तिकायप्रदेशेनासौ धर्मास्तिकायः स्पृष्ट इति, तथा धर्मास्तिकायोऽधर्मास्तिकायप्रदेशैरसङ्ख्येयैः स्पृष्टो, धर्मास्तिकायप्रदेशानन्तर एव व्यवस्थितत्वादधर्मास्तिकाय-सम्बन्धिनामसङ्ख्यातानामपि प्रदेशानामिति, आकाशास्ति-कायप्रदेशैरप्यसङ्ख्येयैः, असङ्ख्येयप्रदेशस्वरूपलोकाकाश-प्रमाणत्वाद्धर्मास्तिकायस्य, जीवपुद्गलप्रदेशैस्तु धर्मास्ति-कायोऽनन्तैः स्पृष्टः, तद्व्याप्त्या धर्मास्तिकायस्यावस्थितत्वात्तेषां चानन्तत्वात्, अद्धासमयैः पुनरसौ स्पृष्टश्चास्पृष्टश्च, तत्र यः स्पृष्टः सोऽनन्तैरिति।

१३/७३. एवमधर्मास्तिकायस्य ६ आकाशास्तिकायस्य ६ जीवास्तिकायस्य ६ पुद्गलास्तिकायस्य ६ अद्धासमयस्य च ६ सूत्राणि वाच्यानि, केवलं यत्र धर्मास्तिकायादिस्तत्प्रदेशैरेव चिन्त्यते तत्स्वस्थानमितरच्च परस्थानं, तत्र स्वस्थाने 'नत्थि एगेणवि पुट्ठे' इति निर्वचनं वाच्यं, परस्थाने च धर्मास्तिकायादि-त्रयसूत्रेषु ३ असङ्ख्येयैः स्पृष्ट इति वाच्यं, असङ्ख्यातप्रदेशत्वाद्धर्माधर्मास्तिकाययोस्तत्संस्पृष्टाकाशस्य च, जीवादित्रयसूत्रेषु चानन्तैः प्रदेशैः स्पृष्ट इति वाच्यं, अनन्तप्रदेशत्वात्तेषामिति, एतदेव दर्शयन्नाह—'एवं एएणं गमएण' मित्यादि, इह चाकाश-सूत्रेऽयं विशेषो द्रष्टव्यः—आकाशास्तिकायो धर्मास्तिकायादि-प्रदेशैः स्पृष्टश्चास्पृष्टश्च, तत्र यः स्पृष्टः सोऽसङ्ख्येयैर्धर्मा-धर्मास्तिकाययोः प्रदेशैर्जीवास्तिकायादीनां त्वनन्तैरिति, 'जाव अद्धासमओ' त्ति अद्धासमयसूत्रं यावत् सूत्राणि वाच्यानीत्यर्थः, 'जाव केवइएहिं' इत्यादौ यावत्करणादद्धासमयसूत्रे आद्यं पदपञ्चकं सूचितं षष्ठं तु लिखितमेवास्ते, तत्र तु 'नत्थि एक्केणवि' त्ति निरुपचरितस्याद्धासमयस्यैकस्यैव भावात्, अतीतानागतसमययोश्च विनष्टानुत्पन्नत्वेनासत्त्वान्न समयान्तरेण स्पृष्टताऽस्तीति।

अथावगाहद्वारं, तत्र—

१३/७४. 'जत्थ णं भंते!' इत्यादि, यत्र प्रदेशे एको धर्मास्तिकायस्य प्रदेशोऽवगाढस्तत्रान्यस्तत्प्रदेशो नास्तीतिकृत्वाऽऽह—'नत्थि एक्कोवि' त्ति, धर्मास्तिकायप्रदेशस्थानेऽधर्मास्तिकायप्रदेशस्य विद्यमानत्वादाह—'एक्को' त्ति, एवमाकाशास्तिकायस्याप्येक एव, जीवास्तिकायपुद्गलास्तिकाययोः पुनरनन्ताः प्रदेशा एकैकस्य धर्मास्तिकायप्रदेशस्य स्थाने सन्ति तैः प्रत्येकमनन्तैर्व्याप्तोऽसावत उक्तम्—'अणंत' त्ति, अद्धा-समयस्तु मनुष्यलोक एव सन्ति न परतोऽतो धर्मास्ति-कायप्रदेशे तेषामवगाहोऽस्ति नास्ति च, यत्रास्ति तत्रानन्तानां भावना तु प्राग्वत्, एतदेवाह—'अद्धासमये' त्यादि।

१३/७५. 'जत्थेण' मित्यादीन्यधर्मास्तिकायसूत्राणि षड् धर्मास्तिकायसूत्राणीव वाच्यानि।

१३/७६. आकाशास्तिकायसूत्रेषु 'सिय ओगाढा सिय नो ओगाढ' त्ति लोकालोकरूपत्वादाकाशस्य लोकाकाशेऽवगाढा अलोकाकाशे तु न, तदभावात्।

१३/७९. 'जत्थ णं भंते! पोग्गलत्थिकायपएसे' त्यादि, 'सिय एक्को सिय दोन्नि' त्ति यदैकत्राकाशप्रदेशे द्व्यणुकः स्कन्धोऽवगाढः स्यात्तदा तत्र धर्मास्तिकायप्रदेश एक एव, यदा तु द्वयोराकाशप्रदेशयोरसाववगाढः स्यात्तदा तत्र द्वौ धर्मप्रदेशावगाढौ स्याताम्इति, एवमवगाहनानुसारेणा-धर्मास्तिकायाकाशास्तिकाययोरपि स्यादेकः स्याद्द्वाविति भावनीयं, 'सेसं जहा धम्मत्थिकायस्स' त्ति शेषमित्युक्तापेक्षया जीवास्तिकायपुद्गलास्तिकायाद्धासमयलक्षणं त्रयं यथा धर्मास्तिकायप्रदेशवक्तव्यतायामुक्तं तथा पुद्गलप्रदेशद्वय-वक्तव्यतायामपि, पुद्गलप्रदेशद्वयस्थाने तदीया अनन्ताः प्रदेशा अवगाढा इत्यर्थः।

१३/८०. पुद्गलप्रदेशत्रयसूत्रेषु 'सिय इक्को' इत्यादि, यदा त्रयोऽप्यणव एकत्रावगाढास्तदा तत्रैको धर्मास्तिकाय-प्रदेशोऽवगाढः, यदा तु द्वयो १।२ स्तदा द्वावगाढौ, यदा तु त्रिषु।१।१।१। तदा त्रय इति, एवमधर्मास्तिकायस्याकाशास्ति-कायस्य च वाच्यं, 'सेसं जहेव दोण्हं' ति 'शेषं' जीवपुद्गला-द्धासमयाश्रितं सूत्रत्रयं यथैव द्वयोः पुद्गलप्रदेशयोरवगाह-चिन्तायामधीतं तथैव पुद्गलप्रदेशत्रयचिन्तायामप्यध्येयं, पुद्गलप्रदेशत्रयस्थानेऽनन्ता जीवप्रदेशा अवगाढा इत्येव-मध्येयमित्यर्थः, 'एवं एक्केक्को वड्ढेयव्वो पएसो आइल्लेहिं तिहिं २ अत्थिकाएहिं' ति यथा पुद्गलप्रदेशत्रयावगाहचिन्तायां धर्मास्तिकायादिसूत्रत्रये एकैकःप्रदेशो वृद्धिं नीतः एवं पुद्गलप्रदेशचतुष्टयाद्यवगाहचिन्तायामप्येकैकस्तत्र वर्द्धनीयः, तथाहि—'जत्थ णं भंते! चत्तारि पुग्गलत्थिकायप्पएसा ओगाढा तत्थ केवइया धम्मत्थिकायप्पएसा ओगाढा?, सिय एक्को सिय दोन्नि सिय तिन्नि सिय चत्तारि' इत्यादि, भावना चास्य प्रागिव, 'सेसेहिं जहेव दोण्हं' ति शेषेषु जीवास्तिकायादिषु त्रिषु सूत्रेषु पुद्गलप्रदेशचतुष्टयचिन्तायां तथा वाच्यं यथा तेष्वेव पुद्गल-प्रदेशद्वयावगाहचिन्तायामुक्तं, तच्चैवं—'जत्थ णं भंते! चत्तारि पोग्गलत्थिकायप्पएसा ओगाढा तत्थ केवतिया जीवत्थिकायप्पएसा ओगाढा?, अणंता' इत्यादि, 'जहा असंखेज्जा एवं अणंतावि' त्ति, अस्यायं भावार्थः—'जत्थ णं भंते! अणंता पोग्गलत्थिकायप्पएसा ओगाढा तत्थ केवतिया धम्मत्थिकायप्पएसा ओगाढा?, सिय एक्को सिय दोन्नि जाव सिय असंखेज्जा' एतदेवाध्येयं न तु 'सिय अणंत' त्ति, धर्मास्तिकायाधर्मास्तिकायलोकाकाशप्रदेशानामनन्तानाम-भावादिति।

अथ प्रकारान्तरेणावगाहद्वारमेवाह—

१३/८२. 'जत्थ ण' मित्यादि, धर्मास्तिकायशब्देन समस्ततत्-प्रदेशसङ्ग्रहात् प्रदेशान्तराणां चाभावादुच्यते—यत्र धर्मास्ति-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कायोऽवगाढस्तत्र नास्त्येकोऽपि तत्प्रदेशोऽवगाढ इति, अधर्मास्तिकायाकाशास्तिकाययोरसङ्ख्येयाः प्रदेशा अवगाढा असङ्ख्येयप्रदेशत्वादधर्मास्तिकायलोकाकाशयोः, जीवास्तिकायसूत्रे चानन्तास्तत्प्रदेशाः, अनन्तप्रदेशत्वाज्जीवास्तिकायस्य, पुद्गलास्तिकायसूत्राद्धासूत्रयोरप्येवं, एतदेवाह–'एवं जाव अद्धासमय' त्ति।

१३/८४. अथैकस्य पृथिव्यादिजीवस्य स्थाने कियन्तः पृथिव्यादिजीवा अवगाढाः ? इत्येवमर्थं 'जीवमोगाढ' त्ति द्वारं प्रतिपादयितुमाह– 'जत्थ णं भंते! एगे पुढविक्काइए' इत्यादि, एकपृथिवीकायिकावगाहेऽसङ्ख्येयाः प्रत्येकं पृथिवीकायिकादयश्चत्वारः सूक्ष्मा अवगाढाः, यदाह–'जत्थ एगो तत्थ नियमा असंखेज्ज' त्ति, वनस्पतयस्त्वनन्ता इति।

अथास्तिकायप्रदेशनिषदनद्वारं, तत्र च–

१३/८६. 'एयंसि ण' मित्यादि, एतस्मिन् णमित्यलङ्कारे 'चक्किय' त्ति शक्नुयात्कश्चित् पुरुषः।

अथ बहुसमेति द्वारं, तत्र–

१३/८८. 'कहि ण' मित्यादि, 'बहुसमे' त्ति अत्यन्तं समः, लोको हि क्वचिद्वर्द्धमानः क्वचिद्धीयमानोऽतस्तन्निषेधाहुसमो वृद्धिहानिवर्जित इत्यर्थः 'सव्वविग्गहिए' त्ति विग्रहो वक्रं लघुमि-(रि) त्यर्थः तदस्यास्तीति विग्रहिकः सर्वथा विग्रहिकः सर्वविग्रहिकः सर्वसङ्क्षिप्त इत्यर्थः, 'उवरिमहेट्ठिल्लेसु खुड्डागपयरेसु' त्ति उपरिमो यमवधीकृत्योर्द्धं प्रतरवृद्धिः प्रवृत्ताः अधस्तनश्च यमवधीकृत्याधः प्रतरप्रवृद्धिः प्रवृत्ता, ततस्तयोरुपरितनाधस्तनयोः क्षुल्लकप्रतरयोः शेषापेक्षया लघुतरयो रज्जुप्रमाणायामविष्कम्भयोस्तिर्यग्लोकमध्यभागवर्तिनोः 'एत्थ णं' ति एतयोः–प्रज्ञापकेनोपदर्श्यमानतया प्रत्यक्षयोः 'विग्गहविग्गहिए' त्ति, विग्रहो–वक्रं तद्युक्तो विग्रहः शरीरं यस्यासि स विग्रहविग्रहिकः।

१३/८९. 'विग्गहकंडए' त्ति विग्रहो–वक्रं कण्डकं–अवयवो विग्रहरूपं कण्डकं–विग्रहकण्डकं तत्र ब्रह्मलोककूर्प्पर इत्यर्थः यत्र वा प्रदेशवृद्ध्या हान्या वा वक्रं भवति तद्विग्रहकण्डकं, तच्च प्रायो लोकान्तेष्वस्तीति॥

अथ लोकसंस्थानद्वारं, तत्र च–

१३/९१. 'सव्वत्थोवे तिरियलोए' त्ति अष्टादशयोजनशतायामत्वात्, 'उड्ढलोए असंखेज्जगुणे' त्ति किञ्चिन्न्यूनसप्तरज्जूच्छ्रितत्वात् 'अहे लोए विसेसाहिए' त्ति किञ्चित्समधिकसप्तरज्जूच्छ्रितत्वादिति।

त्रयोदशशते चतुर्थः॥१३-४॥

पंचम उद्देशकः

अनन्तरोद्देशके लोकस्वरूपमुक्तं, तत्र च नारकादयो भवन्तीति नारकादिवक्तव्यतां पञ्चमोद्देशकेनाह, तस्य चेदमादिसूत्रम्–

१३/९३. 'नेरइया णं भंते!' इत्यादि, 'पढमो नेरइयउद्देसओ' इत्यादि, अयं च प्रज्ञापनायामष्टाविंशतितमस्याहारपदस्य प्रथमः, स चैवं दृश्यः–'नेरइया णं भंते! किं सचित्ताहारा अचित्ताहारा मीसाहारा?, गोयमा! नो सचित्ताहारा अचित्ताहारा नो मीसाहारा।' 'एवं असुरकुमारे' त्यादीति॥

त्रयोदशशते पञ्चमः॥१३-५॥

षष्ठम उद्देशकः

अनन्तरोद्देशके नारकादिवक्तव्यतोक्ता षष्ठेऽपि सैवोच्यते इत्येवंसम्बन्धस्यास्येदमादिसूत्रम्–

१३/९५. 'रायगिहे' इत्यादि, 'गंगेए' त्ति नवमशतद्वात्रिंशत्तमोद्देशकाभिहिते 'दो दंडग' त्ति उत्पत्तिदण्डक उद्वर्त्तनादण्डकश्चेति। अनन्तरं वैमानिकानां च्यवनमुक्तं, ते च देवा इति देवाधिकाराच्चमराभिधानस्य देवविशेषस्यावासविशेषप्ररूपणायाह–

१३/९६. 'कहिण्णं भंते!' इत्यादि, 'सभाविहूणं' ति सुधर्माद्याः पञ्चेह सभा न वाच्याः, कियद्दूरं यावदियमिह चमरचंचाराजधानीवक्तव्यता भणितव्या? इत्याह–'जाव चत्तारि पासायपंतीओ' त्ति ताश्च प्राक् प्रदर्शिता एवेति।

१३/९८. 'उवगारियलेणाइ व' त्ति 'औपकारिकलयनानि' प्रासादादिपीठकल्पानि 'उज्जाणियलेणाइ व' त्ति उद्यानगतजनानामुपकारिकगृहाणि नगरप्रदेशगृहाणि वा 'णिज्जाणियलेणाइ व' त्ति नगरनिर्गमगृहाणि 'धारिवारियलेणाइ व' त्ति धाराप्रधानं वारिजलं येषु तानि धारावारिकाणि तानि च तानि लयनानि चेति वाक्यम् 'आसयंति' त्ति 'आश्रयन्ते' ईषद्भजन्ते 'सयंति' त्ति 'श्रयन्ते' अनीषद्भजन्ते, अथवा 'आसयंति' ईषत्स्वपन्ति 'सयंति' अनीषत्स्वपन्ति 'जहा रायप्पसेणइज्जे' त्ति अनेन यत्सूचितं तदिदं–'चिट्ठंति' उद्धर्वस्थानेन तेषु तिष्ठन्ति 'निसीयंति' उपविशन्ति 'तुयट्टंति' निषण्णा आसते 'हसंति' परिहासं कुर्वन्ति 'रमन्ते' अक्षादिना रतिं कुर्वन्ति 'ललन्ति' ईप्सितक्रियाविशेषान् कुर्वन्ति 'कीलंति' कामक्रीडां कुर्वन्ति 'किड्डंति' अन्तर्भूतकारितार्थत्वादन्यान् क्रीडयन्ति 'मोहयन्ति' मोहनं–निधुवनं विदधति। 'पुरापोराणाणं सुचिन्नाणं सुपरिक्कंताणं सुभाणं कडाणं कम्माणं' ति व्याख्या चास्य प्राग्वदिति, 'वसहिं उवेंति' त्ति वासमुपयान्ति, 'एवामेवे' त्यादि, 'एवमेव' मनुष्याणामौपकारिकादिलयनवच्चमरस्य ३ चमरचञ्च आवासो न निवासस्थानं केवलं किन्तु 'किड्डारइपत्तियं' ति क्रीडायां रतिः–आनन्दः क्रीडारतिः अथवा च रतिश्च क्रीडारती सा ते वा प्रत्ययो–निमित्तं यत्र तत् क्रीडारतिप्रत्ययं तत्रागच्छतीति शेषः।

अनन्तरमसुरकुमारविशेषावासवक्तव्यतोक्ता, असुरकुमारेषु च विराधितदेशसर्वसंयमा उत्पद्यन्ते ततश्च तेषु योऽत्र तीर्थे उत्पन्नस्तद्दर्शनायोपक्रमते–

१३/१०२. 'तए ण' मित्यादि, 'सिंधुसोवीरेसु' त्ति सिन्धुनद्या

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आसन्नाः सौवीरा–जनपदविशेषाः सिन्धुसौवीरास्तेषु 'वीईभए' त्ति विगता ईतयो भयानि च यतस्तद्वीतिभयं विदर्भेति केचित् 'सव्वोउयवन्नओ' त्ति अनेनेदं सूचितं–'सव्वोउयपुप्फफलसमिद्धे रम्मे नंदणवणप्पगासे' इत्यादीति। 'नगरागरसयाणं' ति करादायकानि नगराणि सुवर्णाद्युत्पत्तिस्थानान्याकरा नगराणि चाकराश्चेति नगराकरास्तेषां शतानि नगराकरशतानि तेषां 'नगरसयाणं ति क्वचित्पाठः, 'विदिन्नछत्तचामरवालवीयणाणं' ति वितीर्णानि छत्राणि चामररूपवालव्यजनिकाश्च येषां ते तथा तेषाम्।

१३/१२०. 'अप्पत्तिएणं मणोमाणासिएणं दुक्खेणं' ति 'अप्रीतिकेन' अप्रीतिस्वभावेन मनसो विकारो मानसिकं मनसि मानसिकं न बहिरुपलक्ष्यमाणविकारं यत्तन्मनोमानसिकं तेन, केनैवंविधेन? इत्याह–दुःखेन, 'सभंडमत्तोवगरणमायाय' त्ति स्वां–स्वकीयां भाण्डमात्रां भाजनरूपं परिच्छदं उपकरणं च–शय्यादि गृहीत्वेत्यर्थः, अथवा सह भाण्डमात्रया यदुपकरणं तत्तथा तदादाय, 'समणुबद्धवेरि' त्ति अव्यवच्छिन्नवैरिभावः।

१३/१२१. 'निरयपरिसामंतेसु' त्ति नरकपरिपार्श्वतः 'चोयट्ठीए आयावा असुरकुमारावासेसु' त्ति इह 'आयाव' त्ति असुरकुमारविशेषाः, विशेषतस्तु नावगम्यत इति।

त्रयोदशशते षष्ठः ॥१३-६॥

सप्तम उद्देशकः

य एतेऽनन्तरोद्देशकेऽर्था उक्तास्ते भाषयाऽतो भाषाया एव निरूपणाय सप्तम उच्यते। तस्य चेदमादिसूत्रम्–

१३/१२४. 'रायगिहे' इत्यादि, 'आया भंते! भास' त्ति काक्वाऽध्येयं आत्मा–जीवो भाषा जीवस्वभावा भाषेत्यर्थः यतो जीवेन व्यापार्यते जीवस्य च बन्धमोक्षार्था भवति ततो जीवधर्मत्वाज्जीव इति व्यपदेशार्हा ज्ञानवदिति, अथान्या भाषा–न जीवस्वरूपा श्रोत्रेन्द्रियग्राह्यत्वेन मूर्त्ततयाऽऽत्मनो विलक्षणत्वादिति शङ्का अतः प्रश्नः, अत्रोत्तरं–'नो आया भास' त्ति आत्मरूपा नासौ भवति, पुद्गलमयत्वादात्मना च निसृज्यमानत्वात्तथाविधलोष्ठादिवत् अचेतनत्वाच्चाकाशवत्, यच्चोक्तं–जीवेन व्यापार्यमाणत्वाज्जीवः स्याज्ज्ञानवत्तदनैकान्तिकं, जीवव्यापारस्य जीवादत्यन्तं भिन्नस्वरूपेऽपि दात्रादौ दर्शनादिति।

'रूविं भंते! भास' त्ति रूपिणी भदन्त! भाषा श्रोत्रस्यानुग्रहोपघातकारित्वात्तथाविधकर्णाभरणादिवत्, अथारूपिणी भाषा चक्षुषाऽनुपलभ्यत्वाद्धर्मास्तिकायादिवदिति शङ्का अतः प्रश्नः, उत्तरं तु रूपिणी भाषा, यच्च चक्षुरग्राह्यत्वमरूपित्वसाधनायोक्तं तदनैकान्तिकं, परमाणुवायुपिशाचादीनां रूपवतामपि चक्षुरग्राह्यत्वेनाभिमतत्वादिति। अनात्मरूपाऽपि सचित्तासौ भविष्यति जीवच्छरीरवदिति पृच्छन्नाह–'सचित्ते' त्यादि, उत्तरं तु नो सचित्ता जीवनिसृष्टपुद्गलसंहतिरूपत्वात्तथाविधलेष्टुवत्, तथा 'जीवा भंते!' इत्यादि, जीवतीति जीवा–प्राणधारणस्वरूपा भाषा उतैतद्विलक्षणेति प्रश्नः, अत्रोत्तरं नो जीवा, उच्छ्वासादिप्राणानां तस्या अभावादिति। इह कैश्चिदभ्युपगम्यते अपौरुषेयी वेदभाषा, तन्मतं मनस्याधायाह–'जीवाण' मित्यादि, उत्तरं तु जीवानां भाषा, वर्णानां तालवादिव्यापारजन्यत्वात् तालवादिव्यापारस्य च जीवाश्रितत्वात्, यद्यपि चाजीवेभ्यः शब्द उत्पद्यते तथाऽपि नासौ भाषा, भाषापर्याप्तिजन्यस्यैव शब्दस्य भाषात्वेनाभिमतत्वादिति। तथा 'पुव्वि' मित्यादि, अत्रोत्तरं–नो पूर्वं भाषणाद् भाषा भवति मृत्पिण्डावस्थायां घट इव, भाष्यमाणा–निसर्गावस्थायां वर्त्तमाना भाषा घटावस्थायां घटस्वरूपमिव, 'नो' नैव भाषासमयव्यतिक्रान्ता–भाषासमयो–निसृज्यमानावस्थातो यावद्भाषापरिणामसमयस्तं व्यतिक्रान्ता या सा तथा भाषा भवति, घटसमयातिक्रान्तघटवत् कपालावस्थ इत्यर्थः। 'पुव्विं भंते!' इत्यादि, अत्रोत्तरं–'नो' नैव पूर्वं निसर्गसमयाद्भाषाद्रव्यभेदेन भाषा भिद्यते, भाष्यमाणा भाषा भिद्यते, अयमत्राभिप्रायः–इह कश्चिन्मन्दप्रयत्नो वक्ता भवति स चाभिन्नान्येव शब्दद्रव्याणि निसृजति, तानि च निसृष्टान्यसङ्ख्येयात्मकत्वात् परिस्थूरत्वाच्च विभिद्यन्ते, विभिद्यमानानि च सङ्ख्येयानि योजनानि गत्वा शब्दपरिणामत्यागमेव कुर्वन्ति, कश्चित्तु महाप्रयत्नो भवति स खल्वादानविसर्गप्रयत्नाभ्यां भित्त्वैव विसृजति, तानि च सूक्ष्मत्वाद्बहुत्वाच्चानन्तगुणवृद्ध्या वर्द्धमानानि षट्सु दिक्षु लोकान्तमाप्नुवन्ति, अत्र च यस्यामवस्थायां शब्दपरिणामस्तस्यां भाष्यमाणताऽवसेयेति, 'नो भासासमयवीइक्कंते' ति परित्यक्तभाषापरिणामेत्यर्थः उत्कृष्टप्रयत्नस्य तदानीं निवृत्तत्वादितिभावः।

अनन्तरं भाषा निरूपिता, सा च प्रायो मनःपूर्विका भवतीति मनोनिरूपणायाह–

१३/१२६. 'आया भंते! मणे' इत्यादि, एतत्सूत्राणि च भाषासूत्रवन्नेयानि, केवलमिह मनोद्रव्यसमुदयो मननोपकारी मनःपर्याप्तिनामकर्मोदयसम्पाद्यो, भेदश्च तेषां विदलनमात्रमिति।

अनन्तरं मनो निरूपितं तच्च काये सत्येव भवतीति कायनिरूपणायाह–

१३/१२८. 'आया भंते! काये' इत्यादि, आत्मा कायः कायेन कृतस्यानुभवनात्, न ह्यन्येन कृतमन्योऽनुभवति अकृतागमप्रसङ्गात्, अथान्य आत्मनः कायः कायैकदेशश्छेदेऽपि संवेदनस्य सम्पूर्णत्वेनाभ्युपगमादिति प्रश्नः, (ग्रन्थाग्रम् १३०००) उत्तरं त्वात्माऽपि कायः कथञ्चित्तदव्यतिरेकात् क्षीरनीरवत् अग्न्ययस्पिण्डवत् काञ्चनोपलवद्वा, अत एव कायस्पर्शे सत्यात्मनः संवेदनं भवति, अत एव च कायेन कृतमात्मना भवान्तरे वेद्यते, अत्यन्तभेदे चाकृतागमप्रसङ्ग इति, 'अन्नेवि काये' त्ति अत्यन्ताभेदे हि शरीरांशच्छेदे जीवांशच्छेद-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रसङ्गः, तथा च संवेदनासम्पूर्णता स्यात्, तथा शरीरस्य दाहे आत्मनोऽपि दाहप्रसङ्गेन परलोकाभावप्रसङ्ग इत्यतः कथञ्चिदात्मनोऽन्योऽपि काय इति, अन्यैस्तु कार्म्मणकाय-माश्रित्यात्मा काय इति व्याख्यातं, कार्मणकायस्य संसार्यात्मनश्च परस्पराव्यभिचरितत्वेनैकस्वरूपत्वात्, 'अन्नेवि काए' त्ति औदारिकादिकायापेक्षया जीवादन्यः कायस्तद्वि-मोचनेन तद्भेदसिद्धिरिति, 'रूविंपि काए' त्ति रूप्यपि कायः औदारिकादिकायस्थूलरूपापेक्षया, अरूप्यपि कायः कार्म्मण-कायस्यातिसूक्ष्मरूपित्वेनारूपित्वविवक्षणात्। 'एवं एक्केक्के पुच्छ' त्ति पूर्वोक्तप्रकारेणैकैकसूत्रे पृच्छा विधेया, तद्यथा– 'सचित्ते भंते! काये अचित्ते काये?' इत्यादि, अत्रोत्तरं– 'सचित्तेवि काए' जीवदवस्थायां चैतन्यसमन्वितत्वात्, 'अचित्तेवि काए' मृतावस्थायां चैतन्यस्याभावात्, 'जीवेवि काये' त्ति जीवोऽपि विवक्षितोच्छ्वासादिप्राणयुक्तोऽपि भवति कायः औदारिकादिशरीरमपेक्ष्य, 'अजीवेवि काये' त्ति अजीवोऽपि उच्छ्वासादिरहितोऽपि भवति कायः कार्म्मणशरीरमपेक्ष्य, 'जीवाणवि काये' त्ति जीवानां सम्बन्धी 'कायः' शरीरं भवति, 'अजीवाणवि काये' त्ति अजीवानामपि स्थापनार्हदादीनां 'कायः' शरीरं भवति शरीराकार इत्यर्थः 'पुव्विंपि काए' त्ति जीवसम्बन्धकालात्पूर्वमपि कायो भवति यथा भविष्यज्जीव-सम्बन्धं मृतदर्दुरशरीरं 'काइज्जमाणेवि काए' त्ति जीवेन चीयमानोऽपि कायो भवति यथा जीवच्छरीरं। 'कायसमय-वीतिक्कंतेवि काए' त्ति कायसमयो–जीवेन कायस्य कायता-करणलक्षणस्तं व्यतिक्रान्तो यः स तथा सोऽपि काय एव मृतकडेवरवत्, 'पुव्विंपि काए भिज्जइ' त्ति जीवेन कायतया ग्रहणसमयात्पूर्वमपि कायो मधुघटादिन्यायेन द्रव्यकायो भिद्यते प्रतिक्षणं पुद्गलचयापचयभावात्, 'काइज्जमाणेवि काए भिज्जइ' त्ति जीवेन कायीक्रियमाणोऽपि कायो भिद्यते, सिकताकणकलापमुष्टिग्रहणवत् पुद्गलनामनुक्षणं परिशाटन-भावात्, 'कायसमयवीतिक्कंतेऽवि काये भिज्जइ' त्ति काय-समयव्यतिक्रान्तस्य च कायता भूतभावतया घृतकुम्भादि-न्यायेन, भेदश्च पुद्गलानां तत्स्वभावतयेति, चूर्णिकारेण पुनः कायसूत्राणि कायशब्दस्य केवलशरीरार्थत्यागेन चयमात्र-वाचकत्वमङ्गीकृत्य व्याख्यातानि, यदाह–'कायसद्दो सव्वभाव-सामन्नसरीरवाई' कायशब्दः सर्वभावानां सामान्यं यच्छरीरं चयमात्रं तद्वाचक इत्यर्थः, एवं च 'आयावि काए सेसदव्वाणिवि काये' त्ति, इदमुक्तं भवति–आत्माऽपि काय। प्रदेशसञ्चय इत्यर्थः तदन्योऽप्यर्थः कायप्रदेशसञ्चयरूपत्वादिति, रूपी कायः पुद्गलस्कन्धापेक्षया, अरूपी कायो जीवधर्मास्तिकायाद्य-पेक्षया, सचित्तः कायो जीवच्छरीरापेक्षया, अचित्तः कायोऽ-चेतनसञ्चयापेक्षया, जीवः कायः–उच्छ्वासादियुक्तावयव-सञ्चयरूपः, अजीवः कायः तद्विलक्षणः, जीवानां कायो–जीवराशिः, अजीवानां कायः–परमाण्वादिराशिरिति, एवं शेषाण्यपि।

अथ कायस्यैव भेदानाह–

१३/१२९. 'कइविहे ण' मित्यादि, अयं च सप्तविधोऽपि प्राग् विस्तरेण व्याख्यातः इह तु स्थानाशून्यार्थं लेशतो व्याख्यायते, तत्र च 'ओरोलिए' त्ति औदारिकशरीरमेव पुद्गलस्कन्ध-रूपत्वादुपचीयमानत्वात्काय औदारिककायः, अयं च पर्याप्तकस्यैवेति, 'ओरालियमीसए' त्ति औदारिकश्चासौ मिश्रश्च कार्मणेनेत्यौदारिकमिश्रः अयं चापर्याप्तकस्य, 'वेउव्विय' त्ति वैक्रियः पर्याप्तकस्य देवादेः, 'वेउव्वियमीसए' त्ति वैक्रियश्चासौ मिश्रश्च कार्म्मणेनेति वैक्रियमिश्रः, अयं चाप्रतिपूर्णवैक्रियशरीरस्य देवादेः। 'आहारए' त्ति आहारकः आहारकशरीरनिर्वृत्तौ, 'आहारगमीसए' त्ति आहारक-परित्यागेनौदारिकग्रहणायोद्यतस्याहारकमिश्रो भवति मिश्रता पुनरौदारिकेणेति, 'कम्मए' त्ति विग्रहगतौ केवलिसमुद्घाते वा कार्म्मणः स्यादिति।

अनन्तरं काय उक्तस्तत्त्यागे च मरणं भवतीति तदाह–

१३/१३०. 'कतिविहे णं भंते! मरणे' इत्यादि, 'आवीइयमरणे' त्ति आ–समन्ताद्वीचयः–प्रतिसमयमनुभूयमानायुषोऽपरापरायुर्द-लिकोदयात्पूर्वपूर्वायुर्दलिकविच्युतिलक्षणाऽवस्था यस्मिन् तदावीचिकं अथवाऽविद्यमाना वीचिः–विच्छेदो यत्र तदवीचिकं अवीचिकमेवावीचिकं तच्च तन्मरणं चेत्यावीचिकमरणं, 'ओहिमरणे' त्ति अवधिः–मर्यादा ततश्चावधिना मरणमवधिमरणं, यानि हि नारकादिभवनिबन्धनतयाऽऽयुः-कर्मदलिकान्यनुभूय म्रियते, यदि पुनस्तान्येवानुभूय मरिष्यते तदा तदवधिमरणमुच्यते, तद्द्रव्यापेक्षया पुनस्तद्ग्रहणावधिं यावज्जीवस्य मृतत्वात्, संभवति च गृहीतोज्झितानां कर्म्मदलिकानां पुनर्ग्रहणं परिणामवैचित्र्यादिति, 'आइंतियमरणे' त्ति अत्यन्तं भवमात्यन्तिकं तच्च तन्मरणं चेति वाक्यं, यानि हि नरकाद्यायुष्कतया कर्मदलिकान्यनुभूय म्रियते मृतश्च न पुनस्तान्यनुभूय पुनर्मरिष्यत इत्येवं यन्मरणं, तच्च तद्द्रव्यापेक्षयाऽत्यन्तभावित्वादात्यन्तिकमिति, 'बालमरणे' त्ति अविरतमरणं पंडियमरणे' त्ति सर्वविरतमरणं।

१३/१३१. तत्रावीचिकमरणं पञ्चधा द्रव्यादिभेदेन।

१३/१३२. तत्रावीचिकमरणं च चतुर्द्धा नारकादिभेदात्, तत्र नारकद्रव्यावीचिकमरणप्रतिपादनायाह–

१३/१३३-१३५. 'जण्ण' मित्यादि, 'यत्; यस्माद्भेतोर्नैरयिका नारकत्वे द्रव्ये नारकजीवत्वेन वर्त्तमाना मरन्तीति योगः, 'नेरइयाउयत्ताए' त्ति नैरयिकायुष्कतया 'गहियाइं' ति स्पर्शनतः 'बद्धाइं' ति बन्धनतः 'पुट्ठाइं' ति पोषितानि प्रदेशप्रक्षेपतः 'कडाइं' ति विशिष्टानुभागतः 'पट्ठवियाइं' ति स्थितिसम्पादनेन 'निविट्ठाइं' ति जीवप्रदेशेषु 'अभिनिविट्ठाइं' ति जीवप्रदेशेष्वभिव्याप्त्या निविष्टानि अतिगाढतां गतानीत्यर्थः, ततश्च 'अभिसमन्नागयाइं' ति अभिसमन्वागतानि– उदयावलिकायामागतानि तानि द्रव्याणि 'आविइ' त्ति किमुक्तं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भवति?–'अणुसमयं' ति अनुसमयं–प्रतिक्षणम्, एतच्च कतिपयसमयसमाश्रयणतोऽपि स्यादत आह–'निरंतरं मरंति' ति 'निरन्तरम्' अव्यवच्छेदेन सकलसमयेष्वित्यर्थः म्रियते विमुञ्चन्तीत्यर्थः 'इतिकट्टु' त्ति इतिहेतोर्नैरयिकद्रव्यावीचिकमरणमुच्यत इति शेषः, एतस्यैव निगमनार्थमाह–'से तेणट्ठेण' मित्यादि। 'एवं जाव भावावीचियमरणे' त्ति इह यावत्करणात् कालावीचिकमरणं भवावीचिकमरणं च द्रष्टव्यं, तत्र चैवं पाठः–'कालावीइयमरणे णं भंते! कइविहे पण्णत्ते?, गोयमा! चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा–नेरइयकालावीइयमरणे ४, से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ नेरइयकालावीचियमरणे २ ?, गोयमा! जन्नं नेरइया नेरइयकाले वट्टमाणा' इत्यादि, एवं भवावीचिकमरणमप्यध्येयम्।

१३/१३७,१३८. नैरयिकद्रव्यावधिमरणसूत्रे 'जण्ण' मित्यादि, एवं चेहाक्षरघटना–नैरयिकद्रव्ये वर्त्तमाना ये नैरयिका यानि द्रव्याणि साम्प्रतं म्रियंते–त्यजन्ति तानि द्रव्याण्यनागतकाले पुनस्त इति गम्यं मरिष्यन्ते–त्यक्ष्यन्तीति यत्तन्नैरयिकद्रव्यावधिमरणमुच्यत इति शेषः 'से तेणट्ठेण' मित्यादि निगमनम्।

१३/१४३,१४४. पण्डितमरणसूत्रे 'णीहारिमे अणीहारिमे' त्ति यत्पादपोपगमनमाश्रयस्यैकदेशे विधीयते तन्निर्हारिमं, कडेवरस्य निर्हरणीयत्वात्, यच्च गिरिकन्दरादौ विधीयते तदनिर्हारिमं, कडेवरस्यानिर्हरणीयत्वात्, 'नियमं अप्पडिकम्मे' त्ति शरीरप्रतिकर्मवर्जितमेव।

१३/१४५. चतुर्विधाहारप्रत्याख्याननिष्पन्नं चेदं भवतीति, 'तं चेव' त्ति करणान्निर्हारिममनिर्हारिमं चेति दृश्यं, सप्रतिकर्म्मैव चेदं भवतीति।

त्रयोदशशते सप्तमः ॥१३-७॥

अष्टम उद्देशकः

अनन्तरोद्देशके मरणमुक्तं, तच्चायुष्कर्मस्थितिक्षयरूपमिति कर्म्मणां स्थितिप्रतिपादनार्थोऽष्टम उद्देशकस्तस्य चेदमादिसूत्रम्–

१३/१४७. 'कति णं' मित्यादि, 'एवं बंधठिइउद्देसओ' त्ति 'एवम्' अनेन प्रश्नोत्तरक्रमेण बन्धस्य–कर्म्मबन्धस्य स्थितिर्बन्धस्थितिः कर्म्मस्थितिरित्यर्थः तदर्थ उद्देशको बन्धस्थित्युद्देशको भणितव्यः, स च प्रज्ञापनायास्त्रयोविंशतितमपदस्य द्वितीयः, इह च वाचनान्तरे सङ्ग्रहणीगाथाऽस्ति, सा चेयं–

'पयडीणं भेयठिई बंधोवि य इंदियाणुवाएणं।
केरिसय जहन्नठिइं बंधइ उक्कोसियं वावि॥१॥'

अस्याश्चायमर्थः–कर्म्मप्रकृतीनां भेदो वाच्यः, स चैवं–'कइ णं भंते! कम्मपयडीओ पन्नत्ताओ?, गोयमा! अट्ठ कम्मपगडीओ पन्नत्ताओ, तं जहा–नाणावरणिज्जं दंसणावरणिज्ज' मित्यादि, तथा 'नाणावरणिज्जे णं भंते! कम्मे कतिविहे पण्णत्ते?, गोयमा! पंचविहे पण्णत्ते, जं जहा–आभिणिबोहियणाणावरणिज्जे सुयणाणावरणिज्जे' इत्यादि। तथा प्रकृतीनां स्थितिर्वाच्या, सा चैवं–नाणावरणिज्जस्स णं भंते! कम्मस्स केवइयं कालं ठिती पण्णत्ता?, गोयमा! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं तीसं सागरोवमकोडाकोडीओ' इत्यादि, तथा बन्धो ज्ञानावरणीयादिकर्म्मणामिन्द्रियानुपातेन वाच्यः, एकेन्द्रियादिर्जीवः कः कियतीं कर्म्मस्थितिं बध्नाति? इति वाच्यमित्यर्थः, स चैवम्–'एगिंदिया णं भंते! जीवा नाणावरणिज्जस्स कम्मस्स किं बंधंति?, गोयमा! जहन्नेणं सागरोवमस्स तिन्नि सत्तभागे पलिओवमस्स असंखेज्जेणं भागेणं ऊणए उक्कोसेणं ते चेव पडिपुन्ने बंधंति' इत्यादि, तथा कीदृशो जीवो जघन्यां स्थितिं कर्मणामुत्कृष्टां वा बध्नातीति वाच्यं, तच्चेदं–'नाणावरणिज्जस्स णं भंते! कम्मस्स जहन्नट्ठिइ-बंधए के?, गोयमा! अन्नयरे सुहुमसंपराए उवसामए वा खवए वा एस णं गोयमा! णाणावरणिज्जस्स कम्मस्स जहन्नट्ठिइबंधए तव्वइरित्ते अजहन्ने' इत्यादि।

त्रयोदशशतेऽष्टमः ॥१३-८॥

नवम उद्देशकः

अनन्तरोद्देशके कर्म्मस्थितिरुक्ता, कर्म्मवशाच्च वैक्रियकरणशक्तिर्भवतीति तद्वर्णनार्थो नवम उद्देशकस्तस्य चेदमादिसूत्रम्–

१३/१४९. 'रायगिहे' इत्यादि, 'केयाघडियं' ति रज्जुप्रान्तबद्धघटिकां 'केयाघडियाकिच्चहत्थगएणं' ति केयाघटिकालक्षणं यत्कृत्यं–कार्यं तत् हस्ते गतं यस्य स तथा तेनात्मना 'वेहासं' ति विभक्तिपरिणामात् 'विहायसि' आकाशे 'केयाघडियाकिच्चहत्थगयाइं' ति केयाघटिकालक्षणं कृत्यं हस्ते गतं येषां तानि तथा।

१३/१५१. 'हिरन्नपेडं' ति हिरण्यस्य मञ्जूषां 'वियलकिलं' ति विदलानां वंशार्द्धानां यः कटः स तथा तं 'सुंबकिडुं' ति वीरणकटं 'चम्मकिडुं' ति चर्म्मव्यूतं खट्वादिकं 'कंबलकिडुं' ति ऊर्णामयं कम्बलं–जीनादि।

१३/१५२. 'वग्गुली' ति चर्म्मपक्षः पक्षिविशेषः 'वग्गुलिकिच्चगएणं' ति वग्गुलीलक्षणं कृत्यं–कार्यं गतं–प्राप्तं येन स तथा तद्रूपतां गत इत्यर्थः, 'एवं जन्नोवइयवत्तव्वया भाणियव्वा' इत्यनेनेदं सूचितं–'हंता उप्पएज्जा, अणगारे णं भंते! भावियप्पा केवइयाइं पभू वग्गुलिरूवाइं विउव्वित्तए?, गोयमा! से जहानामए–जुवतिं जुवाणे हत्थेणं हत्थे गिण्हेज्जा' इत्यादि।

१३/१५३. 'जलोय' त्ति जलौका जलजो द्वीन्द्रियजीवविशेषः 'उव्विहिय' त्ति उद्ग्रह्य २ उत्प्रेर्य्य २ इत्यर्थः।

१३/१५५. 'बीयंबीयगसउणे' त्ति बीजंबीजकाभिधानः शकुनिः स्यात् 'दोवि पाए' त्ति द्वावपि पादौ 'समतुरंगेमाणे' त्ति समौ–तुल्यौ तुरङ्गस्य–अश्वस्य समोत्क्षेपणं कुर्वन् सम तुरंगयमाणः समकमुत्पाटयन्नित्यर्थः।

१३/१५५. 'पक्खिविरालए' त्ति जीवविशेषः 'डेवेमाणे' त्ति अतिक्रामन्नित्यर्थः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१३/१५८. 'वीईओ वीइं' ति कल्लोलात् कल्लोलं।

१३/१६०. 'वेरुलियं' इह यावत्करणादिदं दृश्यं–'लोहियक्खं मसारगल्लं हंसगब्भं पुलगं सोगंधियं जाईरसं अंकं अंजणं रयणं जायरूवं अंजणपुलगं फलिहं' ति, 'कुमुदहत्थगं' इत्यत्र त्वेवं यावत्करणादिदं दृश्यं–'नलिणहत्थगं सुभगहत्थगं सोगंधियहत्थगं पुंडरीयहत्थगं महापुंडरीयहत्थगं सयवत्तहत्थगं' ति।

१३/१६१. 'बिसं' ति बिसं–मृणालम् 'अवदालियं' त्ति अवदार्य–दारयित्वा।

१३/१६२. 'मुणालिय' त्ति नलिनी कायम् 'उम्मज्जिय' त्ति कायमुन्मज्ज्य–उन्मग्नं कृत्वा।

१३/१६३. 'किण्हे किण्होभासे' त्ति 'कृष्णः' कृष्णवर्णोऽञ्जनवत्स्वरूपेण कृष्ण एवावभासते–द्रष्टृणां प्रतिभातीति कृष्णावभासः, इह यावत्कारणादिदं दृश्यं–'नीले नीलोभासे हरिए हरिओभासे सीए सीओभासे निद्धे निद्धोभासे तिव्वे तिव्वोभासे किण्हे किण्हच्छाए नीले नीलच्छाए हरिए हरियच्छाए सीए सीयच्छाए तिव्वे तिव्वच्छाए घणकडियकडिच्छाए रम्मे महामेहनिउरंबभूए' त्ति तत्र च 'नीले नीलोभासे' त्ति प्रदेशान्तरे 'हरिए हरिओभासे' त्ति प्रदेशान्तर एव नीलश्च मयूरगलवत् हरितस्तु शुकपिच्छवत् हरितालाभ इति च वृद्धा, 'सीए सीओभासे' त्ति शीतः स्पर्शापेक्षया वल्ल्याद्याक्रान्तत्वादिति च वृद्धाः 'निद्धे निद्धोभासे' त्ति स्निग्धो रूक्षत्ववर्जितः 'तिव्वे तिव्वोभासे' त्ति 'तीव्र' वर्णादिगुणप्रकर्षवान् 'किण्हे किण्हच्छाए' त्ति इह कृष्णशब्दः कृष्णच्छाय इत्यस्य विशेषणमिति न पुनरुक्तता, तथाहि–कृष्णः सन् कृष्णच्छायः, छाया चादित्यावरणजन्यो वस्तुविशेषः, एवमुत्तरपदेष्वपि, 'घणकडियकडिच्छाए' त्ति अन्योऽन्यं शाखानुप्रवेशाद्बहलं निरन्तरच्छाय इत्यर्थः।

१३/१६४. 'अणुपुव्वसुजाय' इत्यत्र यावत्करणादेवं दृश्यम्–'अणुपुव्वसुजायवप्पगंभीरसीयलजला' अनुपूर्वेण सुजाता वप्रा यत्र गम्भीरं शीतलं च जलं यत्र सा तथेत्यादि, 'सद्दुन्नइयमहुरसरनाइय' त्ति इदमेवं दृश्यं–'सुयबरहिणमयणसालकोंचकोइलकोज्जकभिंकारककौंडलकजीवंजीवकनंदीमुहकविलपिंगलखगकारंडगचक्कवायकलहंससारसअणेगसउणगणमिहुणविरइयसद्दुन्नइयमहुरसरनाइय' त्ति तत्र शुकादीनां सारसान्तानामनेकेषां शकुनिगणानां मिथुनैर्विरचितं शब्दोन्नतिकं च–उन्नतशब्दकं मधुरस्वरं च नादितं–लपितं यस्यां सा तथेति।

त्रयोदशशते नवमः॥१३-९॥

दशम उद्देशकः

अनन्तरोद्देशके वैक्रियकरणमुक्तं, तच्च समुद्घाते सति छद्मस्थस्य भवतीति छाद्मस्थिकसमुद्घाताभिधानार्थो दशमः उद्देशकस्तस्य चेदमादिसूत्रम्–

१३/१६८. 'कइ णं' मित्यादि, 'छाउमत्थिय' त्ति छद्मस्थः–अकेवली तत्र भवाश्छाद्मस्थिकाः 'समुग्घाये' ति 'हन हिंसागत्योः' हननं घातः सम्–एकीभावे उत्–प्राबल्ये ततश्चैकीभावेन प्राबल्येन च घातः समुद्घातः, अथ केन सहैकीभावगमनम्?, उच्यते, यदाऽऽत्मा वेदनादिसमुद्घातं गतस्तदा वेदनाद्यनुभवज्ञानपरिणत एव भवतीति वेदनाद्यनुभवज्ञानेन सहैकीभावः, प्राबल्येन घातः कथम्?, उच्यते, यस्माद्वेदनादिसमुद्घातपरिणतो बहून् वेदनीयादिकर्मप्रदेशान् कालान्तरानुभवनयोग्यानुदीरणाकरणेनाकृष्योदये प्रक्षिप्यानुभूय निर्जरयति–आत्मप्रदेशैः सह संश्लिष्टान् सातयतीत्यर्थः अतः प्राबल्येन घाते इति, अयं चेह षड्विध इति बहुवचनं, तत्र 'वेयणासमुग्घाए' त्ति एकः, 'एवं छाउमत्थिए' इत्यादिअतिदेशः, 'जहा पन्नवणाए' त्ति इह षट्त्रिंशत्तमपद इति शेषः, ते च शेषाः पञ्चैवं–'कसायसमुग्घाए २ मारणंतियसमुग्घाए ३ वेउव्वियसमुग्घाए ४ तेयगसमुग्घाए ५ आहारगसमुग्घाए ६' त्ति, तत्र वेदनासमुद्घातः असद्वेद्यकर्म्माश्रयः कषायसमुद्घातः कषायाख्यचारित्रमोहनीयकर्म्माश्रयः मारणान्तिकसमुद्घातः अन्तर्मुहूर्त्तशेषायुष्ककर्माश्रयः वैकुर्विकतैजसाहारकसमुद्घाताः शरीरनामकर्माश्रयाः, तत्र वेदनासमुद्घातसमुद्धत आत्मा वेदनीयकर्मपुद्गलशातं करोति, कषायसमुद्घातसमुद्धतः कषायपुद्गलशातं, मारणान्तिकसमुद्घातसमुद्धत आयुष्ककर्मपुद्गलशातं वैकुर्विकसमुद्घातसमुद्धतस्तु जीवप्रदेशान् शरीराद्बहिर्निष्काश्य शरीरविष्कम्भबाहल्यमात्रमायामतश्च सङ्ख्येयानि योजनानि दण्डं निसृजति निसृज्य च यथास्थूलान् वैक्रियशरीरनामकर्म्मपुद्गलान् प्राग्बद्धान् सातयति सूक्ष्मांश्चादत्ते, यथोक्तं–'वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहणइ समोहणित्ता संखेज्जाइं जोयणाइं दंडं निसिरइ २ अहाबायरे पोग्गले परिसाडेइ २ अहासुहुमे पोग्गले आइयइ' त्ति। एवं तैजसाहारकसमुद्घातावपि व्याख्येयाविति॥

त्रयोदशशते दशमः॥१३-१०॥

समाप्तं च त्रयोदशं शतम्॥१३॥

त्रयोदशस्यास्य शतस्य वृत्तिः, कृता मया पूज्यपदप्रसादात्।
न ह्यन्धकारे विहितोद्यमोऽपि, दीपं विना पश्यति वस्तुजातम्॥

॥ इति समाप्तं श्रीमदभयदेवसूरिविरचितायां
भगवत्यां शतकं त्रयोदशम्॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथ चतुर्दशं शतकम्

प्रथम उद्देशकः

व्याख्यातं विचित्रार्थं त्रयोदशं शतम्, अथ विचित्रार्थमेव क्रमायातं चतुर्दशमारभ्यते, तत्र च दशोद्देशकास्तत्सङ्ग्रहगाथा चेयम्–
'चरउम्माद सरीरे' इत्यादि, तत्र 'चर' त्ति सूचनामात्रत्वादस्य चरमशब्दोपलक्षितोऽपि चरमः प्रथम उद्देशकः, 'उम्माय' त्ति उन्मादार्थाभिधायकत्वादुन्मादो द्वितीयः, 'सरीरे' त्ति शरीरशब्दोपलक्षितत्वाच्छरीरस्तृतीयः, 'पुग्गल' त्ति पुद्गलार्थाभिधायकत्वात्पुद्गलश्चतुर्थः, 'अगणी' ति अग्निशब्दोपलक्षितत्वादग्निः पञ्चमः। किमाहारे' त्ति किमाहारा इत्येवंविधप्रश्नोपलक्षितत्वात्किमाहारः षष्ठः, 'संसिट्ठ' त्ति चिरसंसिट्ठोऽसि गोयम' त्ति इत्यत्र पदे यः संश्लिष्टशब्दस्तदुपलक्षितत्वात् संश्लिष्टोद्देशकः सप्तमः, 'अंतरे' त्ति पृथिवीनामन्तराभिधायकत्वादन्तरोद्देशकोऽष्टमः, 'अणगारे' त्ति अणगारेति पूर्वपदत्वादनगारोद्देशको नवमः, 'केवलि' त्ति केवलीति प्रथमपदत्वात् केवली दशमोद्देशक इति॥
तत्र प्रथमोद्देशके किञ्चिल्लिख्यते–

१४/१. 'चरमं देवावासं वीतिक्कंते परमं देवावासं असंपत्ते' त्ति, 'चरमम्' अर्वाग्भागवर्त्तिनं स्थित्यादिभिः 'देवावासं' सौधर्मादिदेवलोकं 'व्यतिक्रान्तः' लङ्घितस्तदुपपातहेतुभूत-लेश्यापरिणामापेक्षया 'परमं' परभागवर्त्तिनं स्थित्यादिभिरेव 'देवावासं' सनत्कुमारादिदेवलोकं 'असम्प्राप्तः' तदुपपात-हेतुभूतलेश्यापरिणामापेक्षयैव, इदमुक्तं भवति–प्रशस्तेष्व-ध्यवसायस्थानेषूत्तरोत्तरेषु वर्त्तमान आरब्धाग्रस्थित-सौधर्मादिगतदेवस्थित्यादिबन्धयोग्यतामतिक्रान्तः परभागवर्त्ति-सनत्कुमारादिगतदेवस्थित्यादिबन्धयोग्यतां चाप्राप्तः 'एत्थ णं अंतरं' त्ति इहावसरे 'कालं करेज्ज' त्ति म्रियते यस्तस्य क्वोत्पादः? इति प्रश्नः, उत्तरं तु 'जे से तत्थ' त्ति अथ ये तत्रेति–तयोः चरमदेवावासपरमदेवावासयोः 'परिपार्श्वतः' समीपे सौधर्मदिरासन्नाः सनत्कुमारादेर्वाऽऽसन्नास्तयोर्मध्यभागे ईशानादावित्यर्थः 'तल्लेसा देवावास' त्ति यस्यां लेश्यायां वर्त्तमानः साधुर्मृतः सा लेश्या येषु ते तल्लेश्या देवावासाः 'तहिं' ति तेषु देवावासेषु तस्यानगारस्य गतिर्भवतीति, यत उच्यते–'जल्लेसे मरइ जीवे तल्लेसे चेव उववज्जइ' त्ति 'से य' त्ति से पुनरनगारस्तत्र मध्यमभागवर्त्तिनि देवावासे गतः 'विराहिज्ज' त्ति येन लेश्यापरिणामेन तत्रोत्पन्नस्तं परिणामं यदि विराधयेत्तदा 'कम्मलेस्सामेव' त्ति कर्म्मणः सकाशाद्या लेश्या–जीवपरिणतिः सा कर्म्मलेश्या भावलेश्येत्यर्थः 'तामेव प्रतिपतति' तस्या एव प्रतिपतति अशुभतरतां याति न तु द्रव्यलेश्यायाः प्रतिपतति, सा हि प्राक्तन्येवास्ते, द्रव्यतोऽवस्थितलेश्यत्वाद्देवानामिति।
पक्षान्तरमाह–'से य तत्थे' त्यादि, 'सः' अनगारः 'त.' मध्यमदेवावासे गतः सन् यदि न विराधयेत्तं परिणामं तदा तामेव च लेश्यां ययोत्पन्नः 'उपसम्पद्य' आश्रित्य 'विहरति' आस्त इति॥
इदं सामान्यं देवावासमाश्रित्योक्तं, अथ विशेषितं तमेवाश्रित्याह–

१४/२. 'अणगारे ण' मित्यादि, ननु यो भावितात्माऽनगारः स कथमसुरकुमारेषूत्पत्स्यते विराधितसंयमानां तत्रोत्पादादिति, उच्यते, पूर्वकालापेक्षया भावितात्मत्वम्, अन्तकाले च संयमविराधनासद्भावादसुरकुमारादितयोपपात इति न दोषः, बालतपस्वी वाऽयं भावितात्मा द्रष्टव्य इति॥
अनन्तरं देवगतिरुक्तेति गत्याधिकाराच्चारकगतिमाश्रित्याह–

१४/३. 'नेरइयाण' मित्यादि, 'कहं सीहा गइ' त्ति 'कथं' केन प्रकारेण कीदृशीत्यर्थः शीघ्रा गतिः, नारकाणामुत्पद्यमानानां शीघ्रा गतिर्भवतीति प्रतीतं, यादृशेन च शीघ्रत्वेन शीघ्राऽसाविति च न प्रतीतमित्यतः प्रश्नः कृतः 'कहं सीहे गइविसए' त्ति कथमिति कीदृशः 'सीहे' त्ति शीघ्रगतिहेतुत्वाच्छीघ्रो गतिविषयो–गतिगोचरस्तद्धेतुत्वात्काल इत्यर्थः, कीदृशी शीघ्रा गतिः? कीदृशश्च तत्कालः? इति तात्पर्यं, 'तरुणे' त्ति प्रवर्द्धमानवयाः, स च दुर्बलोऽपि स्यादत आह–'बलवं' ति शारीरप्राणवान्, बलं च कालविशेषाद्विशिष्टं भवतीत्यत आह–'जुगवं' ति युगं–सुषमदुष्षमादिः कालविशेषस्तत् प्रशस्तं विशिष्टबल-हेतुभूतं यस्यास्त्यसौ युगवान्, यावत्करणादिदं दृश्यं–'जुवाणे' वयःप्राप्तः 'अप्पायंके' अल्पशब्दस्याभावार्थत्वादनातङ्को–नीरोगः 'थिरग्गहत्थे' स्थिराग्रहस्तः सुलेखकवत् 'दढपाणिपायपासपिट्ठंतरोरुपरिणए' दृढं पाणिपादं यस्य पार्श्वौ पृष्ठ्यन्तरे च ऊरू च परिणते–परिनिष्ठिततां गते यस्य स तथा उत्तमसंहनन इत्यर्थः, 'तलजमलजुयलपरिघनिभबाहू' तलौ–तालवृक्षौ तयोर्यमलं–समश्रेणीकं यद् युगलं–द्वयं परिघश्च–अर्गला तन्निभौ–तत्सदृशौ दीर्घसरलपीनत्वादिना बाहू यस्य स तथा, 'चम्मेट्ठदुहणमुट्ठियसमाहयनिचियगायकाए' चर्मेष्टया द्रुघणेन मुष्टिकेन च समाहतानि अभ्यासप्रवृत्तस्य निचितानि गात्राणि यत्र स तथाविधः कायो यस्य स तथा, चर्मेष्टादयश्च लोकप्रतीताः, 'ओरसबलसमन्नागए' आन्तर-बलयुक्तः 'लंघणपवणजइणवायामसमत्थे' जविनशब्दः–शीघ्रवचनः 'छेए' प्रयोगज्ञः 'दक्खे' शीघ्रकारी 'पत्तट्ठे' अधिकृतकर्म्मणि निष्ठां गतः 'कुसले' आलोचितकारी 'मेहावी' सकृतश्रुतदृष्टकर्म्मज्ञः 'निउणे' उपायारम्भकः, एवंविधस्य हि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुरुषस्य शीघ्र गत्यादिकं भवतीत्यतो बहुविशेषणोपादानमिति, 'आउंटियं' ति सङ्कोचितं 'विक्खिन्नं' ति 'विकीर्णं' प्रसारितं 'साहरेज्ज' त्ति 'साहरेत्' सङ्कोचयेत् 'विक्खिरेज्ज' त्ति विकिरेत्-प्रसारयेत् 'उम्मिसियं' ति 'उन्मिषितम्' उन्मीलितं 'निमिसेज्ज' त्ति निमीलयेत्, 'भवेयारूवे' त्ति काक्वाऽध्येयं, काकुपाठे चायमर्थः स्यात् यदुतैवं मन्यसे त्वं गौतम! भवेत्तद्रूपं-भवेत्स स्वभावः शीघ्रतायां नरकगतेस्तद्विषयस्य च यदुक्तं विशेषणपुरुषबाहुप्रसारणादेरिति एवं गौतममतमाशङ्क्य भगवानाह-नायमर्थः समर्थः, अथ कस्मादेवमित्याह-'नेरइयाण' मित्यादि, अयमभिप्रायः- नारकाणां गतिरेकद्वित्रिसमया बाहुप्रसारणादिका चासङ्ख्येय-समयेति कथं तादृशी गतिर्भवति नारकाणामिति, तत्र च 'एगसमएण व' त्ति एकेन समयेनोपपद्यन्त इति योगः, ते च ऋजुगतावेव, वाशब्दो विकल्पे, इह च विग्रहशब्दो न सम्बन्धितः, तस्यैकसामायिकस्याभावात्, 'दुसमएण व' त्ति द्वौ समयौ यत्र स द्विसमयस्तेन विग्रहेणेति योगः, एवं त्रिसमयेन वा विग्रहेण-वक्रेण, तत्र द्विसमयो विग्रह एवं-यदा भरतस्य पूर्वस्या दिशो नरके पश्चिमायामुत्पद्यते तदैकेन समयेनाधो याति द्वितीयेन तु तिर्यगुत्पत्तिस्थानमिति, त्रिसमयविग्रहस्त्वेवं-यदा भरतस्य पूर्वदक्षिणाया दिशो नारकेऽपरोत्तरायां दिशि गत्वोत्पद्यते तदैकेन समयेनाधः समश्रेण्या याति द्वितीयेन च तिर्यक् पश्चिमायां तृतीयेन तु तिर्यगेव वायव्यां दिशि उत्पत्तिस्थानमिति, तदनेन गतिकाल उक्तः, एतदभिधानाच्च शीघ्रा गतिर्यादृशी तदुक्तमिति।

अथ निगमयन्नाह-'नेरइयाण' मित्यादि, 'तहा सीहा गइ' त्ति यथोत्कृष्टतः समयत्रये भवति 'तहा सीहे गइविसए' त्ति तथैव, 'एगिंदियाणं चउसामइए विग्गहे' त्ति उत्कर्षतश्चतुःसमय एकेन्द्रियाणां 'विग्रहो' वक्रगतिर्भवति, कथम्? उच्यते, त्रसनाड्या बहिस्तादधोलोके विदिशो दिशं यात्येकेन, जीवानामनुश्रेणिगमनात्, द्वितीयेन तु लोकमध्ये प्रविशति तृतीयेनोर्ध्वं याति चतुर्थेन तु त्रसनाडीतो निर्गत्य दिग्व्यवस्थितमुत्पादस्थानं प्राप्नोतीति, एतच्च बाहुल्यमङ्गीकृत्योच्यते, अन्यथा पञ्चसमयोऽपि विग्रहो भवेदेकेन्द्रियाणां, तथाहि-त्रसनाड्या बहिस्तादधोलोके विदिशो दिशं यात्येकेन द्वितीयेन लोकमध्ये तृतीयेनोर्ध्वलोके चतुर्थेन ततस्तिर्यक् पूर्वादिदिशो निर्गच्छति। ततः पञ्चमेन विदिग्व्यवस्थितमुत्पत्तिस्थानं यातीति, उक्तञ्च-

'विदिसाउ दिसिं पढमे बीए पइ सरइ नाडिमज्झंमि।
उड्ढं तइए तुरिए उ नीइ विदिसं तु पंचमए॥१॥'

(विदिशो दिशं प्रति सरति प्रथमे द्वितीये नाडीमध्यं। तृतीय ऊर्ध्वं तुर्ये निर्गच्छति पंचमे तु विदिशं॥१॥) इति, 'सेसं तं चेव' त्ति 'पुढविक्काइयाणं भंते! कहं सीहा गई?' इत्यादि सर्वं यथा नारकाणां तथा वाच्यमित्यर्थः।

अनन्तरं गतिमाश्रित्य नारकादिदण्डक उक्तः, अथानन्तरोत्पन्नत्वादि प्रतीत्यापरं तमेवाह-

१४/४,५. 'नेरइया ण' मित्यादि, 'अणंतरोववन्नग' त्ति न विद्यते अन्तरं-समयादिव्यवधानं उपपन्ने-उपपाते येषां ते अनन्तरोपपन्नकाः 'परंपरोववन्नग' त्ति परम्परा-द्वित्रादिसमयता उपपन्ने-उपपाते येषां ते परम्परोपपन्नकाः, 'अणंतरपरंपरअणुववन्नग' त्ति अनन्तरं-अव्यवधानं परम्परं च-द्वित्रादिसमयरूपमविद्यमानं उत्पन्नं-उत्पादो येषां ते तथा, एते च विग्रहगतिकाः, विग्रहगतौ हि द्विविधस्याप्युत्पादस्याविद्यमानत्वादिति॥

अथानन्तररोपपन्नादीनाश्रित्यायुर्बन्धमभिधातुमाह-

१४/६-८. 'अणंतरे' त्यादि, इह चानन्तरोपन्नानामनन्तरपरम्परानुपपन्नानां च चतुर्विधस्याप्यायुषः प्रतिषेधोऽध्येतव्यः, तस्यामवस्थायां तथाविधाध्यवसायस्थानाभावेन सर्वजीवानामायुषो बन्धाभावात्, स्वायुषस्त्रिभागादौ च शेषे बन्धसद्भावात्, परम्परोपपन्नकास्तु स्वायुषः षण्मासे शेषे मतान्तरेणोत्कर्षतः षण्मासे जघन्यतश्चान्तर्मुहूर्ते शेषे भवप्रत्ययात्तिर्यग्मनुष्यायुषी एव कुर्वन्ति नेतरे इति, 'एवं जाव वेमाणिय' त्ति अनेनोक्तालापकन्नययुक्तश्चतुर्विंशतिदण्डकोऽध्येतव्य इति सूचितं, यश्चात्र विशेषस्तं दर्शयितुमाह-'नवरं पंचिंदिए' त्यादि।

अथानन्तरनिर्गतत्वादिनाऽपरं दण्डकमाह-

१४/९,१०. 'नेरइया ण' मित्यादि, तत्र निश्चितं स्थानान्तरप्राप्त्या गतं-गमनं निर्गतं अनन्तरं-समयादिना निर्व्यवधानं निर्गतं येषां तेऽनन्तरनिर्गतास्ते च येषां नरकादुद्वृत्तानां स्थानान्तरं प्राप्तानां प्रथम समयो वर्त्तते, तथा परम्परेण-समयपरम्परया निर्गतं येषां ते तथा, ते च येषां नरकादुद्वृत्तानामुत्पत्तिस्थानप्राप्तानां द्व्यादयः समयाः अनन्तरपरम्परानिर्गतास्तु ये नरकादुद्वृत्ताः सन्तो विग्रहगतौ वर्त्तन्ते न तावदुत्पादक्षेत्रमासादयन्ति तेषामनन्तरभावेन परम्परभावेन चोत्पादक्षेत्राप्राप्तत्वेन निश्चयेनानिर्गतत्वादिति।

अथानन्तरनिर्गतादीनाश्रित्यायुर्बन्धमभिधातुमाह-

१४/११-१३. 'अणंतरे' त्यादि, इह च परम्परानिर्गता नारकाः सर्वाण्यायूंषि बध्नन्ति, यतस्ते मनुष्याः पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च एव च भवन्ति, ते च सर्वायुर्बन्धका एवेति, एवं सर्वेऽपि परम्परानिर्गता वैक्रियजन्मानः, औदारिकजन्मानोऽप्युद्वृत्ताः केचिन्मनुष्यपञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चो भवन्त्यतस्तेऽपि सर्वायुर्बन्धका एवेति।

अनन्तरं निर्गता उक्तास्ते च क्वचिदुत्पद्यमानाः सुखेनोत्पद्यन्ते दुःखेन वेति दुःखोत्पन्नकानाश्रित्याह-

१४/१४. 'नेरइये' त्यादि, 'अनंतरखेदोववन्नग' त्ति अनन्तरं-समयाद्यव्यवहितं खेदेन-दुःखेनोपपन्नं-उत्पादक्षेत्रप्राप्तिलक्षणं येषां तेऽनन्तरखेदोपपन्नकाः खेदप्रधानोत्पत्तिप्रथमसमयवर्त्तिन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इत्यर्थः 'परंपरक्खेओववन्नग' त्ति परम्पराद्वित्रादिसमयता खेदेनोपपन्ने उत्पादे–येषां ते परम्परखेदोपपन्नकाः, 'अणंतरपरंपरखेदाणुववन्नग' त्ति अनन्तरं परम्परं च खेदेन नास्त्युपपन्नकं येषां ते तथा विग्रहगतिवर्त्तिन इत्यर्थः, 'ते चेव चत्तारि दंडगा भाणियव्व' त्ति त एव पूर्वोक्ता उत्पन्नदण्डकादयः खेदशब्दविशेषिताश्चत्वारो दण्डका भणितव्याः, तत्र च प्रथमः खेदोपपन्नदण्डको द्वितीयस्तदायुष्कदण्डकस्तृतीयः खेदनिर्गत-दण्डकश्चतुर्थस्तु तदायुष्कदण्डक इति।

चतुर्दशशते प्रथमः ॥१४-१॥

द्वितीय उद्देशकः

अनन्तरोद्देशकेऽनन्तरोपपन्ननैरयिकादिवक्तव्यतोक्ता,
नैरयिकादयश्च मोहवन्तो भवन्ति, मोहश्चोन्माद इत्युन्माद-प्ररूपणार्थो द्वितीय उद्देशकः, तस्य चेदमादिसूत्रम्–

१४/१६. 'कतिविहे ण' मित्यादि, 'उन्मादः' उन्मत्तता विविक्तचेतनाभ्रंश इत्यर्थः 'जक्खाएसे य' त्ति यक्षो–देवस्तेनावेशः–प्राणिनोऽधिष्ठानं यक्षावेशः, 'मोहणिज्जस्से' त्यादि तत्र मोहनीयं–मिथ्यात्वमोहनीयं तस्योदयादुन्मादो भवति यतस्तदुदयवर्त्ती जन्तुरतत्त्वं तत्त्वं मन्यते तत्त्वमपि चातत्त्वं, चारित्रमोहनीयं वा यतस्तदुदये जानन्नपि विषयादीनां स्वरूपमजानन्निव वर्त्तते, अथवा चारित्र-मोहनीयस्यैव विशेषो वेदाख्यो मोहनीयं, यतस्तदुदयविशेषेऽप्युन्मत्त एव भवति। यदाह–

'चिंतइ १ दट्ठुमिच्छइ २ दीहं नीससइ ३ तह जरे ४ दाहे ५।
भत्तअरोअग ६ मुच्छा ७ उम्माय ८ न याणई ९ मरणं १०॥१॥'

इति। (चिन्तयति द्रष्टुमिच्छति दीर्घं निःश्वसिति तथा ज्वरो दाहः। भक्तारोचकत्वं मूर्च्छा उन्मादो न जानाति मरणं च।)
एतयोश्चोन्मादत्वे समानेऽपि विशेषं दर्शयन्नाह–
'तत्थ ण' मित्यादि तत्र तयोर्मध्ये 'सुहवेयणतराए चेव' त्ति अतिशयेन सुखेन–मोहजन्योन्मादापेक्षयाऽक्लेशेन वेदनं–अनुभवनं यस्यासौ सुखवेदनतरः स एव सुखवेदनतरकः, चैवशब्दः स्वरूपावधारणे, 'सुहविमोयणतराए चेव' त्ति अतिशयेन सुखेन विमोचनं–वियोजनं यस्मादसौ सुखविमोचनतरः, कप्रत्ययस्तथैव। 'तत्थ ण' मित्यादि, मोह-जन्योन्माद इतरापेक्षया दुःखवेदनतरो भवत्यनन्तसंसार-कारणत्वात्, संसारस्य च दुःखवेदनस्वभावत्वात्, इतरस्तु सुखवेदनतर एव, एकभविकत्वादिति, तथा मोहजोन्माद इतरापेक्षया दुःखविमोचनतरो भवति, विद्यामन्त्रतन्त्रदेवानुग्रहवतामपि वार्त्तिकानां तस्यासाध्यत्वात्, इतरस्तु सुखविमोचनतर एव भवति यन्त्रमात्रेणापि तस्य निग्रहीतुं शक्यत्वादिति, आह च–

'सर्वज्ञमन्त्रवाद्यपि यस्य न सर्वस्य निग्रहे शक्तः।
मिथ्यामोहोन्मादः स केन किल कथ्यतां तुल्यः?॥१॥'

इदं च द्वयमपि चतुर्विंशतिदण्डके योजयन्नाह–

१४/१७-२०. 'नेरइयाण' मित्यादि, 'पुढविक्काइयाण' मित्यादौ यदुक्तं 'जहा नेरइयाणं' ति तेन देवे वा से असुभे पोग्गले पक्खिवेज्जा' इत्येतद् यक्षावेशे पृथिव्यादिसूत्रेषु अध्यापितं, 'वाणमंतरे' त्यादौ तु यदुक्तं 'जहा असुरकुमाराणं' ति तेन यक्षावेश एव व्यन्तरादिसूत्रेषु 'देवे वा से महड्ढियतराए' इत्येतदध्यापितं, मोहोन्मादालापकस्तु सर्वसूत्रेषु समान इति।
अनन्तरं वैमानिकदेवानां मोहनीयोन्मादलक्षणः क्रियाविशेष उक्तः। अथ वृष्टिकायकरणरूपं तमेव देवेन्द्रादिदेवानां दर्शयन् प्रस्तावनापूर्वकमाह–

१४/२१. 'अत्थि ण' मित्यादि, 'अत्थि' त्ति अस्त्येतत् 'पज्जन्ने' त्ति पर्जन्यः 'कालवासि' त्ति काले–प्रावृषि वर्षतीत्येवंशीलः कालवर्षी, अथवा कालश्चासौ वर्षी चेति कालवर्षी, 'वृष्टिकायं' प्रवर्षणतो जलसमूहं प्रकरोति प्रवर्षतीत्यर्थः, इह स्थाने शक्रोऽपि तं प्रकरोतीति दृश्यं, तत्र च पर्जन्यस्य प्रवर्षणक्रियायां तत्स्वाभाव्यतालक्षणो विधिः प्रतीत एव, शक्रप्रवर्षणक्रिया-विधिस्त्वप्रतीत इति तं दर्शयन्नाह–

१४/२२. 'जाहे' इत्यादि, अथवा पर्जन्य इन्द्र एवोच्यते, स च कालवर्षी काले–जिनजन्मादिमहादौ वर्षतीतिकृत्वा, 'जाहे णं' ति यदा 'से कहमियाणिं पकरेइ' त्ति स शक्रः कथं तदानीं प्रकरोति?, वृष्टिकायमिति प्रकृतम्।

१४/२३,२४. असुरकुमारसूत्रे 'किं पत्तियण्णं' ति किं प्रत्ययं–कारणमाश्रित्येत्यर्थः 'जम्मणमहिमासु व' त्ति जन्ममहिमासु जन्मोत्सवान् निमित्तीकृत्येत्यर्थः।
देवक्रियाऽधिकारादिदमपरमाह–

१४/२५-२७. 'जाहे ण' मित्यादि, 'तमुक्काए' त्ति तमस्कायकारिणः 'किड्डारइपत्तियं' ति क्रीडारूपा रतिः क्रीडारतिः अथवा क्रीडा च–खेलनं रतिश्च–निधुवनं क्रीडारती सैव ते एव वा प्रत्ययः–कारणं यत्र तत् क्रीडारतिप्रत्ययं 'गुत्तीसंरक्खणहेउं व' त्ति गोपनीयद्रव्यसंरक्षणहेतोर्वेति।

चतुर्दशशते द्वितीयः ॥१४-२॥

तृतीय उद्देशकः

द्वितीयोद्देशके देवव्यतिकर उक्तः, तृतीयेऽपि स एवोच्यते इत्येवंसम्बद्धस्यास्येदमादिसूत्रम्–

१४/२९-३१. 'देवे ण' मित्यादि, इह च क्वचिदियं द्वारगाथा दृश्यते–

'महक्काए सक्कारे सत्थेणं वीईवयंति देवा उ।
वासे चेव य ठाणा नेरइयाणं तु परिणामे॥१॥'

इति, अस्याश्चार्थ उद्देशकार्थाधिगमावगम्य एवेति। 'महाकाय' त्ति महान्–बृहन् प्रशस्तो वा कायो–निकायो यस्य स महाकायः, 'महासरीरे' त्ति बृहत्तनुः। 'एवं देवदंडओ भाणियव्वो' त्ति नारकपृथिवीकायिकादीनामधिकृतव्यतिकरस्यासम्भवाद्

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देवानामेव च संभवाद्देवदण्डकोऽत्र व्यतिकरे भणितव्य इति।

प्राग् देवानाश्रित्य मध्यगमनलक्षणो दुर्विनय उक्तः, अथ नैरयिकादीनाश्रित्य विनयविशेषानाह–

१४/३२. 'अत्थि ण' मित्यादि, 'सक्कारेइ व' त्ति सत्कारो–विनयार्हेषु वन्दनादिनाऽऽदरकरणं प्रवरवस्त्रादिदानं वा 'सत्कारो पवरवत्थमाईहिं' इति वचनात् 'सम्माणेइ व' त्ति सन्मानःतथाविधप्रतिपत्तिकरणं 'किइकम्मेइ व' त्ति कृतिकर्म्म–वन्दनं कार्यकरणं वा 'अब्भुट्ठाणेइ व' त्ति अभ्युत्थानं–गौरवार्ह-दर्शने विष्टरत्यागः 'अंजलिपग्गहेइ व' त्ति अञ्जलिप्रग्रहः–अञ्जलिकरणम् 'आसणाभिग्गहेइ व' त्ति आसनाभिग्रहः–तिष्ठत एव गौरव्यस्यासनानयनपूर्वक-मुपविशतेति भणनं 'आसणाणुप्पयाणेइ व' त्ति आसनानुप्रदानं–गौरव्यमाश्रित्यासनस्य स्थानान्तरसञ्चारणं 'इंतस्स पच्चुग्गच्छणय' त्ति आगच्छतो गौरव्यस्याभिमुखगमनं 'ठियस्स पज्जुवासणय' त्ति तिष्ठतो गौरव्यस्य सेवेति 'गच्छंतस्स पडिसंसाहणय' त्ति गच्छतोऽनुव्रजनमिति, अयं च विनयो नारकाणां नास्ति, सततं दुःस्थत्वादिति।

पूर्वं विनय उक्तः, अथ तद्विपर्ययभूताविनयविशेषं देवानां परस्परेण प्रतिपादयन्नाह–

१४/३६-३९. 'अप्पड्ढिए ण' मित्यादि, 'एवं एएणं अभिलावेण' मित्यादौ 'आड्ढिउद्देसए' त्ति दशमशतस्य तृतीयोद्देशके 'निरवसेसं' ति समस्तं प्रथमं दण्डकसूत्रं वाच्यं, तत्र चाल्पर्द्धिकमहर्द्धिकालापकः समर्द्धिकालापकश्चेत्यालापकद्वयं साक्षादेव दर्शितं, केवलं समर्द्धिकालापकस्यान्तेऽयं सूत्रशेषो दृश्यः–'गोयमा! पुव्विं सत्थेणं अक्कमित्ता पच्छा वीईवएज्जा नो पुव्विं वीईवइत्ता पच्छा सत्थेणं अक्कमिज्ज' त्ति, तृतीयस्तु महर्द्धिकाल्पर्द्धिकालापक एवं–'महड्ढिए णं भंते! देवे अप्पड्ढियस्स देवस्स मज्झंमज्झेणं वीइवएज्जा?, हंता वीइवएज्जा, से णं भंते! किं सत्थेणं अक्कमित्ता पभू अणक्कमित्ता पभू?, शस्त्रेण हत्वाऽहत्वा वेत्यर्थः, 'गोयमा! अक्कमित्तावि पभू अणक्कमित्तावि पभू, से णं भंते! किं पुव्विं सत्थेणं अक्कमित्ता पच्छा वीईवएज्जा पुव्विं वीईवएज्जा पच्छा सत्थेणं अक्कमेज्जा?, गोयमा! पुव्विं वा सत्थेणं अक्कमित्ता पच्छा वीईवएज्जा पुव्विं वा वीईवइत्ता पच्छा सत्थेणं अक्कमिज्ज' त्ति, 'चत्तारि दंडगा भाणियव्व' त्ति तत्र प्रथमदण्डक उक्तालापक-त्रयात्मको देवस्य देवस्य च, द्वितीयस्त्वेवंविध एव नवरं देवस्य च देव्याश्च, एवं तृतीयोऽपि नवरं देव्याश्च देवस्य च, चतुर्थोऽप्येवं नवरं देव्याश्च देव्याश्चेति, अत एवाह–'जाव महड्ढिया वेमाणिणी अप्पड्ढियाए वेमाणिणीए' त्ति, 'मज्झंमज्झेण' मित्यादि तु पूर्वोक्तानुसारेणाध्येयमिति।

अनन्तरं देववक्तव्यक्तोक्ता, अथैकान्तदुःखितत्वेन तद्विपर्ययभूता नारका इति तद्गतवक्तव्यतामाह–

१४/४०-४२. 'रयणे' त्यादि, 'एवं वेयणापरिणामं' ति पुद्गलपरिणामवद् वेदनापरिणामं प्रत्यनुभवन्ति नारकाः, तत्र चैवमभिलापः–'रयणप्पभापुढविनेरइया णं भंते! केरिसयं वेयणापरिणामं पच्चणुब्भवमाणा विहरंति?, गोयमा! अणिट्ठं जाव अमणामं एवं जाव अहेसत्तमापुढविनेरइया' शेषसूत्रातिदेशायाह–'एवं जहा जीवाभिगमे' इत्यादि, जीवाभिगमोक्तानि चैतानि विंशतिः पदानि, तद्यथा–

'पोग्गलपरिणामं १ वेयणाइ २ लेसाइ ३ नामगोए य ४।
अरई ५ भय य ६ सोगे ७ खुहा ८ पिवासा य ९ वाही य १०॥१॥
उस्सासे ११ अणुतावे १२ कंहे १३ माणे य १४ माय १५ लोभे य १६।
चत्तारि य सन्नाओ २० नेरइयाणं परीणामे॥२॥'

इति, तत्र चाद्यपदद्वयस्याभिलापो दर्शित एव, शेषाणि त्वष्टादशाद्यपदद्वयाभिलापेनाध्येयानीति॥

चतुर्दशशते तृतीयः॥१४-३॥

चतुर्थ उद्देशकः

तृतीयोद्देशके नारकाणां पुद्गलपरिणाम उक्त इति, चतुर्थोद्देशकेऽपि पुद्गलपरिणामविशेष एवोच्यते इत्येवंसम्बन्धस्यास्येदमादिसूत्रम्–

१४/४४-४६. 'एस णं भंते'! इत्यादि, इह पुनरुद्देशकार्थसङ्ग्रहगाथा क्वचिद् दृश्यते, सा चेयं–

'पोग्गल १ खंधे २ जीवे ३ परमाणू ४ सासए य ५ चरमे य।
दुविहे खलु परिणामे अज्जीवाणं च जीवाणं ६॥१॥'

अस्याश्चार्थ उद्देशकार्थाधिगमावगम्य एवेति, 'पुग्गले' त्ति पुद्गलः परमाणुः स्कन्धरूपश्च 'तीतमणंतं सासयं समयं' ति विभक्तिपरिणामादतीते अनन्ते अपरिमाणत्वात् शाश्वते अक्षयत्वात् 'समये' काले 'समयं लुक्खी' ति समयमेकं यावदूक्षस्पर्शसद्भावादूक्षी, तथा 'समयं अलुक्खी' त्ति समयमेकं यावदरूक्षस्पर्शसद्भावाद् 'अरूक्षी' स्निग्धस्पर्शवान् बभूव, इदं च पदद्वयं परमाणौ स्कन्धे च संभवति, तथा 'समयं लुक्खी वा अलुक्खी व' त्ति समयमेव रूक्षश्चारूक्षश्च रूक्षस्निग्धलक्षणस्पर्शद्वयोपेतो बभूव, इदं च स्कन्धापेक्षं यतो द्व्यणुकादिस्कन्धे देशो रूक्षो देशश्चारूक्षो भवतीत्येवं युगपदूक्षस्निग्धस्पर्शसम्भवः, वाशब्दौ चेह समुच्चयार्थौ, एवंरूपश्च सन्नसौ किमनेकवर्णादिपरिणामं परिणमति पुनश्चैकवर्णादिपरिणामः स्यात्? इति पृच्छन्नाह–'पुव्विं च णं करणेणं अणेगवन्नं अणेगरूवं परिणामं परिणमइ' इत्यादि, 'पूर्वं च' एकवर्णादिकपरिणामात्प्रागेव 'करणेन' प्रयोगकरणेन विस्रसाकरणेन वा 'अनेकवर्णं' काललीलादिवर्णभेदेनानेकरूपं गन्धरसस्पर्शसंस्थानभेदेन 'परिणामं' पर्यायं परिणमति अतीतकालविषयत्वादस्य परिणतवानिति द्रष्टव्यं पुद्गल इति प्रकृतं, स च यदि परमाणुस्तदा समयभेदेनानेकवर्णादित्वं परिणतवान्, यदि च स्कन्धस्तदा यौगपद्येनापीति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'अह से' त्ति 'अथ' अनन्तरं सः—एष परमाणोः स्कन्धस्य चानेकवर्णादिपरिणामो 'निर्जीर्णः' क्षीणो भवति परिणामान्तराधायककारणोपनिपातवशात् 'ततः पश्चात्' निर्जरणानन्तरम् 'एकवर्णः' अपेतवर्णान्तरत्वादेकरूपो विवक्षित-गन्धादिपर्यायापेक्षयाऽपरपर्यायाणामपेतत्वात् 'सिय' त्ति बभूव अतीतकालविषयत्वादस्येति प्रश्नः, अहोत्तरमेतदेवेति, अनेन च परिणामिता पुद्गलद्रव्यस्य प्रतिपादितेति। 'एस ण' मित्यादि वर्त्तमानकालसूत्रं, तत्र च 'पडुप्पन्ने' त्ति विभक्तिपरिणामात् 'प्रत्युत्पन्ने' वर्त्तमाने 'शाश्वते' सदैव तस्य भावात् 'समये' कालमात्रे 'एवं चेव' त्ति करणात्पूर्वसूत्रोक्तमिदं दृश्यं—'समयं लुक्खी समयं अलुक्खी समयं लुक्खी वा अलुक्खी वा' इत्यादि, यच्चेहानन्तमिति नाधीतं तद्वर्त्तमानसमयस्यानन्तत्वा-सम्भवात्, अतीतानागतसूत्रयोस्त्वन्तमित्यधीतं तयोरनन्तत्व-सम्भवादिति।

अनन्तरं पुद्गलस्वरूपं निरूपितं, पुद्गलश्च स्कन्धोऽपि भवतीति पुद्गलभेदभूतस्य स्कन्धस्य स्वरूपं निरूपयन्नाह—

१४/४७. 'एस णं भंते! खंधे' इत्यादि॥

स्कन्धश्च स्वप्रदेशापेक्षया जीवोऽपि स्यादितीत्थमेव जीवस्वरूपं निरूपयन्नाह—

१४/४८. 'एस णं भंते! जीवे' इत्यादि, 'एषः' प्रत्यक्षो जीवोऽतीतेऽनन्ते शाश्वते समये समयमेकं दुःखी दुःखहेतुयोगात् समयं चादुःखी सुखहेतुयोगाद्बभूव समयमेव च दुःखी वाऽदुःखी वा, वाशब्दयोः समुच्चयोर्थत्वाद् दुःखी च सुखी च तद्धेतुयोगात्, न पुनरेकदा सुखदुःखवेदनमस्ति एकोपयोगत्वाज्जीवस्येति, एवंरूपश्च सन्नसौ स्वहेतुतः किमनेकभावं परिणामं परिणमति पुनश्चैकभावपरिणामः स्यात्? इति पृच्छन्नाह—'पुव्विं च करणेणं अणेगभावं अणेगभूयं परिणामं परिणमइ' 'पूर्वं च' एकभावपरिणामात्प्रागेव करणेन कालस्वभावादिकारणसंवलिततया शुभाशुभकर्मबन्धहेतुभूतया क्रिययाऽनेको भावः—पर्यायो दुःखित्वादिरूपो यस्मिन् स तथा तमनेकभावं परिणाममिति योगः 'अणेगभूयं' ति अनेकभावत्वादेवानेकरूपं 'परिणामं' स्वभावं 'परिणमइ' त्ति अतीतकालविषयत्वादस्य 'परिणतवान्' प्राप्तवानिति। 'अह से' त्ति अथ 'तत्' दुःखितत्वाद्यनेकभावहेतुभूतं 'वेयणिज्जे' त्ति वेदनीयं कर्म्म उपलक्षणत्वाच्चास्य ज्ञानावरणीयादि च 'निर्जीर्णं' क्षीणं ततः पश्चात् 'एगभावे' त्ति एको भावः सांसारिकसुख-विपर्ययात् स्वाभाविकसुखरूपो यस्यासावेकभावोऽत एव 'एकभूतः' एकत्वं प्राप्तः 'सिय' त्ति बभूव कर्म्मकृतधर्म्मान्तर-विरहादिति प्रश्नः, इहोत्तरमेतदेव। एवं प्रत्युत्पन्नानागतसूत्रे अपीति।

पूर्वं स्कन्ध उक्तः, स च स्कन्धरूपत्यागाद्विनाशी भवति, एवं परमाणुरपि स्यान्न वा? इत्याशङ्कायामाह—

१४/४९,५०. 'परमाणुपोग्गले णं' ति पुद्गलः स्कन्धोऽपि स्यादतः परमाणुग्रहणं 'सासए' त्ति शश्वद्भवनात् शाश्वतः नित्यः अशाश्वतस्त्वनित्यः 'सिय सासए' त्ति कथञ्चिच्छाश्वतः 'दव्वट्ठयाए' त्ति द्रव्यं—उपेक्षितपर्यायं वस्तु तदेवार्थो द्रव्यार्थ-स्तद्भावस्तत्ता तया द्रव्यार्थतया शाश्वतः स्कन्धान्तर्भविऽपि परमाणुत्वस्याविनष्टत्वात् प्रदेशलक्षणव्यपदेशान्तरव्य-पदेश्यत्वात्, 'वन्नपज्जवेहिं' ति परि—सामस्त्येनावन्ति—गच्छन्ति ये ते पर्यवा विशेषा धर्म्मा इत्यनर्थान्तरं ते च वर्णादिभेदा-दनेकधेयत्यतो विशेष्यते—वर्णस्य पर्यवा वर्णपर्यवा अतस्तैः, 'असासए' त्ति विनाशी, पर्यवाणां पर्यवत्वेनैव विनश्वरत्वादिति। परमाण्वधिकारादेवेदमाह—

१४/५१. 'परमाणु' इत्यादि, 'चरमे' त्ति यः परमाणुर्यस्माद्विवक्षित-भावाच्च्युतः सन् पुनस्तं भावं न प्राप्स्यति स तद्भावापेक्षया चरमः, एतद्विपरीतस्त्वचरम इति, तत्र 'दव्वादेसेणं' ति आदेशः—प्रकारो द्रव्यरूप आदेशो द्रव्यादेशस्तेन नो चरमः, स हि द्रव्यतः परमाणुत्वाच्च्युतः सङ्घातमवाप्यापि ततश्च्युतः परमाणुत्वलक्षणं द्रव्यत्वमवाप्स्यतीति।

'खेत्तादेसेणं' ति क्षेत्रविशेषितत्वलक्षणप्रकारेण 'स्यात्' कदाचिच्चरमः, कथम्?, यत्र क्षेत्रे केवली समुद्घातं गतस्तत्र क्षेत्रे यः परमाणुरवगाढोऽसौ तत्र क्षेत्रे तेन केवलिना समुद्घातगतेन विशेषितो न कदाचनाप्यवगाहं लप्स्यते, केवलिनो निर्वाणगमनादित्येवं क्षेत्रतश्चरमोऽसाविति, निर्विशेषणक्षेत्रापेक्षया त्वचरमः, तत्क्षेत्रावगाहस्य तेन लप्स्यमानत्वादिति।

'कालादेसेणं' ति कालविशेषितत्वलक्षणप्रकारेण 'सिय चरमे' त्ति कथञ्चिच्चरमः, कथम्?, यत्र काले पूर्वाह्णादौ केवलिना समुद्घातः कृतस्तत्रैव यः परमाणुतया संवृत्तः स च तं कालविशेषं केवलिसमुद्घात-विशेषितं न कदाचनापि प्राप्स्यति तस्य केवलिनः सिद्धिगमनेन पुनः समुद्घाताभावादिति तदपेक्षया कालतश्चरमोऽसाविति, निर्विशेषणकालापेक्षया त्वचरम इति। 'भावाएसेणं' ति भावो—वर्णादिविशेष-स्तद्विशेषलक्षणप्रकारेण 'स्याच्चरमः' कथञ्चिच्चरमः, कथं?, विवक्षितकेवलिसमुद्घातावसरे यः पुद्गलो वर्णादिभावविशेषं परिणतः स विवक्षितकेवलिसमुद्घातविशेषितवर्णपरिणामा-पेक्षया चरमो यस्मात्तत् केवलिनिर्वाणे पुनस्तं परिणाममसौ न प्राप्स्यतीति, इदं च व्याख्यानं चूर्णिकारमतमुपजीव्य कृतमिति। अनन्तरं परमाणोश्चरमत्वावचरमत्वलक्षणः परिणामः प्रतिपादितः, अथ परिणामस्यैव भेदाभिधानायाह—

१४/५२. 'कइविहे ण' मित्यादि, तत्र परिणमनं—द्रव्यस्यावस्थान्तर-गमनं परिणामः, आह च—

'परिणामो ह्यर्थान्तरगमनं न च सर्वथा व्यवस्थानम्।
न तु सर्वथा विनाशः परिणामस्तद्विदामिष्टः॥१॥'

इति, 'परिणामपयं' ति प्रज्ञापनायां त्रयोदशं परिणामपदं, तच्चैवं—'जीवपरिणामे णं भंते! कइविहे पन्नत्ते?, गोयमा! दसविहे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पण्णत्ते, तं जहा–गइपरिणामे इंदियपरिणामे एवं कसायलेसा जोगउवओगे नाणदंसणचरित्तवेदपरिणामे 'इत्यादि, तथा– 'अजीवपरिणामे णं भंते! कइविहे पण्णत्ते?, गोयमा! दसविहे पण्णत्ते तं जहा–बंधणपरिणामे १ गइपरिणामे २ एवं संठाण ३ भेय ४ वन्न ५ गंध ६ रस ७ फास ८ अगुरुलहुय ९ सद्दपरिणामे १०' इत्यादि।

चतुर्दशशते चतुर्थः॥१४-४॥

पंचम उद्देशकः

चतुर्थोद्देशके परिणाम उक्त इति परिणामाधिकाराद्व्यतिव्रजनादिकं विचित्रं परिणाममधिकृत्य पञ्चमोद्देशकमाह, तस्य चेदमादिसूत्रम्–

१४/५४,५५. 'नेरइए ण' मित्यादि, इह च क्वचिदुद्देशकार्थसङ्ग्रहगाथा दृश्यते, सा चेयं–

'नेरइय अगणिमज्झे दस ठाणा तिरिय पोग्गले देवे।
पव्वयभित्ती उल्लंघणा य पल्लंघणा चेव॥१॥'

इति, अर्थश्चास्या उद्देशकार्थावगमगम्य इति, 'नो खलु तत्थ सत्थं कमइ' त्ति विग्रहगतिसमापन्नो हि कार्म्मणशरीरत्वेन सूक्ष्मः, सूक्ष्मत्वाच्च तत्र 'शस्त्रम्' अग्न्यादिकं न क्रामति। 'तत्थ णं जे से' इत्यादि, अविग्रहगतिसमापन्न उत्पत्तिक्षेत्रोपपन्नोऽभिधीयते न तु ऋजुगतिसमापन्नः तस्येह प्रकरणेऽनधिकृतत्वात्, स चाग्निकायस्य मध्येन न व्यतिव्रजति, नारकक्षेत्रे बादराग्निकायस्याभावात्, मनुष्यक्षेत्र एव तद्भावात्, यच्चोत्तराध्ययनादिषु श्रूयते–'हुयासणे जलंतंमि दड्ढपुव्वो अणेगसो।' इत्यादि तदग्निसदृशद्रव्यान्तरापेक्षया-ऽवसेयं, संभवन्ति च तथाविधशक्तिमन्ति द्रव्याणि तेजोलेश्याद्रव्यवदिति।

१४/५६,५७. असुरकुमारसूत्रे विग्रहगतिको नारकवत्, अविग्रहगतिकस्तु कोऽप्यग्नेर्मध्येन व्यतिव्रजेत् यो मनुष्यलोकमागच्छति, यस्तु न तत्रागच्छति असौ न व्यतिव्रजेत्, व्यतिव्रजन्नपि च न ध्यायते ध्मायते वा, यतो न खलु तत्र शस्त्रं क्रमते सूक्ष्मत्वाद्वैक्रियशरीरस्य शीघ्रत्वाच्च तद्गतेरिति। 'एगिंदिया जहा नेरइय' त्ति कथम्?, यतो विग्रहे तेप्यग्निमध्येन व्यतिव्रजन्ति सूक्ष्मत्वान्न दह्यन्ते च, अविग्रहगतिसमापन्नकाश्च तेऽपि नाग्नेर्मध्येन व्यतिव्रजन्ति स्थावरत्वात्, तेजोवायूनां गतित्रसतयाऽग्नेर्मध्येन व्यतिव्रजनं यद् दृश्यते तदिह न विवक्षितमिति सम्भाव्यते, स्थावरत्वमात्रस्यैव विवक्षितत्वात्, स्थावरत्वे हि अस्ति कथञ्चित्तेषां गत्यभावो यदपेक्षया स्थावरास्ते व्यपदिश्यन्ते, अन्यथाऽधिकृतव्यपदेशस्य निर्निबन्धनता स्यात्, तथा यद्वाय्वादिपारतन्त्र्येण पृथिव्यादीनामग्निमध्येन व्यतिव्रजनं दृश्यते तदिह न विवक्षितं, स्वातन्त्र्यकृतस्यैव तस्य विवक्षणात्, चूर्णिकारः पुनरेवमाह–'एगिंदियाण गई नत्थि' त्ति ते न गच्छन्ति, एगे वाउक्काइया परपेरणेसु गच्छंति विराहिज्जंति य' त्ति।

१४/५९,६०. पञ्चेन्द्रियतिर्यक्सूत्रे 'इड्ढिप्पत्ता य' त्ति वैक्रियलब्धिसम्पन्नाः 'अत्थेगइए अगणिकायस्से' त्यादि, अस्त्येककः कश्चित् पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिको यो मनुष्यलोकवर्त्ती स तत्राग्निकायसम्भवात्तन्मध्येन व्यतिव्रजेत्, यस्तु मनुष्यक्षेत्राद्बहिर्नासावग्नेर्मध्येन व्यतिव्रजेत्, अग्नेरेव तत्राभावात्, तदन्यो वा तथाविधसामग्र्यभावात्, 'नो खलु तत्थ सत्थं कमइ' त्ति वैक्रियादिलब्धिमति पञ्चेन्द्रियतिरश्चि नाग्न्यादिकं शस्त्रं क्रमत इति।

अथ दश स्थानानीति द्वारमभिधातुमाह–

१४/६१. 'नेरइया दस ठाणाइं' इत्यादि, तत्र 'अणिट्ठा गइ' त्ति अप्रशस्तविहायोगतिनामोदयसम्पाद्या नरकगतिरूपा वा, 'अणिट्ठा ठिति' त्ति नरकावस्थानरूपा नरकायुष्करूपा वा 'अणिट्ठे लावन्ने' त्ति लावण्यं–शरीराकृतिविशेषः 'अणिट्ठे जसोकित्ति' त्ति प्राकृतत्वादनिष्टेति द्रष्टव्यं यशसा–सर्वदिग्गामिप्रख्यातिरूपेण पराक्रमकृतेन वा सह कीर्त्तिः–एकदिग्गामिनी प्रख्यातिर्दानफलभूता वा यशःकीर्त्तिः अनिष्टत्वं च तस्या दुष्प्रख्यातिरूपत्वात्, 'अणिट्ठे उट्ठाणे' इत्यादि, उत्थानादयो वीर्यान्तरायक्षयोपशमादिजन्यवीर्य-विशेषाः, अनिष्टत्वं च तेषां कुत्सितत्वादिति।

१४/६३. 'पुढविक्काइए' त्यादि, 'छट्ठाणाइं' ति पृथिवीकायिकानामेकेन्द्रियत्वेन पूर्वोक्तदशस्थानकमध्ये शब्दरूपगन्धरसा न विषय इति स्पर्शादीन्येव षट् ते प्रत्यनुभवन्ति, 'इट्ठाणिट्ठा फास' त्ति सातासातोदयसम्भवात् शुभाशुभक्षेत्रोत्पत्तिभावाच्च, 'इट्ठाणिट्ठा गइ' त्ति यद्यपि तेषां स्थावरत्वेन गमनरूपा गतिर्नास्ति स्वभावतस्तथाऽपि परप्रत्यया सा भवतीति शुभाशुभत्वेनेष्टानिष्टव्यपदेशार्हा स्यात्, अथवा यद्यपि पापरूपत्वात्तिर्यग्गतिरनिष्टैव स्यात्तथाऽपीषत्प्राग्भाराऽप्रतिष्ठानादिक्षेत्रोत्पत्तिद्वारेणेष्टानिष्टगतिस्तेषां भावनीयेति, 'एवं जाव परक्कमे' त्ति वचनादिदं दृश्यम्–'इट्ठाणिट्ठा ठिई' सा च गतिवद्भावनीया 'इट्ठाणिट्ठे लावन्ने' इदं च मण्यन्धपाषाणादिषु भावनीयम् 'इट्ठाणिट्ठे जसोकित्ती' इयं सत्प्रख्यात्यसत्प्रख्यातिरूपा मण्यादिष्वेवावसेयेति, 'इट्ठाणिट्ठे उट्ठाण जाव परक्कमे' उत्थानादि च यद्यपि तेषां स्थावरत्वान्नास्ति तथाऽपि प्राग्भवानुभूतोत्थानादिसंस्कारवशात्तदिष्टमनिष्टं वाऽवसेयमिति।

१४/६४. 'बेंदिया सत्तट्ठाणाइं' त्ति शब्दरूपगन्धानां तदविषयत्वात्, रसस्पर्शादिस्थानानि च शेषाण्येकेन्द्रियाणामिवेष्टानिष्टान्यवसेयानि, गतिस्तु तेषां त्रसत्वाद्गमनरूपा द्विधाऽप्यस्ति, भवगतिस्तूत्पत्तिस्थानविशेषेणेष्टानिष्टाऽवसेयेति।

अथ 'तिरियपोग्गले देवे' इत्यादिद्वारगाथोक्तार्थाभिधानायाह–

१४/६८. 'देवे ण' मित्यादि, 'बाहिरए' त्ति भवधारणीयशरीरव्यतिरिक्तान् 'अपरियाइत्त' त्ति 'अपर्यादाय' अगृहीत्वा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'तिरियपव्वयं' ति तिरश्चीनं पर्वतं गच्छतो मार्गावरोधकं 'तिरियं भित्तिं व' त्ति तिर्यग्भित्तिं-तिरश्चीनां प्राकारवरण्डिकादिभित्तिं पर्वतखण्डं वेति 'उल्लंघेत्तए' त्ति सकृदुल्लङ्घने 'पल्लंघेत्तए व' त्ति पुनः पुनर्लङ्घनेनेति।

चतुर्दशशते पञ्चमः॥१४-५॥

षष्ठम उद्देशकः

पञ्चमोद्देशके नारकादिजीववक्तव्यतोक्ता षष्ठेऽपि सैवोच्यते इत्येवंसम्बद्धस्यास्येदमादिसूत्रम्-

१४/७१. 'रायगिहे' इत्यादि, 'किमाहार' त्ति किमाहारयन्तीति किमाहाराः 'किंपरिणाम' त्ति किमाहारितं सत्परिणामयन्तीति किंपरिणामाः 'किंजोणीय' त्ति का योनिः-उत्पत्तिस्थानं येषां ते किंयोनिकाः, एवं किंस्थितिकाः, स्थितिश्च अवस्थानहेतुः, अत्रोत्तरं क्रमेणैव दृश्यं व्यक्तं च, नवरं 'पुग्गलजोणीय' त्ति पुद्गलाः-शीतादिस्पर्शा योनी येषां ते तथा, नारका हि शीतयोनय उष्णयोनयश्चेति, 'पोग्गलट्ठिइय' त्ति पुद्गला-आयुष्ककर्मपुद्गलाः स्थितिर्येषां नरके स्थितिहेतुत्वात्ते तथा, अथ कस्मात्ते पुद्गलस्थितयो भवन्तीत्यत आह-'कम्मोवगे' त्यादि कर्म्म-ज्ञानावरणादि पुद्गलरूपमुपगच्छन्ति-बन्धन-द्वारेणोपयान्तीति कर्म्मोपगाः कर्म्मनिदानं-नारकत्वनिमित्तं कर्म्म बन्धनिमित्तं वा येषां ते कर्म्मनिदानाः, तथा कर्म्मणः-कर्म्मपुद्गलेभ्यः सकाशात् स्थितिर्येषां ते कर्म्मस्थितयः, तथा 'कम्मुणामेव विप्परियासमेंति' त्ति कर्मणैव हेतुभूतेन मकार आगमिकः विपर्यासं-पर्यायान्तरं पर्यासापर्यासादिकमायान्ति-प्राप्नुवन्ति अतस्ते पुद्गलस्थितयो भवन्तीति।

आहारमेवाश्रित्याह-

१४/७२,७३. 'नेरइया ण' मित्यादि, 'वीइदव्वाइं' ति वीचिः-विवक्षितद्रव्याणां तदवयवानां च परस्परेण पृथग्भावः 'वीचिर् पृथग्भावे' इति वचनात्, तत्र वीचिप्रधानानि द्रव्याणि वीचिद्रव्याणि एकादिप्रदेशन्यूनानीत्यर्थः, एतन्निषेधाद-वीचिद्रव्याणि, अयमत्र भावः-यावता द्रव्यसमुदायेनाहारः पूर्यते स एकादिप्रदेशोनो वीचिद्रव्याण्युच्यंते, परिपूर्णस्त्ववीचि-द्रव्याणीति टीकाकारः, चूर्णिकारस्त्वाहारद्रव्यवर्गणामधिकृत्येदं व्याख्यातवान्, तत्र च याः सर्वोत्कृष्टाहारद्रव्यवर्गणास्ता अवीचिद्रव्याणि, यास्तु ताभ्य एकादिना प्रदेशेन हीनास्ता वीचिद्रव्याणीति, 'एगपएसऊणाइंपि दव्वाइं' ति एकप्रदेशोनान्यपि अपिशब्दादनेकप्रदेशोनान्यपीति।

अनन्तरं दण्डकस्यान्ते वैमानिकानामाहारभोग उक्तः, अथ वैमानिकविशेषस्य कामभोगोपदर्शनायाह-

१४/७४. 'जाहे ण' मित्यादि, 'जाहे' त्ति यदा 'भोगभोगाइं' ति भुज्यन्त इति भोगाः-स्पर्शादयः भोगार्हा भोगा भोगभोगाः मनोज्ञस्पर्शादय इत्यर्थः तान् 'से कहमियाणिं पकरेइ' त्ति अथ 'कथं' केन प्रकारेण तदानीं प्रकरोति?-प्रवर्त्तत इत्यर्थः, 'नेमिपडिरूवगं' ति नेमिः-चक्रधारा तद्योगाच्चक्रमपि नेमिः-तत्प्रतिरूपकं-वृत्ततया तत्सदृशं स्थानमिति शेषः, 'तिन्नि जोयणे' त्यादौ यावत्करणादिदं दृश्यं-'सोलस य जोयणसहस्साइं दो य सयाइं सत्तावीसाहियाइं कोसतियं अट्ठावीसाहियं धणुसयं तेरस य अंगुलाइं' ति, 'उवरिं' ति उपरिष्टात् 'बहुसमरमणिज्जे' त्ति अत्यन्तसमो रम्यश्चेत्यर्थः 'जाव मणीणं फासो' त्ति भूमिभागवर्णकस्तावद्वाच्यो यावन्मणीनां स्पर्शवर्णक इत्यर्थः, स चायं-'से जहानामए-आलिंगपोक्खरेइ वा मुइंगपोक्खरेइ वा' इत्यादि, आलिङ्गपुष्करं मुरजमुखपुटं-मर्दलमुखपुटं तद्वत्सम इत्यर्थः, तथा 'सच्छाएहिं सप्पभेहिं समरीईहिं सउज्जोएहिं नाणाविहपंचवन्नेहिं मणीहिं उवसोहिए तं जहा-किण्हेहिं ५' इत्यादि वर्णगन्धरस-स्पर्शवर्णको मणीनां वाच्य इति। 'अब्भुग्गयभूसियवन्नओ' त्ति अभ्युद्गतोच्छ्रितादिः प्रासादवर्णको वाच्य इत्यर्थः, स च पूर्ववत्, 'उल्लोए' त्ति उल्लोकः उल्लोचो वा-उपरितलं 'पउमलयाभत्तिचित्ते' त्ति पद्मानि लताश्च पद्मलतास्तद्रूपाभिर्भक्तिभिः-विच्छित्तिभिश्चित्रो यः स तथा, यावत्करणादिदं दृश्यं-'पासाइए दरिसणिज्जे अभिरूवे' त्ति, 'मणिपेढिया अट्ठजोयणिया जहा वेमाणियाणं' ति मणिपीठिका वाच्या, सा चायामविष्कम्भाभ्यामष्टयोजनिका यथा वैमानिकानां सम्बधिनी न तु व्यन्तरादिसत्केव, तस्या अन्यथास्वरूपत्वात्, सा पुनरेवं-'तस्स णं बहुसमरमणिज्जस्सभूमिभागस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं महं एगं मणिपेढियं विउव्वइ, सा णं मणिपेढिया अट्ठ जोयणाइं आयामविक्खंभेणं पन्नत्ता चत्तारि जोयणाइं बाहल्लेणं सव्वरयणामई अच्छा जाव पडिरूव' त्ति, 'सयणिज्जवन्नओ' त्ति शयनीयवर्णको वाच्यः, स चैवं-'तस्स णं देवसयणिज्जस्स इमेयारूवे वन्नावासे पण्णत्ते' वर्णकव्यासः-वर्णकविस्तरः, 'तं जहा-नाणामणिमया पडिपाया सोवन्निया पाया णाणामणिमयाइं पायसीसगाइं' इत्यादिरिति, 'दोहि य अणीएहिं' ति अनीकं-सैन्यं 'नट्टाणीएण य' त्ति नाट्यं-नृत्यं तत्कारकमनीकं-जनसमूहो नाट्यानीकं, एवं गन्धर्वानीकं नवरं गन्धर्व्वं-गीतं, 'महये' त्यादि यावत्करणादेवं दृश्यं-'महयाहयनट्टगीयवाइ-यतंतीतलतालतुडियघणमुइंगपडुप्पवाइयरवेणं' ति व्याख्या चास्य प्राग्वत्, इह च यत् शक्रस्य सुधर्म्मसभालक्षण-भोगस्थानसद्भावेऽपि भोगार्थं नेमिप्रतिरूपकादिविकुर्वणं तज्जिनास्थ्नामाशातनापरिहारार्थं, सुधर्म्मसभायां हि माणवके स्तम्भे जिनास्थीनि समुद्गकेषु सन्ति, तत्प्रत्यासत्तौ च भोगानुभवने तदबहुमानः कृतः स्यात् स चाशातनेति।

१४/७५. 'सिंहासणं विउव्वइ' त्ति सनत्कुमारदेवेन्द्रः सिंहासनं विकुरुते न तु शक्रेशानाविव देवशयनीयं, स्पर्शमात्रेण तस्य परिचारकत्वान्न शयनीयेन प्रयोजनमिति भावः, 'सपरिवारं' ति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्वकीयपरिवारयोग्यासनपरिकरितमित्यर्थः, 'नवरं जो जस्स परिवारो सो तस्स भाणियव्वो' त्ति तत्र सनत्कुमारस्य परिवार उक्तः, एवं माहेन्द्रस्य तु सप्ततिः सामानिकसहस्राणि चतस्रश्चाङ्गरक्षसहस्राणां सप्ततयः, ब्रह्मणः षष्टिः सामानिकसहस्राणां लान्तकस्य पञ्चाशत् शुक्रस्य चत्वारिंशत् सहस्रारस्य त्रिंशत् प्राणतस्य विंशतिः अच्युतस्य तु दश सामानिकसहस्राणि, सर्वत्रापि च सामानिकचतुर्गुणा आत्मरक्षा इति। 'पासायउच्चत्तं ज' मित्यादि तत्र सनत्कुमारमाहेन्द्रयोः षड् योजनशतानि प्रासादस्योच्चत्वं ब्रह्मलान्तकयोः सप्त शुक्रसहस्रारयोरष्टौ प्राणतेन्द्रस्याच्युतेन्द्रस्य च नवेति, इह च सनत्कुमारादयः सामानिकादिपरिवारसहितास्तत्र नेमिप्रतिरूपके गच्छन्ति, तत्समक्षमपि स्पर्शादिप्रतिचारणाया अविरुद्धत्वात्, शक्रेशानौ तु तथा, सामानिकादिपरिवारसमक्षं कायप्रतिचारणाया लज्जनीयत्वेन विरुद्धत्वादिति।

चतुर्दशशते षष्ठ॥१४-६॥

सप्तम उद्देशकः

षष्ठोद्देशकान्ते प्राणताच्युतेन्द्रयोर्भोगानुभूतिरुक्ता, सा च तयोः कथञ्चित्तुल्येति तुल्यताऽभिधानार्थः सप्तमोद्देशकः तस्य चेदमादिसूत्रम्-

१४/७७. 'रायगिहे' इत्यादि, तत्र किल भगवान् श्रीमन्महावीरः केवलज्ञानाप्राप्त्या सखेदस्य गौतमस्वामिनः समाश्वासनायात्मनस्तस्य च भाविनीं तुल्यतां प्रतिपादयितुमिदमाह-'गोयमे' त्यादि, चिरसंसिट्ठोऽसि' त्ति चिरं बहुकालं यावत् चिरे वा अतीते प्रभूते काले संश्लिष्टः-स्नेहात्संबद्धश्चिरसंश्लिष्टः 'असि' भवसि 'मे' मया मम वा त्वं हे गौतम!, 'चिरसंथुओ' त्ति चिरं-बहुकालम् अतीतं यावत् संस्तुतः-स्नेहात्प्रशंसितश्चिरसंस्तुतः, एवं 'चिरपरिचिए' त्ति पुनः पुनर्दर्शनतः परिचितश्चिरपरिचितः, 'चिरजुसिए' त्ति चिरसेवितश्चिरप्रीतो वा 'जुषी प्रीतिसेवनयोः' इति वचनात्, 'चिराणुगए' त्ति चिरमनुगतो ममानुगतिकारित्वात्, 'चिराणुवत्तीसि' चिरमनुवृत्तिः-अनुकूलवर्तिता यस्यासौ चिरानुवृत्तिः, इदं च चिरसंश्लिष्टत्वादिकं क्वासीत्? इत्याह-'अणंतरं देवलोए' त्ति अनन्तरं-निर्व्यवधानं यथा भवत्येवं देवलोके अनन्तरे देवभवे इत्यर्थः ततोऽपि-अनन्तरं मनुष्यभवे, जात्यर्थत्वादेकवचनस्य देवभवेषु मनुष्यभवेषु चेति द्रष्टव्यं, तत्र किल त्रिपृष्ठभवे भगवतो गौतमः सारथित्वेन चिरसंश्लिष्टत्वादिधर्म्मयुक्त आसीत्, एवमन्येष्वपि भवेषु संभवतीति, एवं च मयि तव गाढत्वेन स्नेहस्य न केवलज्ञानमुत्पद्यते भविष्यति च तवापि स्नेहक्षये तदित्यधृतिं मा कृथा इति गम्यते, 'किं परं?, मरण' त्ति किं बहुना 'परं' ति परतो 'मरणात्' मृत्योः, किमुक्तं भवति?-कायस्य भेदाद्धेतोः 'इओ चुय' त्ति 'इतः' प्रत्यक्षान्मनुष्यभवाच्च्युतौ 'दोवि' त्ति द्वावप्यावां तुल्यौ भविष्याव इति योगः तत्र 'तुल्यौ' समानजीवद्रव्यौ 'एकट्ठ' त्ति 'एकार्थौ' एकप्रयोजनावनन्तसुखप्रयोजनत्वात् एकस्थौ वा-एकक्षेत्राश्रितौ सिद्धिक्षेत्रापेक्षयेति 'अविसेसमणाणत्त' त्ति 'अविशेषं' निर्विशेषं यथा भवत्येवम् 'अनानात्वौ' तुल्यज्ञानदर्शनादिपर्यायाविति, इदं च किल यदा भगवता गौतमेन चैत्यवन्दनायाष्टापदं गत्वा प्रत्यागच्छता पञ्चदशतापसशतानि प्रव्राजितानि समुत्पन्नकेवलानि च श्रीमन्महावीरसमवसरणमानीतानि तीर्थप्रणामकरणसमनन्तरं च केवलिपर्षदि समुपविष्टानि, गौतमेन चाविदिततत्केवलोत्पादव्यतिकरेणाभिहितानि यथा-आगच्छत भोः साधवः! भगवन्तं वन्दध्वमिति, जिननायकेन च गौतमोऽभिहितो यथा-गौतम! मा केवलिनामाशातनां कार्षीः, ततो गौतमो मिथ्यादुष्कृतमदात्, तथा यानहं प्रव्राजयामि तेषां केवलमुत्पद्यते न पुनर्मम ततः किं तन्मे नोत्पत्स्यत एवेति विकल्पादधृतिं चकार, ततो जगद्गुरुणा गदितोऽसौ मनःसमाधानाय, यथा गौतम! चत्वारः कटा भवन्ति-सुम्बकटो विदलकटश्चर्मकटः कम्बलकटश्चेति, एवं शिष्या अपि गुरोः प्रतिबन्धसाधर्म्येण सुम्बकटसमादयश्चत्वार एव भवन्ति, तत्र त्वं मयि कम्बलकटसमान इत्येतस्यार्थस्य समर्थनाय भगवता तदाऽभिहितमिति।

एवं भाविन्यामात्मतुल्यतायां भगवताऽभिहितायां 'अतिप्रियमश्रद्धेय' मितिकृत्वा यद्यन्योऽप्येनमर्थं जानाति तदा साधुर्भवतीत्यनेनाभिप्रायेण गौतम एवाह-

१४/७८. 'जहा ण मित्यादि, 'एयमट्ठं' ति 'एतमर्थम्' आवयोर्भावितुल्यतालक्षणं 'वयं जाणामो' त्ति यूयं च वयं चेत्येकशेषाद्वयं तत्र यूयं केवलज्ञानेन जानीथ वयं तु भवदुपदेशात्। तथाऽनुत्तरोपपातिका अपि देवा एनमर्थं जानन्तीति? प्रश्नः, अत्रोत्तरं-'हंता गोयमा!' इत्यादि।

१४/७९. 'मणोदव्ववग्गणाओ लद्धाओ' त्ति मनोद्रव्यवर्गणा लब्धास्तद्विषयावधिज्ञानलब्धिमात्रापेक्षया 'पत्ताओ' त्ति प्राप्तास्तद्द्रव्यपरिच्छेदतः 'अभिसमन्नागयाओ' त्ति अभिसमन्वागताः तद्गुणपर्यायपरिच्छेदतः, अयमत्र गर्भार्थः-अनुत्तरोपपातिका देवा विशिष्टावधिना मनोद्रव्यवर्गणा जानन्ति पश्यन्ति च, तासां चावयोरयोग्यवस्थायामदर्शनेन निर्वाणगमनं निश्चिन्वन्ति, ततश्चावयोर्भावितुल्यतालक्षणमर्थं जानन्ति पश्यन्ति चेति व्यपदिश्यत इति।

तुल्यताप्रक्रमादेवेदमाह-

१४/८०. 'कइविहे' इत्यादि, तुल्यं-समं तदेव तुल्यकं 'दव्वतुल्लए' त्ति द्रव्यतः एकाणुकाद्यपेक्षया तुल्यकं द्रव्यतुल्यकम्, अथवा द्रव्यं च तत्तुल्यकं च द्रव्यान्तरेणेति द्रव्यतुल्यकं विशेषणव्यत्ययात्, 'खेत्ततुल्लए' त्ति क्षेत्रतः-एकप्रदेशावगाढत्वादिना तुल्यकं क्षेत्रतुल्यकम्, एवं शेषाण्यपि।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१४/८१. नवरं भवो–नारकादिः भावो–वर्णादिरौदयिकादिर्वा संस्थानं–परिमण्डलादिः, इह च तुल्यव्यतिरिक्तमतुल्यं भवतीति तदपीह व्याख्यास्यते, 'तुल्लसंखेज्जपएसिए' त्ति तुल्या–समानाः सङ्ख्येयाः प्रदेशा यत्र स तथा, तुल्यग्रहणमिह सङ्ख्यातत्वस्य सङ्ख्यातभेदत्वान्न सङ्ख्यातमात्रेण तुल्यताऽस्य स्याद् अपि तु समानसङ्ख्यत्वेनेत्यस्यार्थस्य प्रतिपादनार्थम्, एवमन्यत्रापीति, यच्चेहानन्तक्षेत्रंप्रदेशावगाढत्वमनन्तसमयस्थायित्वं च नोक्तं तदवगाहप्रदेशानां स्थितिसमयानां च पुद्गलानाश्रित्यानन्तानामभावादिति। 'भवट्ठयाए' त्ति भव एवार्थो भवार्थस्तद्भावस्तत्ता तया भवार्थतया, 'उदइए भावे' त्ति उदयः–कर्म्मणां विपाकः स एवौदयिकः–क्रियामात्रं अथवा उदयेन निष्पन्नः औदयिको भावो–नारकत्वादिपर्यायविशेषः औदयिकस्य भावस्य नारकत्वादेर्भावतो–भावसामान्यमाश्रित्य तुल्यः–समः, 'एवं उवसमिए' त्ति औपशमिकोऽप्येवं वाच्यः, तथाहि–'उवसमिए भावे उवसमियस्स भावस्स भावओ तुल्ले उवसमिए भावे उवसमियवइरित्तस्स भावस्स भावओ नो तुल्ले' त्ति, एवं शेषेष्वपि वाच्यं, तत्रोपशमः–उदीर्णस्य कर्म्मणः क्षयोऽनुदीर्णस्य विष्कम्भितोदयत्वं स एवौपशमिकः–क्रियामात्रं उपशमेन वा निर्वृत्तः, औपशमिकः–सम्यग्दर्शनादि, 'खइए' त्ति क्षयः–कर्माभावः स एव क्षायिकः क्षयेण वा निर्वृत्तः क्षायिकः–केवलज्ञानादिः, 'खओवसमिए' त्ति क्षयेण–उदयप्राप्तकर्मणो विनाशेन सहोपशमो–विष्कम्भितोदयत्वं क्षयोपशमः स एव क्षायोपशमिकः–क्रियामात्रमेव क्षयोपशमेन वा निर्वृत्तः क्षायोपशमिकः–मतिज्ञानादिपर्यायविशेषः, नन्वौपशमिकस्य क्षायोपशमिकस्य च कः प्रतिविशेषः, उभयत्राप्युदीर्णस्य क्षयस्यानुदीर्णस्य चोपशमस्य भावात्?, उच्यते, क्षायोपशमिके विपाकवेदनमेव नास्ति प्रदेशवेदनं पुनरस्त्येव, औपशमिके तु प्रदेशवेदनमपि नास्तीति, 'पारिणामिए' त्ति परिणमनं परिणामः स एव पारिणामिकः, 'सन्निवाइए' त्ति सन्निपातः–औदयिकादिभावानां द्व्यादिसंयोगस्तेन निर्वृत्तः सान्निपातिकः। 'संठाणतुल्लए' त्ति संस्थानं–आकृतिविशेषः, तच्च द्वेधा–जीवाजीवभेदात्, तत्राजीवसंस्थानं पञ्चधा, तत्र 'परिमंडले संठाणे' त्ति परिमण्डलसंस्थानं बहिस्ताद्वृत्ताकारं मध्ये शुषिरं यथा वलयस्य, तच्च द्वेधा–घनप्रतरभेदात्, वट्टे' त्ति वृत्तं–परिमण्डलमेवान्तःशुषिररहितं यथा कुलालचक्रस्य, इदमपि द्वेधा–घनप्रतरभेदात्, पुनरेकैकं द्विधा–समसङ्ख्यविषमसङ्ख्यप्रदेशभेदात्, एवं त्र्यस्रं चतुरस्रं च, नवरं 'त्र्यस्रं' त्रिकोणं शृङ्गाटकस्येव चतुरस्रं तु चतुष्कोणं यथा कुम्भिकायाः, आयतदीर्घं यथा दण्डस्य, तच्च त्रेधा–श्रेण्यायतप्रतरायतघनायतभेदात् पुनरेकैकं द्विधा–समसङ्ख्यविषमसङ्ख्यप्रदेशभेदात्, इदं च पञ्चविधमपि विस्रसाप्रयोगाभ्यां भवति, जीवसंस्थानं तु संस्थानाभिधाननामकर्म्मोत्तरप्रकृत्युदयसम्पाद्यो जीवानामाकारः, तच्च षोढा, तत्राद्यं 'समचउरंसे' त्ति तुल्यारोहपरिणाहं सम्पूर्णाङ्गावयवं स्वाङ्गुलाष्टशतोच्छ्रयं समचतुरस्रं, तुल्यारोहपरिणाहत्वेन समत्वात् पूर्णावयवत्वेन च चतुरस्रत्वात्तस्य, चतुरस्रं सङ्गतमिति पर्यायौ, 'एवं परिमंडलेवि' त्ति यथा समचतुरस्रमुक्तं तथा न्यग्रोधपरिमण्डलमपीत्यर्थः, न्यग्रोधो–वटवृक्षस्तद्वत्परिमण्डलं नाभीत उपरि चतुरस्रलक्षणयुक्तमधश्च तदनुरूपं न भवति–तस्मात्प्रमाणाद्धीनतरमिति, 'एवं जाव हुंडे' त्ति इह यावत्करणात् 'साई खुज्जे वामणे' त्ति दृश्यं तत्र 'साइ' त्ति सादि नाभीतोऽधश्चतुरस्रलक्षणयुक्तमुपरि च तदनुरूपं न भवति, 'खुज्जो' त्ति कुब्जं ग्रीवादौ हस्तपादयोश्चतुरस्रलक्षणयुक्तं सङ्क्षिप्तविकृतमध्यं, 'वामणे' त्ति वामनं लक्षणयुक्तमध्यं ग्रीवादौ हस्तपादयोरप्यादिलक्षणन्यूनं, 'हुंडे' त्ति हुण्डं प्रायः सर्वावयवेष्वादिलक्षणविसंवादोपेतमिति।

अनन्तरं संस्थानवक्तव्यतोक्ता, अथ संस्थानवतोऽनगारस्य वक्तव्यताविशेषमभिधातुकाम आह–

१४/८२. 'भत्ते' त्यादि, तत्र 'भत्तपच्चक्खायए णं' ति अनशनी 'मूर्च्छितः' सञ्जातमूर्च्छः–जाताहारसंरक्षणानुबन्धः तद्दोषविषये वा मूढः 'मूर्च्छा मोहसमुच्छाययोः' इति वचनात्, यावत्करणादिदं दृश्यं–'गढिए' ग्रथित आहारविषयस्नेहतन्तुभिः संदर्भितः 'ग्रन्थ श्रन्थ संदर्भे' इति वचनात् 'गिद्धे' गृद्धः प्राप्ताहारे आसक्तोऽतृप्तत्वेन वा तदाकाङ्क्षावान् 'गृधु अभिकाङ्क्षायाम्' इति वचनात् 'अज्झोववन्ने' त्ति अध्युपपन्नः–अप्राप्ताहारचिन्तामाधिक्येनोपपन्नः 'आहारं' वायुतैलाभ्यङ्गादिकमोदनादिकं वाऽभ्यवहार्यं तीव्रक्षुद्वेदनीयकर्मोदयादसमाधौ सति तदुपशमनाय प्रयुक्तम् 'आहारयति' उपभुङ्क्ते, 'अहे णं' ति 'अथ' आहारानन्तरं 'विस्रसया' स्वभावत एव 'कालं' ति कालो–मरणं काल इव कालो मारणान्तिकसमुद्घातस्तं 'करोति' याति 'तओ पच्छ' त्ति ततो–मारणान्तिकसमुद्घातात् पश्चात् तस्मान्निवृत्त इत्यर्थः अमूर्च्छितादिविशेषणविशेषित आहारमाहारयति प्रशान्तपरिणामसद्भावादिति प्रश्नः, अत्रोत्तरं–हंता गोयमा!' इत्यादि, अनेन तु प्रश्नार्थ एवाभ्युपगतः, कस्यापि भक्तप्रत्याख्यातुरेवंभूतभावस्य सद्भावादिति।

अनन्तरं भक्तप्रत्याख्यातुरनगारस्य वक्तव्यतोक्ता, स च कश्चिदनुत्तरसुरेषूपपद्यत इति तद्वक्तव्यतामाह–

१४/८४. 'अत्थि णं' मित्यादि, लवाः–शाल्यादिकवलिकालवनक्रियाप्रमिताः कालविभागाः सप्त–सप्तसङ्ख्या मानं–प्रमाणं यस्य कालस्यासौ लवसप्तमस्तं लवसप्तमं कालं यावदायुष्यप्रभवति सति ये शुभाध्यवसायवृत्तयः सन्तः सिद्धिं न गता अपि तु देवेषूत्पन्नास्ते लवसप्तमाः, ते च सर्वार्थसिद्धाभिधानानुत्तरसुरविमाननिवासिनः।

१४/८५. 'से जहा नामए' त्ति 'सः' कश्चित् 'यथानामकः' अनिर्दिष्टनामा पुरुषः 'तरुणे' इत्यादेर्व्याख्यानं प्राग्विव 'पक्काणं' ति पक्कानां 'परियायाणं' ति 'पर्यवगतानां' लवनीयावस्थां प्राप्तानां

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'हरियाणं' ति पिङ्गीभूतानां, ते च पत्रापेक्षयाऽपि भवन्तीत्याह–'हरियकंडाणं' ति पिङ्गीभूतजालानां 'नवपज्जणएणं' ति नवं–प्रत्यग्रं 'पज्जणयं' ति प्रतापितस्यायोघनकुट्टनेन तीक्ष्णीकृतस्य पायनं–जलनिबोलनं यस्य तन्नवपायनं तेन 'असियएणं' ति दात्रेण 'पडिसाहरिय' त्ति प्रतिसंहृत्य विकीर्णनालान् बाहुना संगृह्य 'पडिसंखिविय' त्ति मुष्टिग्रहणेन सङ्क्षिप्य 'जाव इणामेवे' त्यादि प्रज्ञापकस्य लवनक्रियाशीघ्रत्वोपदर्शनपरचप्पुटिकादिहस्तव्यापारसूचकं वचनं 'सत्तलवे' त्ति लूयन्त इति लवाः शाल्यादिनालमुष्टयस्तान् लवान् 'लूएज्ज' त्ति लुनीयात्, तत्र च सप्तलवलवने यावान्कालो भवतीति वाक्यशेषो दृश्यः ततः किमित्याह–'जइ ण' मित्यादि, 'तेसिं' देवाणं' ति द्रव्यदेवत्वे साध्ववस्थायामित्यर्थः 'तेणं चेव' त्ति यस्य भवग्रहणस्य सम्बन्धि आयुर्न पूर्णं तेनैव, मनुष्यभवग्रहणेनेत्यर्थः।

लवसप्तमा अनुत्तरोपपातिका इत्यनुत्तरोपपातिकदेवप्ररूपणाय सूत्रद्वयमभिधातुमाह–

१४/८६. 'अत्थि ण' मित्यादि, 'अणुत्तरोववाइय' त्ति अनुत्तरः–सर्वप्रधानोऽनुत्तरशब्दादिविषययोगात् उपपातो–जन्म अनुत्तरोपपातः सोऽस्ति येषां तेऽनुत्तरोपपातिकाः।

१४/८८. 'जावइयं छट्ठभत्तिए' इत्यादि किल षष्ठभक्तिकः सुसाधुर्यावत् कर्म क्षपयति एतावता कर्म्मावशेषेण–अनिर्जीर्णेनानुत्तरोपपातिका देवा उत्पन्ना इति।

चतुर्दशशते सप्तमः ॥१४-७॥

अष्टम उद्देशकः

सप्तमे तुल्यतारूपो वस्तुनो धर्मोऽभिहितः, अष्टमे त्वन्तररूपः स एवाभिधीयते इत्येवंसम्बधस्यास्येदमादिसूत्रम्–

१४/९०-१००. 'इमीसे ण' मित्यादि, 'अबाहाए अंतरे' त्ति बाधा–परस्परसंश्लेषतः पीडनं न बाधा अबाधा तया अबाधया यदन्तरं व्यवधानमित्यर्थः, इहान्तरशब्दो मध्यविशेषादिष्वर्थेषु वर्त्तमानो दृष्टस्तत्तस्तद्व्यवच्छेदेन व्यवधानार्थपरिग्रहार्थमबाधाग्रहणं, 'असंखेज्जाइं जोयणसहस्साइं' ति इह योजनं प्रायः प्रमाणाङ्गुलनिष्पन्नं ग्राह्यं, 'नगपुढविविमाणाइं मिणसु पमाणंगुलेणं तु।' (नगपृथिवीविमानानि प्रमाणाङ्गुलेन मिनु।) इत्यत्र नगादिग्रहणस्योपलक्षणत्वादन्यथाऽऽदित्यप्रकाशादेरपि प्रमाणयोजनाप्रमेयतां स्यात्, तथा चाधोलोकग्रामेषु तत्प्रकाशाप्राप्तिः प्राप्नोत्यात्माङ्गुलस्यानियतत्वेनाव्यवहाराङ्गतया रविप्रकाशस्योच्छ्रययोजनप्रमेयत्वात्, तस्य चातिलघुत्वेन प्रमाणयोजनप्रमितक्षेत्राणामव्याप्तिरिति, यच्चेहेषत्प्राग्भारायाः पृथिव्या लोकान्तस्य चान्तरं तदुच्छ्रयाङ्गुलनिष्पन्नयोजनप्रमेयमित्यनुमीयते, यतस्तस्य योजनस्योपरितनक्रोशस्य षड्भागे सिद्धावगाहना धनुस्त्रिभागयुक्तत्रयस्त्रिंशदधिकधनुःशतत्रय-मानाभिहिता, सा चोच्छ्रययोजनाश्रयणत एव युज्यत इति, उक्तञ्च–

'ईसीपब्भाराए उवरिं खलु जोयणस्स जो कोसो।
कोसस्स य छब्भाए सिद्धाणोगाहणा भणिया॥१॥'

इति। (ईषत्प्राग्भाराया उपरि योजनस्य यः क्रोशः खलु क्रोशस्य च षष्ठो भागः एषा सिद्धानामवगाहना भणिता॥१॥) 'देसूणं जोयणं' ति इह सिद्ध्यलोकयोर्देशोनं योजनमन्तरमुक्तं आवश्यके तु योजनमेव, तत्र च किञ्चिन्न्यूनताया अविवक्षणान्न विरोधो मन्तव्य इति।

अनन्तरं पृथिव्याद्यन्तरमुक्तं तच्च जीवानां गम्यमिति जीवविशेषगतिमाश्रित्येदं सूत्रत्रयमाह–

१४/१०१. 'एस ण' मित्यादि, 'दिव्वे' त्ति प्रधानः 'सच्चोवाए' त्ति 'सत्यावपातः' सफलसेवः, कस्मादेवमित्यत आह–'सन्निहियपाडिहेरे' त्ति संनिहितं–विहितं प्रातिहार्यं–प्रतीहारकर्म्म सांनिध्यं देवेन यस्य स तथा।

१४/१०३. 'सालल्लिय' त्ति शालयष्टिका, इह च यद्यपि शालवृक्षादावनेके जीवा भवन्ति तथाऽपि प्रथमजीवापेक्षं सूत्रत्रयमभिनेतव्यं[1] १।

एवंविधप्रश्नाश्च वनस्पतीनां जीवत्वमश्रद्दधानं श्रोतारमपेक्ष्य भगवता गौतमेन कृता इत्यवसेयमिति। गतिप्रक्रमादिदमाह–

१४/१०७-१०९. 'तेणं' मित्यादि, 'एवं जहा उववाइए जाव आराहग' त्ति इह यावत्करणादिदमर्थतो लेशेन दृश्यं–ग्रीष्मकालसमये गङ्गाया उभयकूलतः काम्पिल्यपुरात् पुरिमतालपुरं संप्रस्थितानि ततस्तेषामटवीमनुप्रविष्टानां पूर्वगृहीतमुदकं परिभुज्यमानं क्षीणं ततस्ते तृष्णाभिभूता उदकदातारमलभमाना अदत्तं च तदगृह्णन्तोऽर्हन्नमस्कारपूर्वकमनशनप्रतिपत्त्या कालं कृत्वा ब्रह्मलोकं गताः परलोकस्य चाराधका इति।

१४/११०-११२. 'घरसए' इत्यत्र 'एवं जहे' त्यादिना यत्सूचितं तदर्थतो लेशेनैवं दृश्यं–भुङ्क्ते वसति चेति, एतच्च श्रुत्वा गौतम आह–कथमेतद् भदन्त!, ततो भगवानुवाच–गौतम! सत्यमेतद्, यतस्तस्य वैक्रियलब्धिरस्ति ततो जनविस्मापनहेतोरेवं करुते, ततो गौतम उवाच–प्रव्रजिष्यत्येव (ष) भगवतां समीपे?, भगवानुवाच–नैवं, केवलमयमधिगतजीवाजीवत्वादिगुणः कृतानशनो ब्रह्मलोके गमिष्यति, ततश्च्युतश्च महाविदेहे दृढप्रतिज्ञाभिधानो महर्द्धिको भूत्वा सेत्स्यतीति।

अयमेतच्छिष्यश्च देवतयोत्पन्ना इति देवाधिकारादेववक्तव्यतासूत्राण्युद्देशकसमाप्तिं यावत्–

१४/११३. तत्र च 'अव्वाबाह' त्ति व्याबाधन्ते–परं पीडयन्तीति व्याबाधास्तन्निषेधादव्याबाधाः, ते च लोकान्तिकदेवमध्यगता द्रष्टव्याः, यदाह–

---

१. प्रत्यासत्तेः सप्तमोद्देशकवक्तव्यतास्थानं यद् राजगृहं चैत्यं गुणशीलकं पृथ्वीशिलापट्टकश्च तत्रत्या वृक्षा एते समवसेयाः। अन्येष्वनेकेषु जीवेषु सत्स्वपि समस्तावयवव्याप्येकोऽस्ति वृक्षजीवः इति सूत्र आहारपरिज्ञाध्ययने।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'सारस्सयमाइच्चा वण्ही वरुणा य गद्दतोया य।
तुसिया अव्वाबाहा अग्गिच्चा चेव रिट्ठा य॥१॥' इति
(सारस्वता आदित्या वह्नयो वरुणाश्च गर्दतोयाश्च तुषिता अव्याबाधा अग्न्यर्चाश्चैव रिष्ठाश्च।)।

१४/११४. 'अच्छिपत्तंसि' अक्षिपत्रे–अक्षिपक्ष्मणि 'आबाहं व' त्ति ईषद्बाधां 'पबाहं व' त्ति प्रकृष्टबाधां 'वाबाहं' ति क्वचित् तत्र तु 'व्याबाधां' विशिष्टामाबाधां 'छविच्छेयं' ति शरीरच्छेदम् 'एसुहुमं च णं' ति 'इति सूक्ष्मम्' एवं सूक्ष्मं यथा भवत्येवमुपदर्शयेन्नाट्यविधिमिति प्रकृतं।

१४/११५-११६. 'सपाणिणं' त्ति स्वकपाणिना 'से कहमियाणिं पकरेइ' त्ति यदि शक्रः शिरसः कमण्डल्वां प्रक्षेपणे प्रभुस्तत्क्षेपणं कथं तदानीं करोति?, उच्यते, 'छिंदिया छिंदिया व णं' ति छित्त्वा २ क्षुरप्रादिना कूष्माण्डादिकमिव श्लक्ष्णखण्डीकृत्येत्यर्थः, वाशब्दो विकल्पार्थः प्रक्षिपेत् कमण्डल्वां, 'भिंदिय' त्ति विदार्योर्द्धर्वपाटनेन शाटकादिकमिव, 'कुट्टिय' त्ति कुट्टयित्वा उदूरखलादौ तिलादिकमिव, 'चुन्निय' त्ति चूर्णयित्वा शिलायां शिलापुत्रकादिना गन्धद्रव्यादिकमिव 'ततो पच्छ' त्ति कमण्डलुप्रक्षेपणानन्तरमित्यर्थः 'परिसंघाएज्ज' त्ति मीलयेदित्यर्थः 'एसुहुमं च णं पक्खिवेज्ज' त्ति कमण्डल्वामिति प्रकृतं।

१४/११८. 'जंभग' त्ति जृम्भन्ते–विजृम्भन्ते स्वच्छन्दचारितया चेष्टन्ते ये ते जृम्भकाः तिर्यग्लोकवासिनो व्यन्तरदेवाः, 'पमुइयपक्कीलिय' त्ति प्रमुदिताश्च ते–तोषवन्तः प्रक्रीडिताश्च–प्रकृष्टक्रीडाः प्रमुदितप्रक्रीडिताः, 'कंदप्परइ' त्ति अत्यर्थं केलिरतिकाः 'मोहणसील' त्ति निधुवनशीलाः 'अजसं' त्ति उपलक्षणत्वादस्यानर्थं प्राप्नुयात् 'जसं' ति उपलक्षणत्वादस्यार्थं–वैक्रियलब्ध्यादिकं प्राप्नुयात् वैरस्वामिवत् शापानुग्रहकरणसमर्थत्वात् तच्छीलत्वाच्च तेषामिति।

१४/११९. 'अन्नजंभये' त्यादि अन्ने–भोजनविषये तदभावसद्भावात्पत्व-बहुत्वसरसत्वनीरसत्वादिकरणतो जृम्भन्ते–विजृम्भन्ते ये ते तथा, एवं पानादिष्वपि वाच्यं, नवरं 'लेणं' ति लयनं–गृहं 'पुप्फफलजंभग' त्ति उभयजृम्भकाः, एतस्य च स्थाने 'मंतजंभग' त्ति वाचनान्तरे दृश्यते, 'अवियत्तजंभग' त्ति अव्यक्ता अन्नाद्यविभागेन जृम्भका ये ते तथा, क्वचित्तु 'अहिवइजंभगं' त्ति दृश्यते तत्र चाधिपतौ–राजादिनायकविषये जृम्भका ये ते तथा।

१४/१२०. 'सव्वेसु चेव दीहवेयड्ढेसु' त्ति 'सर्व्वेषु' प्रतिक्षेत्रं तेषां भावात् सप्तत्यधिकशतसङ्ख्येषु 'दीर्घविजयार्द्धेषु' पर्वतविशेषेषु, दीर्घग्रहणं च वर्त्तुलविजयार्द्धव्यवच्छेदार्थं, 'चित्तविचित्तजमगपव्वएसु' त्ति देवकुरुषु शीतोदानद्या उभयपार्श्वश्चित्रकूटो विचित्रकूटश्च पर्वतः तथोत्तरकुरुषु शीताभिधाननद्या उभयतो यमकसमकाभिधानौ पर्वतौ स्तस्तेषु, 'कंचणपव्वएसु' त्ति उत्तरकुरुषु शीतानदीसम्बन्धिनां पञ्चानां नीलवदादिह्रदानां क्रमव्यवस्थितानां प्रत्येकं पूर्वापरतटयोर्दश दश काञ्चनाभिधाना गिरयः सन्ति ते च शतं भवन्ति, एवं देवकुरुष्वपि शीतोदानद्याः सम्बन्धिनां निषदह्रदादीनां पञ्चानां महाह्रदानामिति, तदेवं द्वे शते, एवं धातकीखण्डपूर्वार्धादिष्वप्यतस्तेष्विति॥

चतुर्दशशतेऽष्टमः॥१४-८॥

नवम उद्देशकः

अनन्तरोद्देशकान्त्यसूत्रेषु देवानां चित्रार्थविषयं सामर्थ्यमुक्तं, तस्मिंश्च सत्यपि यथा तेषां स्वकर्म्मलेश्यापरिज्ञानसामर्थ्यं कथञ्चिन्नास्ति तथा साधोरपीत्याद्यर्थनिर्णयार्थो नवमोद्देशकोऽभिधीयते, इत्येवंसम्बद्धस्यास्येदमादिसूत्रम्–

१४/१२३. 'अणगारे ण' मित्यादि, अनगारः 'भावितात्मा' संयमभावनया वासितान्तःकरणः आत्मनः सम्बन्धिनीं कर्म्मणो योग्यां लेश्या–कृष्णादिकां कर्म्मणो वा लेश्या–'लिश श्लेषणे' इति वचनात् सम्बन्धःकर्म्मलेश्यां तां न जानाति विशेषतो न पश्यति च सामान्यतः, कृष्णादिलेश्यायाः कर्मद्रव्यश्लेषणस्य चातिसूक्ष्मत्वेन छद्मस्थज्ञानागोचरत्वात्, 'तं पुण जीवं' ति यो जीवः कर्म्मलेश्यावांस्तं पुनः 'जीवम्' आत्मानं 'सरूविं' ति सह रूपेण–रूपरूपवतोरभेदाच्छरीरेण वर्त्तते योऽसौ समासान्तविधेः सरूपी तं सरूपिणं सरीरमित्यर्थः अत एव 'सकम्मलेश्यं कम्मलेश्यया सह वर्त्तमानं जानाति शरीरस्य चक्षुर्ग्राह्यत्वाज्जीवस्य च कथञ्चिच्छरीराव्यतिरेकादिति।

'सरूविं सकम्मलेस्सं' ति प्रागुक्तम्, अथ तदेवाधिकृत्य प्रश्नान्नाह–

१४/१२४. 'अत्थि ण' मित्यादि, 'सरूविं' ति सह रूपेण–मूर्त्ततया ये ते 'सरूपिणः' वर्णादिमन्तः 'सकम्मलेस्स' त्ति पूर्ववत् 'पुद्गलाः' स्कन्धरूपाः 'ओभासंति' त्ति प्रकाशन्ते।

१४/१२५. 'लेसाओ' त्ति तेजांसि 'बहिया अभिनिस्सडाओ' त्ति बहिस्तादभिनिःसृता–निर्गताः, इह च यद्यपि चन्द्रादिविमानपुद्गला एव पृथिवीकायिकत्वेन सचेतनत्वात्सकर्म्मलेश्यास्तथाऽपि तन्निर्गतप्रकाशपुद्गलानां तद्धेतुकत्वेनोपचारात्सकर्म्मलेश्यत्वमवगन्तव्यमिति।

पुद्गलाधिकारादिदमाह–

१४/१२६. 'नेरइयाणं' मित्यादि, 'अत्त' त्ति आ–अभिविधिना त्रायन्ते–दुःखात् संरक्षन्ति सुखं चोत्पादयन्तीति आत्राः आत्मा वा–एकान्तहिताः, अत एव रमणीया इति वृद्धैर्व्याख्यातं, एते च ये मनोज्ञा प्राग् व्याख्यातास्ते दृश्या।

१४/१२९. तथा 'इट्ठे' त्यादि प्राग्वत्।

पुद्गलाधिकारादिदमाह–

१४/१३०,१३१. 'देवे ण' मित्यादि, 'एगा णं सा भासा भास' त्ति एकाऽसौ भाषा, जीवैकत्वेनोपयोगैकत्वात्, एकस्य जीवस्यैकदा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एक एवोपयोग इष्यते, ततश्च यदा सत्याद्यन्तरस्यां भाषायां वर्त्तते तदा नान्यस्यामित्येकैव भाषेति।

पुद्गलाधिकारादेवेदमाह–

१४/१३२. 'तेण' मित्यादि, 'अचिरोद्गतम्' उद्गतमात्रमत एव बालसूर्यं जासुमणाकुसुमप्पगासं' ति जासुमणा नाम वृक्षस्तत्कुसुमप्रकाशमत एव लोहितकमिति 'किमिदं' ति किंस्वरूपमिदं सूर्यवस्तु, तथा किमिदं भदन्त! सूर्यस्य–सूर्यशब्दस्यार्थः–अन्वर्थवस्तु?, सुभे सूरिए' त्ति शुभस्वरूपं सूर्यवस्तु सूर्यविमानपृथिवीकायिकानामातपाभिधानपुण्यप्रकृत्युदय-वर्त्तित्वाद् लोकेऽपि प्रशस्ततया प्रतीतत्वात् ज्योतिष्केन्द्रत्वाच्च, तथा शुभः सूर्यशब्दार्थस्तथाहि–सूरेभ्यः–क्षमातपोदानसङ्ग्रामादिवीरेभ्यो हितः सूरेषु वा साधुः सूर्यः।

१४/१३३-१३५. 'पभ' त्ति दीप्तिः, छाया–शोभा प्रतिबिम्बं वा, लेश्या–वर्णः।

लेश्याप्रक्रमादिदमाह–

१४/१३६. 'जे इमे' इत्यादि, ये इमे प्रत्यक्षाः 'अज्जत्ताए' त्ति आर्यतया पापकर्म्मबहिर्भूततया अद्यतया वा–अधुनातनतया वर्त्तमानकालतयेत्यर्थः 'तेयलेस्सं' ति तेजोलेश्यां–सुखासिकां तेजोलेश्या हि प्रशस्तलेश्योपलक्षणं सा च सुखासिकाहेतुरिति कारणे कार्योपचारात्तेजोलेश्याशब्देन सुखासिका विवक्षितेति, 'वीइवयंति' व्यतिव्रजन्ति व्यतिक्रामन्ति 'असुरिंदवज्जियाणं' ति चमरबलवर्जितानां 'तेण परं' ति ततः संवत्सरात्परतः 'सुक्के' त्ति शुक्लो नामाभिन्नवृत्तोऽमत्सरी कृतज्ञः सदारम्भी हितानुबन्ध इति, निरतिचारचरण इत्यन्ये, 'सुक्काभिजाइ' त्ति शुक्लाभिजात्यः परमशुक्ल इत्यर्थः, अत एवोक्तम्–

'आकिञ्चन्यं मुख्यं ब्रह्मापि परं सदागमविशुद्धम्।
सर्वं शुक्लमिदं खलु नियमात्संवत्सरादूर्ध्वम्॥१॥'

एतच्च श्रमणविशेषमेवाश्रित्योच्यते न पुनः सर्व एवैवंविधो भवतीति।

चतुर्दशशते नवमः॥१४-९॥

दशम उद्देशकः

अनन्तरं शुक्ल उक्तः, स च तत्त्वतः केवलीति केवलिप्रभृत्यर्थप्रतिबद्धो दशम उद्देशकः, तस्य चेदमादिसूत्रम्–

१४/१३८-१४२. केवली' त्यादि, इह केवलिशब्देन भवस्थकेवली गृह्यते उत्तरत्र सिद्धग्रहणादिति। 'आहोहियं' ति प्रतिनियतक्षेत्रावधिज्ञानं 'परमाहोहियं' ति परमावधिकं। 'भासेज्ज व' त्ति भाषेतापृष्ट एव 'वागरेज्ज' त्ति प्रष्टः सन् व्याकुर्यादिति।

१४/१४६. 'ठाणं' ति ऊर्द्ध्वस्थानं निषदनस्थानं त्वग्वर्त्तनस्थानं चेति 'सेज्जं' ति शय्यां–वसतिं 'निसीहियं' ति अल्पतरकालिकां वसतिं 'चेएज्ज' त्ति कुर्यादिति॥

चतुर्दशशते दशमः॥१४-१०॥

समाप्तं च वृत्तितश्चतुर्दशं शतम्॥१४॥

चतुर्दशस्येह शतस्य वृत्तिर्येषां प्रभावेण कृता मयैषा।
जयन्तु ते पूज्यजना जनानां, कल्याणसंसिद्धिपरस्वभावाः॥१॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथ पञ्चदशं : गोशालकाख्यं शतकम्

व्याख्यातं चतुर्दशशतम्, अथ पञ्चदशमारभ्यते, तस्य चायं पूर्वेण सहाभिसम्बन्धः–अनन्तरशते केवली रत्नप्रभादिकं वस्तु जानातीत्युक्तं तत्परिज्ञानं चात्मसम्बन्धि यथा भगवता श्रीमन्महावीरेण गौतमायाविर्भावितं गोशालकस्य स्वशिष्याभासस्य नरकादिगतिमधिकृत्य तथाऽनेनोच्यते इत्येवंसम्बन्धस्यास्येदमादिसूत्रम्–

१५/२. 'तेण' मित्यादि, मंखलिपुत्ते' त्ति मङ्खल्यभिधानमङ्खस्य पुत्रः 'चउवीसवासपरियाए' त्ति चतुर्विंशतिवर्षप्रमाणप्रव्रज्यापर्यायः।

१५/३. 'दिसाचर' त्ति दिशं–मेरां चरन्ति–यान्ति मन्यन्ते भगवतो वयं शिष्या इति दिक्चराः देशाटा वा, दिक्चरा भगवच्छिष्याः पार्श्वस्थीभूता इति टीकाकारः 'पासावच्चिज्ज' त्ति चूर्णिकारः 'अंतियं पाउब्भविज्ज' त्ति समीपमागताः।

१५/४. 'अट्ठविहं पुव्वगयं मग्गदसमं' ति अष्टविधम्–अष्टप्रकारं निमित्तमिति शेषः, तच्चेदं–दिव्यं १ औत्पातं २ आन्तरिक्षं ३ भौमं ४ आङ्गं ५ स्वरं ६ लक्षणं ७ व्यञ्जनं ८ चेति, पूर्वगतं–पूर्वाभिधानश्रुतविशेषमध्यगतं, तथा मार्गौ–गीतमार्गनृत्यमार्गलक्षणौ सम्भाव्येते 'दसम' त्ति अत्र नवमशब्दस्य लुप्तस्य दर्शनान्नवमदशमाविति दृश्यं, ततश्च मार्गौ नवमदशमौ यत्र तत्तथा, 'सएहिं' २ ति स्वकैः २ स्वकीयैः २ 'मइदंसणेहिं' ति मतेः बुद्धेर्मत्या वा दर्शनानि–प्रमेयस्य परिच्छेदनानि मतिदर्शनानि तैः 'निज्जूहंति' त्ति निर्यूथयन्ति पूर्वलक्षणश्रुतपर्याययूथान्निर्धारयन्ति उद्धरन्तीत्यर्थः 'उवट्ठाइंसु' त्ति उपस्थितवन्तः आश्रितवन्त इत्यर्थः।

१५/५. 'अट्ठगस्स' त्ति अष्टभेदस्य 'केणइ' त्ति केनचित्–तथाविधजनाविदितस्वरूपेण 'उल्लोयमेत्ते णं' ति उद्देशमात्रेण 'इमाइं छ अणइक्कमणिज्जाइं' ति इमानि षड् अनतिक्रमणीयानि–व्यभिचारयितुमशक्यानि 'वागरणाइं' ति पृष्टेन सता यानि व्याक्रियन्ते–अभिधीयन्ते तानि व्याकरणानि पुरुषार्थोपयोगित्वाच्चैतानि षडुक्तानि, अन्यथा नष्टमुष्टिचिन्तालूकाप्रभृतीन्यन्यान्यपि बहूनि निमित्तगोचरीभवन्तीति।

१५/६. 'अजिणे जिणप्पलावि' त्ति अजिनः–अवीतरागः सन् जिनमात्मानं प्रकर्षेण लपतीत्येवंशीलो जिनप्रलापी, एवमन्यान्यपि पदानि वाच्यानि, नवरम् अर्हन्–पूजार्हः केवली–परिपूर्णज्ञानादिः, किमुक्तं भवति?–'अजिणे' इत्यादि।

१५/९. 'एवं जहा बितियसए नियंठुद्देसए' त्ति द्वितीयशतस्य पञ्चमोद्देशके।

१५/१३. 'उट्ठाणपरियाणियं' ति परियानं–विविधव्यतिकरपरिगमनं तदेव पारियानिकं–चरितम् उत्थानात्–जन्मन आरभ्य पारियानिकं उत्थानपारियानिकं तत्परिकथितं भगवद्भिरिति गम्यते।

१५/१४. 'मंखे' त्ति मङ्खः–चित्रफलकव्यग्रकरो भिक्षाकविशेषः 'सुकुमाल' इह यावत्करणादेवं दृश्यं–'सुकुमालपाणिपाए लक्खणवंजणगुणोववेए' इत्यादि।

१५/१५. 'रिद्धत्थिमिय' इह यावत्करणादेवं दृश्यम्–'ऋद्धत्थिमियसमिद्धे पमुइयजणजाणवए' इत्यादि व्याख्या तु पूर्ववत्।

१५/१८. 'चित्तफलगहत्थगए' त्ति चित्रफलकं हस्ते गतं यस्य स तथा, 'पाडिएक्कं' ति एकमात्मानं प्रति प्रत्येकं पितुः फलकाद्भिन्नमित्यर्थः।

१५/२०. 'आगारवासमज्झे वसित्त' त्ति अगारवासं–गृहवासमध्युष्य–आसेव्य 'एवं जहा भावणाए' त्ति आचारद्वितीयश्रुतस्कन्धस्य पञ्चदशेऽध्ययने, अनेन चेदं सूचितं–'समत्तपइन्ने नाहं समणो होहं अम्मापियरंमि जीवंते' त्ति समाप्ताभिग्रह इत्यर्थः 'चिच्चा हिरन्नं चिच्चा सुवन्नं चिच्चा बलं' मित्यादीनि।

१५/२१. 'पढमं वासं' ति विभक्तिपरिणामात् प्रव्रज्याप्रतिपत्तेः प्रथमे वर्षे 'निस्साए' त्ति निश्राय निश्रां कृत्वेत्यर्थः 'पढमं अंतरावासं' ति विभक्तिपरिणामादेव प्रथमेऽन्तरं–अवसरो वर्षस्य–वृष्टेर्यत्रासावन्तरवर्षः अथवाऽन्तरेऽपि–जिगमिषतक्षेत्रमप्राप्यापि यत्र सति साधुभिरवश्यमावासो विधीयते सोऽन्तरावासो–वर्षाकालस्तत्र 'वासावासं' ति वर्षासु वासः–चातुर्मासिकमवस्थानं वर्षावासस्तमुपागतः–उपाश्रितः। 'दोच्चं वासं' ति द्वितीये वर्षे 'तंतुवायसाल' त्ति कुविन्दशाला।

१५/२५. 'अंजलिमउलियहत्थे' त्ति अञ्जलिना मुकुलितौ–मुकुलाकारौ कृतौ हस्तौ येन स तथा।

१५/२६. 'दव्वसुद्धेणं' ति द्रव्यं–ओदनादिकं शुद्धं–उद्गमादिदोषरहितं यत्र दाने तत्तथा तेन 'दायगसुद्धेणं' ति दायकः शुद्धो यत्राशंसादिदोषरहितत्वात् तत्तथा तेन, एवमितरदपि, 'तिविहेणं' ति उक्तलक्षणेन त्रिविधेन, अथवा त्रिविधेन कृतकारितानुमतिभेदेन त्रिकरणशुद्धेन–मनोवाक्कायशुद्धेन 'वसुहारा वुट्ठ' त्ति वसुधारा द्रव्यरूपा धारा वृष्टा 'अहो दाणं' ति अहोशब्दो विस्मये।

१५/२७. 'कयत्थे णं' ति कृतार्थः–कृतस्वप्रयोजनः 'कयलक्खणे' त्ति कृतफलवल्लक्षण इत्यर्थः 'कया णं लोग' त्ति कृतौ शुभफलौ अवयवे समुदायोपचारात् लोकौ–इहलोकपरलोकौ 'जम्मजीवियफले' त्ति जन्मनो जीवितव्यस्य च यत्फलं तत्तथा 'तहारूवे साहु साहुरूवे' त्ति 'तथारूपे' तथाविधे अविज्ञातव्रतविशेष इत्यर्थः 'साधौ' श्रमणे 'साधुरूपे' साध्वाकारे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१५/२८. 'धम्मंतेवासि' त्ति शिल्पादिग्रहणार्थमपि शिष्यो भवतीत्यत उच्यते–धर्म्मान्तेवासी।

१५/३२. 'खज्जगविहीए' त्ति खण्डाखाद्यादिलक्षणभोजनप्रकारेण।

१५/३९. 'सव्वकामगुणिएणं' ति सर्वे कामगुणा–अभिलाषविषयभूता रसादयः सञ्जाता यत्र तत्सर्वकामगुणितं तेन।

१५/४६. 'परमन्नेणं' ति परमान्नेन–क्षैरेय्या 'आयामेत्थ' त्ति आचामितवान् तद्भोजनदानद्वारेणोच्छिष्टतासम्पादनेन तच्छुद्ध्यर्थमाचमनं कारितवान् भोजितवानिति तात्पर्यार्थः।

१५/५१. 'सब्भिंतरबाहिरिए' त्ति सहाभ्यन्तरेण विभागेन बाह्येन च यत्तत्तथा तत्र 'मग्गणगवेसणं' ति अन्वयतो मार्गणं व्यतिरेकतो गवेषणं ततश्च समाहारद्वन्द्वः 'सूइं व' त्ति श्रूयत इति श्रुतिः–शब्दस्तां चक्षुषा किल दृश्यमानोऽर्थः शब्देन निश्चीयत इति श्रुतिग्रहणं 'खुइं व' त्ति क्षवणं क्षुतिः–छींत्कृतं ताम् एषाऽप्यदृश्यमनुष्यादिगमिका भवतीति गृहीता, 'पवत्तिं व' त्ति प्रवृत्तिं–वार्त्तां, 'साडियाओ' त्ति परिधानवस्त्राणि 'पाडियाओ' त्ति उत्तरीयवस्त्राणि, क्वचित् 'भंडियाओ' त्ति दृश्यते तत्र भण्डिका–रन्धनादिभाजनानि, 'माहणे आयामेति' त्ति शाटिकादीनर्थान् ब्राह्मणान् लम्भयति शाटिकादीन् ब्राह्मणेभ्यो ददातीत्यर्थः, 'सउत्तरोट्ठं' ति सह उत्तरौष्ठेन सोत्तरौष्ठं–सश्मश्रुकं यथा भवतीत्येवं 'मुंडं' ति मुण्डनं कारयति नापितेन।

१५/५३. 'पणियभूमीए' त्ति पणितभूमौ–भाण्डविश्रामस्थाने प्रणीतभूमौ वा मनोज्ञभूमौ 'अभिसमन्नागए' त्ति मिलितः।

१५/५५. 'एयमट्ठं पडिसुणेमि' त्ति अभ्युपगच्छामि, यच्चैतस्या योग्यस्याप्यभ्युपगमनं भगवतस्तदक्षीणरागतया परिचयेनेषत्स्नेहगर्भानुकम्पासद्भावात् छद्मस्थतयाऽनागत-दोषानवगमादवश्यंभावित्वाच्चैतस्यार्थस्येति भावनीयमिति।

१५/५६. 'पणियभूमीए' त्ति पणितभूमेरारभ्य प्रणीतभूमौ वा–मनोज्ञभूमौ विहृतवानिति योगः, 'अनिच्चजागरियं' ति अनित्यचिन्तां कुर्वन्निति वाक्यशेषः।

१५/५७. 'पढमसरयकालसमयंसि' ति समयभाषया मार्गशीर्षपौषौ शरदभिधीयते तत्र प्रथमशरत्कालसमये मार्गशीर्षे। 'अप्पवुट्ठिकायंसि' त्ति अल्पशब्दस्याभाववचनत्वादविद्यमानवर्ष इत्यर्थः, अन्ये त्वश्वयुक्कार्त्तिकौ शरदित्याहुः, अल्पवृष्टिकायत्वाच्च तत्रापि विहरतां न दूषणमिति, एतच्चासङ्गतमेव, भगवतोऽप्यवश्यं पर्युषणस्य कर्त्तव्यत्वेन पर्युषणाकल्पेऽभिहितत्वादिति। 'हरियगरेरिज्जमाणे' त्ति हरितक इतिकृत्वा 'रेरिज्जमाणे' त्ति अतिशयेन राजमान इत्यर्थः।

१५/५८. 'तए णं अहं गोयमा! गोसालं मंखलिपुत्तं एवं वयासि' त्ति, इह यद्भगवतः पूर्वकालप्रतिपन्नमौनाभिग्रहस्यापि प्रत्युत्तरदानं तदेकादिकं वचनं मुत्कलमित्येवमभिग्रहणस्य संभाव्यमानत्वेन न विरुद्धमिति, 'तिलसंगलियाए' त्ति तिलफलिकायां।

१५/५९. 'ममं पणिहाए' त्ति मां प्रणिधाय–मामाश्रित्यायं मिथ्यावादी भवत्वितिविकल्पं कृत्वा, 'अब्भवद्दलए' त्ति अभ्ररूपं वारो–जलस्य दलिकं–कारणमभ्रवार्दलकं 'पतणतणायइ' त्ति प्रकर्षेण तणतणायते गर्जतीत्यर्थः 'नच्चोदगं' ति नात्युदकं यथा भवति 'नाइमट्टियं' ति नातिकर्दमं तथा भवतीत्यर्थः 'पविरलपप्फुसियं' ति प्रविरलाः प्रस्पृशिका–विप्रुषो यत्र तत्तथा, 'रयरेणुविणासणं' ति रजो–वातोत्पाटितं व्योमवर्त्ति रेणवश्च–भूमिस्थितपांशवस्तद्विनाशनं–तदुपशमकं, 'सलिलोदगवासं' ति सलिलाः–शीतादिमहानद्यस्तासामिव यदुदकं–रसादिगुणसाधर्म्यादिति तस्य यो वर्षः स सलिलोदकवर्षोऽतस्तं, 'बद्धमूले' त्ति बद्धमूलः सन् 'तत्थेव पडिहए' त्ति यत्र पतितस्तत्रैव प्रतिष्ठितः।

१५/६०. 'पाणभूयजीवसत्तदयट्ठयाए' त्ति प्राणादिषु समान्येन या दया सैवार्थः प्राणादिदयार्थस्तद्भावस्तत्ता तया, अथवा षट्पदिका एवं प्राणानामुच्छ्वासादीनां भावात्प्राणाः भवनधर्म्मकत्वाद्भूताः उपयोगलक्षणत्वाज्जीवाः सत्त्वोपपेतत्वात्सत्त्वास्ततः कर्म्मधारयस्तदर्थतायै, चशब्दः पुनरर्थः, 'तत्थेव' त्ति शिरःप्रभृतिके।

१५/६१. 'किं भवं मुणी मुणिए' त्ति किं भवान् 'मुनिः' तपस्वी जातः 'मुनिए' त्ति ज्ञाते तत्त्वे सति ज्ञात्वा वा तत्त्वम्, अथवा किं भवान् 'मुनी' तपस्विनी 'मुणिए' त्ति मुनिकः–तपस्वीति, अथवा किं भवान् 'मुनिः' यतिः उत 'मुणिकः' ग्रहगृहीतः 'उदाहु' त्ति उताहो इति विकल्पार्थो निपातः 'जूयासेज्जायरए' त्ति यूकानां स्थानदातेति।

१५/६४. 'सत्तट्ठ पयाइं पच्चोसक्कइ' त्ति प्रयत्नविशेषार्थमुरभ्र इव प्रहारदानार्थमिति।

१५/६६. 'सा उसिणं तेयलेस्सं' ति स्वां–स्वकीयामुष्णां तेजोलेश्यां 'से गयमेयं भगवं गयगयमेवं भगवं' ति अथ गतं–अवगतमेतन्मया हे भगवन्! यथा भगवतः प्रसादादयं न दग्धः, सम्भ्रमार्थत्वाच्च गतशब्दस्य पुनः पुनरुच्चारणम्।
इह च यद्गोशालकस्य संरक्षणं भगवता कृतं तत्सरागत्वेन दयैकरसत्वाद्भगवतः, यच्च सुनक्षत्रसर्वानुभूतिमुनिपुङ्गवयोर्न करिष्यति तद्वीतरागत्वेन लब्ध्यनुपजीवकत्वादवश्यंभावि-भावत्वाद्वेत्यवसेयमिति।

१५/६९. 'संखित्तविउलतेयलेसे' त्ति सङ्क्षिप्ताऽप्रयोगकाले विपुला प्रयोगकाले तेजोलेश्या–लब्धिविशेषो यस्य स तथा।

१५/७०. 'सनहाए' त्ति सनखया यस्यां पिण्डिकायां बध्यमानायामङ्गुलीनखा अङ्गुष्ठस्याधो लगन्ति सा सनखेत्युच्यते 'कुम्मासपिंडियाए' त्ति कुल्माषाः–अर्द्धस्विन्ना मुद्गादयो माषा इत्यन्ये 'वियडासएणं' ति विकटं–जलं तस्याशयः आश्रयो वा–स्थानं विकटाशयो विकटाश्रयो वा तेन, अमुं च प्रस्तावाच्चुलुकमाहुर्वृद्धाः।

१५/७२. 'जाहे य मो' त्ति यदा च स्मो–भवामो वयं 'अनिष्पन्नमेव' त्ति मकारस्यागमिकत्वादनिष्पन्न एव।

१५/७३. वणस्सइकाइयाओ पउट्टपरिहारं परिहरंति' त्ति परिवृत्य २–मृत्वा २ यस्तस्यैव वनस्पतिशरीरस्य परिहारः–

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिभोगस्तत्रैवोत्पादोऽसौ परिवृत्यपरिहारस्तं परिहरन्ति-कुर्वन्तीत्यर्थः।

१५/७४. 'खुड्डइ' त्ति त्रोटयति।

१५/७५. 'पउट्टे' त्ति परिवर्त्तः परिवर्त्तवाद इत्यर्थः 'आयाए अवक्कमणे' त्ति आत्मनाऽऽदाय चोपदेशम् 'अपक्रमणम्' अपसरणं।

१५/७६. 'जहा सिवे' त्ति शिवराजर्षिचरिते।

१५/८०. 'महया अमरिस' त्ति महान्तममर्षम् 'एवं वादि' त्ति एवं चेति प्रज्ञापकोपदर्श्यमानकोपचिह्नम्, अपीति समुच्चये।

१५/८३. 'महं उवमियं' ति मम सम्बन्धि महद्वा विशिष्टं-औपम्यमुपमा दृष्टान्त इत्यर्थः।

१५/८५. 'चिरातीताए अद्धाए' त्ति चिरमतीते काले 'उच्चावय' त्ति उच्चावचा-उत्तमानुत्तमाः 'अत्थत्थि' त्ति द्रव्यप्रयोजनाः, कुत एवम्? इत्याह-'अत्थलुद्ध' त्ति द्रव्यलालसाः अत एव 'अत्थगवेसिय' त्ति, अर्थगवेषिणोऽपि कुत इत्याह-'अत्थकंखिय' त्ति प्राप्तेऽप्यर्थेऽविच्छिन्नेच्छाः, 'अत्थपिवासिय' ति अप्राप्तार्थ-विषयसञ्जाततृष्णाः, यत एवमत एवाह-'अत्थगवेसणयाए' इत्यादि, 'पणियभंडे' त्ति पणितं-व्यवहारस्तदर्थं भाण्डं पणितं वा-क्रयाणकं तदूपं भाण्डं न तु भाजनमिति पणितभाण्डं 'सगडीसागडेणं' ति शकट्योगन्त्रिकाः शकटानां-गन्त्री-विशेषाणां समूहः शाकटं ततः समाहारद्वन्द्वोऽतस्तेन 'भत्तपाणपत्थयणं' ति भक्तपानरूपं यत्पथ्यदनं-शम्बलं तत्तथा, 'अगामियं' ति अग्रामिकां अकामिकां वा-अनभिलाषविषय-भूताम् 'अणोहियं' ति अविद्यमानजलौघिकामतिगहनत्वेना-विद्यमानोहां वा 'छिन्नावायं' ति व्यवच्छिन्नसार्थघोषाद्यापातां 'दीहमद्धं' ति दीर्घमार्गां दीर्घकालां वा।

१५/८७. 'किण्हं किण्होभासं' इह यावत्करणादिदं दृश्यं-'नीलं नीलोभासं हरियं हरिओभास' मित्यादि, व्याख्या चास्य प्राग्वत्, 'महेगं वम्मीयं' ति महान्तमेकं वल्मीकं 'वप्पुओ' त्ति वपूंषि-शरीराणि शिखराणीत्यर्थः 'अब्भुग्गयाओ' त्ति अभ्युद्गतान्यभ्रोद्गतानि वोच्चानीत्यर्थः 'अभिनिसढाओ त्ति अभिविधिना निर्गताः सटाः-तदवयवरूपाः केशरिस्कन्ध-सटावद् येषां तान्यभिनिःशटानि, इदं च तेषामूर्द्ध्वगतं स्वरूपमथ तिर्यगाह-'तिरियं सुसंपगहियाओ' त्ति सुसंप्रगृहीतानि' सुसंवृतानि नातिविस्तीर्णानीत्यर्थः, अधः किंभूतानि? इत्याह-'अहे पणगद्धरूवाओ' त्ति सर्पार्द्धरूपाणि यादृशं पन्नगस्योदरच्छिन्नस्य पुच्छत ऊर्द्ध्वीकृतमर्द्धमधो विस्तीर्णमुपर्युपरि चातिश्लक्ष्णं भवतीत्येवं रूपं येषां तानि तथा। पन्नगार्द्धरूपाणि चर्वणादिनाऽपि भवन्तीत्याह-'पन्नगद्धसंठाण-संठियाओ' त्ति भावितमेव।

१५/८८. 'ओरालं उदगरयणं आसाइस्सामो' त्ति अस्यायमभिप्रायः-एवंविधभूमिगर्त्ते किलोदकं भवति वल्मीके चावश्यम्भाविनो गर्त्ताः अतः शिखरभेदे गर्त्तः, प्रकटो भविष्यति तत्र च जलं भविष्यतीति।

१५/८९. 'अच्छं' ति निर्मलं 'पत्थं' ति पथ्यं-रोगोपशमहेतुः 'जच्चं' ति जात्यं संस्काररहितं 'तणुयं' ति तनुकं सुजरमित्यर्थः 'फालियवण्णाभं' ति स्फटिकवर्णवदाभा यस्य तत्तथा, अत एव 'ओरालं' ति प्रधानम् 'उदगरयणं' ति उदकमेव रत्नमुदकरत्नं उदकजातौ तस्योत्कृष्टत्वात्, 'वाहणाइं पज्जेंति' त्ति बलीवर्दादिवाहनानि पाययन्ति।

१५/९०. 'अच्छं' ति निर्मलं 'जच्चं' ति अकृत्रिमं 'तावणिज्जं' ति तापनीयं तापसहं 'महत्थं' ति महाप्रयोजनं 'महग्घं' ति महामूल्यं 'महरिहं' ति महतां योग्यं।

१५/९१. 'विमलं' ति विगतागन्तुकमलं 'निम्मलं' ति स्वाभाविक-मलरहितं 'नित्तलं' ति निस्तलमतिवृत्तमित्यर्थः 'निक्कलं' ति निष्कलं त्रासादिरत्नदोषरहितं 'वइररयणं' ति वज्राभिधानरत्नं।

१५/९२. 'हियकामए' त्ति इह हितं-अपायाभावः 'सुहकामए' त्ति सुखं-आनन्दरूपं 'पत्थकामए' त्ति पथ्यमिव पथ्यं-आनन्द-कारणं वस्तु 'आणुकंपिए' त्ति अनुकम्पया चरतीत्यानुकम्पिकः 'निस्सेयसिए' त्ति निःश्रेयसं यन्मोक्षमिच्छतीति नैःश्रेयसिकः, अधिकृतवाणिजस्योक्तैरेव गुणैः कैश्चिद्युगपद्योगमाह-'हिए' त्यादि, 'तं होउ अलाहि पज्जत्तं णे' त्ति तत्-तस्माद् भवतु अलं पर्याप्तमित्येते शब्दाः प्रतिषेधवाचकत्वेनैकार्था आत्यन्तिक-प्रतिषेधप्रतिपादनार्थमुक्ताः 'णे' त्ति नः-अस्माकं सउवसग्गा यावि' त्ति इह चापीति सम्भावनार्थः।

१५/९३. 'उग्गविसं' ति दुर्जरविषं 'चंडविसं' ति दष्टकनरकायस्य झगिति व्यापकविषं 'घोरविसं' ति परम्परया पुरुषसहस्रस्यापि हननसमर्थविषं 'महाविषं' ति जम्बूद्वीपप्रमाणस्यापि देहस्य व्यापनसमर्थविषम् 'अइकाय-महाकायं' ति कायान् शेषाहीनामतिक्रान्तोऽतिकायोऽत एव महाकायस्ततः कर्म्मधारयः, अथवाऽतिकायानां मध्ये महाकायोऽतिकाय-महाकायोऽतस्तं, 'मसिमूसाकालग' त्ति मषी-कज्जलं मूषा च-सुवर्णादितापनभाजनविशेषस्ते इव कालको यः स तथा तं 'नयणविसरोसपुन्नं' ति नयनविषेण-दृष्टिविषेण रोषेण च पूर्णो यः स तथा तम् 'अंजणपुंजनिगरप्पगासं' ति अञ्जनपुञ्जानां निकरस्येव प्रकाशोदीप्तिर्यस्य स तथा तं, पूर्वं कालवर्णत्वमुक्तमिह तु दीप्तिरिति न पुनरुक्ततेति, 'रत्तच्छं' ति रक्ताक्षं 'जमलजुयल-चंचलचलंतजीहं' ति जमलं-सहवर्त्ति युगलं-द्वयं चञ्चलं यथा भवत्येवं चलन्त्योः-अतिच-पलयोर्जिह्वयोर्यस्य स तथा तं, प्राकृतत्वाच्चैवं समासः, 'धरणितलवेणिभूयं' ति धरणीतलस्य वेणीभूतो-वनिताशिरसः केशबन्धविशेष इव यः कृष्णत्वदीर्घत्वश्लक्ष्णपश्चाद्भागत्वादि-साधर्म्यात्स तथा तम् 'उक्कडफुडकुडिलजडुलकक्खडवियड-फडाडोवकरणदच्छं' ति उत्कटो बलवताऽन्येनाध्वंसनीयत्वात् स्फुटो-व्यक्तः प्रयत्नविहितत्वात् कुटिलो-वक्रस्तत्स्वरूपत्वात् जटिलः-स्कन्धदेशे केशरिणामिवाहीनां केसरसद्भावात् कर्कशो-निष्ठुरो बलवत्त्वात् विकटो-विस्तीर्णो यः स्फटाटोपः-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

फणासंरम्भस्तत्करणे दक्षो यः स तथा तं 'लोहागरधम्ममाण-धमधमेंतघोसं' ति लोहस्येवाकरे ध्मायमानस्य-अग्निना ताप्यमानस्य धमधमायमानोधमधमेतिवर्णव्यक्तिमिवोत्पादयन् घोषः-शब्दो यस्य स तथा तम्, 'अणागलियचंडतिव्वरोसं' ति अनिर्गलितः-अनिवारितोऽनाकलितो वाऽप्रमेयश्चण्डः तीव्रो रोषो यस्य स तथा तं, 'समुहियतुरियचवलं धमंतं' ति शुनो मुखं श्वमुखं तस्येवाचरणं श्वमुखिका-कौलेयकस्येव भषणं तां त्वरितं च चपलमतिचटुलतया धमन्तं-शब्दं कुर्वन्तमित्यर्थः।

१५/९४. 'सरससरसरसरस्स' त्ति सर्प्पगतेरनुकरणम् 'आइच्चं निज्झायइ' त्ति आदित्यं पश्यति दृष्टिलक्षणविषस्य तीक्ष्णतार्थं।

१५/९५. 'सभंडमत्तोवगरणमायाय' त्ति सह भाण्डमात्रया-पणित-परिच्छेदन उपकरणमात्रया च ये ते तथा, 'एगाहच्चं' ति एका एव आहत्या-आहननं प्रहारो यत्र भस्मीकरणे तदेकाहत्यं तद्यथा भवत्येवं, कथमिव? इत्याह-कूडाहच्चं' ति कूटस्येव-पाषाण-मयमारणमहायन्त्रस्येवाहत्या-आहननं यत्र तत् कूटाहत्यं तद्यथा भवतीत्येवं।

१५/९६. 'परियाए, त्ति पर्यायः-अवस्था 'कित्तिवन्नसद्दसिलोग' त्ति इह वृद्धव्याख्या-सर्वदिग्व्यापी साधुवादः कीर्त्तिः एकदिग्व्यापी वर्णः अर्द्धदिग्व्यापी शब्दः तत्स्थान एव श्लोकः श्लाघेतियावत् 'सदेवमणुयासुरे लोए' त्ति सह देवैर्मनुजैरसुरैश्च यो लोको-जीवलोकः स तथा तत्र, 'पुव्वंति' ति 'प्लवन्ते' गच्छन्ति 'प्लुङ्गतौ' इति वचनात् 'गुवंति' 'गुप्यन्ति' व्याकुलीभवन्ति 'गुप व्याकुलत्वे' इति वचनात् 'थुवंति' त्ति क्वचित्तत्र 'स्तूयन्ते' अभिष्टूयन्ते-अभिनन्द्यन्ते, क्वचित् परिभमन्तीति दृश्यते, व्यक्तं चैतदिति, एतदेव दर्शयति-'इति खल्वि' त्यादि, इतिशब्दः प्रख्यातगुणानुवादनार्थः, 'तं' ति तस्मादिति निगमनं, 'तवेणं तेएणं' ति तपोजन्यं तेजस्तप एव वा तेन 'तेजसा' तेजोलेश्यया 'जहा वा वालेणं' ति यथैव 'व्यालेन' भुजगेन 'सारक्खामि' त्ति संरक्षामि दाहभयात् 'संगोवयामि' त्ति संगोपयामि क्षेमस्थानप्रापणेन।

१५/९८. 'पभु' त्ति प्रभविष्णुर्गोशालको भस्मराशिं कर्त्तुम्? इत्येकः प्रश्नः, प्रभुत्वं च द्विधा-विषयमात्रापेक्षया तत्करणश्चेति पुनः पृच्छति-'विसए ण' मित्यादि, अनेन च प्रथमो विकल्पः पृष्टः, 'समत्थे ण' मित्यादिना तु द्वितीय इति, 'पारितावणियं' ति पारितापनिकीं क्रियां पुनः कुर्यादिति। 'अणगाराणं' ति सामान्यसाधूनां 'खंतिक्खम' त्ति क्षान्त्या-क्रोधनिग्रहेण क्षमन्त इति क्षान्तिक्षमाः 'थेराणं' ति आचार्यादीनां वयःश्रुत-पर्यायस्थविराणां।

१५/९९. 'पडिचोयणाए' त्ति तन्मतप्रतिकूला चोदना-कर्त्तव्य-प्रोत्साहना प्रतिचोदना तया 'पडिसाहरणाए' त्ति तन्मतप्रतिकूलतया विस्मृतार्थस्मारणा तया, किमुक्तं भवति?-'धम्मिएण' मित्यादि, 'पडोयारेणं' ति प्रत्युपचारेण प्रत्युपकारेण वा 'पडोयारेउ' त्ति 'प्रत्युपचारयतु' प्रत्युपचारं करोतु एवं प्रत्युपकारयतु वा 'मिच्छं विपडिवन्ने' त्ति मिथ्यात्वं म्लैच्छ्यं वा-अनार्यत्वं विशेषतः प्रतिपन्न इत्यर्थः।

१५/१०१. 'सुट्ठु णं' ति उपालम्भवचनम् 'आउसो' त्ति हे आयुष्मन्!-चिरप्रशस्तजीवित! 'कासव' त्ति काश्यपगोत्रीय! 'सत्तमं पउट्टपरिहारं परिहरामि' त्ति सप्तमं शरीरान्तप्रवेशं करोमीत्यर्थः,

'जेवि आइं' ति येऽपि च 'आइं' ति निपातः 'चउरासीइं महाकप्पसयसहस्साइं' इत्यादि गोशालक-सिद्धान्तार्थः स्थाप्यो, वृद्धैरप्यनाख्यातत्वात्, आह च चूर्णिकारः-संदिद्धत्ताओ तस्स सिद्धंतस्स न लक्खिज्जइ' त्ति तथाऽपि शब्दानुसारेण किञ्चिदुच्यते-चतुरशीति-महाकल्पशतसहस्राणि क्षपयित्वेति योगः, तत्र कल्पाः कालविशेषाः, ते च लोकप्रसिद्धा अपि भवन्तीति तद्व्यवच्छेदार्थमुक्तं महाकल्पावक्ष्यमाणस्वरूपास्तेषां यानि शतसहस्राणि-लक्षाणि तानि तथा, 'सत्त दिव्वे' त्ति सप्त 'दिव्यान्' देवभवान् 'सत्त संजूहे' त्ति सप्त संयूथान्-निकाय-विशेषान्, 'सत्तसन्निगब्भे' त्ति सञ्ज्ञिगर्भान्-मनुष्यगर्भवसतीः, एते च तन्मतेन मोक्षगामिनां सप्तसान्तरा भवन्ति वक्ष्यति चैवैतान् स्वयमेवेति, 'सत्त पउट्टपरिहारे' त्ति सप्त शरीरान्तरप्रवेशान्, एते च सप्तमसञ्ज्ञिगर्भानन्तरं क्रमेणावसेयाः, तथा 'पंचे' त्यादाविदं संभाव्यते 'पंच कम्मणि सयसहस्साइं' ति कर्म्मणि-कर्मविषये कर्म्मणामित्यर्थः पञ्च शतसहस्राणि लक्षाणि 'तिन्नि य कम्मंसि' त्ति त्रींश्च कर्म्मभेदान् 'खवइत्त' त्ति 'क्षपयित्वा' अतिवाह्य।

'से जहे' त्यादिना महाकल्पप्रमाणमाह, तत्र 'से जहा व' त्ति महाकल्पप्रमाणवाक्योपन्यासार्थः 'जहिं वा पज्जुवत्थिय' त्ति यत्र गत्वा परि-सामस्त्येन उपस्थिता-उपरता समाप्ता इत्यर्थः 'एस णं अद्ध' त्ति एष गङ्गाया मार्गः 'एएणं गंगापमाणेणं' ति गङ्गायास्तन्मार्गस्य चाभेदाद्गङ्गाप्रमाणेनेत्युक्तम् 'एवामेव' त्ति उक्तेनैव क्रमेण 'सपुव्वावरेणं' ति सह पूर्वेण गङ्गादिना यदपरं महागङ्गादि तत् सपूर्वापरं तेन भावप्रत्ययलोपदर्शनात्स-पूर्वापरतयेत्यर्थः।

'तासिं दुविहे' इत्यादि, तासां गङ्गादीनां गङ्गादिगतवालुका-कणादीनामित्यर्थः द्विविध उद्धारः उद्धरणीयद्वैविध्यात्, 'सुहुमबोंदिकलेवरे चेव' त्ति सूक्ष्मबोन्दीनिसूक्ष्माकाराणि कलेवराणि-असङ्ख्यातखण्डीकृतवालुकाकणरूपाणि यत्रोद्धारे स तथा 'बायरबोंदिकलेवरे चेव' त्ति (ग्रन्थाग्रम् १४०००) बादरबोन्दीनि-बादराकाराणि कलेवराणि-बालुकाकणरूपाणि यत्र तथा, 'ठप्पे' त्ति न व्याख्येयः इतरस्तु व्याख्येय इत्यर्थः 'अवहाय' त्ति अपहाय-त्यक्त्वा 'से कोट्ठे' ति स कोष्ठो-गङ्गासमुदायात्मकः 'खीणे' त्ति क्षीणः स चावशेष-सद्भावेऽप्युच्यते यथा क्षीणधान्यं कोष्ठागारमत उच्यते 'नीरए' त्ति नीरजाः स च तद्भूमिगतरजसामप्यभावे उच्यते इत्याह-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'निल्लेवे' त्ति निर्लेपः भूमिभित्त्यादिसंश्लिष्टसिकतालेपाभावात्, किमुक्तं भवति?-'निष्ठितः' निरवयवीकृत इति 'सेत्तं सरे' त्ति अथ तत्तावत्कालखण्डं सरः-सरःसञ्ज्ञं भवति मानससञ्ज्ञं सर इत्यर्थः 'सरप्पमाणे' त्ति सर एवोक्तलक्षणं प्रमाणं-वक्ष्यमाणमहाकल्पादेर्मानं सरःप्रमाणं 'महामाणसे' त्ति मानसोत्तरं, यदुक्तं चतुरशीतिर्महाकल्पशतसहस्राणीति तत्प्ररूपितम्।

अथ सप्तानां दिव्यादीनां प्ररूपणायाह-'अणंताओ संजूहाओ' त्ति अनन्तजीवसमुदायरूपान्निकायात् 'चयं चइत्त' त्ति च्यवं च्युत्वा-च्यवनं कृत्वा चयं वा-देहं 'चइत्त' त्ति त्यक्त्वा 'उवरिल्ले' त्ति उपरितनमध्यमाधस्तनानां मानसानां सद्भावात् तदन्यव्यवच्छेदायोपरितने इत्युक्तं 'माणसे' त्ति गङ्गादिप्ररूपणतः प्रागुक्तस्वरूपे सरसि सरःप्रमाणायुष्कयुक्ते इत्यर्थः 'संजूहे' त्ति निकायविशेषे देवे 'उववज्जइ' त्ति प्रथमो दिव्यभवः सञ्ज्ञिगर्भसङ्ख्यासूत्रोक्त एव, एवं त्रिषु मानसेषु संयूथेष्वाद्यसंयूथसहितेषु चत्वारि संयूथानि त्रयश्च देवभवाः, तथा 'मानसोत्तरे' त्ति महामानसे पूर्वोक्तमहाकल्पप्रमितायुष्कवति, यच्च प्रागुक्तं चतुरशीतिं महाकल्पान् शतसहस्राणि क्षपयित्वेति तत्प्रथममहामानसापेक्षयेति द्रष्टव्यं, अन्यथा त्रिषु महामानसेषु बहुतराणि तानि स्युरिति, एतेषु चोपरिमादिभेदास्त्रिषु मानसोत्तरेषु त्रीण्येव संयूथानि त्रयश्च देवभवाः, आदितस्तु सप्त संयूथानि षट् च देवभवाः।

सप्तमदेवभवस्तु ब्रह्मलोके, स च संयूथं न भवति, सूत्रे संयूथत्वेनानाभिहितत्वादिति, 'पाईणपडीणायए उदीणदाहिणविच्छिन्ने' त्ति इहायामविष्कम्भयोः स्थापनामात्रत्वमवगन्तव्यं तस्य प्रतिपूर्णचन्द्रसंस्थानसंस्थितत्वेन तयोस्तुल्यत्वादिति 'जहा ठाणपए' त्ति ब्रह्मलोकस्वरूपं तथा वाच्यं यथा 'स्थानपदे' प्रज्ञापनाद्वितीयप्रकरणे, तच्चैवं-'पडिपुन्नचंदसंठाणसंठिए अच्चिमालीं भासरासिप्पभे' इत्यादि, 'असोगवडेंसए' इत्यत्र यावत्करणात् 'सत्तिवन्नवडेंसए चंपगवडेंसए चूयवडेंसए मज्झे य बंभलोयवडेंसए' इत्यादि दृश्यं।

'सुकुमालगभद्दलए' त्ति सुकुमारकश्चासौ भद्रश्च-भद्रमूर्त्तिरिति समासः, लकारककारौ तु स्वार्थिकाविति, 'मिउकुंडलकुंचियकेसए' त्ति मृदवः कुण्डलमिव-दर्भादिकुण्डलकमिव कुञ्चिताश्च केशा यस्य स तथा 'मट्ठगंडतलकण्णपीढए' त्ति मृष्टगण्डतले कर्णपीठके-कर्णाभरणविशेषौ यस्य स तथा, 'देवकुमारसप्पभए' त्ति देवकुमारवत्सप्रभः देवकुमारसमानप्रभो वा यः स तथा कशब्दः स्वार्थिक इति, 'कोमारियाए पव्वज्जाए' त्ति कुमारस्येयं कौमारी सैव कौमारिकी तस्यां प्रव्रज्यायां विषयभूतायां सङ्ख्यानं-बुद्धिं प्रतिलेभ इति योगः 'अविद्धकन्नए चेव' त्ति कुश्रुतिशलाकयाऽविद्धकर्णः - अव्युत्पन्नमतिरित्यर्थः। 'एणेज्जस्से' त्यादि, इहैणकादयः पञ्च नामतोऽभिहिताः द्वौ पुनरन्त्यौ पितृनामसहिताविति।

'अलं थिरं' ति अत्यर्थं स्थिरं विवक्षितकालं यावदवश्यंस्थायित्वात् 'धुवं' ति ध्रुवं तद्गुणानां ध्रुवत्वात् अत एव 'धारणिज्जं' ति धारयितुं योग्यम्, एतदेव भावयितुमाह-'खीए' इत्यादि, एवंभूतं च तत् कुतः? इत्याह-'थिरसंघयणं' ति अविघटमानसंहननमित्यर्थः 'इतिकट्टु' त्ति 'इतिकृत्वा' इतिहेतोस्तदनुप्रविशामीति।

१५/१०२. 'गड्डं व' त्ति गर्त्तः श्वभ्रं 'दरिं' ति शृगालादिकृतभूविवरविशेषं 'दुग्गं ति दुःखगम्यं वनगहनादि 'निन्नं' ति निम्नं शुष्कसरःप्रभृति 'पव्वयं व' त्ति प्रतीतं विसमं' ति गर्त्तपाषाणादिव्याकुलम् 'एगेण महं' ति एकेन महता 'तणसूएण व' त्ति 'तृणसूकेन' तृणाग्रेण 'अणावरिए' त्ति अनावृतोऽसावावरणस्याल्पत्वात् 'उवलभसि' त्ति उपलम्भयसि दर्शयसीत्यर्थः 'तं मा एवं गोसाल' त्ति इह कुर्विति शेषः 'नारिहसि गोसाल' त्ति इह चैवं कर्तुमिति शेषः, 'सच्चेव ते सा छाय' त्ति सैव ते छाया अन्यथा दर्शयितुमिष्टा छाया-प्रकृतिः।

१५/१०३. 'उच्चावयाहिं' ति असमञ्जसाभिः 'आउसणाहिं' ति मृतोऽसि त्वमित्यादिभिर्वचनैः 'आक्रोशयति' शपति 'उद्धंसणाहिं' ति दुष्कुलीनेत्यादिभिः कुलाद्यभिमानपातनार्थैर्वचनैः 'उद्धंसेइ' त्ति कुलाद्यभिमानादधः पातयतीव 'निब्भंछणाहिं' ति न त्वया मम प्रयोजनमित्यादिभिः परुषवचनैः 'निब्भंच्छेइ' त्ति नितरां दुष्टमभिधत्ते 'निच्छोडणाहिं' ति त्यजास्मदीयांस्तीर्थकरालङ्कारानित्यादिभिः 'निच्छोडेइ' त्ति प्राप्तमर्थं त्याजयतीति 'नट्ठेसि कयाइ' त्ति नष्टः स्वाचारनाशात् 'असि' भवसि त्वं 'कयाइ' त्ति कदाचिदिति वितर्कार्थः अहमेव मन्ये यदुत नष्टस्त्वमसीति 'विणट्ठेसि' त्ति मृतोऽसि 'भट्ठोसि' त्ति भ्रष्टोऽसि-सम्पदः व्यपेतोऽसि त्वं धर्मत्रयस्य यौगपद्येन योगात् नष्टविनष्टभ्रष्टोऽसीति 'नाहि ते' त्ति नैव ते।

१५/१०४. 'पाईणजाणवए' त्ति प्राचीनजानपदः प्राच्य इत्यर्थः 'पव्वाविए' त्ति शिष्यत्वेनाभ्युपगतः 'अब्भुवगमो पवज्ज' त्ति वचनात्, मुंडाविए' त्ति मुण्डितस्य तस्य शिष्यत्वेनानुमननात् 'सेहाविए' त्ति व्रतित्वेन सेधितः व्रतिसमाचारसेवायां तस्य भगवतो हेतुभूतत्वात् 'सिक्खाविए' त्ति शिक्षितस्तेजोलेश्याद्यु-पदेशदानतः 'बहुस्सुईकए' त्ति नियतिवादादिप्रतिपत्ति-हेतुभूतत्वात्।

१५/१०७. 'कोसलजाणवए' त्ति अयोध्यादेशोत्पन्नः।

१५/११२. 'वाउक्कलियाइ व' त्ति वातोत्कलिका स्थित्वा २ यो वातो वाति सा वातोत्कलिका 'वायमंडलियाइ व' त्ति मण्डलिकाभिर्यो वाति 'सेलंसि वा' इत्यादौ तृतीयार्थे सप्तमी 'आवरिज्जमाणि' त्ति स्खल्यमानः 'निवारिज्जमाणि' त्ति निवर्त्यमाना 'नो कमइ' त्ति न क्रमते' न प्रभवति 'नो पक्कमइ' त्ति न प्रकर्षेण क्रमते 'अंचितांचिं' ति अञ्चिते-सकृद्गते अञ्चितेन वा-सकृद्गतेन देशेनाञ्चिः-पुनर्गमनमञ्चिताञ्चिः अथवाऽञ्च्या-गमनेन सह आञ्चिः-आगमनमञ्च्याञ्चिर्गमागम इत्यर्थः तां करोति।

१५/११३-११५. 'अन्नाइट्ठे' त्ति 'अन्वाविष्टः' अभिव्याप्तः 'सुहत्थि' त्ति सुहस्तीव सुहस्ती 'अहप्पहाणे जणे' त्ति यथाप्रधानो जनो यो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यः प्रधान इत्यर्थः।

१५/११६. 'अगणिझामिए' त्ति अग्निना ध्मातो–दग्धो ध्यामितो वा ईषद्दग्धः 'अगणिझूसिए' त्ति अग्निना सेवितः क्षपितो वा 'अगणिपरिणमिए' त्ति अग्निना परिणामितः–पूर्वस्वभावत्याजनेनात्मभावं नीतः, ततश्च हततेजा धूल्यादिना गततेजाः क्वचित् स्वत एव नष्टतेजाः क्वचिदव्यक्तीभूततेजाः भ्रष्टतेजाः क्वचित्स्वरूपभ्रष्टतेजा–ध्यामतेजा इत्यर्थः लुप्ततेजाः क्वचित् अर्द्धीभूततेजाः 'लुपॢ च्छेदने छिदिर् द्वैधीभावे' इतिवचनात्, किमुक्तं भवति?–'विनष्टतेजा' निःसत्ताकीभूततेजाः, एकार्था वैते शब्दाः, 'छंदेणं' ति स्वाभिप्रायेण यथेष्टमित्यर्थः 'निप्पट्ठपसिणवागरणं' ति निर्गतानि स्पष्टानि प्रश्नव्याकरणानि यस्य स तथा तम्।

१५/१२०. 'रुंदाइं पलोएमाणे' त्ति दीर्घा दृष्टीर्दिक्षु प्रक्षिपन्नित्यर्थः, मानधनानां हतमानानां लक्षणमिदं, 'दीहुण्हाइं नीसासमाणे' त्ति निःश्वासानिति गम्यते 'दाढियाए लोमाइं' ति उत्तरौष्ठस्य रोमाणि 'अवद्धं' ति कृकाटिकां 'पुयलिं पप्फोडेमाणे' त्ति 'पुततटीं' पुतप्रदेशं प्रस्फोटयन् 'विणिद्धुणमाणे' त्ति विनिर्धुन्वन् 'हाहा अहो हओऽहमस्सीतिकट्टु' त्ति हा हा अहो हतोऽमस्मीति कृत्वा–इति भणित्वेत्यर्थः 'अंबकूणगहत्थगए' त्ति आम्रफलहस्तगतः स्वकीयतपस्तेजोजनितदाहोपशमनार्थमाम्रास्थिकं चूषन्निति भावः, गानादयस्तु मद्यपानकृता विकाराः समवसेयाः, 'मट्टियापाणएणं' ति मृत्तिकामिश्रितजलेन, मृत्तिकाजलं सामान्यमप्यस्त्यत आह–'आयंचणिओदएणं' ति इह टीकाव्याख्या–आतन्यनिकोदकं कुम्भकारस्य यद्भाजने स्थितं तेमनाय मृन्मिश्रं जलं तेन।

१५/१२१. 'अलाहि पज्जंते' त्ति 'अलम्' अत्यर्थं 'पर्याप्तः' शक्तो घातायेति योगः घातायेति हननाय तदाश्रितत्रसापेक्षया 'वहाए' त्ति वधाय एतच्च तदाश्रितस्थावरापेक्षया 'उच्छायणयाए' त्ति उच्छादनतायै सचेतनाचेतनतद्गतवस्तूच्छादनायेति, एतच्च प्रकारान्तरेणापि भवतीत्यग्निपरिणामोपदर्शनायाह–'भासीकरणयाए' त्ति।

'वज्जस्स' त्ति वर्जस्य–अवद्यस्य वा मद्यपानादिपापस्येत्यर्थः 'चरमे' त्ति न पुनरिदं भविष्यतीतिकृत्वा चरमं, तत्र पानकादीनि चत्वारि स्वगतानि, चरमता चैषां स्वस्य निर्वाणगमनेन पुनरकरणात्, एतानि च किल निर्वाणकाले जिनस्यावश्यम्भावीनीति नास्त्येषु दोष इत्यस्य तथा नाहमेतानि दाहोपशमायोपसेवामीत्यस्य चार्थस्य प्रकाशनार्थत्वादवद्यप्रच्छादनार्थानि भवन्ति, पुष्कलसंवर्त्तकादीनि तु त्रीणि बाह्यानि प्रकृतानुपयोगेऽपि चरमसामान्याज्जनचित्तरञ्जनाय चरमाण्युक्तानि, जनेन हि तेषां सातिशयत्वाच्चरमता श्रद्धीयते ततस्तैः सहोक्तानामाम्रकूणकपानकादीनामपि सा सुश्रद्धेया भवत्विति बुद्ध्येति, 'पाणगाइं' ति जलविशेषा व्रतियोग्याः 'अपाणयाइं' ति पानकसदृशानि शीतलत्वेन दाहोपशमहेतवः।

१५/१२२. 'गोपुट्ठए' त्ति गोपृष्ठाद्यत्पतितं 'हत्थमद्दियं' ति हस्तेन मर्द्दितं–मृदितं मलितमित्यर्थः यथैतदेवातन्यनिकोदकं।

१५/१२३. 'थालपाणए' त्ति स्थालं–वृट्टं तत्पानकमिव दाहोपशमहेतुत्वात् स्थालपानकम्, उपलक्षणत्वादस्य भाजनान्तरग्रहोऽपि दृश्यः, एवमन्यान्यपि नवरं त्वक्–छल्ली सीम्बली–कलायादिफलिका, 'सुद्धपाणए' त्ति देवहस्तस्पर्श इति।

१५/१२४. 'दाथालय' त्ति उदकार्द्रं स्थालकं 'दावारगं' ति उदकवारकं 'दाकुंभग' त्ति इह कुम्भो महान् 'दाकलसं' ति कलशस्तु लघुतरः।

१५/१२५. 'जहा पओगपए' त्ति प्रज्ञापनायां षोडशपदे, तत्र चेदमेवमभिधीयते–'भव्वं वा फणसं वा दालिमं वा' इत्यादि 'तरुणगं' ति अभिनवम् 'आमगं' ति अपक्वम् 'आसगंसि' त्ति मुखे 'आपीडयेत्' ईषत् प्रपीडयेत् प्रकर्षत इह यदिति शेषः।

१५/१२६. 'कल' त्ति कलायो–धान्यविशेषः 'सिंबलि' त्ति वृक्षविशेषः।

१५/१२७. 'पुढविसंथारोवगए; इत्यत्र वर्त्तत इति शेषो दृश्यः 'जे णं ते देवे साइज्जइ' त्ति यस्तौ देवौ 'स्वदते' अनुमन्यते 'संसि' त्ति स्वके स्वकीये इत्यर्थः।

१५/१२८. 'हल्ल' त्ति गोवालिकातृणसमानाकारः कीटकविशेषः।

१५/१२९. 'जाव सव्वन्नू' इति इह यावत्करणादिदं दृश्यं–'जिणे अरहा केवली' ति, 'वागरणं' ति प्रश्न 'वागरित्तए' त्ति प्रष्टुं 'विलिए' त्ति 'व्यलीकितः' सञ्जातव्यलीकः 'विड्डे' त्ति व्रीडाऽस्यास्तीति व्रीडः–लज्जाप्रकर्षवानित्यर्थः, भूमार्थेऽस्त्यर्थप्रत्ययोपादानात्।

१५/१३४. 'एगंतमंते' त्ति विजने भूविभागे यावदयंपुलो गोशालकान्तिके नागच्छतीत्यर्थः 'संगारं' ति 'सङ्केतम्' अयंपुलो भवत्समीपे आगमिष्यति ततो भवानाम्रकूणिकं परित्यजतु संवृतश्च भवत्वेवंरूपमिति।

१५/१३७. 'तं नो खलु एस अंबकूणए' त्ति तदिदं किलाम्रास्थिकं न भवति यद्व्रतिनामकल्प्यं यद्भवताऽऽम्रास्थिकतया विकल्पितं, किन्त्विदं यद्भवता दृष्टं तदाम्रत्वक्, एतदेवाह–'अंबचोयए णं एसे' त्ति इयं च निर्वाणगमनकाले आश्रयणीयैव, त्वक्पानकत्वादस्या इति। तथा हल्लासंस्थानं यत्पृष्टमासीत्तद्दर्शयन्नाह–'वंसीमूल-संठिय' त्ति इदं च वंशीमूलसंस्थितत्वं तृणगोवालिकायाः लोकप्रतीतमेवेति, एतावत्युक्ते मदिरामदविह्वलितमनोवृत्तिरसावकस्मादाह–'वीणं वाएहि रे वीरगा २' एतदेव द्विरावर्त्तयति, एतच्चोन्मादवचनं तस्योपासकस्य शृण्वतोऽपि न व्यलीककारणं जातं, यो हि सिद्धिं गच्छति स चरमं गेयादि करोतीत्यादि-वचनैर्विमोहितमतित्वादिति।

१५/१३९. 'हंसलक्खणं' ति हंसस्वरूपं शुक्लमित्यर्थः हंसचिह्नं चेति 'इड्ढीसक्कारसमुदएणं' ऋद्ध्या ये सत्काराः–पूजाविशेषास्तेषां यः समुदयः स तथा तेन, अथवा ऋद्धिसत्कारसमुदयैरित्यर्थः, समुदयश्च जनानां सङ्घः।

१५/१४१. 'समणघायए' त्ति श्रमणयोस्तेजोलेश्याक्षेपलक्षणघात-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दानात् घातदो घातको वा, अत एव श्रमणमारक इति, 'दाहवक्कंतीए' त्ति दाहोत्पत्त्या 'सुंबेणं' ति वल्करज्ज्वा 'उद्धभह' त्ति अवष्ठीव्यत–निष्ठीव्यत, क्वचित् 'उच्छुभह' त्ति दृश्यते तत्र चापशब्दं किञ्चित्क्षिपतेत्यर्थः 'आकड्ढविकड्ढि' ति आकर्षवैकर्षिकाम्।

१५/१४२. 'पूयासक्कारथिरीकरणट्ठयाए' त्ति पूजासत्कारयोः पूर्वप्राप्तयोः स्थिरताहेतोः यदि तु ते गोशालक-शरीरस्य विशिष्टपूजां न कुर्वन्ति तदा लोको जानाति नायं जिनो बभूव न चैते जिनशिष्या इत्येवमस्थिरौ पूजासत्कारौ स्यातामिति तयोः स्थिरीकरणार्थम् 'अवगुणंति' त्ति अपावृण्वन्ति।

'साण (ल) कोट्ठए नामं चेईए होत्था वन्नओ' त्ति तद्वर्णको वाच्यः स च 'चिराईए' इत्यादि 'जाव पुढविसिलापट्टओ' त्ति पृथिवीशिलापट्टकवर्णकं यावत् स च–'तस्स णं असोगवरपायवस्स हेट्ठा ईसिखंधीसमल्लीणे' इत्यादि 'मालुयाकच्छए' त्ति मालुका नाम एकास्थिका वृक्षविशेषास्तेषां यत्कक्षं–गहनं तत्तथा। 'विउले' त्ति शरीरव्यापकत्वात् 'रोगायंके' त्ति रोगः–पीडाकारी स चासावातङ्कश्च–व्याधिरिति रोगातङ्कः 'उज्जल्ले' त्ति उज्ज्वलः पीडापोहलक्षणविपक्षलेशेनाप्यकलङ्कितः, यावत्करणादिदं दृश्यं–'तिउले' त्रीन्–मनोवाक्कायलक्षणानर्थांस्तुलयति–जयतीति त्रितुलः 'पगाढे' प्रकर्षवान् 'कक्कसे' कर्कशद्रव्यमिवानिष्ट इत्यर्थः 'कडुए' तथैव 'चंडे' रौद्रः 'तिव्वे' सामान्यस्य झगितिमरणहेतुः 'दुक्खे' त्ति दुःखो दुःखहेतुत्वात् 'दुग्गे' त्ति क्वचित् तत्र च दुर्गमिवानभिभवनीयत्वात्, किमुक्तं भवति?–'दुरहियासे' त्ति दुरधिसह्यः सोढुमशक्य इत्यर्थः 'दाहवक्कंतीए' त्ति दाहो व्युत्क्रान्तः–उत्पन्नो यस्य स स्वार्थिककप्रत्यये दाहव्युत्क्रान्तिकः 'अवियाइं' ति अपिचेत्यभ्युच्चये 'आइं' ति वाक्यालङ्कारे 'लोहियवच्चाइंपि' त्ति लोहितवर्चांस्यपि–रुधिरात्मकपुरीषाण्यपि करोति किमन्येन पीडावर्णनेनेति भावः, तानि हि किलात्यन्तवेदनोत्पादके रोगे सति भवन्ति, 'चाउवण्णं' ति चातुर्वर्ण्यं–ब्राह्मणादिलोकः, 'झाणंतरियाए' त्ति एकस्य ध्यानस्य समाप्तिरन्यस्यानारम्भ इत्येषा ध्यानान्तरिका तस्यां 'मणोमाणसिएणं' ति मनस्येव न बहिर्वचनादिभिरप्रकाशितत्वात् यन्मानसिकं दुःखं तन्मनोमानसिकं तेन 'दुवे कवोया' इत्यादेः श्रूयमाणमेवार्थं केचिन्मन्यन्ते, अन्ये त्वाहुः–कपोतकः–पक्षिविशेषस्तद्वद् ये फले वर्णसाधर्म्यात्ते कपोते–कूष्माण्डे ह्रस्वे कपोते कपोतके च ते शरीरे वनस्पतिजीवदेहत्वात् कपोतकशरीरे, अथवा कपोतकशरीरे इव धूसरवर्णसाधर्म्यादिव कपोतकशरीरे कूष्माण्डफले एव ते उपसंस्कृते–संस्कृते 'तेहिं नो अट्ठो' त्ति बहुपापत्वात् 'पारिआसिए' त्ति परिवासितं ह्यस्तनमित्यर्थः, 'मज्जारकडए' इत्यादेरपि केचित् श्रूयमाणमेवार्थं मन्यन्ते, अन्ये त्वाहुः–मार्जारो–वायुविशेषस्तदुपशमनाय कृतं–संस्कृतं मार्जारकृतम्, अपरे त्वाहुः–मार्जारो–विरालकाभिधानो वनस्पतिविशेषस्तेन कृतं–भावितं यत्तत्तथा, किं तत्? इत्याह–'कुक्कुटकमांसकं' बीजपूरकं कटाहम् 'आहराहि' त्ति निरवद्यत्वादिति। 'पत्तगं मोएति' त्ति पात्रकं–पिठरकाविशेषं मुञ्चति सिक्कके उपरिकृतं सत्तस्मादवतारयतीत्यर्थः 'जहा विजयस्स' त्ति यथा इहैव–इह शते विजयस्य वसुधारादुक्तं एवं तस्या अपि वाच्यमित्यर्थः, बिभमिवे' त्यादि 'बिले इव' रन्ध्रे इव 'पन्नगभूतेन' सर्पकल्पेन 'आत्मना' करणभूतेन 'तं' सिंहानगारोपनीतमाहारं शरीरकोष्ठके प्रक्षिपतीति 'हट्ठे' त्ति 'हृष्टः' निर्व्याधिः 'अरोगे' त्ति निष्पीडः 'तुट्ठे हट्ठे जाए' त्ति 'तुष्टः' तोषवान् 'हृष्टः' विस्मितः, कस्मादेवम्? इत्याह–'समणे' इत्यादि 'हट्ठे' त्ति नीरोगो जात इति। 'भारग्गसो य' त्ति भारपरिमाणतः, भारश्च–भारकः पुरुषोद्वहनीयो विंशतिपलशतप्रमाणो वेति, 'कुंभग्गसो य' त्ति कुम्भो–जघन्य आढकानां षष्ट्या मध्यमस्त्वशीत्या उत्कृष्टः पुनः शतेनेति, 'पउमवासे य रयणवासे य वासे वासिहिति' त्ति 'वर्षः' वृष्टिर्वर्षिष्यति, किंविधः? इत्याह–'पद्मवर्षः' पद्मवर्षरूपः, एवं रत्नवर्ष इति, 'सेए' त्ति श्वेतः, कथंभूतः?–'संखदलविमलसन्निगासे' त्ति शङ्खस्य यद्दलं-खाइं तलं वा तद्रूपं विमलं तत्संनिकाशः–सदृशो यः स तथा, प्राकृतत्वाच्चैवं समासः, 'आउसिहिइ' त्ति आक्रोशान् दास्यति 'निच्छोडेहिइ' त्ति पुरुषान्तर-सम्बन्धितहस्ताद्यवयवाः कारणतो ये श्रमणास्तांस्ततो वियोजयिष्यति 'निब्भत्थेहिइ' त्ति आक्रोशव्यतिरिक्तदुर्वचनानि दास्यति 'पमारेहिइ' त्ति प्रमारं–मरणक्रियाप्रारम्भं करिष्यति प्रमारयिष्यति 'उद्दवेहिइ' त्ति अपद्रावयिष्यति, अथवा 'पमारिहिइ' त्ति मारयिष्यति 'उद्दवेहिइ' त्ति उपद्रवान् करिष्यति 'आच्छिंदिहिइ' त्ति ईषत् छेत्स्यति 'विच्छिंदेहिइ' त्ति विशेषेण विविधतया वा छेत्स्यति 'भिंदिहिइ' त्ति स्फोटयिष्यति पात्रापेक्षमेतत् 'अवहरिहिइ' त्ति अपहरिष्यति–उद्दालयिष्यति 'निन्नगरे करेहिति' त्ति 'निर्नगरान्' नगरनिष्क्रान्तान् करिष्यति, 'रज्जस्स व' त्ति राज्यस्य वा, राज्यं च राजादिपदार्थसमुदायः, आह च–

'स्वाम्यमात्यश्च राष्ट्रं च, कोशो दुर्गं बलं सुहृत्।
सप्ताङ्गमुच्यते राज्यं, बुद्धिसत्त्वसमाश्रयम्॥१।'

राष्ट्रादयस्तु तद्विशेषाः, किन्तु राष्ट्रं–जनपदैकदेशः, 'विरमंतु णं देवाणुप्पिया! एअस्स अट्ठस्स अकरणयाए' त्ति विरमणं किल वचनाद्यपेक्षयाऽपि स्यादत उच्यते–अकरणतया–करणनिषेध-रूपतया। 'विमलस्स' त्ति विमलजिनः किलोत्सर्पिण्यामेक-विंशतितमः समवाये दृश्यते स चावसर्पिणीचतुर्थजिनस्थाने प्राप्नोति तस्माच्चावार्वाचीनजिनान्तरेषु बहवः सागरोपम-कोटयोऽतिक्रान्ता लभ्यन्ते, अयं च महापद्मो द्वाविंशतेः सागरोपमाणामन्ते भविष्यति दुःखगममिदं, अथवा यो द्वाविंशतेः सागरोपमाणामन्ते तीर्थकृदुत्सर्पिण्यां भविष्यति तस्यापि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विमल इति नाम संभाव्यते, अनेकाभिधानाभिधेयत्वान्महापुरुषाणामिति, 'पउप्पए' त्ति शिष्यसन्तानः, 'जहा धम्मघोसस्स वन्नओ' त्ति यथा धर्मघोषस्य-एकादशशतैकादशोद्देशकाभिहितस्य वर्णकस्तथाऽस्य वाच्यः, स च 'जाइसंपन्ने कुलसंपन्ने बलसंपन्ने' इत्यादिरिति 'रहचरियं' त्ति रथचर्यां 'नोल्लावेहिइ' त्ति नोदयिष्यति-प्रेरयिष्यति सहितमित्यादय एकार्थाः।

१५/१८६. 'सत्थवज्झे' त्ति शस्त्रवध्यः सन् 'दाहवक्कंतीए' त्ति दाहोत्पत्त्या कालं कृत्वेति योगः दाहव्युत्क्रान्तिको वा भूत्वेति शेषः, इह च यथोक्तक्रमेणैवासञ्ज्ञिप्रभृतयो रत्नप्रभादिषु यत उत्पद्यन्त इत्यसौ तथैवोत्पादितः, यदाह-

'अस्सण्णी खलु पढमं दोच्चं च सिरीसिवा तइय पक्खी।
सीहा जंति चउत्थिं उरगा पुण पंचमिं पुढविं॥१॥
छट्ठिं च इत्थियाओ मच्छा मणुया य सत्तमिं पुढविं॥'
(असंज्ञिनः खलु प्रथमां द्वितीयां च सरिसृपाः तृतीयां पक्षिणः।
सिंहा यान्ति चतुर्थीं पंचमीं पुनः पृथ्वीमुरगाः॥१॥
षष्ठीं च स्त्रियो मत्स्या मनुष्याश्च सप्तमीं पृथ्वीम्॥) इति,

'खहचरविहाणाइं' ति इह विधानानि-भेदाः 'चम्मपक्खीणं' ति वल्गुलीप्रभृतीनां 'लोमपक्खीणं' ति हंसप्रभृतीनां 'समुग्गपक्खीणं' ति समुद्गकाकारपक्षवतां मनुष्यक्षेत्रबहिर्वर्त्तिनां वियपपक्खीणं' ति विस्तारिपक्षवतां समयक्षेत्रबहिर्वर्त्तिनामेवेति 'अणेगसयसहस्सखुत्तो' इत्यादि तु यदुक्तं तत्सान्तरमवसेयं, निरन्तरस्य पञ्चेन्द्रियत्वलाभस्योत्कर्षतोऽप्यष्टभवप्रमाणस्यैव भावात्, यदाह-

पंचिंदियतिरियनरा सत्तट्ठभवा भवग्गहेण' (पञ्चेन्द्रियस्तिर्यग्नराः सप्ताष्टभवाः भवग्रहणैः) त्ति 'जहा पन्नवणापए' त्ति प्रज्ञापनायाः प्रथमपदे, तत्र चैवमिदं-'सरडाणं सल्लाण' मित्यादि।

'एगखुराणं' ति अश्वादीनां 'दुखुराणं' ति गवादीनां 'गंडीपयाणं' ति हस्त्यादीनां।

'सणहप्पयाणं' ति सनखपदानां सिंहादिनखराणां।

'कच्छभाणं' ति इह यावत्करणादिदं दृश्यं-'गाहाणं मगराणं पोतियाणं' इत्यत्र 'जहां पन्नवणापए' त्ति अनेन यत्सूचितं तदिदं-'मच्छियाणं गमसियाण' मित्यादि।

'उवचियाणं' इह यावत्करणादिदं दृश्यं-'रोहिणियाणं कुंथूणं पिविलियाण' मित्यादि।

'पुलाकिमियाण' मित्यत्र यावत्करणादिदं दृश्यं-'कुच्छिकिमियाणं गंडूलगाणं गोलोमाण' मित्यादि।

'रुक्खाणं' ति वृक्षाणामेकास्थिकबहुबीजकभेदेन द्विविधानां, तत्रैकास्थिकाः निम्बाम्रादयः बहुबीजा-अस्थिकतिन्दुकादयः, 'गुच्छाणं' ति वृन्ताकीप्रभृतीनां यावत्करणादिदं दृश्यं-'गुम्माणं लयाणं वल्लीणं पव्वगाणं तणाणं वलयाणं हरियाणं ओसहीणं जलरुहाणं' ति तत्र 'गुल्मानां' नवमालिकाप्रभृतीनां 'लतानां' पद्मलतादीनां 'वल्लीनां' पुष्पफलीप्रभृतीनां 'पर्व्वकाणाम्' इक्षुप्रभृतीनां 'तृणानां' दर्भकुशादीनां 'वलयानां' तालतमालादीनां 'हरितानाम्' अध्यारोहकतन्दुलीयकादीनाम् 'औषधीनां' शालिगोधूमप्रभृतीनां 'जलरुहाणां' कुमुदादीनां 'कुहणाणं' ति कुहुणानाम् आयुकायप्रभृतिभूमीस्फोटानाम् 'उस्सन्नं च णं' ति बाहुल्येन पुनः।

'पाईणवायाणं' ति पूर्ववातानां यावत्करणादेवं दृश्यं-'पडीणवायाणं दाहिणवायाण' मित्यादि, 'सुद्धवायाणं' ति मन्दस्तिमितवायूनाम्।

'इंगालाणं' इह यावत्करणादेवं दृश्यं-'जालाणं मुम्मुराणं अच्चीण' मित्यादि, तत्र च 'ज्वालानां' अनलसम्बद्धस्वरूपाणां 'मुर्म्मुराणां' फुम्फुकादौ मसृणाग्निरूपाणाम् 'अर्चिषां' अनलाप्रतिबद्धज्वालानामिति।

'ओसाणं' ति रात्रिजलानाम्, इह यावत्करणादिदं दृश्यं-'हिमाणं महियाणं' ति, 'खाओदयाणं' ति खातायां-भूमौ यान्युदकानि तानि खातोदकानि।

'पुढवीणं' ति मृत्तिकानां 'सक्कराणं' त्ति शर्क्करिकाणां यावत्करणादिदं दृश्यं-'वालुयाणं उवलाणं' ति, सूरकंताणं' ति मणिविशेषाणां।

'बाहिं खरियत्ताए' त्ति नगरबहिर्वर्त्तिवेश्यात्वेन प्रान्तजवेश्यात्वेनेत्यन्ये, 'अंतोखरियत्ताए' त्ति नगराभ्यन्तरवेश्यात्वेन विशिष्टवेश्यात्वेनेत्यन्ये।

'पडिरूविएणं सुक्केणं' ति 'प्रतिरूपकेन' उचितेन शुल्केन-दानेन 'भंडकरंडगसमाणे' ति आभरणभाजनतुल्या आदेयेत्यर्थः 'तेल्लकेला इव सुसंगोविय' त्ति तैलकेला इव-तैलाश्रयो भाजनविशेषः सौराष्ट्रप्रसिद्धः सा च सुष्ठु संगोपनीया भवत्यन्यथा लुठति ततश्च तैलहानिः स्यादिति, 'चेलपेडा इव सुसंपरिगहिय' त्ति चैलपेडावत्-वस्त्रमञ्जूषेव सुष्ठु संपरिवृत्ता (गृहीता)-निरुपद्रवे स्थाने निवेशिता।

'दाहिणिल्लेसु असुरकुमारेसु देवेसु देवत्ताए उववज्जिहिति' त्ति विराधितश्रामण्यत्वादन्यथाऽनगाराणां वैमानिकेष्वेवोत्पत्तिः स्यादिति, यच्चेह 'दाहिणिल्लेसु' त्ति प्रोच्यते तत्तस्य क्रूरकर्म्मत्वेन दक्षिणक्षेत्रेष्वेवोत्पाद इतिकृत्वा।

'अविराहियसामन्ने' त्ति आराधितचरण इत्यर्थः, आराधितचरणता चेह चरणप्रतिपत्तिसमयादारभ्य मरणान्तं यावन्निरतिचारतया तस्य पालना, आह च-

'आराहणा य एत्थं चरणपडिवत्तिसमयओ पभिई।
आमरणंतमजस्सं संजमपरिपालणं विहिणा॥१॥'

इति (आराधना चात्र चारित्रप्रतिपत्तिसमयत आरभ्य आमरणान्तमजस्रं विधिना संयमपरिपालना॥१॥) एवं चेह यद्यपि चारित्रप्रतिपत्तिभवा विराधनायुक्ता अग्निकुमारवर्जभवनपतिज्योतिष्कत्वहेतुभवसहिता दश अविराधनाभवास्तु यथोक्तसौधर्म्मादिदेवलोक सर्वार्थसिद्ध्युत्पत्तिहेतवः सप्ताष्टमश्च सिद्धिगमनभव इत्येवमष्टादश चारित्रभवा उक्ताः,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रूयन्ते चाष्टैव भवांश्चारित्रं भवति तथाऽपि न विरोधः, अविराधनाभवानामेव ग्रहणादिति, अन्ये त्वाहुः—'अट्ठ भवा उ चरित्ते' (चारित्रेऽष्टौ भवाः।) इत्यत्र सूत्रे आदानभवानां वृत्तिकृता व्याख्यातत्वात् चारित्रप्रतिपत्तिविशेषिता एव भवा ग्राह्याः, नाराधनाविराधनाविशेषणं कार्यम्, अन्यथा यद्भगवता श्रीमन्महावीरेण हालिकाय प्रव्रज्या बीजमिति दापिता तन्निरर्थकं स्यात्, सम्यक्त्वमात्रेणैव बीजमात्रस्य सिद्धत्वात्, यत्तु चारित्रदानं तस्य तदष्टमचारित्रे सिद्धिरेतस्य स्यादिति विकल्पादुपपन्नं स्यादिति, यच्च दशसु विराधनाभवेषु तस्य चारित्रमुपवर्णितं तद्द्रव्यतोऽपि स्यादिति न दोष इति, अन्ये त्वाहुः—न हि वृत्तिकारवचनमात्रावष्टम्भादेवाधिकृतसूत्रमन्यथा व्याख्येयं भवति, आवश्यकचूर्णिकारेणाप्याराधनापक्षस्य समर्थितत्वादिति।

१५/१८९. 'एवं जहा उववाइए' इत्यादि भावितमेवाम्मडपरिव्राजकक थानक इति॥

पञ्चदशं शतं वृत्तितः समाप्तमिति॥

श्रीमन्महावीरजिनप्रभावाद्गोशालकाहङ्कृतिवद्गतेषु।
समस्तविघ्नेषु समापितेयं, वृत्तिः शते पञ्चदशे मयेति॥१॥

॥इति श्रीमदभयदेवसूरिवर्यविहितविवरणयुतं पञ्चदशं गोशालाख्यं शतकं समाप्तम्॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथ षोडशं शतकम्

प्रथम उद्देशकः

व्याख्यातं पञ्चदशं शतं। तत्र चैकेन्द्रियादिषु गोशालकजीवस्यानेकधा जन्म मरणं चोक्तं, इहापि जीवस्य जन्ममरणाद्युच्यते इत्येवंसम्बन्धस्यास्येमुद्देशकाभिधानसूचिका गाथा–

'अहिगरणी' त्यादि, 'अहिगरणि' त्ति अधिक्रियते–ध्रियते कुट्टनार्थं लोहादि यस्यां साऽधिकरणी–लोहकाराद्युपकरणविशेषस्तत्प्रभृतिपदार्थविशेषितार्थविषय उद्देशकोऽधिकरण्येवोच्यते, स चात्र प्रथमः, 'जर' त्ति जराद्यर्थविषयत्वाज्जरेति द्वितीयः, 'कम्मे' त्ति कर्म्मप्रकृतिप्रभृतिकार्थविषयत्वात्कर्म्मेति तृतीयः, 'जावइयं' ति 'जावइय' मित्यनेनादिशब्देनोपलक्षितो जावइयमिति चतुर्थः, 'गंगदत्त' त्ति गङ्गदत्तदेववक्तव्यताप्रतिबद्धत्वाद् गङ्गदत्त एव पञ्चमः, 'सुमिणे य' त्ति स्वप्नविषयत्वात्स्वप्न इति षष्ठः, 'उवओग' त्ति उपयोगार्थप्रतिपादकत्वादुपयोग एव सप्तमः, 'लोग' त्ति लोकस्वरूपाभिधायकत्वाल्लोक एवाष्टमः, 'बलि' त्ति बलिसम्बन्धिपदार्थाभिधायिकत्वाद्बलिरेव नवमः, 'ओहि' त्ति अवधिज्ञानप्ररूपणार्थत्वादवधिरेव दशमः, 'दीव' त्ति द्वीपकुमारवक्तव्यतार्थो द्वीप एवैकादशः 'उदहि' त्ति उदधिकुमारविषयत्वादुदधिरेव द्वादश 'दिसि' त्ति दिक्कुमारविषयत्वाद्दिगेव त्रयोदशः, 'थणिए' त्ति स्तनितकुमारविषयत्वात्स्तनित एव चतुर्दश इति।

तत्राधिकरणीत्युद्देशकार्थप्रस्तावनार्थमाह–

१६/१. 'तेणं' मित्यादि, 'अत्थि' त्ति अस्त्ययं पक्षः 'अहिगरणिंसि' त्ति अधिकरण्यां 'वाउयाए' त्ति वायुकायः 'वक्कमइ' त्ति व्युत्क्रामति अयोघनाभिघातेनोत्पद्यते, अयं चाक्रान्तसम्भवत्वेनादावचेतनतयोत्पन्नोऽपि पश्चात्सचेतनीभवतीति सम्भाव्यत इति।

उत्पन्नश्च सन् म्रियत इति प्रश्नयन्नाह–

१६/२-४. 'सं भंते' इत्यादि, 'पुट्ठे' त्ति स्पृष्टः स्वकायशस्त्रादिना सशरीरश्च • कडेवरान्निष्क्रामति कार्म्मणाद्यपेक्षया औदारिकाद्यपेक्षया त्वशरीरीरीति।

अग्निसहचरत्वाद्वायोर्वायुसूत्रानन्तरमग्निसूत्रमाह–

१६/५. 'इंगाले' त्यादि, 'इंगालकारियाए' त्ति अङ्गारान् करोतीति अङ्गारकारिका–अग्निशकटिका तस्यां, न केवलं तस्यामग्निकायो भवति 'अन्नेऽविऽत्थ' त्ति अन्योऽप्यत्र वायुकायो व्युत्क्रामति, यत्राग्निस्तत्र वायुरितिकृत्वा, कस्मादेवमित्याह–'न विणे' त्यादि।

अग्न्यधिकारादेवाग्नितप्तलोहमधिकृत्याह–

१६/६. 'पुरिसे णं भंते!' इत्यादि, 'अयं' ति लोहं 'अयकोट्ठंसि' त्ति लोहप्रतापनार्थे कुशूले 'उव्विहमाणे व' त्ति उत्क्षिपन् वा 'पव्विहमाणे व' त्ति प्रक्षिपन् वा 'इंगालकड्ढिणि' त्ति ईषद्वङ्काग्रा लोहमययष्टिः 'भत्थ' त्ति ध्मानखल्ला, इह चायःप्रभृतिपदार्थनिर्वर्त्तकजीवानां पञ्चक्रियत्वमविरतिभावेनावसेयमिति।

१६/७. 'चम्मेट्ठे' त्ति लोहमयः प्रतलायतो लोहादिकुट्टनप्रयोजनो लोहकाराद्युपकरणविशेषः, 'मुट्ठिए' त्ति लघुतरो घनः 'अहिगरणिखोडि' त्ति यत्र काष्ठेऽधिकरणी निवेश्यते 'उदगदोणि' त्ति जलभाजनं यत्र तप्तं लोहं शीतलीकरणाय क्षिप्यते 'अहिगरणसाल' त्ति लोहपरिकर्मगृहम्।

प्राक्क्रियाः प्ररूपितास्तासु चाधिकरणिकी, सा चाधिकरणिनोऽधिकरणे सति भवतीत्यतस्तद्द्वयनिरूपणायाह–

१६/८. 'जीवे णं' मित्यादि, 'अहिगरणीवि' त्ति अधिकरणं–दुर्गतिनिमित्तं वस्तु तच्च विवक्षया शरीरमिन्द्रियाणि च तथा बाह्यो हलगन्त्र्यादिपरिग्रहस्तस्यास्तीत्यधिकरणी जीवः।

'अहिकरणंपि' त्ति शरीराद्यधिकरणेभ्यः कथञ्चिदव्यतिरिक्तत्वादधिकरणं जीवः।

१६/९. एतच्च द्वयं जीवस्याविरतिं प्रतीत्योच्यते तेन यो विरतिमान् असौ शरीरादिभावेऽपि नाधिकरणी नाप्यधिकरणमविरतियुक्तस्यैव शरीरादेरधिकरणत्वादिति।

एतदेव चतुर्विंशतिदण्डके दर्शयति–

१६/१०. 'नेरइए' इत्यादि, अधिकरणी जीव इति प्रागुक्तं, स च दूरवर्त्तिनाऽप्यधिकरणेन स्याद् यथा गोमान् इत्यतः पृच्छति–

१६/११. 'जीवे णं' मित्यादि, 'साहिगरणि' त्ति सह–सहभाविनाऽधिकरणेन–शरीरादिना वर्त्तत इति समासान्तेन्विधिः साधिकरणी, संसारिजीवस्य शरीरेन्द्रियरूपाधिकरणस्य सर्वदैव सहचारित्वात् साधिकरणत्वमुपदिश्यते, शस्त्राद्यधिकरणापेक्षया तु स्वस्वामिभावस्य तदविरतिरूपस्य सहवर्त्तित्वाज्जीवः साधिकरणीत्युच्यते, अत एव वक्ष्यति–

१६/१२. 'अविरइं पडुच्च' त्ति, अत एव संयतानां शरीरादिसद्भावेऽप्यविरतेरभावान्न साधिकरणित्वं, 'निरहिगरणि' त्ति निर्गतमधिकरणमस्मादिति निरधिकरणी समासान्तविधेः अधिकरणदूरवर्त्तीत्यर्थः, स च न भवति, अविरतेरधिकरणभूताया अदूरवर्त्तित्वादिति, अथवा सहाधिकरणिभिः–पुत्रमित्रादिभिर्वर्त्तत इति साधिकरणी, कस्यापि जीवस्य पुत्रादीनामभावेऽपि तद्विषयविरतेरभावात्साधिकरणित्वमवसेयमत एव नो निरधिकरणीत्यपि मन्तव्यमिति।

अधिकरणाधिकारादेवेदमाह–

१६/१३. 'जीवे णं' मित्यादि, 'आयाहिगरणि' त्ति अधिकरणी कृष्यादिमान् आत्मनाऽधिकरणी आत्माधिकरणी, ननु यस्य कृष्यादि नास्ति स कथमधिकरणीति?, अत्रोच्यते, अविरत्यपेक्षयेति,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत एवाविरतिं प्रतीत्येति वक्ष्यति, 'पराहिगरणि' त्ति परतः-परेषामधिकरणे प्रवर्त्तनेनाधिकरणी पराधिकरणी, 'तदुभयाहिगरणि' त्ति तयोः-आत्मपरयोरुभयं तदुभयं ततोऽधिकरणी यः स तथेति।

अथाधिकरणस्यैव हेतुप्ररूपणार्थमाह-

१६/१५. 'जीवाण' मित्यादि, 'आयप्पओगनिव्वत्तिए' त्ति आत्मनः प्रयोगेण-मनःप्रभृतिव्यापारेण निर्वर्त्तितं-निष्पादितं यत्तत्तथा, एवमन्यदपि द्वयम्। ननु यस्य वचनादि परप्रवर्त्तनं वस्तु नास्ति तस्य कथं परप्रयोगनिर्वर्त्तितादि भविष्यतीत्याशङ्कामुपदर्श्य परिहरन्नाह-

१६/१६. 'से केण' मित्यादि, अविरत्यपेक्षया त्रिविधमप्यस्तीति भावनीयमिति।

१६/१७-२१. अथ शरीराणामिन्द्रियाणां योगानां च निर्वर्त्तनायां जीवादेरधिकरणित्वादि प्ररूपयन्निदमाह-'कति णं भंते!' इत्यादि, 'अहिगरणीवि अहिगरणंपि' त्ति पूर्ववत् 'एवं चेव' त्ति अनेन जीवसूत्राभिलापः।

१६/२२-२६. पृथिवीकायिकसूत्रे समस्तो वाच्य इति दर्शितम्, 'एवं वेउव्वि' इत्यादि व्यक्तं, नवरं 'जस्स अत्थि' त्ति इह तस्य जीवपदस्य वाच्यमिति शेषः, तत्र नारकदेवानां वायोः पञ्चेन्द्रियतिर्यङ्मनुष्याणां च तदस्तीति ज्ञेयं, 'पमायं पडुच्च' त्ति इहाहारकशरीरं संयमवतामेव भवति तत्र चाविरतेरभावेऽपि प्रमादादधिकरणित्वमवसेयं, दण्डकचिन्तायां चाहारकं मनुष्यस्यैव भवतीत्यत उक्तम्-'एवं मणुस्सेवि' त्ति, 'नवरं जस्स अत्थि सोइंदियं' ति तस्य वाच्यमिति शेषः, तच्चैकेन्द्रियविकलेन्द्रियवर्जानामन्येषां स्यादिति।

षोडशशते प्रथमः॥१६-१॥

द्वितीय उद्देशकः

प्रथममोद्देशके जीवानामधिकरणमुक्तं, द्वितीये तु तेषामेव जराशोकादिको धर्म उच्यते।

इत्येवंसम्बन्धस्यास्येदमादि-सूत्रम्-

१६/२८-३१. 'रायगिहे' इत्यादि, 'जर' त्ति 'जॄ वयोहानौ' इति वचनात् जरणं जरा-वयोहानिः शारीरदुःखरूपा चेयमतो यदन्यदपि शारीरं दुःखं तदनयोपलक्षितं, ततश्च जीवानां किं जरा भवति?, 'सोगे' त्ति शोचनं शोको-दैन्यम्, उपलक्षणत्वादेव चास्य सकलमानसदुःखपरिग्रहस्ततश्च उत शोको भवतीति, चतुर्विंशतिदण्डके च येषां शरीरं तेषां जरा येषां तु मनोऽप्यस्ति तेषामुभयमिति।

अनन्तरं वैमानिकानां जराशोकावुक्तौ अथ तेषामेव विशेषस्य शक्रस्य वक्तव्यतामभिधातुकाम आह-

१६/३३. 'तेणं कालेण' मित्यादि, 'एवं जहा ईसाणो तइयसए तहा सक्कोवि' त्ति यथेशानस्तृतीयशते प्रथमोद्देशके राजप्रश्नीयादिदेशेनाभिहितस्तथा शक्रोऽपीह वाच्यः, सर्वथा साम्यपरिहारार्थं त्वाह-'नवरमाभिओगे ण सद्दावइ' इत्यादि तत्र किलेशानो महावीरमवधिनाऽवलोक्याभियोगिकान् देवान् शब्दयामास शक्रस्तु नैवं, तथा तत्र लघुपराक्रमः पदात्यनीकाधिपतिर्नन्दिघोषाघण्टाताडनाय नियुक्त उक्तः इह तु सुघोषाघण्टाताडनाय हरिणैगमेषी नियुक्त इति वाच्यं, तथा तत्र पुष्पको विमानकारी उक्त इह तु पालकोऽसौ वाच्यः, तथा तत्र पुष्पकं विमानमुक्तमिह तु पालकं वाच्यं, तथा तत्र दक्षिणो निर्याणमार्ग उक्त इह तूत्तरो वाच्यः, तथा तत्र नन्दीश्वरद्वीपे उत्तरपूर्वो रतिकरपर्वत ईशानेन्द्रस्यावतारायोक्त इह तु पूर्वदक्षिणोऽसौ वाच्यः 'नामगं सावेत्त' त्ति स्वकीयं नाम श्रावयित्वा यदुताहं भदन्त! शक्रो देवराजो भवन्तं वन्दे नमस्यामि चेत्येवम्।

१६/३४,३५. 'उग्गहे' त्ति अवगृह्यते-स्वामिना स्वीक्रियते यः सोऽवग्रहः 'देविंदोग्गहे य' त्ति देवेन्द्रः-शक्र ईशानो वा तस्यावग्रहो-दक्षिणं लोकार्द्धमुत्तरं वेति देवेन्द्रावग्रहः 'राओग्गहे' त्ति राजा-चक्रवर्त्ती तस्यावग्रहः-षट्खण्डभरतादिक्षेत्रं राजावग्रहः 'गाहावईउग्गहे' त्ति गृहपतिः-माण्डलिको राजा तस्यावग्रहः-स्वकीयं मण्डलमिति गृहपत्यवग्रहः 'सागारियउग्गहे' त्ति सहागारेण-गेहेन वर्त्तत इति सागारः स एव सागारिकस्तस्यावग्रहो-गृहमेवेति सागारिकावग्रहः 'साहम्मियउग्गहे' त्ति समानेन धर्म्मेण चरन्तीति साधर्म्मिकाः साध्वपेक्षया साधव एव तेषामवग्रहः-तदाभाव्यं पञ्चक्रोशपरिमाणं क्षेत्रमृतुबद्धे मासमेकं वर्षासु चतुरो मासान् यावदिति सधार्म्मिकावग्रहः। एवमुपश्रुत्येन्द्रो यदाचख्यौ तदाह-'जे इमे' इत्यादि, 'एवं वयइ' त्ति एवं पूर्वोक्तम् 'अहं उग्गहं अणुजाणामि' इत्येवंरूपं 'वदति' अभिधत्ते सत्य एषोऽर्थ इति।

अथ भवत्वयमर्थः सत्यस्तथाऽप्ययं स्वरूपेण सम्यग्वादी उत न? इत्याशङ्क्याह-

१६/३६-४०. 'सक्के ण' मित्यादि, सम्यग् वदितुं शीलं-स्वभावो यस्य सम्यग्वादी प्रायेणासौ सम्यगेव वदतीति।

सम्यग्वादशीलत्वेऽपि प्रमादादिना किमसौ चतुर्विधां भाषां भाषते न वा? इति प्रश्नयन्नाह-'सक्के ण' मित्यादि, सत्याऽपि भाषा कथञ्चिद्बाध्यमाणा सावद्या संभवतीति पुनः पृच्छति-'सक्के ण' मित्यादि, 'सावज्जं' ति सहावद्येन-गर्हितकर्म्मणेति सावद्या तां 'जाहे णं' ति यदा 'सुहुमकायं' ति सूक्ष्मकायं हस्तादिकं वस्त्विति वृद्धाः, अन्ये त्वाहु-'सुहुमकायं' ति वस्त्रम् 'अनिज्जूहित्त' ति 'अपोह्य' अदत्त्वा, हस्ताद्यावृतमुखस्य हि भाषमाणस्य जीवसंरक्षणतोऽनवद्य भाषा भवति अन्या तु सावद्येति।

शक्रमेवाधिकृत्याह-'सक्के ण' मित्यादि, 'मोउद्देसए' त्ति तृतीयशते प्रथमोद्देशके।

अनन्तरं शक्रस्वरूपमुक्तं, तच्च कर्म्मतो भवतीति सम्बन्धेन कर्म्मस्वरूपप्ररूपणायाह-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१६/४१. 'जीवाण' मित्यादि, 'चेयकडकम्म' त्ति चेतः—चैतन्यं जीवस्वरूपभूता चेतनेत्यर्थः तेन कृतानि—बद्धानि चेतःकृतानि कर्म्माणि 'कज्जंति' त्ति भवन्ति, कथम्? इति चेदुच्यते—

१६/४२. 'जीवाणं' ति जीवानामेव नाजीवानाम् 'आहारोवचिया पोग्गल' त्ति आहाररूपतयोपचिताः—सञ्चिता ये पुद्गलाः 'बोंदिचिया पोग्गल' त्ति इह बोन्दिः—अव्यक्तावयवं शरीरं ततो बोन्दितया चिता ये पुद्गलाः, तथा 'कडेवरचिय' त्ति कडेवरतया चिता ये पुद्गलाः 'तहा तहा ते पुग्गला परिणमंति' त्ति तेन तेन प्रकारेण आहारादितयेत्यर्थः ते पुद्गलाः परिणमन्ति, एवं च कर्मपुद्गला अपि जीवानामेव तथा २ परिणमन्तीतिकृत्वा चैतन्यकृतानि कर्माणि, अतो निगम्यते—'नत्थि अचेयकडा कम्म' त्ति न भवन्ति 'अचेतःकृतानि' अचैतन्यकृतानि कर्म्माणि हे श्रमण! हे आयुष्मन्! इति, अथवा 'चेयकडा कम्मा कज्जंति' त्ति चेयं—चयनं चय इत्यर्थः भावे यप्रत्ययविधानात् तत्कृतानि सञ्चयकृतानि पुद्गलसञ्चयरूपाणि कर्माणि भवन्ति, कथम्?, 'आहारोवचिया पोग्गला' इत्यादि, आहाररूपा उपचिताः सन्तः पुद्गला भवन्ति, तथा बोन्दिरूपाश्चिताः सन्तः पुद्गला भवन्ति, तथा कडेवररूपाश्चिताः सन्तः पुद्गला भवन्ति, किं बहुना?, तथोच्छ्वासादिरूपतया ते पुद्गलाः परिणमन्ति चयादेवेति शेषः, एवं च न सन्ति 'अचेयकृतानि असञ्चयकृतानि कर्म्माणि आहारबोन्दिकडेवरपुद्गलवदिति। तथा 'दुट्ठाणेसु' त्ति शीतातपदंशमशकादियुक्तेषु—कायोत्सर्गासनाद्याश्रयेषु 'दुसेज्जासु' त्ति दुःखोत्पादकवसतिषु 'दुन्निसीहियासु' त्ति दुःख-हेतुस्वाध्यायभूमिषु 'तथा तथा' तेन तेन प्रकारेण बहुविधा-सातोत्पादकतया 'ते पोग्गल' त्ति ते कार्म्मणपुद्गलाः परिणमन्ति, ततश्च जीवानामेवासात-सम्भवात्तैरेवासात-हेतुभूतकर्माणि कृतानि अन्यथाऽकृताभ्यागमदोषप्रसङ्गः, जीवकृतत्वे च तेषां चेतः कृतत्वं सिद्धमतो निगम्यते 'नत्थि अचेयकडा कम्म' त्ति, चेयव्याख्यानं त्वेवं नीयते—यतो दुःस्थानादिष्वसातहेतुतया पुद्गलाः परिणमन्ति अतो नोऽचेयकृतानि कर्म्माणि—नासञ्चयरूपाणि कर्म्माणि, असञ्चयरूपाणामतिसूक्ष्मत्वेनासातोत्पादकत्वासम्भवाद् विषलववदिति, तथा 'आयंके' इत्यादि, 'आतङ्कः' कृच्छ्रजीवितकारी ज्वरादिः 'से' तस्य जीवस्य 'वधाय' मरणाय भवति, एवं 'सङ्कल्पः' भयादिविकल्पः मरणान्तः—मरणारूपोऽन्तो—विनाशो यस्मात्सः मरणान्तः—दण्डादिघातः, तत्र च 'तथा तथा' तेन तेन प्रकारेण वधजनकत्वेन ते 'पुद्गलाः' आतङ्कादिजनकासातसंवेदनीयसम्बन्धिनः 'परिणमन्ति' वर्त्तन्ते, एवं च वधस्य जीवानामेव भावाद् वधहेतवोऽसातवेद्य-पुद्गला जीवकृताः अतश्चेतः कृतानि कर्म्माणि न सन्त्यचेतः-कृतानि, चेयव्याख्यानं तु पूर्वोक्तानुसारेणावगन्तव्यमिति॥

षोडशशते द्वितीयः॥१६-२॥

तृतीय उद्देशकः

द्वितीयोद्देशकान्ते कर्म्माभिहितं, तृतीयेऽपि तदेवोच्यते, इत्येवंसम्बन्धस्यास्येदमादिसूत्रम्—

१६/४४,४५. 'रायगिहे' इत्यादि, 'एवं जहा पन्नवणाए' इत्यादि, 'वेयावेउद्देसओ' त्ति वेदे—वेदने कर्मप्रकृतेः एकस्याः वेदो—वेदनमन्यासां प्रकृतीनां यत्रोद्देशकेऽभिधीयते स वेदावेदः स एवोद्देशकः—प्रज्ञापनायाः सप्तविंशतितमं पदं वेदावेदोद्देशकः, दीर्घता चेह सञ्ज्ञात्वात्, स चैवमर्थतः—

गौतम! अष्ट कर्म्मप्रकृतीर्वेदयति सप्त वा मोहस्य क्षये उपशमे वा (शेषघातिक्षये चतसो वा), एवं मनुष्योऽपि, नारकादिस्तु वैमानिकान्तोऽष्टावेवेत्येवमादिरिति। 'वेदाबंधोवि तहेव' त्ति एकस्याः कर्म्मप्रकृतेर्वेदे—वेदने अन्यासां कियतीनां बन्धो भवतीति प्रतिपाद्यते यत्रासौ वेदाबन्ध उच्यते, सोऽपि तथैव प्रज्ञापनायामिवेत्यर्थः, स च प्रज्ञापनायां षड्विंशतितमपदरूपः, एवं चासौ—

कइ णं भंते! कम्मप्पगडीओ पण्णत्ताओ?, गोयमा! अट्ठ कम्मपगडीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—णाणावरणं जाव अंतराइयं, एवं नेरइयाणं जाव वेमाणियाणं। जीवे णं भंते! णाणावरणिज्जं कम्मं वेदेमाणे कइ कम्मपगडीओ बंधइ?, गोयमा! सत्तविहबंधए वा अट्ठविहबंधए वा छव्विहबंधए वा एगविहबंधए वा' इत्यादि, तत्राष्टविधबन्धकः प्रतीतः, सप्तविधबन्धकस्त्वायुर्बन्धकालादन्यत्र, षड्विधबन्धक आयुर्मोहवर्जानां सूक्ष्मसम्परायः, एकविधबन्धको वेदनीयापेक्षयोपशान्त-मोहादिः, 'बंधावेदोवि तहेव' त्ति एकस्याः कर्म्मप्रकृतेर्बन्धे सत्यन्यासां कियतीनां वेदो भवति? इत्येवमर्थो बन्धावेद उद्देशक उच्यते, सोऽपि तथैव—प्रज्ञापनायामिवेत्यर्थः, स च प्रज्ञापनायां पञ्चविंशतितमपदरूपः, एवं चासौ—'कइ णं भंते!' इत्यादि प्रागिव, विशेषस्त्वयं—'जीवे णं भंते! णाणावरणिज्जं कम्मं बंधेमाणे कइ कम्मपगडीओ वेएइ?, गोयमा! नियमा अट्ठ कम्मप्पगडीओ वेएइ' इत्यादि, 'बंधाबंधो' त्ति एकस्या बन्धेऽन्यासां कियतीनां बन्धः? इति यत्रोच्यतेऽसौ बन्धाबन्ध इत्युच्यते, स च प्रज्ञापनायां चतुर्विंशतितमं पदं, स चैवं—'कइ ण' मित्यादि तथैव, विशेषः पुनरयं—'जीवे णं भंते! णाणावरणिज्जं कम्मं बंधेमाणे कइ कम्मप्पगडीओ बंधइ?, गोयमा! सत्तविहबंधए वा अट्ठविहबंधए वा छव्विहबंधए वा' इत्यादि इह सङ्ग्रहगाथा क्वचिद् दृश्यते—

'वेयावेओ पढमो १ वेयाबंधो य बीयओ होइ २।
बंधावेओ तइओ ३ चउत्थओ बंधबंधो उ ४॥१॥' इति।

अनन्तरं बन्धक्रिया उक्तेति क्रियाविशेषाभिधानाय प्रस्तावना-पूर्वकमिदमाह—

१६/४८,४९. 'तए णं' मित्यादि। 'पुरच्छिमेणं' ति पूर्वभागे—पूर्वाह्णे इत्यर्थः 'अवड्ढं' ति अपगतार्द्धमर्द्धदिवसं यावत् न कल्पते हस्ताद्याकुण्टयितुं कायोत्सर्गव्यवस्थितत्वात् 'पच्चच्छिमेणं' ति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पश्चिमभागे 'अवड्ढं दिवसं' ति दिनार्द्धं यावत् कल्पते हस्ताद्याकुण्टयितुं कायोत्सर्गाभावात्, एतच्च चूर्ण्यनुसारितया व्याख्यातं, 'तस्स य' त्ति तस्य पुनः साधोरेवं कायोत्सर्गाभिग्रहवतः 'अंसियाओ' त्ति अंशीसि तानि च नासिकासत्कानीति चूर्णिकारः, 'तं च' त्ति तं चानगारं कृतकायोत्सर्गं लम्बमानार्शसम् 'अदक्खु' त्ति अद्राक्षीत्, ततश्चार्शसां छेदार्थं 'ईसिं पाडेइ' त्ति तमनगारं भूम्यां पातयति, नापातितस्यार्शश्छेदः कर्त्तुं शक्यत इति, 'तस्स' त्ति वैद्यस्य 'क्रिया' व्यापाररूपा सा च शुभा धर्मबुद्ध्या छिन्दानस्य लोभादिना त्वशुभा 'क्रियते' भवति 'जस्स छिज्जइ' त्ति यस्य साधोरर्शांसि छिद्यन्ते नो तस्य क्रिया भवति निर्व्यापारत्वात्, किं सर्वथा क्रियाया अभावः?, नैवमत आह-'नन्नत्थे' त्यादि, नेति योऽयं निषेधः सोऽन्यत्रैकस्माद्धर्म्मान्तरायाद्, धर्म्मान्तरायलक्षणक्रिया तस्यापि भवतीति भावः धर्मान्तरायश्च शुभध्यानविच्छेदादर्शश्छेदानुमोदनाद्वेति।

षोडशशते तृतीयः॥१६-३॥

चतुर्थ उद्देशकः

अनन्तरोद्देशकेऽनगारवक्तव्यतोक्ता, चतुर्थेऽप्यसावेवोच्यते इत्येवंसम्बन्धस्यास्येमादिसूत्रम्-

१६/५१. 'रायगिहे' इत्यादि, 'अन्नगिलायते' त्ति अन्नं विना ग्लायति-ग्लानो भवतीत्यन्नग्लायकः प्रत्यग्रकूरादिनिष्पत्तिं यावद् बुभुक्षातुरतया प्रतीक्षितुमशक्नुवन् यः पर्युषितकूरादि प्रातरेव भुङ्क्ते कूरगड्डुकप्राय इत्यर्थः, चूर्णिकारेण तु निःस्पृहत्त्वात् 'सीयकूरभोई अंतपंताहारो' त्ति व्याख्यातं, अथ कथमिदं प्रत्याय्यं यदुत नारको महाकष्टापन्नो महताऽपि कालेन तावत्कर्म्म न क्षपयति यावत्साधुरल्पकष्टापन्नोऽल्पकालेनेति?, उच्यते, दृष्टान्ततः, स चायं-

१६/५२. 'से जहानामए केइ पुरिसे' त्ति यथेति दृष्टान्ते नाम-सम्भावने ए इत्यलङ्कारे 'से' त्ति स कश्चित्पुरुषः 'जुन्ने' त्ति जीर्णः-हानिगतदेहः, स च कारणवशादवृद्धभावेऽपि स्यादत आह-'जराजज्जरियदेहे' त्ति व्यक्तं, अत एव 'सिढिल (त्त) तयालितरंगसंपिणद्धगत्ते' त्ति शिथिलतया त्वचावलीतरङ्गैश्च संपिनद्धं-परिगतं गात्रं-देहो यस्य स तथा 'पविरलपरिसडियदंतसेढि' त्ति प्रविरलाः-केचित् क्वचिच्च परिशटिता दंता यस्यां सा तथविधा श्रेणिर्दन्तानामेव यस्य स तथा 'आउरे' त्ति आतुरः-दुःस्थः 'झुंझिए' त्ति बुभुक्षितः झुरित इति टीकाकारः 'दुब्बले' त्ति बलहीनः 'किलंते' त्ति मनःक्लमं गतः, एवंरूपो हि पुरुषश्छेदनेऽसमर्थो भवतीत्येवं विशेषितः, 'कोसंबगंडियं' ति 'कोसंब' त्ति वृक्षविशेषस्तस्य गण्डिका-खण्डविशेषस्तां 'जडिलं' ति जटावतीं वलितोद्वलितामिति वृद्धाः 'गंठिल्लं' ति ग्रन्थिमतीं 'चिक्कणं' ति श्लक्ष्णस्कन्धनिष्पन्नां 'वाइद्धं' न्ति व्यादिग्धां-विशिष्टद्रव्योपदिग्धां वक्रामिति वृद्धाः 'अपत्तियं' ति अपात्रिकाम्-अविद्यमानाधाराम्, एवम्भूता च गण्डिका दुश्छेद्या भवतीत्येवं विशेषिता, तथा परशुरपि मुण्डः-अच्छेदको भवतीति मुण्ड इति विशेषितः, शेषं तूद्देशकान्तं यावत् षष्ठशतवद्व्याख्येयमिति॥

षोडशशते चतुर्थः॥१६-४॥

पंचम उद्देशकः

चतुर्थोद्देशके नारकाणां कर्म्मनिर्ज्जरणशक्तिस्वरूपमुक्तं, पञ्चमे तु देवस्यागमनादिशक्तिस्वरूपमुच्यते इत्येवंसम्बन्धस्यास्येदमादिसूत्रम्-

१६/५४. 'तेणं' मित्यादि, इह सर्वोऽपि संसारी बाह्यान् पुद्गलाननुपादाय न काञ्चित् क्रियां करोतीति सिद्धमेव, किन्तु देवः किल महर्द्धिकः महर्द्धिकत्वादेव च गमनादिक्रियां मा कदाचित् करिष्यतीति सम्भावनायां शक्रः प्रश्नं चकार-

'देवे णं भंते!' इत्यादि, 'भासित्तए वा वागरित्तए व' त्ति भाषितुं-वक्तुं व्याकर्त्तुम्-उत्तरं दातुमित्यनयोर्विशेषः, प्रश्नश्चायं तृतीयः, उन्मेषादिश्चतुर्थः, आकुण्टनादिः पञ्चमः, स्थानादिः षष्ठः, विकुर्वितुमिति सप्तमः, परिचारियतुमष्टमः ८ 'उक्खित्तपसिणवागरणाइं' ति उत्क्षिप्तानीवोत्क्षिप्तानि-अविस्तारितस्वरूपाणि प्रच्छनीयत्वात्प्रश्नाः व्याक्रियमाणत्वाच्च व्याकरणानि यानि तानि तथा 'संभंतियवंदणएणं' ति सम्भ्रान्तिः-सम्भ्रमः औत्सुक्यं तया निर्वृत्तं साम्भ्रान्तिकं यद्वन्दनं तत्तथा तेन।

१६/५५. 'परिणममाणा पोग्गला नो परिणय' त्ति वर्त्तमानातीतकालयोर्विरोधादत एवाह-'अपरिणय' त्ति, इहैवोपपत्तिमाह-परिणमन्तीति कृत्वा नो परिणतास्ते व्यपदिश्यन्त इति मिथ्यादृष्टिवचनं।

सम्यग्दृष्टिः पुनराह-'परिणममाणा पोग्गला परिणया नो अपरिणय' त्ति, कुतः? इत्याह-परिणमन्तीतिकृत्वा पुद्गलाः परिणता नो अपरिणताः, परिणमन्तीति हि यदुच्यते तत्परिणामसद्भावे नान्यथाऽतिप्रसङ्गात्, परिणामसद्भावे तु परिणमन्तीति व्यपदेशे परिणतत्वमवश्यंभावि, यदि हि परिणामे सत्यपि परिणतत्वं न स्यात्तदा सर्वदा तदभावप्रसङ्ग इति।

'परिवारो जहा सूरियाभस्से' त्यनेनेदं सूचितं-'तिहिं परिसाहिं सत्तहिं अणिएहिं सत्तहिं अणियाहिवईहिं सोलसहिं आयरक्खदेवसाहस्सीहिं अन्नेहि य बहूहिं महासामाणविमाणवासीहिं वेमाणिएहिं देवेहिं सद्धिं संपरिवुडे' इत्यादि।

१६/६०. 'दिवं तेयलेस्सं असहमाणे' त्ति इह किल शक्रः पूर्वभवे कार्त्तिकाभिधानोऽभिनवश्रेष्ठी बभूव गङ्गदत्तस्तु जीर्णः श्रेष्ठीति, तयोश्च प्रायो मत्सरो भवतीत्यसावसहनकारणं संभाव्यत इति।

'एवं जहा सूरियाभो' त्ति अनेनेदं सूचितं-'सम्मादिट्ठी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मिच्छादिट्ठी परित्तसंसारिए अणंतसंसारिए सुलभबोहिए दुल्लभबोहिए आराहए विराहए चरिमे अचरिमे' इत्यादीति।

षोडशशतस्य पञ्चमोद्देशः परिपूर्णतां प्राप्तः ॥१६-५॥

षष्ठम उद्देशकः

पञ्चमोद्देशके गङ्गदत्तस्य सिद्धिरुक्ता, सा च भव्यानां केषाञ्चित् स्वप्नेनापि सूचिता भवतीति स्वप्नस्वरूपं षष्ठेनोच्यते इत्येवंसम्बन्धस्यास्येदमादिसूत्रम्–

१६/७६. 'कइविहे' इत्यादि, 'सुविणदंसणे' त्ति स्वप्नस्य–स्वापक्रियानुगतार्थविकल्पस्य दर्शनं–अनुभवनं, तच्च स्वप्नभेदात्पञ्चविधमिति, 'अहातच्चे' ति यथा–येन प्रकारेण तथ्यं–सत्यं तत्त्वं वा तेन यो वर्त्ततेऽसौ यथातथ्यो यथातत्त्वो वा, स च दृष्टार्थाविसंवादी फलाविसंवादी वा, तत्र दृष्टार्थाविसंवादी स्वप्नः किल कोऽपि स्वप्नं पश्यति यथा मह्यं फलं हस्ते दत्तं जागरितस्तथैव पश्यतीति, फलाविसंवादी तु किल कोऽपि गोवृषकुञ्जराद्यारूढमात्मानं पश्यति बुद्धश्च कालान्तरे सम्पदं लभत इति, 'पयाणे' त्ति प्रतननं प्रतानो–विस्तारस्तद्रूपः स्वप्नो यथातथ्यः तदन्यो वा प्रतान इत्युच्यते, विशेषणकृत एव चानयोर्भेदः, एवमुत्तरत्रापि, 'चिंतासुमिणे' त्ति जाग्रदवस्थस्य या चिन्ता–अर्थचिन्तनं तत्संदर्शनात्मकः स्वप्नश्चिन्तास्वप्नः, 'तव्विवरीय' त्ति यादृशं वस्तु स्वप्ने दृष्टं तद्विपरीतस्यार्थस्य जागरणे यत्र प्राप्तिः स तद्विपरीतस्वप्नो यथा कश्चिदात्मानं मेध्यविलिप्तं स्वप्ने पश्यति जागरितस्तु मेध्यमर्थं कंचन प्राप्नोतीति, अन्ये तु तद्विपरीतमेवमाहुः–कश्चित् स्वरूपेण मृत्तिकास्थलमारूढः स्वप्ने च पश्यत्यात्मानमश्वारूढमिति, 'अव्वत्तदंसणे' त्ति अव्यक्तं–अस्पष्टं दर्शनं–अनुभवः स्वप्नार्थस्य यत्रासावव्यक्तदर्शनः।

स्वप्नाधिकारादेवेदमभिधातुमाह–

'सुत्ते ण' मित्यादि, 'सुत्तजागरे' त्ति नातिसुप्तो नातिजाग्रदित्यर्थः, इह सुप्तो जागरश्च द्रव्यभावाभ्यां स्यात्तत्र द्रव्यतो निद्रापेक्षया भावतश्च विरत्यपेक्षया, तत्र च स्वप्नव्यतिकरो निद्रापेक्ष उक्तः, अथ विरत्यपेक्षया जीवादीनां पञ्चविंशतेः पदानां सुप्तत्वजागरत्वे प्ररूपयन्नाह–

१६/७८. 'जीवा ण' मित्यादि, तत्र 'सुत्त' त्ति सर्वविरतिरूपनैश्चयिकप्रबोधभावात् 'जागर' त्ति सर्वविरतिरूपप्रवरजागरणसद्भावात् 'सुत्तजागर' त्ति अविरतिरूपसुप्तप्रबुद्धतासद्भावादिति।

पूर्वं स्वप्नद्रष्टार उक्ताः, अथ स्वप्नस्यैव तथ्यातथ्यविभागदर्शनार्थं तानेवाह–

१६/८१,८२. 'संवुडे ण' मित्यादि, 'संवृतः' निरुद्धाश्रवद्वारः सर्वविरत इत्यर्थः, अस्य च जागरस्य च शब्दकृत एव विशेषः, द्वयोरपि सर्वविरताभिधायकत्वात् किन्तु जागरः सर्वविरतियुक्तो बोधापेक्षयोच्यते संवृतस्तु तथाविधबोधोपेतसर्वविरत्यपेक्षयेति, 'संवुडे णं सुविणं पासइ अहातच्चं पासइ' त्ति सत्यमित्यर्थः, संवृतश्चेह विशिष्टतरसंवृतत्वयुक्तो ग्राह्यः स च प्रायः क्षीणमलत्वात् देवताऽनुग्रहयुक्तत्वाच्च सत्यं स्वप्नं पश्यतीति। अनन्तरं संवृतादिः स्वप्नं पश्यतीत्युक्तमथ संवृतत्वाद्येव जीवादिषु दर्शयन्नाह–'जीवा ण' मित्यादि।

स्वप्नाधिकारादेवेदमाह–

१६/८३-८५. 'कइ ण' मित्यादि, 'बायालीसं सुविण' त्ति विशिष्टफलसूचकस्वप्नापेक्षया द्विचत्वारिंशदन्यथाऽसंख्येयास्ते संभवन्तीति, 'महासुविण' त्ति महत्तमफलसूचकाः 'बावत्तरि' त्ति एतेषामेव मीलनात्।

१६/९१. 'अंतिमराइयंसि' त्ति रात्रेरन्तिमे भागे 'घोररूवदित्तधरं' ति घोरं यद्रूपं दीप्तं च दृप्तं वा तद्धारयति यः स तथा तं 'तालपिसायं' ति तालो–वृक्षविशेषः स च स्वभावाद्दीर्घो भवति ततश्च ताल इव पिशाचस्तालपिशाचस्तम्, एषां च पिशाचाद्यर्थानां मोहनीयादिभिः स्वप्नफलविषयभूतैः सह साधर्म्यं स्वयमभ्यूह्यं, 'पुंसकोइलगं' ति पुंस्कोकिलं–कोकिलपुरुषमित्यर्थः, 'दामदुगं' ति मालाद्वयम् 'उम्मीवीइसहस्सकलियं' ति इहोर्म्मयो–महाकल्लोलाः वीचयस्तु ह्रस्वाः, अथवोर्म्मीणां वीचयोविविक्तव्यानि तत्सहस्रकलितं, 'हरिवेरुलियवण्णाभेणं' ति हरिच्च–तन्नीलं वैडूर्यवर्णाभं चेति समासस्तेन 'आवेढियं' ति अभिविधिना वेष्टितं सर्वत इत्यर्थः 'परिवेढियं' ति पुनः पुनरित्यर्थः 'उवरि' त्ति उपरि।

'गणिपिडगं' त्ति गणीनां–अर्थपरिच्छेदानां पिटकमिव पिटकं–आश्रयो गणिपिटकं गणिनो वा–आचार्यस्य पिटकमिव–सर्वस्वभाजनमिव गणिपिटकं 'आघवेइ' त्ति आख्यापयति सामान्यविशेषरूपतः 'पन्नवेति' त्ति सामान्यतः 'परूवेइ' त्ति प्रतिसूत्रमर्थकथनेन 'दंसेइ' त्ति तदभिधेयप्रत्युपेक्षणादिक्रियादर्शनेन 'निदंसेइ' त्ति कथञ्चिदगृह्णतोऽनुकम्पया निश्चयेन पुनः पुनर्दर्शयति 'उवदंसेइ' त्ति सकलनययुक्तिभिरिति।

'चाउव्वण्णाइन्ने' त्ति चातुर्वर्णश्चासावाकीर्णश्च ज्ञानादिगुणैरिति चातुर्वर्णाकीर्णः।

'चउव्विहे देवे पन्नवेइ' त्ति प्रज्ञापयति–प्रतिबोधयति शिष्यीकरोतीत्यर्थः, 'अणंते' ति विषयानन्तत्वात् 'अणुत्तरे' त्ति सर्वप्रधानत्वात्, यावत्करणादिदं दृश्यं–'निव्वाघाए' कटकुड्यादिनाऽप्रतिहतत्वात् 'निरावरणे' क्षायिकत्वात् 'कसिणे' सकलार्थग्राहकत्वात् 'पडिपुन्ने' अंशेनापि स्वकीयेनान्यूनत्वादिति।

१६/९२. 'सुविणंते' त्ति 'स्वप्नान्ते' स्वप्नस्य विभागे अवसाने वा 'गयपंतिं वा' इह यावत्करणादिदं दृश्यं–'नरपंतिं वा एवं किन्नरकिंपुरिसमहोरगगंधव्व' त्ति 'पासमाणे पासइ' ति पश्यन् पश्यत्तागुणयुक्तः सन् 'पश्यति' अवलोकयति।

१६/९३. 'दामिणि'न्ति गवादीनां बन्धनविशेषभूतां रज्जुं 'दुहओ' त्ति द्वयोरपि पार्श्वयोरित्यर्थः 'संवेल्लेमाणे' त्ति संवेल्लयन् संवर्त्तयन्

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'संवेल्लियमिति अप्पाणं मन्नइ' त्ति संवेल्लितान्तामित्यात्मना मन्यते विभक्तिपरिणामादिति।

१६/९५. 'उग्गोवेमाणे' त्ति उद्गोपयन् विमोहयन्नित्यर्थः।

१६/९८. जहा तेयनिसग्ग' त्ति यथा गोशालके, अनेन चेदं सूचितं–'पत्तरासीति वा तयारासीति वा भुसरासीति वा तुसरासीति वा गोमयरासीति व' त्ति।

१६/१०१. 'सुरावियडकुंभं' ति सुरारूपं यद् विकटं–जलं तस्य कुम्भो यः स तथा 'सोवीरगवियडकुंभं व' त्ति इह सौवीरकं–काञ्जिकमिति।

अनन्तरं स्वप्ना उक्तास्ते चाचक्षुर्विषया इत्यचक्षुर्विषयिता-साधर्म्येण गन्धपुद्गलवक्तव्यतामभिधातुमाह–

१६/१०६. 'अहे' त्यादि, 'कोट्ठपुडाण व' त्ति कोष्ठे यः पच्यते वास-समुदायः स कोष्ठ एव तस्य पुटाः–पुटिकाः कोष्ठपुटास्तेषां, यावत्करणादिदं दृश्यं–'पत्तपुडाण वा चोयपुडाण वा तगरपुडाण वे' त्यादि, तत्र पत्राणि–तमालपत्राणिं 'चोय' त्ति त्वक् तगरं च–गन्धद्रव्यविशेषः 'अणुवायंसि' अनुकूलो वातो यत्र देशे सोऽनुवातोऽतस्तत्र यस्मादेशाद्वायुरागच्छति तत्रेत्यर्थः 'उब्भिज्जमाणाण व' त्ति प्राबल्येनोद्भूर्वं वा दीर्यमाणानाम्, इह यावत्करणादिदं दृश्यं–'निब्भिज्जमाणाण वा' प्राबल्याभावेनाधो वा दीर्यमाणानां 'उक्किरिज्जमाणाण वा विक्किरिज्जमाणाण वा' इत्यादि प्रतीतार्थाश्चैते शब्दाः, 'किं कोट्ठे वाइ' त्ति कोष्ठो–वाससमुदायो वाति–दूरादागच्छति, आगत्य घ्राणग्राह्यो भवतीति भावः 'घाणसहगय' त्ति घ्रायत इति घ्राणो–गन्धो गन्धोपलम्भक्रिया वा तेन सह गताः–प्रवृत्ता ये पुद्गलास्ते घ्राणसहगताः गन्धगुणोपेता इत्यर्थः।

षोडशशते षष्ठः ॥१६-६॥

सप्तम उद्देशकः

षष्ठोद्देशकान्ते गन्धपुद्गला वान्तीत्युक्तं, ते चोपयोगेनावसीयन्त इत्युपयोगस्तद्विशेषभूता पश्यत्ता च सप्तमे प्ररूप्यते इत्येवंसम्बद्धस्यास्येदमादिसूत्रम्–

१६/१०८. 'कइविहे ण' मित्यादि, 'एवं जहे' त्यादि, उपयोगपदं प्रज्ञापनायामेकोनत्रिंशत्तमं, तच्चैवं–'तं जहा–सागारोवओगे य अणागारोवओगे य। सागारोवओगे णं भंते! कतिविहे पण्णत्ते?, गोयमा! अट्ठविहे पण्णत्ते, तं जहा–आभिणिबोहियणाण-सागारोवओगे सुयणाणसागारोवओगे एवं ओहिणाण मणपज्जवनाण केवलनाणसागारोवओगे, मतिअन्नाणसागारोव-ओगे सुयअन्नाणसागारोवओगे विभंगनाणसागारोवओगे। अणागारोवओगे णं भंते! कतिविहे पण्णत्ते? गोयमा! चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा–चक्खुदंसणअणागारोवओगे अचक्खुदंसण-आणागारोवओगे ओहिदंसण-अणागारोवओगे केवलदंसण-अणागारोवओगे' इत्यादि, एतच्च व्यक्तमेव, 'पासणयापयं च णेयव्वं' ति पश्यत्तापदमिह स्थानेऽध्येतव्यमित्यर्थः, तच्च प्रज्ञापनायां त्रिंशत्तमं, तच्चैवं– 'कतिविहा णं भंते! पासणया पण्णत्ता? गोयमा! दुविहा पासणया पण्णत्ता, तं जहा–सागारपासणया अणागारपासणया। सागारपासणया णं भंते! कतिविहा पण्णत्ता? गोयमा! छव्विहा पण्णत्ता, तं जहा–सुयणाणसागारपासणया एवं ओहिनाण मणनाण केवलनाण सुयअन्नाण विभंगनाणसागारपासणया, अणागार-पासणया णं भंते! कतिविहा पण्णत्ता?, गोयमा! तिविहा पण्णत्ता, तं जहा–चक्खुदंसणअणागारपासणया ओहिदंसण-अणागारपासणया केवलदंसणअणागारपासणया' इत्यादि, अस्य चायमर्थः–'पासणय' त्ति पश्यतो भावः पश्यत्ता–बोध-परिणामविशेषः, ननु पश्यत्तोपयोगयोस्तुल्ये साकारानाकार-भेदत्वे कः प्रतिविशेषः?, उच्यते, यत्र त्रैकालिकोऽवबोधोऽस्ति तत्र पश्यत्ता यत्र पुनर्वर्त्तमानकाल-स्त्रैकालिकश्च तत्रोपयोग इत्ययं विशेषः, अत एव मतिज्ञानं मत्यज्ञानं च साकारपश्यत्तायां नोक्तं, तस्योत्पन्नाविनष्टार्थग्राहकत्वेन साम्प्रतकाल-विषयत्वात्।

अथ कस्मादनाकारपश्यत्तायां चक्षुर्दर्शनमधीतं न शेषेन्द्रियदर्शनं, उच्यते, पश्यत्ता प्रकृष्टमीक्षणमुच्यते 'दृशिर् प्रेक्षणे' इति वचनात्, प्रेक्षणं च चक्षुर्दर्शनस्यैवास्ति न शेषाणां, चक्षुरिन्द्रियोपयोगस्य शेषेन्द्रियोपयोगापेक्षयाऽल्पकालत्वात्, यत्र चोपयोगोऽल्पकालस्तत्रेक्षणस्य प्रकर्षो झटित्यर्थ-परिच्छेदात्, तदेवं चक्षुर्दर्शनस्यैव पश्यत्ता नेतरस्येति, अयं चार्थः प्रज्ञापनातो विशेषेणावगम्य इति।

षोडशशते सप्तमः ॥१६-७॥

अष्टम उद्देशकः

सप्तमे उपयोग उक्तः, स च लोकविषयोऽपीतिसम्बन्धादष्टमे लोकोऽभिधीयते, तस्य चेदमादिसूत्रम्–

१६/११०,१११. 'किंमहालए ण' मित्यादि, 'चरमंते' त्ति चरमरूपोऽन्तश्चरमान्तः, तत्र चासङ्ख्यातप्रदेशावगाहित्वा-ज्जीवस्यासम्भव इत्यत आह–'नोजीवे' त्ति, जीवदेशादीनां त्वेकप्रदेशेऽप्यवगाहः संभवतीत्युक्तं 'जीवदेसावी' त्यादि, 'अजीवावि' त्ति पुद्गलस्कन्धाः 'अजीवदेसावि' त्ति धर्मास्तिकायादिदेशाः स्कन्धदेशाश्च तत्र संभवन्ति, एवमजीव-प्रदेशा अपि।

अथ जीवादिदेशादिषु विशेषमाह–'जे जीवे' त्यादि, ये जीव-देशास्ते पृथिव्याद्येकेन्द्रियजीवानां देशास्तेषां लोकान्तेऽवश्यं भावादित्येको विकल्पः, 'अहव' त्ति प्रकारान्तरदर्शनार्थः, एकेन्द्रियाणां बहुत्वाब्दहवस्तत्र तद्देशा भवन्ति, द्वीन्द्रियस्य च कादाचित्कत्वात्कदाचिद्देशः स्यादित्येको द्विकयोगविकल्पः, यद्यपि हि लोकान्ते द्वीन्द्रियो नास्ति तथाऽपि यो द्वीन्द्रिय

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एकेन्द्रियषूत्पित्सुर्मारणान्तिक-समुद्घातं गतस्तमाश्रित्यायं विकल्प इति। 'एवं जहे' त्यादि, यथा दशमशते आग्नेयीं दिशमाश्रित्योक्तं तथेह पूर्वचरमान्त-माश्रित्य वाच्यं, तच्चेदम्-'अहवा एगिंदियदेसा य बेइंदियस्स य देसा अहवा एगिंदियदेसा य बेइंदियाण य देसा अहवा एगिंदियदेसा य तेइंदियस्स य देसे' इत्यादि, यः पुनरिह विशेषस्तद्दर्शनायाह-'नवरं अणिंदियाण' मित्यादि, अनिन्द्रियसम्बन्धिनि देशविषये भङ्गकत्रये 'अहवा एगिंदियदेसा य अणिंदियस्स देसे' इत्येवंरूपः प्रथमभङ्गको दशमशते आग्नेयीप्रकरणेऽभिहितोऽपीह न वाच्यो, यतः केवलिसमुद्घाते कपाटाद्यवस्थायां लोकस्य पूर्वचरमान्ते प्रदेशवृद्धिहानिकृत लोकदन्तकसद्भावेनानिन्द्रियस्य बहूनां देशानां सम्भवो न त्वेकस्येति, तथाऽऽग्नेय्यां दशविधेष्वरूपिद्रव्येषु धर्म्माधर्म्मा-काशास्तिकायद्रव्याणां तस्यामभावात्सप्तविधा अरूपिण उक्ताः लोकस्य पूर्वचरमान्तेष्वद्धासमयस्याप्यभावात् षड्विधास्ते वाच्याः, अद्धासमयस्य तु तत्राभावः समयक्षेत्र एव तद्भावात्, अत एवाह-'जे अरूवी अजीवा ते छव्विहा अद्धासमयो नत्थि' त्ति।

१६/११३. 'उवरिल्ले चरिमंते' त्ति, अनेन सिद्धोपलक्षित उपरितनचरिमान्तो विवक्षितस्तत्र चैकेन्द्रियदेशा अनिन्द्रियदेशाश्च सन्तीतिकृत्वाऽऽह-'जे जीवे' त्यादि, इहायमेको द्विकसंयोगः, त्रिकसंयोगेषु च द्वौ द्वौ कार्यौ, तेषु हि मध्यमभङ्गः 'अहवा एगिंदियदेसा य अणिंदियदेसा य बेइंदियस्स य देसा' इत्येवंरूपो नास्ति, द्वीन्द्रियस्य च देशा इत्यस्यासम्भवाद्, यतो द्वीन्द्रियस्योपरितनचरिमान्ते मारणान्तिकसमुद्घातेन गतस्यापि देश एव तत्र संभवति न पुनः प्रदेशवृद्धिहानिकृतलोकदन्तकवशादनेकप्रतरात्मकपूर्वचरमान्त-वद्देशाः, उपरितनचरिमान्तस्यैकप्रतररूपतया लोकदन्तका-भावेन देशानेकत्वाहेतुत्वादिति, अत एवाह-'एवं मज्झिल्ल-विरहिओ' त्ति त्रिकभङ्गक इति प्रक्रमः, उपरितनचरिमान्ता-पेक्षया जीवप्रदेशप्ररूपणायामेवं 'आइल्लविरहिओ' त्ति यदुक्तं तस्यायमर्थः-इह पूर्वोक्ते भङ्गकत्रये प्रदेशापेक्षया 'अहवा एगिंदियपएसा य अणिंदियप्पएसा य बेइंदियस्सप्पएसे' इत्ययं प्रथमभङ्गको न वाच्यो, द्वीन्द्रियस्य च प्रदेश इत्यस्यासम्भवात्, तदसम्भवश्च लोकव्यापकावस्थानिन्द्रियवर्ज्जजीवानां यत्रैक-प्रदेशस्तत्रा-सङ्ख्यातानामेव तेषां भावादिति, 'अजीवा जहा दसमसए तमाए' त्ति अजीवानाश्रित्य यथा दशमशते 'तमाए' त्ति तमाभिधानां दिशमाश्रित्य सूत्रमधीतं तथेहोपरितनचरमान्त-माश्रित्य वाच्यं, तच्चैवं-जे अजीवा ते दुविहा पण्णत्ता, तं जहा-रूवीअजीवा य अरूविअजीवा य, जे रूविअजीवा ते चउव्विहा पण्णत्ता, तं जहा-खंधा जाव परमाणु पोग्गला, जे अरूविअजीवा ते छव्विहा पण्णत्ता, तं जहा-नो धम्मत्थिकाए धम्मत्थिकायस्स देसे धम्मत्थिकायस्सप्पएसा' एवमधर्म्मा-काशास्तिकाययोरपीति।

१६/११४. 'लोगस्स णं भंते! हिट्ठिल्ले' इत्यादि, इह पूर्वचरमान्तवद्भङ्गाः कार्याः, नवरं तदीयस्य भङ्गकत्रयस्य मध्यात् 'अहवा एगिंदियदेसा य बेइंदियस्स य देसा' इत्येवंरूपो मध्यमभङ्गकोऽत्र वर्जनीयः, उपरितनचरिमान्तप्रकरणोक्त-युक्तेस्तस्यासम्भवाद्, अत एवाह-'एवं मज्झिल्लविरहिओ' त्ति देशभङ्गका दर्शिताः अथ प्रदेशभङ्गकदर्शनायाह-'पएसा आइल्लविरहिया सव्वेसिं जहा पुरच्छिमिल्ले चरिमंते' त्ति, प्रदेशचिन्तायामाद्यभङ्गकरहिता प्रदेशा वाच्या इत्यर्थः आद्यश्च भङ्गक एकवचनान्तप्रदेशशब्दोपेतः स च प्रदेशानामधश्-चरमान्तेऽपि बहुत्वान्न संभवति संभवति च 'अहवा एगिंदियपएसा य बेइंदियस्स पएसा अहवा एगिंदियप्पएसा य बेइंदियाण य पएसा' इत्येतद्द्वयं, 'सव्वेसिं' ति द्वीन्द्रियादीनाम-निन्द्रियान्तानाम् 'अजीवे' त्यादि व्यक्तमेव। चरमान्ताधिकारादेवेदमाह-

१६/११५. 'इमीसे णं' मित्यादि। 'उवरिल्ले जहा दसमसए विमला दिसा तहेव निरवसेसं' ति दशमशते यथा विमला दिगुक्ता तथैव रत्नप्रभोपरितनचरमान्तो वाच्यो निरवशेषं यथा भवतीति, स चैवम्-'इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए उवरिल्ले चरिमन्ते किं जीवा० ६?, गोयमा! नो जीवा' एकप्रदेशप्रतरात्मकत्वेन तत्र तेषामनवस्थानात् 'जीवदेसावि ५, जे जीवदेसा ते नियमा एगिंदियदेसा' सर्वत्र तेषां भावात् 'अहवा एगिंदियदेसा य बेइंदियस्स य देसे १ अहवा एगिंदियदेसा य बेइंदियस्स य देसा २ अहवा एगिंदियदेसा य बेइंदियाण य देसा ३, रत्नप्रभा हि द्वीन्द्रियाणामाश्रयः, ते चैकेन्द्रियापेक्षयाऽतिस्तोकास्ततश्च तदुपरितनचरिमान्ते तेषां कदाचिद्देशः स्याद्देशा वेति, एवं त्रीन्द्रियादिष्वप्यनिन्द्रियान्तेषु, तथा 'जे जीवप्पएसा ते नियमा एगिंदियपएसा अहवा एगिंदियपएसावि बेइंदियस्स पएसा १ अहवा एगिंदियपएसा बेइंदियाण य पएसा २' एवं त्रीन्द्रियादिष्वप्यनीन्द्रियान्तेषु, तथा 'जे अजीवा ते दुविहा पन्नत्ता, तं जहा-रूविअजीवा य अरूविअजीवा य, जे रूविअजीवा ते चउव्विहा पन्नत्ता, तं जहा-खंधा जाव परमाणु-पोग्गला, जे अरूवी अजीवा ते सत्तविहा पन्नत्ता, तं जहा-नो धम्मत्थिकाए धम्मत्थिकायस्स देसे धम्मत्थिकायस्स पएसा एवमधम्मत्थिकायस्सवि आगासत्थिकायस्सवि अद्धासमए' त्ति अद्धासमयो हि मनुष्यक्षेत्रान्तर्वर्त्तिनि रत्नप्रभोपरितनचरिमान्ते-ऽस्त्येवेति, 'हेट्ठिले चरिमंते' इति यथाऽधश्चरमान्तो लोकस्योक्तः एवं रत्नप्रभापृथिव्या अप्यसाविति स चानन्तरोक्त एव, विशेषस्त्वयं-लोकाधस्तनचरमान्ते द्वीन्द्रियादीनां देशभङ्गकत्रयं मध्यमरहितमुक्तं इह तु रत्नप्रभाऽधस्तनचरमान्ते पञ्चेन्द्रियाणां परिपूर्णमेव तद्वाच्यं, शेषाणां तु द्वीन्द्रियादीनां मध्यमरहितमेव, यतो रत्नप्रभाऽधस्तनचरमान्ते देवपञ्चेन्द्रियाणां गमागमद्वारेण देशो देशाश्च संभवन्त्यतः पञ्चेन्द्रियाणां तत्तत्र परिपूर्णमेवास्ति,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

द्वीन्द्रियाणां तु रत्नप्रभाऽधस्तनचरिमान्ते मारणान्तिकसमुद्घातेन गतानामेव तत्र देश एव संभवति न देशाः तस्यैकप्रतररूपत्वेन देशानेकत्वाहेतुत्वादिति तेषां तत्तत्र मध्यमरहितमेवेति, अत एवाह–'नवरं देसे' इत्यादि, 'चत्तारि चरमांत' त्ति पूर्वपश्चिमदक्षिणोत्तररूपाः 'उवरिमहेट्ठिल्ला जहा रयणप्पभाए हेट्ठिल्ले' त्ति शर्कराप्रभाया उपरितनाधस्तनचरमान्तौ रत्नप्रभाया उपरितनाधस्तनचरमान्तवद्वाच्यौ, द्वीन्द्रियादिषु पूर्वोक्तयुक्तेर्मध्यमभङ्गरहितं पञ्चेन्द्रियेषु तु परिपूर्णं देशभङ्गकत्रयं, प्रदेशचिन्तायां तु द्वीन्द्रियादिषु सर्वेष्वाद्यभङ्गकरहितत्वेन शेषभङ्गकद्वयं, अजीवचिन्तायां तु रूपिणां चतुष्करूपिणां त्वद्धासमयस्य तत्राभावेन षट्कं वाच्यमिति भावः।

अथ शर्कराप्रभातिदेशेन शेषपृथिवीनां सौधर्मादिदेवलोकानां ग्रैवेयकविमानानां च प्रस्तुतवक्तव्यतामाह–'एवं जाव अहेसत्तमाए' इत्यादि, ग्रैवेयकविमानेषु तु यो विशेषस्तं दर्शयितुमाह–'नवर' मित्यादि, अच्युतान्तदेवलोकेषु हि देवपञ्चेन्द्रियाणां गमागमसद्भावात् उपरितनाधस्तनचरमान्तयोः पञ्चेन्द्रियेषु देशानाश्रित्य भङ्गकत्रयं संभवति, ग्रैवेयकेषु विमानेषु तु देवपञ्चेन्द्रियगमागमाभावाद् द्वीन्द्रियादिष्विव पञ्चेन्द्रियेष्वपि मध्यमभङ्गकरहितं शेषभङ्गकद्वयं तयोर्भवतीति।

चरमाधिकारादेवेदमपरमाह–

१६/११६. 'परमाणु' इत्यादि, इदं च गमनसामर्थ्यं परमाणोस्तथास्वभावत्वादिति मन्तव्यमिति।

अनन्तरं परमाणोः क्रियाविशेष उक्त इति क्रियाधिकारादिदमाह–

१६/११७. 'पुरिसे ण मित्यादि, 'वासं वासइ' वर्षो–मेघो वर्षति नो वा वर्षो वर्षतीति ज्ञापनार्थमिति शेषः, अचक्षुरालोके हि वृष्टिराकाशे हस्तादिप्रसारणादेव गम्यते इतिकृत्वा हस्तादिकं आकुण्टयेद्वा प्रसारयेद्वाऽऽदित एवेति।

आकुण्टनादिप्रस्तावादिदमाह–

१६/११८,११९. 'देवे ण' मित्यादि, 'जीवाणं आहारोवचिया पोग्गल' त्ति जीवानां जीवानुगता इत्यर्थः आहारोपचिता–आहाररूपतयोपचिताः 'बोंदिचिया पोग्गल' त्ति अव्यक्तावयवशरीररूपतया चिताः 'कडेवरचिया पोग्गल' त्ति शरीररूपतया चिताः, उपलक्षणत्वाच्चास्य उच्छ्वासचिताः पुद्गला इत्याद्यपि द्रष्टव्यं, अनेन चेदमुक्तं–जीवानुगामिस्वभावाः पुद्गला भवन्ति, ततश्च यत्रैव क्षेत्रे जीवास्तत्रैव पुद्गलानां गतिः स्यात्, तथा 'पुग्गलामेव पप्प' त्ति पुद्गलानेव 'प्राप्य' आश्रित्य जीवानां च 'अजीवाण य' पुद्गलानां च गतिपर्यायो–गतिधर्मः 'आहिज्जइ' त्ति आख्यायते, इदमुक्तं भवति–यत्र क्षेत्रे पुद्गलास्तत्रैव जीवानां पुद्गलानां च गतिर्भवति, एवं चालोके नैव सन्ति जीवा नैव च सन्ति पुद्गला इति तत्र जीवपुद्गलानां गतिर्नास्ति, तदभावाच्चालोके देवो हस्ताद्याकुण्टयितुं प्रसारयितुं वा न प्रभुरिति॥

षोडशशतेऽष्टमः॥१६-८॥

नवम उद्देशकः

अष्टमोद्देशके देववक्तव्यतोक्ता, नवमे तु बलेर्देवविशेषस्य सोच्यते इत्येवंसम्बन्धस्यास्येदमादिसूत्रम्–

१६/१२१. 'कहि ण' मित्यादि, 'जहेव चमरस्स' त्ति यथा चमरस्य द्वितीयशताष्टमोद्देशकाभिहितस्य सुधर्म्मसभास्वरूपाभिधायकं सूत्रं तथा बलेरपि वाच्यं, तच्च तत एवावसेयम्, 'एवं पमाणं जहेव तिगिच्छिकूडस्स' त्ति यथा चमरसत्कस्य द्वितीयशताष्टमोद्देशकाभिहितस्यैव तिगिच्छिकूटाभिधानस्योत्पातपर्वतस्य प्रमाणमभिहितं तथाऽस्यापि रुचकेन्द्रस्य वाच्यं, एतदपि तत एवावसेयं, 'पासायवडेंसगस्सवि तं चेव पमाणं' ति यत्प्रमाणं चमरसम्बन्धिनस्तिगिच्छिकूटाभिधानोत्पातपर्वतोपरिवर्त्तिनः प्रासादावतंसकस्य तदेव बलिसत्कस्यापि रुचकेन्द्राभिधानोत्पातपर्वतोपरिवर्त्तिनस्तस्य, तदपि द्वितीयशतादेवावसेयं, 'सिंहासणं सपरिवारं बलिस्स परिवारेणं' ति प्रासादावतंसकमध्यभागे सिंहासनं बलिसत्कं बलिसत्कपरिवारसिंहासनोपेतं वाच्यमित्यर्थः तदपि द्वितीयशताष्टमोद्देशकविवरणोक्तचमरसिंहासनन्यायेन वाच्यं, केवलं तत्र चमरस्य सामानिकासनानां चतुःषष्टिः सहस्राणि आत्मरक्षासनानां तु तान्येव चतुर्गुणान्युक्तानि बलेस्तु सामानिकासनानां षष्टिः सहस्राणि आत्मरक्षासनानां तु तान्येव चतुर्गुणानीत्येतावान् विशेषः, 'अट्ठो तहेव नवरं रुयगिंदप्पमाइं' ति यथा तिगिच्छिकूटस्य नामान्वर्थाभिधायकं वाक्यं तथाऽस्यापि वाच्यं, केवलं तिगिच्छिकूटान्वर्थप्रश्नस्योत्तरे यस्मात्तिगिच्छिप्रभाण्युत्पलादीनि तत्र सन्ति तेन तिगिच्छिकूट इत्युच्यत इत्युक्तं इह तु रुचकेन्द्रप्रभाणि तानि सन्तीति वाच्यं, रुचकेन्द्रस्तु रत्नविशेष इति, तत्पुनरर्थतः सूत्रमेवमध्येयं–'से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ रुयगिंदे २ उप्पायपव्वए?, गोयमा! रुयगिंदे णं बहूणि उप्पलाणि पउमाइं कुमुयाइं जाव रुयगिंदवण्णाइं रुयगिंदलेसाइं रुयगिंदप्पभाइं, से तेणट्ठेणं रुयगिंदे २ उप्पायपव्वए' त्ति 'तहेव जाव' त्ति यथा चमरचञ्चाव्यतिकरे सूत्रमुक्तमिहापि तथैव वाच्यं, तच्चेदं–'पणपन्नं कोडीओ पन्नासं च सयसहस्साइं पन्नासं च सहस्साइं वीइवइत्ता इमं च रयणप्पभं पुढविं' ति 'पमाणं तहेव' त्ति यथा चमरचञ्चायाः, तच्चेदम्–'एगं जोयणसयसहस्सं आयामविक्खंभेणं तिन्नि जोयणसयसहस्साइं सोलस य सहस्साइं दोन्नि य सत्तावीसे जोयणसए तिन्नि य कोसे अट्ठावीसं च धणुसयं तेरस य अंगुलाइं अद्धंगुलयं च किंचिविसेसाहियं परिक्खेवेणं पण्णत्तं' 'जाव बलिपेढस्स' त्ति नगरीप्रमाणाभि-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धानानन्तरं प्राकारतद्द्वारोपकारिकालयनप्रासादावतंसकसुधर्मसभाचैत्यभवनोपपातसभाह्रदाभिषेकसभाऽलङ्कारिकसभाव्यवसायसभादीनां प्रमाणं स्वरूपं च तावद्वाच्यं यावद्बलिपीठस्य, तच्च स्थानान्तरादवसेयं, 'उववाओ' त्ति उपपातसभायां बलेरुपपातवक्तव्यता वाच्या, सा चैवं–'तेणं कालेणं तेणं समएणं बली वइरोयणिंदे २ अहुणोववन्नमेत्तए समाणे पंचविहाए पज्जत्तीए पज्जत्तिभावं गच्छइ' इत्यादि, 'जाव आयरक्ख' त्ति इह यावत्करणादभिषेकोऽलङ्कारग्रहणं पुस्तकवाचनं सिद्धायतनप्रतिमाद्यर्चनं सुधर्म्मसभागमनं तत्रस्थस्य च तस्य सामानिका अग्रमहिष्यः पर्षदोऽनीकाधिपतयः आत्मरक्षाश्च पार्श्वतो निषीदन्तीति वाच्यं। एतद्वक्तव्यताप्रतिबद्धसमस्तसूत्रातिदेशायाह–'सव्वं तहेव निरवसेसं' ति, सर्वथा साम्यपरिहारार्थमाह–'नवर' मित्यादि, अयमर्थः–चमरस्य सागरोपमं स्थितिः प्रज्ञप्तेत्युक्तं बलेस्तु सातिरेकं सागरोपमं स्थितिः प्रज्ञप्तेति वाच्यमिति॥

षोडशशते नवमः॥१६-९॥

दशम उद्देशकः

नवमोद्देशके बलेर्वक्तव्यतोक्ता, बलिश्चावधिमानित्यवधेः स्वरूपं दशमे उच्यत–इत्येवंसम्बन्धस्यास्येदमादिसूत्रम्–

१६/१२३. 'कइविहे णं' मित्यादि, 'ओहीपयं' ति प्रज्ञापनायास्त्रयस्त्रिंशत्तमं, तच्चैवं–'तं जहा–भवपच्चइया खओवसमिया य, दोण्हं भवपच्चइया, तं जहा–देवाण य नेरइयाण य, दोण्हं खओवसमिया, तं जहा–मणुस्साणं पंचिंदियतिरिक्खजोणियाण य, इत्यादीति।

षोडशशते दशमः॥१६-१०॥

एकादशम उद्देशकः

दशमेऽवधिरुक्तः, एकादशे त्ववधिमद्विशेष उच्यते–इत्येवंसम्बन्धस्यास्येदमादिसूत्रम्–

१६/१२५. 'दीवे' त्यादि।

एवमन्यदप्युद्देशकत्रयं पाठयितव्यमिति॥

षोडशशतं वृत्तितः परिसमाप्तमिति॥

सम्यक्श्रुताचारविवर्जितोऽप्यहं, यदप्रकोपात्कृतवान् विचारणाम्।
अविघ्नमेतां प्रति षोडशं शतं, वाग्देवता सा भवताद्वरप्रदा॥१॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिशिष्ट-६

आधारभूत ग्रंथ-सूची

ग्रंथ का नाम	लेखक/संपादक/अनुवादक वाचनाप्रमुख/प्रवाचक आदि	संस्करण	प्रकाशक	भाष्य में प्रयुक्त स्थल
१. अंगसुत्ताणि, भाग-२	वा. प्र. आचार्य तुलसी सं. आचार्य महाप्रज्ञ	सन् १९९२	जैन विश्व भारती लाडनूं (राजस्थान)	१५/३,१६०
२. अंगुत्तर निकाय	सं. भिक्खु जगदीश कस्सपो	सन् १९६०	पालि प्रकाशन मंडल, बिहार	१५/आमुख, १४२
३. अणुओगदाराइं (मूलपाठ, संस्कृत छाया, हिन्दी अनुवाद तथा तुलनात्मक टिप्पण)	वा. प्र. गणाधिपति तुलसी सं. आचार्य महाप्रज्ञ	सन् १९९७	जैन विश्व भारती लाडनूं (राजस्थान)	१२/४९-५२; १४/८०-८१
४. अनुकंपा की चौपाई भिक्षु ग्रंथ रत्नाकर, प्रथम खंड	रचयिता–आचार्य भिक्षु सं. आचार्य तुलसी	सन् १९६०	श्री जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा, कोलकाता	१५/६५-६६
५. अनुयोगद्वार चूर्णि	कर्ता–जिनदास महत्तर	सन् १९२८	श्री ऋषभदेव केशरीमल श्वेताम्बर संस्था, रतलाम	१६/६-७
६. अभिधान चिन्तामणिः (नाममाला)	कर्ता–आचार्य हेमचन्द्र	वि.सं. २०२०	चौखंबा विद्या भवन वाराणसी	१२/१२५-१२६; १५/२६
७. अभिधान चिंतामणि स्वोपज्ञ टीका	कर्ता–श्री हेमचन्द्राचार्य सं. शास्त्रविशारद जैनाचार्य श्री विजयधर्मसूरि	वी.नि. २४४१	नथमल लक्ष्मीचंद वकील	१२/१२५-१२६
८. अमितगति श्रावकाचार	रचयिता–आचार्य अमितगति	सन् १९७९	मुनिश्री अनन्तकीर्ति दिगम्बर जैन ग्रंथमाला, कालबा देवी रोड, मुंबई	१५/२६
९. अर्हत् वचन (लेख–मांसाहार : एक विवेचन)	लेखक आचार्य महाप्रज्ञ	सन् २००१	कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर	१५/१५२-१५५
१०. अष्टांग संग्रह	टीकाकार–वैद्य पं. लालचंद्र शास्त्री	सन् १९६५	वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि.	१२/१५४-१५८; १५/१५२-१५५
११. आगम युग का जैन दर्शन	ले. पं दलसुख मालवणिया	द्वि. संस्करण सन् १९९०	प्राकृत भारती अकादमी, जयपुर श्री जै.श्वे. नाकोड़ा पार्श्वनाथ तीर्थ, मेवा नगर	१२/आमुख
१२. आचारांग चूर्णि	श्री जिनदास गणि	सन् १९४१	श्री ऋषभदेवजी केशरीमल जी श्वे. रतलाम (मालवा)	१५/५३-५६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ग्रंथ का नाम	लेखक/संपादक/अनुवादक वाचनाप्रमुख/प्रवाचक आदि	संस्करण	प्रकाशक	भाष्य में प्रयुक्त स्थल
१३. आचारांगभाष्यम्	वा. प्र. आचार्य तुलसी भाष्यकार. आचार्य महाप्रज्ञ अनुवादक मुनि दुलहराज	सन् १९९४	जैन विश्व भारती लाडनूं (राजस्थान)	१३/आमुख; १५/५३-५६
१४. आयारचूला (अंगसुत्ताणि भाग-१)	वा. प्र. आचार्य तुलसी सं. मुनि नथमल	सन् १९७४	जैन विश्व भारती लाडनूं (राजस्थान)	१५/१४१; १६/४८-४९
१५. आयारो (मूलपाठ, अनुवाद तथा टिप्पण)	वा. प्र. आचार्य तुलसी सं. मुनि नथमल	वि. सं. २०३१	जैन विश्व भारती लाडनूं (राजस्थान)	१४/६७-६९; १५/५३-५६,१४१
१६. आराधना	प्र.सं. आचार्य महाप्रज्ञ	सन्१९९७	जैन विश्व भारती लाडनूं	१६/५१-५२
१७. आवश्यक चूर्णि	कर्ता–श्री जिनदासगणि	सन् १९२९	श्री ऋषभदेवजी केशरीमलजी श्वेताम्बर संस्था, रतलाम (मालवा)	१५/५३-५६ (भा.) ७३,१४१,१४२
१८. उत्तरज्झयणाणि (मूलपाठ, संस्कृत छाया) हिन्दी अनुवाद तथा तुलनात्मक टिप्पण	वा. प्र. आचार्य तुलसी सं. युवाचार्य महाप्रज्ञ	द्वि. संस्करण सन् १९९२	जैन विश्व भारती संस्थान लाडनूं (राजस्थान)	१२/४-५,२८-२५,३०; १३/आमुख, ५५-६०, ८४-८५; १४/१,५४-५५,७७; १६/२८-३१, ५१-५२
१९. उत्तराध्ययन : एक समीक्षात्मक अध्ययन	वा. प्र. आचार्य तुलसी सं. मुनि नथमल	सन् १९६८	श्री जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा, कोलकाता	१५/आमुख
२०. उत्तराध्ययन वृत्ति	शान्त्याचार्य	सन् १९७२	देवचंद लालभाई जैन पुस्तकोद्धार, बंबई	१३/३
२१. उत्तराध्ययन वृत्ति	कर्ता–लक्ष्मीवल्लभ			१५/१२१
२२. उत्तराध्ययन सुखबोध टीका	आचार्य नेमिचंद	वि.सं. २४६७	पुष्पचंद खेमचंद, बलाद	१३/आमुख
२३. उवासगदसाओ (अंग सुत्ताणि, भाग-३)	वा. प्र. आचार्य तुलसी सं. मुनि नथमल	सन् १९७४	जैन विश्व भारती लाडनूं (राजस्थान)	१२/४-५; १५/आमुख, १४२
२४. ओववाइयं (उवंगसुत्ताणि, भाग-४, खंड १)	वा. प्र. आचार्य तुलसी सं. युवाचार्य महाप्रज्ञ	सन् १९८७	जैन विश्व भारती लाडनूं (राजस्थान)	१२/३२,१७८-१८२; १४/१०७-११२; १५/आमुख
२५. औपपातिक वृत्ति	चन्द्रकुलीन श्री अभयदेवसूरि	सन् १९९४	पं. भूरालाल कालिदास	१४/१०७-११२
२६. कर्मग्रंथ (भाग ५)	कर्ता–देवेन्द्र सूरि	सन् १९७६	श्री वर्द्धमान स्थानकवासी जैन धार्मिक शिक्षा समिति	१४/७२-७३
२७. कल्पसूत्र (कप्पो, नवसुत्ताणि भाग-५	वा. प्र. आचार्य तुलसी सं. युवाचार्य महाप्रज्ञ	सन् १९८७	जैन विश्व भारती लाडनूं (राजस्थान)	१५/१४२
२८. कैयदेव निघण्टु	सं.–आचार्य प्रियव्रत शर्मा तथा डॉ. गुरु प्रसाद शर्मा	सन् १९७९	चौखम्भा ओरियन्टालिया, वाराणसी	१५/१५२-१५५
२९. गोसाला री चौपई (भिक्षु ग्रंथ रत्नाकर)	रचियता–आचार्य भिक्षु सं.–आचार्य तुलसी	सन् १९६०	श्री जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा, कोलकाता	१५/६५-६६,१२०, १४२
३०. चरक संहिता	महर्षि चरक	चतु.संस्करण सन् १९८९	चौखम्भा भारती अकादमी वाराणसी	१४/१६-२०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ग्रंथ का नाम	लेखक/संपादक/अनुवादक वाचनाप्रमुख/प्रवाचक आदि	संस्करण	प्रकाशक	भाष्य में प्रयुक्त स्थल
३१. जंबुद्दीवपण्णत्ती (उवंग सुत्ताणि, भाग-४, खण्ड २)	वा. प्र. आचार्य तुलसी सं. युवाचार्य महाप्रज्ञ	सन् १९८८	जैन विश्व भारती लाडनूं (राजस्थान)	१२/१६३-१६८
३२. जनार्दन भट्ट, अशोक के धर्मलेख	अशोक	सन् १९८७	पब्लिकेशन्स डिवीजन, दिल्ली	१५/आमुख
३३. जीवाजीवाभिगमे (उवंगसुत्ताणि भाग-४, खंड-१)	वा. प्र. आचार्य तुलसी सं. युवाचार्य महाप्रज्ञ	सन् १९८८	जैन विश्व भारती लाडनूं (राजस्थान)	१३/३,४५,४६; १६/८-१६,२०-२६
३४. जैन आगम वनस्पति कोश	वा. प्र. आचार्य तुलसी प्र. सं आचार्य महाप्रज्ञ सं. मुनिश्री श्रीचंद 'कमल'	सन् १९९६	जैन विश्व भारती, लाडनूं (राजस्थान)	१३/१४९-१६६; १५/१५२-१५५
३५. जैन दर्शन और विज्ञान	मुनि महेन्द्रकुमार एवं जेठालाल जवेरी	द्वि. सं. २००२	जैन विश्व भारती संस्थान (मान्य विश्वविद्यालय) लाडनूं (राज.)	१५/७३
३६. जैनेन्द्र सिद्धांत कोश	सं. क्षु. जिनेन्द्रवर्णी	सन् १९४४	भारतीय ज्ञान पीठ, नई दिल्ली	१२/४-६; १३/१४९-१६६; १५/२६
३७. ठाणं (मूल पाठ, संस्कृत छाया, हिन्दी अनुवाद तथा टिप्पण)	वा. प्र. आचार्य तुलसी सं. युवाचार्य महाप्रज्ञ	वि. सं. २०३३	जैन विश्व भारती लाडनूं (राजस्थान)	१२/२२-२५,५५-५८, ६९-८०,१२४,१५४-१५८,१६३-१६८; १३/आमुख, ७२-७३,१४९-१६६; १४/आमुख; १६-२०,२१-२४,८०-८१; १५/आमुख, २६,१४२; १६/१-४,८-१६,५४-५५
३८. तत्त्वार्थ राजवार्तिक	कर्ता भट्ट अकलंक देव सं. पं. महेन्द्र कुमार जैन	वि.सं.२००९	भारतीय ज्ञानपीठ काशी, दुर्गा कुंड रोड, बनारस-४	१२/४-५,१६/११६
३९. तत्त्वार्थ सूत्र	कर्ता–उमास्वाति	वि.सं.१९८९	सेठ मणीलाल रेवाशंकर जगजीवन जौहरी,बंबई-२	१२/६९-८०;१३/५५-६०; १४/११३-११६
४०. तत्त्वार्थ सूत्राधिगम भाष्य वृत्ति (भाष्यानुसारिणी)	टीकाकार सिद्धसेन गणि	सन् १९२६	देवचन्द्र लालभाई जैन पुस्तकोद्धार फंड, बंबई	१२/६९-८०,१०२-१०७,१६३-१६८; १४/३,५१,८४-८८,११३-११६; १६/२०-२६
४१. तीर्थंकर वर्धमान : जीवन प्रसंग	श्रीचन्द रामपुरिया	सन् २०००	जैन विश्व भारती, लाडनूं	१५/१४२
४२. त्रिषष्टिशलाकापुरुष-चरित्रम्	लेखक हेमचन्द्राचार्य	वि.सं. १९९२	श्री जैन आत्मानन्द सभा, भावनगर (काठियावाड़)	१५/१४२
४३. दर्शनसार				१५/आमुख
४४. दशवैकालिक चूर्णि	कर्ता–जिनदास महत्तर	सन् १९३३	श्री ऋषभदेव केशरीमल श्वे. संस्था, रतलाम	१५/५३-५६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ग्रंथ का नाम	लेखक/संपादक/अनुवादक वाचनाप्रमुख/प्रवाचक आदि	संस्करण	प्रकाशक	भाष्य में प्रयुक्त स्थल
४५. दशवैकालिक निर्युक्ति हारिभद्रीय टीका	आचार्य भद्रबाहु		देवचन्द्र लाल भाई, जैन पुस्तकोद्धार फंड	१५/आमुख
४६. दसवेआलियं (मूलपाठ, संस्कृत छाया, हिन्दी अनुवाद तथा टिप्पण)	वा. प्र. आचार्य तुलसी सं. युवाचार्य महाप्रज्ञ	सन् १९७४	जैन विश्व भारती, लाडनूं (राजस्थान)	१५/५७-५८,१४२
४७. दीघनिकाय	सं. भिक्षु जगदीश काश्यप	सन् १९५६	नवनालंदा महाविहार (नालंदा)	१५/आमुख, १४२
४८. धम्मपद (अट्ठकथा)	आचार्य बुद्धघोष	सन् १९७६	नवनालंदा महाविहार	१५/आमुख
४९. धवला	वीरसेनाचार्य	सन् १९४२	सेठ शीतलराय लक्ष्मीचंद्र, अमरावती	१४/५१
५०. नंदी (नवसुत्ताणि भाग-५)	वा. प्र. आचार्य तुलसी सं. युवाचार्य महाप्रज्ञ	सन् १९९७	जैन विश्व भारती, लाडनूं (राजस्थान)	१२/१०८-१११;१३/५५-६०; १५/आमुख
५१. नयचक्र (लिखित प्रति)	ले. माइल्ल धवल सं. पं. कैलाश चन्द्र शास्त्री	सन् १९७१	भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन,नई दिल्ली	१२/२११-२१५
५२. नायाधम्मकहाओ (अंगसुत्ताणि भाग-३)	वा. प्र. आचार्य तुलसी सं. युवाचार्य महाप्रज्ञ	सन् १९८१	जैन विश्व भारती, लाडनूं (राजस्थान)	१५/२६
५३. नव सुत्ताणि	वा. प्र. आचार्य तुलसी सं. युवाचार्य महाप्रज्ञ	सन् १९९७	जैन विश्व भारती, लाडनूं (राजस्थान)	१२/३०; १५/५३-५६
५४. निरयावलिया	वा. प्र. गणाधिपति तुलसी सं. आचार्य महाप्रज्ञ	सन् २००२	जैन विश्व भारती, लाडनूं (राजस्थान)	१५/१२१
५५. निसीह (नवसुत्ताणि भाग-५)	वा. प्र. आचार्य तुलसी सं. युवाचार्य महाप्रज्ञ	सन् १९८७	जैन विश्व भारती, लाडनूं (राजस्थान)	१५/आमुख, १४२; १६/४८-४९
५६. पज्जोवसणाकप्पो (नवसुत्ताणि भाग-५)	वा. प्र. आचार्य तुलसी सं. युवाचार्य महाप्रज्ञ	सन् १९८७	जैन विश्व भारती, लाडनूं (राजस्थान)	१५/५३-५६ (भा.)
५७. पण्णवणा (उवंगसुत्ताणि भाग-४, खंड-२)	वा. प्र. आचार्य तुलसी सं. युवाचार्य महाप्रज्ञ	सन् १९८९	जैन विश्व भारती, लाडनूं (राजस्थान)	१२/१३३-१५२, १६९-१७७,१८५-१९०, १९२-१९६; १३/आमुख, ३,२८, ३१; १४/आमुख, १, ७१, ७२-७३, ११७-१२१, १३६; १५/१५२-१५५; १६/५
५८. पण्हावागरणाइं (अंग सुत्ताणि, भाग-३)	वा. प्र. आचार्य तुलसी सं. मुनि नथमल	सन् १९९४	जैन विश्व भारती, लाडनूं (राजस्थान)	१२/१०२-१०७
५९. पाइयसद्दमहण्णवो	स्व. पंडित हरगोविन्ददास त्रिकमचंद सेठ	द्वि. संस्करण सन् १९६३	प्राकृत ग्रंथ परिषद् वाराणसी	१६/३५-४०
६०. पाणिनीकालीन भारतवर्ष	वासदेवशरण अग्रवाल	सं २०२२	मोतीलाल बनारसीदास, बनारस	१५/आमुख

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ग्रंथ का नाम	लेखक/संपादक/अनुवादक वाचनाप्रमुख/प्रवाचक आदि	संस्करण	प्रकाशक	भाष्य में प्रयुक्त स्थल
६१. पातञ्जलयोगदर्शनम् (व्यास भाष्य सहित)	कर्ता–महर्षि पातञ्जलि व्याख्याकार–श्रीमद् स्वामी हरिहरानन्द आरण्य	सन् १९७४	मोतीलाल बनारसीदास दिल्ली-पाटन-वाराणसी	१४/८४-८८
६२. प्रज्ञापना वृत्ति	कर्ता–श्रीमन्मलयगिर्याचार्य	सन् १९१८	आगमोदय समिति, मेहसाणा, गुजरात	१४/आमुख
६३. प्रमाण नयतत्त्वलोक	कर्ता–वादिदेव सूरि सं. हिमांशुविजय	सन् १९८९	विजयधर्म सूरि ग्रंथमाला, उज्जैन	१२/२११-२१५
६४. प्राचीन भारतवर्ष	सत्यकेतु विद्यालंकार	सन् १९९४	सरस्वती सदन, दिल्ली	१३/आमुख
६५. बौद्ध धर्म-दर्शन	आचार्य नरेन्द्रदेव			१५/१४२
६६. भगवई (खण्ड १,२)	प्र.वा. आचार्य तुलसी सं. युवाचार्य महाप्रज्ञ	सन् १९९४ सन् २०००	जैन विश्व भारती, लाडनूं (राजस्थान)	अनेक स्थानों पर
६७. भगवती जोड़ (खंड १-७)	कर्ता–जयाचार्य प्रवाचक आचार्य तुलसी प्रधान सं. युवाचार्य महाप्रज्ञ सं. साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा	संस्करण सन् १९८१ से १९९७	जैन विश्व भारती, लाडनूं (राजस्थान)	अनेक स्थानों पर
६८. भगवती वृत्ति (प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट)	कर्ता–अभयदेवसूरि	सन् १९१९	आगमोदय समिति, बंबई	अनेक स्थानों पर
६९. भारतीय धर्म और दर्शन	ले. आचार्य बलदेव उपाध्याय	सन् २०००	चौखम्भा	१५/आमुख
७०. भारतीय संस्कृति और उसका इतिहास	कौशाम्बी धर्मानन्द	सन् १९४८	हिन्दी ग्रंथ रत्नाकर कार्यालय बम्बई	१५/१४२ (भा.)
७१. भिक्षु विचार दर्शन	ले. आचार्य महाप्रज्ञ	सन् २००३	जैन विश्व भारती, लाडनूं (राजस्थान)	१५/२६,६५-६६
७२. भिक्षुशब्दानुशासनम्	ले. मुनिश्री चौथमलजी तथा आयुर्वेदाचार्य पंडित श्री रघुनन्दन शर्मा	सन् १९८२	आदर्श साहित्य संघ, सरदारशहर	१२/१२५-१२६
७३. भिक्षुशब्दानुशासनम् उणादि प्रकरणम्	सं. मुनि राजेन्द्र कुमार	सन् २००१	जैन विश्व भारती, लाडनूं (राजस्थान)	१२/१२०
७४. भ्रमविध्वंसनम्	कर्ता–श्रीमद् जयाचार्य	सन् १९२३	श्री जैन श्वेतांबर तेरापंथी महासभा, कोलकाता	१५/६५-६६
७५. मज्झिमनिकाय, सन्दक सुत्त	सं. भिक्खु जगदीस कस्सपो	सं २०१५	पालि प्रकाशन मंडल, बिहार	१५/१४२
७६. महावीर कथा	ले. गोपालदास पटेल			१५/१४२
७७. महासच्चकसुत्तं				१४/१४२
७८. राजप्रश्नीय वृत्ति	कर्ता–मलयगिरी	वि.स. १९९४	शंभुलाल जगदीशशाह, गुर्जर ग्रंथ रत्न कार्यालय, अहमदाबाद	१३/९८
७९. राजस्थानी शब्द कोश	सं. सीताराम लाळस	द्वितीय सं.	राजस्थान शोध संस्थान, जोधपुर	१५/१७९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ग्रंथ का नाम	लेखक/संपादक/अनुवादक वाचनाप्रमुख/प्रवाचक आदि	संस्करण	प्रकाशक	भाष्य में प्रयुक्त स्थल
८०. विनयपिटक, चुल्लवग्ग	अनुवाद–राहुल सांकृत्यायन	सन् १९३५	महाबोधि सभा, सारनाथ, बनारस	१५/१४२
८१. विशेषावश्यक भाष्य	कर्ता–श्री जिनभद्रगणी क्षमाश्रमण	सन् १९८६	दिव्य दर्शन कार्यालय, कालुशा नी पोल, कालुपुर रोड, अहमदाबाद	१३/५५-६०
८२. वीर	डॉ. कामता प्रसाद	वर्ष ३, अंक १२-१३		१५/१४२
८३. व्यवहार भाष्य	वा. प्र. आचार्य तुलसी सं. युवाचार्य महाप्रज्ञ	सन् १९९६	जैन विश्व भारती, लाडनूं (राजस्थान)	१४/८२-८३
८४. व्यवहार सूत्र (चतुर्थ विभाग)	आचार्य भद्रबाहु	सं. १९८२	जैन श्वेताम्बर संघ, भावनगर	१४/८२-८३
८५. व्रताव्रत की चौपाई (भिक्षु ग्रंथ रत्नाकर)	रचयिता–आचार्य भिक्षु सं. आचार्य तुलसी	सन् १९६०	जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा, कोलकाता	१५/२६
८६. शब्दकल्पद्रुम (भाग-५)	देवा राधाकान्त	सन् १९८८	दिल्ली नाग पब्लिशर	१२/१२५-१२६
८७. शान्त्याचार्य की बृहद्वृत्ति	वादिवेताल श्री शान्ति सूरि	संस्करण १९७२-७३	श्री देवेन्द्रलाल भाई जैन पुस्तकोद्धार भाण्डागार संस्था, मुंबई	१२/३०
८८. श्रमण महावीर	ले. आचार्य महाप्रज्ञ	सन् २००१	जैन विश्व भारती, लाडनूं (राजस्थान)	१५/२,५३-५६,१४१
८९. श्रीभिक्षु आगम विषय कोश, भाग-१	वा. प्र. गणाधिपति तुलसी सं. आचार्य महाप्रज्ञ	सन् १९९६	जैन विश्व भारती, लाडनूं (राजस्थान)	१३/आमुख, ३
९०. श्लोकवार्तिक	सं. शास्त्री द्वारिकादास	सन् १९७८	तारा पब्लिकेशन, बाराणसी	१४/५१
९१. संयुत्तनिकाय	भिक्षु जगदीश काश्यप	सं. १९५४	महाबोधि सभा, सारनाथ, बनारस	१५/१४२
९२. समयसार	आचार्य कुन्दकुन्द	सन् १९९७	अहिंसा मंदिर प्रकाशन दिल्ली	१६/४१-४२
९३. समवाओ (मूलपाठ, संस्कृत छाया, हिन्दी अनुवाद, टिप्पण आदि)	वा. प्र. आचार्य तुलसी सं. युवाचार्य महाप्रज्ञ	सन् १९८४	जैन विश्व भारती, लाडनूं (राजस्थान)	१२/१०२-१०७; १३/आमुख; १५/आमुख
९४. सर्वार्थसिद्धि	कर्ता–आचार्य पूज्यपाद, सं. पं. फूलचन्द सिद्धांत शास्त्री	सन् १९७१	भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली	१४/११३-११६
९५. सामञ्ञफलसुत्त				१५/आमुख, १४२
९६. सूयगडो (मूलपाठ, संस्कृत छाया, हिन्दी अनुवाद, टिप्पण तथा परिशिष्ट)	वा. प्र. आचार्य तुलसी सं. विवेचक युवाचार्य महाप्रज्ञ	(भाग-१) सन् १९८४ (भाग-२) सन् १९८६	जैन विश्व भारती, लाडनूं (राजस्थान)	१२/४-५,५३-५४, १०२-१०७; १४/८४-८८; १५/आमुख
९७. सूरपण्णत्ती (उवंगसुत्ताणि, भाग-४, खण्ड-२)	वा. प्र. आचार्य तुलसी सं. युवाचार्य महाप्रज्ञ	सन् १९८९	जैन विश्व भारती, लाडनूं (राजस्थान)	१२/१२५-१२६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ग्रंथ का नाम	लेखक/संपादक/अनुवादक वाचनाप्रमुख/प्रवाचक आदि	संस्करण	प्रकाशक	भाष्य में प्रयुक्त स्थल
९८. सूर्यप्रज्ञप्ति वृत्ति		सन् १९१९	आगमोदय समिति, बंबई	१२/१२३
९९. स्थानांग वृत्ति	कर्ता–अभयदेवसूरि	सन् १९३७	सेठ माणेकलाल चुन्नीलाल, अहमदाबाद	१२/१५४-१५८; १४/१०७-११२
100. Ajivika sect-A new interpretation	Dr. A.S. Gopani	1941		१५/१४२
101. (Apte's) Sanskrit English Dictionary	V. S. Apte	Revised and enlarged edition 1957	Prasad Prakashan Pune	१५/१२०
102. Encyclopaedia of Religions and Ethics	James Hastings	1971	T&T Clark, New York	१५ आमुख, १४२
103. History and Doctrines of Ajivikas	डॉ. सत्यरंजन बनर्जी, Foreword to A. l. Basham,s.....	2002	Motilal Banarsidass, Delhi	१५/आमुख, १४२
104. Life of Buddha	E. J. Thomas			१५/१४२
105. Monier Williams Sanskrit English Dictionary	Monier Williams	1970	Motilal Banarsidass, Delhi	१५/१२०
106. New Concepts in Botany	Dr. Archna Jain			१५/१५२-१५५
107. Political history of ancient India	Raychaudhuri,H.C.	4th edition 1938	Calcutta	१३/आमुख
108. Pre-Buddhistic Indian Philosophy	B. M. Barua	1921	Calcutta	१५/१४२
109. Sacred Books of The East, Vol. XIV, Introduction PXXX	Translated by Herman Jacobi	1895	Oxford	१५/आमुख
110. The Book of Gradual Saying, Vol.I				१५/१४२
111. Uvasagdasao, Appendices I,II	A.F.R.Hoernle			१५/१४२
112. Viyah Panntti	डॉ. सत्यरंजन बनर्जी, Foreword to Jozef deleu	1970	De Temple Brudgge	१५/१४२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वाचना-प्रमुख : आचार्य तुलसी
संपादक : भाष्यकार : आचार्य महाप्रज्ञ

युगप्रधान आचार्यश्री तुलसी (१९१४–१९९७) के वाचना-प्रमुखत्व में सन् १९५५ में आगम-वाचना का कार्य प्रारम्भ हुआ, जो सन् ४५३ में देवर्धिगणी क्षमाश्रमण के सान्निध्य में हुई संगति के पश्चात् होनेवाली प्रथम वाचना थी। सन् २००७ तक ३२ आगमों के अनुसंधानपूर्ण मूलपाठ संस्करण और ११ आगम संस्कृत छाया, हिन्दी अनुवाद एवं टिप्पण सहित प्रकाशित हो चुके हैं। आयारो (आचारांग का प्रथम श्रुतस्कंध) मूल पाठ, संस्कृत छाया, हिन्दी-संस्कृत भाष्य एवं भाष्य के हिन्दी अनुवाद से युक्त प्रकाशित हो चुका है। आचारांग-भाष्य तथा भगवई खंड-१ का अंग्रेजी संस्करण भी प्रकाशित हो गया है।

इस वाचना के मुख्य सम्पादक एवं विवेचक (भाष्यकार) हैं-आचार्यश्री महाप्रज्ञ (मुनि नथमल/युवाचार्य महाप्रज्ञ) (जन्म १९२०) जिन्होंने अपने सम्पादन-कौशल से जैन आगम-वाङ्मय को आधुनिक भाषा में समीक्षात्मक भाष्य के साथ प्रस्तुति देने का गुरुतर कार्य किया है। भाष्य में वैदिक, बौद्ध और जैन साहित्य, आयुर्वेद, पाश्चात्य दर्शन एवं आधुनिक विज्ञान के तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर समीक्षात्मक टिप्पण लिखे गए हैं।

आचार्य श्री तुलसी ११ वर्ष की आयु में जैन श्वेताम्बर तेरापंथ के अष्टमाचार्य श्री कालूगणी के पास दीक्षित होकर २२ वर्ष की आयु में नवमाचार्य बने।

आपकी औदार्यपूर्ण वृत्ति एवं असाम्प्रदायिक चिन्तन-शैली ने धर्म के सम्प्रदाय से पृथक अस्तित्व को प्रकट किया। नैतिक क्रान्ति, मानसिक शांति और शिक्षा-पद्धति में परिष्कार का त्रि-आयामी कार्यक्रम प्रस्तुत किया। साधु और श्रावक के बीच की कड़ी के रूप में आपने सन् १९८० में समणश्रेणी का प्रवर्तन किया। आपने ६० हजार कि.मी. की भारत की पदयात्रा कर जन-जन में नैतिकता का भाव जगाने का प्रयास किया था।

हिन्दी, संस्कृत एवं राजस्थानी भाषा में अनेक विषयों पर ६० से अधिक ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं। १८ फरवरी १९९४ को आपने आचार्यपद का विसर्जन कर उसे अपने उत्तराधिकारी युवाचार्य श्री महाप्रज्ञ में प्रतिष्ठित कर दिया था। २३ जून सन् १९९७ को आपका महाप्रयाण हुआ। सन् १९९८ में भारत सरकार ने आपकी स्मृति में डाक-टिकट जारी किया।

दशमाचार्य श्री महाप्रज्ञ दस वर्ष की अवस्था में मुनि बने, सूक्ष्म चिन्तन, मौलिक लेखन एवं प्रखर वक्तृत्व आपके व्यक्तित्व के आकर्षक आयाम हैं। जैन दर्शन, योग, ध्यान, काव्य आदि विषयों पर आपके २०० से अधिक ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं। प्रस्तुत आगम-वाचना के आप कुशल संपादक एवं भाष्यकार रहे हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैन विश्व भारती द्वारा प्रकाशित आगम साहित्य

वाचना प्रमुख : आचार्य तुलसी
संपादक विवेचक : आचार्य महाप्रज्ञ

(मूल पाठ पाठान्तर शब्द सूची सहित)

ग्रंथ का नाम	मूल्य
• अंगसुत्ताणि भाग-१ (दूसरा संस्करण) (आयारो, सूयगडो, ठाणं, समवाओ)	७००
• अंगसुत्ताणि भाग-२ (दूसरा संस्करण) (भगवई-विआहपण्णत्ती)	७००
• अंगसुत्ताणि भाग-३ (दूसरा संस्करण) (नायाधम्मकहाओ, उवासगदसाओ, अंतगडदसाओ, अणुत्तरोववाइयदसाओ, पण्णावागरणाइं, विवागसुयं)	५००
• उवंगसुत्ताणि खंड-१ (ओवाइयं, रायपसेणइयं, जीवाजीवाभिगम)	५००
• उवंगसुत्ताणि खंड-२ (पण्णवणा, जंबूद्दीवपण्णत्ती, चंदपण्णत्ती, कप्पवडिंसियाओ, निरयावलियाओ, पुप्फियाओ, पुप्फचूलियाओ, वण्हिदसाओ)	६००
• नवसुत्ताणि (द्वितीय संस्करण) (आवस्सयं, दसवेआलियं, उत्तरज्झयणाणि, नंदी, अणुओगदाराइं)	६९५

कोश

• आगम शब्दकोष (अंगसुत्ताणि तीनों भागों की समग्र शब्द सूची)	३००
• श्री भिक्षु आगम विषय कोश, भाग-१	५००
• श्री भिक्षु आगम विषय कोश, भाग-२	५००
• देशी शब्दकोश	१००
• निरुक्त कोश	६०
• एकार्थक कोश	७०
• जैनागम वनस्पति कोश (सचित्र)	३००
• जैनागम प्राणी कोश (सचित्र)	२५०
• जैनागम वाद्य कोश (सचित्र)	२५०

अन्य भाषा में आगम साहित्य

• भगवती जोड़ खंड-१ से ७ श्रीमज्जयाचार्य सेट का मूल्य	२९००
• आयारो (अंग्रेजी)	२५०
• आचारांगभाष्यम् (अंग्रेजी)	४००
• भगवई खंड-१ (अंग्रेजी)	५००
• उत्तरज्झयणाणि भाग-१, २ (गुजराती)	१०००
• सूयगडो (गुजराती)	

(मूल, छाया, अनुवाद, टिप्पण, परिशिष्ट-सहित)

ग्रंथ का नाम	मूल्य
• आयारो	२००
• आचारांगभाष्यम्	५००
• सूयगडो (तीसरा संस्करण)	६००
• ठाणं	७००
• समवाओ (दूसरा संस्करण)	प्रेस में
• भगवई (खंड-१)	५९५
• भगवई (खंड-२)	६९५
• भगवई (खंड-३)	५००
• भगवई (खंड-४)	५००
• भगवई (खंड-५)	प्रेस में
• नंदी	३००
• अणुओगदाराइं	४००
• दसवेआलियं (तीसरा संस्करण)	५००
• उत्तरज्झयणाणि (चौथा संस्करण)	६००
• नायाधम्मकहाओ	५००
• दसवेआलियं (गुटका)	७
• उत्तरज्झयणाणि (गुटका)	२५

अन्य आगम साहित्य

• निर्युक्तिपंचक (मूल, पाठान्तर)	५००
• व्यवहार भाष्य (हिन्दी अनुवाद)	५००
• व्यवहार भाष्य (मूल, पाठान्तर, भूमिका, परिशिष्ट)	७००
• बृहत्कल्पभाष्यम् (सानुवाद)	प्रेस में
• गाथा (आगमों के आधार पर भगवान महावीर का जीवन दर्शन रोचक शैली में)	३५०
• आत्मा का दर्शन (जैन धर्म : तत्त्व और आचार)	५००

प्राप्ति स्थान :
जैन विश्व भारती
लाडनूं - ३४१३०६ (राज.)
ISBN - 81-7195-131-7

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org